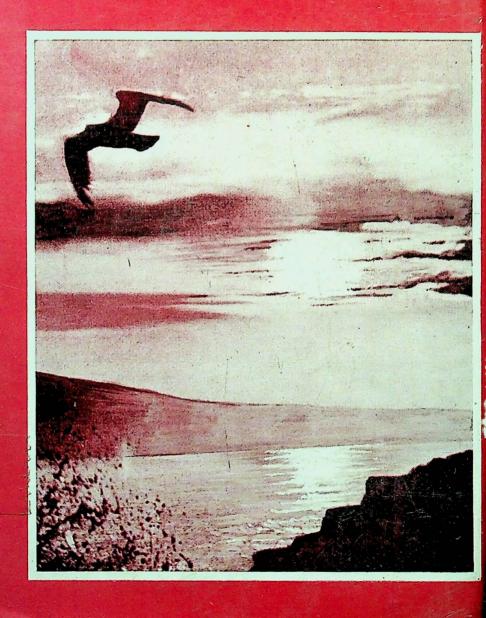
उपनिषत्सङ्ग्रहः



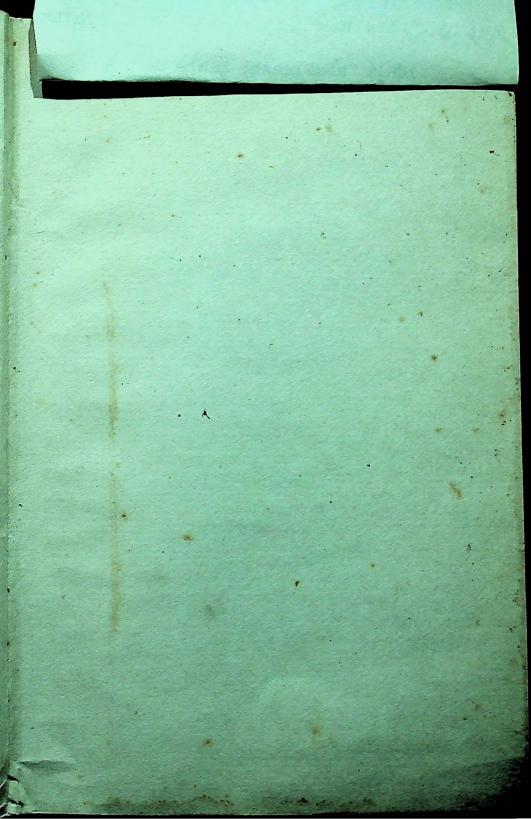
220 RA. जगदीन- नुन पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय विषय संख्या आगत नं । १८६३२६ लेखक जिंग दिशि गोर्षक उपानिय यह स्थित दिनांक सदस्य संख्या दिनांक सदस्य संख्या Elike High Side A BRAGIABLE SCHIERIER SERVICE SERV

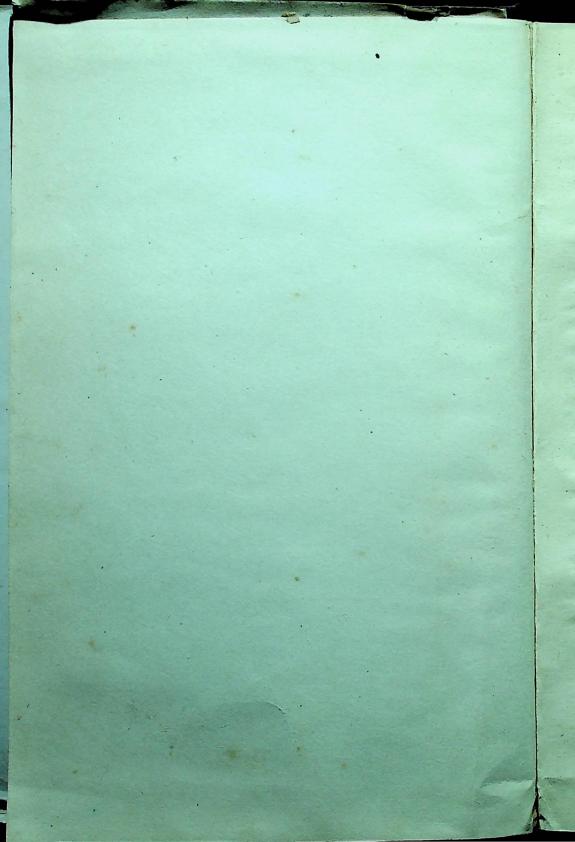
२२० RA गदा॰-उ॰ पुरत्तकालय

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

| | | संख्या.! २.6.3२6 |
|--------|---------|------------------|
| संख्या | आगत | सख्यार.घटन्ट |

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि हित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी हिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड ।





उपनिषत्संग्रहः

UPANISAT-SAMGRAHAH

Containing 188 Upanisads

Edited with Sanskrit Introduction by Prof. J. L. SHASTRI

MOTILAL BANARSIDASS Delhi :: Varanasi :: Patna

उपनिषत्संग्रहः

प्रथमे भागे ईशादिविशोत्तरशतोपिनषदः द्वितीये च योगाद्यष्टोत्तरषष्ट्युपनिषदः

स चायं भागद्वयोपेतः
पण्डितजगदीसशास्त्रिणा
स्व. डा. निगम शर्मा रम्हि संग्रह
पूर्व अध्यक्ष संग्रत विभाग
क्कुल काँगड़ा विश्वविद्यालय, हरिद्वार

विषयानुक्रमण्या लघुभूमिकया च समलङकृत्य सम्पादितः

1263261

अस्तिका पुस्तक सदन अंकर बाश्रम, ज्वालापुर (हरिद्धार)



126326

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

220 30

© मोतीलाल बनारसीदास

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७ शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१ अशोक राजपथ, पटना ५०० ००४ ६ अपर स्वामी कोइल स्ट्रीट, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४

प्रथम संस्करण : दिल्ली, १६७० पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १६८०, १६८४

मूल्य : रु० १४० (सजिल्द) रु० १२० (ग्रजिल्द)

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ७ द्वारा प्रकाशित तथा श्री शान्तिलाल जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५, फेज-१, नारायणा, नई दिल्ली २८ द्वारा मुद्रित ।

उपोद्घातः

अपरिमेयजननसंसृतस्य पुनरावर्तनमिनच्छतः प्राणिनो धर्म एव परमालम्बनम् । को धर्मः, कथं वा तत्र प्रवृत्तिरिति जिज्ञासायां वेद एव नः शरणम्
'वेदो हि मूलं धर्मस्य' इत्युक्तेः । को नाम वेद इत्याकाङक्षायां 'मन्त्रब्राह्मणयोवेदनामधेयम्' इत्याहुराचार्याः । तत्र मन्त्रात्मको वेदश्चतसृष् संहितासु विभक्तः
ऋग्यजुस्सामाथर्वनामभिव्यपदिश्यते ।

मन्त्रात्मकस्य वेदस्य पुरा ऋषिसम्प्रदायक्रमेण विनियोगादिभेदाद् बह्व्यः शाखा अभूवन् । परमद्यत्वे न तास्सर्वाः समुपलम्यन्ते । ब्राह्मणात्मकस्य वेदस्यापि काश्चिदेव शाखा अवशिष्टाः । तत्र कयोश्चिदेव लुप्तालुप्तब्राह्मणशाखयो-रारण्यकोपनिषदः प्राप्यन्ते ।

मन्त्रात्मके वेदे कर्मणोऽङ्गित्वमङ्गीकृतम्, यज्ञाङ्गभूतानां देवाहुतिमन्त्राणां निसर्गत एव कर्मप्रधानत्वात् । ब्राह्मणग्रन्थेष्विप यागादिकियाप्रसङ्गेन कर्मण एव मुख्यत्वं व्याक्त्यातम् । इयमेव परम्परा परवितिनि श्रौतगृह्यसमाम्नाये दृश्यते । परं नायं पन्या मुमुक्षूणां मुक्तये साधीयान्, स च 'स्वर्गकामो यजेत' इत्युक्त्या स्वर्गायेवालं न तु मोक्षाय, 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' इति पुण्यक्षये पुनरावृत्तिदर्शनात् ।

निवृत्तिपथानुयायिनां प्राणिनां कृते तु किश्चत्कर्मव्यितिरिक्तो भिन्न एव मार्ग आरण्यकेषु उपनिषत्सु च प्रतिपादितः। आरण्यकोपनिषत्समाम्नायो ब्राह्मणात्मकस्य वेदस्यैवाङ्गम् अतस्तत्प्रामाण्यं स्वतःसिद्धम् । यथा चेष्टप्रतिपादकं यागादिकं कर्म ब्राह्मणेषु विधीयते तथैव बन्धमोक्षादिकं संसृतिनिवर्तकं ज्ञानं ब्राह्मणाङ्गभूतेषु आरण्यकोपनिषद्ग्रन्थेषूपदिश्यते, निह ज्ञानादृते मुक्तिरिति श्रवणात् ।

तज्ज्ञानमादौ साक्षात्कृतधर्माणामृषीणामाश्रमेषु अपरिग्रहाणां मुमुक्षूणां कृते समुद्गतम् । गृहस्थेषु कर्मविरितमा भूदिति धिया महर्षिभिरस्य प्रमृतिररण्येष्वेव



126326

व्यधीयत । परं बृहदारण्यकोपनिषदि गार्गीयाज्ञवल्क्यसंवादेऽस्य चर्चा जनकराज-सभायामपि श्रयते ।

उपनिषत्प्रतिपादितोऽयं मार्गः संसृतिशीलानां प्राणिनां मोहावरणिनवृत्तये कर्मसाविश्यनपेक्षते, शुद्धबुद्धसिद्धस्यैव प्राणिनो मोक्षयोग्यत्वात्, अनेकजन्म-संसिद्धस्ततो याति परां गतिम् इति भगवद्धचनाच्च । मनसो निर्वासनीभावाय प्रयति किरायोग नाश्चितानामेव मुमुक्षणां कालक्रमेण मोक्षो नान्येषाम् । एवञ्च किराविरोक्षा मुक्तिरशक्यवैति गम्यते ।

'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि,' 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादिभिः श्रुतिवाक्यैर्ज्ञातृज्ञेयगेरेकः वत्राधाय ज्ञानस्य साधनत्वे प्रमाणिते तज्ज्ञानप्रतिपादकस्य शास्त्रस्य
चिरतार्थता स्पष्टेव । यथैकस्याकाशस्य घटाद्युपहितस्य घटाकाशादिभेदाः,
निव्यात्रिकः व आकाशमात्रस्थितः तथैवात्मनो देहाद्युपाधिभेदान्नानात्वप्रतीतिः,
निव्याधिकः व एकत्वबोधः । एवमेव मायोपहितत्वे प्रत्यक्चैतन्यस्य विशुद्धचैतन्यात्र्यक् प्रतीतिः, अनुपहितत्वे तु एकत्वमेव । सित च एकत्वबोधे को
द्रष्टा, कि दृश्यन्, को ज्ञाता, कि ज्ञेयम् ? ऐकात्म्यमुद्भाव्य व्युपरते ज्ञाने,
विज्ञीने द्रष्ट्रदृश्यभावे बन्धमोक्षभावौ निवर्तेते, चैतन्यमात्रमवितष्ठते ।

एतन्त्रानात्मको भागद्वयोपेत उपनिषत्सङ्ग्रहः श्रद्धावतां जिज्ञासूनां साधकानां भूयसे कत्राणाय प्रभविष्यतीत्याशास्महे ।

विषयानुक्रमर्गी प्रथमो भागः

| | 8. | ईशावास्योपनिषत् | 8 | २२. | अमृतनादोपनिषत् | १६९ |
|---|-----|----------------------|-----|-----|---------------------------|-----|
| | ٦. | केनोपनिषत् | 7 | २३. | अथर्वशिरउपनिषत् | 200 |
| | ₹. | कठोपनिषत् | 8 | | अथर्वशिखोपनिषत् | १७५ |
| | 8. | प्रश्नोपनिषत् | १० | | मै त्रायण्युपनिषत् | १७६ |
| | ц. | मुण्डकोपनिषत् | १५ | २६. | कौषीतिकब्राह्मणोपनिषत् | १९४ |
| | ٤. | माण्डूवयोपनिषत् | २० | २७. | बृहज्जाबालोपनिषत् | २०७ |
| | 6. | तैत्तिरीयोपनिषत् | 28 | | नृसिंहपूर्वत।पनीयोपनिषत् | 286 |
| | ८. | एतरेयोपनिषत् | 38 | २९. | नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत् | |
| | 9. | छान्दोग्योपनिषत् | ३४ | | कालाग्नि रुद्रोपनिषत् | २३६ |
| 8 | 0. | बृहदारण्यकोपनिषत् | 82 | ₹१. | मैत्रेय्युपनिषत् | २३७ |
| 8 | 2. | रवेतारवतरोपनिपत् | १३४ | ३२. | सुबालोपनिषत् | २४२ |
| 2 | ٦. | व्रह्मविन्दूपनिषत् | 888 | ३३: | क्षुरिकोपनिषत् | 240 |
| 2 | nx. | कैवल्योपनिषत् | 885 | ₹४. | मन्त्रिकोपनिषत् | २५२ |
| 8 | ٧. | जाबालोपनिषत् | 888 | 34. | सर्वसारोपनिषत् | २५३ |
| १ | 4. | हंसोपनिषत् | १४६ | ३६. | निरालम्बोपनिषत् | २५४ |
| 8 | ξ. | आरुणिकोपनिषत् | 186 | ₹७. | शुकरहस्योपनिषत् | 240 |
| 8 | 9. | गर्भोपनिषत् | १४९ | ₹८. | वज्रसूचिकोपनिषत् | २६० |
| 8 | ८. | नारायणायवंशिरउपनिषत् | १५१ | ३९. | तेजोविन्दूपनिषत् | २६२ |
| 8 | 9. | महानारायणोपनिषत् | १५२ | 80. | नादविन्दूपनिषत् | २८३ |
| 2 | 0. | परमहंसोपनिषत् | १६५ | ४१. | ध्यानविन्दूपनिषत् | २८६ |
| ? | १. | ब्रह्मोपनिषत् | १६७ | ४२. | ब्रह्मविद्योपनिषत् | २९२ |
| | | | | | | |

| ¥3. | योगतत्त्वोपनिषत् | २९७ | ६७. | तुरीयातीतोपनिषत् | ४७३ |
|------|----------------------------|-----|-----------------|--------------------------|-----|
| | | ३०४ | & ¿. | संन्यासोपनिषत् | ४७५ |
| | | ३०६ | ६९. | परमहंसपरिवाजकोपनिषत् | ४८२ |
| | | ३२८ | 90. | अक्षमालिकोपनिष त् | ४८५ |
| | सीतोपनिषत् | ३७३ | 98. | अव्यक्तोपनिषत् | 228 |
| | | ३९३ | ७२. | एकाक्ष रोपनिषत् | ४९२ |
| | | ३४६ | ७३. | अन्नपूर्णोपनिषत् | ४९३ |
| 40. | मण्डलब्राह्मणोपनिषत् | ३४७ | .80 | सूर्योपनिषत् | 409 |
| 48. | दक्षिणामूर्त्यु पनिषत् | ३५२ | ७५. | अक्ष्युपनिषत् | 480 |
| 42. | शरभोपनिषत् | ३५४ | ७६. | अध्यात्मोपनिषत् | 483 |
| 43. | स्कन्दोपनिषत् | ३५७ | 99. | कुण्डिकोपनिषत् | 480 |
| 48. | त्रिपाद्विभूतिमहानारायणो- | | 66. | सावित्र्युपनिषत् | 488 |
| | पनिषत् | 346 | ७९. | अात्मोपनिषत् | 420 |
| 94. | अद्वयतारकोपनिषत् | ४८६ | 60. | पाशुपतब्रह्मोपनिषत् | 423 |
| ५६. | रामरहस्योपनिषत् | ३८६ | ८१. | परब्रह्मोपनिषत् | 470 |
| ५७. | श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत् | ३९५ | ८२. | अवयूतोपनिषत् | 479 |
| 46. | श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत् | 808 | ८३. | त्रिपुरातापिन्युपनिषत् | ५३२ |
| 49. | वासुदेवोपनिषत् | ४०५ | 68. | देव्युपनिषत् | 485 |
| ξo. | मुद्गलोपनिषत् | ४०७ | ८५. | त्रिपुरोपनिषत् | 488 |
| ٤ ٢. | शाण्डिल्योपनिषत् | ४०९ | ८६. | कठरुद्रोपनिषत् | 484 |
| | पे ज्ञलोपनिषत् | ४२० | 20. | भावनोपनिषत् " | 486 |
| | भिक्षुकोपनिषत् | ४२६ | 16. | हद्रहृदयोपनिषत् | 440 |
| - | महोपनिषत् | ४२७ | | . योगकुण्डल्युपनिषत् | ५५३ |
| | . शारीरकोपनिषत् | ४५३ | 90. | भस्मजाबालोपनिषत् | ५६१ |
| ६६ | · योगशिखोपनिषत् | ४५५ | 38 | . रुद्राक्षजाबालोपनिषत् | ५६७ |

| ९२. गणपत्युपनिषत् | 400 | 200. | कलिसन्तरणोपनिषत् | ६२७ |
|------------------------------|------|---------|-------------------------|-----|
| ९३. जाबालदर्शनोपनिषत् | ५७२ | | जाबाल्युपनिषत् | ६२७ |
| ९४. तारसारोपनिषत् | 463 | १०९. | गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् | ६२९ |
| ९५. महावाक्योपनिषत् | 424 | ११०. | गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् | ६३३ |
| ९६. पञ्चब्रह्मोपनिषत् | ५८६ | | संन्यासोपनिषत् | ६४१ |
| ९७. प्राणाग्निहोत्रोपनिषत् | 466 | ११२. | गोपीचन्दनोपनिषत् | ६४२ |
| ९८. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत् | 498 | ११३. | सरस्वतीरहस्योपनिषत् | ६४५ |
| ९९. गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् | 498 | ११४. | पिण्डोपनिषत् | ६४८ |
| १००. कृष्णोपनिषत् | 499 | ११५. | महोपनिषत् | ६४९ |
| १०१ याज्ञवल्क्योपनिषत् | 6.08 | ११६. | बह्व चोपनिषत् | ६५० |
| १०२. वराहोपनिषत् | ६०३ | ११७. | आश्रमोपनिषत् | ६५१ |
| १०३ शाट्यायनीयोपनिषत् | ६१६ | ११८. | सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् | ६५३ |
| १०४. हयग्रीवोपनिषत् | ६१९ | ११९. | योगशिखोपनिषत् | ६५६ |
| १०५. दत्तात्रयोपनिषत् | ६२१ | १२०. | मु वितकोपनिषत् | ६५७ |
| १०६. गारुडोपनि पत् | ६२३ | 3 W 199 | Mark St. Land | |
| | | | · · | |

4 2

द्वितीयो भागः

| योगोपनिषदः | | ६. इतिहासोपनिषत् | १० |
|-----------------------|---|--------------------|------|
| १. योगराजोपनिषत् | 8 | ७. चतुर्वेदोपनिषत् | २० |
| सामान्यवेदान्तोपनिषदः | | ८. चाक्षुषोपनिषत् | २२ |
| २. अद्वैतोपनिषत् | 8 | ९. छागलेयोपनिषत् | २३ |
| ३. आचमनोपनिषत् | 4 | १०. तुरीयोपनिषत् | २६ |
| ४. आत्मपूजोपनिषत् | | ११. द्वयोपनिषत् | २७ |
| ५. आर्षेयोपनिषत् | 9 | १२ निरुवतोपनिषत् | . 26 |

| | | २९ | ३६. सुदर्शनोपनिषत् | २९३ |
|------|---------------------------------|--------|----------------------------|-----|
| | पिण्डोपनिषत् | | | |
| | प्रणवोपनिषत् | ३० | श्रैवोपनिषदः विकासीयान | २९६ |
| 24. | बाष्कलमन्त्रोपनिषत् | 30 | ३७. नीलह्द्रोपनिषत् | |
| १६. | मठाम्नायोपनिष्त् | 28 | ३८ पारायणोपनिषत् | 307 |
| 919. | विश्रामोपनिषत् | 40 | ३९. बिल्वोपनिषत् | ३०३ |
| | शौनकोपनिषत् | 48 | ४०. मृत्युलाङ्गूलोपनिषत् | ३०७ |
| | मुयंतापिन्युपनिषत् | 48 | ४१. रुद्रोपनिषत् | ३०८ |
| | स्वसंवेद्योपनिषत् | ६० | ४२. लिङ्गोपनिषत् | ३०९ |
| | वोपनिषदः | | ४३. वज्रिपञ्जरोपनिषत् | 388 |
| , | | ६३ | ४४. वटुकोपनिषत् | 383 |
| | उ हर्वपुण्ड्रोपनिषत् | 58 | ४५. शिवसङ्कल्पोपनिषत् | 386 |
| | कात्यायनोपनिषत् | | ४६. शिवोपनिषत् | 328 |
| | गोपीचन्दनोपनिषत् | ६५ | | 306 |
| | तुलस्युंपनिषत् | 90 | ४७. सदानन्दोपनिषत् | 360 |
| 24. | नारदोपनिषत् | ७२ | ४८. सिद्धान्तशिखोपनिषत् | |
| २६. | नारायणपूर्वतापनीयोपनिष | त् ७३ | ४९. सिद्धान्तसारोपनिषत् | 323 |
| २७. | , नारायणोत्तरतापनीयोपनि | षत् ८० | ५०. हेरम्बोपनिषत् | 390 |
| | न्सिंहषट्चकोपनिषत् | 68 | शाक्तोपनिषदः | |
| | . पारमारिमकोपनिषत् | ८६ | ५१. अल्लोपनिषत् | 385 |
| | . यज्ञोपवीतोपनिषत् | 200 | ५२. आथर्वणद्वितीयोपनिषत् | ३९३ |
| | . राबोपनिषत् | २०८ | ५३. कामराजकीलितो- | |
| | . लाङ्ग लोपनिषत् | २१३ | द्धारोपनिषत् | 800 |
| | . श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तो | | ५४. कालिकोपनिषत् | 808 |
| 44 | पनिषत् | २१७ | ५५. कालीमेघादीक्षितोपनिषत् | 808 |
| | | | | ४०५ |
| | ८. सङ्कर्षणोपनिषत् | २१८ | ५६ गायत्री रहस्योपनिषत् | |
| ३५ | . सामरहस्योपनिषत् | 288 | ५७. गायन्युपनिषत् | ४०९ |

| 46. | गुह्यकाल्युपनिपन् | 860 | EX. | श्रीचक्रोपनिषत् | ४६८ |
|-----|------------------------|-----|------------|-----------------------|-----|
| 49. | गुह्यषोडान्यासोपनिपत् | ४२० | ६५. | श्रीविद्यातारकोपनिषत् | ४६९ |
| | | ४२१ | | षोढोपनिषत् | ४७२ |
| ٤٩. | राजश्यामलारहस्योपनियत् | ४२३ | ६७. | सुमु स्युपनिषत् | ४७३ |
| ६२. | वनदुर्गोपनिषत् | ४२६ | ٤८. | हं संषोढोपनिषत् | ४७४ |
| ६३. | श्यामोपनिषत् | ४६७ | | | |



ईशादिविंशोत्तरशतोपनिषदः

॥ ॐ तत्सत्॥

ईशावास्योपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ पूर्णसदः पूर्णसिदं पूर्णात्पूर्णसुदच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥

ॐ बान्तिः बान्तिः शान्तिः ॥

ॐ हैशा वास्यमिद्र सर्व यकिंच जगत्यां जगत्॥ तेन सकेन भुक्षीया मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत् समाः॥ एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥ असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ॥ ताथस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनी जनाः ॥ ३ ॥ अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनदेवा आप्रुवन्पूर्वमर्पत् ॥ तद्वावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मित्रपो मातरिश्वा द्धाति ॥ ४ ॥ तदेजति तन्नेजति तहुरे तद्वन्तिके ॥ तदन्तरस्यं सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य याद्यतः ॥ १९॥ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्ये-वाजुपक्यिति ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥ यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यासमवाभूद्विजानतः ॥ तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपस्यतः॥ ७ ॥ स पर्यगाच्छुक्रमकायमञ्जगमस्नाविर १ ग्रुद्धमपापविद्धम् ॥ कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूयीयातथ्यतोऽर्थोन्व्यद्धाच्छाश्वतीम्यः समाभ्यः॥ ८॥ अन्धन्तमः प्रवि-शन्ति येऽविद्यासुपासते ॥ ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रताः ॥९॥ अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ॥ इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १०॥ विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय सह ॥ अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्य-यामृतमशुते ॥ ११ ॥ अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ॥ ततो भ्य इव ते तमो य उ संभूत्या रताः॥ १२॥ अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभ-वात् ॥ इति शुश्रम धीराणां ये नसिद्रिचचिश्ररे ॥ १३ ॥ संभूति च विनाशं च यस्तद्वेदोभयथ सह ॥ विनाशेन मृत्युं तीर्त्वां संभूत्याऽमृतमश्चते ॥ १४ ॥ हिर्णमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ॥ तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय इष्ट्ये ॥ १५ ॥ पूषल्लेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य न्यूह रश्मीनसमूह ॥ तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पद्यामि योऽसावसी पुरुषः सोऽहमसि ॥ १६॥

वायुरनिकममृतमधेदं भस्मान्तरं शरीरम् ॥ ॐ क्रमो स्मर कृतरं स्मर कतौ स्मर कृतरं स्मर ॥ १७ ॥ अमे नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयु-वानि विद्वान् ॥ युयोध्यसाजुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्दच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति वाजसनेयसंहितायामीशावास्योपनिषत्संपूर्णा ॥ ३ ॥

'केनोपनिषत् ॥ २ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षः श्रोत्रमथो वलमिन्द्रियाणि च। सर्वाणि सर्व ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद-निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मिय सन्तु ते मिय सन्तु ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ केनेषितं पतित प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ॥ केनेषितं वाचिममां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥ श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यहाचो ह वाचर स उ प्राणस्य प्राणः ॥ चक्षुपश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यासाहोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥ न तत्र चक्षुर्गच्छित न वारगच्छित नो मनो न विद्यो न विज्ञानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तिहिदिताद्यो अविदिताद्यि ॥ इति ग्रुशुम पूर्वेषां ये नस्तद्याचचिक्षिरे ॥ ३ ॥ यहाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद्मुपासते ॥ ४ ॥ यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥ यचक्षुषा न पश्यित येन चक्षूर्षि पश्यित ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥ यच्छोत्रेण न ग्रुणोति येन श्रोत्रामिद्र श्रुतम् ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥ यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥ यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ॥ तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ८ ॥

इति केनोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नृनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ॥ यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथ नु भीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ ९ ॥ ९ ॥ नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ॥ यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥ १० ॥ २ ॥ यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ॥ अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ११ ॥ ३ ॥ प्रतिबोधविदितं मतमसृतत्वं हि विन्दते ॥ आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽसृतम् ॥ १२ ॥ ४ ॥ इह चेदवेदीद्ध सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ॥ भृतेषु भृतेषु विचित्य धीराः प्रत्यास्माछोकादसृता भवन्ति ॥ १३ ॥ ५ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त ॥ त ऐक्षन्तासाकमेवायं विजयोऽसाकमेवायं महिमेति ॥ १४ ॥ १ ॥ तद्धेषां विजज्ञा तेभ्यो ह प्रादुर्वभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ॥ १५॥ २॥ तेऽग्निमञ्जवञ्चातवेद एतद्विजानीहि किमेतचक्षमिति तथेति॥ १६॥३॥ तद्भ्यद्वत्तमभ्यवद्त्कोऽसीत्यप्तिर्वा अहमसीत्ववीजातवेदा वा अहमसीति ॥ १७ ॥ ४ ॥ तस्मिस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदः सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्या-मिति ॥ १८ ॥ ५ ॥ तस्मै तृणं निद्धावेतद्देति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शक्षाक दुग्धुं स तत एव निवन्ते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतसक्षमिति ॥ १९॥ ॥ ६ ॥ अथ वायुमञ्जवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ २०॥ ७॥ तद्भ्यद्रवत्तमभ्यवद्त्कोऽसीति वायुर्वा अहमसीत्यव्रवीन्मा-तरिश्वा वा अहमसीति ॥ २१ ॥ ८॥ तसिंस्त्विय किं वीर्यमित्यपींद्ध सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥ २२ ॥ ९ ॥ तस्मै तृणं निद्धावेतदाद-त्स्वेति तदुप प्रयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतद-शकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षसिति ॥ २३ ॥ १० ॥ अथेन्द्रमनुवन्मघवन्नेतद्वि-जानीहि किमेतद्यक्षमिति ॥ तथेति तद्भ्यद्वतस्मात्तिरोद्धे ॥ २४ ॥ ११ ॥ स तसिन्नेवाकारी स्नियमाजगाम वहुशोभमानामुमा हैमवतीं ता इशेवाच किमेत्रद्यक्षमिति ॥ २५ ॥ १२ ॥

इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सा ब्रह्मोत होवाच ब्रह्मणो वा एतिह जये महीयध्वमिति ततो हैव विदां-चकार ब्रह्मोति ॥ २६ ॥ १ ॥ तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्य-द्विर्घायुरिन्द्रस्तेन ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृद्युस्ते ह्येनस्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मोति ॥ २७ ॥ २ ॥ तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शं स ह्येनस्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मोति ॥ २८ ॥ ३ ॥ तस्येष आदेशो यदेतिहृद्युतो व्यद्यतदा ३ इतीक्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ॥ २९ ॥ ४ ॥ अथाध्यात्मं यदेतद्रच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरस्यभीक्षणं संकल्पः ॥ ३० ॥ ५ ॥ तद्ध तद्वनं नाम तहनमित्युपासित्व्यं रा य एतदेवं चेदाऽभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ३१ ॥ ६ ॥ उपनिपदं भो ब्रह्मास्युक्ता य उपनिपद्राह्मी वाव त उपनिषद्मन्मेति ॥ ३२ ॥ ७ ॥ तस्यै तपो द्मः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ३३ ॥ ८ ॥ यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानम(न)न्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ३४ ॥ ९ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्रक्षः श्रोत्रमथो वलिमिन्द्रयाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदिनिरा-करणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मिन निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मिय सन्तु ते मिय सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति सामवेदीया केनोपनिषत्समासा ॥ २ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

कठोपनिषत् ॥ ३ ॥

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्विना-वधीतमस्तु मा विद्विपावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ॥ उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ॥ तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥ तक्ह कुमारक् सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥ पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ॥ अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता दद्त् ॥ ३ ॥ स होवाच पितरं तत कसी मां दास्यसीति ॥ द्वितीयं तृतीयं तक्होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥ ४ ॥ बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ॥ कि शस्त्रिद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य केरिष्यति ॥ ५ ॥ अनुपरय यथा पूर्वे प्रतिपरय तथाऽपरे ॥ सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६॥ वैश्वानरः प्रविशस्यतिथिर्वाह्मणो गृहान् ॥ तस्यैता शानित कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥ ७ ॥ आशाप्रतीक्षे सङ्गत थ स्नृतां चेष्टाप्तें पुत्रपञ्ज्भ सर्वान् ॥ एतदृङ्के पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यान-भन्वसित ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥ तिस्रो रात्रीर्यद्वात्सीर्गृहे मेऽनश्चन्ब्रह्मन्नति-थिर्नमस्यः ॥ नमसेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ॥ ९ ॥ शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्गीतमन्युगौतमो माभि मृत्यो ॥ त्व-त्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥ यथा पुरस्तान्नविता प्रतीत औदालकिरारुणिर्मस्त्रसृष्टः ॥ सुन्तर्रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां दृह-शिवान्मृत्युमुखारप्रमुक्तम् ॥ ११ ॥ स्वर्गे छोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं

न जरया विभेति ॥ उमे तीःवीशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गछोके ॥ १२ ॥ स त्वमप्ति स् स्वर्णमध्येषि मृत्यो प्रवृहि त्वं श्रह्धानाय मह्मम् ॥ स्वर्गलोका असृतत्वं भजन्त एतद्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥ प्र ते ब्रवीमि तदु मे निवोध स्वर्थमिन्ने निचकेतः प्रजानन् ॥ अनन्तलोकासिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥ लोकादिमाप्तं तसुवाच तसौ या इष्टका यावतीर्वा यथा वा ॥ स चापि तत्प्रत्यवदद्यशोक्तमथास्य मृत्यः प्रनरेवाह तप्टः ॥ १५ ॥ तमववीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाच ददामि भयः ॥ तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥ त्रिणा-चिकेतिस्विभिरेत्य सिन्धं त्रिकर्मकृत्तरित जन्ममृत्यू ॥ ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचारयेमा शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥ त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वा शश्चित्रते नाचिकेतम् ॥ स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते खर्गलोके ॥ १८ ॥ एष तेऽ झिर्नचिकेतः खग्यों यमवृणीया द्वितीयेन वरेण ॥ एतमधि तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्त्तीयं वरं निचकेतो वृणीष्व ॥ १९॥ येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीयेके नायमस्तीति चैके ॥ एतद्विद्यामन-शिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥ देवैरत्रापि विचिकित्सितं परा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः ॥ अन्यं वरं निवकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरित मा सुजैनम् ॥ २१ ॥ देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुवि-जेयमात्थ ॥ वक्ता चास्य त्वादगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तत्व एतस्य कश्चित् ॥ २२ ॥ शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्त्र बहुन्पशून्हस्तिहिरण्यमश्चान् ॥ भमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छिस ॥ २३ ॥ एतत्त्वं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ॥ महाभूमौ नचिकेतस्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥ ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामा ५३छन्दतः प्रार्थयस्व ॥ इमा रामाः सरथाः सतुर्यो न हीदशा लम्भनीया मनुष्यैः ॥ आभिर्मध्यत्ताभिः परिचारयस्य निवकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥ श्वोभावा मर्लस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ॥ अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥ न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्सामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्वा ॥ जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥ अजीर्यताममृताना-मुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः कंधःस्थः प्रजानन् ॥ अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥ २८ ॥ यसिन्निदं विचिकित्सन्ति सूत्यो यत्सांपरावे महित बूहि नस्तत् ॥ योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥

इति प्रथमेऽध्याये प्रथमा वल्ली ॥ १ ॥

अन्यच्छेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उमे नानार्थे पुरुष सिनीतः ॥ तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥ श्रेयश्च प्रेयश्च मन्द्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति घीरः ॥ श्रेयो हि घीरोऽभि प्रेयसो वृणीते त्रेयो मन्दो योगक्षेमादुणीते ॥ २ ॥ स त्वं प्रियान्त्रियरूपा ५ कामानिभ-ध्यायन्नचिकेतोऽत्यसाक्षीः ॥ नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवास्रो यस्यां मज्जन्ति बहवौ मनुष्याः ॥ ३ ॥ दूरमेते विपरीते विष्ची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ॥ विद्याभीष्सिनं निकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥ ४॥ अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितमन्यमानाः ॥ दन्द्रस्यमाणाः परियन्ति मूडा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ५ ॥ न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन सूढम् ॥ अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥ अवणायापि बहुभियों न लभ्यः शुण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ॥ आश्रयों वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्रयों ज्ञाता कुशला-नुशिष्टः ॥ ७ ॥ न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ॥ अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान्द्यतक्यंमणुप्रमाणात् ॥ ८॥ नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ॥ यां त्वमापः सत्यधतिर्वतासि त्वाहङ्को भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥ जानाम्यह १ होवधिरित्यनित्यं न ह्यधुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ॥ ततो मया नचिकेतश्चितोऽग्निरनित्येर्द्वचैः प्राप्तवानसि नित्यम् ॥ १० ॥ कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां कतोरान-त्यमभयस्य पारम् ॥ स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा ध्रया धीरो निचकेतोऽत्यसाक्षीः॥ ११॥ तं दुर्दर्शं गृहमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्नरेष्टं पुराणम् ॥ अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥ एतच्छुत्वा संपरिगृद्य मर्त्यः प्रवृद्ध धर्म्यमणुमेतमाप्य ॥ स मोदते मोदनीय १ हि लब्ध्वा विवृत १ सझ नचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥ अन्यत्रं धर्माद्न्यत्राधर्माद्न्यत्रासात्कृताकृतात् ॥ अन्यत्र भूताच भव्याच यत्तत्पश्यसि तद्वद् ॥ १४ ॥ सर्वे वेदा यत्पद्माः मनन्ति तपाश्सि सर्वाणि च यद्वदन्ति ॥ यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पद्थ संग्रहेण ब्रवीम्योमिलेतत् ॥ १५ ॥ एतच्चेवाक्षरं ब्रह्म एतच्चेवाक्षरं परम् ॥ एतचोवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥ एतदालम्बन १ श्रेष्टमें-

तदालम्बनं परम् ॥ एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १० ॥ न जायते श्रियते वा विपश्चित्रायं कुतश्चित्र बभूव कश्चित् ॥ अजो नियः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥ हन्ता चेनमन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभा तो न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ॥ तम-ऋतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥ आसीनो दूरं बजित शयानो याति सर्वतः ॥ कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमहिति ॥२१॥ अशरीर १शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ॥ महान्तं विभ्रमात्मानं मत्वा धीरो न शोचिति ॥ २२ ॥ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥ यमेवेष वृणुते तेन लभ्यस्तस्थेष आत्मा विवृणुते तन् १स्वाम् ॥२३॥ नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ॥ नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेननमानुयात् ॥ २४ ॥ यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोमे भवत ओद्नः ॥ मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

इति प्रथमेऽध्याये द्वितीया वही ॥ २ ॥

ऋतं पिवन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टी परमे परार्धे ॥ छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चामयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥ यः सेत्रीजानाना-मक्षरं ब्रह्म यत्परम् ॥ अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेत दशकेमहि ॥ २ ॥ आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ बुद्धिं तु सार्थि विद्धि मनः प्रमह-मेव च ॥ ३ ॥ इन्द्रियाणि ह्यानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥ आत्मेन्द्रियमनो-युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीपिणः ॥ ४ ॥ यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥ उस्येन्द्रियाण्यवस्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥५॥ यस्तु विज्ञानवानभवति युक्तेन मनसा सदा॥ तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ ६ ॥ यस्त्वविज्ञान-ग्रान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ॥ न स तत्पद्मामोति सरसारं चाधिगच्छति । ७ ॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा ग्रुचिः ॥ स तु तत्पदमा-श्रोति यसाद्धयो न जायते ॥ ८ ॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ॥ स्रोऽध्वनः पारमाम्रोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥ इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १० ॥ महतः परमव्यक्तमव्यकाःपुरुषः परः ॥ पुरुषात्र परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥ एष सर्वेषु भूतेषु गृहोत्मा न प्रकाशते ॥ दश्यते त्वस्यया बुद्धा सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥१२॥ यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मिनि ॥ ज्ञानमात्मिन महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मिनि ॥ १३ ॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरानिबोधत ॥ क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवस्य यत् ॥ अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥ नाचिकेतमुपाल्यानं मृत्युप्रोक्तर् सनातनम् ॥ उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्म- लोके महीयते ॥ १६ ॥ य इमं परमं गुद्धं श्रावयेद्रह्मसंसदि ॥ प्रयतः श्राद्धकारे वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ॥ ३ ॥ इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ॥ कश्चि-द्धीरः प्रत्यगात्मानमेक्षदावृत्तचक्षुरसृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥ पराचः कामाननु-यन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्॥ अथ घीरा असृतत्वं विद्वित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥ येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शा ५ श्र मैथुनान् ॥ एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते, एतद्वै तत् ॥ ३ ॥ स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपद्यति ॥ महान्तं विशुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचित ॥ ४ ॥ य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ॥ ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते, एतद्वै तत् ॥५॥ यः पूर्वं तपसो जातमन्त्रः पूर्वमजायत ॥ गुहां प्रविश्य तिष्टन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यते, एतद्वै तत् ॥ ६ ॥ या प्राणेन संभवत्यदितिदेवतामयी ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत, एतद्वे तत्॥ ७॥ अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुसृतो गर्भिणीभिः॥ दिवे दिव ईंड्यो जागृवद्गिईविष्मद्भिमंनुष्येभिरिमः, एतद्वै तत् ॥ ८ ॥ यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ॥ तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन, एतद्वे तत् ॥ ९ ॥ यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ॥ मृत्योः स मृत्युमामोति य इह नानेव पर्वित ॥ १० ॥ मनसैवेदमासव्यं नेह नानास्ति किंचन ॥ मृत्योः स मृत्यु गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥ अङ्ग्रष्टमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ॥ ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते, एतद्वै तत् ॥१२॥ अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ॥ ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः, एतद्वे तत् ॥ १३ ॥ यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ॥ एवं धर्मा-न्पृथक् पर्यस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥ यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादः-गेव भवति ॥ एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

इति द्वितीयेऽध्याये प्रथमा वल्ली समाप्ता ॥ १ ॥ (४) । पुरमेकादशद्वारमजस्यावकचेतसः ॥ अनुष्ठाय न शोचित विमुक्तश्च विमु-

च्यते, एतद्वे तत् ॥ १ ॥ ह एसः शुचिपद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिपदतिथिर्दु-रोणसत् ॥ नृषद्वरसदतसद्योमसद्ब्जा गोजा ऋतजा अद्विजा ऋतं बृहत् ॥२॥ ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ॥ मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपा-सते ॥ ३ ॥ अस्य विसंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ॥ देहाद्विमुच्यमानस्य किमन्न परिशिष्यते, एतद्वै तत् ॥ ४ ॥ न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ॥ इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेताबुपाश्चितौ ॥ ५ ॥ हन्त त इदं प्रव-क्ष्यामि गुद्धं ब्रह्म सनातनम् ॥ यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥६॥ योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ॥ स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥७॥ य एप सुप्तेषु जागतिं कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ॥ तदेव शुक्रं तद्रहा तदेवामृतमुच्यते ॥ तसिँछोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन, एतद्वै तत् ॥ ८ ॥ अप्तिर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वभव ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्र ॥ ९ ॥ वायुर्यथैको अवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥ सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्कर्न लिप्यते चाक्षुपैर्वाद्यदोपैः ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥ एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ॥ तमात्मस्थं येऽनुपरयन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥ रिनित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विद्धाति कामान् ॥ तमा-त्मस्यं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥ तदेत-दिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ॥ कथं नु तद्विजानीयां किर्सु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिद् विभाति ॥ १५॥

इति द्वितीयेऽध्याये द्वितीया वल्ली समाप्ता ॥ ॥ २ ॥ (५) ।

अर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ॥ तदेव ग्रुकं तद्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँ छोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन एतद्वे तत् ॥ १ ॥
यदिदं किंच जगत्सवं प्राण एजित निःस्तम् ॥ महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरसृताले भवन्ति ॥ २ ॥ भयादस्याभिस्तपित भयात्तपित सूर्यः ॥ भयादिनद्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥ इह चेदशकद्वोद्धं प्राक् शरीरस्य
विस्ताः ॥ ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥ यथादर्शे तथात्मिन
यथा स्वभे तथा पितृलोके ॥ यथाप्सु परीव दृद्शे तथा गन्धर्वलोके स्वायात्प

योरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥ इन्द्रियाणां पृथग्भावसुद्यास्तमयो च यत् ॥ पृथ-गुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचित ॥ ६ ॥ इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ॥ सत्त्वाद्धि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥ अव्यकात् परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ॥ यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥ न संदरो तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुपा पश्यति कश्चनैनम्॥ हृदा मनीषी मनसाऽभिक्कृष्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥ यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥ बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥ १० ॥ तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥ अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाष्ययो ॥॥ ११॥ नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ॥ अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपरुभ्यते ॥ १२ ॥ अस्तीत्वेवोपलब्धव्यसत्त्वभावेन चोभयोः ॥ अस्तीत्वेवोपलब्धस्य तस्वभावः प्रसीदति ॥१३॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ॥ अय मर्लोऽसतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्रुते ॥१४॥ यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ॥ अथ मर्लोऽसृतो भवत्येतावद्यनुशासनम् ॥१५॥ शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिः सतैका ॥ तयोर्ध्वमायन्न मृतत्वसेति विष्वङ्गन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥ १६ ॥ अङ्गष्टमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृद्ये संनिविष्टः ॥ तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुआदिवेषीकां धेर्येण ॥ तं विद्याच्छुक्रम-मृतं तं विद्याच्छुकममृतमिति ॥ १७ ॥ मृत्युप्रोक्तां नैचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधि च कृत्स्नम् ॥ ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥ १८॥

> इति द्वितीयेऽध्याये तृतीया वही समाप्ता ॥ ३ ॥ (६) । इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्त्रिना-वधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति यजुर्वेदीया कठोपनिषत्समाप्ता ॥ ३ ॥

॥ ॐतत्सत् ॥

प्रश्लोपनिषत् ॥ ४ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रुणयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरेरङ्गेस्तु-ष्ट्रवार्ससत्तन्भिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूपा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्देधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैव्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौशस्य-श्चाश्वलायनो भार्गवो वैद्भिः कवन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एप ह वे तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलाद्मुपसन्नाः ॥ १ ॥ तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नानपृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥ २ ॥ अथ कवन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ भगवन्कुतो ह वा इसाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥३॥ तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजा-पतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तह्वा स मिथुनमुत्पादयते ॥ रियं च प्राणं चेत्येतौ से वहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥ ४ ॥ आदित्यो ह वै प्राणो रियरिव चन्द्रमा रियवा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रियः॥ ५ ॥ अथादित्य उद्यन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान्प्राणात्रिहमपु संनिधत्ते यद्क्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यद्घो यदूर्घं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रका-शयति तेन सर्वोन्प्राणान् रिमपु संनिधत्ते ॥ ६ ॥ स एष वैश्वानरो विश्व-रूपः प्राणोऽग्निरुद्यते ॥ तदेतद्याभ्युक्तम् ॥७॥ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ॥ सहस्ररिमः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजाना-सुद्यत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥ संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च ॥ तये ह वे तादिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव छोकमभिजयन्ते॥ त एव पुनरावर्तन्ते तसादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते ॥ एष ह वै रियर्यः पित्याणः ॥९॥ अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानम-न्विष्यादित्यमभिजयन्त एतद्वे प्राणानामायतनमेतद्भृतमभयमेतत्परायणमेत-स्मान पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेप श्लोकः ॥ १० ॥ पञ्चपादं पितरं द्वाद-शाकृतिं दिव आहु: परे अर्धे पुरीषिणम् ॥ अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचके पडर आहुरिवतिमिति ॥ ११ ॥ मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रियः शुक्तः प्राणसासादेते ऋषयः शुक्त इष्टं कुर्वन्तीतर इतरिसन् ॥ १२ ॥ अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणी रात्रिरेव रियः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्वात्रौ रत्या संयुज्य-न्ते ॥ १३ ॥ अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्देतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति !! १४ ॥ तद्ये ह वै तत्प्रजापनिवतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते ॥ तेपा-

मेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ १६ ॥

इति प्रथमः प्रश्नः ॥ १ ॥

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ, भगवन्कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते. कतर एतत्प्रकाशयन्ते, कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥ तस्मे स होवाचाकाशो ह वा एप देवो वायुरिसरापः पृथिवी वाङ्मनश्रक्षः श्रोत्रं च ॥ ते प्रकाइया-भिवदन्ति वयमेतद्वाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥ २ ॥ तान्वरिष्ठः प्राण उवाच, मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्वाणसवष्टभ्य विधा-रयामीति ॥ तेऽश्रद्धाना बभूतुः ॥ ३ ॥ सोऽभिमानाद्ध्वं मुत्कमत इव तस्मि-बुक्तामत्यथेतरे सर्व एवोक्तामन्ते तस्मिश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठनते मधुकरराजानमुक्तामन्तं सर्वा एवोत्कामन्ते तस्मिश्च तद्यथा मक्षिका प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाक्षनश्रक्षः श्रोत्रं च ते प्रीताः स्तुन्वन्ति ॥ ४ ॥ एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रियर्देवः सदसचामृतं च यत् ॥ ५ ॥ अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम् ॥ ऋचो यजंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ ॥ प्रजापतिश्च-रिस गर्भे त्वसेव प्रतिजायसे ॥ तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बिछं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ ७ ॥ देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा ॥ ऋषीणां चिततं सत्यमथर्वाङ्गिरसामिस ॥ ८ ॥ इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ॥ त्वमन्तरिक्षे चरिस सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥ ९ ॥ यदा त्वम-भिवर्षस्थिमाः प्राणते प्रजाः ॥ आनन्दरूपास्तिष्टन्ति कामायान्नं भविष्य-तीति ॥ १० ॥ बात्यस्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ॥ वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः ॥ ११ ॥ या ते तनुर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षिषि ॥ या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्कमी: ॥ १२ ॥ आणस्येदं वरो सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ॥ मातेव पुत्रात्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः प्रश्नः ॥ २ ॥

अथ हैनं कौसत्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ ॥ भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिन्छरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्ममिभ्रचते कथमध्यात्ममिति ॥ १ ॥ तस्मे स होवाचातिप्रश्नान्प्रच्छिस ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मान्तेऽहं ब्रवीमि ॥ २ ॥ आत्मन एष प्राणो जायते ॥ यथैषा पुरुषे छायैनस्मिन्नेतदातन मनोकृतेनायात्यस्मिन्छरीरे ॥ ३ ॥ यथा सम्राडेन

वाधिकृतान्वितियुक्के एतान्त्रामानेतान्त्रामानिधितिष्ठस्वेत्वेवये प्राण इतरान्त्राणानपृथकपृथगेव संनिधत्ते ॥ ४ ॥ पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुख्नं नासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः ॥ एष ह्येतद्भुतमन्नं समं नयित तस्मादेताः सप्ताचिषो भवन्ति ॥ ५ ॥ हृदि ह्येष भारमा ॥ अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्तिर्द्वासप्तिः प्रतिशास्ताः डिसहस्नाणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ ॥ अथेकयोध्वं उदानः पुण्येन पुण्यं कोकं नयित पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यकोकम् ॥ ७ ॥ आदित्यो ह वे बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः ॥ पृथिव्यां या देवता सेपा पुरुपस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८ ॥ तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः ॥ पुनर्भविमिन्द्रयमेनिस संपद्यमानः ॥ ९ ॥ यित्रस्तेनेष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहान्त्रमा यथासंकिष्यतं लोकं नयित ॥ १० ॥ य एवं विद्वान्त्राणं वेद न ह्यास्य प्रजा हीयतेऽस्रतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ११ ॥ उत्पत्तिमायति स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा ॥ अध्यारमं चैव प्राणस्य विज्ञायास्रतमश्चते विज्ञायास्तत्मभुत हित ॥ १२ ॥

इति तृतीयः प्रश्नः ॥ ३॥

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ ॥ भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाप्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पर्यति कस्येतरसुलं भवित कस्यित्र सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ १ ॥ तस्यै स होवाच, यथा गार्ग्य मरीच- योऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति ताः पुनःपुन- रूद्यतः प्रचरन्त्येवं ह व तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवित ॥ तेन तर्ह्येष पुरुषो न श्रणोति न पश्यति न जिद्यति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नाद्त्ते नानन्त्यते न विस्जते नेयायते स्विपतीत्याचक्षते ॥२॥ प्राणाप्तय एवतस्मिन्पुरे जाप्रति ॥ गार्हपत्यो ह वा एपोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्याद्यणी- यते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ ॥ यदुच्छ्वासिनःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः ॥ मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहाह्य गमयति ॥ ४ ॥ अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति, यदृष्टं दृष्टमनुपर्यति, श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रणोति, देशदिगन्तरेश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति, दृष्टं चाद्यं च श्रुतं चाशुतं चाननुभूतं च सच्चा- सच सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ ५ ॥ स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रेष

देवः स्वमान प्रयस्थ तदैतस्मिन्छरीर एतःसुलं भवति ॥ ६ ॥ स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते ॥ एवं ६ वे तःसर्व पर आत्मानि संप्रकृति ॥ ७ ॥ पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च दृष्टच्यं च शोतं च श्रोतव्यं च प्राणं च प्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक् च रपर्शयितव्यं च वाक् व वक्तव्यं च हस्तो चादातव्यं चोपस्थश्चानन्द्यितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादो च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहक्कारश्चाहंकर्तव्यं च पितं च चेतियतव्यं च तेजश्च विद्योतियतव्यं च प्राणश्च विधारियतव्यं च ॥ ८ ॥ एष हि दृष्टा रप्रष्टा श्रोता प्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ॥ स परेऽक्षर खात्मिन संप्रतिष्ठते ॥ ९ ॥ परमेवाश्चरं प्रतिप्रवित्तं स यो ह वे तद्च्छायमशरीरमछोहितं शुश्चमक्षरं वेद्यते यस्तु सोस्य स सर्वज्ञः सर्वो भवति ॥ तदेष श्लोकः ॥ १० ॥ विज्ञानात्मा सह देवेश्च सर्वेः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यन्न ॥ तद्क्षरं वेद्यते यस्तु सोस्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥ ११ ॥

इति चतुर्थः प्रश्नः ॥ ४ ॥

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ ॥ स यो ह वे तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत ॥ कतमं वाय स तेन लोकं जयतीति ॥ १ ॥
तस्मै स होवाच एतद्दे सत्यकाम परं चापरं च बह्य यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥ स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव
संवेदितस्तूणंमेव जगत्यामभिसंपद्यते ॥ तस्चो मनुष्यलोकसुपनयन्ते स तत्र
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संपन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥ अथ ब्राद्धि
द्विमात्रेण मनिस संपद्यते सोऽन्तिरक्षं यनुभिक्त्वीयते सोमलोकस्म ॥ स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥ यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्यतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजिस सूर्ये संपन्नः ॥ यथा पादोद्दरस्त्वचा
विनिर्मुच्यत एवं ह वे स पाष्मना विनिर्मुक्तः स सामभिक्ष्वीयते ब्रह्मलोकं स
पत्तसाजीवधनात्यरात्यरं पुरिशयं पुरुषमिक्षते ॥ तदेतौ श्लोको भवतः ॥ ५ ॥
तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः ॥ किथासु
बाद्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यवप्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥ ऋष्मिरेतं
यसुभिरन्तरिक्षं सामभिर्यक्तत्कवयो वेदयन्ते तमोंकोरेणैवायतनेनान्वेति
विद्वान्यस्व्वान्तमजरमसृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

इति पत्रमः प्रश्नः ॥ ५॥

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ ॥ अगवन्हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्री मामुपेत्येतं प्रश्नमपृच्छत ॥ पोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ, तमहं कुमारमञ्जवं नाहमिमं वेद ॥ यद्यहमिममबेदिपं कथं ते नावस्य-भिति ॥ समूलो वा एव परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तसाम्नाहीम्यनृतं वकुम् ॥ स त्र्णीं रथमारुह्म प्रववाज ॥ तं त्वा प्रच्छामि कासी पुरुष इति ॥ १ ॥ तस्मे स होवाच ॥ इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मि-न्नेताः पोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ २॥ स ईक्षांचके ॥ कस्मिन्नहसुत्कान्ते उत्का-न्तो अविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥ स प्राणमस्जत प्राणाच्छ्दां खं वायुज्योतिरापः पथिवीन्द्रियं मनोऽसमझाद्वीयं तपो मजाः कर्म लोका लोकेपु च नाम च ॥४॥ स यथेमा नद्यः खन्दमानाः समुद्रायणाः ससुदं प्राप्यास्तं गच्छिन्त भिषेते तासां नामरूपे ससुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥ एवसेवास्य परिद्रष्टुरिमाः पोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिधेते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एपोऽकलोऽसृतो भवति॥ तदेष श्हीकः ॥ ५ ॥ अरा इव रथनाभी कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ॥ वं वेदं युरुषं वेद यथा मा वो सृत्युः परिव्यथा इति ॥ ६ ॥ तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं जहा वेद नातः परमस्तीति ॥ ७॥ ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकम-विद्यायाः परं पारं तारयसीति ॥ नमः परमऋषिश्यो नमः परमऋषिश्यः॥ ८॥

इति षष्ठः प्रश्नः ॥ ६ ॥

ॐ अदं कर्णेभिः श्रणुयाम देवा अदं पश्येमाक्षभिर्य जत्राः ॥ स्थिरेरक्नै-स्तुष्टुवा स्सल्तन्भिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पति-र्वधातु ॥ ॐ ज्ञान्तिः ज्ञान्तिः ज्ञान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीया प्रश्लोपनिष्तसमासा ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

मुण्डकोपनिषत् ॥ ५ ॥

अर्थ अदं कर्णेभिः श्रणुयाम देवा भदं पश्येमाक्षभिर्यजन्नाः ॥ स्थिरेरङ्गेस्तु-ष्टुवांसस्तन्भिर्ध्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न हन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेभिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्द्धातु ॥ अर्थे शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

🦥 ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोसा ॥ स ब्रह्म-

विद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥ अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ॥ स भारद्वाजाय सत्यवहाय
प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥ शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिबदुपसन्नः पप्रच्छ ॥ कस्मिन्न भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥३॥
तस्में स होवाच ॥ द्वे विद्ये वेदितव्ये हति ह स्म यद्व्यविदो वदन्ति परा
वैवापरा च ॥ ४ ॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा
स्वा व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ॥ अथ परा यया तद्क्षरमधिगस्यते ॥ ५ ॥ यत्तददेश्यमप्राद्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तद्पाणिपादं निर्स्यः
विभ्रं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तद्व्ययं यद्भृतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ ६ ॥ यथोर्णनाभिः सजते गृह्वते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ॥ यथा सतः
पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्संभवतीहः विश्वम् ॥ ७ ॥ तपसा चीयते ब्रह्म
वतोऽक्षमभिजायते ॥ अन्नात्माणो मनः सत्यं लोकाः कमेसु चासृतम् ॥ ८ ॥
यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ॥ तसादेतद्वस्य नाम रूपमञ्चं च
जायते ॥ ९ ॥

इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तदेतसत्यं मन्नेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंसानि न्नेतायां बहुधा संततानि ॥ तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥ १ ॥
यदा लेलायते द्वाचिः समिद्धे हव्यवाहने ॥ तदाज्यभागावन्तरेणाहृतीः प्रतिपाद्येच्छ्द्रया हुतम् ॥ २ ॥ यस्याग्निहोत्रमदर्शमपोर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च ॥ अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकानिहृतस्ति ॥३॥ काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुभूम्रवर्णा ॥
स्फुलिङ्गिनी विश्वरूची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिद्धाः ॥ ४ ॥ एतेषु
यश्वरते आजमानेषु यथाकालं चाहुतयो द्याददायन् ॥ तन्नयन्त्रेताः सूर्यस्य
रद्दमयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५ ॥ एहोहीति तमाहृतयः सुवचिसः सूर्यस्य रिमिभर्यजमानं वहन्ति ॥ प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष
वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥ ६ ॥ प्रवा होते अद्दा यज्ञस्त्या अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्मे ॥ एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मृदा जरामृत्युं ते पुनरेवाि
यन्ति ॥ ७ ॥ अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः ॥
जङ्गन्यमानाः परियन्ति मृदा अन्धेनैव नोयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥ अविद्यायां
बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ॥ यरकर्मिणो न प्रवेद-

यन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्र्यवन्ते ॥ ९ ॥ इष्टापूर्तं मन्यमाना विर्षे नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ॥ नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीन-तरं वा विश्वन्ति ॥ १० ॥ तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष-चर्यां चरन्तः ॥ सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो द्यव्य-यात्मा ॥ ११ ॥ परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्त्राह्मणो निर्वेदमायात्रास्त्यकृतः कृतेन ॥ तिह्वज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेरसमित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥ तस्मे स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्पशान्तचित्ताय ॥ १२ ॥ तस्मे स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्पशान्तचित्ताय ॥ १३ ॥

इति प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ इति प्रथममुण्डकं समासम् ।

तदेतत्सत्यं यथा सुदीसात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः॥ तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥ १ ॥ दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥ अप्राणो ह्यमनाः ग्रुश्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ २ ॥ एतसाजायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ खं वायुज्योति-रापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥ अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यों दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ॥ वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पन्नां पृथिवी होष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥ तसाद्भिः समिधो यस सूर्यः सोमार्वर्जन्य श्रोष-धयः पृथिव्याम् ॥ पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां वद्धीः प्रजाः प्रस्पात्सं-प्रस्ताः ॥५॥ तस्माद्यः साम यजू १षि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे कतवो दक्षिणाश्च ॥ संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६ ॥ तसाच देवा बहुधा संप्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वया सि ॥ प्राणापानी बीहियवौ ताश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७ ॥ सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तसात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः॥ सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ८ ॥ अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽसा-त्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ॥ अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतै-स्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ ॥ पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपी ब्रह्म परामृतम् ॥ एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रनिंथ विकिरतीह सोम्य ॥ १० ॥

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम् ॥ एजत्प्राणितिषयः यदेतज्ञानथ सद्सद्धरेण्यं परं विज्ञानायद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १ ॥ यदार्चिमद्य-

दण्भ्योऽणु च यसिँछोका निहिता लोकिनश्च ॥ तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाष्त्रनः ॥ तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धच्यं सोम्य विद्धि ॥ २ ॥ धनुर्गृहीःवौप-निषदं महास्त्रं शरं ह्यपासानिशितं संधयीत ॥ आयम्य तन्द्रावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३ ॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तह्न-क्ष्यमच्यते ॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४ ॥ यस्मिन्द्यौः प्रियवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणश्च सर्वेः ॥ तमेवैकं जान्य आसानमन्या वाचो विमुज्जथामृतस्पैष सेतुः ॥५॥ अरा इव रथनाभी संहता यत्र नाड्यः॥ स एगोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ॥ भोमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्येष महिमा अवि ॥ दिच्ये ब्रह्मपुरे होष च्योक्यात्मा प्रैतिष्ठितः ॥ सनीमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठि-तोऽक्षे हृद्यं संनिधाय ॥ तद्विज्ञानेन परिपर्यन्ति धीरा आनन्द्रूपसमृतं यद्विभाति ॥ ७ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्चिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्द्रष्टे परावरे ॥ ८ ॥ हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलस् ॥ तच्छुभं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ ९॥ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥ तसेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ ३०॥ ब्रह्मेवेदमसृतं पुरस्ताद्वह्म पश्चा-इहा दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥ अधश्चोध्वं च प्रसृतं ब्रह्मवेदं विश्वामिदं वरिष्ठम् 11 99 11

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ ॥ इति द्वितीयमुण्डकं समासम् ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥ तयोशन्यः पिष्प्रलं स्वाह्रस्यनश्चन्नस्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥ समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचित मुद्यमानः ॥ जुष्टं यदा पश्यत्यंन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ ॥ यदा पश्यः पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥ तदा विद्वान्पुण्यपापे विध्य निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥ प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विज्ञानन्विद्वान्भवते नातिवादी ॥ आत्मकीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥ सत्येन उभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्य-क्वानेन ब्रह्मवर्येण नित्यम् ॥ अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि ग्रुओ यं पश्यन्ति यतयः श्रीणदोषाः ॥ ५ ॥ सत्यमेव जैयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देव-यानः ॥ येनाक्रमन्त्यृषयो ह्यासकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

शृहच तिह्यमचिन्सक्रं सूक्ष्माच तत्सूक्ष्मतरं विभाति ॥ दूरात्सुदूरे तिद् हान्तिके च पर्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७ ॥ न चक्षुषा गृह्यते निषि वाचा नान्येदेवैस्तपसा कर्मणा वा ॥ ज्ञानप्रसादेन विद्युद्धसम्बस्ततस्तु तं पर्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥ एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यिस-न्प्राणः पञ्चधा संविवेश ॥ प्राणेश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यिस्निन्वगुद्धे विभ-वत्येष आत्मा ॥ ९ ॥ यं यं लोकं मनसा संविभाति विद्युद्धसम्बः कामयते यांश्च कामान् ॥ तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेन्द्वित-कामः ॥ १० ॥

इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति ग्रुश्रम् ॥ उपासते पुरुषं ये झकामास्ते शुक्रमेतद्तिवर्तन्ति धीराः॥ १ ॥ कामान्यः कामयते मन्य-मानः स कामभिजीयते तत्र तत्र ॥ पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ ॥ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥ यमेवेष वृणुते तेन लभ्यस्तस्येष भीत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥ ३ ॥ नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् ॥ एतेरूपा-यैर्यतते यस्तु विद्वांसत्येष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ ४ ॥ संप्राप्येनसृवयो ज्ञाननृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ॥ ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥ ५ ॥ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यास-योगाद्यतयः ग्रुद्धसत्त्वाः ॥ ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ ॥ गताः कलाः पञ्चद्श प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रति देवतास ॥ कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥ ७ ॥ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहायं॥ तथा विद्वान्नामरूपाद्वि-मुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ ॥ स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मेव भवति नास्याब्रह्मविक्कुले भवति ॥ तरित शोकं तरित पाप्मानं गृहा-प्रनियभ्यो विमुक्तोऽसृतो भवति ॥ ९ ॥ तदेतद्दचाऽभ्युक्तम् ॥ कियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मिन्छाः स्वयं जुह्नत एकपिँ श्रद्धयन्तः ॥ तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यस्तु चीर्णम् ॥ १० ॥ तदेतस्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते॥ नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः॥ ११॥ इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रणुयाम देवाः॥ भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः॥ स्थिर-रङ्गेस्तुष्टुवा (सस्तन्भिः॥ व्यशेम देवहितं यदायः॥ स्वस्ति न इन्द्रो तृद्ध- अवाः ॥ स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्ताद्ध्यो अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीया मुण्डकोपनिषत्समासा ॥ ५ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

माण्डूकयोपनिषत् ॥ ६ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः ऋणुयाम देवाः ॥ भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरेरहैन-स्तुष्टुवा एसस्तन्भिः ॥ व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो बृद्ध-श्रवाः ॥ स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेभिः ॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

क्रोमित्येतदक्षरमिद्र सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव ॥ यञ्चान्यत्रिकालातीतं तद्प्योङ्कार एव ॥ १ ॥ सर्वे होतद्रह्मायमात्मा वस सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ २ ॥ जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥ स्वप्तस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः॥ ४॥ यत्र सप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वमं पश्यति तत्सुपुप्तम् ॥ सुपुप्तस्थान एकी भूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्द्भुक् चेतो मुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥ ५ ॥ एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाष्ययो हि भूतानाम् ॥ ६ ॥ नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ॥ अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपः देश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आतमा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥ सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ ८ ॥ जागरितस्थानो वैश्वान-रोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽसेरादिमस्वाद्वामोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥ स्वप्तस्थानसौजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षांदु-भयस्वाद्वोस्कर्पति इ वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति नास्याबहाविःकुले भवति य एवं वेद ॥ १० ॥ सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेर-पीतेर्वा मिनोति ह वा इद् सर्वमपीतिश्र भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥ अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वेत एवमोङ्कार आस्मैव संवि-शसारमनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

अनु० ३]

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रुणयाम देवाः ॥ भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजन्नाः ॥ स्थिरे-रङ्गेस्तुष्टुवा एसस्तन्भिः ॥ व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-श्रवाः ॥ स्वस्ति नः पृषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति नो वृहस्पतिर्देधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति माण्डूक्योपनिष्त्समाप्ता ॥ द ॥ व व व व

॥ ॐ तस्तत् ॥ 126326 तैत्तिरीयोपनिषत् ॥ ७॥

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्थमा ॥ शं न इन्द्रो बृह-स्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुरुकमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म विद्ण्यामि ॥ ऋतं विद्ण्यामि ॥ सत्यं विद्ण्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु साम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुरुक्तमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि ॥ सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मा-मवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु माम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ॥ सत्यं वदिष्यामि पञ्च च ॥ ॥ ॥

इति शीक्षाध्याये प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

ॐ शीक्षां व्याख्यात्यामः ॥ वर्णः स्वरः ॥ मात्रा बलम् ॥ साम संतानः ॥ इत्युक्तः शीक्षाध्यायः ॥ १ ॥ (शीक्षां पञ्च) ॥

इति शीक्षाध्याये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

सह नौ यशः ॥ सह नौ ब्रह्मवर्षसम् ॥ अथातः स्हिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः ॥ पञ्चस्विधकरणेषु ॥ अधिकोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् ॥ ता महासहिता इत्याचक्षते । अथाधिकोकम् ॥ पृथिवी पूर्वरूपम्॥ द्यौहत्तररूपम् ॥ आकाशः संधिः ॥१॥ वायुः संधानम् ॥ इत्यधिकोकम् ॥ अथाधिज्यौतिषम् ॥ अग्निः पूर्वरूपम् ॥ आदित्य उत्तररूपम् ॥ आपः संधिः ॥ वैद्युतः संधानम् ॥ इत्यधिज्यौतिषम् ॥ अथाधिविद्यम् ॥ आचार्यः पूर्वरूपम् ॥ २ ॥ अन्तेवास्युत्तररूपम् ॥ विद्या संधिः ॥ प्रवचनह संधानम् ॥ इत्यधिविद्यम् ॥ अथाधिप्रजम् ॥ माता पूर्वरूपम् ॥ पितौत्तररूपम् ॥ प्रजा संधिः ॥ प्रजननह अथाधिप्रजम् ॥ माता पूर्वरूपम् ॥ पितौत्तररूपम् ॥ प्रजा संधिः ॥ प्रजननह

संधानम् ॥ इत्यधिप्रजम् ॥ ३ ॥ अथाध्यासमम् ॥ अधरा हनुः पूर्वरूपम् ॥ उत्तरा हनुरुत्तररूपम् ॥ वाक् संधिः ॥ जिह्वा संधानम् ॥ इत्यध्यासमम् ॥ इत्यध्यासमम् ॥ इत्यध्यासमम् ॥ इत्यामा महास्हिताः ॥ य एवमेता महास्हिता व्याख्याता वेद ॥ संधीयते प्रजया पश्चिमः ॥ ब्रह्मवर्चसेनाज्ञाचेन सुवर्ग्यण लोकेन ॥ ४ ॥ (संधिराचार्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजं लोकेन)॥

इति शीक्षाध्याये तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

यश्चन्द्रसामृषभो विश्वरूपः ॥ छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संवभूव ॥ स मेन्द्रो
मेधया स्पृणोतु ॥ अमृतस्य देव धारणो भूयासम् ॥ शरीरं मे विचर्षणम् ॥
जिह्ना मे मधुमत्तमा ॥ कर्णाभ्यां भूरि विश्ववम् ॥ ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया
पिहितः ॥ श्रुतं मे गोपाय ॥ आवहन्ती वितन्वाना ॥ कुर्वाणाऽचीरमात्मनः ॥
वासा (से मम गावश्च ॥ अन्नपाने च सर्वदा ॥ ततो मे श्रियमावह ॥ लोमशां
पश्चिमः सह स्वाहा ॥ १ ॥ आ मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ वि मायन्तु
ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ १ ॥ आ मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ वि मायन्तु
ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ प्र मायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ दमायन्तु ब्रह्मचारिणः
स्वाहा ॥ शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ २ ॥ यशो जनेऽसानि स्वाहा ॥
श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा ॥ तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा ॥ स मा भग
प्रविश्व स्वाहा ॥ तस्मिन् सहस्रशाखे ॥ नि भगाहं त्विय मृजे स्वाहा ॥
यथापः प्रवतायन्ति ॥ यथा मासा अहर्जरम् ॥ एवं मां ब्रह्मचारिणः ॥ धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा ॥ प्रतिवेशोऽसि प्र मा भाहि प्र मा पद्यस्व ॥ ३ ॥ वितन्वाना शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥ (धातरायन्तु सर्वतः स्वाहैकं च) ॥

इति शीक्षाध्याये चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः॥ तासामु ह सौतां चतु-थींम् ॥ माहाचमस्यः प्रवेदयते ॥ मह इति ॥ तद्भस्य ॥ स्वादिन्यः ॥ सुवरि-स्यस्या देवताः ॥ भूरिति वा अयं लोकः ॥ भुव इत्यन्तिरक्षम् ॥ सुवरि-स्यसौ लोकः ॥ १ ॥ मह इत्यादित्यः ॥ आदित्येन वाव सर्वे लोका मही-यन्ते ॥ भूरिति वा अग्नः ॥ भुव इति वायुः ॥ सुवरित्यादित्यः ॥ मह इति चन्द्रमाः ॥ चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योती १ ष महीयन्ते ॥ भूरिति वा ऋचः ॥ भुव इति सामानि ॥ सुवरिति यज् १ ष ॥ २ ॥ मह इति ब्रह्म ॥ ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते ॥ भूरिति व प्राणः ॥ भुव इत्यपानः ॥ सुव-रिति व्यानः ॥ मह इत्यन्नम् ॥ अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते ॥ ता वा प्रताश्रतस्त्रश्रतुर्घा ॥ चतस्त्रश्रतस्त्रो व्याहृतयः ॥ ता यो वेद ॥ स वेद ब्रह्म ॥ सर्वेऽसौ देवा बलिमावहन्ति ॥ ३ ॥ (असौ लोको यज् १ ष वेद द्वे च) ॥ इति शीक्षाध्याये पश्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥ स य एषोऽन्तर्हदय आकाशः ॥ तसिस्तयं पुरुषो मनोमयः ॥ अमृतो हिरण्मयः ॥ अन्तरेण तालुके ॥ य एप स्तन इवावलम्बते ॥ सेन्द्रयोनिः ॥ यत्रासो केशान्तो विवर्तते ॥ व्यपोद्ध शीर्षकपाले ॥ भूरित्यप्रौ प्रतितिष्ठति ॥ अव इति वायो ॥ १ ॥ सुवरित्यादित्ये ॥ मह इति ब्रह्मणि ॥ आमोति स्वारा-ज्यम् ॥ आमोति मनसस्पतिम् ॥ वाक्पतिश्रक्षुष्ठपतिः ॥ श्रोत्रपतिर्विज्ञान-पतिः ॥ एतत्ततो भवति ॥ आकाशशरीरं ब्रह्म ॥ सत्यात्म प्राणारामं मन-आनन्दम् ॥ शान्तिसमृद्धममृतम् ॥ इति प्राचीनयोग्योपास्स्व ॥ २ ॥ (वायावमृतमेकं च)॥

इति शीक्षाध्याये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

पृथिव्यन्तिरक्षं चौर्दिशोऽवान्तरिद्शाः ॥ अग्निर्वायुरादित्यश्चनद्रमा नक्ष-त्राणि ॥ आप कोषधयो वनस्पतय आकाश आतमा ॥ इत्यिभृतम् ॥ अथाध्यात्मम् ॥ प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः ॥ चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक् ॥ चर्म माएसए स्नावास्थि मन्ना ॥ एतद्धिविधाय ऋषिरवो-चत् ॥ पाङ्कं वा इद् सर्वम् ॥ पाङ्केनैव पाङ्कर स्पृणोतीति ॥ १ ॥ (सर्वमेकं च)॥

इति शीक्षाध्याये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

भोमिति ब्रह्म ॥ ओमितीद्रसर्वम् ॥ श्रोमित्येतद्नुकृति ह सा वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति ॥ श्रोमिति सामानि गायन्ति ॥ श्रोर् शोमिति शस्त्राणि श्रप्तिन्त ॥ ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति ॥ श्रोमिति ब्रह्मा प्रसौति ॥ श्रोमित्यग्निहोत्रमनुजानाति ॥ श्रोमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपामवा-नीति ॥ ब्रह्मैवोपामोति ॥ १ ॥ (ॐद्श) ॥

इति शीक्षाध्यायेऽष्टमोऽनुवाकः ॥ ८॥

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ प्रजातिश्च स्वाध्याय-प्रवचने च ॥ सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः ॥ तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टः ॥ स्वाध्यायप्रवचने प्वेति नाको मौद्रत्यः ॥ तद्धि तपसद्धि तपः ॥ ६ ॥ (प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च षद च)॥

इति शीक्षाच्याये नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

अहं वृक्षस्य रेरिवा ॥ कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव ॥ अर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि ॥ द्रविण् सवर्थसम् ॥ सुमेधा अमृतोक्षितः ॥ इति त्रिश-क्कोर्वेदानुवचनम् ॥ १ ॥ (अह ५ षद्) ॥

इति शिक्षाध्याये दशमोऽनुवाकः ॥ १०॥

वेदमन्च्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति ॥ सत्यं वद ॥ धर्मं चर ॥ स्वाध्या-यान्सा प्रमदः ॥ आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं सा व्यवच्छेत्सीः ॥ सराज प्रमदितव्यम् ॥ धर्माच प्रमदितव्यम् ॥ कुशलाच प्रमदितव्यम् ॥ अस्य न प्रमदितव्यम् ॥ स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १ ॥ देव-पितकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ मातृदेवो भव ॥ पितृदेवो भव ॥ आचार्य-देवो भव ॥ अथितिदेवो भव ॥ यान्यनवद्यानि कर्माणि ॥ तानि सेवित-व्यानि ॥ नो इतराणि ॥ यान्यस्माक सुचरितानि ॥ तानि त्वयोपास्यानि ॥ २ ॥ नो इतराणि ॥ ये के चास्मच्छ्या एसो ब्राह्मणाः ॥ तेषां त्वयाऽऽसने न प्रश्वसितव्यम् ॥ श्रद्धया देयम् ॥ अश्रद्धयाऽदेयम् ॥ श्रिया देयम् ॥ हिया देयम् ॥ भिया देयम् ॥ संविदा देयम् ॥ अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥ ३ ॥ ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः ॥ युक्ता आयुक्ताः ॥ अल्ह्सा धर्मकामाः स्युः ॥ यथा ते तत्र वर्तेरन् ॥ तथा तत्र वर्तेथाः ॥ अथाभ्याख्यातेषु ॥ ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः ॥ युक्ता आयुक्ताः ॥ मल्क्षा धर्मकामाः स्युः ॥ यथा ते तेषु वर्तेरन् ॥ तथा तेषु वर्तेथाः ॥ एष आदेशः ॥ एष उपदेशः ॥ एषा वेदोपनिषत् ॥ एतदनुशासनम् ॥ एवमु-पासितव्यम् ॥ एवमु चैतदुपास्यम् ॥ ४ ॥ (स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रम-दितव्यं तानि त्वयोपास्यानि स्थात्तेषु वर्तेरन् सप्त च)॥

इति शीक्षाध्याये एकादशोऽनुवाकः ॥ ११ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुरुक्तमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् ॥ ऋतमवादिषम् ॥ सत्यमवादि-षम् ॥ तन्मामावीत् ॥ तद्वक्तारमावीत् ॥ आवीनमाम् ॥ आवीद्वकारम् ॥ १ ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ (सत्यमवादिषं पञ्च च)॥

इति शीक्षाध्याये द्वादशोऽनुवाकः ॥ १२ ॥

शं नः शिक्षा ए सह नौ यरछन्द्रसां भूः स यः पृथिच्योमित्यृतं चाहं वेदमनूच्य शं नो द्वाद्य ॥ १२ ॥ शं नो मह इत्यादित्यो नो इतराणि श्रयोवि (शतिः ॥ २३ ॥ ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुरुश्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म विद्ष्यामि ॥ ऋतं विद्ष्यामि ॥ सत्यं विद्ष्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु माम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः ॥

इति कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषदि प्रथमः शीक्षाध्यायः समाप्तः॥ १ ॥

अथ ब्रह्मवह्रयध्यायः ॥ २ ॥

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ब्रह्मविदामोति परम् ॥ तदेषाऽभ्युक्ता ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ॥ सोऽश्वते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपिश्चितेति ॥ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ॥ आकाशाद्वायुः ॥ वायोरिमः ॥ अम्रेरापः ॥ अच्यः पृथिवी ॥ पृथिव्या ओषधयः ॥ ब्रोषधी-भ्योऽज्ञम् ॥ अज्ञात्पुरुषः ॥ स वा एष पुरुषोऽज्ञरसमयः ॥ तस्येदमेव शिरः ॥ अयं दक्षिणः पक्षः ॥ अयमुत्तरः पक्षः ॥ अयमात्मा ॥ इदं पुच्छं प्रतिष्ठा ॥ तद्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मबह्यध्याये प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अज्ञाह प्रजाः प्रजायन्ते ॥ याः काश्च पृथिवी १ श्रिताः ॥ अथो अज्ञेनैव जीवन्ति ॥ अथैनदिष यन्त्रन्ततः ॥ अज्ञ १ हि भूतानां ज्येष्ठम् ॥ तस्मात्सवीं- ध्यमुच्यते ॥ सर्व व तेऽज्ञमाप्तुवन्ति ॥ येऽज्ञं ब्रह्मोपासते ॥ अज्ञ १ हि भूतानां ज्येष्ठम् ॥ तस्मात्सवींषधमुच्यते ॥ अज्ञाद्भृतानि जायन्ते ॥ जातान्यज्ञेन वर्धन्ते ॥ अच्योऽन्ति च भूतानि तस्माद्गं तदुच्यत इति ॥ तस्माद्रा एतस्माद्गरसमयात् ॥ अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः ॥ तेनैष पूर्णः ॥ स वा एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुषविधताम् ॥ अन्वयं पुरुषविधः ॥ तस्य प्राण एव शिरः ॥ व्यानो दक्षिणः पक्षः ॥ अपान उत्तरः पक्षः ॥ आकाश आत्मा ॥ पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा ॥ तद्य्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवल्लयध्याये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति ॥ मनुष्याः पश्चश्च ये ॥ प्राणो हि भूताना-मायुः ॥ तस्मात्सर्वायुषमुच्यते ॥ सर्वमेव त आयुर्यन्ति ॥ ये प्राणं ब्रह्मो-पासते ॥ प्राणो हि भूतानामायुः ॥ तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति ॥ तस्यैष एव शारीर आत्मा ॥ यः पूर्वस्य ॥ तसाद्वा एतसात्प्राणमयात् ॥ अन्योऽन्तर भात्मा मनोमयः ॥ तेनैष पूर्णः ॥ स वा एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुष-विधताम् ॥ अन्वयं पुरुषविधः ॥ तस्य यज्ञरेव शिरः ॥ ऋग् दक्षिणः पक्षः ॥ सामोत्तरः पक्षः ॥ भादेश भात्मा ॥ अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा ॥ तद्प्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवल्लयध्याये तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते ॥ अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ॥ न बिभेति कदाचनेति ॥ तस्येष एव शारीर आत्मा ॥ यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् ॥ अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः ॥ तेनैष पूर्णः ॥ स वा एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुषविधताम् ॥ अन्वयं पुरुषविधः ॥ तस्य अद्भव शिरः ॥ ऋतं दक्षिणः पक्षः ॥ सत्यमुत्तरः पक्षः ॥ योग आत्मा ॥ महः पुच्छं प्रतिष्ठा ॥ तद्पयेष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मबह्रयध्याये चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते ॥ कर्माणि तनुतेऽपि च ॥ विज्ञानं देवाः सर्वे ॥ ब्रह्म उयेष्ठमुपासते ॥ विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद ॥ तस्माचेन्न प्रमाद्यति ॥ शरीरे पाप्मनो हित्वा ॥ सर्वान्कामान्समश्रुत इति ॥ तस्येष एव शारीर आत्मा ॥ यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् ॥ अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः ॥ तेनेष पूर्णः ॥ स वा एष पुरुषविध एव ॥ तस्य पुरुषविधताम् ॥ अन्वयं पुरुषविधः ॥ तस्य प्रियमेव शिरः ॥ मोदो दक्षिणः पक्षः ॥ प्रमोद उत्तरः पक्षः ॥ आनन्द आत्मा ॥ ब्रह्म पुरुषः ॥ तद्येष श्लोको अवति ॥

इति ब्रह्मवह्रयध्याये पश्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

असन्नेव स भवति ॥ असद्भहोति वेद चेत् ॥ अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद् ॥ सन्तमेनं ततो विदुरिति ॥ तस्येष एव शारीर आत्मा ॥ यः पूर्वस्य ॥ अथा-तोऽनुप्रश्नाः ॥ उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य ॥ कश्चन गच्छती ३ ॥ आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य ॥ कश्चिरसमश्रुता३ उ ॥ सोऽकामयत ॥ बहु स्यां प्रजाये-येति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तक्ष्वा ॥ इद् सर्वमस्जत ॥ यदिदं किंच ॥ तत्सृष्ट्वा ॥ तदेवानुप्राविशत् ॥ तद्नु प्रविश्य ॥ सच्च स्यचाभवत् ॥ निरुक्तं चानिरुक्तं च ॥ निरुक्तं च ॥ निरुक्तं च ॥ निरुक्तं च ॥ सत्यं चानृतं च सत्यमभवत् ॥ यदिदं किंच ॥ तत्सत्यमित्याचक्षते ॥ तद्प्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मबह्यध्याये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

असद्वा इदमय भासीत् ॥ ततो वै सद्जायत ॥ तदारमान् स्वयमकुरत ॥ तसात्त्सुकृतयुच्यत इति ॥ यद्वै तत्सुकृतम् ॥ रसो वै सः ॥ रस् होवायं छव्धवानन्दी भवति ॥ को होवान्यारकः प्राण्यात् ॥ यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ॥ एष होवानन्द्याति ॥ यदा होवेष एतसिन्नद्दरें जान्द्रवें जिल्लेऽनिल्केऽनिल्येनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते ॥ अथ सोऽभयं गतो भवति ॥ यदा होवेष एतसिन्नद्रस्येऽनात् होवेष एतसिन्नद्रस्य प्रतिष्ठां विन्दते ॥ अथ सोऽभयं गतो भवति ॥ यदा होवेष एतसिन्नद्रसम्तरं कुरते ॥ अथ तस्य भयं भवति ॥ तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य ॥ तद्ष्येष स्रोको भवति ॥

इति ब्रह्मवहयध्याये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

श्रीषाऽसाद्वातः पवते ॥ भीषोदेति सूर्यः ॥ भीषाऽसाद्गिश्चेन्द्रश्च ॥ मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥ सेषाऽऽनन्दस्य मीमा स्सा भवति ॥ युवा स्यात्साधु-युवाध्यायकः ॥ आशिष्टो द्रिष्टि बलिष्टः ॥ तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् ॥ स एको मानुष आनन्दः ॥ ते ये शतं मानुषा आनन्दाः ॥ स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य च।क।महतस्य ॥ ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः ॥ स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः ॥ स एकः पितृणां चिर-कोकलोकानामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं पितृणां चिर-कोककोकानामानन्दाः ॥ स एक आजानजानां देवानामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः ॥ स एकः कर्म-देवानां देवानामानन्दः ॥ ये कर्मणा देवानिपयन्ति ॥ श्रोत्रियस्य चाकाम-हतस्य ॥ ते ये शतं कर्मदेवांनां देवानामानन्दाः ॥ स एको देवानामानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं देवानामानन्दाः ॥ स एक इन्द्रस्या-नन्दः॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतमिन्द्रस्थानन्दाः॥ स एको बृहस्पतेरानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः ॥ स एकः प्रजापतेरानन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ते ये शतं प्रजा-पतेरानन्दाः ॥ स एको ब्रह्मण आनन्दः ॥ श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ स यश्चायं पुरुषे ॥ यश्चासावादित्ये ॥ स एकः ॥ स य एवंवित् ॥ असाछो-कास्त्रेत्य ॥ एतमन्नमयमात्मानसुपसंकामति ॥ एतं प्राणमयमात्मानसुप-संकामित ॥ एतं मनोमयमात्मानमुपसंकामित ॥ एतं विज्ञानमयमात्मानमु-पसंकामित ॥ एतमानन्दमयमात्मानमुपसंकामित ॥ तद्प्येष श्लोको भवति ॥

इति ब्रह्मवल्लयध्यायेऽष्टमोऽनुवाकः ॥ ८॥

यतो वाचो निवर्तन्ते ॥ अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ॥ न बिमेति कुतश्चनेति ॥ एत् ह वाव न तपति किमह् साधु नाकरवम् ॥ किमहं पापमकरविमिति ॥ स य एवं विद्वानेते आत्मान १ स्पृणुते ॥ उसे होवेष एते आत्मान १ स्पृणुते ॥ य एवं वेद ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति ब्रह्मवल्रयध्याये नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

ब्रह्मविदिद्मेकवि शतिरत्नाद्वरसमयात्राणो व्यानोऽपान आकाशः पृथिवी पुच्छ पिंच श्रितिः प्राणं यजुर्कत् सामादेशोऽथर्वाक्तिरसः पुच्छं द्वावि श्वातिर्यतः श्रद्धते एसत्यं योगो महोऽष्टादश विज्ञानं प्रियं मोदः प्रमोद आनन्दो ब्रह्म पुच्छं द्वावि शतिरसक्षेवाथाष्ट्रावि शतिरसत्पोडश भीषाऽस्मान्मानुषो मनुष्यगन्धवाणां देवगन्धर्वाणां पितृणां चिरछोकलोकानामाजानजानां कर्मदेवानां ये कर्मणा देवानामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापते ब्रह्मणः । स यश्च संकामसेकपञ्चाशद्यतः कुतश्च नैतमेकादश नव ॥ ब्रह्मविद्य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्वि नावधी-

तमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐशान्तिः शान्तिः ॥ इति द्वितीयो ब्रह्मबङ्घयध्यायः ॥ २ ॥

अथ भृगुवह्यध्यायः ॥ ३ ॥

हरिः ॐ॥ सह नाववतु ॥ सह नौ अनक्तु ॥ सह नीयँ करवावहै ॥ तेजस्त्र नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भृगुर्वे वारुणिः ॥ वरुणं पितरसुपससार ॥ अधीहि भगवी ब्रह्मेति ॥ तस्मा एतःश्रोवाच ॥ अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति ॥ त५ होवाच ॥ यतो वा इमानि भूनानि जायन्ते ॥ येन जातानि जीवन्ति ॥ यद्मयन्त्यभि-संविशन्ति ॥ तद्विजिज्ञासस्य तद्वह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तह्वा ॥

इति भृगुवत्नयध्याये प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ अन्नाद्धोव खिल्वमानि भूतानि जायन्ते ॥ अन्नेन जातानि जीवन्ति ॥ अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥ पुनरेव वरूणं पितरसुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तक्ष्टिवाच ॥ तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तक्ष्वा ॥

इति मृगुवत्वयध्याये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्॥ प्राणाद्धेव खिल्वमानि भूतानि जायन्ते ॥ प्राणेन जातानि जीवन्ति ॥ प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥ पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ त होवाच ॥ तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपसहवा ॥

इति स्युवङ्कथ्याये तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ मनसो ह्येव खिल्वमानि भूतानि जायन्ते ॥ मनसा जातानि जीवन्ति ॥ मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥ पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ त५ होवाच ॥ तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपसहवा ॥

इति भृगुवहयध्याये चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ विज्ञानाच्चेव खिवमानि भूतानि जायन्ते ॥ विज्ञानेन जातानि जीवन्ति ॥ विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तद्विज्ञाय ॥ पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ॥ अधीहि भगवो ब्रह्मेति ॥ तर्होवाच ॥ तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ॥ तपो ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत ॥ स तपस्तस्वा ॥

इति भृगुवल्लयध्याये पश्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

श्रानन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ॥ श्रानन्दाच्चेत खित्रमानि भूतानि जायन्ते ॥ श्रानन्देन जातानि जीवन्ति ॥ श्रानन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ सेषा भागीवी वारुणी विद्या ॥ परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता ॥ य एवं वेद प्रतिति-ष्ठति ॥ अन्नवानन्नादो भवति ॥ महान् भवति प्रजया पशुभिब्रह्मवर्चसेन ॥ महान् कीर्त्या ॥

इति भृगुवलयध्याये षष्टोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

अनं न निन्द्यात् ॥ तद्रतम् ॥ प्राणो वा अन्नम् ॥ शरीरमन्नादम् ॥ प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् ॥ शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः ॥ तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति ॥ अन्नवानन्नादो भवति ॥ महान् भवति प्रजया पशुभिर्वस्वर्वसेन ॥ महान् कीर्त्या ॥

इति भृगुवहयध्याये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

अन्नं न परिचक्षीत ॥ तद्रतम् ॥ आपो वा अन्नम् ॥ ज्योतिरन्नादम् ॥ अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् ॥ ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः ॥ तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ स्व एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति ॥ अन्नवाननादो भवति ॥ महान्भवति प्रजया पशुभिर्वह्मवर्चसेन ॥ महान्कीर्या ॥

इति भृगुवद्वयध्याये अष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥

अन्नं बहु कुर्वीत ॥ तद्रतम् ॥ पृथिवी वा अन्नम् ॥ आकाशोऽन्नादः ॥ पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः ॥ आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता ॥ तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति ॥ अन्नवानन्नादो भवति ॥ महान्भवति प्रजया पशुभिर्मद्वावचीसेन ॥ महान्कीर्त्या ॥

इति भृगुवत्तयध्याये नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

न कंचन वसती प्रत्याचश्रीत ॥ तद्रतम् ॥ तस्माद्यया कया च विधया बहुनं प्राप्तयात् ॥ अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते ॥ एतहे सुखतोऽन्नर्राद्धम् ॥ मखतोऽसा अन्न राध्यते ॥ एतद्वै मध्यतोऽन्न राद्धम् ॥ मध्यबोऽसा अन्न राध्यते ॥ एतद्वा अन्ततोऽन्न राज्यम् ॥ अन्ततोऽस्मा अन्न राध्यते ॥ १ ॥ य एवं वेद ॥ क्षेम इति वाचि ॥ योगक्षेम इति प्राणापानयोः ॥ कर्मेति इस्तयोः ॥ गतिरिति पादयोः ॥ विमुक्तिरिति पायौ ॥ इति माजुषीः समाज्ञाः ॥ अथ दैवीः ॥ वृक्षिरिति वृष्टौ ॥ बलमिति विद्युति ॥ २ ॥ यज्ञ इति पशुषु ॥ ज्योतिरिति नक्षत्रेषु ॥ प्रजापतिरसृतमानन्द इत्युपस्थे ॥ सर्व-मित्याकारो ॥ तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत ॥ प्रतिष्ठावान् भवति ॥ तन्मह इत्युपा-सीत ॥ महान् भवति ॥ तन्मन इत्युपासीत ॥ मानवान् भवति ॥ ३ ॥ तसम इत्युपासीत ॥ नम्यन्तेऽस्मे कामाः ॥ तद्रह्मेत्युपासीत ॥ ब्रह्मवान भवति ॥ तद्रह्मगः परिमर इत्युपासीत ॥ पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपलाः ॥ परि येऽप्रिया आतृत्याः ॥ स यश्चायं पुरुषे ॥ यश्चासावादित्ये ॥ स एकः ॥ ४ ॥ स य एवंवित् ॥ असाह्योकात्प्रेत्य ॥ एतमन्नमयमात्मानसुपसंक्रम्य ॥ एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य ॥ एतं मनोमयमात्मानसुपसंक्रम्य ॥ एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंकम्य ॥ एतमानन्दमयमात्मानमुपसंकम्य ॥ इमाँ-छोकान्कामान्नी कामरूप्यनुसंचरन् ॥ एतत्साम गायन्नास्ते ॥ हा३वु हा ३वु हा३वु ॥ ५ ॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ॥ अहमन्नादोऽ३हमन्नादो३ह-मन्नादः ॥ मह १ स्रोककृदह १ स्रोककृदह १ स्रोककृत् ॥ अहमस्मि प्रथमजा ऋता ३ स्य ॥ पूर्व देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि ॥ यो मा ददाति स इदेव-माइवाः ॥ अहमन्नमन्नमद्ग्तमा ३ द्वि ॥ अहं विश्वं भुवनमभ्यभवाइम् ॥ सुवर्नज्योतीः ॥ य एवं वेद ॥ इत्युपनिषत् ॥ ६ ॥ (राध्यते विद्युति मान-वान्भवत्येको हा ३ वु य एवं वेदैकं च)॥

इति मृगुवह्नयध्याये दशमोऽनुवाकः ॥ १०॥

भृगुस्तस्मै यतो वे विशन्ति तद्विजिज्ञासस्य तश्रयोदशाशं प्राणं मनो विज्ञानमिति तद्विज्ञाय तं तपसा द्वादश द्वादशानन्द इति सेषा दशाशं न निन्धात् प्राणः शरीरमन्नं न परिचक्षीतापो ज्योतिरन्नं बहु कुर्वीत पृथिव्या-माकाश एकादशकादश ॥ न कंचनैकषष्टिरेकान्नविश्शतिरेकान्नविश्शतिः ॥ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्व नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति भृगुवह्रयध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुरुक्तमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो ॥ त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मा-सि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि ॥ सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतु माम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति तैत्तिरीयोपनिषत्संपूर्ण ॥ ७ ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

ऐतरेयोपनिषत् ॥ ८॥

वाङ् से मनासे प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि ॥ वेदस्य म आणीस्थः श्वतं मे मा प्रहासीरनेनाधोतेनाहोरात्रान्संद्धाम्यृतं विद्यामि संत्यं विद्यामि ॥ तन्मामवतु तद्वकारमवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आतमा वा इदमेक एवाम्र आसीन्नान्यिकंचन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ १ ॥ स इमां लोकानसृजत ॥ अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्योः प्रतिष्ठाऽन्तिरिक्षं मरीचयः ॥ पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ॥ २ ॥ स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति ॥ सोऽन्य प्व पुरुषं समुद्धत्यामूर्च्छयत् ॥ ३ ॥ तमम्यतपत्तस्याभितसस्य मुखं निरिभद्यत् यथाण्डम् ॥ मुखाद्वाग्वाचोऽप्तिनांसिके निरिभद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणा-द्वायुरक्षिणी निरिभद्येतामक्षीभ्यां चक्षुश्रक्षुष आदित्यः कर्णो निरिभद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्वितस्विङ्गरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य क्षोषि-वनस्पत्यो हृदयं निरिभद्यत हृदयान्मनो मनसश्चनद्वमा नाभिनिरिभद्यत् नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्चं निरिभद्यत शिक्षाद्वेतो रेतस आपः ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनापिपासाभ्यामन्व-वार्जत् ता एनमञ्जवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ १॥ ताभ्यो गामानयत्ता अञ्जवन्न वे नोऽयमलमिति ॥ ताभ्योऽश्वमानयत्ता अञ्जवन्न वे नोऽयमलमिति ॥ २॥ ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अञ्जवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम् ॥ ता अञ्जवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ॥ ३॥ अभिर्वारभूत्वा सुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्रसु-भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णो प्राविशन्नोषधिवनस्पत्यो कोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभि प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्चं प्राविशन् ॥ ४ ॥ तमशनापिपासे अन्तामावाभ्यामभिप्रजानीहीति ॥ ते अन्नवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजा- स्येतासु भागिन्या करोमीति ॥ तस्मायस्ये कस्ये च देवताये हविर्मृद्धते भागिन्यावेवास्यामेशनापिपासे भवतः ॥ ५ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ॥ १ ॥ सोऽपोsभ्यतपत् ताभ्योsभितसाभ्यो मूर्तिरजायत ॥ या वै सा मूर्तिरजायताsनं वै तत् ॥ २ ॥ तदेनत्सृष्टं पराङत्यजिघांसत् तद्वाचाऽजिघुक्षत्तन्नाशक्रोद्वाचा प्रही-तम् ॥ स यद्भैनद्वाचाऽम्रहेष्यद्भिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्यत् ॥ ३ ॥ तत्माणे-नाजिष्टक्षत् तन्नाराक्रोत्प्राणेन प्रहीतुम् ॥ स यद्धेनत्प्राणेनाप्रहेष्यद्भिप्राण्य हैवानमत्रप्यत् ॥ ४ ॥ तच्छावाऽजिष्ट्रभत् तन्नाशकोच्छाया यहीतुम् ॥ स यद्भैनच्छाषाऽप्रहेष्यदृष्ट्वा हेवान्नमत्रप्यत् ॥ ५ ॥ तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्ना-शक्तोच्छोत्रेण प्रहीतम् ॥ स यद्धैनच्छोत्रेणायहैष्यच्छ्रःवा हैवासमत्रप्सत् ॥ ६॥ तत्त्वचाऽजिघुक्षत् तन्नाशकोत्त्वचा अहीतुम् ॥ स यद्धैनस्वचाऽप्रहै-ध्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्यत् ॥ ७ ॥ तन्मनसाऽजिपृक्षत् तन्नाशक्रोन्मनसा महीतुम् ॥ स यद्वैनन्मनसाऽमहेव्यचात्वा हैवान्नमत्रप्यत् ॥ ८ ॥ तच्छिन्ने-नाजिघुक्षत्तन्नाशक्कोच्छिश्चेन प्रहीतुम् ॥ स यद्देनच्छिश्चेनाप्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्न-मत्रप्यत् ॥ ९ ॥ तदपानेनाजिष्ट्रक्षत् तदावयत् । सेषोऽन्नस्य प्रहो यद्वायुर-बायुर्वी एप यहायुः ॥ १० ॥ स ईक्षत कथं निवदं महते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति ॥ स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिक्षेन विसष्टमथ कोऽहमिति ॥ ११ ॥ स एतमेव सीमानं विदार्येतया द्वारा प्रापद्यत ॥ सेषा विद्यतिनीम द्वास्तदेतन्नान्दनम् ॥ तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ता अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥ १२ ॥ स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति ॥ स एतमेव पुरुषं बस ततममपश्यदिदमदर्शमिती ३॥ १३॥ तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण ॥ परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥ १४ ॥

> इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ इत्यैतरेये द्वितीयः स्पयके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

य

H

₹

11

त

तं

તં

व

य

ı:

उपनिषस्सु प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति ॥ यदेतद्रेतस्तदेतस्तवंभ्योऽङ्गेश्यस्रोजःसंभूतमात्मन्येवात्मानं विभित्ते तचदा स्त्रियां सिञ्चत्यथेनजनयति तदस्य
प्रथमं जन्म ॥ १ ॥ तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथास्त्रमङ्गं तथा ॥
तस्त्रादेनां न हिनस्ति साऽस्येतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥ २ ॥ सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्री गर्भ विभित्ते सोऽम्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति स यरकुमारं जन्मनोऽमेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां छोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे छोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३ ॥
स्रोऽस्थायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयतेऽथास्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रेति स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥ ४ ॥
तदुक्तसृषिणा । गर्भे नु सन्नन्वेषाम वेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ॥ शतं
मा पुर आयसीररक्षन्नधः स्येनो जवसा निरदीयमिति गर्भ एवेतच्छयानो
वामदेव प्वमुवाच ॥ ५ ॥ स एवं विद्वानस्थाच्छरीरभेदादृध्वं उत्क्रम्यामुविमन् स्वगें छोके सर्वान् कामानाहवाऽसृतः समभवत् समभवत् ॥ ६ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

इस्पेतरेयारण्यके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ उपनिपत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ कोऽयमात्मेति वयसुपास्महे कतरः स आत्मा येन वा पश्यति येन वा श्वणोति येन वा गम्धानाजिन्नति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥ १ ॥ यदेतद्भृत्यं मनश्चेतत् ॥ संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धतिर्मतिर्मनीपा जूतिः स्पृतिः संकल्पः कतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामध्यानि भवन्ति ॥ २ ॥ एष ब्रह्मेष इन्द् एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींपीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव ॥ ब्रीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्धिज्ञानि चाश्वा गावः पुरुषा हित्तनो यिक्वचेदं प्राणि जङ्गमं च पतित्र च यञ्च स्थावरं सर्वे तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्टितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्टा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ३ ॥ स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माह्योकादुत्कम्यासुप्तिन् सर्वे लोके सर्वोन्कान्मानाह्वाऽस्तृतः समभवत् समभवत् ॥ इत्योम् ॥ ४ ॥

इति पन्नमः खण्डः ॥ ५ ॥

इत्येतरेयारण्यके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ उपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ अ. उ. ३ वाजो मनिस प्रतिष्ठिता अनो से बाजि बन्तिष्ठितमाविरावीर्भ एषि॥ वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं से सा प्रहासीरनेनात्रीलेगाहोराजाम्संद्धास्यृतं व्रदिष्यापि सत्यं विद्धापि सन्यामवतु सङ्कारमधस्त्रचतु सामवतु वक्कार-मवतु वकारम्॥ ॐ वान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

इत्येतरेबोपनिषत् संदूर्णा ॥ ८ ॥ ॐ तस्यत् ॥

छान्दोग्योपनिषत् ॥ ९ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि नाक्याणश्चक्षः श्रोत्रमथो बलिमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराङ्ग्यां मा मा ब्रह्म निराङ्गरोद्दिनिरा-करणमस्विनराकरणं मेऽस्तु खद्दारमिन निरते य इप्रनिषद्धु धर्मास्ते मिन्न सन्तु ते मिन्न ॥ ॐ ग्रान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

क्षोमिस्रेवद्धरमुद्रीथमुपासीत, क्षोमित ह्युद्रायित तस्त्रोपन्याख्यानम् ॥१॥
एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस औषधीनां
प्रक्षो रसः पुरुषस्य वामसो वाच ऋमस ऋचः साम रसः साझ उद्गीथो
रसः ॥ २ ॥ स एष रसाना रस्ति स्रामः परमः पराध्योऽष्टमो यद्वद्गीथः ॥ ३ ॥
कतमा कतमक्षेतमस्कतमस्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विसृष्टं भवति ॥ ॥ ॥
वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतद्धरमुद्रीथः ॥ तद्वा एतिन्मथुनं यद्वाक् च प्राणश्वर्क च साम च ॥ ५ ॥ तदेतिनमथुनमोमित्येतिस्मञ्जसे स्र स्टुज्यते यदा वै
मिथुनो समागच्छत भाषयतो व तावन्योच्यस्य कामस् ॥ ६ ॥ आपियता ह
व कामानां अवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्रीथमुपास्ते ॥ ७ ॥ तद्वा पृतद्वुज्ञाक्षरं यद्वि किंचानुजानात्योमित्येव तदाहेषो एव समृद्धियंद्वुज्ञा सम्रधीयता ह व कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्रीथमुपास्ते ॥ ८ ॥ तेनेयं
त्रयी विद्या वर्तत ओमित्याश्रावयत्योमिति श्र सत्योमित्युद्वायत्यत्येवाक्षरस्थापिनस्य महिन्ना रसेन ॥ ९ ॥ तेनोभी कुरुतो यश्चेत्रदेवं वेद् यश्च न वेद्व ॥
नाना त विद्या चाविष्णाच वर्देव विद्या करोति श्रद्योपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यवाक्षरस्योपव्याक्यानं अवति ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यात्रे प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ देवासुरा ह वे यत्र संमेतिर उभन्ने प्राजापत्यास्तद्ध देवा स्त्रीथमाजहुरने- तं

कैनाविभ अविष्यास इति ॥ ३ ॥ ते इ नासिक्यं प्राणसुद्रीश्रसुपासांचकिरे त्रहासुराः पाप्मना विविधुसास्त्रात्तेनोअयं जिल्लाति सुर्शेभ च हुर्गिन्ध च पाप्म-ना होब बिद्धः ॥ २ ॥ अथ ह नाचसुद्रीयसुपासांचिकरे नार्हासुराः पाप्मना विविधुक्तकात्तयोअयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्सना होषा विद्धा ॥ ३॥ अथ ह चक्षुरुद्रीथमुपासांचिकरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तसात्तेनोमयं पश्यति दर्शनीयं चार्क्सनीयं च पाप्मना होतिहिद्यम् ॥ ४ ॥ अथ ह श्रोत्रमु-हीथमुपासांचिकिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तसात्तेनोभय श्रुणोति श्रव-णीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना क्षेत्रहिद्धम् ॥ ५ ॥ अथ ह मन उद्गीशसुपासां-चिकिरे तद्वासुराः पाप्मना विविधुस्तसात्तेनोभय संकल्पमते संकल्पनीयं चासंकल्पनीयं च पाप्मना होतद्विस्स् ॥ ६ ॥ अथ इ य एवायं मुख्यः प्राण-ल्खुद्वीथमुपासांचिकरे त५हासुरा ऋत्वा विदृष्व५सुर्यथाऽस्मानमाखणसृत्वा विध्व एसेत ॥ ७ ॥ एवं यथाऽइमानमाखणमृत्वा विध्व एसत एव १ हैव स विध्व एसते य एवं विदि पापं कामयते यक्षेनमिमदासति स एपोऽस्माखणः ॥ ८॥ नैवैतेन सुरिभ न हुर्गनिध विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यदश्चाति खिलबति तेनेतरान् प्राणानवति । एतसु एवान्ततोऽविक्वोत्कामति व्याददाये-वान्तत इति ॥ ९ ॥ तर्इाङ्गरा उद्गीथमुपासांचक एतमु एवाङ्गरसं मन्य-न्तेऽङ्घानां यद्दसः ॥ १० ॥ तेन त्र ह हृहस्पतिस्द्रीथमुपासांचक एतमु एव ब्रुहस्पतिं मन्यन्ते वाग्वि ब्रुहती तस्या एष पतिः॥ ११॥ तेन त्रहायास्य उद्गीथसुपासांचक एतसु एवायास्यं मन्यन्त आस्याद्यदयते ॥ १२॥ तेन तर्ह बको द्वाल्म्यो विदांचकार ॥ स ह रनैसिषीयानासुद्वाता वसूव स ह सैस्यः कामानागायति ॥ १३ ॥ भागाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं चिद्वान-क्षरमुद्रीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथाधिदैवतं य प्वासी तपित तसुद्रीयसुपासीतीचन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायित उद्यक्षसोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै मयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥ समान उ एवायं चासौ चोष्णोऽयसुष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यसुं तस्माद्वा एतिममसुं चोद्गीयसुपासीत ॥ २ ॥ अथ खलु व्यानमेवोद्गीयसुपासीत यद्वै प्राणिति स प्राणो यद्पानिति सोऽपानः॥ अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो यो व्यानः सा वाक् तसाद्रपाणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥ या वाक्सक्तेसाद्रपाणन्ननपानन्न-चमभिव्याहरति यर्कत्साम तस्माद्प्राणन्ननपानन्साम गायति यःसाम स उद्गीथस्तस्मादपाणञ्चनपानञ्जुद्गायति ॥ ४ ॥ अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्नेर्सन्थनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपान एसानि करोत्य-तस्य हेतोर्च्यानसेवोद्गीथसुपासीत ॥ ५ ॥ अथ खल्द्रद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीद् सर्व स्थितम् ॥ ६ ॥ दारेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवो-द्वायुगीरिप्रस्थ सामवेद एवोद्यज्वेदी गीर्ऋग्वेदस्यं दुग्धेऽसी वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽस्वानसादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्रीथाक्षराण्युपास्त उद्गीय इति ॥ ७ ॥ अथ खल्वाशीःसमृद्धिरूपसरणानीत्युपासीत येन साम्ना स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ ८॥ यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तसृषि यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥ येन च्छन्दसा स्रोष्यन्स्यात्त-च्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोब्यमाणः स्यात्तर स्तोमसुपधावेत्॥ १०॥ यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशसुपधावेत् ॥ ११ ॥ आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायस्त्रप्रमत्तोऽभ्याशो ह यदस्मे स कामः समृद्येत यत्कामः स्त्रवीतेति यत्कामः स्त्रवीतेति ॥ १२ ॥

इति प्रथमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

ॐिमलेतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायित तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥ देवा वै मृलोर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविश्च स्ते छन्दोभिरच्छाद्यन्यदेभिराच्छा-दय्यस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥ २ ॥ तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिप्रश्यदेवं पर्यपश्यद्दि साम्नि यज्ञिष । ते नु वित्त्वोध्वां ऋचः साम्नो यज्ञिषः स्तरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥ यदा वा ऋचमामोलोमिल्येवातिस्वरत्येव सामैवं यज्ञरेष उ स्तरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्च देवा अमृता अभया अभवन् ॥ ४ ॥ स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौलेतदेवाक्षर स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्यविश्च यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसो वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव भोमिति होष स्वरक्षेति ॥ १ ॥ एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतिकः पुत्रमुवाच रश्मी १स्त्वं पर्यावर्तयाहः हवो वे ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥ अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः

g.

प्राणस्तमुद्गीयमुपासीतोमिति ह्येष स्वरह्मेति ॥ ३ ॥ एतमु एनाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतिकः अत्रमुवाच प्राणा एस्त्वं भूमानमिन गायताह्रह्यो वे मे भविष्यन्तीति ॥ ४ ॥ अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ ह्ति होतृषद्नाह्यवापि दुस्द्गीतमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीत् । ५ ॥

इति प्रथमाध्याये पश्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इयमेवर्गिप्तः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यू ह्ए साम तसाह च्यध्यू हए साम गीयत इयमेव साऽप्तिरमस्तः साम ॥ १ ॥ अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यू हए साम तस्याह च्यध्यू हए साम गीयते इन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तः साम ॥ २ ॥ द्योरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यू हए साम तस्याहच्यध्यू हए साम गीयते द्योरेव सादित्योऽमस्तः साम ॥ ३ ॥ नक्षत्राण्येवर्क्चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यू हर्ष साम तस्याह च्यध्यू हर्ष साम गीयते
नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तः साम ॥ ४ ॥ अथ यदेतदादित्यस्य ग्रुकं
भाः सैवर्गाथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यू हर्ष साम तस्याहच्यध्यू हर्ष साम गीयते ॥ ५ ॥ अथ यदेवतदादित्यस्य ग्रुकं भाः सेव साऽथ
यन्नीलं परः कृष्णं तद्मस्तः सामाऽथ य एषोऽन्तर। दित्य हिरण्मयः पुरुषो हर्यते
हिरण्यरमश्च हिरण्यकेश आप्रणसासर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥ तस्य यथा
कष्यासं पुण्डरिक्षमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित
उदिति ह व सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥ तस्यर्क् च साम च गेष्णो
तस्यादुद्रीथस्तस्यात्त्वेदोद्वातेतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो
लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेस्रिक्षदेवतम् ॥ ८ ॥

इति प्रथमाघ्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथाध्यातमं वागेवर्क् प्राणः साम तदेतदेतस्यामृष्यध्यृद्धः साम तसाद-च्यध्यृद्धः साम गीयते ॥ वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १ ॥ चक्षुरेवर्गातमा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यृद्धः साम तसादच्यध्यृद्धः साम गीयते ॥ चक्षुरेव साऽऽत्माऽमस्तत्साम ॥ २ ॥ श्रोत्रमेवर्छामनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यृदः साम तसादच्यध्यृद्धः साम गीयते ॥ श्रोत्रसेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥ अथ यदेतदङ्णः गुक्तं भाः सैवर्गय यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्या-मृच्यध्यृदः साम तसादच्यध्यृदः साम गीयते । अथ यदेवैतदङ्णः गुक्तं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्रत्साम ॥ ४ ॥ अथ य एषोऽन्दरदिणि पुरुषो दश्यते सैवर्वतस्याम तदुक्थं तद्यजस्तद्भा तस्यतस्य तदेव स्व्यं यदमुष्य रूपं यावमुष्य गेष्णो तो गेष्पो यद्याम तद्याम ॥ ५ ॥ स एव वे चेतसादर्वाची लोकासोषां चेष्टे मनुष्यकामानां चेति तद्य इमे वीणायां गायन्त्रेतं ते गायन्ति तस्माते धनसनयः ॥ ६ ॥ अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्वुभौ स गायति सोऽमुनैव स एव ये चामुष्मात्पराच्चो लोकासा%-श्रामोति देवकामा ॥ ७ ॥ अथानेनैव ये चेतसादर्वाच्चो लोकासा%-श्रामोति मनुष्यकामा ॥ ७ ॥ अथानेनैव ये चेतसादर्वाच्चो लोकासा%-श्रामोति मनुष्यकामा ॥ ७ ॥ कथानेनैव ये चेतसादर्वाच्चो लोकासा%-श्रामोति मनुष्यकामा ॥ ७ ॥ कं ते काममागायानी स्रोप होच कामामान स्रोष्टे य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

त्रयो होत्रीये कुशला बभूतुः शिलकः शालावस्थिकितायनो दारस्यः प्रवाहणो नैवलिरिति, ते हो खुरुद्रीये वे कुकलाः स्नो हन्तोद्वीये कथां क्दास इति ॥ १ ॥ तथेति ह समुपनिविद्युः, स ह प्रवाहणो जैवलिख्वाच, अगव-न्तावमे बदता ब्राह्मणयोर्वदतीर्वाचर श्रोष्यामीति ॥ २ ॥ स ह शिलकः शास्त्रावसश्चेकितायनं दारम्यसुवाच हन्त त्वा पुरुव्वतिति, पुरुव्वति होवाच ॥ ३ ॥ का साम्नो गतिरिति, खर इति होवाच, खरख का गतिरिति, प्राण इति होवाच, प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होबाच ॥ ४ ॥ मपां का गतिरित्यसौ कोक इति होवाचामुख्य लोकस्य का गतिरिति न खर्ग कोकमतिनयेदिति होवाच, खर्ग वयं कोक्र सामाभिसं-स्थापयामः स्वर्गसर् स्तावर हि सार्नेति ॥५॥ तर ह झिछकः शास्त्रावस्यश्रीकि-तायनं दारम्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वे किल ते दारम्य साम यस्वेतिही व्र्यान्मूर्घा विपतिष्यतीति मूर्घा ते विपतेदिति॥ ६॥ इन्ताहमेतद्भगवको वेदानीति, विद्वीति होवाचासुच्य कोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवा-चास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच, प्रतिष्ठां वयं छोक्र सामाभिसः स्थापयामः प्रतिष्ठासः स्तावः हि सामेति ॥ ७ ॥ त्र प्रवाहणो जैविछिरवाचान्तवहै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतिर्हि ब्यान्मूर्था ते विपतिष्यतीति सूर्घा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति, विद्धीति होवाच ॥ ८॥

इति प्रथमाध्याऽष्टमः खण्डः ॥ ८॥

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पसन्त आकाशं प्रत्यसं यन्त्याकाशो होवेभ्यो ज्याया॰ नाकाशः परावणम् ॥ १॥ स एव परीवरीयानुद्रीयः स एषोऽनन्तः परोव-रीजो हास्य अवति परोवरीयसो ह लोकाअवति य एतदेवं विद्वान्परोवरीयार्थं समुद्रीयञ्चपाके ॥ २ ॥ तर्रहेतमसिधन्या ज्ञीनक उदरजाण्डिस्याची-व्यवीवाच यावन्त एनं प्रकासामुद्रीयं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैम्यसावदस्सिँ छोके जीवनं अविष्यति ॥ ३ ॥ तथामुष्मिँ छोके लोक हति स य एतदेवं विद्वानुपास्ते परोवरीय एव हास्यासिँ छोके जीवनं भवति तथामुष्मिँ छोके लोक हति लोके लोक हति ॥ ४ ॥

इति प्रथमाच्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

सरचीहतेषु कुरूवादिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाकायण इभ्ययामे प्रदा-णक उवास ॥ १ ॥ स हैभ्यं कुल्माषान्सादन्तं विभिन्ने तथ होवाच ॥ नेतीऽन्ये विचन्ते यस ये स इस उपनिहिता इति ॥ २ ॥ एतेषां मे देहीति होधाच, तानसी पददी हन्तानुपानिमस्युच्छिष्टं ने मे पीत्र स्यादिति होवाच ॥ ३ ॥ न खिदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादश्विति होवाच कामो म उद्यानमिति ॥ ४ ॥ स ह खादिखातिशेषाञ्जायाया आज-हार साग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्त्रतिगृद्ध निद्धो ॥ ५ ॥ स ह प्रातः संजिहान उवाच यहताबस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्राथ राजासी यस्यते स मा सर्वेशार्त्विज्येर्वृणीतेति ॥ ६ ॥ तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुरमाषा इति तान्लादित्वाऽसुं यज्ञं विततसेयाय ॥ ७ ॥ तत्रोद्वाद्यनास्तावे स्रोध्य-माणाजुपोपविनेश, सं ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥ प्रस्तोतर्या देवता प्रस्ताव-सन्वायत्ता तां चेद्विद्वान्त्रस्तोष्यसि सूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥ एवसे वोद्गातारमुवाचोद्गातया देवतोद्गीयमन्वायता ता चेदविद्वानुद्रास्यसि मूर्घा ते विपतिष्यतीति ॥ १०॥ एवमेव प्रतिहर्तारस्याच, प्रतिहर्तयी देवता प्रतिहारमन्त्रायता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि सूर्घा ते विपतिष्यतीति, ते ह समारतास्त्रणीमासांचिकरे ॥ ११॥

इति प्रथमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अब हैनं यजमान उवान, भगवन्तं वा अहं विविद्याणीः युषित्रिका वाश्रायण इति होवाच ॥ १ ॥ स होवाच, भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वेरात्विज्यैः पर्येषिषं भगवतो वा अहमविऽस्थान्यानपृषि ॥ २ ॥ भगवा स्त्वेव में सर्वेराध्विज्येरिति तथेत्यथ तहाँत एव समितसृष्टाः स्तुवतां यावस्वेभ्यो धनं द्यासावन्सम द्या इति, तथेति ह यजमान उवाच ॥ ३ ॥ अथ हैनं प्रसोन्तोष्पस्थादः प्रस्तोत्यां देवता प्रसावमन्त्रायता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यास

१ ५नके इति प्राठः । २ उद्भागनमिति पाठः ।

मूर्घा ते विपतिष्यतीति, मा भगवानवोच्दकतमा सा देवतेति ॥ ४ ॥ प्राण इति होवाच, सर्वाण ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविद्यानित प्राणमे भ्युजिहते सेषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो सूर्घा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ५ ॥ अथ हैन मुद्धातोपससादोद्वातर्या देवतो-द्रीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्वास्यसि सूर्घा ते विपतिष्यतीति, मा भगवान-वोच्दकतमा सा देवतेति ॥ ६ ॥ भादित्य इति होवाच, सर्वाण ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुचैः सन्तं गायनित सेषा देवतोद्वीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानु-द्रगास्यो मूर्घा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥ अथ हैनं प्रतिहर्तो-पससाद, प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यासि मूर्घा ते विपतिष्यतीति, मा भगवानवोच्दकतमा सा देवतेति ॥ ८ ॥ अञ्चनित होवाच, सर्वाण ह वा इमानि भूतान्यज्ञसेव प्रतिहरसगणानि जीवन्ति सेषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्घा ते व्यपति-ष्यत्ति स्थात्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

भयातः शोव उद्गीयस्तद् बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्ववाज ॥ १ ॥ तस्मे श्रा श्वेतः प्रादुर्वभूव, तमन्ये श्रान उपसमेत्योचुरतं नो
भगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥ तान्होवाचेहैव मा प्रातह्यसमीयातेति, तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मेत्रेयः प्रतिपालयांचकार ॥ ३ ॥ ते
ह यथैवेदं बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सक्ष्रह्याः सर्पन्तीत्येव मासस्पुत्ते
ह समुपविश्य हिंचकुः ॥ ४ ॥ ॐ३मदा३मों३पिवा३मों३देवो वहणः
प्रजापतिः सविता रत्नमिहा २८ऽहरदन्नपते ३ न्नामिहा २८ऽहरा ३ सिति ॥५॥

इति प्रथमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाइकारश्चनद्रमा अथकार आत्मेहका-रोऽग्निरीकारः ॥ १ ॥ आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वेदेवा औहोइकारः प्रजापतिर्हिकारः प्राणः स्वरोऽश्चं या वारिन्यद ॥२॥ अनिकक्तस्त्रयोद्द्राः स्तोभः संचरो हुंकारः ॥ ३ ॥ दुग्धेऽस्मे वाद्भोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतामेव साम्रामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद इति ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्याये त्रयोत्सः खण्डः ॥ १३ ॥ इति प्रथमोअध्यानः ॥ १ ॥

1 1

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ समस्तस्य खलु साम्न उपासन् साधु यखलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ॥ १ ॥ तदुताप्याहुः साम्नेनमुपागादिति साधुनेनमुपागादित्येव तदाहुः ॥ २ ॥ अथोताप्याहुः साम नो वतेति यत्साधु भवति साधु वतेत्येव तदाहुरसाम नो वतेति यत्साधु भवति साधु वतेत्येव तदाहुरसाम नो वतेति यदसाधु भवत्यसाधु वतेत्येव तदाहुर ॥ ३ ॥ स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेन साधवो धर्मा आ च गच्छेयु- इप च नमेयुः ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

लोकेषु पञ्चविधः सामोपासीत पृथिवी हिंकारोऽग्निः प्रसावोऽन्तरिक्षमु-द्वीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यू ध्वेषु ॥ १ ॥ अथावृत्तेषु द्यौर्हिकार आदित्यः प्रसावोऽन्तरिक्षमुद्रीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥ २ ॥ कल्पन्ते हास्मे लोका उध्विश्वावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वाँ होकेषु पञ्चविधः सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

वृष्टो पञ्चविधः सामोपासीत पुरोवातो हिंकारो मेघो जायते स प्रसावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥ उद्गृह्णाति तन्नि-धनं वर्षति हास्म वर्षयति ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ ए बविधः सामोपास्ते ॥२॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सर्वास्वप्सु पञ्चविधर सामोपासीत मेघो यत्संप्रवते स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीयो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम् ॥ १ ॥ न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वा-स्वप्सु पञ्चविधर सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

ऋतुषु पञ्चविधः सामोपासीत वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरट्यतिहारो हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥ कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति थ एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधः सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये पश्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

पशुषु पञ्चविधर सामोपासीताजा हिंकारोंऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीशोऽश्वाः

प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥ १ ॥ भवन्ति हास्य पदावः पशुमान्भवति य एतदेवं दिद्वान्पशुषु पञ्चविधः सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

प्राणेषु पञ्चिवधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिंकारो वाक्प्रसावश्रञ्जु-रुद्रीयः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीया सि वैतानि ॥ १ ॥ परो-वरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह छोकाञ्जयति य एतहेवं विद्वान्त्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथ सप्तविधस्य वानि सप्तविधः सामोपासीत यिक्वि वाची हुमिति स हिंकारो यद्येति स प्रसावो यदेति स आदिः ॥ १ ॥ यदुदिति स उद्वीथो यद्यतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्भवो यद्यीति तक्षिष्ठवस् ॥ २ ॥ दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽज्ञवानजादो भवति, य एतदेवं विद्वान्वानि सप्तविधः सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ खरनसुमादित्य सप्तविष सामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां पति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥ १ ॥ तिसिन्निमानि सर्वाणि स्रताः न्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशयोऽन्वायत्तास्त-स्मासे हिंकुर्वन्ति हिंकारभाजिनो होतस्य साम्नः ॥ २ ॥ अथ यद्मधसीदिते स प्रसावसदस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रश्रप्ताकामाः प्रसावभाजिनो होतस्य साम्नः ॥ ३ ॥ अथ यत्सङ्गववेलायाः सं सादिस्त-दस्य वया एसन्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यादायात्मानं परिप-तन्सादिभाजीनि होतस्य साम्नः॥ ४॥ अथ यत्संप्रति मध्यन्दिने स उतीः थस्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्रीथभाजिनौ ह्येतस्य साम्नः ॥ ५ ॥ अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्यात्स प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नावपचन्ते प्रतिहारभाजिनी ह्येतस्य साम्नः ॥ ६ ॥ अथ यद्ध्वेमपराह्णात्रागस्तमयात्स उपद्वयतद्स्यारण्या अन्वायत्तास्तसात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षरं श्वभ्रमित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनी ह्येतस्य साम्नः॥ ७॥ अथ यथमास्तमिते तन्निधनं तद्ख पितरोऽन्वायत्तास्त-सात्तान्निद्धति निघनभाजिनो होतत्य साम्न एवं खल्वसुमादित्यः सप्तविधः सामोपास्ते॥ ८॥

इति द्वितीयाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अध सत्वास्मसंग्रितमतिमृत्यु सस्रविध्य सामोपासीत हिंकार इति ज्यक्षरं प्रस्ताव इति ज्यक्षरं तस्समम् ॥ ३ ॥ आदिति द्वाधरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहेकं तत्समम् ॥ २ ॥ उद्गीध इति ज्यक्षरमुपद्रव इति चतु-रक्षरं त्रिसिखिभिः समं मवत्यक्षरमतिशिष्यते ज्यक्षरं तत्समम् ॥ ३ ॥ निधनमिति ज्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ह वा एतानि द्वाविश्वतिस्काराणि ॥ ४ ॥ एकविश्वास्तावित्यमामोत्येकविश्यो वा इतोऽसावादित्यो द्वाविश्वोन परमादित्याज्यति तक्षाकं तदिशोकम् ॥ ५ ॥ आमोतिहादित्यस्य जयं परो हास्वादित्यजयाज्यक्षे अवति य एतदेवं विद्वानारमसंमितमतिमृत्यु समिविधश्व सामोपास्ते सामोपास्ते ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्याये दश्मः खण्डः ॥ १० ॥

मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्रश्चरहोथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमैत-द्वायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्रणी-भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पश्चभिभेवति महान्कीर्खा सहामनाः स्यातहतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये एकादकः खण्डः ॥ ११ ॥

अभिमन्थित स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो जवलित स उद्गी-थोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपकाम्यित तिक्विभन्थ सथ्शाम्यित तिक्वि-धनसेतद्वथम्तरमग्नो प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वथम्तरमग्नो प्रोतं वेद ब्रह्म-वर्चस्ववादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवित महान्प्रजया पशुभिभैवित सहान्कीर्त्या न प्रतब्क्ङमिमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्वतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

उपमन्नयते स हिंकारो ज्ञापयते स प्रस्तावः खिया सह शेते स उद्गीयः प्रित खीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छित तिन्नधनं पारं गच्छित तिन्नधनं धनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनीभवित मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवित महान्त्रज्ञया पश्चिभिभवित महान्कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद्वतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

उद्यन्हिकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्वः प्रतिहारोऽस्तं यक्षिधनमेतद्वृहदादित्यं प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वृहदादित्यं प्रोतं वेद तेजस्व्यक्षादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुमिर्भवति महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्वतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

अञ्चाणि संप्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तिद्यधनमेतद्वेरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्वेरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपा श्रि सुरूपा श्रि पर्श्न-वरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पश्चिभवति महान्कीर्ला वर्षन्तं नो निन्देत्तद्वतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५॥

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरस्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतहराजमृतुषु प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतहराजमृतुषु प्रोतं वेद् विराजति प्रजया पशुभिर्वहावर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्यर्त्ज्ञ निन्देत्तद्दतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

पृथिवी हिंकारोऽन्तिरक्षं प्रस्तावो द्योरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्यों लोकेषु प्रोताः ॥ १ ॥ स य एवमेताः शक्यों लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवित महान्प्रजया पशुभिर्भवित महान्कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद्वतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७॥

अजा हिंकारोऽवयः प्रसावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधन-अता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥ १ ॥ स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान्भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्स्रीत्यां पशुन्न निनदेत्तद्वतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

लोम हिंकारस्त्वकप्रसावो माध्समुद्रीथोऽस्थि प्रतिहारो मजा निधनमे-तद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाऽङ्गीभवति नाङ्गेन 'विहूच्छीति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पद्यभिभवति महान्क्रीर्ला संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्रीयात्तद्वतं मज्ज्ञो नाश्रीयादिति वा ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

अग्निर्धिकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ॥ ३ ॥ स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं चेदैतासामेव देवतानार् सलोकतार साष्ट्रितः सायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्यजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या बाह्मणात्र निन्देत्तद्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये विंशः खण्डः ॥ २०॥

त्रयी विद्या हिंकारस्वय इमे लोकाः स प्रस्तावोऽप्तिर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाध्सि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तक्षि-धनसेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतम् ॥ १ ॥ स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वथ ह भवति ॥ २ ॥ तदेष श्लोकः ॥ यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेथ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ ३ ॥ यस्तद्देद स वेद सर्वथ सर्वा दिशो बित्रमस्मे हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्रतं तद्रतम् ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्याये एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

विनर्दि साम्नो वृणे पशच्यमित्यमेरुद्रीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य सृदु श्रुक्षणं वायोः श्रुक्षणं वलवदिन्द्रस्य कौद्धं वृहस्पतेरपध्वान्तं वरूणस्य तान्सवांनेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत् ॥ १ ॥ अमृतत्वं देवेम्य आगायानित्यागायेत्स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पश्चभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्तमात्मन आगायानित्येतानि मनसा ध्यायन्त्रप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २ ॥ सर्वे स्वरा इन्द्रस्थात्मानः सर्वे उद्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शो मृत्योन् रात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालमेतेन्द्रः शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यतीन्त्यं वृयात् ॥ ३ ॥ अथ यद्येनमूष्मसूपालमेत प्रजापति शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं वृयाद्थ यद्येन स्र्पर्शेपूपालमेत मृत्यु शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति घक्ष्यतीत्येनं वृयाद्थ यद्येन स्र्पर्शेपूपालमेत मृत्यु शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति घक्ष्यतीत्येनं वृयाद्य यद्येन स्पर्शेपूपालमेत मृत्यु शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति घक्ष्यतीत्येनं वृयात् ॥ ४ ॥ सर्वे स्वरा घोषवन्तो वलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे वकं ददानिति सर्वे उद्माणोऽप्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानिभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिददानीति ॥ ५ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति । प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्म-चार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मस्स्थोऽमृतत्वमेति ॥ १ ॥ प्रजापतिलोकानभ्यतप-त्तेभ्योऽभितसभ्यख्यी विद्या संप्रास्त्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितसाया एतान्य-क्षराणि संप्रास्त्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥ तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितसभ्य ॐकारः संप्रास्त्रवत्त्वध्या शङ्कना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोकारेण सर्वा वाक् संतृण्णोकार एवेद् सर्वमोकार एवेद् सर्वम् ॥ ३ ॥ इति द्वितीयाध्याये त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

इसवाहिनो चदनित यहसूनां जातःसवमक्ष रहाणां साध्यन्दिनर सक्त-माहित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥ क ताहिं यजमा-नस्य कोक इति स यस्तं न विद्यास्क्यं कुर्याद्य विद्वान्कुर्यात् ॥ २ ॥ पुरा प्रात्तरनवाकस्योपाकरणाज्ञघनेन गार्हपत्यस्वोद्दब्बुख उपिध्यय स नासवर् सामामिगायति ॥ ३ ॥ लो ३कहारमपावा ३ णूँ ३३ पश्येम स्वा वय रा-३३३३३ हुई आ ३३ ज्या ३ यो ३ था ३२१११ हिता । ४ ॥ अथ चहोति नमोऽमये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष व यजमानस्य लोक एतास्मि ॥ ५ ॥ अत्र यजमानः परस्ताद्रायुषः स्वाहाऽप-जाह परिधमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवन संप्रयच्छन्ति ॥ ६॥ पुरा माध्यन्दिनस्य सवनस्योपाकरणाज्ञघनेनाग्नीधीयस्योदञ्जुख उपविश्य स रोद्र सामाभिगायति ॥ ७ ॥ छो३कहारमपावा३णू ३३ पद्येम स्वा वयं वैरा ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ जो ३ आ ३२१११ हृति ॥ ८ ॥ अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तिकक्षिति छोकक्षिते छोकं मे यजमानाथ विन्देष वे यजमानस्य छोक एतास्मि ॥ ९ ॥ अत्र यजसानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपजिह परिचिमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तसी रुद्रा स्वथ्य-न्दिन सवन संप्रयच्छन्ति ॥ १० ॥ पुरा तृतीयसचनस्योपाकरणाज्यक्री-माहबनीयस्पोद्द्युस उपविश्य स आदिस्य स वैश्वदेव सामाभिमा-यति ॥ ११ ॥ लो३कद्वारमपा वा ३ णू ३३ पश्येम त्वा वय स्वारा इइइइइ हं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति॥ १२॥ आदि-स्रमथ वैश्वदेवं लो३ कद्वारमपाना ३ र्णू ३३ पश्येम त्वा वय साम्ना ३३३३३ हुं ३ आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११ इति ॥१३॥ अथ जहोति नम आदित्यभ्यश्च विश्वभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिच्यो लोकक्षिच्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत ॥ १४ ॥ एष वै यजमानस्य स्रोक एताऽसम्यत्र यजमानः परस्तादायुषः स्त्राहाऽपहतपरिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति ॥ १५ ॥ तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीय सतन संप्रयच्छन्तेष ह वे यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं बेद य एवं वेद ॥ १६ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्विशः खण्डः ॥ २४॥ इति द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ असी वा आदित्यो देवमधु तत्य श्रीरेष तिरश्रीनव राोडम्तिश्यमपूरो मरीचयः पुत्राः ॥ १ ॥ तत्य से प्राक्षो रक्ष्मयत्वा एवास्य प्राच्यो मधुनाच्यः । प्रत्य एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुत्रां ता असृता आपस्ता वा एवा ऋचः ॥ २ ॥ एवसृग्वेदमस्यतप रस्तत्याभित्तसस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमञ्जाबर् रसोडजायत ॥ ३ ॥ तद्यक्षरत्तद्वादिस्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतद्वादिस्यस्य रोहित र रूपम् ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ येऽस्य दक्षिणा रझ्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाट्यो यज्रू स्वैव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता असृता भाषः॥ १॥ तानि वा एतानि यज्रू स्व्येतं यजुर्वेदमभ्यतपर स्तस्याभितसस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमसाधर रस्रोऽजायत ॥ २॥ तद्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽभ्रयत्तद्वा एतचदेतदादित्यस्य श्राह्य रूपम् ॥ ३॥

इति तृतीयाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ घेऽस्य प्रत्यञ्चो रस्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मघुनाड्यः सामान्येव अञ्चकृतः सामवेद एव पुष्पं ता असृता आपः॥ १॥ तानि वा एतानि सामान्येतः सामवेदमभ्यतपः सामान्येतः सामवेदमभ्यतपः सामान्येतः सामवेदमभ्यतपः सामान्येतः सामवेदमभ्यतपः सामान्येतः यश्चिमञ्चादः रसोऽजायत ॥ २॥ तद्यक्षरत्तदादिस्यमभितोऽश्चयत्तद्वा एतद्यदेतदादिस्यस्य प्रं कृष्णः स्प्पम् ॥ ३॥

इति भृतीयाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ ग्रेड्सोद्ञो रक्ष्मयसा एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव अधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता असृता आपः ॥ १ ॥ ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस य्वदितिहासपुराणमभ्यवप् सस्याभित्रस्य प्रशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमसाध् स्त्रोऽजायत ॥ २ ॥ तद्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽअयत्तद्वा एत्वदेवदादित्यस्य परं कृष्ण् रूपम् ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४॥

क्षथ बेडस्योध्वी रक्ष्मयस्ता एवास्योध्वी मधुनाख्यो गुद्धा एवादेशा मधुन कृतो ब्रह्मेव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ १ ॥ ते वा एते गुद्धा आदेशा एतद्र-क्षाभ्यतप्रसाद्याधितसस्य वशसीज इन्द्रियं वीर्यमञ्जाव रसोडबायत ॥२॥ तक्षक्षरसद्यादित्यमित्रतोऽश्रयत्तद्वा एतखदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥ ३ ॥ ते वा एते रसाना रसा वेदा हि रसासेषामेते रसासानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा इम्हतासेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये पश्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

तद्यस्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यमिना मुखेन न वे देवा अक्षन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृष्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमिसंविशन्त्येतस्या-द्रूपादुधन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेद वस्नामेवेको भूत्वाऽभिनेव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृष्यति स य एतदेव रूपमिभसंविशत्येतस्याद्रूपादुः देति ॥ ३ ॥ स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वस्नामेव ताव-दाधिपत्य स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ यद्वितीयममृतं तद्वद्वा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन न वे देवा अक्षन्ति न पिवन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृष्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्ये तसादूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेद रुद्वाणामेवेको भृत्वेन्द्रेणेव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृष्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतसादूपादुदेति ॥ ३ ॥ स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्विणत उदेतो- तरतोऽस्तमेता रुद्वाणामेव तावदाधिपत्य स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अभन्ति त पिवन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा नृष्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपम-भिसंविशन्त्येतसादूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामे-वैको भूत्वा वरुणेनेव मुखेनेतदेवामृतं दृष्ट्वा नृष्यति स एतदेव रूपमभिसं-विशत्येतसादूपादुदेति ॥ ३ ॥ स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्त-मेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्यानामेव तावदाधिपत्यक्ष् स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ यचतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वे देवा अश्वन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृष्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्ये तसाद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवको भूत्वा सोमेनेव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृष्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतसाद्रूपा-

बुदेति ॥ ३ ॥ स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्य स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥ इति ततीयाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथ यत्पञ्चममसृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा सुखेन न वे देवा अश्वन्ति न पिवन्त्येतदेवासृतं दृष्ट्वा तृष्यन्ति ॥ १ ॥ त एतदेव रूपमिससंदि- शन्त्येतस्याद्र्पादुचन्ति ॥ २ ॥ स य एतदेवससृतं वेद साध्यानामेवेको भूत्वा ब्रह्मणेव सुखेनैतदेवासृतं दृष्ट्वा तृष्यति स एतदेव रूपमिससंविशत्येत- स्माद्र्पादुदेति ॥ ३ ॥ स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्ता- वद्ध्वं उदेताऽर्वाङस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्य स्वाराज्यं पर्येता ॥॥॥

इति तृतीयाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अथ तत ऊर्ध्व उदेस नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ॥ १ ॥ न व तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन ॥ देवा-स्तेनाह सल्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ २ ॥ न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचित सकृदिवा हैवासी भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३ ॥ तद्भैतद्भक्षा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्भैतदुद्धालका-यारुणथे उपेष्टाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥ इदं वाव तज्येष्टाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥ इदं वाव तज्येष्टाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रमूयात्प्रणाच्याय वाऽन्तेवासिने ॥ ५ ॥ नान्यस्मै कस्मैचन यद्यध्यस्मा इमामितः परिगृहीतां धनस्य पूर्णं दद्यादेतदेव ततो भूय इते-तदेव ततो भूय इति ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्याये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

गायत्री वा इद् सर्व भूतं यदिदं किंच वाग्वे गायत्री वाग्वा इद् सर्व भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥ या वे सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृषि-व्यसार् हीद् सर्व भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिश्रीयते ॥ २ ॥ या वे सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एत-देव नातिश्रीयन्ते ॥ ३ ॥ यद्वे तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्तः पुरुषे हृद्यमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिश्रीयन्ते ॥ ४ ॥ सेषा वतुष्यदा पश्चिषा गायत्री तदेतद्याभ्यनूक्तम् ॥ ५ ॥ तावानस्य महिमा ततो ज्यायार्श्य पूरुषः । पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ॥ ६ ॥ यद्वे तह्रसेतीदं वाव तद्योऽयं वहिष् पुरुषादाकाशो यो वे स बहिर्षा पुरुषादाकाशः ॥ ७ ॥ अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वे अ. उ. ४

सोऽन्तः पुरुष भाकाशः॥ ८॥ अयं वाव स योऽयमन्तर्हद्य आकाशस्तदे-तःपूर्णमप्रवर्ति पूर्णमप्रवर्तिनी अयं लभते य एवं वेद ॥ ९॥ इति तृतीयाध्याये द्वादशः खण्डः॥ १२॥

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स योऽस्य प्राङ्सुषिः स प्राण-क्षमधः स आदित्यस्तदेवत्तेजोऽनाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यनादो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥ अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छोत्र स चन्द्रमास्तदे-तच्छीश्च यश्चेत्यपासीत श्रीमान्यशस्वी अवति य एवं वेद ॥ २ ॥ अथ योऽस्य प्रत्यङ्गसुषिः सोऽपानः सा वाक् सोऽग्निस्तदेतद्वह्यवर्चसमनाद्यमित्युण-सीत ब्रह्मवर्चसम्रादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥ अथ योऽस्योदङ सुषिः स समानसन्मनः स पर्जन्यसदेतत्कीर्तिश्च न्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्तिमान्न्युष्टि-मान्भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ अय योऽस्योध्वीः सुपिः स उदानः स वायुः स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥ ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य छोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपचते स्वर्ग छोकं य एतानेवं पंच ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य छोकस्य द्वारपान्वेद् ॥ ६ ॥ अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषुत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिनन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्येषा दृष्टिर्यत्रैतदस्मिन्छरीरे सर्रस्पर्रोनोज्णिमानं विजानाति तस्येषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णाविषग्रहा निनदमिव नद्शुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपश्रणोति तदेतहृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

सर्वं खिल्वदं बह्य तज्जलानिति शान्त उंपासीत। अथ खलु ऋतुमयः पुरुषो यथाऋतुरिसँ होके पुरुषो भवित तथेतः प्रेत्य भवित स ऋतुं कुर्वति ॥ १ ॥ मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्य आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥ २ ॥ एष म आत्मा- उन्तर्हृद्येऽणीयान्त्रीहेवां यवाद्वा सर्पपाद्वा इयामाकाद्वा इयामाकतण्डुलाद्वा एष म आत्मा- उन्तर्हृद्येऽणीयान्त्रीहेवां यवाद्वा सर्पपाद्वा इयामाकाद्वा इयामाकतण्डुलाद्वा एष म आत्मा- किम्यो लोकेभ्यः ॥ ३ ॥ सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदम- भ्यात्तोऽवाक्यनादर एव म आत्माऽन्तर्हृद्य एतद्वद्वातिमतः प्रेत्याभिसंभविता- स्मीति यस्य स्यादद्वा न विचिकित्साऽस्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥४॥ इति तृतीयाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

7-

युः द

वं

व

T:

11

:

7-

4. 1-

11

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुन्नो न जीर्यति दिशो द्यस्य सक्तयो द्यौर-स्योत्तरं बिल् सं एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिद् श्रितम् ॥ १ ॥ तस्व प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमाना नाम दक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची सुभूता नामोदीची तासां वायुर्वत्सः स य एतमेनं वायुं दिशां वरसं वेद न पुत्ररोद्र रोदिति सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोद् रूदम् ॥ २ ॥ अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽसुनाऽसुनाऽसुना प्राणं प्रपद्येऽसुनाऽसुना भूः प्रपद्येऽसुनाऽ-सुनाऽसुना सुनः प्रपद्येऽसुनाऽसुनाऽसुना स्वः प्रपद्येऽसुनाऽसुना ॥ ३ ॥ स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इद् सर्व भूतं यदिदं किंच तमेव तत्प्रापित्स ॥ ४ ॥ अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तिरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तद्वोचम् ॥ ५ ॥ अथ यद्वोचं भुवः प्रपद्य इत्यप्ति गपद्ये वायुं प्रपद्य क्षादित्यं प्रपद्य इत्येव तद्वोचम् ॥ ६॥ अथ यद्वोच बः प्रपद्य इस्युग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तद्वोचं तद्-ोचम् ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्याये पश्चदशः खण्डः ॥ १५॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्वि शतिवर्षाण तत्मातःसवनं चतुर्वि शत-यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव रते हीद् सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिद्रपतपेत्स बूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यिन्दिन सवनमनुसंतनुतेति माऽहं व्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥२॥ अथ यानि चतुश्चत्वारि रार्पाणि तन्माध्यन्दिन सवनं चतुश्चत्वारि एशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रेष्टुमं माध्यन्दिन सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीद् सर्व रोद्यन्ति ॥ ३॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिद्रपतमेत्स ब्र्यात्प्राणा रुद्रा इदं में माध्यन्दिन सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माऽहं प्राणाना रहाणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीये खुद्धेव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥ अथ यान्यष्टाचःवारि शद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचःवारि शदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावाऽऽदित्या प्ते हीद्र सर्वमाददते ॥ ५ ॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माऽहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विकोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ६ ॥ एतद्ध स वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेच्या-मीति सह पोडशं वर्षशतमजीवत्प्र ह पोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥७॥

इति तृतीयाच्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

स यदिशिश्वित यत्पिपासित यन रमते ता अस्य दीक्षा ॥ ३ ॥ अथ यद्भाति यत्पिबति यद्भमते तदुपसदेरेति ॥ २ ॥ अथ यद्सपित यज्ञक्षति यन्मेथुनं चरित स्तुतशक्षेरेव तदेति ॥ ३ ॥ अथ यत्तपो दानमार्जवमिहि सा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥ ४ ॥ तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुन-रुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवास्यावभृथः ॥ ५ ॥ तद्वैतद्वोर आङ्गरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायासेतन्नयं प्रति-पद्येताक्षितमस्यच्युतमिस प्राणस रितमसीति तत्रेते हे ऋचौ भवतः ॥ ६ ॥ आदित्यतस्य रेतस उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तर स्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमिनित ज्योतिरुत्तमिनित ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्याये सप्तद्शः खण्डः ॥ १७ ॥

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ॥ १ ॥ तदेतचतुष्पाइह्म वाक्पादः प्राणः पादश्रक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमिन्नः पादो वायुः पाद आदित्यः
पादो दिशः पाद इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ॥ २ ॥
वागेव ब्रह्मणश्रतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपित च भाति च
तपित च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥ प्राण एव ब्रह्मणश्रतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपित च भाति च तपित च
कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ४ ॥ चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः
स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपित च भाति च तपित च कीर्त्या यशसा
ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ५ ॥ श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दिग्भिजयोंतिषा भाति च तपित च भाति च तपित च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य
एवं वेद ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

आदित्यो बहोत्य।देशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत्। तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्तत तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तिश्वरिभद्यत ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ॥ १ ॥ तद्यद्रजत् सेयं पृथिवी यत्सुवर्णः सा द्यौर्यज्ञरायु ते पर्वता यदुच्वः स मेघो नीहारो या धमनयसा
नद्यो यद्वास्तेयमुदकः स समुदः ॥ २ ॥ अथ यत्तद्जायत सोऽसावादित्यस्तं
जायमानं घोषा उद्युद्धवोऽनूद्तिष्टन्त्सर्वाणि च भूतानि च सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उद्युद्धवोऽनूत्तिष्टन्ति सर्वाणि च

भूतानि सर्वे चेव कामाः ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽ-भ्याशो ह यदेन साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्नेडेरन्निम्नेडेरन् ॥४॥

इति तृतीयाध्याये एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ॐ जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसयान्मापयांचके सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ॥ १ ॥ अथ ह ह स्सा निशायामितियेतुस्तहेव हे हे सो ह समम्युवाद हो होऽिय महाक्ष महाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तर्चा मा प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥ तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्त सयुग्वानिम्य रैक्कमात्थेति यो नु कथ सयुग्वा रेक इति ॥ ३ ॥ यथा कृतायविजित्तायाधरेयाः संयन्त्येवमेन सर्वं तद्भिसमेति यिकंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तहेद यस्स वेद स मयेतहुक्त इति ॥ ४ ॥ तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपश्रुश्राव स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानिम्य रेक्कमात्थेति यो नु कथ सयुग्वा रेक इति ॥ ५ ॥ यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेन सर्वं तद्भिसमेति यिकंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तहेद यस्स वेद स मयेतहुक्त इति ॥ ६ ॥ स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविद्मिति प्रत्येयाय तक्ष होवाच यत्रारे बाह्मणसान्वेषणा तदेनमच्छेति ॥ ७ ॥ सोऽधस्ताच्छक्टस्य पामानं कपमाणमुपोपविवेश त हास्युवाद त्वं गु भगवः सयुग्वा रेक इत्यह इसह इसा ३ इति ह प्रतिज्ञे स ह क्षत्ताऽविद्मिति प्रत्येयाय ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तदु ह जानश्रुतिः पोत्रायणः घद शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तए हाभ्युवाद ॥ १ ॥ रैकेमानि घद शतानि गवामयं निष्कोऽयम्भवतरीरथो न म एतां भगवो देवताए शाधि यां देवतामुपास्स इति ॥२॥ तम्र ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्ध तवैव सह गोभिरस्थिति तदुह पुनरेव जानश्रुतिः पोत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ॥ ३ ॥ तए हाभ्युवाद रैकेद् सहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथं स्थ इयं जायाऽयं प्रामो यस्मिक्षास्सेऽन्वेव मा भगवः शाषीति ॥ ४ ॥ तस्या

ह सुख्रमुपोद्गृह्मसुवाचाजहारेमाः घ्रद्रानेनेव सुखेनाळापयिष्यथा इति ते हैते रेक्षपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्म होवाच ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

वायुर्वाव संवर्गी यदा वा अग्निरुद्वायित वायुसेवाच्येति यदा स्योऽस्तमेति वायुसेवाच्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुसेवाच्येति ॥ १ ॥ यदाप उच्छुष्यन्ति वायुसेवापियन्ति वायुधेवैतान्सर्वान्संवृङ्क द्व्यधिदेवतम् ॥ २ ॥ अथाध्यासं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागच्येति प्राणं चक्षः प्राणं श्रोतं प्राणं सनः प्राणो क्षेवैतान्सर्वान्संवृङ्क इति ॥ ३ ॥ तो वा एतो हो संवर्गो वायुर्वेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥ अथ ह शौनकं च काषेयमिष्प्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणो बह्मचारी विभिन्ने तस्या उ ह न ददतुः ॥ ५ ॥ स होवाच महात्मनश्चत्रो देव एकः कः स जगार अवनस्य गोपासं काषेय माभिपश्यन्ति मर्त्या अभिन्नतारिन्बहुधा वसन्तं यस्मे वा एतद्वं तस्या एतन्न दत्तियिति ॥ ६ ॥ तदु ह शौनकः काषेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायाऽऽत्मा देवानां क्रिता प्रजानां हिरण्यद्धि वस्योऽनस्र्रिसंहान्तमस्य महिमानमाहुरन् बमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं बह्मचारिन्नेद्मुपास्पहे दत्तास्ते भिक्षामिति ॥ ७ ॥ तस्या उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश संतस्तत्कृतं तस्या-स्वांसु दिक्ष्वक्षयेव दश कृत्यं सेवा विराडकादी तयेद्धं सर्वं दृष्ट्यं सर्वमस्तेदं दृष्टं भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामञ्जयांचके ब्रह्मचर्य भवति विव-स्थामि किंगोत्रो नवहमस्मीति॥ १॥ सा हैनमुवाच नाहमेतद्देद तात यद्गो-त्रस्त्वमसि बह्नहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलमे साऽहमेतज्ञ वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्य-काम एव जाबालो व्रवीथा इति॥ २॥ सह हारिद्धमतं गौतममेत्योवाच बह्मचर्य भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति॥ ३॥ त४ होवाच किंगोत्रो बु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्देद भो यद्गोत्रोऽहमसम्यपृच्छं मातर४ स मा प्रत्यववीहह्नहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलमे साऽहमेतज्ञ वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहथं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति॥ ४॥ त४ होवाच नैतदब्राह्मणे विवक्तमहंति समिष४ सोम्याऽऽहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तसुपनीय त मं ज

य

ę,

गं

뒥

अभिप्रस्थापयञ्जवाच नासहस्रेणावतेंयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्र संपेदुः॥ ५॥

इति चतुर्थाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ हैनम्रपभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिभुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्र सः प्रापय न आचार्यकुलम् ॥ १ ॥ ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु से भगवानिति तस्मे होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलेप वे सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवा-ब्राम ॥ २ ॥ स य एतमेवं विद्वा श्व्यतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्यु-पास्ते प्रकाशवानिस्माञ्जोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वा श्व्यतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्यु पास्ते ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्याये पश्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अग्निष्टे पादं वक्तित स ह श्रोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभिसायं वभूवुस्तत्राग्नियुपसमाधाय गा उपरुष्य समिधमाधाय पश्चादमेः प्राहुपोपिववित्र ॥ १ ॥ तमिन्नरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिग्रुष्ट्राव ॥ २ ॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्म
होवाच पृथिवी कलाऽन्तिरक्षं कला द्योः कला समुद्रः कलप वे सोम्य चतुक्रिलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वार्श्ववुष्कलं पादं
ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानिस्माँहोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्चयति
य एतमेवं विद्वार्श्ववुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाच्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६॥

हर्सस्ते पादं वक्तेति स ह श्वीभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं वभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुष्य समिधमाधाय पश्चादमेः प्राङ्ग-पोपविवेश ॥ १ ॥ तर् हर्स उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति व्रवीतु में भगवानिति तस्म होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलेष वे सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वार्श्व-तुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानिस्मुलोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाअयित य एतमेवं विद्वार्श्वनुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ॥ ४ ॥ इति चतुर्थाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

इति चतुथाय्याय ततमः सर्वः ॥ ॥ ॥ महुष्टे पादं वक्तेति स ह श्रोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूबुस्तत्राग्रिसुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादमेः प्राङ्कपोप-

विवेश ॥ १ ॥ तं महुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥ ब्रह्मणः सोभ्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु से भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैप वे सोभ्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥ स य एतमेवं विद्वा श्वतुष्क्रतं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानिसाँ होके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्चयति य एतमेवं विद्वा श्वतुष्क्रलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८॥

प्राप हाऽऽचार्वकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुधाव ॥ ३ ॥ ब्रह्मविदिव वे सोम्य भासि को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिज्ञे भगवा ४ स्त्वेच मे कामे बूयात् ॥ २ ॥ श्रुत ४ ह्येव मे भगवहृशेभ्य आचार्याद्वेव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति तसी हैत-देवोवाचात्र ह न किंचन वीयायेति वीयायेति ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

उपकोसको ह वे कामलायनः सत्यकामे जावाले ब्रह्मचर्यसुवास तत्य ह हाद्वावर्षाण्यमीन्परिचचार स ह स्थाऽन्यानन्तेवासिनः समावत्य्य स्य ह स्थेव न समावत्यि ॥ १ ॥ तं जायोवाच तस्ये ब्रह्मचरी कुन्नलमभीन्परिचचारीन्मा त्वाऽमयः परिप्रवोचन्प्रवृह्मस्या इति तस्ये हाप्रोच्येव प्रवासांचके ॥ २ ॥ स ह व्याधिनाऽनितृतं दृष्टे तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारिक्यान किं बु नाभासीति स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरूषे कामा नानास्या व्याधिमिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥ ३ ॥ अथ हाम्रयः ससृदिरे तस्ये ब्रह्मचारी कुन्नलं नः पर्यचारी इन्तास्य प्रव्रवामेति तस्ये होचुः ॥ ४ ॥ प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मिति स होवाच विज्ञानाभ्यहं यस्त्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विज्ञानाभीति ते होचुर्यहाव कं तदेव खं बदेव खं तदेव क्रियति प्राणं च हास्ये तदाकारां चोचुः ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

भथ हैनं गाईपत्योऽनुशशास पृथिव्यशिरक्षमादित्य इति य एष आदित्य पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥ स य एतमेवं विहानु-पासेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः श्रीयन्त उप वयं तं भुक्षामोऽस्मि १ श्र लोकेऽसुष्मि १ श्र य एतसेवं विहानु-पासे ॥ २ ॥

इति चतुर्थाघ्याये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

ते

ų

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमसीति ॥ १ ॥ स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं मुझामोऽस्मिश्च लोकेऽमुिक्मिश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्योविद्युदिति य एव विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥ स य एतमेवं विद्वानुष्यासेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नात्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं अञ्जामोऽस्मि श्र लोकेऽमुद्मि श्र य एतमेवं विद्वानुष्यासे ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

ते हो चुरुपको सलेपा सोम्य तेऽस्मिद्ध द्यारमिवद्या चाचार्यस्त ते गति वक्के-स्याजगाम हास्याचार्यस्तमाचार्योऽभ्युवादोपको सल ३ इति ॥ १ ॥ भगव इति ह प्रति छुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को लु माऽनुशिष्याको इतीहापेव निहुत इमे न्नमीदशा अन्यादशा इतीहाशीन-श्युदे किं नु सोम्य किल तेऽवोचिक्नति ॥ २ ॥ इदमिति ह प्रतिजञ्जे लोका-न्वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहं नु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्चिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कमे न श्चिष्यत इति ब्रवीनु मे भगवानिति तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४॥

य एपोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष भारमेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्वह्येति तद्यद्यय्यास्मन्सिर्पवीदकं वा सिञ्चित वर्त्मनी एव गच्छति ॥१॥ एत् संयद्धाम इत्याचक्षत एत् हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥ २ ॥ एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥ ३ ॥ एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु कोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥ अथ यदु चैवास्मिन्छन्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्यर्चिषोऽहरह्व आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षायान्यद्वद्वहेति मासा सामासेम्यः संवत्सर संवत्सरादादित्यमादित्याचनद्वमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयस्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना हुमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥५॥

इति चतुर्थाध्याये पश्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

एष ह वे यज्ञो योऽयं पवत एष ह यित्रद्र सर्व पुनाति यदेष यित्रद्र सर्व पुनाति तसादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक्च वर्तनी ॥ १ ॥ तयोरन्यतरां मनसा सर्करोति ब्रह्मा वाचा होताऽध्वयुंख्द्भातान्यतरार स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदित ॥ २ ॥ अन्यतरामेव वर्तनीर सर्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाइजन्नथो वैकेन चकेण वर्तमानो रिष्यतेवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञ् रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान्भवति ॥ ३ ॥ अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाकेन पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववद्युभे एव वर्तनी सर्क्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४ ॥ स यथोभयपाइजन्नथो वोभाभ्यां चकाभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान्भवति ॥ ५ ॥ स यथोभयपाइजन्नथो वोभाभ्यां चकाभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः

इति चतुर्थाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

प्रजापतिलोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमावानार् रसान्प्रावृहद्धिं पृथिव्या वायु-मन्तरिक्षादादित्यं दिवः ॥ १ ॥ सा एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्य-मानाना र सान्त्रावृहद्भेर्कचो वायोर्यजूर्षि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥ स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रावृह सूरित्युग्भ्यो अविति यजुभ्यंः स्वरिति सामभ्यः ॥ ३ ॥ तद्यद्यक्तो रिष्येद्धः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादचामेव तद्गसेनचा वीर्येणचा यज्ञस्य विरिष्ट् संद्धाति ॥ ४ ॥ अथ यदि यजुष्टो रिष्येद्भवः स्वाहेति दक्षिणाम्मो जहुयाद्यज्वामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्ट्रं संद्धाति ॥ ५ ॥ अथ यदि सामतो रिष्ये-त्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टः संद्धाति ॥ ६ ॥ तद्यथा लवणेन सुवर्णः संद्ध्यात्सुवर्णेन रज-त्र रजतेन त्रप्र त्रप्रणा सीस्र सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ॥७॥ पुनमेषां लोकानामासां देवतानामसाख्यया विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टर संद्रधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद्रह्मा भवति ॥ ८ ॥ एष ह वा उद्कप्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्रह्मा भवत्येवंविद् ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति ॥ ९ ॥ मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्र्रूनश्वाभिर-क्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमान् सर्वाश्चित्विजोऽभिरक्षति तस्मादेवंविद्रमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम् ॥ १०॥

इति चतुर्थाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पश्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ॐ ॥ यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ १ ॥ यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः ॥ २ ॥ यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मि 🛙 श्रोकेऽ-मुब्मि अ चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥ यो ह वै संपदं वेद सर्हासी कामाः पद्यन्ते देवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत्॥ ४॥ यो ह वा आयतनं वेदायतन ह स्वानां भवति मनो ह वा आयतनम्॥ ५ ॥ अथ ह प्राणा अहर श्रेयसि न्यूदिरेऽहर श्रेयानस्म्यहर श्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥ ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्टतरमिव दश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ७ ॥ सा ह वागुचकाम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मजीवित्रामिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पर्यन्तश्रक्षणा श्रुण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसेवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८॥ चक्षहों खकाम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मजीवितु-मिति यथाऽन्धा अपरयन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा श्रण्यन्तः श्रीत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षः ॥ ९॥ श्रीत्र होचकाम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्यत्योवाच कथमशकतर्ते मजीवितुमिति यथा विधरा अश्रुण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वद्नतो वाचा पश्यन्तश्रक्षुपा ध्यायन्तौ मनसैव-मिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ १० ॥ मनो हो बकाम तत्संवत्सरं भ्रोष्य पर्य-त्योवाच कथमशकतर्ते मजीवित्रमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा परयन्तश्रञ्जुषा शृण्यन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥ ११ ॥ अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः पङ्गीशशङ्कन्संखिदेदेवमि-तरान्त्राणान्समखिदत्त्र हाभिसमेलोचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्टोऽसि मोत्क्रमी-रिति ॥ १२ ॥ अथ हैनं वागुवाच यदहं वासिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठाऽसीति ॥ १३ ॥ अथ हैनं श्रोत्र-मुवाच यदह संपद्सा वं तत्संपद्सीलथ हैनं मन उवाच यदहमायतन-मस्मि त्वं तदायतनमसीति ॥ १४ ॥ न वै वाचो न चक्षू र पि न श्रोत्राणि न मना सीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति ॥१५॥

इति पञ्चमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यक्तिंचिदिदमाश्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनसान्नमनो विनाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंतिदि किंच-

नानक्षं भवतीति ॥ १ ॥ स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचु-स्तसाद्वा एतद्शिष्यन्तः पुरस्ताचोपरिष्टाचाद्भिः परिद्धति लम्भुको ह वासो भवलन्सो ह भवति ॥ २ ॥ तद्धेतत्सलकामो जाबालो गोश्रतये वैयाघ-पद्यायोक्तवोवाच यद्यप्येनच्छुकाय स्थाणवे ब्रूयाजायेरन्नेवास्मिञ्छालाः प्ररो-हेयुः पलाशानीति ॥ ३ ॥ अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याः रात्रो सर्वौषधस्य मन्थं द्धिमधुनोरूपमध्य उयेष्टाय श्रेष्ठाय स्वाहे-त्यमावाज्यस्य हुत्वा मन्धे संपातमवनयेत् ॥ ४ ॥ वसिष्ठाय स्वाहेत्यमावा-ज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्प्रतिष्ठाये स्वाहेत्यमावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्संपदे स्वाहेत्यझावाज्यस्य हुत्वा सन्थे संपातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यमावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥ ५ ॥ अथ प्रतिसृप्याञ्जको सन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्विमिद् स हि ज्येष्टः श्रेष्टो राजाऽधिपतिः स मा ज्येष्टा अष्टा राज्यमाधिपतं गमयत्वहमेवेद् सर्व-ससानीति ॥ ६ ॥ अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इसा-चामति वयं देवस्य भोजनिससाचामति श्रेष्ट् सर्वधातमसिसाचामति तुरं भगस्य धीमहीति सर्वं पिबति निर्णिज्य कर्सं चमसं वा पश्चाद्रमेः संविज्ञति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि खियं प्रयेत्स-मृद्धं कर्मेति विद्यात्॥ ७॥ तदेष श्लोकः॥ यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियः स्वप्रेषु पर्यति ॥ समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिनस्वप्तनिद्रशने तस्मिनस्वप्तनिद्रशन इति॥ ८॥

इति पञ्चमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

श्रेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालाना सिमितिमेयाय त ह प्रवाहणो जैवलिश्वाच कुमारानु त्वाऽशिषितित्वनु हि सगव इति ॥ १ ॥ नेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति न भगव इति नेत्थ यथा पुनरावर्तन्त ३ इति न भगव इति नेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना ३ इति न भगव इति ॥ २ ॥ नेत्थ यथासी लोको न संपूर्यत ३ इति न भगव इति नेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुता-वापः पुरुषवचसो भवन्तीति नेव भगव इति ॥ ३ ॥ अथानु किमनुशिष्टोऽवो-चथा यो हीमानि न विद्यात्वथ सोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हाऽऽयस्तः पितुर-धंमेयाय त इति वाचाऽननुशिष्य वाव किल मा भगवानव्रवीदनु त्वाऽशिषमिति ॥ ४ ॥ पञ्च मा राजन्यवन्धः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नेकं च नाशकं विवक्तमिति स होवाच यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाहमेषां नेकं च न वेद यद्यहमिमानवे-दिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ॥ ५ ॥ स ह गौतमो राज्ञोऽधंमेयाय तस्ते ह प्राप्ता- याहाँचकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय त्र होवाच मानुषस्य भगवन्गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच त्रवेव राजन्मानुषं वित्तं यामेव
कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे बूहीति स ह कुच्छी वसूव ॥ ६ ॥ तथ्
ह चिरं वसेत्याज्ञाषयांचकार तथ होवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न
प्राक्त त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणानगच्छित तस्मादु सर्वेषु छोकेषु क्षत्रस्यैव
प्रशासनमभूदिति तस्म होवाच ॥ ७ ॥

इति पञ्चमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

असौ वाव छोको गौतमाग्निस्तस्यादिस एव समिद्रमयो धूमोऽहरचिश्र-न्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नो देवाः श्रद्धां जुह्नति तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशिनर-ङ्गारा हादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नशौ देवाः सोमर् राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षर् संभवति ॥ २ ॥

इति पश्चमाध्याये पश्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

पृथिवी वाव गोतमाशिस्तस्याः संवत्सर एव सिमदाकाशो धूमो रात्रिर-चिदिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नशो देवा वर्षं जह्नति तस्या भाहुतेरन्नर्रं संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

पुरुषो वाव गातमाप्तिस्तस्य वागेव समित्राणो धूमो जिह्नाऽर्चिश्चश्चरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतसिन्नग्नौ देवा अनं जहित तस्या आहुते रेतः संभवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

योषा वाव गोतमाभिस्तस्या उपस्थ एव समियदुपमत्रयते स धूमो योनि-रचिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः॥ १॥ तस्मिन्नेतस्मि-न्नामो देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ॥ २॥

इति पञ्चमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८॥

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाथ जायते ॥ १ ॥ स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

तद्य इत्थं विदुः । ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽचिषमभिसंभवन्त्य-चिंपोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्वदुदङ्गेति मासा स्तान् ॥ १॥ मासेभ्यः संवत्सर्थं संवत्सरादादित्यमादित्याचन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्तु-रुपोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ २ ॥ अथ य इमे प्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्वात्रिं रात्रेरपर-पक्षमपरपक्षाद्यान्पद्दक्षिणैति मासार सान्नेते संवत्सरमभिष्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥ मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाचन्द्रमसमेव सोमो राजा तद्दे-वानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥ ४ ॥ तस्मिन्यावत्संपातमुपित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशामाकाशाहायुं वायुर्भूत्वा घूमो भवति घूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥ ५ ॥ अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह बीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमापा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निध्पपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भ्य एव भवति ॥६॥ तद्य इह रमणीय-चरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्त्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैदययोनि वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूर्यां योनिमाप-द्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ॥ ७ ॥ अधैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व भ्रियस्वेत्येत नृतीय ए स्थानं तेनासी लोको न संपूर्यते तसाजागुप्सेत तदेष श्लोकः ॥ ८ ॥ स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिब ५ श्र गुरोस्तव्यमावसन्ब्रह्महा च । एते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचर एसौरिति ॥ ९ ॥ अथ ह य एतानेवं पञ्चामी-न्वेद न स ह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ १० ॥

इति पञ्चमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

प्राचीनशाल औरमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भालवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाएसां चतुः को नु आत्मा किं ब्रह्मोति ॥ १ ॥ ते ह संपादयां चकुरुहालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तए हन्ताभ्याग्द्यामेति तए हाभ्याजग्मुः ॥ २ ॥ स ह संपाद्यां चकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥ ३ ॥ तान्होवाचाश्वपतिर्वे भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तए हन्ताभ्यागच्छामेति तए हाभ्याजग्मुः ॥ ४ ॥ तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगहाणि कारयांचकार स ह प्रातः संजिहान उवाच न मे स्तेनो

जनपदे न कदर्यों न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वेरी स्वेरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि ताव- द्वावन्द्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ॥ ५ ॥ ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरु- पश्चरेत्तर्थ हैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानर्थ संप्रत्यध्येषि तमेव नो बूहीति ॥६॥ तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्वे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ॥ ७ ॥

इति पश्चमाध्याये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजिति होवाचेष वै सुतेजा श्रात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥१॥ श्रत्स्यन्नं पश्यिमत्यन्नं पश्यित प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष श्रात्मन इति होवाच सूर्धा ते व्यपतिष्यद्यनमां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पश्चमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषि प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानसुपास्स इत्या-दित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैप वे विश्वरूप आत्मा वेश्वानरो यं त्वमा-त्मानसुपास्से तस्मात्तव वहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥ १ ॥ प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिक्तोऽत्स्यन्नं पश्यिम प्रियमत्त्यनं पश्यित प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वेश्वानरसुपासे चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽ-भविष्यो यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पद्यमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

अथ होवाचेन्द्र युम्नं भालवेयं वैयाघ्रपद्य कं स्वमारमानमुपास्स इति वायु-मेव भगवो राजितित होवाचेष वे पृथ्यवर्त्माऽऽत्मा वैश्वानरो यं स्वमारमानमु-पास्से तस्मान्वां पृथ्यवलय आयन्ति पृथ्यथ्रेणयोऽनुयन्ति ॥ १ ॥ अत्स्यन्नं पद्यसि प्रियमत्त्यन्नं पद्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उद्क्रमिध्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

अथ होवाच जन५ शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजितिति होवाचैप वे बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ॥ १ ॥ अत्स्वस्नं पश्यसि प्रियमत्त्वनं पर्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतसेवमात्मानं वैश्वानरसुपासे संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्यचन्मां नागमिष्य हति॥२॥

इति पञ्चमाध्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५॥

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्चि वैयाघपच कं त्वमात्मानग्रुपास्स हत्यप एव भगवो राजिति होवाचेष वै रियरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानग्रुपास्से तस्माच्च रियमान्पुष्टिमानिस ॥ १ ॥ अत्स्वन्नं पश्चिम प्रियमत्यनं पश्चिति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वेश्वानरग्रुपास्ते बिस्तस्वेष आत्मन इति होवाच विस्ति व्यभेत्स्यचन्मां नागिमिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

अथ होवाचोद्दालकमारुणि गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजिति होवाचेव वे प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्व ॥ १ ॥ अत्स्यन्नं पश्यिस प्रियम् मत्त्वन्नं पश्यिति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरम् सुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्थेतां यन्मां नाग-मिष्य इति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

तान्होवाचैते वे खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वार्सोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमिश्विमानमात्मानं वेश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ १ ॥ तस्य ह वा एतस्यात्मनो वेश्वानरस्य मूर्थेव सुतेनाश्रश्चविश्वरूपः प्राणः पृथग्वत्मीत्मा संदेहो बहुलो वस्तिरेव रियः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिलीमानि वर्हिहेद्यं गाईपस्यो मनोऽन्वाहार्य-पचन आस्यमाहवनीयः ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

तद्यक्तं प्रथममागच्छेत्तद्वोमीय स्यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुया-त्याणाय स्वाहेति प्राणस्तृष्यति ॥ १ ॥ प्राणे तृष्यति चक्षुस्तृष्यति चक्षुपि तृष्यत्यादित्यस्तृष्यत्यादित्ये तृष्यति द्योस्तृष्यति दिवि तृष्यन्त्यां यक्तिंच द्योश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृष्यति तस्यानु तृप्तिं तृष्यति प्रजया पशुभिरज्ञाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पश्चमाध्याये एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥ अथ यां द्वितीयां जुहुयाचां जुहुयाद्यानाय खाहेति व्यानस्तृष्यति ॥ १ ॥ व्याने तृष्यति श्रोतं तृष्यति श्रोत्रे तृष्यति चन्द्रमास्तृष्यति चन्द्रमसि तृष्यति दिशस्तृष्यन्ति दिक्षु तृष्यन्तीषु यिकंच दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृष्यति तस्याचु तृक्षिं तृष्यति प्रजया पशुभिरत्नाचेन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पश्चमाध्याये विंशः खण्डः ॥ २०॥

अथ यां तृतीयां जुहुयातां जुहुयादपानाय खाहेत्यपानस्तृष्यति ॥ १ ॥ अपाने तृष्यति वाक्तृष्यति वाचि तृष्यन्यामित्रस्तृष्यत्यते तृष्यति पृथिवी तृष्यति पृथिव्यां तृष्यन्त्यां यिक्वेच पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तृष्यति तस्या जु तृहिं तृष्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पश्चमाध्याय एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

कथ यां चतुर्थी जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृष्यति ॥ १ ॥ समाने तृष्यति मनस्तृष्यति मनसि तृष्यति पर्जन्यस्तृष्यति पर्जन्ये तृष्यति विद्यति पर्जन्ये तृष्यति विद्यति तृष्यन्यां यिक्षेच विद्युच पर्जन्यश्वाधितिष्टतस्तृष्यति तस्यानु तृश्चिं तृष्यति प्रजया पञ्चिभरक्षाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पश्चमाध्याये द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ १ ॥ उदाने तृष्यति त्वक् तृष्यति त्वचि तृष्यन्यां वायुस्तृष्यति वायो तृष्यता-काशस्तृष्यत्याकाशे तृष्यति यत्किंच वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्ततृष्यति तस्यातु तृश्चिं तृष्यति प्रजया पशुभिरक्षायेन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ २ ॥

इति पञ्चमाध्याये त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

स य इदमविद्वानिप्तहोत्रं जहोति यथाङ्गारानपोद्य भस्मिन जुहुयात्ताहक्तस्खात् ॥ १ ॥ अथ य एतदेवं विद्वानिप्तहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु
सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥ २ ॥ तद्यथेषीकात्लमभौ प्रोतं प्रदूयेतैव हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानिप्तहोत्रं जुहोति ॥३॥
तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मिन हैवास्य तद्देश्वानरे
हुत स्यादिति तदेष श्लोकः ॥ ४ ॥ यथेह श्लिष्ठता बाला मातरं पर्युपासते ।
एव सर्वाणि भूतान्यप्तिहोत्रमुपासत इत्यिप्तहोत्रमुपासत इति ॥ ५ ॥

इति पश्चमाध्याये चतुर्विशः खण्डः ॥ २४ ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ श्वनकेतुहां ऽऽहणेय आस तर ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वे सोम्यासम्कुलीनोऽनन्च्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति॥ १॥ स ह द्वादशवर्षं उपेस्य चतुर्विश्वातवर्षः सर्वान्वेदानधीत्य महामना अन्चानमानी स्तब्ध एयाय तर ह पितोवाच श्वेतकेतो यद्य सोम्येदं महामना अन्चानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः॥ २॥ येनाश्चतः श्रुतं अवत्यमतं मतमिन् ज्ञातं विज्ञातमिति कथं चु भगवः स आदेशो भवतीति॥ ३॥ यथा सोम्ये-केन मृत्पिण्डेन सर्व मृन्मयं विज्ञात स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्ति-केत्येव सत्यम्॥ ४॥ यथा सोम्येकेन लोहमणिना सर्व लोहमयं विज्ञात स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्॥ ५॥ यथा सोम्येकेन नस्त्रनिकृन्तनेन सर्व कार्णायसं विज्ञात स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेव सोम्य स आदेशो भवतीति॥ ६॥ न वे नृनं भगवन्तस्त एतद्वेदिपुर्यच्येतद्वेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यिज्ञिति भगवा सन्तिव मे तह्यीत्विति तथा सोम्येति होवाच॥ ७॥

इति षष्टाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

सदेव सोम्येदमग्र कासीदेकमेवादितीयम् ॥ तद्धेक क्षाहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवादितीयं तसादसतः सजायत ॥ १ ॥ कृतस्तु खलु लोम्येवर स्यादिति होवाच कथमसतः सजायेतेति ॥ सन्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा-द्वितीयम् ॥२॥ तदेशत बहु स्यां प्रजायेथेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तद्योऽस्जत ॥ तसाद्यत्र क च शोचित स्वेदते वा पुरुषस्तेजस प्व तद्ध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥ ता आप ऐक्षन्त बहुयः स्याम प्रजायेमहीति ता सन्नमस्जन्त तसाद्यत्र क च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यन्य प्व तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

इति षष्टाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तेषां खरुवेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजसुक्तिजमिति
॥ १ ॥ सेयं देवतेक्षत इन्ताइमिमास्तिको देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य
नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ २ ॥ तासां त्रिवृतं त्रिवृतमे केवां करवाणीति सेयं
देवतेमास्तिको देवता अनेनव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥३॥
तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सोम्येमास्तिको देवतास्तिवृत्तिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ४ ॥

इति षष्ठाभ्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

यद्मे रोहित र रूपं तेजससद्र्पं यच्छुकं तद्मां यरकृष्णं तद्मधापागा-दम्रिमानं वाचारम्भणं विकारो नामध्यं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ १ ॥ यदादित्यस्य रोहित र रूपं तेजसस्तद्र्पं यच्छुकं तद्मां यरकृष्णं तद्मस्यापागादादित्यादादित्यस्वं वाचारम्भणं विकारो नामध्यं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ २ ॥ यचन्द्रमसो रोहित र रूपं तेजसस्तद्र्यं यच्छुकं तद्मां यरकृष्णं तद्मस्यापागाचन्द्राचन्द्रस्वं वाचारम्भणं विकारो नामध्यं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥३॥ यद्विद्युतो रोहित र रूपं तेजसस्तद्र्यं यच्छुकं तद्मां यरकृष्णं तद्मस्यापागादिद्युतो विद्युत्वं वाचारम्भणं विकारो नामध्यं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ४ ॥ एतद्व स्म व तद्विद्वाप्रस्म भाद्वः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽच कश्चनाश्चतममतमविज्ञातसुदाहरिष्यनीति होम्यो विद्यंचकुः ॥५॥ यद्वु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्र्पमिति तद्विद्यंचकुर्वेदु शुक्तमिवाभूदित्य-पार रूपमिति तद्विदांचकुर्वेदु शुक्तमिवाभूदित्यन्पार रूपमिति तद्विदांचकुः ॥ ६ ॥ यद्वविज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानार समास इति तद्विदांचकुर्यथा जु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृश्चित्वदेकेका भवति तन्त्रे विज्ञानीहीति ॥ ७ ॥

इति पष्टाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अन्नमितं त्रेघा विचीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तःपुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मा इसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ १ ॥ आगः पीतास्रेधा विचीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लो हेतं योऽणिष्ठः स प्राणः ॥ २ ॥ तेजोऽक्षितं त्रेघा विचीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥ ३ ॥ अन्नमय हि सोस्य मन आपोमयः प्राणसेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्त्रिज्ञापयित्विति तथा सोस्येति होवाच ॥ ४ ॥

इति षष्टाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

द्रः सोन्य मध्यमानस्य योऽणिमा स कर्ष्वः समुदीपति तस्सर्पिभैवति ॥ १॥ एवमेव खलु सोन्यानस्याश्यमानस्य योऽणिमा स कर्ष्वः समुदीपति तन्मनो भवति ॥ २॥ अपार्थं सोन्य पीयमानानां योऽणिमा स कर्ष्वः समुदीपति तन्मनो भवति ॥ २॥ अपार्थं सोन्य पीयमानानां योऽणिमा स कर्ष्वः समुदीपति स प्राणो भवति ॥ ३॥ तेजसः सोन्याश्यमानस्य योऽणिमा स कर्ष्वः समुदीपति सा वाग्भवति ॥ ४॥ अन्नमयः हि सोन्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोन्येति होवाच ॥ ५॥

इति षष्टाध्याये षष्टः खण्डः ॥ ६ ॥

वीडशकलः सोम्य पुरुषः पद्मदशाहानि माऽशीः काममपः पिवापोमयः प्राणो न पिवतो विच्छेत्यत हित ॥ १ ॥ स ह पज्जदशाहानि नाऽऽशाथ हैनसुपससाद कि व्रवीमि भो इत्यूचः सोम्य यज्र्द्रिष सामानीति स होवाच न
है मा प्रतिभान्ति भो इति ॥ २ ॥ तद्र होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्येकोऽङ्गारः खर्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवद्र् सौम्य ते वोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टा स्यात्तेवर्हि वेदाबानुभवस्यशानाथ मे विज्ञाससीति ॥ ३ ॥ स हाशाथ हैनसुपससाद तद्र ह यत्किच षप्रच्छ सर्वर् ह प्रात्तेषेदे ॥ ४ ॥ तद्र होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहि-तस्येकमङ्गारं खर्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणेहपसमाधाय प्राज्वलयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥ ५ ॥ एवद्र सोम्य ते वोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टास्रू-त्साऽकेनोपसमाहिता प्राज्वाली तयेतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयद्र हि सोम्य मन सापोमयः प्राणसेजोमयी वागिति तद्धास्य विज्ञाविति विज्ञाविति ॥ ६ ॥

इति षष्ठाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

उद्दालको हाऽऽरुणिः श्वेतकेतुं पुत्रसुवाच स्वप्नान्तं से सोस्य विजानीहीति यत्रैतत्परुषः खिपिति नाम सता सोम्य तदा संपन्नो भवति स्वमपीतो भवति तसादेन स्विपितीत्याचक्षते स्वर्धे लापीतो भवति ॥ ३ ॥ स यथा शक्रतिः सत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमछब्ध्वा बन्धनसेवोपश्रयत एव-भेव खल सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोप-अयते प्राणवन्धन हि सोस्य मन इति ॥२॥ अशनापिपासे मे सोस्य विजा-नीहीति यत्रेतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाप एव तदशितं नयन्ते तद्यथा गोना-बोऽश्वनायः पुरुपनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतित्र । सोम्य विजानीहि नेदममूळं भविष्यतीति ॥ ३ ॥ तस्य क मूल एसादन्यत्रा-बादेवमेव खलु सोम्यानेन गुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्धिः सोम्य शुङ्गेन तेजी मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्सृलमन्त्रिच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः बजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥४॥ अथ यत्रतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति बनैतदेव गुङ्गमुल्पतित्र सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥५॥ तस क मूल् सादन्यत्राच्योऽद्भिः सोम्य शुक्तेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य मुक्केन सन्मूकमन्त्रिच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्र-तिष्ठा यथा नु खलु सोम्येमास्तिको देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाजानसि संपद्यते

भनः प्राणे प्राणस्तेजित तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ ६ ॥ स य एषोऽणिभै-तदास्यिमद्र सर्वं तत्सत्य स आत्मा तत्त्वमित श्वेतकेतो इति भूय एव मा अगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ७ ॥

इति षष्ठाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ १॥

यथा सोम्य मधु मधुकृतो निक्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाः रसान्सम-वहारमेकताः रसं गमयन्ति ॥ १ ॥ ते यथा तत्र न विवेकं लभनतेऽमुखाहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुख्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीलेक्मैव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः स्रति संपद्य न विद्धः सति संपद्यामह इति ॥ २ ॥ त इह व्याघ्रो वा सिक्ष्हो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा द्राको वा मशको वा यद्यञ्च-वन्ति तदाभवन्ति ॥ ३ ॥ स य एषोऽणिमैतदाल्यमिद्र सर्वं तत्यत्यः म आत्मा तरवमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ४ ॥

इति धष्ठाध्याये नवनः खण्डः ॥ ९ ॥

इसाः सोस्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्वन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यासाः समुद्रात्समुद्र्-सेवापियन्ति समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुष्यमहमस्वीयमहमस्वीति ॥ १॥ एवमेव खलु सोस्येमाः सर्वाः प्रज्ञाः सतः भागभ्य न विदुः सतः अगाच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिश्हो वा कृको वा वराहो वा कीटो वा यण्डावन्ति वा दश्शो वा मशको वा यण्डावन्ति तद्यभवन्ति ॥ २॥ स ष एपोऽणिमेतदात्स्यमिद् सर्वं तत्सत्य स्व आत्मा तच्चमसि श्वेतकेतो इति मूय एव मा भगवान् विज्ञापयविति तथा सोस्येति होवाच ॥ ३॥

इति षष्ठाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याह्न्याजीवन् स्रतेयो मध्येऽभ्या-हन्याजीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याह्न्याजीवन्स्रवेरस एष जीवेनारमनानुप्रभूतः पेषी-यमानो मोदमानिस्तष्ठति ॥ १ ॥ अस्य यदेकाध् काखां जीवो जहात्यथ ला ग्रुष्यित द्वितीयां जहात्यथ सा ग्रुष्यित तृतीयां जहात्यथ सा ग्रुष्यित सर्व जहाति सर्वः ग्रुष्यत्येवमेव खलु सोम्य विद्वोति होचाच ॥ २ ॥ जीवापैतं वाव किलेदं न्रियते न जीवो न्नियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिद्ध मर्वं तत्सत्य स् आत्मा तत्त्वमिस श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्टाध्याय एकाद्दाः स्वण्टः ॥ १९ ॥

न्यप्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इनि भिन्धीति भिन्नं भगव इति किमन्न

षद्यसीत्यच्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गेकां भिन्नीति भिना भगव इति किमत्र प्रथसीति न किंचन भगव इति ॥१॥ त होवाच यं वै सोम्ये-तमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सोम्येषोऽणिम्न एवं महान्यमोधित्वहित श्रद्धस्य सोम्येति ॥ २ ॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिद् सर्वं तत्सत्य स जात्मा तत्त्वमित श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयित्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्टाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

लवणमेतदुद्केऽवधायाथ मा प्रातहपसीद्था इति स ह तथा चकार तर्र होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृत्र्य न विवेद ॥१॥ यथा विलीननेवाङ्गासान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्थेतद्थ मोप-सीद्या इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते त्र होवाचात्र वाव किल सस्सोस्य न निभालयसेऽत्रेव किलेति ॥ २॥ स य एषोऽणिमतदात्स्यमिद्र सर्वे तत्सत्य स आत्मा तस्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञाप्यत्विति तथा सोस्येति होवाच॥३॥

इति षष्ठाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ ४३ ॥

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेम्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽनिजने विस्जेस्स
यथा तत्र प्राङ्घोदङ्घाऽधराङ्घा प्रस्यङ्घा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाः
क्षो विस्रष्टः । ३ ॥ तस्य यथाभिनद्दनं प्रमुच्य प्रत्र्यादेतां दिशं गन्धारा एतां
दिशं जजेति स ग्रामाद्धामं प्रच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसंद्येतैवमेदेहाचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य ताबदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य
इति ॥ २ ॥ स य एपोऽणिमतदात्म्यमिद् सर्वं तत्सस्य स आत्मा तत्त्वमिस श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्त्रिज्ञापयत्विति तथा सोम्येति
होषाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

पुरुष सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावज्ञ वाञ्चानसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परसां देवतायां तावज्ञानाति ॥ १ ॥ अथ यदास्य वाञ्चानसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥ २ ॥ स य एपोऽणि-मेतदारम्यमिद्द सर्वं तत्सत्य से भारमा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

इति षष्ठाच्याये पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

पुरुष सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्पांस्तेयमकार्पांत्परशुमसी तप् तेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिस-न्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तसं प्रतिगृह्णाति स दखतेऽथ हन्यते ॥ १ ॥ अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तसं प्रतिगृह्णाति स न दद्धतेऽथ मुच्यते ॥ २ ॥ स यथा तत्र नादाद्येतैतदात्म्यमिद् सर्वं तत्सस्य स आत्मा तत्त्वमसि श्वेत-केतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥

ॐ॥ अधीहि भगव इति हापससाद सनस्कुमारं नारदस्तर होवाच यद्देत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्व वस्यामीति स होवाच ॥१॥ ऋग्वेदं भग-वोऽध्येमि यजुर्वेद् सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पिन्य राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूत-विद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सप्पदेवजनविद्यामेतद्वगवोऽध्येमि ॥२॥ सोऽहं भगवो मञ्जविदेवास्मि नात्मविच्छुत होव मे भगवहृशेभ्यस्तरित शोकमात्म-विदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयविति तथे होवाच यह किंचतद्ध्यगिष्ठा नामैवैतत् ॥ ३॥ नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थं इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिदेंचो निधिवाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्स्वेति ॥ ४॥ स यो नाम ब्रह्मेत्सुपास्ते यावन्नान्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्सुपास्ते स्वावन्नाने भूय इति नान्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्त्र-वीत्विति ॥ ५॥

इति सप्तमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयित यजुर्वेद् सामवेद-माथवंणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्य राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याः सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवा श्रम मनुष्या रश्च पश्च श्व वया श्रसि च तृणवनस्पती ब्ल्लापदा न्याकी टपत क्षिपी सक भ्रम चाधम च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदय शं चाहृदय शं च यह वाक्नाभविष्य स्व धर्मों नाधमों व्यञ्जापिष्य सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदय शो नाहृदय शो वागे वेतत्सवं विज्ञापयति वाच सुपा स्तेति ॥ १॥ स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावहाचो गतं तत्रास्य यथाका सचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्त्रवीविति॥ २॥

इति सप्तमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

मनो वाव वाचो सूयो यथा वे है वामलके है वा कोले हो वाक्षी मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स्न यदा मनसा मनस्रति मन्नानधीयीयत्यथाधीते कर्माणि कुर्वायत्यथ कुरुते पुत्रा श्रि पञ्जू श्रिक्छेये-त्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपारस्वेति ॥ १॥ स यो मनो ब्रह्मत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति सनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्बवीत्विति ॥ २॥

इति सप्तमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

संकल्पो वाव मनसो भूतान्यदा वै संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमी-रयित तामु नाम्नीरयित नाम्नि मञ्जा एकं भवन्ति मञ्जेषु कर्माणि ॥ १ ॥ तानि ह वा एतानि संकल्पेकायनानि संकल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्ष्रपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्राकाशं च समकल्पन्तापश्च तेजश्च तेषाथ संक्रुश्ये वर्षथ संकल्पते वर्षस्य संक्रुश्या अञ्चर्य संकल्पतेऽन्नस्य संक्रुश्ये प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानाथ संक्रुश्ये मञ्जाः संकल्पने मञ्जाणाथ संक्रुश्ये कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणाथ संक्रुश्ये लोकः संकल्पते लोकस्य संक्रुश्ये कर्माणि संकल्पने सर्पणाथ संकल्पमुपारस्वेति ॥२॥ स यः संकल्पं प्रह्रात्ये सर्वथ संकल्पते स एप संकल्पः संकल्पमुपारस्वेति ॥२॥ स यः संकल्पं प्रह्रात्ये सर्वथ संकल्पते स एप संकल्पः संकल्पमुपारस्वेति ॥२॥ स यः संकल्पं प्रह्रात्ये सर्वथ स्रह्रान्वे स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितोऽव्यथ-मानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः संकल्पं ब्रह्मत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्म्य इति संकल्पाद्वाव भयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ववीत्विति ॥ ३ ॥

इति सप्तमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

चित्तं वाव संकल्पान्नूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यस्थ वाचमीरयति तामु नाझीरयति नाम्नि मन्ना एकं भवन्ति मन्नेषु कर्माणि ॥ १ ॥ तालि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्ययपि बहुविद्चित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यद्यं वेद यहा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्थादित्यथ यद्यल्पविश्वित्तवान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूपन्ते चित्तः श्रृं वेषाप्तेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्त्वेति ॥२॥ स यश्चित्तं ब्रह्मत्युपास्ते चित्तान्वे स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽच्य-थमानानव्यथमानोऽभिसिद्यति याविद्यत्तस्य रातं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्व्य ह्ति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्से भगवान्ववीविवति ॥ ३॥

इति सप्तमाध्याये पद्यमः खण्डः ॥ ५ ॥

ध्यानं वाव चित्ताद्भ्यो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तिरक्षं ध्यायतीव द्योध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यासस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादा इत्येव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कल्र-हिनः पिश्चना उपवादिनस्तेऽध ये प्रभवो ध्यानापादा इत्येव ते भवन्ति ध्यानसुपास्स्वेति ॥ १ ॥ स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावच्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भ्य इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्त्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये षष्टः खण्डः ॥ ६ ॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भ्यो विज्ञानेन वा ऋष्वेदं विज्ञानाति यजुर्वेद् साम्मेवदमाथर्वणं चतुर्थि कितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्रय राशिं देवं निधि वाको वावयमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्र-विद्यां सपैदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवा श्रि मनुष्या श्रि प्रशूश्च वया श्रि च वृणवनस्पती क्ष्व्यापदान्याकी टपत-क्षिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयः चाह-द्यः चात्रं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनेव विज्ञानाति विज्ञानमुपा-स्वेति ॥ १ ॥ स यो विज्ञानं ब्रह्मत्युपास्ते विज्ञानवतो व स लोकाक्ष्यान्यवतोऽभिसिध्यति याविद्यः चात्रं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भ्य इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ववीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

बलं वाव विज्ञानाद्भ्योऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्टन्परिचरिता भवति परिचरनुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तिरक्षं बलेन द्योर्ब-लेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वया एसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन कोकस्तिष्ठति बलमुपास्खेति ॥ १ ॥ स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भ्य इति बलाद्वाव भूगोऽस्तिति तनमे भग-वान्बवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८॥

श्रनं वाव बलाद्भ्यस्तसाद्यपि दशरात्रीनिशीयायद्य ह जीवेदथवाऽद्व-ष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यथास्व्याऽऽये द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यसमुगस्खेति ॥१॥ स योऽनं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्रवतो व स लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावद-स्रस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽनं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽनाद्भ्य इस्पन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ववीत्विति ॥ २॥

इति सप्तमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

कापो वावान्नान्न्यस्यस्तस्याद्यः सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अनं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानिद्दनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तिरक्षं यद् द्यौर्थत्पर्वता यदेव-मनुष्या यत्पशवश्च वया एति च तृणवनस्पत्यः श्वापदान्याकीटपतङ्गिपितिक-माप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति ॥१॥ स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामा रतृष्ठिमानभवति यावद्षां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्यो भूय इस्त्रची वा सूर्योऽस्तिति तन्मे भगवान्त्र-वीविति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

तेजो वावाच्यो भूयसद्धा एतद्वायुमागृद्धाकाशमभितपति तदाहुर्निशोचिति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदे-तद्भूष्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्धिराह्यदाश्चरन्ति तसादाहुर्ग्विद्योतते स्तन्यति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपा-स्स्वेति ॥ १ ॥ स यक्षेजो बह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वे स तेजस्ततो छोकान्मा-स्वतोऽपहततमस्कानभितिचाति यावन्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति

वस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्से भगवान्त्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वे सूर्याचन्द्रमसावुमो विद्युत्रक्षत्रा-षयिशाकाशोनाह्वयत्याकाशेन श्रणोत्याकाशेन प्रतिश्रणोत्याकाशे रमत आका-शे न रमत आकाशे जायत आकाशमिश्रजायत आकाशमुपास्त्वेति ॥ १ ॥ स्य य आकाशं ब्रह्मे युपास्त आकाशवतो वे स लोकान्प्रकाशवतोऽसंबाधानु-रुगायवतोऽभिसिद्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मे युपास्तेऽस्ति भगव आकाशान्त्र्य इत्याकाशाद्वाव भूयोऽसीति तन्से भगवान्ववीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

सारो वावाकाशाद्भ्यस्तसाद्यपि बहव आसीरत्तसरन्तो नैव ते कंचन श्रुणुयुर्न मन्वीरत्त विजानीरन् यदा वाव ते सरेयुरथ श्रुणुयुरथ मन्वीरत्तथ विजानीरन् सारेण वे पुत्रान्विजानाति सारेण पश्चन् सारमुपास्स्वेति ॥ १ ॥ स यः सारं ब्रह्मत्युपास्ते यावत्सरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः सारं ब्रह्मेन्युपास्तेऽस्ति भगवः साराद्भ्य इति साराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ववीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये त्रयोददाः खण्डः ॥ १३ ॥

आशा वाव स्पराद्भृयसारोद्धो वै स्परो मञ्जानधीते कर्माण कुरुते पुत्रा श्रिष्ठ पत्रू श्रिक्छत हमं च लोकममुं चेव्छत आशामुपास्स्वेति ॥ १ ॥ स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृद्धान्यमोवा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्यु-पास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय ह्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवा-न्बवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्वर्थ समर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो आता प्राणः स्वसा प्राण भाचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥ १ ॥ स यदि पितरं वा मातरं वा आतरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं वा किंचिद् भृशमिव प्रत्याह धिक्तवाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमिस मातृहा वै त्वमिस आतृहा वे त्वमिस स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमिस

ब्राह्मणहा वे त्वमसीति ॥ २ ॥ अथ यद्यप्येनानुत्कान्तप्राणान् ग्रूलेन समासं व्यतिषंद्हेक्वेनं ब्र्युः पिनृहाऽसीति न मानृहाऽसीति न आनृहाऽसीति न स्वसृहाऽसीति नाचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ॥ ३ ॥ प्राणो ह्येवेतानि सर्वाणि अवति स वा एष एवं पश्यक्षेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेह्रयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यसीति ब्रूयान्नापहुवीत ॥ ४ ॥

इति सप्तमाध्याये पद्यदशः खण्डः ॥ १५॥

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदा-नीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १॥

इति सप्तमाध्याये षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वद्ति नाविजानन् सत्यं वद्ति विजानन्नेव सत्यं वद्ति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये सप्तद्शः खण्डः ॥ १७ ॥

यदा वे मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति सत्वेव विजानाति सतिस्वेव विजिज्ञासितव्येति सतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायेऽष्टादशः खण्डः ॥ १८॥

यदा वै श्रद्धात्यथ मनुते नाश्रद्धन्मनुते श्रद्धदेव मनुते श्रद्धा विव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याय एकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधात्ति नानिस्तिष्ठन्श्रद्दधाति निस्तिष्ठनेव श्रद्द-धाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये विंशः खण्डः ॥ २०॥

यदा वे करोत्रथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वेव टिस्तिष्ठति कृतिस्त्येव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याय एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

यदा वे सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १॥

इति सप्तमाध्याये द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

यो वे भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमेव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञा-सितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्याये त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

नि

वी

स

व

यत्र नान्यत्पश्यित नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्य-त्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तद्द्यं स्रो वे भूमा तद्मृतमथ यद्द्यं तन्मर्त्य स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्त्रे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥ गोभश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनाः नीति नाहमेवं व्रवीमि व्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ॥२॥

इति सप्तमाध्याये चतुर्विशः खण्डः ॥ २४ ॥

स प्वाधसात्स उपिरष्टात्स पश्चात्स प्रसात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स प्रवेद सर्वित्रियातोऽहङ्कारादेश प्वाहमेवाधसादहमुपिरष्टादृहं पश्चादृहं पुरस्तादृहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेद सर्विमिति ॥ १ ॥ अथात आत्मादेश एवात्मेवाधसादात्मोपिरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोन्तरत आत्मेवेद सर्विमिति स वा एष एवं पश्चेश्वेषं मन्वान एवं विजानसा- स्मरितिरात्मकीड आत्मिमिश्चन आत्मानन्दः स स्वराह् भवति तस्य सर्वेषु कोकेषु कामचारो भवति । अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्ष्य्यकोका भवन्ति तेषा सर्वेषु कोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये पञ्चविंदाः खण्डः ॥ २५ ॥

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आसमतः प्राप्य आस्मत आशास्मतः सार आस्मत आकाश आस्मतस्तेज आस्मत आपास्मतः सार आस्मत आकाश आस्मतस्तेज आस्मत आपास्मतो अविभावितरोभावावास्मतोऽज्ञमास्मतो बळमास्मतो विज्ञानमास्मतो ध्यान-मास्मतिश्चित्तमास्मतः संकल्प आस्मतो मन आस्मतो वागास्मतो नामास्मतो मञ्जा आस्मतः कर्माण्यास्मत एवेद् सर्वमिति ॥ १ ॥ तदेष स्रोको न पर्यो सृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखता सर्वभ ह पश्यः पश्यति सर्वमामोति सर्वश इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव प्रन-श्रेकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विभ्शतिराहारश्चदौ सरव-श्रुद्धिः सरवश्चदौ श्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वभन्थीनां विभ्रमोक्षसस्य मृदि-तकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनात्कुमारस्त स्कन्द हत्याच-भते त स्कन्द हत्याचक्षते ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्याये षार्श्वेशः खण्डः ॥ २६ ॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥

ॐ अथ यहिटमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकान-स्तस्मिन्यदन्तस्तद्वचेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ १॥ तं चेह्रयुर्यदिदम-स्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेदम दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्ट्र्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स त्रूयात् ॥ २ ॥ यावान्वा अयमाका-कासावानेषोऽन्तर्हट्य आकाश उभे अस्मिन् यावापृथिवी अन्तरेव समाहिने उभाविमिश्र वायुश्र सूर्याचन्द्रमसाबुभौ विद्युत्रक्षत्राणि यखास्येहास्ति यस नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥ ३ ॥ तं चेह्रयुरस्मि अदिदं ब्रह्मपुरे सर्वे समाहित सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतजारा वामोति प्रध्व र-सते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति ॥ ४ ॥ स ब्र्यानास्य जरयैतजीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्माऽपहत-पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिवत्योऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति ॥ ५ ॥ तद्ययेह कर्मजितो छोदः क्षीयत एवमेवासुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहात्मानसन्तुविद्य वज-न्येता श्रा सत्यान् कामा रस्तेषारं सर्वेषु लोके व्वकामचारी अवत्यथ य इहात्मानमनुविच वजनत्येता ४ थ सत्यान् कामा ४ स्तेषा ५ सर्वेषु कोकेषु कामचारो भवति ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

स यदि पितृलोककामो अवित संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ १ ॥ अथ यदि मातृलोककामो अवित संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ २ ॥ अथ यदि आतृलोककामो अवित संकल्पादेवास्य आतरः समुत्तिष्ठन्ति तेन आतृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ३ ॥ अथ यदि स्वस्लोककामो अवित संकल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वस्लोकेन संपन्नो महीयते ॥ ४ ॥ अथ यदि सिखलोककामो अवित संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सिखलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ४ ॥ अथ यदि गन्धमात्यलोककामो अवित संकल्पादेवास्य गन्धमात्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमात्यलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ६ ॥ अथ यद्यन्तपानलोककामो भवित संकल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठ- दस्तेनान्नपानलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ७ ॥ अथ यदि गीतवादितलोक- कामो भवित संकल्पादेवास्य गीतवादितलोक- कामो भवित संकल्पादेवास्य गीतवादितलोक-

त

पं

11

ll

न

संपन्नो महीयते ॥ ८ ॥ अथ यदि छीछोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्थियः समुत्तिष्ठन्ति तेन छीछोकेन संपन्नो महीयते ॥ ९ ॥ यं यमन्तमभि-कामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते ॥ १० ॥

इल्पष्टमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

त इमें सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषा सत्याना सतामनृतमपिधानं यो यो द्यास्तेतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते ॥ १ ॥ अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यद्यान्यिदिन्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र द्यस्येते सत्याः कामा अनृतापिधानास्त्रद्यथापि हिरण्यनिधि निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपिर संच-रन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गन्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्देन्युरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गन्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्देन्युरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गन्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्देन्यन्तेन हि प्रत्यूद्धाः ॥ २ ॥ स वा एष आत्मा हृदि तस्येतदेव निरुद्धः हृद्ययमिति तस्माबृद्ययमहरहर्वा एवंवित्स्वर्ग लोकमेति ॥ ३ ॥ अथ य एप संप्रसादोऽस्मान्छरीरात्ममुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपय स्वेन रूपेणाभिनिष्यवत एष आत्मेति होवाचतदमृतमभयमेतह्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सल्यमिति ॥ ४ ॥ तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सन्दुमृतमथ यन्ति तन्मर्थमथ यद्यं तेनोमे यन्छति यदनेनोमे यन्छति तस्माद्य-महरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ५ ॥

इल्पष्टमाध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ य आत्मा स सेतुर्विष्टतिरेषां लोकानामसंभेदाय नैत्र सेतुमहोरान्ने तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतर सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा होष ब्रह्मलोकः ॥ १ ॥ तस्माद्वा एत् सेतुं तीर्त्वाऽन्धः सञ्चनन्धो भवति विद्धः सञ्चविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एत् सेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पचते सकृद्विभातो होवैष ब्रह्मलोकः ॥ २ ॥ तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषा सवेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ३ ॥

इलाष्ट्रमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते-ऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्रात्मानमनुविन्दते ॥ १॥ अथ यत्मश्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्म-नद्माणं विन्दतेऽथ यन्मोनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्रह्मचर्येण ह्येवात्मान-मनुविद्य मनुते ॥ २॥ अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेव ह्यात्मा न नश्यति यं बह्यचयेंणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनप्रित्याचश्चते बह्य-चर्यमेव तत्तदस्त्र ह व ण्यश्चाणियो ब्रह्मकोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीय स्वस्वत्र्यः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्वह्मणः प्रभुविमित हिरममः यम् ॥ ३ ॥ तद्य एवतावरं च ण्यं चार्णवो ब्रह्मकोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दिन्ति तेषामेवैष ब्रह्मकोकस्तेषा सर्वेषु कोकेषु कामचारो भवति ॥ ४ ॥ इत्यष्टमाध्याये प्रवमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ या एता हृद्यस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिङ्गस्तिष्ठन्ति ग्रुद्धस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्यस्यो वा आदित्यः पिङ्गल एष ग्रुद्धः एष नील एष पीतः एष लोहितः ॥ १ ॥ तद्यथा महापथ आतत उभी यामा गच्छतीमं चामुं चेवमेवेता आदित्यस्य रहमय उभी लोको गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादि त्याद्मतायन्ते ता आसु नाडीषु सुप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽभुष्मिः ब्याद्मतायन्ते ता आसु नाडीषु सुप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽभुष्मिः ब्याद्मतायन्ते ता आसु नाडीषु सुप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽभुष्मिः ब्याद्मतायन्ते ता आसु नाडीषु सुप्ता अभक्तः संप्रसन्नः स्वमं न विजानात्याषु तद्म नाडीषु सुप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तद्म संपन्नो भवति ॥ ३ ॥ अथ यत्रैतद्वाल्यमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावद्यसाच्छरीरादुत्कामत्यथैतरेव रहिमभिरूष्वं माक्रमते स भोमिति वा होद्वा मीयते स याविक्षप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छ- खेतदे खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम् ॥ ५ ॥ तदेष श्रोकः । शतं चेका च हृदयस्य नाड्यसासां सूर्धानमभिनिःस्तैका । तयो- ध्वमायन्नसृतत्वमेति विष्वइन्या उत्क्रमणे सवन्त्युक्तमणे सवन्ति ॥ ६ ॥

इलाष्ट्रमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

य भारमाऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिवस्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकर्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वार्श्व लोकानामोति सर्वार्श्व कामान्यसमारमानमजुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच
॥ १ ॥ तद्योभये देवासुरा अनुबुव्धिरे ते होवुर्हन्त तमारमानमन्विच्छामो
बमारमानमन्विष्य सर्वार्श्व लोकानामोति सर्वार्श्व कामानितीन्द्रो हैव देवाः
नामभिप्रववाज विरोचनोऽसुराणां तो हासंविदानावेव समिरपाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः ॥ २ ॥ तो ह द्वान्त्रिश्वतं वर्षाणे ब्रह्मचर्यमूषतुस्तो ह
प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तो होचतुर्य आत्माऽपहतपाणा
विजरो विमृत्युर्विशोको विजिवस्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकर्पः सोऽन्वेहव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वार्श्व लोकानामोति सर्वार्श्व कामान्यसन

मात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तिमण्डन्ताववासन् मिति ॥ ३ ॥ तो ह प्रजापतिरुवाच य एपोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदसृतमभयमेतद्रहोत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चायन माद्शें कतम एष दृत्येष उ एवेषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत दृति होवाच ॥४॥

इलाष्ट्रमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

उद्शराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रवृत्मिति तौ होदशारावेऽवेक्षांचकाते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पर्यथ इति तौ होचतुः लर्बभेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः प्रतिरूप-मिति ॥ १ ॥ तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वौ-द्शरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भृत्वोद्शरावे-उवेक्षांचकाते तो ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥ २ ॥ तौ होचतु-र्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतद्मृतमभयमेत-ब्रह्मेति तो ह शान्तहृदयो प्रववजतुः ॥ ३ ॥ तो हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवा-चानुपलभ्यात्मानमननुविद्य नजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाइसरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृद्य एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेस्यो हैतासुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मा-नमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुमो लोकाववामोतीमं ॥ ४॥ तस्माद्प्यचेहाददानमश्रद्धानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणा द्योषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनाळंकारेणेति सर्स्कुर्वन्त्येतेन द्यस् छोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते॥ ५॥

इत्यष्टमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ हेन्द्रोऽप्राप्येव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खरुवयमसिन्छरिरे साध्व-कंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवाय-असिन्नन्धेऽन्धो भवति स्नामे स्नामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्येव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति ॥ १ ॥ नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति स समित्पाणिः पुनरे-याय तर् ह प्रजापतिक्वाच मधवन्यच्छान्तहृदयः प्रावाजीः साधै विरोचनेन किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच यथैव खरुवयं भगवोऽसिन्छरिरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एव-मेवायमसिन्नन्धेऽन्धो भवति स्नामे स्नामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्येव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥ एवमेवैष मधव- श्विति होवाचैतं खेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यासि वसापराणि द्वान्त्रि सर्माः वर्षाः जीति स हापराणि द्वान्त्रि शतं वर्षाण्युवास तस्म होवाच ॥ ३ ॥ इत्यप्टमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

य एष स्वमे महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचेतदमृतमभयमेतद्वति स ह शान्तहृद्यः प्रवद्याज स हाप्राप्येव देवानेतद्वयं दृद्धां तद्यद्यपिद् श्वारी-रमन्धं भवत्यन्धः स भवति यदि स्नाममस्नामो नैवेषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥ न वधेनास्य हन्यते नास्य स्नाम्येण स्नामो घ्रन्ति त्वेवेनं विच्छाद्य-न्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥ स सित्याणिः पुनरेयाय तक्ष ह प्रजापतिह्वाच मघवन्यच्छान्तहृद्यः प्रावाजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्य-नन्धः स भवति यदि साममस्नामो नैवेषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ३ ॥ न वधेनास्य हन्यते नास्य साम्येण स्नामो घ्रन्ति त्वेवेनं विच्छादयन्तीवाप्रिय-वेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्यवमेवेष मघविति होवा-वेतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिश्वतं वर्षाणीति स हाऽपराणि द्वात्रिश्वतं वर्षाणीति स हाऽपराणि द्वात्रिश्वतं वर्षाणीति स

इत्यष्टमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

तध्रतेतत् सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वमं न विजानात्वेष आत्मेति होवाचेतद्मतमभयमेतद्रक्षेति स ह शान्तहृदयः प्रववाज स हाप्राप्येव देवानेतस्वयं दृद्र्शं नाह ख्व्वयमेव संप्रत्यात्मानं जानात्य्यमहमस्त्रीति नो एवेसालि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥
स समित्पाणिः पुनरेयाय त हि प्रजापतिक्वाच मध्यवन्यच्छान्तहृद्यः
प्रावाजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होद्याच नाह ख्व्ययं भगव एव संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्त्रीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो
भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥ एवमेवेष मध्यविति होवाचैतं
त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रतस्याद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति
स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशत् संपेदुरेतत्त्वयदाहुरेकशत इ वै
वर्षाण मध्यान्प्रजापते। ब्रह्मचर्यमुवास तस्त्रै होवाच ॥ ३ ॥

इलाष्ट्रमाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

सववन्मस्य वा इद्र शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशारीरस्यास्त्रनोऽिक इनिमात्तो वे सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वे सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरः पहितरस्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥ अशरीरो वाबुरभं

ŕ.

n-

ति

ब-

h:

u-

न

य-

16

#

7

1.

ते

तं

विद्युस्तनियनुरशरीराण्येतानि तयथैतान्यमुद्दादाकाशास्तमुरथाय परं उपोतिहणसंपच स्वेन रूपेणाभिनिष्यचन्ते ॥ २ ॥ एवमेवैष संप्रसादोऽस्माप्रहर्पाः स्वाद्युद्धाय परं उयोतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्ययते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत्कीडन्समाणः खीभिर्वा यानेषां ज्ञातिभिर्वा नोपजन्द स्वरिद्ध शरीर स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिन्छरीरे प्राणो युक्तः ॥ ३ ॥ अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः
पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिन्नाणीति स आत्मा गन्धाय न्नाणमथ
यो वेदेदमभिन्नाहराणीति स आत्माऽभिन्नाहाराय वागथ यो वेदेद स्वानीति स
आत्मा मनोऽस्य देवं चक्षुः स वा एष एतेन देवेन चक्षुषा मनसैतान्
कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥ य एते ब्रह्मडोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते
वस्त्रात्वाद्धार्थ सर्वे च छोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाद्ध छोकाकामोति सर्वाद्ध कामान्यसमानमनुविद्य किजानातीति ह प्रजापतिक्वास प्रजापतिरुवाद्य ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

इयामाच्छवलं प्रपये शवलाच्छ्यामं प्रपश्चेऽश्व इव रोमाणि विभूय पापं धन्द्र इव राहोर्सुखात्मसुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतातमा ब्रह्मकोकमिसं-अवामीत्यसिसंभवामीति ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निवैहिता ते यदन्तरा तद्वसः तदमृतर स आत्मा प्रजापतेः लभां वेश्म प्रपचे यशोऽहं भवामि बाह्यणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनुपापत्ति स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कर् श्येतं छिन्दु साऽभिगां छिन्दु साऽभिगाम् ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

तद्वैतद्वह्या प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुछा-द्वेदमधील्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिरोषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुक्ते वृद्धे खाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विद्धदारमनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहिए-सन्त्सर्वभूताच्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेतं वर्तयन्यावदायुषं व्यक्तिकमिसं-षधते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ १॥

> इत्यष्टमाध्याये पत्रदशः खण्डः ॥ १५॥ इत्यष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्रक्षः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराक्त्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराक-रणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मिय सन्तु ते मिय सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति छान्दोग्योपनिषत्संपूर्णा॥ ९॥

बृहदारण्यकोपनिषत् ॥ १० ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्दच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-शिष्यते ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः ॥ सूर्यश्रक्षवांतः प्राणो व्यात्तमिनिन्नेश्वानरः संवत्तर आत्माऽश्वस्य मेध्यस्य ॥ द्योः पृष्ठमन्तिरिक्षमुद्दं पृथिवी पाजस्यं दिशः पाश्वं अवान्तरिदशः पर्शव ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो माँ सानि । जवध्य सिकताः सिन्धवो गुदा यवृच्च क्रोमानश्च पर्वता ओषध्यश्च वनस्पत्यश्च क्रोमान्युद्यन् पूर्वार्धो निम्कोचञ्जघनार्धो तिहुज्ममते तिहृद्योतते यहिधूनुते तत्स्तन्यति यन्मेहित तद्वर्षति वागेवास्य वाक् ॥ १ ॥ अहवी अश्वं पुरस्तान्मिहिमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्दे योनी रात्रिरेनं पश्चान्मिहमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्दे योनी रात्रिरेनं पश्चान्मिहमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्दे योनी रात्रिरेनं पश्चान्मिहमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्दे योनी सहिमानाविभितः संबभूवतुः । हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानवांऽसुरानश्चो मनुष्यान् समुद्द एवास्य बन्धुः समुद्दो योनिः ॥ २ ॥

इति प्रथमाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

नैवेह किंचनाम आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत्। अशनाययाऽशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी स्वामिति। सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्ता-र्षते वे मे कमभूदिति तद्वीर्कस्यार्कत्वं कर ह वा असौ भवति य एवमेत-दर्कस्यार्कत्वं वेद ॥१॥ आपो वा अर्कस्तद्यद्वपार्रं शर आसीत्तत्समहन्यत। सा पृथित्यभवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तस्य तेजोरसो निरवर्तताप्तिः॥ २॥ स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादिसं तृतीयं वायुं तृतीयर् स एष प्राणस्त्रेधा विहितः। तस्य प्राची दिन्शिरोऽसौ चासौ चेमों। अथास्य प्रतीची दिनपुञ्छमसो चासौ स सवस्यो दिन्याणा चोदीची च पाश्रे हो। पृथमन्तरिक्षसुद्रिययसुरः स 9

7

क-

न्तु

а.

ग्ने-

वी

12

4

M

त्ते

11-

ात यो

बुः

हि

Π-

₹-

11

एपोऽप्स प्रतिष्ठितो यत्र क चैति तदेव प्रतितिष्टत्येवं विद्वान् ॥ ३ ॥ सोऽका-अयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुन् समभवदेश-नाया मृत्युस्तद्यद्वेत आसीत्स संवत्सरोऽभवत् । न ह पुरा ततः संवत्सर क्षास तमेतावन्तं कालमविभः । यावान्संवत्सरस्तमेतावतः कालस्य परस्ता-द्वभुजत तं जातमभिज्ञाददात्स भाणकरोत्सैव वागभवत् ॥ ४ ॥ स ऐक्षत यदि वा इसमिसिम् स्थे कनीयोऽतं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेद्र सर्वमस्त्रत यदिदं किंचचों यजूर्षि सामानि च्छन्दार सि यज्ञानप्रजाः पश्चन् । स यद्यदेवास्त्रजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति तद्दितेरदितिस्वरं सर्व-स्येतस्याना अवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतद्दिनेरदितित्वं चेद ॥ ५ ॥ सोऽकामयत भूयसा यद्देन भूयो यजेयेति । सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्य आन्तस्य तसस्य यशो वीर्यमुदकामत् । प्राणा वै यशो वीर्यं तस्प्राणेषुत्कान्तेषु शरीर श्वयितुमधियत तस्य शरीर एव मन आसीत् ॥ ६॥ सोऽकामयत क्षेष्यं म इद्ध स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति । ततोऽश्वः समभवद्यदश्वत्तनमेष्य-सभूदिति तदेवाश्वमे पस्याश्वमे धत्वम् । एष ह वा अश्वमे धं वेद य एनमेवं वेद् । तमनवरुध्येवामन्यत । तु संवत्सरस्य परस्तादात्मन आलभत । पश्चन्दे-वताभ्यः प्रस्योहत् । तसात्सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभनत ॥ एव इ वा अश्वमेधो य एव तपति तस्य संवत्सर आत्माऽयमग्निरकंसत्यमे लोका आत्मा-नस्तावेतावकाश्वमेधौ । सो पुनरेकैव देवता भवति मृःयुरेवाप पुनर्मृत्युं जयति नैनं मृत्युरामोति मृत्युरस्यात्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति ॥ ७ ॥

इति प्रथमाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च । ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेन्वस्पर्धन्त ते ह देवा अचुईन्तासुरान्यज्ञ उद्गीथेनात्यया-मेति ॥ १ ॥ ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेम्यो वागुदगायत् । यो वाचि भोगस्तं देवेम्य आगायद्यत् कल्याणं वदति तदात्मने । ते विदुरनेन वे न उद्गात्राऽलेभ्यन्तीति तमभिद्धस्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवे-दमप्रतिरूपं वदति स एव स पाप्मा ॥ २ ॥ अथ ह प्राणमूचुस्त्वं न उद्गावित तथेति तेम्यः प्राण उदगायद्यः प्राणे भोगस्तं देवेम्य आगायद्यत् कल्याणं जिव्रति तदात्मने । ते विदुरनेन वे न उद्गात्राऽलेभ्यन्तीति तमभिद्धस्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं जिव्रति स एव स पाप्मा ॥ ३ ॥ अथ ह चश्चरूचुस्तं न उद्गायेति तथेति तेम्यश्चश्चरूच्यायत् । यद्यश्चि

भीगसं देवेश्य भागायणकस्यार्ण पश्यति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्राsलेखन्तीति तमभिद्वस्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूषं पस्यति स एव स पाप्पा ॥ ४ ॥ अथ ह श्रोत्रमृचुस्त्वं न उद्गावेति तथेति तेम्बः श्रीत्रमुद्गायद्यः श्रीत्रे सीगस्तं देवेश्य आगायद्यःकस्याण् श्रणोति तदास्मने । से चिदुरनेन वे न उद्गात्राऽस्येध्यन्तीति तमभिद्धस्य पापमनाऽवि-ध्वन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपः शुणोति स एव स पाप्मा ॥ ५॥ अथ ह मन ऊचुरत्वं न उद्गायिति तथिति तेश्यो मन उदगायची मनिस भीगसं देवेश्य आगाद चत् कल्याण ए संकल्पयति तदात्सने । ते विदुरनेन वै न अद्भाशां स्थेष्यन्तीति तमभिद्वत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्र-तिइप र संकरपयति स एव स पाप्मेवमु खहवेता देवताः पाप्मभिरुपासुः अञ्चेवमेनाः पाप्सनाऽविध्यन् ॥ ६ ॥ अथ हेससासन्यं प्राणसृहुस्वं न उता-थेति तथेति तेश्य एष प्राण उद्गायत्ते विदुरनेन व न उद्गानाऽत्येष्यन्तीति तद्भिद्वत्य पाप्मनाविच्यासन्स यशाऽइमानमृत्वा लोष्टो विध्व र सेतेव र हैव विध्वं रसमाना विष्वच्चो निनेशुस्ततो देवा अभवन् परासुरा भवत्यात्मना परास्य द्विषन्ञातृत्यो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ते होत्तुः क नु सोऽभूगो न इत्थमसत्तेत्वयमास्येऽन्तरिति सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गाना र हि रसः॥ ८॥ सा वा एषा देवता दूर्नाम दूर् इस्या स्त्युर्दूर् ह वा अस्मान्सृत्युर्भवित य एवं वेद ॥ ९ ॥ सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्सानं सृत्युमपहत्य वत्रासां दिशामन्तस्तद्गमयांचकार तदासां पाष्मनो विन्यद्धात्तसान जन-मियाबान्तमियाक्रेत्पाप्मानं सृत्युमन्ववायानीति ॥ १० ॥ सा वा एषा देव-वैतासां देवतानां पाष्मानं मृत्युमपहत्यायैना मृत्युमत्यवहत् ॥ ११ ॥ स वै बाचमेव प्रथमामत्यवहत्सा यदा चृत्युमत्यमुच्यत सोऽग्निरभवत्सोऽयमग्निः परेण मृत्युमतिकान्तो दीप्यते ॥ १२ ॥ अथ प्राणमत्यवहत्स यदा मृत्यु-मत्यमुच्यतं स वायुरभवत्सोऽयं वायुः परेण मृत्युमतिकान्तः पवते ॥ १३॥ अथ चक्कुरत्यवहत्तचदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत्सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिकान्तस्तपति ॥ १४ ॥ अथ श्रोत्रमत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमु-च्यत ता दिशोऽभव र स्ता इमा दिशः परेण मृत्युमतिकान्ताः ॥ १५॥ अथ मनोऽत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स चन्द्रमा अभवत्सोऽसी चन्द्रः परेण सुरुमितिकान्तो भालेव १ ह वा एनमेषा देवता मृत्युमितवहति य एवं वेद ॥ १६ ॥ अथाःमनेऽसाद्यमागायदाद्धि किंचासमद्यतेऽनेनैव तद्द्यत इह प्रतितिष्ठति ॥ १७ ॥ ते देवा अनुवन्नेतावद्वा इद् सर्व यद्कं तदात्मन

7-

V

1-

11

ने

ल

-

ते

a

7

आगासीरन नोऽस्मिनन आभजस्वेति ते वै माऽभिसंविशतेति तथेति तथे समन्तं परिण्यविशन्त । तसाद्यदनेनान्नमत्ति तेनैतास्तृप्यन्त्येव इ वा एन ए खा अभिसंविशन्ति भर्ता स्वाना अष्टः पुर एता भवत्यसादोऽधिपतिर्यं एवं वेद य उ हैवंविद् स्वेषु प्रति प्रतिर्बुभूपति न हैवालं भार्येभ्यो भवत्यथ य एवैतमनुभवति यो वैतमनु भार्यान् बुभूर्वति स हैवालं भार्येभ्यो भवति ॥ १८ ॥ सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानार हि रसः प्राणो वा अङ्गानार रसः ष्राणो हि वा अङ्गाना रसस्तस्माद्यस्माकस्माचाङ्गात्प्राण उत्कामति तदेव तच्छुष्यत्येष हि वा अङ्गाना रसः ॥ १९ ॥ एष उ एव बृहस्पतिर्वाग् वै बृह्ती तस्या एप पतिस्तस्यादु बृहस्पतिः ॥ २० ॥ एष उ एव ब्रह्मणस्पति-र्वाग् वे ब्रह्म तस्या एप पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ॥ २१ ॥ एप उ एव साम वाग् वे सामैष सा चामश्रेति तत्साम्नः सामत्वम्। यद्वेव समः हुषिणा समो महाकेन समो नागेन सम एभिखिभिलोंकैः समोऽनेन सर्वेण तसाहेव सामाश्रुते साम्नः सायुज्य सलोकतां य एवमेतस्साम वेद ॥ २२ ॥ एष उ वा उद्गीयः प्राणो वा उत्प्राणेन हीद्र सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच गीथा चेति स उद्गीथः ॥ २३ ॥ तदापि बहादत्तश्चेकितानेयो राजानं भक्ष-यञ्जवाचायं त्यत्य राजा मूर्धानं विपातयताचादितोऽयास्य आङ्गिरसोऽन्येनो-दगायदिति वाचा च होव स प्राणेन चोदगायदिति ॥ २४ ॥ तस हैतस्य साझो यः स्वं वेद भवति हास्य स्वं तस्य वै स्वर एव स्वं तसादार्विज्यं करिष्यन्वाचि स्वरमिच्छेत तया वाचा स्वरसंपन्नयार्त्विज्यं कुर्यात्तसाधारे स्वरवन्तं दिदृक्षन्त एव । अथो यस्य स्वं भवति भवति हास्य स्वं य एवमेत-रसाम्नः स्वं वेद ॥ २५ ॥ तस्य हैतस्य साम्नो यः सुवर्णं वेद भवति हास्य सुवर्णं तस्य वे स्वर एव सुवर्णं भवति हास्य सुवर्णं य एवमेतत्साझः सुवर्णं वेद ॥ २६ ॥ तस्य हैतस्य साम्नो यः प्रतिष्ठां वेद प्रति इ तिष्ठति तस्य वै वागेव प्रतिष्ठा वाचि हि खल्वेष एतत्प्राणः प्रतिष्ठितो गीयतेऽन्न इत्यु हैक आहुः ॥ २७ ॥ अथातः पवमानानामेवाभ्यारोहः स वै खलु प्रस्तोता साम प्रस्तौति स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत्। असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्यो-तिर्गमय मृत्योमांऽमृतं गमयेति स यदाहासतो मा सद्गमयेति मृत्युर्वा अस-त्सद्मृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह तमसो मा ज्योतिर्गम-येति मृत्युवें तमो ज्योतिरमृतं मृत्योमीऽमृतं गमयामृतं मां कुर्वित्येवैतदाइ मृत्योमां इमृतं गमयेति नात्र तिरोहितमिवास्ति । अथ यानीतराणि स्तोत्राणि तेष्वात्मनेऽन्नाद्यमागायेत्तस्मादु तेषु वरं वृणीत यं कामं कामयेत तक्ष स एप एवंविदुद्गातासमें वा यजमानाय वा यं कामं कामयते तमागायति तद्धेतः छोकजिदेव न हैवालोक्यताया भाशाऽस्ति य एवमेतत्साम वेद ॥ २८॥ इति प्रथमाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३॥

आसमेवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीस्य नान्यदाःसनोऽपत्रयत व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत्तस्मादप्येतद्योमन्नितोऽहमयामिले. बाग्र उक्तवाऽथान्यन्नाम प्रवृते यदस्य अवति स यत्पूर्वोऽसात्सर्वस्मात्सर्वान्या-पान श्रीपत्तसात्पुरुप भोषति ह वै स तं योऽस्मात्पुर्वो ब्रभूषति य एवं वेट ॥ १ ॥ सोऽविभेत्तसादेकाकी बिमेति स हायभीक्षांचके यन्मदन्यकास्ति कस्मान विभेमीति तत एवास्य अयं वीयाय कसाच्यभेष्यद्वितीयाहै अयं अवति ॥ २ ॥ स वे नैव रेमे तसादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत । स हैतावानास यथा स्त्रीपुमा स्त्री संपरिष्वकी स इसमैवात्मानं द्वेघाऽपातय-त्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमधेवगलभिव स्व इति ह स्माह याज-वल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव ता समभवत्तती सनुष्या अजा-यन्त ॥ ३ ॥ सा हेयमीक्षांचके कथं नु माऽऽत्मन एव जनयित्वा संभवति हन्त तिरोऽसानीति सा गौरभवदृषभ इतरस्ता समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त वड-वेतराऽभवदश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ता समेवाभवत्तत एकशफ-मजायताऽजेतराभवद्वस्त इतरोऽविरितरामेष इतरसा समेवाभवत्ततोऽजाव-योऽजायन्तेवसेव यदिदं किंच मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमस्जत ॥ ४॥ सोऽवेदहं वाव सृष्टिरसम्यह १ हीद १ सर्वमसूक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्या १ हा-स्पैतस्यां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥ अथेत्यभ्यमन्थत्स सुखाञ्च योनेईस्ताभ्यां चाम्रिमसुजत तसादितदुभयमलोमकमन्तरतोऽलोमका हि योनिरन्तरतः । तद्य-दिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ होव सर्वे देवाः। अथ यस्किचेदमाई तद्देतसोऽस्जत तदु सोम एतावद्वा इद् सर्वमर्ज चैवा-बादश्च सोम एवान्नमिरन्नादः सेषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टिर्यच्छ्रेयसो देवानसूज-ताथ यन्मर्लः सञ्चमृतानस्जत तसादितसृष्टिरितसृष्ट्या हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥ तद्धेदं तद्धं व्याकृतमासीत्तनामरूपाभ्यामेव व्याकिय-तासी नामायमिद्र रूप इति तदिद्मप्येति हैं नामरूपाभ्यामेव व्याकिय-तेऽसौनामायमिद्र रूप इति स एव इह प्रविष्टः। आनखाग्रेभ्यो यथा श्चरः श्चर-भानेऽवहितः स्याद्विश्वंभरो वा विश्वंभरकुलाये तं न पश्यन्ति । अकृत्स्त्रो हि स प्राणक्षेव प्राणी नाम भवति । वदन् वाक् परय अक्षुः श्रुण्वन् श्रोत्रं मन्वानी मनस्मान्यस्थेताति कर्मनामान्येव । स योऽत एकैकसुपास्ते न स वेदाकृत्स्रो

होषोऽत एकैकेन भवत्यात्मेत्येवोपासीतात्र होते सर्व एकं भवन्ति । तदेतत्पद-जीयमस्य सर्वस्य यद्यमात्माऽनेन होतत्सर्वं वेद् । यथा ह वे पदेनानुविन्दे-देवं कीर्ति श्लोकं विन्दते य एवं वेद ॥ ७ ॥ तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्ता-छ्येयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यद्यमात्मा । स योऽन्यभात्मनः प्रियं बुवाणं श्रूयात् प्रिय रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्थादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानसेव प्रियसुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति ॥ ८ ॥ तदाहुर्य-ह्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यन्ते किमु तद्रह्माऽवेद्यस्मात्तःसर्वम-अवदिति ॥ ९ ॥ ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तद्दारमानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति । तस्मात्तत्सर्वमभवत् तद्यो यो देवानां प्रलबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां त्तथा मनुष्याणां तद्वेतत्पश्यकृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभव सूर्यश्चेति । लिंदिदमप्येतिहीं य एवं वेदाऽहं ब्रह्मास्मीति स इद् सर्व अवित तस्य ह न दुवाश्चनाभूत्या ईशते। आत्मा होपार स भवत्यथ योऽन्यां देवतासुपास्तेऽन्योsसावन्योऽहमसीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम् । यथा ह वै बहवः पशनो मनुष्यं भुअयुरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्लेकस्मिन्नेव पशावादी-यमाने ऽप्रियं भवति किमु बहुषु तसादेषां तन्न प्रियं यदेतनमनुष्या विद्युः ॥१०॥ ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकर सन्न व्यभवत्। तच्छ्रेयोरूपमत्य-सृजत क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो भृत्युरीशान इति । तसात् क्षत्रात्परं नास्ति तसाद्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादु-पास्ते राजसूरे क्षत्र एव तद्यशो दधाति सैषा क्षत्रस्य योनिर्गद्रहा । तस्माय-द्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उपनिश्रयति स्वां योनिं य उ एनः हिनस्ति स्वार स योनिमुच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेया सस हिर-सित्वा ॥ ११ ॥ स नैव व्यभवत् स विशमस्जत यान्येतानि देवजातानि गणका आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ॥ १२ ॥ स नैव व्यभवत् स शोइं वर्णमस्जत पूषणमियं वे पूषेय ही द्र सर्व पुष्यति यदिदं किंच ॥ १३ ॥ स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यस्जत धर्म तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो भवलीयान् बलीया एसमाश एसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वे स धर्मः सत्यं वे तत्तसात् सत्यं वदन्तमाहुर्धमे वदतीति धर्म वा वदन्त सत्यं वदतीत्येत छोवेतदुभयं भवति ॥ १४॥ तदेतद्रह्म क्षत्रं विद शुद्रसाद्मिनैव देवेषु ब्रह्माभवद्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रि-येण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रस्तसाद्मावेव देवेषु लोकमिच्छन्ते ब्राह्मणे मनुष्येष्वेताभ्याएँ हि रूपाभ्यां ब्रह्माभवत् । अथ यो ह वा अस्मा-

छोकात्स्वं कोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न अनक्ति यथा नेदो नाउन-नुक्तोऽन्यहा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवंविनमहत्पुण्यं कर्म करोति तन्ताः खान्ततः श्रीयत एवात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपासे न हास्य कर्म श्रीयते । अस्याच्चेवारमनो यद्यत्कामयते तत्तत्स्य जते ॥ १५॥ अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यजुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यद्नुबूते तेन ऋषीणामथ यत्पितृश्यो निपृणाति यत्प्रजा-मिच्छते तेन पितृणामथ यनमनुष्यान्वासयते यदेश्योऽशनं ददाति तेन मनु-ब्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्य गृहेषु श्वापदा वया एसापिपीलिका भ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोको यथा ह वै स्वाय लोका-यारिष्टिमिच्छेदेव र हैवंविदे सर्वाणि भूतान्यरिष्टिमिच्छन्ति तहा एतिहिदितं भीमा र सितम् ॥ १६ ॥ आत्मैवेदमय आसी देक एव सो इकामयत जाया मे स्यादय प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेत्येतावान् वे कामो नेच्छ अ नातो भूयो विन्देत्तस्माद्प्येतहींकाकी कामयते जाया से स्याद्य प्रजायेयाथ वित्तं में साद्य कर्म कुर्वायेति स यावद्प्येतेषामेकैकं न प्रामोत्यकृत्स एव तावनमन्यते तस्यो कृत्स्रता मन एवास्यात्मा वाग्जाया प्राणः प्रजा चक्षुर्मा-नुषं वित्तं चक्षुषा हि तद्विन्दते श्रोत्रं दैव श्रोत्रेण हि तच्छणोत्यात्मेवास कर्मात्मना हि कर्म करोति स एष पाङ्की यज्ञः पाङ्कः पञ्चः पाङ्कः पुरुषः पाक्कमिद्र सर्व यदिदं किंच तदिद्र सर्वमामोति य एवं वेद् ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयिता। एकमस्य साधारणं द्वे देवानभाजयत्। त्रीण्यात्मनेऽकुरुत पशुभ्य एकं प्रायच्छत्तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं यश्च
प्राणिति यश्च न । कस्मात्तानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदा। यो वैतामिक्षितं
वेद सोऽन्नमत्ति प्रतीकेन । स देवानिपगच्छित स ऊर्जमुपजीवतीति श्लोकाः
॥ १ ॥ यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयिततेति मेधया हि तपसाऽजनयत्पितैकमस्य साधारणिमतीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते । स य एतदुपास्ते न स पापमनो व्यावर्तते मिश्र होतत् । द्वे देवानभाजयदिति हुतं च
प्रहुतं च तसाद्देवेभ्यो जुह्नति च प्र च जुह्नत्यथो आहुर्द्शपूर्णमासाविति ।
तस्मान्नेष्टियाजुकः स्थात् । पश्चभ्य एकं प्रायच्छिदिति तत्त्ययः । पयो होवामे
मनुष्याश्च पश्चश्चोपजीवन्ति तस्मात् कुमारं जातं घृतं वैवाग्ने प्रतिष्ठेहयन्ति
स्तनं वाऽनुधापयन्त्यथ वत्सं जातमाहुरतृणाद् दृति । तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं
यश्च प्राणिति यश्च नेति पयसि होद्र सर्वं प्रतिष्ठितं यश्च प्राणिति यश्च न ।

लबादिदमाहः संवत्सरं पयसा जुह्नदप पुनर्शृत्युं जयतीति न तथा विबाधदह-हैव जहोति तदहः पुनर्मृत्युमपजयत्येवं विद्वान्सर्वे हि देवेश्योऽसाद्यं प्रय-क्किति । कसाचानि न श्रीयन्तेऽबमानानि सर्वदेति पुरुषो वा अक्षितिः स हीद्यक्षं पुनः पुनर्जनयते । यो वैतामक्षितिं वेदेति पुरुषो वा अक्षितिः स ही इसन्न धिया धिया जनयते । कर्मिभर्यद्वेतन्न कुर्यास्थीयेत ह सोऽन्नमिन प्रतीकेनेति सुखं प्रतीकं सुखेनेत्येतस्स देवानपिगच्छति स ऊर्जसुपजीवतीति अश्र सा ॥ २ ॥ त्रीण्यात्मनेऽकुरुतेति मनो वाचं प्राणं तान्यात्मनेऽकुरुतान्य-असना अभूवं नाद्र्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रीषिमिति मनसा द्वेव प्रयति र्भीरित्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति यः कश्च शब्दो वागेव सेषा ह्यन्तमायत्तेषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानोऽन इत्येतत्सर्वं प्राण एवेतन्मयो वा अयमात्मा वाज्ययो मनोमयः प्राणमयः ॥ ३ ॥ त्रयो लोका एत एव वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्षलोकः आणोऽसौ लोकः ॥४॥ त्रयो वेदा एत एव वागेवर्ग्वेदो मनो यज्ञेदः प्राणः सामवेदः ॥ ५ ॥ देवाः पितरो मनुष्या एत एव वागेव देवा मनः पितरः शाणो मनुष्याः ॥ ६ ॥ पिता माता प्रजेत एव मन एव पिता वाङ्याता जाणः प्रजा ॥ ७ ॥ विज्ञातं विजिज्ञास्यमविज्ञातमेत एव यक्तिच विज्ञातं वाचलद्वपं वाग्य विज्ञाता वागेनं तद्भुत्वाऽवति ॥ ८ ॥ यत्किंच विजिज्ञासं अनसस्तद्वपं मनो हि विजिज्ञास्यं मन एनं तद्भवाऽवति ॥ ९ ॥ यिकचा-विज्ञातं प्राणस्य तद्रपं प्राणो ह्यविज्ञातः प्राण एनं तद्भुश्वाऽवति ॥ १० ॥ तस्य वाचः पृथिवी शरीरं ज्योतीरूपमयमग्निसत्यावत्येव वाक्तावती पृथिवी तावानयम्प्राः ॥ ११ ॥ अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं ज्योतीरूपमसावादित्य-खाबावदेव मनसावती द्योसावानसावादित्यस्तो मिथुन समैतां ततः प्रा-णोऽजायत स इन्द्रः स एषोऽसपत्रो द्वितीयो वै सपत्रो नास्य सपत्रो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ अथैतस्य प्राणस्यापः शरीरं ज्योतीरूपमसौ चन्द्रस-बावानेव प्राणस्तावत्य भापस्तावानसौ चन्द्रसा एते सर्व एव समाः सर्वेऽ-नन्ताः स यो हैतानन्तवत उपास्तेऽन्तवन्त् स छोकं जयत्यथ यो हैतान-नन्तानुपास्तेऽनन्त्र स कोकं जयति ॥ १३ ॥ स एष संवत्सरः प्रजापतिः पोडशककसत्य रात्रय एव पद्धद्श कला ध्रुवैवास्य घोडशी कला स रात्रि-भिरेवा च पूर्वतेऽप च क्षीयते सोऽमावास्यार रात्रिमेतवा बोडस्या करुया

सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविदय ततः प्रातर्जायते तस्मादेता रात्रिं प्राणभृतः प्राणं न विच्छिन्द्याद्पि कृकलासस्येतस्या एव देवताया अपचित्ये ॥ १४ ॥ यो वे स संवत्सरः प्रजापतिः पोडशकलोऽयमेव स योऽयमेवंवित्पुरुपस्तस्य वित-मेव पञ्चदश कला आत्मेवास्य पोडशी कला स वित्तेनेवा च पूर्यतेऽप च क्षीयते तदेतन्नभ्यं यद्यमात्मा प्रधिर्वित्तं तस्माधद्यपि सर्वज्यानि जीयत आत्मना चेजीवति प्रधिनाऽगादिसेवाहुः ॥ ३५ ॥ अथ त्रयो वात्र लोका मनुष्यलोकः पितृहोको देवलोक इति सोऽयं मलुष्यलोकः पुत्रेणैव लथ्यो नान्येन कर्मणा कर्मणा पित्रहोको विद्यया देवलोको देवलोको वै लोकाना अष्टिससादिसां अश्सन्ति ॥ १६ ॥ अथातः संप्रत्तिर्यदा प्रैष्यनमन्यतेऽथ पुत्रसाह त्वं ब्रह्म स्वं यज्ञस्वं लोक इति स पुत्रः प्रत्याहाहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक इति यहै किंचान्कं तस्य सर्वस्य ब्रह्मेत्येकता। ये वे के च यज्ञास्तेषा सर्वेषां यज्ञ इत्येकता ये वे के च लोकास्तेषा सर्वेषां लोक इत्येकतेतावद्वा इदर सर्व-मेतन्मा सर्वे सन्नयमितोऽभुनजदिति तस्मात् पुत्रमनुहिष्टं लोक्यमाहुस्त-सादेनमनुशासति स यदेवं विदसालोकात्प्रैत्यथैभिरेव प्राणः सह पुत्रमावि-शति । ल यद्यनेन किंचिद्दणयाऽकृतं भवति तस्मादेन सर्वसात्पुत्रो मुञ्जति तसात्पत्रो नाम स प्रतेणवासिँछोके प्रतितिष्ठत्ययैनमेते देवाः प्राणा अस्ता आविशन्ति ॥ १७ ॥ पृथियो चैनममेश्र देशी वागाविशति सा वे देवी वा-रयया यद्यदेव वदति तत्तद्भवति ॥ १८ ॥ दिवश्चेनमादित्याच दैवं मन आवि-शति तहै दैवं मनो येनानन्धेव भवत्यथो न शोचति ॥ १९ ॥ अन्धक्षेनं चन्द्र-असश्च दैवः प्राण आविशति स वै दैवः प्राणो यः संचर श्र्यासंचर श्र्य न व्यथतेऽथो न रिष्यति स एवंवित्सर्वेषां भूतानामात्मा भवति यथैषा देवतैव^५ स यथैतां देवता सर्वाणि भूतान्यवन्सेव हैवंविद सर्वाणि भूतान्यवन्ति । यद किंचेमाः प्रजाः शोचन्यमैवासां तद्भवति पुण्यमेवासं गच्छति न ह वै देवान पापं गच्छति ॥ २० ॥ अथातो वतमीमा सा प्रजापतिई कर्माणि सस्जे तानि स्टान्यन्योन्येनास्पर्धन्त विद्वाम्येवाहमिति वाग्द्धे द्रक्ष्याः म्यहमिति चक्षः श्रोध्याम्यहमिति श्रोत्रमेवमन्यानि कर्माणि यथाकर्म तानि मृत्युः श्रमो भूत्वोपयेमे तान्यामोत्तान्यास्वा मृत्युरवारुन्द तस्माच्छ्राम्यत्येव वाक् श्रास्यति चक्षुः श्रास्यति श्रोत्रमथेममेव नामोद्योऽयं मध्यमः प्राण-स्तानि ज्ञातुं दिधिरे । अयं वै नः श्रेष्ठो यः संचर्श्श्रासंचर्श्श्र न व्यथतेऽथो न रिष्यति इन्तास्यव सर्वे रूपमसामेति त एतस्यव सर्वे रूपमभव र सासादेत

प्तैनाख्यायन्ते प्राणा इति तेन ह वाव तत्कुलमाचक्षते यिसन्कुले भवति य एवं वेद य उ हैवंविदा स्पर्धतेऽनुशुष्यसनुशुष्य हैवान्ततो म्नियत इस्यध्यात्मम् ॥ २१ ॥ अथाधिदैवतं ज्वलिष्याम्येवाहमित्यिर्मदेष्ठे तप्साम्यहमिन्द्यादित्यो भास्याम्यहमिति चन्द्रमा एवमन्या देवता यथादैवतर स यथेषां प्राणानां मध्यमः प्राण एवमेतासां देवतानां वायुम्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः सेपाऽनस्तमिता देवता यहायुः ॥ २२ ॥ अथेप श्लोको भवति यत-श्लोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एप उदेति प्राणेऽस्तमेति तं देवाश्रिकरे धर्मर स एवाद्य स उ श्ल इति यद्वा एतेऽमुई्यियन्त तदेवाष्यद्य कुर्वन्ति । तस्मादेकमेव वतं चरेत्प्राण्याचैवापान्याच नेन्मा पाप्मा मृत्युरामु-विदित यद्य चरेत्समापिपयिषेत्तेनो एतस्यै देवतायै सायुज्यर सलोकतां जयित ॥ २३ ॥

इति प्रथमाध्याये पञ्चमं व्राह्मणम् ॥ ५ ॥

त्रयं वा इदं नाम रूपं वर्म तेषां नामां वागित्येतदेषामुवथमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति । एतदेषा सामेतद्धि सर्वेनीमिभः सममेतदेषां अस्तिति सर्वाणि नामानि विभित्ते ॥ १ ॥ अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषामुक्थ- अतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषा सममेतद्धि सर्वें रूपेः सममेतदेषां सस्तिति सर्वाणि रूपाणि विभित्ते ॥ २ ॥ अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुक्थ- अतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषा सममेतद्धि सर्वेः वर्मभिः सममेन तदेषां ब्रह्मेतद्धि सर्वे। वर्माणि वर्माणि विभित्ति तदेतत्रय सदेकमयमात्माऽऽत्मे एकः सन्नेतत्रयं तदेतदमृत सत्येन च्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताक्ष्यामयं प्राणइछन्नः ॥ ३ ॥

इति प्रथमाध्याये षष्ठं त्राह्मणम् ॥ ६ ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ॥ दसवालाकि हांन्चानो गार्थ आस स होवाचाजातशत्रुं कास्यं ब्रह्म ते ब्रवाणीति स होवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दद्यो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ॥ १ ॥ स होवाच गार्थों य एवासावादित्ये पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमां मैतस्मिन्संवदिष्ठा अतिष्ठाः

सर्वेषां भूतानां भूषां राजेति वा अहमेत्रमुपास इति स य एतमेव सुपा-स्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां सूर्घा राजा भवति ॥ २ ॥ स होवाच गाग्यों स ष्यासी चन्द्रे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमी मतिका-असंविदेष्ठा बृहन्पाण्डरवासाः सोमो राजेति वा अहमेतसुपास इति स य प्तमेत्रमुपास्तेऽहरहर्ह सुतः प्रसुती भवति नास्यात्रं क्षीयते ॥ ३ ॥ स होवाच गाम्यों य एवासौ विद्यति पुरुष एतसेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-चाजातशत्रुमां मेतस्मिन्संवदिष्ठास्तेजस्वीति वा अहमेतस्यपास हति स य पत-मेवमुपास्ते तेजस्वी ह भवति तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति ॥ ४॥ स होवाच गाग्यों य एवायमाकाशे पुरुष एतसेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-चाजातशत्रुमां मेतस्मिन्संवदिष्ठाः पूर्णमप्रवर्तीति वा अहमेतसुपास इति स य एतमेवमुपास्ते पूर्वते प्रजया पशुमिनीत्वास्मालीकात्रजीहर्तते॥ ५॥ स होवाच गार्थों य एवायं वाया पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास हति स होवाचा-जातशत्रुमी मैतस्मिन्संवदिष्ठा इन्द्री वैकुण्ठोऽपराजिता सैनेति वा अहमेत-मुपास इति स य एतमेवमुपास्ते जिल्णुहाँपराजिल्णुभवसन्यतस्यजायी ॥ र॥ स होवाच गाग्यों य एवायममो पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास हति स होवा-चाजातशत्रुमा मैतस्मिन्संवदिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेतसुपास इति स य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्हं भवति विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ॥ ७ ॥ स होवाच गाग्यों य एवायमप्तु पुरुष एतसेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचा-जातशत्रुमी मैतस्मिनसंवदिष्ठाः प्रतिरूप इति वा अहसेतसुपास इति स स एतमेयसुपास्ते प्रतिरूपर हैवैनसुपगच्छति नाप्रतिरूपमयो प्रतिरूपेऽस्माः जायते ॥ ८ ॥ स होवाच गाग्यों य एवायमाद्री पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमा मैतस्मिन्संवदिष्ठा रोचिष्णुरिति वा अहमेतसुः पास इति स य एतमेवमुपास्ते रोचिष्णुई भवति रोचिष्णुहीस्य प्रजा भव-त्यथो यैः संनिगच्छति सर्वां एसानितरोचते ॥ ९ ॥ स होवाच गाग्यों य एवायं यन्तं पश्चाच्छब्दोऽनूदेलेतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातश-त्रुमां मैतस्मिनसंवदिष्ठा असुरिति वा भहमेतसुपास इति स य एतमेवसु-पास्ते सर्व १ हैवासिँ छोक भायुरेति नैनं पुरा कालात्प्राणी जहाति ॥ १०॥ स होवाच गाग्यों य एवायं दिश्च पुरुष प्तमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-चाजातशत्रुमां मैतस्मिन्संवदिष्ठा द्वितीयोऽनपग इति वा अहसेतसुपास इति स य प्तमेवमुपास्ते द्वितीयवान् इ भवति नासाद्गणिइछचते ॥ ११ ॥ स होवाच गार्ग्यो य एवायं छायामयः पुरुष एतमेवाई ब्रह्मोपास इति स होवा-

चाजातशत्रुमी मैतस्मिन्संविदेष्ठा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स य षुतमेवमुपास्ते सर्व र हैवासिँ छोक आयुरेति नैनं पुरा काळान्मृत्युरागच्छित ॥ १२ ॥ स होवाच गाम्यों य एवायमात्मनि पुरुष एतसेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमा मैतस्मिन्संवदिष्ठा आत्मन्वीति वा अहमेतसु-बाल इति स य एतमेवमुपास्त आत्मन्वी ह भवत्यात्मन्विनी हास्य प्रजा अवति स ह तूरणीमास गार्गः ॥१३॥ स होवाचाजातशत्ररेतावस ३ इत्येता-बद्धीति नैतावता विदितं भवतीति स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति॥१४॥ स होवाचाजातशत्रः प्रतिलोमं चैतचहाह्मणः क्षत्रियमुपेयाहस् मे वस्यतीति क्येव त्वा जपिष्यामीति तं पाणावादायोत्तस्थौ तौ ह प्ररूष सप्तमाजग्म-तुख्तमेतैर्नामभिरामन्त्रयांचके बृहन्पाण्डरवासः सोम राजन्निति स नोत्तस्यो। वं पाणिना पेषं वोधयांचकार स होत्तस्थो ॥ १५ ॥ स होवाचाजातशत्रुर्व-त्रेष एतरसुप्तोऽभूच एष विज्ञानमयः पुरुषः केष तदाभूरकृत एतदागादिति तद् ह न मेने गार्ग्यः ॥ १६ ॥ स होवाचाजातशत्रुर्गत्रेष एतस्पुष्तोऽभूव षुष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्त-हैएय आकाशस्त्रसिक्छेते तानि यदा गृह्वात्यथ हैतत्पुरुषः खपिति नाम हाहृद्दीत एव प्राणी भवति गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुगृहीत श्रोत्रं गृहीतं अनः ॥ १७ ॥ स यत्रैतत्स्वस्यया चरति ते हास्य छोकास्तदुतेव महाराजी भवत्युतेव महाबाह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति स यथा महाराजो जानपदान् गुहीत्वा स्त्रे जनपदे यथाकामं परिवर्तेतैवमेवैष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्त्रे शरीरे यथाकामं परिवर्तते ॥ १८ ॥ अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्य-चन चेद हिता नाम नाड्यो द्वासस्रतिः सहस्राणि हृद्यात्पुरीततमभिप्रतिष्टन्ते लाभिः प्रत्यवस्प्य पुरीतित होते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महा-काह्मणो वाऽतिव्रीमानन्दस्य गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेते ॥१९॥ स स्योर्ण-नाभिखन्तुनोचरेचथाऽग्नेः क्षुदा विस्कुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे शाणाः सर्वे कोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युश्वरन्ति तस्योपनिषासत्यस्व सत्यमिति प्राणा वे सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥ २०॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

यो ह वै शिशुर साधान सप्तत्याधान सस्यूण सदामं चेद सस ह द्विषतो आतृव्यानवरूण हि। अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणसस्येदमेवा-धानमिदं प्रत्याधानं प्राणः स्थूणाचं दाम ॥१॥ तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते तथा इमा अक्षन्लोहिन्यो राजयस्ताभिरेन ए रहोऽन्वायत्तोऽथ या अक्षतापस्ताभिः पर्जन्यो या कनीनका तयादित्यो यत्कृष्णं तेनामिर्यच्छुकं तेनेन्द्रोऽधरयेनं वर्तन्या पृथिव्यन्वायत्ता चौरुत्तरया नास्यात्तं क्षीयते य एवं वेद्
॥ २ ॥ तदेष श्लोको भवति । अर्वाग्विलश्चमस ऊर्ध्वद्वप्नस्तस्मिन्यको निहितं
विश्वस्त्रप्म । तस्याऽऽसत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानित ।
अर्वाग्विलश्चमस ऊर्ध्वद्वप्न इतीदं तिच्छर एष ह्यवाग्विलश्चमस ऊर्ध्वद्वप्नस्ति।
न्यको निहितं विश्वस्त्पमिति प्राणा वे यक्षो विश्वस्त्र्यं प्राणानेतदाह तस्याऽऽसत
ऋषयः सप्त तीर इति प्राणा वा ऋषयः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति वाग्व्यष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते ॥ ३ ॥ इमावेव गोतमभरहाजावयमेव
गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्रजमद्भी अयमेव विश्वामित्रोऽयं
जमद्गिरिमावेव वसिष्ठकर्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं कर्यपो वागेवात्रिर्वाचा
ह्यामद्यतेऽत्तिर्हं वे नामतद्यद्तिरिति सर्वस्थात्ता भवति सर्वमस्थात्तं भवति
य एवं वेद ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे सूर्व चैवामूर्व च मर्लं चामृतं च स्थितं व यच सच त्यं च ॥ १ ॥ तदेतन्मूर्वं यद्ग्यद्वायोश्चान्तिरिक्षाचैतन्मर्लमेतिरस्थतमेतःसत्त-स्थेतस्य मर्लस्थेतस्य स्थितस्य सत एप रसो य एप तपित सतो होष रसः ॥ २ ॥ अथाम् र्वं वायुश्चान्तिरक्षं चेतदमृतमेतद्यदेतत्त्यं तस्येतस्य मूर्तस्येतस्य यत एतस्य स्थिप रसो य एप एति सिन्मण्डले पुरूष्ट्वस्यस्य होप रस इस्यिदेवतम् ॥ ३ ॥ अथाध्यात्ममिदमेव मूर्वं यदन्यःप्राणाच यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतन्मर्त्यमेतिरस्थतमेतःसत्तस्य सूर्वस्थेतस्य मर्तस्येतस्य स्थायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतहस्थतमेतःसत्तस्य स्थायस्य स्थायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्यं तस्येतस्य मर्तस्येतस्य स्थायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्यं तस्येतस्य मर्तस्येतस्य यत एतस्य सस्येप रसो योऽयं दक्षिणेऽभ्रन्पुरुषस्यस्य होष रसः ॥ ५ ॥ तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा माहारजनं वासो यथा पाण्डाविकं यथेन्द्रगोपो यथाऽद्ग्याचिर्यथा पुण्डरीकं यथा सङ्गद्विद्यत्तर्थं सङ्गद्विद्यत्तेत्व ह वा अस्य श्रीभेवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेति न होतस्य पुरुषस्य स्थास्य सस्यमिति प्राणा वे सस्य तेषामेष सस्यम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयं त्राह्मणम् ॥ ३ ॥

य

न

मैनेवीति होवाच याज्ञवल्क्य उधास्यन्वा अरेऽहमसात्स्यानाव्धा हुन्त तेऽनया कालायन्याऽन्तं करवाणीति ॥ १ ॥ सा होवाय मेत्रेयी यनु म इ**यं** अगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्ण खारकथं तेनासृता खामिति नेति होवाच वाज्ञवल्क्यो यथैवीपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितरं स्वाद्मुतत्वस्य तु बाइडजास्ति वित्तेनेति ॥ २ ॥ सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नासूना स्यां किमहं तेन क्याँ यदेव भगवान्वेद तदेव मे बूदीति ॥ ३ ॥ स होवाच याज्ञवल्लयः विद्या बतारे नः सती प्रियं भाषस प्रवास्त्व व्यादयास्यामि ते व्यावक्षाणस्य त के निविध्यासखेति ॥ ४ ॥ स होवाच न वा अरे प्रायुः कामाय पतिः वियो अवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायाये कामाय जाया विया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया विया भवति । न वा अरे पुत्राणां कासाय प्रजाः प्रिया अवन्त्वात्मनस्त कामाय प्रजाः प्रिया अवन्ति । न बा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्त कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं अवति । न वा अरे कोकानां कामाय कोकाः प्रिया अवन्यासमनस्तु कामाय कोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानी कामाय देवाः प्रिया भवन्त्वास्म-वस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि ब्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि व्रियाणि भवन्ति । न चा **करें** सर्वस्य कासाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं अवति । आस्मा वा अरे ब्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निद्धियासितव्यो मैनेदयात्मनो वा अरे दर्शनेन अवणेन मत्या विज्ञानेनेद्र सर्व विदि-तम् ॥ ५ ॥ मस तं परादायोऽन्यत्रास्मनो मस वेद क्षत्रं तं परादा-धौऽन्यज्ञात्मनः क्षत्रं वेद को कास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो कोकान्वेद देवास्तं पराबुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेव भूतानि तं पराबुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाधोऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेवं ब्रह्मेदं अत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीद्य सर्वं यन्यमारमा ॥ ६ ॥ स यथा दुन्दु सेईन्यमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्त्याद्वहणाय दुन्दुभेस्तु प्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ७ ॥ स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छहदाञ्छक्याह्रह-णाय शङ्खस्य तु प्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८॥ स यथा बीणायै बाधमानाय न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्त्याद्रहणाय बीणाय तु प्रहणेन बीणा-वाद्य वा शब्दो गृहीतः ॥९॥ स यथाऽऽद्गेषाग्नेरम्याहिताःप्रथम्भूमा विति-

थ. उ. ७

खात्मा न नस्यति यं ब्रह्मचयेणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनिमत्याचक्षते ब्रह्म-चर्यमेव तत्तदरश्च ह व ण्यश्चाणिवी ब्रह्मकोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीय सरस्वदश्वरथः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्वह्मणः प्रभुविमित हिरण्म-यम् ॥ ३ ॥ तद्य एवतावरं च ण्यं चाणिवी ब्रह्मकोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवेष ब्रह्मकोकस्तेषा सर्वेषु कोकेषु कामचारो भवति ॥ ४ ॥ इत्यहमाध्याये पद्ममः सण्डः ॥ ५ ॥

अथ या एता हृदयस नाड्यसाः पिङ्गलस्याणिम्नसिष्ठिन्ति ग्रुद्धस्य नीलस्य पीतस्य कोहितस्यस्यां वा भादित्यः पिङ्गल एष ग्रुङ्क एष नील एष पीत एष कोहितः॥ १॥ तद्यथा महापथ भातत उभी मामी गच्छतीमं चामुं वेवमेवैता भादित्यस्य रश्मय उभी लोको गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादि-व्याध्यत्यन्ते ता आसु नाडीषु स्प्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽ शुष्मि- ब्याध्यत्यन्ते ता आसु नाडीषु स्प्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽ शुष्मि- ब्याध्यत्यन्ते ता आसु नाडीषु स्प्ता अभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽ शुष्मि- ब्याध्यत्य स्प्ताः॥ २॥ तद्येत्रतस्य समस्तः संप्रसन्नः स्वमं न विजानात्यासु तदा नाडीषु स्प्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृश्चति तेजसा हि तद्या संपन्नो भवति ॥ ३॥ अथ यत्रैतद्यसाच्छरीरादुत्कामत्यथैतरेव रिश्मिभक्ष्वं- माम्मते स भोमिति वा होद्वा मीयते स याविक्षप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छ- खेतद्वे खेळ लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम् ॥ ५॥ तदेष श्रीकः। शतं चेका च हृदयस्य नाड्यसासां सूर्धानमभिनिःस्रतेका । तयो- ध्वीमायन्नस्तत्वमेति विष्व हुन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥ ६॥

इल्एमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

य भारमाऽपहतपाप्मा विजरो त्रिमृत्युर्विशोको विजिवस्सोऽपिपासः सत्य-कामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्ट्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वा श्र्य लोकाना-मोति सर्वा श्र्य कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिक्वाच ॥ १॥ तद्योभये देवासुरा अनुबुनुधिरे ते हो बुईन्त तमात्मानमन्विच्छामो वमात्मानमन्विष्य सर्वा श्र्य लोकानामोति सर्वा श्र्य कामानितीन्द्रो हैव देवा-नामभिप्रववाज विरोचनोऽसुराणां तो हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजा-पतिसकाशमाज्यमतुः ॥ २॥ तो ह द्वात्रिश्शतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तो ह प्रजापतिक्वाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तो हो चतुर्य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिवस्तोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वे-हृत्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वा श्र्य लोकानामोति सर्वा श्र्य कामान्यसन सात्मानमनुनिद्य निजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तिमच्छन्तावनास-मिति ॥ ३ ॥ तो ह प्रजापतिरुवाच य एपोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदसृतमभयमेतद्वह्रोत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चाय-भादशें कतम एष इत्येष उ एवेषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच ॥४॥ इत्यष्टमाध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

उद्शराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रवृतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षांचकाते तो ह प्रजापतिरुवाच किं पर्यथ इति तो होचतुः सर्वमेचेद्मावां भगव आत्मानं पर्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः प्रतिरूप-सिति ॥ १ ॥ तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वछंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वो-दशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भृत्वोदशरावे-**उवेक्षांचकाते तो ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥ २ ॥ तौ होचतु-**र्थथेवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृताविसेष आत्मेति होवाचेतदमृतमभयमेत-इस्रोति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ॥ ३ ॥ तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवा-चानुपलभ्यात्मानमननुविद्य नजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृद्य एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेम्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मा-नमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुमो लोकाववामोतीमं ॥ ४॥ तस्माद्प्यचेहाददानमश्रद्धानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणा द्योषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति सर्स्सुर्वन्स्येतेन द्यसुं छोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ५ ॥

इल्पष्टमाध्यायेऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ हेन्द्रोऽप्राप्येव देवानेतद्भयं ददर्श यथेव खह्वयमस्मिञ्छरीरे साध्व-कंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवाय-मसिक्षन्येऽन्धो भवति स्नामे स्नामः परिवृक्षे परिवृक्ष्णोऽस्येव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति ॥ १ ॥ नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति स समित्पाणिः पुनरे-याय तर् ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्रावाजीः साधं विरोचनेन किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच यथेव खह्वयं भगवोऽसिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एव-मेवायमसिक्षन्येऽन्धो भवति स्नामे सामः परिवृक्षे परिवृक्ष्णोऽस्येव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥ एवमेवेष मघव- श्चिति होवाचैतं खेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रि देशतं वर्षाः णीति स हापराणि द्वात्रि रशतं वर्षाण्युवास तस्मे होवाच ॥ ३ ॥ इत्यष्टमाध्याये नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

व एष स्त्रमे महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतवस्त्रतमभयभेतद्रह्येति स ह शान्तहृदयः प्रवद्याज स हाप्राप्येव देवानेतद्भयं दृद्शं तद्यद्यपिद् शरी-रमन्धं सवत्यनन्धः स भवति यदि स्नाममस्नामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥ न वधेनास्य हृष्यते नास्य स्नाम्येण स्नामो प्रन्ति त्वेवेनं विच्छाद्य-त्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यासीति ॥ २ ॥ स्व समित्पाणिः पुनरेयाय तक्ष् ह प्रजापतिस्वाच मघवन्यच्छान्तहृद्यः प्रावाजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपिदं भगवः शरीरसन्धं भवत्य-नन्धः स भवति यदि स्नाममस्नामो नैवेषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ३ ॥ न वधेनास्य हृत्यते नास्य साम्येण स्नामो प्रनित त्वेवेनं विच्छाद्यन्तीवाप्रिय-वेत्तेच भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवेष मघवितिते होवा-वेतं त्वेव ते भूयोऽनुत्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिक्शतं वर्षाधीति स हाडपराणि द्वात्रिक्शतं वर्षाधीति स्व

इत्यष्टमाध्याये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

तद्यनेतत् सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वपं न विजानात्येष आत्मेति होवानेतद्यतमभयमेतद्रह्मेति स ह नान्तहृदयः प्रववाज स हाप्राप्येव देवानेसत्रयं द्दर्श नाह खल्वयमेव संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्प्रीति नो प्रवेमानि भूतानि विनानमेवापीतो भवति नाहमन्न भोग्यं पद्यामीति ॥ १ ॥
स समित्याणिः पुनरेयाय त है ह प्रजापित्वाच मघवन्यच्छान्तहृद्यः
प्रावाजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होद्याच नाह खल्वयं भगव एव संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्प्रीति नो एवमानि भूतानि विनानमेवापीतो
भवति नाहमन्न भोग्यं पद्यामीति ॥ २ ॥ एवमेवेष मघवित्रति होवाचैतं
त्वेव ते भूयोऽनुत्याख्यास्यामि नो प्वान्यन्तेतसाद्वसापराणि पञ्च वर्षाण्यीति
स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशत् संपेदुरेतत्त्वदाहुरेकशत ह वै
वर्षाण मघवान्प्रजापता महाचर्यमुवास तस्मे होवाच ॥ ३ ॥

इलाष्ट्रमाध्याय एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

मघषन्मसं वा इद्र शरीरमात्तं मृत्युना तद्यामृतस्याशरीरस्यास्यनोऽधिः इनमात्तो वे सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वे सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोदः पहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥ अशरीरो वाबुरभं R

t

T-

स्र

11

तं

विद्युत्स्तनियतुरशरीराण्येतानि तद्ययतान्यमुद्यादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिइपसंपद्य स्त्रेन रूपेणाभिनिष्णद्यन्ते ॥ २ ॥ एनमेनेष संप्रसादोऽस्थाइक्टरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्त्रेन रूपेणाभिनिष्ण्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जञ्चत्कीडन्तममाणः स्त्रीभर्वा यानेषां ज्ञातिभिर्वा नोपजन्द स्वरित्र शरीर स यथा प्रयोग्य शाचरणे युक्त एनमेनायमस्मिन्छरीरे प्राणो युक्तः ॥ ३ ॥ अथ यत्रैतदाकाशमनुनिषणं चक्षुः स चाक्षुषः
पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो नेदेदं जिन्नाणीति स आत्मा गन्धाय न्नाणमथ
यो नेदेदमभिन्नाहराणीति स बात्माऽभिन्नाहाराय नागथ यो नेदेद श्रुणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ४ ॥ अथ यो नेदेदं मन्नानीति स
आत्मा मनोऽस्य देनं चक्षुः स ना एष एतेन देनेन चक्षुषा मनसेताल्
कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥ य एते त्रह्मजोके तं ना एतं देना आत्मानमुपासते
वास्तात्वार्षेश्र कामान्यस्तमात्मानमन्तिच किजानातीति ह प्रजापतिकामोति सर्वार्थश्र कामान्यस्तमात्मानमन्तिच किजानातीति ह प्रजापतिक्वार्य प्रजापतिक्वाच ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्याये द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

इयामाच्छवलं प्रपये शवलाच्छयामं प्रपश्चेऽश्व इव रोमाणि विभूय पापं चन्द्र इव राहोर्सुकालमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतातमा बहाकोकमिसं-अवामीत्यभिसंभवामीति ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निवेहिता ते यदन्तरा तद्वस्य तदस्तर स आत्मा प्रजापतेः सभा वेदम प्रपचे यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञी यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः इयेतमदत्कमदत्कर्र इयेतं लिन्दु माऽभिगां लिन्दु माऽभिगाम् ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

तद्धेतद्वह्या प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आधार्यकुछा-देदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिरोषेणाभिसमावृत्य कुदुम्बे शुनो देखे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विद्धदारमि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहिए-सन्त्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेतं वर्तयन्यावदायुषं व्यक्तकोकमिस्रं-पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ १॥

इत्यष्टमाध्याये पन्नदशः खण्डः ॥ १५ ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥ ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्रक्षः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मापनिषदं माऽहं ब्रह्म निराक्तयाँ मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराक्त-रणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मिय सन्तु ते मिय सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति छान्दोग्योपनिषत्संपूर्णा॥ ९॥

बृहदारण्यकोपनिषत् ॥ १० ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णाःपूर्णमुद्च्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-शिष्यते ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ उषा वा अश्रस्य मेध्यस्य शिरः ॥ सूर्यश्रक्षवांतः प्राणो व्यात्तमिन्निन्दः संवत्सर आत्माऽश्वस्य मेध्यस्य ॥ द्याः पृष्ठमन्तरिक्षसुद्रं पृथिवी पाजस्यं दिशः पाश्वं अवान्तरिद्याः पर्शव ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो मा सामि । जवध्य सिकताः सिन्धवो गुदा यवृच्च क्रोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च कोमानश्च पर्वता अर्थे पुरता-नमहिमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चानमहिमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चानमहिमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चानमहिमाऽन्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी सहिमानावभितः संबभूवतः । हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानवांऽसुरानश्चो मनुष्यान् समुद्र एवास्य बन्धः समुद्रो योनिः ॥ २ ॥

इति प्रथमाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

नैवेह किंचनाम आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत्। अशनायगाऽशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽदुस्तात्मन्वी स्वामिति। सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्ता-षते वे मे कमभूदिति तद्वीकंस्यार्कत्वं क्र ह वा अस्मै भवति य एवमेत-देकंस्यार्कत्वं वेद ॥१॥ आपो वा अर्कस्तचद्वार् शर आसीत्तत्समहन्यत। सा पृथित्यभवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तसस्य तेजोरसो निरवर्तताप्तिः॥ २॥ स त्रेधात्मानं व्यदुस्तादित्यं तृतीयं वायुं तृतीय् स एष प्राणस्त्रेधा विहितः। तस्य प्राची दिक्शरोऽसौ चासौ चेमौं। अथास्य प्रतीची दिक्षुच्छमसी चासौ ध सवस्यो दिख्णा चोदीची च पार्शे हो। पृष्टमन्तिरक्षमुद्रिसयमुरः स 5-

व-

भ्रे-

वी

[28]

*

श्र

ते

17-

ात यो

धुः

11-

त-

ना

स

एपोऽप्स प्रतिष्ठितो यत्र क चैति तदेव प्रतितिष्ठत्येवं विद्वान् ॥ ३ ॥ सोऽका-भयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनर समभवदेश-नाया मृत्युक्त यदेत आसीत्स संवत्सरोऽभवत् । न ह पुरा ततः संवत्सर णास तमेतावन्तं कालमबिभः । यावान्संवत्सरस्तमेतावतः कालस्य परस्ता-दस्जत तं जातमभित्र्याददात्स भाणकरोत्सेव वागभवत् ॥ ४ ॥ स ऐक्षत यदि वा इससिसम् स्ये कनीयोऽन्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेद्र सर्वमस्त्रत यदिदं किंचचों यजू १षि सामानि च्छन्दा १ सि यज्ञान्य्रजाः पञ्जून् । स यद्यदेवास्त्रत तत्तदतुमिश्रयत सर्व वा अत्तीति तद्दितेरदितिस्वर सर्व-खैतस्याता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमैतद्दिनेरदितित्वं वेद ॥ ५॥ स्रोऽकामयत भूयसा यज्ञेन भूयो यजेयेति । सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्य आन्तस्य तप्तस्य यशो वीर्यमुदकामत् । प्राणा वै यशो वीर्यं तस्प्राणेषुकान्तेषु शरीर भथितुमधियत तस्य शरीर एव मन आसीत् ॥ ६ ॥ सोऽकामयत क्षेध्यं म इद्ध स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति । ततोऽश्वः समभवद्यदश्वत्तन्मेध्य-सभूदिति तदेवाधमे पस्याधमे धत्वम् । एष ह वा अश्वमे यं वेद य एनमेवं वेद् । तमनवरुध्यैवामन्यत । तु संवत्सरस्य परस्तादात्मन आलभत । पश्चन्दे-वताभ्यः प्रत्योहत् । तस्मात्सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभनत ॥ एष ह वा अश्वमेधो य एप तपति तस्य संवत्सर आत्माऽयमग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मा-बस्तावेतावर्काश्वमेधो । सो पुनरेकैव देवता भवति मृःयुरेवाप पुनर्मृत्युं जयति नैनं मृत्युरामोति मृत्युरस्यात्मा भवस्येतासां देवतानामेको भवति ॥ ७ ॥

इति प्रथमाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च । ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त ते ह देवा ऊचुईन्तासुरान्यज्ञ उद्गीयेनात्यया- भेति ॥ १ ॥ ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेम्यो वागुदगायत् । यो वाचि भोगस्तं देवेम्य आगायद्यत् कल्याणं वदति तदासमे । ते विदुरनेन वे न उद्गात्राऽलेष्यन्तीति तमभिद्वत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवे- दमप्रतिरूपं वदति स एव स पाप्मा ॥ २ ॥ अथ ह प्राणमूचुस्त्वं न उद्गा- योति तथेति तेम्यः प्राण उदगायदाः प्राणे भोगस्तं देवेम्य आगायदात् कल्याणं जिन्नति तदासमे । ते विदुरनेन वे न उद्गात्राऽलेष्यन्तीति तमभिद्वत्य पाप्म- नाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं जिन्नति स एव स पाप्मा ॥ ३ ॥ अथ ह चक्षुरूचुस्नं व उद्गायेति तथेति तेम्यश्चक्षुरुदगायन् । यद्यक्षुवि

भीगसं देवेश्य भागायणकस्याणं पश्यति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्राsक्षेत्र्यन्तीति तमिष्ट्रस्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं पश्यति स एव स पाप्पा ॥ ४ ॥ अय ह श्रोत्रमृचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यः श्रोत्रमुद्गायद्यः श्रोत्रे भोगस्तं देवेश्य आगायद्यानस्याण् श्रणोति तदासमने । ते दिद्रनेन वे न उद्गात्राऽस्येष्य नतीति तमभिद्रस्य पापमनाऽवि-व्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपः शुणोति स एव स पाप्सा ॥ ५॥ अथ ह मन ऊचुरत्वं न उद्गायेति तथेति तेश्यो मन उदगायद्यो मनासि भोगसं देवेश्य आगाद द्यत् कल्याण ए संकल्पयित तदात्मने । ते विद्रनेन वै न अक्रामाऽत्येष्यन्तीति तमभिद्धत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमम-तिक्पर संकरपयति स एव स पाप्मेवमु खब्वेता देवताः पाप्मभिरुपासुः बबोवमेनाः पाप्सनाऽविध्यन् ॥ ६ ॥ अथ हैससासन्यं प्राणस्च सन् न उद्धा-येति तथेति तेश्य एव प्राण उद्गायत्ते विद्रुश्नेन वे न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तद्भिद्वस्य पाप्मनाविव्यत्सन्स यशाऽइमानमृत्वा लोष्टो विध्व ५ सेतेव ५ हैव विध्वं रसमाना विष्वच्चो विनेशुस्ततो देवा अभवन् परासुरा अवत्यात्मना परास्य द्विषन्त्रातृत्यो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ ते होचुः क नु सोऽभूयो न इत्थमसत्तेत्वयमास्येऽन्तरिति सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानार हि रसः॥ ८ ॥ सा वा एषा देवता दूर्नाम दूर् इस्या मृत्युर्दूर् ह वा अस्मान्मृत्युर्भवित य एवं वेद ॥ ९ ॥ सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं सृत्युसपहत्व यत्रासां दिशामन्तसः द्रमयांचकार तदासां पाष्मनो विन्यद्धात्तस्माञ्च जन-मियान्तिमयान्नेत्पाप्मानं सृत्युमन्ववायानीति ॥ १० ॥ सा वा एषा देव् वैतासां देवतानां पाष्मानं मृत्युमपहत्याथैना मृत्युमत्यवहत् ॥ ११ ॥ स वै वाचमेव प्रथमामत्यवहत्सा यदा ऋत्युमत्यमुच्यत सोऽभिरभवत्सोऽयमग्निः परेण मृत्युमतिकान्तो दीप्यते ॥ १२ ॥ अथ प्राणमत्यवहत्स यदा मृत्यु-मत्यमुच्यतं स वायुरभवत्सोऽयं वायुः परेण मृत्युमतिकान्तः पवते ॥ १३॥ भय चक्षुरत्यवहत्तचदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत्सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिकान्तस्तपति ॥ १४ ॥ अथ श्रोत्रमत्यवहं त्तवदा मृत्युमत्यसु-च्यत ता दिशोऽभव र स्ता इमा दिशः परेण मृत्युमतिकान्ताः ॥ १५॥ अथ मनोऽत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स चन्द्रमा अभवत्सोऽसी चन्द्रः परेण सुखुमतिकान्तो भात्येव इ वा एनमेषा देवता मृत्युमतिवहति य एवं वेद u १६ ॥ अथाःमनेऽस्राधमागायद्यद्धि किंचासम्बतेऽनेनैव तद्द्यत इह प्रतितिष्ठति ॥ १७ ॥ ते देवा अनुवन्नेतावद्वा इद् सर्व यद् सं तदारमन

9

77-

avi

ति

ति

चे-

से

न

y-

g-7-

ति

a

न

न

11

य

य

Ĩ-

[-

T:

आगासीरन नोऽस्मिन्न आभजस्वेति ते वै माऽभिसंविशतेति तथेति तर् समन्तं परिण्यविशनत । तसाद्यद्नेनान्नमत्ति तेनैतास्तृप्यन्त्येव ह वा एन ५ स्वा अभिसंविशन्ति भर्ता स्वाना अष्टः पुर एता भवत्यसादोऽधिपतिर्य एवं बेढ य उ हैवंविद् स्वेषु प्रति प्रतिर्बुभूपति न हैवालं भार्येन्यो भवत्यथ य एवेतमनुभवति यो वैतमनु भार्यान् बुभूर्वति स हैवालं भार्यभ्यो भवति ॥ १८ ॥ सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानार हि रसः प्राणो वा अङ्गानार रसः प्राणी हि वा अङ्गाना र रसस्तस्माचस्मात्कस्मा चाङ्गात्प्राण उत्क्रामित तदेव तच्छाष्यत्येष हि वा अङ्गाना रसः ॥ १९ ॥ एष उ एव बृहस्पतिर्वाग् वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः ॥ २० ॥ एष उ एव ब्रह्मणस्पति-र्वाग् वे ब्रह्म तस्या एप पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ॥ २१ ॥ एप उ एव साम वाग वे सामेप सा चामश्चेति तत्सामः सामत्वम् । यहेव समः ह्रिषणा समो मक्किन समी नागेन सम एभिखिभिलोंकैः समोऽनेन सर्वेण तसाह्रेव सामाश्रुते साम्नः सायुज्य≺ सलोकतां य एवमेतरसाम वेद ॥ २२ ॥ एष उ वा उद्गीयः प्राणो वा उत्प्राणेन हीद्र सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच गीथा चेति स उद्गीथः ॥ २३ ॥ तद्धापि ब्रह्मदत्तश्चेकितानेयो राजानं अक्ष-यञ्जवाचायं त्यस्य राजा मूर्धानं विपातयताद्यदितोऽयास्य आङ्गिरसोऽन्येनो-दुगायदिति वाचा च ह्येव स प्राणेन चोदगायदिति ॥ २४ ॥ तस्य हैतस्य साझो यः स्वं वेद भवति हास्य स्वं तस्य वे स्वर एव स्वं तसादार्विज्यं करिष्यन्वाचि स्वरमिच्छेत तया वाचा स्वरसंपन्नयार्त्विज्यं कुर्यात्तसाणजे स्वरवन्तं दिदश्चन्त एव । अथो यस्य स्वं भवति भवति हास्य स्वं य एवमेत-त्साम्नः स्वं वेद ॥ २५ ॥ तस्य हैतस्य साम्नो यः सुवर्णं वेद भवति हास्य सुवर्णं तस्य वे स्वर एव सुवर्णं भवति हास्य सुवर्णं य एवमेतःसाम्नः सुवर्णं वेद ॥ २६ ॥ तस्य हैतस्य साम्नो यः प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठति तस्य वै वागेव प्रतिष्ठा वाचि हि खल्वेष एतःप्राणः प्रतिष्ठितो गीयतेऽन्न इत्यु हैक भाहुः ॥ २७ ॥ अथातः पवमानानामेवाभ्यारोहः स वै खलु प्रस्तोता साम प्रस्तौति स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत्। असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्यो-तिर्गमय मृत्योमांऽमृतं गमयेति स यदाहासतो मा सद्गमयेति मृत्युर्वा अस-त्सद्मृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह तमसो मा ज्योतिर्गम-येति मृत्युवें तमो ज्योतिरमृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मां कुर्वित्येवैतदाइ मृत्योमीऽमृतं गमयेति नात्र तिरोहितमिवास्ति । अथ यानीतराणि स्त्रोत्राणि तेष्वात्मनेऽन्नाद्यमागायेत्तसादु तेषु वरं वृणीत यं कामं कामयेत तक्ष स एप एवंविदुद्वातात्मने वा यजमानाय वा यं कासं कासयते तमागायति तस्ति-हुनान्दुरायाः छोकजिदेव न हैवालोक्यताया आशाऽस्ति य एवमेतत्साम वेद ॥ २८ ॥

इति प्रथमाध्याये तृतीयं त्राह्मणम् ॥ ३ ॥

आसमैवेदमम् आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदास्मनोऽपद्यत व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत्तस्माद्ग्येतद्यीमन्त्रितोऽहमयमित्ये-सोऽहमसीत्रप्रे वाम्र उक्तवाऽथान्यन्नाम प्रवृते यदस्य भवति स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्वस्मात्सर्वोन्पा-प्मन औषत्तसात्पुरुप क्षोषति ह वे स तं योऽस्मात्पूर्वो बुभूषति य एवं वेद ॥ १ ॥ सोऽविभेत्तसादेकाकी बिमेति स हायमीक्षांचके यन्मद्न्यवास्ति कसान्न निभेमीति तत एवास भयं वीयाय कसान्त्रभेष्यद्वितीयाद्वे भयं भवति ॥ २ ॥ स वै नैव रेमे तसादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् । स हैतावानास यथा स्त्रीपुमा सेंग संपरिष्वक्ती स इसमेवात्मानं हेथाऽपातय-त्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमधंवृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञ-वल्क्यसासादयमाकाशः खिया पूर्यत एव ता समभवत्ततो मनुष्या अजा-यन्त ॥ ३ ॥ सा हेयमीक्षांचके कथं नु माऽऽत्मन एव जनयित्वा संभवति हन्त तिरोऽसानीति सा गौरभवदृषभ इतरस्ता समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त वड-वेतराऽभवदृषवृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ता समेवाभवत्तत एकशफ-मजायताऽजेतराभवद्वसा इतरोऽविरितरामेष इतरसा समेवाभवत्ततोऽजाव-योऽजायन्तैवसेव यदिदं किंच मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत ॥ ४ ॥ सोऽवेद्हं वाव सृष्टिरस्यह १ हीद र सर्वमस्क्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्या र हा-स्पैतसां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥ अथेत्यभ्यमन्थत्स मुखास योनेईस्ताभ्यां चाप्रिमस्जत तसादेतद्भयमलोमकमन्तरतोऽलोमका हि योनिरन्तरतः । तद्य-दिदमाहुरसुं यजासुं यजेलेकेकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ होव सर्वे देवाः। अथ यत्किचेदमाई तद्रेतसोऽस्जत तदु सोम एतावद्वा इद् सर्वमनं चैवा-बादश्र सोम एवान्नमग्निरन्नादः सैषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टिर्यच्छेयसो देवानसृज-ताथ यन्मर्थः सञ्चमृतानसृजत तसादितसृष्टिरतिसृष्ट्या हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥ तद्धेदं तर्धव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रिय-तासौ नामायमिद्र रूप इति तदिद्मप्येतहिं नामरूपाभ्यामेव व्याकिय-तेऽसौनामायमिद्रस्र इति स एष इह प्रविष्टः। आनलाग्रेभ्यो यथा श्रुरः श्रुर-भानेऽवहितः स्याद्विश्वंभरो वा विश्वंभरकुलाये तं न पश्यन्ति । अकृत्स्त्रो हि स प्राणक्षेत्र प्राणो नाम भवति । वदन् वाक् पश्यक्षश्चः श्रुण्वन् श्रोत्रं मन्वानी मनसान्यसाता कर्मनामान्येव। स योऽत एकैक्युपासी न स वेदाकृत्त्री

खेषोऽत एकैकेन भवत्यात्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति । तदेतत्पद-नीयमस्य सर्वस्य यद्यमात्माऽनेन होतत्सर्वं वेद । यथा ह वे पदेनानुविनदे-देवं कीर्ति श्लोकं विन्दते य एवं वेद ॥ ७ ॥ तदेतत्त्रेयः पुत्रात्त्रेयो वित्ता-त्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यद्यमात्मा । स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं भ्रूयात् प्रियर रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथेव स्थादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानसेव प्रियसुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति ॥ ८ ॥ तदाहुर्यं-द्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यन्ते किमु तद्रह्माऽवेद्यस्मात्तःस**र्वम-**अवदिति ॥ ९ ॥ त्रह्म वा इदमप्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मासीति । तस्मात्तत्सर्वमभवत् तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तद्भवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तद्देतत्पश्यन्नषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभव सूर्यश्चेति । तिदिद्म प्येतिहीं य एवं वेदाऽहं ब्रह्मास्मीति स इद् सर्व अवित तस्य ह न देवाश्चनाभूत्या ईशते। आत्मा होपार स भवत्यथ योऽन्यां देवतासुपास्तेऽन्यो-इसावन्योऽहमसीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्। यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुअयुरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्लेकस्मिन्नेव पशावादी-यमाने अप्रियं भवति किमु बहुषु तसादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विशुः ॥१०॥ ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकर सन्न व्यभवत्। तच्छ्रेयोरूपमत्य-सृजत क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति । तसात् क्षत्रात्परं नास्ति तसाद्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादु-पास्ते राजसूर्ये क्षत्र एव तद्यशो दधाति सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्वहा । तस्माय-द्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उपनिश्रयति स्वां योनि य उ एनर हिनस्ति स्वार स योनिमृच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेया सस हिर-सित्वा ॥ ११ ॥ स नैव व्यभवत् स विशमस्जत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ॥ १२ ॥ स नैव व्यभवत् स शोदं वर्णमस्जत पूषणिमयं वे पूषेय ही द्र सर्व पुष्यति यदिदं किंच ॥ १३ ॥ स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यस्जत धर्म तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धमेस्तस्माद्धमीत्परं नास्त्यथो भवलीयान् बलीया एसमाश एसते भ्रमेंण यथा राज्ञैवं यो वे स भर्मः सत्यं वे तत्तसात् सत्यं वदन्तमाहुर्भम वद्तीति धर्म वा वद्न्त सत्यं वद्तीत्येत छोवैतदुभयं भवति॥ १४॥ तदेतह्रह्म क्षत्रं विद शुद्रसाद्गिनैव देवेषु ब्रह्माभवद्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रि-येण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रसस्माद्मावेव देवेषु कोकमिच्छन्ते ब्राह्मणे मनुष्येष्वेताभ्याएँ हि रूपाभ्यां ब्रह्माभवत् । अथ यो ह वा असा- छोकात्सं कोकमदृष्टा प्रति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽन-नुक्तोऽन्यहा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तन्ना स्थान्ततः क्षीयत एवात्मानमेव छोकमुपासीत स य आत्मानमेव छोकसुपास्त न हास्य कर्म क्षीयते । अस्माद्धेवात्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते ॥ १५॥ अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यद्नुवृते तेन ऋषीणामथ यत्वितृभ्यो निपृणाति यत्प्रजा-मिच्छते तेन पितृणामथ यनमनुष्यान्वासयते यदेश्योऽशनं ददाति तेन मनु-ब्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पश्चनां यदस्य गृहेषु श्वापदा वया एसापिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोको यथा ह वै स्वाय लोका-यारिष्टिमिच्छेदेव र हैवंविदे सर्वाणि भूतान्यरिष्टिमिच्छन्ति तद्वा एतद्विदितं मीमा सितम् ॥ १६ ॥ आत्मैवेदमय आसीदेक एव सोऽकामयत जाया से स्याद्य प्रजायेयाथ वित्तं में स्याद्य कर्म कुर्वीयेत्येतावान वे कामो नेच्छ ४ श्र नातो भूयो विन्देत्तस्माद्प्येतहींकाकी कामयते जाया में स्याद्थ प्रजायेयाथ वित्तं में स्याद्य कर्म कुर्वीयेति स यावद्प्येतेषामेकैकं न प्राप्तोत्यकुत्स्त्र एव तावनमन्यते तस्यो कृत्स्रता मन एवास्यात्मा वाग्जाया प्राणः प्रजा चक्षमी-तुपं वित्तं चक्षुपा हि तद्दिन्दते श्रोत्रं दैव अोत्रेण हि तच्छृणोत्यात्मेवास्य कर्मात्मना हि कर्म करोति स एव पाङ्की यज्ञः पाङ्कः पुछाः पुरुषः पाङ्कमिद्र सर्व यदिदं किंच तदिद्र सर्वमामोति य एवं वेद ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयिता। एकमस्य साधारणं हे देवान-भाजयत्। त्रीण्यात्मनेऽकुरुत पशुभ्य एकं प्रायच्छत्तस्मिन्सवं प्रतिष्ठितं यञ्च प्राणिति यञ्च न। कस्मात्तानि न श्रीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदा। यो वैतामश्चितिं वेद सोऽन्नमत्ति प्रतीकेन। स देवानिपाच्छिति स ऊर्जमुपजीवतीति श्लोकाः ॥ १॥ यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयत्पितेति मेधया हि तपसाऽजनय-त्पितैकमस्य साधारणमितीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते। स य एत-दुपास्ते न स पाप्मनो व्यावर्तते मिश्र् होतत्। हे देवानभाजयदिति हुतं च प्रहुतं च तस्माद्देवभ्यो जुह्नति च प्र च जुह्नत्यथो आहुर्दर्शपूर्णमासाविति । तस्मानेष्टियाजुकः स्यात् । पश्चभ्य एकं प्रायच्छिदिति तत्पयः। पयो होवामे मनुष्याश्च पश्चश्चोपजीवन्ति तस्मात् कुमारं जातं घृतं वैवाग्ने प्रतिलेहयन्ति सनं वाऽनुधापयन्त्यथ वत्सं जातमाहुरतृणाद् इति । तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं यञ्च प्राणिति यञ्च नेति पयित हीद् सर्वं प्रतिष्ठितं यञ्च प्राणिति यञ्च न।

तवाहिद्याहः संवत्सरं पयसा जुह्नद्प पुनर्मृत्यं जयतीति न तथा विद्यावदह-हैव जहाति तदहः पुनर्मृत्युमपजयत्येवं विद्वान्सर्वे हि देवेभ्योऽबाद्यं प्रय-कारित । कस्माचानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदेति पुरुषो वा अक्षितिः स श्रीदससं पुनः पुनर्जनयते । यो वैतामक्षितिं चेदेति पुरुषो वा अक्षितिः स ही दमक्षं धिया धिया जनयते । कर्मिभर्यद्वैतन्न कुर्यास्थीयेत ह सोऽन्नमिस प्रतीकेनेति सुखं प्रतीकं सुखेनेत्येतस्स देवानपिगच्छति स ऊर्जसपनीवतीति प्रशास्ता ॥ २ ॥ त्रीण्यात्मनेऽकरुतेति मनो वाचं प्राणं तान्यात्मनेऽकरुतान्य-असना असूवं नादर्शमन्यत्रमना असूवं नाश्रीषमिति मनसा द्वाव पद्यति अनला श्रणोति । कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धतिरधतिईाधीं-भीतियेत्समर्वं मन एव तसादपि प्रष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति यः कश्च क्रव्हो वागेव सेषा ह्यन्तमायत्तेषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः खमानीऽन इत्येतत्सर्वं प्राण एवेतन्मयो वा अयमात्मा वाज्ययो मनोमयः शाणमयः ॥ ३ ॥ त्रयो लोका एत एव वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्षलोकः शाणोऽसौ लोकः ॥४॥ त्रयो वेदा एत एव वागेवर्गेदो मनो यजुर्वेदः प्राणः कासबेदः ॥ ५ ॥ देवाः पितरो मनुष्या एत एव वागेव देवा मनः पितरः शालो मनुष्याः ॥ ६ ॥ पिता माता प्रजेत एव मन एव पिता वाङ्याता त्राणः प्रजा ॥ ७ ॥ विज्ञातं विजिज्ञास्यमविज्ञातमेत एव यक्तिंच विज्ञातं वाचस्तद्र्पं वाग्घि विज्ञाता वागेनं तद्भुत्वाऽवति ॥ ८ ॥ यत्किंच विजिज्ञासं सनसस्तद्वपं मनो हि विजिज्ञास्यं मन एनं तद्भवाऽवति ॥ ९ ॥ यर्किचा-विज्ञातं प्राणस्य तद्रूपं प्राणो द्धविज्ञातः प्राण एनं तद्भुत्वाऽवति ॥ १०॥ तस्यै वाचः पृथिवी शरीरं ज्योतीरूपमयमग्निस्तद्यावत्येव वाक्तावती पृथिवी तावानयमग्निः ॥ ११ ॥ अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं ज्योतीरूपमसावादिस-स्तबावदेव मनस्तावती द्यौसावानसावादित्यस्तौ मिथुनर समैतां ततः प्रा-णोऽजायत स इन्द्रः स एषोऽसपत्नो द्वितीयो वै सपत्नो नास्य सपत्नो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ अथैतस्य प्राणस्यापः शरीरं ज्योतीरूपमसौ चन्द्रस-बावानेव प्राणस्तावत्य भापस्तावानसौ चन्द्रस्त एते सर्व एव समाः सर्वेऽ-नन्ताः स यो हैतानन्तवत उपास्तेऽन्तवन्त् स छोकं जयस्यथ यो हैतान-नन्तानुपास्तेऽनन्त्र स कोकं जयति ॥ १३ ॥ स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशककस्तस्य रात्रय एव पञ्चदश कला श्रुवैवास्य घोडशी कला स रात्रि-भिरेवा च पूर्वतेऽप च क्षीयते सोऽमावास्य रात्रिमेतया पोडस्पा करुया सर्वमिदं प्राणभृद्नुप्रविद्य ततः प्रातर्जायते तस्मादेता रात्रिं प्राणभृतः प्राणं न विच्छिन्द्यादिप कृकलासस्यैतस्या एव देवताया अपचित्ये ॥ १४ ॥ यो वे स संवत्सरः प्रजापतिः पोडशकलोऽयमेव स योऽयमेवंविःपुरुपस्तस्य वित्त-मेव पञ्चदश कला आत्मैवास्य पोडशी कला स वित्तेनेवा च पूर्यतेऽप च क्षीयते तदेतन्नभ्यं यदयमात्मा प्रधिर्वित्तं तस्माद्यद्यपि सर्वज्यानि जीयत आत्मना मेजीवति प्रधिनाऽगादिसेवाहुः॥ १५॥ अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणेव जस्यो नान्येन कर्मणा कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको देवलोको वै लोकाना अष्ट सस्माहिन्दां प्रश्सन्ति ॥ १६ ॥ अथातः संप्रतिर्यदा प्रेष्यनमन्यतेऽथ पुत्रमाह त्वं ब्रह्म स्वं यज्ञस्वं लोक इति स पुत्रः प्रत्याहाहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक इति यहै किंचानकं तस्य सर्वस्य ब्रह्मेत्येकता। ये वे के च यज्ञास्तेषा सर्वेषां यज्ञ इसेकता ये वै के च लोकास्तेषार सर्वेषां लोक इसेकतेतावहा इदर सर्व-मेत-मा सर्वे सन्नयमितोऽभुनजदिति तस्मात् पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुस्त-सादेनमनुशासित स यदेवंविदसालोकास्त्रैत्यथैभिरेव प्राणः सह पुत्रमावि-शति । स यद्यनेन किंचिद्दणयाऽकृतं भवति तसादेनर सर्वसात्पुत्रो मुञ्जति तसात्प्रत्रो नाम स पुत्रेणैवासिँ छोके प्रतितिष्ठत्यथैनमेते देवाः प्राणा अमृता आविशन्ति ॥ १७ ॥ पृथिच्ये चैनमग्नेश्च देवी वागाविशति सा वे देवी वा-रयया यद्यदेव वदति तत्तद्भवति ॥ १८ ॥ दिवश्चेनमादित्याच देवं मन आवि-शति तहुँ दैवं मनो येनानन्धेव भवत्यथो न शोचति ॥ १९ ॥ अस्यश्चेनं चन्द्र-मसश्च दैवः प्राण आविशति स वै दैवः प्राणो यः संचर श्रासंचर श्र न व्यथतेऽथो न रिष्यति स एवंवित्सर्वेषां भूतानामात्मा भवति यथैषा देवतैव र स यथैतां देवता सर्वाणि भूतान्यवन्त्येव हैवंविद सर्वाणि भूतान्यवन्ति । यदु किंचेमाः प्रजाः शोचन्यमैवासां तद्भवति पुण्यमेवामुं गच्छति न ह वे देवान पापं गच्छति ॥ २० ॥ अथातो वतमीमा सा प्रजापति ई कर्माणि सस्जे तानि सृष्टान्यन्योन्येनास्पर्धन्त वदिष्याम्येवाहमिति वाग्द्धे द्रक्ष्या-म्यहमिति चक्षुः श्रोष्याम्यहमिति श्रोत्रमेवमन्यानि कर्माणि यथाकर्म तानि मृत्युः श्रमो भूत्वोपयेमे तान्यामोत्तान्यास्वा मृत्युरवारुन्द तस्माच्छ्राम्यत्येव वाक् श्राम्यति चक्षुः श्राम्यति श्रोत्रमथेममेव नामोद्योऽयं मध्यमः प्राण-स्तानि ज्ञातुं दिधिरे। अयं वै नः श्रेष्ठो यः संचर्श्व्यासंचर्श्व न व्यथतेऽथो न रिष्यति इन्तास्येव सर्वे रूपमसामेति त एतस्येव सर्वे रूपमभव संस्तसादेत

प्तैनाख्यायन्ते प्राणा इति तेन ह वाव तरकुलमाचक्षते यसिन्कुले भवति य एवं वेद य उ हैवंविदा स्पर्धतेऽनुशुष्यत्मनुशुष्य हैवान्ततो न्नियत इत्य-ध्यात्मम् ॥ २१ ॥ अथाधिदैवतं ज्वलिष्याम्येवाहमित्यप्तिदंधे तप्त्याम्यहमिन त्यादित्यो भात्याम्यहमिति चन्द्रमा एवमन्या देवता यथादैवतर स यथेषां प्राणानां मध्यमः प्राण एवमेतासां देवतानां वायुम्लोंचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः सेपाऽनस्तमिता देवता यहायुः ॥ २२ ॥ अथेप श्लोको भवति यत-श्लोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एप उदेति प्राणेऽस्तमेति तं देवाश्रिकरे धर्मर स एवाद्य स उ श्व इति यहा एतेऽमुर्ह्यश्चियन्त तदेवाष्यद्य कुर्वन्ति । तसादेकमेव वतं चरेत्प्राण्याचैवापान्याच नेन्मा पाप्मा मृत्युरापु-विदिति यद्य चरेत्समापिपयिषेत्तेनो एतस्य देवताये सायुज्यर सलोकतां जयति ॥ २३ ॥

इति प्रथमाध्याये पञ्चमं व्राह्मणम् ॥ ५ ॥

त्रयं वा इदं नाम रूपं वर्म तेषां नाम्नां वागिसेतदेषामुवधमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्टन्ति । एतदेषा सामेतद्धि सर्वेनीमिभः सममेतदेषां अद्धैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति ॥ १ ॥ अथ रूपाणां चक्षुरिसेतदेषामुवध्यमतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्टन्सेतदेषा सामेतद्धि सर्वें रूपेः सममेतदेषां अद्धैतद्धि सर्वाण रूपाणि विभर्ति ॥ २ ॥ अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुवध्यमतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्टन्सेतदेषा समेतद्धि सर्वेः वर्मभिः सममेनत्रेषां ब्रह्मेतद्धि सर्वे। वर्माणि विभर्ति तदेतत्रय सदेकमयमात्माऽऽत्मो एकः सन्नेतत्रयं तदेतदमृत सत्येन न्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणदछन्नः ॥ ३ ॥

इति प्रथमाध्याये षष्ठं त्राह्मणम् ॥ ६ ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ॐ॥ इसवालाकि हांन्चानो गार्थ आस स होवाचाजातशत्रुं काइयं ब्रह्म ते ब्रवाणीति स होवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दद्यो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ॥ १ ॥ स होवाच गार्थो य एवासावादित्ये पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमां मैतस्सिन्संवदिष्ठा अतिष्ठाः

सर्वेषां भूतानां मूर्घा राजेति वा अहमेतसुवास इति स य एतमेच खुपा-स्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्घा राजा भवति ॥ २ ॥ स होवाच गारवीं ब प्रवासी चन्द्रे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमी सतिसा-क्संबदिष्ठा बृहन्पाण्डरवासाः सोमो राजेति वा अहमेतसुपास इति स य प्तमेत्रमुगासेऽहरहर्ह सुतः प्रसुतो भवति नास्यान्नं क्षीयते ॥ ३ ॥ स होवाच गाग्यों य एवासी विद्युति पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-चाजातशत्रमां मेतस्मिन्संविद्धासेजस्वीति वा अहमेतस्रापास हति स य एत-मेवसुपासे तेजस्वी ह भवति तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति ॥ ४॥ स होवाच गाग्यों य एवायमाकाशे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-बाजातशत्रमां मेतस्मिन्संवदिष्ठाः पूर्णमप्रवर्ताति वा अहमेतस्पास इति स य एतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिनीस्यासाहोकात्प्रजोद्वतेते ॥ %॥ स होवाच गार्यो य एवायं वाया पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास हति स होवाचा-जातशत्रुमां मेतस्मिन्संवदिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेत-मुपास इति स य एतमेवसुपास्ते जिब्लुहापराजिब्लुभवत्यन्यतस्त्यजायी ॥३॥ स होवाच गाग्यों य एवायममो पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-चाजातशत्रुमी मैतस्मिन्संवदिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेतसुपास इति स य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्ह भवति विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ॥ ७ ॥ स होवाच गाग्यों य एवायमप्यु पुरुष एतसेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचा॰ जातशत्रुमी मैतस्मिन्संवदिष्ठाः प्रतिरूप इति वा अहसेतसुपास इति स स ष्तमेवमुपासे प्रतिरूप हैवैनमुपगच्छति नाप्रतिरूपमयो प्रतिरूपोऽस्माः जायते ॥ ८ ॥ स होवाच गार्थो य एवायमादर्शे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमा मैतस्मिन्संवदिष्ठा रोचिष्णुहिति वा अहमेतसु-पास इति स य एतमेवसुपास्ते रोचिष्णुई भवति रोचिष्णुहीस्य प्रजा अव-त्यथो यैः संनिगच्छति सर्वां एसानितरोचते ॥ ९ ॥ स होवाच गाग्यों य प्वायं यन्तं पश्चाच्छब्दोऽनूदेलेतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातश-त्रुमा मैतस्मिन्संवदिष्ठा असुरिति वा अहमेतसुपास इति स य एतमेवसु-पास्ते सर्वि हैवासिँछोक बायुरेति नैनं पुरा कालात्प्राणी जहाति ॥ १०॥ स होवाच गाम्यों य एवायं दिश्च पुरुष पुतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-चाजातशत्रुमां मैतस्मिन्संवदिष्टा दितीयोऽनपग इति वा अहसेतसुपास इति स य एतमेवमुपासे द्वितीयवान् इ भवति नासाद्गणिरछसते ॥ ११॥ स होवाच गाम्यों य एवायं छायामयः पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवा-

चाजातशत्रमां मैतसिन्संवदिष्ठा सृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स य क्तमेवसपास्ते सर्व र हैवासिँ छोक आयुरेति नैनं पुरा काळान्मृत्युरागच्छति ॥ १२ ॥ स होवाच गार्ग्यो य एवायमात्मनि प्ररुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुमा मेतस्मिन्संवदिष्ठा आत्मन्वीति वा अहमेतमु-धास इति स य एतमेवसुपास्त आत्मन्त्री ह भवत्यात्मन्त्रिनी हास्य प्रजा अवति स ह तूरणीमास गार्गः ॥१३॥ स होवाचाजातशत्रुरेतावस् ३ इसेता-बद्धीति नैतावता विदितं भवतीति स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति॥१४॥ स होवाचाजातशत्रः प्रतिलोमं चैतचह्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाह्रस मे वश्यतीति क्षेत्र स्वा जपग्रिष्यामीति तं पाणावादायोत्तस्थी तौ ह पुरुष सुप्तमाजग्म-लुखामेतेनामिभरामच्यांचके बृहन्पाण्डरवासः सोम राजन्निति स नोत्तस्या वं पाणिना पेषं बोधयांचकार स होत्तस्थी ॥ १५ ॥ स होवाचाजातशत्रुर्ध-त्रैष एतरसुप्तोऽभूच एष विज्ञानमयः पुरुषः क्रेष तदाभूरकुत एतदागादिति बदु ह न मेने गार्ग्यः ॥ १६ ॥ स होवाचाजातशत्रुर्गत्रेष एतस्प्रुमोऽभूत एव विज्ञानमयः पुरुवस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्त-हुँद्य आकाशस्त्रस्मिन्छेते तानि यदा गृह्वात्यथ हैतरपुरुषः खपिति नाम इद्वहीत एव प्राणी भवति गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुर्गृहीत् श्रोत्रं गृहीतं अनः ॥ १७ ॥ स यत्रैतस्वम्यया चरति ते हास्य छोकासतुतेव महाराजो अवत्युतेव महाबाह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति स यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्त्रे जनपदे यथाकामं परिवर्तेतैवमेवेष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्त्रे शरीरे यथाकामं परिवर्तते ॥ १८ ॥ अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्य-चन वेद हिता नाम नाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयायुरीततमभिप्रतिष्टनते ताभिः प्रत्यवसुप्य पुरीतित होते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महा-बाह्मणो वाऽतिझीमानन्दस्य गःवा शयीतैवमेवैष एतच्छेते ॥१९॥ स यथोर्ण-नाभिखन्तुनोचरेचथाऽप्रेः क्षुदा विस्कुलिङ्गा न्युचरन्त्यवमेवास्मादारमनः सर्वे शाणाः सर्वे कोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युध्वरन्ति तस्योपनिषासत्यस्व सत्यमिति प्राणा वे सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥ २०॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

यो ह वै शिशु साधान सप्तत्याधान सस्यूण सदामं वेद सस ह द्विषतो आतृत्यान वरुणद्धि। अयं वाव शिशु योऽयं मध्यमः प्राणसास्येदसेवा-धानमिदं प्रत्याधानं प्राणः स्यूणानं दाम ॥१॥ तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते तथा इमा अक्षन्छोहिन्यो राजयसाभिरेन ए रहोऽन्वायत्तोऽथ या अक्षत्तापसाभिः पर्जन्यो या कनीनका तयादित्यो यत्कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्तं तेनेपसाभिः पर्जन्यो या कनीनका तयादित्यो यत्कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्तं तेनेपसाभिः पर्जन्यो या कनीनका तयादित्यो यत्कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्तं तेनेपद्मीऽधरयैनं वर्तन्या पृथिव्यन्वायत्ता द्योरत्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वास्तिस्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वास्ति ।
स्वाग्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वा इतीदं तिच्छर एप द्यवंग्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वासिस्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वासिस्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वासिस्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वासिस्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वासिस्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वासाव विश्वरुश्चमस कर्ध्वं द्वासाव स्वर्थः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा संविस्वर्थः सप्त तीर इति प्राणा वा ऋष्यः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति वाग्व्यष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते ॥ ३ ॥ इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव
गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेच विश्वामित्रजमद्भी अयमेव विश्वामित्रोऽयं
जमद्गिरिमावेव वसिष्ठकद्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं कद्यपो वागेवात्रिर्वाचा
द्यात्रमधतेऽत्तिर्हं व नामैतद्यद्त्रिरिति सर्वस्थात्ता भवति सर्वमस्थाः भवति
य एवं वेद ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे भूतं चेत्रामूर्तं च मर्सं चामृतं च स्थितं च यच सम्बारं च ॥ १ ॥ तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्ति (क्षाचेतन्मर्स्मेति स्थितसे तत्स्व स्थेतस्य मूर्तस्थेतस्य मर्थसेतस्य स्थितस्थेतस्य स्थितस्य सत एप रसो य एप तपित सतो स्थेप रसः ॥ २ ॥ अथामूर्तं वायुश्चान्ति (क्षेप रसो य एप एति सन्मण्डले पुरुष्प रसो स्थाप रसे इत्यायदेवतम् ॥ ३ ॥ अथाध्यात्मि समेव मूर्तं यदन्यत्प्राण्याच यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतन्मर्त्यमेति स्थितमेतत्सत्तस्य सूर्तस्थेतस्य मर्थसेतस्य स्थातस्थेतस्य सत एप रसो यच्छाः सतो होष रसः ॥ ४ ॥ अथाम्त्रतं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेवत्त्यं तस्येतस्य मर्थसेतस्य स्थापस्तेतस्य सत एप रसो यच्छाः सतो होष रसः ॥ ४ ॥ अथाम्रतं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेवत्त्यं तस्येतस्यामृतंस्येतस्य यत एतस्य सस्येप रसो योऽयं दक्षिणेऽश्चन्युरुषस्यस्य होष रसः ॥ ५ ॥ तस्य हेतस्य पुरुषस्य रूपं यथा माहारजनं वासो यथा पाण्डाविकं यथेन्द्रगोपो यथाऽम्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्यत्त्र सङ्गद्विद्यत्तेव ह वा अस्य श्रीभवति य एवं वेद्यथात आदेशो नेति नेति न होतस्यादिति नेत्यन्यत्परमस्त्यथ नामधेयः सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वे ससं तेपामेष सत्यम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्यारे तृतीयं त्राह्मणम् ॥ ३ ॥

मैनेचीति होवाच याज्ञवस्वय उद्याखन्वा भरेऽहमखास्थानादक्कि हन्त तेऽनया कालायन्याऽन्तं करवाणीति ॥ १ ॥ सा होवाच मैत्रेयी यसु म इयं अगीः सर्वा प्रथिवी वित्तेन पूर्णा स्थारकथं तेनामृता स्थामिति नेति होनाच वाज्ञवलको यथेबोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितरं स्वाद्मतत्वस ह बाइडवास्ति वित्तेनेति ॥ २ ॥ सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नासूना खां किमहं तेन कुर्या यदेव अगवान्वेद तदेव में बूहीति ॥ ३ ॥ स होवाच याज्ञवत्स्यः विवा बतारे नः सती वियं भाषस प्रशास्त्र व्याख्यासामि ते व्याचक्षाणस्य तु ने निविध्यासस्वेति ॥ ४ ॥ स होवाच न वा अरे प्रखुः कामाय पतिः वियो अवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया विया अवत्यात्मनस्तु कामाय जाया विया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया अवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं अवति । न वा अरे कोकानां कामाय कोकाः प्रिया भवन्यासमनस्तु कामाय कीकाः भिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्वास्म-जस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि त्रियाणि भवन्त्यास्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा **जरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं** अवति । आत्मा वा अरे वृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैनेडयात्मनो वा अरे दर्शनेन अवणेन मत्या विज्ञानेनेद् सर्व विदि-तम् ॥ ५ ॥ बस तं परादायोऽन्यत्रास्मनो बस वेद क्षत्रं तं परादा-बोडन्यज्ञात्मनः क्षत्रं वेद को कास्तं परादुर्योडन्यत्रात्मनो कोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परावाधोऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेवं ब्रह्मेवं क्षत्रभिमे कोका इसे देवा इमानि भूतानीव्य सर्वं वत्यमाश्मा ॥ ६ ॥ स यथा दुन्दुभेईन्यमानस्य न बाह्माञ्छब्दाञ्छक्तुयाद्वहणाय दुन्दुभेस्तु प्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो युदीतः॥ ७॥ स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाझाञ्छहदाञ्छक्त्याद्रहः णाय शङ्खस्य तु प्रहणेन शङ्कध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८॥ स यथा बीणापै बाबमानाय न वाह्याञ्छब्दाञ्छक्ष्याग्रहणाय बीणाय तु प्रहणेन बीणा-बादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥९॥ स यथाऽऽद्गेषाप्रेरभ्याहिताःप्रथम्भूमा विति-

अरन्येवं वा भरेऽस्य महतो मृतस्य निश्वसितमेतब्रहग्वेदो यजुर्वेदः सामा बोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुस्क्र-क्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ॥ १०॥ स यथा सर्वासामपाए समुद्र एकायनमेवए सर्वेषाए स्पर्कानां स्वगेकायनमेवए सर्वेषां गम्धानां नासिके एकायनमेव सर्वेषा रसानां जिह्नेकायनसेव सर्वेषार क्पाणां चक्करेकायनमेव सर्वेषा इन्द्राना अोत्रमेकायनमेव सर्वेषा र संकल्पानां मन एकायनमेव सर्वासां विद्याना १ हदयमेकायनसेव १ सर्वेंचां कर्मणा इस्तावेकायनमेव सर्वेषामानन्दाना सुपस्य एकायनमेव सर्वेषा विसर्गाणां पायुरेकायनसेव सर्वेषामध्वनां पादावेकायनसेव सर्वेषां वेदावां वानेकायनम् ॥ ११ ॥ स यथा सैन्धविखल्य उदके प्रास्त उदक्षेत्राञ्च-विलीयेत न हास्योद्रहणायेव स्याचतो यतस्त्वाददीत छवणसेवैवं वा अर इदं महत्रतमनन्तमपारं विज्ञानघन एवैतेश्यो भूतेश्यः समुत्थाय तान्येवाऽज्ञ-विनइयति न प्रेल संज्ञाऽस्तीत्यरे व्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १२ ॥ सा होवाच मैत्रेच्यत्रैव मा भगवानमू युह्त प्रेत्य संज्ञाऽस्तीति स होवाच याज्ञ-वक्क्यो न वा अरेऽहं सोहं ब्रवीम्यर्छ वा अर इदं विज्ञानाय ॥ १३ ॥ यज्ञ हि द्वेतमिव भवति तदितर इतरं जिल्लति तदितर इतरं पश्यति तदिस्य इतर श्रणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मन्ते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिन्नत्त्केन कं पद्येत्तत्केन क्र श्रुपात्तत्केन कमभिवदेत्तत् केन कं मन्वीत तत् केन कं विजानीयाद्ये-नेद्र सर्व विजानाति तं केन विजानीयादिज्ञातारमरे केन विजानी-यादिति॥ १४॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

इयं प्रथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्य पृथित्ये सर्वाणि भूतानि मधु यक्षायमस्यां पृथित्यां तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो यश्चायमध्याःम् शारिरस्तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदमसृतमिदं ब्रह्मेद् सर्वम् ॥ १ ॥
इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपाए सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमास्वप्सु तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो यश्चायमध्याःम् रेतसस्तेजोमयोऽसृतमयः
पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदमसृतमिदं ब्रह्मेद् सर्वम् ॥ २ ॥ अयमिषः
सर्वेषां भूतानां मध्वस्यामेः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नमौ तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं वाङ्मयस्तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषोऽयमेव
स योऽयमात्मेदमसृतमिदं ब्रह्मेद् सर्वम् ॥ ३ ॥ अयं वायुः सर्वेषां भूतानां

ज्ञाद्यस्य वायोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्दायौ तेजोमर्योऽसृतमयः कुरुवी यश्चायमध्यारमं प्राणस्तेजीमयोऽसृतमयः पुरुवोऽयमेव स योऽयमाः कोद्मसृतिविदं ब्रह्मेद्र सर्वम् ॥ ४ ॥ अयमादित्यः सर्वेषां भूतानां मण्य-स्यादिलस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्रायमसिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमनः युरुवो यश्चायमध्यासमं चाश्चुषस्तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽस्-भात्मेद्ममृतमिदं ब्रह्मेद्थ सर्वम् ॥ ५॥ इमा दिशः सर्वेषां भूतानां मध्वासां दिवार सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमासु दिक्षु तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो ब्रुखायमध्यात्म र श्रोत्रः प्रातिश्चत्कस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽय-आरमेदमसृतमिदं ब्रह्मेद् सर्वम् ॥ ६ ॥ अयं चन्द्रः सर्वेषां भृतानां मध्वस्त्र चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्रायमसि श्रान्द्रे तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यातमं मानसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदः ममृतमिदं ब्रह्मेद् सर्वम् ॥ ७ ॥ इयं विद्युत्सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै विद्युतः सर्वाणि भृतानि मधु यश्रायमस्यां विद्युति तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्राय-मध्यात्मं तैजसस्तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमारमेदमसृतमिदं जहोद् सर्वम् ॥ ८॥ अय५ स्तनियतुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य स्तनियतोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्सनयितौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषी यश्चायमध्यातमध् शाब्दः सौवरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽय-मात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेद् सर्वम् ॥ ९ ॥ अयमाकाशः सर्वेषां भूतानां मध्व-स्याकाशस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नाकारो तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्म हृ हृद्याकाशस्त्रेजोमयोऽसृतमयः पुरुषोऽयमेव स यो-ऽयमारमेदमसृतमिदं ब्रह्मेद्ध सर्वम् ॥ १०॥ अयं धर्मः सर्वेषां भृतानां मध्व-ख धर्मस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्धमें तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो चश्चायमध्याश्मं धार्मस्तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदमसु-तमिदं ब्रह्मेद्र सर्वम् ॥ ११॥ इद्र सत्य सर्वेषां भूतानां मध्यस्य सत्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चाऽयमिसन्सत्ये तेजोमयोऽसृतमयः पुरुषो यश्चाऽयमध्यातम् सात्यसेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेद-मस्तमिदं ब्रह्मेद्र सर्वम् ॥ १२ ॥ इदं मानुष् सर्वेषां भूतानां मध्वस्य मानुषस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चाऽयमस्मिन्मानुषे तेजोमयोऽसृतमयः पुर-षोऽयमेव स योऽयमात्मेदमसृतमिदं ब्रह्मेद् सर्वम् ॥ १३ ॥ अयमास्मा सर्वेषां भूतानां मध्वस्यात्मनः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमसिद्धात्मनि तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स

बीऽयमारमेदमस्तमिदं ब्रह्मेद्र सर्वम् ॥ १४ ॥ स वा अयमात्मा सर्वेचां श्वतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानाधः राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेभौ चाराः बर्वे समर्पिता एवमेवासिकात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्वे एत आत्मानः समिपताः ॥ १५ ॥ इदं वै तन्मध दध्यङाः धर्षणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतद्धिः पश्यक्षवीचत् । तद्वां नरा समये दूरस उन्न-माविष्क्रणोमि तन्यतुर्ने वृष्टि । दध्यक् ह यन्मध्वाधर्वणो वामश्रस्य शीव्यो प्र बदीमुवाचेति ॥ १६ ॥ इदं वै तन्मधु दम्बङ्घाधर्वणोऽश्विभ्यासुवाच तदेतहिषः वष्ठवन्नवोचदाथर्वणायाश्विना द्वीचेऽइव्य शिरः प्रतिरयतस् । स वां सञ्ज श्रवोचहतायन्त्वाष्ट्रं यहस्राविप कक्ष्यं वामिति ॥ १७ ॥ इदं वे तन्मधु दश्य-हाथवीणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतहथिः पश्यक्षवीचत् । पुरश्चके द्विपदः प्रश्चके चतुष्पदः पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशदिति । स वा अयं पुरुषः सर्वोध पूर्व पुरिशयो नैनेन किंचनानावृतं नैनेन किंचनासंवृतस् ॥ १८॥ हुदं वे तन्मधु दध्यङ्काथवंणोऽश्विभ्यासुवाच तदेतहणिः पश्यसवीचद्वप्रस्करं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता सस्य हरमः शता दशेति । अयं वे हरयोऽयं वे दश च सहस्राणि बहुनि चानन्तानि च तदेतद्रवापूर्वमनपरमनन्तरमबाद्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वाचुभू-रित्यनुकासनम् ॥ १९॥

इति द्वितीयाध्याये पश्चमं वाह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ वक्षः पौतिमाध्यो गौपवनाद्गीपवनः पौतिमाध्याःपौतिमाध्यो गौप-वनाद्गीपवनः कौक्षिकाध्कौशिकः कौण्डिन्यास्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौक्षिकाच गौतमाच गौतमः ॥ १ ॥ आझिवेद्दयादाझिवेद्द्यः शाण्डिल्याचाः विभग्छाताचानभिग्छात आनभिग्छातादानभिग्छात आनभिग्छातादानभिग्द्रकातो गौतमाद्गीतमः सेतवमाचीनयोग्याभ्या सेतवमाचीनयोग्याभ्या सेतवमाचीनयोग्या पारा-वार्याःपारावर्यो भारद्वाजाञ्चारद्वाजो भारद्वाजाच गौतमाच गौतमो भारद्वा-वाद्याद्वाजः पारावर्योत् पारावर्यो वेजवापायनाद्वेजवापायनः कौक्षिकायनेः कौक्षिकायनिः ॥ २ ॥ चतकौक्षिकाद्वतकौक्षिकः पारावर्यायणायाःपारावर्ययणः पारावर्यात् पारावर्यो जात्कण्योजात्कण्ये आसुरायणाच यास्त्राचासुन् रायणक्षेवणेस्विवणिरीपजन्धनेरीपजन्धनिरासुरेरासुरिभारद्वाजाञ्चारद्वाज आन्ने-वादात्रेयो माण्डेमाण्टिगौतमाद्वीतमो गौतमाद्वीतमो वात्स्याद्वास्यः शाण्डि-व्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यांकाप्यास्केशोर्यः काष्यः कुमारहारिताःकुमारहा-रितो गाळवाद्वाछ्वो विद्भीकौण्डिन्याद्विद्भीकौण्डिन्यो वस्तनपातो चाभ्रवा- हस्सनपाहाश्रवः पथः सौभराःपन्थाः सौभरोऽयास्वादाद्भिरसाद्यास्य आदिरस आश्रुतेस्त्वाद्रादाश्रूतिस्त्वाद्रो विश्वरूपाःवाद्राद्विश्वरूपस्त्वाद्रोऽश्विभ्यामश्चिनो द्वीच आथर्षणाद्द्यद्वाथर्षणोऽथर्षणो देवादथर्वा देवो सृत्यो।
प्राध्वर्शसनान्यत्युः प्राध्वर्शसनः प्रध्वर्शसनाःप्रध्वरसन एकर्वेरेकर्षिर्विश्वचिन्तेर्विप्रवित्तिन्येष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः सनातनाःसनातनः सनगाःसनगः
परसेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंश्च ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्याये षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ ॥ जनको ह वैदेही बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपञ्चाकानी जाह्मणा अभिसमेता वभूबुस्तस्य ह जनकस्य वेदेहस्य विजिज्ञासा वभूव कः खिदेवां बाह्मणानामनूचानतम इति स इ गवा सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकेकस्याः श्रद्भयोराबद्धा बभूदुः ॥ १ ॥ तान्होवाच ब्राह्मणा अग-वन्ती यो वो ब्रह्मिष्टः स एता गा उद्जतामित । ते ह ब्राह्मणा न द्षष्टुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणसुगाचैताः सोम्योदज सामश्रवाः इति ता होदाचकार ते ह बाह्मणाश्रुकुषुः कथं नो ब्राह्मा ब्रुवीतेत्वथ ह जनकस्य वैदेहस्य होताऽश्वलो बभूव स हैनं पप्रच्छ त्वं नु खलु नो याज्ञवत्वय ब्रक्षि-छोऽसी३ इति स होवाच नमो वयं बिहाष्टाय कुर्मो गोकामा एव वयर स इति तथ ह तत एव प्रष्टुं द्धे होताऽश्वलः ॥ २ ॥ याज्ञवरम्येति होवाच यदिव् सर्वं मृत्युनाऽऽसः सर्वं मृत्युनाभिवन्नं केन यजमानो मृत्योरासिमति-मुख्यत इति होत्रस्विजामिना वाचा वाग्वै यज्ञस्य होता तथेयं वाक् सोऽय-मिशः स होता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ३ ॥ याज्ञवहक्येति होवाच यदिदर सर्वमहोरात्राभ्यामास् सर्वमहोरात्राभ्यामभिवत्तं केन यजमानोऽहोरात्रयो-राप्तिमतिमुच्यत इत्यध्वर्युणिविजा चक्षुवाऽऽदित्येन चक्षुवे यज्ञस्याध्वर्युस्तय-दिदं चक्षुः सोऽसावादित्यः सोऽध्वर्युः स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥ ४ ॥ याज्ञ-वदक्येति होवाच यदिद्र सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामास् सर्वं पूर्वपक्षापर-पक्षाभ्यामभिपनं केन यजमानः पूर्वपक्षापरपक्षयोरासिमतिमुच्यत इत्युद्रात्र-त्विजा वायुना प्राणेन प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायुः स उत्राता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥५॥ याज्ञवक्कयेति होवाच यदिवमन्त्ररिक्ष- सनारस्वणमिव केनाऽऽक्रमेण यजमानः स्वर्ग लोकमाकमत इति ब्रह्मणः विजा मनसा चन्द्रेण मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः स महा स मुक्तिः साऽतिमुक्तिरित्यतिमोक्षा अथ संपदः ॥ ६ ॥ याज्ञ-बल्क्येति होवाच कतिभिरयमचिभिहीतास्मिन्यज्ञे करिष्यतीति भिरिति कतमास्तास्तिस्त इति पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्येव तृतीया किं ताभिनेयतीति यक्तिचेदं प्राणभृदिति ॥ ७ ॥ याज्ञवलक्येति होवाच कत्य-वमणाध्वर्युरस्मिन्यज्ञ आहुतीहों व्यतीति तिस्त इति कतमास्तास्त्रस्त इति या हुता उज्जवलिनत या हुता अतिनेदन्ते या हुता अधिशेरते किं ताभिर्जयतीति या हुता उज्जवलित देवकोकमेव ताकिर्जवित दीप्यत इति हि देवकोकी षा हुता अतिनेदन्ते पितृकोकसेव ताभिर्जयस्तीव हि पितृकोको या हुता **मधिशो**रते मनुष्यछोकमेव ताभिर्जयत्यध इव हि मनुष्यलोकः ॥ ८ ॥ याज्ञ-बक्स्येति होवाच कतिभिरयमद्य ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो देवताशिगौँपावती-स्रेकयेति कतमा सकेति मन एवेत्यनन्तं वे मनोऽनन्ता विश्वे देवा अनन्त-सैव स तेन लोकं जयित ॥ ९ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच कल्यसद्योद्वाताsिसान्यत्रे स्तोत्रियाः स्तोष्यतीति तिस्न इति कतमास्तास्तिस इति पुरोनुवाक्या च याज्या च शस्येव तृतीया कतमास्ता या अध्यात्ममिति प्राण एव पुरोजु-बाक्याऽपानो याज्या व्यानः शस्या किं ताभिर्जयतीति पृथिवीलोकसेव पुरो-नुवाक्यया जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया धुलोकः शस्यया ततो ह होताऽश्वल खपरराम ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

भय हैनं जारकारव आर्तभागः पप्रच्छ याज्ञवल्खेति होवाच कित ग्रहाः कर्त्यातिग्रहा इति । अष्टो ग्रहा अष्टावित्रम्हा इति थे तेऽष्टो ग्रहा अष्टावित्रम्हाः कतमे त इति ॥ १ ॥ प्राणो वे ग्रहः सोऽपानेनाऽतिग्राहेण गृहीतो उपानेन हि गन्धाक्षित्रति ॥ १ ॥ वाग्वे ग्रहः स नाम्नाऽतिग्राहेण गृहीतो वाचा हि नामान्यभिवदिति ॥ १ ॥ वाग्वे ग्रहः स रसेनाऽतिग्राहेण गृहीतो जिल्ल्या हि स्सान्विजानाति ॥ ४ ॥ चक्षुवे ग्रहः स रूपेणाऽतिग्राहेण गृहीता श्रोत्रेण हि साव्याति ॥ ४ ॥ अन्ते वे ग्रहः स क्षेणाऽतिग्राहेण गृहीतः श्रोत्रेण हि शब्दान्छणोति ॥ ६ ॥ मनो वे ग्रहः स क्षेणाऽतिग्राहेण गृहीतो मनसा हि कामान्कामयते ॥ ७ ॥ इस्तो वे ग्रहः स क्षेणाऽतिग्राहेण गृहीतो हस्ताभ्या हि कर्म करोति ॥ ८ ॥ त्वग्वे ग्रहः स स्पर्शेनाऽतिग्राहेण गृहीतो हस्ताभ्या हि स्पर्शान्वेदयत इस्तेतेऽष्टो ग्रहा अष्टावित्रम्हाः ॥ ९ ॥ याज्ञ-

वस्त्रेवित होवाच यदिद् सर्व मृत्योरकं का स्वित्सा देवता यस्या मृत्युरक-भित्यभिवें सृत्युः सोऽपामन्नमप पुनर्मृत्युं जयति ॥ १०॥ याज्ञवल्नयेति होवाच यत्रायं पुरुषो स्रियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्याहो३ नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्योऽत्रेव समवनीयन्ते स उच्छ्वयत्याध्मायत्याध्मातो मृतः शेते ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियते किमेनं न जहातीति नामित्यनन्तं वे नामानन्ता विश्व देवा अनन्तमेव स तेन छोकं जयति ॥१२॥ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याप्तिं वागप्येति वातं प्राणश्चक्कु-रादित्यं सनश्चनदं दिशः श्रोत्रं पृथिवी श्रारीरमाकाशमात्मौषघीलोंमानि वन-स्पतीन्केशा अप्सु लोहितं च रेतश्च निघीयते क्वायं तदा पुरुषो भवतीत्याहर सीम्य हस्तमार्तभागाऽऽवामेवैतस्य वेदिष्यावी न नावेतत् सजन इति ती होत्कस्य सम्मयांचकाते तो ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रशशस्सतुः कर्स हैव तत्प्रशश्यमतुः पुण्यो व पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति ततो ह जारकारव आर्तभाग उपरराम ॥ १३ ॥

इति तृतीयाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ हैनं भुज्युर्लो ह्यायनिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेषु चरकाः पर्यवजाम ते पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीद्दृहिता गन्धर्वगृहीता तमप्रच्छाम कोऽसीति सोऽववीत्सुधन्वाऽऽङ्गिरस इति तं यदा छोकानाम-न्तानपृच्छामाथैनमनूम क पारिक्षिता अभवित्तति क पारिक्षिता अभवन् स त्वा प्रच्छामि याज्ञवल्क्य क पारिक्षिता अभवित्रिति ॥ १ ॥ स होवाचोवाच वै सोऽगच्छन्वे ते तद्यत्राश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति क न्वश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति द्वात्रि शतं वै देवरथाह्वयान्ययं लोकस्त समन्तं पृथिवी द्विसा-वरपरेंति तार समन्तं पृथिवीं द्विस्तावत्समुद्रः परेंति तद्यावती क्षुरस्य धारा यावद्वा मक्षिकायाः पत्रं तावानन्तरेणाकाशस्तानिन्दः सुपर्णो भूरवा वायवे प्रायच्छत्तान्वायुरात्मिन धित्वा तत्रागमयद्यत्राश्वमेधयाजिनोऽभवित्रत्येविमव वै स वायुमेव प्रशश्रम्स तसाद्वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिरप पुनर्भृत्युं जयित य एवं वेद ततो ह भुज्युकी द्यायनिरुपरराम ॥ २॥

इति तृतीयाध्याये तृतीयं त्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ हैनमुषस्तश्चाकायणः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यस्साक्षादपरो-क्षाइक्ष य आत्मा सर्वान्तरसं मे व्याचक्ष्व इत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरो योऽपानेनापानीति स त आत्मा सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानीति स त धास्मा सर्वान्तरो य उत्तानेनोदानिति स त भारता सर्वान्तर एव स कारता सर्वान्तर ॥ १॥ स होवाचोषस्त्रधाकायणो यथा विन्यादसो गौरसावश्व हुलेबमेवेतव्यपदिष्टं भवति पदेव साक्षादपरोक्षाद्रस य भारता सर्वान्तरस्तं में व्याचक्ष्वेत्रयपदिष्टं भवति पदेव साक्षादपरोक्षाद्रस य भारता सर्वान्तरः । म इहे- मैद्यां पद्येने श्रुतेः श्रोतार्थः द्राणुया न सत्तेर्भन्तारं सन्वीथा न विद्यातिर्विक्षातारं विज्ञानियाः । एव त भारता सर्वान्तरोऽतोऽन्यदार्वं ततो होवस्तवा- कावण उपरराम ॥ २ ॥

इति तृतीयाष्याये चतुर्थं बाह्मणस् ॥ ४ ॥

भय हैनं कहोकः कीषीतक्षयः पप्रच्छ याज्ञवन्त्येति होवाच यदेव साक्षा-प्रारेशाहरः य भारमा सर्वान्तरस्तं मे व्याच्ह्वेत्येष त आस्मा सर्वान्तरः । कतमो याज्ञवन्त्र्य सर्वान्तरो योऽशयनायापिपासे शोकं मोहं जरां सुरपुग-स्रेति । एतं वे तमारमानं विदिश्वा बाह्मणाः पुत्रेषणायास्त्र वित्तेषणायास्त्र कोकेषणायाश्च ब्युरथायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या द्येव पुत्रेषणा सा वित्तेषणा या वित्तेषणा सा कोकेषणोभे द्वेते एवणे एव भवतस्त्रस्माद् बाह्मणः पाण्डित्यं निर्विध बाह्मणः तिष्ठासेद्वास्यं च पाण्डित्यं च निर्विधाथ युनिरमीनं च सीनं च निर्विधाऽथ बाह्मणः स बाह्मणः केन स्वाधेन स्वातेनेदश प्रवातोऽन्यवार्तं ततो ह कहोकः कीषीतकेय उपरास ॥ १ ॥

इति तृतीयाध्याये पश्चमं बाह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ हैनं गागीं वाचक्रवी पप्रच्छ याज्ञवह्नयेति होवाच यदिद् ए सर्वम-प्रकातं च प्रोतं च किसान्न जरवाप भोताश्च प्रोताश्चित वाणी गागींति किसान्न खन्न वायुरोतश्च प्रोतश्चित्वन्तिरश्चनेत्वेतु गागींति किसान्न खन्न जरवादित्यकोका रिश्वकोका भोताश्च प्रोतश्चित्वावित्यकोकेषु गागींति किसान्न जनवादित्यकोका मोताश्च प्रोताश्चेत्वावित्यकोकेषु गागींति किसान्न जन्न जनवादित्यकोका भोताश्चित नक्षत्रकोकेषु गागींति किसान्न जन्न चन्द्रकोका भोताश्च प्रोताश्चित नक्षत्रकोकेषु गागींति किसान्न जन्न विश्वकोका भोताश्च प्रोताश्चितिन्द्रकोक श्चेति वेवकोकेषु गागींति किसान्न खन्न वेवकोका भोताश्च प्रोताश्चितीन्द्रकोक्ष्य गागींति किसान्न जन्न भोताश्च प्रोताश्चिति प्रजापतिकोक्ष्य गागींति किसान्न खन्न प्रजापतिकोका भोताश्च प्रोताश्चिति व्यवस्थित गागींति किसान्न खन्न व्यवस्थकोका भोताश्च प्रोताश्चिति स्थानित्यक्षा विष्ठा व्यवस्थकोका भोताश्च प्रोताश्चिति स्थान व्यवस्थकोका भोताश्च प्रोताश्चिति स्थान व्यवस्थकोका भोताश्च प्रोताश्चिति स्थान व्यवस्थकोका विष्ठा विष्ठा प्राणीति स्थानित्यक्षा विष्ठा विष्ठा प्राणीति स्थानित्यक्षा विष्ठा विष्ठा प्राणीति स्थानित्रक्षा विष्ठा विष्ठा प्राणीति स्थानित्यक्ष स्थान

इति वृत्तीयाध्याये वर्ष्ठं आहाणस् ॥ ६॥

आध हैनसहालक भावणिः पप्रच्छ बाज्यस्त्रवेति होवाच सद्वेव्यवसास पत्रबाकस्य काप्यस्य गुहेलु बज्ञमधीयानास्त्रसासीद्वार्या गन्धर्वगृहीता तम-प्रदाराम कोडसीति सोडनवीत् कवन्ध आथवेण इति सोडनवीत्पतन्नळं काप्यं बाजिकार अ बेस्थ जु स्वं काप्य तत्स्वतं येनायं च कोकः परश्च कोकः सर्वाणि च भूतानि संदर्भानि भवन्तीति सोऽवधीत्पतज्ञकः काप्यो नाहं तज्ञाबन्वेदेति सोऽनवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकारं स्र वेत्थ ज त्वं काप्य तम-क्तवांत्रिणं व इसं च लोकं परं च लोकं सर्वाणि च भूतानि योडन्तरी बद्धवतीति लोडववीत्पतञ्चकः काप्यो नाहं तं अगवन्वेदेति सोडववीत्पतञ्चकं कारवं वाजिकार अयो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात्तं चान्तर्यामिणमिति स वद्यविस्स छोक्रवित्स देववित्स वेदवित्स भूतवित्स आत्मवित्स सर्वविदिति तेभ्योऽन-बीतवहं चेद तचेरवं याज्ञवस्त्य सूत्रमविद्वार सं चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुवजसे अर्था ते विपतिष्यतीति वेद वा अहं गौतम तत्स्वतं तं चान्तर्यामिणमिति यो वा इवं कश्चिह्याहेद वेदेति यथा वेत्थ तथा मूहीति ॥ १ ॥ स होवाच वासुर्वे गौतम तत्सुने वायुना वे गौतम सूत्रेणायं च लोकः परम्भ लोकः सर्वाणि च भूताति संदर्धानि भवन्ति तसाहै गौतम पुरुषं मेतमाहुर्व्यक्षर सिषता-खाजानीति वायुना हि गीतम सुनेण संदर्धानि भवन्तीत्येवमेवैतयाज्ञव-ब्बयान्तर्यामिणं बृहीति ॥ २ ॥ यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरी यं प्रथिवी न वेद यस्य प्रथिवी शारीरं यः प्रथिवीमन्तरो वमयस्येष त आस्मा-न्तर्यास्यसृतः ॥ ३ ॥ योऽप्सु तिष्ठतस्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं बोडपोडन्तरो यमबत्येष त आत्मान्तर्याभ्यसृतः ॥ ४ ॥ योडमी तिष्ठक्रमेर-न्तरी यमिश्रनं वेद यखाझिः शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयत्येष त आस्मान्त-यीव्यक्तः ॥ % ॥ योऽन्तरिक्षे तिष्ठजन्तरिक्षादन्तरो यमन्तरिक्षं न बेद यखान्तरिक्षा हारीरं योडन्तरिक्षमन्तरो यमयखेष त बास्मान्तर्याम्यस्तः ॥ ६ ॥ यो वायो तिछन्वायोरन्तरो यं वायुर्नं वेद यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरी यमयत्वेच त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥ ७॥ यो दिवि तिष्ठनिद्वीsन्तरो यं धौर्न वेद यस द्योः शरीरं यो दिवमन्तरो यमयस्थेष त आस्मा-न्तर्यास्यसुतः ॥ ८ ॥ य भादिले तिष्ठनादिलादन्तरी यमादिलो न चेद बसादिखाः वारीरं घ आदित्यमन्तरो यमयत्वेष त आत्मान्तयीम्बस्तः ॥ ९॥ यो विश्व तिष्ठनिवृग्भ्योऽन्तरो यं दिशो न विदुर्यस्य दिशः शरीरं यो दिशो-उन्तरी यमयदेव त आस्मान्तयोग्यञ्चतः ॥ १० ॥ यक्षन्त्रतारके तिष्ठप्रवन्त्र-तारकावन्तरो यं चन्त्रतारकं न वेद यस चन्त्रतारकर शरीरं यश्चन्त्रतारक- मन्तरो यमयसेष त आत्मान्तर्याम्यसृतः॥ ११॥ य आकारो तिष्ठज्ञाका-शादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमय-त्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १२ ॥ यस्तमसि तिष्ठ्यसमसोऽन्तरो यं तमो न वेद यस्य तमः शरीरं यस्तमोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यसृतः॥१३॥ यस्तेजसि तिष्ठ (स्तेजसोऽन्तरो यं तेजो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्यास्यमृत इत्यधिदैवतमथाधिभूतम् ॥ १४ ॥ यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठनसर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो य" सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्या-व्यमृत इत्यधिभूतमथाध्यात्मस् ॥ १५॥ यः प्राणे तिष्टन्प्राणादुन्तरी यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याः म्यमृतः ॥ १६ ॥ यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाकृ शरीरं यो वाचमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यसृतः ॥ १७ ॥ यश्चश्चि तिष्ठ अक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यश्रक्षुरन्तरो यमयस्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १८ ॥ यः श्रोत्रे तिष्ठञ्छोत्रादन्तरी यर श्रोत्रं न वेद यस श्रोत्र शरीरं यः श्रोत्रमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्यास्यसृतः ॥ १९ ॥ यो मनिस तिष्टन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य सनः शरीरं यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याभ्यमृतः ॥ २०॥ यस्त्वचि तिष्ठ्-हरवचोऽन्तरो यं त्वङ् न वेद यस्य त्वक् शरीरं यहत्वचमन्तरो यमयसेष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २१ ॥ यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न नेद यस विज्ञानर शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याः म्यमृतः ॥ २२ ॥ यो रेतिस तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यू रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यसृतोऽदृष्टो दृष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ताऽचिज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टः नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातेष त स्नात्मान्तर्याम्य-खूतोऽतोऽन्यदार्तं ततो होद्दालक आरुणिरुपरराम ॥ २३ ॥

इति तृतीयाध्याये सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

अथ इ वाचक्रन्युवाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहिम हो प्रश्नो प्रक्ष्यामि तौ चेन्मे वक्ष्यति न वै जातु युष्माकिममं कश्चिद्रह्मोद्यं जेतेति प्रन्छ गार्गीति ॥ १ ॥ सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवन्त्र्य यथा काइयो वा वैदेहो बोप्रपुत्र उज्जयं धनुरिधज्यं कृत्वा हो बाणवन्तो सपद्मातिव्याधिनो हको हृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वा द्वाभ्यां प्रशाभ्यामुपोदस्यां तो मे बृद्दीति प्रन्छ गार्गीति ॥ २ ॥ सा होवाच यद्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक् प्रथिव्या यद-न्तरा द्यावापृथिवी इसे यद्भतं च भवच भविष्यचेत्याचक्षते कस्मि स्तरोतं च प्रोतं चेति ॥ ३ ॥ स होवाच यदू धर्वं गार्गि दिवो यदवाक् पृथिया यद-नत्रा यावापृथिवी इसे यद्भतं च भवच भविष्यचेत्याचक्षत आकारो तदोतं च प्रोतं चेति ॥ ४ ॥ सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य यो म एतं व्यवो-चौऽपरसे धारयस्त्रेति पुच्छ गार्गीति ॥ ५ ॥ सा होवाच यद्ध्वं याज्ञवल्क्य हिवी यदवाक् पृथिच्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भतं च भवच भवि-व्यक्तियाचक्षते किसँसादोतं च प्रोतं चेति ॥ ६ ॥ स होवाच यद्र्ध्वं गार्गि दिवी यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवस भविष्य-खेलाचक्षत आकाश एव तदोतं च प्रोतं चेति कस्मिद्ध खल्वाकाश ओतश्र श्रीतश्चेति ॥ ७ ॥ स होवाचैतद्वै तद्श्वरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्रस्थूलम-नण्यहस्वमदीर्घमलोहितमखेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्ध-मचक्षुक्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तद्-आति किंचन न तदशाति कश्चन ॥ ८ ॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि धावा-पृथिच्यो विधते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गागि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्थमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विश्वतास्तिष्ठन्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रती-च्योऽन्या यां यां च दिशमन्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गागि ददतो मनुष्याः प्रश्रप्तित यजमानं देवा दवीं पितरोऽन्वायत्ताः ॥ ९ ॥ यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽसिँ छोके जहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तव-देवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदिःवासाञ्चोकात्मेति स क्रुपणोऽथ य पुतदक्षरं गार्गि विदित्वासाल्लोकार्प्रति स ब्राह्मणः॥ १०॥ तद्वा पुत-दक्षरं गार्व्यद्दष्टं द्रष्ट्रश्रुत अोत्रमतं मञ्जविज्ञातं विज्ञातृ नान्यद्तोऽस्ति दृष्ट् नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यद्रतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतसिमञ्ज खल्वक्षरे गाग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ ११ ॥ सा होवाच ब्राह्मणा भगव-न्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदसान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वे जातु युष्माकिममं कश्चिद्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचक्रव्युपरराम ॥ १२ ॥

इति तृतीयाध्यायेऽष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८॥

अथ हैनं विद्रम्बः शाकत्यः पप्रच्छ कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैतयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य निविद्युच्यन्ते त्रयश्च त्री च कता त्रयश्च भी च सहस्रेयोमिति होवाच कर्येच देवा याज्ञवन्त्रयेति जयसिक्षादियो। भिति होवाच कलेव देवा पाज्ञवस्त्रयेति पडिलोभिति होवाच कलेव देवा थाज्ञवस्त्येति त्रय इत्योगिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवस्त्येति हावि-स्वोमिति होवाच कर्लव देवा वाज्ञवन्त्रयेलध्वर्ध हलोमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवन्त्रवेत्येक इत्योक्षिति होवाच कतमे ते जयश्च जी च शता त्रयम जी च सहस्रेति ॥ १ ॥ स होवाच महिमान एवेषामेते जयसिएशास्त्रेव देवा इति कतमे ते जयसिए सदिखही वसव एकाद्या इदा हाव्यादिलास एकत्रिथ्यदिन्द्रश्चेव प्रजापतिश्च प्रपश्चिथ्याविति ॥ २ ॥ कतमे वसव इत्यप्तिश्र पृथिवी च वायुश्चान्तिर्शं चादित्यश्च चौश्च चन्द्रमाञ्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्वे हितियिति तसाहसव इति ॥ ३ ॥ कतमे रुवा इति द्वोमे पुरुषे प्राणा आत्मेकादशस्ते यदाऽस्ताच्छरीरान्मत्योद्ध-कामन्त्रथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्भद्रा इति ॥ ४ ॥ कतम भावित्या इति हादश वै मासाः संवत्सरखेत आदित्या एते हीद सर्वमाद्दाना वन्ति ते यदिव् सर्वमाददाना यनित तसादादिला इति ॥ ५ ॥ कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति सानयित्तरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतमः स्तनयित्त-रिखशनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥ ६ ॥ कतमे चित्यक्षिश्च प्रविवी च वायुखान्तरिक्षं चादित्यस बौक्षेते घडेते हीद ए सर्व ५ घडिति ॥०॥ कतसे ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो छोका एउ हीमे सर्वे देवा इति कतमी ती हो देवाबित्यंत्रं चैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्ध हति योऽयं पवत हति ॥ ८ ॥ तदाहर्यद्यमेक हवेव पवतेऽथ कथमध्यर्थ हति यदस्मिनिद् सर्वमध्याप्नीते-नाधार्थ इति कतम एको देव इति प्राण इति स बहा त्यदित्याचक्षते ॥ ९ ॥ प्रथिद्येव परवायतनमञ्जिकों को अनोज्योतियों वे तं प्रकृषं विचारसर्वस्यात्मनः परायण र स वे वेदिता स्थात् । याज्ञवन्त्य वेद वा अहं तं पुरुष र सर्वसास्मनः परायणं यमात्थ य प्वाय५ शारीरः प्रश्वः स एव वदेव शाकस्य तस्य का देवतेलकृतमिति होवाच॥ १०॥ काम एव यस्यायतन १ हृद्यं लोको मनी-ज्योतियों वे तं पुरुषं विद्यारसर्वस्थारमनः परायण र स वे वेदिता स्थात् । याज्ञ-बक्त्य वेद वा अहं तं प्ररुष सर्वस्थात्मनः परायणं यमात्थ य प्वायं काम-मयः पुरुषः स एष वदैव शाकस्य तस्य का देवतेति स्त्रिय इति होवाच ॥११॥ इपाण्येव यस्त्रायतनं चक्षुळोंको मनोज्योतियों वे तं पुरुषं विद्याःसर्वस्याः स्मनः परायण्य स वे वेदिता स्वात् । याज्ञवत्त्र्य वेद वा अहं तं पुरुष्य सर्वसात्मनः परायणं यमास्य य पुवासावादिसे पुरुषः स एव वर्वेन ज्ञाकस्य

9

IJ.

10

ja

बच का देवतेति सत्यमिति होवाच॥ १२॥ जाकाश एव यस्यायतमध् कीं कोको सनोज्योतियों वे तं पुरुषं विद्यासर्वस्यात्मनः परायण स वे वेदिता सात्। याज्ञवल्य वेद वा अहं तं पुरुष सर्वस्थात्मनः परायणं यसास्थ ब ध्वाय शीतः प्रातिश्वतः पुरुषः स एव वदेव शाकस्य तस्य का देवतेति बिल इति होवाच ॥१३॥ तम एव यसायतन इदयं लोको मनोज्योतियी वै तं पुरुषं विचारसर्वस्थात्मनः परायण द वे वेदिता स्थात् । याज्ञवस्कय वेद वा वहं तं पुरुषध सर्वस्थात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं छायामयः पुरुषः ल एव वर्देव शाकस्य तस्य का देवतेति सृत्युरिति होवाच ॥ १४॥ रूपाण्येद बलायतनं चक्षुलोंको मनोज्योतियों वे तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्थात्मनः परा-बण्य स वै वेदिता खात्। याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुष्य सर्वस्थात्मनः परायणं यमास्य य एवायमादशें पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देव-तैलाकुरिति होवाच ॥ १५ ॥ आप एव यखायतनक हृदयं छोको मनोज्यो-तियों वे तं पुरुषं विचात्सर्वस्थात्मनः परायण स वे वेदिता स्थात् याज्ञवद्वय वेद वा अहं तं पुरुवध सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्य य एवायमप्सु पुरुवः स पूच वदैव शाकस्य तस्य का देवतेति वरुण इति होवाच ॥ १६ ॥ रेत प्व बखायतन १ हृदयं कोको मनोज्योतियों वै तं पुरुषं विद्यासर्वस्थातमनः परा-वण स वे वेदिता स्याबाज्ञ वत्कय बेद वा अहं तं प्रत्य सर्वस्यात्मनः परावणं यमात्थ य एवायं पुत्रमयः पुरुषः स एष वदेव शाकस्य तस्य का देवतेति मजापतिरिति होवाच ॥१७॥ शाकत्येति होवाच याज्ञवल्यस्वाध स्त्रिदिमै ज्ञाहाणा अज्ञारावक्षयणमकता३ इति ॥ १८ ॥ याज्ञवल्येति होवाच शाकल्यो पदिवं कुरुपञ्चालानां बाह्मणानत्यवादीः किं ब्रह्म विद्वानिति दिशो चेव ख देवाः सप्रतिष्ठा इति यहिशो बेश्य सदेवाः सप्रतिष्ठाः ॥१९॥ किंदेवतोऽस्वी शाच्यां दिइयसीत्यादित्यदेवत इति स आदित्यः किसन्प्रतिष्ठित इति बक्कुषीति कसिन् चक्कः प्रतिष्ठितमिति रूपेष्विति चक्कषा हि रूपाणि पश्यति किसाजु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृद्य इति होवाच हृद्येन हि रूपाणि जानाति हृद्ये होव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतचाज्ञवल्क्य ॥ २० ॥ किंदेव-लोऽत्यां दक्षिणायां दिइयसीति यमदेवत इति स यमः किसन्प्रतिष्ठित इति बज् इति कसिन्तु यज्ञः प्रतिष्ठित इति वृक्षिणायामिति कसिन्तु दक्षिणा प्रतिष्ठितेति अद्यायामिति यदा होव अद्भत्तेऽथ दक्षिणां ददाति अद्यायाप होव दक्षिणा श्रतिष्ठितेति कसिन् अञ्चा प्रतिष्ठितेति हृदय इति होवाच हृदयेन हि अद् षानाति हृद्ये होव अद्धा प्रतिष्ठिता भवतीत्येवमेवैतवाज्ञवल्स्य ॥ २१ ॥

किंदेवतोऽस्यां प्रतीच्यां दिश्यसीति वरुणदेवत इति स वरुणः कस्मिन्प्रतिष्ठित इस्रिस्ति कस्मिन्नापः प्रतिष्ठिता इति रेतसीति कस्मिन्न रेतः प्रतिष्ठितिमिति हृद्य इति तस्माद्पि प्रतिरूपं जातमाहुईदयादिव सृष्ठो हृदयादिव निर्मित इति हृदये होव रेतः प्रतिष्ठितं अवतीत्येवमेवैतवाज्ञवल्क्य ॥ २२ ॥ किंदेव-तोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसीति सोमदेवत इति स सोमः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति दीक्षायामिति कस्मिन्न दीक्षा प्रतिष्ठितेति सत्य इति तस्माद्पि दीक्षितमाहः सर्यं वदेति सत्ये द्येव दीक्षा प्रतिष्ठितेति कस्मिन्न सत्यं प्रतिष्ठितमिति हृदय इति होवाच हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये होव सत्यं प्रतिष्ठितं अवतीत्येवमे-वैतचाज्ञवल्क्य ॥२३॥ किंदेवतोऽस्यां धुवायां दिश्यसीस्वसिदेवत इति सोऽप्तिः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति वाचीति कस्मिन्न वाक् प्रतिष्ठितेति हृद्य इति कस्मिन्न हृद्यं प्रतिष्ठितमिति॥२४॥ अहिं केति होवाच याज्ञवल्कयो यत्रैतद्न्यत्रासम्म-न्यासे यद्येतद्त्यत्रासात्स्य।च्छानो वैनद्द्युर्वयार्सि वैनद्विमञ्चीरिक्षिति ॥२५॥ कस्मिन्न रवं चात्मा च प्रतिष्ठितौ स्थ इति प्राण इति कस्मिन्न प्राणः प्रतिष्ठित इत्यपान इति कस्मिन्नवपानः प्रतिष्ठित इति व्यान इति कस्मिन्न व्यानः प्रति-ष्टित इत्युदान इति कस्मिन्नूदानः प्रतिष्टित इति समान इति स एष नेति नेत्यात्माऽगृद्यो न हि गृद्धतेऽशीयों न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितौ न व्यथते न रिष्यति । एतान्यद्यावायतनान्यद्यौ लोका अद्यौ देवा अद्यौ पुरुषाः स यस्तान्पुरुषान्निरुद्ध प्रत्युद्धात्यकामत्तं त्वोपनिषदं पृच्छाप्ति तं चेन्से न विवस्यसि मुर्घा ते विपतिष्यतीति । तर ह न मेने शाकत्यस्तस्य ह मुर्घा विपपातापि हास्य परिमोषिणोऽस्थीन्यपजहुरन्यन्मन्यमानाः ॥ २६ ॥ अथ होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छत सर्वे वा मा प्रुच्छत यो वः कामयते तं वः प्रुच्छामि सर्वान्वा वः प्रुच्छामीति ते ह **ष्ट्राह्मणा न द्**ष्टुषुः ॥२७॥ तानु हैतैः श्लोकैः पप्रच्छ ॥ यथा वृक्षो वनस्पति-स्तथैव पुरुषोऽसूषा ॥ तस्य छोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः ॥ त्वच प्वास रुधिरं प्रस्पन्दि त्वच उत्पटः ॥ तसात्तदा तृण्णात्प्रैति रसो वृक्षादिवाssहतात्॥ मा**५सान्यस्य शकराणि किनाट५ स्नाव त**स्थिरम् ॥ अस्थीन्यन्तरतौ दारूणि मजा मजोपमा कृता ॥ यद्दक्षी वृक्णो रोहति मूलाञ्चवतरः पुनः ॥ मर्खः खिन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ॥ रेतस इति मा वोचत जीवन तस्तरप्रजायते ॥ धानारुह इव वै वृक्षोऽञ्जसा प्रेत्य संभवः ॥ यत्समूलमावृहै-युर्वेक्षं न पुनराभवेत् ॥ मर्त्यः स्विन्यृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहिति ॥

स्नात एव न जायते को न्वेवं जनयेखुनः ॥ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिदांतुः परायणं तिष्ठमानस्य तद्विद इति ॥ २८ ॥ इति तृतीयाध्याये नवमं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ॐ जनको ह नैदेह आसांचकेऽथ ह याज्ञवल्क्य आववाज। त**५ होवाच** याज्ञवल्क्य किमर्थमचारीः पश्चिनच्छन्नण्वन्तानिति । उभयमेव सम्राडिति होवाच ॥१॥ यत्ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यव्रवीन्मे जित्वा शैलिनिर्वाग्वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्त्र्यात्तथा तच्छैलिनिरव्रवीद्वाग्वै ब्रह्मेत्ववद्ती हि कि स्थादित्यत्रवीतु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽत्रवीदित्येकपाद्वा एतस्स-ख्राडिति स वै नो बूहि याज्ञवत्क्य । वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रज्ञेत्येनदु-पासीत । का प्रज्ञता याज्ञवल्य वागेव सम्राडिति होवाच । वाचा वै सम्राह बन्धुः प्रज्ञायत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः स्त्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्ट्र हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि वाचैव सम्राद प्रज्ञा-यन्ते वाग्वे सम्राद परमं ब्रह्म नेनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते। हस्त्यृषभ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः। स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुदिष्य हरेतेति ॥ २ ॥ यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यव्रवीनम उदङ्कः शौल्वायनः प्राणो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्र्यात्तथा तच्छीत्बायनोऽब्र-वीत्प्राणो वै ब्रह्मेत्यप्राणतो हि कि स्यादित्यब्रवीतु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदिलेकपाद्वा एतःसम्राडिति स वै नो बृहि याज्ञवस्कय प्राण एवायत-वमाकाशः प्रतिष्ठा प्रियमित्येनदुपासीत का प्रियता याज्ञवल्कय प्राण एव सम्राहिति होवाच प्राणस्य वै सम्राद्कामायायाज्यं याजयत्यप्रतिगृद्धस्य प्रतिगृह्णात्यपि तत्र वधाशङ्कं भवति यां दिशमेति प्राणस्यव सम्राद कामाय प्राणो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं प्राणो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवंविद्वानेतदुपास्ते हस्यृषभक्ष सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति

मेति मित देव-इति गाहुः

चित

वमे-इप्तिः सेखु नन्म-१५॥ छित नेति सेती

रुवाः न मूर्घा अथ

मा ते ह

त्वच दिवा•

तरती नः॥ जीव-

ाबुहे-ते ॥

॥ ॥ यदेव ते कश्चिद्ववीत्तब्लूणवासेत्यववीन्से बर्डवार्णश्रक्षुवे व्रह्मेति वथा मातृमान्पितृमानाचार्थवान्त्र्यात्तथा तद्वाव्योऽववीषधुर्वे वद्येत्वप्रवस्ते हि किए खादियमबीतु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न सेऽमबीदिलेकपाहा एतत्स-क्राडिति स वे नो बूहि याज्ञवल्क्य चक्षुरेवायतनमाकावाः प्रतिष्ठा सत्यमित्रेनः हुपासीत का सत्यता याज्ञवरक्य चक्करिव सन्त्राहिति होवाच चक्कवा वै सम्राह पर्यन्तमाहुरवाक्षीरिति स बाहावाक्षिति सस्ततं भवति चक्षांदे सम्राद परमं ब्रह्म नैनं चक्षुर्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यशिक्षरनित देवो भूत्वा देवानच्येति य एवं विद्वानेतदुवासे इस्युवश्रं सहसं ददाशीति होवाच जनको वेदेहः स होवाच याज्ञवस्त्रयः विता मेऽअञ्चल नानजुद्धिस्य हरेतेति ॥ ४ ॥ यदेव ते कथिदववीत्तच्छूणवासेलववीन्से गर्दभीविपीती आरद्वाजः श्रोत्रं वे बहाति यथा मातृमान्यितृमानाचार्यनान्वृयात्त्रया सञ्चार-द्वाजोऽवधीरकोन्ने ने वहीलक्षुण्यतो हि कि स्यादिलववीतु ते तसायतंत्रं प्रतिष्ठां न मेऽववीदिखेकपाद्वा एतत्सक्राडिति स वै नो बृहि वाज्ञवक्तय श्रीक्र-भैवायतनमाकाशः प्रतिष्ठाऽनन्त इत्वेनद्वपासीत काऽनन्तता याज्ञवरूय विश्व हुव समाहिति होवाच तसाहै समाहिप यो को च विद्या गण्डति नेवासा अन्य गंदछत्यनन्ता हि विशो विशो वे सन्ताह श्रोत्र भी ते सन्ताह परसे प्रमा वैन १ श्रीमं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षदन्ति वेची भूरवा वेवान्येति व एवं विद्वानेत्रदुपासे हस्त्युवम् सहजं दवामीति होवाच जनको वैदेवः स होवाच याज्ञवहक्यः पिता झेऽसन्यत जानजुद्धिच्य हरेतेति ॥ ५ ॥ यदेव ते कश्चिद्रववीत्तरङ्गवाभेत्वववीनेसे सत्यकामी जावाकी सनी वे व्रह्मेति वर्षा मातुमान्पितृमानाचार्यवान्त्र्यात्तथा तजाबाकोऽववीन्स्को व वदेखमबसौ हि किर सादिसम्बीतु ते तसायतनं प्रतिष्ठा म भेडमवीदिसेकपादा पुतासमाहिति स वे नो मृहि बाज्ञवस्कय मन पुवायतनमाकानाः प्रतिहाऽऽः नन्द इत्येनदुपासीत का भानन्दता याज्ञवदन्य सन एव सन्नाहिति होवाच मनता वे सम्राद श्वियमभिद्दार्थते तत्वां प्रतिक्या प्रती जावते स भागन्ती मनो वे सन्नाद परमं नहा नैनं मनो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरित देवो भूता देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपासे हस्युषभू सहस्रं द्वा-मीति होवाच जनको वेवेहः स होवाच याज्ञयत्वयः पिता सेऽमण्यत नान-शुक्षिच्य हरेतेति ॥ ६ ॥ यदेव ते कक्षिव्यवीत्तरकृणवासेत्वन्नवीत्से विवरणः काकस्यो हद्यं वे बहोति यथा साहमान्यवस्थानावार्यकान्यूयाल्या वन्त-

तरे

Q'a

via

省可

च

TE.

in

To

No.

iy

T

श

in

ते

T

5-

च

f

T

70

1

TR

कस्योऽज्ञवीद्धृद्यं वे ज्ञहोत्यहृद्यस्य हि किए स्वादिस्वज्ञवीतु ते तस्या-यत्तं प्रतिष्ठां न मेऽज्ञवीदिस्येकपाद्वा एतस्यज्ञानित स वे नो बृह्धि याज्ञ-वन्त्य हृद्यमेवायत्तनमाकाशः प्रतिष्ठा स्थितिदिस्येनद्वुपासीत का स्थितवा याज्ञवन्त्य हृद्यमेव सज्ञानित होवाच हृद्यं वे सज्ञाह सर्वेषां भूताना-आयत्तन एह्दयं वे सज्ञाह सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा हृद्ये द्येव सज्जाह सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि भवन्ति हृद्यं वे सज्जाह परमं ब्रह्म नेनर हृद्यं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवान्त्येति य एवं विद्वानेतदुपासे हृस्स्यृवस्य सहस्रं ददासीति होवाच जनको वेदेहः स होवाच याज्ञवन्त्यः विता सेऽमन्यत नानजुद्यान्य हरेतेति॥ ७॥

इति चतुर्थाच्याये प्रथमं बाह्मणम् ॥ १ ॥

ॐ जनको ह वैदेह: कूर्चांदुपावसर्पसुवाच नमस्रेऽस्तु याज्ञवस्ययानु मा बाबीति स होवाच यथा वै सम्राज्यहान्त्रमध्वानमेध्यन रथं वा नावं वा बसाददीतैवसेवैताभिक्पनिषद्धिः समाहितात्माऽस्येवं वृत्दारक आखाः सच-जीतवेद उक्तोपनिषक इतो विसुच्यमानः क गमिष्यसीति . नाहं तसंगवन्वेद यत्र गमिष्यामीत्यथ वे तेऽहं तद्वस्यामि यत्र गमिष्यसीति व्रवीत भगवा-क्षिति ॥ १ ॥ इन्धो ह वे नामेष योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तं वा प्रतमिन्धर सन्तिमन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेणैव परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रस्यक्षद्विषः ॥ २ ॥ अथैतद्वामेऽक्षणि पुरुवरूपमेवास्य पत्नी विराद तयोरेष सक्सावो य एषोऽन्तहृदय आकाशोऽयेनयोरेतद्वं य एषोऽन्तहृदये कोहितापेण्डोsबैनबोरेतत्यावरण यदेतदन्तर्हद्ये जाकक्रमिवाधैनयोरेषा स्तिः संचरणी येचा हृदयादूष्वी नाट्युखरति यथा केशः सहस्रधा भिन्न एवमस्येता हिता नाम नाड्योऽन्तहृद्ये प्रतिष्ठिता भवन्त्येव ताभिर्ना एतदास्रवदास्रवति जस्मादेच प्रचिविकाहारतर इवैव भवत्यसाच्छारीरावात्मनः ॥ ३ ॥ तस्य शाची दिक् प्राञ्चः प्राणा दक्षिणा दिग्दक्षिणे प्राणाः प्रतीची दिक् प्रसञ्चः प्राणा उदीची दिगुद्ञ: प्राणा जन्दी दिगुर्म्बाः प्राणा अवाची दिगवाञ्चः प्राणाः सर्वा दिक्तः सर्वे प्राणाः स एव नेति नेत्यास्माऽगृद्धो नहि गृह्यते-ऽद्यीपीं नहि दीर्यतेऽसङ्गो नहि सज्यतेऽसितो न व्यथते ग रिष्यत्यस्रवं वै जनक प्राप्तोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः । स होवाच जनको वेदेहोऽअसं त्वा गच्छताबाज्ञवात्त्य यो नो अगवश्वभयं वेदयसे नमसेऽस्त्विमे विदेहा जयसङ्मस्मि ॥ ४ ॥

इति चतुर्थां ज्याये दितीयं जाह्मणम् ॥ २ ॥

पसोऽनन्यागतं प्रपयेनानन्यागतं पापेन तीणीं हि तदा सर्वाञ्छोकान्हहरूपस अवति ॥ २२ ॥ यहै तक पश्यति पश्यन्ये तक पश्यति न हि द्रष्ट्रईष्टेविपरि-छोपो विद्यतेऽविनादित्वाच तु तहितीयमस्ति ततोऽन्यहिभक्तं यत्पक्षेत् ॥ २३ ॥ यहै तस जिन्नति जिन्नन्वे तस जिन्नति न हि न्नातुर्नातेर्विपरिकोपो विवातेऽविनाशित्वावतु तहितीयमस्ति ततोऽन्यहिभक्तं यजिनेत् ॥ २४ ॥ यहै तब रसयते रसयन्वे तस रसयते नहि रसयित रसयतेविपरिकोपी विष्यतेऽविनाशित्वाच त तहितीयमस्ति ततोऽन्यहिभक्तं यहसयेत् ॥ २५ ॥ बहै तन बद्दित बद्द्वे तन बद्दित न हि बक्तुवैकेविषरिखोपी विद्यतेऽविनाः बित्वाच त तहितीयमस्ति ततोऽन्यहिभक्तं यहदेत् ॥ २६ ॥ यहे तच मणोति भणवन्वे तस भणोति न हि ओतः श्रतेविंपरिकोपो विचतेऽविनाकि-त्वाच तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छ्णुयात् ॥ २७ ॥ यद्वे तच मजुते मन्वानी वै तन्न मजुते न हि मन्तुर्भते विपरिकोपी विचते ऽविना वि-त्वाच त तद्वितीयसस्ति वतोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत ॥ २८ ॥ यद्वै तस्र स्प्रशति स्प्रशन्वे तक स्प्रशति नहि स्प्रष्टः स्प्रप्टेविंपरिकोपो विस्रतेऽविनाज्ञिः त्वाच तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्सपृशेत् ॥ २९ ॥ यहै तस विजा-नाति विजानन्वे तस विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिकोपो विवातैsविनाशिष्वाच तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात् ॥ ३० ॥ बत्र वान्यदिव सात्तत्रान्योऽन्यत्पइयेदन्योऽन्यक्तिन्नेदन्योऽन्यद्वसचेदन्योऽन्य ह्रदेदन्योऽन्यच्छ्रणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्र्युशेदन्योऽन्यद्विजानीयात् । ॥ ३१ ॥ सलिल एको द्रष्टाऽद्वेतो अवस्रेष ब्रह्मकोकः सम्राजिति हैनमनुश-बास याज्ञवरूस्य एषास्य परमा गतिरेषास्य परमा संपदेषोऽस्य परमो छोक एपोऽस्य परम आनन्द एतस्येवानन्दस्थान्यानि भृतानि मात्राञ्चपनीवन्ति ॥३२॥ स यो मनुष्याणार रादः समृद्धौ अवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मानुज्य-कैभोगैः संपन्नतमः स मनुष्याणां परम भानन्दौऽथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः स एकः पितृणां जितलोकानामानन्दोऽथ ये वातं पितृणां जितलोकानामान नन्दाः स एको गन्धर्वेकोक भानन्दोऽथ ये वातं गन्धर्वक्रोक आनन्दाः स एकः कर्मदेवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमिसंपद्यन्तेऽथ ये शतं कर्शदेवानाः मानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दी यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽध वे शतमाजानदेवानाम।नन्दाः स एकः प्रजापतिकोक आनन्दो पश्च श्रोत्रिः बोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एको ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृत्तिनोऽकामहतोऽथैष एव परम आनन्द एव मुख्

H

Pa

T

T

कोकः सम्राहिति होवाच याज्ञवल्वयः सोऽहं अगवते सहस्रं द्दाम्यत अर्ध्व विमोक्षायेव ब्रूहीत्यम्न ह याज्ञवल्क्यो विभयांचकार मेधावी राजा सर्वेम्यो माऽन्तेभ्य उद्शेष्सीदिति ॥ ३३ ॥ स वा एष एतस्मिन्स्वमान्ते रत्वा चरित्वा हृष्ट्वेद पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायेव ॥ ३४ ॥ सण्याऽनः सुसमाहितसुरसर्ज्ञचायादेवसेवाय भारित शारीर भारामा प्राक्रेनात्मनान्वारू सुसमाहितसुरसर्ज्ञचायादेवसेवाय भारित ॥ ३५ ॥ स यन्नायमणिमानं न्योति जर्या वोषतपता वाणिमानं निगच्छति तण्यामं वोदुम्बरं चा विष्यकं वा बन्धवाद्यमुच्यत प्रवमेवायं पुरुष प्रयोऽङ्गेभ्यः संप्रसुच्य पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्वति प्राणायेव ॥ ३६ ॥ तण्या राजानमायान्तसुमाः प्रत्येनसः स्वत्यामण्योऽज्ञेः पानेरावसयेः प्रतिकल्पन्तेऽयमायात्वयमागच्छतीत्येव हैवं-विद् सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्पन्त इदं ब्रह्मायातीद्मागच्छतीति ॥ ३७ ॥ तण्या राजानं प्रयियासन्तसुमाः प्रत्येनसः स्वत्यामण्योऽभिसमायन्तियन सेवेममारमानमन्तकाले सर्वे प्राणा अभिसमायन्ति यम्रतदूर्थांच्छ्वासी अवति ॥ ३८ ॥

इति चतुर्थाध्याये तृतीयं ज्ञाह्मणम् ॥ ३ ॥

स यजायमात्माऽबल्यं न्येत्व संमोहभिव न्येत्वयैनमेते प्राणा अभिसमायन्ति ख एतारतेजोमात्राः समध्याददानो हदयमेवान्ववकामति स यत्रैष चाक्षणः पुरुषः पराङ् पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो अवति ॥ १ ॥ एकी अवति न पश्यतीत्वा-हुरैकी अवति न जिब्बतीत्याहुरैकी अवति न रसयत इत्याहुरैकी अवति न वदतीत्वाहुरेकी अवति न श्रणोतीत्वाहुरेकी भवति न मनुत इत्वाहुरेकी अवति न स्पृज्ञतीत्वाहुरैकी अवति न विजानातीत्वाहुस्तस्य हेतस्य हतयस्याग्रं प्रचोतते तेन प्रचोतेनेच भारमा निष्कामति चक्षुष्टो वा मुझी वाडन्येम्यो वा तारीरदे-होभ्यत्तमुत्जामन्तं प्राणोऽनुत्जामति प्राणमनुत्जामन्व५ सर्वे प्राणा अनुत्जा-मन्ति स विज्ञानो अवति सविज्ञानमेवान्ववकामति । तं विषाकमणी सम-न्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च ॥२॥ तद्यथा तृणजकायुका तृणखान्तं गरवाऽन्यमाक्रम-माकस्यात्मानसुपस्र हरसेवसेवायमात्मेद्र शरीरं निहस्याऽविषां गमयित्वाङ-न्यम!कमसाकस्यात्मानसुपल ४ हरति॥ ३ ॥ तद्यथा पेशस्कारी पेशसी माम्रा-मपादायान्यक्षवतरं कस्याणतर४ रूपं तनुत एवमेवायमात्मेद४ शरीरं निह-व्याऽवियां गमयित्वाऽन्यञ्चवतरं कस्याणतर् रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धवं वा दैनं वा प्राजापत्यं वा ब्राइं वाडन्येषां वा भूतानाम् ॥ ४ ॥ स वा भयमात्मा वश विज्ञानमयो मनोमयः प्राणसयश्चभ्रमयः श्रोत्रसयः प्रविवीमय आपोसको

वायुमय आकाशमयखेजीमयोऽतेजीमयः काममयोऽकाममयः कोधमयोऽ-कोधमयो धर्ममयोऽधर्भमयः सर्वमयस्तवदेतदिदंमयोऽदोमय इति यथा-कारी यथाचारी तथा अवति साधुकारी साधुभवति पापकारी पापो अवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा अवति पापः पापेन ॥ अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामी अवति तत्कतुर्भवति याकतुर्भवति तत्कमें कुरुते यस्कर्भ कुरुते तद्भिसंपचते ॥५॥ तदेष छोको भवति ॥ तदेव सक्तः सह कर्य-णेति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य ॥ प्राप्यान्तं कर्मणसास्य यक्तिचेह करोत्ययस् ॥ तसालोकाधनरेत्यसे लोकाय कर्मण इति जुकासयमानोऽथाकासयमानो योऽ-कामो निष्काम आसकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्कासन्ति बहीन सन्द्र-ह्याच्येति ॥६॥ तदेष श्लोको अवति । यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृद्धि श्रिताः ॥ अथ मत्यें ऽस्तो भवत्यत्र बहा समञ्जत इति ॥ तद्यथा ऽहि निल्वेयनी वल्मीके सृता प्रत्यसा शयीतैवसेवेद शरीर शेतेऽथायमशरीरोऽसृतः प्राणी ब्रह्में व तेज एव सोऽहं भगवते सहसं ददामीति हो वाच जनको वैदेहः॥ ७॥ तदेते श्लोका अवन्ति ॥ अणुः पन्था विततः पुराणो मा ४ स्पृष्टी उन्नवित्तो स्रथैव ॥ तेन घीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्तर्गे लोकमित उध्वे विद्युक्ताः ॥८॥ तस्मिन्छुक्रुमुत नीलमाहः पिङ्गल हितं लोहितं च ॥ एव पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तेजसश्च ॥ ९ ॥ अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यासूपासते ॥ ततौ भ्य इव ते तमो य उ विद्याया रताः ॥१०॥ अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ॥ तार्रस्ते प्रेताभिगच्छन्त्यविद्वार्रसोऽनुधो जनाः ॥ ११ आत्मानं चेद्विजानीयाद्यमस्मीति पूरुषः ॥ किसिच्छन्कस्य कामाय शरीरम-बुसंज्वरेत् ॥१२॥ यस्याबुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्माऽस्मिन्संदेह्ये गहने प्रविष्टः ॥ स विश्वकृत्स हि सर्वस्य कर्ता तस्य कोकः स उ कोक एव ॥ १३ ॥ इहैव सन्तोऽथ विद्यस्तद्वयं न चेदवेदिर्भहती विनष्टिः ॥ ये तद्विदुरस्तास्ते अवन्त-थेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥ १४ ॥ यदैतमनुपश्यत्यात्मानं देवमञ्जला ॥ ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ १५॥ यस्मादवीक्संवत्सरोऽहोसिः परिवर्तते ॥ तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽसृतस् ॥ १६ ॥ यस्मिन्पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ॥ तमेव मन्य आत्मानं विद्वान्त्रह्यासृतोऽसृतस् ॥ १७ ॥ प्राणस प्राणसुत चक्कुषश्चक्कुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो वे मनो विदुः ॥ ते निचिक्युर्बह्म पुराणमञ्जयम् ॥ १८ ॥ मनसैवानुदृष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन ॥ सत्योः स सृत्युमामोति य इह नानेव पश्यति ॥ १९ ॥ प्कचेवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमयं धुवम् ॥ विरजः पर आकाशादज भारमा महा-

न्

त

11

11

70

T

FIL '

न्ध्रुवः ॥ २० ॥ तसेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत बाह्यणः ॥ नानुष्याबाह्य-हुङ्ख्ब्दान्वाची विक्लापन्य हि तदिति॥ २१ ॥ स वा एव महानज खात्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हदय भाकाशस्त्रस्मिण्डेते सर्वेख वशी सर्वेखेशानः सर्वेखाधिपतिः स न साधुना कर्मणा भूयाजी एवासाधुना कनीयानेष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाळ एष सेतुर्वि-धरण एषां लोकानामसंभेदाय तमेतं वेदानुवचनेन बाह्यणा विविदियन्ति यहैन दानेन तपसाऽनाशकेनैतसेन निदिखा सुनिर्भवति । एतसेन प्रजानिनी लोकमिच्छन्तः प्रवजनित । एतछ सा वैतत्पूर्वे विद्वारसः प्रजां न कामयन्ते कि प्रजया करिष्यामी थेषां नोऽयमात्माऽयं कोक इति ते ह स्म पुत्रैषणा-याश्च वित्तेषणायाश्च छोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्य चरन्ति या होव पुत्रैषणा सा वित्तेषणा या वित्तेषणा सा छोकेषणोमे होते एषणे एव भवतः ॥ स एष नेति नेसात्माऽगृद्यो न हि गृह्यतेऽशीयों न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यते असितो न व्यथते न रिष्यस्रेत्स हैवेते न तरत इस्पतः पापमकरविम-त्यतः कल्याणमकरविमन्युभे उ हैवैष प्रते तरित नैनं कृताकृते तपतः ॥ २२ ॥ वदेतहचाभ्युक्तम् । एव नित्यो महिमा बाह्यणस्य न वर्षते कर्मणा नो कनी-यान् ॥ तस्येव स्थात्पदवित्तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति । तस्या-देनंबिच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिश्चः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पड्यति सर्वभारमानं पड्यति नैनं पाप्या तरति सर्वं पाप्यानं तरति नैनं पाप्मा तपति सर्व गप्मानं तपति विपापो विरजोऽदिचिकित्सो बाह्मणो अवलेष जलाकोकः समाहेनं प्रापितोऽसीति होवाच याम्रवस्त्यः सोऽहं अगवते विदेहान् दुदामि मां चापि सह दाखायेति ॥ २३ ॥ स वा एष महानज आत्माऽजादो वसुदानो निन्दते वसु य एवं वेद ॥ २४ ॥ स वा एव महानज आत्माजरोऽमरोऽसृतोऽभयो ब्रह्माभयं ने ब्रह्माभय५ हि ने ब्रह्म अवति य एवं वेद ॥ २५॥

इति चतुर्थाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ ह याज्ञवल्यस्य द्वे भावें बभूवतुमैंत्रेथी च कात्यायनी च तयोई
मैत्रेथी बह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञैन तर्हि कात्यायन्यथ ह याज्ञवल्क्योऽन्यहुत्तसुपाकरिच्यन् ॥ १ ॥ मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रविष्यन्या सरैऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति ॥ २ ॥ सा
होवाच मैत्रेथी यन्न म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्वात्स्यां न्वहं
तेनासृताऽऽहो ३ नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यभैवोषकरणवतां बीवितं

तथैव ते जीवित ए स्यादम्हतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति ॥ ३ ॥ सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्या यदेव अगवान्वेद तदेव मे ब्रहीति ॥ ४ ॥ स होवाच याज्ञवत्कयः प्रिया वे खलु नो अवती सती प्रियमवृधदन्त तर्हि भवसेतद्याख्याखापि ते व्याचक्षाणख तु मे निद्ध्या-सखेति ॥ ५ ॥ स होवाच न वा भरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो अवस्या-स्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायाये कामाय जाता प्रिया अवस्यास्मनस्त कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे प्रत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं अवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं अवति । न वा अरे पश्चानां कामाय परावः प्रिया अवन्त्यात्मनस्तु कामाय परावः प्रिया अवन्ति। न वा और ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म भियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं अवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं अवति । न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया अवन्त्वात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया अवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया अवन्सात्मनस्त्र कामाय देवाः प्रिया अवन्ति । न ना अरे नेदानां कासाय नेदाः प्रिया अवन्तात्सनस्त कामाय नेदाः प्रिया भवन्ति । न ना अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि अवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि अवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाव सर्वे प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वे प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतच्यो मन्तच्यो निदिध्यासितच्यो मैत्रेड्यात्मनि खत्वरे इष्टे श्रुते मते विज्ञात इद४ सर्व विदितस् ॥ ६ ॥ ब्रह्म तं परादाचो ऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाचोऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोका-म्बेद देवासं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो बेदान्वेद भूतानि तं पराबुयोंऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादायोऽन्य-त्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इसे देवा इसे वेदा इसानि अूता-नीद्र सर्वं यदयमात्मा ॥ ७ ॥ स यथा दुन्दुसेईन्यमानस्य न बाह्याञ्छद्दाः ज्छक्कुयाद्रहणाय दुन्दुभेस्तु प्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥८॥ स बथा राङ्कस्य ध्मायमानस्य न बाह्यान्छब्दान्छक्क्याद्वहणाय राङ्कस्य तु प्रहणेन क्कान्तुध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ९ ॥ स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याः ज्छेंदाज्छक्रुयाद्वहणाय वीणाये तु प्रहणेन वीणावादस्य वा वाब्दो गृहीतः ॥ १०॥ स यथाद्रैं घाप्रेरम्याहि नस पृथम्भूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निम्मसितमेतचहुग्वेदो भजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः

वुराणं विचा उपनिषदः श्लोकाः सुत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्ट्रे हुत-माशितं पायितमयं च कोकः परश्च कोकः सर्वाणि च भूतान्यस्वैवेतानि सर्वाण क्षिश्वसितानि ॥ ११ ॥ स यथा सर्वासामपार समुद्र एकायनमेवर सर्वेषार स्प-र्शानां त्वरीकायनमेव सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेव सर्वेषा स्सा-नां जिह्नेकायनमेव सवेंबा संक्षाणां चक्षुरेकायनमेव सवेंबा स्वाब्दाना स क्षीत्रमेकायनमेव सर्वेषा संकल्पानां मन एकायनमेव सर्वासां विद्याना स हृद्यमेकायनमेव ५ सर्वेषां कर्मणा ६ ह्यावेकायनमेव ५ सर्वेषामानन्दानामु-वस्य एकायनसैन सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनसेन सर्वेषामध्वनां पादाः केकायनभेव ए सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ १२ ॥ स यथा सैन्धवधनी-डनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्त्रो रसघन एवेवं वा अरेऽयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्त्रः बज्ञानघन एवेतेश्यो अूतेश्यः समुत्थाय तान्येवानुविनइयति न प्रेत्य संज्ञा-**उसीखरे बनीमीति होनाच याज्ञनल्म्यः ॥१३॥ सा होनाच मेन्रेश्यन्नेन मा अ**-गवान्मोहान्तमापीपिपन्न वा अहमिमं विजानामीति स होवाच न वा अरेऽहं मीहं बवीम्यविनाशी वा अरेऽयसाःसाऽनुच्छित्तिधर्मा ॥१४॥ यत्र हि हैतसिव अवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिप्रति तदितर इतर रसयते विदितर इतरमिनद्ति तदितर इतर श्रणोति तदितर इतरं मन्ते तदितर इतर स्पृशाति ताँदेतर हतरं विजानाति यत्र त्वस्य सर्वमारमेवाभूत्तत्केन कं बाइयेत्तत्केन कं जिल्लेतत्केन कर रसयेत्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कर ग्राण्यासः ब्हिन कं अन्वीत तत्केन क्र स्पृशेत्तत्केन कं विजानीयाधेनेद सर्व विजानाति तं केन विजानीयात्स एव नेति नेत्यात्माऽगृद्यो न हि गृह्यतेऽशीयों न हि शी-र्वतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजा-नीयादित्युक्तानुशासनासि मैत्रेय्येतावद्रे खल्वसृतत्वमिति होन्त्वा याज्ञव-लयो विजहार ॥ १५ ॥

इति चतुर्थाध्याये पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ वर्षशः पौतिमाध्यासौतिमाध्यो गौपवनाद्गौपवनः पौतिमाध्यासौतिमाध्यो गौपवनाद्गौपवनः कौशिकाकोशिकः कौण्डिन्याकौण्डिन्यः शाण्डिल्याः
च्छाण्डिल्यः कौशिकाश्च गौतमाञ्च गौतमः ॥ १ ॥ आग्निवेश्यादाग्निवेश्यो
गार्ग्याद्वाग्यो गार्ग्याद्वाग्यो गौतमाद्गौतमः सेतवात्सितवः पाराशर्यायणात्पाराअर्थायणो गार्ग्यायणाद्वाग्यीयण उद्दालकायनादुद्दालकायनो जावालायनाजाबालायनो माध्यन्दिनायनान्माध्यन्दिनायनः सोकरायणात्मौकरायणः काषाबणात्काषायणः सायकायनात्सायकायनः कौशिकायनैः कौशिकायनिः ॥ २ ॥

मृतकोशिकादृतकोश्विकः पाराशयीयणात्पाराशयीयणः पाराशयीत्पाराशयों जात्कृष्ण्यां ज्ञात्कृष्यं आसुरायणास्त्र यास्कास्त्रासुरायणस्त्रेनणेस्नेनणिरापजन्धनेरीपजन्धनिरासुरेरासुरिभारद्वाजाद्वारद्वाज आन्नेयादान्नेयो माण्टेमाण्टिगाँतमाद्वीतमो गोतमाद्वीतमो नाःस्वाद्वास्त्यः शाण्डित्याच्छाण्डित्यः केशोर्याच्छाप्तितमो गोतमाद्वीतमो नाःस्वाद्वास्त्यः शाण्डित्याच्छाण्डित्यः केशोर्याच्छाप्तिशोर्यः काण्यः कुमारद्वारितारकुमारद्वारितो गाल्वाद्वाल्वो निदर्भाकोण्डिन्याद्विदर्भाकोण्डिन्यो नःसनपातो नाअनाद्वस्तनपाद्वाभ्रवः पथः सौभरात्पन्थाः
सोभरोऽयास्वादाङ्विरसादयास्य आङ्गरस आभृतेस्त्वाद्वादास्तिरस्वाद्वो विश्वक्षात्त्वाद्वाद्विश्वक्ष्यस्त्वाद्वोऽधिभ्यामिश्वनो द्वीच क्षायर्थणाद्व्यङ्वाथर्वणो
देवाद्यवीदेवो सृत्योः प्राध्व स्तानस्त्रस्यः सनारोः सनारः सनारमध्व सन
एकवेरेकविविप्रचित्तिनित्वित्विर्विद्विद्विः सनारोः सनारः सनातनारस्रनातनः सनगास्तनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म ख्वयंश्च ब्रह्मणे नमः॥ ३॥

इति चतुर्थाध्याये षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पश्चमोऽच्यायः ॥ ५ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णांस्पूर्णमुदच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-शिष्यते ॥ ॐ सं ब्रह्म सं पुराणं वायुरं समिति ह स्माह कौरत्यायणीपुत्री वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुवेंदैनेन यद्वेदितव्यम् ॥ १ ॥

इति पन्नमाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतो पिति ह त्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुःया असुरा उपित्वा त्रह्मचर्य देवा अञ्चर्ववीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतद्श्वरश्चवाच द हित व्यज्ञासिष्मे ति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योग्निति होवाच व्यज्ञासिष्टे ।। १ ॥ अथ हैनं मनुष्या अञ्चर्वति नो भवानिति तेभ्यो हैत-देवाक्षरस्वाच द हित व्यज्ञासिष्टा ६ हित व्यज्ञासिष्टेति ।। १ ॥ अथ हैनमसुरा अञ्चर्वतीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरस्वाच द हित व्यज्ञासिष्टेति ॥ २ ॥ अथ हैनमसुरा अञ्चर्ववीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरस्वाच द हित व्यज्ञासिष्टे । ३ हित व्यज्ञासिष्टे । अथ हैनमसुरा अञ्चर्ववीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरस्वाच द हित व्यज्ञासिष्टा ३ हित व्यज्ञासिष्टे । अथ हैनमसुरा अञ्चर्ववीति तदेववेषा क्षिते होचुर्दयस्विति न आत्थेत्योग्निति होवाच व्यज्ञासिष्टेति तदेतदेवेषा देवी वागनुवदित स्नवित्रहुई द द हित दाम्यत दत्त दयस्विग्निति तदेतत्रवर्ष सिक्षेदमं दानं दयाग्निति ॥ ३ ॥

इति पन्नमाध्याये द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥ युष प्रजापतिर्येखृदयमेतद्वस्त्रेतस्त्रवं तदेतन्नयक्षर्रहृद्यमिति हृ इत्येकम- क्षरमभिहरन्यको स्वाधान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददत्यसे स्वा-श्चान्त्रे च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्ग लोकं य एवं वेद् ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

तहें तदेतदेव तदास सलमेव स यो हैतं महद्यक्षं प्रथमनं वेद सलं ब्रह्मेति जयतीमाँ छोकान् जित इक्वसावसद्य एवसेतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति सत्य देव ब्रह्म ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

आप एवेदमञ भासुस्ता भाषः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म ब्रह्म प्रजापति प्रजापति हैं वा ऐसी देवाः सत्यमेवीपासते तदेत चयक्षर सत्यमिति स इत्येक-मधारं तीत्येकमक्षरं यमित्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृतं तदे-तदनृतस्थायतःसत्येन परिगृहीत्र सत्यभूयमेव भवति नैवं विद्वारसमनृतर हिनस्ति ॥ १ ॥ तद्यक्तस्यमसौ स आदियो य एव एतस्मिन्मण्डले प्रक्वो यक्षायं दक्षिणेऽक्षनपुरुषसावेतावन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ रिमिश्रवेषोऽस्मिन्प्र-तिहितः प्राणेरयसमुन्मिन् स यदोत्कमिष्यन्भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पत्रवित नैनमेते रइमयः प्रखायन्ति ॥ २ ॥ य एव एतस्मिन्मण्डले पुरुषसास्य भूरिति शिर एक र शिर एक मेतदक्षरं अव इति बाहु हो बाहु हे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा है प्रतिष्ठे है एते अक्षरे तस्योपनिषद्हिरिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥ ३ ॥ योऽयं दक्षिणेऽक्षनपुरुषस्तस्य भूरिति शिर एक् शिर षुक्रमेतद्धरं अव इति बाहू हो बाहू हे एते अक्षरे खरिति प्रतिष्ठा हे प्रतिष्ठे हु एते अक्षरे तत्वोपनिषदहसिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥ ४ ॥

इति पत्रसाध्याये पत्रमं ब्राह्मणम् ॥ ', ॥

मनीमयोऽयं पुरुषो भाः सत्यस्तस्मिननहृदये यथा बीहिवा यदो वा स पुष सर्वस्थेशानः सर्वस्थाधिपतिः सर्विमिदं प्रशास्ति यदिदं किंच ॥ १ ॥ इति पञ्चमाध्याये षष्ठं बाह्मणम् ॥ ६ ॥

विद्युद्रहोत्याहुर्विद्रानाद्विद्यद्वित्यत्येनं पाप्मनी य एवं वेद विद्युद्रह्मेति विष्टिव बहा ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

वाचं भेजुमुपासीत तस्याश्रवारः स्तनाः स्ताहाकारो वषद्वारो हन्तकारः स्त-धाकारसासी हो सानी देवा उपजीवन्ति खाहाकारं च वषद्वारं च हन्तकारं मनुष्याः खधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वस्सः ॥ १ ॥

इति पद्यमाच्यायेऽष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८॥

अयमित्रें वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमकं पच्यते यदिदमयते तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णाविषधाय द्युणोति स यदोत्क्रियन्भवति नैनं घोष् श्रुणोति ॥ १ ॥

इति पश्चमाध्याये नवसं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

यदा वे पुरुषोऽस्माञ्चोकात्मेति स वायुमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा रथचक्रस्य खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स आदित्यमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा लम्बरस्य खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स चन्द्रमसमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा दुन्दुभेः खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स लोकमाग-च्छत्याक्रमहिमं तस्मिन्वसति शाश्वतीः समाः ॥ १ ॥

इति पञ्चमाध्याये दशमं ब्राह्मणम् ॥ १० ॥

एतहै परमं तपो यद्याहितस्तप्यते परम् हैव लोकं जयति य एवं वेदैतहैं परमं तपो यं प्रेतमरण्यः हरन्ति परमः हैव लोकं जयति य एवं वेदैतहैं परमं तपो यं प्रेतमझावभ्याद्धति परमः हैवं लोकं जयति य एवं वेद ॥ १ ॥

इति पश्चसाध्याय एकादशं ब्राह्मणस् ॥ ११ ॥

अनं ब्रह्मेत्येक आहुस्तन तथा प्रयति वा असमृते प्राणात्प्राणो ब्रह्मेत्येक आहुत्तान तथा गुज्यति वे प्राण ऋतेऽनादेते ह त्वेव देवते एकधासूयं भूत्वा प्रस्तां गच्छतस्तद्ध स्माह प्रानृदः पितरं कि स्विदेवेवं विदुषे साधु कुर्या किसेवास्मा असाधु कुर्यामिति स ह स्माह पाणिना सा प्रानृद कस्त्वेनयोरे-कधासूयं भूत्वा परमतां गच्छतीति तस्मा उ हैतदुवाच वीत्यन्नं वे व्यक्ते हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि रमिति प्राणो वे रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि रमिति प्राणो वे रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रमन्ते य प्वं वेद ॥ १ ॥

इति पद्यमाध्याये द्वादशं ब्राह्मणम् ॥ १२ ॥

उन्धं प्राणो वा उन्धं प्राणो हीद्र सर्वमुखापयरमुद्धास्मादुक्थविद्वीरिक्षिछत्युनथस्य सायुज्य सलोकतां जयति य एवं वेद ॥ १ ॥ यजः प्राणो वे
बजः प्राणे हीमानि सर्वाण भूतानि युज्यन्ते युज्यन्ते हास्मै सर्वाण भूतानि
श्रेष्ठ्याय यज्ज्यः सायुज्य सलोकतां जयति य एवं वेद ॥ २ ॥ साम प्राणो
वे साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि सम्यञ्चि हास्मै सर्वाणि
भूतानि श्रेष्ठ्याय कल्पन्ते साम्नः सायुज्य सलोकतां जयति य एवं वेद
॥ ३ ॥ अत्रं प्राणो वे अत्रं हि त्रायते हैनं प्राणः क्षणितोः प्रक्षत्रमत्रमाप्नोति
क्षत्रस्य सायुज्य सलोकतां जयति य एवं वेद ॥ ४ ॥

, इति पन्नमाध्याये त्रयोदशं ब्राह्मणम् ॥ १३ ॥

अमिरन्तरिक्षं धौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षर् इ वा एकं गायन्ये पद्मेतद् हैचास्था एतत्स यावदेषु त्रिषु छोकेषु तावद जयति योऽस्या एतदेवं पढ़ं वेद ॥ १ ॥ ऋची यज् १ पि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षर इ वा एकं गा-युज्ये पदमेतद् हैवास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या-एतदेवं पदं वेद ॥ २ ॥ प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षर ह वा एकं गायत्र्ये पद्मेतदु हैवास्या एतत्स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति बोऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति यहै चतुर्थ तत्त्रीयं दर्शतं पदमिति ददश इव होष परोरजा इति सर्वमु ह्येवैच रज उपर्युपरि तपत्येव र हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥ ३ ॥ सेषा गायन्येतसि ४स्तुरीये दर्शते पदे परोरजाति प्रतिष्ठिता तहें तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुवें सत्यं चक्षुविं वे सत्यं तस्माचिद्वानीं हो विवद्मानावेयातामहमद्रशमहमश्रोषमिति य एवं व्यादहमद्रशमिति तसा एव श्रद्ध्याम तहै तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रति-ष्ठित तस्मादाहुर्बेळ १ सत्यादोगीय इत्येवस्वेषा गायन्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैचा गया र सत्ते प्राणा वे गयास्तःप्राणा र सत्रे तचत्र्या र सत्रे तसाद्रायत्री नाम स यामेवामू सावित्रीमन्वाहेषेव सा स यसा अन्वाह तस्य प्राणा स्वा-यते ॥ ४ ॥ ताथ हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टुवेतद्वाचमनुत्रूम इति न तथा कुर्याद्वायत्रीमेव सावित्रीमनुव्याद्यदिह वा अप्येवंविद्विव अतिगृक्षाति न हैव तद्गायन्या एकंचन पदं प्रति ॥ ५ ॥ स य इमार्स्वीं॰ क्कीकान्यूर्णान्त्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्रुयाद्थ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतद्वितीयं पदमामुयाद्य यावदिदं प्राणि यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमामुयादथास्या एतदेव तुरीखं दुर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृद्धी-यात् ॥ ६ ॥ तस्या उपस्थानं गायन्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदासि निह पद्यसे । नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति यं द्विष्यादसावस्मे कामो मा समृद्धीति वा न हैवासे स कामः समृद्धते यस्मा एवसुपतिष्ठतेऽहमदः प्राप्रमिति वा॥ ७॥ एतद्ध वै तज्जनको वैदेही बुडिकमाश्वतराश्विमुवाच यत्रु हो तद्रायत्रीविदब्र्था अथ कथर हस्तीभूतो वहसीति मुख इ झसाः सम्राप्न विदांचकारेति होवाच तस्या अग्निरेव मुखं यदि ह वा अपि बह्विवाझावश्याद्धति सर्वमेव तत्संद्हत्येव हैंवैवंविध- चिप बह्निव पापं कुरुते सर्वभेत्र तस्संप्साय ग्रुद्धः पूतोऽजरोऽसृतः संभवति ॥ ८ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्दशं व्राह्मणम् ॥ १४ ॥

हिरणसयेन पात्रेण सत्यसापिहितं अलं। तत्त्वं पूषजपावृणु सत्यधर्माय दृष्ट्ये। पूषज्ञेक्षें यस सूर्य प्राजापत्य व्यूह रक्सीन्ससूह तेजो यत्ते व्व्षं कल्याण- तसं तत्ते पक्षासि। योऽसावसी पुरुषः सोऽहसस्सि। वायुरनिलमञ्जसयेदं असान्तर शरीरस्। ॐ कतो स्मर कृत स्मर। क्रते स्मर। असे नय सुपथा राये असान्विधाने देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मजुहु-राणसेनो अयिष्ठां ते नमडक्ति विधेस॥ १॥

इति पञ्चमाध्याये पञ्चदशं ब्राह्मणम् ॥ १५ ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ ॥ यो वे उदेष्टं च अष्टं च वेद उदेष्टम अष्टम स्वानां अवति प्राणी वे ज्येष्टश्च श्रेष्टश्च ज्येष्टश्च श्रेष्टश्च स्वानां अवत्यपि च येषां बुभूवति य एवं वेद ॥ १ ॥ यो ह वे वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां अवति वाग्वे वसिष्ठा वसिष्ठः स्वानां भवस्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥ २ ॥ यो ह वे प्रतिष्ठां वेद प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुगें चक्षुवें प्रतिष्ठा चक्षुचा हि समे च दुगें च प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे य एवं वेद ॥ ३ ॥ यो ह वै संपदं वेद सर् हास्मे पचते यं कामं कामयते श्रोत्रं वे संपच्छोत्रे हीमे लंबें वेदा अभिसंपन्नाः सर्रहासी पचते यं कामं कामयते य एवं वेद ॥ ४ ॥ बी ह वा शायतनं वेदायतन् स्वानां भवत्यायतनं जनानां मनी वा आयतन-मायतन र खानां भवत्यायतनं जनानां य एवं वेद् ॥ ५ ॥ यो ह वे प्रजाति वेद प्रजायते ह प्रजया पशुभी रेतो वै प्रजातिः प्रजायते ह प्रजया पशु-भिर्य एवं वेद ॥ ६ ॥ ते हेमे प्राणा भह ४ श्रेयसे विवद्मानः ब्रह्म जग्युस-द्धोतुः को नो वसिष्ठ इति तद्दोवाच यस्मिन्व उत्कान्त हद् शरीरं पापीयो मन्यते स वो वसिष्ठ इति ॥ ७ ॥ वाग्बोचकाम सा संवत्सरं प्रोच्यागत्यो-वाच कथमशकत महते जीवितुमिति ते होचुर्यथा कला अवदन्तो वाचा प्राणन्तः प्राणेन परयन्तश्रक्षुषा श्रण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वारं सो सनसा प्रजाय-

माना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह वाक् ॥ ८॥ च्छुहाँ बकाम तत्संवस्तरं प्रोच्यागत्योवाच कथमशकत महते जीवितुसिति ते होचुर्यथाऽन्या अपस्य-न्तश्रक्षाचा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा श्रण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वारं सो मनसा अजायमाना रेतसेवमजीविष्मेति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ९ ॥ श्रोत्र होचकाम तत्संवत्सरं प्रोच्यागत्योवाच कथमशकत मदते जीवितुमिति ते होचुर्यथा बधिरा अञ्चण्यन्तः श्रोत्रेण प्राणन्तः प्राणेन वदन्ती वाचा परयन्तश्रक्षाचा विद्वार सो सनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥१०॥ मनो हो खकाम तत्संवत्सरं प्रोप्यागत्योवाच कथमशकत महते जीवितुमिति ते होचुर्यथा सुरधा अविद्वार सो मनसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्य-न्तश्रक्षचा शृण्यन्तः श्रोत्रेण प्रजायमाना रेतस्वमजीविष्मेति प्रवियेश ह मनः ॥ ११ ॥ रेतो होबकाम तत्संवत्सरं प्रोध्यागत्योवाच कथमज्ञकत महते जीवितुमिति ते होचुर्यथा क्षीबा अप्रजायमाना रेतसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्ती वाचा पश्यन्तश्रक्षाषा शृण्यन्तः श्रोत्रेण विद्वा सो मनसेवमजीवि-क्लेति प्रविवेश ह रेतः ॥ १२ ॥ अथ ह प्राण उत्क्रियन्यया महासुहयः सैन्धवः पड्डीशशङ्कन्संबृहेदेव र हैवेमान्प्राणान्संववई ते होचुर्मा अगव उक्तमीर्न वे शक्ष्यामस्वदते जीवितुमिति तस्यो मे बिंठ क्रुरतेति तथेति ॥ १३ ॥ सा ह वागुवाच यद्वा अहं वसिष्ठाऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीति यहा अहं प्रतिष्ठास्मि ।वं तस्प्रतिष्ठोऽसीति चक्ष्मर्यहा अह् संपदस्सि त्वं तत्संपदसीति श्रोत्रं यद्वा अहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति सनी यद्वा अहं प्रजातिरस्मि त्वं तत्प्रजातिरसीति रेतसस्यो से किमजं किं वास इति यदिदं किंचा श्वभ्य आ कृतिभ्य आ कीटपतङ्गेभ्यस्तत्तेऽसमापो वास इति न ह वा अस्याननं जग्धं अवति नाननं परिगृहीतं य एवमेतदन-खानं वेद तद्विद्वारसः श्रीत्रिया धशिष्यन्त आचामन्खशित्वाचामन्त्रेतसेव तद्नमनमं कुर्वन्तो मन्यन्ते ॥ १४ ॥

इति षष्ठाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

श्वेतकेतुई वा आरुणेयः पञ्चालानां परिषद्माजगाम स आजगाम जैविछि प्रवाहणं परिचारयमाणं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमारा ३ इति स भो ३ इति प्रतिशुश्रावानुशिष्टोऽन्वसि पित्रेत्योमिति होवाच ॥ १ ॥ वेत्थ यथेमाः प्रजाः प्रयत्यो विप्रतिपद्यन्ता ३ इति नेति होवाच वेत्थो यथेमं लोकं पुनगण्यन्ता ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो यथासौ लोक एवं बहुिभः पुनः पुनः प्रयद्धिर्न क्षंपूर्यता ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो यतिथ्यामाहुत्या ४ हुतायामापः पुरुषवाची अरुवा समुत्थाय वदन्ती३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो देवयानस्य वा एथः प्रतिपदं षितृयाणस्य वा यस्कृत्वा देवयानं वा पन्थानं प्रतिपचनते पितृयाणं वापि हि न ऋषेर्षचः श्रुतम् । हे सती अश्रणनं पितृणामहं देवानामुत मलानाम् । ता-श्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं चेति नाहमत एकंचन वेदेति होवाच ॥ २ ॥ अथैनं वसत्योपमञ्जयांचकेऽनाहत्य वसति क्रमारः प्रदृहाव स क्षाजगाम पितरं तर होवाचेति वाव किल नो भवानपुरानुशिष्टानवोच इति कथर सुमेध इति पञ्च सा प्रश्नान् राजन्यवन्धुरप्राक्षीत्ततो नैकंचन वेदेति कतमे त इतीम इति ह प्रतीकान्युदाजहार ॥ ३ ॥ स होवाच तथा नस्वं तात जानीया यथा यदहं किंच वेद सर्वमहं तत्तु स्यमनीचं प्रेहि तु तत्र प्र-तीत्य ब्रह्मचर्यं वस्त्याव इति अवानेव गच्छित्विति स आजगाम गौतमो यत्र प्रवाहणस्य जैवलेरास तस्मा भासनमाहत्योदकमाहारयांचकाराथ हास्मा अर्घं चकार तर होवाच वरं भगवते गौतमाय दुझ इति ॥ ४ ॥ स होवाच व्रतिज्ञातो म एष वरो यां तु कुमारखान्ते वाचमसाषथास्तां मे बृहीति ॥ ५ ॥ स होवाच दैवेषु वै गौतम तद्वरेषु मानुषाणां ब्रहीति ॥ ६ ॥ स होवाच विज्ञायते हास्ति हिरण्यस्यापात्तं गोअश्वानां दासीनां प्रवाराणां परिधानस्य मा नो भवान्वहोरनन्तस्यापर्यन्तस्याभ्यवद्यान्योभूदिति स वै गौतम ती-थेंनेच्छासा इत्युपैम्यहं भवन्तिमित्नि वाचा ह स्मैव पूर्व उपयन्ति स होपाय-नकीर्त्योवास ॥ ७ ॥ स होवाच तथा नस्त्वं गौतम माऽपराधास्तव च पिता-महा यथेयं विद्येतः पूर्वं न कस्मि अन ब्राह्मण उवास तां त्वहं तुभ्यं व-क्यामि को हि त्वैवं बुवन्तमहीति प्रत्याख्यातुमिति ॥ ८ ॥ असी वै छोकोऽ॰ भिगातम तसादिस एव समिद्रमयो धूमोऽहरचिदिशोऽङ्गारा अवान्तर-दिशो विस्फुलिङ्गास्तसिन्नेतसिन्नन्नी देवाः श्रद्धां जुद्धति तस्या आहुत्ये सोमो राजा संभवति ॥ ९ ॥ पर्जन्यो वाझिगौतम तस्य संवत्सर एव समिद्शाणि धूमो विद्यदर्चिरशनिरङ्गारा हादुनयो विस्फुलिङास्तस्मिन्नेतस्मन्नग्नौ देवाः सोम राजानं जुह्नति तस्या आहुसै वृष्टिः संभवति ॥ १० ॥ अयं वै लोको-ऽिमगौतम तस्य पृथिव्येव समिद्मिर्धूमो रात्रिरचिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गास्तसिन्नेतसिन्नेती देवा वृष्टि जुह्नति तस्या भाहत्या अन्नर्स संभ-वति ॥ ११ ॥ पुरुषो वाऽक्षिगोतम तस्य व्यात्तमेव समित्प्राणो धूमो वागर्चि-श्रक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गासास्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्नति तस्मा आहुत्ये रेतः संभवति ॥ १२ ॥ योषा वा अग्निगोंतम तस्या उपस्थ एव

ব

व

T

च

II

Ţ.

मे

T:

मे

f

समिलोमानि धूमो योनिरचिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुछि-ङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नमे देवा रेतो जुह्नति तस्या आहुसे पुरुषः संभवति स जीवति यावजीवत्यथ यदा म्रियते ॥ १३ ॥ अथैनममये हरन्ति तस्यामिरे-वाग्निभेवति समित्समिदूमो भूमोऽचिरचिरङ्गारा अङ्गारा विस्फुलिङ्गा विस्फु-लिङ्गास्तसिन्नेतसिन्नमौ देवाः पुरुषं जुह्नति तस्या आहुत्ये पुरुषो भास्तर-वर्णः संभवति ॥ ३४ ॥ ते य एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धाए सत्यमु पासते तेऽचिरिभसंभवन्याचिपोऽहरह्व आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाचानप-णमासानुद्दुः।दित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यमादित्याह्रैयुतं तान्वेद्युतान्पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मकोकान् गमयति ते तेषु ब्रह्मकोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ॥ १५ ॥ अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाअयन्ति ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रि रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमप-क्षीयमाणपक्षाद्यान्यणमासान्दक्षिणादिस एति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोका-चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति ताश्स्तत्र देवा यथा सोमश् राजानमाप्याय-स्वापक्षीयस्वेत्येवमेना र सत्र भक्षयनित तेषां यदा तत्पर्यवैत्यथेममेवाकाशम-भिनिष्पचन्त आकाशाद्वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं ते पृथिवीं प्राप्यानं भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते लोकान्प्रत्युत्थायिनस्त एवसेवानुपरिवर्तन्तेऽथ य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदि रं दन्दशूकम् ॥ १६॥

इति षष्टाध्याये द्वितीयं त्राह्मणम् ॥ २ ॥

स यः कामयेत महत्यापुरामित्युद्गयन आपूर्यमाणपक्षस्य पुण्याहे द्वादशाहमुपसद्गती भूत्वौदुम्बरे कर्षसे चमसे वा सवौषधं फलानीति संमृत्य
परिसमुद्य परिलिप्याग्निमुपसमाधाय परिस्तीर्यावृताज्यर सर्रस्कृत्य पुरसा
नक्षत्रेण मन्थर संनीय जहोति। यावन्तो देवास्त्वयि जातवेदस्तिर्यञ्चो प्वन्ति
पुरुषस्य कामान्। तेभ्योऽहं भागधेयं जुहोमि ते मा नृप्ताः सर्वेः कामैस्तर्पयन्तु स्वाहा। या तिरश्ची निपद्यतेऽहं विधरणी इति। तां त्वा वृतस्य धारया
यजे सर्राधनीमहर् स्वाहा॥ १॥ ज्येष्ठाय स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा
मन्थे सर्भवमवनयति प्राणाय स्वाहा विसष्ठाये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे
सर्भवमवनयति वाचे स्वाहा प्रतिष्ठाये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति
श्रोत्राय स्वाहाऽऽयतनाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति
स्वाहा प्रजात्ये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति मनसे
स्वाहा प्रजात्ये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति ननसे
स्वाहा प्रजात्ये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति रेतसे स्वाहेस्वाहा प्रजात्ये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति रेतसे स्वाहेस्वाहा प्रजात्ये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति रेतसे स्वाहेस्वाहा प्रजात्ये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सर्भवनमवनयति रेतसे स्वाहे-

लग्नी हुत्वा मन्थे संस्वयमवनयति ॥ २ ॥ अग्नये स्वाहेलग्नी हुत्वा मन्थे संस्वतमवनयति सोमाय स्वाहेत्यमा हुत्वा मन्थे संस्वतमवनयति भूः स्वाहेत्यमा हुत्वा मन्थे सक्षवमवनयति सुवः स्वाहेत्यमा हुत्वा मन्थे सर्-स्रवमवनयति स्वः स्वाहेत्यमा हुत्वा मन्थे स्यामवनयति भूर्भुवःस्वः स्वाहेलमी हुत्वा मन्ये सक्षत्रमवनयति ब्रह्मणे स्वाहेलमी हुत्वा मन्ये सूर. स्रवमवनयति क्षत्राय स्वाहेत्यमी हुत्वा मन्थे सर्स्ववमवनयति भूताय स्वा-हेलागी हुत्वा मन्थे सर्स्वनमवनयति अविष्यते खाहेत्यग्नी हुत्वा मन्थे सर्-स्रवमवनयति विश्वाय स्वाहेत्यझौ हुत्वा मन्थे स्वान्यवनयति सर्वाय स्वान हेत्यमो हुत्वा मन्थे सक्षवमवनयति प्रजापतये खाहेत्यमी हुत्वा मन्थे सूर-स्रवमवनयति ॥ ३ ॥ अथैनमभिमृशति अमदिस ज्वलदिस पूर्णमिस प्रसा-व्धमस्येकसभमिस हिंकृतमिस हिंकियमाणमस्युद्गीथमस्युद्गीयमानमिस आ-वितमसि प्रवाशावितमस्याईं संदीसमसि विभूरसि प्रभूरसक्रमसि ज्योति-रिस निधनमिस संवगोंऽसीति ॥ ४ ॥ अथैनमुद्यच्छत्याम ए स्थाम रहि ते महि स हि राजेशानोऽधिपतिः स सार् राजेशानोऽधिपतिं करोत्विति ॥५॥ अथैन-माचामति तत्सवितुर्वरेण्यम् । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । भूः स्वाहा । भर्गो देवस्य धीमहि । मधु नक्तस्रतोषसो मधुमत्यार्थिव एं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। भुवः स्वाहा। धियो यो नः प्रचोदयात्। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ३ अस्तु सूर्यः। साध्वीर्गावी अवन्तु नः । स्वः स्वाहेति । सर्वां च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेद् सर्वं भूयासं भूभुवः स्वः स्व।हेत्यन्तत आचम्य पाणी प्रक्षाल्य जघनेनामि प्राकृशिराः संविशति पातरादित्यमुपतिष्ठते दिशामेकपुण्डरीकमस्यहं मनुष्याणामेकः पुण्डरीकं भूयासमिति यथेतमेत्य जघनेनानिसासीनो वर्शं जपति ॥६॥ तर् हैतसुदालक आरुणिर्वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वीवाचापि य एन५ शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेजायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः ॥ ७ ॥ एतमु हैव वाजसनेयो याज्ञवहक्यो सधुकाय पेङ्गवायान्तेवासिन उन्त्वोवाचापि य एनक् शुब्के स्थाणो निषिञ्जेजायेरव्छाखाः हेयुः पलाशानीति ॥ ८ ॥ एतमु हेव मधुकः पैक्नवश्रूलाय भागवित्तयेऽन्ते-वासिन उक्त्वोवाचापि य एन५ लुटके स्थाणो निषिञ्चेजायेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ९ ॥ एतमु है न् चूलो भागवित्तिर्जानकय आय-स्थूणायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एन इुष्के स्थाणौ निषिद्धे ायेर-व्छालाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ १० ॥ एतसु हेव जानकिरायस्थूणः सत्य-

कामाय जावालायान्तेवासिन उत्तःवोवाचापि य एन् इप्ते स्थाणा निषिञ्चेजायेरञ्लालाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ११ ॥ एतमु हेव ससकामा नावालोडन्तेवासिभ्य उत्तःवोचाचापि य एन् अप्ते स्थाणा निषञ्जेकायेरञ्लालाः
प्ररोहेयुः पलाशानीति तमेतं नापुत्राय वाडनन्तेवासिने वा त्र्यात् ॥ १२ ॥
चतुरोहुम्बरो अवत्योदुम्बरः सुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्म औदुम्बर्या
छपमन्थन्या दश प्राम्याणि धान्यानि भवन्ति वीहियवास्तिलमापा अणुप्रियइति गोधूमाश्च मसुराश्च खल्वाश्च खल्कुलाश्च तान् पिष्टान्द्धित मधुनि छत
उपसिज्ञलाज्यस्य जुहोति ॥ १३ ॥

इति षष्टाध्याये तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

एवं दे अतानां पृथिवी रसः पृथिच्या आपोऽपामोषधय ओषचीनां युक्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरुषः पुरुषस्य रेतः ॥ १ ॥ स ह प्रजा-पतिरीक्षांचके हन्तासे प्रतिष्ठां करपयानीति स स्त्रिय सस्जे ता सप्टाऽध वपास तसात्सियमघ उपासीत स एतं प्राञ्चं प्रावाणमात्मन एव समुद्रपा-रयक्तेनेनासभ्यस्ततत् ॥ २ ॥ तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि बर्हिश्चमीधिषवणे समिद्धी मध्यतस्ती मुक्की स यावान् ह वै वाजपेयेन यजमानस्य लोकी भवति तावानस्य छोको अवति य एवं विद्वानधोपहासं चरत्यासा सी-णा अञ्चर्त वृद्धेऽथ य इदमनिद्वानधोपहासं चरत्याऽस्य खियः सुकृतं वृक्षते ॥ ३ ॥ एतद सा वे तद्विद्वानुदालक भारुणिराहैतद सा वै-त्तिहालाको मोद्रत्य अ।हैतद स वे तिह्रहान्कुमारहारित आह बहवी सर्था ब्राह्मणायना निरिन्द्रिया विसुकृतोऽसाल्लोकात्प्रयन्ति य इद-मविद्वा इसी अधीपहासं चरन्तीति बहु वा इद् सुप्तस्य वा जाग्रतो वा रेतः स्कन्द्ति ॥ ४ ॥ तद्भिमृशेद्नु वा मन्नयेतं यन्मेऽय रेतः पृथिवीमस्कान्त्सी-बदोषधीरप्यसरबद्यः । इदमहं तद्रेत आद्दे पुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनस्तेजः पुन-र्भगः । पुनरसिधिक्या यथास्थानं कल्पन्तामित्यनामिकाङ्गुष्टाभ्यामादायान्तरेण स्तनौ वा अवो वा निमृज्यात्॥ ५॥ अथ यद्युद्क आत्मानं पर्येत्तद्भिम-अयेत मिय तेज इन्द्रियं यशो द्रविण सुकृतमिति श्रीहं वा एषा स्त्रीणां यन्मकोद्वासाम्तस्मानमकोद्वाससं यशस्त्रिनीमभिकम्योपमञ्जयेत ॥ ६॥ सा चेदसौ न द्याकाममेनामवकीणीयात् सा चेदसौ नेव द्याकाममेनां यष्ट्या वा पाणिना वोपहत्यातिकामोदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा प्व अवति ॥ ७ ॥ सा चेदसी द्वादिन्द्रियेण ते यशसा यश आद्धामीति

भू: स्थ: स्व:

: 8

न्य<u>े</u>

ा ५ -स्वा-

ा**४**-वा-

थ्-स्त-

छा-ति-

महि

वेन-

सो

नः व्य

सर्व शः

कि तथ

ापि

ोति सेन

ारो-त्दे-

वाः

ाय-वेर-

यर-स्य-

यशस्त्रिनावेव भवतः ॥ ८ ॥ स यामि च्छेत्कामयेत मेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखर संघायोपस्थमस्या अभिसृहय जपेदङ्गादङ्गात्संभवासि हृद्यादिध-जायसे । स त्वमङ्गकपायोऽसि दिग्धविद्धामिव मादयेमामसू मयीति ॥ ९॥ अथ यामिच्छेन्न गर्भ द्वीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय सुखेन सुखर संधायाभिप्रा-ण्यापान्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आद्द इत्यरेता एव भवति ॥ १०॥ अथ यामि च्छे हचीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय सुखेन सुखर संघायापान्याभि-शाण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आद्धामीति गर्भिण्येव अवति ॥ ११ ॥ अथ यस्य जायाये जारः स्थात्तं चेद्विष्यादासपात्रेऽग्निसुपससाधाय प्रतिकोमभ शरबाहिंसीत्वी तसिन्नेताः शरशृष्टीः प्रतिलोमाः सार्पेषाऽक्ता जुहयान्मम समिद्धेऽहोषोः प्राणापानो त आद्देऽसाविति सम समिद्धेऽहोषीः प्रत्रपञ्च रस्त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहाँषीरिष्टासुकृते त आद्देऽसाविति सम समि-द्धेऽहाँषीराज्ञापराकाशौ त आददेऽसाविति स वा एष निरिन्द्रियो विसुक्त-तोऽसाह्योकारमति यमेवंविद्वाह्मणः शपति तसादेवंविच्छोत्रियस्य दारेण नौपहासिमच्छेदुत ह्येवंवित्परो अवति ॥ १२ ॥ अथ यस जायामार्तवं वि-न्देश्चयहं कर सेन पिवेदहतवासा नैनां वृषलो न वृषल्युपहन्याश्चिरात्रान्त भाष्ठ्रस बीहीनवघातयेत् ॥ १३ ॥ स य इच्छेन्धुत्री मे छुक्की जायेत वेदम-जुज्ञीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचियत्वा सर्पिष्मन्तसक्षीयातामी-श्वरी जनियतवै ॥ १४ ॥ अथ य इच्छेत्पुत्रो से किपलः पिङ्गलो जायेत ही वेदावनुब्रवीत सर्वमायुरियादिति दध्योदनं पाचयित्वा सर्पिष्मनतमश्री-यातामीश्वरौ जनयितवै ॥ १५ ॥ अथ य इच्छेरपुत्रो मे इयामी लोहिताक्षो जायेत त्रीन्वेद्।ननुबुवीत सर्वमायुरियादिःयुदौदनं पाचियत्वा सर्पिष्मन्त-मश्रीयातामीश्वरौ जनयितवै ॥ १६ ॥ अथ य इच्छेद्द्विता से पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिछौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयातासीश्वरो जनयि-तवै ॥ १७ ॥ अथ य इच्छेःपुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः ग्रुश्रुषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुबुवीत सर्वमायुरियादिति माएसौदनं पाचियत्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयातामीश्वरौ जनियतवा औक्षेण वार्षभेण वा॥१८॥ भथाभिप्रातरेव स्थालीपाकावृताज्यं चेष्टिःवा स्थालीपाकस्योपघातं जहोत्य-भये खाहाऽनुमतये खाहा देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय खाहेति हुत्वोद्ध्य प्राक्षाति प्राइयेतरस्याः प्रयच्छति प्रक्षात्य पाणी उद्पात्रं पूरयिस्वा तेनैनां त्रिरम्युक्षःयुत्तिष्ठातो विश्वावसोऽन्यामिच्छ प्रपूर्व्या सं जायां पत्या सहेति ॥ १९॥ अथैनामभिषयतेऽमोऽहमसि सा त्व र सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमसि ऋक्तं

ग्रय

धिव

i Ir

नार-

11

स-

अथ

HY.

नम

रस मि-

कु-रेण

वि-

न्त

स-

मी-

द्वी

भी-

भो

न्त-येत

यि-

तां

दर्न

611

त्य-

ृत्य

नां

९॥

द्यीरहं पृथिवी त्वं ताचेहि सर्रमावहै सह रेतो द्यावहै पुरसे पुत्राय वित्तय इति ॥ २०॥ अथास्या ऊरू विहापयति विजिहीयां चावापृथिवी हति वस्वामर्थं निष्ठाय सुखेन सुखर् संधाय त्रिरेनामनुलोमामनुमार्ष्ट विष्णुर्योनि करपयतु त्वष्टा रूपाणि पिर्वातु । आसिखतु प्रजापतिर्घाता गर्भ द्धातु ते । गर्भ घेहि सिनीवालि गर्भ घेहि पृथुष्टुके । गर्भ ते अधिनो देवावायत्तां पुष्क-इस्रजो ॥२१॥ हिरण्मयी अरणी याभ्यां निर्मन्थतामिश्रनौ । तं ते गर्भ हवामहे दुशसे सासि स्तरे । यथाऽग्निगर्भा पृथिवी यथा यौरिन्द्रेण गर्भिणी । वायुर्दिशां यथा गर्भ एवं गर्भ द्धामि तेऽसाविति ॥ २२ ॥ सोध्यन्तीमझिरम्युक्षति, यथा वायुः पुष्करिणी सिक्षक्यति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु सहावैतु जरायुणा । इन्द्रस्थार्यं वजः कृतः सार्गलः सपरिश्रयः । तमिन्द्र निर्जिहि गर्भेण सावरा सहिति ॥ २३ ॥ जातेऽग्निमुपसमाधायाङ्क आधाय कर से प्रवदाज्य र संनीय पृषद्। ज्यस्योपघातं जुहोत्यसिन्सहसं पुष्यासमेधमानः स्वे गृहे । अस्योपसंद्यां मा च्छैश्सीत् प्रजया च पशुभिश्व स्वाहा । मयि प्राणाएसविष मनसा जुहोसि स्वाहा। यत्कर्मणाऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनिसहाकरम्। अप्तिष्टत्स्व-ष्टकृद्धिहान्सिष्ट् सुहुतं करोतु नः खाहेति ॥ २४ ॥ अथास्य दक्षिणं कर्णम-भिनिधाय वाग्वागिति विरथ द्धि मधु घृत्र संनीयानन्ति तेन जातरूपेण शाशयति । भूस्ते द्यामि अवस्ते द्यामि स्वस्ते द्यामि भूर्भुवः स्वः सर्व त्वि दुधामीति ॥ २५ ॥ अथास्य नाम करोति वेदोऽसीति तदस्य तद्व्यमेव नाम भवति ॥ २६ ॥ अथैनं मात्रे प्रदाय स्तनं प्रयच्छति यस्ते स्तनः शशयो यौ सरोभूयों रतधा वसुविद्यः सुद्यः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे करिति ॥ २७ ॥ अथास्य मात्रमभिमन्नपते, इलाऽसि मैत्राव-रूणी वीरे वीरमजीजनत् । सा वं वीरवती भव याऽसान् वीरवतोऽकरदिति तं वा एतमाहुरतिपिता वताभूरतिपितामही वताभूः परमां वत काष्टां प्राप-चिल्र्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवंविदो ब्राह्मणस्य पुत्रो जायत इति ॥ २८ ॥

इति षष्टाध्याये चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ वश्वाः । पौतिमापीपुत्रः कात्यायनीपुत्रात् कात्यायनीपुत्रो गौतमीपु-त्राद्गौतमीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद्वारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्पाराशरीपुत्र औप-स्वस्तीपुत्राद्गोपस्वस्तीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्याराशरीपुत्रः कात्यायनीपुत्रात्कात्याय-नीपुत्रः कोशिकीपुत्रात्कोशिकीपुत्र आलम्बीपुत्राख वैयाव्रपदीपुत्राख वैयाव्र-पदीपुत्रः काण्वीपुत्राख कापीपुत्राख कापीपुत्रः ॥ १ ॥ भात्रेयीपुत्रादात्रे-यीपुत्रो गौतमीपुत्राद्गौतमीपुत्रो भारद्वस्जीपुत्राद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रा-

त्याराशरीपुत्री वात्सीपुत्राद्वात्सीपुत्रः पाराशरीपुत्रात्पाराशरीपुत्री वार्कारणी-चुन्नाद्वाकीरणीपुत्रो वाकीरणीपुत्राद्वाकीरणीपुत्र आतेआगीपुत्रादातीयागीपुत्रः बौङ्गीपुत्राच्छोङ्गीपुत्रः सांकृतीपुत्रात्सांकृतीपुत्र आलम्बायनीपुत्रादालम्बायनी-युत्र आलम्बीपुत्रादालम्बीपुत्रो जायन्तीपुत्राजायन्तीपुत्रो साण्ड्कायनीपुत्रा-न्माण्डूकायनीपुत्रो माण्डूकीपुत्रान्माण्ड्कीपुत्रः शाण्डिलीपुत्राच्छाण्डिली-राथीतरीपुत्रादाथीतरीपुत्रो भालुकीपुत्राजालुकीपुत्रः कोञ्चिकीपुः न्नाभ्यां कौजिकी पुत्रो वेदस्तती पुत्राहैदस्तती पुत्रः कार्का के वी पुत्रास्कार्का के वी पुत्राः श्राचीनयोगीपुत्रात्प्राचीनयोगीपुत्रः सांजीवीपुत्रात्सांजीवीपुत्रः प्राक्षीपुत्रा-दाखुरिवासिनः प्राश्रीपुत्र आसुरायणादासुरायण आसुरेरासुरिः ॥ २॥ याज्ञवहक्यायाज्ञवहक्य उदालकादुद्दालकोऽहणाद्दरण उपवेशेहपवेशिः कुन्नेः कुश्चिर्वाजश्रवसी वाजश्रवा जिह्नावतो बाध्योगाजिह्नावान्वाध्योगोऽसिः ताहार्षगणादसितो वार्षगणो हरितात्कर्यपाद्धरितः कर्यपः इयपान्छिल्पः कर्यपः कर्यपानेष्ठ्रचेः कर्यपो नैधुविनीचो वागस्भिण्या अस्मिण्यादित्यादादित्यानीमानि गुक्कानि यज्र वि वाजसनेमेन द्वयेनाक्यायन्ते ॥ ३ ॥ समानमा सांजीवीपुत्रात्सांजीवीपुत्री माण्डू-कायनेमीण्ड्रकायनिर्माण्डव्यानमाण्डव्यः कौत्सात्कौत्सो माहित्थेमीहित्थियीय-कक्षायणाद्वामकक्षायणः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यो वास्याद्वास्यः कुन्नेः कुन्निर्यं-ज्वचसो राजसम्बायनायज्ञवचा राजसम्बायनस्तुराःकावषेयात्तरः कावषेयः प्रजापतेः प्रजापतिर्वहाणो बहा स्वयं सु बहाणे नमः ॥ ३ ॥

इति षष्टाध्याये पश्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥ इति षष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ इति बृहदारण्यकोपनिषःसमाप्ता ॥ १० ॥ ॐ सह नाववतु सह नौ अनकु सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्त्रि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥ ११ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्दच्यते ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-शिष्यते ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः ॥

कं ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क च संप्रतिष्ठाः । अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥ १ ॥ काळः स्तमाची नियतिर्धटच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या । संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥ ते ध्यान-योगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणिर्निगृहाम् । यः कारणानि निसिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ ३ ॥ तमेकनेमि त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्थारं विंशतिप्रत्यराभिः । अष्टकैः षद्दिभविश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गमेदं द्विनि-मित्तेकमोहम् ॥ ४ ॥ पञ्चक्षोतोम्बं पञ्चयोन्युप्रवकां पञ्चप्राणोर्मि पञ्चबुचा-दिस्लास्। पञ्चावर्ता पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥ ५॥ सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन्हंसो आम्यते ब्रह्मचके। पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनासृतत्वमेति ॥ ६ ॥ उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिस्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च । अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदिखा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनि-सुक्ताः ॥ ७ ॥ संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः । अनीशश्चारमा वध्यते भोक्तृभावाञ्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ८ ॥ ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा होका भीकृभोग्यार्थयुक्ता । अनन्तश्चारमा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ ९ ॥ क्षरं प्रधानमसृताक्षरं हरः श्ररा-त्मानावीशते देव एकः । तस्याभिष्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भयश्चान्ते विश्व-मायानिवृत्तिः ॥ १० ॥ ज्ञात्वा देवं सर्वपाबापहानिः क्षीणैः क्वेशैर्जन्ममृत्यु-प्रहाणिः । तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वेश्वर्यं केवल आसकामः ॥ ११॥ प्तज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित् । भोका भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मसेतत् ॥ १२ ॥ वहेर्यथा योति-गतस्य मूर्तिर्न दश्यते नैव च लिङ्गनाशः । स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यसद्दोभयं वै प्रणवेन देहे ॥ १३ ॥ स्वदेहमराणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्यानिन-र्भथनाभ्यासाद्देवं पद्येन्निगूढवत् ॥ १४ ॥ तिलेषु तेलं द्धिनीव सर्पिरापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः । एवमात्मात्मनि गृद्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुप-इयति ॥ १५ ॥ सर्वेच्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम् । आत्मविद्यातपो-मूलं तद्रह्योपनिषत्परं तद्रह्योपनिषत्परमिति ॥ १६ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

युक्षानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः। अग्नेज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥ १॥ युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेयाय शक्या ॥ २॥ युक्तवाय मनसा देवान्सुवर्यतो धिया दिवस् । बृहस्रयोतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥ युक्षते मन उत युक्षते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्ठतिः ॥ ४ ॥ युजे वां बहा पूर्व्यं नमोशार्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः । शुष्वन्तु विश्वे असृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥ अग्नि-र्युत्राभिमध्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते । सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ॥ ६॥ सवित्रा प्रसवेन जुपेत ब्रह्म पूर्व्यम् । तत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्तमक्षिपत् ॥ ७ ॥ त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हदीन्द्रियाणि मनसा संनि-वेश्य । ब्रह्मोडुपैन प्रतरेत विद्वान्स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८ ॥ प्राणा-न्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्नसीत । दुष्टाश्चयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥ समे छुचौ शर्कराविद्ववालुका-विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः। मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाता-अयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥ नीहारभूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्यस्फटिक-शक्तीनाम् । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११॥ पृथ्यप्रेजोऽनिरुखे समुस्थिते पञ्चात्मके शोगगुणे प्रवृत्ते । न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं वारीरस् ॥ १२ ॥ लघुत्वसारीस्यमली-लुपत्वं वर्णप्रसादं खरसीष्ठवं च । गन्धः शुभो सूत्रपुरीषमटपं योगप्रवृत्ति प्रथमां वदन्ति ॥ १३ ॥ यथैव विस्वं सद्योपलिसं तेजोसयं आजते तत्सुधा-न्तम् । तद्वात्मतस्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थी भवते वीतशोकः ॥१४॥ यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् । अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वे-विशुद्धं ज्ञात्वा देवं सुच्यते सर्वपाशैः ॥ १५ ॥ एष ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गभे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्य-ङ्जनांसिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ १६ ॥ यो देवोऽम्रो योऽप्सु यो विश्वं सुवन-माविवेश । य ओषघीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥ १७ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाह्योकानीशत ईशनीभिः । य एवेक उद्भवे संभवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १ ॥ एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इसाँह्योकानीशत ईशनीभिः । प्रसङ्जनांस्तिष्ठति संचु- कोपान्तकाले संसुज्य विश्वा अवनानि गोपाः॥ २॥ विश्वतश्रश्चरत विश्व-तोसुलो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं वाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्धावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ३ ॥ यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्व स नो बुचा ग्रुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥ या ते रुद्ध शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तनुवा शंतमया गिरिशन्ताभि-चाकशीहि॥ ५॥ यामिषुं गिरिशंत हस्ते विभव्यंस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हि एसी: पुरुषं जगत्॥ ६॥ ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तं यथानिकायं खर्चभूतेषु गूढम् । विश्वस्थैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥७॥ वेदाह मेतं पुरुषं महान्तमादिखवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदिःवाऽति छुत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥ यसात्परं नापरमस्ति किंचि-द्यसान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ९ ॥ ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदु-रसृतास्ते अवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥ १० ॥ सर्वाननशिरोग्रीवः सर्व-भूतगुहाशयः । सर्वेच्यापी स भगवांसासासर्वगतः शिवः ॥ ११ ॥ महा-न्त्रभुवें पुरुषः सत्त्वस्थेष प्रवर्तकः। सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिर-व्ययः ॥ १२ ॥ अङ्कष्टमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृद्ये संनिविष्टः। हदा मन्वीशो मनसाभिक्नृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १३ ॥ सहस्र-शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमि विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्शाङ्गलस् ॥ १४ ॥ पुरुष एवेद्ध सर्वं यद्भृतं यच भव्यम् । उतामृतत्वस्थेशानो यद्ते-नातिरोहति ॥ १५ ॥ सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः-श्रुतिमहोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १६॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविव-र्जितस् । सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ १७ ॥ नवहारे पुरे देही ह ५ सो लेलायते बहिः । वशी सर्वस्य कोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १८ ॥ अपाणिपादो जवनो प्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शुणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरव्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १९ ॥ अणोरणीयान्महतो मही-यानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः। तमऋतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसा-दान्महिमानमीशम् ॥ २० ॥ वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विशु-व्वात् । जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥ २१॥

इति श्रेताश्वतरोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

य एकोऽवर्णा बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति । वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्धा शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥ तदेवाग्नि-स्तदादित्यसद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुकं तद्रह्म तदापसंत्यजापतिः ॥ २ ॥ त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीणों दण्डेन वज्रासि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ ३॥ नीलः पतङ्गो हरितो छोहिताक्षस्त-हिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः । अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवः नानि विश्वा ॥ ४ ॥ भजामेकां लोहितगुक्कृष्णां बह्वीः प्रजाः स्जमानां सरूपाः । अजो होको जुपमाणोऽनुशेते जहात्येनां अक्तभोगामजोऽन्यः ॥५॥ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्त्रजाते । तयोरन्यः पिष्पर्छ स्वा-हुत्त्वनश्चन्यो अभिचाकशीति ॥ ६ ॥ समाने वृक्षे पुरुषो निमन्नोऽनीशया शोचित मुद्यमानः । जुष्टं यदा पद्यत्यन्यमीशमस्य महिमानसिति वीतशोकः ॥ ७॥ ऋचो अक्षरे परमे च्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥८॥ छन्दांसि यज्ञाः कतवो वतानि भूतं भव्यं यच वेदा वदन्ति । असान्मायी सुजते विश्वमेतत्तासंन-श्रान्यो मायया संनिरुद्धः ॥ ९ ॥ मायां तु प्रकृतिं विद्यानमायिनं तु महेश्व-रम् । तस्यावयवभूतेस्तु व्याप्तं सर्वामिदं जगत् ॥ १० ॥ यो योनि योनिम॰ धितिष्ठत्येको यस्मित्रिदं स च वि चैति सर्वम् । तमीशानं वरदं देवमीड्यं तिचारयेमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥११॥ यो देवानां प्रथवश्चीद्भवश्च विश्वाधिपो रहो महर्षिः । हिरण्यगर्भ पश्यत जायमानं स नी बुखा शुभया संयुनकु ॥ १२ ॥ यो देवानामधिपो यस्मिँ होका अधिश्रिताः। य ईशे अस्य द्विपदश्र-तुष्पदः कसौ देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥ सृक्षातिसूक्षमं कलिलस्य मध्ये विश्वस सष्टारमनेकरूपम् । विश्वस्थेकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्य-न्तमेति ॥ १४ ॥ स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूहः । बिसन्युक्ता ब्रह्मप्यो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा सृत्युपाशांदिछनित ॥ १५॥ ष्ट्रतात्परं मण्डमिवातिस्कृमं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गृहम् । विश्वस्यैकं परिवे-ष्टितारं ज्ञात्वा देवं सुच्यते सर्वपाद्याः॥ १६॥ एप देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृद्ये संनिविष्टः । हृदा मनीषा मनसाऽभिकृषो य एतद्विदुर-मृतास्ते भवन्ति ॥ १७ ॥ यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिनं सन्न चासञ्छिव एव केवलः । तद्क्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ॥ नैनमूर्ध्व न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजयभत् । न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महचराः ॥ १९ ॥ न संदर्शे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा परयति कश्चनेनम् । हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २० ॥ अजात इत्येवं कश्चिद्धीरुः प्रपद्यते । रुद्ध यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥ २१ ॥ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । वीरान्मा नो रुद्ध भामितो वधीईविष्मन्तः सदमिस्वा हवामहे ॥ २२ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पश्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गृढे । क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥ १ ॥ यो योनिं योनिम-धितिष्ठलेको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः । ऋषि प्रसूतं कपिछं यस्तमग्रे ज्ञानैविभाति जायमानं च पश्येत् ॥२॥ एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन्स्रेत्रे संहरत्येष देवः । भूयः सृष्टा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥ ३ ॥ खर्वा दिश अध्वमध्य तिर्येनप्रकाशयन्त्राजते यद्वनङ्वान् । एवं स देवो भग-बान्वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥ ४॥ यच स्वभावं पचति विश्व-योनिः पाच्यांश्च सर्वान्परिणामयेद्यः । सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान्विनियोजयेद्यः ॥ ५ ॥ तद्वेदगुद्योपनिषत्सु गृढं तद्रह्या विदते ब्रह्म-योनिस्। ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः॥ ६॥ गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्येव स चोपभोक्ता। स विश्वरूपस्त्रिगण-खिवत्मी प्राणाधिपः संचरति स्वक्रमीभः॥ ७॥ अङ्ग्रष्टमात्रो रवितुत्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः । बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि इष्टः ॥ ८ ॥ वालाप्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विशेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ ९ ॥ नैव स्त्री न पुमानेप न चैवायं नपुं-सकः । यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स र्रेक्ष्यते ॥ १० ॥ संकल्पनस्पर्शनदृष्टि-मोहैर्यासांबुवृष्ट्या चात्मविवृद्धिजनम । कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसंप्रपद्यते ॥ ११ ॥ स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही खगुणेर्नुणोति । कियागुणैरात्मगुणेश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥ १२ ॥ अनाद्यनन्तं कलिलस्य सध्ये विश्वस्य स्वष्टारमनेकरूपम् । विश्वस्येकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥ भावश्राह्यमनीड्याख्यं भावाभावकरं शिवम् । कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥ १४ ॥ इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्ममानाः । देवस्येष महिमा तु लोके येनेदं आम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥ १ ॥ येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद्यः । तेनेशितं कर्स विवर्तते ह पृथ्याप्यतेजोऽनिललानि चिन्त्यम् ॥ २ ॥ तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्व योगस् । एकेन हाभ्यां त्रिभिरष्टिभिर्वा कालेन चैवात्मगुणेश्च सूक्ष्मैः ॥ ३॥ आरम्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान्विनियोजयेचः । तेषामभावे कृतकर्म-नाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥ ४ ॥ आदिः स संयोगनिमित्त-हेतुः परिस्नकालादकलोऽपि दृष्टः । तं विश्वरूपं भवभूतमीक्यं देवं स्वचित्त-स्यमुपास्य पूर्वम् ॥ ५ ॥ स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मास्प्रपञ्चः परि-वर्ततेऽयम् । धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थमसृतं विश्वधाम ॥ ६ ॥ तसीश्वराणां परमं कहेश्वरं तं देवतानां परमं च देवतस् । पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमी ख्यम् ॥ ७ ॥ न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तःसमश्राभ्यधिकश्च दरयते । पराऽस्य शक्तिविविधेन श्र्यते स्वाभाविकी ज्ञानदलकिया च ॥ ८ ॥ न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिजनिता न चाधिपः ॥ ९ ॥ यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्त्रभावतो देव एकः स्वमारृणोत् । स नो दधाद्रह्माप्ययम् ॥ १० ॥ एको देवः सर्वभूतेषु गृहः सर्वेच्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कमीध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ ११ ॥ एको वश्ची निष्क्रियाणां बहूनासैकं बीजं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपद्यन्ति घीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥ निस्रो निस्रानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विद्धाति कामान्। तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १३ ॥ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमिः । तमेव भान्तम-नुभाति सर्व तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति ॥ १४ ॥ एको हस्सो अवन-

स्थास्य सध्ये स एवा द्विः सिले छे संनिविष्टः । तमेव विदिःवाति मृत्युमेति नान्यः पत्था विद्यतेऽयनाय ॥ १५ ॥ स विश्वकृद्धिश्विदाःसयोनिर्ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद् यः। प्रधानसेत्रज्ञपतिर्गुणेशः स्पारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ १६॥ स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्थास्य गोष्ठा । य ईशे अस्य जगतो नित्यसेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥ १० ॥ यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं यो वे वेदांश्व प्रहिणोति तस्य । त्यह देवमात्मवुद्धिप्रकाशं मुमुक्कुर्वे शरणमहं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ निष्कलं निष्किय् यान्तं निरवद्यं निरक्षनम् । अमृतस्य पर् सेतुं द्रवेन्धनिवानलम् ॥ १९ ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टियष्यन्ति मानवाः । तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ २० ॥ तपःप्रभावाद्देवप्रसादाच ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् । अत्याश्रतिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृष्टि-सङ्ख्जुष्टम् ॥ २१ ॥ वेदान्ते परमं गुद्धं पुराकल्पे प्रचोदितम् । नाप्रशान्ताय द्वातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥ २२ ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरो । तस्यते कथिता द्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मन इति ॥ २३ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्सु षष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ सह नाववतु सह नो भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ॥ तेजस्विनावधीतम-स्तु मा विद्विषावहे । ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतरोपनिषःसंपूर्णा ॥

ब्रह्मविन्दूपनिषत् ॥ १२ ॥

असृतविन्दूपनिषद्वेद्यं यत्परमाक्षरम् । तदेव हि त्रिपाद्गामचन्द्राख्यं नः परा गतिः ॥

ॐ सह नाववित्विति शान्तिः ॥ ॐ मनो हि द्वितिधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च । अशुद्धं कामसंकर्षं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ १ ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धाय विषयासक्तं सुनस्ये निर्विषयं स्मृतम् ॥ २ ॥ यतो निर्विषयस्यास्य मनसो सुक्तिरिष्यते । तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं सुसुक्षुणा ॥ ३ ॥ निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि । यदा यात्यु-नमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ ४ ॥ तावदेव निरोद्धन्यं यावदृदि गतं क्षयम् । एतज्ज्ञानं च मोक्षं च अतोऽन्यो यन्थविस्तरः ॥ ५ ॥ १ ॥ नेव चिन्त्यं न वाचिन्समिवन्सं चिन्समेव च। पक्षपातिविर्मुक्तं बहा संपथते तदा ॥ ६ ॥ खरेण संधयेद्योगमखरं भावयेत्परम् । अखरेण हि आवेन आवी माभाव इष्यते ॥ ७ ॥ तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकर्त्यं निरञ्जनम् । तद्रह्माह-मिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम् ॥ ८ ॥ निर्विकल्पमनन्तं च हेतुवृत्तान्त-वर्जितम् । अप्रसेयमनाद्यं च ज्ञात्वा च प्रमं ज्ञिवस् ॥ ९ ॥ न निरोधो न चोत्पत्तिर्न वन्द्यो न च शासनम् । न मुमुक्षा न मुक्तिश्चेदित्येषा परमार्थता ॥ १० ॥ २ ॥ एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रत्स्वप्तसुपुत्तिषु । स्थानत्रयाद्यतीः तस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ११ ॥ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ १२ ॥ घटसंवृतमाकाशं लीय-माने घटे यथा। घटो लीयेत नाकाशं तद्वजीवो नभोपसः ॥ १३॥ घटव-द्विविधाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः । तद्वग्नं न च जानाति स जानाति च नित्यकाः ॥ १४ ॥ शब्दमायावृतो यावनावत्तिष्ठति पुष्करे । भिन्ने तमासि चैकत्वमेकमेवानुपश्यति ॥ १५ ॥ ३ ॥ शब्दाक्षरं परं ब्रह्म यस्मिन्क्षीणे यद्श्व-रम् । तद्विद्वानक्षरं ध्यायेचदीच्छेच्छान्तिमात्मनः ॥ १६ ॥ द्वे विदे वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १७॥ अन्थमभ्यस मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्त्वतः । पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्रन्थ-मशेषतः ॥१८॥ गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता । क्षीरवत्पदयते ज्ञानं छिङ्गिनस्तु गवां यथा ॥ १९ ॥ घृतमिव पयसि निगृहं भूते भूते च वसित विज्ञानम् । सततं मन्ययितव्यं मनसा मन्यानभूतेन ॥ २० ॥ ज्ञाननेत्रं समादाय चरेद्रिद्वमतः परम् । निष्कलं निर्मलं शान्तं तद्रह्याहिमति स्युतम् ॥ २१ ॥ सर्वभूताधिवासं च यद्भतेषु वसत्यि । सर्वेनुग्राहकत्वेन तदस्यहं वासुदेवः तद्स्म्यहं वासुदेव इति ॥ २२ ॥ ४॥ सह नाववत्विति बान्तिः ॥

इलाथवीवदीया ब्रह्मबिन्दूपनिषत्समाप्ता ॥ १२ ॥

कैवल्योपनिषत् ॥ १३ ॥

कैवल्योपनिषद्वेद्यं कैवल्यानन्दतुन्दिलस् । कैवल्यगिरिजारामं स्वमात्रं कलयेऽन्वहस् ॥ ॐ सष्ट नाववित्विति शान्तिः॥

ॐ अथाश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच । अधीहि भगवन्त्र-

ह्मविद्यां वरिष्टां सदा सदिः सेव्यमानां निगृहाम् । यथाऽचिराःसर्वपापं व्यपोद्ध परात्परं पुरुषं याति विद्वान् ॥ १ ॥ तस्मे स होवाच पितामहश्च श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि॥ २॥ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अस्तत्वमान्यः । परेण नाकं निहितं गुहायां विभाजते यद्यतयो विशन्ति ॥ ३ ॥ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः ग्रद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ४ ॥ विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः । अन्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य अक्त्या स्वगुरुं प्रणस्य ॥ ५ ॥ हृत्युण्डरीकं विरजं विश्वदं विचिन्त्य अध्ये विशदं विशोकम् । अचिन्यमव्यक्तमनन्तरुपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥ ६ ॥ तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् । इस्तिहायं परसेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्याःवा मृति-कुटिछति भूतयोनि समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ॥ ७॥ स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराद । स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥ ८ ॥ स एव सर्वे यद्भृतं यच भव्यं सनातनम् । ज्ञात्वा तं सृत्युमत्येति नान्यः पन्था विसुक्तये ॥ ९ ॥ सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपर्यन्ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥ १०॥ आत्मानमर्गणं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात्पापं दहति पण्डितः ॥११॥ स एव मायापरिमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वम् । स्त्रियन्नपानादि-विचित्रओगैः स एव जायत्परितृष्ठिमेति ॥ १२ ॥ खप्ने स जीवः सुखदुःख-भोक्ता स्वमायया कल्पितजीवलोके । सुपुष्तिकाले सकले विलीने तमोऽभि-भूतः सुखरूपमेति ॥ १३ ॥ पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्स एव जीवः स्विपिति शबुद्धः । पुरत्रये कीडति यश्च जीवस्ततस्तु जातं सकछं विचित्रम् ॥ आधा-रमानन्द्रमखण्डबोधं यस्मिँ छ्यं याति पुरत्रयं च ॥ १४ ॥ एतसाजायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुज्यीतिरापः पृथिवी विश्वस धारिणी ॥ १५ ॥ यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्थायतनं महत् । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वसेव त्वसेव तत्॥ १६॥ जायत्स्वससुपुध्यादिप्रपञ्चं यत्प्रकाराते। तद्वसाह-मिति ज्ञात्वा सर्वबन्धेः प्रमुच्यते ॥ १० ॥ त्रिषु धामसु यद्गोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् । तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥ १८ ॥ मरयेव सक्छं जातं मिय सर्वं प्रतिष्टितम्। मिय सर्वं लयं याति तद्रह्मा-द्धयमस्म्यहम् ॥ १९ ॥ अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमहं विचित्रम् । पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि॥ २० ॥ अपाणि- पादोऽहमचिन्त्यशिक्तः पश्याम्यच्धुः स शुणोम्यकर्णः । अहं विजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥ २१ ॥ वेदेरनेकरहसेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदिव चाहम् । न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रि-यबुद्धिरस्ति ॥ २२ ॥ न भूमिरापो न च विह्नरस्ति न चानिको मेऽस्ति न चाम्बरं च । एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलर्माद्वेतीयस् ॥ २३ ॥

इति कैवल्योपनिषदि प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

समस्तमाक्षिं सदसिद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् । यः शतरुद्दीय-मधीते सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आत्मपूतो भवति स सुरापानात्पूतो भवति स ब्रह्महत्यात्पूतो भवति स सुवर्णस्तेयात्पूतो भवति स कृत्याकृत्यात्पूतो भवति तस्माद्विमुक्तमाश्रितो भवति अत्याश्रमी सर्वेदा सकृद्धा जपेत् ॥ अनेन ज्ञानमामोति संसाराणवनाशनम् । तस्मिन्वं विदित्वैनं कैवल्यं फलमश्रुते कैवल्यं फलमश्रुत इति ॥ २४ ॥

इति कैवल्योपनिषदि द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ ॐ सह नादविविति शान्तिः ॥ इस्यथर्ववेदीया कैवल्योपनिषस्समासा ॥ १३ ॥

जाबालोपनिषत् ॥ १४ ॥

जाबालोपनिषरख्यातं संन्यासज्ञानगोचरम् । वस्तुतस्त्रेपदं ब्रह्म स्वमात्रमवशिष्यते ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

ॐ बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यद्तु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसद्दनम् । अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसद्दनम् । तसाद्यत्र कचन गच्छित तदेव मन्येत तदिवमुक्तमेव । इदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसद्दनम् ॥ अत्र हि जन्तोः प्राणेपूरकममाणेषु रुद्दस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवित तसादिवमुक्तमेव निषेवेत अविमुक्तं न विमुद्धेदेवमेवैतद्याज्ञक्व्यः॥ १॥

इति प्रथमः खण्डः।

अथ हैनमन्निः पप्रच्छ याज्ञवहत्रयं य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा तं कथमहं विजानीयामिति ॥ स होत्राच याज्ञवहत्रयः सोऽविमुक्त उपास्पो य एपोऽनः न्तोऽत्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति । सोऽविमुक्तः किस्मिन्प्रतिष्ठित इति वरणायां नास्यां च सध्ये प्रतिष्ठित इति । का वै वरणा का च नासीति सर्वानिन्द्रियकृतान्दोषान्वारयतीति तेन वरणा भवति सर्वानिन्द्रियकृतान्पा-पान्नारायतीति तेन नासी भवतीति ॥ कतमचास्य स्थानं भवतीति । भ्रवोन् प्राणस्य च यः संधिः स एष द्यौठोंकस्य परस्य च संधिर्भवतीति ॥ एतद्वै संधि संध्यां ब्रह्मविद उपासत इति सोऽविमुक्त उपास्य इति । सोऽविमुक्तं ज्ञानमाच्छे यो वै तदेतदेवं वेदेति ॥ २ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किं जाप्येनामृतस्वं बृहीति ॥ स होवाच याज्ञवह्नयः शतरुद्रियेणेत्येतानि ह वा अमृतनामधेयान्येतैर्हवा अमृतो भवतीति ॥ एवमेवतद्याज्ञवह्नयः ॥ ३ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ ह जनको ह वैदेहो याज्ञवल्यसुपसमेत्योवाच भगवन् संन्यासमनुब्रहीति ॥ स होवाच याज्ञवल्यो ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेत्, गृही भूखा
वनी भवेत्, वनी भूखा प्रवजेत् ॥ यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रवजेद्गृहाद्वाः
वनाद्वा ॥ अथ पुनरवती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वा उत्सन्नाप्तिरनक्षिको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेत् ॥ तद्धेके प्राजापत्यामेवाष्टं कुर्वन्ति ॥
तदु तथा न कुर्यादाभेयीमेव कुर्यात् ॥ अप्तिर्हं वै प्राणः प्राणमेवैतया करोति
पश्चात्रैधातवीयामेव कुर्यात् ॥ प्रतयेव त्रयो धातवो यदुत सन्त्वं रजस्तम इति ॥
अयं ते योनिर्कत्वयो यतो जातो अरोचथाः ॥ तं जानन्नप्त आरोहाथा नो
वर्धय रियम् इत्यनेन सन्नेणाप्तिमाजिन्नेत् ॥ एष वा अभेगीनिर्यः प्राणः प्राणं
गच्छ स्वाहेत्येवमेवैतदाह ॥ ग्रामादिप्तमाहृत्य पूर्ववदिप्तमान्नापयेत् ॥ यद्यप्ति
न विन्देदप्तु जुहुयात् ॥ आपो वै सर्वा देवताः । ॐसर्वाभ्यो देवताभ्यो
जहोमि स्वाहेति हुत्वा समुद्भुत्य प्राक्षीयात्साच्यं हितरनामयं मोक्षमन्नस्वय्येवं
विन्देत् ॥ तद्वह्मेतदुपासितव्यम् ॥ एवमेवैतद्भगविति वै याज्ञवल्क्यः ॥ ४॥

इति जावालोपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ ॥ य।ज्ञवल्क्य प्रच्छामि त्वा याज्ञवल्क्य अयज्ञोप-वीती कथं ब्राह्मण इति ॥ स होवाच याज्ञवल्क्य इदमेवास्य तद्यज्ञोपवीतं य आत्मा प्राक्ष्याचम्यायं विधिः परिव्राजकानाम् ॥ वीराध्वाने वाऽनाशके वाऽपां

अ. उ. १०

प्रवेशे वाडिश्मप्रवेशे वा महाप्रस्थाने वाडथ परिवाद् विवर्णवासा सुण्डोऽपरि-ग्रहः ग्रुचिरदोही भेक्षाणो ब्रह्मभूयाय भवति ॥ यद्यातुरः स्थानमनसा वाचा वा संन्यसेत ॥ एव पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनेति संन्यासी ब्रह्म विदिरवेवमे-वैष भगवित्नति वे याज्ञवल्क्यः ॥ ५ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

तत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वासऋशुनिदाघजडभरतद्तात्रे यरैवतकप्रश्ववोऽन्यक्तिङ्का भन्यक्ताचारा अनुन्मक्ता उन्मक्तवदाचरन्ति इन्दं कमण्डलं शिवयं पात्रं जलपित्रं शिलां यज्ञोपवीतं चेत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यस्य परित्यव्यात्मानमित्वच्छेत् ॥ यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परि-प्रहस्तक्तक्वसमार्गे सम्पवसंपन्नः ग्रुद्धमानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो भेक्षमाचरल्चदरपात्रेण लाभालाक्षो समी भूत्वा शून्यागारदेवगृहतृण-कृटवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाभिहोत्रनदीपुलिनिगिरिकुहरकन्दरकोटरनिर्द्वास्थिण्डलेव्वनिकेतवास्यप्रयत्वो निर्ममः शुक्कध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठोऽश्चभ-कमिन्भूलनपरः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसो नाम स परमहंसो नामेति ॥ ६ ॥

इति जाबालोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः ॥ इत्यथर्ववेदे जावालोपनिपत्समाप्ता ॥ १४ ॥

हंसोपनिषत् ॥ १५ ॥ हंसाल्योपनिषत्योक्तनादादियंत्र विश्रमेत् । तदाधारं निराधारं ब्रह्ममात्रमहं महः ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥

ॐ गौतम उवाच। भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । ब्रह्मविद्याप्रबोधो हि केनोपायेन जायते ॥ १ ॥ सनत्सुजात उवाच। विचार्य सर्ववेदेषु मतं ज्ञाखा पिनाकिनः । पार्वत्या कथितं तत्त्वं श्रणु गौतम तन्मम ॥ २ ॥ अना- ख्येयमिदं गुद्धं योगिनां कोशसंनिभम् । हंसस्य गतिविस्तारं भुक्तिमुक्तिफल- शदम् ॥ ३ ॥ अथ हंसपरमहंसनिर्णयं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मचारिणे शान्ताय दान्ताय गुरुभक्ताय । हंसहंसेति सदाऽयं सर्वेषु देहेषु व्यासो वर्तते ॥

यथा हाझिः काष्टेषु तिलेषु तेलमिव तं विदित्वा न मृत्युमत्येति । गुदमवष्टभ्या-धाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः पदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं गःवा अनाहत-मतिकाय विशुद्धी प्राणान्निरुध्याज्ञामनुध्यायन्त्रहारन्ध्रं ध्यायन् त्रिमात्रोऽहमि-त्येवं सर्वदा ध्यायज्ञथो नादमाधाराद्रहारन्ध्रपर्यन्तं शुद्धस्प्रटिकसंकाशं स वे ब्रह्म परम स्मेत्युच्यते ॥ १ ॥ अथ हंस ऋषिः, अव्यक्तगायत्री छन्दः । प्रमहंसी देवता । हमिति बीजम् । स इति शक्तिः । सोऽहमिति कील-कम् । षद्दसंख्यया अहोरात्रयोरेकविंशतिसहस्राणि षदशतान्यधिकानि भव-हित । सर्याय सोमाय निरक्षनाय निराभासाय तनसूक्ष्म प्रचोदयादिति अग्नीपोमाभ्यां वापद हृद्याद्यङ्गन्यासकरन्यासा भवतः । एवं कृत्वा हृद्येspe हे हंसात्मानं ध्यायेत् । अझीपोमा पक्षावोंकारः शिरो बिन्दुस्तु नेत्रं सुखं रुद्रो रुद्राणी चरणी बाहु कालश्राप्तिश्रोमे पार्थ भवतः। पद्रवत्यनागा-रश्च शिष्टोभयपार्थे भवतः । एपोऽसा परमहंसी भानुकोटिप्रतीकाशी येनेदं व्याप्तम् । तस्याष्ट्रधा वृत्तिर्भवति । पूर्वद् हे पुण्ये मतिः आग्नेये निद्रालसा-दयो भवन्ति याम्ये कुरे मतिः नैक्स्ये पापे मनीवा वारुण्यां कीडा वायव्ये गमनादौ बुद्धिः सौस्ये रतिप्रीतिः ईशाने द्रव्यादानं मध्ये वैराग्यं केसरे जामदवस्था कर्णिकायां स्वमं लिङ्गे सुपुष्तिः पद्मत्यागे तुरीयं यदा हसी नादे लीनो भवति तदा तुर्यातीतसुन्मननमजपोपसंहारमित्यभिषीयते। एवं सर्व हंसवशात्तस्मान्मनो विचार्यते । स एव जपकोट्यां नाद्मतुभवति एवं सर्वं हंसवशान्तादो दशविधो जायते । चिणीति प्रथमः । चिक्रिणीति द्वितीयः । घण्टानादस्तृतीयः । शङ्खनादश्चतुर्थम् । पञ्चमस्तत्रीनादः । षष्ठसालनादः । स-समो वेणुनादः । अष्टमो सृदङ्गनादः । नवमो भेरीनादः । दशमो मेघनादः । ववमं परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत्। प्रथमे चिञ्चिणीगात्रं द्वितीये गात्रभञ्ज-नम्। तृतीये खेदनं याति चतुर्थे कस्पते शिरः ॥ पञ्चमे स्नवते तालु षष्टेऽमृ-तिनिषेत्रणम् । सप्तमे गूडविज्ञानं परा वाचा तथाऽष्टमे ॥ अदृशं नवसे देहं दिव्यचक्षुस्तथाऽमलस् । दशमं परमं ब्रह्म भवेद्रह्मात्मसंनिधौ ॥ तस्मिन्मनो विलीयते मनसि संकल्पविकल्पे दुग्धे पुण्यपापे सदाशिवः शक्खात्मा सर्व-त्रावस्थितः स्वयंज्योतिः शुद्धो बुद्धो नित्यो निरञ्जनः श्वान्तः प्रकाशत इति ॥ क वेदमवचनं वेदमवचनमिति ॥ २ ॥ क पूर्णमद इति शान्तिः ॥ इत्यथर्ववेदे हंसोपनिषत्समासा ॥ १५॥

11

आरुणिकोपनिषत् ॥ १६ ॥

आरुणिकाख्योपनिषरख्यातसंन्यासिनोऽमलाः । यस्त्रबोधाद्यान्ति सुक्तिं तद्रामब्रह्म से गतिः ॥ ॐ आप्यायन्तिति शान्तिः ॥

अंशाहणिः प्रजापतेलोंकं जगाम । तं गत्वीवाच । केन अगवन्कर्माण्यः ज्ञेषतो विस्नजानीति । तं होवाच प्रजापतिस्तव पुत्रान्आतुनबन्ध्वादीविद्यवां यज्ञोपवीतं च यागं च सूतं च स्वाध्यायं च भूलीकसुवलीकस्वलीकमहलीकः जनकोकतपोकोकसत्यकोकं चातलपातालवितलसुतलरसातलतलातलमहातलः ब्रह्मण्डं च विसर्जयेदण्डमाच्छादनं चैव कौपीनं च परिश्रहेत्। शेषं विसर्जे-दिति ॥ १ ॥ गृहस्यो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा लोकिकाझीनुदराष्ट्री समारोपयेत् । गायत्रीं च स्ववाचाम्मौ समारोपयेदुपवीतं भूमावप्सु वा विस्तेत् । कुटीचरो ब्रह्मचारी कुदुम्बं विस्तेत् । पात्रं विस्तेत् । पवित्रं विस्जेत्। दण्डांश्च लौकिकाभींश्च विस्जोदिति होवाच। अत अर्ध्वसमञ् वदाचरेत् । अर्थगमनं विस्नुजेत् । त्रिसंध्यादी स्नानमाचरेत् । संधि समाधावात्मन्याचरेत् । सर्वेषु वेदेष्वारण्यकमावर्तयेदुपनिषद्मावर्तयेदुपनिष-दमानर्तयेदिति ॥ २ ॥ खल्वहं ब्रह्म सूत्रं सूचनात्सूत्रं ब्रह्म सूत्रमहमेव बिद्वां-स्त्रिवृत्स्त्रं त्यजेद्विद्वान्य एवं वेद संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयोति त्रिः कृत्वाऽभर्थ सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । सखा मा गोपायौजः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारयेति । अनेन मन्नेण कृतं वैणवं दण्डं कौपीनं परिम्रहेदौपधवदशनमाचरेदौषधवद-श्रनमाचरेत्। ब्रह्मचर्यमहिंसां चापरियहं च सत्यं च यतेन हे रक्षतो३ है रक्षती ३ हे रक्षत इति ॥ ३ ॥ अथातः परमहंसपरिवाजकानामासन-शयनादिकं भूमौ ब्रह्मचारिणां मृत्पात्रं वाऽलाबुपात्रं दारुपात्रं वा कामकोध-हर्षरोषळोभमोहदम्भदर्पास्याममस्वाहंकारादीनपि त्यजेत् । वर्षासु शीकोऽष्टो मासानेकाकी यतिश्चरेत् द्वावेत वा चरेद्वावेव वा दिति ॥ ४ ॥ खलु वेदार्थं यो विद्वान्सोपनयनादूर्ध्वमेतानि प्राग्वा त्यजेत् । पितरं पुत्रमझ्युपवीतं कर्म कलत्रं चान्यद्पीहं यतयो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशन्ति पाणिपात्रमुदरपात्रं वा । ॐ हि ॐ हि ॐ हीत्येतदुपनिषदं विन्य-सेत् ॥ खल्वेतदुपनिषदं विद्वान्य एवं वेद पालाशं बल्वमीदुम्बरं दग्ड-मजिनं मेखलां यज्ञीपवीतं च त्यवस्वा झूरो य एवं वेद । तद्विष्णीः

परमं पदं सदा पश्यन्ति सुरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विपासो विपन्य-वो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यस्परमं पदमिति । एवं निर्वाणानुशासनं वेदानुशासनं वेदानुशासनमिति ॥ ५ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीयारुणिकोपनिषत्समाप्ता ॥ १६ ॥

गर्भोपनिषत् ॥ १७॥

यद्रश्रीपनिषद्वेद्यं गर्भस्य स्वात्मवोधकम् । शरीरापह्नवात्सिद्धं स्वमात्रं कलये हरिम् ॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः॥

य-खां

क-

ल-

जे-भा

वा

न्न-

धिं

4-

Ţį-

ति

ज:

द-

F

न॰

ਬ-

व•

रे-

1)

मं

य•

ड-ोः

ॐ पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्तमानं पडाश्रयं पड्डाणयोगयुक्तम् ॥ तत्सस्रधातु त्रिमरं द्वियोनि चतुर्विधाहारसयं शरीरस् ॥ भवति पञ्चात्मकामिति कसात्, पृथिव्या-पस्तेजोवायुराकाशिसस्यस्मिन्पञ्चात्मके शरीरे। का पृथिवी का आपः किं तेजः को वायुः किमाकाशम् । तत्र यत्कठिनं सा पृथिवी यद्भवं ता आपो यदुःणं तत्तेजो श्रःसंचरति स वायुः यत्सुषिरं तदाकाशमित्युच्यते॥ तत्र पृथिवी नाम धारणे आपः पिण्डीकरणे तेजः प्रैकाशने वायुर्व्यूहने आकाशमनकाश-प्रदाने ॥ पृथुस्तु श्रोत्रे शब्दोपलब्धौ त्वक् स्पर्शे चक्षुपी रूपे जिह्ना रसने नासिकाऽऽघ्राणे उपस्थश्रानन्दनेऽपानमुत्सर्गे बुद्ध्या बुद्धाति मनसा संकल्यिति वाचा वद्ति॥ षडाश्रयमिति कस्मात्, मधुराम्छलवणतिक्तकदुकषायरसा-न्विन्दते ॥ षड्जर्पभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाश्चेति । इष्टानिष्टा शब्द्-संज्ञाप्रणिधानाद्राविधा भवन्ति ॥ १॥ गुक्को रक्तः कृष्णो धूम्रः पीतः कपिलः पाण्डुर इति ॥ सप्तधातुकमिति कस्मात्, यथा देवदत्तस्य द्व्यादिविषया जायन्ते॥ मरस्परं सौम्यगुणस्वात्षिड्वधो रसो रसाच्छोणितं शोणितान्मांसं मांसान्मेदो मेद्सः स्नावा स्नाहोऽस्थीन्यस्थिभ्यो मजा मन्तः शुक्रं शुक्रशोणितसंयोगादा-वर्तते गर्भो हृद्वियवस्थानीति । हृद्येऽन्तराग्निः अग्निस्थाने पित्तं पित्तस्थाने वायुः वायुस्थाने हृद्यं प्राजापत्यात्क्रमात् ॥ २ ॥ ऋतुकाले संप्रयोगादेक-रात्रोषितं कलिलं भवति सप्तरात्रोषितं बुद्धदं भवति अर्थमासाभ्यन्तरेण पिण्डो भवति मासाभ्यन्तरेण कठिनो भवति मासद्वयेन शिरः संपद्यते मास-त्रयेण पादप्रदेशो अवति ॥ अथ चतुर्थे मासेऽज्जुत्यजठरकटिप्रदेशो अवति ॥

पद्ममें मासे पृष्ठवंशो अवति ॥ पष्ठे मासे मुखनासिकाक्षिश्रोत्राणि अवन्ति ॥ सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवति ॥ अष्टमे मासे सर्वसंपूर्णो भवति ॥ पित् रेतोऽतिरिक्ताःपुरुषो भवति मात् रेतोऽतिरिक्तात्ख्यो भवन्त्युभयोवींजतुत्यः त्वाज्ञपंसको भवति ॥ व्याकुलितमनसोऽन्धाः खञ्जाः कुब्जा वामना भवन्ति ॥ अन्योन्यवायुपरिपीडितशुक्रद्वध्याद्विधा तन्ः स्यात्ततो युग्माः प्रजायन्ते॥ पञ्चातमकः समर्थः पञ्चात्मिका चेतसा बुद्धिर्गन्धरसादिज्ञाना ध्यानात्भरमक्षरं मोक्षं चिन्तयतीति । तदेकाक्षरं ज्ञात्वाऽष्टी प्रकृतयः पोडश विकाराः शरीरे तस्येव देहिनाम् ॥ अथ मात्राऽशितपीत नाडीसूत्रगतेन प्राण आप्यायते ॥ अथ नवमे मासि सर्वलक्षणसंपूर्णो भवति पूर्वजातीः स्मरति कृताकृतं च कर्म अवति ग्रुआग्रुभं च कर्म विन्दति ॥ ३ ॥ नानायोनिसहस्राणि दृष्टा चैव तती मया ॥ श्राहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ॥ जातस्यैव मृतस्यव जन्म चैव पुनः पुनः ॥ अहो दुःखोदधौ मझो न पश्यामि प्रतिकियाम् ॥ य-नमया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म ग्रुभाग्रुभम् ॥ एकाकी तेन दह्यामि गतास्त फ-द्धभोगिनः॥ यदि योन्यां प्रमुखामि सांख्यं योगं वा समाश्रये॥ अग्रमक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥ यदि योन्यां प्रमुच्यामि तं प्रपद्ये सहेश्वरम् ॥ अञ्चनक्षः यकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥ यदि योन्यां प्रमुखासि तं प्रपद्ये भगवन्तं नारा-यणं देवम् । अग्रुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकस् ॥ यदि योन्यां प्रमुञ्जामि ध्याये ब्रह्म सनातनम् ॥ अथ जन्तुः स्त्रीयोनिशतं योनिद्वारि संप्राप्तो यन्नेणा-पीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृश्य तदा न सारति जन्ममरणं न च कर्म शुभाशुभम् ॥ ४ ॥ शरीरमिति कस्मात् , साक्षा-दमयो सत्र श्रियन्ते ज्ञानामिर्दर्शनामिः कोष्ठामिरिति ॥ तत्र कोष्ठामिनीमाशि-तपीतलेह्यचोष्यं पचतीति ॥ दर्शनाञ्ची रूपादीनां दर्शनं करोति ॥ ज्ञानाग्निः शुभागुमं च इमे विन्दति यसत्र ॥ त्रीणि स्थानानि भवन्ति हृद्ये दक्षिणा-मिरुदरे गाईपत्यं मुखादाहवनीयात्मा यजमानी बुद्धिः पत्नीं मनी ब्रह्मा नि॰ धाय छोभादयः पशवो धतिदीक्षा संतोषश्च बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि कर्मे-न्द्रियाणि हवींषि शिरः कपाछं केशा दभी मुखमन्तर्वेदिः, चतुष्कपाछं शिरः षोडश पार्श्वदन्तोष्ठपटळानि ससोत्तरं ममेशतं साशीतिकं संधिशतं सनवकं सायुशतं सप्त शिराशतानि पञ्च मजाशतानि अस्थीनि च ह वे त्रीणि शतानि षष्टिश्चार्धचतस्त्रो रोमाणि कोट्यो हृद्यं पळान्यष्टी ह्रादश पळानि जिह्ना पित्तप्रस्थं

कफस्यादकं ग्रुक्तं कुडवं मेदः प्रस्थो द्वावनियतं मूत्रपुरीपमाहारपरिमाणात् । पैप्पलादं मोक्षकास्त्रं परिसमासं पैप्पलादं मोक्षकास्त्रं परिसमाप्तमिति ॥ ५॥

> ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः। इति गर्भोपनिष्यसमाप्ता॥ १७॥

नारायणाथर्वशिरउपनिषत् ॥ १८॥

आयातस्कार्यमखिलं यद्वोधाद्यात्यपद्मवम् । त्रिपान्नारायणाख्यं तस्कलये स्वात्ममात्रतः ॥ ॐ स हं नाववत्विति शान्तिः॥

ॐ अथ पुरुषो ह वे नारायणोऽकामयत प्रजाः स्जेयेति ॥ नारायणाःपाणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ खं वायुज्योंतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ नारायणाद्वह्या जायते॥ नारायणाद्वद्दो जायते॥ नारायणादिन्द्दो जायते॥ नारायणाध्यजापतिः प्रजायते ॥ नारायणाद्वादशादित्या रुद्दा वसवः सर्वाणि च्छन्दांसि ॥ नारायणादेव समुत्पद्यन्ते ॥ नारायणात्प्रवर्तन्ते ॥ नारायणे प्रस्ती-यन्ते ॥ एतदग्वेद्शिरोऽघीते ॥ १ ॥ अथ नित्यो नारायणः ॥ ब्रह्मा नारायणः ॥ शिवश्र नारायणः ॥ शक्रश्र नारायणः ॥ कालश्र नारायणः ॥ दिशश्र नारा-यणः ॥ विदिशश्च नारायणः ॥ ऊर्ध्वं च नारायणः ॥ अधश्च नारायणः ॥ अन्तर्बहिश्च नारायणः ॥ नारायण एवेदं सर्वं यद्भृतं यञ्च भव्यम् ॥ निष्क-लक्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराल्यातः गुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽ-स्ति कश्चित् ॥ य एवं वेद स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति ॥ य एतद्यजुर्वेदिशारोऽधीते ॥ २ ॥ अभित्यमे व्याहरेत् ॥ नम इति पश्चात् ॥ नारायणायेत्युपरिष्टात् ॥ अमित्येकाक्षरम् ॥ नम इति द्वे अक्षरे ॥ नाराय-णायेति पञ्चाक्षराणि ॥ एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम् ॥ यो ह वै नारायणः स्याष्टाक्षरं पदमध्येति । अनपञ्जवः सर्वमायुरेति ॥ विन्दते प्राजापत्यं राय-स्पोषं गौपत्यं ततोऽमृतत्वमश्रुते ततोऽमृतत्वमश्रुत इति ॥ एतत्सामवेदशिरो-ऽधीते ॥ ३ ॥ प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्तरूपम् ॥ अकार उकारो मकार इति ॥ ता अनेकथा समभवत्तदेतदोमिति यमुक्तवा मुच्यते योगी जन्मसंसार. बन्धनात् ॥ ॐ नमो नारायणायेति मंत्रोपासको वैकुण्ठभुवनं गमिष्यति ॥ तदिदं पुण्डरीकं विज्ञानघनं ॥ तसात्तडिदाभमात्रम् ॥ ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो

पिता स्थान ता। सिरं रिरे

II E

ा। कर्म ततो स्यव

फ-तीरं 1क्ष-

य-

ामि जा-व क्षा-

शि-भि: णा-

हमें-शरः वकं

ानि स्थिं ब्रह्मण्यो मधुसूदनः ॥ ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युत इति ॥ सर्वभूतस्थमेकं वै नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म ओम् ॥ एतद्थविज्ञारो
योऽधीते ॥ ४ ॥ प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नारायति ॥ सायमधीयानो
दिवसकृतं पापं नारायति ॥ तत्सायंप्रातरधीयानोऽपापो अवति ॥ मध्यंदिनमादित्याभिमुखोऽधीयानः पञ्चमहापातकोपपातकारप्रमुच्यते ॥ सर्ववेदपारायणपुण्यं लभते ॥ नारायणसायुज्यमवामोति ॥ श्रीमन्नारायणसायुज्यमवामोति य एवं वेद ॥ ५ ॥

ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥ ॥ इति नारायणाथविशिरउपनिषत्समासा॥ १८॥

महानारायणोपनिषत् ॥ १९ ॥

कें नमी महते नारायणाय ॥ अम्भस्यपारे भुवनस्य मध्ये नाकस्य पृष्ठे महतो महीयान् । शुक्रेण ज्योतीं वि समनुप्रविष्टः प्रजापतिश्वरति गर्भे अन्तः ॥ १ ॥ यसिन्निदं संच विचेति सर्वयसिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। तदेव भूतं तहु भव्यमानिमदं तदक्षरे परमे व्योमन् ॥ २ ॥ येनावृतं खंच दिवं मही च येनादित्यसापति तेजसा आजसा च । यदन्तः समुद्दे कवयो वदन्ति तद्क्षरे परमे प्रजाः ॥ ३ ॥ यतः प्रसूता जगतः प्रसूती तोयेन जीवा-न्विससर्ज भूम्याम्। यत ओषचीभिः पुरुषान्पश्चंश्च विवेश सूतानि चराचराणि ॥ ४ ॥ अतः परं नान्यदणीयसं हि परात्परं यन्महती महान्तम् । यदेकम व्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात् ॥ ५ ॥ तदेवर्तं तदु सत्यमाहुस्त-देव ब्रह्म परमं कवीनाम् । इष्टापूर्तं बहुधा जातं जायमानं विश्वं विभर्ति भुवनस्य नाभिः ॥ ६ ॥ तदेवाशिसाद्वायुसाःसूर्यसादु चन्द्रमाः । तदेव शुक्र-ममृतं तद्रह्म तदापः स प्रजापितः ॥ ७ ॥ सर्वे निमेषा जिल्रेरे विद्युतः पुरुषा-द्धि । कला सुहूर्ताः काष्टाश्राहोरात्राश्च सर्वशः ॥ ८॥ अर्धमासा मासा ऋतवः संबन्तरश्च कल्पताम् । स आपः प्रदुघे उभे इमे अन्तरिक्षमधो सुवः ॥ ९॥ नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजयभत् । न तस्येरो कश्चन तस्य नाम महद्यशः॥ १०॥ न सन्दरो तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पर्यति कश्च-नैनम्। हृदा मनीषा मनसाभिक्षृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ११ ॥ अच्यः सम्भूतो हिरण्यगर्भ इत्यष्टौ ॥ १२ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

9

एव हि देवः प्र दिशोऽनु सर्वाः पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः । स विजायमानः स जनिष्यमाणः प्रत्यञ्जुलस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ १॥ विश्व-तश्रक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं वाहुभ्यां धमित सं पतंत्रर्धावापृथिवी जनयन्देव एकः ॥ २ ॥ वेनस्तत्प्रयन्विश्वा भुवनानि विद्वान् यत्र विश्वं भवत्यकनीडम् । यस्मिन्निदं सं च वि चैकं स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु॥ ३ ॥ प्र तद्वीचे अमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो नाम निहितं गुहासु । त्रीणि पदा निहिता गुहासु यसदेद स पितुः पितासत् ॥ ४ ॥ स नो बन्धु-र्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतत्वमान-शानास्तृतीये धामान्यभ्येरयन्त ॥ ५ ॥ परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः परि लोकान्परि दिशः परि सुनः । ऋतस्य तन्तुं विततं विवृत्य तदपश्यत्तदभवत्त-व्प्रजासु ॥ ६ ॥ परीत्य लोकान्परीत्य भूतानि परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्यात्मनात्मानमभिसम्बभूव ॥ ७ ॥ सदसस्पतिमञ्जतं प्रियमिन्दस्य कास्यस् । सनिं मेधामयासिषम ॥ ८ ॥ उद्दीप्यस्व जातवेदोऽ-पश्चित्रिक्तिं सम । पश्चं महामावह जीवनं च दिशो दिशः ॥ ९ ॥ मा नो हिंसीजातवेदी गामश्रं पुरुषं जगत् । अविश्रद्ध आगहि श्रिया मा परि-पात्य ॥ ९० ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तत्पुरुषस्य विद्यहे सहस्राक्षस्य महादेवस्य धीमहि। तन्नो रुद्दः प्रचोद्यात् ॥ १ ॥ तत्पुरुषाय विद्यहे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्दः प्रचोद्यात् ॥ २ ॥ तत्पुरुषाय विद्यहे निद्देश्वराय धीमहि। तन्नो यृपभः प्रचोद्यात् ॥ ३ ॥ तत्पुरुषाय विद्यहे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोद्यात् ॥ ४ ॥ षण्मुखाय विद्यहे महासेनाय धीमहि। तन्नो वश्वानरः प्रचोद्यात् ॥ ४ ॥ पावकाय विद्यहे सहजिह्वाय धीमहि। तन्नो वश्वानरः प्रचोद्यात् ॥ ६ ॥ वैश्वानराय विद्यहे लालेलाय धीमहि। तन्नो अग्निः प्रचोद्यात् ॥ ७ ॥ भास्कराय विद्यहे दिवाकराय धीमहि। तन्नो अग्निः प्रचोद्यात् ॥ ८ ॥ दिवाकराय विद्यहे महाद्युतिकराय धीमहि। तन्नो भानुः प्रचोद्यात् ॥ ९ ॥ आदित्याय विद्यहे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नो भानुः प्रचोद्यात् ॥ १० ॥ तीक्षण शृंगाय विद्यहे वक्रपादाय धीमहि। तन्नो मानुः प्रचोद्यात् ॥ १० ॥ काल्यायन्ये विद्यहे कन्याकुमाये धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोद्यात् ॥ १२ ॥ महाञ्चलिन्ये विद्यहे महादुर्गाये धीमहि। तन्नो भगवती प्रचोद्यात् ॥ १३ ॥ सहाञ्चलिन्ये विद्यहे महादुर्गाये धीमहि। तन्नो भगवती प्रचोद्यात् ॥ १३ ॥ सहाञ्चलिन्ये विद्यहे काममालिन्ये धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोद्यात् ॥ १३ ॥ सम्माये विद्यहे काममालिन्ये धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोद्यात् ॥ १३ ॥

तत्पुरुषाय विद्याहे सुपर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचीद्यात् ॥ १५॥ नारायणाय विद्याहे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचीद्यात् ॥ १६॥ नृसिंहाय विद्याहे वज्रनलाय धीमहि । तन्नः सिंहः प्रचोद्यात् ॥ १७॥ चतुर्मुलाय विद्याहे कमण्डलुधराय धीमहि । तन्नो ब्रह्मा प्रचोद्यात् ॥ १८॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

सहस्रपरमा देवी शतमूला शतांकुरा । सर्वं हरतु मे पापं दूर्वा दु:स्वमना-शिनी ॥ १ ॥ दूर्वा अमृतसम्भूताः शतमूलाः शतांकुराः । शतं मे प्रन्ति पापानि शतमायुर्विवर्धति ॥ २॥ काण्डात्काण्डात्यरोहन्ती परुषः परुषः परि। एवा नो दुर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ ३ ॥ अश्वकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसन्धरे। शिरसा धारिता देवि रक्षस्व मां पदे पदे ॥ ४ ॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतवाहुना। भूमिधेनुधीरित्री च धरणी छोकधारिणी। तेन या ब्रह्मदत्तासि काइयपेनाभिमन्निता ॥ ५ ॥ सृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् । त्वया हतेन पापेन जीवासि शरदः शतस् ॥ ६ ॥ वाचा कृतं कर्मकृतं मनसा दुर्विचिन्तितम् । त्वया हतेन पापेन गच्छामि परमां गतिम् । सृत्तिकै देहि में पुष्टि त्विय सर्व प्रतिष्टितम् ॥ ७ ॥ गन्धद्वारां दुराधर्षां निलपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्नये श्रियम् ॥ ८ ॥ ॐ भूर्लक्ष्मी-र्भुवर्छक्ष्मीः सुवः कालकर्णी तन्नो महालक्ष्मीः प्रचीद्यात् ॥ ९॥ पद्मप्रमे पद्मसुन्दरि धर्मरतये स्वाहा ॥ १० ॥ हिरण्यशुंगं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः । यन्मया भुक्तनसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥ ११ ॥ यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम्। तन्मे इन्द्रो वरुणो वृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः पुनः ॥ १२ ॥ सुमित्रिया न आप ओपधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तसै भूयासुर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १३ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

नमोऽसयेऽसुमते नम इन्द्राय नमो वरुणाय नमो वारुण्ये नमोऽस्यः ॥ य-द्रपां कूरं यदमेध्यं यद्शान्तं तद्रपाच्छतात् ॥ १ ॥ अत्याशनाद्तीपानाद्यञ्च उत्रात्प्रतिप्रहात् । तन्मे वरुणो राजा पाणिना द्यायमर्शतु ॥ २ ॥ सोऽहमपापो विरजो निर्मुक्तो सुक्तिकिल्विषः। नाकस्य पृष्ठमारुद्ध गच्छेद्रह्मसलोकताम् ॥ ३ ॥ इमं में गंगे यसुने सरस्ति द्युतद्वि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्तया मरुद्वधे वितस्तयाजींकीये द्युणुद्धा सुवोमया ॥ ४ ॥ ऋतं च सत्यं चाभीद्वात्तपसोऽ-ध्यजायत । ततो राज्यजायत ततः ससुद्रो अर्णवः ॥ ५ ॥ ससुद्राद्गणवादिध संवरसरो अजायत । अहोरात्राणि विद्धिद्धिस्य मिषतो वशी ॥ ६ ॥ सूर्या-चन्द्रमसो धाता यथापूर्वमकत्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ७ ॥ यरपृथिव्या रजः स्वमान्तरिक्षे विरोदसी । इमास्तद्राणो वरुणः पुना-श्वधमर्पणः ॥ ८ ॥ एष सर्वस्य भूतस्य भव्ये भुवनस्य गोप्ता । एष पुण्यकृतां लोकानेष सृत्यो हिरण्मयः । द्यावापृथिव्योहिरण्मयं संशृतं सुवः । स नः सुवः संशिकाधि ॥ ९ ॥ आई ज्वलित ज्योतिरहमस्मि । ज्योतिज्वेलित ब्रह्मा-हमस्मि । योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि । अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा ॥ ६० ॥ अकार्यकार्यवकीणीं स्तेनो भूणहा गुरुतत्व्याः । वरुणोऽपामयमर्पणस्यस्यात्यापाद्य-मुच्यते ॥ १९ ॥ रजो भूमिस्त्वमारोदयस्व प्रवदन्ति घीराः । पुनन्तु ऋषयः पुनन्तु वसवः पुनातु वरुणः पुनात्वघमर्पणः ॥ १२ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि पश्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अकान्ससुदः प्रथमे विधर्मन् जनयन्त्रजा सुवनस्य राजा । वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ १ ॥ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निद्हाति वेदः । स नः पर्पदिति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धं दुरितास्यिः ॥ २ ॥ तामिन्नवर्णा तपसा जवलन्ती वैरोचनी कर्मफलेषु जुष्टाम् । दुर्गा देवी शरणमहं प्रपये पुतरसितरसे नमः ॥ ३ ॥ अमे त्वं पारया नव्यो अस्मान् स्वित्तिभरति दुर्गाणि विश्वा । पृश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥ ४ ॥ विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुनं नावा दुरितातिपर्षि । अमे अत्रिवन्नमसा गृणानोऽसाकं बोध्यविता तन्नाम् ॥ ५ ॥ घृतनाजितं सहमानमिन्नमुत्रं हुवेम परमात्स्यस्थात् । स नः पर्पद्तिदुर्गाणि विश्वा क्षामदेवो अतिदुरितात्यिः ॥ ६ ॥ प्रतो हि कमीड्यो अध्यरेषु सनाच होता नव्यश्च सित्स । स्वां चामे तन्वं पित्रयस्वासम्यं च सोमगमायजस्व होता नव्यश्च सित्स । स्वां चामे तन्वं पित्रयस्वासम्यं च सोमगमायजस्व ॥ ७ ॥ परस्ताद्यशो गृहासु सम सुपर्णपक्षाय घीमहि । शतवाहुना पुनरजायत सुवो राजा सधस्था त्रीणि च ॥ ८ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

ॐ भूरमये पृथिव्ये स्वाहा । भुवो वायवेऽन्तिरिक्षाय स्वाहा । सुवरादिसा-य दिवे स्वाहा । भूर्भुवः सुवश्चन्द्रमसे दिग्भ्यः स्वाहा । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यो भूर्भुवः सुवरिमरोम् ॥ १ ॥ भूरद्भममये पृथिस्ये स्वाहा । सुवोऽद्धं वायवेऽन्तिरिक्षाय स्वाहा । सुवरत्नमादिस्याय दिवे स्वाहा । भूर्भुवःसुवरतं च-न्द्रमसे दिग्भ्यः स्वाहा । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यो भूसुवःसुवरत्नमोम् ॥ २ ॥ भूरमये च पृथिव्ये च महते च खाहा । भुवो वायवे चान्तिहिक्षाय च महते च खाहा । सुभूवः सुव- श्रम्भ च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च खाहा । नमो देवेभ्यः खथा पितृभ्यो भूर्भुवः सुवर्महरोम् ॥ ३ ॥ पाहि नो अम्म एनसे खाहा । पाहि नो विश्ववेदसे खाहा ॥ यज्ञं पाहि विभावसो खाहा । सर्वं पाहि शतकतो खाहा ॥ ४ ॥ यश्चन्दसाम् अभो विश्वरूपश्चन्दो स्वश्चन्दां खाविवेश । सतां शक्यः भोवाचोपनिषदिन्दो उयेष्ठ इन्द्राय ऋषिभ्यो नमो देवेभ्यः खधा पितृभ्यो भूर्भुवः सुवश्चन्द ॐ ॥ ५ ॥ नमो ब्रह्मणे धारणं मे अस्त्विन एकरणं धार्यात्रा भूयासं कर्णयोः श्चतं मा च्योद्वं ममासुष्य ॐ ॥ ६ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दानं तपो यज्ञस्तपो अर्थुदः
सुववंद्वेतदुपास्वेतत्तपः ॥ १ ॥ यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्रन्धो वात्येवं
पुण्यस्य कर्मणो दूराद्रन्धो वाति । यथासिधारां कर्तेऽविहतामवकासेद्यद्यु
वेह वेहवा विद्विल्ध्यामि कर्तं पतिष्यामीत्येवमनुतादात्मानं ज्ञुगुप्लेत् ॥ २ ॥
अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तमकतुं प्रश्नित्तं
वीत्रशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीश्रम् ॥ ३ ॥ सन्न प्राणाः प्रभवन्ति
तस्मात्समार्चिपः समिधः सन्न जिह्नाः । सन्न इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सन्न सन्न ॥ ४ ॥ अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे अस्मात्स्यन्दन्ते
सिन्धवः सर्वेख्याः । अतश्च विश्वा ओपध्यो रसश्च येनैव स्रूतेस्तिष्ठते द्यन्तरास्मा ॥ ५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषद्यष्टमः खण्डः ॥ ८॥

ष्ट्रह्मा देवानां पद्वीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । इयेनी
गृधाणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्यति रेभन् ॥ १॥ अजामेकां लोहितः
ग्रुक्ककृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् । अजो ह्येकों जुषमाणोऽनुरोते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ २॥ हंसः ग्रुन्विषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिपद्तिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसद्दतसद्धोमसद्ब्जा गोजा ऋतजा अद्गिजा ऋतं
ग्रुहत् ॥ ३ ॥ यसान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविषेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संविदानस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोड्यी ॥ ४ ॥ विधतारं हवामहे वसोः कृषिद्वनाति नः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ५ ॥ अद्या नो
देव सवितः प्रजावत्सावीः साभगम् । परा दुःष्विमयं सुव ॥ ६ ॥ विश्वानि
देव सवितः र्जावत्सावीः साभगम् । परा दुःष्विमयं सुव ॥ ६ ॥ विश्वानि
देव सवितः र्रितानि परासुव । यद्मदं तन्न आसुव ॥ ७ ॥ मधु वाता ऋतायते

मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीनः सन्त्वोषधीः ॥ ८ ॥ मधुनक्तमुतोषसो मधुमःपार्थिवं रजः । मधु चारस्तु नः पिता ॥ ९ ॥ मधुमान्नो वनस्पित्मि-धुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ १० ॥ घृतं मिमिसे घृतमस्य योतिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम । अनुष्वधमावह माद्यस्य स्वाहाकृतं वृषम विक्ष हव्यम् ॥ ११ ॥ समुदादूर्मिमेधुमाँ उदारदुपांग्रुना सममृतत्वमानद । घृतस्य नाम गुद्धं यदस्ति जिह्ना देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १२ ॥ वयं नाम प्रवन्वामा घृतस्यास्मिन्यञ्चे धारयामा नमोभिः । उप ब्रह्मा ग्रुणवन्छस्यमानं चतुःशृंगोऽवमीद्गौर एतत् ॥ १३ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

च्रत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा हे शीर्षे सस हसासो अस्य। त्रिधा बहो वृष्यो रोरवीति महो देवो मर्ला अविवेश ॥ १ ॥ त्रिधा हितं पणिभिगुंद्ध-मानं गिव देवासो घृतमन्विवन्दन् । इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेगादेकं स्वध्या निष्टतक्षुः ॥ २ ॥ यो देवानां प्रथमं पुरस्तादिश्वािषको रुद्धो महर्षिः । हिरण्यगर्भ पद्यत जायमानं स नो देवः ग्रुभया स्मृत्या संयुनक्ति ॥ ३ ॥ यसात्परं नापरमस्ति किञ्चित्ससात्राणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् । वृक्ष इव सावधो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्ण पुरुषेण सर्वम् ॥ ४ ॥ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनेके अमृतत्वमानग्रः । परेण नाकं निहितं गुहायां विश्राजते यद्यतयो विश्वन्ति ॥ ५ ॥ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सच्यासयोगाद्यतयः ग्रुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ ॥ दहं विपाप्तं वरं वेदमभूतं यत्पुण्डरीकं पुरमध्यसंस्थम् । तत्रापि दहं गगनं विश्वोक्तस्यास्यत्व्यद्वन्तस्तुपासितब्यम् ॥ ७ ॥ यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिस्रीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥ ८ ॥ अजोऽन्यः सुविभा नाभिः सर्वमस्यव ॥ ९ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि दश्चमः खण्डः ॥ १० ॥

सहस्रद्वीर्षं देवं विश्वाख्यं विश्व त्रम्भवम् । विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ १ ॥ विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हिरम् । विश्वमेवेदं पुरुषस्त-द्विश्वपुपजीवति ॥ २ ॥ पतिं विश्वस्यासमेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् । नारायणं महार्श्वेयं विश्वात्मानं परायणम् ॥ ३ ॥ नारायणः परं ब्रह्मतत्त्वं नारायणः परः । नारायणः परो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥ ४ ॥ नारायणः परो ध्याता ध्यानं नारायणः परः । परादिष परश्वासु तस्माद्यस्तु परात्परः ॥ ५ ॥ यच्च किञ्चिज्ञगत्यस्मिन्द्द्वयते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः

स्थितः ॥ ६ ॥ अनन्तमव्ययं कविं समुद्रेतं विश्वराग्भुवम् । पद्मकोशप्रतीकाशं सुषिरं चाप्यधोमुखम् ॥ ७ ॥ अधोनिष्ट्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति । इद्यं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् ॥ ८ ॥ सततं तु शिराभिस्तु लग्वत्या-कोशसिन्नभम् । तस्यान्ते सुपिरं सूक्ष्मं तस्मिन्त्यवं प्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥ तस्य मध्ये महानप्निर्विश्वाचिविश्वतोमुखः । सोऽप्रभुग्विभजंस्तिष्टन्नाहारमक्षयः कविः ॥ ३० ॥ सन्तापयति स्वं देहमापादतलमस्तकम् । तस्य मध्ये विह्विश्वा भणीयोध्वां व्यवस्थिता ॥ १९ ॥ नीलतोयदमध्यस्या विद्युक्तेखेव भासुरा । नीवारश्क्वतन्वी पीताभा स्यात्तन्पमा ॥ १२ ॥ तस्याः शिखाया मध्ये परमातमा व्यवस्थितः । स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराद् ॥ १३ ॥ अथातो योग जिह्ना मे मधुवादिनी । अहमेव कालो नाहं कालस्य ॥ १४ ॥ नारायणः स्थितो व्यवस्थितश्चवारि च ॥ १५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णिपालस् । अध्वरेतं विरूपक्षं विश्वरूपाय वे नमः ॥ १ ॥ आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपित । तत्र ता ऋचल्रह्मां मण्डलं स ऋचां लोकोऽथ य एष एतिस्मन्मण्डलं अर्चिषि पुरुषलानि यजूषि स यजुपां मण्डलं स यजुपां लोकोऽथ य एष एतिस्मन्मण्डलं अर्चिदींप्यते तानि सामानि स साम्नां मण्डलं स साम्नां लोकः सेषा त्रय्येव विद्या तपित य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः ॥ २ ॥ आदित्यो वे तेज आजो बलं यशश्रक्षः शोत्रमात्मा मनो मन्युर्भनुर्मृत्युः सत्यो मित्रो वायुराकाशः । प्राणो लोकपालकः । किं तत्मत्यमत्रमायुरमृतो जीवो विश्वः । कतमः स्वयम्भूः प्रजापितः संवत्सर इति । संवत्सरोऽसावादित्यो य एष पुरुष एष भूतानामधिपितः । ब्रह्माः सायुज्यं सलोकतामामोत्येतासामेव देवतानां सायुज्यं सार्धितां समान-लोकतामामोति य एवं वेदेत्युपनिपत् ॥ ३ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

घृणिः सूर्य आदित्य ओम् ॥ अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति तद्रह्म तद्राप आपी ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ॥ १ ॥ सर्वो वे रुद्रस्तस्मे रुद्राय नमो अस्तु । पुरुषो वे रुद्रस्तन्महो नमो नमः । विश्वं भूतं भव्यं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् । सर्वो होष रुद्रस्तस्मे रुद्राय नमो अस्तु ॥ २ ॥ रुद्रद्राय प्रचेतसे मीह्ळुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ॥ सर्वो होष रुद्रस्तस्मे रुद्राय नमो अस्तु ॥ ३ ॥ नमो हिरण्यवाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्य-रूपाय हिरण्यपत्ये । अभ्विकापतये उमापतये नमो नमः ॥ ४ ॥ यस्य वैकंकत्यिश्वहोत्रहवणी भवति प्रतिष्ठिताः प्रत्येवास्य हुनयस्तिष्ठन्त्यथो प्रतिष्ठित्य ॥ ५ ॥ कृणुष्व पाज इति पञ्च ॥ ६ ॥ अदितिर्देवा गन्धर्वा मनुष्याः पितरोऽ- सुरास्तेषां सर्वभूतानां माता मेदिनी पृथिवी महती मही सावित्री गायत्री जगत्युर्वी पृथ्वी बहुला विश्वा भूता । कतमा का था सा सत्येत्यमृतेति वसिष्ठः ॥ ७ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणो वा आपः पराव आपो अञ्चन्यापोऽस्तमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापरछन्दांस्यापो ज्योतींच्यापो यक्ष्यापः सत्यापाः सर्वा देवता क्षापो भूर्भुवःसुनराप क्षोम् ॥ १ ॥ आपः युनन्तु पृथिवीं पृथिवी पृता युनातु माम् । युनन्तु ब्रह्मणस्पतिब्रह्मपूता युनातु माम् । यदुन्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं युनन्तु मामापो असतां च प्रतिग्रहं स्वाहा ॥ २ ॥ अप्तिश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यदहा पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पत्यामुदरेण शिक्षा आहस्तदवलुम्पतु यत्विञ्च दुरितं मयि । इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ ३ ॥ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्वात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पत्यामुदरेण शिक्षा रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्विञ्च दुरितं मयि । इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ ४ ॥ अहर्नो अत्यपीपरदात्रिनों अतिपारयदात्रिनों अत्यपीपरदहर्नों अतिपारयदात्रिनों अत्यपीपरदहर्नों अतिपारयदा ॥ ५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितम् । गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व नः ॥ ओजोऽसि सहोऽसि वलमसि भ्राजोऽसि देवानां धाम नामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरिभमूरोम् ॥ गायत्रीमावाहयामि सावित्रीमावाहयामि सरस्वतीमावाहयामि ॥ १ ॥ ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं नहः । ओं जनः । ओं तपः। ओं सत्यं। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भगों देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । ओमापोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः सुवर्महर्जनस्वपः सत्यं मधु क्षरन्ति । तह्म । तद्म आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म । तद्म आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म । तद्म आपोज्योतीरसोऽम्हतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् ॥ ३ ॥ ओं तह्म । अों तद्म । ओं तद्म । अों तत्प वेच भूम्यां पर्वतम् । अों तद्म । अों तत्प वेच । अवेच वेच यथासु अम्

॥ ५ ॥ ॐ अन्तश्चरिस भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं विष्णुस्त्वं वषदकारस्त्वं रुद्रस्त्वं ब्रह्मा त्वं प्रजापितः ॥ ६ ॥ अमृतोपत्तरणमसि ॥ ७ ॥ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि प्राणाय स्वाहा । अपाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि अपानाय स्वाहा । व्याने निविष्टोऽमृतं जुहोमि व्यानाय स्वाहा । उदाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि उदानाय स्वाहा । समाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि समान्वाय स्वाहा ॥ ८ ॥ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । प्राणाय स्वाहा ॥ अपाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । अपानाय स्वाहा ॥ व्याने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । व्यानाय स्वाहा ॥ उदाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । उदानाय स्वाहा ॥ समाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवोमाविशाप्रदाहाय । समानाय स्वाहा ॥ ९ ॥ अमृतापिधानमसि । ब्रह्मणि स आत्मामृतत्वाय ॥ १० ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि पंचदशः खण्डः ॥ १५ ॥

श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृतं हुतम् । प्राणमन्नेनाप्यायस्व ॥ अपाने निविश्यामृतं हुतम् । अपानमन्नेनाप्यायस्व ॥ व्याने निविश्यामृतं हुतम् । व्यानमन्नेनाप्यायस्व ॥ व्याने निविश्यामृतं हुतम् । व्यानमन्नेनाप्यायस्व ॥ उदाने निविश्यामृतं हुतम् । उदानमन्नेनाप्यायस्व ॥ समाने निविश्यामृतं हुतम् । समानमन्नेनाप्यायस्व ॥ ब्रह्मणि स आत्मामृत-त्वाय ॥ १ ॥ प्राणानां प्रन्थिरित स्द्रोमाविशान्तकस्तेनान्नेनाप्यायस्य ॥ २ ॥ अंगुष्ठमात्रः पुरुषो अंगुष्ठं च समाश्रितः । ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणिति विश्वभुक् ॥ ३ ॥ मेधा देवी जुवमाणा न आगाद्विश्वाची भद्रा सुमनस्यमाना । त्वया जुष्टा जुपमाणा दुरुक्तान् बृहद्वदेम विद्ये सुवीराः ॥ त्वया जुष्ट ऋषिभवतु देवी त्वया ब्रह्मा गतश्रीहत त्वया । त्वया जुष्टश्चित्रं विन्दते वसु सा नो जुपस्व द्विणेन मेधे ॥ ४ ॥ मेधां मे इन्द्रो ददातु मेधां देवी सरस्वती । मेधां मे अश्वनावुभावाधत्तां पुष्करस्वजो ॥ ५ ॥ अप्सरासु च या मेथा गन्धन्वेषु च यन्मनः । देवी मेधा मनुष्यजा सा मां मेधा सुरिभर्जुपताम् ॥ ६ ॥ आ मां मेधा सुरिभर्विश्वस्पा हिरण्यवर्णा जगती जगम्या । कर्जस्वती पयसा पिन्वमाना सा मां मेधा सुप्रतीका जुपताम् ॥ ७ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । अवे अवे नातिभवे अजस्व मां अवोद्भवाय नमः ॥ १ ॥ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रद्भाय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतद्मनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ २ ॥ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो

घोर घोरतरेभ्यः । सर्वतः सर्व सर्वभयो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ३ ॥ तरपु-रुपाय विदाहे सहादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ४॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्बह्मणोऽधिपतिर्बह्मा शिवो से अस्तु सदाधिवीस् ॥५॥ बहा मेतु माम् । मधु मेतु माम् । बहा मेऽव मधु मेतु मास् । यस्ते स्रोम प्रजाबन्सोऽभि स्रो अहम् । दुःस्वप्रहन्दुरुव्वहा । यांस्ते स्रोम प्राणां-स्ताञ्जहोसि ॥ त्रिसुपर्णमयाचितं ब्राह्मणाय दद्यात् । ब्रह्महत्यां वा एते ब्रन्ति थे ब्राह्मणास्त्रिसुपर्णं पठिनत ते सोमं प्राप्तुवन्त्यासहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति ॥ ॐ ॥ ६ ॥ ब्रह्मसेध्या मध्रमध्या ब्रह्म मेऽव मध्रमध्या ॥ अद्या नो देव सवितः प्रजाव-रसावीः सौधर्ग । परा दुःष्विभयं सुव ॥ विश्वाति देव सवितर्दृरितानि परा-स्व । यहाई तज्ञ आस्त्र ॥ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोपधीः ॥ मधु नक्तमुतोपसो मधुमलार्थिवं रजः । मधु द्योरस्तु नः पिता ॥ सधुसान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ य इसं त्रिसुपर्णभयाचितं बाह्मणाय द्यात्। अणहत्यां वा एते ब्रन्ति ये बाह्य-णास्त्रिसुपर्णं पठन्ति ते सोसं प्राप्नुवन्त्यासहस्रात्येक्ति पुनन्ति ॥ ॐ ॥ ७ ॥ ॐ ब्रह्ममेधवा सध्मेधवा ब्रह्म सेऽव सध्मेधवा॥ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीना-मृषिवित्राणां सहिषो सृगाणास्। इयेनो गृश्राणां खिषितिवेनानां सोमः पवित्र-सत्येति रेभन् ॥ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्दोता वेदिपदतिथिर्दुरोणसत् । नपदृरसहतसद्योससद्द्या गोजा ऋतजा अद्गिजा ऋतं वृहत् ॥ य इमं त्रिसु-पर्णसयाचितं ब्राह्मणाय द्यात् । वीरहत्यां वा एते व्रन्ति ये ब्राह्मणास्त्रिसुपण पठिनत ते सोमं प्राप्नुवन्सासहस्रात्यंकि पुनन्ति ॥ ॐ॥ ८॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि सप्तद्शः खण्डः ॥ १७ ॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । सनुष्यकृतस्येनसोऽवयजनमसि स्वाहा । पितृकृतस्येनसोऽवयजनमि स्वाहा । अत्यकृतस्येनसोऽवयजनमि स्वाहा । अत्यकृतस्येनसोऽवयजनमि स्वाहा । यदिवा च नक्तं चैनश्रकृम तस्यावयजनमि स्वाहा । यदिवा च नक्तं चैनश्रकृम तस्यावयजनमि स्वाहा । यद्विद्यांसश्चावद्वांसश्चेनश्चकृम तस्यावयजनमि स्वाहा । यद्वाहासश्चावद्वांसश्चेनश्चकृम तस्यावयजनमि स्वाहा । यत्सुपुप्तश्च जाञ्चतः श्चेनश्चकृम तस्यावयजनमि स्वाहा । यत्सुपुप्तश्च जाञ्चतः श्चेनश्चकृम तस्यावयजनमि स्वाहा । यत्सुपुप्तश्च जाञ्चतः श्चेनश्चकृम तस्यावयजनमि स्वाहा । प्रतस्य प्रनादेवयजनमि स्वाहा ॥ १ ॥ कामोऽकार्पांचाहं करोमि कामः करोति कामः कर्ता कामः कारियता । प्रतस्य काम कामाय स्वाहा ॥ २ ॥ मन्युरकार्पांचाहं करोमि मन्युः दरोति मन्युः कर्ता मन्युः करोति स्वाहा ॥ ३ ॥

स. उ. ११

तिलाः कृष्णास्तिलाः श्वेतास्तिलाः सौम्या वशानुगाः । तिलाः पुनन्तु मे पापं यक्ति खिहुरितं मयि स्वाहा। यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कु. तम् । दुःस्वमं दुर्जनस्पर्शं तिलाः शानितं कुर्वन्तु स्वाहा । चौरस्यान्नं नवश्राद्धं इसहा गुरुतल्पगः । गोस्तेयं सुरापानं श्रूणहत्यां तिलाः शमयन्तु स्वाहा। गणानं गणिकानं कुष्टानं पतितानं अक्ता वृष्टीभोजनस् । अदा प्रजा च मेघा च तिलाः शान्ति कुर्वन्तु स्वाहा । श्रीश्र पुष्टिश्चानुण्यं ब्रह्मण्यं बहुपुत्रि-णम् । श्रद्धा प्रजा च मेधा च तिलाः शानित कुर्वन्तु खाहा ॥ १ ॥ अप्रये स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ध्रुवाय भूमाय स्वाहा । ध्रुवक्षितये स्वा-हा । धूमाय स्वाहा । अच्युतक्षितये स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । धर्माय स्वाहा । अधर्माय स्वाहा । अन्यः स्वाहा । ओपधिवनस्पतिस्यः स्वाहा । रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा । गृह्याभ्यः स्वाहा । अवसानेभ्यः स्वाहा । अव. सानपतिभ्यः स्वाहा । सर्वभूतेभ्यः स्वाहा । कामाय स्वाहा । अन्तरिक्षाय स्वाहा। यदेजति जगति यच चेष्टति नान्यो भागो यतानमे स्वाहा। पृथिव्ये स्त्राहा । अन्तरिक्षाय स्त्राहा । दिवे स्वाहा । सूर्याय स्त्राहा । चनद्रमसे स्वाहा । नक्षत्रेभ्यः स्वाहा । इन्द्राय स्वाहा । वृहस्पत्तये स्वाहा । प्रजापत्तये स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा । स्वधा पितृभ्यः। नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा। देवेभ्यः स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा अस्तु । भूतेभ्यो नमः । मनुष्येभ्यो हन्ता । परमेष्टिने स्वाहा ॥ २ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषयेकोनविंदाः खण्डः ॥ १९ ॥

ये भूताः प्रचरिन दिवानक्तं बिलिमिच्छन्तो वितुद्स्य प्रेष्ठाः । तेभ्यो बिलि पुष्टिकामो हरामि मिर्च पुष्टिं पुष्टिपतिर्द्धातु स्वाहा ॥ १ ॥ सजीषा इन्द्र स-गणो मरुद्धिः सोमं पिव वृत्रहरूष्ट्वर विद्वान् । जिह शत्र्रंपमृधो जुद्स्वाथाभ-यं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं ग्रूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शकं पुरुहृतमिन्द्रं स्वस्ति नो मध्या धाव्यिन्द्रः ॥ ३ ॥ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मध्यव्य्छिपि तव तक्त जितिभिर्वि-द्विपो विमृधो जिह ॥ ४ ॥ स्वस्तिदा विशामपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषे-न्द्रः पुर पतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ ५ ॥ जर्ध्व ज पु ण जतये तिष्ठा देवो न सनिता । जर्ध्वो वाजस्य सनिता यदिक्षभिर्वागद्विद्धयामहे ॥ ६ ॥ तर-णिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृद्सि सूर्यं । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ७ ॥ उपयाम गृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजस्वत एप ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजस्वते ॥ ८ ॥ विष्णुमुखा वे देवाइछन्दोभिरिमाँ होकाननपज्ययमभ्यजयन् ॥ ९ ॥ श्री मे अजत । अलक्ष्मी में रश्यत ॥ १० ॥ महाँ इन्द्रो वज्रवाहुः षोढशी शर्म यच्छतु । बिस्त नो मघवा करोतु हन्तु पाप्मानं थोऽस्मान्द्रेष्टि ॥ ११ ॥ शरीरं यज्ञः शमलं कुसीदं तिस्मन्सीदतु योऽस्मान्द्रेष्टि ॥ १२ ॥ वहणस्य स्कम्भनमिस वहणस्य स्कम्भसर्जनमिस । उन्मुक्तो वहणस्य पाशः ॥ १३ ॥ श्रीणि पदा विच्क्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । इतो धर्माणे धारयन् ॥ १४ ॥ प्राणापानव्यान्तेदानसमाना से शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विषाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ १५ ॥ वाज्यनश्रशुःश्रोत्रजिद्वाघाणरेतोबुद्धाकृतिसंकल्पा मे० ॥ १६ ॥ श्रिरःपाणिपादपार्श्वपृष्टोदरजंघाशिश्रोपस्थपायवो मे० ॥ १० ॥ स्वक्रमर्भमांस-क्षिरस्वायुमेदोस्थिमज्ञा मे० ॥ १८ ॥ श्राःदस्पर्शरसरूपगन्धा मे० ॥ १९ ॥ पृथिव्यक्षेजोवायवाकाशा मे० ॥ १८ ॥ श्राःदस्पर्शरसरूपगन्धा मे० ॥ १९ ॥ पृथिव्यक्षेजोवायवाकाशा मे० ॥ १० ॥ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दम्या मे० ॥ २१ ॥ विचिटि स्वाहा ॥ २२ ॥ खलोक्काय स्वाहा ॥ २३ ॥ उत्तिष्ठ पुरुवाहरितिपंगल लोहिताक्ष देहि देहि ददापयिता मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विषाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ २५ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि विंशः खण्डः ॥ २० ॥

ॐ स्वाहा॥ १॥ सत्यं परं परं सत्यं सत्येन न सुवर्गाक्षीकाच्यवन्ते कदा-चन सतां हि सत्यं तस्मात्सत्ये रमन्ते॥ तप इति तपो नानशनात्परं यद्धि परं तपस्तद्वधं पं तद्दुराधर्षं तस्मात्तपिस रमन्ते॥ दम इति नियतं ब्रह्मचारिण-स्तस्माद्दमे रमन्ते॥ शम इत्यरण्ये सुनयस्तस्माच्छमे रमन्ते॥ दानमिति सर्वाणि भूतानि प्रशंसन्ति दानान्नातिदुष्करं तस्माद्दाने रमन्ते॥ धर्म इति धर्मेण सर्वमिदं परिगृहीतं धर्मान्नातिदुश्वरं तस्माद्धमें रमन्ते॥ प्रजननमिति भूयांसस्तस्माद्ध्वयुष्टाः प्रजायन्ते तस्माद्ध्वयुष्टाः। प्रजनने रमन्ते॥ अग्नेय इत्याहुस्तस्माद्ग्नय आधातव्याः॥ अग्निहोत्रमित्याहुस्तस्माद्ग्नहोत्रे रमन्ते॥ यज्ञ इति यज्ञो हि देवानां यज्ञेन हि देवा दिवं गतास्तस्माद्यद्वे रमन्ते॥ मानसमिति विद्वांसस्तस्माद्विद्वांस एव मानसे रमन्ते॥ न्यास इति ब्रह्मा ब्रह्मा हि परः परो हि ब्रह्मा तानि वा एतान्यवराणि तपांसि न्यास प्रवात्यरेचयत्। य एवं वेदेत्युपनिषत्॥ २॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि एकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

प्राजापत्यो हारुणिः सौपर्णेयः प्रजापत्तिं पितरसुपससार किं भएवन्तः परमं वदन्तीति । तसौ प्रोवाच सत्येन वायुरावाति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्यं वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तसात्सत्यं परमं वदन्ति । तपसा देवा देवतामग्र आयंसापसऋषयः सुवरन्विन्दंस्तपसा सपतान्मणुदामारातीस्तपिस सर्व प्रतिष्ठितं तस्मान्तपः परमं वदन्ति । दमेन दान्ताः किव्विषमवधून्वन्ति दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन्दमो भूतानां दुराधर्षं दमे सर्व प्रतिष्ठितं तस्मान्द्रमः परमं वदन्ति । शमेन शान्ताः शिवमाचरन्ति शमेन नाकं सुनयोऽन्विविन्द्रमः परमं वदन्ति । शमेन शान्ताः शिवमाचरन्ति शमेन नाकं सुनयोऽन्विविन्द्रमः परमं वदन्ति । दानं यज्ञानां वरूथं दक्षिणा लोके दातारं सर्वभूतान्युपजीवन्ति दानेनारातीर-पानुदन्त दानेन द्विपन्तो मित्रा भवन्ति दाने सर्व प्रतिष्ठितं तस्माद्यानं परमं वदन्ति । धमों विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमपजुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यमं परमं वदन्ति । प्रजननं वे प्रतिष्ठा लोके साधुप्रजावांस्तन्तुं तन्वानः पितृणामनृणो भवति तदेच तस्मानृणं तस्मान्यान्यान्त्रम् परमं वदन्ति । अग्रवनं वे प्रतिष्ठा रथन्तरमन्वाहार्यपचनो यज्ञरन्तरिकं वामदेव्यमहन्ति। साम सुवर्गो लोको बृहत्तस्मादग्नीन् परमं वदन्ति । अग्निहोत्रं सायस्प्रातर्गृहाणां निष्कृतिः स्वष्टं सुहुतं यज्ञकत्नां प्रायणं सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिस्तस्मादग्निः होत्रं परमं वदन्ति ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

यक्त इति यज्ञो हि देवानां यज्ञेन हि देवा दिवं गता यज्ञेनासुरानपानुदन्त
यज्ञेन हि द्विषन्तो मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यक्तं परमं वदन्ति ।
मानसं वै प्राजापसं पवित्रं मानसेन मनसा साधु पश्यित मानसा ऋषयः प्रजा
अस्जन्त मानसे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मान्मानसं परमं वदन्ति । न्यास इत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणम् । ब्रह्मा विश्वः कतमः । स्वयम्भः प्रजापितः संवस्सर इति ।
संवस्सरोऽसावादिस्यो य एष आदित्ये पुरुषः स एव परमेष्टी ब्रह्मात्मा । याभिरादित्यसपित रिश्मिभसाभिः पर्जन्यो वर्षति पर्जन्येनौषधिवनस्पतयः
प्रजायन्त ओषधिवनस्पतिभिरत्रं भवत्यन्नेन प्राणाः प्राणेर्वस्ं वर्षेन तपस्तपसा
श्रद्धा अद्या सेधा सेधया मनीषा मनीषया मनो मनसा शान्तिः शान्त्या
चित्तं न्वित्तेन स्मृतिः स्मृत्या स्मारं स्मारेण विज्ञानं विज्ञानेनात्मानं वेदयित ।
तस्माद्वं ददन्त्सर्वाण्येतानि ददात्यन्नात्माणा भवन्ति भूतानां प्राणेर्मनो
मनसक्ष विज्ञानं विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः । स वा एष पुरुषः पञ्चधा
पञ्चात्मा थैन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तिरक्षं च द्याश्च दिशश्चावान्तरिदृशाश्च
सर्वैः सर्वमिदं कात् ॥ १ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

स भूतं स च भव्यं जिज्ञासासिकपूरितं जारियष्टाः । श्रद्धासस्त्रो महस्तां-स्तपसोपिरिष्टाज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च भूयो न मृत्युमुपयाहि विद्वान् । तस्याच्यासभेषां तपसामतिरिक्तमाहुः ॥ १ ॥ वसुरण्यो विभूरित प्राणे त्वम-सि सन्धाता ब्रह्मन् त्वमासे विश्वसृक् तेजोदास्त्वमस्यग्नेषंचाँदास्त्वमिस सूर्यं-स्य सुज्ञोदास्त्वमिस चन्द्रमसः । उपयाम गृहीतोऽसि । ब्रह्मणे त्वा महस जोशित्यात्मानं युक्षीत । एतद्वे महोपनिषदं देवानां गुद्धम् । य एवं वेद ब्रह्मणो सहिमानमामोति तस्माइह्मणो महिमानियत्युपनिषत् ॥ २ ॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि चतुर्विशः खण्डः ॥ २४ ॥

तस्यैवंविदुपो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्म उरो वेदिलीमानि वहिंवेदः शिखा हृद्यं यूपः काम आज्यं मन्युः पशुक्तपोऽप्तिदंमः शमिता दृक्षणा वाग्वोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रमप्तीत् । यावद्भियते सा दीक्षा यद्भाति तद्धवियंत्पिवति तदस्य सोमपानं यदमते तदुपसदो यत्सञ्चरस्युपविशास्युत्तिष्ठते च स प्रवग्यों यन्मुखं तदाहवनीयो याचाहुती- राहुती यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति यत्सायम्प्रातरत्ति तत्समिधो यत्सायम्प्रातर्मध्यन्दिनं च तानि सवनानि । ये अहोरात्रे ते दर्शपूर्णमासौ ये अर्धमासाश्च मासाश्च ते चातुर्मास्यानि य ऋतवत्ते पश्चवन्धा ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च तेऽहर्गणाः सर्ववेदसं वा एतत्सत्रं यन्मरणं तदवन्ध्यः । एतद्वे जरामर्यमिन्नहोत्रं सत्रं य एवं विद्वानुद्दगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वादित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितृणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं गच्छति । एतो वे सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानो ब्राह्मणो विद्वानिभजयति तसाद्राह्मणो महिमानमामोतीत्युपनिषत्॥ १॥

इति श्रीमहानारायणोपनिषदि पत्रविंशः खण्डः ॥ २५ ॥ इत्याथर्वणीया महानारायणोपनिषत्समासा ।

> परमहंसोपनिषत् ॥ २० ॥ परमहंसोपनिषद्वेद्यापारसुखाकृति । त्रंपादश्रीरामतस्वं स्वमात्रमिति चिन्तये ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हरि: ॐ ॥ अथ योगिनां परमहंसानां कोऽयं मार्गस्तेषां का स्थितिरिति नारदो भगवन्तसुपगत्योवाच । तं भगवानाह । योऽयं परमहंसमार्गो लोके दुर्कभतरो न तु बाहुल्यो यद्येको भवति स एव नित्यपूतस्थः स एव वेद-पुरुष इति विदुषो मन्यन्ते महापुरुषो यज्ञित्तं तत्सर्वदा मय्येवावतिष्ठते तसा-दहं च तस्मिन्नेवावस्थीयते । असौ खपुत्रसित्रकलत्रवन्ध्वादीव्जिखायज्ञोपवीते स्वाध्यायं च सर्वकर्माणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च हित्वा कोपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वारीरोपभोगार्थाय च लोकस्योपकारार्थाय च परिश्रहेत्। तस न मुख्योऽस्ति कोऽयं सुख्य इति चेदयं सुख्यः । न दृण्डं न शिखां न यज्ञोपवीतं न चाच्छाद्नं चरति परमहंसो न शीतं न चोध्णं न सुखं न दुःखं न मानावमाने च षद्धर्मिवर्ज निन्दागर्वमत्सरद्रभद्षेच्छाद्वेषसुखदुःख-कामक्रोधलोभमोहहपासूयाहंकारादीं श्र हित्वा स्तवपुः कुणपासेव दश्यते यतसाद्वपुरपध्वस्तं संशयविपरीतिसिध्याञ्चनानां यो हेतुस्तेन नित्यनिवृत्तस्त-न्नित्यबोधसात्स्ययमेवावस्थितिस्तं शान्तमचलमद्वयानन्द्विज्ञानयन एवासि । तदेव मम परमधाम तदेव शिखा च तदेवीपवीतं च । परमात्मात्मनोरेकत्व-जानेन तयोभेंद एव विभग्नः सा संध्या ॥ सर्वान्कामान्परित्यज्य भद्वेते परम-स्थिति:। ज्ञानदण्डो धतो येन एकदण्डी स उच्यते ॥ काष्टदण्डो धतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः। (तितिक्षाज्ञानवैराग्यशमादिगुणवर्जितः । भिक्षा-मात्रेण यो जीवेत्स पापी यतिवृत्तिहा।) स याति नरकान्योरान्महारौरव-संज्ञकान् । इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंस आशास्वरो ननमस्कारो नस्वधाः कारो न निन्दा न स्तुतिर्याद्दच्छिको भवेद्धिश्चः। नावाहनं न विसर्जनं न मन्नं न ध्यानं नोपासनं च न लक्ष्यं नालक्ष्यं न पृथक्ष्नापृथगहं न न त्वं न सर्वं चानिकेतस्थितिरेव भिक्षुः सीवर्णादीनां नैव परिग्रहेन्न लोकं नाव-लोकं च चावाधकः क इति चेद्वाधकोऽस्त्येव यसादिश्चिहिरण्यं रसेन इष्टं च स ब्रह्महा भवेद्यसादिक्षहिरण्यं रसेन स्पृष्टं चेत्स पौल्कसो भवेद्यसा-द्धिक्षिहिरण्यं रसेन प्राद्धं च स आत्महा भवेत्तस्माद्धिक्षहिरण्यं रसेन न दृष्टं च स्पृष्टं च न ब्राह्मं च। सर्वे कामा मनोगता व्यावर्तन्ते दुःखे नोद्विद्यः सुखे न स्प्रहा त्यागो रागे सर्वत्र शुभाशुभयोरनिभक्तेहो न द्वेष्टि न मोदं च। सर्वेषामिन्द्रियाणां गतिरुपरमते य आत्मन्येवावस्थीयते । यत्पूर्णानन्देकवोधन साइह्मैवाहमस्मीति कृतकृत्यो भवति कृतकृत्यो भवति॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥ इति परमहंसोपनिषत्समाप्ता॥

ब्रह्मोपनिषत् ॥ २१ ॥

ब्रह्मकैवल्यजाबालः श्वेताश्वी हंस आरुणि:। गर्भी नारायणी हंसी विन्दुनादिहारः शिला॥ १॥ ॐ स ह नावविविति ब्रान्तिः॥

थँ शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं भगवन्तं पिप्पलादमपृच्छत् । हिन्दे ब्रह्मपुरे संप्रतिष्ठिता भवन्ति, कथं सृजन्ति, कस्यैप महिमा वसूव यो होप महिमा वभूव क एपः । तसे स होवाच ब्रह्मविद्यां वरिष्ठाम् । प्राणो होष आत्या, आत्यनी महिमा वभूव। देवानामायुः, स देवानां निधनमनिधनं दिखे बहापुरे विर्ज निष्कलं शुभ्रमक्षरं यहस्य विभाति स नियच्छति, मधुकरराजानं माक्षिकवत । यथा माक्षीकैकेन तन्तुना जालं विक्षिपति तेनापकर्षति तथैवैष प्राणी यदा याति संसृष्टमाकृष्य । प्राणदेवतास्ताः सर्वा नाड्यः सुष्वपे इयेना-काशवद्यथा खं इयेनमाश्रित्य याति स्वभालयमेवं सुषुप्तो बूते । यथेवैष देव-दत्ती यष्ट्यापि ताड्यमानी न यत्येवमिष्टाप्तैं: ग्रभाग्रभैर्न लिप्यते । यथा कुमारो निष्काम आनन्द्रसुपयाति तथैवैष देवदत्तः स्वम आनन्द्रमभियाति । वेड एव परं ज्योतिः । ज्योतिष्कामो ज्योतिरानन्दयते, भूयस्तेनैव स्वमाय गरस्ति जलीकावत । यथा जलीकाऽप्रमग्नं नयलात्मानं नयति परं संघय । यत्परं नापरं त्यजति स जाप्रदिभधीयते । यथैवैष कपालाष्टकं संनयति. तमेव स्तन इव लम्बते वेद्देवयोतिः । यत्र जाप्रति ग्रुभाग्रभं निरुक्तमस्य देवस्य स संप्रसारोऽन्तर्यामी खगः कर्कटकः पुष्करः पुरुषः प्राणो हिंसा परा-परं ब्रह्म, आत्मा देवता वेदयति । य एवं वेद स परं ब्रह्म धाम क्षेत्रज्ञ मुपैति । अथास्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि भवन्ति । नाभिर्हृदयं कण्ठं मुर्धेति । तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति । जागरितं स्वमं सुपुप्तं तुरीयमिति । जागरिते बह्या स्वमे विष्णुः सुप्रमी रुद्धस्त्रीयं परमाक्षरम् । स आदित्यश्च विष्णुश्चेश्वरश्च स पुरुषः स प्राणः स जीवः सोऽग्निः सेश्वरश्च जाम्रतेषां मध्ये यत्परं ब्रह्म विभाति । स्वयसमनस्कमश्रोत्रमपाणिपादं ज्योतिर्वर्जितम् । न तत्र लोका नलोका वेदा नवेदा देवा नदेवा यज्ञा नयज्ञा माता नमाता पिता नपिता सुषा नस्त्रवा चाण्डालो नचाण्डालः पौल्कसो नपौल्कसः श्रमणो नश्रमणः पशवी नपशवस्तापसी नतापस इत्येकमेव परं ब्रह्म विभाति । हृद्याकाही तिहज्ञानमाकाशं तत्सुषिरमाकाशं तहेयं हयाकाशं यिसिन्निदं संचरित विच-रति यसिन्निदं सर्वसोतं प्रोतं सं विभोः प्रजा ज्ञायेरन् । न तत्र देवा ऋष्यः पितर ईशते प्रतिबुद्धः सर्वविदिति । हदिस्था देवताः सर्वा हदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः । हृदि प्राणश्च ज्योतिश्च त्रिवृत्स्त्रं च यन्महत् । हृदि चेतन्थे तिष्ठति । यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यस्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमद्यं प्रतिसुझ गुभ्रं यज्ञोपनीतं बलमस्तु तेजः । सशिखं वपनं कृत्वा बहिःस्त्रं त्यजेहुधः। यद्शरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत्। सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् । तत्सूत्रं विदितं येन स वित्रो वेदपारगः । येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । तःसूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तस्वदार्शेवान् । वहिःसूत्रं स्रजेहिद्वान्योगमुत्तममास्थितः। ब्रह्मभावमयं सूत्रं धारयेघः स चेतनः। धारणात्तस्य सूत्रस्य नोच्छिष्टो नाग्रुचिभवेत् ॥ सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञो-पवीतिनाम् । ते वे सूत्रविदो लोके ते च यज्ञोपवीतिनः ॥ ज्ञानशिखिनो ज्ञानिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः । ज्ञानमेव परं तेवां पवित्रं ज्ञानमुच्यते॥ अग्नेरिव शिखा नान्या यस ज्ञानमयी शिखा। स शिखीत्युच्यते विद्वानितरे केशधारिणः ॥ कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणाद्यः । तैः संधार्यमिदं सुत्र कियाङ्गं तिद्ध वे स्पृतम् ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तनमयम्। ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुः ॥ इदं यज्ञोपवीतं तु पवित्रं यत्परा-बणम्। स विद्वान्यज्ञोपवीती स्यात्स यज्ञः स च यज्ञवित्॥ एको देवः सर्व-भूतेषु गृदः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कमीध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ एको मनीपी निष्कियाणां बहूनामेकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्यं येऽनुपश्यन्ति घीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेपाम् ॥ आत्मानमरणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येति-गूढवत् ॥ तिलेषु तैलं द्धनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः । एव-मात्मात्मिन गृद्धतेऽसौ सत्येनेनं तपसा योऽनुपरयति ॥ ऊर्णनाभिर्यथा तन्तु-न्सुजते संहरत्यपि। जाम्रत्स्वमे तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः ॥ पद्मकोश-प्रतीकाशं सुषिरं चाप्यधोसुखम् । हृद्यं तहिजानीयाहिश्वस्यायतनं महत्॥ नेत्रस्थं जाम्रतं विद्यात्कण्ठे स्वमं विनिर्दिशेत् । सुपुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्पि संस्थितम् ॥ यदात्मा प्रज्ञयात्मानं संघत्ते परमात्मनि । तेन संध्या ध्यानमेव तसात्संध्याभिवन्दनम् । निरोदका ध्यानसंध्या वाक्कायक्केशवर्जिता । संधिनी सर्वभूतानां सा संध्या द्येकदण्डिनाम् ॥ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दमेतजीवस्य यं ज्ञात्वा मुच्यते बुधः ॥ सर्वव्यापिनमा स्मानं क्षीरे सपिरिवापितम् । आत्मविद्यातपोमूळं तद्रह्योपनिषत्परम् । सर्वाः स्मैकस्वरूपेण तहसोपनिषत्परमिति ॥ सह नावविविति शान्तिः ॥

इति ब्रह्मोपनिषश्समाप्ता ॥

अमृतनादीपनिषत् ॥ २२ ॥

असृतनादोपनिषयतिपाद्यं पराक्षरम् । त्रैपदानन्दसाम्राज्यं हृदि मे भातु संततम् ॥

ॐ सह नाववित्विति शान्तिः ॥ शास्त्राण्यघीत्य सेधावी अभ्यस्य च पुनः युनः । परमं ब्रह्मविद्याया उल्कावन्नान्यथोत्स्जेत् ॥ १ ॥ ओंकारं स्थमारुद्धा विष्णुं कृत्वाथ सारथिम् । ब्रह्मछोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ॥ २ ॥ ताव-द्वयेन गन्तव्यं यावद्रथपथि स्थितः । स्थित्वा रथपथस्थानं रथमुःसुज्य गच्छति ॥ ३ ॥ मात्राछिङ्गपदं त्यक्त्वा शब्दव्यञ्जनवर्जितम् । अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं च गच्छति ॥ ४ ॥ शब्दादिविषयाः पञ्च मनश्चेवातिचञ्चलम् । चिन्त-थेदात्मनी रक्सीन्त्रत्याहारः स अच्यते ॥ ५ ॥ प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणा-बामीऽथ धारणा। तर्कश्चेव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥ ६॥ यथा पर्वतधातनां दहानते धमनानमलाः । तथेन्द्रियकृता दोषा दहानते प्राणितम् हात् ॥ ७ ॥ प्राणायामैर्दहे दोषान्धारणाभिश्च किल्बिपम् । (प्रत्याहारेण संस-र्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ।) ॥ ८ ॥ किल्विषं हि क्षयं नीत्वा रुचिरं चैव चिन्तयेत् ॥ ९ ॥ रुचिरे रेचकं चैव वायोराकर्पणं तथा । प्राणायामा-स्त्रयः प्रोक्ता रेचकपूरककुम्भकाः ॥ १० ॥ सन्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ११ ॥ उत्थिप्य वायु-माकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम् । शून्यभावेन युक्षीयाद्रेचकस्पेति लक्षणम् ॥ १२ ॥ नोच्छुसेन्नानुच्छुसेन्नेव गात्राणि च न चालयेत् । एवं वायुर्प्रहीत यः प्रकस्पेति लक्षणम् ॥ १३ ॥ वक्त्रेणोत्पलनालेन वायुं कत्वा निराश्रयम्। एवं वायुर्प्रहीतव्यः कुम्भकस्येति लक्षणम् ॥ १४ ॥ अन्ध् नत्परय रूपाणि सृणु शब्दमकर्णवत् । काष्ठवःपद्य ते देहं प्रशान्तस्थेति छक्षणम् ॥ १५॥ मनः संकल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान् । धारयित्वा तथात्मानं धारणा परिकीर्तिता ॥ १६ ॥ आगमस्याविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते । यं लब्धवाप्यव-मन्येत स समाधिः प्रकीर्तितः॥ १७ ॥ भूमिभागे समे रम्ये सर्वदोपवि-वर्जिते । कृत्वा मनोमयीं रक्षां जहवा चैवाथ मण्डले ॥ १८॥ पद्मकं स्वस्तिकं वापि भद्रासनमधापि वा । बद्धा योगासनं सम्यगुत्तराभिमुखस्थितः ॥ १९॥ नासिकापुटमङ्गुल्या पिधायैकेन मारुतम् । आकृष्य धारयेदसि शब्दमेवाभिचिन्तयेत्॥ २०॥ ओमिलेकाक्षरं ब्रह्म ओमिलेकेन रेचयेत्। दिव्यमन्नेण बहुशः कुर्यादात्ममलच्युतिम् ॥ २१ ॥ पश्चाद्यायेत पूर्वोक्तं क्रमशौ मन्न निर्दिशेत्। स्थूलातिस्थूलमात्रायां नातिमूर्ध्वमितिक्रमः ॥ २२ ॥ तिर्यगूर्ध्व-

मधो दृष्टिं विनिर्धार्यं महामतिः । स्थिरः स्थायी विनिष्कस्पं तदा योगं सम-भ्यसेत् ॥ २३ ॥ ताला मात्रा तथा योगी धारणा योजनं तथा । हादशसात्रो योगस्तु काळतो नियतः स्मृतः॥ २४ ॥ अघोषमव्यञ्जनमस्वरं च अकण्ड-ताल्वोष्टमनासिकं च। अरेफजातसुभयोष्टवर्जितं यद्श्वरं न क्षरते कदा-चित् ॥ २५ ॥ येनासौ पश्यते मार्गं प्राणस्तेन हि गच्छति । अतस्समभ्यसे-कित्यं सन्मार्गगमनाय वै ॥ २६ ॥ हद्वारं वायुद्वारं च अध्वेद्वारमतः परम् । मोक्षद्वारं विलं चैव सुपिरं मण्डलं विदुः ॥ २७ ॥ अयं कोधमथालसमित-स्वमातिजागरम् । अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत् ॥ २८ ॥ अनेन विधिना सम्यङ्गित्समभ्यसतः क्रमात्। स्वयमुत्पचते ज्ञानं त्रिभिर्मासेन संशयः ॥ २९॥ चतुर्भिः पश्यते देवान्पञ्चभिस्तुल्यविक्रमः । इच्छय।मोति कैवल्यं षष्टे मासि न संशयः ॥ ३० ॥ पार्थिवः पञ्चमात्राणि चतुर्मात्राणि वारुणः । साग्नेयस्तु त्रिमात्राणि वायव्यस्तु द्विमात्रकः ॥ ३१ ॥ एक्सात्रसाधाकाज्ञो ह्यर्थमात्रं तु चिन्तयेत् । सिद्धं कृत्वा तु मनसा चिन्तयेदात्मनात्माने ॥ ३२॥ मित्रात्पर्वाङ्गलः प्राणो यत्र प्राणः प्रतिष्ठितः । एव प्राण इति ख्यातो बाह्य-प्राणः स गोचरः ॥ ३३ ॥ अशीतिः द्ष शतं चैव सहस्राणि त्रयोदश । लक्ष-श्रेकोऽपि निःश्वास अहोरात्रप्रमाणतः ॥ ३४ ॥ प्राण आद्यो हृदि स्थाने अपा-नस्त पुनर्गुदे । समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः ॥ ३५ ॥ व्यानः सर्वेषु चाङ्गेषु सदा व्यावृत्य तिष्ठति । अथ वर्णास्तु पञ्चानां प्राणादीनामजु-कमात् ॥ ३६ ॥ रक्तवर्णमणिप्रख्यः प्राणी वायुः प्रकीर्तितः । अपानस्तस्य मध्ये तु इन्द्रगोपसमप्रभः ॥ ३७॥ समानस्तस्य मध्ये तु गोक्षीरधवलप्रभः। अपाण्डर उदानश्च व्यानो हार्चिःसमप्रभः ॥ ३८ ॥ यस्यैष मण्डलं भिरवा मास्तो याति मूर्धनि । यत्र तत्र म्रियेद्वापि न स सूयोऽभिजायते न स सूयोsिभजायत इत्युपनिषत् ॥ ३९ ॥ ॐ सह नाववित्विति शान्तिः ॥

इत्यमृतनादोपनिषत्समाप्ता ॥

अथर्वशिरउपनिषत् ॥ २३ ॥
अथर्वशिरसामर्थमनर्थशीतवाचकम् ।
सर्वाधारमनाधारं स्वमात्रत्रेपदाक्षरम् ॥
ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥
ॐ देवा ह वै स्वर्गं लोकमायँस्ते रुद्रमपृच्छन्को अवानिति । सोऽब्रवीद-

इमेकः प्रथममासीहर्वामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिनमत्तो व्यतिरिक्त इति । सोऽन्तरादन्तरं प्राविशत् दिशो व्यन्तरं प्राविशत सोऽहं निव्या-नित्यो व्यक्ताव्यक्तो ब्रह्माहं ब्रह्माहं प्राञ्चः प्रत्यक्रोऽहं दक्षिणाञ्च उदब्रोऽहं अध-श्लीध्व वाहं दिशश्च प्रतिदिशश्चाहं प्रमानप्रमान स्त्रियश्चाहं गायन्यहं सावित्र्यहं त्रिष्टव्यगत्यन्ष्य चाहं छन्दोऽहं गाईपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीयोऽहं सत्योऽहं गौरहं गौर्यहस्गहं यज्ञरहं सामाहमथवीङ्गिरसोऽहं ज्येष्ठोऽहं श्रेष्ठोऽहं विष्रो-Sहसापोऽहं तेजोऽहं गुह्योऽहमरण्योऽहमक्षरमहं क्षरमहं प्रकरमहं पवित्रम-हमग्रं च सध्यं च बहिश्च पुरसाज्योतिरिखहमेव सर्वे ब्योममेव स सर्वे समा यो मां वेद स देवान्वेद स सर्वाश्च वेदान्साङ्गानिप ब्रह्म ब्राह्मणेश्च गां गोभिर्दाह्म गान्त्राह्मण्येन हविहेविषा आयुरायुषा सत्येन सत्यं धर्मेण धर्म वर्षयामि स्वेन तेजसा। ततो ह वै ते देवा रुद्रमप्रच्छन् ते देवा रुद्रमप्रयन्। ते देवा रुद्रमध्याशंस्ते देवा अर्ध्ववाहवी रुद्रं स्तुन्वन्ति ॥ १ ॥ ॐ यो वै कदः स अगवान्यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः ॥ १ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च विष्णुस्तस्मै वै नमो नमः ॥ २ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च स्कन्दस्तस्मै वै नमी नमः ॥३॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्चेन्द्रससी वे नमी नमः ॥ ४ ॥ यो वै रुद्रः स अगवान्यश्चान्निस्तसे वे नमो नमः ॥ ५ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च वायुक्तस्मे वे नमो नमः॥ ६॥ यो वे रुद्रः स भगवान्यश्च सूर्यस्तस वै नमो नमः ॥ ७ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च सोमससी वे नमो नमः ॥ ८ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्ये चाष्टौ प्रहास्तसौ वै नमो नमः ॥ ९ ॥ यो वै रुद्धः स भगवान्ये चाष्टौ प्रतिप्रहास्तसै वै नमो नमः॥ १०॥ यो वै रुदः स भगवान्या च भूस्तस्मै वै नमो नमः॥ ११॥ यो वै रुदः स भगवान्या च अवस्तस्मे व नमो नमः ॥ १२ ॥ यो वे हृदः स भगवान्या च स्त्रस्मे वै नमो नमः ॥ १३ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्य महस्तस्मै वे नमो नमः ॥ १४ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्या च पृथिवी तस्मै वै नमो नमः ॥ १५ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यचान्तिरक्षं तसी वै नमो नमः ॥ १६ ॥ यो वे रुद्रः स भगवान्या च द्यौससी वै नमो नमः॥ १७॥ यो वै रुद्रः स भगवान्या-आपस्तसमें वै नमो नमः॥ १८॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यच तेजस्तसमे वै नमो नमः ॥ १९ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यचाकाशं तस्मै वे नमो नमः ॥ २० ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यश्च काळस्तसी वे नमी नमः॥ २१॥ यो वै रुदः स भगवान्यश्च यमस्तस्मै वै नमो नमः ॥ २२ ॥ यो वै रुदः स

भगवान्यश्च मृत्युक्तसौ वे नमो नमः ॥ २३ ॥ यो वे रुद्रः स भगवा-न्यचामृतं तसौ वे नमो नमः ॥ २४ ॥ यो वे रुद्रः स भगवान्यच विश्वं तसौ वे नमो नमः ॥ २५ ॥ यो वे रुद्रः स भगवान्यच स्थूलं तसौ वे नमो नमः ॥ २६ ॥ यो वे रुद्रः स अगवान्यच सूक्ष्मं तस्मे वे नमो नमः ॥ २७ ॥ यो वे रुद्रः स अगवान्यञ्च गुक्तं तस्मे वे नमो नमः ॥ २८ ॥ यो वे रुद्रः स अगवान्यञ्च कृष्णं तस्मे वे नमो नमः ॥ २९ ॥ यो वे रुद्रः स भगवान्यच कृत्स्रं तस्ये वे नमो नमः ॥ ३० ॥ यो वे रुद्रः स भगवान्यच सत्यं तसी वै नमी नमः ॥ ३१ ॥ यो वै रुद्रः स भगवान्यच सर्वं तस्मे वे नमो नमः ॥ ३२ ॥ २ ॥ भूस्ते आदिर्मध्यं अवस्ते स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा त्रिधा बद्धस्त्वं शान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम्। अ-पाम सोममस्ता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् । किमस्मान्कृणव-दरातिः किमु धृर्तिरमृतं मत्यं च । स्रोमसूर्यः पुरस्तात् सूक्ष्मः पुरुषः । सर्वं जगिद्धतं वा एतदक्षरं प्राजापत्यं सौम्यं सूक्ष्मं पुरुषं प्राह्ममप्राह्मण् भावं भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण वायच्यं वायच्येन असति तस्मे महा-यासाय वै नमो नमः । हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणे प्रतिष्ठिताः । हृदि त्वमिस यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः। तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारः य ओङ्कारः स प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तच्छुकं यच्छुकं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एकः य एकः स रदो यो रदः स ईशानो य ईशानः स भगवान् महेश्वरः ॥ ३॥ अथ कसादुच्यत ओङ्कारो यसादुचार्यमाण एव प्राणानूध्वेमुःकामयति तसादुच्यते ओङ्कारः । अथ कसादुच्यते प्रणवः यसादुचार्यमाण एव ऋग्यजः-सामाथर्वाङ्गिरसो बह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तसादुच्यते प्रणवः। अथ कसादुच्यते सर्वत्रापी यसादुचार्यमाण एव यथा पळळ-पिण्डमिव शान्तरूपमोत्रपोतमनुप्राप्तो व्यतिसृष्टश्च तसादुच्यते सर्वव्याची । अथ कसादुच्यतेऽनन्तो यसादुचार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधसाचास्यान्तो नोपलभ्यते तसादुच्यतेऽनन्तः । अथ कसादुच्यते तारं यसादुचार्यमाण एव गर्भजन्मव्याधिजरामरणसंसारमहाभयात्तारयति त्रायते च तसादुच्यते तारम् । अथ कसादुच्यते ग्रुकं यसादुचार्यमाण एव क्रन्दते क्रामयते च तसादुच्यते ग्रुकंम् । अथ कसादुच्यते सूक्ष्मं यसादुचार्यमाण

एव सूक्ष्मी भूवा शरीराण्यधितिष्ठति सर्वाणि चाङ्गान्यभिमृशति तसादुच्यते सूक्षम् । अथ कसादुच्यते वैद्युतं यसादुचार्यमाण एवा-व्यक्ते महित तमिस द्योतयते तसादुच्यरे वेद्युतम् । अथ कसादुच्यते परं ब्रह्म यस्मात्परमपरं परायणं च बृहद्बृहत्या बृहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म । अथ कस्मादुच्यते एको यः सर्वान्त्राणान्संभक्ष्य संभक्षणेनाजः संसृजति विस्जिति च । तीर्थमेके वजन्ति तीर्थमेके दक्षिणाः प्रत्यञ्च उदञ्चः प्राञ्जोऽभित्रजन्त्येके तेषां सर्वेषामिह संगतिः । साकं स एको भूतश्च-रति प्रजानंस्तस्यादुच्यत एकः । अथ कस्मादुच्यते रुद्रः यस्मादिपिमर्ना-न्येभेक्तेर्द्रतसस्य रूपमुपलभ्यते तसादुच्यते रुद्रः । अथ कसादुच्यते ईशानः यः सर्वान्देवानीशते ईशनीभिर्जननीभिश्र शक्तिभिः । अभि व्वा ग्रूर नोतुमो दुग्या इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दशमीशानमिन्द्र तस्थुप इति तसादुच्यत ईशानः। अथं कसादुच्यते भगवान्महेश्वरः यसाद्रकाञ्ज्ञानेन भजत्यनुगृह्णाति च वाचं संसृजति विस्जति च सर्वानभावान्परित्यज्यात्म-ज्ञानेन योगेश्वर्येण महति महीयते तस्मादुच्यते भगवान्महेश्वरः । तदेतदुद-चिरतस् ॥ ४ ॥ एपो ह देवः प्रदिशो नुसर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जिनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः। एको रुद्रो न द्वितीयाय तसी य इमाँ छोकानीशत ईशनीभिः। प्रसङ्जना-स्तिष्ठति संचुको चान्तकाले संस्उप विश्वा भुवनाति गोप्ता। यो योति योति-सधितिष्ठत्येको येनेदं संचरित विचरित सर्वम्। तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचारयेमां शान्तिमत्यन्तमेति । क्षमां हित्वा हेतुजालस मूलं बुद्धा संचितं स्थापयित्वा तु रुद्रे रुद्रमेकत्वमाहुः। शाश्वतं व पुराणमिषमूर्जेन पशवोऽतु-नामयन्तं सृत्युपाशान् । तदेतेनात्मन्नेतेनार्धचतुर्थमात्रेण शान्ति संस्जति पाशविमोक्षणम् । या सा प्रथमा मात्रा बहादेवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छे द्राह्मं पदम् । या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम्। या सा तृतीया मात्रा ईशानदेवत्या कपिला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानं पद्म्। या साऽर्धवतुर्थी मात्रा सर्वदेवलाऽव्यक्तीभूता खं विचरति ग्रुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत्पद्मनामकं तदेतमुगसीत मुनयोऽवाग्व-दन्ति न तस्य ग्रहणमयं पन्था विहित उत्तरेण येन देवा यान्ति येन पितरो येन ऋषयः परमपरं परायणं चेति । वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जा-तरूपं वरेण्यम् । तमात्मस्थं ये नु पर्यन्ति घीरास्तेषां शान्तिभवति नेतरेषाम् । यसिन्कोधं या च तृष्णा क्षमां च तृष्णां हित्वा हेनुजारुस मूरुम्। बुद्धा संचितं स्थापियत्वा तु रुद्रे रुद्रमेकत्वमातुः । रुद्रो हि शाश्वतेन वे पुराणेनेष-मुजेंण तपसा नियन्ता। अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलः मिति भस व्योमेति भस सर्व ह वा इदं भस मन एतानि चक्षंषि यसा-इतमिदं पाञ्चपतं यद्गसनाङ्गानि संस्पृशेत्तसाहहा तदेतत्पाञ्चपतं पञ्चपाञ-विमोक्षणाय ॥ ५ ॥ योऽम्रो रुद्दो योऽप्खन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । य इसा विश्वा भवनानि चाक्रपे तसी रुद्राय नमोऽस्त्वसये। यो रुद्रोऽसी यो रुद्ध ओपघीवींरुध आविवेश । यो रुद्ध हमा विश्वा अवनानि चाक्रपे तसी रुद्राय वे नमो नमः। यो रुद्रोऽप्सु यो रुद्र ओषधीषु यो रुद्रो वनस्पतिषु। येन रहेण जगद्रध्वे धारितं पृथिवी द्विधा त्रिधता धारिता नागा येऽन्तरिक्षे तसी रुद्राय वै नमो नमः । सूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृद्यं च यत्। मस्तिष्कादर्थ्वः प्रेरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः । तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुव्जितः । तःप्राणोऽभिरक्षति शिरोऽन्नमथो मनः । न च दिवो देवजनेन गुप्ता नवान्तरिक्षाणि नव भूम इसाः । यस्मिन्निदं सर्वमोतप्रोतं यस्मादन्यन्न किंचनास्ति । न तस्पारपूर्वं न परं तदस्ति न भूतं नौत अव्यं यदासीत् । सहस्रपादेकसूर्धा व्याप्तं स एवेदमावरीवर्ति भूतम् । अक्षराःसं-जायते कालः कालाद्यापक उच्यते । व्यापको हि भगवान्हदो भोगायमानो यदा होते रुद्रसादा संहार्यते प्रजाः । उच्छ्वसिते तमो भवति तमस आपो-उप्खड्जल्या मथिते मथितं शिशिरे शिशिरं मध्यमानं फेनो भवति, फेना-दण्डं भवत्यण्डाद्वह्या भवति, ब्रह्मणो वायुः वायोरोंकार ॐकारात्सावित्री सावित्या गायत्री गायत्र्या लोका अवन्ति । अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद्भवम् । एति परमं तप आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्तरों नम इति ॥ ६ ॥ य इदमथर्वशिरो बाह्मणोऽघीते अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति अनुपनीत उपनीतो भवति सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स सूर्यपूतो भवति स सोमपूतो भवति स सत्यपूतो भवति स सर्वपूतो भवति स सर्वेदेवेर्जातो भवति स सर्वेदेदेरनुध्यातो भवति स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति तेन सवैं: ऋतुभिरिष्टं भवति गायन्याः पष्टिसहस्राणि जप्तानि भवन्ति इतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जशानि भवन्ति । प्रणवा-नामयुतं जप्तं भवति । आ चक्षुषः पङ्किं पुनाति । आ सप्तमात्पुरुपयुगान्पु-नातीत्याह भगवानथर्वशिरः सकुज्ञह्वैच ग्रुचिः स पूतः कर्मण्यो भवति । द्वितीयं जस्वा गणाधिपत्यमवामोति । तृतीयं जस्वैवमेवानुप्रविशत्यों सत्यमों सत्यम् ॥ ७ ॥ ॐ स ह नाववित्विति शानितः ॥

इत्यथर्षवेदेऽथर्वशिरउपनिष्समाप्ता ॥

अथर्वशिखोपनिषत् ॥ २४ ॥ ओकारार्थतया भातं तुर्योकारात्रभासुरम् । तुर्यतुर्यं त्रिपादामं स्वमात्रं कलयेऽन्वहम् ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

अँ पिष्पलादोऽङ्गिराः सन्दक्तमारश्चाथवाणं भगवन्तं पप्रच्छ भगविन्कमादौ
प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यं किं तद्धानं को वा ध्याता कश्चिद्धेय इति ।
अधेश्योऽथवां प्रत्युवाच । ओमित्येतदक्षरमादो प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यमोपित्येतदक्षरस्य पादाश्चत्वारो देवाश्चत्वारो वेदाश्चतुष्पादेतदक्षरं परं ब्रह्म ।
पूर्वाऽस्य मात्रा पृथिव्यकारः स ऋग्भिर्म्यज्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः ।
द्वितीयान्तिरक्षं स उकारः स यज्ञभिर्यज्वेदो क्द्रो क्द्रास्त्रिष्टदक्षिणाप्तिः ।
तृतीया द्योः स मकारः स सामिभः सामवेदो विष्णुरादित्या जगत्याहवनीयः ।
यावसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा ल्रह्ममकारः सोथवणमित्रेरथववेदः संवर्तकोऽग्निर्मरूत एकऋपी रुचिरा भास्त्रती स्वभा । प्रथमा रक्ता ब्राह्मी ब्रह्मदेवत्या
द्वितीया द्युभा द्युक्ता रोद्री कृददेवत्या तृतीया कृष्णा विष्णुमती विष्णुदेवत्या
चतुर्था विद्युन्मती सर्ववर्णा पुरुषदेवत्या । स एए द्योकारश्चतुष्पादश्चतुःशिराश्चतुर्थ्यर्धमात्रा स्थूलहस्वदीर्धन्नत इति ॥ ॐ ॐ ॐ इति व्रिक्तश्चतुर्थः
ब्रान्तातमा क्रुतप्रयोगे न सममित्यात्मज्योतिः सकृदावर्तव्य ॐ स एष
सर्वान्त्राणानसकृदुच्चारितमात्रः स एष द्यूर्थ्वमुत्कामयतीत्रोकारः ॥ १ ॥

प्रणवः सर्वान्प्राणान्प्रणामयति नामयति चेतसाःप्रणवश्रतुर्घाऽवस्थित
इति वेददेवयोनिर्धेयाश्चेति संघर्ता सर्वेभ्यो दु. सभयेभ्यः संतारयति
तारणात्तानि सर्वाणिति विष्णुः सर्वाञ्जयति ब्रह्माऽवृहःसर्वकारणानि संप्रतिष्ठाप्य ध्यानाद्विष्णुर्मनिस नादान्ते परमात्मनि स्थाप्य ध्येयमीशानं प्रध्यायनतीशा वा सर्वमिदं प्रयुक्तम् । ब्रह्मविष्णुरुद्देन्द्राः संप्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि
सहभूतानि करणं सर्वमेश्वर्यं संपन्नं शिवमाकाशं मध्येष्ठवस्थम् । ब्रह्मा विष्णुश्च
रुद्धश्च ईश्वरः शिव एव च । पञ्चधा पञ्चदेवत्यः प्रणवः परिपष्ट्यते । तत्राधिकं क्षणमेकमास्थाय कतुशतस्थापि फलमवामोति कृत्स्वमोकारगतं च सर्वज्ञानेन योगध्यानाना शिव एको ध्येयः शिवंकरः सर्वमन्यत्परित्यज्येतामधीत्य द्विजो गर्भवासान्मुच्यते गर्भवासान्मुच्यत इति ॥ २ ॥ इत्योर्सत्यमित्युपनिषत् ॥ ३ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदेऽथर्वशिखोपनिपत्समाप्ता॥ १ ॥

मैत्रायण्युपनिषत् ॥ २५ ॥

वेराग्योत्थभक्तियुक्तब्रह्ममात्रप्रवोधतः । यत्पदं सुनयो यान्ति तन्नेपदमहं सहः ॥ ॐ आप्यायन्तित्वति शान्तिः ॥

मैत्रायणी कौषितकी बृहजाबालतापनी । कालाग्निरुद्रमेत्रेयी सुबालक्षु-रिमन्निका। ॐ बृहद्वथो ह वै नाम राजा राज्ये ज्येष्ठं पुत्रं निधापयित्वेद्म-शाश्वतं मन्यमानः शारीरं वेराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम स तत्र परमं तप आस्थायादित्यमीक्षमाण जर्ध्ववाहुस्तिष्टत्यन्ते सहस्य सुनिरन्तिकमाजगामा-ग्निरिवाधूमकलेजसा निर्दहन्निवास्मविद्गगवाञ्शाकायन्य उत्तिष्ठोत्तिष्ठ व**रं** वृणी वेति राजानमत्रवीत्स तस्मे नमस्कृत्योवाच अगवज्ञाहमात्मवित्वं तत्त्व-विच्छ्णुमो वयं स त्वं नो बृहीत्वेतद्वतं पुरस्तादशक्यं सा पृच्छ प्रश्नमैक्ष्वाका-न्यान्कामान्वृणीव्वेति शाकायन्यस्य चरणाविभमृहयमानो राजेमां गाथां जगाद ॥ १ ॥ भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमजामांसग्रुक्रशोणितश्वेष्माश्चर्षिते वि-ण्मूत्रवातिपत्तकफसंघाते दुर्गन्धे निःसारेऽस्मिन्छरीरे किं कामोपभोगैः॥ २॥ कामकोधलोभभयविषादेष्येष्टवियोगानिष्टसंप्रयोगश्चात्विषासाजराम्यत्युरोगशो-काचेरभिहतेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः ॥ ३ ॥ सर्वं चेदं क्षथिष्णु प-इयामो यथेमे दंशमशकादयस्तृणवन्नश्यतयोद्भृतप्रध्वंसिनः॥ ४॥ अथ कि-मेतेर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चकवर्तिनः केचित्सुयुक्तसूरियुक्तेन्द्रयुक्तकुवल-याश्वयौत्रनाश्ववद्धियाश्व श्वपतिः शशविन्दुईरिश्चन्द्रोऽस्वरीपो सन्तस्वयाति-र्यदातिरनरण्योक्षसेनोत्थमस्त्रभरतप्रभृतयो राजानो मिपतो बन्धुवर्गस्य महतीं श्रियं त्यक्त्वासाहोकादमुं लोकं प्रयान्ति ॥ ५ ॥ अथ किमेतेर्वा परेऽन्ये गन्धर्वासुरयक्षराक्षसभूतगणपिशा ोरगग्रहादीनां निरोधनं पश्यामः ॥ ६॥ अथ किमेतैर्वान्यानां शोपणं महाणेवानां शिखरिणां प्रपतनं ध्रुवस्य प्रचलनं द्यानं वा तरूणां निमज्जनं पृथिद्याः स्थानाद्रपसरणं सुराणां सीsहमित्येतद्विधेsस्मिन्संसारे किं कामोपभोगैयेरेवाश्रितस्यासकृदिहावर्तनं दृश्यत इत्युद्धर्तुमईसीलन्धोदपानस्थो भेक इवाहमस्मिन्संसारे भगवंस्त्वं नो गतिस्त्वं नो गतिः॥ ७॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु प्रथमः प्रपाठकः ॥

अथ भगवान्शाकायन्यः सुप्रीतस्त्वबवीदाजानम् । महाराज बृहद्वथेदवा-कवंशध्वज शीघ्रमात्मज्ञः कृतकृतत्यस्त्वं मस्त्राभ्नेति विश्वतोऽसीति । अयं वाव खल्वात्मा ते यः कतमो भगवा इति तं होवाचेति ॥ १॥ अथ य एव उच्छ्वासाविष्टम्भनेनोध्वीमुःकान्तो व्ययमानोऽव्ययमानस्तमः प्रणदसेष आसेत्याह भगवानमैत्रिः । इसेवं ह्याह । अथ य संप्रसादोऽस्याच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत द्रत्येष आत्मेति होवाचैतद्मृतसभयमेतद्रह्मेति ॥ २ ॥ अथ खिट्वयं ब्रह्मविद्या सर्वोपनिपद्विद्या वा राजन्नसाकं भगवता मैत्रिणाऽऽख्याताऽहं ते कथयिष्यामीति । अथापहतपाप्मानिकामतेजसा अर्ध्वरेतसो वालिख्या इति श्रयन्ते । अथ ऋतुं प्रजापतिमञ्जवन्-भगवन्शकटमिवाचेतनमिदं शरीरं कस्येष खब्बीदशो महिमाऽतीन्द्रियभूतस्य येनैतद्विधमेतचेतनवस्प्रतिष्ठापितं प्रचोदियता वाऽस्य यद्भगवन्वेतिस तदसाकं ब्रहीति तान्होवाचेति ॥ ३ ॥ यो ह खलु वावोपरिस्थः श्रूयते गुणेष्विवोध्वरेतसः स वा एष श्रुद्धः पतः श्चन्यः शान्तोऽप्राणो निरात्माऽनन्तोऽक्षरयः स्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः। स्वे महिश्चि तिष्ठत्यजेनेदं शरीरं चेतनवस्प्रतिष्ठापितं प्रचोदियता वेषोऽप्य-स्येति । ते हो चुभँगवन्कथमने ने दशेनानि छेनै तद्विधमिदं चेतनवस्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैपोऽस्य कथमिति तान्होवाच ॥ ४ ॥ स वा एष सक्ष्मोऽ-ग्राह्योऽदृश्यः पुरुषसंज्ञोऽबुद्धिपूर्वमिहैवावर्ततेंऽशेनेति सुप्तस्येवाबुद्धिपूर्वं विवोध एवमिति । अथ यो ह खलु वावैतस्य सोंऽशोऽयं यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिर्विश्वाख्यश्चेतने-नेदं शरीरं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोद्यिता वैषोऽप्यस्येति । ते होचुर्भगव-न्यद्यनेनेदशेन।निष्टेनैतद्विधमिदं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैषोऽस्य कथमिति तान्होवाचेति ॥ ५ ॥ प्रजापतिर्वा एकोऽमेऽतिष्ठस्य नारमतैकः सोत्मानमभिध्यात्वा बह्वीः प्रजा अस्जत ता अरमेवाप्रबुद्धा अप्राणाः स्थाणुरिव तिष्ठमाना अपद्यत् स नारमत सोऽमन्यतैतासां प्रतिबोधनाया-भयन्तरं विविशामि । स वायुरिवात्मानं कृत्वाऽभ्यन्तरं प्राविशत । स एको नाशकरस पञ्चधात्मानं विभज्योच्यते यः प्राणोऽपानः समान उदानो व्यान इति । अथायं य अर्ध्वमुःकामत्येष वाव स प्राणोऽथ योऽय-मवाक् संकामलेष वाव सोऽपानोऽथ येन वैताऽनुगृहीतेलेष वाब स अ. उ. १२

व्यानोऽथ योऽयं स्थविष्ठो धातुरसस्यापाने प्रापयत्यणिष्ठो वाऽङ्गेऽङ्गे समानयत्येष वाव स समानसंज्ञा उत्तरं व्यानस्य रूपं चेतेषामन्तरा प्रसृतिरेवोदानस्याथ योऽयं पीताशितमुद्गिरति निगिरतीति वेष वाव स उदानः । अथोपांशुरन्तर्याममिभवत्यन्तर्याम उपाशुं चैतयोरन्तरा देवी व्ययं प्रासुवद्यदीव्ययं स पुरुषोऽथ यः पुरुषः सोऽझिर्वेश्वानरः । अन्यत्राप्युक्तमयमिश्चवेश्वानरो योऽयमन्तःपुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिद्मधते तस्येष घोषो भवति यमेतःकर्णाविषधाय द्राणोति स यदोःक्रसिष्यनभवति नैनं घोषं शुणोति स वा एप पञ्चधाऽऽत्मानं विभज्य निहितो गुहायाम्। सनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकरूप आकाशास्त्रीत । स वा पुषोऽसाद्व्दन्तरादकृतार्थोऽमन्यतार्थानश्चानीति । अतः खानीमानि भिन्वो-द्तः पञ्चभी रिमिभिर्विपयानत्तीति बुद्दीन्द्रियाणि यानीमान्येतान्यस्य रइमयः कर्मेन्द्रियाण्यस्य हया रथः शरीरं सनो नियन्ता प्रकृतिमयोऽस्य प्रतोदोऽनेन खल्वीरितः परिअमतीदं शरीरं चक्रमिव सृत्पचेनेदं शरीरं चेतनवलातिष्ठापितं प्रचोद्यिता वैषोऽप्यस्येति ॥ ६॥ स वा एष आत्मे-होशन्ति कवयः सितासितैः कर्मफलैरनिभमूत इव प्रतिशरीरेषु चरति अव्यक्तत्वात्सीक्ष्म्याद्दइयन्वाद्याह्यत्वान्त्रिममत्वाच्चानवस्थोऽसति कर्ताऽकर्तै-वावस्थः स वा एष गुद्धः स्थिरोऽचलश्चालेप्योऽच्यम्रो निस्ट्रहः मेक्षकवद्व-स्थितः स्वस्थश्च । ऋतभुःगुणमदेन पटेनात्मानमन्तर्धायावस्थिता इत्यव-स्थिता इति ॥ ७ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

ते होचुर्भगवन्यद्येवमस्याऽऽत्मनो महिमानं सूचयसीत्यन्यो वा परः । कोऽयमात्माख्यो योऽयं सितासितैः कर्मकछरिभभूयमानः सद्सद्योनिमापद्यता इत्यवाञ्चयोध्यो वा गतिईद्वैरिभभूयमानः परिश्रमित ॥ १ ॥ अस्ति खल्वन्योऽपरो भूतात्माख्यो योऽयं सितासितैः कर्मकछरिभभूयमानः सद्सद्योनिमापद्यता इत्यवाञ्चयोध्यो वा गतिईद्वैरिभभूयमानः परिश्रमितित्यस्योपव्याख्यानम् । पञ्चतन्मात्रा भृतशब्देनोच्यन्तेऽथ पञ्चमहाभूतानि भूतशब्देनोच्यन्ते । अथ तेषां यत्समुद्यं तत्त्वरीरिमित्युक्तमथ यो ह खलु वाव
शारिर इत्युक्तं स भूतात्मेत्युक्तम् । अथामृतोऽस्यात्मा बिन्दुरिव पुष्करा
इति स वा प्षोऽभिभूतः प्राकृतेर्गुणैरिति । अथोऽभिभूतत्वात्संमूद्धवं प्रवातः

संमूढत्वात् । आत्मस्थं प्रभुं भगवन्तं कारियतारं नापइयद्वुणोधेरुह्यमानः कलपीकृतश्चास्थिरश्चञ्चलो लुप्यमानः सस्पृहो व्यप्रश्चामिमानिःवं प्रयाता इत्सहं सो समेदमित्येवं मन्यमानो निवध्नात्यात्मनात्मानम् । जालेनेव खचरः कृतस्यानु फलेरिभभूयमानः सदसद्योनिमापद्यता इत्यवाद्ययोध्वा वा गति-इंदेरिभिभयमानः परिभ्रमति कतम एष इति तान्होवाचेति ॥ २ ॥ अथा-न्यत्राप्युक्तं—यः कर्ता सोऽयं वै भूतात्मा करणैः कारयिताडन्तःपुरुषः । अथ यथाऽग्निनाऽयस्पिण्डोऽन्यो वाऽभिभूतः कर्तृभिर्हन्यमानो नानात्वसुपैत्येवं वाव खल्वसी भूतात्माऽन्तः पुरुषेणाभिभूतो गुणैईन्यमानो नानात्व मुपैति । चतुर्जाइं चतुर्दशविधं चतुरशीतिधा परिणतं भूतगणमेतद्वे नानाःवस्य रूपम् । तानि ह वा एतानि गुणानि पुरुषेणेरितानि चक्रमिव मृथ्यचेनेति । अथ यथाऽयस्पिण्डे हन्यमाने नामिरिभभूयत्येवं नाभिभृयत्यसौ पुरुगोऽभि-भूयत्ययं भूतात्मोपसंश्विष्टत्वादिति॥ ३ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं —शरीरमिदं मेथुनादेवोद्धतं संवृद्धयुपेतं निरयेऽथ मूत्रद्वारेण निष्कान्तमस्थिभिश्चितं मांसेनानुलिसं चर्मणाऽवनद्धं विष्मूत्रपित्तकफमजामेदोवसाभिरन्यैश्वाऽऽमयै-र्बहुभिः परिपूर्णं कोश इव वसुना॥ ४॥ अथान्यत्राप्युक्तं संमोहो भयं त्रिपादो निदा तन्दी प्रमादो जरा शोकः श्रुत्पिपासा कार्पण्यं कोधो न।स्तिक्यमज्ञानं मात्सर्यं नैष्कारुण्यं मूहत्वं विन्नींडत्वं निराक्ततित्वमुद्धतत्व-मसमन्विमिति तामसानि । अन्तरतृष्णा स्नेहो रागो कोभो हिंसा रतिर्देष्टि-व्यानृतत्वमीव्यांऽकाममस्थिरत्वं चलत्वं व्यग्नत्वं जिगीपाऽर्थोपार्जनं मित्रा-नुमहणं परिम्रहावलम्बोऽनिष्टेष्विन्द्रियार्थेषु द्विष्टिरिष्टेष्वभिष्वङ्गः गुक्तस्वरोऽन्न-तमस्विति राजसान्येतैः परिपूर्ण एतैरभिभूता इत्ययं भूतास्मा तसानाना-रूपाण्यामोतीत्यामोतीति ॥ ५॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

ते ह खलु वावोध्वरेतसोऽतिविस्मिता अभिसमेत्योचुर्भगवन्नमस्तेऽस्त्वनु-शाधि त्वमस्माकं गतिरत्या न विद्यता इति । अस्य को विधिर्भूतात्मनो येनेदं हित्वात्मन्येव सायुज्यमुपैति तान्दोवाचेति ॥ १ ॥ अथात्यत्रा प्युक्तं—महानदीषूर्मय इवानिवर्तकमस्य यत्पुराकृतं समुद्रवेलेव दुर्निवार्यमस्य मृत्योरागमनं सद्सत्फलमयैः पाशैः पङ्गरिव बद्धं बन्धनस्थस्येवास्वातत्र्यं यमविषयस्थस्येव बहुभयावस्थं मिद्रोन्मत्त इव मोहमिद्रोन्मत्तं पाप्मना गृहीत इव आम्यमाणं महोरगदृष्ट इव विषयदृष्टं महान्धकारिम व रागान्धम् , इन्द्रजालमिव मायामयं स्वप्त इव मिथ्यादर्शनं कदलीगर्भ इवासारं नट इव क्षणवेषं चित्रभित्तिरिव मिथ्यामनोरममित्यथोक्तम् । शब्दस्पर्शादयो हार्था मर्त्येऽनर्था इवाऽऽस्थिताः । येषां सक्तस्तु भूतात्मा न स्मरेत्परमं पदम् ॥२॥ अयं वाव खत्वस्य प्रतिविधिर्भूतात्मनो यद्वेदविद्याधिगमः । स्वधर्मस्यानुचर्णं स्वाश्रमेष्वेवानुक्रमणं स्वधर्मस्य वा एतद्रतं स्तम्बशाखेवापराण्यनेनोध्र-भागभवत्यन्यथाऽवाङित्येष स्वधमोंऽभिहितो यो वेदेषु न स्वधमातिक्रमे-णाश्रमी भवति । आश्रमेष्वेवानवस्थस्तपस्वी वेत्युच्यत इत्येतदयुक्तं नात-प्रकस्थाऽऽत्मज्ञानेऽधिगमः कर्मसिद्धिर्वेति । एवं ह्याह—तपसा प्राप्यते सत्त्वं संस्वात्संप्राप्यते मनः । मनसः प्राप्यते ह्यात्मा यमास्वा न निवर्तत इति ॥ ३ ॥ अस्ति ब्रह्मेति ब्रह्मविद्याविद्ववीद्ब्रह्महारमिद्मित्येवतदाह यस्तप-साऽपहतपाप्मा ॐ ब्रह्मणो महिमेत्येवेतदाह यः सुयुक्तोऽजस्नं चिन्तयति तसाद्वियया तपसा चिन्तया चोपलभ्यते ब्रह्म । स ब्रह्मणः पर एता भव-त्यिधिदैवःवं देवेभ्यश्चेत्यक्षरयमपरिमितमनामयं सुखमक्ष्ते य एवं विद्वाननेन त्रिकेण ब्रह्मोपास्ते । अथ यैः परिपूर्णोऽभिभूतोऽयं रथितश्च तैर्वेव मुक्तस्त्वा-रमन्नेव सायुज्यमुपैति ॥ ४ ॥ ते होचुर्भगवन्नभिवाद्यसीत्यभिवाद्यसीति । निहितमसाभिरेतद्यथावदुक्तं मनसीत्यथोत्तरं प्रश्नमनुब्हीति । अग्निर्वायुरा-दित्यः कालो यः प्राणोऽन्नं ब्रह्मा रुद्दो विष्णुरित्येकेऽन्यमभिध्यायन्त्येकेऽन्यं श्रेयः कतमो यः सोऽस्माकं बूहीति तान्होवाचेति ॥ ५ ॥ ब्रह्मणो वावैता भग्रयासनवः परस्यामृतस्याशरीरस्य तस्यैव लोके प्रतिमोदतीह यो यस्यानुक्क इत्येवं द्याह । ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम् । या वास्या अध्यास्तनवस्ता अभि-ध्यायेदचीयेबिह्याचातस्ताभिः सहैवोपर्युपरि लोकेषु चरत्यथ कृःस्रथय पुकत्वमेति पुरुषस्य पुरुषस्य ॥ ६ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

अथ यथेयं कौत्सायनी स्तुतिः—त्वं ब्रह्मा त्वं च वे विष्णुस्त्वं रुद्गस्त्वं प्रजापितः। त्वमिन्नविरुणो वायुस्त्वमिन्द्गस्त्वं निज्ञाकरः॥ त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं पृथ्विची त्वं विश्वं खमथाच्युतः। स्वार्थे स्वाभाविकेऽर्थे च बहुधा संस्थिति स्त्विय ॥ विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं विश्वातमा विश्वकर्मकृत्। विश्वभुग्विश्वमायुस्त्वं विश्वक्रीडारितप्रभुः॥ नमः शान्तात्मने तुभ्यं नमो गुद्यतमाय च। अचि-

न्लायाप्रमेयाय अनादिनिधनाय चेति ॥ १ ॥ तमो वा इदमप्र शासीदेकं तत्वरे स्थान्तवरेणेरितं विषमतं प्रयात्येतद्वरं वे रजसद्वनः खर्नीरितं विषमतं प्रयात्येतद्वरं वे रजसद्वनः खर्नीरितं विषमतं प्रयात्येतद्वे सन्वस्य रूपं तत्सन्वमेवेरितं रसः संप्रास्तवत्, सोंऽशोऽयं यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकर्णाध्यवसायाभिमानिङ्कः प्रजापतिर्विश्वेतस्य प्रागुक्ता एतास्तनवः । अथ यो ह खलु वावास्य तामसोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं रुद्दोऽथ यो ह खलु वावास्य राजसोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं ब्रह्माऽथ यो ह खलु वावास्य राजसोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं ब्रह्माऽथ यो ह खलु वावास्य सान्त्विकोंऽशोऽसौ स ब्रह्मचारिणो योऽयं विष्णुः स वा एष एकस्त्रिधा मूतोऽष्टेषेकादशधा द्वादशधाऽपरिमित्यधा वोद्धत उद्धतस्वाद्धतं भूतेषु चरति प्रविष्टः स भूतानामधिपतिर्वभूवेन्यसावात्माऽन्तर्बहिश्चान्तर्बहिश्च ॥ २ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥

द्विधा वा एष आत्मानं बिभर्त्ययं यः प्राणी यश्चासावादित्यः । अथ द्वी वा एता अस्य पन्थाना अन्तर्वहिश्वाहोरात्रेणेती व्यावर्तेते। असी वा आहित्यो बहिरात्माऽन्तरात्मा प्राणोऽतो बहिरात्मक्या गत्याऽन्तरात्मनोऽ-नुमीयते गतिरित्येवं ह्याह । अथ यः कश्चिद्विद्वानपहतपाप्माऽक्षाध्यक्षोऽ-वदातमनास्तन्निष्ठ आवृत्तचक्षुः सो अन्तरात्मक्या गला बहिरात्मनोऽनुमी-यते गतिरित्येवं ह्याह । अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो यः पश्यतीमां हिरण्यवस्थात्म एषोऽन्तरे हृत्युष्कर एवाऽऽश्रितोऽन्नमत्ति ॥ १ ॥ अथ य एषोऽन्तरे हृत्पुष्कर एवाश्रितोऽसमत्ति स एषोऽभिदिं ि श्रितः सौरः काळाख्योऽदृश्यः सर्वभूतान्यन्नमत्तीति । कः पुष्करः किंमयो वेति । ईदं वाव तत्पुष्करं योऽयमाकाशोऽस्येमाश्रतस्रो दिशश्रतस्र उपदिशो दलसंस्था आसम् । अर्वाग्विचरत एतौ प्राणादित्या एता उपासीतोमित्येत-दक्षरेण व्याहृतिभिः सावित्र्या चेति ॥ २ ॥ हे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं चाथ यन्मूर्तं तदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्रह्म तज्योतिर्यज्योतिः स भादित्यः स वा एप ओमिलेतदात्माऽभवस्स त्रेधात्मानं व्यकुरुतोमिति तिस्रो मात्रा एताभिः सर्वमिदमोतं प्रोतं चैवास्मीत्येवं ह्याहैतद्वा आदित्य कोमित्येत्रं ध्यायताऽऽत्मानं युक्षीतेति ॥ ३ ॥ अथान्यत्राप्युक्तम्-अथ खलु य उद्गीयः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीय इत्यसौ वा आदित्य उद्गीय एप प्रणवा इत्येवं ह्याहोद्गीयं प्रणवाख्यं प्रणेतारं भारूपं विगतनिद्रं विजरं विमृत्युं त्रिपदं त्रयक्षरं पुनः पञ्चधा ज्ञेयं निहितं गुहायामित्येवं ह्याह । अर्ध्वमूलं त्रिपाइह्य शाखा आकाशवाख्वस्युदकभूस्याद्य एकोऽश्वत्थनामै-तहसीतसीतत्तेजो यदसावादित्यः । श्रोमित्येतद्श्ररस्य चैतत् । तसादो-मित्यनेनेतदुपासीताजसमिति । एकोऽस्य संबोधयतेत्येवं ह्याह । एतदेवाक्षरं पुण्यमेतदेवाक्षरं परम् । एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ ४ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—स्वनवत्येषाऽस्य तन्योंमिति स्त्रीपुंनपुंसकेति लिङ्गवत्येपाऽथामिर्वायुरादित्य इति भास्त्रत्येषाऽथ बहा रुद्रो विष्णुरित्यिधि-प्तिवत्येपाऽध गाईपत्यो दक्षिणामिराहवनीय इति सुखवत्येषाऽथ ऋग्यजुः सामेति विज्ञानवत्येषा भूर्भुवः स्वरिति लोकवत्येषाऽथ भूतं भव्ये सविष्यदिति कालवलेषाऽथ प्राणोऽग्निः सूर्य इति प्रतापवलेषाऽथान्नमाप-अन्द्रमा इलाप्यायनवरयेषाऽथ बुद्धिर्मनोऽहंकार इति चेतनवलेषाऽथ प्राणोऽपानो व्यान इति प्राणवत्येषेत्यत ओमित्युक्तेनैताः प्रस्तुता अर्चिता अर्पिता भवन्तीत्येवं ह्याहैतहै सत्यकामं परं चापरं च ब्रह्म यदोसित्येत-द्धरमिति ॥ ५ ॥ अथाव्याहतं वा इदमासीत्स सत्यं प्रजापतिस्तपस्तस्वाऽ-नुत्राहरःदूर्भुवः स्वरिस्थेपैवास प्रजापतेः स्थविष्ठा तनूर्या लोकवतीति स्वरित्यसाः शिरो नाभिर्भुवो भूः पादा आदित्यश्रक्षः । चक्षुरायत्ता हि पुरुषस्य महती मात्रा चक्षुषा हायं मात्राश्चरति सत्यं वे चक्षुरक्षिण्यवस्थितो हि पुरुषः सर्वोऽर्थेषु चरति । एतसाद्धर्भुवः स्वरिःयुप।सीतानेन हि प्रजापतिर्विश्वारमा विश्वचक्षुरिवोपासितो भवतीत्येवं ह्याह । एषा वै प्रजापतेर्विश्वमृत्तन्रेतस्यामिदं सर्वमन्तर्हितमस्यिश्र सर्वसिन्नेपाऽन्तर्हितेति तसादेषोपासीत ॥ ६॥ तत्सवितुर्वरेण्यमित्यसौ वा आदित्यः सविता स वा एवं प्रवरणीय आत्मकामेनेत्याहुर्वह्मवादिनोऽथ भगी देवस्य धीमहीति सविता वे देवसतो योऽस्य भर्गाष्यसं चिन्तयामीत्याहुर्वसवादिनोऽथ-धियो यो नः प्रचोदयादिति बुद्धयो वे धियस्ता योऽस्माकं प्रचोदयादित्याहु-र्बह्मवादिनः । अथ भर्ग इति यो ह वा अमुिमन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणि वैप भगीं ह्यः। भाभिगीतिरस्य हीति भर्गः । भर्जयतीति वैष भर्ग इति रुद्रो ब्रह्मवादिनः । अथ भ इति भासयतीमाँ छोकान्र इति रञ्जयतीमानि भूतानि ग इति गच्छन्यसिकागच्छन्यसादिमाः प्रजास्त्रसादरगत्वाद्वर्गः । श्राश्वत्सूयमानाःसूर्यः सवनाःसविताऽऽदानादादित्यः पवनात्पावनोऽथाऽऽदोऽ- प्यायनादित्येवं ह्याह । खल्वात्मनोऽऽत्मा नेताऽसृताख्यश्चेता मन्ता गन्तो-रख्डाऽऽनन्द्यिता कर्ता वक्ता रसयिता घाता द्रष्टा श्रीता स्प्रसति च विभुविंग्रहे संनिविष्ट इस्तेवं छाह। अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्र हि इग्णोति पश्यति जिन्नति रसयति चैव स्पर्शयति सर्वमास्मा जानीतेति यत्राहु ती शूर्व विज्ञानं कार्यकारणकर्मनिर्धुक्तं निर्वचनमनौपस्यं निरुपाल्यं किं तदवाच्यम् ॥ ७ ॥ एष हि खस्वात्मेशानः शंभुभंवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वस्-विचरण्यगर्भः सत्यं प्राण्ये हंसः शास्ता विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता विधाता सञाबिन्द्र इन्द्रिरिति । य एष तपत्यन्निरिवान्निना पिहितः सहसाक्षेण हिरणमयेनाण्डेन । एव वाव जिज्ञासितव्योऽन्वेष्टव्यः सर्वभते-क्ष्योऽभयं दरवाऽरण्यं गतवाऽथ बहिः कृत्वेन्द्रियार्थान्स्वाच्छरीरादप्रक्रमेते-नक्रिति । निश्वरूपं हरिणं जातनेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्र-एहिनः शतघा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुद्यस्येष सूर्यः ॥ ८॥ तसाद्वा एव उभयात्मैवंविदात्मनेवाभिध्यायत्यात्मन्नेव यजतीति ध्यानं प्रयोगस्यं मनो विद्वद्भिः ष्टुतं मनःपृतिसुच्छिष्टोपहतिमस्यनेन तत्पावयेत् । मत्रं पटति-उच्छिष्टोच्छिष्टोपहतं यच पापेन दत्तं सृतसुतकाद्वा वसोः पवित्र-मितः सवितुख रहमयः पुनन्तवसं सम दुष्कृतं च यद्न्यत् । अद्भिः पुरस्ता-त्परिद्धाति । प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा समानाय स्वाहोदानाय स्वाहेति पञ्चभिरभिजुहोति । अथाविष्रष्टं यत्तवागभाससोऽ-न्निर्भूय एवोपरिष्टात्परिद्धात्वाचान्तो भूत्वाऽऽत्मेज्यानः प्राणोऽमिर्विचोऽ-सीति च हाभ्यामात्मानमभिध्यायेत् । प्राणोऽग्निः परमात्मा वै पजवायुः समाश्रितः । स प्रीतः प्रीणातु विश्वं विश्वभुक् । विश्वोऽसि वैश्वानरोऽसि विश्वं त्वया धार्यते जायभानम् । विद्यान्तु त्वामाहुतयश्च सर्वाः प्रजासम यत्र विश्वासृतोऽसीति । एवं न विधिना खरवनेनात्ताऽस्वयं पुनस्पैति ॥ ९॥ अथापरं वेदितव्यमुत्तरो विकारोऽस्वात्मयञ्चस्य यथाऽच्चमनादश्रेत्यस्रोपव्या-ल्यानम् । पुरुषश्चेता प्रधानाग्तःस्यः स एव भोक्ता प्राकृतमनं सुद्ध इति । तस्यायं भूतात्मा हाजमस्य कर्ता प्रधानः । तस्यात्रिगुणं भोज्यं भोक्ता पुरु-पोऽन्तःस्यः । अत्र दृष्टं नाम प्रत्ययम् । यसाद्वीजसंभवा हि परावस्तसाद्वीजं भोज्यमनेनैव प्रधानस्य भोज्यत्वं व्याख्यातम् । तसाद्गोक्ता पुरुषो भोज्या प्रकृतिस्तस्थो अङ्क इति । प्राकृतमत्तं त्रिगुणभेदपरिणामःवान्महदादं विशेषान्तं छिङ्गम् । अनेनैव चतुर्दशविश्वस्य मार्गस्य व्याख्या कृता भवति । सुखदुः खमोद्दसं इं इवन्यूतिमदं जगत्। न हि बीजस्य स्वादुपरिप्रहोऽस्तीति यावस प्रसृतिः । तस्याप्येवं तिसृष्ववस्थास्त्रज्ञत्वं भवति कीमारं योवनं जरा परिणामत्वात्तद्वत्तत्वम् । एवं प्रधानस्य व्यक्ततां गतस्योपलव्धिभवति तन्न बुद्धादीनि स्वादुनि भवन्ति । अध्यवसायसंकल्पाभिमाना इत्यथेन्द्रियार्था-न्पञ्च स्वाद्ति भवन्ति । एवं सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माण्येवं व्यक्त-मन्नमञ्यक्तमन्नमस्य निर्गुणो भोक्ता भोक्तृत्वाचैतन्यं प्रसिद्धं तस्य। यथाऽ-भिन्नें देवानामन्नादः सोमोऽन्नमिनेवान्नमित्येवंवित् । सोमसंज्ञोऽयं भूता-त्माऽग्निसंज्ञोऽप्यव्यक्तमुखा इति । वचनात्पुरुषो द्यव्यक्तमुखेन त्रिगुणं भुङ्गा इति । यो हैवं वेद संन्यासी योगी चाऽऽत्मयाजी चेति । अथ यहुन्न कश्चिच्छुन्यागारे कामिन्यः प्रविष्टाः स्पृशतीन्द्रियार्थास्त्रह्यो न स्पृशति प्रविष्टान्संन्यासी योगी चात्मयाजी चेति॥ १०॥ परं वा एतदात्मनो रूपं यदत्तमत्रमयो ह्ययं प्राणः । अथ न यद्यश्वात्यमन्ताऽश्रोताऽस्प्रष्टाऽद्रष्टा-ऽवक्ताऽघ्राताऽरसियता भवति प्राणांश्चीत्सृजतीत्येवं द्याह । अथ यदि खल्व-श्नाति प्राणसमृद्धो भूत्वा मन्ता भवति श्रोता भवति स्प्रष्टा भवति वक्ता भवति रसयिता भवति घाता भवति द्रष्टा भवतीति । एवं द्याह-अन्नाद्वे प्रजाः प्रजायन्ते याः काश्चिःपृथिवीश्रिताः । अतौ ऽ नेनेव जीवन्त्यथैतदिपय-न्त्यन्ततः ॥ ११ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं-सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यहरहः प्रव-तन्त्रज्ञमभिजिघ्धमाणानि सूर्यो रिमभिराददात्यनं तेनासौ तपत्यनेनाभि-विकाः पचन्तीमे प्राणा अग्निर्वा अन्नेनाभिज्वलत्यन्नकामेनेदं प्रकृष्णितं ब्रह्मणा । अतोऽन्नमात्मेत्युपासीतेत्येवं ह्याह । अन्नाद्भृतानि जायन्ते जाता-न्यन्नेन वर्धन्ते । अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्माद्ने तदुच्यते ॥ १२ ॥ अथा-न्यत्राप्युक्तं विश्वभृद्धे नामेषा तनूर्भगवतो विष्णोर्यदिद्मन्नम् । प्राणो वा अन्नस्य रसो मनः प्राणस्य विज्ञानं मनस आनन्दं विज्ञानस्येत्यन्नवान्प्राणवा-न्मनस्वान्विज्ञानवानानन्दवांश्व भवति यो हैवं वेद । यावन्तीह वे भूतान्य-ब्रमद्नित तावत्स्वन्तः स्थोऽब्रमत्ति यो हैवं वेद । अब्रमेव विजरन्नमन्नं संव-ननं स्मृतम् । अन्नं पशूनां प्राणोऽन्नं ज्येष्टमन्नं भिषक्स्मृतम् ॥ १३ ॥ अथा-न्यत्राप्युक्तमनं वा अस्य सर्वस्य योतिः कालश्रान्नस्य सूर्यो योतिः कालस्य । तस्यतद्भुपं यन्निमेवादिकालाःसंभृतं द्वादशात्मकं वत्सरमेतस्याभेयमधमध

बाहणम् । सघायं अविद्वार्थमाग्नेयं क्रमेणोःकर्नेण सार्पायं अविद्वार्थान्तं सीस्यम् । तत्रैकैकमात्मनी नवांशकं सचारकविधं सीक्ष्यत्वादेतत्प्रमाणमने-नैव प्रमीयते हि काल: । न विना प्रमाणेन प्रमेयस्योपल्डिय: । प्रमेयोऽपि प्रमाणतां पृथक्तवादुवेत्यात्मसंवोधनार्थमित्येवं ह्याह । यावत्यो वै काळस कलास्तावतीपु चरत्यसी यः कालं ब्रह्मेःयुपासीत कालसत्यातिदूरमपसरतीःयेवं ह्याह—कालात्स्रवन्ति भूतानि काकादृद्धि प्रयान्ति च । काले चासं नियच्छन्ति कालो सर्तिरसर्तिमान् ॥ १४ ॥ द्वे वाव ब्रह्मगो रूपे कालश्राकालश्राय यः त्रागादित्यात्सोऽकालोऽकलोऽथ य भादित्याद्यः स कालः सक्लः सक्लस वा एतद्वं यत्संवत्सरः संवत्सरात्स्व विमाः प्रजाः प्रजायन्ते संवत्सरेणेह वै जाता विवर्धन्ते संवरसरे प्रत्यस्तं यन्ति तसारसंवरसरो वै प्रजापतिः कालोऽनं बह्मनीडमात्मा चेत्येवं ह्याह । कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महात्मिन । यस्मिस्त पच्यते काळो यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १५ ॥ विग्रह-नानेष कालः सिन्युराजः प्रजानाम् । एष तस्थः सनिताख्यो यसादेवेमे चन्द्रक्षेत्रहसंबत्सराय्यः सूयन्तेऽधैभ्यः सर्वमिद्मत्र वा यक्तिचिच्छुभाग्रुभं दृश्येतेह लोके तदेतेभ्यसासादादित्यात्मा ब्रह्माथ कालमंज्ञमादित्यमुपासी-तादित्यो बह्मेत्वेकेऽयेवं द्याह । होता भोका हिवर्मत्रो यज्ञो विष्णुः प्रजा-पतिः। सर्वः कश्चिःप्रभुः साक्षी योऽमुब्मिन्भाति मण्डले ॥ १६ ॥ ब्रह्म ह वा इदमय आसीदेकोऽनन्तः प्रागनन्तो दक्षिणतोऽनन्तः प्रतीच्यनन्त उदी-च्यनन्त ऊर्ध्वं चादःङ् च सर्वतोऽनन्तः । न ह्यस्य प्राच्यादिदिशः फल्पन्तेऽथ तिर्यग्वाऽवाङ् वोध्वं वाऽनुद्ध एष परमात्माऽपरिमितोऽजः । अतक्यांऽचिन्त्य एव आकाशात्मा एवेप कृत्स्रश्रय एको जागर्ति। इत्येतसादाकाशादेव खिंददं चेतामात्रं बोधयत्यनेनैव चेदं ध्वायतेऽस्मिश्च प्रत्यस्तं याति । अस्यतद्भास्तरं रूपं यद्मुहिमनादित्ये तपत्ययौ चाधूमके यज्योतिश्चित्र-तरमुदरस्थोऽथ वा यः पचत्यन्नमित्येवं द्याह । यश्चेषोऽग्नो यश्चायं इद्वे यश्चासावादित्ये स एष एका इत्येकस्य हैकत्वमेति य एवं वेद ॥ १७ ॥ तथा तत्प्रयोगकल्पः प्राणायामः प्रत्याहारो ध्यानं तर्कः समाधिः पडङ्ग इत्युच्यते योगः । अनेन यदा पर्यन्पस्यति रक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम् । तदा विद्वान्पुण्यपापे विद्वाय परेऽत्यये सर्वमेकी करोत्येवं ह्याह । यथा पर्वतमादीसं नाश्रयन्ति

तद्वद्रस्वविदो दोषा नाश्रयन्ति कदाचन अधान्यत्राप्युक्तं—यदा वै बहिर्विद्वानमनो नियम्येन्द्रियाथाश्च प्राणो निवेशयिखा निःसंकल्पस्ततस्तिष्ठेत् । अप्राणादिह यस्मान्संभूतः प्राणसंज्ञको जीवस्तसात्राणो वे तुर्याख्ये धारयेत्राणमित्येवं द्याह । भचित्तं चित्तमध्य-स्यमचिन्त्यं गुद्धमुत्तमम् । तत्र चित्तं निधायेत तच छिङ्गं निराष्ट्रयम् ॥ १९ ॥ अथान्यत्राप्युक्तम्-अतः पराऽस्य धारणा तालुरसनामनिपीडमा-ब्राब्धनः प्राणितरोधनाह्नस तर्केण पश्यति यदात्मनात्मानमणोरणीयांसं बोतमानं मनःक्षयात्परयति तदात्मनात्मानं दृष्टा निरात्मा अवति निरात्मक-स्वादसंख्योऽयोनिश्चिन्यो मोक्षलक्षणिसयेतत्परं रहस्यमित्येवं ह्याह । वित्रस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म ग्रुभाग्रुभम् । प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुस्रमययमभता इति ॥ २०॥ अथान्यत्राष्युक्तम्-अध्वेगा नाडी सुप्रज्ञास्या प्राणसंचारिणी ताल्वन्तर्विच्छित्रा तया प्राणोंकारमनी युक्तयोध्वे सुकासेत्। तारवध्यमं परिवर्त्य चेन्द्रियाण्यसंयोज्य सहिमा सहिमानं निरीक्षेत तती निरात्मकत्वमेनि निरात्मकत्वान्न सुखदुःखभाग्भवति केवलत्वं छभता इस्येवं ह्याह । परः पूर्वं प्रतिष्ठाप्य निगृहीतानिकं ततः । तीत्वी पारमपारेण पश्चाद्यक्तीत मूर्धनि ॥ २१ ॥ अथान्यत्राप्युक्ते—हे वाव बहाणी अभिष्येषे ब्रह्मश्राशब्दश्राथ शब्देनेवाशब्दमाविष्क्रियतेऽथ तन्नोहिति शब्दोऽनेनीर्ध-मुक्तान्तोऽशब्दे निधनमेत्यथा हेवा गतिरेतदस्रतसेतत्सायुज्यत्वं निर्वृतत्वं तथा चेति । अथ यथोर्णनाभिस्तन्तुनोध्वभुत्कान्तोऽनकाशं छभतीत्येवं वाव खहत्रसावभिध्यातोप्रित्यनेनोध्वभुत्कान्तः स्वातच्यं अन्यथा परे शब्दवादिनः । अवणाङ्गुष्ठयोगेनानतह्वद्याकाशशब्दमाकर्णयन्ति ससविधेयं तस्योपमा । यथा नद्यः किङ्किणी कांस्वचककसेकविःकृत्धिका वृष्टिर्निवाते वदतीति तं पृथालक्षणमतीत्व परेऽज्ञाब्देऽव्यक्ते ब्रह्मण्यस्तं गतास्तत्र तेऽप्रथग्धार्मणोऽप्रथिववेक्या यथा संपन्ना मधुत्वं नाना रसा इत्येवं हाह । हे बहाणी वेदितत्ये शब्दब्रह्म परंच अत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २२ ॥ अथान्यत्राप्युक्ती—यः शब्द्रस्तदोग्नित्ये-तद्शरं यदस्यामं तच्छान्तमशब्दमभयमशोकमानन्दं तृष्टं स्थिरमचलममः तमच्युतं ध्रवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरत्वाय तदेता उपासीतेत्येवं ह्याह। योऽसौ परापरो देवा श्रोंकारो नाम नामतः । निःशब्दः शुन्यभूतस्तु मूर्झि

स्थाने ततोऽभ्यसेत् ॥ २३ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं—धनुः शरीरमोमित्येतच्छरः शिखाऽस्य मनस्तमोलक्षणं भिचा तमोऽतमाविष्टमागच्छत्यथाविष्टं भिचा-ऽलातचक्रमिव स्फुरन्तमादित्यवर्णमूर्जस्वन्तं ब्रह्म तमसः पर्यमपस्यत् । यद्मु िमन्नादिः येऽथ सोमेऽझौ विद्युति विभात्यथ अल्वेनं दृष्ट्वाऽमृतत्वं गच्छतीत्येवं ह्याह । ध्यानमन्तः परे तत्त्वे लक्ष्येषु च निधीयते । अतोऽवि-होषविज्ञानं विशेषसुपगच्छति ॥ मानसे च विलीने तु यत्सुखं चात्म-साक्षिकम् । तद्वस्य चामृतं ग्रुकं सा गतिलोंक एव सः ॥ २४ ॥ अथान्यत्रा-प्युक्तं-निद्रेवान्तर्हितेन्द्रियः शुद्धितमया धिया स्वप्त इव यः पश्यतीन्द्रिय-विलेऽविवशः प्रणवाख्यं प्रणेतारं भारूपं विगतनिदं विजरं विमृत्युं विशोकं च सोऽपि प्रणवाख्यः प्रणेता भारूपो विगतनिद्रो विजरो विमृत्युर्विशोको भवतीत्येवं ह्याह । एवं प्राणमथोङ्कारं यसात्सर्वमनेकघा । युनक्ति युक्तते बाऽपि तस्माद्योग इति स्मृतः॥ एकःवं प्राणमनसोहिन्द्रियाणां तथैव च। सर्वभावपरित्यागो योग इत्यभिधीयते ॥ २५ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं— यथा बाऽप्सुचारिणः शाकुतिकः सूत्रयन्नेणोद्धत्योदरेऽग्रौ जुहोत्येवं वाव खिल्यमान्त्राणानोमित्यनेनोद्धत्यानामयेऽमौ जुदोत्यतस्तप्तोर्वीय सः । अथ यथा तसोविंसर्पिस्तृणकाष्टसंस्पर्शेनोज्ज्वलतीत्येत्रं वाव खल्वसावप्राणाख्यः आणसंस्परोनोजवलति । अथ यदुजवलसेतद्रहाणो रूपं चैतद्रिष्णोः परमं पदं चैतद्वदस्य रुद्रत्वमेतत्तद्वितिषा चात्मानं विभज्य पूर्यतीमाँहो-कानित्येवं द्याह । वहेश्च यद्दृत्खलु विस्फुलिङ्गाः सूर्यान्मयूखाश्च तथैव तस्य । प्राणादयो वै पुनरेव तस्मादभ्युचरन्तीह यथाक्रमेण ॥ २६ ॥ अथान्यत्रा-ध्युक्तं—ब्रह्मणो वावेतत्तेजः परसामृतस्य । अशरीरसौष्ण्यमस्येतद्वतम् । अथाऽऽविः सन्तभिस निहितं वैतदेकाग्रेणैवमन्तर्हद्याकाशं विनुद्गित यत्तस्य ज्योतिरिच संपद्यतीत्यतस्तद्भावमचिरेणैति भूमावयस्पिण्डं निहितं यथाऽ-चिरेणैति भूमित्वम् । मृद्धत्संस्थमयस्पिण्डं यथाऽद्भययस्कारादयो नामि-भवन्ति । प्रणक्यति चित्तं तथाऽऽश्रयेण सहैवमित्येवं ह्याह । हृद्याकाशमयं कीशमानन्दं परमालयम् । स्वं योगश्च ततोऽस्माकं तेजश्चैवाग्निसूर्ययोः ॥ २७ ॥ अथान्यत्राप्युक्तं भूतेन्द्रियार्थानतिकम्य ततः प्रवज्याज्यं धतिदण्डं धनुर्गृहीत्वाऽनिभमानमयेन चैवेषुणा तं ब्रह्मद्वारपारं निहत्याऽऽद्यं संमोहमौली तृष्णेष्यीकुण्डली तन्द्रीराघवेण्यसिमानाध्यक्षः

प्रलोभदण्डं धनुर्गृहीत्वेच्छामयेन चेवेषुणेमानि खलु भूतानि हन्ति तं हत्वोङ्कारप्रवेनान्तह्दयाकाशस्य पारं तीत्वीऽऽविभूतेऽन्तराकाशे शनके-रवटैवावटकुद्धातुकामः संविशत्येवं ब्रह्मशालां विशेततश्चनुर्जालं ब्रह्मकोशं प्रणुदेहुर्वागमेनेत्यतः शुद्धः पूतः शून्यः शान्तोऽप्राणो निरात्माऽनन्तोऽश्रय्यः स्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतन्त्रः स्वे महिन्नि तिष्ठलतः स्वे महिन्नि तिष्ठमानं रप्टाऽऽवृत्तचक्रमिव संसारचकमाकोकयतीत्येवं ह्याह । पद्भिर्मासैस्त युक्तस्य नित्यमुक्तस्य देहिनः । अनन्तः परमो गुह्यः सम्यग्योगः प्रवर्तते । रजस्तमोभ्यां विद्धस्य सुसमिद्धस्य देहिनः । पुत्रदारकुटुम्बेपु सक्तस्य न कदाचन ॥ २८ ॥ एवसुकःवाडन्तर्हद्यः शाकायन्यस्तसी नमस्कृत्वाडनया ब्रह्मविद्यया राजन्ब्रह्मगः पन्थानमारूढाः पुत्राः प्रजापतेरिति संतोषं द्वंद्व-तितिक्षां शान्तःवं योगाभ्यासादवामोतीत्येतद्वस्यतमं नापुत्राय नाशिष्याय नाशान्ताय कीर्तयेदित्यनन्यभक्ताय सर्वगुणसंपन्नाय द्यात् ॥ ॐ शुचौ देशे शुचिः सन्वस्थः सद्धीयानः सद्वादी सद्यायी सद्याजी स्यादित्यतः सद्रहाणि सत्यभिलाषिणि निर्वृत्तौऽन्यसःफलिङक्षपाशो निराशः परेष्वात्मवद्विगतभयो निष्कामोऽक्षरयमपरिमितं सुखमाक्रम्य तिष्ठति । परमं वै शेवधेरिव परस्योद्धरणं यन्निष्कामस्वम् । स हि सर्वकाममयः पुरुषोऽ-ध्यवसायसंकल्पाभिमानिलिङ्गो बद्घोऽतस्तद्विपरीतो सुक्तः । अत्रैक आहुः— गुणः प्रकृतिभेद्वशाद्ध्यवसायात्मबन्धमुपागतोऽध्यवसायस्य दोपक्षयाद्वि-मोक्षः । मनसा द्येव पश्यति मनसा शुगोति कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धतिरधतिर्हीर्घीर्मीरिस्रेतःसर्वं मन एव । गुणौवैरुद्धमानः कलुपी-कृतश्चास्थिरश्चञ्चलो लुप्यमानः सस्पृहो व्यप्रश्चामिमानिन्तं प्रयात इत्यहं सो मसेदमित्येवं मन्यनानो निबन्नात्यात्मनात्मानं जालेनेव खचरोऽतः पुरु-षोऽध्यवसायसंकल्पाभिमानलिङ्गो बद्घोऽतस्तद्विपरीतो मुक्तः । तसान्निरध्य-वसायो निःसंकल्पो निरिभमानिसहेदेतन्मोक्षलक्षणमेवाऽत्र बह्मपद्व्येपोऽत्र द्वारविवरोऽनेनास्य तमसः पारं गमिष्यति । अत्र हि सर्वे कामाः समाहिता इत्यत्रोदाहरन्ति । यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ एतदुकःवाऽन्तर्हृदयः शाकायन्यस्तसौ नम-स्कृत्वा यथावदुपचारी कृतकृत्यो मरुदुत्तरायणं गतो न ह्यत्रोद्दर्भना गतिरे-थोऽत्र ब्रह्मपथः सौरं द्वारं भिस्वोध्र्वेन विनिर्गता इत्यत्रोदाहरन्ति । अनन्ता

रदमयस्तस्य दीपवद्यः स्थितो हृदि । सितासिताः कटुनीलाः कपिला मृदुलो-हिताः ॥ अर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् । ब्रह्मलोकमतिकम्य तेन यान्ति परां गतिम् ॥ यदस्यान्यद्रश्मिशतम् ध्वीमेव व्यवस्थितम् । तेन देवनिकायानां स्वधामानि प्रपद्यते ॥ ये नैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयोऽस्य मृदु-प्रभाः । इह कर्मोपभोगाय तैः संसरति सोऽवशः ॥ तस्मात्सर्गस्वर्गापवर्ग-हेतुर्भगवानसाव।दित्य इति ॥ ३० ॥ किमात्मकानि वा एतानीन्द्रियाणि प्रचरन्युद्गन्ता चैतेषामिह को नियन्ता वेत्याह प्रत्याहात्मात्मकानीत्यात्मा होषासुद्गन्ता नियन्ता वाऽ'सरसो भानवीयाश्च भरीचयो नामाथ पद्ममी रिश्मिभिविषयानत्ति । कतम आत्मेति । योऽर्य शुद्धः पूतः शून्यः शान्तादि-लक्षणोक्तः स्वकैर्टिङ्गैरपगृद्धः । तस्यैतलिङ्गमलिङ्गसामेर्यदौष्णयमाविष्टं चापां यः शिवतमो रस इत्येकेऽथ वावश्रोत्रं चक्षुर्मनः प्राण इत्येकेऽथ बुद्धिर्भृतिः रसृतिः प्रज्ञानमिरयेके । अथ ते वा एतस्यैवं यथैवेह वीजस्याङ्करा वाऽथ धूमाचिविं एफुलिङा इवाग्नेश्रेसत्रोदाहरन्ति । वह्नेश्र यद्वरखलु विष्फुलिङाः सूर्यान्स्यूखाश्च तथैव तस्य । प्राणादयो वै पुनरेव तसादभ्युचरन्तीह यथा-क्रमेण ॥ ३१ ॥ तस्माद्वा एतसादात्मनि सर्वे प्राणाः सर्वे कोकाः सर्वे वेदाः सर्वे देवाः सर्वाणि च भूतान्युचरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति । अथ यथाऽऽद्रेंधाग्नेरभ्याहितस्य पृथाधूमा निश्चरन्त्येवं वा एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यद्यवेदो यजुर्वेदः सामबेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्यो-पनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुच्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वा भूतानि ॥ ३२ ॥ पञ्चेष्टको वा एषोऽग्निः संवत्सरस्रस्येमा इष्टका यो वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः शरद्धेमन्तः स शिरःपक्षसीषृष्ठपुच्छवानेषोऽग्निः पुरुषविदः सेर्यः प्रजापतेः प्रथमा चितिः । करैर्यजमानमन्तिरिक्षमुत्क्षिप्त्वा वायवे प्रायच्छत्। प्राणौ वै वायुः प्राणोऽग्निस्तस्येमा इष्टका यः प्राणो व्यानोऽपानः समान उदानः स शिरःपक्षसीपृष्टपुच्छवानेषोऽग्निः पुरुषविद्सादिदमन्तिरिक्षं प्रजाप-तेर्द्वितीया चितिः करैर्यजमानं दिवमुत्क्षिप्त्वेन्द्राय प्रायच्छदसौ वा आदित्य इन्द्रः सैवोऽग्निस्तस्येमा इष्टका यहण्यज्ञःसामाथर्वाङ्गिरसा इतिहासः पुराणं स शिरःपक्षसीपुच्छपृष्ठवानेषोऽग्निः पुरुषविदः सैषा द्यौः प्रजापतेस्तृतीया वितिः करैर्यजमानस्यात्मविदेऽवदानं करोत्यथात्मविदुिक्षिप्य प्रायच्छत्तत्राऽऽनन्दी मोदी भवति ॥ ३३ ॥ पृथिवी गाईपत्योऽन्तिरिश्नं दक्षि- णामिर्योराहवनीयस्तत एव पवमानपावकशुचय आविष्कृतमेतेनास्य यज्ञम्। यतः पवमानपावकशुचिसंघातो हि जाठरस्तस्मादग्निर्यष्टव्यश्चेतव्यः स्तोतव्योऽ-भिध्यातच्यः । यजमानो हविर्गृहीत्वा देवताभिध्यानमिच्छति । हिरण्यवर्णः शक्ता ह्यादित्ये प्रतिष्ठितः। महुद्दंसस्तेजो हृषः सोऽस्मिन्नस्रो यजामहे ॥ इति चापि मन्नार्थं विचिनोति । तःसवितुर्वरेण्यं भगोऽस्याभिध्येयं यो बुद्धन्तःस्थो ध्यायीह सनःशान्तिपदमनुसरत्यात्मन्येव धत्तेऽत्रेमे स्ठोका भवन्ति । यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयोनाबुखाम्यते । तथा वृत्तिक्षयाचित्तं स्वयोनावुपशाम्यते ॥ स्वयोनावुपशान्तस्य मनसः सत्यकामतः । इन्द्रियार्थ-विमूहस्यानृताः कर्भवशानुगाः ॥ चित्तमेव हि संसारं तःप्रयतेन शोधयेत । यचित्तम्तन्मयो अवति गुद्धमेतत्सनातनम् ॥ चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म ग्रुभाग्रुभम् । प्रसन्नाःमनि स्थित्वा सुखमव्ययमक्षुते ॥ समासकं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि स्थात्तत्को न सुच्येत वन्धनात्।। मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं च।शुद्दमेव च । अशुद्धं कामसं-पर्कोच्छुदं कामविवर्जितम् ॥ लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम्। थदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ तावन्मनो निरोद्धव्यं हृदि थावद्गतक्षयम् । एतज्ज्ञानं च मोक्षं च दो बान्ये यन्थविस्तराः ॥ समाधि-निर्धीतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृद्यते ॥ अशामापोऽश्चिरश्चौ वा च्योन्नि च्योम न लक्षयेत्। एवमन्तर्गतं यस्य मनः स परिमुच्यते ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धाय विषयासङ्गि मोक्षे निर्विषयं स्मृतमिति ॥ अतोऽनग्निहोध्यनग्निचिद्ज्ञानभिध्यायिनां ब्रह्मणः पद्योमानुसारणं विरुद्धं तसाद्मिर्यष्टयश्चेतचाः स्तोतव्योऽभिध्यातव्यः ॥ ३४॥ नमोऽप्रये पृथिवीक्षिते लोकस्मृते लोकमस्मै यजमानाय धेहि नमो वायवेऽन्तिहस्रक्षिते लोकः तो लोकमसौ यजमानाय धेहि नम आदिलाय दिवि ि जोकस्मृते छोकमस्मै यजमानाय घेहि नमो ब्रह्मणे सर्वक्षिते सर्वस्मृते सर्वमसौ यजमानाय धेहि । हिरण्मयेन पात्रेण संस्यस्या-पिहितं मुखम्। तस्वं प्रज्ञपावृणु सत्यवर्माय विष्मवे । योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमिति ॥ एष इ वे सत्यधर्मो यदादित्यत्यादित्यत्वं तच्छुकं पुरुषमलिङ्गं नभसोऽन्तर्गतस्य तेजसोंऽशमात्रमेतचदादित्यस्य मध्य इवेलक्षिण्यसी चैतइसैतद्भृतमेतद्भगः । एतःसल्यभ्मों नभसोऽन्तर्गतस्य नेजसोंऽज्ञासात्रसेतत् । यदादित्यस्य मध्येऽसृतं यस्य हि सोमः प्राणा बाऽप्ययङ्करा एतद्रह्मेतद्रमृतमेतद्भर्गः । एतत्सत्यधर्मो नभसोऽन्तर्गतस्य नेजसोंऽशसात्रमेतचदादित्यस्य मध्ये यजुर्दाप्यति । ओमापो ज्योती स्मोऽस्तं ब्रह्म अर्भुवः खरोम् । अष्टपादं ग्रुचि हंसं त्रिसूत्रमणुमव्ययग् । दिधर्सीन्धं तेजसेन्धं सर्वं पर्यन्पर्यति ॥ नभसोऽन्तर्गस तेजसोंऽशमात्र-क्षेत्रद्वदादित्यस्य मध्ये उदित्वा मयुखे भवत एतःसवित्सत्यधर्म एतद्यजुरेतत्तप एतद्सिरेतद्वायुरेतस्प्राण एतद्वाप एतचन्द्रमा एतच्छुक्रमेतद्मृतम् । एतद्रस-विषयमेतज्ञानुरर्णवस्त्रसिक्षेत्र यजमानाः सैन्धव इव न्लीयन्त एषा वे ब्रह्म इताइत्र हि सर्वे कामाः समाहिता इसत्रोदाहरन्ति । अंग्रुपारय इवाणुवातेरितः संस्फुरत्यसावन्तर्गः सुराणाम् । यो हैवंविःस सविःस द्वैतवित्सैकधामेतः स्वात्तदात्मकश्च । ये बिन्दव इवाभ्युचरन्यजसं विद्युदि-वाश्रार्चिषः परमे च्योमन् । तेऽर्चिपो वे यशस आश्रयवशाजटाभिरूपा इव कृष्णवस्मिनः ॥ ३५ ॥ द्वे चाव खल्वेते ब्रह्मत्योतियो रूपके शान्त**मे**कं ससृदं चैकमथ यच्छान्तं तस्याऽऽवारं खमय यस्तमृद्मिदं तसान्नं तस्मान्मञ्जोषधाज्यामिषपुरोडाशस्थालीपाकादिभिर्षष्टत्रमन्तर्वेद्याम् । आस्त्य -वशिष्टेरन्नपानेश्वाऽऽस्यमाहवनीयमिति मत्वा तेजसः समृद्धे पुण्यछोकः विजित्यर्थायामृतःवाय च । अत्रोदःहरित—अग्निहोत्रं जुहुयाःस्वर्गकामो यसराज्यमित्रष्टोमेनाभियजति सोमराज्यमुक्येन सूर्यराज्यं पोडशिना स्वाराज्यमतिरात्रेण प्रजापत्यमासहस्रसंवत्सरान्तऋतुनेति । वर्षाधारस्नेह-यौगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः । अन्तर्याण्डोगयोगादिमौ स्थितावात्मग्रुची तथा ॥ ३६ ॥ तसादोमियनेनैतदुपासीतापरिमितं तेजसत्त्रेघाऽमि--हितमञ्जावादित्ये प्राणे । अथेपा नाड्यन्नबहुमित्येपाऽग्नौ हुतमादित्यं गमयत्यतो यो रसोऽस्तवस्त उद्गीयं वर्षति तेनेमे प्राणाः प्राणेभ्यः प्रजा इत्यत्रोदाहरन्ति यद्धविरमो हूयते तदादित्यं गमयति तत्सूरों रिम-भिर्वर्षति तेनाचं भवत्यन्नाद्भृतानामुत्वितित्येवं ह्याह । अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । शादित्याजायते वृधिर्वृष्टेरतं ततः प्रजाः ॥ ३७ ॥ अग्निहोत्रं जुद्धानो लोभजालं भिनत्यतः संमोहं छित्त्रा न क्रोधान्स्तुष्त्रानः काममभिध्यायमानस्ततश्चतुर्जालं ब्रह्मकोशं भिन्ददतः परमाकाशमत्र हि सौरसौम्याग्नेयसात्विकानि मण्डलानि भित्त्वा ततः शुद्धः सत्त्वान्तरस्थमचलममृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरं धाम सत्यकामसर्वज्ञत्वसंयुक्तं
स्वतंत्रं चैतन्यं स्वे महिन्नि तिष्ठमानं पद्मयत्रत्रोदाहरन्ति । रविमध्ये स्थितः
सोमः सोममध्ये हुताशनः । तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥
शारीरप्रादेशाङ्गष्टमात्रमणोरप्यणुं ध्यात्वाऽतः परमतां गच्छत्पत्र हि सर्वे
कामाः समाहिता इत्यत्रोदाहरन्ति । अङ्गुष्ठपादेशशरीरमात्रं प्रदीपप्रतापवद्दिस्थिधा हि । तहसाभिष्ट्यमानं महो देवो भुवनान्य।विवेश । ॐ नमो
ब्रह्मणे नमः ॥ ३८ ॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु षष्टः प्रपाठकः ॥ ६ ॥

क्षप्तिगांयत्रं विवृद्धंतरं वसन्तः प्राणो नुक्षत्राणि वसवः पुरस्तादुद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तवन्ति प्रनर्विशन्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति । अचिन्योऽमूर्तो गभीरो गुप्तोऽनवचो घनो गहनो निर्गुणः शुद्धो भास्वरो गुणभुग्मयोऽ-निर्वृत्तियोंगीश्ररः सर्वज्ञो मेघोऽप्रमेयोऽनाद्यन्तः श्रीमानजो धीमाननिर्देश्यः सर्वस्वस्वस्थाऽऽत्मा सर्वभुवस्वस्थेशानः सर्वस्यान्तरान्तरः ॥ इन्द्रसिष्ट्रपञ्चद्शो बृहद्गीष्मो व्यानः सोमो रुद्रा दक्षिणत उद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्त्यनाद्यन्तोऽपरिमितोऽरिच्छिन्नोऽ-परप्रयोज्यः स्वतन्त्रोऽलिङ्गोऽमूर्नोऽनन्तशक्तिधीता भास्करः ॥ २ ॥ मरुतौ जगती सप्तदशो वैरूपं वर्ण अपानः शुक्र आदित्याः पश्चादुद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति तच्छान्तमशब्दमभयमशोक-मानन्दं तृप्तं स्थिरमचलममृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरं धाम ॥ ३ ॥ विश्वे देवा अनुष्टुबेकविंशो वैराजः शरसमानो वरुणः साध्या उत्तरत उद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विश्वन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्त्यन्तःशुद्धः पूतः शून्यः शान्तोऽप्राणो निरात्माऽनन्तः ॥ ४ ॥ मित्रावरुणौ पङ्क्लिखिणवत्र-यास्रिंशौ शाकररैवते हेमन्तिशिशा उदानोऽङ्गिरसश्चनद्रमा अर्ध्वा उद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनर्विशन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति प्रणवाख्यं प्रणेतारं भारूपं विगतनिद्धं विजरं विमृत्युं विशोकम् ॥ ५ ॥ शनिराहुकेत्रगरक्षोय-क्षनरविहगशरभेभादयोऽधसादुद्यन्ति तपन्ति वर्षन्ति स्तुवन्ति पुनार्वे-शन्त्यन्तर्विवरेणेक्षन्ति यः प्राज्ञो विधरणः सर्वान्तरोऽक्षरः शुद्धः प्तो भान्तः शान्तः शान्तः ॥ ६ ॥ एष हि खल्वात्माउन्तर्हृद्येऽणीयानिद्धोऽग्नि-

विश्व विश्वरूपो ऽस्यैवाश्वमिदं सर्वमसिश्वोता इमाः प्रजाः । एव स्नामाऽपहत-याप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविचिकिःसोऽविपाशः सत्यसंकृत्यः सत्यकाम एव परमेश्वर एव भूताधिपतिरेष भूतपाळ एव सेतुर्विधरण एव हि खल्वात्मेशानः शंभुभवो रुद्धः प्रजापतिर्विश्वस्विरण्यगर्भः सत्यं प्राणी हंसः शास्ताऽच्यतो विष्णुर्नारायणः । यश्चेषोऽम्री यश्चायं हृद्ये यश्चासावादित्ये स एव एकः। तस्मे ते विश्वरूपाय सत्ये नमसि हिताय नमः ॥ ७ ॥ राजनमोहजालस्येष वे योनिर्यदस्वार्ये: अथेदानी ज्ञानोपसर्गा स्वर्गस्येष वाट्ये पुरसादुक्तेऽप्यधःसम्बेनाश्चिष्यन्त्यथ नित्यप्रसुदिता नित्यप्रवसिता नित्यपाचका नित्यं शिल्पोपजीविनोऽध ये चान्ये ह पुरयाचका अयाज्ययाजकाः शूदशिष्यः श्रदाश्र शास्त्रविद्वां-सोऽथ चे चान्ये ह चाटजटनटभटप्रव्रजितरङ्गावतारिणो राजकर्मणि पतितादयः। अथ ये चान्ये ह यक्षराक्षसभूतगरापिशाचोरगप्रहादीनामर्थं पुरस्कृत्य शमयाम इत्येवं खुवाणा अथ ये चान्ये ह वृथा कराय-कुण्डलिनः कापालिनोऽथ ये चान्ये ह वृथातर्कदृष्टान्तकुहकेन्द्रजालैवेदिकेषु परिख्यातुमिच्छन्ति तैः सह न संवसेत्प्रकाशभूता वै ते तस्करा अस्वर्धा इत्येवं ह्याह । नैरातम्यवादकुहकैर्मिथ्यादद्यान्त्हेतुभिः । आम्यङ्घोको न जानाति चेद्विद्यान्तरं तु यत् ॥ ८ ॥ बृहस्पतिर्वे गुको भूत्वेन्द्रस्याभयाया-षुरेश्यः क्षयायेमामविद्यामस्जत्तया शिवमशिवमित्युद्शन्यशिवं शिवमिति । वेदादिशास्त्रहिंसकधर्माभिध्यानमस्त्रिवति वदन्त्यतो नैनामभियीयेतान्यथेषा वन्ध्येवैषा रतिमात्रं फलमस्या वृत्तच्युतस्येव नारंभणीयेत्येवं द्याह । दूरमेते विपरीते विपूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता । विद्याभीष्यतं नचिकेतसं सन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्ते॥ विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदो-भयं सह । भविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽसृतमश्रुते ॥ अविद्यायामन्तरे वेष्ट्यमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः । दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मुढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ ९॥ देवासुरा ह वै य आत्मकामा ब्रह्म-णोऽन्तिकं प्रयातास्तसे नमस्कृत्वोचुर्भगवन्वयमात्मकामाः स वं नो बूही-ध्यात्वाऽमन्यतान्यतात्मानी वै तेऽसुरा अतोऽन्यतममेतेषामुक्तं तदिमे मूढा उपजीवन्यभिष्वक्षिणस्तर्याभिघातिनोऽनृताभिशंसिनः सत्यमि-वानृतं पर्यन्ति । इन्द्रजालवदिखतो यद्वेदेष्वभिहितं तत्सत्यं यद्वेदेपूक्तं तद्वि-

द्वांस उपजीवन्ति । तसाद्वाह्मणो नावेदिकमघीयीतायमर्थः स्वादिति ॥ १०॥ एतद्वाव तत्स्वरूपं नभसः खेऽन्तर्भृतस्य यत्परं तेजस्तत्रेधाऽभिहितममा आदिसे प्राण एतद्वाव तत्स्वरूपं नभसः खेडन्तर्भृतस्य यदोमित्येतद्क्षरम्। अनेनैव तदुद्वध्यत्युदयत्युच्छ्रसित्यजर्स ब्रह्मधीयालग्वं वात्रेव । एतःसमीरणे प्रकाशप्रक्षेपकाष्ण्यस्थानीयमेतद्भमस्येव समीरणे नभसि प्रशाख्यैवोत्कस्य स्कन्धारस्कन्धमनुसरति । अप्सु प्रक्षेपको छत्रणस्येव पृतस्य चौष्ण्यप्रिव । षिभिध्यातुर्विस्तृतिरिवैतदित्यत्रोदाहरन्ति । अथ कस्मादुच्यते वैद्युतः । यसा-दुखारितमात्र एव सर्वं शरीरं विद्योतयति तस्मादोसित्यनेनैतदुपासीतापरि-मितं तेजः । पुरुषश्चाक्षुषो योऽयं दक्षिणेऽक्षिण्यवस्थितः । इन्द्रोऽयमस्य जायेयं सव्ये चाक्षिण्यवस्थिता । समागमस्तयोरेव हृद्यान्तर्गते सुषो । तेजसाहोहितसात्र पिण्ड एवोभयोस्तयोः ॥ हृद्यादायता तावच्छुण्य-स्मिन्प्रतिष्ठिता। सारणी सा तयोनीडी ह्योरेका हिथा सती ॥ मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतस् । मारुतस्तृहसि चरन्मन्द्रं जनयति खरम् ॥ खजाग्नियोगादृदि संप्रयुक्तमणोर्छणुर्द्विरणुः कण्ठदेशे । जिह्वाप्रदेशे त्रयणुकं च विद्धि विनिर्गतं मातृकसेवमाहुः ॥ न पश्यन्मृः युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताम् । सर्वे हि पद्यन्पद्यति सर्वमाभ्रोति सर्वशः। चाधुपः खमचारी च सुप्तः सुप्तात्परश्च यः । भेदाश्चेतेऽस्य चत्वारस्तेभ्यस्तुर्य महत्तरम् ॥ त्रिष्वेकपाचरेद्रह्म त्रिपाचरति चोत्तरे । सत्यानृतोपभोगार्थो द्वैतीभावो महात्मन इति द्वैतीभावो महात्मन इति ॥ १९॥

इति मैत्रायण्युपनिषत्सु सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥ इति मैत्रायण्युपनिषत्समाप्ता ॥ २५ ॥

कौषीतिक ब्राह्मणोपनिषत् ॥ २६ ॥

श्रीमत्कौषीतकीविद्यावेद्यप्रज्ञापराक्षरम् । प्रतियोगिविनिर्भुक्तवहामात्रं विचिन्तये ॥

वृद्ध मनिस प्रतिष्ठिता मनो से वाचि प्रतिष्ठितम् । आविराविर्म-यौऽभूवेदसामत्साणीर्भतं मा मा हिंसीरनेनाधीरोनाहोरात्रात्संवसाम्यम इका नम इका नम ऋषिभ्यो मञ्जकृत्यो मञ्जपतिभ्यो नमो वौऽस्तु देवेभ्यः शिवा नः शंतमा भव सुमृळीका सरस्वती मा ते च्योम संदशि । अदब्धं सन दृषिरं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्टो दिक्षे मा मा हिंसीः॥ १॥

चित्री ह वे गाम्यीयणिर्यक्ष्यमाण आहणि वने स ह पुत्रं खेतकेतुं विज्ञाय याजयेति तं हासीनं पप्रच्छ गौतमस्य पुत्रास्ति संवृतं छोके विसानमा धारारायस्य स्मताहो वाध्वा तस्य मा कोके धास्यसीति । स होवाच नाहमेतहेद हन्ताचार्य प्रच्छानीति । स ह पितरसासाद्य पप्रच्छेतीति साऽप्राक्षीत्कर्थ प्रतिव्रवाणीति । स होवाचाहमप्येतन वेद सदस्येव वयं खाध्यायमधीत्य हरामहे यन्नः परे ददलेह्यभौ गमिष्याव इति । स ह समित्याणिश्चित्रं गार्थायांणं प्रतिचक्रम उपायानीति । तं होवाच ब्रह्माचाँऽसि गौतम यो न मानस्पामा एहि व्येव त्वा ज्यविष्यामीति ॥ १ ॥ स होवाच ये वे के चास्पालोकास्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति। तेवां प्राण: पूर्वपक्ष आप्यायते तानपरपक्षे न प्रजनयति । एतद्वे स्वरीस्य ्लोकस्य हारं यश्चन्द्रमास्तं यः प्रत्याह तमतिस्कत्तेश्य य एनं न प्रत्याह तमिह वृष्टिर्भूत्वा वर्षति स इह कीटो वा पतको वा शकुनिया शार्वूको वा सिंही वा मस्यो वा परश्वा वा पुरुषो वाडन्यो वेतेषु स्थानेषु प्रस्थाजायते यथाकर्स यथाविद्यम् । तमागतं पुच्छति कोऽसीति तं प्रतिवृपाद्विचक्षणाः हतवो रेत आन्द्रतं पञ्चदशान्त्रसृतात्पित्र्यवतस्तन्मा पुंसि कर्तथेरयध्वस् । पुंसा कर्जी मातरिमा निषिक्त स जाय उपजायमानो द्वादशत्रयोदश उपमासो द्वादशत्रयोद्दोन पित्रासं तद्विदे प्रतितद्विदेऽहं तन्म ऋतवो अमर्खव आभरध्यम् । तेन सत्येन तेन तपसा ऋतुरस्व्यातियोऽस्मि कोऽस्मि खम-सीति तमतिस्जते ॥ २ ॥ स एतं देवयानं पन्थानमापवामिलोकमागच्छति स वायुलोकं स आदिखलोकं स वरुणकोकं स इन्द्रकोकं स प्रजापतिलोकं स बहालोकं तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्य भारो हदो सुहूर्ता येष्टिहा विजरा नदीत्यो बृक्षः साळज्यं संस्थानमपराजितमायतनमिन्द्रप्रजापती द्वारः गोपौ । विभुप्रसितं विचक्षणाऽऽसन्यसितौजाः पर्यद्वः प्रिया च मानसी प्रति-रूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यावयतौ वै च जगान्यम्बाश्चाम्बावयवीश्चाप्सरसः । अम्बया नद्यक्तसित्थंविद्यागच्छति तं ब्रह्माहाभिधावत सम यशसा विजरां वा अयं नदीं प्रापन्न वा अयं जरियव्यतीति ॥ ३ ॥ तं पञ्च शतान्यप्सरसां प्रतियन्ति शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फळहस्ताः शतमाक्षनहस्ताः शतं मात्यहत्तार्तं ब्रह्मार्छकारेणार्छकुर्वन्ति स ब्रह्मार्छकारेणार्छकृतो ब्रह्म विद्वान्त्रह्याभिप्रैति स भागच्छत्यारं हुदं तं मनसाऽसेति । तमित्वा संप्रतिविदो मजनित स आगच्छति सुहूर्तान्येष्टिहांस्तेऽस्याद्पद्वनित स आगच्छति विजरां नदीं तां मनसैवात्येति । तत्सुकृतदुष्कृते धुनुते । तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतसुपयन्त्यप्रिया दुरकृतं तद्यथा रथेन धावयन्त्यचक्रे पर्यवेक्षत, एवमहोरात्रे पर्यवेक्षत एवं सुकृतदु कृते सर्वाणि च इंद्रानि स एव विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान्ब्रह्मवाभिष्मति॥ ४॥ स आगच्छतीत्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति, स आगच्छति सारूउयं संस्थानं तं ब्रह्मरसः प्रविशति, स आगच्छत्यपराजितमास्त्रतनं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति स आगच्छति। इन्द्रप्रजापती द्वारगोपो तावस्मादपद्ववतः स आगच्छति विभुगमितं तं ब्रह्मतेजः प्रविद्यति स आगच्छति विचक्षणामासन्दीं बृहद्वर्यंतरे सामनी पुत्रीं पादी इंग्रेतनीधरें चापरी वेरूपवेराजे अनूच्यते शाकररेवते तिरश्री सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपरयति स आगच्छत्यसितीजसं पर्यञ्जं स प्राणस्तस्य भूतं च भविष्यचा पूर्वी पादी श्रीश्रेरा चापरी बृहद्वधंतरे अनुच्ये भद्रयः ज्ञायज्ञीये शीर्षण्ये ऋचश्र सामानि च प्राचीनातानानि यज्ंिष तिरश्रीनानि सोमांशव उपसरणमुद्गीथ उपश्रीः श्रीरुपवर्हणं तस्मिन्बह्यास्ते तमित्थं-वित्पादेनेवाप्र आरोहति । तं ब्रह्मा पृष्छति कोऽसीति तं प्रतिव्यात् ॥ ५ ॥ ऋतरस्त्यात्वोऽस्त्याकाशाद्योनेः संभूतो भार्या एतत्संवत्सरस्य तेजो भूतस्य भूतस्य भूतस्य भूतस्यात्मा त्वमात्मासि यस्त्वमासे सोऽहमस्मीति तमाह कोऽहमस्मीति सत्यमिति ब्रुयािकं तद्यत्सत्यमिति यदन्यदेवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सद्य यद्देवाश्च प्राणाश्च तत्त्यं तदेतया वाचाऽभिव्याहियते सत्यमित्येताव-दिदं सर्वमिदं सर्वमिस । इत्येवैनं तदाह । तदेतदक्क्षोकेनाभ्युक्तम् यजूदरः सामशिरा असावृङ्मूर्तिरन्ययः । स ब्रह्मेति स विशेष ऋषिर्वह्ममयो महानिति । तमाह केन मे पौंखानि नामान्यामोधीति प्राणेनेति नूयात्। केन स्त्रीनामानीति वाचेति केन नपुंसकानीति मनसेति केन गन्धानिति प्राण-नेत्येव ब्रूयात् । केन रूपाणीति चक्षवेति केन शब्दानिति श्रोत्रेणेति केनान-रसानिति जिह्नयेति केन कर्माणीति हस्ताभ्यामिति केन सुखदुःखे इति शरीरे-णिति केनानन्दं रतिं प्रजातिमित्युपस्थेनेति । केनेत्या इति पादाभ्यामिति केन धियो विज्ञातन्यं कामानिति प्रज्ञयेति ब्रूयात्तमाह । आपो वै खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति सा या ब्रह्मणो जितिया व्यष्टिस्तां जितिं जयित तां च्याष्टिं व्यक्षते य एवं वेद य एवं वेद ॥ ६ ॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकौषीतिकत्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

प्राणी ब्रह्मीत ह स्माह कौषीतिकस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणी अनी दूर्त वाक्परिवेष्ट्री चक्षुर्गोष्ट्र श्रोत्रं संश्रावयितृ तसी वा एतसी प्राणाय ब्रह्मणे एताः सर्वा देवता अयाचमानाय बालिं हरन्ति तथो एवासी सर्वाणि भूतान्ययाचमानायैव बलिं हुरन्ति य एवं वेद तस्योपनिषन्न याचेदिति । तद्यथा श्रामं भिक्षित्वाऽलब्ध्वोपविशेन्नाहमतो दत्तमश्रीयामिति। य पुवैनं पुरस्तात्मत्याचक्षीरंस्त एवैनमुपमत्रयन्ते ददाम त इति । एष धर्मी याचितो अवति । अन्यतस्त्वेवैनसुपमञ्जयन्ते ददाम त इति । प्राणो बहोति ह स्माह वैद्वयस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणी वान्परस्ताबश्चरारुन्धे चक्षुः परस्ताच्छोत्रमारुन्धे श्रोत्रं परस्तान्मन आरुन्धे मनः परस्तात्प्राण आरुन्धे तसी वा एतसी प्राणाय ब्रह्मण एताः सर्वा देवता अयाचमानाय वर्लि हरनित तथो एवासी सर्वाणि भूतान्ययाचमानायैव बिं हरनित य एवं वेद तस्योपनिषक याचेदिति तद्यथा ग्रामं भिक्षित्वाऽलब्ध्वोपनिशेन्नाहमतो दत्तमश्रीयामिति य एवैनं पुरस्तात्प्रत्याचक्षीरंस्त एवैनमुपमन्त्रयन्ते ददाम त इत्येष धर्मी याचितो भवत्यन्यतस्त्वेवैनसुपमन्नयन्ते ददाम त इति ॥१॥ अथात एकधनावरोधनं यदेकधनमभिध्यायात्पौर्णमास्त्रां वाडमावास्यायां वा शुद्धपक्षे वा पुण्ये नक्षत्रेऽग्निसुपसमाधाय परिससुद्ध परिस्तीर्थ पर्युक्ष्यो-त्पूय दक्षिणं जान्वाच्य ख़ुवेण वा चमसेन वा कंसेन वैता आज्याहुतीर्जुहोति वाङ्नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽसुष्मादिदमवरूमां तस्य साहा । प्राणो नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुप्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा। चक्षुनीम देवताऽवरोधिनी सा मेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्य स्वाहा। श्रोत्रं नाम देवताऽवरोधिनी सा सेऽमुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा । मनो नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽसुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहा । प्रज्ञा नाम देवताऽवरोधिनी सा मेऽसुष्मादिदमवरुन्धां तस्यै स्वाहेत्यथ धूमगन्धं प्रजिञ्चायाज्यलेपेनाङ्गान्यनु विमृज्य वाचंयमोऽभिप्रवज्यार्थं ब्रुवीत दूतं वा प्रहिणुयाञ्चभते हैव ॥ २ ॥ अथातो दैवः सारो यस्य प्रियो बुभूपेद्यस्य वा एषां वे तेषामेवेकस्मिन्पर्वण्यग्निमुपसमाधायैतयैवावृतैता आज्याहु-तीर्जुहोति वाचं ते मिय जुहोम्यसौ स्वाहा । प्राणं ते मिय जुहोम्यसौ खाहा । चक्षुस्ते मिय जुहोम्यसौ खाहा । श्रोत्रं ते मिय जुहोम्यसौ खाहः ।

अनस्ते मिय जुहोम्यसौ स्वाहा । प्रज्ञां ते मिय जुहोम्यसौ स्वाहेत्यथ पूम-गन्धं प्रजिल्लायाज्यलेपेनाङ्गान्यतु विसृज्य वार्चयमोऽभिप्रवज्य संस्पर्श जिगमिषेद्पि वाताद्वा संभाषमाणितहेित्रयो हैंच भवति स्मरन्ति हैवास्मात् ॥ ३ ॥ अथातः सांयमनं प्रातर्दनमान्तरमसिहोत्रमिति वाचक्षते यावहै पुरुषो भाषते न तावत्याणितुं शक्नोति प्राणं तदा वाचि बुद्दोति यावद्वै पुरुषः प्राणिति न तावद्वाषितुं शक्नोति वार्च तदा प्राणे बुद्दोति। एते अनन्ते असृताहुती जामच स्वपंश्व संततमन्यविच्छन्नं जुहोत्यथ या अन्या आहुतयोऽन्तवत्यस्ताः कर्ममय्यो हि अवन्त्येतस् वै पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं न जुहवांचकः। उक्थं ब्रह्मेति ह स्माह ग्रुष्कम्टङारस्तदगित्युपासीत सर्वाण हास्मै भूतानि श्रेष्ठयायाभ्यर्चन्ते तद्यज्ञित्युपासीत सर्वाणि हास्मै भूतानि श्रेष्ठयाय युज्यन्ते तत्सामेत्युपासीत सर्वाणि हास्मै भुतानि श्रेष्ठयाय संनमन्ते तच्छीरित्युपासीत तद्यश इत्युपासीत तत्तेज इत्युपासीत तद्यथैतच्छखाणां श्रीमत्तमं यशस्त्रितमं तेजस्वितमं अवति तथो एवैवं विद्वान्सर्वेषां भूतानां श्रीमत्त्रमो यशस्वितमस्तेजस्वितमो अवति । तसेतमैष्टकं कर्ममयमात्मानम-ध्वर्युः संस्करोति तस्मिन्यजुर्मयं प्रवयति यजुर्मय ऋज्ययं होता ऋज्यये साम-मयमुद्भाता स एष सर्वस्ये त्रयीविद्याया आत्मैष उ एवास्थात्मा एतदात्मा अवति य एवं येद ॥ ४ ॥ अथातः सर्वजितः कौषीतकेखीण्युपासनानि अवन्ति यज्ञीपवीतं कृत्वाऽप आचस्य ब्रिइइपात्रं प्रसिच्योद्यन्तमादित्यसुपतिष्ठेत वर्गेंडिस पाप्मानं मे वृङ्धीत्यैतयैवावृता मध्ये सन्तमुद्दगींडिस पाप्मानं म उहुङ्घीत्येतयैवावृताऽस्तं यन्तं संवर्गोऽसि पाप्मानं मे संवृङ्घीति। यदहोरात्राभ्यां पापं करोति सं तदृङ्के । अथ मासि मास्यमावास्यायां पश्चा-चन्द्रमसं द्रयमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता हरिततृणाभ्यां वाक्प्रत्यस्यति यत्ते सुसीमं हृदयमधि चन्द्रमसि श्रितं तेनामृतत्वस्थेशाने माऽहं पौत्रमधं रुद्रमिति न हास्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रैतीति नु जातपुत्रस्थाथाजातपुत्रस्थाप्यायस्य समेतु ते सं ते पयांसि समु यन्तु वाजा यमादित्या अंशुमाप्याययन्तीत्येतास्तिस ऋची जिपत्वा माऽस्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययिष्ठा योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वर्षं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययस्वेति दैवीमावृतमावर्ते आदि-त्यस्यावृतमन्वावते इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते ॥ ५ ॥ अथ पौर्णमास्यां पुरस्ताचन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता सोमो राजाऽसि विचक्षणः पञ्चमुखोऽसि प्रजापतिर्वाह्मणस्त एकं मुखं तेन मुखेन राज्ञोऽस्ति तेन मुखेन सामनादं कुरु राजा त एकं मुखं तेन मुखेन विशोऽस्मि तेन मुखेन सामनादं कुरु इथेनस्त एकं मुखं तेन मुखेन पक्षिणोऽस्मि तेन मुखेन मामनादं कुर्वप्रिष्ट एकं मुखं तेन मुखेनेमं लोकमिस तेन मुखेन मामन्नादं कुरु त्विय पञ्चमं मुखं तेन मुखेन सर्वाणि भूतान्यस्मि तेन मुखेन मामन्नादं कुरु माऽस्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिरवक्षेष्ठा योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुक्षिरवक्षीयस्वेति दैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्त इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते । अथ संवेश्यञ्जायाये हृदयमिमृशोद्यते सुसीमे हृद्ये हितमन्तः प्रजापतौ मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं तेन माऽहं पौक्राकं इद्योति न हासात्पूर्वाः प्रजाः प्रैतीति 11 नोच्यायन्युत्रस्य सूर्धानमभिमृशेत् । अङ्गादङ्गात्संभवासे हृदयाद्रधिजायसे । आत्मा त्वं पुत्र माविथ स जीव शरदः शतमसाविति नामास्य गृह्णाति । अञ्मा अव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव तेजो वे पुत्रनामासि स जीव शरदः शतमसाविति नामास्य गृह्णाति येन प्रजापतिः प्रजाः पर्यगृह्णाद्रिष्ट्ये तेन त्वा परिगृह्णाम्यसाविति नामास्य गृह्णात्यथास्य दक्षिणे कर्णे जपत्यसे प्रयन्धि मघवन्नुजीविन्नितीन्द्र श्रेष्ठानि द्वविणानि धेहीति सच्ये मा च्छित्था मा व्यथिष्ठाः शतं शरद आयुषो जीव पुत्र ते नाम्ना मूर्थानसवजिद्यान्यसाविति त्रिर्मूर्धानमवजिष्ठेद्गवां त्वा हिंकारेणाभि हिं करोसीति त्रिर्मूर्धानमसि हिं कुर्यात् ॥ ७॥ अथातो देवः परिमर प्तद्वे ब्रह्म दीप्यते यद्भिज्वेलस्यैतन्त्रियते यन्न ज्वलति तस्यादिसमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदादित्यो दक्यतेऽथैतन्म्रियते यन्न इरयते तस्य चन्द्रमसमेव तेजो गच्छति वायुं प्राण एतद्वे ब्रह्म दीप्यते यचन्द्रमा दृश्यते । अथैतन्छियते यन्न दृश्यते तस्य विद्युतमेव तेजो गच्छिति वायुं प्राण एतद्वे ब्रह्म दीप्यते यद्विद्यद्विद्योततेऽथैतिन्स्रयते यन्न विद्योतते तस्य वायुमेव तेजो गच्छति वायुं प्राणः । ता वा एताः सर्वा देवता वायुनेव प्रविश्य वायौ मृता न मृच्छन्ते तसादेव उ पुनरुदीरत इत्यिष्टदैव-तमथाध्यात्ममेतहै ब्रह्म दीप्यते यहाचा वदत्यथैतिनम्रियते यन्न वदति तस्य चक्षुरेय तेजो मच्छति प्राणं प्राण एतद्दे ब्रह्म दीप्यते यचक्षुषा पश्यत्यथै-तन्त्रियते यज्ञ पश्यति तस्य श्रोत्रमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राण एतद्वे ब्रह्म

दीप्यते यच्छोत्रेण शूणोत्यथैतिन्स्रयते यज्ञ शूणोति तस्य मन एव तेजो गच्छिति प्राणं प्राण एतद्वे ब्रह्म दीप्यते यन्मनसा ध्यायत्यथैतन्द्रियते यन ध्यायति तस्य प्राणमेव तेजो गच्छति प्राणं प्राणस्ता वा एताः सर्वा देवताः प्राणमेव प्रविश्य प्राणे सृता न सृच्छन्ते तस्पादेव उ पुनरुदीरते तद्यदि ह वा एवं विद्वांस उभी पर्वताविभप्रवर्तेयातां तुस्तूर्षमाणी दक्षिणश्चीत्तरश्च न हैवैनं स्तृण्वीयाताम् । अथ य एनं द्विषन्ति यांश्च स्वयं द्वेष्टि त एनं सर्वे परिम्रियन्ते ॥८॥ अथातो निःश्रेयसादानं सर्वा ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमानाः । असा-च्छरीरादु चक्रमुस्तद्दारुभूतं शिक्ष्येऽथैनद्वानप्रविवेश तद्वाचा वदच्छिक्य एव । अथैनचक्षुः प्रविवेश तद्वाचा वदचक्षुषा पश्यिच्छित्र्य एवाथैनच्छोत्रं प्रविवेश तद्वाचा वदचक्षुषा पश्यच्छ्रोत्रेण शुण्वच्छित्र्य एवाथैमन्मनः प्रतिवेश तद्वाचावद बक्षुषा परयच्छ्रोत्रेण राण्वन्मनला ध्यायच्छिरय एवाथैनत्प्राणः प्रविवेश तत्तत एव समुत्तस्थी ते देवाः प्राणे निःश्रेयसं विदित्वा प्राणमेव प्रज्ञात्मानमभिसंभूय सहैतैः सर्वेरस्थालोकादु चक्रयुः । ते वायुप्रतिष्ठा आका-शात्मानः स्वरीयुस्तथो एवैवं विद्वान्सर्वेषां भूतानां शाणसेव प्रज्ञात्मानमभि-संभूय सहैतैः सर्वेरसाच्छरीरादुरकामति स वायुप्रतिष्ठ आकाशात्मा स्वरेति स तद्भवति यत्रैते देवासत्प्राप्य तदस्तो भवति यदस्ता देवाः ॥ ९ ॥ अथातः पितापुत्रीयं संप्रदानमिति चाचक्षते । पिता पुत्रं ग्रेज्यन्नाह्वयति संस्तीर्याप्रिसुपसमाधायोदकुम्भं सपात्रसुपनिधायाहतेन वाससा संप्रच्छन्नः स्वयं स्थेत एत्य पुत्र उपरिष्टाद्शिनिपचते, इन्द्रियैरस्थे-न्द्रियाणि संस्पृत्यापि वाऽस्याभिमुखत एवासीताथासे संप्रयच्छति वार्च में त्विय द्धानीति पिता वाचं ते मिय द्ध इति पुत्रः प्राणं से त्विय द्धा-नीति पिता प्राणं ते मिय द्रध इति पुत्रः । चक्षुर्मे त्विय द्रधानीति पिता चक्षुस्ते मिय द्रध इति पुत्रः। श्रोत्रं से त्वयि द्रधानीति पिता श्रोत्रं ते मिय द्ध इति पुत्रः। अन्नरसान्मे त्विय द्धानीति पिता अन्नरसांस्ते मयि द्ध इति पुत्रः । कर्माणि मे त्विय द्धानीति पिता कर्माणि ते मिय द्ध इति पुत्रः । पुखदुः से त्विय द्धानीति पिता सुखदुः ले ते मिय द्ध इति पुत्रः। आनन्दं रातिं प्रजातिं मे त्वयि द्धानीति पिता, आनन्दं रतिं प्रजातिं ते मिय द्ध इति पुत्रः । इत्या मे त्विय द्धानीति पिता, इत्यास्ते मयि द्ध इति पुत्रः । धियो विज्ञातव्यं कामान्से त्वयि द्धानीति पिता

ियो विज्ञातन्यं कामांस्ते मिय द्ध इति पुत्रः । अय दक्षिणावुद्माङ्क-पनिष्कामित तं पिताऽनुमन्नयते यशो नहावचसमन्नायं कीर्तिस्त्वा जुषता-प्रित्ययेतरः सन्यमंसमन्ववेक्षते पाणिनाऽन्तर्धाय वसनान्तेन वा प्रच्छाय स्वर्गालोकान्कामानामुहीति स यद्यगदः स्वात्पुत्रस्थैश्वर्ये पिता वसेत्परि वा व्रजेखद्यु वे प्रयाद्यदेवैनं समापयित तथा समापियतन्यो भवति तथा समापियतन्यो भवति ॥ १०॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकौषीतिकवाह्मणारण्यकोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ प्रतर्दनो ह दैवोदासिरिन्हस्य प्रियं धामोपजगाम। युद्धेन च पौरुषेण च तं हेन्द्र उवाच । प्रतर्दन वरं तेददानीति स होवाच प्रतर्दनः। त्वसेव मे वृणीप्व यं त्वं सनुष्याय हिततमं सन्यस इति तं हेन्द्र उवाच । न वै वरोऽक्रसी वृणीते त्वसेव वृणीष्वेत्येवसवरो वै किल म इति होवाच प्रतर्दनोऽथो खिल्वन्द्रः सत्यादेव नेयाय । सत्यं हीन्द्रः स होवाच । मामेव विजानीह्येत-देवाहं सनुष्याय हिततसं सन्ये । यन्सां त्रिजानीयात् । त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्र-महनमरून्मुखान्यनीन्सालावृकेम्यः प्रायच्छं बह्वीः संघा अतिऋम्य दिनि प्रह्लादीयानतृणसहसन्तरिक्षे पौलोमान्य्थिज्यां कालखाञ्जान् । तस्य मे तत्र नलोस च सा भीयते । स यो मां विजानीयान्नास्य केन च कर्मणा लोको सीयते । न सातृवधेन न पितृवधेन न स्तेयेन न अणहत्यया नास्य पापं च न चकुपो मुखान्नीलं वेतीति ॥ १ ॥ स होवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्स्व । आयुः प्राणः प्राणो वा आयुः प्राण एवासृतम् । यावद्धयस्मिञ्शरीरे प्राणो वसित तावदायुः । प्राणेन द्धेवा-सुर्ष्मिँ छोकेऽसृतत्वमामोति । प्रज्ञया सत्यं संकल्पम् । स यो ममायुर-सृतमित्युपास्ते सर्वमायुरसिँहोक एति । आमोलसृतत्वमक्षिति स्वर्गे लोके। तद्भैक आहुरेकभूयं वै प्राणा गच्छन्तीति । न हि कश्चन शक्नुयात्सकृद्वाचा नाम प्रज्ञापियतुं चक्षुषा रूपं श्रोत्रेण शब्दं मनसा ध्यातुमित्येकसूयं वै प्राणाः। एकैकमे रानि सर्वाण्येव प्रज्ञापयन्ति। वाचं वदन्तीं सर्वे प्राणा अनुवद्गित । चक्षुः पश्यत्सर्वे प्राणा अनु पश्यन्ति श्रोत्रं शृण्वत्सर्वे प्राणा अनुश्रुण्वन्ति मनो ध्यायत्सर्वे प्राणा अनुध्यायन्ति प्राणं प्राणन्तं सर्वे भाणा अनुप्राणन्तीति । एवसु हैतदिति हेन्द्र उवाच । अस्ति त्वेव प्राणानां निःश्रेयसमिति ॥ २ ॥ जीवति वागपेतो मूकान्हि पश्यामो जीवति चक्षु- ब्षेतोऽन्धान्हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो वधिरान्हि पश्यामो जीवति अनोपेतो बालान्हि पदयासो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्न इति। एवं हि पश्याम इति । अथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्सेदं अरीरं परिगृह्योत्थाप-यति । तस्मादेतदेवोऽथसुपासीत । यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः । सह होतावस्थिन्दारीरे वसतः सहोत्काभतस्तस्यैवैव दृष्टिः । एतद्विज्ञा-नम् । यत्रेतत्पुरुषः सुप्तः स्वमं न कंचन पर्यत्यथास्मिन्पाण एवैकधा भवति। तदैनं वाक्सवेंनीमिकः सहाप्येति चक्षुः सर्वे रूपेः सहाप्येति श्रोत्रं सवैं: शब्दै: सहाप्येति मनः सर्वेध्यानैः सहाप्येति । स यदा प्रतिबुध्यते । यथाग्रेज्वेलतः सर्वा दिशो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरक्षेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः। तस्पैपैव सिद्धिः । एतद्विज्ञानम् । यत्रैतत्पुरुष आतीं मरिष्यन्नावल्यं न्येत्य संमोहं न्येति तदाहुः । उदक्रमीचित्तस् । न इग्रणोति न पश्यति न वाचा वदति न ध्यायत्यथासिन्प्राण एवेक्घा अवति तदैनं वाक्सवैंनीमिभः सहाप्येति चक्षुः सर्वे रूपेः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वेः शब्देः सहाप्येति मनः सर्वेध्यांनैः सहाप्येति यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेज्वेलतो विस्फुलिङ्गा विप्रति-छरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो कोकाः ॥ ३ ॥ स यदाऽस्माच्छरीरादुन्कामति सहैवेतैः सर्वेहत्कामति वाग-स्मात्सर्वाणि नामान्यभिविस्त्रते । वाचा सर्वाणि नामान्यामोति प्राणोऽसा-त्सर्वान्गन्धानभिविस्वजते प्राणेन सर्वान्गन्धानामोति चक्षुरस्मात्सर्वाणि रूपाण्यभिविस्तते चक्षुषा सर्वाणि रूपाण्यामोति श्रोत्रमस्मात्सर्वान्शब्दान-भिविस्जते शोत्रेण सर्वाञ्जवदानामोति सनोऽस्मात्सर्वाणि ध्यानान्यभिवि-स्जते मनसा सर्वाणि ध्यानान्यामोति सेषा प्राणे सर्वाप्तिः। यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः सह होतावस्थिञ्ज्ञारीरे वसतः सहोत्कामतः। अथ खलु यथाऽस्यै प्रज्ञायै सर्वाणि भूतान्येकं भवन्ति तद्व्याख्यासामः॥ ।। ४ ॥ वागेवास्या एकमङ्गमदूह्ळं तस्ये नाम परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा। याण एवास्या एकमङ्गमदृह्ळं तस्य गन्धः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा चक्षु-रेवासा एकमङ्गमदूह्ळं तस्य रूपं परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा श्रोत्रमेवासा एकमङ्गमदृह्ळं तस्य शब्दः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा जिह्नेवास्या एकमङ्ग नदृह्ळं तस्या अन्नरसः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा हस्तावेवास्या एकमङ्गम-

दहळं तयोः कर्भ परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा शरीरमेवास्या एकमङ्गमदृहळं तस्य स्वदुः खे परस्तात्अतिविहिता भूतमात्रोपस्य एवास्या एकमङ्गमदहळं तस्यानन्दो रतिः प्रजातिः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा पादावेवास्या एक-सङ्ग्रह्म तयोरित्याः परस्तात्प्रतिविहितौ भूतमात्रा प्रज्ञैवास्या एकमङ्ग-अदहळं तस्यै धियो विज्ञातव्यं कामाः परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा ॥ ५ ॥ प्रज्ञया वाचं समारुद्ध वाचा सर्वाणि नामान्याप्तोति । प्रज्ञया प्राणं समारुद्ध ग्राणेन सर्वान्गन्धानामोति प्रज्यान्यक्षुः समारहा चक्षुषा सर्वाण रूपाण्यामोति ग्रज्ञया श्रोत्रं समारुह्य श्रोत्रेण सर्वाञ्झाञ्जानामोति प्रज्ञया जिह्नां समारुह्य जिह्नया सर्वानन्नरसानामोति प्रज्ञया हस्ती समारु हस्ताभ्यां सर्वाणि कर्मा-ण्यासोति प्रज्या शरीरं समारुद्ध शरीरेण सुखदुःखे आप्नोति प्रज्योपस्थं समारह्योपस्थेनानन्दं रतिं प्रजातिमासोति प्रज्ञया पादी समारह्य पादाभ्यां सर्वा इत्या आमोति प्रज्येव धियं समारुख प्रज्येव धियो विज्ञातन्यं कामा-नामोति ॥ ६ ॥ न हि प्रज्ञापेता वाङ्नाम किंचन प्रज्ञापयेत् । अन्यत्र से मनोऽभूदित्याह । नाहमेतन्नाम प्राज्ञासिषमिति । न हि प्रज्ञापेतः प्राणो गन्धं कंचन प्रज्ञाप्येदन्यन्न से सनोऽभूदित्याह नाहमेतं गन्धं प्राज्ञासिषमिति । न हि प्रज्ञापेतं चक्षू रूपं किंचन प्रज्ञपयेदन्यत्र मे मनोऽभृदिखाह । नाहमेतदूपं प्राज्ञासिष्मिति न प्रज्ञापेतं श्रोतं शब्दं कंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र से मनोऽभूदि-त्याह । नाहमेतं शब्दं प्राज्ञासिपमिति न हि प्रज्ञापेता जिह्वाऽन्नरसं कंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र से मनोऽभूदिलाह । नाहमेतमन्नरसं प्राज्ञासिषमिति न प्रज्ञापेती हस्ती कर्म किंचन प्रज्ञापयेतामन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतत्कर्भ शाज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेतं शरीरं सुखं दुःखं किंचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह नाहमेतत्सुखं दुःखं प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेत उपस्थ आनन्दं रतिं प्रजातिं कांचन प्रज्ञापयेदन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतमानन्दं न रितं न प्रजातिं प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेतौ पादावित्यां कांचन प्रज्ञापये-तामन्यत्र मे मनोऽभूदित्याह । नाहमेतामित्यां प्राज्ञासिषमितिं । न हि प्रज्ञापेता थीः काचन सिध्येन प्रज्ञातव्यं प्रज्ञायेत ॥ ७ ॥ न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यान गन्धं विजिज्ञासीत घातारं विद्यान रूपं विजिज्ञासीत रूप-विद्यं विद्यान शब्दं विजिज्ञासीत श्रोतारं विद्यानान्नरसं विजिज्ञासीतान्नरसस्य विज्ञातारं विद्यात्र कर्म विजिज्ञासीत कर्तारं विद्यात्र सुखदुःखे विजिज्ञासीत

ति ।।

स ता-ता-

त्रें ते ।

नः वैव शिहं

चा भिः

ानः ति-

भ्यो ।ग-

मा-णि

ान-वि-

ाः ।

11

धु-स्या

म-

सुखदुःखयोर्विज्ञातारं विद्यान्नानन्दं न रितं न प्रजातिं विजिज्ञासीतानन्द्स्य रतेः प्रजातिर्विज्ञातारं विद्यान्नात्यां विजिज्ञासीतेतारं विद्यात् । न मनो विजिज्ञासीत मन्तारं विद्यात् । ता वा एता दशैव भूतमात्रा अधिप्रज्ञं दश प्रज्ञामात्रा अधिभृतं यद्धि भूतमात्रा न स्युर्ने प्रज्ञामात्राः स्युर्यद्वा प्रज्ञामात्राः न स्युर्ने भूतमात्राः स्युः । न ह्यन्यतरतो रूपं किंचन सिध्येत् । नो एतन्नाना, तद्यथा रथस्यारेषु नेमिरिपतो नाभावरा अपिता एवमेवेता भूतमात्राः प्रज्ञामात्राः स्विपताः प्रज्ञामात्राः प्रज्ञामात्राः स्विपताः प्रज्ञामात्राः प्रज्ञामात्राः स्विपताः प्रज्ञामात्राः प्राणेऽपिताः स एष प्राण एव प्रज्ञातमानन्दोऽजरो- अमृतः । न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयान् । एष होवैनं साधु कर्म कारयित तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उ एवेनमसाधु कर्म कारयित तं यमघो निनीषते । एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष सर्वेशः स म आत्मेति विद्यात्स म आत्मेति विद्यात्स । ८ ॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकौषीतिकब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ गाग्यों ह वै बालाकिरन्चानः संस्पृष्ट आस सोऽवददुशीनरेषु स वसन्मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु काशिविदेहेन्विति स हाजातशत्रुं काश्यमेस्योवाच । ब्रह्म ते ब्रवाणीति तं होवाचाजातशत्रुः । सहस्रं द्रमस्त इत्येतस्यां वाचि जनको जनक इति वा उ जना धावन्तीति ॥ १ ॥ आदित्ये वृहचन्द्रमस्यन्नं विद्युति सत्यं स्तनियत्नो शब्दो वायाविन्द्रो वेकुण्ठ आकाशे पूर्णममौ विषासिहिरित्यप्सु तेज इत्यधिदैवतमथाध्यात्ममादशें प्रतिरूपश्चायायां द्वितीयः प्रतिश्चत्काया-मसुरिति शब्दे मृत्युः स्वमे यमः शरीरे प्रजापतिद्विश्चणेऽक्षिणि वाचः सब्येऽ-क्षिणि सत्यस्य ॥ २ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवेष आदित्ये पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमां मेतसिन्संवादियष्ठाः । बृहन्पाण्डरवासा अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपासेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपासेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धे भवति ॥ ३ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवेष चन्द्रमसि पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमां मेतसिन्संवादियष्ठाः सोमो राजाऽक्रस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो मेवसुपासतेऽक्रस्यात्मा भवति ॥ ४ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवेष विद्युति पुरुषस्तमेवाहसुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमां मेतसिनसंवादियष्ठास्तेजस आत्मेति वा अहमेतसुपास

इति स यो हैतमेवसुपास्ते तेजस आत्मा भवति ॥ ५ ॥ स होवाच

बार्लाव्हर्य एवेष स्तनियती पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातरात्रमा शैतिसिन्संबाद्रिखन्नाः शब्दस्यात्मेति वा अहमेत्रमुपास इति स यो हैतमैव-सुपास्ते शब्दस्थात्मा अवति ॥ ६ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवेष आकारो पुरुषस्तमेवाहसुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमी मैतस्मिन्संवादयिष्टाः पूर्णम-अवर्ति ब्रह्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपासे पूर्यते प्रजया पशुक्तिः । नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा कालास्प्रवर्तते ॥ ७ ॥ स होनाच बालांकियं एवेष क्यो पुरुषस्तमेवाहमुपास इति त होवाचाजातशत्रुमा मैत-सिन्संव्यवस्थिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतसुपास इति स यो हैतमेवसुपास्ते । जिब्णुई वापराजयिब्णुरन्यतस्यजायी भवति ॥ ८॥ स होवाच बालांकियं एवेषोऽमौ पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजात-शत्रुमी मैत्सिन्संवादिषष्टा विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैत-सेवसुपास्ते विषासिहर्दैवान्वेष भवति ॥ ९ ॥ सं होवाच बालांकिर्य एवेषो-**ऽ**प्सु पुरुषस्तमेवाहसुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमी मैतस्मिन्संवादयिष्ठा नाम्न आत्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते नाम्न आत्मा अवतीत्यधिदेवतसथाध्यात्मस् ॥ १० ॥ स होवाच बालाकिर्य एवेष आदर्शे पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमी भैतस्मिन्संवादविष्टाः प्रति-रूप इति वा अहमेतसुपास इति स यो हैतमेवसुपास्ते प्रतिरूपो हैवास्य प्रजायामाजायते नाप्रतिरूपः ॥ ११ ॥ स होवाच कालाकिर्य एवेष प्रतिश्च-त्कायां पुरुषस्तमेवाहसुपास इति, तं होवाचाजातशत्रुमा मैतसिन्संवादिषष्टा द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतसुपास इति स यो हैतसेवसुपासे विन्दते द्वितीयाद्वितीयवान्भवति ॥ १२ ॥ स होवाच बालांकिर्य एवेष शब्दः पुरुषमन्वेति तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमी मैतस्मिन्संवाद्यिष्ठा असुरिति वा अहमेतसुपास इति स यो हैतमेवसुपासे नो एव स्वयं नास मजा पुरा काळात्संमोहमेति॥ १३॥ स होवाच बाळाकिर्प्य एवेष छाया-अरुपस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातरात्रुमी मैतस्मिन्संवादिषष्टा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपासे नो एव स्वयं नास्य भजा पुरा कालात्प्रमीयते ॥ १४ ॥ स होवाच बालांकियं एवेष शारीरः पुरु-षस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमी मैतस्मिन्संवादयिष्ठाः प्रजापति-रिति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते प्रजायते प्रजया पश्चिमः ॥ १५ ॥ स होवाच बालाकिर्य एवैष प्राज्ञ आत्मा बेनैतत्पुरुषः सुप्तः स्वप्न्यया चरति तमेवाहसुपास इति तं होवाचाजातशश्रुमां मैतस्पि-न्संवाद्यिष्ठा यमो राजेति वा अहमेतसुपास इति स यो हैतमेवसुपासे सर्व हासा इदं श्रेष्ट्याय यम्यते ॥ १६ ॥ स होवाच वालाकिये एवेष दक्षिणेऽ-क्षन्पुरुषस्तमेवाहसुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमी सैतस्मिन्संवाद्यिष्ठा नाम्न आत्माऽग्नेरात्मा ज्योतिष आत्मेति वा अहमेतसुपास इति स यो हैत-मेवसुपास्त एतेषां सर्वेषासात्मा भवति ॥ १७ ॥ स होवाच वालाकिर्य एवैष सन्येऽक्षन्पुरुषस्तमेवाहसुपास इति तं होवाचाजातशत्रुमां सैतस्मिनसंवाद-थिष्ठाः सत्यस्यात्मा विद्युत आत्मा तेजस आत्मेति वा अहसेतसुपास इति स यो हैतमेवमुपास्त एतेषां सर्वेषामात्मा अवतीति ॥ १८ ॥ तत उ ह बाला-किस्तरणीमास तं होवाचाजातशञ्चः । एतावञ्च बालाका ३ इ इलेतावद्धीति होवाच बालाकिस्तं होवाचाजातशत्रुर्भुषा वै किल मा समयाद्यिष्ठा बह्म ते ब्रवाणीति । स होवाच । यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वैतत्कर्स स वे वेदितच्य इति तत उ ह वालाकिः समित्पाणिः प्रतिचक्रम उपायानीति तं होवाचाजातशत्रः प्रतिलोमरूपमेव तत्स्याचन्क्षत्रियो वाह्यणसुपनयेत् । एहि च्येव त्वा ज्ञपयिष्यामीति तं ह पाणाविभपद्य प्रवज्ञाज तौ ह सुसं पुरुष-माजग्मतुस्तं हाजातशत्रुरामत्र्यांचके । बृहन्पाण्डरवासः सोम राजन्निति । स उ ह तूर्णीमेव शिक्ये। तत उ हैनं यष्ट्याविचिक्षेप स तत एव ससु-त्तर्थों तं होवाचाजातरात्रः । क्षेप एतदालाके पुरुषोऽशियष्ट क्षेतद्भू-कुत एतदागा इदिति। तत उ ह बाला किन विजन्ने तं हो का चाता तता प्रयंत्रेष पुतदालाके पुरुषोऽशयिष्ट यत्रैतदभ्यत एतदागादिति । हिता नाम हदयस नाड्यो हृदयापुरीततमभिप्रतन्वन्ति तद्यथा सहस्रधा देशो विपाटितस्ताव-दुग्ज्यः पिङ्गलस्याणिङ्गा तिष्टन्ति । ग्रुक्कस्य कृष्णस्य पीतस्य लोहितस्येति तासु तदा भवति । यदा सुप्तः स्वप्न न कंचन पश्यत्यथास्मिन्प्राण एवैकधा भवति तदैनं वाक्सवैर्नामिभः सहाप्येति चक्षुः सर्वे रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः मनः सर्वेध्यानैः सहाप्येति स यदा प्रतिबुध्यते शब्दैः सहाप्येति यथाऽभेज्वेलतः सर्वा दिशो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्टेरन्नैवभेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः ॥ १९॥ तद्यथा क्षुरः क्षुरधानेऽवहितः स्यात् । विश्वंभरो वा विश्वंभरकुलाय एवमेवैष प्रज्ञ आत्मेदंशरीरमात्मानमनुप्रविष्ट आलोमभ्य आनसेभ्यः । तमेतमा-तमामेनत आत्मानोऽन्ववस्यन्ति यथा श्रेष्टिनं स्वाः। तद्यथा श्रेष्टी स्वर्भुक्ते यथा वा स्वाः श्रेष्टिनं अअन्त्येवमेवेष प्रज्ञात्मेतेरात्मिभ्रेष्ट्रे । एवं वे तमात्मानमेत आत्मानो अअन्ति । स यावद्ध वा इन्द्र एतमात्मानं न विज्ञज्ञे तावदेनमसुरा अभिवभूवुः। स यदा विज्ञज्ञेऽथ हत्वाऽसुरान्विज्ञित्य सर्वेषां देवानां श्रेष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं परीयाय तथो एवैवं विद्वान्सर्वान्याप्मनोऽपहत्य सर्वेषां भूतानां श्रेष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं परीति य एवं वेदः य एवं वेद ॥ २०॥

ऋतं विद्ण्यामि । सत्यं विद्ण्यामि० । वाङ्मे मनिस प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराविर्मयोऽभूवेदसा मन्साणिर्ऋतं मा मा हिंसीरनेनाघीतेनाहोरात्रात्संवसाम्यय इळा नम इळा नम ऋषिभ्यो मञ्जक्रद्यो मञ्जणितभ्यो नमोऽस्तु देवेभ्यः शिवा नः शंतमा भव सुमृळीका सरस्वति सा ते व्योम संदिश । अद्वधं मन इषिरं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषां श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हिंसीः ॥ १ ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति ऋग्वेदान्तर्गतकोषीतिकब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ इति कौषीतिकिबाह्मणोपनिषत्समासा ॥ २६ ॥

चृहजाबालोपनिषत् ॥ २७ ॥

यज्ज्ञानाञ्चिः स्वातिरिक्तश्रमं अस्य करोति तत्। बृहज्जाबालनिगमशिरोवेद्यमहं महः॥ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

ॐ अपो वा इद्मासीत्सिललमेव ॥ स प्रजापितरेकः पुष्करपणे समभ-वत् ॥ तस्यान्तर्मनिस कामः समवर्तत इदं स्रजेयिमित । तस्याद्यत्प्रपो मनसाभिगच्छिति तद्वाचा वदित । तत्कर्मणा करोति । तदेषाभ्यन्का । कामस्तद्रेये समवर्तताधि । मनसा रेतः प्रथमं यदासीत् । सतो बन्धुमसित निरिवन्दन् । हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषेति । उपेनं तदुपनमित । यत्कामो अवित । य एवं वेद । स तपोऽतप्यत । स तपस्तहवा स एतं असुण्डः कालाधिकद्रमगमदागस्य भो विभूतेर्माहात्म्यं बृहीति तथेति प्रस्योच्चत् सुसुण्डः वक्ष्यमाणं किमिति विभूतिरुद्राक्षयोमीहात्म्यं वभाणिते आदावेव पेष्यलादेन सहोक्तमिति तत्फलश्रुतिरिति तस्योध्वं किं वदामेति । वृहजाबालाभिधां मुक्तिश्रुतिं ममोपदेशं कुरुष्वेति । ॐ तथेति सद्योजातात्पृथिवी ।
तस्याः स्यान्निवृत्तिः । तस्याः कपिलवर्णानन्दा । तद्रोमयेन विभूतिर्जाता ।
वामदेवादुदकम् । तस्यात्प्रतिष्ठा । तस्याः कृष्णवर्णा भद्रा । तद्रोमयेन भितं
जातम् । आघोराद्विः । तस्याद्विद्या । तस्या रक्तवर्णा सुरिभः । तद्रोमयेन
भस्य जातम् । तत्पुरुषाद्वापुः । तस्याच्छान्तिः । तस्याः थेतवर्णा सुशीला ।
तस्या गोमयेन क्षारं जातम् । ईशानादाकाशम् । तस्याच्छान्यतीता ।
तस्याश्चित्रवर्णा सुमनाः । तद्रोमयेन रक्षा जाता । विभूतिर्भितिन् भस्य
क्षारं रक्षेति भस्मानो भवन्ति पञ्च नामानि । पञ्चभिनीमभिर्णुशमैश्चर्यकारणान्द्रतिः । भस्य सर्वाघभक्षणात् । भासनाद्धासितम् । क्षारणादापदां क्षारम् ।
भूतप्रेतिपिशाचबद्यराक्षसापस्यारभवभीतिभ्योऽभिरक्षणाद्वक्षेति ॥

इति श्रीवृहजाबालोपनिषत्सु प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ असुण्डः कालाग्निरुद्रमञ्जीषोमात्मकं अस्मस्नानविधिं पप्रच्छ । अग्नि-र्यथैको अवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वसूव । एवं भस्म सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ अप्तीषोसात्मकं विश्वमित्यश्चिराचश्चते । रोद्वी घोरा या तेजसी तनूः। सोमः शत्त्वसृतसयः शक्तिकरी तनूः। यत्प्रतिष्ठा सा तेजोविद्या कला स्वयम् । स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स्प्य रसतेजसी ॥ १ ॥ द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका । वृथेव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानळात्मका॥ २॥ वैद्युदादिमयं तेजो म्युरादमयो रसः। तेजोरसिवभेदैस्तु वृत्तमेतचराचरम् ॥ ३ ॥ अग्नेरसृतनिष्यात्तरसृतेनाग्निरेधते। अत एव हविः संतमग्नीषोमात्मकं जगत् ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वशाक्तमयः सोम अधी-शक्तिमयोऽनलः । ताभ्यां संपुटितस्तस्माच्छश्वद्विश्व्मिद् जगत् ॥ ५ ॥ अमे रूर्ध्वं भवत्येषा यावत्सोम्यं परामृतम् । यावदृश्यात्मकं सौम्यममृतं विसर्ज् त्यधः ॥ ६ ॥ अत एव हि कामाग्निरधस्ताच्छक्किरूध्वेगा । यावदादहनश्री ध्वमधस्तात्पावनं भवेत् ॥ ७ ॥ आधारशक्तयावधतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः। तथैव निमग्नः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः ॥ ८ ॥ शिवश्रोध्वमयः शक्तिरूष्ट्री शक्तिमयः शिवः। तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाज्यासमिह किंचन ॥ ९ ॥ असकृचाप्तिना दग्धं जगत्तद्भस्मसात्कृतम् । अग्नेवीयीमदं प्राहुस्तद्वीयं भस्म 7-

7-

तं

न

स

₹-

1]

मा

信克的

M

H

गे-

मे-

市-元-

: 1

是 ||

स

यत्ततः ॥ १० ॥ यश्चेत्थं भस्मसद्भावं ज्ञात्वाभिस्नाति भस्मना । अग्निरित्मादिभिमेन्नेर्देग्धपापः स सुच्यते ॥ ११ ॥ अग्नेर्वार्यं च तद्भस्म सोमेनाष्ठावितं पुनः । अयोगयुक्तया प्रकृतेरधिकाराय कल्पते ॥ १२ ॥ योगयुक्तया तु तद्भस्म ह्राव्यमानं समंततः । शाक्तेनामृतवर्षेण द्यधिकारान्निवर्तते ॥ १३ ॥ अतो मृत्युं जयायेत्थममृतष्ठावनं सताम् । शिवशक्त्यमृतस्पर्शे लब्ध एव कृतो मृतिः ॥ १४ ॥ यो वेद गहनं गुद्धं पावनं च तथोदितम् । अग्नीषोमपुटं कृत्वा न स भूयोऽभिजायते ॥ १५ ॥ शिवाग्निना तनुं दम्ध्वा शक्तिमोममृतेन यः । ष्ठावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते सोऽमृतत्वाय कल्पत इति ॥ १६ ॥

इति श्रीवृहजावालोपनिषत्सु द्वितीयं वाह्मणम् ॥ २ ॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुद्रं विभूतियोगमनुद्रहीति स होवाच । विकटाङ्गा-मुन्मत्तां महाखला मलिनामिशवादिचिह्नान्वितां पुनर्धेनुं कृशाङ्गां वत्सहीनाम-शान्तामदुरधदोहिनीं निरिन्दियां जग्धतृणां केशचेलास्थिमक्षिणीं संघिनीं नवप्रसूतां रोगातां गां विहाय प्रशस्तगोमयमाहरेद्रोमयं स्वस्थं ग्राह्यं ग्रुमे स्थाने वा पतितमपरित्यज्यात ऊर्ध्वं मर्दयेद्गव्येन गोमयग्रहणे कपिला वा धवला वा अलाभे तदन्या गौः स्याद्दोववर्जिता कपिलागोर्भसोक्तं लब्धं गोभस्म नो चेदन्यगोआरं यत्र कापि स्थितं च यत्तन हि धार्यं संस्कारसिंहतं धार्यम् । तत्रैते श्लोका सवन्ति - विद्या शक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते । गुणत्रयाश्रया विद्या सा विद्या च तदाश्रया ॥ १ ॥ गुणत्रयमिदं धेनुर्विद्या-भूद्रोमयं ग्रुभम् । मूत्रं चोपनिषत्प्रोक्तं कुर्याद्रस्म ततः परम् ॥ २ ॥ वत्सस्तु स्मृतयश्चास्य तत्संभूतं तु गोमयम् । आगाव इति मन्नेण धेनुं तत्रामिमन्नयेत् ॥ ३ ॥ गावो भगो गाव इति प्राशयेत्तर्पणं जलम् । उपोष्य च चतुर्दश्यां शुक्ते कृष्णेऽथवा वती ॥ ४ ॥ परेद्युः प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः । कृतस्नानो धौतवस्नः पयोर्धं च सृजेच गाम् ॥ ५ ॥ उत्थाप्य गां प्रयतेन गायत्र्या सूत्रमाहरेत् । सौवर्णे राजते ताम्रे धारयेन्मृन्मये घटे ॥ ६॥ पौष्करेऽथ पलाशे वा पात्रे गोझ्ङ एव वा। आदधीत हि गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥ ७ ॥ अभूमिपातं गृह्णीयात्पात्रे पूर्वोदिते गृही । गोमयं शोधयेद्वि-द्वाञ्छ्रीमें भजतु मन्नतः॥ ८॥ अलक्ष्मीमें इति मन्नेण गोमयं धान्यवर्जितम्। सं त्वा सिज्ञामि मन्नेण गोमूत्रं गोमये शिपेत् ॥ ९ ॥ पञ्चानां त्विति मन्नेण

अ. उ. १४

पिण्डानां च चतुर्दश । कुर्यात्संशोध्य किरणैः सौरकेराहरेत्ततः ॥ १० ॥ निद्ध्याद्थ पूर्वोक्तपात्रे गोमयपिण्डकान् । स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिष्ठाप्याग्नि-मीजयेत्॥ ११॥ पिण्डांश्च निक्षिपेत्तत्र आद्यन्तं प्रणवेन तु। षडक्षरस्य सूक्तस्य ब्याकृतस्य तथाक्षरेः ॥ १२ ॥ स्वाहान्ते जुहुयात्तत्र वर्णदेवाय पिण्डकान् । आघारावाज्यभागौ च प्रक्षिपेद्याहृतीः सुधीः ॥ १३ ॥ ततो निधनपतये त्रयोविंश कुहोति च । होतव्याः पञ्च ब्रह्मणि नमो हिरण्यवाहवे ॥ १४ ॥ इति सर्वाहुतीर्हुत्वा चतुर्थ्यन्तेश्च मञ्जकेः ॥ ऋतं सत्यं कद्भद्राय यस्य वैकंकतीति च॥ १५ ॥ एतेश्च जुहुयाद्विद्वानना ज्ञातत्रयं तथा। ब्याहृतीरथ हुरवा च ततः स्विष्टकृतं हुनेत् ॥ १६ ॥ इध्मरोपं तु निर्वर्त्व पूर्णपात्रोदकं तथा। पूर्णमसीति यजुषा जलेनान्येन बृंहयेत् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणेष्वमृतमिति तज्जलं शिरसि क्षिपेत् । प्राच्यामिति दिशं लिङ्गेर्दिश्च तोयं विनिक्षिपेत् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणे दक्षिणां दस्वा शान्त्ये पुलकमाहरेत् । आहरि-ष्यामि देवानां सर्वेषां कर्मगुप्तये ॥ १९ ॥ जातवेदसमेनं त्वां पुरुकेदुछादया-म्यहम् । मन्नेणानेन तं विह्नं पुलकैश्छादयेत्ततः ॥ २० ॥ त्रिदिनं ज्वलनस्थिसै छादनं पुरुकैः स्मृतम् । ब्राह्मणान्भोजयेद्धत्तया स्वयं भुज्ञीत वाग्यतः ॥ २१ ॥ भस्माधिक्यमभीष्मुस्तु अधिकं गोमयं हरेत् । दिनन्नयेण यदि वा एकस्मिन्दिवरे ऽथवा ॥ २२ ॥ तृतीये वा चतुर्थे वा प्रातः स्नात्वा सिताम्बरः । ग्रुक्कयज्ञोपवीती च ग्रुक्कमाल्यानुलेपनः ॥ २३ ॥ ग्रुक्कदन्तो भसादिग्धो मन्नेगानेन मन्नवित् । ॐ तद्रह्मेति चोचार्य पौलकं भस्मसंत्यजेत् ॥ २४ ॥ तत्र चावाहनमुखानुपचारांस्तु षोडश । कुर्याद्याहर्ति-भिस्त्वेवं ततोऽग्निमुपसंहरेत् ॥ २५ ॥ अग्निर्भसोति मन्नेण गृह्णीयाद्रस चोत्तरम् । अग्निरित्यादिमन्नेण प्रमृज्य च ततः परम् ॥ २६ ॥ संयोज्य गन्धसिळेलेः कपिलामूत्रकेण वा । चन्द्रकुङ्कुमकाइमीरमुद्दीरं चन्द्रनं तथा ॥ २७ ॥ अगरुत्रितयं चैव चूर्णयित्वा तु सूक्ष्मतः । क्षिपेद्रस्मनि तचूर्णमी-मिति ब्रह्ममञ्जतः ॥ २८ ॥ प्रणवेनाहरेद्विद्वान्बृहतो वटकानथ । अणोरणीया-निति हि मन्नेण च विचक्षणः ॥ २९ ॥ इत्थं भस्म सुसंपाद्य शुष्कमादाय मञ्जवित् । प्रणवेन विमृज्याथ सप्तप्रणवमित्रतम् ॥ ३० ॥ ईशानेति शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण तु । ऊरुदेशमघोरेण गुह्यं वामेन मन्नयेत् ॥ ३१ ॥ सद्यो-जातेन वै पादान्सर्वाङ्गं प्रणवेन तु । तत उद्धत्य सर्वाङ्गमापादतलमस्तकम्

1

I

॥ ३२ ॥ आचम्य वसनं धौतं ततश्चेतस्यधारयेत् । पुनराचम्य कर्म सं कर्तुमईसि सत्तम ॥ ३३ ॥ अथ चतुर्विधं भस्मकल्पम् । प्रथममनुकल्पम् । द्वितीयसुपकल्पम् । उपोपकल्पं तृतीयम् । अकल्पं चतुर्थम् । अग्निहोत्र-ससुद्धतं विरजानलजमनुकल्पम् । वने सुन्कं शकृत्मंगृद्ध कल्पोक्तविधिना कल्पितसुपकल्पं स्थात् । अरण्ये सुन्कगोमयं चूर्णाकृत्यानुसंगृद्धा गोम्प्रैः पिण्डीकृत्य यथाकल्पं संस्कृतसुपोपकल्पम् । शिवालयस्थमकल्पं शतकल्पं च । इत्थं चतुर्विधं भस्म पापं निकृत्तयेन्मोक्षं ददातीति नगवान्कालाग्नि-रुद्धः ॥ ३४ ॥

इति श्री बृहजावालोपनिषः छ तृतीयं बाह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ अुसुण्डः कालाग्निरुदं भसम्बानिविधि बूहीति । स होवाचाथ प्रगयेन विमृज्याथ सप्तप्रणवेनाभिमञ्जितमागमेन तु तेनैव दिग्बन्धनं कारयेत्युनरि तेनास्त्रमञ्जेणाङ्गानि सूर्घादीन्युद्र्रुयेन्मरुस्नानमिदमीशानायैः पञ्चभिर्मञ्जेसातुं क्रमादुबूलयेत् । ईशानेति शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण तु । ऊरुदेशमघीरेण गुद्धकं वामदेवतः । सथोजातेन वे पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेन तु । आपादतलमस्तकं सर्वाङ्गं तत उद्बूल्याचम्य वसनं धौतं श्वेतं प्रधारयेद्विधिस्नानमिदम्। तत्र श्लोका भवन्ति भस्तमुष्टिं समादाय संहितामन्नमन्निताम् । मस्तकात्पादप-र्यन्तं मलकानं पुरोदितम् ॥ १ ॥ तन्मन्नेणैव कर्तव्यं विधिस्नानं समाचरेत् । ईशाने पञ्चधा भस्म विकिरेन्सूर्झि यत्नतः ॥ २ ॥ मुखे चतुर्थवक्रेण अधीरेणा-ष्ट्या हृदि । वामेन गुह्यदेशे तु त्रिदशस्थानमेदतः ॥ ३ ॥ अष्टावन्तेन साध्येन पदाबुद्दूत्य यत्ततः । सर्वाङ्गोद्भूलनं कार्यं राजन्यस्य यथाविधि ॥ ४ ॥ मुखं विना च सत्सर्वमुद्दूत्य क्रमयोगतः । संध्याद्वये निशीये च तथा पूर्वावसा-नयोः ॥ ५ ॥ सुःवा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा चावश्यकादिकम् । स्त्रियं नपुं-सकं गृधं विडालं वकमूषिकम् ॥ ६॥ स्पृष्ट्वा तथाविधानन्यान्भसानानं समाचरेत् । देवाप्रिगुरुचुद्धानां समीपेऽन्त्यजदर्शने ॥ ७ ॥ अशुद्धभूतले मार्गे कुर्यानोबुलनं वती । शङ्कतोयेन मूलेन भस्मना मिश्रणं भवेत् ॥ ८॥ योजितं चन्द्रनेनेव वारिणा भसासंयुतम् । चन्द्रनेन समालिम्पेज्ज्ञानदं चूर्णमेव तत् ॥ ९ ॥ मध्याह्मात्प्राग्जलैर्युक्तं तोयं तदनु वर्जयेत् ॥ अथ भुसुण्डो भगवन्तं कालामिरुद्रं त्रिपुण्डूविधिं पप्रच्छ । तत्रैते श्लोका भवन्ति -- त्रिपुण्ड्ं कारये-त्पश्चाइह्मविष्णुशिवात्मकम् । मध्याङ्गुलिभिरादाय तिस्भिर्मूलमञ्चतः ॥ २०॥ अनामामध्यमाङ्गुष्टैरथवा स्याभ्रिपुण्ड्कम् । उद्भूलयेन्मुखं विप्रः क्षित्रसाच्छि-रोदितम् ॥ ११॥ द्वात्रिंशत्स्थानके चार्धं पोडशस्थानकेऽथ वा। अष्टस्थाने तथा चैव पञ्चस्थानेऽपि योजयेत् ॥ १२ ॥ उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोस्तथा । नासावक्रे गले चैवमंसद्धयमतः परम् ॥ १३ ॥ कूर्परे मणिबन्धे च हृद्ये पार्श्वयोर्द्वयोः । नाभौ गुह्यद्वये चैवमूर्वोः स्फिग्विम्बजानुनि ॥ १४ ॥ जङ्घाद्वये च पादौ च द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम् । अष्टमूर्लप्टविद्येशान्दिकपालान्वसुभिः सह ॥१५॥ धरो ध्रवश्च सोमश्च कृपश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽ-ष्टावितीरिताः ॥ १६ ॥ एतेषां नाममन्नेण त्रिपुण्डान्धारयेद्धधः । विदध्यात्वीः डशस्थाने त्रिपुण्डूं तु समाहितः॥ १७॥ शीर्षके च ललाटे च कर्णे कण्ठेंऽ-सकद्वये । कूपरे मणिबन्धे च हद्ये नाभिपार्श्वयोः ॥ १८ ॥ पृष्ठे चैकं प्रति-स्थानं जपेत्तत्राधिदेवताः । शिवं शक्तिं च सादाख्यामीशं विद्याख्यमेव च ॥ १९ ॥ वामादिनवशक्तीश्र एते पोडशदेवताः । नासत्यो दस्रकश्चैक अश्विनौ हों समीरितौ ॥ २० ॥ अथवा मूर्स्यलोके च कर्णयोः श्वसने तथा । बाहृद्वये च हृदये नाभ्यामूर्वोर्धुगे तथा ॥ २१ ॥ जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडरा । शिवश्चेन्द्रश्च रुद्राकों विशेशो विष्णुरेव च ॥ २२ ॥ श्रीश्चैव हृदये-शश्च तथा नाभौ प्रजापतिः । नागश्च नागकन्याश्च उसे च ऋषिकन्यके ॥२३॥ पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठेऽपि च स्थिताः। एवं वा षोडशस्नानमष्टस्थान-मथोच्यते ॥ २४ ॥ गुरुस्थानं ललाटं च कर्णद्वयमवान्तरम् । असयुग्मं च हृद्यं नाभिरित्यष्टमं भवेत् ॥ २५ ॥ ब्रह्मा च ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकी-र्तिताः । अथवा मस्तकं वाह हृदयं नाभिरेव च ॥ २६ ॥ पञ्च स्थानान्यम् न्याहुर्भस्यतत्त्वविदो जनाः । यथासंभवतः कुर्यादेशकालाद्यपेक्षया ॥ २७ ॥ उदूलनेऽप्यशक्तश्चेत्रिपुण्डादीनि कारयेत्। ललाटे हृदये नाभौ गले च मणि-बन्धयोः ॥ २८ ॥ बाहुमध्ये बाहुभृते पृष्ठे चेव च शीर्षके ॥ ठलाटे ब्रह्मणे नमः । हृद्ये हृज्यवाङ्जाय नमः । नाभौ स्कन्दाय नमः । गले विष्णवे नमः । मध्ये प्रभञ्जनाय नमः । मणिवन्धे वसुभ्यो नमः । पृष्ठे हरये नमः । ककुदि शंभवे नमः । शिरसि परमात्मने नमः । इत्यादिस्थानेषु त्रिपुण्डूं धारयेत् । त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं प्रभुम् । स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तित्र-पुण्डूकम् ॥ २९ ॥ कूर्पराधः पितृभ्यां तु ईशानाभ्यां तथोपरि । ईशाभ्यां नम इत्युक्त्वा पार्श्वयोश्च त्रिपुण्डकम् ॥ ३० ॥ स्वच्छाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारये- च

पे-

न-

च

मू-

जे-

ाणे

: 1

दि

[]

न्ने-

म ये-

त्तत्प्रकोष्ठयोः । भीमायेति तथा पृष्ठे शिवायेति च पार्श्वयोः ॥ ३१ ॥ नीइकण्ठाय शिरसि क्षिपेत्सर्वात्मने नमः । पापं नाशयते कृत्स्नमपि जन्मान्तरार्जितम् ॥ ३२ ॥ कण्ठोपरि कृतं पापं नष्टं स्थात्तत्र धारणात् । कर्णे तु धारणाकर्णरोगादिकृतपातकम् ॥ ३३ ॥ बाह्मोर्वाहुकृतं पापं वक्षःसु मनसा कृतम् ।
नाभ्यां शिक्षकृतं पापं पृष्ठे गुदकृतं तथा ॥ ३४ ॥ पार्श्वयोधीरणात्पापं परइयालिङ्गनादिकम् । तद्भस्मधारणं कुर्यात्सर्वत्रेव त्रिपुण्ड्कम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्रय्यग्नीनां च धारणम् । गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वे
श्रुतम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीवृहजाबालोपनिषत्सु चतुर्थं त्राह्मणम् ॥ ४ ॥

मानस्तोकेन मन्नेण मन्नितं भसा धारयेत् । ऊध्वपुण्डं भवेत्सामं मध्यपुण्डं त्रियायुषम् ॥ १ ॥ त्रियायुषाणि कुरुते ल्लाटे च भुजद्वये । नाभौ शिरसि हत्पार्श्वे बाह्मणाः क्षत्रियास्तथा ॥ २ ॥ त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रस-मुद्भवम् । इदं मुख्यं गृहस्थानां विरजानलजं भवेत् ॥ ३ ॥ विरजानलजं चैत्र धार्यं प्रोक्तं महर्षिभिः । औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः ॥ ४ ॥ समिद्धिसमुत्पन्नं धार्यं वे ब्रह्मचारिणाः । श्रुद्धाणां श्रोत्रियागारपचनाग्नि-समुद्भवम् ॥ ५ ॥ अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं चेवानलोद्भवम् । यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं दनस्थानां विरक्तिदम् ॥ ६ ॥ अतिवर्णाश्रमाणां इमशानाग्निसमुद्भवम् । सर्वेषां देवालयस्यं भस्म शिवाग्निजं शिवयोगि-नाम् । शिवालयस्थं तिल्लङ्गलिप्तं वा मन्नसंस्कारदग्यं वा । तत्रैते श्लोका भवन्ति । तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्टितम् । येन विप्रेण शिरासि त्रिपुण्डूं भस्मना धतम् ॥ ७ ॥ त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्विकयोऽपि यः । सकृत्तिर्यिक्तिपुण्डाङ्कधारणात्सोऽपि पूज्यते ॥ ८॥ ये ससाधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः । तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराजन्मकोटिभिः॥ ९॥ महापातकयुक्तानां पूर्वजन्मार्जितागसाम् । त्रिपुण्ड्रोद्धूलनद्वेषो जायते सुद्दं बुधाः ॥ १० ॥ येषां कोपो भवेद्रह्यँछ्छाटे भस्मदर्शनात् । तेषामुत्पत्तिसां-कर्यमनुमेयं विपश्चिता॥ ११॥ येषां नास्ति मुने श्रद्धा श्रौते भस्मनि सर्वदा। गर्भाधानादिसंस्कारस्तेषां नास्तीति निश्चयः ॥ १२ ॥ ये भस्पधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वन्ति ताडनम् । तेषां चाण्डालतो जन्म ब्रह्मनूद्यं विपश्चिता ॥ १३॥ येपां कोधो भवेदस्यधारणे तत्प्रमाणके । ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रस तिश्वयः ॥ १४ ॥ त्रिपुण्डं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेन ते । धारयन्ति च वे भत्तया धारयन्ति शिवं च ते ॥ १५ ॥ धिग्भस्मरहितं भालं धिग्राम-मिश्चवालयम् । धिगनीशार्थनं जन्म धिग्वद्यामिश्चवाश्रयाम् ॥ १६ ॥ रुद्राप्ते-वर्त्तरं वीर्यं तद्मस्म परिकीर्तितम् । तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्मसंयुतः ॥ १७ ॥ भस्मनिष्ठस्य दह्मन्ते दोषा भस्माग्निसंगमात् । भस्मस्नान-विश्वद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ १८ ॥ भस्मसंदिग्धसर्वाङ्गो भस्मदीप्त-त्रिपुण्डकः । भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ १९ ॥

इति श्रीबृहजाबालोपनिषत्सु पञ्चमं त्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुदं नामपञ्चकस्य माहात्म्यं वृहीति होवाच । अथ वासिष्टवंशजस्य शतभायीसमेतस्य धनंजयस्य बाह्यणस्य ज्येष्टभायीपुत्रः करूण इति नाम तस्य शुचिस्मिता भार्या । असी करुणो आतृवैरमसहमानो भवानी-तटस्थं नृसिंहमगमत् । तत्र देवसमीपेऽन्येनोपायनार्थं समर्पितं जम्बीरफलं गृहीत्वाजिव्रत्तदा तत्रस्था अशपन्पाप मिक्षको भव वर्पाणां शतमिति। सोऽपि शापमादाय मिक्सका सन्स्वचेष्टितं तस्यै निवेद्य मां रक्षेति स्वभायीमवदत्तदा मिक्षकोऽभवत्तमेवं ज्ञात्वा ज्ञातयसौलमध्ये ह्यधारयन्सा मृतं पतिमादाया-रुन्धतीमगमद्रो ग्रुचिस्मितेऽमुं जीवयेति सोवाच शोकेनालप्ररुन्धसहममुं जीवयाम्यद्य विभूतिमादायेति । एपाग्निहोत्रजं भस्म-मृत्युंजयेन मन्नेण मृत-जन्तौ तदाक्षिपत् । मन्दवायुस्तदा जज्ञे व्यजनेन शुचिस्मितः॥ १॥ उद्तिष्ठ-त्तदा जनतुर्भसानोऽस्य प्रभावतः । ततो वर्षशते पूर्णे ज्ञातिरेको ह्यमारयत् ॥ २ ॥ असीव जीवयामास काइयां पञ्च तदाभवन् । देवानपि तथाभूतान्माम-प्येतादशं पुरा ॥ ३ ॥ तस्मात्तु भस्मना जन्तुं जीवयामि तदानघे । इत्येवमु-क्त्वा भगवान्द्रभीचिः समजायत ॥ ४ ॥ स्वरूपं च ततो गत्वा स्वमाश्रमपदं थयाविति ॥ इदानीमस्य भस्मनः सर्वोघभक्षणसामर्थ्यं विधत्त इत्याह। श्रीगौतमविवाहकाले तामहल्यां दृष्टा सर्वे देवा कामातुरा अभवन् । तदा नष्ट-ज्ञाना दूर्वाससं गत्वा पप्रच्छुः । स तहोषं शमयिष्यामीत्युवाच । ततः शतरुद्रेण मन्नेण मन्नितं भस्म वै पुरा । मयापि दत्तं ब्रह्महत्यादि ज्ञान्तम् । इत्येवसुक्त्वा दूर्वासा दत्तवान्भसा चोत्तमम् । जाता मद्वचनात्सर्वे यूयं तेऽधिकतेजसः ॥ ५॥ शतरुद्रेण मन्नेण भस्मोद्ध्ितविग्रहाः । निर्धृतरजसः सर्वे तत्क्षणाच वयं मुने ॥ ६ ॥ आश्चर्यमेतजानीमो भस्मसामध्यमीदशम् । अस्य भस्मतः शक्तिमन्यां कृणु । एतदेव हरिशंकरयोर्ज्ञानप्रदम् । ब्रह्महत्यादिपापनाशकम् । महाविभृति-द्मिति शिववक्षासि स्थितं नखेनादाय प्रणयेनाभिमन्य गायन्या पञ्चाक्षरेणाभि-मृज्य हरिर्मस्तकगात्रेषु समर्पयेत् । तथा हृदि ध्यायस्वेति हरिसुवस्वा हरः स्वहृदि ध्यात्वा दृष्टो दृष्ट इति शिवमाह । ततो भस भक्षयेति हरिमाह हरस्ततः । भक्षियप्ये शिवं भस्म स्नात्वाहं भस्मना पुरा ॥ ७ ॥ प्रद्वेश्वरं भक्तिगम्यं भस्ता-अक्षयदच्युतः । तत्राश्चर्यमतीवासीत्प्रतिविम्बसमद्युतिः ॥ ८ ॥ वासुदेवः छुद्ध-मुक्ताफलवर्णोऽभवत्क्षणात् । तदाप्रभृति ग्रुक्काभो वासुदेवः प्रसम्बवान् ॥ ९ ॥ न शक्यं भसानो ज्ञानं प्रभावं ते कुतो विभो । नमसेऽस्तु नमसेऽस्तु त्वामहं शरणं गतः ॥ १० ॥ त्वत्पादयुगले शंभो भक्तिरस्तु सदा मम । भसाधारण-संपन्नो मम भक्तो भविष्यति॥ ११॥ अत एवेषा भूतिभूतिकरीत्युक्ता। अस्य पुरस्ताद्वसव आसन्रुद्दा दक्षिणत आदित्याः पश्चाद्विश्वेदेवा उत्तरतो त्रह्मविष्णुमहेश्वरा नाभ्यां सूर्याचन्द्रमसौ पार्श्वयोः । तदेतद्रचाभ्युक्तम्-ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्व निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते । य एतहृहजाबालं सार्वकामिकं मोक्ष-द्वारमृङ्मयं यजुर्मयं साममयं ब्रह्ममयममृतमयं भवति । य एतद्वृहजाबालं वालो वा युवा वा वेद स महान्भवति । स गुरुः सर्वेषां मन्नाणामुपदेष्टा भवति । मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्ठे बाही शिखायां बन्नीत । सप्तद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते तस्माच्छूदया यां कांचिद्रां द्यात्सा दक्षिणा भवति ॥ १२॥

इति श्रीबृह्जाबालोपनिषत्सु षष्ठं त्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अथ जनको वैदेहो याज्ञवल्यगुपसमेत्योवाच भगवन त्रिपुण्ड्रविधिं नो बूहीति। स होवाच सद्योजातादिपञ्चब्रह्ममन्नैः परिगृह्याग्निरिति भसेत्यभिमन्त्र्य मानस्तोक इति समुद्धृत्य त्रियागुपमिति जलेन संमुख्य व्यम्बकमिति शिरो-ललाटवक्षःस्कन्धेषु एत्वा पूतो भवित मोक्षी भवित शतरुदेण यत्फलमवामोति तत्फलमभुते स एव भस्मज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः ॥ १ ॥ जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञतल्क्यं भस्मधारणात्कि फलमश्चत इति। स होवाच तन्नस-धारणादेव मुक्तिभविति तन्नस्थारणादेव शिवसायुज्यमवामोति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते स एप भस्मज्योरिति वै याज्ञवल्क्यः ॥ २ ॥ जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यं भस्मवारणात्कि फलमश्चते न वेति। तत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुणिश्वेतकेतुदूर्वासक्रभुनिदावजडभरतदत्तात्रेय- रैवतक असुण्डप्रभृतयो विभूतिधारणादेव मुक्ताः स्युः स एष भस्मज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः ॥ ३ ॥ जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यं भसास्नानेन किं जायत इति । यस्य कस्यचिच्छरीरं यावन्तो रोमकूपास्तावन्ति लिङ्गानि भूत्वा तिष्ठन्ति ब्राह्मणो वां क्षत्रियो वा वैश्यो वा शूद्रो वा तद्भसधारणादेतच्छ-ब्दस्य रूपं यस्यां तस्यां होवावतिष्ठते ॥ ४ ॥ जनको ह वैदेहः पैप्पलादेन सह प्रजापितलोकं जगाम तं गत्वोवाच भो प्रजापते त्रिपुण्डस्य माहात्म्यं बृहीति । तं प्रजापतिरब्रवीद्यथैवेश्वरस्य माहात्म्यं तथैव त्रिपुण्ड्स्येति ॥ ५ ॥ अथ पैप्पलादो वैकुण्ठं जगाम तं गत्वोवाच भो विष्णो त्रिपुण्ड्स्य माहात्म्यं ब्र्हीति। यथैवे-श्वरस्य माहात्म्यं तथैव त्रिपुण्ड्स्येति विष्णुराह ॥ ६ ॥ अथ पैष्पलादः काला-ग्निरुद्रं परिसमेत्योवाचाधीहि भगवन् त्रिपुण्ड्स्य विधिमिति । त्रिपुण्ड्स्य विधिर्मया वृक्तं न शक्य इति सत्यमिति होवाचाथ भस्मच्छन्नः संसारान्मुच्यते भस्मशय्याशयानस्तच्छव्दगोचरः शिवसायुज्यमवाम्नोति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते रुद्राध्यायी सन्नमृतत्वं च गच्छति । स एष असाज्योतिर्विभूति-धारणाइह्योकत्वं च गच्छति विभूतिधारणादेव सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति विभूतिधारणाद्वाराणस्यां स्नानेन यत्फलमवाप्नोति तत्फलमश्चते । स एष भस-ज्योतिर्यस्य कस्यचिच्छरीरे त्रिपुण्डस्य लक्ष्म वर्तते प्रथमा प्रजापितिर्हितीया विब्णुस्तृतीया सदाक्षिव इति स एव भसक्योतिरिति स एव भसक्योतिरिति ॥ ७ ॥ अथ कालाग्निरुदं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छाचीहि भगवन्नुदाक्ष-धारणविधि । स होवाच रुद्रस्य नयनादुत्पन्ना रुद्राक्षा इति लोके ख्यायन्ते सदाशिवः संहारकाले संहारं कृत्वा संहाराक्षं मुकुलीकरोति तन्नयनाजाता रुद्राक्षा इति होवाच तस्माद्रुद्राक्षाणां रुद्राक्षत्वमिति । तद्रुद्राक्षे वाग्विषये कृते दशगोप्रदानेन यत्फलमवामोति तत्फलमश्रुते स एष भस्मज्योती रुद्राक्ष इति तद्वद्राक्षं करेण स्पृष्ट्वा धारणमात्रेण द्विसहस्रगोप्रदानफलं भवति । तद्भुद्राक्षे कर्णयोधीर्यमाणे एकादशसहस्रगोप्रदानफलं भवति एकादशरुद्रत्वं च गच्छितः । तद्भद्राक्षे शिरासि धार्यमाणे कोटिगोप्रदानफलं भवति । एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तं न शक्यमिति होवाच । मूर्भि चत्वारिंश-च्छिखायामेकं त्रयं वा श्रोत्रयोहीदश कर्णे द्वात्रिंशद्वाह्नोः पोडश षोडश द्वादश द्वादश मणिवन्धयोः षद षडङ्गुष्टयोस्ततः संध्यां सङ्घाेऽहरहरुपासी-ताक्षिज्योतिरित्यादिभिरम्गे जुहुयात्॥ ८॥

इति श्रीबृहजावालोपनिषत्सु सप्तमं त्राह्मणम् ॥ ७ ॥

अथ बृहजाबालस्य फलं नो बृहि भगवित्रिति स होवाच य एतद्रहजा-बालं नित्यमधीते सोऽग्निप्तो भवति स वायुप्तो भवति स आदित्यप्तो भवति स सोमपूरो भवति स ब्रह्मपूरो भवति स विष्णुपूरो भवति स रुद्धपूतो भवति स सर्वपूतो भवति स सर्वपूतो भवति ॥ १ ॥ य एतद्रह-जावारं नित्यमधीते सोऽप्तिं साम्भयति स आदित्यं साम्भयति स सोमं स्तम्भयति स उदकं स्तम्भयति स सर्वान्देवान्स्तम्भयति स सर्वान्यहान्स्त-स्भयित स विषं साम्भयित स विषं साम्भयित ॥ २ ॥ य एतद्रहजाबालं नित्यमधीते स मृत्युं तरित स पाप्मानं तरित स ब्रह्महत्यां तरित स अणहत्यां तरित स वीरहत्यां तरित स सर्वहत्यां तरित स संसारं तरिन स सर्वे तरित स सर्वे तरित ॥ ३ ॥ य एतद्रहज्जाबालं नित्यमधीते स भूलोंकं जयित स भुवलोंकं जयित स सुवलोंकं जयित स महलोंकं जयित स जनोलोकं जयित स तपोलोकं जयित स सत्यलोकं जयित स सर्वां छोका-अयिन स सर्वाह्रोका अयिति ॥ ४ ॥ य एतद्वृहजावार्ल नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यज्ंप्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शास्त्रा अधीते स कल्पानधीते स नाराशंसीरधीते स पुराणान्यधीते स ब्रह्मप्रणवमधीते स ब्रह्मप्रणवमधीते ॥ ५ ॥ अनुपनीतशतमेकमेकेनो-पनीतेन तत्समसुपनीतदातमेकमेकेन गृहस्थेन तत्समं गृहस्थज्ञतमेकमेकेन वानप्रस्थेन तत्समं वानप्रस्थशतमेकमेकेन यतिना तत्समं यतीनां तु शतं पूर्णमेकमेकेन रुद्रजापकेन तत्समं रुद्रजापकशतमेकमेकेन अथर्वशिरःशिखा-ध्यापकेन तत्सममधर्विशिरःशिखाध्यापकशतमेकजेकेन बृहजाबालोपनिषद-ध्यापकेन तत्समं तद्वा एतत्परं धाम बृहज्जाबालोपनिपज्जपशीलसः यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रसा भानि यत्र न नक्षत्राणि भानित यत्र नामिर्देहति यत्र न मृत्युः प्रविशति यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति सदानन्दं परमानन्दं ज्ञान्तं ज्ञाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः। तदेतद्याभ्युक्तम्—तद्विष्णोः परसं पदं सदा पदयन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः सिमन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥ ६ ॥

इति श्रीवृहजाबालोपनिषत्स्वष्टमं त्राह्मणम् ॥ ८ ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिनि शान्तिः ॥ ॥ इत्यथर्दवेदीयवृहजाबालोपनिषत्ससाप्ता ॥ २७ ॥

नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत् ॥ २८ ॥

यतुर्योद्धाराप्रपराभूमिस्थिरवरासनम् ।
प्रतियोगिविनिर्भुक्ततुर्यतुर्यमहं महः ॥
अभ् भद्रं कर्णेभिः रुगुयाम देवा भद्रं परवेमाक्षभिर्यजन्नाः ।

स्थिरेरक्नस्तुष्टुवांसस्तन्भिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ १ ॥

आपो वा इदमासन्सिललमेव स प्रजापितरेकः पुष्करपर्णे समभवत्तस्यान्त-र्मनिस कामः समवर्ततेदं सृजेयमिति तसाद्यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वद्ति तत्कर्मणा करोति तदेषाभ्युक्ता-कामस्तद्ये समवर्तताधि मनसो रेतः त्रथमं यदासीत् । सतो वन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीव्य कवयो मनीवेत्युपैनं तदुपनमति यत्कामो भवति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स एतं मन्नराजं नारसिंहमानुष्टुभमपस्यत्तेन वे सर्वमिदमस्जत यदिः किंच तस्मात्सर्वमिद्मा-नुष्टुभिमत्याचक्षते यदिदं किंचानुष्टुभो वा इमानि भूतानि जायन्तेऽनुष्टुभा जातानि जीवन्त्यनुष्टुभं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तस्येषा भवत्यनुष्टुप्प्रथमा भवत्य-नुष्टुबुत्तमा भवति वाग्वा अनुष्टुव्वाचैव प्रयन्ति वाचैवोद्यन्ति परमा वा एश छन्दसां यदनुष्टुविति ॥ १ ॥ ससागरां सपर्वतां सप्तद्वीयां वसुंधरां तत्सामः प्रथमं पादं जानीयाद्यक्षगन्धर्वाप्सरोगणसेवितमन्तरिक्षं तत्साम्नो द्वितीयं पादं जानीयाद्वसुरुद्रादित्येः सवैदेवैः सेवितं दिवं तत्साम्नस्तृतीयं पादं जानीया-द्वसम्बरूपं निरक्षनं परमच्योग्निकं तत्साम्नश्चतुर्थं पादं जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । ऋग्यजुःसामाधर्वाणश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सशाखाश्च-त्वारः पादा भवन्ति । किं ध्यानं किं दैवतं कान्यङ्गानि कानि दैवतानि किं छन्दः क ऋषिरिति ॥ २ ॥ स होवाच प्रजापतिः स यो ह वै तत्सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं श्रियाऽभिषिक्तं तत्साम्रोऽङ्गं वेद, श्रिया हैवाभिषिच्यते सर्वे वेदाः प्रणवा-दिकासं प्रणवं तत्साम्नोऽङ्गं वेद, स त्रीं होका अयित चतुर्विशत्यक्षरा महा-लक्मीर्यज्ञस्तत्साम्रोऽम्नं वेद, स आयुर्यशःकीर्तिज्ञानैश्वर्यवानभवति, तसादिदं साङ्गं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, सावित्रीं प्रणवं युजुर्ठक्षमीं स्त्रीश्र्द्राय नेच्छन्ति, हात्रिशदक्षरं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, सावित्रीं लक्ष्मीं यजः प्रणवं यदि जानीयात्स्त्रीसूदः स मृतोऽधो गच्छति तस्मात्सर्वदा नाचष्टे यद्याचष्टे स आचार्यस्तेनैव मृतोऽधो गच्छति ॥ ३ ॥ स होवाच प्रजापतिरित्रवे वेदा इदं सर्व विश्वानि भूतानि प्राणा वा इन्द्रियाणि पशवोऽसम्मृतं सम्राद्स्वराड्विराद्तत्सामः प्रथमं पादं जानीयाद्ययजुःसामाथवेरूपः सूर्योऽन्तरादित्ये हिरण्सयः पुरुवस्तत्साम्नो द्वितीयं पाढं जानीयाद्य ओषधीनां प्रभवति तारापतिः सोमस्तत्साम्नस्तृतीयं पाढं जानीयात्स ब्रह्मा स शिवः स हरिः स इन्द्रः सोऽप्तिः सोऽक्षरः परमः स्बराद तत्साम्रश्चतुर्थे पादं जानीयाची जानीते सोऽस्तत्वं च गच्छति । 🕉 उम्रं प्रथमस्याचं ज्वलं द्वितीयस्याचं नृतिं तृतीयस्याचं मृत्युं चतुर्थ-स्याद्यं साम जानीयाची जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति, तसादिदं साम यत्र कत्रचिन्न।चप्टे यदि दातुमपेक्षते पुत्राय शुश्रुषवे दास्यत्यस्मै शिष्याय चेति ॥ ४ ॥ क्षीरोदार्णवशायिनं नकेसरिं योगिध्येयं परमं पदं साम जानीयाची जानीते सोऽसतत्वं च गच्छित, वीरं प्रथमस्याधीन्सं तंसं द्वितीयस्याधीन्सं हंभी ततीयस्याधीन्त्यं मृत्यं चतुर्थस्याधीन्त्यं साम जानीयाची जानीते सोऽमृ-तत्वं च गच्छति, तस्मादिदं साम येन केनचिदाचार्यमुखेन यो जानीते स तेनैव शरीरेण संसारान्मुच्यते मोचयति मुमुक्षर्भवति जपात्तेनैव शरीरेण देवतादर्शनं करोति, तस्मादिदसेव मुख्यं द्वारं कली नान्येषां भवति, तस्मादिदं साङ्गं साम जानीयाद्यो जानीते स मुमुक्षुभैवति ॥ ५ ॥ ॐ ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं नुकेसरिविग्रहम् । कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहि-तमुमापति पशुपति पिनाकिनं हामित शुतिमीशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभू-तानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतियों यजुर्वेदवाच्यस्तं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽसृतत्वं च गच्छित । महा प्रथमान्तार्धस्याद्यम् । वैतो द्वितीयान्तार्धस्याद्यं, षणं तृतीयान्तार्धस्यायं, तमा चतुर्थान्तार्धस्यायं साम जानीयायो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । तस्मादिदं सिचदानन्दम्यं परं ब्रह्म तमेवं विद्वानमृत इह भवति । तसादिदं साङ्गं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतस्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ विश्वसृज एतेन वै विश्वमिद्मसृजन्त यद्विश्वमसृजन्त तस्मा-द्विश्वसृजो विश्वमेनाननु प्रजायते ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां यन्ति तस्मादिदं साङ्गं साम जानीयाचो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । विष्णुं प्रथमस्यान्त्यं मुखं द्वितीयस्थान्त्यं भद्गं नृतीयस्थान्त्यं म्यहं चतुर्थस्थान्त्यं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति। योऽसौ सोऽवेदयदिदं किं चारमनि ब्रह्मण्यानु-ष्टभं जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । स्त्रीपुंसोर्वा य इहैव स्थातु-मपेक्षते स सर्वेंश्वर्यं ददाति यत्र कुत्रापि म्रियते देहान्ते देवः परं ब्रह्म तारकं व्याचष्टे, येनासावमृती भूत्वा सोऽसृतत्वं च गच्छति । तसादिदं साममध्यगं जपति तसादिदं सामाङ्गं प्रजापतिसासादिदं सामाङ्गं प्रजापतिर्य एवं वेदिति महोपनिषत् । य एतां महोपनिषदं वेद स कृतपुरश्चरणोऽपि महाविष्णुर्भवित महाविष्णुर्भवतीति ॥ ७ ॥

इत्याधर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु प्रथमोपनिषत्समाप्ता ॥ १ ॥

देवा ह वै मृत्योः पाप्मभ्यः संसाराचाविभयुस्ते प्रजापतिसुपाधावंस्तेभ्य एतं मन्नराजं नारसिंहमानुष्टुभं प्रायच्छत्तेन वै सर्वे मृत्युमजयन्सर्वे पाप्मान-मतरन्संसाराचातरंस्तसाद्यो दृत्योः पाप्मभ्यः संसाराच विभीयात्स एवं मन्नराजं नारसिंहमानुष्टुभं प्रतिगृह्णीयात्स मृत्युं जयति स पाप्मानं तरित स संसारं तरित तस्य ह वे प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा पृत्रिव्यकारः स ऋग्भिर्ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गाईपत्यः स साम्नः प्रथमः पादो भवति, द्वितीयाऽन्तरिक्षं स उकारः स यजुर्भिर्यजुर्वेदो विष्णू रुद्रास्त्रिष्टुब्दिक्ष-णाग्निः स साम्नो द्वितीयः पादो भवति, तृतीया द्योः स मकारः स सामिभः सामवेदो रुद्रा आदित्या जगत्याहवनीयः स साम्नस्तृतीयः पादो भवति, याऽत्रसानेऽस्य चतुर्ध्यर्धमात्रा सा सोमलोक ओंकारः सोऽथर्यणैर्मन्ने-रथर्ववेदः संवर्तकोऽशिर्मरुतो विराडेक ऋषिर्भास्वती सा साम्नश्चतुर्थः पादो भवति ॥ १ ॥ अष्टाक्षरः प्रथमः पादो भवत्यष्टाक्षरास्त्रयः पादा भवन्ति, एवं द्वात्रिंशदक्षराणि संपद्यन्ते द्वात्रिंशदक्षरा वा अनुष्टुटभवति, अनुष्टुभा सर्वमिदं सृष्टमनुष्टुभा सर्वमुपसंहतं तस्य हि पञ्चाङ्गानि भवन्ति, चत्वारः पादाश्चत्वा-र्येङ्गानि भवन्ति, सप्रणवं सर्वं पञ्चमं भवति । ॐ हृदयाय नमः । ॐ शिरसे स्वाहा। ॐ शिखाये वषद। ॐ कवचाय हुम् । ॐ अस्ताय फिडिति प्रथमं प्रथमेन युज्यते द्वितीयं द्वितीयेन तृतीयं तृतीयेन चतुर्थं चतुर्थेन पञ्चमं पञ्चमेन व्यतिषक्ता वा इमे लोकास्तस्माद्वयतिषक्तान्यङ्गानि भवन्योमित्येतद्क्षरमिदं सर्वे तसात्प्रत्यक्षरमुभयत ओंकारो भवतीत्यक्षराणां न्याससुपदिशन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ २ ॥ तस्य ह वा उग्रं प्रथमं स्थानं जानीयाद्यो जानीते सोऽसृतत्वं च गच्छति, वीरं द्वितीयं स्थानं महाविष्युं नृतीयं ज्वलन्तं चतुर्थं सर्वतोसुखं पञ्चमं नृसिंहं षष्टं भीषणं सप्तमं भद्रमष्टमं मृत्युमृत्युं नवमं नमामि दशममहमित्येकादशं स्थानं जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । एकादशपदा वा अनुष्टुब्भवत्यनुष्टुभा सर्विमिदं सृष्टमनुष्टुभा सर्वमुपसंहतं तस्मात्सर्वमिदमानुष्टुभं जानीयाद्यो जानीते सोऽ-मृतत्वं च गच्छति ॥ ३ ॥ देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्नथ कसादुच्यत उत्रमिति, स होवाच प्रजापतिर्यसात्स्वमहिसा सर्वौह्योकान्सर्वान्देवान्सर्वाना-त्मनः सर्वाणि भूतान्युद्धृद्धात्मजसं सजति विस्जति विवासयत्युद्धाह्यत उद्रहाते । स्तुहि श्रुतं ,गर्तसदं युवानं मृगं नभीममुपहन्तुमुग्रम् । मडा जरित्रे सिंह स्तवानो अन्यं ते असम्निवपन्तु सेनाः । तसादुच्यत उम्रमिति । अथ कस्मादुच्यते वीरमिति यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वाञ्चोका-न्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमति विरामयत्यजसं सजिति विसूजति वासयति । यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तयावा जायते देवकामः । तस्मादुच्यते वीरमिति । अथ कस्मादुच्यते महाविष्णुमिति । यः सर्वां होकान्व्यामोति व्यापयति स्नेहो यथा पळळपिण्डमोतप्रोतमनुप्राप्तं व्यतिषक्तो व्याप्यते व्यापयते । यसान्न जातः परोऽन्योऽस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापितः प्रजया संविदानस्वीणि ज्योतींषि सचते स षोडशीति । तसादुच्यते महाविष्णुमिति । अथ कसादुच्यते ज्वलन्तमिति यसात्स्वमहिम्ना सर्वीह्वीकान्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वतेजसा ज्वलति ज्वालयति ज्वाल्यते ज्वालयते । सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन्दीप्य-मानः । ज्वलञ्ज्वलिता तपन्वितपन्संतपन्रोचनो रोचमानः शोभनः शोभ-मानः कल्याणः। तस्मादुच्यते ज्वलन्तःमिति । अथ कस्मादुच्यते सर्वतो-मुखमिति । यसार्निन्द्रयोऽपि सर्वतः पश्यति सर्वतः श्रृणोति सर्वतो गच्छति सर्वत आद्ते स सर्वगः सर्वतस्तिष्ठति । एकः पुरस्ताद्य इदं बभूव यतो बभूव भुवनस्य गोपाः । यमप्येति भुवतं सांपराये नमामि तमहं सर्वतोमुखम् । तसादुच्यते सर्वतोमुखमिति । अथ कसादुच्यते नृतिंहमिति । यसात्सर्वेषां भूतानां ना वीर्यतमः श्रेष्टतमश्च सिंहो वीर्यतमः श्रेष्टतमश्र तस्मान्नृसिंह आसीत्परमेश्वरो जगद्धितं वा एतद्रूपमक्षरं भवति । प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याय मृगो नभीमः कुचरो गिरिष्टाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेप्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा । तस्मादुच्यते नृतिहिमिति । अथ कस्मादुच्यते भीषणमिति । यसाद्यस्य रूपं दृष्ट्वा सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाण भूतानि भीत्या पलायन्ते स्वयं यतः कृतश्चित्र विभेति । भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः । भीषाऽसादिमिश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावित पञ्चमः । तसादुच्यते भीषणमिति । अथ कस्मादुच्यते भद्गमिति । यस्मात्स्वयं भद्गो भूत्वा सर्वदा भद्रं ददाति रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः। भद्रं कर्णेभिः द्राणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षित्रियंजत्राः। स्थिरेरक्नेस्तुष्ट्रवांसस्तन्भिव्यंशेम देवहितं यदायुः। तस्मादुच्यते भद्रमिति। अथ कस्मादुच्यते सृत्युमृत्युमिति।
यस्मात्स्वमहिम्ना स्वभक्तानां स्मृत एव मृत्युमपमृत्युं च मारयति। य
आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छायामृतं
यो मृत्युमृत्युः कस्मे देवाय हविषा विधेम। तस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति।
अथ कस्मादुच्यते नमामीति। यस्माद्यं सर्वे देवा नमन्ति मुसुक्षवो ब्रह्मवाविनश्च। प्र नूतं ब्रह्मणस्पितमित्रं वद्युक्थम्। व्यस्मितिनद्रो वहणो मित्रो
अर्थमा देवा ओकांसि चिकरे। तस्मादुच्यते नमामिति। अथ कस्मादुच्यतेऽह्मिति। अहमस्मि प्रथमजा ऋताइस्य। पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाइभायि।
यो मा ददाति स इदेव माइवाः। अहमक्रमज्ञमदन्तमाइक्षि। अहं विश्वं
भुवनमभ्यभवाइम्। सुवर्न ज्योतीः। य एवं वेदेत्युपनियत्॥ ४॥

इत्याथर्वणीयनृसिंइपूर्वतापनीयोपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत्समाप्ता ॥ २ ॥

देवा ह वै प्रजापितमञ्ज्ञवानुष्टुभस्य मन्त्रराजस्य नारसिंहस्य शक्ति वीजं च नो बूहि भगव इति । स होवाच प्रजापितमीया वा एषा नारसिंही सर्वमिदं स्वति । तस्मान्मायामेतां शक्ति विद्याद्य एतां मायां शक्ति वेद स पाप्मानं तरित सोऽज्ञतत्वं च गच्छित महतीं श्रियमश्रुते मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनो हस्या वा र्वार्षो वा छुता वेति । यदि हस्या भवित सर्व पाप्मानं दहस्यस्वतत्वं च गच्छित, यदि दीर्घा अवित महतीं श्रियमाप्नुयादस्तत्वं च गच्छित, यदि छुता भवित ज्ञानवान्भवत्यस्वतत्वं च गच्छित । तदेतहिषणोक्तं निदर्शनम् सर्व पादि य ऋजीवी तस्त्रः श्रियं लक्ष्मीमोपलामित्वकां गां षष्टीं च यामिन्द्रसेनेत्युत आहुन्तां विद्यां ब्रह्मयोनिं सरूपां तामिहायुषे शरणं प्रपद्ये । सर्वेषां वा एतन्द्रतानामाकाशः परायणं सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव जायन्ते । आकाशादेव जातानि जीवन्त्याकाशं प्रयन्त्यभिसंविशनित । तस्मादाकाशं वीजं विद्यात्त-देतहिषणोक्तं निदर्शनम् हिंसः ग्रुचिषद्वसुरन्तिश्वसद्वोता वेदिषदितिथिर्दु-रोणसत् । नुषद्वरसदतसद्योमसद्वजा गोजा ऋतजा अदिजा ऋतं बृहत् । य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वेणीय नृसिंहपूर्वेतापनीयोपनिषत्सु तृतीयोपनिषत्समाप्ता ॥ ३ ॥

देवा ह वै प्रजापितमबुवन्नानुष्टुभस्य मन्नराजस्य नारसिंहस्याङ्गमन्नान्नो ब्रूहि भगव इति । स होवाच प्रजापितः प्रणवं सावित्रीं यजुर्रुहमीं नृसिंहगायत्री-भित्यङ्गानि जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति । ओमिलेतदक्षरिमदं सर्वे तस्योपन्याख्यानं भूतं भवद्भविःयदिति सर्वमोंकार एव यच्चान्यब्रिकाला-तीतं तद्प्योंकार एव सर्वं होतद्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुप्पाजागरित-स्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलमुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः स्वमस्थानेऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तेजसो द्वितीयः पादी यत्र सप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वमं पश्यति तत्सु वृप्तं सुबुप्तस्थान एकी भूतः प्रज्ञानयन एवानन्दमयो ह्यानन्द्रभुक्चेतो खुखः प्राज्ञस्तृतीयः पाद एव सर्वेश्वर एव सर्वज्ञ एपोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययो हि भूतानां न वहिःप्रज्ञं नान्तःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्ट-मन्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमलिङ्गमचिन्त्यमन्यपदेदयमेकाःमप्रत्ययसारं प्रपञ्चो-पशमं शिवसद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विशेषः ॥ १ ॥ अध सावित्री गायत्री या यजुषा प्रोक्ता तया सर्विमिदं न्याप्तं घृणिरिति द्वे अक्षरे सूर्य इति त्रीण्यादित्य इति त्रीण्येतद्वे सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं श्रियाभिषिक्त य एवं येद श्रिया हैवाभिषिच्यते । तदेतदचाऽभ्युक्तम् - ऋचो अक्षरे परसे ज्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यसन्न वेद किम्रचा करिःयति य इत्तद्विदुः हमे समासत इति। न ह या एतस्यर्चा न यज्ञवा न सा-म्नाऽथींऽस्ति यः सावित्रीं वेदेति । ॐ भूर्लक्ष्मीर्भुवर्लक्ष्मीः सुवःकालकर्णी । तक्रो महालक्ष्मीः प्रचोदयादियेषा वे महालक्ष्मीर्यज्ञर्गायत्री चतुर्विशत्यक्षरा भवति गायत्री वा इदं सर्वं यदिदं किंच तसाद्य एतां महालक्ष्मीं याजुषीं वेद महतीं शियमक्षते । ॐ नृसिंहाय विद्यहे वज्रनलाय धीमहि । तन्नः सिंहः प्रचोदयादित्येषा वै गृसिंहगायत्री वेदानां देवानां निदानं भवति य एवं वेद स निदानवान्भवति ॥ २ ॥ देवा ह वै प्रजापतिमद्यवन्नथ कैर्मक्रैदेवः स्तुतः प्रातो भवति स्वात्मानं द्रशयति तन्नो मूहि भगव इति । स होवाच प्रजापतिः । ॐ उं ओं यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च ब्रह्मा तसी वै नमो नमः १ । ॐ ग्रं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च विष्णुससो वे नतो नमः २।ॐ वीं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च सहेश्वरस्तसै वै नमो नमः ३। ॐ रं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च पुरुषम्तसी वै नमो नमः ४। ॐ मं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्चेश्वरस्तस्मै वै नमो नमः ५।ॐ हां ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या सरस्वती तसौ वै नमो नमः ६ । ॐ विं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या श्रीस्तस्मै वै नमो नमः ७। ॐ क्लं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या गौरी तसी वै नमो नमः ८ । ॐ ज्वं अँ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या प्रकृतिस्तस्मै वै नमो नमः ९। ॐ लं अं यो वै नृसिंहो देवो भगवान्या विद्या तसी वै नमो नमः १०। अं तं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्चोंकारस्तस्मे वै नमो नमः ११। ॐ सं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्याश्वतस्रोऽर्धमात्रास्तस्म वै नमो नमः १२। ॐ वं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये च वेदाः साङ्गाः सशाखासास वै नमी नमः १३। ॐ तों ॐ यो वे नृसिंहो देवो भगवान्ये पञ्चामयससी वै नसो नमः १४। ॐ मुं ॐ यो वे नृसिंहो देवो भगवान्याः सप्त न्याहतयसासी वै नमो नमः १५ । ॐ खं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये चाष्टौ लोकपालास्तसौ वै नमो नमः १६ । ॐ नृं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये चाष्टौ वसवस्तस्ते वै नमो नमः १७। ॐ सिं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये च रुद्रास्तस्मै वै नमो नमः १८ । ॐ हं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये चादित्यास्तस्मै वै नमो नमः १९। हीं भि ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्ये चाष्टौ प्रहास्तस्मै वै नमो नमः २०। ॐ पं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यानि पञ्च महाभूतानि तसी वै नमो नमः २१। ॐ णं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च कालस्तसौ वै नमो नमः २२। ॐ भं ॐ यो वै नृतिहो देवो भगवान्यश्र मनुस्तसी वै नमो नमः २३। ॐ दं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च मृत्युस्तसी वै नमो नमः २४। ॐ मृं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च यमस्तसी वै नमो नमः २५। ॐ त्युं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्चान्तकस्तसै वै नमो नमः २६। ॐ मृं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च प्राणम्तस्ते वै नमो नमः २७ । ॐ त्युं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः २८ । ॐ नं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च सोमस्तस्मै वै नमो नमः २९। ॐ मां ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च विरादपुरुवस्तस्मै वै नमो नमः ३०। ॐ म्यं ॐ यो वै नृसिंहो देवो भगवान्यश्च जीवस्तस्मै वै नमो नमः ३१। ॐ हं ॐ यो वे नृसिंहो दैवो भगवान्यश्च सर्वं तस्मै वे नमो नमः ॥ ३२ ॥ इति तान्प्रजा-

ते

गे

यो

11-

पितरव्रवीदेतेह्यात्रिंशन्मब्रेनित्यं देवं स्तुवते ततो देवः प्रीतो अवित स्वात्मानं दर्शयित । तस्माद्य एतेर्मब्रेनित्यं देवं स्तौति स देवं पश्यित स सर्वं पश्यित सोऽमृतत्वं च गच्छति य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥ ३ ॥

इत्यायर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत्समाप्ता ॥ ४ ॥

देवा ह वे प्रजापितमञ्जवन्यहाचकं नाम चकं नो ब्रुहि भगव इति सार्वकामिकं मोक्षद्वारं यद्योगिन उपदिशन्ति स होवाच प्रजापितः एडरं वा एतत्सुदर्शनं महाचकं तस्मात्षडरं भवति पद्पत्रं चकं भवति पइ वा ऋतव ऋतुभिः संमितं भवति मध्ये नाभिभैदति नाभ्यां वा एतेऽराः प्रतिष्ठिताः । मायया वा एतत्सर्वं वेष्टितं भवति नात्मानं माया स्प्रशति तसान्मायया बहिर्वेष्टितं भवति । अथाष्टारमष्टपत्रं चकं भवत्यष्टाक्षरा वै गायत्री गायत्र्या संमितं भवति बहिर्मायया वेष्टितं भवति क्षेत्रं क्षेत्रं वा मायैषा संपद्यते । अथ द्वादुशारं द्वादुशपत्रं चकं भवति द्वादुशाक्षरा वै जगती जगत्या संमितं भवति बहिर्मायया वेष्टितं भवति । अथ षोडशारं पोडशपत्रं चकं भवति पोडशकलो वै पुरुषः पुरुष एवेदं सर्वं पुरुषेण संमितं भवति मायया वहिर्वेष्टितं भवति । अथ द्वात्रिंशदरं द्वात्रिंशत्यत्रं चकं भवति द्वात्रिशदक्षरा वा अनुष्टुवनुष्टुभा संमितं भवति बहिर्मायया वेष्टितं भवव्यरेवी एतत्सुवहं भवति वेदा वा एतेऽराः पत्रेवी एतत्सर्वतः परिकामति छन्दांसि वै पत्राणि ॥ १ ॥ तदेवं चकं सुदर्शनं महाचकं तस्य मध्ये नाभ्यां तारकं भवति यद्श्वरं नारसिंहमेकाक्षरं तद्भवति षद्मु पत्रेषु षडक्षरं सुदर्शनं भवत्य-ष्टसु पत्रेप्वष्टाक्षरं नारायणं भवति द्वादशसु पत्रेषु द्वादशाक्षरं वासुदे<mark>व</mark>ं भवति । पोडशसु पत्रेषु मातृकाद्याः सबिन्दुकाः घोडश कला भवन्ति । द्वात्रिंशत्सु पत्रेषु द्वात्रिंशदक्षरं मञ्जराजं नारसिंहमानुष्टुमं भवति । तद्वा एतत्सुदर्शनं महाचकं सार्वकाभिकं मोक्षद्वारमृङ्मयं यनुर्मेयं साममयं ब्रह्म-मयममृतमयं भवति । तस्य पुरस्ताद्वसव आसते रुद्दा दक्षिणत आदित्याः पश्चाहिश्वे देवा उत्तरतो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नाभ्यां सूर्याचन्द्रमसौ पार्श्व-योः । तदेतदचाऽभ्युक्तम्—ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुन्त इमे समा-सत इति । तदेतन्महाचकं बालो वा युवा वा वेद स महान्भवति स गुरुभविति स सर्वेषां मन्नाणामुपदेष्टा भवत्यनुष्टुभा होमं कुर्यादनुष्टुभाचैनं अ. उ. १५

तदेतद्वक्षोग्नं मृत्युतारकं गुरुतो लब्धं कण्ठे वाहौ शिखायां वा वज्ञीत सप्तद्वीपवती भूमिदंक्षिणार्थं नावकल्पते तस्माच्छ्दया यां कांचिद्यात्मा दक्षिणा
भवति ॥ २ ॥ देवा ह वै प्रजापितमञ्जवन्नानुष्टुभस्य मन्नराजस्य फलं नो बृहि
भगव इति स होवाच प्रजापितयं एतं मन्नराजं नारिसहमानुष्टुभं निलमधीते
सोऽग्निप्तो भवति स वायुप्तो भवति स आदित्यप्तो भवति स सोमप्तो
भवति स सत्यप्तो भवति स ब्रह्मप्तो भवति स विष्णुप्तो भवति स
रहम्पतो भवति स वेदप्तो भवति स सर्वप्तो भवति स सर्वप्तो भवति ॥

इलाथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते स मृत्युं तरित स पाप्मानं तरित स ब्रह्महत्यां तरित स भूणहत्यां तरित स वीरहत्यां तरित स सर्व तरित स सर्व तरित ॥

इलाथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोणनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ य एतं मन्त्रराजं नारसिंहमानुष्टुभं सोऽशिं स्तम्भयति स वायुं स्तम्भयति स आदित्यं म्तम्भयति स सोमं स्तम्भयति त उदकं स्तम्भयति स सर्वान्दे-वान्स्तम्भयति स सर्वान्यहान्स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति ॥

इत्याथवंशीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ य एतं मञ्जराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते स भूर्लीकं जयित स सुवर्लीकं जयित स स्वर्लीकं जयित म महर्लीकं जयित स जनोलोकं जयित स तपोलोकं जयित स स्वर्लोकं जयित स सर्वलोकं जयित स सर्वलोकं जयित ॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

य एतं मन्नराजं नारसिंहमानुष्टुमं नित्यमधीते स मनुष्यानाकर्षयित स देवानाकर्षयित स नागानाकर्षयित स यक्षानाकर्पयित स यहानाकर्पयित स सर्वानाकर्षयित स सर्वानाकर्पयित ॥

इत्याथर्नणीयनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

य एतं मन्नराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते सोऽग्निष्टोमेन यजते स उन्ध्येन यजते स पोडशिना यजते स वाजपेयेन यजते सोऽतिरात्रेण यजते सोऽशोर्यामेण यजते सोऽश्वमेधेन यजते स सर्वेः ऋतुभिर्यजते स सर्वेः ऋतुभिर्यजते ॥

इत्याथर्वणीयनृतिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्स षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

य एतं मञ्जराजं नारसिंहमानुष्टुभं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यज्र्ष्ण्य-धीते स सामान्यधीते सोऽथर्याणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स पुराणान्यधीते स कल्पानधीते स गाथा अधीते स नाराशंसीरधीते स प्रणब-मधीते यः प्रणवमधीते स सर्वमधीते स सर्वमधीते ॥

इत्याथवंगीय नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषत्सु सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अनुपनीतशतमेकमेकेनोपनीतेन तत्सममुपनीतशतमेकमेकेन गृहस्थेन तत्समं गृहस्थशतमेकमेकेन वानप्रस्थेन तत्समं वानप्रस्थशतमेकमेकेन वानप्रस्थेन तत्समं वानप्रस्थशतमेकमेकेन यतिना तत्समं यतीनां च शतं पूणं रुद्रजापकेन तत्समं रुद्रजापिशतमेकमेकेन मन्नराजजा-पकेन तत्समं तद्दा एतत्परमं धाम मन्नराजाध्यायकस्य यत्र मूर्यो न तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमास्तपति यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्र नाजिन्द्रिति यत्र न मृत्युः प्रविशति यत्र न दुःखं सद्दानन्दं परमानन्दं शाश्वतं शान्तं सद्दाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः । तदेतद्याभ्युक्तम्—तद्विष्णोः परमं पदं सद्दा पश्यन्ति स्तरः । दिवीव चश्च-राततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदमिति तदेतिन्निकामस्य भवति तदेतिन्निकामस्य भवति ॥ ३॥

इत्याथवेणीयनृसिंहपूर्वेतापनीयोपनिषत्स्रष्टमोऽव्यायः ॥ ८ ॥ इत्याथवेणीयनृसिंहपूर्वेतापनीयोपनिषत्समाप्ता ॥ ५ ॥

नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत् ॥ २९ ॥

ॐ भद्रं कर्णेनिः ग्रुणुयाम० ॥ १ ॥ स्वस्ति न इन्द्रो बृह्स्ववाः० ॥ २ ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

देवा ह वे प्रजापितमञ्जवन्नणोरणीयांसिममात्मानमींकारं नो व्याच-क्ष्मेति तथेत्वोमित्येतद्क्षरिमदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं स्तं भवद्वविष्य-दिति सर्वमोंकार एव यद्यान्यिकालातीतं तद्प्योंकार एव । यर्व होतद्वह्याय-मात्मा बह्य तसेतमात्मानमोभिति ब्रह्मणेकीकृत्य ब्रह्म चात्मनोमित्येकीकृत्य तदेकमजरमभरममृतमभयमोमित्यनुभूय तिसिन्निदं सर्वं विदारीरमारोप्य तन्मयं हि तदेवेति संहरेदोमिति तं वा एतं विदारीरमात्मानं विदारीरं परं ब्रह्मानुसंद्ध्यात्स्यूलस्वात्स्यूलभुक्तवात्त्य सूक्ष्मत्वात्सूह्मभुक्तवात्त्वन्यादानन्द- भौगाच सोऽयमात्मा चतुःषाजागरितस्थानः स्थूलप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुक्चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरः प्रथमः पादः स्यमस्थानः सूक्ष्मप्रज्ञः
सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्क्ष्मभुक्चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगभौ दितीयः
पादो यत्र सुसो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वमं पश्यति तत्सुपुत्तम् ।
सुपुत्तस्थान एकोभृतः प्रज्ञानन्न एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेवोमुखश्रतुरात्मा
प्राज्ञ ईश्वरस्तृतीयः पाद एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याग्वेष योनिः सर्वस्थ
प्रभवाष्ययो हि भूतानां त्रयमप्येतत्सुपुतं स्वमं मायामात्रं चिदेकरसो ह्ययमात्माऽथ चतुर्थश्चतुरात्मा तुरीयावसितत्वादेकैकस्थोतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्पेससम्वापि सुपुतं स्वमं मायामात्रं चिदेकरसो ह्यथायमादेशो न स्थूलप्रज्ञं न
सृक्ष्मप्रज्ञ नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानवनमदृष्टमन्यवहार्यमप्राह्ममलक्षणमचिन्त्यमन्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्जोपश्मं हिवं शान्तमहैतं
चतुर्थं मन्यन्ते स एवात्मा स विज्ञेय ईश्वर्यासस्तुरीयनुर्रायः ॥ १ ॥

इत्याथर्वेणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ ९ ॥

तं वा एतमात्मानं जामलस्वममसुषुसं स्वमेऽजामतमसुषुसं सुषुतेऽजा-अतमस्तमं तुरीयेऽजाप्रतमस्वमससुपुष्तमन्यभिचारिणं निसानन्तसदेकरसं ह्येवं चक्षुषो दृष्टा श्रोत्रस्य दृष्टा वाचो दृष्टा मनसो दृष्टा वृद्धेर्द्र्ष्टा प्राणस द्रष्टा तमसो द्रष्टा सर्वस्य द्रष्टा ततः सर्वस्माद्साद्न्यो विलक्षणश्रञ्जाष साक्षी श्रोत्रस्य साक्षी वाचः साक्षी मनसः साक्षी हुद्देः साक्षी प्राणस साक्षी तमसः साक्षी सर्वस्य साक्षी ततोऽविक्रियो महाचैतन्योऽसात्सर्वसा-त्रियतम आनन्द्वनं होवमसात्सर्वसात्पुरतः सुविभातमेकरसमेवाजरम-सरसमृतसभयं ब्रह्मैवाप्यजयैनं चतुष्पादं मात्राभिरोंकारेण चैकीकुर्या-जागरितस्थानश्चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरश्चत्रूपोऽकार ह्ययमकारः स्थृलस्क्मबीजसाक्षिभरकाररूपैराप्तेरादिमत्वाद्वा स्थृल्त्वात्स्-क्ष्मत्वाद्वीजत्वात्साक्षित्वाचामोति ह वा इदं सर्वमादिश्च भवति य एवं वेद स्वप्तस्थानश्चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगर्भश्चतूरूप उकार एव चत्रूणो ह्मयमुकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिरकाररूपैरुत्कर्षादुभयत्वाद्वां स्थूलत्वा-त्सूक्ष्मत्वाद्वीजत्वात्साक्षित्वाचोत्कर्षाते ह वै ज्ञानसंत्रति समानश्च भवति य एवं वेद । सुषुप्तस्थानश्चतुरात्मा प्राज्ञ ईश्वरश्चत्रूरूपो मकार एव चत्रूरूपो ह्ययं सकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिर्मकाररूपैर्मितेरपीतेर्वा स्थूलत्वात्सूक्ष्म-

å

य

य

T-

₹-

गो

दं

पो

ा-ति

पो

ਸ-

त्वाद्वीजत्वात्साक्षित्वाच मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्व भवति य एवं वेद । सात्रा मात्राः प्रतिमात्राः कुर्योद्य नुरीय ईश्वरप्रासः स्वराद स्वयमी-श्वरः स्वप्रकाशश्चतुरात्मोतानुज्ञात्रनुज्ञाविकद्वेरोतो स्वयमात्मा यथेदं सर्व-मन्तकाले कालाझिस्ये उसेरनुज्ञाता क्षयमा साइस सर्वस स्वातमानं दक्तातीदं सर्व स्वातमानसेव करोति यथा तमः सविवाऽनुहैकरसो ह्ययपात्माः चिद्रम एव यथा दाछं दंग्ध्वाऽसिरविकस्पो स्वसातभाऽवाङ्मनोगोचर-त्वाचिद्रपश्चत्र्य ओंकार एव चत्र्यो समसीयार ओतानुज्ञात्रनुज्ञा-विकल्पेरोकाररूपेरामित्र नामरूपात्मकं हीई सर्व तुरीयत्वाचिद्यत्वाद्वोत-स्वादनुज्ञानुन्यादनुज्ञात्याद्विकल्परूपत्याचाविकल्पर १ हीदं सर्व नैय तन्न काचन सिदाऽस्टाध तस्यायमादेशोऽमात्रश्रतुर्थोऽन्यवरार्यः प्रपञ्जोपशसः शिवोऽहैत ओंकार आत्मेय संविशत्यात्मनात्मातं य एवं वेदेप वीरो नारसिंहेन वानुष्टुभा मन्नराजेन नुरीयं विद्यादेव झामानं प्रकाशयति सर्वेसंहारसमर्थः परिभवासहः प्रभुज्योप्तः सदोज्वकोऽनिद्याकार्यहीनः स्वात्म-बन्धहरः सर्वदा द्वेतरहित आनन्दरूपः सर्वोधिष्ठानसन्सात्रो निरन्ताविद्यातमो-मोहोऽहमेविति तस्माद्वमेवेममात्मानं परं ब्रह्मानुमंद्रध्यादेष वीरो नृसिंह एव ॥ २ ॥

इत्याथवेणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्मु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तस्य ह वे प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा सा प्रथमपादोभयतो भवति । द्वितीया द्वितीयस्य तृतीया तृतीयस्य चतुध्योतानुज्ञात्रनुज्ञाविकृत्परूपा तया तृतीयं चतुरात्मानसन्वित्य चतुर्थपादेन च तया तृतीयेणानुचिन्तयन्यसेत्तस्य ह वा स्तस्य प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा सा पृथिव्यकारः स ऋग्भिक्रेग्वेदो ब्रह्मा चस्वो गायत्री गार्हपत्यः सा प्रथमः पादो भवति । भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्पूलस्क्षमबीजसाक्षिभिद्वितीयाऽन्तिरक्षं स उकारः स यजुर्भिर्य-जुर्वेदो विष्णुरुद्रास्त्रिष्टुव्दक्षिणिष्टाः सा द्वितीयः पादो भवति । भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्पूलस्क्षमबीजसाक्षिभिस्तृतीया द्योः स मकारः स सामिनः सामवेदो रुद्रादित्या जगत्या जगत्याहवनित्यः सा तृतीयः पादो भवति । भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्पूलस्क्षमबीजसाक्षिभियोऽवसान्वेऽस्य चतुर्थिभात्रा सा सोमलोक ओंकारः सोऽथवेंभैमत्रेरथवेवेदः संवर्ते-कोऽक्षिमेरुतो विराहेकक्षिभीस्वती स्पृता सा चतुर्थः पादो भवति । भवति । भवति

च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलस्थ्मबीजसाक्षिभिर्मात्रा मात्राः प्रतिमात्राः कृत्वोतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्परूपं चिन्तयन्य्रसेत ज्ञोऽस्त्रतो हुतसंवित्कः शुद्धः संविष्टो निवित्न इममसुनियमेऽनुभूयेहेदं सर्व दृष्ट्वाऽसुप्रपञ्चहीनोऽथ सकलः साधारोऽसृतमयश्चतुरात्मा सर्वमयश्चतुरात्माऽथ महापीट सपरिवारं तमेतं चतुःसप्तात्मानं चतुरात्मानं मृलाप्नायक्षिरूपं प्रणवं संदृध्यात्सप्तात्मानं चतुरात्मानं मकारं रहं श्रूमध्ये सप्तात्मानं चतुरात्मानं स्वत्यात्मानं स्मानं स्वत्यात्मानं स्वत्यात्यानं स्वत्यात्मानं स्वत्यात्मानं स्वत्यात्मानं स्वत्यात्मानं स्वत

इ्लाथवंणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्मु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

तं वा एतमात्मानं परमं ब्रह्मोंकारं तुरीयोंकारायविद्योतमनुष्टुभा नत्वा प्रसाद्योमिति संहत्याहमित्यनुसंद्ध्याद्येतमेवात्मान परमं ब्रह्मोंकारं तुरीयोंकारायविद्योतमेकाद्शात्मानमात्मानं नारसिंहं नत्वोमिति संहरजनुसंद्ध्यात्। अथैतमेवात्मानं परमं ब्रह्मोंकारं तुरीयोंकारायविद्योतं प्रणवेन संचिन्त्यानुष्टुभा सिद्यानन्दपूर्णात्मसु नवात्मकं सिद्यदानन्दपूर्णात्मानं परमात्मानं परं ब्रह्म संभाव्याहमित्यात्मानमादाय नमसा ब्रह्मणैकीकुर्यादनुष्टुभैव वैष उ एव त्रेष् हि सर्वत्र सर्वदा सर्वात्मा सन्सर्वमित्त तृसिंह एवेकल एष तृरीय एप एवोग्र एष एव वीर एष एव महानेष एव विष्णुरेष एव ज्वलक्षेष एव सर्वतोमुख एष एव नृसिंह एष एव भीषण एष एव भद्र एष एव मृत्युमृत्युरेष एव नमाम्येष एवाहमेवं योगा-रूढो ब्रह्मण्येवानुष्टुभं संद्ध्यादोंकार इति । तदेतो श्लोको भवतः—संस्वभ्य सिंहं स्वसुतानगुणर्थान्संयोज्य श्रङ्गैर्क्षषमस्य हत्वा । वश्यां स्फुरन्तीमसर्ती निपीड्य संभक्ष्य सिंहेन स एष वीरः । शृङ्गप्रोतान्पदा स्पृष्ट्वा हत्वा तामप्र-सत्ययम् । नत्वा च बहुधा द्या नृसिंहः स्वयमुद्धभाविति ॥

इत्याथर्वणीय टिसंहोत्तरत्वापनीयोपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथैषो एवाकार आप्ततमार्थ आत्मन्येव नृत्तिहे ब्रह्मणि वर्तत एष ह्येवा-प्ततम एष हि साक्ष्येष ईश्वरोऽतः सर्वगतो न हीदं सर्वमेष हि व्याप्ततम इदं सर्वं यदयमात्मा मायामात्रमेष एवोग्र एष हि न्याप्ततम एष एव वीर एष हि व्याप्ततम एष एव महानेष हि व्याप्ततम एष एव विष्णुरेष हि व्याततम एष एव ज्वलन्नेष हि व्याप्ततम एष एव सर्वतोमुख एष हि व्याप्त-तम एव एव नृसिंह एव हि व्याप्ततम एष एव भीवण एष हि व्याप्ततम एष एव भद्र एप हि न्याप्ततम एष एव मृत्युमृत्युरेष हि न्याप्ततम एष एव नमाम्येष हि व्याप्ततम एव एवाहसेष हि व्याप्ततम आत्मेव नृसिहो ब्रह्म भवति य एवं वेद । सोऽकामो निय्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रेव समवनीयन्ते ब्रह्मेव सन्ब्रह्माप्येत्यथैषो एवोकार उत्कृष्टतमार्थ आत्मन्येव नृसिंहे देवे ब्रह्मणि वर्तते । तस्मादेष सत्यस्वरूपो न ह्यन्यदस्त्यमेय-मनात्मप्रकाशमेप हि स्वप्रकाशोऽसङ्गोऽन्यन्न वीक्षत आत्माऽतो नान्यप्रथाप्रा-सिरात्ममात्रं ह्येतदुत्कृष्टमेष एवोत्र एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव वीर एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव महानेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव विष्णुरेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव ज्वलन्नेष ह्येवोत्कृष्ट एप एव सर्वतोमुख एप ह्येवोत्कृष्ट एप एव नासिंह एव ह्येवोत्कृष्ट एप एव भीषण एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव भद्र एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव मृत्यु-मृत्युरेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव नमाम्येष ह्येवोत्कृष्ट एष एवाइमेष ह्येवोत्कृष्ट-स्तसादात्मानमेवैवं जानीयादात्मैव नृसिहो देवो ब्रह्म भवति य एवं वेद । सोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्कामनत्यत्रैव सम-वनीयन्ते । ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येत्यथैषो एव मकारो महाविभृत्यर्थ आत्मन्येव नासिंहे देवे परे ब्रह्मणि वर्तते तसाद्यमनल्पोऽभिन्नरूपः स्वप्रकाशो ब्रह्मैव व्याप्ततम उत्कृष्टतम एतदेव ब्रह्मापि सर्वज्ञं महामायं महाविभृत्येतदेवोयमे-तिद्ध महाविभूत्येतदेव वीरमेतिहः महाविभूत्येतदेव महदेतिहः महाविभूत्ये-तदेव विष्ण्वेतिहः महाविभूत्येतदेव ज्वलदेतिहः महाविभूत्येतदेव सर्वतोमुल-मेतिद्ध महाविभूत्येतदेव नृसिंहमेतिद्ध महाविभूत्येतदेव भीषणमेतिद्ध महा-विभूखेतदेव भद्रमेति इस्विभूखेतदेव मृत्युमृत्वेति इस्विभूखेतदेव नमाम्येतद्धि महाविभूत्येतदेवाहमेतद्धि महाविभूति तसादकारोकाराभ्यामि-ममात्मानमासतममुत्कृष्टतमं चिन्सात्रं सर्वद्रष्टारं सर्वसाक्ष्णं सर्वेश्रासं सर्वे-प्रेमास्पदं सचिदानन्द्रमात्रमेकरसं पुरतोऽसात्सर्वसात्सुविभातमन्त्रिष्या-

नं ।

ग-मं

i - i -

ह्म

व

य

श्रतममुद्कृष्टतमं चिन्मात्रं महाविभृति सचिदानन्दमात्रमेकरसं परमेव बह्य अकारेण जानीयादात्मैव नृसिंहो देवः परमेव ब्रह्म भवति य एवं वेद् । सोऽ-कामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उदकामन्त्यत्रैव समव-नीयन्ते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येतीति ह प्रजापतिरुवाच ॥

इत्याथवीणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

ते देवा इममात्मानं ज्ञातुभैच्छंसान्हासुरः पाप्मा परिजयास । त ऐक्षन्त हन्तेनमासुरं पाप्सानं प्रसाम इति । त एतमेवोकाराप्रविद्योतं तुरीयतुरीय-मात्मानसुप्रमनुप्रं वीरमवीरं महान्तसमहान्तं विष्णुप्रविष्णुं उवलन्तमज्वलन्तं सर्वतोमुखमसर्वतोमुखं नृसिंहमनृसिंहं भीपणमभीपणं अद्यसदं मृत्युमृत्यु-समृत्युमृत्युं नमाम्यनमाम्यहमनहं नृसिंहानुष्टुंभैव वुतुधिरे तेभ्यो हासावा-सुरः पाप्मा सचिदानन्दवनं ज्योतिरभवत्तस्मादएककवाय इसमेवोंकाराय-विद्योतं तुरीयतुरीयसात्मानं नृसिंहानुष्टुभैव जानीयात्तस्यासुरः सचिदानन्द्धनं ज्योतिभवति । ते देवा ज्योतिष उत्तितीर्षवो द्वितीयाद्वयमेव इममेवोंकाराप्रविद्योतं तुरीयतुरीयमात्मानं नृसिंहातुष्टुभान्वित्य अण्वेनेव तस्मिन्नवस्थितास्तेम्यस्त्रज्योतिरस्य सर्वस्य पुरतः सुविभातमविभातम-द्वैतमचिन्त्यम्लिक्नं स्वप्रकाशमानन्द्रघनं शून्यमथवत्। एवंवितस्वप्रकाशं परमेव ब्रह्म भवति ते देवाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकेषणायाश्च ससाधनेभ्यो इयुत्थाय निरागारा निष्पारेग्रहा अशिला अयज्ञोपवीता अन्धा विधरा मुन्धाः क्लीवा सूका उन्मत्ता हव परिवर्तमानाः शान्ता दान्ता उपरतास्तितिक्षवः समा हिता आत्मरतय आत्मकीडा आत्मसिथुना आत्मानन्दाः प्रणवमेव परमं ब्रह्मात्मप्रकाशं शून्यं जानन्तस्तत्रैव परिसमाप्तास्तसाहेवानां व्रतमा-चरकोंकारे परे ब्रह्मणि पर्यवसितो अवेत्स आत्मनैवात्मानं परमं ब्रह्म यद्यति । तदेव श्लोकः -- राङ्गेष्वराङ्गं संयोज्य सिंहं राङ्गेषु योजयेत् । क्राङ्गाभ्यां क्राङ्गमाबध्य त्रयो देवा उदासत इति ॥

इलाथवंणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

देवा ह वै प्रजापितमञ्जवन्भूय एव नो भगवान्विज्ञापयत्विति तथेत्यजन्त्वादमस्त्वादमस्त्वादमस्त्वादभयत्वादमोकत्वादमोहत्वादनस्तायत्वादिप-पासत्वादद्वेतत्वाचाकारेणेममात्मानमन्विष्योदुत्कृष्टत्वादुदुत्पादकत्वादुदुत्प-वेष्टृत्वादुदुत्थापियतृत्वादुदुदूष्टत्वादुदुत्कर्तृत्वादुदुत्पथवारकत्वादुदुद्वासकत्वा-

दुदुद्धान्तत्वानुदुत्तीर्णावकृतित्वाचीकारेण परमं सिंहमन्विष्याकाराप्र-भयात्मानमुकारपूर्वोर्धमाकृष्य सिंहीकृत्योत्तरार्धेन तं सिंहमाकृष्य महत्त्वा-न्महस्त्वान्यानचान्थुक्त्वान्महादेवत्वान्महेश्वरत्वान्महास्त्वान्महाचिक्वान्म-हानन्दत्वान्महाश्रभुत्वाच मकारार्थेनानेनात्मनैकीकुर्यादशरीरो निरिन्द्र-सचिदानन्दमात्रः स स्वराइ भवति य एवं वेद । करत्वमित्यहमिति होवाचेत्रमेवेदं सर्वं तस्मादहमिति सर्वाभिधानं तस्यादिर-यसकारः ल एव अवति । सर्वं स्थमात्मायं हि सर्वान्तरो न हीदं सर्वं निरा-हमकमारमैर्वेदं सर्व तस्मारसर्वात्मकेनाकारेण सर्वात्मकमारमानमन्विच्छेद्रह्मेवेदं सर्व सिच्चान-दरूपं सिचदान-दरूपिमदं सर्व सदीदं सर्व तत्सिदिति चिद्धीदं सर्वं काशते काशते चेति किं सदितीदमिदं नेयन्भृतिरिति कैवेती-यसियं नेत्ववचनेनैवानुभवन्नुवाचेवसेव चिदानन्दावप्यवचनेनैवानुभवन्नुवाच सर्वमन्यद्िि य परम आनन्दस्तस्य ब्रह्मणो नाम ब्रह्मीत तस्यान्स्रोऽयं सकारः स एव जवति तस्पान्मकारेण परमं ब्रह्मान्विच्छेकिमिद्मेवमित्यु इथिवाहाविचिकित्संस्तस्मादकारेणेममात्मानमन्विष्य सकारेण संद्ध्यादुकारेणाविचिकित्सन्दशरीरो निरिन्दियोऽप्राणोऽतमाः सचिदानन्द-मात्रः स स्वराह् अवति य एवं वेद । ब्रह्म वा इदं सर्वमत्तृत्वादुग्रत्वाद्वी-रत्वान्महस्वाद्विष्णुत्वाज्वलत्वात्सर्वतोमुखत्वानृसिंहत्वाद्वीषणत्वाद्वद्रत्वान्मृ-त्युभृत्युत्वालमामित्वादहन्त्वादिति सततं ह्येतद्रह्मोग्रत्वाद्वीरत्वानमहत्त्वाद्विण्णु-त्वाजवलत्वात्सर्वतोमुखत्वाकृसिंहत्वाद्गीषणत्वाद्भद्रत्वानमृत्युमृत्युत्वान्नमामि-त्वादृहंत्वादिति तसाद्कारेण परमं ब्रह्मान्विष्य मकारेण मनआद्यवितारं सनआदिसाक्षिणमन्विच्छेत्स यदैतत्सर्वमुपेक्षते तदैतत्सर्वमस्मिन्प्रविशति यदा प्रबुध्यते तदैत्सर्वमसादेवोत्तिष्ठति स एतत्सर्व निरूह्य प्रत्युह्य संपीड्य संज्वाल्य संभक्ष्य स्वारमानमेषां ददात्यत्युग्रोऽतिवीरोऽतिमहानिर्तिविष्णुरति-ज्वलज्ञतिसर्वतो मुखोऽतिनृसिंहोऽतिभीषणोऽतिभद्रोऽतिमृत्युमृत्युरतिनमाम्य-त्यहं भूत्वा स्वे महिम्नि सदा समासते तसादेनमकारार्थेन परेण ब्रह्मणैकी-कुर्यादुकारेणातिचिकित्सन्नशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः सचिदानन्दमात्रः स स्वराइ भवति य एवं वेद । तदेष श्लोकः - राई राङ्गार्धमाङ्गण्य राङ्गणानेन योजयेत् । रुङ्गमेनं परे रुङ्गे तमतेनापि योजयेत् ॥

इत्यायर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथ तुरीयेणोतश्च प्रोतश्च हायमात्मा सिंहोऽस्मिन्हि सर्वमयं हि सर्वा-त्माऽयं हि सर्व नैवोतोऽद्वयो ह्ययमात्मेकल एवाविकल्पो न हि वस्त सद्यं ह्योत इव सद्धनोऽयं चिद्धन आनन्द्धन एकरसोऽन्यवहार्यः केनचनाद्वितीय ओतश्च प्रोतश्चेष ओंकार एवं नैविमिति पृष्ट ओमिलेवाह वाग्वा ओंकारो वागेवेदं सर्वं न ह्यशब्दिभवेहास्ति चिन्मयो ह्ययमों-कारश्चिन्मयमिदं सर्वं तसात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्येतदसृतसभयमेतः द्वसाभयं वे ब्रह्माभयं हि वे ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यमनुज्ञाता ह्मयमात्मेष ह्मस्य सर्वस्य स्वात्मानमनुजानाति न होटं सर्वं स्वत आत्मवन्न ह्ययमोतो नानुज्ञाताऽसङ्गत्वाद्विकारित्वादसत्त्वाद्वन्यस्यानुज्ञाता ह्ययमोकार ओमिति ह्यनुजानाति वाग्वा ओकारो वागेवेदं सर्वेमनुजानाति चिन्नयो ह्ययमोकारश्चिद्धीदं सर्वं निरात्मकमात्मसात्करोति तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवलेतद्मृतमभयमेतद्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वे ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यमनुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा प्रज्ञानधन एवायं ह्यसात्सर्वसात्पुरतः सुविभातोऽतश्चिद्धन एव न ह्ययमोतो नानुज्ञाताऽऽम्यं होदं सर्वमस-देवानुज्ञैररसो ह्ययमोकार ओंमिति होवानुजानाति वाग्वा ओंकारो वागेव ह्मनुजानाति चिन्मयो ह्ययमोंकारश्चिदेव ह्मनुक्ता तस्मात्परमेश्वर एवैकनेव तद्भवत्येतद्मृतमभयमेतद्रह्याभयं वे ब्रह्माभयं हि वे ब्रह्म भवति य एवं वेदंति रहस्यमविकल्पो ह्ययमात्माऽद्वितीयत्वादविकल्पो ह्ययमोकारोऽद्वितीय-त्वादेव चिन्मयो ह्ययमोंकारस्तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्यविकल्पो नाविकल्पोऽपि नात्र काचन भिदाऽस्ति नैवात्र काचन भिदाऽस्यत्र भिदा-मिव मन्यमानः शतधा सहस्रधा भिन्नो मृत्योर्मृत्युमाप्नोति तदेतदद्वयं स्वप्रकाशं महानन्दमात्मैवैतद्मृतमभयमेतद्भह्याभयं वे ब्रह्माभयं हि वे ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यम् ॥

इत्याथवीणीयनृसिहोत्तरतापनीयोपनिषत्त्वष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

देवा ह वै प्रजापितमञ्जवित्तममेव नो भगवन्नोंकारमात्मानमुपिद्शेति तथेत्युपद्रष्टाऽनुमन्तेष आत्मा सिंहश्चिद्रूप एवाविकारो श्चपलब्धा सर्वत्र न स्यस्ति हैतसिद्धिरात्मैव सिन्द्दोऽद्वितीयो मायया ह्यन्यदिव स वा एष आत्मा पर एवेपैव सर्वं तथा हि प्रांत्रे सैपाऽविद्या जगत्सर्वमात्मा परमात्मैव स्वप्रकाशोऽप्यविषयज्ञानत्वाज्ञानश्चेव ह्यत्र न विजानात्वनुभूतेर्मां व तमोरूपाऽनुभूतेस्तदेतज्ञडं मोहात्मकमनन्तं तुच्छिमदं रूपमस्यास्य व्यक्षिका नित्यनिवृत्ताऽपि मूढेरात्मेव दृष्टाऽस्य सत्त्वमसत्त्वं च दृर्शयति सिद्धत्वासिद्ध-त्वाभ्यां स्वतन्नास्वतन्नत्वेन सैपा वटवीजसामान्यवदनेकवटशक्तिरेकैव। तद्यथा वटवीजसामान्यमेकमनेकान्स्वाव्यतिरिक्तान्वटान्सवीजानुत्पाद्य तत्र तत्र पूर्ण सत्तिष्टत्येवभेवेषा माया स्वाव्यतिरिक्तानि परिपूर्णानि क्षेत्राणि दुर्शयित्वा जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति सैपा विचित्रा सुददा बह्वडुरा स्वयं गुणभिन्नाऽङ्करेष्वपि गुणभिन्ना सर्वत्र ब्रह्मविष्णु-शिवरूपिणी चैतन्यदीप्ता तस्मादात्मन एव त्रैविध्यं सर्वत्र योनित्वमप्यभिमन्ता जीवो नियन्तेश्वरः सर्वाहंमानी हिरण्यगर्भिस्त्ररूप ईश्वरवद्यक्तचैतन्यः सर्वगो होष हैश्वरः कियाज्ञानात्मा सर्वं सर्वमयं सर्वे जीवाः सर्वमयाः सर्वावस्थासु तथाप्यल्पाः स वा एप भूतानीनिद्याणि विराजं देवताः कोशांश्र सप्टा अविश्यामुढो मुढ इव न्यवहरनास्ते माययैव तसादद्वय एवायमात्मा सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः परः प्रत्यगेकरसः प्रमाणेरतेरवगतः सत्तामात्रं हीदं सर्वं सदेव पुरस्तात्सिद्धं हि ब्रह्म न ह्यत्र किंचनानुभृयते नाविद्याऽनुभवात्मनि स्वप्रकारो सर्वसाक्षिण्य-विकियेऽद्वये पश्यतेहापि सन्मात्रमसद्न्यत्सत्यं हीत्थं पुरस्ताद्योनिः स्वात्म-स्थमानन्दचिद्धनं सिद्धं ह्यसिद्धं तद्विष्णुरीशानो ब्रह्माऽन्यदपि सर्वं सर्वगं सर्वमत एव ग्रुहोऽबाध्यस्वरूपो बुद्धः सुखरूप आत्मा न ह्येतन्निरात्मकमपि नात्मा पुरतो हि सिद्धो न हीदं सर्वं कदाचिदात्मा हि स्वमहिमस्थो निरपेक्ष एक एव साक्षी स्वप्रकाशः किं तन्नित्यमात्माऽत्र ह्येव न विचिकित्स्य-मेतन्द्वीदं सर्वं साधयति द्रष्टा द्रष्टुः साक्ष्यविकियः सिद्धो निरविद्यो बाह्या-न्तरवीक्षणात्सुविस्पष्टस्तमसः परस्ताद्र्तेष दृष्टोऽदृष्टो वेति दृष्टोऽव्यवहार्यो-ऽप्यल्पो नाल्पः साक्ष्यविशेषोऽन्योऽसुखदुःखोऽद्वयः परमात्मा सर्वज्ञो-ऽनन्तोऽभिन्नोऽद्वयः सर्वदाऽसंवित्तिर्मायया नासंवित्तिः स्वप्रकारो यूयमेव दृष्टः किमद्वयेन द्वितीयमेव न यूयमेव बृह्येव भगवित्रति देवा ऊचुर्यूयमेव दृश्यते चेन्नात्मज्ञा असङ्गो ह्ययमात्माऽतो यूयमेव स्वप्रकाशा हि सत्संविन्मयत्वाद्यूयमेव नेति होचुईन्तासङ्गा वयमिति होचुः पश्यन्तीति होवाच न वयं विद्य इति होचुस्ततो यूयमेव स्वप्रकाशा होवाच न च सत्संविन्माया एतौ हि पुरस्तात्सुविभातमन्यवहार्यमेवाद्वयं ज्ञातो होवैष विज्ञातो विदिताविदितात्पर इति होचुः स होवाच तहा पुतद्वहाहुवं बृहस्वाजित्यं युद्धं युद्धं युक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमह्यं सदानन्दं चिन्मात्रमात्मैवाव्यवहार्यं केनचन तदेतदात्मानमोमित्यपद्यन्तः सद्तरसत्यमात्मा ब्रह्मेव ब्रह्मात्मेवात्र होव न विचिकित्सामित्यों सत्व तदेतत्पण्डिता एव पश्यन्त्येतद्वयशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धमन्यक्तमनादा-तन्यमगन्तन्यमविसर्जयितन्यमनानैन्द्यितन्यममन्तन्यमनोद्धन्यमनहंकतेन्य अन्तेतवितन्यम्याणयितन्यमनपानयितन्यमन्यानयितन्यमनुदानयितन्यमस्-सान्यितव्यम्निनिद्यम्बिष्यमकरणमलक्षणमसङ्भगुणम्बिक्रियम्ब्यपदे्द्य- , असत्त्वसरजस्कमतमस्कममायसप्योपनिषद्मेव सुविभातं सकृति नातं पुरतोऽ-स्थात्सर्वस्थात्सुविभातमद्वयं पर्यताहं स सोऽहभिति स होवाच किमेष इष्टोऽदृष्टो वेति दृष्टो विदिताविदितात्पर इति होचुः केषा कथमिति होचुः किं तेन न किंचनेति होचुर्यूयमाश्चर्यरूपा इति न चेत्याहोमित्यनुजानीध्वं ब्रुतैनमिति ज्ञातोऽज्ञातश्चेति होचुर्न चेविमिति होचुरिति ब्रुतैवेनमातमसिङ्मिति होवाच पदयाम एव भगवन्न च वयं पश्यामो नैव वयं वकुं शक्नुमो नम-स्तेऽस्तु भगवन्प्रसीदिति होचुर्न मेतव्यं पृच्छतेति होवाच केषाऽनुजैत्येष एवात्मेति होवाच ते होचुर्नमस्तुभ्यं वयं त इतीति ह प्रजापतिर्देवाननुश-शासानुशशासेति । तदेष श्लोकः—ओतमोतेन जानीयादनुङ्गतारमान्तरस् । अनुज्ञामद्वयं लब्ध्वा उपदृष्टारमावजेदित्युपदृष्टारमावजेदिति ॥ ९ ॥ ॐ भट्टं कर्णेभिः० १। ॐ स्वस्ति न इन्द्रो० २। ॐ शान्तिः ३॥

इत्याथर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्सु नवसः खण्डः ॥ ९ ॥ इत्यार्थर्वणीयनृसिंहोत्तरतापनीयोतिषत्समासा ॥

कालाग्निरुद्रोपनिषत् ॥ ३० ॥

ब्रह्मज्ञानोपायतया यद्विभूतिः ग्रकीर्तिता । कालाग्निरुद्धं तमहं भजतां स्वात्मदं भजे ॥ ॐ सह नाववित्विति शान्तिः ॥

ॐ अथ कालाग्निरुद्दोपनिषदः संवर्तकोऽग्निर्ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीकाला-ग्निरुद्दो देवता श्रीकालाग्निरुद्दशीत्यर्थे भस्मन्निपुण्ड्धारणे विनियोगः॥ अथ कालाग्निरुद्दं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छ-अधीहि भगवंस्त्रिपुण्ड्विधिं सतन्त्वं किंद्रच्यं कियहस्थानं कतिप्रमाणं का रेखा के मन्नाः का शक्तिः किं देवतं

कः कर्ता किं फलमिति च। तं होवाच भगवान्कालाग्निरुटः-यह्रव्यं तदा-द्वीयं असा सद्योजातादिपञ्चब्रह्ममञ्जेः परिगृह्याद्विरिति भसा वायुरिति भसा जलमिति भसा स्थलमिति भसा च्योमेति भसेत्यनेनाभिमच्य मानस्तोक इति समुद्धस सा नो महान्तमिति जलेन संस्वत्य त्रियायुषमिति शिरोललाट-वक्षःस्कन्धेषु त्रियायुषेष्ठयम्बकैश्चिशक्तिभित्तिर्यनितसो रेखाः प्रकुर्वीत व्रत-मेतच्छाम्भवं सर्वेषु देवेषु वेदवादिभिरुक्तं भवति तस्मात्तत्समाचरेन्सुसुक्षर्नं पुनर्भवाय ॥ अथ सनन्कुमारः पत्रच्छ प्रमाणमस्य त्रिपुण्ड्धारणस्य त्रिधा रेखा भवत्याललाटादाचक्षुपोरामृहोत्राभुवोर्मध्यतश्च यास प्रथमा रेखा सा गाई-पत्मश्राकारो रजोभूळींकः स्वात्मा कियाशक्तिर्ऋग्वेदः शातःसवनं महेश्वरो देवतेति यास्य द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकारः सत्त्वमन्तरिक्षमन्तरात्मा चेच्छाशक्तिर्यञ्जेदो माध्यंदिनं सवनं सदाशिवो देवतेति यास्य तृतीया रेखा साहदनीयो मकारसामो द्योर्लोकः परमात्मा ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं महादेवो देवतेति एवं त्रिपुण्ड्विधि भसमा करोति यो विद्वान्त्रह्मचारी गृही वानग्रस्थो यतिर्वा स महापातकोपपातकेभ्यः पृतो भवति स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति स सर्वान्वेदानवीतो भवति स सर्वान्देवाञ्ज्ञातो भवति स सततं सकलरुद्रमञ्जापी भवति स सकलभोगान्भुङ्के देहं त्यक्त्वा शिवसा-युज्यमेति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तत इत्याह भगवान्कालानिरुद्रः॥ यस्त्वेतद्वाधीते सोऽप्येवमेव भवतीत्यों सत्यमित्युपनिषत् ॥ ३० ॥

ॐसह नावविविति ज्ञान्तिः॥ इति कालाग्निरुद्रोपनिषत्समाप्ता ॥

मैत्रेय्युपनिषत् ॥ ३१ ॥ श्रुत्याचार्योपदेशेन सुनयो यत्पदं ययुः । तत्स्वानुभूतिसंसिद्धं स्वमात्रं ब्रह्म भावये ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः॥

ॐवृहद्भथो वै नाम राजा राज्ये ज्येष्ठं पुत्रं निधापयित्वेदमशाश्वतं मन्य-मानः शरीरं वैराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम । स तत्र परमं तप आस्थायादि-त्यमीक्षमाण कर्ध्ववाहुस्तिष्ठत्यन्ते सहस्रस्य मुनिरन्तिकमाजगामाग्निरिवाध्म-कस्तेजसा निर्देहन्निवात्मविद्गगवान्छाकायन्य उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं वृणीष्वेति राजानमवित्स तसे नमस्कृत्योवाच भगवन्नाहमात्मवित्त्वं तत्त्वविच्छृणुमो वयं स त्वं नो बृहीत्येतहृत्तं पुरस्तादशक्यं मा पृच्छ प्रश्नमेक्ष्वाकान्यान्कामान्वृणिव्वेति शाकायन्यस्य चरणाविभमृश्यमानो राजेमां गाथां जगाद ॥ १ ॥ अथ किमेतिर्वान्यानां शोषणं महार्णवानां शिखरिणां प्रपतनं ध्रुवस्य प्रचलनं स्थानं वा तरूणां निमज्जनं पृथिव्याः स्थानादपसरणं सुराणां सोऽहामित्येति हिधेऽस्मिन्संसारे किं कामोपभोगैयेरेवाश्चितस्यासकृदुपावर्तनं दृश्यत इत्युद्ध-र्जुमह्सीत्यन्धोदपानस्थो भेक इवाहमस्मिन्संसारे भगवंस्त्वं नो गतिरिति ॥२॥ भगवञ्शरीरिमदं मेथुनादेवोद्धृतं संविद्षेतं निरय एव मृत्रहारेण निष्कान्त-मस्थिभिश्चितं मांसेनानुलिसं चर्मणावबद्धं विष्मूत्रवातिपत्तकपमजामेदोव-साभिरन्येश्च मलैर्बहुभिः परिपूर्णमेतादृशे शरीरे वर्तमानस्य भगवंस्त्वं नो गतिरिति ॥ ३॥ गतिरिति ॥ ३॥

अथ भगवाञ्छाकायन्यः सुप्रीतोऽत्रवीद्गाजानं महाराज बृहद्रथेक्ष्वाकुवंश-ध्वजशीर्षात्मज्ञः कृतकृत्यस्त्वं मरुवाक्नो विश्वतोऽसीत्ययं खल्वात्मा ते कतमो भगवान्वर्ण्य इति तं होवाच ॥ शब्दस्पर्शमया येऽर्था अनर्था इव ते स्थिताः। वेषां सक्तस्तु भूतात्मा न स्परेच परं पद्म् ॥ १ ॥ तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात्संप्राप्यते मनः । मनसा प्राप्यते ह्यात्मा ह्यात्मापत्त्या निवर्तते ॥ २ ॥ यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयोनावुपशाम्यति । तथा वृत्तिक्षयाचित्तं स्वयोना-वुपशाम्यति ॥ ३ ॥ स्वयोनावुपशान्तस्य मनसः सत्यगामिनः । इन्द्रियार्थ-विमूढस्यानृताः कर्मवशानुगाः॥ ४॥ चित्तसेव हि संसारस्तत्प्रयतेन शोध-येत्। यचित्तस्तन्मयो भवति गुद्यमेतत्सनातनम् ॥ ५ ॥ चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म ग्रुमाग्रुभम् । प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्रुते ॥ ६ ॥ समासक्तं यदा .चित्तं जन्तोर्विषयगोचरम् ॥ यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्येत बन्धनात् ॥ ७ ॥ हृत्पुण्डरीकमध्ये तु भावयेत्परमेश्वरम् । साक्षिणं बुद्धिवृत्तस्य परमध्रेमगोचरम् ॥ ८॥ अगोचरं मनोवाचामवधूतादिसंष्ठवम्। सत्तामात्रप्रकाशैकप्रकाशं भावनातिगम् ॥ ९ ॥ अहेयमनुपादेयमसामान्य-विशेषणम् । ध्रुवं स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् । निर्विकर्वं निरा-भासं निर्वाणमयसंविदम् ॥ १०॥ नित्यः गुद्धौ बुद्धमुक्तस्वभावः सत्यः सूक्ष्मः संविभुश्चाद्वितीयः । आनन्दाव्यिर्यः परः सोऽहमस्मि प्रत्यग्धातुर्नात्र संशीतिरस्ति ॥ ११॥ आनन्दमन्तर्निजमाश्रयं तमाशापिशाचीमवमानय-न्तम् । आलोकयन्तं जगदिनद्रजालमापत्कथं मां प्रविशेदसङ्गम् ॥ १२॥ वर्णाश्रमाचारयुता विस्दाः कर्मानुसारेण फलं लभनते । वर्णादिधमै हि परि-त्यजन्तः स्वानन्दतृक्षाः पुरुषा भवन्ति ॥ १३ ॥ वर्णाश्रमं सावयवं स्वरूप-माद्यन्तयुक्तं ह्यतिकृष्णूमात्रम् । पुत्रादिदेहेप्वभिमानशून्यं भूत्वा वसेत्सीस्य-तमे ह्यनन्त इति ॥ १४ ॥

इति मैत्रेघ्युपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जय जनवानमैत्रेयः कैलासं जगाम तं गत्वीवाच भो भगवनपरमतत्त्वरह-स्यमनुब्र्हीति ॥ ल होवाच महादेवः । देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः दिवः । त्यजेदक्काननिर्मात्यं सोऽहं भावेन पूजयेत् ॥ १ ॥ अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः । स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥२॥ ब्रह्मासृतं पित्रेक्नेक्षसाचरेदेहरक्षणे । वसेदेकान्तिको भूत्वा चैकान्ते द्वैतवर्जिते । इत्येवनाचरेदीमान्य पूर्व मुक्तिमामुयात् ॥ ३ ॥ जातं मृतमिदं देहं माता-पितृमलात्मकम् । सुखदुःसालयामेध्यं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥ ४ ॥ घातुबद्धं महारोगं पापमन्दिरमञ्जवम् । विकाराकारविस्तीर्णं स्प्रष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥ ५ ॥ नवहारमलस्नावं सदा काले स्वभावजम् । दुर्गन्धं दुर्मलोपेतं स्प्रप्ना स्नानं विधीयते ॥ ६ ॥ मातृसूतकसंवन्धं सूतके सह जायते । मृतसूतकर्ज देहं स्पृष्ट्रा स्नानं विधीयते ॥ ७ ॥ अहंममेति विण्मूत्रलेपगन्धादिमोचनम् । शुद्दशोचमिति प्रोक्तं सृजलाभ्यां तु लौकिकम्॥ ८॥ वित्तशुद्धिकरं शोचं वासनात्रयनाशनम् । ज्ञानवैराग्यमृत्तोयैः क्षालनाच्छीचमुच्यते ॥ ९ ॥ अद्वेत-भावना नेक्षमभक्ष्यं द्वेतमावनम् । गुरुशास्त्रोक्तभावेन भिक्षोभेंक्षं विधीयते ॥ ९०॥ विद्वान्स्बदेशमुःस्ख्य संन्यासानन्तरं स्वतः। कारागारविनिर्मुक्त-चोरवदूरतो वसेत् ॥ ११ ॥ अहंकारसुतं वित्तभ्रातरं मोहमन्दिरस् । आशापतीं त्यत्रेद्यावत्तावन्मुक्तो न संशयः ॥ १२॥ मृता सोहमयी माता जातो दोधमयः सुतः । सूतकद्वयसंप्राप्तो कथं संध्यामुपास्महे ॥ १३ ॥ हदाकारो चिदादित्यः सदा भासित भासित । नास्तमेति न चोदिति कथं संध्यामुपासहे ॥ १४ ॥ एकमेवाद्वितीयं यद्वरोर्वाक्येन निश्चितम् । एतदंकान्तमित्युक्तं न मटो न वनान्तरम् ॥ १५ ॥ असंशयवतां मुक्तिः संशयाविष्टचेतसाम् । न मुक्तिर्जन्मजन्मान्ते तस्माद्विश्वासमाप्तुयात् ॥ १६॥ कर्मत्यागान्न संन्यासो न वेषोचारणेन तु । संधो जीवात्मनोरैक्यं संन्यासः परिकीर्तितः ॥ १७॥ वमनाहारवद्यस्य भाति सर्वेषणादिषु । तस्याधिकारः संन्यासे त्यक्तदेहाभिमा-निनः ॥ १८ ॥ यदा मनसि वैराग्यं जातं सर्वेषु वस्तुषु । तदैव संन्यसेद्विद्वा-नन्यथा पतितो भवेत् ॥ १९ ॥ द्रव्यार्थमन्त्रवसार्थं यः प्रतिष्टार्थमेव वा । संन्यसेदुभयअष्टः स सुक्तिं नासुमहीति ॥ २० ॥ उत्तमा तस्विचिन्तेव मध्यमं शास्त्रचिन्तनम् । अधमा मन्नचिन्ता च तीर्थआन्त्यधमाधमा ॥२३॥ अनुभृति विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते । प्रतिबिम्बितशाखायकलास्त्रादनमोदवत ॥ २२ ॥ न त्यजेचेद्यतिर्मुक्तो यो माधुकरमातरम् । वैराग्यजनकं श्रदाकलत्रं ज्ञाननन्दनम् ॥ २३ ॥ धनवृद्धा वयोवृद्धा विद्यावृद्धास्त्रथेव च । ते सर्वे ज्ञानवृद्धस्य किंकराः शिष्यकिंकराः ॥ २४ ॥ यन्मायया नोहितचेतसो सामात्मानमापूर्णमलब्धवन्तः । परं विदुग्धोदरपूरणाय अमन्ति काका इव सुरयोऽपि ॥ २५ ॥ पाषाणलोहमणिसृण्मयविग्रहेषु पूजा युनर्जननभोगकरी मुमुक्षोः । तस्माद्यतिः स्बहृदयार्चनमेव कुर्याद्वाह्यार्चनं परिह्रेरद्पुनर्भवाय ॥ २६ ॥ अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे । अन्तःश्रुन्यो बहिःश्रुन्यः भून्यक्रम्भ इवाम्बरे ॥ २७ ॥ मा भव श्राह्यभावात्मा ऋहकात्मा च मा भव । भावनामिखलां त्यक्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ २८ ॥ दृष्ट्रान-दृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह । दृश्निप्रथमाभासमात्माने केवले भज ॥ २९ ॥ संशान्तसर्वसंकल्पा या शिलावदवस्थितिः । जामिजिहाविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥ ३० ॥

इति मैत्रेय्युपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अहमस्मि परश्रासि ब्रह्मासि प्रभवोऽस्म्यहम् । सर्वलोकगुरुश्रासि सर्व-लोकेऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥ अहमेवास्मि सिद्धोऽस्मि गुद्धोऽसि परमो-ऽस्म्यहम् । अहमस्मि सदा सोऽस्मि निलोऽस्मि विमलोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥ विज्ञानोऽस्मि विशेषोऽस्मि सोमोऽस्मि सकलोऽस्म्यहम् । ग्रुभोऽस्मि शोक-हीनोऽस्मि चैतन्योऽस्मि समोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥ मानावमानहोनोऽस्मि निर्गु-णोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् । द्वैताद्वैतविहीनोऽस्मि द्वन्द्वहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ४ ॥ भावाभावविहीनोऽस्मि भासाहीनोऽस्मि भास्म्यहम् । ग्रुन्याञ्चन्य-प्रभावोऽस्मि शोभनाशोभनोऽस्म्यहम् ॥ ५ ॥ तुल्यातुल्यविहीनोऽस्मि निलः तें

त्

तं

गे

व

य

T:

T

ना

ì-

Б-

म्

य-यः शुद्धः सदाशिवः । सर्वासर्वविहीनोऽस्मि सात्त्विकोऽस्मि सदास्म्यहम् ॥ ६ ॥ एकसंख्याविहीनोऽस्मि द्विसंख्यावानहं न च। सदसद्वेदहीनोऽस्मि संकल्प-रहितोऽस्म्यहम् ॥ ७ ॥ नानात्मभेदहीनोऽस्मि ह्यखण्डानन्दविग्रहः । नाह-मिसा न चान्योऽस्मि देहादिरहितोऽस्म्यहम् ॥ ८॥ आश्रयाश्रयहीनोऽस्मि आधाररहितोऽस्म्यहम् । बन्धमोक्षादिहीनोऽस्मि शुद्धब्रह्मास्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥ चित्तादिसर्वेहीनोऽस्मि परमोऽस्मि परात्परः । सदा विचाररूपोऽस्मि निर्विचारोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ १० ॥ अकारोकाररूपोऽस्मि मकारोऽस्मि सनातनः । ध्यातृध्यानविहीनोऽस्मि ध्येयहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ११ ॥ सर्वपूर्णस्वरूपोऽस्मि सचिदानन्द्रुक्षणः । सर्वतीर्थस्वरूपोऽस्मि परमात्मा-स्स्यहं शिवः ॥ १२ ॥ लक्ष्यालक्ष्यविहीनोऽस्मि लयहीनरसोऽस्म्यहम् । मातृ-मानविहीनोऽस्मि मेयहीनः शिवोऽस्म्यहम् ॥ १३ ॥ न जगत्सर्वदृष्टास्मि नेत्रादिरहितोऽस्म्यहम् । प्रवृद्धोऽिस प्रवृद्धोऽिस प्रसन्नोऽिस परोऽस्म्यहम् ॥ १४ ॥ सर्वेन्द्रियविहीनोऽस्मि सर्वकर्मकृद्प्यहम् । सर्ववेदान्ततृप्तोऽस्मि सर्वदा सुलभोऽस्म्यहम् ॥ १५ ॥ मुद्तितामुद्तिताख्योऽस्मि सर्वमौनफलोऽस्म्य-हम् । नित्यचिनमात्ररूपोऽस्मि सदा सच्चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥ १६ ॥ यत्किचि-दपि हीनोऽस्मि स्वल्पमप्यति नास्म्यहम् । हृद्यग्रन्थिहीनोऽस्मि हृद्याम्भोज-मध्यगः ॥ १७ ॥ षड्विकारविहीनोऽस्मि पद्गोशरहितोऽस्म्यहम् । अरिषद्वर्ग-मुक्तोऽस्मि अन्तरादन्तरोऽस्म्यहम् ॥ १८ ॥ देशकालविमुक्तोऽस्मि दिग-म्बरसुखोऽस्म्यहम् । नास्ति नास्ति विमुक्तोऽस्मि नकाररहितोऽस्म्यहम् ॥१९॥ अखण्डाकाशरूपोऽस्मि ह्यखण्डाकारमस्म्यहम् । प्रपञ्चमुक्तचित्तोऽस्मि प्रपञ्च-रहितोऽस्म्यहम् ॥ २० ॥ सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि चिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम् । काल-त्रयविमुक्तोऽस्मि कामादिरहितोऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥ कायिकादिविमुक्तोऽस्मि निर्गुणः केवलोऽस्म्यहम् । मुक्तिहीनोऽस्मि मुक्तोऽस्मि मोक्षहीनोऽस्म्यहं सदा ॥ २२ ॥ सत्यासत्यादिहीनोऽस्यि सन्मात्रान्नास्म्यहं सदा । गन्तन्य-देशहीनोऽस्मि गमनादिविवार्जितः ॥ २३ ॥ सर्वदा समरूपोऽस्मि शान्तोऽस्मि पुरुपोत्तमः । एवं स्वानुभवो यस्य सोऽहमस्मि न संशयः ॥ २४ ॥ यः श्रणोति सकुद्वापि ब्रह्मैव भवति स्वयमित्युपनिषत् ॥

> इति मैत्रेय्युपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॐ आप्यायन्त्वित शान्तिः ॥ इति मैत्रेय्युपनिषत्समाप्ता ॥ ३१ ॥

सुबालोपनिषत् ॥ ३२ ॥

बीजाज्ञानमहामोहापह्नवाद्यद्विशिष्यते । निर्वीजं त्रेपदं तत्त्वं तदस्मीति विचिन्तये ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

ॐ तदाहुः किं तदासीत्तसे स होवाच न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात-मः संजायते तमसो भूतादिर्भूतादेराकाशमाकाशाद्वायुर्वायोरिश्वरग्नेरापोऽद्यः पृथिवी तदण्डं समभवत्तत्संवत्सरमात्रमुषित्वा द्विधाऽकरोद्धसाद्भिमुपिर-ष्टादाकाशं मध्ये पुरुषो दिन्यः सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। सहस्रवाहुरिति सोऽग्रे भूतानां मृत्युमस्जन्नयक्षरं त्रिशिरस्कं त्रिपादं खण्डपरग्रं तस्य ब्रह्माभिधेति स ब्रह्माणमेव विवेश स मानसान्सस पुत्रानस्जत्ते ह विराजः सत्यमानसानस्जन्ते ह प्रजापतयः॥ ब्राह्मणोऽस्य मुख्मासीद्वाहू राजन्यः कृतः। ऊरु तदस्य यहुँश्यः पन्नां शुद्रो अजायत ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्रक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च हृदयात्सर्विमिदं जायते॥

इति सुबालोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अपानान्निषादा यक्षराक्षसगन्धर्वाश्चास्थिभ्यः पर्वता लोमभ्य ओषिवन-स्पतयो ललाटाक्तोधजो रुद्दो जायते तस्यैतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमे-वैत्यद्दग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः रिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामयनं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि व्याख्यानान्युपव्याख्यानानि च सर्वाणि च भूतानि हिरण्यज्योतिर्यस्त्रन्नयमात्माधिक्षियन्ति सुव-नानि विश्वा ॥ आत्मानं द्विधाऽकरोद्धेन स्त्री अर्धेन पुरुषो देवो भूत्वा देवानस्जदिस्भूत्वा ऋषीन्यक्षराक्षसगन्धर्वान्त्राम्यानारण्यांश्च पश्चनस्जदितरा गौरितरोऽनङ्गानितरो वडवेतरोऽश्व इतरा गर्दभीतरो गर्दभ इतरा विश्वंमरीतरो वडवेतरोऽश्व इतरा गर्दभीतरो गर्दभ इतरा विश्वंमरीतरो वर्ष्यमरः सोऽन्ते वश्वानरो भूत्वा संदग्ध्वा सर्वाणि भूतानि पृथिव्यप्स प्रलीयत आपस्तेजसि प्रलीयन्ते तेजो वायौ विलीयते वायुराकारो विलीयत आकाशमिन्द्रयेष्विन्द्रियाणि तन्मात्रेषु तन्मात्राणि भूतादो विलीयते अक्षरं मूतादिर्महति विलीयते महानव्यक्ते विलीयतेऽव्यक्तमक्षरे विलीयते अक्षरं तमसि विलीयते तमः परे देव एकीभवति परस्तान्न सन्नासन्नासद्सिद्ये-तिन्नवर्वणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

: 1

Π-

व-

बा-

रा

री-

प्सु

यत

न्ते

क्षरं

त्ये-

असद्वा इद्मय आसीद्रजातमभूतमप्रतिष्ठितमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धमब्ययममहान्तमग्रहन्तमजमात्मानं मत्वा धीरो न शोचित ॥ अप्राणममुखमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमचक्षुष्कमनामगोत्रमिश्ररस्कमपाणिपादमिन्नन्धमलोहितमग्रमेयमहस्वमदीर्धमस्थूलमनण्वनत्पमपारमिनिर्देश्यमनपाष्ट्रतमप्रतक्यमप्रकाश्यमसंवृतमनन्तरमबाद्यं न तद्शाति किंचन न तद्शाति
कश्चनेतद्वै सत्येन दानेन तपसाऽनाशकेन बहाचर्येण निर्वेदनेनानाशकेन षडक्नेनेव साध्येदेतत्रयं वीक्षेत दमं दानं द्यामिति न तस्य प्राणा उत्कामन्यत्रेव समवलीयन्ते बह्येव सन्बह्याप्येति य एवं वेद ॥

इति सुवालोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

हृद्यस्य मध्ये लोहितं मांसपिण्डं यसिंग्तइहरं पुण्डरीकं कुमुद्मिवाने-कथा विकसितं हृदयस्य द्वा छिट्टाणि सवन्ति येषु प्राणाः प्रतिष्ठिताः स यदा प्राणेन सह संयुज्यते तदा पश्यति नद्यो नगराणि बहुनि विविधानि च यदा व्यानेन सह संयुज्यते तदा परयति देवांश्च ऋषींश्च यदाऽपानेन सह संयुज्यते तदा पश्यति यक्षराक्षसगन्धर्यान्यदा दानेन सह संयुज्यते तदा परयति देवलोकान्देवान्स्कन्दं जयन्तं चेति यदा समानेन सह संयुज्यते तदा पश्यति देवलोकान्धनानि च यदा वैरम्भेण सह संयुज्यते तदा पश्यति दृष्टं च श्रुतं च भुक्तं चाभुक्तं च सचासच सर्व पश्यति अथेमा दश दश नाड्यो भवन्ति । तासामेकेकस्य द्वासप्ततिद्वासप्तिः शाखा नाडीसहस्राणि मवन्ति यस्मिन्नयमातमा स्विपिति शब्दानां च करोत्यथ यद्वितीये स कोशे रविपिति तदेमं च लोकं परं च लोकं पश्यित सर्वाञ्छव्दान्विजानाति सं संप्रसाद इत्याचक्षते प्राणः शरीरं परिरक्षति हरितस्य नीलस्य पीतस्य लोहि-तस्य श्वेतस्य नाड्यो रुधिरस्य पूर्णा अथात्रैतदृहरं पुण्डरीकं क्रमुद्रिमवानेकधा विकासितं यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तथा हिता नाम नाड्यो भवन्ति हृद्या-कारो परे कोरो दिंग्योऽयमात्मा स्विपिति यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति न तत्र देवा न देवलोका यज्ञा न यज्ञा वा न माता न पिता न बन्धर्न बान्धवो न स्तेनो न ब्रह्महा तेजस्कायमसृतं सिछछ ष्वेदं सिल्लं वनं भूयस्तेनैव मार्गेण जाप्राय धावति सम्राडिति होवाच ॥

इति सुवालोपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

स्थानानि स्थानिभ्यो यच्छति नाडी तेषां निवन्धनं चक्करध्यात्मं द्रष्टव्यम-धिभूतमादित्यस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निवन्धनं यश्चश्चषि यो द्रष्टव्ये य आदित्ये यो नाड्यां यः प्राणे यो विज्ञाने य आनन्दे यो हद्याकारो य एत-स्मिन्सर्वसिश्चन्तरे संचरति सोऽयमात्मा तमात्मानसुपासीताजरमसृतमभय-मशोकमनन्तम् । श्रोत्रमध्यात्मं श्रोतन्यमधिभूतं दिशस्तत्राधिदेवतं नाडी तेषां निवन्धनं यः श्रोत्रे यः श्रोतन्ये यो दिश्च यो नाड्यां यः प्राणे यो विज्ञाने य आनन्दे यो ह्याकारो य एतस्मिन्सर्वस्थित्रन्तरे संचरित सोऽय-मात्मा तमात्मानसुपासीताजरमसृतमभयमशोकमनन्तम् ॥ नासाध्यात्मं घातन्यमिधभूतं पृथिवी तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निवन्धनं यो नासायां यो ब्रातच्ये यः पृथिन्यां यो नाड्यां० नन्तम् ॥ जिह्वाध्यात्मं यो रसयितन्यमि भूतं वरुणसत्त्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यो जिह्वायां यो रसयितन्ये यो वरुणे यो नाड्यां० नन्तम् ॥ त्वगध्यातमं स्पर्शयितन्यमधिभूतं वायुस-त्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यस्त्वचि यः स्पर्शियतन्ये यो वायौ यो नाड्यां॰ नन्तम् ॥ मनोऽध्यात्मं मन्तन्यमधिसूतं चनद्रसत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यो मनसि यो मन्तन्ये यश्चनद्रे यो नाड्यां० नन्तम् ॥ वृद्धि-रध्यात्मं बोद्धव्यमिभूतं ब्रह्मा तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निवन्धनं यो बुद्धौ यो बोद्धव्ये यो ब्रह्मणि यो नाड्यां० नन्तम् ॥ अहंकारोऽध्यात्ममहंकर्तव्य-मधिभूतं रुद्रस्तन्नाधिदैवतं नाडी तेषां निवन्धनं योऽहंकारे योऽहंकर्तव्ये यो रुद्दे यो नाड्यां नन्तम् ॥ चित्तमध्यात्मं चेतयितन्यमधिभूतं क्षेत्रज्ञसः त्राधिदैवतं नाडी तेषां निवन्धनं यश्चित्ते यश्चेतियतन्ये यः क्षेत्रहे यो नाड्यां नन्तम् ॥ वागध्यातमं वक्तव्यमधिभूतमग्निसत्राधिदैवतं नाडी तेषां तिबन्धनं यो वाचि यो वक्तव्ये योऽमौ यो नाड्यां० नन्तम् ॥ हस्तावध्या-रममादातन्यमधिभूतमिन्द्रसात्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यो हस्ते य आदातन्ये य इन्द्रे यो नाड्यां० नन्तस् ॥ पादावध्यात्मं गन्तन्यमधिभूतं विष्णुस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यः पादे यो गन्तव्ये यो विष्णौ यो नाड्यां • नन्तम् ॥ पायुरध्यात्मं विसर्जयितव्यमधिभूतं मृत्युस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निबन्धनं यः पायौ यो विसर्जयितव्ये यो मृत्यौ यो नाड्यां॰ नन्तम् ॥ उपस्थोऽध्यात्ममानन्द्यितन्यमधिभूतं प्रजापतिस्तत्राधिदैवतं नाडी तेषां निवन्धनं य उपस्थे य आनन्दयितन्ये यः प्रजापतौ यो नाड्यां यः प्राणे यो विज्ञाने य आनन्दे यो हृद्याकारी य एतस्मिन्सर्वसिन्नन्तरे संचरति सोऽयमात्मा तमात्मानमुपासीताजरममृतमभयमशोकमनन्तम् ॥ एष सर्वज्ञ

यो

षां

π-

रूतं यो

वतं

πo

ाडी

यः रति र्वज एव सर्वेश्वर एव सर्वाधिपतिरेषोऽन्तर्याभ्येष योनिः सर्वस्य सर्वसौख्येरपास्य-मानो न च सर्वसौख्यान्युपास्यति वेदशाख्येरपास्यमानो न च वेदशाख्याण्यु-गास्यति यस्यान्नमिदं सर्वे न च योऽतं भवत्यतः परं सर्वनयनः प्रशास्तान्न-मयो भूतात्मा प्राणमय इन्द्रियात्मा मनोमयः संकल्पात्मा विज्ञानमयः कालात्मानन्दमयो लयात्मैकत्वं नास्ति द्वेतं कृतो मर्स्य नास्त्यमृतं कृतो नान्तःप्रज्ञो न बहिःप्रज्ञो नोभयतःप्रज्ञो न प्रज्ञानवनो न प्रज्ञो नाप्रज्ञोऽपि नो विदितं वेद्यं नास्तीत्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदा-नुशासनम् ॥

इति सुवालोपनिषत्सु पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

नेवेह किंचनाय आसीदमूलमनाधारमिमाः प्रजाः प्रजायन्ते । दिच्यो देव एको नारायणश्चश्चश्च द्रप्टच्यं च नारायणः श्रीत्रं च श्रोतव्यं च नारायणो घ्राणं च आतब्यं च नारायणो जिह्ना च रसयितव्यं च नारायणस्त्वक् च स्पर्शयितव्यं च नारायणो सतश्च मन्तव्यं च नारायणो बुद्धिश्च बोद्धव्यं च नारायणोऽहं-कारश्चाहंकतेव्यं च नारायणश्चित्तं च चेतयितव्यं च नारायणो वाक् च वक्तव्यं च नारायणो हस्तो चादातव्यं च नारायणः पादौ च गन्तव्यं च नारायणः पायुश्च विसर्जयितव्यं च नारायण उपस्थश्चानन्द्यितव्यं च नारा-यणो धाता विधाता कर्ता विकर्ता दिन्यो देव एको नारायण आदित्या रहा सक्तो वसवोऽश्विनावृचो यजूंषि सामानि मन्नोऽग्निराज्याहुतिर्नारायण उद्भवः संभवो दिन्यो देव एको नारायणो माता पिता आता निवासः शरणं सुह-द्गतिनीरायणो विराजा सुदर्शनाजितासोम्यामोवाकुमारामृतासत्यामध्यमाना-सीराशिशुरास्रास्यांस्वराविशेयानि नाडीनामानि दिन्यानि गर्जति गायति वाति वर्षति वरुणोऽर्यमा चन्द्रमाः कला कलिर्धाता ब्रह्मा प्रजापतिर्मेववा दिवसाश्चाधिदिवसाश्च कलाः कल्पाश्चोध्वं च दिशश्च सर्व नारायणः ॥ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भतं यज्ञ भन्यम् । उतासृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ तिहिष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ तिह-शासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पद्म् ॥ तद्वितिवर्ग-णानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अन्तःशारि निहितो गुहायामज एको नित्यो यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरे संचरन् श्रं पृथिवी न वेद ॥ यस्वापः शरीरं योऽपोन्तरे संच- रन्यमापो न विदुः ॥ यस्य तेजः शरीरं यसोजोन्तरे संचरन् यं तेजो न वेद् । यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरे संचरन् यं वायुर्न वेद ॥ यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरे संचरन् यमाकाशो न वेद ॥ यस्य मनः शरीरं यो मनोन्तरे संचरन् यं मनो न वेद ॥ यस्य बुद्धिः शरीरं यो बुद्धिमन्तरे संचरन् यं बुद्धिनं वेद ॥ यस्याहंकारः शरीरं योऽहंकारमन्तरे संचरन् यमहंकारो न वेद ॥ यस्य चित्तं शरीरं यश्चित्तमन्तरे संचरन् यं चित्तं न वेद ॥ यस्याव्यक्तं शरीरं योऽव्यक्तमन्तरे संचरन् यमक्षरं न वेद ॥ यस्याव्यक्तं शरीरं योऽव्यक्तमन्तरे संचरन् यमक्षरं न वेद ॥ यस्य मृत्युः शरीरं यो मृत्युमन्तरे संचरन् यं मृत्युनं वेद ॥ स एप सर्वभूतान्तरात्माऽपहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः ॥ एतां विद्यामपान्तरतमाय ददावपान्तरतमो ब्रह्मणे ददौ ब्रह्मा घोराङ्गिरसे ददौ घोराङ्गिरा रैकाय ददौ रैको रामाय ददौ रामः सर्वभ्यो भृतेभ्यो ददावित्येवं निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुवालोपनिषत्सु सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अन्तःशरीरे निहितो गुहायां शुद्धः सोऽयमात्मा सर्वस्य मेदोमांसक्केदा-वकीणें शरीरमध्येऽत्यन्तोपहते चित्रभित्तिप्रतीकाशे गान्धर्वनगरोपमे कदली-गर्भवित्वःसारे जलबुद्धदवच्चले निःसृतमात्मानमचिन्त्यरूपं दिव्यं देवमसङ्गं शुद्धं तेजस्कायमरूपं सर्वेश्वरमचिन्त्यमशरीरं निहितं गुहायामसृतं विश्राज-मानमानन्दं तं पश्यन्ति विद्वांसस्तेन लये न पश्यन्ति ॥

इति सुबालोपनिषत्स्वप्टमः खण्डः ॥ ८॥

अथ हैनं रेकः पत्रच्छ भगवन्कस्मिन्सर्वेऽस्तं गच्छन्तीति ॥ तस्मै स होवाच चक्छरेवाप्येति यचक्छरेवास्तमेति दृष्ट्च्यमेवाप्येति यो दृष्ट्च्यमेवास्तमेताद्विस्तमेवाप्येति य आदित्यमेवास्तमेति विराजमेवाप्येति यो विराजमेवास्तमेति प्राणमेवाप्येति यः प्राणमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति यो विज्ञानमेवास्तमेत्यानन्द्रमेवाप्येति य आनन्द्रमेवास्तमेति तुरीयमेवाप्येति यस्तुरीयमेवास्तमेति तद्मृतमभयमशोकमनन्तनिर्वीजमेवाप्येतिति होवाच ॥ श्रोत्रमेवाप्येति यः श्रोत्रच्यमेवास्तमेति दिश्वाप्येति यो दिश्वमेवास्तमेति स्त्राप्येति यो दिश्वमेवास्तमेति सुदर्शनामेवाप्येति यो दिश्वमेवास्तमेति सुदर्शनामेवाप्येति यो विज्ञानमेवास्तमेति तद्मृतमभयमशोकमनन्तिर्वीजमेवाप्येति होवाच ॥ नासामेवाप्येति यो विज्ञानमेवास्तमेति तद्मृतसम्यमशोकमनन्तिर्वीजमेवाप्येति होवाच ॥ नासामेवाप्येति यो

नासामेवास्तमेति ज्ञातन्यमेवाप्येति यो ज्ञातन्यमेवास्तमेति पृथिवीमेवाप्येति यः पृथिवीमेवास्तमेति जितामेवाप्येति यो जितामेवास्तमेति व्यानमेवाप्येति यो व्यानमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तद्मृत० होवाच ॥ जिह्वामेवाप्येति यो जिह्नामेवास्तमेति रसयितन्यमेवाप्येति यो रसयितन्यमेवास्तमेति वरुण-मेवाप्येति यो वरुणमेवास्तमेति सौम्यामेवाप्येति यः सौम्यामेवास्तमेत्यु-दानमेवाप्येति य उदानमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तद्मृत० होवाच ॥ त्वचमेवाप्येति यस्त्वचमेवास्तमेति स्पर्शयितव्यमेवाप्येति यः स्पर्शयितव्यमे-वास्तमेति वायुमेवाप्येति यो वायुमेवास्तमेति मेधामेवाप्येति यो मेधा-मेवास्तमेति समानमेवाप्येति यः समानमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदस्रत० होवाच ॥ वाचमेवाप्येति यो वाचमेवासमेति वक्तव्यमेवाप्येति यो वक्तव्य-मेवास्तमेत्यक्षिमेवाप्येति योऽक्षिमेवास्तमेति कुमारामेवाप्येति यः कुमारा-मेवास्तमेति वैरम्भमेवाप्येति यो वैरम्भमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तद्मृत० होवाच ॥ हस्तमेवाप्येति यो हस्तमेवास्तमेत्यादातब्यमेवाप्येति य आदातब्य-मेवास्तमेतीन्द्रमेवाप्येति य इन्द्रमेवास्तमेत्यमृतामेवाप्येति योऽमृतामेवास्त-मेति मुख्यमेवाप्येति यो मुख्यमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृत० होवाच ॥ पादमेवाप्येति यः पादमेवास्तमेति गन्तन्यमेवाप्येति यो गन्तन्यमेवास्तमेति विष्णुमेवाप्येति यो विष्णुमेवास्तमेति सत्यामेवाप्येति यः सत्यामेवास्तमे-त्यन्तर्याममेवाप्येति योऽन्तर्याममेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तद्० होवाच ॥ पायुमेवाप्येति यः पायुमेवास्तमेति विसर्जयितन्यमेवाप्येति यो विसर्जयित-व्यमेवास्तमेति मृत्युमेवाप्येति यो मृत्युमेवास्तमेति मध्यमामेवाप्येति यो मध्यमामेवास्तमेति प्रभञ्जनमेवाप्येति यः प्रभञ्जनमेवास्तमेति विज्ञानमे-वाप्येति तद् ० होवाच ॥ उपस्थमेवाप्येति य उपस्थमेवासमेत्यानन्द्यितव्य-मेवाप्येति य आनन्दयितव्यमेवास्तमेति प्रजापतिमेवाप्येति यः प्रजापति-मेवास्तमेति नासीरामेवाप्येति यो नासीरामेवास्तमेति कुमारमेवाप्येति यः कुमारमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदमृत० होवाच ॥ मन एवाप्येति यो मन एवास्तमेति मन्तन्यमेवाप्येति यो मन्तन्यमेवास्तमेति चन्द्रमेवाप्येति यश्चन्द्रमेवास्तमेति शिशुमेवाप्येति यः शिशुमेवास्तमेति इयेनमेवाप्येति यः क्येनमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तद्मृत० होवाच ॥ बुद्धिमेवाप्येति यो बुद्धिमेवास्तमेति बोद्धव्यमेवाप्येति यो बोद्धव्यमेवास्तमेति ब्रह्माणमेवा- प्येति यो ब्रह्माणमेवास्तमेति सूर्यामेवास्तमेति यः सूर्यामेवास्तमेति क्रष्णमेवाप्येति यः कृष्णमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदसृत० होवाच॥ अहंकारमेवाप्येति योऽहंकारसेवास्तमेत्यहंकर्तव्यमेवाप्येति योऽहंकर्तव्यमेवा-रुद्रमेवाप्येति यो रुद्रमेवास्तमेत्यसुरामेवाप्येति योऽसुरामेवा-श्वेतमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति तदस्त० स्तमेति श्वतमेवाप्येति यः होबाच चित्तमेवाप्येति यश्चित्तमेवास्तमेति चेतयितव्यमेवाप्येति यश्चेत-यितव्यमेवास्तमेति क्षेत्रज्ञमेवाप्येति यः क्षेत्रज्ञसेवास्तमेति भास्वतीमेवाप्येति यो भास्वतीमेवास्तमेति नागमेवाप्येति यो नागमेवास्तमेति विज्ञानमेवाप्येति यो विज्ञानमेवास्तमेत्यानन्द्रमेवाप्येति य आनन्द्रमेवास्तमेति तुरीयमेवाप्येति यस्तुरीयमेवास्तमेति तदमृतमभयमशोकमनन्तं निर्वाजमेवाप्येति तदमृत० होवाच ॥ य एवं निर्वीज वेद निर्वीज एव स भवति न जायते न म्रियते न सुद्धते न भिद्यते न दद्धते न छिद्यते न कम्पते न कुप्यते सर्वदहनोऽयमा-त्मेत्याचक्षते नैवमात्मा प्रवचनशतेनापि लभ्यते न बहुश्रुतेन बुद्धिज्ञाना-श्रितेन न मेधया न वेदैर्न यज्ञेर्न तपोशिरुप्रैर्न सांख्येर्न योगैर्नाश्रमैर्नान्येरा-त्मानसुपलभन्ते प्रवचनेन प्रशंसया व्युत्थानेन तमेतं बाह्मणा शुश्रुवांसोऽ-नुचाना उपलभन्ते शान्तो दान्त उपरतिसतिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवा-त्मानं पश्यति सर्वस्यात्मा भवति य एवं वेद ॥

इति सुवालोपनिषत्सु नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथ हैनं रैकः पप्रच्छ भगवन्कस्मिन्सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति रसातल्लोकेष्विति होवाच कस्मिन्नसातललोका ओताश्च प्रोताश्चेति भूलोंकेष्विति होवाच। कस्मिन्भुलोंका ओताश्च प्रोताश्चेति भुवलोंकेष्विति होवाच। कस्मिन्भुवलोंका ओताश्च प्रोताश्चेति सुवलोंकेष्विति होवाच। कस्मिन्मुवलोंका ओताश्च प्रोताश्चेति महलोंकेष्विति होवाच। कस्मिन्महलोंका ओताश्च प्रोताश्चेति जनोलोकेष्विति होवाच। कस्मिन् जनोलोका ओताश्च प्रोताश्चेति तपोलोकेष्विति होवाच। कस्मिन्मललोका ओताश्च प्रोताश्चेति स्वलोकेष्विति होवाच क्रिस्मिन्मललोका ओताश्च प्रोताश्चेति प्रजापतिलोकेष्विति होवाच। क्रिम्मिन्यज्ञापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोका आताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोका आताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोका आताश्च प्रोताश्चिति व्रह्मलोका स्वाणि मणय इवौलाश्च प्रोताश्चेति स होवाच। एवमेतान् लोकानात्मिन प्रतिष्ठितान्वेदात्मेव स भवतीत्येत- विवाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु दशमः खण्डः ॥ १० ॥

T-

S-T-

मु-

M

ति

बे.-

च

प्र-

का

नि

त-

अध हैनं रैक्कः पप्रच्छ अगवन्योऽयं विज्ञानवन उत्कामन्स केन कतरद्वाव स्थानमुत्स् ज्यापाकामतीति तस्य सहोवाच। हृद्यस्य मध्ये लोहितं मांसपिण्डं यस्मिस्तह्हरं पुण्डरीकं कुमुद्दिवानेकथा विकसितं तस्य मध्ये समुद्रः समुद्रस्य मध्ये कोशस्तिमञ्चाद्यश्चतस्रो भवन्ति रमारमेच्छाऽपुनर्भवेति तत्र रमा पुण्येन पुण्यं लोकं नयस्यरमा पापेत पापित्रच्छया यत्सरितं तद्दिभसंपद्यते अपुनर्भवया कोशं भिनत्ति कोशं भिन्ता शीर्षकपालं भिनति शिर्यां भिन्ता पृथिवीं भिन्ता शीर्षकपालं भिनति शीर्षकपालं भिन्ता वायुं भिनति वायुं भिन्ताकाशं भिन्त्याकाशं भिन्ता मनो सिनति मनो भिन्ता महान्तं भिनति महान्तं भिन्ता मुतादिं भिन्ता भूतादिं भिन्ता महान्तं भिनति महान्तं भिनति महान्तं भिन्ता स्तादिं भिन्ता सहान्तं भिनति महान्तं भिनति महान्तं भिनत्ति सहान्तं भिनत्त्वाच्यक्तं भिन्त्यव्यक्तं भिन्ताक्षरं भिनत्त्यक्षरं भिन्त्वा महान्तं भिनति महान्तं भिनति महान्तं भिनति सहान्तं भिनत्ति सहान्तं भिनत्त्वाच्यक्तं भिनत्त्वव्यक्तं भिन्ताक्षरं भिनत्त्व स्ताव्यक्तं भिनति सहान्तं विवाद्यक्तं भिनत्त्वाच्यक्तं भिनति सहान्तं भिनति सहान्तं विवाद्यक्तं भिनत्त्ववाच्यक्तं भिनत्त्वाच्यकं भिनत्त्वाच्यकं भिनति सहान्तं विवाद्यक्ताति परस्तान्त्र सन्नासन्त्र सदसदिलेतिन्नर्वाणानुशासनिमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुवालोपनिषत्खेकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

ॐ नारायणाद्वा अन्नमागतं पकं ब्रह्मलोके महासंवर्तके पुनः पकमादित्ये पुनः पकं ऋन्यादि पुनः पकं जालकिलक्षिन्नं पर्युषितं प्तमन्नमयाचितमसं-कृष्ठमश्रीयान्न कंचन याचेत ॥

इति सुवालोपनिषत्सु द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

वाल्येन तिष्ठासेद्वालस्वभावोऽसङ्गो निरवद्यो मौनेन पाण्डित्येन निरविधकारतयोपलभ्येत केवल्यमुक्तं निगमनं प्रजापितिरुवाच महत्यदं ज्ञात्वा यृक्षसूले वसेत कुचेलोऽसहाय एकाकी समाधिस्थ आत्मकाम आसकामो
दिन्कामो जीर्णकामो हिल्तिनि सिंहे दंशे मशके नकुले सर्पराक्षसगन्यवें
मृत्यो रूपाणि विदित्वा न विभेति कुतश्चनेति वृक्षमिव तिष्ठासेच्छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेनोत्पलमिव तिष्ठासेच्छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेताकाशायिव तिष्ठासेच्छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेताकाशायिव तिष्ठासेच्छिद्यमानोऽपि न कुप्येत न कम्पेत सत्येन तिष्ठासेदसत्योऽयमात्मा सर्वेषामेव गन्धानां पृथिवी हृद्यं सर्वेषामेव रसानामापो हृद्यं
सर्वेषामेव रूपाणां तेजो हृद्यं सर्वेषामेव स्पर्शानां वायुईद्यं सर्वेषामेव शब्दानां
नामाकाशं हृद्यं सर्वेषामेव गतीनामन्यक्तं हृद्यं सर्वेषामेव सन्दानां
मृत्युईद्यं मृत्युवें परे देव एकीभवतीति परस्तान सन्नासन्न सदसदित्येतकिर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुवालोपनिषत्सु त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

ॐ पृथिवी वान्नमापोऽन्नाद। आपो वान्नं ज्योतिरन्नादं ज्योतिर्वानं वायुर-न्नादो वायुर्वान्नमाकाशोऽन्नाद आकाशो वान्नमिन्द्रियाण्यन्नादानीन्द्रियाणि वान्नं मनोऽन्नादं मनो वान्नं बुद्धिरन्नादा बुद्धिर्वान्नमन्यक्तमन्नादमन्यक्तं वान्न-मक्षरमन्नादमक्षरं वान्नं सृत्युरन्नादो सृत्युर्वे परे देव एकीभवतीति परस्तान्न सन्नासन्न सदसदित्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम्॥

इति सुवालोपनिषत्स चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

अथ हेनं रेकः पप्रच्छ भगवन्योऽयं विज्ञानघन उत्कामन्स केन कतरहाव स्थानं दहतीति तसे स होवाच योऽयं विज्ञानघन उत्कामन्प्राणं दहत्यपानं व्यानमुदानं समानं वेरम्भं मुख्यमन्तर्यामं प्रभक्षनं कुमारं रेयेनं श्वेतं कृष्णं नागं दहति पृथिव्यापस्तेजोवाय्वाकाशं दहाते जागरितं स्वमं सुपुप्तं तुरीयं च महतां च लोकं परं च लोकं दहित लोकालोकं दहित धर्माधर्मं दहत्य-भास्करममर्थादं निरालोकमतः परं दहित महानतं दहत्यव्यक्तं दहत्यक्षरं दहित मृत्युवें परे देव एकी भवतीति परस्तान्न सन्नासन्न सदस-दिद्रसेतिन्नवर्णणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु पञ्चदश्चः खण्डः ॥ १५ ॥

सौबालबीजब्रह्मोपनिषन्नाप्रशान्ताय दातव्या नापुत्राय नाशिष्याय नासं-वत्सररात्रोषिताय नापरिज्ञातकुलशीलाय दातव्या नैव च प्रवक्तव्या । यस देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरो । तस्येते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मन इत्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनम् ॥

इति सुबालोपनिषत्सु षोडंशः खण्डः ॥ १६ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥ इति सुवालोपनिषत्समाप्ता ॥ ३२ ॥

क्षुरिकोपनिषत् ॥ ३३ ॥ केवल्यनाडीकान्तस्थपराभूमिनिवासिनम् । क्षुरिकोपनिषद्योगभासुरं राममाश्रये ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥

ॐ श्चरिकां संप्रवक्ष्यामि धारणां योगसिद्धये। यां प्राप्य न पुनर्जन्म योगयुक्तः स जायते ॥ वेदतत्त्वार्थविहितं यथोक्तं हि स्वयंभुवा ॥ १ ॥ निःशब्दं देशमास्थाय तत्रासनमवस्थितः । कूमोंऽङ्गानीव संहत्य मनो हृद्दि निरुध्य च ॥ २ ॥ मात्राद्वादशयोगेन प्रणवेन शनैः शनैः । पूरयेत्सर्वमात्मानं सर्वद्वारान्निरुध्य च ॥ ३ ॥ उरोमुखकटिग्रीवं किंचि-द्धृदयमुन्नतम् । प्राणान्संचारयेत्तसिन्नासाभ्यन्तरचारिणः ॥ ४ ॥ भूत्वा तत्र गतः प्राणः शनैरथ समुत्सुजेत् ॥ ५ ॥ स्थिरमात्रादृढं कृत्वा अङ्गुष्टेन समाहितः । द्वे तु गुल्फे प्रकुर्वीत जङ्गे चैव त्रयस्रयः ॥ द्वे जानुनी तथोरुभ्यां गुदे शिक्षे त्रयस्रयः ॥ ६ ॥ वायोरायतनं चात्र नाभिदेशे समाश्रयेत् । तत्र नाडी सुपुमा तु नाडीभिर्वहुभिर्वृता ॥ अणुरक्ताश्च पीताश्च क्रुप्णास्ताम्त्रविलोहिताः ॥ ७ ॥ अतिसूक्ष्मां च तन्वीं च ग्रुक्कां नाडीं समाश्रयेत् । ततः संचारयेत्याणानूर्णनाभीव तन्तुना ॥ ८ ॥ ततो रक्तोत्प-लाभासं पुरुषायतनं महत् । दहरं पुण्डरीकेति वेदान्तेषु निगद्यते ॥ तद्भित्त्वा कण्ठमायाति तां नाडीं पूरयन्यतः॥ ९ ॥ मनसस्तु क्षुरं गृह्य सुतीक्ष्णं बुद्धिनिर्मलम् ॥ पादस्योपरि मर्मुज्य तद्रूपं नाम कृन्तयेत् ॥ १०॥ सनोद्वारेण तीक्ष्णेन योगमाश्रित्य नित्यशः। इन्द्रवज्र इति प्रोक्तं मर्मजङ्घा-नुकीर्तनम् ॥ तद्यानवलयोगेन धारणाभिनिकृन्तयेत् ॥ ११ ॥ ऊरोर्मध्ये तु संस्थाप्य मर्मप्राणविमोचनम् ॥ चतुरभ्यासयोगेन छिन्देदनभिशङ्कितः ॥ ३२ ॥ ततः कण्ठान्तरे योगी समूहं नाडिसंचयम् । एकोत्तरं नाडिशतं तासां मध्ये वराः स्मृताः ॥ १३ ॥ इडा रक्षतु वामेन पिङ्गला दक्षिणेन तु । तयोर्मध्ये वरं स्थानं यस्तं वेद स वेदावित् ॥ १४ ॥ सुपुम्ना तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी। द्वासप्ततिसहस्राणि प्रति नाडीषु तैतिलम् ॥ छिद्यन्ते ध्यानयोगेन सुपुन्नैका न छिद्यते ॥ १५ ॥ योगनिर्मलधारेण क्षुरेणामलवर्चसा । छिन्देन्नाडीरातं धीरः प्रभावादिह जन्मनि ॥ १६॥ जातीपुष्पसमायोगैर्यथा वास्पन्ति तैतिलम् । एवं शुभाश्चभैभीवैः सा नाडी तां विभावयेत् ॥ १७ ॥ तद्भाविताः प्रपद्यन्ते पुनर्जनमविवर्जिताः ॥ १८ ॥ ततो विद्तिचित्तस्तु निःशब्दं देशमास्थितः । निःसङ्गसत्त्वयोगज्ञो निरपेक्षः श्रानैः शनैः॥ १९॥ पाशं छित्त्वा यथा हंसो निर्विशङ्कः खमुत्क्रमेत्। छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते तदा ॥ २० ॥ यथा निर्वाणकाले तु दीपो दुम्ध्वा लयं व्रजेत् । तथा सर्वाणि कर्माणि योगी दुम्ध्वा लयं व्रजेत् ॥ २१ ॥ आणायामसुतीक्ष्णेन मात्राधारेण योगवित् । वैराग्योपलघृष्टेन छित्त्वा तन्तुं न वध्यते ॥ २२ ॥ अमृतव्वं समाप्तोति यदा कामात्प्रमुच्यते । सर्वेषणा-विनिर्मुक्तिदिछत्त्वा तन्तुं न बध्यते छित्त्वा तन्तुं न बध्यत इति ॥ २३ ॥ इत्याथर्त्रणीयश्चरिकोपनिषत्समाप्ता ॥ ३३ ॥

मन्त्रिकोपनिषत् ॥ ३४ ॥

स्वाविद्याद्वयतत्कार्यापह्नवज्ञानभासुरस् । मन्निकोपनिषद्वेद्यं रामचन्द्रमहं भजे ॥ ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः॥

🕉 अष्टपादं ग्रुचिं हंसं त्रिस्त्रमणुमन्ययम् । त्रिवर्त्भानं तेजसोऽहं सर्वत:-पर्यन्न पर्वित ॥ १ ॥ भूतसंमोहने काले भिन्ने तमसि वेखरे । अन्तः पर्यन्ति सत्त्वस्था निर्गुणं गुणगह्नरे ॥२॥ अज्ञक्यः सोऽन्यथा द्रष्टुं ध्यायमानः कुमारकैः । विकारजननीमज्ञामग्ररूपामजां ध्रुवास् ॥ ३ ॥ ध्यायतेऽध्यासिता तेन तन्यते प्रेयंते पुनः । सूयते पुरुषार्थं च तेनैवाधिष्टितं जगत् ॥ ४॥ गौरनायन्तवती सा जनित्री भूतभाविनी । सितासिता च रक्ता च सर्वेकास-दुघा विभोः ॥ ५ ॥ पिबन्त्येनामविषयामविज्ञातां कुमारकाः । एकस्तु पिवते देवः स्वच्छन्दोऽत्र वशानुगः ॥ ६ ॥ ध्यानिकयाभ्यां भगवान्भुक्केऽसौ प्रसह-द्विभुः । सर्वसाधारणीं दोग्ध्रीं पीयमानां तु यज्विभः ॥ ७ ॥ पश्यन्त्यस्यां महात्मानः सुवर्णं पिप्पलाशनम् । उदासीनं ध्रुवं हंसं स्नातकाध्वर्यवो जगुः ॥ ८॥ शंसन्तमनुशंसन्ति बह्नुचाः शास्त्रकोविदाः । रथन्तरं वृहत्साम सप्त-वैधेस्तु गीयते ॥ ९ ॥ मन्त्रोपनिषदं ब्रह्म पदक्रमसमन्वितम् । पठन्ति भागवा ह्येते ह्यथर्वाणो भृगूत्तमाः ॥ ३० ॥ सब्रह्मचारिवृत्तिश्च स्तम्भोऽथ फाले-तस्तथा । अनङ्गात्रोहितोच्छिष्टः पश्यन्ते बहुविस्तरस् ॥ ११ ॥ कालः प्राणश्च भगवान्मृत्युः शर्वी महेश्वरः । उग्रो भवश्व रुद्रश्च ससुरः लासुरस्तथा ॥१२॥ प्रजापतिर्विराद चैव पुरुषः सलिलमेव च। स्त्यते मञ्जसंस्तुत्यैरथर्वविदितै-विंसुः ॥ १३ ॥ तं षड्विंशक इत्येते सप्तविंशं तथापरे । पुरुषं निर्गुणं सांस्य-मथर्विशरसो विदुः ॥ १४ ॥ चतुर्विशतिसंख्यातं व्यक्तमव्यक्तमेव च । अद्वैतं द्वैतमित्याहुस्त्रिधा तं पञ्चधा तथा॥ १५॥ ब्रह्माद्यं स्थावरान्तं च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः । तमेकमेव पश्यन्ति परिशुभ्रं विभुं द्विजाः ॥ १६ ॥ यस्मि-न्सर्वमिदं प्रोतं ब्रह्म स्थावरजंगमस् । तस्मिन्नेव लयं यान्ति स्रवन्त्यः सागरे यथा ॥ १७ ॥ यस्मिन्भावाः प्रलीयन्ते लीनाश्चान्यक्ततां ययुः । पश्यन्ति व्यक्ततां भूयो जायन्ते बुहुदा इव ॥ १८ ॥ क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं चैव कारणार्विचते पुनः । एवं स् भगवान्देवं पर्यन्त्यन्ये पुनःपुनः ॥ १९ ॥ ब्रह्म ब्रह्मेत्यथा-यान्ति ये विदुर्बोह्मणास्तथा । अत्रैव ते लयं यान्ति लीनाश्चाव्यक्तशालिनः लीनाश्चान्यक्तशालिन इत्युपनिषत्॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥ इति यजुर्वेदीयमञ्जिकोपनिषत्समासा॥ ३४॥

सर्वसारोपनिषत् ॥ ३५ ॥

समस्तवेदान्तसारसिद्धान्तार्थकलेवरम् । विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रस्चिकम् । तेजोनाद्ध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥

ॐ सह नावविविति शान्तिः॥

🕉 कथं बन्धः कथं मोक्षः काऽविद्या का विद्येति जाग्रत्स्वमं सुपुप्तं तुरीयं च कथम्, अन्नमयः प्राणमयो मनोमयो विज्ञानमय आनन्द्रमयः कथं, कर्ता साक्षी कृटस्थोऽन्तर्यामी कथं प्रत्यगात्मा परमात्मात्मा माया चेति कथम् । आत्मेश्वरोऽनात्मनो देहादीनात्मत्वेनाभिमन्यते सोऽभिमान आत्मनो वन्धस्तनिवृत्तिमीक्षस्तद्भिमानं कारयति या साऽविद्या, सोऽभि-मानो ययाऽभिनिवर्तते सा विद्या । मनआदिचतुर्दशकरणैः पुष्कलैरादि-लाद्यनुगृहीतैः शब्दादीन्विषयानस्थूलान्यदीपलभते तदात्मनी जागरणं, तद्वासनारहितश्चतुर्भिः करणैः शब्दाद्यभावेऽपि वासनामयाञ्शब्दादीन्यदो-पलभते तदात्मनः स्वप्नम् । चतुर्दशकरणोपरमाद्विशेषविज्ञानाभावाद्यदा तदात्मनः सुषुप्तम् ॥ १ ॥ अवस्थात्रयभावाङ्गावसाक्षि स्वयं भावाभावरहितं नैरन्तर्यं चैक्यं यदा तदा तत्तुरीयं चैतन्यमित्युच्यतेऽन्नकार्याणां घण्णां कोशानां समूहोऽन्नमयः कोश इत्युच्यते । प्राणादिचतुर्दशवायुभेदा अन्नमये कोशे यदा वर्तन्ते तदा प्राणमयः कोश इत्युच्यत एतत्कोशद्वयसंयुक्तो मनआदिचतुर्भिः करणेरात्मा शब्दादिविषयान्संकल्पादिधर्मान्यदा करोति तदा मनोमयः कोश इत्युच्यते । एतत्कोशत्रयसंयुक्तस्तद्गतिवशेषाविशेषज्ञो यदाऽ-वभासते तदा विज्ञानमयः कोश इत्युच्यते । एतत्कोशचतुष्टयं स्वकारणाज्ञाने वटकणिकायामिय गुप्तवटवृक्षो यदा वर्तते तदानन्दमयकोश इत्युच्यते । सुखदुःखबुद्धाश्रयो देहान्तः कर्ता यदा तदेष्टविषये बुद्धिः सुखबुद्धिरानिष्ट-विषये बुद्धिर्दुःखबुद्धिः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः सुखदुःखहेतवः । पुण्यपाप-कर्मानुसारी भूत्वा प्राप्तशरीरसंवियोगमप्राप्तशरीरसंयोगमिव कुर्वाणो यदा दृश्यते तदोपहितत्वाजीव इत्युच्यते । मनआदिश्च प्राणादिश्च सत्त्वादिश्चेच्छा-दिश्च पुण्यादिश्चेते पञ्चवर्गा इत्येतेषां पञ्चवर्गाणां धर्मा भूतात्मज्ञानादते न विनश्यति । आत्मसंनिधौ नित्यत्वेन प्रतीयमान आत्मोपाधिर्यस्ति हुईं शरीरं हृद्रन्थिरित्युच्यते तत्र यत्प्रकाशते चैतन्यं स क्षेत्रज्ञ इत्युच्यते॥ २ ॥

To the

ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामाविभावतिरोभावज्ञाता स्वयमेवमाविभावतिरोभावहीनः स्वयंज्योतिः स साक्षीत्युच्यते ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यन्तं सर्वप्राणिबुद्धिष्ववि-शिष्टतयोपलभ्यमानः सर्वपाणिवुद्धिस्थो यदा तदा कूटस्थ इत्युच्यते । कूटस्थाद्यपहितभेदानां खरूपळाभहेतुर्भूत्वा मणिगणसूत्रमिव सर्वक्षेत्रेप्तनु-स्युतत्वेन यदा प्रकाशत आत्मा तदान्तर्यामीत्युच्यते सर्वोपाधिविनिर्मुकः सुवर्णवद्विज्ञानघनश्चिनमात्रस्वरूप आत्मा स्वतन्त्रो यदाऽवभासते तदा स्वंपदार्थः प्रत्यगात्मेन्युच्यते । सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दं ब्रह्म सत्यमविनाशि नामदेशकालवस्तुनिमित्तेषु विनश्यत्सु यन्न विनश्यत्यविनाशि तत्सत्यमित्यु-च्यते । ज्ञानमित्युत्पत्तिविनाशरहितं चेतन्यं ज्ञानमित्यभिधीयते ॥ ३॥ अनन्तं नाम मृद्धिकारेषु मृदिव सुवर्णविकारेषु सुवर्णमिव तन्तुकार्येषु तन्तुरिवान्यक्तादिसृष्टिमपञ्चेषु पूर्व व्यापकं चेतन्यमनन्तमित्युच्यत भानन्दो नाम सुखचैतन्यस्वरूपोऽपरिमितानन्दसमुद्रोऽविशिष्टमुखरूपश्चानन्द इत्यु-च्यते । एतद्वस्तुचतुष्टयं यस्य लक्षणं देशकालवस्तुनिमित्तेष्वव्यभिचारि स तत्पदार्थः परमात्मा परं ब्रह्मेत्युच्यते । त्वंपदार्थादौपाधिकात्तत्पदार्थादौपाधि-काद्विलक्षण आकाशवत्सर्वगतः सूक्ष्मः केवलः सत्तामात्रोऽसिपदार्थः स्वयंज्योतिरात्मेत्युच्यतेऽतत्पदार्थश्चात्मेत्युच्यते । अनादिरन्तर्वेती प्रमाणा-प्रमाणसाधारणा न सती नासती न सदसती स्वयमविकाराद्विकारहेती निरूप्यमाणेऽसती । अनिरूप्यमाणे मती छञ्चणञ्जून्या सा मायेत्युच्यते ॥ ४ ॥

इत्याथर्वणीयसर्वसारोपनिषत्समाप्ता ॥ ३५ ॥

निरालम्बोपनिषत् ॥ ३६ ॥

यशालम्बालम्बिभावो विद्यते न कदाचन । ज्ञविज्ञसम्यग्ज्ञालम्बं निरालम्बं हरिं भजे ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥

ॐ नमः शिवाय गुरवे सिचदानन्दमूर्तये । निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरा-लम्बाय तेजसे ॥ निरालम्बं समाश्रित्य सालम्बं विजहाति यः । स संन्यासी च योगी च कैवल्यं पदमश्रुते । एषामज्ञानजन्त्नां समस्तारिष्टशान्तये । यद्य-होद्यव्यमखिलं तदाशङ्का ब्रवीम्यहम् ॥ किं ब्रह्म । क ईश्वरः । को जीवः । का प्रकृतिः । कः परमारमा । को ब्रह्म । को विष्णुः । को रुदः । क इन्दः । कः शमनः । कः सूर्यः । कश्चन्दः । के सुराः । के असुराः । के पिशाचाः । के मनुष्याः । काः स्त्रियः । के पश्चादयः । कि स्थावरम् । के बाह्मणादयः । का जाति:। किं कर्म। किमकर्म। किं ज्ञानम् । किमज्ञानम्। किं सुखम्। किं दुःखम् । कः स्वर्गः । को नरकः । को बन्धः । को मोक्षः । क उपास्यः । कः शिष्यः। को विद्वान्। को मुढः। किमासुरम्। किं तपः। किं परमं पदस । किं प्राह्मम् । किमप्राह्मम् । कः संन्यासीत्याशक्र्याह ब्रह्मति। स होवाच महदहंकारपृथिव्यसेजीवाय्वाकाशस्येन बृहदूपेणाण्डकोशेन कर्मज्ञानार्थरूप-तया भासमानमद्वितीयमखिलोपाधिविनिर्मुकं तत्सकलशक्त्यपृष्टंहितमनाय-नन्तं शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यम्निर्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म ॥ ईश्वर इति च ॥ ब्रह्मेव स्वशक्तिं प्रकृत्यभिधेयामाश्रित्य लोकानसृष्टा प्रविश्यान्तर्या-भित्वेन ब्रह्मादीनां बुद्धीन्द्रियनियन्तृत्वादीश्वरः जीव इति च ब्रह्मविष्णवी-शानेन्द्रादीनां नामरूपद्वारा स्थूछोऽहमिति मिध्याध्यासवशाजीवः। सोऽह-मेकोऽपि देहारम्भकभेदवशाद्वहु जीवः । प्रकृतिरिति च ब्रह्मणः सकाशात्रा-नाविचित्रजगित्रमाणसामर्थ्यबुद्धिरूपा ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः । परमात्मेति च देहादेः परतरत्वाद्वह्याव परमात्मा स ब्रह्मा स विष्णुः स इन्द्रः स शमनः स सूर्यः स चन्द्रस्ते सुरास्ते असुरास्ते पिशाचास्ते मनुष्यास्ताः स्त्रियस्ते पश्चादयस्त-त्स्थावरं ते ब्राह्मणाद्यः। सर्वं खित्वदं ब्रह्मनेह नानास्ति किंचन। जातिरिति च। न चर्मणो न रक्तस्य न मांसस्य न चास्थिनः। न जातिरात्मनो जातिव्धवहार-प्रकल्पिता । कर्मेति च कियमाणेन्द्रियैः कर्माण्यहं करोमीत्यध्यात्मनिष्ठतया कृतं कर्मेंव कर्म । अकर्मेति च कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यहंकारतया बन्धरूपं जन्मादि-कारणं नित्यनैमित्तिकयागवततपोदानादिषु फलाभिसंधानं यत्तदकर्म । ज्ञान-मिति च देहेन्द्रियनिप्रहस्तद्वरूपासनश्रवणमनननिदिध्यासनैर्यद्यह्रग्दस्यस्व-रूपं सर्वान्तरस्थं सर्वसमं घटपटादिपदार्थमिवाविकारं विकारेषु चैतन्यं विना-किंचिन्नास्तीति साक्षात्कारानुभवो ज्ञानम् । अज्ञानमिति च रज्ञो सर्पश्रान्ति-रिवाद्वितीये सर्वानुस्यूने सर्वमये ब्रह्मणि देवतिर्यङ्नरस्थावरस्त्रीपुरुषवणांश्र-मबन्धमोक्षोपाधिनानात्मभेदकल्पितं ज्ञानमज्ञानम् । सुखमिति च सचिदान-न्दस्वरूपं ज्ञाःवानन्दरूपा या स्थितिः सैव सुखम्। दुःखमिति अनाःमरूपो विषयसंकल्प एव दुःखम् । स्वर्ग इति च सत्संसर्गः स्वर्गः । नरक इति च असत्संसारविषयजनसंसर्ग एव नरकः । बन्ध इति च अनाद्यविद्यावासनया जातोऽहमित्यादिसंकल्पो बन्धः । पितृमातृसहोदरदारापत्यगृहारामस्रेत्रसमताः संसारावरणसंकल्पो बन्धः । कर्तृत्वाद्यहंकारसंकल्पो बन्धः । अणिमाद्यदेशः र्याशासिद्धसंकल्पो बन्धः । देवमनुष्याद्युपासनाकामसंकल्पो बन्धः । यमा-द्यष्टाङ्गयोगसंकल्पो बन्धः । वर्णाश्रमधर्मकर्मसंकल्पो वन्धः । आज्ञाभयसंग्र-यात्मगणसंकल्पो बन्धः । यागवततपोदानविधिविधानज्ञानसंभवो बन्धः। केवलमोक्षापेक्षासंकल्पो बन्धः । संकल्पमात्रसंभवो बन्धः । मोक्ष इति च नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्यसंसारसुवदुःखविषयसमस्त्रेत्रममतावन्धक्षयो मोक्षः । उपास्य इति च सर्वशरीःस्थचतन्यब्रह्मपापको गुरुरुपास्यः । शिष्य इति च विद्याध्वस्तप्रपञ्चावगाहितज्ञानाविशष्टं ब्रह्मैच शिष्यः । विद्वानिति च सर्वान्तरस्थस्वसंविद्र्पविद्विद्वान् । मूढ इति च कर्तृत्वाद्यहंकारभावारूढो मृदः । आसुरमिति च ब्रह्माविष्णवीशानेनदादीनामैश्वर्धकामनया निरशनजपा-मिहोत्रादिष्वन्तरात्मानं संतापयति चात्युग्रहागद्वेषविहिंसादस्भाद्यपेक्षितं तप आसरम् । तप इति च ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्यपरोक्षज्ञानामिना ब्रह्माचैश्वर्याः कासिद्धसंकल्पवीजसंतापं तपः । परमं पदमिति च प्राणेन्द्रियाद्यन्तःकरण-गुणादेः परतरं स्चिदानन्द्मयं नित्यमुक्तवहस्थानं परसं पदस्। बाह्यसिति च देशकालवस्तुपरिच्छेदराहित्यचिन्मात्रस्वरूपं त्राह्यम् । अग्राह्यमिति च स्वस्वरूपव्यतिरिक्तमायामयबुद्धीन्द्रियगोचरजगत्सत्यत्वचिन्तनमप्राह्यम् । सं-न्यासीति च सर्वधर्मानपरित्यज्य निर्ममो निरहंकारो भूत्वा ब्रह्मेष्टं शरणमुप-गम्य तत्त्वमिस अहं ब्रह्मास्मि सर्वं खिरवदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचनेत्याः दिमहावाक्यार्थानुभवज्ञान। इहीचाहमस्मीति निश्चित्य निर्विकल्पसमाधिना स्वतन्त्रो यतिश्चरति स संन्यासी स मुक्तः स पृज्यः स योगी स परमहंसः सोऽवधूतः स बाह्यण इति । इदं निरालम्बोपनिषदं योऽधीते गुर्वनुप्रहतः सोऽग्निप्तो भवति स वायुप्तो भवति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते पुनर्नाभिजायते पुनर्नाभिजायत इत्युपनिषत् ॥

> ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥ इति निरालम्बोपनिषस्समासा ॥ ३६ ॥

शुकरहस्योपनिषत् ॥ ३७ ॥

प्रज्ञानादिमहावाक्यरहस्यादिकलेवरम् । विकलेवरकैवल्यं त्रिपादाममहं भजे ॥

ॐ सह नाववित्वति शान्तिः॥

अथातो रहस्योपनिषदं व्यास्यासामो देवर्षयो ब्रह्माणं संपूज्य प्रणिपत्य व्यव्ह्यर्भगवज्ञस्माकं रहस्योपनिषदं बृहीति । सोऽबवीत् । पुरा व्यासो महा-तेजाः सर्ववेदतपोतिधिः । प्रणिपत्य शिवं साम्बं कृताञ्जलिख्वाच ह ॥ १ ॥ श्रीवेदव्यास उवाच। देवदेव महाप्राज्ञ पाशच्छेद्रदवत । ग्रुकस्य मम पुत्रस्य चेद्संस्कारकर्मणि ॥ २ ॥ ब्रह्मोपदेशकालोऽयमिदानीं समुपस्थितः । ब्रह्मोपदेशः कर्तच्यो अवताद्य जगदुरो ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच । मयोपदिष्टे केवत्ये साक्षद्रहाणि शाश्वते । विहाय पुत्रो निर्वेदात्प्रकाशं यास्पति स्वयम् ॥ ४॥ श्रीवेद्व्यास उवाच। यथा तथा वा भवतु ह्युपनायनकर्मणि। उपदिष्टे सम सुते ब्रह्मणि त्वत्प्रसादतः॥ ५ ॥ सर्वज्ञो भवतु क्षिप्रं मम पुत्रो महेश्वर । तव प्रसादसंपन्नो रुभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ॥ ६ ॥ तच्छुत्वा व्यासवचनं सर्वदेविर्षसंसदि । उपदेष्टुं स्थितः शम्भुः साम्बो दिव्यासने मुदा ॥ ७ ॥ कृतकृत्यः ग्रुकस्तत्र समागत्य सुभक्तिमान् । तस्मात्स प्रणवं लब्धवा पुनिरित्यववीच्छिवम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ देवादिदेव सर्वज्ञ सचिदानन्द-कक्षण । उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे ॥ ९ ॥ उपदिष्टं परंबद्य प्रण-वान्तर्गतं परम् । तत्त्वमस्यादिवाक्यानां प्रज्ञादीनां विशेषतः ॥ १० ॥ श्रोतु-मिच्छामि तत्त्वेन घडङ्गानि यथाक्रमम् । वक्तव्यानि रहस्यानि कृपयाद्य सदा-शिव ॥ ११॥ श्रीसदाशिव उवाच। साधु साधु महाप्राज्ञ झुक ज्ञाननिधे मुने। प्रष्टव्यं तु त्वया पृष्टं रहस्यं वेदगर्भितम् ॥ १२ ॥ रहस्योपनिपन्नामा सपडङ्गमि-होच्यते । यस्य विज्ञानमात्रेण मोक्षः साक्षाज्ञ संशयः ॥ १३ ॥ अङ्गहीनानि वाक्यानि गुरुनीपदिशेत्पुनः । सपडङ्गान्युपदिशेन्महावाक्यानि कृत्स्रशः ॥१४॥ चतुर्णामिप वेदानां यथोपनिषदः शिरः । इयं रहस्योपनिषत्तथोपनिषदां शिरः ॥ २५ ॥ रहस्योपनिषद्रह्म ध्यातं येन विपश्चिता । तीर्थेमेन्त्रेः श्रुतैर्जप्येसतस्य किं पुण्यहेतुभिः ॥ १६ ॥ वाक्यार्थस्य विचारेण यदाप्रोति शरच्छतम्। एक-वारजपेनैव ऋष्यादिध्यानतश्च यत्॥ १७॥ ॐ अस्य श्रीमहावाक्यमहा-

4

a

च

II

[:

मञ्जस्य हंसक्रियः। अव्यक्तगायत्री छन्दः। परमहंस्रो देवता। इं बीजस्। सः शक्तिः। सोऽहं कीलकम्। मम परमहंसप्रीत्वर्थे महावाक्यजपे विकियोगः। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म अञ्चष्टाभ्यां नमः। नित्यानन्दो ब्रह्म तर्जनीभ्यां
स्वाहा। नित्यानन्दमयं ब्रह्म सध्यमाभ्यां वषद। यो वे भूमा अनामिकाभ्यां
हुम्। यो वे भूमाधिपतिः क्निष्टिकाभ्यां वौषद। एकमेवादितीयं ब्रह्म
करतळकरपृष्टाभ्यां फद॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म हृदयाय नमः। नित्यानन्दो
ब्रह्म शिरसे स्वाहा। नित्यानन्दमयं ब्रह्म शिखाये वषद। यो वे भूमा कवचाय हुम्। यो वे भूमाधिपतिः नेत्रत्रयाय वौषद। एकमेवादितीयं ब्रह्म
अस्त्राय फद। भूर्मुवःसुवरोमिति दिग्बन्धः। ध्यानम् । नित्यानन्दं परमसुखदं केवळं ज्ञानमूर्ति द्वन्द्वातीतं गगनसदृश्चं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमळमचळं सर्वधीसादिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्वुरं तं
नमामि॥ १॥

अय सहावास्यानि चत्वारि। यथा ॐप्रज्ञानं ब्रह्म ॥ १ ॥ ॐअहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥ ॐतत्त्वमासे ॥ ३ ॥ ॐअयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥ तत्त्वमसी-त्यमेदवाचकमिदं ये जपन्ति ते शिवसायुज्यमुक्तिभाजो भवन्ति ॥ तत्पद्म-हामञ्चल । परमहंस ऋषिः । अव्यक्तगायत्री छन्दः । परमहंसी देवता । हं वीजम्। सः शक्तिः। सोऽहं कीलकम्। मम सायुज्यमुक्सर्थे जपे विनियोगः। तत्पुरुषाय अङ्गुष्टाभ्यां नमः । ईशानाय तर्जनीभ्यां स्वाहा । अवोराय मध्य-साभ्यां वषद । सद्योजाताय अनामिकाभ्यां हुम् । वामदेवाय कनिष्ठिकाभ्यां वौषद् । तत्पुरुषेशानाघोरसद्योजातवासदेवेश्यो नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां फद । एवं हृदयादिन्यासः । भूर्भुवःसुवरोमिति दिग्वन्धः ॥ ध्यानम् । ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यादतीतं शुद्धं बुद्धं सुक्तमप्यव्ययं च । सत्यं ज्ञानं सचिदानन्दरूपं ध्यायेदेवं तन्महो आजमानम् ॥ त्वंपदमहामञ्जस्य विष्णुर्क्तेषिः। गायत्री-छन्दः । परमात्मा देवता । एं बीजम् । क्षीं शक्तिः । सीः कीलकम् । मम सुः त्तयर्थे जपे विनियोगः । वासुदेवाय अङ्गुष्टास्यां नमः । संकर्षणाय तर्जनीस्यां स्वाहा । प्रसुद्राय मध्यमाभ्यां वषद । अनिरुद्धाय अनामिकाभ्यां हुम्। वासु-देवाय कनिष्टिकाभ्यां वीषद् । वासुदेवसंकर्णप्रद्युन्नानिरुद्वेभ्यः करतलकरपृ-ष्टाभ्यां फट् । एवं हृदयादिन्यासः । मूर्सुवःसुवरोमिति दिग्बन्धः ॥ ध्यानम् ॥ जीवत्वं सर्वभूतानां सर्वत्राखण्डविग्रहम् । चित्ताहंकारयन्तारं जीवाख्यं त्वंपदं भजे । असिपदमहामञ्चस्य मन ऋषिः । गायत्री छन्दः । अर्धनारिश्वरो देवता । अव्यक्तादिवीं जम् । नृसिंहः शक्तिः । परमात्मा कीलकम् । जीवब्रही-क्यायें जपे विनियोगः । पृथ्वीद्यणुकाय अङ्ग्रष्टाभ्यां नमः । अव्द्यणुकाय सर्जनीभ्यां स्वाहा । तेजोद्यणुकाय मध्यमाभ्यां वषद । वायुद्यणुकाय अना-मिकाभ्यां हुम् । आकाशद्यणुकाय किनिष्टिकाभ्यां वौषद । पृथिव्यसेजोवाय्वा-काशद्यणुकेभ्यः करतलकरपृष्टाभ्यां फद् । भूर्भुवःसुवरोमिति दिग्वन्धः ॥ ध्यानम् ॥ जीवो ब्रह्मोति वाक्यार्थं यावदिस्त मनःस्थितिः । ऐक्यं तत्त्वं लखे कुर्वन्ध्यायेदसिपदं सदा ॥ एवं महावाक्यषडङ्गान्युक्तानि ॥

7-

ह्म

Į.

य-

यां

गां

ानं

ब्पं

ति-

मु-

यां

सु-

g-

u)

पदं

अथ रहस्योपनिषद्विभागशो वावयार्थक्षोकाः प्रोच्यन्ते ॥ येनेक्षते शूगो-तीदं जिघ्नति व्याकरोति च । स्वाहस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानसुदीरितस् ॥१॥ चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु । चेतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्य-पि ॥ २ ॥ परिपूर्णः पराध्मास्मिन्देहे विद्याधिकारिणि । बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥ ३ ॥ स्वतः पूर्णः पराःमात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः । अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥ ४ ॥ एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूप-विवर्जितम् । सृष्टेः पुराधुनाप्यस्य ताहकत्वं तादितीर्यते ॥ ५॥ श्रोतुर्देहे-न्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम् । एकता य्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूय-ताम् ॥ ६ ॥ स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् । अहंकारादिदेहान्तं प्रत्यगात्मेति गीयते ॥ ७ ॥ द्वयमानस्य सर्वस्य जगतस्तव्यमीर्यते । ब्रह्मश-ब्देन तद्वहा स्वप्रकाशास्मरूपकम् ॥ ८ ॥ क्षनात्मद्देशविवेकनिदामहं मम स्वमगतिं गतोऽहम् । स्वरूपसूर्येऽभ्युदिते स्फुरोक्तेर्गरोर्महावाक्यपदैः प्रबुद्धः ॥ ९ ॥ वाच्यं लक्ष्यमिति द्विधार्थसरणीवाच्यस्य हि स्वंपदे वाच्यं भौतिकमि-न्द्रियादिरपि यहाक्ष्यं त्वमर्थश्च सः । वाच्यं तत्पदमीशताकृतमतिर्रुक्यं तु सचित्सुखानन्दब्रह्म तद्र्थं एप च तयोरैक्यं न्वसीदं पदम् ॥ १० ॥ त्वमिति तिदृति कार्ये कारणे सत्युपाधौ द्वितयमितरधैकं सिचदानन्दरूपम्। उभय-वचनहेत् देशकालौ च हित्वा जगति भवति सोऽयं देवदत्तो यथैकः॥ ११॥ कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः । कार्यकारणतां हित्वा पूर्णयोधोऽत्र-शिष्यते ॥ १२ ॥ श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तद्वन्तरम् । निदिध्यासन-मित्येतत्पूर्णवोधस्य कारणम् ॥ १३ ॥ अन्यविकापरिज्ञानमवद्यं नश्वरं अवेत् । ब्रह्मविद्यापरिज्ञानं ब्रह्मपासिकरं स्थितम् ॥ १४॥ महावावया- न्युपिद्शेत्सपढङ्गानि देशिकः । केवलं निह वाक्यानि ब्रह्मणो वचनं यथा ॥ १५ ॥ ईश्वर उवाच । एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ रहस्योपनिपच्छुक । मया पित्राचुनीतेन व्यासेन ब्रह्मवादिना ॥ १६ ॥ ततो ब्रह्मोपिदृष्टं वै सिह्म-द्रुक्षणम् । जीवन्मुक्तः सदा ध्यायित्रव्यस्तं विहरिष्यसि ॥ १७ ॥ यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स अहेश्वरः ॥ १८ ॥ उपिदृष्टः शिवेनेति जगत्तन्मयतां गतः । उत्थाय प्रणिप-त्येशं त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥ १९ ॥ परब्रह्मपयोराशौ प्रविच्चित्र यथौ तदा । प्रव-जन्तं तमालोक्य कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ २० ॥ अनुवजन्नाजुहाव पुत्रविश्वेष-कातरः । प्रतिनेदुसद् सर्वे जगत्स्थावरजङ्गमाः ॥ २१ ॥ तच्छुत्वा सकलाकारं व्यासः सत्यदतीसुतः । पुत्रेण सहितः प्रीत्या परानन्दमुपेयिवान् ॥२२॥ यो रहस्योपनिषदमधीते गुर्वनुत्रहात् । सर्वपापविनिर्श्वकः साक्षात्कैवत्यमश्रुते साक्षात्कैवत्यमश्रुते हत्युपनिषत् ॥

ॐ सह नावविष्वति शान्तिः ॥ इति यजुर्वेदीयशुकरहस्योपनिषत्समाप्ता ॥

वज्रस्विकोपनिषत् ॥ ३८॥

यज्ज्ञानाद्यान्ति मुनयो बाह्यण्यं परमाद्भुतम् । तत्रेपदब्रह्मतस्वमहमस्मीति चिन्तये ॥

ॐ आप्यायन्त्रितति शान्तिः॥

चित्सदानन्दरूपाय सर्वधीवृत्तिसाक्षिणे। नमो बेदान्तवेद्याय ब्रह्मणेऽनन्तरूपिणे॥

ॐ वज्रस्चीं प्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम् । दूषणं ज्ञानहीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्यश्रद्धा इति चत्वारो वर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् । तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम किं जीवः किं देहः किं जातिः किं ज्ञानं किं कर्म किं धार्मिक इति । तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तस्त । अतीतानागतानेकदेहानां

जीवस्येकरूपत्वात् एकस्यापि कर्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीव-स्येकरूपत्वाच । तस्मान जीवो बाह्मण इति । तर्हि देहो बाह्मण इति चेतन । आचाण्डालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वाजारामर-गाधर्माधर्मादिसाम्यदर्शनाह्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णा वैश्यः पीतवर्णः श्रदः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात् । पित्रादिशरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्या-दिदोषसंभवाच । तसाल देही ब्राह्मण इति ॥ तर्हि जातिब्राह्मण इति चेत्तन । तत्र जात्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यग्रङ्गो ग्रायाः, कोशिकः कुशात्, जाम्बूको जम्बूकात्, वाल्मीको वल्मीकात्, व्यासः केवर्तकन्यकायाम्, शरापृष्ठात् गौतमः, वासष्ट उर्वश्याम्, अगस्यः कल्को जात इति श्रतत्वात् । एतेषां जात्या विनाप्यप्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो बहवः सन्ति । तसान्न जातिर्वोद्याग इति ॥ तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेतन्न । क्षत्रियादयोऽपि परमार्थद्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति । तसान्न ज्ञानं बाह्यण इति ॥ तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न । सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचितागामि-कर्मसाधर्म्यदर्शनात्कर्माभित्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः क्रवन्तीति । तस्मान कर्म बाह्मण इति ॥ तर्हि धार्मिको बाह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयो हिर-ण्यदातारो वहवः सन्ति । तसान्न धार्मिको ब्राह्मण इति ॥ तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम । यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जातिगुणिक्वयाहीनं षद्भिपद्भा-वेत्यादिसर्वदोषरहितं सत्यज्ञानानन्दानन्तस्यरूपं स्वयं निर्विकस्पमशेषकल्पा-धारमशेषभूतान्तर्यामिःवेन वर्तमानमन्तर्वहिश्चाकाशवदनुस्यृतमखण्डानन्द-स्वभावमप्रमेयमसुभवैकवेद्यमपरोक्षतया भासमानं करतळामळकवत्साक्षाद-परोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसंपन्नो भावमात्सर्थ-नुष्णाशामोहादिरहितो दम्भाहंकारादिशिरसंस्पृष्टचेता वर्तत एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः । अन्यथा हि ब्राह्मणःवासिद्धिनीस्त्येव । सचिदानन्दमात्मानमिद्धतीयं ब्रह्म भावयेदात्मानं सिचदानन्दं ब्रह्म भावयेदिः युपनिषत् ॥

> ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ इति वज्रसूच्युपनिपत्समाप्ता ॥ ३८ ॥

तेजोविन्दूपनिषत् ॥ ३९ ॥

यत्र चिन्मात्रकलना यात्वपह्नवमञ्जसा । तिचन्मात्रमखण्डैकरसं ब्रह्म भवास्यहम्॥

ॐ सह नावविविति शान्तिः॥

ॐ तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् । आणवं शांभवं शान्तं स्थृलं सूक्ष्मं परं च यत् ॥ १ ॥ दुःखाढ्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं सुक्तमव्य-यम् । दुर्लभं तत्स्वयं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम् ॥ २ ॥ यताहारो जित-कोधो जितसङ्गो जितन्द्रयः। निर्द्दन्द्रो निरहंकारो निराशीरपरिश्रहः॥ ३॥ अगम्यागमकर्ता यो गम्याऽगमनमानसः । मुखे त्रीणि च विन्दन्ति त्रिधामा हंस उच्यते ॥ ४ ॥ परं गुह्यतमं विद्धि हास्ततन्द्रो निराश्रयः । सोमरूपकला सुक्ष्मा विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ५ ॥ त्रिवक्रं त्रिगुणं स्थानं त्रिधातुं रूपवर्जि-तम् । निश्चकं निर्विकल्पं च निराकारं निराश्रयम् ॥ ६ ॥ उपाधिरहितं स्थानं वाज्यनोऽतीतगोचरम् । स्वभावं भावसंप्राह्यमसंघातं पदाच्यतम् ॥ ७॥ धनानानन्दनातीतं दुष्प्रेक्ष्यं सुक्तमव्ययम् । चिन्त्यमेवं विनिर्सुक्तं शाधतं भ्रवमच्युतम् ॥ ८ ॥ तद्रह्मणस्तदध्यात्मं तद्विष्णोस्तत्परायणम् । अचिन्त्यं निन्मयात्मानं यद्योम परमं स्थितम् ॥ ९ ॥ अशुन्यं शुन्यभावं तु शुन्याः तीतं हृदि स्थितम्। न ध्यानं चन चध्याता न ध्येयो ध्येय एव च॥ १०॥ सर्वं च न परं शुन्यं न परं नापरात्परम्। अचिन्त्यमप्रबुद्धं च न सत्यं न परं विदुः ॥ ११ ॥ सुनीनां संप्रयुक्तं च न देवा न परं विदुः । लोभं मोहं भयं दर्पं कामं क्रोधं च किल्बिषम् ॥ १२ ॥ ज्ञीतोष्णे श्रुत्पिपासे च संकल्पक-विकल्पकम् । न ब्रह्मकुलद्र्षं च न मुक्तिय्रिसंचयम् ॥ १३ ॥ न भयं न सुखं दुःखं तथा मानावमानयोः। एतज्ञावविनिर्मुक्तं तद्राह्यं ब्रह्म तत्परम् ॥ १४ ॥ यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः । आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दक्स्थितिः ॥ १५ ॥ प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा । आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै कमात्॥ १६॥ सर्वं ब्रह्मोति वै ज्ञाना दिन्द्रियमामसंयमः । यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥ १७ 🛚 सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः । नियमो हि परानन्दो नियमात्कियते तुषेः ॥ १८ ॥ त्यागो हि महता पूज्यः सद्यो मोक्षप्रदायकः ॥ १९ ॥ यसा- द्वाची निवर्तन्ते अपाप्य मनसा सह । यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा व्यः ॥ २० ॥ वाची यस्मान्निवर्तन्ते तद्वकुं केन शक्यते । प्रपञ्जो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः ॥ २१ ॥ इति वा तद्भवेन्मौनं सर्वं सहज-संजितम् । गिरां मौनं तु वालानामयुक्तं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २२ ॥ आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्पिल विद्यते । येनेदं सततं व्यासं स देशो विजनः स्मृतः ॥ २३ ॥ करपना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः । कालशब्देन नि-र्टिष्टं ह्यखण्डानन्द्मद्वयस् ॥ २४ ॥ सुखेनैव भवेद्यसिन्नजसं वहाचिन्तनस् । आसनं तहिजानीयादन्यत्सुखविनाशनम् ॥ २५ ॥ सिद्धये सर्वभूताहि वि-शाधिष्ठानमहयस् । यस्मिन्सिद्धं गताः सिद्धास्तत्सिद्धासनमुच्यते ॥ २६ ॥ यनमुळं सर्वेळोकानां यनमूळं चित्तवनधनम् । मुलबन्धः सदा सेव्यो योग्यो-इसी ब्रह्मवादिनाम् ॥ २७ ॥ अङ्गानां समतां विद्यासमे ब्रह्मणि लीयते । नो चेक्नेव समानत्वमृज्तवं ग्रुष्कवृक्षवत् ॥ २८ ॥ द्वष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्ये-इह्मसंयं जगत । सा दृष्टिः परसोदारा न नासाप्रावलोकिनी ॥ २९ ॥ दृष्ट-दर्शनदृश्यानां विरामी यत्र वा भवेत् । दृष्टिसत्त्रैव कर्तव्या न नासायावली-किनी ॥ ३० ॥ चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् । निरोधः सर्वेष्ट-त्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥ ३१ ॥ निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकास्यः समी-रितः। ब्रह्मेवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरुच्यते॥ ३२॥ ततस्तद्वृत्तिनै-श्रद्यं कुम्भकः प्राणसंचमः । अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां धाणपीडनम् ॥ ३३ ॥ विषवेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जकम् । प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो सुहुर्सुहुः ॥ ३४ ॥ यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणसत्र दर्शनात् । मनसा धारणं चैव धारणा सा परा मता॥ ३५॥ ब्रह्मैवास्मीति सद्दृत्या निरालम्बतया स्थितिः । ध्यानशब्देन विख्यातः परमानन्ददायकः ॥ ३६ ॥ निर्विकारतया वृत्त्वा ब्रह्माकारतया पुनः । वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरिभधीयते ॥ ३० ॥ इसं चाकृत्रिमानन्दं तादत्साधु समभ्यसेत् । लक्ष्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रत्यक्तं संभवेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥ ततः साधनितर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराद । तत्स्वं रूपं भवेत्तस्य विषयो मनसो गिराम् ॥ ३९ ॥ संमाधौ कियमाणे तु विव्वा-न्यायान्ति वै वळात् । अनुसंधानराहित्यमाळसं भोगळाळसम्॥ ४०॥ कयस्तम् विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च श्रून्यता । एवं हि विष्ठबाहुत्यं त्याज्यं ब्रह्म-विशारदैः ॥ ४१ ॥ भाववृत्त्या हि भावत्वं श्रूत्यवृत्त्या हि श्रूत्यता । ब्रह्म-वृत्या हि पूर्णत्वं तया पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥ ४२ ॥ ये हि वृत्तिं विहायैनां वहा- ख्यां पावनीं पराम् । वृथेव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ॥ ४३ ॥ ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये । ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्यासे अवनत्रये ॥ ४४ ॥ येषां वृत्तिः समा वृद्धा परिपका च सा पुनः । ते वै सद्क्षतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः ॥ ४५ ॥ कुशला ब्रह्मवार्तयां वृत्तिहीनाः सुरागिणः । तेऽप्यज्ञानतया न्नं पुनरायान्ति यान्ति च ॥ ४६ ॥ निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्मयीं विना । यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकान्यः ॥ ४७ ॥ कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते । कारणं तत्त्वतो नश्येत्वार्याभावे विचारतः ॥ ४८ ॥ अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यहै वाचामगोचरम् । उद्ति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम् ॥ ४९ ॥ भावितं तीववेगेन यद्वस्तु निश्चयात्मकम् । दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत् ॥५०॥ विद्वान्तिसं सुखे तिष्ठेद्विया चिद्वसपूर्णया ॥

इति तेजोविन्दूपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ ह कुमारः शिवं पप्रच्छाऽखण्डेकरसचिन्यात्रखरूपमनुब्रहीति। स होवाच परमः शिवः । अखण्डेकरसं दश्यमखण्डेकरसं जगत् । अखण्डेकरसं भावमखण्डेकरसं स्वयम् ॥ १ ॥ अखण्डेकरसो मञ्ज अखण्डेकरसा क्रिया। अखण्डेकरसं ज्ञानमखण्डेकरसं जलम् ॥ २ ॥ अखण्डेकरसा सुमिरखण्डेक-रसं वियत्। अखण्डेकरसं शास्त्रमखण्डेकरसा त्रयी ॥ ३ ॥ अखण्डेकरसं ब्रह्म चाखण्डेकरसं वतम् । अखण्डेकरसो जीव अखण्डेकरसो ह्यजः ॥ ४ ॥ अख-ण्डेकरसो ब्रह्मा अखण्डेकरसो हरिः। अखण्डेकरसो रुद्र अखण्डेकरसोऽस्म्य-हम् ॥ ५ ॥ अखण्डैकरसो ह्यात्मा ह्यखण्डैकरसो गुरुः । अखण्डेकरसं रुक्ष्य-मखण्डेकरसं महः ॥ ६ ॥ अखण्डेकरसो देह अखण्डेकरसं मनः । अखण्डे-करसं चित्तमखण्डेकरसं सुखम् ॥ ७ ॥ अखण्डेकरसा विद्या अखण्डेकरसीsव्ययः । अखण्डेकरसं नित्यमखण्डेकरसं परम् ॥ ८ ॥ अखण्डेकरसं किंचिद-खण्डैकरसं परम् । अखण्डैकरसादन्यन्नास्ति नास्ति पडानन ॥ ९ ॥ अखण्डै-करसान्नास्ति अखण्डेकरसान्न हि । अखण्डेकरसाद्धिचदखण्डेकरसाद्हम् ॥ १० ॥ अखण्डैकरसं स्थूळं सूक्षं चाखण्डरूपकम् । अखण्डेकरसं वेद्यम-खण्डेकरसो भवान् ॥ ११ ॥ अखण्डेकरसं गुद्धमखण्डेकरसादिकम् । अखण्डे-करसो ज्ञाता द्यालण्डेकरसा स्थिति:॥ १२॥ अखण्डेकरसा माता अखण्डे-रुरसः पिता । अखण्डैकरसो आता अखण्डैकरसः पतिः ॥ १३ ॥ अखण्डे-

करसं सुत्रमखण्डेकरसो विराद । अखण्डेकरसं गात्रमखण्डेकरसं शिरः ॥१४॥ अखण्डैकरसं चान्तरखण्डेकरसं बहिः। अखण्डेकरसं पूर्णमखण्डेकरसामृतम् ॥ १५ अखण्डेकरसं गोत्रमखण्डेकरसं गृहम्। अखण्डेकरसं गोप्यमखण्डे-करसदशदी ॥ १६ ॥ अखण्डेकरसास्तारा अखण्डेकरसो रविः । अखण्डेकरसं क्षेत्रमखण्डेकरसा क्षमा ॥ १७ ॥ अखण्डेकरसः शान्त अखण्डेकरसोऽगुणः । अखण्डेकरसः साक्षी अखण्डेकरसः सुहृत् ॥ १८ ॥ अखण्डेकरसो बन्धुर-खण्डेकरसः सखा । अखण्डेकरसो राजा द्यखण्डेकरसं पुरम् ॥ १९ ॥ अख-ग्डेकरसं राज्यमखण्डेकरसाः प्रजाः। अखण्डेकरसं तारमखण्डेकरसो जपः ॥ २०॥ अलण्डेकरसं ध्यानमखण्डेकरसं पदम् । अलण्डेकरसं ग्राह्ममखण्डे-करसं महत् ॥ २१ ॥ अखण्डैकरसं ज्योतिरखण्डेकरसं धनम् । अखण्डेकरसं भोज्यमखण्डेकरसं हविः ॥ २२ ॥ अखण्डेकरसो होम अखण्डेकरसो जपः । अखण्डेकरसं स्वर्गमखण्डेकरसः स्वयम् ॥ २३ ॥ अखण्डेकरसं सर्वं चिन्मा-त्रमिति भावयेत् । चिन्मात्रमेव चिन्मात्रमखण्डैकरसं परम् ॥ २४ ॥ भव-वर्जितचिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव हि । इदं च सर्वं चिन्मात्रमयं चिन्मयमेव हि ॥२५॥ आत्मभावं च चिन्मात्रमखण्डेकरसं विदुः । सर्वलोकं च चिन्मात्रं स्वत्ता सत्ता च चिन्मयम् ॥ २६ ॥ आकाशो मूर्जलं वायुरप्रिवंह्या हरिः शिव:। यिक्तंचिद्यन्न किंचिच सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २७ ॥ अखण्डैकरसं सर्वे यदाचिनमात्रमेव हि । भूतं भव्यं भविष्यच सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥२८॥ दुव्यं कालं च चिन्मात्रं ज्ञानं ज्ञेयं चिदेव हि। ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्च सर्वे चिन्सयमेव हि ॥ २९ ॥ संभाषणं च चिन्मात्रं यद्यचिन्मात्रमेव हि । असच सच चिन्मात्रमाद्यन्तं चिन्मयं सदा॥ ३०॥ आदिरन्तश्च चिन्मात्रं गुरुशि-ष्यादि चिन्मयम् । दाद्द्रयं यदि चिन्मात्रमस्ति चेचिन्मयं सदा ॥ ३९॥ सर्वाश्चर्यं हि चिन्मात्रं देहं चिन्मात्रमेव हि। छिङ्गं च कारणं चैव चिन्मा-त्रात्त हि विद्यते ॥ ३२ ॥ अहं त्वं चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादि चिन्मयम् । पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः ॥ ३३ ॥ चिन्मात्रान्नास्ति संकल्प-श्चिन्मात्रालास्ति चेदनम् । चिन्मात्रालास्ति मत्रादि चिन्मात्रालास्ति देवता ॥ ३४ ॥ चिन्मात्रान्नास्ति दिन्पालाश्चिन्मात्राद्यावहारिकम् । चिन्मात्रात्पर्मं ब्रह्म चिन्मात्रान्नास्ति कोऽपि हि ॥ ३५ ॥ चिन्मात्रान्नास्ति माया च चिन्मा-त्राजास्ति पूजनम् । चिन्मात्राजास्ति मन्तव्यं चिन्मात्राजास्ति सत्यकम् ॥३६॥

चिन्मात्राह्मास्त कोशादि चिमात्राह्मास्त वे वसु । चिन्मात्राह्मास्त मोनं च चिन्मात्राह्मास्त्यमोनकम् ॥ ३७ ॥ चिन्मात्राह्मास्त वेराग्यं सर्व चिन्मात्रमेव हि । यद्य यावद्य चिन्मात्रं यद्य यावद्य दृरसं सर्व चिन्मात्रमेव हि । यद्य यावद्य भूतादि यद्य यावद्य लक्ष्यते ॥ ३९ ॥ यद्य यावद्य वेदान्ताः सर्व चिन्मात्रमेव हि । चिन्मात्राह्मास्ति गमनं चिन्मात्राह्मास्ति मोक्षकम् ॥ ४० ॥ चिन्मात्राह्मास्ति लक्ष्यं च सर्व चिन्मात्रः मेव हि । अखण्डैकरसं ब्रह्म चिन्मात्राह्म हि विद्यते ॥ ४९ ॥ शाख्ये मिय व्यशिशे च ह्मखण्डैकरसो भवान् । इत्येकरूपकतया यो वा जानात्महं विदिति ॥ ४२ ॥ सकुउज्ञानेन मुक्तः स्यास्तम्याज्ञाने स्वयं गुरुः ॥ ४३ ॥

इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कुमारः पितरमात्मानुभवमनुब्हीति पप्रच्छ । स होवाच परः शिवः । परम्मसस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्यहस् । केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽ-स्म्यहम् ॥ १ ॥ केवलं शान्तरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम् । केवलं नित्यरूपोऽई केवलं शाश्वतोऽस्यहम् ॥ २ ॥ केवलं सरवरूपोऽहमहं त्यक्या-इमस्यहम् । सर्वहीनस्बरूपोऽहं चिदाकाशसयोऽस्म्यहम् ॥ ३॥ केवलं तुर्यरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः । सदा चैतन्यरूपोऽस्मि चिदानन्द-मयोऽस्म्यहम् ॥ ४॥ केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा। के-वलं ज्ञानरूपोऽस्मि केवलं प्रियमस्यहम् ॥ ५ ॥ तिर्विकलपस्तरूपोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरामयः । सदाऽसङ्गस्बरूपोऽस्मि निर्विकारोऽहमव्ययः ॥ ६ ॥ सदैकरसरूपोऽस्मि सदा चिन्मात्रविग्रहः । अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि द्यखण्डानन्दरूपवान् ॥ ७ ॥ सत्परान्दरूपोऽस्मि चित्परानन्दमस्म्यहम् । अन्तरान्तररूपोऽहमवाञ्चनसमोचरः ॥ ८ ॥ आत्मानन्दस्यरूपोऽहं सत्यान-न्दोऽस्म्यहं सदा। भात्मारामस्बरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः ॥ ९ ॥ आत्मप्रकाशरूपोऽस्मि ह्यान्मज्योती रसोऽस्म्यहम् । आदिमध्यान्तहीनोऽस्मि ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ॥ १० ॥ नित्यशुद्धचिदानन्दसत्तामात्रोऽहमन्ययः । नित्यबुद्धविशुद्धैकसिचदानन्दमस्म्यहम् ॥ ११ ॥ नित्यशेषस्वरूपोऽस्मि सर्वाः तीतोऽस्म्यहं सदा । रूपातीतस्बरूपोऽस्मि परमाकाशविष्रहः ॥ १२॥ भूमानन्दस्त्ररूपोऽस्मि भाषाहीनोऽस्यहं सदा । सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा चिद्रनोऽस्म्यहम् ॥ १३ ॥ देहभाविद्दीनोऽस्मि चिन्ताहीतोऽस्मि सर्वदा !

चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥ १४ ॥ सर्वेद्दश्यविहीनोऽहं हुग्ह्पोऽस्म्यहमेव हि । सर्वदा पूर्णक्षोऽस्मि नित्यतृप्तोऽस्म्यहं सदा ॥ १५॥ अहं ब्रह्मैव सर्व स्थादहं चैतन्यमेव हि । अहमेवाहमेवास्मि भूमाकाशस्वरूप-वान् ॥ १६ ॥ अहमेव महानात्मा हाहमेव परात्परः । अहमन्यवदासामि ह्महमेव शरीरवत् ॥ १७ ॥ अहं शिष्यवदाभामि ह्मयं लोकत्रयाश्रयः । अहं कालत्रयातीत अहं वेदैरुपासितः॥ १८॥ अहं शास्त्रेण निर्णात अहं चित्ते व्यवस्थितः । मत्यक्तं नास्ति किंचिद्वा मत्यक्तं पृथिवी च वा ॥ १९ ॥ मया-तिरिक्तं यद्यद्वा तत्तन्न।सीति निश्चिनु। अहं ब्रह्मास्मि सिद्धोऽस्मि नित्य-ञ्जद्धोऽस्म्यहं सदा ॥ २० ॥ निर्गुणः केवलात्मास्मि निराकारोऽस्म्यहं सदा । केवलं ब्रह्ममात्रोऽस्मि ह्यजरोऽस्म्यमरोऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥ स्वयमेव स्वयं आप्ति स्वयमेव सदात्मकः। स्वयमेवात्मित स्वस्थः स्वयमेव परा गतिः॥ २२॥ ख्वयमेव खयं भुक्षे स्वयमेव खयं रमे। खयमेव खयं ज्योतिः स्वयमेद खयं महः ॥ २३ ॥ खस्यात्मनि खयं रंस्ये स्वात्मन्येव विलोकये । स्वात्म-न्येव सुखासीनः स्वात्ममात्रावशेषकः ॥ २४ ॥ स्वचैतन्ये स्वयं स्थास्वे खात्मराज्ये सुखे रमे । स्वात्मसिंहासने स्थित्वा स्वात्मनोऽन्यन्न चिन्तये ॥ २५ ॥ चिद्रूपमात्रं ब्रह्मेव सिचदानन्दमद्वयम् । आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥ २६ ॥ सर्वदा सर्वश्चारहं सर्वात्मानन्दवानहम् । नित्यानन्दस्बरूपोऽहमात्माकाशोऽस्मि नित्यदा ॥ २७ ॥ अहमेव हृदाकाश-श्चिदादित्यस्वरूपवान् । आत्मनात्मिन तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोऽस्म्यहमव्ययः ॥ २८ ॥ एकसंख्याविहीनोऽस्ति नित्यमुक्तस्वरूपवान् । आकाशादिप सूक्ष्मोऽहमाद्य-न्ताभाववानहम् ॥ २९ ॥ सर्वप्रकाशरूपोऽहं परावरसुखोऽस्म्यहम् । सत्ता-मात्रखरूपोऽहं शुद्धमोक्षखरूपवान् ॥ ३० ॥ सत्यानन्दखरूपोऽहं ज्ञानान-न्द्धनोऽस्म्यहम् । विज्ञानमात्ररूपोऽहं सिचदानन्दलक्षणः ॥ ३१ ॥ ब्रह्म-मात्रमिदं सर्वं ब्रह्मणोऽन्यन्न किंचन । तदेवाहं सदानन्दं ब्रह्मैवाहं सनातः नम् ॥ ३२ ॥ त्वमित्येतत्तिद्वेतनमत्तोऽन्यन्नास्ति किंचन । चिच्चेतन्यस्तरू-पोऽहमहमेव परः शिवः ॥ ३३ ॥ अतिभावस्त्ररूपोऽहमहमेव सुखात्मकः। साक्षिवस्तुविहीनःवात्साक्षित्वं नास्ति मे सक्षा ३४ ॥ केवळं ब्रह्ममात्रत्वाः दहमात्मा सनातनः । अहमेवादिशेपोऽहमः शेपोऽहमेव हि ॥ ३५ । नामरूपविमुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः । इन्द्रियाभावरूपोऽहं सर्वभावस्व ः

पकः ॥ ३६ ॥ बन्धमुक्तिविहीनोऽहं शाश्वतानन्दविग्रहः। आदिचैतन्यमात्रो-ऽहमखण्डेकरसोऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥ वाद्यानोऽगोचरश्राहं सर्वत्र सुखवानहम् । सर्वत्र पूर्णरूपोऽहं भूमानन्दमयोऽस्म्यहम् ॥ ३८ ॥ सर्वत्र तृप्तिरूपोऽहं परा-मृतरसोऽस्म्यहम् । एकमेवाद्वितीयं सद्रह्मेवाहं न संशयः ॥ ३९ ॥ सर्वेशू-न्यस्वरूपोऽहं सकलागमगोचरः। मुक्तोऽहं मोक्षरूपोऽहं निर्वाणसुखरूप-वान् ॥ ४० ॥ सत्यविज्ञानमात्रोऽहं सन्मात्रानन्दवानहम् । तुरीयातीत्रह्यो-उहं निर्विकल्पस्वरूपवान् ॥ ४१ ॥ सर्वदा ह्यजरूपोऽहं नीरागोऽस्मि निर-ञ्जनः । अहं शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि निलोऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ॥ ४२ ॥ ओङ्का-रार्थस्वरूपोऽस्मि निष्कलङ्कमयोऽस्म्यहम् । चिदाकारस्वरूपोऽस्मि नाहमसि न सोऽस्म्यहम् ॥ ४३ ॥ न हि किंचित्स्वरूपोऽस्मि निर्व्यापारस्वरूपवान् । तिरंशोऽस्मि निराभासी न मनो नेन्द्रियोऽस्म्यहम् ॥ ४४ ॥ न बुद्धिन विकल्पोऽहं न देहादित्रयोऽस्म्यहम् । न जाम्यस्त्रमरूपोऽहं न सुषुप्तिस्तरूप-वान् ॥ ४५ ॥ न तापत्रयरूपोऽहं नेषणात्रयवानहम् । श्रवणं नास्ति मे सिद्देमीननं च चिदात्मिनि॥ ४६॥ सजातीयं न मे किंचिद्विजातीयं न मे क्वित्। स्वगतं चन में किंचित्र में भेदत्रयं कवित्॥ ४७॥ असत्यं हि मनोरूपमसत्यं बुद्धिरूपकम् । अहंकारमसद्धीति नित्योऽहं शाश्वतो ह्यजः ॥ ४८ ॥ देहत्रयमसिह द्वि कालत्रयमसःसदा । गुणत्रयमसिह द्वि ह्वहं सत्या-रमकः ग्रुचिः ॥ ४९ ॥ श्रुतं सर्वमसद्विद्धि वेदं सर्वमसत्सदा । शास्त्रं सर्वम-सदिद्धि ह्यहं सत्यचिदात्मकः ॥ ५० ॥ मूर्तित्रयमसदिद्धि सर्वभूतमसत्सदा। सर्वतत्त्वमसद्विद्धि हार्ह भूमा सदाशिवः ॥ ५३ ॥ गुरुशिष्यमसद्विद्धि गुरो-र्मत्रमसत्ततः । यद्दृश्यं तदसिद्धिः न मां विद्धि तथाविधम्॥ ५२॥ यचिन्त्यं तद्सिद्धि यद्वाच्यं तद्सत्सदा । यद्धितं तद्सिद्धि न मां विदि तथाविधम् ॥ '५३ ॥ सर्वान्प्राणानसद्विद्धि सर्वान्भोगानसित्विति । दृष्टं श्रुत-मसिद्धि ओतं प्रोतमसन्मयम् ॥ ५४ ॥ कार्याकार्यमसिद्धि नष्टं प्राप्तम-सन्मयम् । दुःखादुःखमस्द्विद्धि सर्वास्त्रवीमसन्मयम् ॥ ५५ ॥ पूर्णापूर्णम-सद्विद्धि धर्माधर्ममसन्मयस् । लाभालाभावसद्विद्धि ज्याजयमसन्मयस् ॥ ५६॥ शब्दं सर्वमसिद्धित् रपर्शं सर्वमसत्सदा । रूपं सर्वमसिद्धित् रसं सर्व-यसनमयम् ॥ ५७ ॥ गन्धं सर्वमसद्विद्धि सर्वोज्ञानससन्मयम् । असदेव सदा सर्वमसद्व भवोद्भवस् ॥५८॥ असद्व गुणं सर्वं सन्मात्रमहमेव हि । स्वात्म-

मन्नं सदा पश्येत्स्वात्ममन्नं सदाभ्यसेत् ॥ ५९ ॥ अहं न्रह्मास्मि मन्नोऽयं दृइयपापं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयमन्यमन्त्रं विनाशयेत्॥ ६०॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं देहदोषं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं जन्म-पापं विनाशयेत् ॥ ६९ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मत्रोऽयं मृत्युपारां विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं द्वैतदुःखं विनाशयेत्॥ ६२ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नो-ऽयं भेदवुद्धं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं चिन्तादुःखं विना-शयेत् ॥ ६३ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं बुद्धिच्याधि विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं चित्तवन्धं विनाशयेत् ॥ ६४ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं सर्वव्याधीन्विनाशयेत् । अहं त्रह्मास्मि मन्नोऽयं सर्वशोकं विनाशयेत ॥ ६७ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं कामादीन्नाशयेव्क्षणात् । अहं ब्रह्मास्मि मत्रोऽयं कोधशक्तिं विनाशयेत् ॥ ६६ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मत्रोऽयं चित्त-वृत्तिं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं संकल्पादीन्विनाशयेत्॥ ६७॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कोटिदोषं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं सर्व-तत्रं विनाशयेत् ॥ ६८ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयमात्मन्तानं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयमात्मलोकजयप्रदः ॥ ६९ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयम-प्रतक्यंसुखप्रदः । अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयमजद्यं प्रयच्छति ॥ ७० ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयमनात्मासुरमर्दनः । अहं ब्रह्मास्मि वन्नोऽयमनात्मास्यिति-रीन्हरेत् ॥ ७१ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयमनात्माख्यासुरान्हरेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं सर्वास्तान्मोक्षयिष्यति ॥ ७२ ॥ अहं ब्रह्मास्मि मन्नोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति । सप्तकोटिमहामत्रं जन्मकोटिशतप्रदम् ॥ ७३ ॥ सर्वमत्रान्समुत्सृज्य एतं मत्रं समभ्यसेत् । सद्यो मोक्षमवामोति नात्र संदेहमण्वपि ॥ ७४ ॥

इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कुमारः परमेश्वरं पप्रच्छ जीवन्मुक्तविदेहमुक्तयोः स्थितिमनुबृहीति । स होवाच परः शिवः । चिदात्माहं परात्माहं निर्मुणोऽहं परात्परः । आत्म-मात्रेण यस्तिष्टेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ १ ॥ देहत्रवातिरिक्तोऽहं छुद्धचैतन्य-मस्म्यहम् । ब्रह्माहमिति यस्थान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २ ॥ आनन्द-घनरूपोऽस्मि परानन्द्वनोऽस्म्यहम् । यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः । परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३ ॥ यस्य किंचिदहं नास्ति चिन्मात्रेणावतिष्ठते । चैतन्यमात्रो यस्यान्तश्चिन्मात्रेकस्वरूपवान् ॥ ४॥ सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः । आनन्दरतिरन्यक्तः परिपूर्णश्चिदा-रमकः ॥ ५ ॥ शुद्धचेतन्यरूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः । नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा ग्रन्यचिन्ताविवार्जितः ॥ ६ ॥ किंचिद्रस्तित्वहीनो यः स जीवन्मुक्त उच्यते । न मे चित्तं न मे बुद्धिर्नाहंकारो न चेन्द्रियम्॥ ७॥ न मे देहः कदाचिद्वा न मे प्राणाद्यः कचित्। न मे भाया न मे कामो न मे क्रोधः परोऽस्य-हम्॥८॥ न से किंचिदेदं वापि न में किंचिकचिजगत्। न में दोषों न में लिं न में चक्ष ने में मनः ॥ ९ ॥ न में श्रोत्रं न में नासा न में जिह्ना न में करः। न से जायन से स्वसं न से कारणमण्यणि ॥ १०॥ न मे तुरीयमिति यः स जीवन्मुक्त उच्यते । इदं सर्वं न मे किंचिइयं सर्वं न मे कचित्॥ ११॥ न में कालों न में देशों न में वस्तु न में मितिः। न में स्नानं न में संध्या न में देवं न में स्थलम्॥ १२॥ न में तीर्थं न में सेवा न मे ज्ञानं न मे पद्भ्। न मे बन्धो न मे जन्म न मे वात्र्यं न मे रिवि: ॥ १३ ॥ न से पुण्यं न से पापं न से कार्यं न से शुभम्। न मे जीव इति स्वास्ता न के किंचिजगद्रयम् ॥ १४॥ न मे मोझो न मे द्वेतं न से वेदो न से विधि:। न सेऽन्तिकं न से दृरं न से वोघो न से रहः॥ १५॥ न मे गुरुर्न मे शिष्यो न मे हीनो न चाधिकः । न मे ब्रह्म न से विष्णुर्न से रहो न चन्द्रभाः॥ १६॥ न से पृथ्वी न से तोथं न से बायुर्न मे वियत्। न मे विह्नि से गोत्रं न मे लक्ष्यं न मे भवः ॥ १७॥ न से ध्याता न में ध्येयं न से ध्यानं न से मनुः। न में शीतं न में चोलं न में तृष्णा न में क्षुचा॥ ५८॥ न में मित्रं न में शत्रुर्न में मोहों न में ज्यः। न मे पूर्वं न से पश्चास से चोध्वं न मे दिशः॥ १९॥ न मे वक्तव्यमल्पं वा न मे श्रोतव्यमण्यपि । न मे गन्तव्यमीषद्वा न मे ध्यातव्य-भण्वपि ॥ २०॥ न मे सोक्तव्यसीयहा न मे स्पर्तव्यमण्वपि । न मे सोगो न से रागो न मे यागो न से लयः ॥ २९ ॥ न से सींहर्यं न से ज्ञानतं न से बन्यों न में प्रियम्। न भे मोदः प्रमोदों वा न से स्थूर्कं न में इतम्॥२२॥ न में दीव न में हस्बं न में वृद्धिन में क्षयः। अध्यारोपोऽपवादी वा न में चै∌ंन में बहु॥ २३ ॥ न में आन्ध्यंन में मान्द्यंन में पहिंदमण्यपि। ग में मांसं न में रक्तं न में सेदों न में हास्क् ॥ २४॥ न में मजा न मेंऽ-

11

1

5-

श्चिर्वा न से त्वरधातुससकस्। न से शुक्तं न से रक्तं न से नीठं न से पृथक ॥ २५ ॥ न से तापो न से लाभो मुख्यं गौणं न से कचित्। न से आनितर्न में स्थेर्यं न से गुहां न में कुलम् ॥ २६ ॥ न में त्याज्यं न में प्राहां न में हास्यं न से नयः । न से वृत्तं न मे ग्लानिर्न से शोष्यं न से सुखम् ॥ २७ ॥ न में ज्ञाता न से ज्ञानं न में ज्ञेयंन में स्वयम्। न में तुभ्यंन में मह्यं न से त्वं च न से त्वहस् ॥ २८ ॥ न मे जरा न मे बाल्यं न मे योवनस-व्विप । अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मित निश्चयः ॥ २९ ॥ चिदहं चिद्हं चेति स जीव-मुक्त उच्यते । ब्रह्मैबाहं चिदेवाहं परो वाहं न संशयः ॥३०॥ स्वयमेव स्वयं हंसः स्वयमेव स्वयं स्थितः । स्वयमेव स्वयं पर्येत्स्वात्मराज्ये सुखं वसेत्। स्वात्मानन्दं स्वयं भोक्ष्येत्स जीवन्मुक उच्यते ॥ ३९॥ स्वयमेवैकत्रीरोऽये स्वयमेव प्रभुः स्पृतः । स्वस्वरूपे स्वयं स्वप्सेःस जीव-न्मुक्त उच्यते ॥ ३२ ॥ ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्द्मयः सुखी। स्त्रच्छरूपी महामीनी वैदेही मुक्त एव सः ॥ ३३ ॥ सर्वात्मा समरूपातमा गुद्धातमा त्वहसुरियतः । एकवर्जित एकात्मा सर्वात्मा स्वत्ममात्रकः ॥ ३४॥ अजातमा चासृतात्माहं स्वयसात्माहमन्ययः । लक्ष्यात्मा ललितात्माहं तुष्णी-मात्मस्त्रभाववान् ॥ ३५ ॥ आनन्दाःमा प्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा बन्धव-जितः । ब्रह्मेवाहं चिद्वाहमेवं वापि न चिन्खते ॥ ३६ ॥ चिन्मात्रेणैव यस्तिष्ठेद्वेदेही सुक्त एव सः ॥ ३० ॥ निश्चयं च परित्यज्य अहं ब्रह्मेति निश्च-ास्। आनन्दभरितस्वान्तो वदेही मुक्त एव सः ॥ ३८ ॥ सर्वमस्तीति नास्तीति निश्चयं त्यच्य निष्टति । अहं ब्रह्मासि नासीति सचिदानन्दमा-शकः ॥ ३९ ॥ किंचिःकचित्कदाचिच आत्मानं न स्प्रशत्यसौ । तूष्णीमेव ियतस्तृष्णीं तुर्णीं सत्यं न किंचन ॥ ४० ॥ परमात्मा गुणातीतः सर्वात्मा भूतभावनः । कालभेद वस्तुभेदं देशभेदं स्वभेदकम् ॥ ४१ ॥ किंचिद्धेदं न ासास्ति किंचिद्वापि व विद्यते। अहं त्वं तदिदं सोऽयं कालात्मा कालही-नकः ॥ ४२ ॥ जून्याःमा सुक्षमरूपातमा विश्वातमा विश्वहीनकः । देवात्मा देव-हीनास्मा सेयारमा मेयवर्जितः ॥४३॥ सर्वत्र जडहीनास्मा सर्वेषामन्तरात्मकः । सर्वसंकरपहीनातमा चिन्मात्रोऽस्मीति सर्वदा ॥ ४४ ॥ केवछः परमात्माहं केवलो ह्यानविश्रहः । सन्तामात्रस्यरूपात्मा नान्यस्थिचिजगद्भयम् ॥ ४५ ॥ जीवेश्वरेति वाक केति वेदशाखाद्यहं विति । इदं चतन्यमेवेति अहं चैतन्य- मित्यपि ॥ ४६ ॥ इति निश्चयश्चन्यो यो वेदेही मुक्त एव सः । चेतन्यमात्र संसिद्धः स्वात्मारामः सुखासनः ॥ ४० ॥ अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूटा. दिवार्जितः । तुर्यतुर्यः परानन्दो वेदेही मुक्त एव सः ॥ ४८ ॥ नामरूपिव-हीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः । तुरीयातीतरूपात्मा शुभाशुभविवर्जितः ॥४९॥ योगात्मा योगयुक्तात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः। गुणागुणविहीनात्मा देशका-कादिवार्जितः ॥ ५० ॥ साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किंचित्किचित्र किंचन । यस प्रपञ्चमानं न ब्रह्माकारमपीह न ॥ ५९ ॥ स्वस्वरूपे स्वयंज्योतिः स्वस्वरूपे स्वयंरतिः । वाचामगोचरानन्दो वाङ्मनोगोचरः स्वयम् ॥ ५२॥ अतीताः तीतभावो यो वैदेही मुक्त एव सः। चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यवभासकः ॥ ५३ ॥ सर्ववृत्तिविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः । तस्मिन्काले विदेहीति देहसारणवर्जितः ॥५४॥ ईपन्मात्रं स्मृतं चेद्यस्तदा सर्वसमन्वितः । परैरदष्टः बाह्यातमा परमानन्दचिद्धनः ॥ ५५ ॥ परेरदृष्टवाह्यातमा सर्वयेदान्तगोचरः। ब्रह्मामृतरसास्वादो ब्रह्मामृतरसायनः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मामृतरसासको ब्रह्मामृत-रसः स्वयम् । ब्रह्मामृतरसे मस्रो ब्रह्मानन्दशिवार्चनः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मामृतरसे वृक्षो ब्रह्मानन्दानुभावकः । ब्रह्मानन्द्शिवानन्दो ब्रह्मानन्द्रसप्रभः॥ ५८॥ ब्रह्मानन्दपरं ज्योतिर्बद्धानन्दनिरन्तरः । ब्रह्मानन्दरसान्नादो ब्रह्मानन्दकुटुम्बकः ॥ ५९ ॥ ब्रह्मानन्द्रसारूढो ब्रह्मानन्दैकचिद्धनः । ब्रह्मानन्द्रसोद्वाहो ब्रह्मान-न्दरसंभरः ॥६०॥ ब्रह्मानन्द्जनेर्युक्तो ब्रह्मानन्दात्मनि स्थितः । आत्मरूपमिदं सर्वमाःमनोऽन्यन्न किंचन ॥६१॥ सर्वमात्माहमात्मास्म परमाःमा परात्मकः। नित्यानन्दस्बरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥६२॥ पूर्णरूपो महानातमा प्रीता-त्मा शाश्वतात्मकः । सर्वान्तर्यामिरूपात्मा निर्मेलात्मा निरात्मकः ॥ ६३ ॥ निर्विकारस्ररूपात्मा शुद्धात्मा शान्तरूपकः । शान्ताशान्तस्यरूपात्मा नेकान ःमत्वविवर्जितः ॥६४॥ जीवात्मपरमात्मेति चिन्तासर्वस्ववर्जितः । मुक्तामुक्तस्व-रूपारमा मुक्तामुक्तविवार्जितः ॥६५॥ बन्धमोक्षस्यरूपारमा बन्धमोक्षविवर्जितः द्वेत।द्वेतस्वरूपारमा द्वेताद्वेतविवार्जितः ॥ ६६ ॥ सर्वासर्वस्वरूपारमा सर्वासर्वः विवाजितः । मोदप्रमोदरूपात्मा मोदादिविनिवार्जितः ॥ ६७ ॥ सर्वसंकल्पः हीनात्मा वेदेही मुक्त एव सः। निष्कलात्मा निर्मलात्मा बुद्धात्मा बुह्या-त्मकः ॥ ६८ ॥ आनन्दादिविहीनाःमा असृताःमा सृताःमकः । कालत्रयस्ररूः पारमा कालत्रयविवार्जितः ॥ ६९ ॥ अखिलात्मा द्यमेयात्मा मानात्मा

दं

T-

11

व॰

댴.

व-

T1-

夜,

[H]

मानवर्जितः । नित्यपत्यक्षरूपात्मा नित्यप्रत्यक्षनिर्णयः ॥ ७० ॥ अन्यहीनस्वभा-वात्मा अन्यहीनस्वयंप्रभः। विद्याविद्यादिमेयात्मा विद्याविद्यादिवर्जितः॥ ७१ ॥ निलानित्यविहीनात्मा इहामुत्रविवर्जितः । शमादिषद्भग्रन्यात्मा मुमुश्रुत्वा-द्विवर्जितः ॥ ७२ ॥ स्थूलदेहविहीनात्मा सुक्षमदेहविवर्जितः । कारणादिवि-हीनात्या तुरीयादिविवर्जितः॥ ७३॥ अन्नकोशविहीनात्मा प्राणकोशविवर्जितः। सनःकोशविहीनात्मा विज्ञानादिविवर्जितः ॥ ७४ ॥ आनन्दकोशहीनात्मा पञ्जकोशाविवर्जितः । निर्विकल्पस्त्ररूपात्मा सविकल्पविवर्जितः ॥ ७५ ॥ दृश्यानुविद्धतीनात्मा शब्दविद्धविवर्जितः । सदा समाधिश्चन्यात्मा आद्मिध्यान्तवर्जितः ॥ ७६ ॥ प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहंब्रह्मास्मिवर्जितः । तस्वमस्यादिहीनात्मा अयमात्मेत्यभावकः ॥ ७७ ॥ श्रोंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः । अवस्थात्रयहीनात्मा अक्षरात्मा चिदात्मकः ॥ ७८ ॥ आत्मज्ञेयादिहीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मकः। भानाभानविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः॥ ७९॥ आत्मानमेव वीक्षस्य आत्मानं बोधय स्वक्रम्। खमात्मानं स्वयं भुङ्क्ष्व स्वस्थो भव पडानन ॥ ८० ॥ स्वमात्मिन स्वयं तृसः स्वमात्मानं स्वयं चर । शात्मानमेव मोदस्व वैदेही मुक्तिको भवेत्युप-निषत् ॥

इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

निदाघो नाम व मुनिः पप्रच्छ ऋसुं भगवन्तमात्मानात्मविवेकमनुदूहोति । स होवाच ऋसुः । सर्ववाचोऽवधिर्वह्म सर्वचिन्तावधिर्गुरुः । सर्वकारणकार्थाःमा कार्यकारणवर्जितः ॥ १ ॥ सर्वसंकल्परहितः सर्वनादमयः
शिवः । सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः ॥ २ ॥ सर्वतेजःप्रकाशात्मा
नादानन्दमयात्मकः । सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः ॥ ३ ॥ सर्वनादकलातीत एष आत्माहमव्ययः । आत्मानात्मविवेकादिभेदाभेदविवर्जितः
॥ ४ ॥ शान्ताशान्तादिहीनात्मा नादान्तज्योतिरूपकः । महावाक्यार्थतो
दूरो ब्रह्मास्मीत्मतिदूरतः ॥ ५ ॥ तच्छब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनो वाक्यार्थवर्जितः ।
अराक्षरविहीनो यो नादान्तज्योतिरेव सः ॥ ६ ॥ अखण्डकरसो वाऽहमानन्दोऽस्मीतिवर्जितः । सर्वातीतस्मावात्मा नादान्तज्योतिरेव संः ॥ ७ ॥
आत्मेतिशब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः । सचिदानन्दहीनो य एषेवात्मा सनातनः ॥ ८ ॥ स निर्देष्ट्रमशक्यो यो वेदवाक्येरगम्यतः । यस्य
अ. उ. १८

किंचिद्वहिनीस्ति किंचिदन्तः कियच च ॥ ९ ॥ यस्य लिङ्गं प्रपद्धं वा ब्रह्मे. वास्मा न संशयः। नास्ति यस्य शरीरं वा जीवो वा भूतभौक्तिकः॥ १०॥ नामरूपादिकं नास्ति भोज्यं वा भोगशुरु च वा। सद्दाऽसद्दा स्थितिर्वापि यस नास्ति क्षराक्षरम् ॥ ११ ॥ गुणं वा विगुणं वापि सम आत्मा न संशयः। यस्य वाच्यं वाचकं वा श्रवणं मननं च वा ॥ १२ ॥ गुरु शिष्यादिभेदं वा देवकोकः सुरासुराः । यत्र धर्ममधर्मं वा गुद्धं वाऽगुद्धमण्वपि ॥ १३ ॥ यत्र कालमकालं वा निश्चयः संशयो न हि। यत्र मञ्जसमञ्जं वा विचाऽविद्या न विद्यते ॥ १४ ॥ द्रष्ट्दर्शनदृश्यं वा ईषन्मात्रं कलात्मकस् । अनात्मेति प्रसङ्गो वा ह्यनात्मेति मनोऽपि वा ॥ ३५ ॥ अनात्मेति जगद्वापि नास्ति नास्तीति निश्चितु । सर्वसंकल्पशून्यत्वात्सर्वकार्यविवर्जनात् ॥ १६ ॥ केवलं ब्रह्ममात्रत्वं नास्त्यनात्मेति निश्चितु । देइत्रयविहीनत्वात्काळत्रयविवर्जनात् ॥ ५०॥ जीवत्रयगुणाभावात्तापत्रयविवर्जनात् । छोकत्रयविहीनःवान्सर्वमारमेति शास-नात्॥ १८ ॥ चित्ताभावाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्ञरा न च। पादाभावाद्र-तिर्नास्ति हस्ताभावात्किया न च॥ १९॥ मृत्युर्न जननाभावादृद्यभावा-त्सुखादिकम् । धर्मो नास्ति शुचिर्नास्ति सत्यं नास्ति अयं न च॥२०॥ अक्षरोचारणं नास्ति गुरुशिष्यादि नास्त्यपि । एका भावे द्वितीयं न द्वितीयेऽपि न चैकता ॥ २९ ॥ सत्यत्वमस्ति चेक्तिंचिदसत्यं न च संभवेत् । असत्यावं यदि अवेत्सत्यावं न घटिष्यति ॥ २२ ॥ शुगं यद्यशुभं विद्वि अग्रुभाच्छुभिमण्यते । भयं यद्यभयं विद्धि अभयाद्रथमापतेत् ॥ २३॥ बन्धस्वमपि चेन्मोक्षो बन्धाभावे क मोक्षता । सरणं यदि चेजन्म जन्माभावे सृतिर्न च ॥ २४ ॥ त्विमिखपि भवेचाहं त्वं नो चेदहमेव न। इदं यदि तदेवास्ति तद्भावादिदं न च॥ २५॥ अस्तीति चेन्नास्ति तदा नास्ति चेदस्ति किंचन । कार्यं चेत्कारणं किंचित्कार्याभावे न कारणम् ॥ २६ ॥ द्वैतं यदि तदाऽद्वैतं द्वैतमाचे द्वयं न च । दश्यं यदि दगव्यस्ति दृश्याभावे दृगेव न ॥ २७ ॥ अन्तर्यंदि बहिः सत्यमन्ताभावे बहिर्न च। पूर्णस्वमस्ति चेक्किंचिदपूर्णस्वं प्रसज्यते ॥ २८ ॥ तस्मादेतस्कचिन्नास्ति स्वं चाहं वा इमे इदम्। नास्ति दृष्टान्तिकं सत्ये नास्ति दृष्टीन्तिकं ह्यजे॥ २९॥ परंत्रह्माहमस्मीति सरणस्य मनो न हि । ब्रह्ममात्रं जगदिदं ब्रह्ममात्रं स्वम-प्यहम् ॥ ३०॥ चिन्मात्रं केवछं चाहं नास्यनात्म्येति निश्चिनु । इदं प्रपच्चं

1

म ब

a

Ą

त

1

व ॥

₹-

नास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितं कवित् ॥ ३१ ॥ चित्तं प्रपञ्चिमत्याहुनांस्ति नास्त्येव सर्वदा । न प्रपञ्चं न चित्तादि नाहंकारो न जीवकः ॥ ३२ ॥ माया-कार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं नहि । कर्ता नास्ति क्रिया नास्ति श्रवणं मननं नहि ॥ ३३ ॥ समाधिद्वितयं नास्ति मातृमानादि नास्ति हि । अज्ञानं चापि नास्त्येव द्यविवेकं कदाचन ॥ ३४ ॥ अनुबन्धचतुष्कं न संबन्धत्रयमेव न । न गङ्गा न गया सेतुर्न भूतं नान्यदस्ति हि ॥ ३५ ॥ न भूमिर्न जलं नाभिन वायुर्न च खं क्रचित्। न देवा नच दिक्पाला न वेदा न गुरुः कचित् ॥ ३६ ॥ न दूरं नान्तिकं नालं न मध्यं न कचितिस्थतम् । नाहैतं द्वेतसत्ये वा द्यसत्यं वा इदं न च ॥ ३७ ॥ बन्धमोक्षादिकं नाम्ति सद्घाऽसद्वा सुखादि वा । जातिर्नास्ति गतिर्नास्ति वर्णो नास्ति न लौकिकम्॥ ३८॥ सर्वं ब्रह्मेति नास्त्येव ब्रह्म इत्यपि नास्ति हि। चिदित्येवेति नास्त्येव चिदहंभा-वणं नहि ॥ ३९ ॥ अहं ब्रह्मास्मि नास्त्येव नित्यग्रुद्धोऽस्मि न कचित् । वाचा यदुच्यते किंचिन्मनसा मनुते कचित्॥ ४० ॥ बुद्धा निश्चिनुते नास्ति चित्तेन ज्ञायते नहि । योगियोगादिकं नास्ति सदा सर्वं सदा न च ॥ ४१ ॥ अहोरात्रादिकं नास्ति सानध्यानादिकं नहि । आन्तिरआन्तिर्नास्त्येव नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ॥ ४२ ॥ वेदः शास्त्रं पुराणं च कार्यं कारण-मीश्वरः । लोको भूतं जनस्त्वेक्यं सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४३ ॥ बन्धो मोक्षः सुखं दुःखं ध्यानं चित्तं सुरासुराः । गौणं मुख्यं परं चान्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४४ ॥ वाचा वद्ति यिंकचित्संकल्पैः कल्प्यते च यत् । मनसा चिन्त्यते यद्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः॥ ४७ ॥ बुद्धा निश्चीयते किंचिचित्ते निश्चीयते कचित् । शास्त्रेः प्रपञ्चयते यद्यन्नेत्रेणैव निरीक्ष्यते ॥ ४६ ॥ श्रोत्राभ्याः श्र्यते यद्यद्ग्यत्सद्भावमेव च । नेत्रं श्रोत्रं गात्रमेव मिथ्येति च सुनिश्चि-तम् ॥ ४७ ॥ इट्रमित्येव निर्दिष्टमयमित्येव कल्प्यते । त्वमहं तिदृदं सोऽहमन्य-व्सद्भावमेव च ॥ ४८ ॥ यद्यत्संभाव्यते होके सर्वसंकल्पसंभ्रमः । सर्वाध्यासं सर्वगोप्यं सर्वभोगप्रभेदकम् ॥ ४९ ॥ सर्वदोषप्रभेदाच नास्त्यनात्मेति निश्चिनु । मदीयं च व्वदीयं च ममेति च तवेति च ॥ ५० ॥ मह्यं तुभ्यं मये-त्यादि सत्सर्वं वितर्थं भवेत् । रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम् ॥ ५१ ॥ संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु । स्नानं जपस्तपो होमः स्वाध्यायो देवपूजनम् ॥ ५२॥ मन्नं तन्नं च सत्सङ्गो गुणदोषविज्रम्भणम् । अन्तःकरणसद्भाव अविद्यायाश्च संशयः ॥ ५३ ॥ अनेककोटिब्रह्माण्डं सर्वे मिथ्येति निश्चित् । सर्वदेशिकवाक्योक्तिर्येन केनापि निश्चितम् ॥ ५४ ॥ हर्यते जगति यद्यद्यज्ञगति वीक्ष्यते । वर्तते जगति यद्यत्सर्वं मिथ्येति निश्चित् ॥ ५५ ॥ येन केनाक्षरेणोक्तं येन केन विनिश्चितम् । येन केनापि गदितं येन केनापि मोदितम् ॥ ५६ ॥ येन केनापि यहत्तं येन केनापि यत्कृतम् । यत्र यत्र शुभं कर्म यत्र यत्र च दुष्कृतम् ॥ ५०॥ यद्यत्करोषि सत्येन सर्वं मिथ्येति निश्चित् । त्वमेव परमात्मासि त्वमेव परमो गुरुः ॥ ५८ ॥ त्वमेवाकाशरूपोऽसि साक्षिहीनोऽसि सर्वेदा । त्वमेव सर्व-भावोऽसि त्वं ब्रह्मासि न संशयः ॥ ५९ ॥ कालहीनोऽसि कालोऽसि सदा ब्रह्मासि चिद्धनः । सर्वतः स्वस्वरूपोऽसि चैतन्यघनवानसि ॥ ६०॥ सत्योऽसि सिद्धोऽसि सनातनोऽसि मुक्तोऽसि मोक्षोऽसि सदामृदोऽसि । देवोऽसि शान्तोऽसि निरामयोऽसि ब्रह्मासि पूर्णोऽसि परात्परोऽसि ॥ ६१ ॥ समोऽसि सचापि सनातनोऽसि सत्यादिवाक्यैः प्रतिबोधितोऽसि । सर्वाङ्गहीनोऽसि सदा स्थितोऽसि ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिविभावितोऽसि ॥ ६२ ॥ सर्वप्रपञ्चभ्रमवर्षि-तोऽसि सर्वेषु भूतेषु च भासितोऽसि । सर्वत्र संकल्पविवर्जितोऽसि सर्वागमा-न्तार्थविभावितोऽसि ॥ ६३ ॥ सर्वत्र संतोषसुखासनोऽसि सर्वत्र गत्यादिविव-र्जितोऽसि । सर्वत्र लक्ष्यादिविवार्जेतोऽसि ध्यातोऽसि विव्ववादिसुरैरजसम् ॥ ६४ ॥ चिदाकारस्वरूपोऽसि चिन्मात्रोऽसि निरङ्कशः । आत्मन्येव स्थितोऽसि त्वं सर्वशून्योऽसि निर्गुणः ॥ ६५ ॥ आनन्दोऽसि परोऽसि त्वमेक एवाद्वितीयकः । चिद्धनानन्दरूपोऽसि परिपूर्णस्वरूपकः ॥६६॥ सदसि व्वमसि ज्ञोऽसि सोऽसि जानासि वीक्षसि । सिचदानन्दरूपोऽसि वासुदेवोऽसि वै प्रभुः ॥ ६७ ॥ अमृतोऽसि विभुश्चासि चञ्चलो ह्यचलो ह्यसि । सर्वोऽसि सर्व-हीनोऽसि शान्ताशान्तविवर्जितः ॥ ६८ ॥ सत्तामात्रप्रकाशोऽसि सत्तासाः मान्यको ह्यसि । नित्यसिद्धिस्वरूपोऽसि सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥ ६९ ॥ ईषन्मा-त्रविश्चन्योऽसि अणुमात्रविवर्जितः । अस्तित्ववर्जितोऽसि त्वं नास्तित्वादिवि-वर्जितः ॥ ७० ॥ लक्ष्यलक्षणहीनोऽसि निर्विकारो निरामयः । सर्वनादा-न्तरोऽसि ःवं कलाकाष्ठाविवर्जितः ॥ ७१ ॥ ब्रह्मविष्ण्वीशहीनोऽसि स्वस्वरूपं प्रपश्यित । खखरूपावशेषोऽसि खानन्दाब्धौ निमजासि ॥ ७२ ॥ खात्मराज्ये स्वमेवासि स्वयंभावविवर्जितः । शिष्टपूर्णस्वरूपोऽसि स्वसार्विवित्र पश्यिस

॥ ७३ ॥ स्वस्वरूपात्र चलसि स्वस्वरूपेण जुम्भासि । स्वस्वरूपादनन्योऽसि द्यहमेवासि निश्चिनु ॥ ७४ ॥ इदं प्रपञ्चं यिकंचिययज्ञगति विद्यते । दृइयरूपं च दृश्र्पं सर्वं शशविषाणवत् ॥ ७५ ॥ सूमिरापोऽनलो वायुः वं मनो बुद्धिरेव च । अहंकारश्च तेजश्च लोकं सुवनमण्डलम् ॥ ७६ ॥ नाताो जन्म च सत्यं च पुण्यपापजयादिकस् । रागः कामः क्रोधलोभी ध्यानं ध्येयं गुणं परम् ॥ ७७ ॥ गुरुशित्योपदेशादिरादिरन्तं शमं शुभम् । भूतं भव्यं वर्तमानं लक्ष्यं लक्षणमद्वयम् ॥ ७८ ॥ शसो विचारः संतोषो ओक्तुओज्यादिस्पकम् । यमाद्यष्टाङ्गयोगं च गमनागमनात्मकम् ॥ ७९ ॥ आदिमध्यान्तरङ्गं च ब्राह्मं त्याज्यं हतिः शिवः । इन्द्रियाणि मनश्चेव अवस्थात्रितयं तथा ॥ ८० ॥ चतुर्विंशतितस्वं च साधनानां चतुष्टयम् । सजातीयं विजातीयं लोका भूरादयः ऋमात् ॥ ८१ ॥ सर्ववर्णाश्रमाचारं मञ्जतञ्जादिसंग्रहम् । विद्याविद्यादिरूपं च सर्ववेद्यं जडाजडम् ॥ ८२ ॥ वन्ध-मोक्षविभागं च ज्ञानविज्ञानरूपकम् । बोधाबोधस्बरूपं वा द्वेताद्वेतादिभाष-णम् ॥ ८३ ॥ सर्ववेदान्तसिद्धान्तं सर्वशास्त्रार्थनिर्णयम् । अनेकजीवसद्भावमे-कजीवादिनिर्णयम् ॥ ८४ ॥ यदाखायति चित्तेन यदात्संकल्पते कचित्। दुखा निश्चीयते यद्यद्वरुणा संशुणोति यत् ॥ ८५ ॥ यद्यद्वाचा ज्याकरोति यदाचार्यभाषणम् । यद्यत्खरेन्द्रियैभीव्यं यद्यन्मीमांस्यते पृथक् ॥ ८६ ॥ यद्ययायेन निर्णीतं महद्गिर्वेदपारगैः। शिवः क्षरति लोकान्वै विष्णुः पाति जरात्रयम् ॥ ८७ ॥ ब्रह्मा सृजति लोकान्वे एवमादिकियादिकम् । यद्यदस्ति पुराणेषु यद्यद्वेदेषु निर्णयम् ॥ ८८ ॥ सर्वोपनिषदां भावं सर्व शशनिषाण-वत् । देहोऽहमिति संकल्पं तदन्तःकरणं स्पृतम् ॥८९॥ देहोऽहमिति संकल्पो महत्संसार उच्यते । देहोऽहमिति संकल्पम्तद्वन्धमिति चोच्यते ॥ ९० ॥ देहोऽ-हमिति संकल्पम्तदुःखमिति चोच्यते । देहोऽहमिति यद्वानं तदेव नरकं स्मृतम् ॥ ९१॥ देहोऽहमिति संकल्पो जगन्सर्वमितीर्यते। देहोऽहमिति संकल्पो हृदयग्रन्थिरीरितः ॥ ९२ ॥ देहोऽहंमिति यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानमुच्यते । देहो-ऽहमिति यज्ज्ञानं तदसद्भावमेव च ॥ ९३ ॥ देहोऽहमिति या बुद्धिः सा चाविद्येति भण्यते । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव द्वैतमुच्यते ॥ ९४ ॥ दहोऽहमिति संकल्पः सत्यजीवः स एव हि । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं परिच्छिन्नमितीरितम् ॥ ९७ ॥ देहोऽहमिति संकल्पो महापापमिति स्फुटम् ।

देहोऽहमिति या बुद्धिस्तृष्णा दोषामयः किल ॥ ९६ ॥ यिकंचिद्षिः संकल्पसापत्रयमितीरितम् । कामं क्रोधं बन्धनं सर्वदुःखं विश्वं दोषं कालनानास्वरूपम् । यिकंचेदं सर्वसंकल्पजालं तिकंचेदं मानसं सोम्य विद्वि ॥ ९० ॥ मन एव जगत्सर्वं मन एव महारिपुः । मन एव हि संसारो मन एव जगत्रयम् ॥ ९८ ॥ मन एव महदुःखं मन एव जरादिकम् । मन एव हि कालश्च मन एव मलं तथा ॥ ९९ ॥ मन एव हि संकल्पो मन एव हि जीवकः । मन एव हि चित्तं च मनोऽहंकार एव च ॥ १०० ॥ मन एव महद्वन्धं मनोऽन्तःकरणं च तत् । मन एव हि मूमिश्च मन एव हि तोयकम् ॥ १०१ ॥ मन एव हि तेजश्च मन एव मरुन्महान् । मन एव हि चाकाशं मन एव हि शब्दकम् ॥ १०२ ॥ स्पर्शं रूपं रसं गन्धं कोशाः पञ्च मनोभवाः । जायत्स्वमसुषुस्यादि मनोमयमितीरितम् ॥ १०३ ॥ दिक्पाला वसवो रुद्धा आदित्याश्च मनोमयाः । दृश्यं जडं द्वन्द्वजातमज्ञानं मानसं स्मृतम् ॥ १०४ ॥ संकल्पमेव यिकंचित्तत्तत्रास्तीति निश्चिन् । नास्ति नास्ति जगत्सर्वं गुरुशिप्यादिकं नहीत्युपनिषत् ॥ १०५ ॥

इति तेजोविन्दूपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ऋसुः ॥ सर्वं सिचिन्मयं विद्धि सर्वं सिचिन्मयं ततम् । सिचिदानन्दमहैतं सिचिदानन्दमह्रयम् ॥ १ ॥ सिचिदानन्दमात्रं हि सिचिदानन्दमन्यकम् । सिचिदानन्दमन्यकम् । सिचिदानन्दस्ये सिचिदानन्दस्ये सिचिदानन्दस्ये सिचिदानन्दस्ये सिचिदानन्दस्ये सिचिदानन्दस्ये सिचिदानन्दस्ये । सिचिदानन्दस्ये त्वं सिचिदानन्दकोऽस्म्यहम् । मनोकुद्धिरहंकारिचित्तसंघातका अमी ॥ ३ ॥ न त्वं नाहं न चान्यहा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् । न वाक्यं न पदं वेदं नाक्षरं न जडं कचित् ॥ ४ ॥ न मध्यं नादि नान्तं वा न सत्यं न निवन्धन्मः। न दुःखं न सुखं भावं न माया प्रकृतिस्तथा ॥ ५ ॥ न देहं न मुखं प्राणं न जिह्ना न च तालुनी । न दन्तोष्ठौ ललाटं च निःश्वासोच्छ्वास एव च ॥ ६ ॥ न स्वेदमस्थि मांसं च न रक्तं न च मूत्रकम् । न दूरं नान्तिकं नाङ्गं नोदरं न किरीटकम् ॥ ७ ॥ न हस्तपादचलनं न शास्रं न च शासनम्। न वेता वेदनं वेद्यं न जाप्रत्स्वमसुप्तयः ॥ ८ ॥ तुर्यातीतं न मे किंचित्तर्वं सिचन्मयं ततम् । नाध्यात्मिकं नाधिभूतं नाधिदैवं न मायिकम् ॥ ९ ॥ न विश्वस्तेजसः प्राज्ञो विरादस्त्रात्मकेश्वराः । न गमागमचेष्टा च न नष्टं न प्रयोजनम् ॥ १० ॥ त्याज्यं प्राह्यं न दूष्यं वा ह्यमेध्यामेध्यकं तथा । न पीनं प्रयोजनम् ॥ १० ॥ त्याज्यं प्राह्यं न दूष्यं वा ह्यमेध्यामेध्यकं तथा । न पीनं

च

न

न

न कुशं क्रेदं न कालं देशभाषणम् ॥ ११ ॥ न सर्वं न भयं द्वैतं न वृक्ष-तृणपर्वताः । न ध्यानं योगसंसिद्धिनं ब्रह्मश्रविश्यकम् ॥ १२॥ न पश्नी न मृगो नाङ्गी न लोभो मोह एव च। न मदो न च मात्सर्यं कामकोधादय-स्तथा ॥ १३ ॥ न स्त्रीशृद्धविडालादि भक्ष्यभोज्यादिकं च यत् । न श्रौदहीनो नास्तिक्यं न वार्तावसरोऽस्ति हि ॥ १४ ॥ न लौकिको न लोको वा न व्यापारी न सुढता । न भोक्ता भोजनं भोज्यं न पात्रं पानपेयकस् ॥ १५ ॥ न शत्रुमित्रपुत्रादिन माता न पिता स्वसा । न जन्म न सृतिर्दृद्धिन देहोऽह-मिति भ्रमः ॥ १६॥ न शुन्यं नापि चाशून्यं नान्तःकारणसंसृतिः । न रात्रिर्न दिवा नक्तं न ब्रह्मा न हरिः शिवः ॥ १७ ॥ न वारपक्षमासादि वत्सरं न च चञ्चलम् । न ब्रह्मलोको वैकुण्ठो न कैलासो न चान्यकः॥ १८॥ न स्वर्गों न च देवेन्द्रों नामिलोकों न चामिकः। न यमो यमलोको वा न लोका लोकपालकाः ॥ १९ ॥ न सूर्भुवःस्वसैलोक्यं न पातालं न भूतलम् । ना-विद्या न च विद्या च न माया प्रकृतिर्जडा ॥ २०॥ न स्थिरं क्षणिकं नाशं न गतिर्न च धावनम् । न ध्यातव्यं न मे ध्यानं न मन्नो न जपः कचित् ॥ २१ ॥ न पदार्था न पूजाईं नाभिषेको न चार्चनम् । न पुष्पं न फलं पत्रं गन्धपु-प्पादिधूपकम् ॥ २२ ॥ न स्तोत्रं न नमस्कारो न प्रदक्षिणमण्यपि । न प्रा-र्थना पृथग्भावो न हविर्नाप्तिवन्दनम् ॥ २३ ॥ न होमो न च कर्माणि न दुर्वाक्यं सुभाषणम् । न गायत्री न वा संधिर्न मनस्यं न'दुःस्थितिः ॥ २४ ॥ न दुराशा न दुष्टात्मा न चाण्डालो न पौल्कसः । न दुःसहं दुरालापं न किरातो न कैतवम् ॥ २५ ॥ न पक्षपातं पक्षं वा न विभूषणतस्करौ। न च दम्भो दाम्भिको वा न हीनो नाधिको नरः॥ २६॥ नैकं द्वयं त्रयं तुर्यं न महत्त्वं न चाल्पता । न पूर्णं न परिच्छिन्नं न काशी न व्रतं तपः ॥ २७ ॥ न गोत्रं न कुँलं सूत्रं न विभुत्वं न शून्यता। न स्त्री न योषिन्नो वृद्धा न कन्या न वितन्तुता ॥ २८ ॥ न सूतकं न जातं वा नान्तर्मुखसुविश्रमः । न महावा-क्यमैक्यं वा नाणिमादिविभूतयः ॥ २९ ॥ सर्वचैतन्यमात्रत्वास्सर्वदोषः सदा न हि । सर्वं सन्मात्ररूपत्वात्सचिदानन्दमात्रकम् ॥ ३०॥ ब्रह्मैव सर्वं नान्योऽस्ति तदहं तदहं तथा। तदेवाहं तदेवाहं ब्रह्मैवाहं सनातनम्॥३१॥ बह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः। ब्रह्मैवाहं न मे बुद्धिर्बह्मैवाहं न चेन्द्रियः ॥ ३२ ॥ ब्रह्मैवाहं न देहोऽहं ब्रह्मैवाहं न गोचरः । ब्रह्मैवाहं न जीवोऽहं ब्रह्मेवाहं न भेदभू: ॥ ३३ ॥ ब्रह्मेवाहं जहाे नाहमहं ब्रह्म न मे सृतिः । ब्रह्मेवाहं न च प्राणी ब्रह्मेवाहं परात्परः ॥ ३४ ॥ इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सलं ब्रह्म प्रभुर्हि सः। कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयंत्रभम्॥ ३५॥ एकं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म सोही ब्रह्म शमादिकस् । दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः ॥ ३६ ॥ छोको ब्रह्म गुरुर्बह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः । पूर्व ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ॥ ३७ ॥ जीव एव सदा ब्रह्म सचिदानन्द-सस्यहस् । सर्व ब्रह्मसयं प्रोक्तं सर्व ब्रह्मसयं जगत् ॥ ३८ ॥ स्वयं ब्रह्म न संदेहः स्वस्मादन्यनः किंचन । सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वः चिन्मात्रमद्वयम् ॥ ३९॥ नित्यनिर्मेलरूपात्मा ह्यात्मनोऽन्यन्न किंचन । अणुमात्रलसदूपमणु-मात्रसिदं जगत् ॥ ४०॥ अणुमात्रं शरीरं वा ह्यणुमात्रमसत्यकस् । अणुमा-त्रमचिन्त्यं वा चिन्त्यं वा ह्यणुसात्रकस् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मैव सर्वं चिन्सात्रं ब्रह्मसात्रं जगन्नयम् । आनन्दं परमानन्दमन्यिकिचिन्न किंचन ॥ ४२ ॥ चैतन्यमात्र-मोंकारं ब्रह्मेव सकलं स्वयम् । अहमेव जगत्सर्वमहसेव परं पदम् ॥ ४३ ॥ अहमेव गुणातीत अहमेव परात्परः । अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरः ॥ ४४ ॥ अहमेवाखिलाधार अहमेव सुखात्सुखम् । आत्मनोऽन्यजगन्नासि आत्मनोऽन्यत्सुखं न च ॥ ४५॥ आत्मनोऽन्या गतिनीम्ति सर्वमात्ममय जगत्। आत्मनोऽन्यन्न हि कापि आत्मनोऽन्यनुणं नहि॥ ४६॥ आत्मनोऽ-न्यतुपं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् । ब्रह्ममात्रसिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्न हि ॥ ४७ ॥ ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मेव केवलम् । ब्रह्ममात्रं वृतं सर्व ब्रह्ममात्रं रसं सुखम् ॥ ४८ ॥ ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सचिदानन्दमन्ययम्। ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्ञगन्न च ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्फल नहि । ब्रह्मणोऽन्यनृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं ॥ ५० ॥ ब्रह्मणोऽन्यद्वरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यमसद्वपुः । ब्रह्मणोऽन्यन्न चाहंता त्वत्तेदन्ते नहि क्वचित् ॥ ५१ ॥ स्वयं ब्रह्मात्मकं विद्धि स्वस्मादन्यन किंचन । यकिंचिद्दृश्यते लोके यक्तिंचिद्वाप्यते जलैः ॥ ५२ ॥ यक्तिंचि-द्भुज्यते कापि तत्सर्वमसदेव हि । कर्तृभेदं क्रियाभेदं गुणभेदं रसादिकम् ॥ ५३ ॥ लिङ्गभेदमिद सर्वमसदेव सदा सुखम् । कालभेदं देशभेदं वस्तु-भेदं जयाजयम् ॥ ५४ ॥ यद्यद्भेदं च तत्सर्वमसदेव हि केवलम् । अस-दुन्तः करणकमसदेयेन्द्रियादिकम् ॥ ५५ ॥ असत्प्राणादिकं सर्वं संवातमस-

हात्मकस् । असत्यं पञ्चकोशाख्यमसत्यं पञ्च देवताः ॥ ५६ ॥ असत्यं पड्विका-रादि असत्यमरिवर्गकम् । असत्यं पडृतुश्चेव असत्यं पड्सस्तथा ॥ ५७ ॥ सिच-दानन्द्रमाञ्चोऽहमनुत्पन्नसिदं जगत्। आत्मैवाहं परं सत्यं नान्याः संसारदृष्टयः ॥ ५८ ॥ सरामानन्दरूपोऽहं चिद्धनानन्दविग्रहः । अहमेव परानन्द अहमेव धरात्परः ॥ ५९ ॥ ज्ञानाकारमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः । सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकम् ॥ ६० ॥ अहमेव सदा भामीत्येवं रूपं कुतोऽप्यसत् । त्वमित्येवं परं ब्रह्म चिन्मयानन्दरूपवान् ॥ ६९ ॥ चिदाकारं चिदाकाशं चिदेच परमं सुलम् । आत्मैवाहमसन्नाहं कृटस्थोऽहं गुरुः परः ॥ ६२ ॥ सचिदानन्द्रमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्। कालो नास्ति जगन्नास्ति मायाप्र-कृतिरेय न ॥ ६३ ॥ अहमेव हारेः साक्षादहमेव सदाशिवः । शुद्धचैतन्य-भावोऽहं शुद्धसत्त्वानुभावनः ॥ ६४ ॥ अद्वयानन्दमात्रोऽहं चिद्धनैकरसोऽ-स्म्यहम् । सर्वे ब्रह्मेव सत्ततं सर्वे ब्रह्मेव केवलम् ॥ ६५ ॥ सर्वे ब्रह्मेव सततं सर्वं ब्रह्मेव चेतनस् । सर्वान्तर्यामिरूपोऽहं सर्वसाक्षित्वलक्षणः ॥ ६६ ॥ परसात्मा परं ज्योतिः परं धाम परा गतिः । सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्र-सुनिश्चितः ॥ ६७ ॥ योगानन्दस्बरूपोऽहं मुख्यानन्दमहोदयः । सर्वज्ञानप्र-काशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविप्रहः॥ ६८॥ तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादि-वर्जितः । चिद्धारोऽहं सत्योऽहं वासुदेवोऽजरोऽमरः ॥ ६९ ॥ अहं ब्रह्म चिदाकाशं नित्यं ब्रह्म निरञ्जनम् । शुद्धं बुद्धं सदामुक्तमनामकमरूपकम् ॥ ७० ॥ सचिदानन्दरूपोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्। सत्यासत्यं जगन्नास्ति संकल्पकल-नादिकम् ॥ ७१ ॥ नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् । अनन्तमन्ययं शान्तमेकरूपमनामयम् ॥ ७२ ॥ मत्तोऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरुमरी-चिका । वन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्ति किंचन ॥ ७३ ॥ शशरुरङ्गेण नागै-न्द्रो मृतश्चेज्ञगद्दस्ति तत् । मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेद्दित्वदं जगत् ॥ ७४ ॥ नरराङ्गेण नष्टश्चेत्कश्चिद्रित्वद्मेव हि । गन्धर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा ॥ ७५ ॥ गगने नीलिमासस्ये जगत्सस्यं भविष्यति । शुक्तिकारजतं सस्यं भूषणं चेजगद्भवेत् ॥ ७६ ॥ रजुसपैण दृष्टश्चेन्नरो भवतु संसृतिः । जातरूपेण बाणेन ज्वालाझौ नाक्षिते जगत्॥ ७७॥ विन्ध्याटव्यां पायसान्नमस्ति चेज-गदुद्भवः । रम्भास्तम्भेन काष्ट्रेन पाकसिख्ौ जगद्भवेत् ॥ ७८॥ सद्यःकुमा-रिकारूपैः पाके सिद्धे जगद्भवेत् । चित्रस्थदीपैस्तमसो नाशश्चेदस्तिवदं जगत् ॥ ७९ ॥ मासात्पूर्वं मृतो मर्लो ह्यागतश्चे जगद्भ वेत् । तकं शीरखरूपं चेत्क-चिक्तित्यं जगद्भवेत् ॥ ८० ॥ गोस्तनादुद्भव क्षीरं पुनरारोपणे जगत् । भूर-जोऽब्धी समुत्पन्ने जगद्भवतु सर्वदा ॥ ८१ ॥ कूर्मरोम्णा गर्जे बद्धे जगदस्त मदोत्कटे । नालस्थतन्तुना मेरुश्चालितश्चेजगद्भवेत् ॥ ८२ ॥ तुरङ्गमालया सिन्धुर्बद्धश्चेद्स्वदं जगत्। अग्नेरधश्चेद्रवलनं जगदवतु सर्वदा ॥ ८३॥ ज्वालावह्निः शीतलश्चेदस्ति रूपमिदं जगत्। ज्वालाश्चिमण्डले पद्मवृद्धिश्चेन गदुस्त्वदम् ॥ ८४ ॥ महच्छैलेन्द्रनीलं वा संभवेचेदिदं जगत्। मेरुरागृत्य पद्माक्षे स्थितश्चेद्रस्विदं जगत् ॥ ८५ ॥ निगिरेचेद्गुङ्गसूनुर्भेरं चलवद्स्विदम्। मशकेन हते सिंहे जगत्सत्यं तदास्तु ते ॥ ८६ ॥ अणुकोटरविस्तीण त्रैलोक्यं चेज्ञगद्भवेत्। तृणानलश्च नित्यश्चेत्क्षणिकं तज्जगद्भवेत् ॥ ८७॥ स्वप्तदृष्टं च यद्वस्तु जागरे चेजगद्भवः। नदीवेगो निश्चलश्चेत्केनापीदं भवे-जगत् ॥ ८८ ॥ ञ्जधितस्याग्निर्भोज्यश्चेन्निमित्रं कल्पितं भवेत् । जासन्धे रत-विषयः सुज्ञातश्चेज्ञगत्सदा ॥ ८९ ॥ नपुंसककुमारस्य स्त्रीसुखं चेद्भवेज्जगत् । निर्मितः शशशुक्रिण रथश्चेजगदस्ति तत् । ॥ ९० ॥ सद्योजाता तु या कन्या भोगयोग्या भवेजगत् । वन्ध्या गर्भाप्ततत्सौंख्यं ज्ञाता चेदस्तिवदं जयत् ॥ ९३ ॥ काको वा इंसवद्गच्छेजगद्भवतु निश्चलम् । महाखरो वा सिंहेन युध्यते चेज्ञगत्स्थितिः ॥ ९२ ॥ महाखरो गजगतिं गतश्रेज्ञगदस्तु तत्। संपूर्णचन्द्रसूर्यश्चेजगद्गातु स्वयं जडम् ॥ ९३ ॥ चन्द्रसूर्यादिकौ त्यक्त्वा राहु-श्चेद्दृस्यते जगत् । सृष्टवीजसमुत्पन्नवृद्धिश्चेजगदस्तु सत् ॥ ९४ ॥ दरिद्रो धनिकानां च सुखं भुङ्के तदा जगत्। छुना वीर्येण सिंहस्तु जितो यदि जगत्तदा ॥ ९५ ॥ ज्ञानिनो हृद्यं मूढेर्ज्ञातं चेत्कल्पनं तदा । श्वानेन सागरे पीते निःशेषेण मनो भवेत् ॥ ९६ ॥ शुद्धाकाशो मनुष्येषु पतितश्चेत्तदा जगत् । भूमौ वा पतितं च्योम च्योमपुष्पं सुगन्धकम् ॥ ९७ ॥ शुद्धाकारो वने जाते चिलते तु तदा जगत्। केवले दर्पणे नास्ति प्रतिबिम्बं तदा जगत् ॥ ९८ ॥ अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि । सर्वथा भेदकलनं द्वैताद्वैतं न विद्यते ॥ ९९ ॥ मायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद्रह्मभावनम् । देहोऽह-मिति दुःखं चेद्रह्माहमिति निश्चयः ॥ १०० ॥ हृद्यप्रन्थिरस्तित्वे छिद्यते ब्रह्म चक्रकम् । संशये समनुपाप्ते ब्रह्मनिश्चयमाश्रयेत् ॥ १०१॥ अनात्मरूपचीरश्चे-दात्मरतस्य रक्षणम् । नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ॥ १०२॥

एवमादिसुदृष्टान्तैः साधितं ब्रह्ममात्रकम् । ब्रह्मेव सर्वभावनं भुवनं नाम संत्यज्ञ ॥ १०३ ॥ अहंब्रह्मेति निश्चित्य अहंभावं परित्यज्ञ । सर्वमेव लयं याति सुप्ताहस्तस्थपुष्पवत् ॥ १०४ ॥ न देहो न च कर्माणि सर्वं ब्रह्मेव केवलम् । न भूतं न च कार्यं च न चावस्थाचतुष्ट्यम् ॥ १०५ ॥ लक्षणात्र-यिक्जानं सर्वं ब्रह्मेव केवलम् । सर्वव्यापारमुत्सुल्य ह्याह ब्रह्मेति भावय ॥ १०६ ॥ अहं ब्रह्म न संदेहो ह्याहं ब्रह्म चिदात्मकम् । सिचदानन्दमात्रोऽ-हिमिति निश्चित्य तत्त्यज्ञ ॥ १०७ ॥ शांकरीयं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्य-चित् । नास्तिकाय कृतन्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने ॥ १०८ ॥ गुरुभित्तिविद्य-स्वात्मने । सम्यक् परीक्ष्य दात्वयं मासं षण्मासवत्सरम् ॥ १०९ ॥ सर्वोपनिषदभ्यासं दूरतस्त्यज्य सादरम् । तेजोविन्दूपनिषदमभ्य-सेत्सवेदा मुदा ॥ ११० ॥ सकृदभ्यासमात्रेण ब्रह्मेव भवति स्वयं ब्रह्मेव भवति स्वयंमित्युपनिषद् ॥ ॐ सह नावविद्यित शान्तिः ॥

इति तेजोबिन्दूपनिषत्समाप्ता ॥ ३९ ॥

नाद्विन्दूपनिषत् ॥ ४० ॥

वैराजात्मोपासनया संजातज्ञानविह्नना । दुग्ध्वा कर्मत्रयं योगी यत्पदं याति तद्गजे ॥ ॐ वाद्धो मनसीति शान्तिः॥

ॐ अकारो दक्षिणः पक्ष उकारस्त्तरः स्मृतः । मकारं पुच्छमित्याहुर-र्धमात्रा तु मस्तकम् ॥ १ ॥ पादादिकं गुणास्तस्य शरीरं तत्त्वमुच्यते । धर्मो-ऽस्य दक्षिणं चक्षुरधर्मोऽथो परः स्मृतः ॥ २ ॥ भूलोकः पादयोस्तस्य भुव-लोकस्तु जानुनि । सुवलोकः कटीदेशे नाभिदेशे महर्जगत् ॥ ३ ॥ जनोलो-कस्तु हृद्देशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः । श्रुवोर्ललाटमध्ये तु सत्यलोको व्यवस्थितः ॥ ४ ॥ सहस्राणमतीवात्र मन्न एष प्रदर्शितः । एवमेतां समारूढो हंसयो-गविचक्षणः ॥ ५ ॥ न भिद्यते कर्मचारैः पापकोटिशतरेषि । आग्नेयी प्रथमा मात्रा वायव्येषा तथापरा ॥ ६ ॥ भानुमण्डलसंकाशा भवेन्मात्रा तथोत्तरा । परमा चार्थमात्रा या वारुणीं तां विदुर्त्वधाः ॥ ७ ॥ कालत्रयेऽपि यस्येमा मात्रा नृनं प्रतिष्ठिताः । एष ओंकार आख्यातो धारणाभिनिवोधत ॥ ८ ॥ घोषिणी

"

प्रथमा मात्रा विद्या मात्रा तथाऽपरा । पतिङ्ग्नि तृतीया स्याचतुर्थी चायु-वेगिनी ॥ ९ ॥ पञ्चमी नामधेया तु षष्ठी चैन्द्यभिधीयते । सप्तमी वैष्णवी नाम अष्टमी शांकरीति च ॥ १०॥ नवमी महती नाम प्रतिस्तु दशमी सता। एकादशी अवेन्नारी ब्राह्मी तु द्वादशी परा ॥ ११ ॥ प्रथमायां तु यात्रायां यदि प्राणिर्वियुज्यते । भरते वर्षराजासी सार्वभीमः प्रजायते ॥ १२॥ द्वितीयायां समुत्कान्तो भवेद्यक्षो महात्मवान् । विद्याधरस्तृतीयायां गान्ध-र्वस्तु चतुर्थिका ॥ १३ ॥ पञ्चम्यामथ मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते। उषितः सह देवत्वं सोमलोके महीयते॥ १४॥ पछ्यामिनद्रस्य सायुज्यं सप्तम्यां वैदणवं पद्म्। अष्टम्यां बजते रुद्रं पश्नां च पतिं तथा॥ १५॥ नवम्यां त महलोंकं दशस्यां तु जनं बजेत्। एकादश्यां तपोलोंकं द्वादश्यां ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १६ ॥ ततः परतरं अद्धं न्यापकं निर्मलं शिवस् । सदोदितं परं ब्रह्म ज्योतिषासुद्यो यतः ॥ १७ ॥ अतीन्द्रियं गुणातीतं सनो लीनं यदा भवेत्। अनूपमं शिवं शान्तं योगयुक्तं सदाविशेत्॥ १८॥ तयुक्तस्तनमयो जन्तुः शनैर्भुञ्चेत्कलेवरम् । संस्थितो योगचारेण सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ १९॥ ततो विलीनपाशोऽसौ विमलः कमलाप्रभुः । तेनैव ब्रह्मभावेन परमानन्दमञ्जते ॥ २० ॥ आत्मानं सततं ज्ञात्वा कालं नय महामते । प्रारब्धमखिलं भुभन्नो-द्वेगं कर्तुमहीस ॥ २१ ॥ उत्पन्ने तत्त्वविज्ञाने प्रारव्धं नैव सुञ्जति । तत्त्वज्ञा-नोदयादूर्धं प्रारब्धं नैव विद्यते ॥ २२ ॥ देहादीनामसत्त्वातु यथा स्वमे विवोधतः । कर्म जन्मान्तरीयं यत्प्रारब्धमिति कीर्तितम् ॥ २३ ॥ तत्त जन्मान्तराभावारपुंसो नैवास्ति कर्हिचित् । स्वप्तदहो यथाध्यस्तस्येवायं हि देहकः ॥ २४ ॥ अध्यस्तस्य कृतो जन्म जन्माभावे कृतः स्थितिः। उपादानं प्रपञ्जस्य मुद्धाण्डस्येव पश्यति॥ २५॥ अज्ञानं चेति वेदान्तैस्तस्मिन्नष्टे क विश्वता । यथा रुज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात् ॥ २६ ॥ तद्वत्सत्य-मविज्ञाय जगत्पक्यिति मूडधीः । रज्जखण्डे परिज्ञाते सर्परूपं न तिष्ठति ॥ २७ ॥ अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चे शून्यतां गते । देहस्यापि प्रपञ्चन्यात्प्रा-रब्धावस्थितिः कुतः ॥ २८ ॥ अज्ञानजनबोधार्थं प्रारब्धमिति चोच्यते । ततः कालवशादेव प्रारब्धे तु क्षयं गते ॥ २९॥ ब्रह्मप्रणवसंधानं नाहो ज्योतिर्मयः शिवः । स्वयमाविर्भवेदात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ३० ॥ सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैप्णवीम् । ऋणुयादक्षिणे कर्णे नाज-

मन्तर्गतं सदा ॥ ३१ ॥ अभ्यस्यमानो नादोऽयं ब्रह्ममावृणुते ध्वनिः । पक्षा-द्विपक्षमिखंछ जित्वा तुर्यपदं वजेत् ॥ ३२ ॥ श्र्यते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान् । वर्धमाने तथाभ्यासे श्रूयते सूक्ष्मसूक्ष्मतः ॥ ३३ ॥ आदौ जलधिजीमृतभेरीनिर्भरसंभवः । मध्ये मर्दलशब्दाभो घण्टाकाहलज-स्तथा ॥ ३४ ॥ अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाश्रमरिनःस्वनः । इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः ॥ ३५ ॥ महति श्रूयमाणे तु महाभेर्यादिक-ध्वनौ । तत्र सुक्ष्मं सुक्ष्मतरं नाममेव परामृशेत् ॥ ३६ ॥ घनमुत्सुज्य वा सूक्ष्मे सूक्ष्ममुत्सुज्य वा धने । रममाणमपि क्षिप्तं मनो नान्यत्र चालयेत् ॥ ३७॥ यत्र कुत्रापि वा नादे लगति प्रथमं मनः। तत्र तत्र स्थिरीभूत्वा तेन सार्ध विलीयते ॥ ३८॥ विस्मृत्य सकलं बाह्यं नादे दुग्धाम्बुव-न्मनः । एकीभूयाथ सहसा चिदाकाशे विलीयते ॥ ३९॥ उदासीन-स्ततो भृत्वा सदाभ्यासेन संयमी । उन्मनीकारकं सद्यो नादमेवाव-धारयेत् ॥ ४० ॥ सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः । नादमेवानुसं-दृध्यान्नादे चित्तं विलीयते ॥ ४१ ॥ मकरन्दं पित्रन्भृङ्गो गन्धान्नापेक्षते तथा । नादासक्तं सदा चित्तं विषयं न हि काङ्क्षिति ॥ ४२ ॥ वद्धः सुनाद-गन्धेन सद्यः संत्यक्तचापलः। नाद्यहणतश्चित्तमन्तरङ्गभुजङ्गमः॥ ४३ ॥ विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचित्र हि धावति । मनोमत्तगजेन्द्रस्य विषयोद्या-नचारिणः ॥ ४४ ॥ नियामनसमर्थोऽयं निनादो निशिताङ्कुशः । नादोऽन्त-रङ्गसारङ्गबन्धने वायुरायते ॥ ४५ ॥ अन्तरङ्गसमुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा । ब्रह्मप्रणवसंलग्ननादो ज्योतिर्मयात्मकः ॥ ४६॥ मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् । तावदाकाशसंकल्पो यावच्छव्दः प्रवर्तते ॥ ४७ ॥ मिःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मा समीयते । नादो यावन्मनस्तावन्नादान्तेऽपि मनोन्मनी ॥ ४८ ॥ सशब्दश्राक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् । सदा नादा-नुसंधानात्संक्षीणा वासना तु या॥ ४९॥ निरञ्जने विलीयेते मनोवायू न संशयः । नादकोटिसहस्राणि विन्दुकोटिशतानि च ॥ ५०॥ सर्वे तत्र रुयं यान्ति ब्रह्मप्रणवनाद्के । सर्वावस्थाविनिर्भुक्तः सर्वेचिन्ताविवर्जितः ॥ ५१ ॥ मृतवित्तष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संशयः। शङ्खदुन्दुभिनादं च न शृणोति कदाचन ॥ ५२ ॥ काष्टवज्ज्ञायते देह उन्मन्यावस्थाया ध्रुवम् । न जानाति स शीतोष्णं न दुःखं न सुखं तथा ॥ ५३ ॥ न मानं नावमानं च संत्यक्त्वः तु समाधिना । अवस्थात्रयमन्वेति न चित्तं योगिनः सदा ॥ ५४ ॥ जाग्र-न्निद्राविनिर्मुक्तः स्वरूपावस्थतामियात् ॥ ५५ ॥ दृष्टिः स्थिरा यस्य विनासदः इयं वायुः स्थिरो यस्य विनाप्रयतम् । चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं स ब्रह्मतारान्तरनादरूप इत्युपनिषत् ॥ ५६ ॥ ॐ वाख्ये मनसीति शान्तिः॥ इति नाद्विन्दूपनिषत्समाप्ता ॥ ४० ॥

ध्यानविन्दूपनिषत् ॥ ४१ ॥

ध्यात्वा यद्रह्ममात्रं ते स्तावशेषधिया ययुः। योगतत्त्वज्ञानफलं तत्स्वमात्रं विचिन्तये॥ ॐ सह नाववित्विति शान्तिः॥

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम् । भिद्यते ध्यानयोोन नान्यो भेदः कदाचन ॥ १ ॥ बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपिर स्थितम् । सज्ञब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥ २ ॥ अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य यत्परम् । तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः ॥ ३ ॥ वालाप्रशतसा-हस्रं तस्य भागस्य भागिनः । तस्य भागस्य भागार्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम् ॥ ४ ॥ पुष्पमध्ये यथा गन्धः पयोमध्ये यथा घृतम् । तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणिदिवव काञ्चनम् ॥ ५ ॥ एवं सर्वाणि भूतानि मणौ सूत्रमिवात्मनि। स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्गह्मणि स्थितः ॥ ६॥ तिलानां तु यथा तैलं पुप्पे गन्ध इवाश्रितः। पुरुषस्य शरीरे तु सवाह्याभ्यन्तरे स्थितः॥ ७॥ वृक्षं तु विद्याच्छाया सकलं तस्यैव निष्कला। सकले निष्कले भावे सर्वत्रात्मा च्यवस्थितः ॥ ८ ॥ ओमिल्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वमुमुक्षुभिः । पृथिव्यग्निश्च ऋग्वेदो भूरित्येव पितामहः॥ ९॥ अकारे तु छयं प्राप्ते प्रथमे प्रणवांशके। अन्तरिक्षं यजुर्वायुर्भुवो विष्णुर्जनार्दनः ॥ १० ॥ उकारे तु लयं प्राप्ते द्वितीये प्रणवांशके। द्योः सूर्यः सामवेदश्च स्वरित्येव महेश्वरः॥ ११॥ मकारे उ ळयं प्राप्ते तृतीये प्रणवांशके । अकारः पीतवर्णः स्वाद्रजोगुण उदीरितः ॥ ९२॥ उकारः सात्त्विकः ग्रुक्को मकारः कृष्णतामसः । अष्टाङ्गं च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदेवतम् ॥ १३ ॥ ओंकारं यो न जानाति ब्रह्मणो न भवेतु सः । प्रणवी वनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लेक्ष्यमुच्यते ॥ १४ ॥ अप्रमत्तेन वेद्ध्व्यं शरवत्त- न्मयो भवेत् । निवर्तन्ते क्रियाः सर्वास्तस्मिन्दष्टे परावरे ॥ १५॥ ओंकार-प्रभवा देवा ओंकारप्रभवाः स्वराः। ओंकारप्रभवं सर्वं ग्रैलोक्यं सचराच-रम् ॥ ३६ ॥ हस्बो दहात पापानि दीर्घः संपत्पदोऽन्ययः । अर्धमात्रासमा-युक्तः प्रणयो मोक्षदायकः ॥ १७ ॥ तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घवण्टानिना-द्वत् । अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १८ ॥ हत्पद्मकर्णिका-मध्ये स्थिरदीपनिभाकृतिम् । अङ्गुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोंकारमीश्वरम् ॥ ५९ ॥ इडया वायुसापूर्य पूरियत्वोदरस्थितम् । ओंकारं देहमध्यस्थं ध्यायेज्वालाव-लीवृतम् ॥ २० ॥ ब्रह्मा पूरक इत्युक्ती विष्णुः कुम्भक उच्यते । रेची रुद् इति प्रोक्तः प्राणायामस्य देवताः ॥ २१ ॥ आत्मानमरणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मधनाभ्यासादेव पश्येन्निगृहवत् ॥ २२ ॥ ओंकार-ध्वनिनादेन वायोः संहरणान्तिकम् । यावद्वलं समादध्यात्सम्यङ्कादलयावि ॥ २३ ॥ गमागमस्यं गमनादिशुन्यमोकारमेकं रविकोटिदीप्तिम् । पश्यन्ति ये सर्वजनान्तरस्थं हंसात्मकं ते विरजा भवन्ति ॥ २४ ॥ यन्मनस्त्रिजग-रसृष्टिस्थिनिन्यसनकर्मकृत्। तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २५ ॥ अष्टपत्रं तु हत्पद्मं द्वात्रिंशत्केसरान्वितम् । तस्य मध्ये स्थितो भानुर्भानुमध्यगतः शशी ॥ २६ ॥ शशिमध्यगतो विह्नविह्निमध्यगता प्रभा। प्रभामध्यगतं पीतं नानारत्नप्रवेष्टितम् ॥ २७ ॥ तस्य मध्यगतं देवं वासुदेवं निरक्षनम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम् ॥ २८ ॥ ग्रुद्धस्फटि-कसंकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम् । एवं ध्यायेन्महाविष्णुमेवं वा विनयान्वितः ॥ २९ ॥ अतसीपुष्पसंकाशं नासिस्थाने प्रतिष्ठितम् । चतुर्भुजं महाविष्णुं पूरकेण विचिन्तयेत्॥ ३०॥ छम्भकेन हृदि स्थाने चिन्तयेकमलासनम्। ब्रह्माणं रक्तरोराभं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥३१॥ रेचकेन तु विद्यात्मा ललाटस्थं त्रिलोचनम् । ग्रुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥ ३२ ॥ अब्जपत्रम-धःपुन्पसूर्ध्वनालमधोसुखम् । कदलीपुष्पसंकाशं सर्ववेदसयं शिवम् ॥ ३३॥ शतारं शतपत्राट्यं विकीर्णाम्बुजकर्णिकम् । तत्रार्कचन्द्रवह्वीनामुपर्थुपरि चिन्तयेत् ॥ ३४ ॥ पद्मस्योद्घाटनं कृत्वा बोधचन्द्राग्निसूर्यकम् । तस्य हृद्धी-जमाहत्य आत्मानं चरते ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ त्रिस्थानं च त्रिपात्रं च त्रिवहा च त्रयाक्षरम् । त्रिमात्रमर्धमात्रं वा यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ३६ ॥ तैलधारा-सिवाच्छिन्नदीर्घघण्टानिन।दवत् । बिन्दुनादकलातीतं यस्तं वेद स वेदिवत्

॥ ३० ॥ यथैवोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेत्ररः । तथैवोत्कर्षयेद्वायुं योगी योगपथे स्थितः ॥ ३८ ॥ अर्धमात्रात्मकं कृत्वा कोशीभूतं तु पङ्गजम्। कर्षयेन्नालमात्रेण अवोर्मध्ये लयं नयेत् ॥ ३९ ॥ अवोर्मध्ये ललाटे तु नासि-कायास्तु मूलतः । जानीयाद्मृतं स्थानं तद्रह्मायतनं सहत् ॥ ४० ॥ आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा । ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षदः ॥ ४१ ॥ आसनानि च तावन्ति यावन्त्यो जीवजातयः । एतेषामतुहा-न्भेदान्विजानाति महेश्वरः ॥ ४२ ॥ छिदं भदं तथा सिंहं पग्नं चेति चतु-ष्ट्रयम् । आधारं प्रथमं चकं स्वाधिष्टानं द्वितीयकम् ॥ ४३ ॥ योनिस्थानं तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते । आधाराख्ये गुदस्थाने पङ्कजं यचतुर्दलम् ॥ ४४॥ तन्मध्ये घोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता । योनिमध्ये स्थितं लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं तथा ॥ ४५ ॥ मस्तके मणिवद्भिन्नं यो जानाति स योगवित्। तप्तचामीकराकारं ति छिलेखेव विस्फुरत् ॥ ४६॥ चतुरस्रमु-पर्यभेरधो मेढ्रात्प्रतिष्ठितम् । स्वशब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयम् ॥ ४७ ॥ स्त्राधिष्ठानं ततश्चकं मेढ्मेच निगद्यते । मणिवत्तन्तुनः यत्र वायुना पूरितं वपुः ॥ ४८ ॥ तन्नाभिमण्डलं चकं प्रोच्यते सणिपूरकम् । द्वादशा-रमहाचके पुण्यपापनियन्त्रितः॥ ४९॥ तावज्जीवो अमत्येवं यावत्तत्वं न विन्दति । अर्थ्वं मेढ्राद्धो नाभेः कन्दो योऽस्ति खगाण्डवत् ॥ ५०॥ तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः । तेषु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदा-हताः॥ ५१ ॥ प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्पृताः। इडा च पिक्नला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥ ५२ ॥ गान्धारी हस्तिजिह्ना च पूपा चैव यशस्विनी । अलम्बुसा कुहूरत्र शङ्किनी दशमी स्मृता ॥ ५३ ॥ एवं नाडी-मयं चकं विज्ञेयं योगिना सदा। सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः ॥ ५४ ॥ इडापिङ्गलासुपुम्नास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः । इडा वामे स्थिता भागे पिङ्गला दक्षिणे स्थिता ॥ ५५ ॥ सुषुन्ना मध्यदेशे नु प्राणमार्गा-स्रयः स्मृताः । प्राणोऽपानः समानश्चोदानो च्यानस्तथेव च ॥ ५६॥ नागः कूर्मः कुकरको देवदत्तो धनंजयः । प्राणाद्याः पञ्च विख्याता ना-गाद्याः पञ्च वायवः ॥ ५७ ॥ एते नाडीसहस्रेषु वर्तन्ते जीवरूपिणः। प्राणापानवराो जीवो ह्यधश्चोर्ध्व प्रधावति ॥ ५८ ॥ वामदक्षिणमा-र्गेण चञ्चलःवान्न दृश्यते । आक्षिप्तो भुजद्ग्डेन यथोचलति कन्दुकः

॥ ५९ ॥ प्राणापानसमाक्षिप्तस्तद्वजीवो न विश्रमेत् । अपानात्कर्षति प्राणोऽपानः प्राणाच कर्षति ॥ ६० ॥ खगरज्जुवदिस्पेतचो जानाति स योग-वित् । हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥ ६१ ॥ हंसहंसेत्यमुं मन्नं जीवो जपति सर्वदा । शतानि षड्दिवारात्रं सहस्राण्येकविंशतिः ॥ ६२ ॥ एतत्संख्यान्वितं मन्नं जीवो जपति सर्वदा । अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा ॥ ६३ ॥ अस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते । अनया सहशी विद्या अनया सहशो जपः ॥ ६४ ॥ अनया सहशं पुण्यं न भूतं न सविष्यति । येन मार्गेण गन्तव्यं त्रह्मस्थानं निरामयस् ॥ ६५ ॥ सुखेना-च्छाद्य तह्नारं प्रसुप्ता परमेश्वरी। प्रबुद्धा विद्वयोगेन सनसा मरुता सह ॥ ६६ ॥ सूचित्रद्भुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुन्नया । उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात् ॥ ६७ ॥ कुण्डलिन्या तया योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥ ६८ ॥ क्रुत्वा संपुटितो करो दृढतरं बध्वाथ पद्मासनं गाढं वक्षांस सन्नि-धाय चुनुकं ध्यानं च तच्चेतासि । वारंवारमपातमूर्ध्वमनिलं प्रोचारयनपूरितं मुञ्जन्प्राणसुपैति बोधमतुरुं शक्तिप्रभावान्नरः ॥ ६९ ॥ पद्मासनस्थितो योगी नाडीद्वारेषु प्रयन् । मारुतं कुम्भयन्यस्तु स मुक्तो नात्र संश्वा ॥ ७०॥ अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रमजातेन वारिणा । कट्टम्ललवणत्यागी श्रीरपानरतः सुखी ॥ ७३ ॥ ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः । अन्दादूर्ध्व भवे-त्सिद्धो नात्र कार्या विचारणा॥ ७२॥ कन्दोर्ध्वकुण्डली शक्तिः स योगीः सिद्धिभाजनम् । अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्सृत्रपुरीषयोः ॥ ७३ ॥ युवा भवति वृद्धोऽपि सततं सूलबन्धनात्। पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेदुदस् ॥ ७४ ॥ अपानसूर्ध्वेमुत्कृष्य सूलबन्धोऽयमुच्यते । उड्याणं कुरुते यसाद-विश्रान्तमहाखगः॥ ७५॥ उड्डियाणं तदेव स्यात्तत्र बन्धो विधीयते। उद्रे पश्चिमं ताणं नाभेरूध्वं तु कारयेत् ॥ ७६ ॥ उड्डियाणोऽप्ययं बन्धो सृत्यु-मातङ्गकेसरी । बञ्चाति हि शिरोजातमधोगामिनभोजलम् ॥ ७७॥ ततो जालन्थरो बन्धः कर्मदुःखोधनाञ्चनः । जालन्धरे कृते बन्धे कर्णसंकोचलक्षणे ॥ ७८ ॥ न पीयूर्ष पतत्यझौ न च वायुः प्रधावति । कपालकुहरे जिह्ना प्रविष्टा विपरीतगा ॥ ७९ ॥ भुवोरन्तर्गता दृष्टिर्भुद्रा भवति स्रेचरी । न रोगो मरणं तस्य न निद्रा न क्षुघा तृषा ॥ ८० ॥ न च मूर्च्छा अवेत्तस्य यो सुद्रां वेत्ति खेचरीस् । पीड्यते न च रोगेण लिप्यते न च कर्मणा ॥ ८१ ॥ अ. उ. १९

बन्धते न च कालेन यस्य युद्रास्ति खेचरी । चित्तं चरति खे यसाजिह्ना भवति खे गता ॥ ८२ ॥ तेनेषा खेचरी नाम सुद्रा सिद्धनसंस्कृता । खेचयां मुद्रया यस्य विवरं लम्बिकोर्ध्वतः ॥ ८३ ॥ विन्दुः क्षरित नो यस्य कामि-न्यालिक्नितस्य च। यावद्विन्दुः स्थितो देहे तावनमृत्युभयं कुतः ॥ ८४॥ यावद्वद्धा नभोसुदा तावद्विन्दुर्न गच्छति । गलितोऽपि यदा बिन्दुः संप्राप्तो योनिमण्डले ॥ ८५ ॥ व्रजत्यूर्ध्वं हठाच्छक्त्या निवद्धो योनिसुद्रया । स एव द्विविधो बिन्दुः पाण्डरो लोहितस्तथा ॥ ८६ ॥ पाण्डरं शुक्रामित्याहुलाहि-ताख्यं ब्रहारजः । विद्रुमद्रुमसंकाशं योनिस्थाने स्थितं रजः ॥ ८० ॥ शशिस्थाने वसेद्विन्दुस्तयोरेन्यं सुदुर्रुभस् । निन्दुः शिवो रजः शक्तिर्विन्दुः रिन्दू रजो रविः ॥ ८८ ॥ उभयोः संगमादेव प्राप्यते परमं वपुः । वायुना शक्तिचालेन प्रेरितं खे यथा रजः ॥ ८९ ॥ रविणैकत्वमायाति भवेहिन्यं वपुस्तदा । शुक्तं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्यसमन्वितस् ॥ ९० ॥ द्वयोः समरसी-भावं यो जानाति स योगवित् । शोधनं मलजालानां घटनं चन्द्रसूर्ययोः ॥ ९१ ॥ रसानां शोषणं सम्यद्भाहासुद्राभिधीयते ॥ ९२ ॥ वक्षोन्यस्तहनुर्निः पीड्य सुषिरं योनेश्च वामाङ्गिणा हस्ताभ्यामनुधारयन्प्रविततं पादं तथा दक्षिणम् । आपूर्ये श्वसनेन कुक्षियुगलं बध्वा शनै रेचयेदेघा पातकनाहिनी ननु महामुद्रा नृणां प्रोच्यते ॥ ९३ ॥ अथात्मनिर्णयं च्याख्यास्ये ॥ हिर्द-स्थाने अष्टदलपद्मं वर्तते तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूप-मणुमात्रं वर्तते तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं भवति सर्वं जानाति सर्वं करोति सर्व-मेतचरितमहं कर्ताऽहं भोक्ता सुखी दुःखी काणः खञ्जो बिधरो मूकः कृशः स्थूलोऽनेन प्रकारेण स्वतन्त्रवादेन वर्तते ॥ पूर्वदले विश्रमते पूर्व दलं धेत-वर्णं तदा भक्तिपुरःसरं धर्मे मतिर्भवति ॥ यदाऽऽश्नेयद्छे विश्रमते तदाश्नेयद्छं रक्तवर्णं तदा निदालस्यमतिभैवति ॥ यदा दक्षिणदले विश्रमते तद्दक्षिणदलं कृष्णवर्णं तदा द्वेषकोपमतिर्भवति ॥ यदा नैर्ऋतद्छे विश्रमते तद्वक्षेर्ऋतद्छं नीलवर्णं तदा पापकर्मेहिंसामतिभेवति ॥ यदा पश्चिमदले विश्रमते तत्प-श्चिमदलं स्फटिकवर्णं तदा कीडाविनोदे सितर्भवित ॥ यदा वायव्यदले विश्रमते वायव्यदलं माणिक्यवर्णं तदा गमनचलनवैराग्यमितिर्भवित ॥ यदोत्तरदले विश्रमते तदुत्तरदलं पीतवर्णं तदा सुखरुरङ्गारमितिभविति ॥ यदेशानदले विश्रमते तदीशानदलं वैद्वर्यवर्णं तदा दानादिकृपामितिः ह्या

यां

स्रे-

3 11

ासो

एव

हि-

H

न्दु-

युना देव्यं

सी-

योः

र्नि-

स्था

ोनी

:दि-

ल्प-

पर्व-

ह्याः

धेत-

दलं

दलं

दलं

तत्प-

दले

11

।। मति- र्भवति ॥ यदा संधिसंधिषु मतिर्भवति तदा वातिषत्तिश्लेष्ममहान्याधिप्रकोषो भवति ॥ यदा मध्ये तिष्ठति तदा सर्व जानाति गायति नृत्यति पठत्या-नुन्दं करोति ॥ यदा नेत्रश्रमो भवति श्रमनिर्भरणार्थं प्रथमरेखावलयं कृत्वा मध्ये निमजनं कुरुते प्रथमरेखाबन्धूकपुष्पवर्णं तदा निदावस्था अवति ॥ निद्रावस्थामध्ये स्वप्नावस्था भवति ॥ स्वप्नावस्थामध्ये दृष्टं श्रुतमनुभानसंभववार्तां इत्यादिकल्पनां करोति तदादिश्रमो भवति॥ अमनिर्हरणार्थं द्वितीयरेखावलयं कृत्वा मध्ये निमजनं कुरुते द्वितीयरेखा इन्द्रकोपवर्ण तदा सुपुस्यवस्था भवति सुपुसौ केवलपरमेश्वरसंवन्धिनी बुद्धिर्भवति नित्यवोधस्वरूपा भवति पश्चात्परमेश्वररूपेण प्राप्तिर्भवति ॥ नृतीयरेखावलयं कृत्वा मध्ये निमजनं कुरुते नृतीयरेखा पद्मरागवणं तदा तुरीयावस्था भवति तुरीये केवलपरमात्मसंबन्धिनी भवति नित्यबोधस्वरूपा अवति तदा शनैः शनैरुपरमेहुन्धा धतिगृहीतमात्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिद्पि चिन्तयेत्तदा प्राणापानयोरेक्यं कृत्वा सर्वं विश्वमात्मस्वरूपेण लक्ष्यं धारयति । यदा तुरीयातीतावस्था तदा सर्वेषामानन्दस्बरूपो भवति द्वनद्वा-तीतो अवति यावदेहधारणा वर्तते तावित्तष्टिति पश्चात्परमात्मस्वरूपेण प्राप्तिर्भवति इत्यनेन प्रकारेण मोक्षो भवतीदमेवात्मदर्शनोपाया भवन्ति ॥ चतुप्पथसमायुक्तमहाद्वारगवायुना । सहस्थितत्रिकोणार्धगमने दृश्यतेऽच्युतः ॥ ९४ ॥ पूर्वोक्तत्रिकोणस्थानादुपरि पृथिन्यादिपञ्चवर्णकं ध्येयम् । प्राणादि-पञ्चवायुश्च बीजं वर्णं च स्थानकम् । यकारं प्राणबीजं च नीलजीम्तसिन-भम् । रकारमग्निबीजं च अपानादित्यसंनिभम् ॥ ९५ ॥ ठकारं पृथिवीरूपं व्यानं बन्धूकसंनिभम् । वकारं जीवबीजं च उदानं शङ्खवर्णकम् ॥ ९६ ॥ हकारं वियत्स्वरूपं च समानं स्फटिकप्रभम् । हन्नाभिनासाकर्णं च पादाङ्क-ष्टादिसंस्थितम् ॥ ९७ ॥ द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीवर्गेषु वर्तते । अष्टावि-शतिकोटीषु रोमकूपेषु संस्थिताः॥ ९८॥ समानप्राण एकस्तु जीवः स एक एव हि । रेचकादि त्रयं कुर्याद्वृढचित्तः समाहितः ॥ ९९ ॥ शनैः समस्तमा-कृष्य हत्सरोरुहकोटरे । प्राणापानी च बध्वा तु प्रणवेन समचरेत् ॥ १०० ॥ कर्णसंकोचनं कृत्वा लिङ्गसंकोचनं तथा। मूलाश्रारात्सुपुन्ना च पद्मतन्तुनिभा ग्रुभा ॥ १०१ ॥ अमूर्तो वर्तते नादो वीणादण्डसमुध्यितः । शङ्क्षनादादि-भिश्चेव मध्यमेव ध्वनिर्यथा ॥ १०२ ॥ व्योमरन्ध्रगतो नादो मायूरं नादमेव च। कपालकुहरे मध्ये चतुर्द्वारस्य मध्यमे ॥ १०३ ॥ तदात्मा राजते तत्र यथा न्योक्ति दिवाकरः । कोदण्डद्वयमध्ये तु ब्रह्मरन्ध्रेषु शक्तितः ॥ १०४ ॥ स्वात्मानं पुरुषं पश्येन्मनस्तत्र लयं गतम् । रत्नानि न्योत्सिनादं तु बिन्दुमाः हेश्वरं पदम् । य एवं वेद पुरुषः स कैवल्यं समश्चत इत्युपनिषत् ॥ १०५॥

ॐ सह नाववित्विति शान्तिः ॥ इति ध्यानिवन्दूपनिषत्समासा ॥ ४१ ॥

ब्रह्मविद्योपनिषत् ॥ ४२ ॥ स्वाविद्यावत्कार्यजातं यद्विद्यापद्ववं गतम् । तद्यंसविद्यानिष्पन्नं रामचन्द्रपदं भजे ॥ ॐ सह नाववित्विति शान्तिः॥

अथ ब्रह्मविद्योपनिषदुच्यते ॥ प्रसादाद्वह्मणस्तस्य विष्णोरद्धतकर्मणः । रहस्यं ब्रह्मविद्याया ध्रुवाभिं संप्रचक्षते ॥ १ ॥ अभित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः। शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालत्रयं तथा ॥ २ ॥ तत्र देवा-स्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽप्रयः। तिस्रो मात्रार्धमात्रा च न्यक्षरस शिवस्य तु ॥ ३ ॥ ऋग्वेदो गाईपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च । अकारस शरीरं तु न्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥ ४ ॥ यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाप्निस-थैत च । विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥ सामवेदस्तथा दौश्चा-हबनीयस्तथैव च। ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः॥ ६॥ सूर्य-मण्डलमध्येऽथ ह्यकारः शङ्खमध्यगः। उकारश्चन्द्रसंकाशसस्य मध्ये व्यव-स्थितः ॥ ७ ॥ मकारस्त्वभिसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः । तिस्रो मात्रा-स्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याप्तिरूपिणः ॥ ८॥ शिखा तु दीपसंकाशा तसिन्नुपरि वर्तते । अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥ ९ ॥ पद्मसूत्रतिभा सुक्ष्मा शिला सा दश्यते परा । सा नाडी सूर्यसंकाशा सूर्यं भित्त्वा तथापरा ॥ १० ॥ द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीं भित्त्वा च मूर्धनि । वरदः सर्वभूतानां सर्व च्याप्यावतिष्ठति ॥ ११ ॥ कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये । ओङ्का रस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता ॥ १२ ॥ यस्मिन्विलीयते शब्दस-त्परं ब्रह्म गीयते । भियं हि लीयते ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १३ ॥ वायुः

ग्राणस्तथाकाशस्त्रिविधो जीवसंज्ञकः । स जीवः प्राण इत्युक्तो वालाप्रशत-कल्पितः ॥ १४ ॥ नाभिस्थाने स्थितं विश्वं शुद्धतत्त्वं सुनिर्मलम् । आदित्यमिव टीप्यन्तं रिझ्मिअश्वाखिलं शिवस् ॥ १५ ॥ सकारं च हकारं च जीवो जपति सर्वदा । नाभिरन्ध्राद्विनिष्कान्तं विषयच्यासिवर्जितम् ॥ १६ ॥ तेनेदं निष्कलं विद्यात्क्षीरात्सर्पियेथा तथा । कारणेनात्मना युक्तः प्राणायामेश्च पञ्चभिः ॥ १७ ॥ चतुष्कलासमायुक्तो आम्यते च हृदि स्थितः । गोलकस्त यदा देहे क्षीरदण्डेन वा हतः ॥ १८ ॥ एतस्मिन्वसते शीघ्रमविश्रान्तं महा-ख्याः । याविज्ञःश्वसितो जीवस्ताविज्ञिष्कलतां गतः ॥ १९ ॥ नमस्यं निष्कलं ध्यात्वा युच्यते भववन्धनात् । अनाहतध्वनियुतं हंसं यो वेद हृद्गतम् ॥ २०॥ स्वप्रकाशचिदानंदं स इंस इति गीयते। रेचकं पूरकं मुक्तवा कुरुभकेन स्थितः सुधीः ॥ २१ ॥ नाभिकन्दे समी कृत्वा प्राणापानी समाहितः । मस्तकस्थामृतास्वादं पीत्वा ध्यानेन सादरम् ॥ २२ ॥ दीपाकारं बहादेवं ज्वलन्तं नाभिमध्यमे । अभिषिच्यामृतेनैव इंस इंसेति यो जपेत् ॥ २३ ॥ जरामरणरोगादि न तस्य अवि विद्यते । एवं दिने दिने कुर्यादणि-मादिविश्रतये ॥ २४ ॥ ईश्वरत्वमवामोति सदाभ्यासरतः पुमान् । बहवी नैकमार्गेण प्राप्ता नित्यत्वमागताः ॥ २५ ॥ हंसविद्यासृते लोके नास्ति नित्यत्वसाधनम् । यो ददाति महाविद्यां हंसाख्यां पारमेश्वरीम् ॥ २६॥ तस्य दास्यं सदा कुर्यात्प्रज्ञया परया सह । शुभं वाऽशुभमन्यद्वा यदुक्तं गुरुणा भुनि ॥ २७ ॥ तत्कुर्यादविचारेण शिष्यः संतोषसंयुतः । हंसविद्या-मिमां लब्ध्वा गुरुश्रश्रूषया नरः॥ २८॥ आत्मानमात्मना साक्षाद्रह्म बुद्धा सुनिश्चलम् । देहजात्यादिसंबन्धान्वर्णाश्रमसमन्वितान् ॥ २९ ॥ वेदशास्त्राणि चान्यानि पद्रपांसुमिव त्यजेत् । गुरुभक्तिं सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः ॥ ३० ॥ गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यव्रवीच्छुतिः ॥ ३१ ॥ श्रत्या यदुक्तं परमार्थमेव तत्संशयो नात्र ततः समस्तम् । श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणं भवेदनर्थाय विना प्रमाणम् ॥ ३२ ॥ देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहव-र्जितः । आसोपदेशगम्योऽसौ सर्वतः समवस्थितः ॥ ३३ ॥ हंसहंसेति यो ब्याइंसो ब्रह्मा हरिः शिवः । गुरुवऋातु लभ्येत प्रत्यक्षं सर्वतोमुखम् ॥३४॥ तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्ध इवाश्रितः । पुरुषस्य शरीरेऽस्मिन्स बाह्या-भ्यन्तरे तथा ॥ ३५ ॥ उल्काहस्तो यथालोके द्रव्यमालोक्य तां त्यजेत्।

3 ॥ मा-3 ॥

तत्र

: । दुक्तं [वा-रस्य

रस्य तस्त-श्चा-

सूर्य-यव-।त्रा-।परि

नेभा |परा सर्व

ोङ्का-इस्त-

ायुः

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत् ॥ ३६ ॥ युष्पवत्सकलं विद्यादः न्धसास्य तु निष्कलः । वृक्षस्तु सकलं विद्याच्छाया तस्य तु निष्कला ॥ ३७॥ निष्कलः सकलो भावः सर्वत्रेव व्यवस्थितः । उपायः सकलसदृदुपेयश्चेव निष्कलः ॥ ३८ ॥ सकले सकलो भावो निष्कले निष्कलस्तथा । एकमात्रो द्विमात्रश्च त्रिमात्रश्चेव भेदतः ॥ ३९ ॥ अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध परात्परम् । पञ्चधा पञ्चदेवलं सकलं परिपठ्यते ॥ ४० ॥ ब्रह्मणो हृदयस्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः । तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटस्थो महेश्वरः ॥४१॥ नासाग्रे अच्युतं विद्यात्तस्यान्ते तु परं पदस् । परत्वात्तु परं नास्तीत्वेवं शास्त्रस्य निर्णयः ॥ ४२ ॥ देहातीतं तु तं विद्यानासाम्रे द्वादशाङ्गलम्। तदुन्तं तं विजानीयात्तत्रस्थो न्यापयेत्प्रभुः ॥ ४३ ॥ सनोऽप्यन्यत्र निक्षितं चक्करन्यत्र पातितम् । तथापि योगिनां योगो ह्यविच्छिन्नः प्रवर्तते ॥ ४४॥ एतत् परमं गुह्यमेतत् परमं शुभम् । नातः परतरं किंचिकातः परतरं शुभम् ॥ ४५ ॥ शुद्धज्ञानासृतं प्राप्य परमाक्षरनिर्णयम् । गुह्यादुह्य-तमं गोप्यं ग्रहणीयं प्रयत्नतः ॥ ४६॥ नापुत्राय प्रदातव्यं नाशिष्याय कदाचन । गुरुदेवाय भक्ताय नित्यं भक्तिपराय च ॥ ४७ ॥ प्रदातव्यमिदं शास्त्रं नेतरेभ्यः प्रदापयेत् । दाताऽस्य नरकं याति सिच्चते न कदाचन ॥ ४८॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः । यत्र तत्र स्थितो ज्ञानी परमा-क्षरिवत्सदा ॥ ४९ ॥ विषयी विषयासक्तो याति देहान्तरे ग्रुभम् । ज्ञाना-देवास्य शास्त्रस्य सर्वावस्थोऽपि मानवः ॥ ५० ॥ ब्रह्महत्याश्वमेधाद्यैः पुण्य-षापैर्न लिप्यते । चोदको बोधकश्चैव सोक्षदश्च परः स्पृतः ॥ ५१ ॥ इत्येषां त्रिविधो ज्ञेय आचार्यस्तु महीतले । चोदको दर्शयेन्मार्ग बोधकः स्थानमा चरेत् ॥ ५२ ॥ मोक्षदस्तु परं तत्त्वं यज्ज्ञात्वा परमश्रुते । प्रत्यक्षयजनं देहे संक्षेपाच्छृणु गौतम ॥ ५३ ॥ तेनेष्ट्वा स नरो याति शाश्वतं पदमन्ययम्। स्वयमेव तु संपर्श्येहेहे बिन्दुं च निष्कलम् ॥ ५४ ॥ अयने द्वे च विषुवे सदा पद्यति मार्गवित् । कृत्वायामं पुरा वत्स रेचपूरककुम्भकान् ॥ ५५॥ पूर्व चोभयमुचार्य अर्चयेतु यथाकमम् । नमस्कारेण योगेन मुद्रयारभ्य चार्चयेत् ॥ ५६ ॥ सूर्यस्य ग्रहणं वत्स प्रत्यक्षयजनं स्मृतम् । ज्ञानात्सायुज्यमेवोकं तोये तोयं यथा तथा ॥ ५७ ॥ एते गुणाः प्रवर्तन्ते योगाभ्यासकृतश्रमैः । तस्माद्योगं समादाय सर्वदुःखबहिष्कृतः ॥ ५८॥ योगध्यानं सदा कृत्वा ज्ञानं तन्मयतां वजेत् । ज्ञानात्स्वरूपं परमं हंसमन्नं समुचरेत् ॥ ५९ ॥ प्राणिनां देहमध्ये तु स्थितो हंसः सदान्युतः । हंस एव परं सत्यं हंस एव तु शक्तिकम् ॥ ६० ॥ हंस एव परं वाक्यं हंस एव तु वादिकम् । हंस एव परो हृद्रो हंस एव परात्परम् ॥ ६१ ॥ सर्वदेवस्य मध्यस्थो हंस एव महे-श्वरः । पृथिन्यादिशिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णकाः ॥ ६२ ॥ कूटान्ता हंस एव स्थान्मातृकेति व्यवस्थिताः। मातृकारहितं मन्नमादिशन्ते न कुन्नचित् ॥ ६३ ॥ हंसज्योतिरनूपम्यं मध्ये देवं व्यवस्थितम् । दक्षिणामुखमाश्रित्य ज्ञानसुद्रां प्रकल्पयेत् ॥ ६४ ॥ सदा समाधि कुर्वीत हंसमञ्रमनुसारन् । निर्सलस्फटिकाकारं दिव्यरूपमनुत्तमम् ॥ ६५ ॥ मध्यदेशे परं हंसं ज्ञानमु-द्वात्मरूपकस् । प्राणोऽपानः समानश्चोदानन्यानौ च वायवः ॥ ६६ ॥ पञ्च-कर्मेन्द्रियेर्युक्ताः कियाशक्तिवलोद्यताः । नागः क्रमेश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥ ६७ ॥ पञ्चज्ञानेन्द्रियेर्युक्ता ज्ञानशक्तिबलोद्यताः । पावकः शक्तिमध्ये तु नाभिचके रविः स्थितः॥ ६८॥ बन्धसुद्दा कृता येन नासाम्रे तु खलोचने। अकारे विह्निरित्याहुरुकारे हृदि संस्थितः ॥ ६९ ॥ मकारे च अवोर्मध्ये प्राणशक्ता प्रबोधयेत् । ब्रह्मप्रन्थिरकारे च विष्णुप्रन्थिहृदि स्थितः ॥ ७० ॥ रुद्रग्रन्थिभुवीर्मध्ये भिद्यतेऽक्षरवायुना । अकारे संस्थितो ब्रह्मा उकारे विष्णुरास्थितः ॥ ७१ ॥ मकारे संस्थितो रुद्रसत्तोऽस्थान्तः परात्परः । कण्ठं संकुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तितः ॥ ७२ ॥ रसना पीड्यमा-नेयं षोडशी वोर्ध्वगामिनी । त्रिकूटं त्रिविधा चैव गोलाखं निखरं तथा ॥ ७३ ॥ त्रिशङ्खवज्रमोंकारमूर्ध्वनालं अवोर्मुखम् । कुण्डलीं चालयन्प्राणा-न्भेद्यन्यशिमण्डलम् ॥ ७४ ॥ साधयन्वज्रकुम्भानि नव द्वाराणि बन्धयेत् । सुमनःपवनारूढः सरागी निर्गुणस्तथा ॥ ७५ ॥ ब्रह्मस्थाने तु नादः स्याच्छा-किन्यसृतवर्षिणी । षद्चकमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत् ॥ ७६ ॥ सर्व-भूतस्थितं देवं सर्वेशं नित्यमर्चयेत् । आत्मरूपं तमालोक्य ज्ञानरूपं निरा-मयम् ॥ ७७ ॥ दृज्यन्तं दिन्यरूपेण सर्वन्यापी निरञ्जनः । हंस हंस वदे-द्वाक्यं प्राणिनां देहमाश्रितः । सप्राणापानयोर्प्रनिथरजपेत्यभिधीयते ॥ ७८ ॥ सहस्त्रमेकं द्ययुतं षदशतं चैव सर्वदा । उच्चरन्पिठतो हंसः सोऽहमिलिभिधी-यते ॥ ७९ ॥ पूर्वभागे ह्यधोलिङ्गं शिखिन्यां चैव पश्चिमम् । ज्योतिर्हिगं श्रुवोर्मध्ये नित्य ध्यायेत्सदा यतिः ॥ ८० ॥ अच्युतोऽहमचिन्त्योऽहमतक्यों-

7

7-

T-

वां

Π-

1

दा दुव

ोत्

क्तं

वा

ऽहमजोऽस्म्यहम् । अप्राणोऽहमकायोऽहमनङ्गोऽस्म्यभयोऽस्म्यहम् ॥ ८१ ॥ अशब्दोऽहसरूपोऽहमस्पर्शोऽस्म्यहमद्रयः । अरसोऽहमगन्धोऽहमनादिरमृ तोऽस्म्यहम् ॥ ८२ ॥ अक्षयोऽहमिळिङ्गोऽहमजरोऽस्म्यकलोऽस्म्यहम् । अगा-णोऽहमसूकोऽहमचिन्त्योऽस्म्यकृतोऽस्म्यहस् ॥ ८३ ॥ अन्तर्याम्यहमग्राह्यो-ऽनिर्देश्योऽहमलक्षणः । अगोत्रोऽहमगात्रोऽहमचक्षुष्कोऽस्म्यवागहम् ॥ ८४ ॥ अहरूयोऽहमवर्णोऽहमखण्डोऽस्म्यहमद्भतः । अश्वतोऽहमदृष्टोऽहमन्वेष्टन्योऽ-मरोऽस्म्यहम् ॥ ८५ ॥ अवायुरप्यनाकाज्ञोऽतेजस्कोऽन्यभिचार्यहम् । अम-तोऽहमजातोऽहमतिसूक्षमोऽविकार्यहम् ॥ ८६ ॥ अरजस्कोऽतसस्कोऽहमस-न्वोऽस्म्यगुणोऽस्म्यहम् । अमायोऽनुभवात्माहसनन्योऽविषयोऽस्म्यहस्॥८०॥ अद्वेतोऽहमपूर्णोऽहमबाह्योऽहमनन्तरः । अश्रोताऽहमदीघोऽहमव्यक्तोऽहम-नामयः ॥ ८८ ॥ अद्वयानन्दाविज्ञानघनोऽस्म्यहसविकियः । अतिच्छोऽहम-लेपोऽहमकर्तास्म्यहमद्वयः ॥ ८९ ॥ अविद्याकार्यहीनोऽहमवायसनगोचरः । अनल्पोऽहमशोकोऽहमविकल्पोऽस्म्यविज्वलन् ॥ ९० ॥ आदिमध्यान्तही-नोऽहमाकाशसद्भोऽस्म्यहम् । आत्मचैतन्यद्भूपोऽहमहमाननद्चिद्धनः ॥९१॥ आनन्दासृतरूपोऽहमात्मसंस्थोऽहम्नतरः । धारमकामोऽहमाकाशात्पर-मात्मेश्वरोऽस्म्यहम् ॥ ९२ ॥ ईंशानोऽस्म्यहमीड्योऽहमहसुत्तमपूरुषः। उत्कृष्टोऽहसुपद्रष्टा अहसुत्तरतोऽस्म्यहस् ॥ ९३ ॥ केवलोऽहं कविः कर्मा-ध्यक्षोऽहं करणाधिपः । गुह्यक्षयोऽहं गोप्ताहं चक्षुचश्रक्षरस्यहम् ॥ ९४ ॥ चिदानन्दोऽस्म्यहं चेता चिद्धनश्चिन्सयोऽस्म्यहस् । ज्योतिर्मयोऽस्म्यहं ज्यायाश्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम् ॥ ९५ ॥ तमसः साक्ष्यहं तुर्यतुर्योऽहं तमसः परः । दिन्यो देवोऽस्मि दुर्दशीं दृष्टाध्यायो ध्रुवोऽस्म्यहम् ॥ ९६ ॥ नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरञ्जनः । निर्मलो निर्विकल्पोऽsहं निराख्यातोऽस्मि निश्चलः ॥ ९७ ॥ निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो नि-स्पृहोऽस्म्यहम् । निरिन्द्रियो नियन्ताहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः ॥ ९८॥ पुरुषः परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् । परावरोऽस्म्यहं प्राज्ञः प्रपञ्जो-पत्रामोऽस्म्यहम् ॥ ९९ ॥ परामृतोऽस्म्यहं पूर्णः प्रभुरस्मि पुरातनः । पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम् ॥ १०० ॥ प्रज्ञातोऽहं प्रशा-न्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः । एकथा चिन्त्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः ॥ १०१ ॥ बुद्धोऽहं भूतपालोऽहं भारूपोऽहं भगवानहम् । महाज्ञेयो महा-

निस्म महाज्ञेयो महेश्वरः ॥ १०२ ॥ विमुक्तोऽहं विभुरहं वरेण्यो व्यापकोऽस्म्यहस् । वेश्वानरो वासुदेवो विश्वतश्रक्षुरस्म्यहस् ॥ १०३ ॥
विश्वाधिकोऽहं विशदो विप्णुर्विश्वकृदस्म्यहस् । ग्रुद्धोऽस्मि ग्रुक्तः शान्तोऽस्मि शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहस् ॥ १०४ ॥ सर्वभूतान्तरात्माहसहसस्मि
सनातनः । अहं सकृद्विभातोऽस्मि स्वे महिश्वि सदा स्थितः ॥ १०५ ॥
सर्वान्तरः स्वयंज्योतिः सर्वाधिपतिरस्म्यहस् । सर्वभूताधिवासोऽहं सवैव्यापी स्वराडहस् ॥ १०६ ॥ समस्तसाक्षी सर्वात्मा सर्वभूतगृहाशयः । सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ १०० ॥ स्थानत्रयव्यतीतोऽहं सर्वानुग्राहकोऽस्म्यहस् । सचिदानन्दपूर्णात्मा सर्वप्रेमास्पदोऽस्म्यहस्
॥ १०८ ॥ सचिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्वनः । सत्त्वस्रूपसन्यात्रसिद्धसर्वात्मकोऽस्म्यहस् ॥ १०९ ॥ सर्वोधिष्ठानसम्मात्रः स्वात्मबन्धहरोऽस्त्यहस् । सर्वग्रासोऽस्म्यहं सर्वद्रष्टा सर्वोनुभूरहस् ॥ ११० ॥ एवं यो
वेद तत्त्वेन स वे पुरुष उच्यते इत्युपनिषत् ॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

इति ब्रह्मविद्योपनिषत्समाप्ता ॥ ४२ ॥

योगतन्वोपनिषत् ॥ ४३ ॥

योगेश्वर्यं च कैवल्यं जायते यत्प्रसादतः । तद्वैष्णवं योगतत्त्वं रामचन्द्रपदं भजे ॥ ॐ सह नाववन्विति शान्तिः ॥

ı

I

योगतत्त्वं प्रवक्ष्यामि योगिनां हितकाम्यया । यच्छुत्वा च पिठत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ विष्णुनीम महायोगी महाभूतो महातपाः । तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते पुरुषोत्तमः ॥ २ ॥ तमाराध्य जगन्नाथं प्रणिपत्य पितामहः । पप्रच्छ योगतत्त्वं मे ब्रूहि चाष्टाङ्गसंयुक्तम् ॥ ३ ॥ तमुवाच हृषीकेशो वक्ष्यामि श्रणु तत्त्वतः । सर्वे जीवाः सुवैदुःसौर्याजालेन वेष्टिताः ॥ ४ ॥ तेषां मुक्तिकरं मार्गं मायाजालनिकृत्तनम् । जन्ममृत्युजराज्याधिनाशनं मृत्युतारकम् ॥ ५ ॥ नानामार्गेस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम् । पतिताः शास्त्रजालेषु प्रज्ञया तेन मोहिताः ॥ ६ ॥ अनिर्वाच्यं पदं वक्तं न शक्यं तैः सुरैरपि । स्वात्मप्रकाशरूपं तित्कं शान्या

स्त्रेण प्रकाइयते ॥ ७ ॥ निष्कर्ल निर्मेलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् । तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलेर्वृतम् ॥ ८ ॥ परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम् ॥ सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम् ॥ ९ ॥ वारिवत्स्फ्रितं तस्मिस्तत्राहंकृतिरुत्थिता । पञ्चात्मकमभूत्यिण्डं धातुबद्धं गुणात्मकम् ॥ १०॥ सुखदुः खेः समायुक्तं जीवभावनया कुरु । तेन जीवाभिधा घोका विशुद्धैः परमात्मिन ॥ ११ ॥ कामकोधभयं चापि मोहलोभमदो रजः । जन्म मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधा तृषा ॥ १२-॥ तृष्णा लजा अयं दुःसं विषादो हर्ष एव च। एभिर्देषिर्विनिर्धुक्तः स जीवः केवलो मतः ॥ १३॥ तसादोषविनाशार्थसुपायं कथयामि ते। योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति भुवम् ॥ १४ ॥ योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि । तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्देदमभ्यसेत् ॥ १५ ॥ अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते । ज्ञानस्वरूपमेवादौ ज्ञानं ज्ञेयैकसाधनस् ॥ १६ ॥ ज्ञातं येन निजं रूपं कैवल्यं परमं पदम् । निष्कलं निर्मलं साक्षात्सचिदानन्दरूपकम् ॥ १०॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारस्फूर्तिज्ञानविवर्जितस् । एतज्ज्ञानिसिति प्रोक्तमथ योगं ववीमि ते ॥ १८ ॥ योगो हि वहुधा ब्रह्मन्भिद्यते व्यवहारतः । मन्नयोगो लयश्चेव हठोऽसौ राजयोगतः॥ १९॥ आरम्भश्च घटश्चेव तथा परिचयः स्मृतः । निष्पत्तिश्चेत्यवस्था च सर्वत्र परिकीर्तिता ॥ २० ॥ एतेषां लक्षणं ब्रह्मन्वक्ष्ये शृणु समासतः। मातृकादियुतं मन्नं द्वादशाब्दं तु यो जपेत् 🛚 २१ ॥ क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादिगुणान्वितम् । अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः॥ २२ ॥ लययोगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः। गच्छंस्तिष्टन्स्वपन्भुञ्जनध्यायेन्निष्कलमीश्वरम् ॥ २३ ॥ स एव लययोगः सा-द्धठयोगमतः दृशु । यमश्र नियमश्रव आसनं प्राणसंयमः ॥ २४ ॥ प्रत्याहारी धारणा च ध्यानं भूमध्यमे हरिग् । समाधिः समतावस्था साष्टाङ्गो योग उच्यते ॥ २५ ॥ महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी । जालंधरोड्डियाणश्च मूलबन्धस्तथैव च ॥ २६ ॥ दीर्घप्रणवसंधानं सिद्धान्तश्रवणं परम् । वज्रोली चामरोली च सहजोली त्रिधा मता ॥ २७ ॥ एतेषां लक्षणं ब्रह्मन्प्रत्येकं राणु तत्त्वतः । लघ्वाहारो यमेष्वेको मुख्यो भवति नेतरः ॥ २८ ॥ अहिंसा नियमेष्वेका मुख्या वै चतुरानन । सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्नं चेति चतुष्टयम् ॥ २९ ॥ प्रथमाभ्यासकाले तु विष्नाः स्युश्चतुरानन । आलस्यं कत्थनं धूर्त- गोष्टी मन्नादिसाधनम् ॥ ३० ॥ धातुस्त्रीलौत्यकादीनि सृगतृष्णामयानि वै। ज्ञात्वा सुधीस्त्यजेत्सर्वान्विञ्चान्पुण्यप्रभावतः ॥ ३१ ॥ प्राणायामं ततः कुर्यात्पन्नासनगतः स्वयम् । सुशोभनं मठं कुर्यात्स्क्ष्मद्वारं तु निर्वणस् ॥ ३२ ॥ सुद्ध लिसं गोमयेन सुधया वा प्रयततः । मत्कुणैर्मशकैर्द्धतैर्विर्जतं च प्रयततः ॥ ३३ ॥ दिने दिने च संसृष्टं संमार्जन्या विशेषतः । वासितं च सुगन्धेन भूषितं गुग्गुलादिभिः ॥ ३४ ॥ नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् । तत्रोपविदय मेघावी पद्मासनसमन्वितः ॥ ३५ ॥ ऋजुकायः प्राञ्जलिश्व प्रणमेदिष्टदेवताम् । ततो दक्षिणहस्तस्य अङ्गुष्टेनैव पिङ्गलाम् ॥ ३६ ॥ निरुध्य पूरवेद्वायुमिडया तु शनैः शनैः। यथाशक्त्यविरोधेन ततः कुर्याच कुम्भकम् ॥ ३७ ॥ पुनस्त्यजेत्पिङ्गलया शनैरेव न वेगतः । पुनः पिङ्गलयापूर्य प्रयेदुदरं शनैः ॥ ३८ ॥ धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदिडया शनैः । यया त्यजेत्तयापूर्य भारयेदविरोधतः ॥ ३९ ॥ जानु प्रदक्षिणीकृत्य न द्वतं न विलम्बितम्। अङ्गुलिस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रा परिगीयते ॥ ४० ॥ इडया वायुमारोप्य शनैः षोडशमात्रया । कुम्भयेत्पूरितं पश्चाचतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥ ४१ ॥ रेचये-त्पिङ्गलानाड्या द्वात्रिंशनमात्रया पुनः। पुनः पिङ्गलयापूर्य पूर्ववत्सुसमाहितः ॥ ४२ ॥ प्रातमध्यंदिने सायमर्घरात्रे च कुम्भकान् । शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥ ४३ ॥ एवं मासत्रयाभ्यासान्नाडीशुद्धिसतो भवेत् । यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि वाह्यतः ॥ ४४ ॥ जायन्ते योगिनो देहे तानि वक्ष्याम्यशेषतः । शरीरलघुता दीप्तिजीठसिप्तिविवर्धनम् ॥ ४५ ॥ कृतत्वं च शरीरस्य तदा जायेत निश्चितम्।योगविव्यकराहारं वर्जयेखोगवित्तमः॥ ४६॥ लवणं सर्षपं चाम्लमुष्णं रूक्षं च तीक्ष्णकम्। शाकजातं रामठादि वहिस्ती-पथसेवनम् ॥ ४७ ॥ प्रातःस्नानोपवासादिकायक्षेतांश्च वर्जयेत् । अभ्यास-काले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम् ॥ ४८ ॥ गोधूममुद्गशाल्यन्नं योगवृद्धिकरं विदुः। ततः परं यथेष्टं तु शक्तः स्याद्वायुधारणे ॥ ४९॥ यथेष्टधारणा-द्वायोः सिध्येत्केवलकुम्भकः। केवले कुम्भके सिद्धे रेचपूरविवर्जिते ॥ ५०॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्रिषु लोकेषु विद्यते। प्रस्तेदो जायते पूर्वं मर्दनं तेन कारयेत् ॥ ५३॥ ततोऽपि धारणाद्वायोः क्रमेणैव शनैः शनैः । कम्पो भवति देहस्य आसनस्थस्य देहिनः ॥ ५२ ॥ ततोऽधिकतराभ्यासाद्दार्दुरी स्वेन जायते । यथा च दर्दुरो आव उत्सुलोत्सुल् गच्छति ॥ ५३ ॥ पद्मासनस्थितो योगी तथा गच्छति भूतले । ततोऽधिकतराभ्यासाद्ध्रिम्रेलागश्च जायते ॥ ५४ ॥ पद्मास-नस्थ एवासौ भूमिमुत्सृज्य वर्तते । अतिमानुषचेष्टादि तथा सामर्थमुद्रवेत ॥ ५५ ॥ न दर्शयेच सामर्थ्यं दर्शनं वीर्यवत्तरम् । स्वल्पं वा बहुधा दुःस्तं योगी न व्यथते तदा॥ ५६॥ अल्पसूत्रपुरीषश्च स्वल्पनिद्धः जायते। कीलवो दूषिका लाला स्वेददुर्गन्धतानने ॥ ५७ ॥ एतानि सर्वथा तस्य न जायन्ते ततः परम् । ततोऽधिकतराभ्यासाद्धलमुत्पचते बहु ॥ ५८॥ येन भूचर-सिद्धिः स्याद्भूचराणां जये क्षमः। व्याघ्रो वा शरभो वापि गजो गवय एव वा ॥ ५९ ॥ सिंहो वा योगिना तेन म्रियन्ते हस्तताडिताः । कन्दर्पस्य यथा रूपं तथा स्यादिष योगिनः ॥ ६० ॥ तद्रूपवश्चगा नार्यः काङ्कन्ते तस्य सङ्गमम्। यदि सङ्गं करोत्येष तस्य बिन्दुक्षयो अवेत् ॥ ६१ ॥ वर्जयित्वा स्त्रियाः सङ्गं कुर्यादभ्यासमादरात् । योगिनोऽङ्गे सुगन्धश्च जायते विन्दुधारणात् ॥ ६२ ॥ ततो रहस्युपाविष्टः प्रणवं क्षुतमात्रया । जपेत्पूर्वीर्जितानां तु पापानां नाश-हेतवे ॥ ६३ ॥ सर्वविद्यहरो मञ्जः प्रणवः सर्वदोषहा । एवसभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसंभवा ॥ ६४ ॥ ततो भवेद्धठावस्था पवनाभ्यासतत्परा । प्राणो-ऽपानो मनो बुद्धिजीवात्मपरमात्मनोः ॥ ६५ ॥ अन्योन्यस्याविरोधेन एकता घटते यदा । हठावस्थेति सा प्रोक्ता तिच्चिहानि व्रवीम्यहम् ॥ ६६॥ यूर्वं यः कथितोऽभ्यासश्चतुर्थांशं परिप्रहेत् । दिवा वा यदि वा सायं याम-मात्रं समभ्यसेत् ॥ ६७ ॥ एकवारं प्रतिदिनं कुर्यात्केवलकुम्भकम् । इन्द्रि-याणीन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरणं स्फुटम् ॥ ६८ ॥ योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्या-हारः स उच्यते । यद्यत्पश्यति चक्षुभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ६९ ॥ यद्य-च्छुणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत्। लभते नासया यद्यत्तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ७० ॥ जिह्नया यद्सं ह्यत्ति तत्तदात्मेति भावयेत् । त्वचा यस-त्स्पृशेद्योगी तत्तदात्मेति भावयेत्॥ ७१ ॥ एवं ज्ञानेन्द्रियाणां तु तत्तत्सीख्यं सुसाधयेत् । याममात्रं प्रतिदिनं योगी यलादतिनद्वतः ॥ ७२ ॥ यथा वा चित्तसामध्यं जायते योगिनो ध्रुवम् । दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः क्षणादूरागमस्तथा ॥ ७३ ॥ वाक्सिद्धिः कामरूपत्वमदृश्यकरणी तथा । मलमूत्रप्रलेपेन लोहादैः स्वर्णता भवेत् ॥ ७४ ॥ खे गतिस्तस्य जायेत संतताभ्यासयोगतः । सदा बुद्धिमता भाव्यं योगिना योगसिद्धये ॥ ७५ ॥ एते विञ्चा महासिद्धेर्न रमे-त्तेषु बुद्धिमान् । न दर्शयेत्स्वसामध्यं यस्यकस्यापि योगिराह ॥ ७६॥ यथा महो यथा ह्यन्धो यथा विधर एव वा। तथा वर्तेत लोकस स्वसामर्थ्यस गुप्तये ॥ ७७ ॥ शिष्याश्च स्वस्वकार्येषु प्रार्थयन्ति न संशयः । तत्तत्कर्मकर-व्ययः स्वाभ्यासेऽविस्सृतो भवेत् ॥ ७८ ॥ अविस्मृत्य गुरोर्वाक्यमभ्यसेत्तद्-हर्निशस् । एवं भवेद्धठावस्था संतताभ्यासयोगतः ॥ ७९ ॥ अनभ्यासव-तश्चेव व्यागोष्ट्या न सिद्धति । तस्मात्सर्वप्रयतेन योगमेव सदाभ्यसेत् ॥ ८० ॥ ततः परिचयावस्था जायतेऽभ्यासयोगतः । वायुः परिचितो यता-द्धिना सह कुण्डलीस् ॥ ८३ ॥ भावयित्वा सुषुस्रायां प्रविशेदनिरोधतः । वायुना सह चित्तं च प्रविशेच महापथम् ॥ ८२ ॥ यस्य चित्तं स्वपवनं सुजुङ्गां प्रविशेदिह । भूमिरापोऽनलो वायुराकाशश्चेति पञ्चकः ॥ ८३ ॥ येषु पञ्चसु देवानां धारणा पञ्चधोच्यते । पादादि जानुपर्यन्तं पृथिवी स्थानसुच्यते ॥ ८४ ॥ पृथिवी चतुरस्रं च पीतवर्णं लवर्णकम् । पार्थिवे वायुमारोप्य लका-रेण समन्वितस् ॥ ८५ ॥ ध्यायंश्चतुर्भुजाकारं चतुर्वक्रं हिरण्मयम् । धारये-त्पञ्च वटिकाः पृथिवीजयमाप्रुयात् ॥ ८६ ॥ पृथिवीयोगतो सृत्युर्न भवे-द्स्य योगिनः । आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ८७ ॥ आपोऽर्धचन्द्रं ग्रुक्कं च वं वीजं परिकीर्तितम् । वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितम् ॥ ८८ ॥ स्मरन्नारायणं देवं चतुर्वाहुं किरीटिनम् । ग्रुद्धस्फटिक-संकाशं पीतवाससमच्युतम् ॥ ८९ ॥ धारयेत्पञ्च घटिकाः सर्वपापैः प्रमु-च्यते । ततो जलाइयं नास्ति जले मृत्युर्न विद्यते ॥९०॥ आ पायोईदयान्तं च विहस्थानं प्रकीर्तितम् । विहस्तिकोणं रक्तं च रेफाक्षरसमुद्भवम् ॥ ९१ ॥ वहाँ चानिलमारोप्य रेफाक्षरसमुज्वलम् । त्रियक्षं वरदं रुदं तरुणादित्यसंनिभम् ॥९२॥ भस्पोद्धृतितसर्वाङ्गं सुप्रसन्नमनुस्मरन् । धारयेत्पञ्च घटिका विह्ननासौ न दहाते ॥९३॥ न दहाते शरीरं च प्रविष्टसाग्निमण्डले । आ हृदयाहुवोर्मध्यं वायुस्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ९४ ॥ वायुः षदकोणकं कृष्णं यकाराक्षरभासुरम् । मारुतं मरुतां स्थाने यकाराक्षरभासुरम् ॥ ९५ ॥ धारयेत्तत्र सर्वज्ञमीश्वरं विश्वतोमुखम् । धारयेत्पञ्च घटिका वायुवद्योमगो भवेत् ॥९६॥ मरणं न तु वायोश्च भयं भवति योगिनः । आ श्रूमध्यातु मूर्घान्तमाकाशस्थानमुच्यते ॥ ९७ ॥ न्योम वृत्तं च धूम्रं च हकाराक्षरभासुरम् । आकाशे वायुमारोप्य हकारोपरि शंकरम् ॥ ९८ ॥ बिन्दुरूपं महादेवं न्योमाकारं सदाशिवम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं धतबालेन्दुमौलिनम् ॥ ९९ ॥ पञ्चवऋयुतं सौम्यं दश- बाहुं त्रिलोचनम् । सर्वायुधेर्धताकारं सर्वभूषणभूषितम् ॥ १०० ॥ उमार्ध-देहं वरदं सर्वकारणकारणस् । आकाशधारणात्तस्य खेचरत्वं भवेद्भवस् ॥१०१॥ यत्रकुत्र स्थितो वापि सुखमत्यन्तमञ्जते । एवं च धारणाः पञ्च कुर्याद्योगी विचक्षणः ॥ १०२ ॥ ततो दृढशरीरः स्थान्सृत्युस्तस्य न विद्यते । ब्रह्मणः प्रलयेनापि न सीद्ति महामतिः ॥ १०३ ॥ समभ्यसेत्तथा ध्यानं विदेका-षृष्टिमेव च । वायुं निरुध्य चाकारो देवतामिष्टदामिति ॥ १०४ ॥ सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम् । निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत् ॥ १०५ ॥ दिनहादशकेनैव समाधि समवागुयात् । वायं निरुध्य मेघावी जीवन्युक्तो भवत्ययम् ॥ १०६॥ समाधिः समतावस्था जीवात्मणः-मात्मनोः । यदि स्वदेहमुत्स्रष्टुमिच्छा चेदुत्स्जेत्स्वयम् ॥ १०७ ॥ परब्रह्मणि लीयेत न तस्योक्तान्तिरिप्यते । अथ नौ चेत्समुत्सष्टुं स्वरारीरं प्रियं यदि ॥ १०८ ॥ सर्वलोकेषु विहरन्नणिमादिगुणान्वितः । कदाचित्स्वेच्छया देवो भूत्वा स्वर्गे महीयते ॥ १०९ ॥ मनुष्यो वापि यक्षो वा स्वेच्छयापीक्षणा-द्भवेत् । सिंहो च्याघो गजो वाश्वः स्वेच्छया बहुतामियात् ॥ ११० ॥ यथेष्ट-भेव वर्तेत यद्वा योगी महेश्वरः । अभ्यासभेदतो भेदः फलं तु सममेव हि ॥ ११३ ॥ पार्षिंग वासस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् । प्रसार्य दक्षिणं पादं हस्ताभ्यां धारयेद्वृढम् ॥ ११२ ॥ चुत्रुकं हृदि विन्यस्य पूरयेद्वायुना पुनः । कुम्भकेन यथाशक्ति धारयित्वा तु रेचयेत् ॥ ११३ ॥ वामाङ्गेन सम-भ्यस्य दक्षाङ्गेन ततोऽभ्यसेत् । प्रसारितस्तु यः पादस्तमूरूपरि नामयेत् ॥ १९४॥ अयमेव महाबन्ध उभयत्रेवमभ्यसेत्। महाबन्धस्थितो योगी कृत्वा पूरकमेकथीः ॥ ११५॥ वायुना नितमावृत्य निसृतं कर्णमुद्रया। पुटद्वयं समाकम्य वायुः स्फुरति सत्वरम् ॥ ११६॥ अयमेव महावेधः सिद्धैरभ्यखतेऽनिशम् । अन्तःकपालकुहरे जिह्नां व्यावृत्य धारयेत् ॥ ११७॥ अूमध्यदृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति खेचरी। कण्ठमाकु≆य हृद्ये स्थापयेहृद्या धिया ॥ ११८ ॥ वन्धो जालंधराख्योऽयं मृत्युमातङ्गकेसरी । बन्धो येन सुपुम्नायां प्राणस्तू ड्वीयते यतः ॥ ११९ ॥ उड्यानाख्यो हि बन्धोऽयं योगिभिः समुदाहृतः । पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेदृढम् ॥ १२०॥ अपान-मूर्ध्वमुत्थाप्य योनिबन्धोऽयमुच्यते । प्राणापानौ नादिबन्दू मूलबन्धेन चैक-ताम् ॥ १२१ ॥ गत्वा योगस्य संसिद्धिं यच्छतो नात्र संशयः । करणी विप-

रीतास्या सर्वन्याधिविनाशिनी ॥ १२२ ॥ नित्यमभ्यासयुक्तस्य जाठरामिवि-वर्धनी । आहारो बहुलस्तस्य संपाचः साधकस्य च ॥ १२३ ॥ अल्पाहारो यदि अवेद्धिर्देहं हरेन्क्षणात् । अधःशिरश्चोध्वेपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने ॥ १२४ ॥ क्षणाच किंचिद्धिकमभ्यसेतु दिने दिने । वली च पलितं वैव वण्मासाधीक दर्यते ॥ १२५ ॥ याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु काल-जित् । वज्रोलीसभ्यसेचस्तु स योगी सिद्धिभाजनम् ॥ १२६ ॥ लभ्यते यदि तस्यव योगसिद्धिः करे स्थिता । अतीतानागतं वेत्ति खेचरी च भवेद्भवम् ॥ १२७ ॥ अमरीं यः पिनेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिने दिने । वज्रोलीमभ्यसेन्नि-त्यममरोलीति कथ्यते ॥ १२८ ॥ ततो भवेदाजयोगो नान्तरा भवति अवस् । यदा तु राजयोगेन निष्पन्ना योगिभिः क्रिया ॥ १२९ ॥ तदा विवे-कवैराव्यं जायते योगिनो ध्रुवस् । विष्णुर्नाम महायोगी महाभूतो महातपाः ॥ १३० ॥ तत्त्वमार्गे यथा दीपो दश्यते पुरुषोत्तमः । यः स्तनः पूर्वपीतस्तं निष्पीड्य युद्मस्त्रते ॥ १३१ ॥ यसाजातो भगात्पूर्वं तसिन्नव भगे रमन् । या साता ला पुनर्भार्या या भार्या सातरेव हि ॥ १३२ ॥ यः पिता स पुनः पुत्रो यः पुत्रः स पुनः पिता । एवं संचारचकेण कूपचके घटा इव ॥ १३३ ॥ अमन्तो योनिजन्मानि श्रुत्वा लोकान्समश्रुते । त्रयो लोकास्त्रयो वेदासिसः संध्यास्त्रयः स्वराः ॥ १३४ ॥ त्रयोऽप्तयश्च त्रिगुणाः स्थिताः सर्वे त्रयाक्षरे । त्रयाणामक्षराणां च योऽधीतेऽप्यर्धमक्षरम् ॥ १३५ ॥ तेन सर्वमिदं प्रोतं तत्सत्यं तत्परं पदम् । पुष्पमध्ये यथा गन्धः पयोमध्ये यथा घृतम् ॥ १३६.॥ तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणेष्विव काञ्चनम् । हृदि स्थाने स्थितं पद्म तस्य वक्रमधोमुखम् ॥ १३७॥ जर्ध्वनालमधोबिन्दुस्तस्य मध्ये स्थितं मनः। अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते ॥ १३८ ॥ मकारे लभते नादमर्धमात्रा तु निश्चला । ग्रुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥ १३९ ॥ लभते योगयुक्तात्मा पुरुषस्तत्परं पदम् । कूर्मः स्वपाणिपादादि शिरश्चात्मनि धारयेत् ॥ १४० ॥ एवं द्वारेषु सर्वेषु वायुप्रितरेचितः । निषिद्धं तु नवद्वारे ऊर्ध्व प्राङ्निश्वसंस्तथा ॥ १४१ ॥ घटमध्ये यथा दीपो निवातं कुम्भकं विदुः । निषिद्धैर्नवभिद्धारिनिर्जने निरुपद्भवे॥ १४२॥ निश्चितं त्वात्ममात्रेणावशिष्टं योगसेवयेत्युपनिषत् ॥ ॐ सह नावविति शान्तिः ॥

इति योगतत्त्वोपनिषत्समासा ॥ ४३ ॥

आत्मप्रवीधोपनिषत् ॥ ४४ ॥

श्रीमन्नारायणाकारमष्टाक्षरमहाशयम् । स्वमात्रानुभवात्सिद्धमात्मवोधं हरिं भजे ॥ १ ॥ ॐ वाद्धो मनसीति शान्तिः ॥

ॐ प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्त्ररूपं अकार उकारो सकार इति न्यक्षरं प्रणवं तदेतदोमिति । यसुक्त्वा सुच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात् । ॐ नमो नारायणाय शङ्खचकगदाधराय तस्मात् ॐ नमो नारायणायेति मंत्रोपासको वैकुण्ठभुवनं गमिष्यति । अथ यदिदं ब्रह्मपुरं पुण्डरीकं तस्मात्तडिदाभमात्रं दीपवत्प्रकाशं ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो सधुसूदनः । ब्रह्मण्यः पुण्डरी-काक्षो ब्रह्मण्यो विप्णुरच्युतः ॥ सर्वभूतस्थासेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्मों । शोकमोहविनिर्भुक्तो विष्णुं ध्यायन्न सीदित । हैताहैतमभयं भव-ति मृत्योः स मृत्युमाप्तोति य इह नानेव पश्यति । हत्पद्ममध्ये सर्वं य-त्तत्प्रज्ञाने प्रतिष्ठितस् । प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं बहा । स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माह्योकादुत्कम्यासुध्मिनस्वर्गे लोके सर्वान्कामानास्वाऽसृतः सम-भवदमृतः समभवत् । यत्र ज्योतिरजसं यस्मिलोकेऽभ्यहितम् । तस्मिन्मां देहि स्वमानमृते लोके अक्षते अच्युते लोके अक्षते अमृतत्वं च गच्छत्यों नमः ॥ १ ॥ प्रगलितनिजमायोऽहं निस्तुलदशिरूपवस्तुमात्रोऽहम् । अस्तमिताहं-तोऽहं प्रगलितजगदीशजीवभेदोऽहम् ॥ १ ॥ प्रत्यगभिन्नपरोऽहं विध्वसारो-षविधिनिषेधोऽहम् । समुद्रसाश्रमितोऽहं प्रविततसुखपूर्णसंविदेवाहम् ॥ २ ॥ साक्ष्यनपेक्षोऽहं निजमहिन्नि संस्थोऽहमचलोऽहम् । अजरोऽहमच्ययोऽहं पक्षविपक्षादिभेदविधुरोऽहम् ॥ ३ ॥ अववोधेकरसोऽहं मोक्षानन्दैकसिन्धुरे-वाहम् । सूक्ष्मोऽहमक्षरोऽहं विगलितगुणजालकेवलात्माहम् ॥ ४ ॥ निस्रै-गुण्यपदोऽहं कुक्षिस्थानेकलोककलनोऽहम् । कूटस्थचेतनोऽहं निव्तियधामा-हमप्रतक्योंऽहम् ॥ ५ ॥ एकोऽहमविकलोऽहं निर्मलनिर्वाणमूर्तिरेवाहम् । निरवयवोऽहमजोऽहं केवलसन्मात्रसारभूतोऽहम् ॥ ६ ॥ निरवधिनिज-बोधोऽहं गुभतरभावोऽहमप्रभेद्योऽहम् । विभुरहमनवद्योऽहं निरवधिनिःसी मतस्वमात्रोऽहम् ॥ ७ ॥ वैद्योऽहमागमान्तैराराध्यः सक्छभुवनहृद्योऽहम्। परमानन्द्घनोऽहं परमानन्दैकभूमरूपोऽहम् ॥ ८ ॥ ग्रुद्धोऽहमद्वयोऽहं संततभानोऽहमादिश्र्न्योऽहस् । शमितान्तत्रितयोऽहं बद्दो सुक्तोऽहम-द्भुतात्माहस् ॥ ९ ॥ गुद्धोऽहमान्तरोऽहं शाश्वतविज्ञानसमरसात्माहस् । शोधि-तपरतत्त्वोऽहं बोधानन्दैकमूर्तिरेवाहम्॥ १०॥ विवेकयुक्तिबुद्धाहं जाना-अवात्मानमह्यस् । तथापि बन्धमोक्षादिव्यवहारः प्रतीयते ॥ ११ ॥ लिवृत्तोऽपि प्रपञ्जो से सत्यवद्वाति सर्वदा । सर्पादौ रजुसत्तेव ब्रह्म-सत्तेव केवलस् । प्रपञ्चाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्न हि ॥ १२ ॥ यथेशु-रससंद्याला शर्करा वर्तते तथा। अद्वयब्रह्मरूपेण व्याप्तोऽहं वे जगन्नयम् ॥ १३ ॥ वहादिकीटपर्यन्ताः प्राणिनो मिय कित्पताः । बुद्धदादिविकारा-न्तव्तरङ्गः सागरे यथा ॥ १४ ॥ तरङ्गस्यं द्रवं सिन्धुर्न वाञ्छति यथा तथा । विषयानन्द्वाल्छा से सा भूदानन्द्रूपतः॥ १५॥ दारिब्राशा यथा नास्ति संपन्नस्य तथा मम । ब्रह्मानन्दे निममस्य विषयाता न तन्नवेत् ॥ १६ ॥ विषं रङ्काऽसृतं रङ्का विषं त्यजति बुद्धिमान् । आत्मानमपि रङ्काहमनात्मानं त्यजाभ्यहस् ॥ १७ ॥ घटावभासको भानुर्घटनाहो न नश्यति । देहावभाः सकः लाक्षी देहनाहो न नहयति ॥ १८॥ न मे बन्धो न मे युक्तिनं से कार्श्वं न से गुंहः। सायामात्रविकासत्वान्मायातीतोऽहमद्वयः ॥ १९॥ प्राणाश्चलन्तु तद्वें: कासैवी हन्यतां यनः । आनन्दवुद्धिपूर्णस्य सम दुःखं कथं अवेत्॥ २०॥ आस्मानमञ्जसा वेदा काष्यज्ञानं पळाथि-तम्। कर्तृत्वमद्य मे नष्टं कर्तव्यं वापि न कचित्॥ २१॥ ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसीन्द्रयंजातयः । स्थूलदेहगता एते स्थूलाक्तित्रस्य मे नहि ॥ २२ ॥ श्चुन्पिपासान्ध्यवाधिर्यकामकोधादयोऽसिकाः । लिङ्गदेहगता एते छलि-इन्स्य न सन्ति हि ॥ २३ ॥ जडस्विप्रयमोद्द्वधर्माः कारणदेहगाः । न सन्ति अम नित्यस्य निर्विकारस्वस्विणः॥ २४॥ उत्हरूस्य यथा भानुरन्धकारः प्रती-यते । खप्रकारी परानम्दे तमो मूढस जायते ॥ २५ ॥ चतुर्दष्टिनिरोघेऽभ्रेः सूर्यो नास्तीति मन्यते । तथाऽज्ञानावृतो देही बहा नास्तीति मन्यते ॥ २६ ॥ यथासृतं विषामिशं विषदोषैनं लिप्यते । न स्पृशामि जडाझिन्नो जड-दोषाप्रकाशतः ॥ २७ ॥ स्वरुपापि दीपकणिका बहुलं नाशयेत्तमः । स्वरुपोऽप्रि बोधो निविडं बहुळं नाशयेत्तमः ॥ २८ ॥ काळत्रये यथा सपों रजी नास्ति तथा मयि । अहंकारादिदेहान्तं जगन्नास्त्यहमद्वयः ॥ २९ ॥ चिद्रूपःवान्न मे जाड्यं सत्यत्वाजानृतं मम । आनन्द्स्वाज मे दुःखमज्ञानाद्वाति सत्यवत्- ॥ ३० ॥ आत्मप्रबोधोपनिषन्मुहूर्तमुपासित्वा न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तत इत्युपनिषत् ॥ ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः ॥ इत्यात्मप्रबोधोपनिषत्समासा ॥ ४४ ॥

> नारदपरिवाजकोपनिषत् ॥ ४५ ॥ पारिवाज्यधर्भपूगालङ्कारा यत्प्रवोधतः । दशप्रणवलक्ष्यार्थं यान्ति तं राममाश्रये ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

परिवाद्त्रिशिखी सीताचूडानिर्वाणमण्डलम्। दक्षिणा शरभं स्कन्दं महा-नारायणाद्वयम् ॥ अथ कदाचित्परिवाजका भरणो नारदः सर्वलोकसंचारं कुर्वन न्नपूर्वपुण्यस्थकानि पुण्यतीर्थानि तीर्थीकुर्वन्नवलोक्य चित्तसुद्धि प्राप्य निवेरः शान्तो दान्तः सर्वतो निर्वेदमासाद्य स्वरूपानुसंधानमनुसंधाय नियमानन्दः विशेषगण्यं मुनिजनैरूपसंकीणं नैमिषारण्यं पुण्यस्थलमवलोक्य सरिगमपध-निससंज्ञैवैराग्यबोधकरैः स्वरविशेषैः प्रापञ्चिकपराञ्जुलहिरिकथालापैः स्थावरज-क्रमनामकैर्भगवद्गक्तिविदेरिपेरस्यार्किपुरुषामरिकं नराष्सरीगणानसंमोहयन्नाग-तं ब्रह्मात्मजं भगवद्भक्तं नारद्मवळोक्य द्वादशवर्षसत्रयागोपस्थिताः श्रुताध्य-यनसंपन्नाः सर्वज्ञास्तपोनिष्ठापराश्च ज्ञानवैराग्यसंपन्नाः ज्ञौनकादिमहर्षयः प्रत्युत्थानं कृत्वा नत्वा यथोचितातिथ्यपूर्वकमुपवेश्यित्वा स्वयं सर्वेऽप्युपिष्टा भो भगवन् ब्रह्मपुत्र कथं मुत्तयुपायोऽसाकं वक्तत्र्य इत्युक्तसान् स होवाच नारदः सत्कुलभवोपनीतः सम्यगुपनयनपूर्वकं चतुश्चस्वारिंशस्संस्कारसंपन्नः स्वाभिमतैकगुरुसमीपे स्वशासाध्ययनपूर्वकं सर्वविद्याभ्यासं कृत्वा द्वादशव-र्षग्रुश्रूषापूर्वकं ब्रह्मचयं पञ्चविंशतिवत्सरं गार्हस्थ्यं पञ्चविंशतिवत्सरं वानप्र-स्थाश्रमं तद्विधिवत्क्रमान्निर्वर्त्वं चतुर्विधब्रह्मचर्यं पड्विधं गाईस्थ्यं चतुर्विधं वा नप्रस्थिधमें सम्यगभ्यस्य तदुचितं कमें सर्वं निर्वर्त्यं साधनचतुष्टयसंपन्नः सर्व-संसारोपरि मनोवाकायकर्मभिर्यथाशानिवृत्तस्तथा वासनैषणोपर्यपि निवैरः शान्तो दान्तः संन्यासी परमहंसाश्रमेणारखितस्वस्वरूपध्यानेन देह्ह्यांग करोति स मुक्तो भवति स मुक्तो भवतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इति नारदपरिवाजकोपनिषत्सु प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

[:

अथ हैनं अगवन्तं नारदं सर्वे शौनकादयः पप्रच्छुभी भगवन् संन्यासविधि नो बहीति तानवलोक्य नारदस्तत्स्वरूपं सर्वं पितामहम्खेनैव ज्ञातुम्चितमि-न्युक्तवा सत्रयागपूर्व्यनन्तरं तैः सह सत्यलोकं गत्वा विधिवद्रह्मनिष्ठापरं परमेष्ठिनं नत्वा स्तत्वा यथोचितं तदाज्ञ्या तैः सहोपविश्य नारदः पितामहम्बाच गुरुस्यं जनकस्तं सर्वविद्यारहस्यज्ञः सर्वज्ञस्त्वमतो मत्तो मदिष्टं रहस्यमेकं वक्तव्यं त्वद्विना मद्भिमतरहस्यं वक्तं कः समर्थः । किमिति चेत् पारिवाज्य-स्वरूपक्रमं नो ब्रहीति नारदेन प्रार्थितः परमेष्ठी सर्वतः सर्वानवलोक्य सह-र्तमात्रं समाधिनिष्ठो भूत्वा संसारार्तिनिवृत्त्यन्वेषण इति निश्चित्य नारदमव-छोक्य तमाह पितामहः । पुरा मन्पुत्र पुरुषस्कोपनिषद्गहस्यप्रकारं निरतिश-याकारावलस्विना विरादपुरुषेणोपदिष्टं रहस्यं ते विविच्योच्यते तःक्रममतिर-हस्यं बाहमवहितो भूत्वा श्रूयतां भी नारद विधिवदादावनुपनीतोपनयनान-न्तरं तत्सरकुळप्रसूतः पितृमातृविधेयः पितृसमीपादन्यत्र सत्संप्रदायस्थं श्रद्धावन्तं सःकुलभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्सत्यं गुणवन्तमकुटिङं सद्गुहमासाद्य नःवा यथोपयोगशुश्रूषापूर्वकं स्वाभिमतं विज्ञाप्य द्वादशवर्षसेवापुरःसरं सर्वविद्याभ्यासं कृत्वा तद्नुज्ञ्या स्वकुलानुरूपामभिमतकन्यां विवाह्य पञ्च-विंशतिवत्सरं गुरुकुळवासं कृत्वाथ गुर्वनुज्ञया गृहस्थोचितकर्म कुर्वन्दौर्बोद्ध-ण्यनिवृत्तिमेत्य स्ववंशवृद्धिकामः पुत्रमेकमासाच गाईस्थ्योचितपञ्चविंशतिव-त्सरं तीरवी ततः पञ्चविंशतिवस्सरपर्यन्तं त्रिषवणमुद्कस्पर्शनपूर्वकं चतुर्थका-लमेकवारमाहारमाहरन्नयमेक एव वनस्थी भूत्वा पुरमामप्राक्तनसंचारं विहाय निकिर (?) विरहिततदाश्चितकमोंचितकृत्यं निर्वर्त्यं दृष्टश्रवणविषयवैतृष्ण्यमेत्य चत्वारिं शःसंस्कारसंपन्नः सर्वतो विरक्तश्चित्तशुद्धिमेत्याशासूचेष्पीईकारं दग्ध्वा साधनचतुष्टयसंपन्नः संन्यस्तुमईतीत्युपनिषत्॥ २॥

इति नारदपरिवाजकोपनिषत्स द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

अथ हैनं नारदः पितामहं पप्रच्छ अगवन् केन संन्यासाधिकारी वेत्येवमादौ संन्यासाधिकारिणं निरूप्य पश्चारसंन्यासविधिरुच्यते अवहितः ग्रुणु । अथ षण्डः पतितोऽङ्गविकछः खेणो बिधरोऽर्भको मूकः पाषण्डश्चकी लिङ्गी वैखा-नसहरद्विजो भृतकाध्यापकः शिपिविष्टोऽनिप्तको वैराग्यवन्तोऽप्येते न संन्या-साहौः संन्यसा यद्यपि महावाक्योपदेशेनाधिकारिणः पूर्वसंन्यासी परमहंसा-धिकारी ॥-परेणवात्मनश्चापि परस्येवात्मना तथा । अभयं समवामोति स परिवाहिति स्मृतिः ॥ १ ॥ षण्डोऽथ विकलोऽप्यन्धो बालकश्चापि पातकी । पतितश्च परद्वारी वेखानसहरद्विजौ ॥ २ ॥ चकी लिकी च पापण्डी तिपि. विष्टोऽप्यनक्षिकः । द्वित्रिवारेण संन्यस्तो अनुतकाध्यापकोऽपि च । प्रे नाई नित संन्यासमातुरेण विना क्रमस् ॥ ३ ॥ आतुरकालः कथमार्यसं-॥-प्राणस्योत्क्रमणासन्नकाखस्वातुरसंज्ञकः । नेतरस्त्वातुरः मुक्तिमार्गप्रवर्तकः ॥ ४ ॥ आतुरेऽपि च संन्यासे तत्तन्मञ्जपुरःसरम् । मञ्रावृत्तिं च कृत्वेव संन्यसेहिधिवहुधः ॥ ५ ॥ भातुरेऽपि कमे वापि प्रैपमेदो न कुत्रचित्। न मझं कर्मरहितं कर्म मञ्जभपेक्षते ॥ ६ ॥ अकर्म मञ्चाहितं नातो मत्रं परित्यजेत्। मत्रं विना कर्म कुर्याद्वसन्याहुतिवद्भवेत् ॥ ७॥ विध्युक्तकर्मसंक्षेपाःसंन्यासस्त्वातुरः स्मृतः । तस्मादातुरसंन्यासे मन्नावृत्ति-विधिर्सुने ॥ ८॥ आहितामिर्विरक्तक्षेद्शान्तरगतौ यदि । प्राजापलेष्टि-मस्वेव निर्वृत्येवाथ संन्यसेत् ॥ ९ ॥ मनसा वाथ विध्युक्तमन्नावृत्याथ वा जले । श्रुत्यनुष्टानमार्गेण कर्मानुष्टानमेत्र वा ॥ १० ॥ समाप्य संन्यसेद्विद्वान्तो चेत्पातित्यमाप्रुयात् ॥ ११ ॥ यदा मनसि संजातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु । तदा संन्यासमिच्छेत पतितः स्वाद्विपर्यये ॥ १२ ॥ विरक्तः प्रवजेद्धीमान्सरक्तरतु गृहे वसेत् । सरागो नरकं याति प्रवजिन्ह द्विजा-धमः ॥ १३ ॥ यस्यैतानि सुगुप्ताति जिह्नोपस्थोदरं करः । संन्यसेदकृतोदाहो बाह्मणी ब्रह्मचर्यवान् ॥ १४ ॥ संसारमेव निःसारं दृष्ट्रा सारदिदश्या। प्रवासकृतोद्वाहः परं वैराग्यमाश्रितः ॥ १५ ॥ प्रवृत्तिलक्षणं वर्म ज्ञानं संन्यासलक्षणम् । तस्माञ्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान् ॥ १६ ॥ यदा तु विदितं तत्त्रं परं ब्रह्म सनातनस्। तदैकदण्डं संगृह्य सोपवीतां शिखां त्यजेत् ॥ १७ ॥ परमात्मिन यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मिन । सर्वेपणाविति-र्मुकः स मैक्षं भोक्तुमहिति ॥ ३८ ॥ पूजितो वन्दितश्चेव सुप्रसन्नो यथा अवेत्। तथा चेत्ताड्यमानस्तु तदा अवति भैक्ष अक्।। १९॥ अहमेवाक्षरं ब्रह्म वासुदेवारुयमद्भयम् । इति भावो ध्रुवो यस्य तदा भवति भैक्षमुक् ॥ २० ॥ यस्मिन्शान्तिः शमः शौचं सत्यं संतोष आर्जवम् । अर्किचनमदः म्भश्च स कैवल्याश्रमे वसेत्॥ २१॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पाप-कम् । कर्मणा मनसा वाचा तदा भवति भैक्षभुक् ॥ २२ ॥ दशह्मणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः। वेदान्तान्विधवच्छुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः॥ २३॥ धतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिन्दियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमकोधो दशकं

u

i

11

रं

क्

7-

धर्मेळक्षणम् ॥ २४ ॥ अतीतान सरेद्रोगान तथानागतानपि । प्राप्तांश्र नाभिन-देचः स केवल्याश्रमे वसेत् ॥ २५ ॥ अन्तःस्थानीनिद्वयाण्यन्तर्वहि-द्यान्विषयान्वहिः । शक्नोति यः सदा कर्तुं स केवल्याश्रमे वसेत्॥ २६॥ प्राणे गते यथा देहः सुखं दुःखं न विन्दति । तथा चेत्राणयुक्तोऽपि स केवल्या-श्रमे वसेत् ॥ २७ ॥ कौपीनयुगर्छ कन्था दण्ड एकः परिग्रहः । यतेः परम-हंसस्य नाधिकं तु विधीयते ॥ २८ ॥ यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिप्र-हम् । रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥ २९ ॥ विशीर्णान्यमलान्येव चेलानि प्रथितानि तु । कृत्वा कन्थां बहिर्वासो धारवेद्वातुरिक्षतम् ॥ ३० ॥ एकवासा अवासा वा एकदृष्टिरलोलु :। एक एव चरेतिसं वर्षास्त्रेकत्र संवसेत् ॥ ३१ ॥ कुटुम्बं पुत्रदारांश्च चेदाङ्गानि च सर्वशः। यज्ञं यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा गृदश्चरेद्यतिः ॥ ३२ ॥ कामः क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहाद्यश्च ये। तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिवाण्निर्ममो भवेत्॥ ३३॥ रागहेषवियुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः । प्राणिहिंसानिष्टृत्तश्च सुनिः स्यात्सर्वनिस्पृहः ॥ ३४ ॥ दुम्भाहंकारनिर्भुक्ती हिंसापैशुन्यवर्ज़ितः। आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिमोंक्षम-वाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयः । संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति ॥ ३६ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शास्यति । हविषा कृष्णवत्रमेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ३० ॥ श्रुत्वा स्प्रद्वा च सुक्तवा च दृष्ट्वा घ्रात्वा च यो नरः। न हृष्यित ग्लायति वा स विजेयो जितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ यस्य वाब्बनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा । स वे सर्व-भवामोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ ३९ ॥ संमानाद्राह्मणो नित्यमुद्धिजेत विपादिव । अमृतस्येव चाकाङ्क्षदवमानस्य सर्वदा ॥ ४० ॥ सुखं द्यवमतः होते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवसन्ता विनदयति ॥ ४३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन। न चेमं देहमाश्रित्य वेरं कुर्वीत केनचित् ॥ ४२ ॥ कुध्यन्तं न प्रतिकुध्येदाक्षृष्टः क्वश्रः वदेत् । सप्तद्वारावकीर्णा च न वाचमनृतां वदेत्॥ ४३॥ अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निराशिषः। आतमनैय सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ४४ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन राग-हेपक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ४५ ॥ अस्थिस्थूणं कायुबद्धं मांसशोणितलेपितम्। चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः॥ ४६॥ जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥४७॥ मांसास्वप्यविणमूत्रसायुमजास्थिसंहतौ । देहे चेत्पीतिमानमृहो अविता नरकेऽपि सः ॥ ४८ ॥ सा कालपुत्रपदवी सा महावीचिवागुरा। सा-सिपत्रवनश्रेणी या देहेऽहमिति स्थितिः॥ ४९॥ सा त्याज्या सर्वयतेन सर्वनाः द्रोऽप्युपस्थिते । स्प्रष्ट्या सा न अव्येन सश्वमांसेन पुरुकसी ॥ ५० ॥ प्रिये-षु स्त्रेषु सुक्रतमप्रियेषु च दुष्कृतस् । विस्त्य ध्यानयोगेन ब्रह्माप्येति सनाः तनम् ॥ ५१ ॥ अनेन निधिना सर्वास्त्यक्ता सङ्गान्शनैः शनैः। सर्वेद्वन्द्वेवि-निर्मुको ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ५२ ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्धवर्थमसहायकः। शिद्धिसेकस्य पश्यन्हि न जहाति न हीयते ॥ ५३ ॥ कपाछं वृक्षमूलाति कुचेकान्यसहायता । समता चैव सर्वस्थिन्नेतन्युक्तस्य लक्षणम् ॥ ५४॥ सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः । एकारामः परिवर्ण्य भिक्षार्थं प्रा-ममाविशेत्॥ ५५॥ एको भिक्षुर्यथोक्तः स्याद्वावेव मिथुनं स्पृतम्। त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्व तु नगरायते ॥ ५६ ॥ नगरं नहि कर्तव्यं प्रामो वा मिथुनं तथा । एतत्रयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माचयनते यतिः ॥ ५७ ॥ राजवार्तादे तेषां स्यादिक्षावार्ता परस्परम् । स्नेहपेशुन्यमात्सर्यं संनिकरान संशयः ॥ ५८ ॥ एकाकी निःस्पृहस्तिष्ठेल हि केन सहालपेत् । द्वालारायणेत्वेन प्र-तिवाक्यं सदा यतिः ॥ ५९ ॥ एकाकी चिन्तयेद्रहा मनीवाक्वायकर्मभिः। मृत्यं च नाभिनन्देत जीवितं वा कथंचन ॥ ६०॥ कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ६१ ॥ अजिह्वः पण्डकः पङ्गरन्धो बधिर एव च । मुग्धश्च मुन्यते भिक्षुः पङ्भिरेतैर्न संशयः ॥ ६२ ॥ इद्मिष्टमिदं नेति योऽभन्नपि न सज्जति । हितं सत्यं मितं वक्ति तमजिह्नं प्रचक्षते ॥ ६३ । अधजातां यथा नारीं तथा घोडकवार्षिकी स्। शतवर्षं च यो दृष्टा निर्विकारः स षण्डकः ॥ ६४ ॥ भिक्षार्थमटनं यस्य विष्मूत्रकरणाय च । योजनात्र परं याति सर्वथा पङ्करेव सः ॥ ६५ ॥ तिष्ठतो वजतो वापि यस चक्षुर्न दूरगम्। चतुर्युगां भुवं मुक्तवा परिवाद सोऽन्ध उच्यते ॥ ६६ ॥ हिताहितं मनोरामं वचः शोकावहं तु यत् । श्रुःवापि न श्रुणोतीव बिधरः स प्रकीर्तितः ॥ ६७॥ सान्निध्ये विषयाणां यः समर्थो विकलेन्द्रियः। सुप्तवद्वर्तते नित्यं स भिश्चर्संग्ध उच्यते ॥६८॥ नटादिमेक्षणं द्यूतं प्रमदासुहृदं तथा। सह्यं भोज्यसुद्क्यां चवणन पश्येत्कदाचन ॥६९॥ रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं परात्मसु। षडेताित यति

रं

1

मं

11

ध

गन

तेन

र्नित्यं सनसापि न चिन्तयेत्॥७०॥ मञ्जकं शुक्रवस्रं च स्त्रीकथाकौत्यमेव च। दिवा स्वापं च यानं च यतीनां पातनानि पद ॥७१॥ दूरयात्रां प्रयत्नेन वर्जयेदा-त्मचिन्तकः । सदोपनिषदं विद्यामभ्यसेन्मुक्तिहेतुकीम्॥७२॥ न तीर्थसेवी नित्यं स्यान्नीपवासपरो यतिः। न चाध्ययनशीलः स्यान व्याख्यानपरो भवेत ॥ ७३ ॥ अपापमशठं वृत्तमजिहां नित्यमाचरेत् । इन्द्रियाणि समाहृत्य कृमों-ऽङ्ग्रानीव सर्वशः ॥ ७४ ॥ क्षीणेन्द्रियमनोवृत्तिर्निराशीर्निष्परित्रहः । निर्द्रेन्द्रो निर्ममस्कारो निःस्वधाकार एव च॥ ७५॥ निर्ममो निरहंकारो निरपेक्षो निराशिषः । विविक्तदेशसंसक्तो सुच्यते नात्र संशय इति ॥ ७६ ॥-अप्रमत्तः कर्मभक्तिज्ञानसंपन्नः स्वतन्त्रो वैराग्यमेत्य ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो वा मुख्य-वृत्तिका चेद्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद्गृहाद्वनी भूत्वा प्रवजेद्यदि वेतरथा ब्रह्म-चर्यादेव प्रवजेद्गृहाद्वा वनाद्वाऽथ पुनरवती वा वती वा स्नातको वाऽसातको वोत्सन्नाग्निरनिक्को वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेत्तद्धैके प्राजापत्यासे-वेधि कुर्वन्त्यथवा न कुर्यादाझ्येट्यामेव कुर्यादक्षिहि प्राणः प्राणमेवैतया करोति तसाझैधातवीयाभेव कुर्यादेतयेव त्रयो धातवी यदुत सत्त्वं रजसम इति॥ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नम आरोहाथानो वर्धया रियमित्यनेत मन्नेणामिमाजिन्नेदेष वा अन्नेगोनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनि गच्छ स्वाहे सेवमेवैतदाहवनीयाद्धिमाहस पूर्ववद्धिमाजि-व्रेयदक्षि न विन्देदप्सु जुहुयादापो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोसि स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य तदुदकं प्राश्लीयात्साज्यं हविरनामयं मोदमिति शिखां यज्ञोपत्रीतं पितरं पुत्रं कलत्रं कर्म चाध्ययनं मन्नान्तरं विसृज्यैव परि-वजलात्मविन्मोक्षभत्रैस्त्रैधातवीयैर्विधेसहस्य तदुपासितव्यमेवैतदिति ॥ पिता-महं पुनः पप्रच्छ नारदः कथमयज्ञोपवीती ब्राह्मण इति ॥ तमाह पितामहः । सिशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेहुधः । यदक्षरं परं ब्रह्म तत्स्त्रमिति धार-येत्॥ ७७ ॥ स्चनाःस्त्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् । तत्स्त्रं विदितं येन स विश्रो वेदपारगः ॥ ७८ ॥ येन सर्वमिदं श्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । तत्स्त्रं धारवैद्योगी योगवित्तःवदर्शनः ॥ ७९ ॥ बहिःसूत्रं त्यजेद्विद्वान्योगमुत्तममा-स्थितः । ब्रह्मभाविमदं सूत्रं धारयेद्यः सचेतनः । धारणात्तस्य स्त्रस नोि चिष्ठो नाशुचिर्भवेत्॥ ८०॥ सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम्। ते वै सूत्रविदो लोके ते च बज्ञोपबीतिनः ॥ ८१ ॥ ज्ञानशिखा ज्ञाननिधा त्यजेत ॥४७॥ मांसास्वपूयविणमूत्रकायुमजास्थिसंहतौ । देहे चेत्रीतिमान्महो अविता नरकेऽपि सः ॥ ४८ ॥ सा कालपुत्रपद्त्री सा महावीचिवागुरा। सा-सिपत्रवनश्रेणी या देहेऽहमिति स्थितिः ॥ ४९ ॥ सा त्याज्या सर्वयतेन सर्वना-जोऽप्यपस्थिते। स्प्रष्ट्या सा न अव्येन सश्वमांसेच पुरुकसी॥ ५०॥ प्रिवे-षु स्वेषु सक्तमित्रयेषु च दुष्कृतस् । विस्त्य ध्यानयोगेन ब्रह्माप्येति सनाः तनम् ॥ ५१ ॥ अनेन विधिना सर्वास्त्यन्त्वा सङ्गान्शनैः शनैः। सर्वद्वन्द्वेवि-निर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ५२ ॥ एक एव चरेन्नित्यं सिद्धवर्थमसहायकः। मिद्धिमेकस्य पश्यन्हि न जहाति न हीयते ॥ ५३ ॥ कपालं वृक्षमुलानि क्रचेकान्यसहायता । समता चैव सर्वस्मिनेतन्युक्तस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥ सर्वभतहितः शान्तखिदण्डी सकमण्डलुः । एकारामः परिवर्ण्य भिक्षार्थं ग्रा-समाविद्येत ॥ ५५ ॥ एको भिक्षर्यथोक्तः स्याद्वावेव भिथ्ननं स्पृतम् । त्रयो ब्रामः समाख्यात ऊर्ध्व त नगरायते ॥ ५६ ॥ नगरं नहि कर्तव्यं ग्रामो वा मिथुनं तथा । एतत्रयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माचयवते यतिः ॥ ५७ ॥ राजवार्तादि तेषां स्यादिक्षावार्ता परस्परम् । स्नेहपेशुन्यमात्सर्यं संनिकर्पान संशयः ॥ ५८ ॥ एकाकी निःस्पृहस्तिष्ठेश्व हि केन सहालपेत् । द्याबारायणेत्येव प्र-तिवाक्यं सदा यतिः ॥ ५९ ॥ एकाकी चिन्तयेद्रह्म मनीवाक्कायकर्मभिः। मृत्यं च नाभिनन्देत जीवितं वा कथंचन ॥ ६०॥ कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ६१ ॥ अजिह्नः वण्डकः पङ्करन्धो बधिर एव च । सुरुधश्च सुन्यते भिक्षुः षद्दभिरेतैर्न संशयः ॥ ६२ ॥ इद्मिष्टमिदं नेति योऽश्रज्ञपि न सज्जति । हितं सत्यं मितं वक्ति तमजिह्नं प्रचक्षते ॥ ६३ ॥ अधजातां यथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीस्। शतवर्षां च यो दृष्टा निर्विकारः स वण्डकः ॥ ६४ ॥ भिक्षार्थमटनं यस्य विष्मूत्रकरणाय च । योजनात परं याति सर्वथा पङ्करेव सः ॥ ६५ ॥ तिष्ठतो वजतो वापि यस चक्षुर्न दूरगम्। चतुर्युगां भुवं मुक्खा परिवाद सोऽन्ध उच्यते ॥ ६६ ॥ हिताहितं मनोरामं वचः शोकावहं तु यत् । श्रुत्वापि न श्रृणोतीव विधरः स प्रकीर्तितः ॥ ६७ ॥ सान्निध्ये विषयाणां यः समर्थो विकलेन्द्रियः। सुप्तवद्वर्तते नित्यं स भिक्षुर्मुग्ध उच्यते ॥६८॥ नटादिप्रेक्षणं चूतं प्रमदासुहृदं तथा। भक्ष्यं भोज्यसुद्क्यां चष्णन पक्ष्येकदाचन ॥६९॥ रागं द्वेषं मदं मायां दोहं मोहं परात्मसु। षडेतानि यति- निसं मनसापि न चिन्तयेत्॥७०॥ मञ्जकं ग्रुक्तवसं च स्त्रीकथाले।स्यमेव च। दिवा स्वापं च यानं च यतीनां पातनानि पद ॥७१॥ दूरयात्रां प्रयत्नेन वर्जयेदा-त्मचिन्तकः । सदोपनिषदं विद्यामभ्यसेन्मुक्तिहैतुकीम्॥७२॥ न तीर्थसेवी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः। न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत ॥ ७३ ॥ अपापमशठं वृत्तमजिसं नित्यमाचरेत् । इन्द्रियाणि समाहत्य कृमों-ऽङ्गःनीव सर्वेशः ॥ ७४ ॥ क्षीणेन्द्रियमनोवृत्तिनिराश्चीनिष्परिग्रहः । निर्द्रेन्द्रो निर्ममस्कारो निःस्वधाकार एव च॥ ७५॥ निर्ममो निरहंकारो निरपेक्षो निराशिषः । विविक्तदेशसंसक्तो युच्यते नात्र संशय इति ॥ ७६ ॥-अप्रमत्तः कप्रीक्षक्तिज्ञानसंपन्नः स्वतन्त्रो वेराग्यमेल ब्रह्मवारी गृही वानप्रस्थो वा सुख्य-वृत्तिका चेह्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद्गृहाह्ननी भृत्या प्रवजेद्यदि वेतरथा ब्रह्म-चर्यादेव प्रव्रजेद्धहाद्वा वनाद्वाऽथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नाग्निरनश्चिको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेत्तद्धैके प्राजापत्यामे-वेधि कुर्वन्त्यथवा न कुर्यादास्येटयामेव कुर्यादिमिहि प्राणः प्राणमेवैतया करोति तसाझैधातवीयामेव कुर्यादेतयेव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति॥ अयं ते यौनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नम आरोहाथानो वर्धया रियमित्यनेन मन्नेणामिमाजिब्रेदेष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनि गच्छ स्वाहेत्येवमेवैतदाहवनीयाद्ग्रिमाहत्य पूर्ववद्ग्निमाजि-बेबद्धिं न विन्देद्द्सु जुहुयादापो वे सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य तदुद्कं प्राक्षीयात्साज्यं हविरनामयं मोद्मिति शिखां यज्ञोपवीतं पितरं पुत्रं कलत्रं कर्म चाध्ययनं मन्नान्तरं विस्त्रयेव परि-वजलात्मविन्मोक्षभत्रैस्त्रैधातवीयैर्विधेसहस्य तदुपासितव्यमेवैतदिति ॥ पिता-महं पुनः पप्रच्छ नारदः कथमयज्ञोपवीती ब्राह्मण इति ॥ तमाह पितामहः । सिशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेहुधः । यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धार-येत्॥ ७७ ॥ सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् । तत्सूत्रं विदितं येन स विश्री चेदपारगः॥ ७८॥ येन सर्वमिदं शोतं सूत्रे मणिगणा इव। तत्सूत्रं धारवैद्योगी योगवित्तःवदर्शनः ॥ ७९ ॥ बहिःसूत्रं त्यजेद्विद्वान्योगमुत्तममा-स्थितः । ब्रह्मभावमिदं सूत्रं धारयेद्यः सचेतनः । धारणात्तस्य सूत्रस्य नोि छिष्टो नाद्यविभेवेत्॥८०॥ सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम्। ते वै सूत्रविदो लोके ते च बज्ञोपत्रीतिनः ॥ ८९ ॥ ज्ञानशिखा ज्ञानिष्ठा

ज्ञानयज्ञोपवीतिनः। ज्ञानमेव परं तेषां पवित्रं ज्ञानमुच्यते ॥ ८२ ॥ अमेरिव शिखा नान्या यस ज्ञानमयी शिखा। स शिखीत्युच्यते विद्वान्नेतरे केशधारिणः ॥ ८३ ॥ कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके बाह्मणाद्यः । तैर्विधार्यमिदं सूत्रं कियार्क्न उद्धि वे रशतस् ॥ ८४ ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयस् । शहाण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुरिति ॥ ८५ ॥ -तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः ारिबज्य परिवाडेकशारी सुण्डोऽपरियहः शरीरक्केशासहिष्णुश्चेद्यवा यथा-विधिश्चेजातरूपधरो भृत्वा सपुत्रसित्रकलत्रासवन्ध्वादीनि स्वाध्यायं सर्व-क्रमीण संन्यसायं ब्रह्माण्डं च सर्वं कीषीनं दण्डमाच्छाद्वं च त्यवत्वा द्वन्द्व-सिहिं च्युर्न शीतं न चोष्णं न सुखं न दुः खं न निद्रा न मानावमाने च पहू-र्मिवर्जितो निन्दाहंकारमःसरगर्वदम्भेष्यांसूयेच्छाह्रेषसुखडुःखकामकोधलोभ-मोहादीन्विस्ज्य स्वयपुः शवाकारमिव स्यत्वा स्वव्यतिरिक्तं सर्वभन्तर्वहिर-मन्यमानः कस्यापि वन्दनमञ्ज्ञत्वा न नमस्कारो न स्वाहाकारो न स्वधाकारो न निन्दास्त्तिर्याद्दिकको भवेद्यद्दछालाभसंतुष्टः स्ववर्णादील परिश्रहेलावाहनं न विसर्जनं न मन्नं नामन्नं न ध्यानं नीपासनं न लक्ष्यं नालक्ष्यं न पृथक् नाष्ट्रथक् न स्वन्यन्न सर्वन्नानिकेतः स्थिरमतिः झून्यागारवृक्षसूरुदेवगृहतृ-णकृटकुळाळशाळाशिहोत्रशाळाशिद्गिन्तरनदीतटपुळिनभूगृहकन्द्रतिर्झरस्य-ण्डिलेषु वने वा श्वेतकेतुऋशुनिदाघऋषभदुर्वासःसंवर्तकद्तात्रेयरैवतकवद-व्यक्तिकिङ्गोऽव्यक्ताचारो बालोनमत्तिष्माचवद्वुन्मत्तोनमत्तवद्वाचरंश्चिद्वण्डं शि-वयं पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौषीनं च तत्सर्वं मू:स्वाहेलण्सु परिलज्य कटिसूत्रं च कौपीनं दण्डं वस्त्रं कमण्डलुं सर्वभप्सु विस्ज्याथ जातरूपधरश्चरेदातमा-नमन्विच्छेद्यथा जातरूपघरो निर्द्धन्द्वो निष्परिग्रहस्तरवत्रह्यमार्गे सम्यक् संपन्नः गुद्रमानसः प्राणसंघारणार्थं यथोक्तकाले करपात्रेणान्येन वा याचिताहारमा-हरन् लाभाराभे समो भूत्वा निर्ममः शुक्रध्यानपरायणोऽध्यात्मतिष्टः शुभा-शुभकर्मनिर्मूळनपरः संन्यस्य पूर्णानन्दैकवोधस्तद्रसाहमस्मीति ब्रह्मप्रणवमनु-स्परन्ध्रमरकीटन्यायेन शरीरत्रयमुःस्ज्य संन्यासेनेव देहत्यांग करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषत्॥ ८६॥

इति नारदपरिवाजकोपनिषत्सु तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

त्यवःवा लोकांश्च चेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च । आत्मन्येव स्थितो यस्तु स याति परमां गतिम्॥ १॥ नामगोत्रादिवरणं देशं कालं श्चतं कुछम्।

वयो वृत्तं व्रतं शीलं ख्यापयेक्षेव सद्यतिः ॥ २ ॥ न संभाषेत्स्त्रयं कांचिरपूर्वेदष्टां च न सरेत्। कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येद्धिखितामपि ॥३॥ एतञ्चतुष्ट्यं मोहारछीणामाचरतो यतेः । चित्तं विक्रियतेऽवर्द्यं तद्विकारात्प्र-णइयति ॥ ४ ॥ तृष्णा क्रोधोऽनृतं माया छोभमोहौ प्रियाप्रिये । शिल्पं व्याख्यानयोगश्च कामो रागपरिग्रहः ॥ ५ ॥ अहंकारो ममत्वं च चिकित्सा धर्मसाहसम् । प्रायश्चित्तं प्रवासश्च मञ्जीषधपराशिषः ॥ ६ ॥ प्रतिषिद्धानि चैतानि सेवमानी व्रजेद्घः । आगच्छ गच्छ तिष्टेति स्वागतं सुहदीsिष वा ॥ ७ ॥ सन्माननं च न ब्रूयान्मुनिर्मोक्षपरायणः । प्रतिमहं न गृह्णीयाञ्जेव चान्यं प्रदापयेत् ॥ ८ ॥ प्रेरयेद्वा तया भिक्षुः स्वप्नेऽपि न कदा-चन । जायाञ्चानृसुतादीनां बन्धूनां च शुभाशुभम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वा न कापेत शोकहषीं खजेद्यतिः । अहिंसा सत्यमस्तेयब्रह्मचर्यापरियहाः ॥ १०॥ अनोद्धत्यमदीनत्वं प्रसादः स्थैर्यमार्जवम् । असेहो गुरुशुश्रवा श्रद्धा क्षान्ति-र्दमः शमः ॥ १३ ॥ उपेक्षा धेर्यमाधुर्ये तितिक्षा करणा तथा। हीस्तथा ज्ञानविज्ञाने योगो लघ्वशनं धतिः ॥ १२ ॥ एव स्वधर्मो विख्यातो यतीनां नियतात्मनाम् । निर्द्देन्द्रो नित्यसत्त्वस्थः सर्वत्र समदर्शनः ॥ १३ ॥ तुरीयः परमो हंसः साक्षानारायणो यतिः। एकरात्रं वसेद्रामे नगरे पञ्चरात्रकम्॥१४॥ वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत्। द्विरात्रं वा वसेद्वामे भिक्षयंदि वसेत्तदा ॥ १५ ॥ रागाद्यः प्रसज्वेरंस्तेनासौ नारकी भवेत्। प्रामान्ते निर्जने देशे नियतात्माऽनिकेतनः॥ १६॥ पर्यटे कीटवद्भमा वर्षास्वेकन्न संवसेत्। एकवासा अवासा वा एकदृष्टिरलोलुपः ॥१७॥ अदूषयन्सतां मार्ग ध्यानयुक्तो महीं चरेत्। ग्रुचौ देशे सदा भिक्षुः खधर्ममनुपालयन्॥ १८॥ पर्यटेत सदा योगी वीक्षयन्वसुधातलम् । न रात्रो न च मध्याहे संध्ययोनैव पर्यटन् ॥ १९ ॥ न झूत्ये न च दुर्गे वा प्राणिबाधाकरे न च । एकरात्रं वसे-इ। मे पत्तने तु दिनत्रयम् ॥ २०॥ पुरे दिनद्वयं भिक्षुर्नगरे पद्धरात्रकम्। वर्षास्वेकत्र तिष्ठेत स्थाने पुण्यजलावृते ॥ २१ ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि पद्य-न्सिक्षुश्चरेन्महीम् । अन्धवत्कुछावचेव विधरोन्मत्तमूकवत् ॥२२॥ स्नानं त्रिष-वणं प्रोक्तं बहूदकवनस्थयोः । ईसे तु सकृदेव स्थात्परहंसे न विद्यते ॥ २३ ॥ मोनं योगासनं योगस्तितिक्षैकान्तश्रीलता । निःस्पृहत्वं समत्वं च ससैतान्ये-कद्विडनाम् ॥ २४ ॥ परहंसाश्रमस्थो हि स्नानादेरविधानतः । अशेषचित्त- वृत्तीनां त्यागं केवळमाचरेत् ॥ २५ ॥ त्वङ्मांसरुघिरस्वायुमजामेदोस्थिसंहता । विष्मुत्रपूर्ये रमतां किमीणां कियद्नतरस् ॥ २६ ॥ क शरीरमशेषाणां श्रेष्मादीनां महाचयः । क चाङ्गशोभा सौभाग्यकमनीयादयो गुणाः ॥२०॥ मांसासक्पूयविण्मूत्रसायुमजास्थिसंहतौ । देहे चेत्रीतिमान्मूहो भविता नरकेऽपि सः ॥ २८ ॥ स्त्रीणामवाच्यदेशस्य हिन्ननाडीवणस्य च । अभे-देऽपि मनोभेदाजनः प्रायेण वज्ज्यते ॥ २९ ॥ चर्मखण्डं द्विधा भिन्नमपा-नोद्गारधूपितम् । ये रमन्ति नमस्तेभ्यः साहसं किमतः परम् ॥ ३०॥ न तस्य विद्यते कार्यं न लिक्नं वा विपश्चितः । निर्ममो निर्भयः ज्ञानतो निर्द्धन्द्वोऽवर्णभोजनः ॥ ३१ ॥ सुनिः कौपीनवासाः स्यान्नस्नो वा ध्यानतत्त्वरः । एवं ज्ञानपरो योगी इहाभूयाय कल्पते ॥ ३२ ॥ छिङ्गे सत्यपि खल्वस्पि-न्ज्ञानमेव हि कारणम् । निर्मोक्षायेह भूतानां लिङ्गप्रामी निरर्थकः ॥ ३३ ॥ यन्न सन्तं न चासन्तं नाश्चतं न बहुश्चतम्। न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मणः ॥ ३४ ॥ तस्माद्छिङ्गो धर्मज्ञो बह्मवृत्तमनुवतम् । गूडधर्माश्रिदौ विद्वानज्ञातचरितं चरेत् ॥ ३५ ॥ संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः। अन्धवजाडवचापि मूकवच महीं चरेत् ॥ ३६॥ तं दट्टा शान्तमनसं स्पृहयन्ति दिवीकसः । लिङ्गाभावात्तु कैवल्यमिति ब्रह्मानुशासनमिति ॥ ३७ ॥ अथ नारदः पितामहं संन्यासविधि नो बूहीति पप्रच्छ । पितामहस्तथेसङ्गी कृत्यातुरे वा क्रमे वापि तुरीयाश्रमस्त्रीकारार्थं कृच्छ्यायश्चित्तपूर्वकमप्टश्राई कुर्यादेवपिंदिव्यमनुष्यभूतपितृमात्राःमेलप्टश्राद्धानि कुर्यात्। प्रथमं सत्यव-सुसंज्ञकान्विधान्देवान्देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरानृषिश्राद्धे देवर्षिक्षत्रियर्षि-मनुष्यर्षीन् दिव्यश्राद्धे वसुरुद्रादित्यरूपान्मनुष्यश्राद्धे सनकसनन्दनसनःकुः मारसनःसुजातान्भृतश्राद्धे पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतानि चक्षुरादिकरणानि चतुर्विधभूतप्रामान्पितृश्राद्धे पितृपितामहप्रपितामहानमातृश्राद्धे मातृपिताः महीप्रिवितामहीरात्मश्राद्धे आत्मिवितृवितामहाञ्जीवत्वितृकश्चेत्वितरं त्यन्वा आत्मितामहप्रितामहानिति सर्वेत्र युग्मक्रुप्या बाह्यणानच्येदेकाध्वर-पक्षेऽष्टाध्वरपक्षे वा स्वशासानुगतमञ्जेरष्टश्राद्धान्यष्टदिनेषु वा वितृयागोक्तविधानेन ब्राह्मणानभ्यच्ये अक्तयन्तं यथाविधि निर्वर्थ पिण्डप्रदानानि निर्वर्त्य दक्षिणाताम्बूळैस्तोपियत्वा ब्राह्मणान्त्रेषियत्वा शेषकर्मे॰ सिद्धार्थं सप्तकेशान्विस्ज्य-'रोपकर्मप्रसिद्धार्थं केशान्ससाष्ट्रधा द्विजः । संक्षिप्य

वाववेत्पूर्वं केशरमश्रुनखानि च' इति सप्तकेशान्संरक्ष्य कक्षोपस्थवर्जं क्षोरपूर्वकं स्नारवा सायंसंध्यावन्दनं निर्वेतं सहस्रगायत्रीं जष्ठवा ब्रह्मयज्ञं निर्वेतं स्वाधी-नाग्निमुपस्थाप्य स्वशाखोपसंहरणं कृत्वा तदुक्तप्रकारेणाज्याहुतिमाज्यभागान्तं हृत्वाहुतिविधि समाप्यात्मादिभिस्त्रिवारं सक्तुप्राशनं कृत्वाचमनपूर्वकमि संरक्ष्य स्वयमग्नेरुत्तरतः कृष्णाजिनोपरि स्थित्वा पुराणश्रवणपूर्वकं जागरणं कृत्वा चतुर्थयामान्ते सात्वा तद्भी चहं श्रपयित्वा पुरुषसूक्तेनान्नस्य पोडशा-हतीर्दृत्वा विरजाहोमं कृत्वा अथाचम्य सदक्षिणं वस्त्रं सुवर्णपात्रं धेतं दत्त्वा समाप्य ब्रह्मोद्वासनं कृत्वा । सं मा सिखन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृह-स्पतिः । सं मायमिः सिञ्ज्ञत्वायुपा च धनेन च बलेन चायुष्मन्तः करोतु से हति । या ते असे यजिया तनुस्तयेह्यारोहात्मनात्मानम् । अच्छा वसूनि कुण्यन्नस्भे नर्या पुरूणि। यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिं जातवेदो अव आजायमानः स क्षय एधीत्यनेनामिमात्मन्यारोप्य ध्यात्वाप्तिं प्रदु-क्षिणनमस्कारपूर्वकमुद्रास्य प्रातःसंध्यामुपास्य सहस्रगायत्रीपूर्वकं सूर्योप-स्थानं कृत्वा नाभिद्ञोदकसुपविद्याष्टदिक्पालकार्घपूर्वकं गायन्युद्वासनं कृत्वा सावित्रीं व्याहृतिषु प्रवेशियत्वा । अहं वृक्षस्य रेरिव । कीर्तिः पृष्ठं गि-रेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीवस्वसृतमस्मि । द्रविणं मे सवर्चसं सुप्तेषा असु-तोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् । यरछन्दसामृपभो विश्वरूपः । छन्दो-भ्योऽध्यसृताःसंबभूव। स से इन्द्रो सेधया स्पृणोतु । असृतस्य देवधारणो भूयासं । शरीरं मे विचर्षणं । जिह्ना मे मधुमत्तमा । कणीभ्यां भूरि वि-अवं । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधयापिहितः । श्रुतं मे गोपाय । दारेषणा-याश्च वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च ब्युत्थितोऽहं 👺 भूः संन्यस्तं मया ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया ॐ भूभुंवःसुवः संन्यस्तं मयेति मन्द्रमध्यमतालजध्यतिभिर्मनसा वाचोचार्याभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते स्वाहेत्यनेन जलं प्राह्य प्राच्यां दिशि पूर्णाञ्जलि प्रक्षिप्यों खाहेति शुखामुत्पाट्य । यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमध्यं प्रतिमुख ग्रुभ्रं यज्ञोपत्रीतं बल्लमस्तु तेजः । यज्ञोपवीत बहिर्न निवसेस्त्वमन्तः प्रविश्य मध्ये ह्यजसं परमं पवित्रं यशो बर्क ज्ञानवैराग्यं मेघां प्रयच्छेति यज्ञोपवीतं छित्त्वा उदकाक्षितिना सह । ॐ भूः समुद्रं गच्छ स्वाहेत्यप्सु जुहुयात् । ॐ भूः संन्यस्तं भया । ॐसुवः संन्यस्तं भया । ॐसुवः

संन्यस्तं मयेति त्रिरुवत्वा त्रिवारमिमच्य तजालं प्राव्याचस्य ॐ भू: खाहे-त्यप्तु वस्त्रं कटिस्त्रमपि विस्त्रय सर्वकर्मनिर्वर्तकोऽहमिति स्मृत्वा जातस्त्र-धरो भूरवा स्वरूगानुसंधानपूर्वकसूर्ध्ववाहुरुदीचीं गच्छेरपूर्वविद्वहुरसंन्यासी चेद्वरोः सकाशास्त्रणवमहावावयोपदेशं प्राप्य यथासुखं विहरन्मत्तः कश्चि-नान्यो व्यतिरिक्त इति फलपत्रोदकाहारः पर्वतवनदेवतालयेषु संवरेत्संन्य-स्याथ दिगग्वरः सकलसंचारकः सर्वदानन्दस्वानुभवेकपूर्णहृद्यः कर्मातिद्र-प्राणायामपरायणः फलरसन्त्रकपत्रस्लोदकेमीक्षार्थी गिरिकन्द्रेषु विस्रजेदेहं सारंसारकम्। विविदिषासंन्य।सी चेच्छतपथं गत्वाचार्यादिभि-विंग्रेसिष्ठ तिष्ठ महाभाग दण्डं वस्त्रं कमण्डलुं गृहाण प्रणवमहावास्यग्रहणार्थं गुरुनिकटमागच्छेत्याचार्येद्णडकटिस्त्रकोषीनं शाटीमेकां कमण्डलुं पादा-दिसस्तकप्रमाणमवर्णं समं सौस्यमकारुपृष्ठं सरुक्षणं देणवं दण्डमेकमाचमनपूर वैंक सखा मा गोपायोचः सखायोऽसीन्द्रस्य चल्रोऽसि वार्ल्वः शर्म से भव यत्पापं तिश्ववारयेति दण्डं परिश्रहेज्जग्जीवनं जीवनाधारभूतं मा ते मा मन्त्रयस्य सर्वेदा सर्वसीस्येति प्रणवपूर्वकं कमण्डलुं परिगृहा कीपीनाधारं कटिसूत्रमोमिति गुह्याच्छादकं कोषीनमोमिति शीतवातोष्णत्राणकरं देहैक-रक्षणमोभिति कटिसूत्रकोषीनवस्त्रमाचसनपूर्वकं योगपद्दाभिषिको भूखा कृताथों इसिति सत्वा स्वाश्रमाचारपरो भवेदित्युपनिषत् ॥ ३८ ॥

इति नारदपरिव्राजकोपनिषत्सु चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

अथ हैनं पितामहं नारदः पप्रच्छ भगवन्सर्वकर्मनिवर्तकः संन्यास इति स्वयेवोक्तः पुनः स्वाश्रमाचारपरो भवेदित्युच्यते । ततः पितामह उवाच । वारीरस्य देहिनो जाप्रस्वमसुपुप्तितुरीयावस्थाः सन्ति तदधीनाः कर्मज्ञान-विराग्यप्रवर्तकाः पुरुषा जन्तवस्तद्रनुकूलाचाराः सन्ति तथेव चेन्नतवन्संन्या-साः कतिभेदास्तद्रनुष्टानभेदाः कीद्यास्तत्वतोऽस्माकं वक्तुमईसीति । तथेय-क्रीकृत्य तु पितामहेन संन्यासभेदेराचारभेदः कथिमिति चेक्तर्वतस्वेक एव संन्यासः अज्ञानेनाशक्तिवशास्कर्मलोपश्च न्नैविध्यमेत्य वैराग्यसंन्यासो ज्ञान-संन्यासो ज्ञानवेराग्यसंन्यासः कर्मसंन्यासश्चिति चातुर्विध्यमुपागतस्तवथेति दुष्टमदनाभावाचेति विषयवेतृष्ण्यमेत्य प्राक्षुण्यकर्मवशान्संन्यसः स वेराग्य-संन्यासी शास्त्रज्ञानात्पापपुण्यलोकानुभवश्रवणात्प्रपञ्चीपरतः क्रोधेर्धास्याहं-काराभिमानात्मकसर्वसंसारं निर्नृत्य दारेषणाधनेषणालोकेषणात्मकदेहवासनां

शास्त्रवासनां लोकवासनां त्यनत्वा वमनाश्वमिव प्रकृतीयं सर्विमिदं हेयं मत्वा साधनचतुष्ट्यसंपन्नो यः संन्यस्यति स एव ज्ञानसंन्यासा । क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराज्याभ्यां खरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी । ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भूत्वा वानप्रस्थाश्रममेत्य वैराग्यभावेऽप्याश्रमक्रमानुसारेण यः संन्यस्यति क्रभसंन्यासी । ब्रह्मचर्येण संन्यस्य संन्यासाजातरूपधरो वैराग्यसंन्यासी । बिद्धरसंन्यासी ज्ञानसंन्यासी विविदिपासंन्यासी कर्मसंन्यासी। कर्मसंन्याः सोऽपि द्विविधः निमित्तसंन्यासोऽनिमित्तसंन्यासश्चेति । निमित्तस्वातुरः । अतिमित्तः क्रमसंन्यासः । आतुरः सर्वकर्मछोपः प्राणस्योत्क्रमणकालसंन्यासः सितिप्रित्तसंन्यासः । दढाङ्गो भूत्वा सर्व कृतकं नश्वरमिति देहादिकं सर्व हेयं प्राप्य । हंसः ग्रुचिषद्वसुरन्तिरिक्षसद्वोता वेदिषदितिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसः हतसबोमसद्बा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् । ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं नश्वरमिति निश्चित्याथी क्रमेग यः संन्यस्पति स संन्यासोऽनिमित्तसंन्यासः। संन्यासः चिंद्विधो भवति । कुटीचको बहूदको हंसः परमहंसः तुरीया-तीतोऽवधूतश्चेति । दुटीचकः शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनकः न्थाधरः पितृमातृगुर्वाराधनपरः पिठरखनित्रशिक्यादिमत्रसाधनपर एकत्रा-बादनपरः श्वेतोध्र्वपुण्ड्घारी त्रिदण्डः । बहूदकः शिखादिकन्थाघास्त्रिपुण्ड्-धारी कुटी चक्रवत्सर्वसमो मधुकरवृत्याष्टकवलाशी हंसो जटाधारी त्रिपुण्डोधर्वः पुण्ड्धारी असंक्रुसमाधुकरात्राशी कौपीनखण्डतुण्डधारी । परमहंसः शिखा-यज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेष्वेकरात्राचादनपरः करपात्री एककौपीनधारी शाधी-मैकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीघरो वा अस्मोद्ध्लनपरः सर्वत्यागी । तुरीया-तीतो गोसुखः फलाहारी । अन्नाहारी चेद्गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः । अवधृतस्त्वनियमोऽभिशस्तपतितवर्जनपूर्वकं सर्ववर्णे-ष्वजगरतृत्याहारपरः स्वरूपानुसंधानपरः । भातुरो जीवति चेत्क्रमसंन्यासः कर्तेच्यः कुटी वकबहू दकहंसानां ब्रह्मचर्याश्रमादितुरीयाश्रमवत् कुटी वकादीनां संन्यासिविधिः । परमहंसादित्रयाणां न कटिसूत्रं न कौपीनं न वस्त्रं न कमण्डलुने दण्डः । सार्ववर्णेकमेक्षाटनपरस्वं जातरूपधरस्वं विधिः। संन्यासकालेऽप्यलंबुद्धिपर्यन्तमधीत्य तदनन्तरं कटिस्त्रं कोपीनं दण्डं वस्त्रं कमण्डलुं सर्वमप्सु विस्रवाथ जातरूपधरश्चरेत्र कन्थावेशो नाध्येतव्यो

न श्रोतव्यमन्याःकंचित्प्रणवादन्यं न तर्कं पठेल शब्दमपि बृहच्छन्दा-जाध्यापयेन महद्वाचोविग्लापनं गिरा पाण्यादिना संभाषणं नान्यसाद्वा विशेषेण न शूदस्त्रीपतितोदक्या संभाषणं न यतेर्देवपूजा नोत्सवदर्शनं तीर्थयात्रावृत्तिः । पुनर्यतिविशेषः । कुटीचकस्पैकत्र भिक्षा वहूदकस्पासंक्रमं माधुकरं हंसस्याष्टगृहेष्वष्टकवर्छ परमहंसस्य पञ्चगृहेषु करपात्रं फलाहारो गोमुखं तुरीयातीतस्यावधूतस्याजगरवृत्तिः सार्ववर्णिकेषु यतिनैंकरात्रं वसेन्न कस्यापि नमेत्त्रीयातीतावधूतयोर्न ज्येष्ठो यो न खरूपज्ञः । स ज्येष्ठोऽपि किनष्ठी हस्ताभ्यां नद्युत्तरगं न कुर्यान्न वृक्षमारोहेन्न यानादिरूढो न ऋयि-ऋयपरो न किंचिद्विनिमयपरो न दास्थिको नानृतवादी न यतेः किंचित्कर्त-व्यमस्त्रस्ति चेःसांकर्यम् । तस्मान्मननादौ संन्यासिनामधिकारः । आतुर-कुटीचकयोभूलोंको बहूदकस्य स्वर्गलोको हंसस्य तपोलोकः परमहंसस्य सत्यलोकस्तुरीयातीतावधूतयोः स्वात्मन्येव कैवर्ल्य स्वरूपानुसन्धानेन अमरकीटन्यायवत् । यं यं वापि सारन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेव समामोति नान्यथा श्रुतिशासनम् । तदेवं ज्ञात्वा स्वरूपानुसंधानं विनान्य-थाचारपरो न भवेत्तदाचारवशात्तत्त् होकप्राप्तिक् निवेराग्यसंपन्नस्य स्वसिन्नेव मुक्तिरिति न सर्वत्राचारप्रसक्तिस्तदाचारः । जाप्रत्संप्रमुषुप्तिष्वेकशरीरस्य जाग्रकाले विश्वः स्वप्नकाले तैजसः सुषुप्तिकाले प्राज्ञः अवस्थाभेदादवस्थे। श्वरभेदः कार्यभेदात्कारणभेदस्तासु चतुर्दशकारणानां बाह्यवृत्तयोऽन्तर्वृत्त-यस्तेषामुपादानकारणम् । वृत्तयश्चःवारः मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति । तत्तदृत्तिव्यापारसेदेन पृथगाचारसेदः । नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्टे स्वप्नं समाविशत् । सुषुप्तं हृदयस्यं तु तुरीयं सृक्षिं संस्थितम् । तुरीयमक्षरमिति ज्ञात्वा जागरिते सुवुस्यवस्थापन्न इव यद्यच्छुतं यद्यहृष्टं तत्तत्सर्वमविज्ञातमिव यो वसेत्तस्य स्वमावस्थायामपि ताद्दगवस्था भवति । स जीवनमुक्त इति वदन्ति । सर्वश्रुत्यर्थप्रतिपादनमपि तस्यैव मुक्तिरिति । भिक्षुर्नेहिकामुिष्मिका-पेक्षः । यद्यपेक्षास्ति तद्वनुरूपो भवति । स्वरूपानुसन्धानव्यतिरिक्तान्य-शास्त्राभ्यासैरुष्ट्राकुङ्कुसभारवद्यर्थो न योगशास्त्रप्रवृत्तिर्न सांख्यशास्त्रास्त्रासी न मन्नतन्त्रव्यापारः । इतरशास्त्रप्रवृत्तिर्यतेरस्ति चेच्छवालंकारवश्चर्मकारवद्रित-विदूरकर्माचारविद्यादूरो न प्रणवकीर्तनपरो यदात्कर्म करोति तत्तत्फलमनु-भवति एरण्डतेळकेनवद्तः सर्वं परित्यज्य तत्प्रसक्तं मनोदण्डं करपात्रं

हिग्रस्वरं दृष्ट्रा परिवजेद्धिक्षुः । बालोन्सत्तपिशाचवन्मरणं जीवितं वा न काह्नेत कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशभृतकन्यायेन परिवाडिति । तितिक्षाज्ञान-वैराग्यशमादिगुणवर्जितः । भिश्रामात्रेण जीवी स्वारस यतिर्यतिवृत्तिहा ॥१॥ न दण्डधारणेन न सुण्डनेन न वेषेण न दम्भाचारेण सुक्तिः । ज्ञानदण्डो धतो येन एकदण्डी स उच्यते । काष्टदण्डो धतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जित:। स याति नरकान्योरान्महारौरवसंज्ञितान् ॥ २ ॥ प्रतिष्ठा सुकरीविष्टासमा शीता महर्षिभः । तसादेनां परित्यज्ये कीटनत्पर्यटेवतिः ॥ ३ ॥ अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् । परेच्छया च दिग्वासाः स्नानं क्र्यासरे-च्छया॥ ४ ॥ स्वमेऽपि यो हि युक्तः स्याजामतीव विशेषतः । ईंद्रवचेष्टः रमृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ५ ॥ अलाभे न विपादी स्याह्याभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्थान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥ ६॥ सभिपूजि-तलाभांश्च जुगुप्सेतेव सर्वशः । अभिपूजितलाभेस्तु यतिर्भुक्तोऽपि वध्यते ॥ ७ ॥ प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । काले प्रशस्ते वर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद्वृहान् ॥ ८ ॥ पाणिपात्रश्चरन्योगी नासकृद्वैक्षमाचरेत् । तिष्ठन्भुक्षयाचरन्भुक्ष्यान्मध्येनाचमनं तथा ॥ ९ ॥ अध्धिवद्भृतमर्यादा अवन्ति विश्वदाशयाः । नियतिं न विमुखन्ति महान्तो भास्करा इव ॥ १० ॥ आस्पेन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः। तदा समः स्यासर्वेषु सोऽमृत-च्याय कल्पते ॥ ११ ॥ अनिन्यं वै बजेद्गेहं निन्यं गेहं तु वर्जयेत् । अनावृते विशेद्वारि गेहे नैवावृते बजेत् ॥ १२ ॥ पांसुना च प्रतिच्छन्नशून्यागार-प्रतिश्रयः । वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः ॥ १३ ॥ यत्रास्तमितशायी स्यान्निरिम्नरिकेतनः । यथालब्धोपजीवी स्थान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः ॥ १४ ॥ निष्क्रम्य वनमास्थाय ज्ञानयज्ञो जितेन्द्रियः । कालकाङ्घी चरन्नेव बह्मभूयाय कल्पते॥ १५॥ अभयं सर्वभूतेम्यो दस्वा चरति यो सुनिः। न तस्य सर्वभूतेश्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥ १६ ॥ निर्मानश्चानहंकारो निर्द्धन्द्विञ्जसंशयः । नैव कुध्यति न द्वेष्टि नानृतं भाषते गिरा ॥ १७ युण्यायतनचारी च भूतानामविहिंसकः । काले प्राप्ते भवेद्गेक्षं करप्यते असमूयसे ॥ १८ ॥ वानप्रस्थगृहस्थाम्यां न संसुज्येत किहीचित् । अज्ञात-चर्यां लिप्सेत न चेनं हुएं आविशेत्॥ १९॥ अध्वा सूर्येण निर्दिष्टः कीटवद्विचरेन्महीम् । आशीर्युक्तानि कर्माणि हिंसायुक्तानि यानि च ॥ २० ॥ कोकसंग्रहयुक्तानि नैव कुर्याच कारयेत्। नासच्छाखेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् । अतिवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कंचन नाश्रयेत् ॥ २१ ॥ न शिष्याननुबद्गीत यन्थान्नेवाभ्यसेद्वहून् । न व्याख्यासुपयुक्षीत नारम्भा-नारभेरकचित् ॥ २२ ॥ अव्यक्तिक्षोऽव्यक्तार्थो युनिहन्मत्तवालवत् । कविर्मूकवदात्मानं तदृष्ट्या दर्शयेवृणाम् ॥ २३ ॥ न कुर्यान्न वदेन्किचिन्न ध्यायेत्साध्यसाधु वा । आत्मारामोऽनया वृत्या विचरेजाडवन्सुनिः ॥ २४॥ एकश्ररेन्महीसेतां निःसङ्गः संयतेन्द्रियः । आत्मकीड आत्मरतिरात्मवा-न्समदर्शनः ॥ २५ ॥ बुधो बालकवस्कीडेरकुशको जडवखरेत् । वदेदुन्मत्तः विद्वान् गोचर्यां नेगमश्ररेत् ॥ २६ ॥ श्रिप्तोऽनमानिनोऽसिद्धः प्रज्ञधोsस्यितोऽपि वा । ताडितः संनिरुद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ २० ॥ विष्ठितो सूत्रितो वाज्ञैर्वहुधेवं प्रकटिपतः । श्रेयस्कामः छुच्छूगत आत्म-नात्मानसुद्देत् ॥ २८ ॥ संमाननं परां हानिं योगद्धेः कुरुते यतः । जनेना-वमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ॥ २९॥ तथा चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् । जना यथावमन्येरन्गच्छेयुनैंव सङ्गतिस् ॥ ६० ॥ जरायु-जाण्डजादीनां वाजानःकायकमीभः। युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसङ्गाध्य वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ कामकोधी तथा दर्पलीभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषाः न्परित्यज्य परिवाइ भयवर्जितः ॥ ३२ ॥ भैक्षाशनं च मौनिःवं तपो ध्यानं विशेषतः । सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ॥ ३३ ॥ काषाय-वासाः सततं ध्यानयोगपरायणः । ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेदेवाळचेऽि वा ॥ ३४ ॥ भैक्षेण वर्तयेत्रित्यं नैकालाशी भवेत्कचित् । चित्तशुद्धिभवे-द्यावत्तावित्तसं चरेत्सुवीः ॥ ३५ ॥ ततः प्रवज्य शुद्धातमा संचरेद्यत्र कुत्रचित्। बहिरन्तश्च सर्वत्र संपर्यन्हि जनाद्नम्॥ ३६॥ सर्वत्र विचरे-न्मोनी वायुवद्दीतकल्मषः। समदुःखसुखः क्षान्तो इस्तप्रासं च अक्षयेत् ॥ ३० ॥ निर्वेरेण समं परयन्द्रिजगोऽश्वसृगादिषु । आवयन्सनसा विष्णुं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ३८ ॥ चिन्मयं परमानन्दं ब्रह्मैश्राहमिति स्परन् । ज्ञारवैवं मनोदण्डं घरवा आशानिवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरी भूत्वा सर्वदा मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वसंसारमुःसञ्च प्रपञ्चावाञ्ज्यः स्वरूपानुसन्धानेन अमरकीटन्यायेन मुक्ती भवतीः युपनिषत् ॥ ३९ ॥

इति नारदपरिवाजकोपनिषत्सु पञ्चमोपदेशः ॥ ५ ॥

अथ नारदः पितामहमुवाच ॥ भगवन् तद्भ्यासवशात् भ्रमरकीटन्याय-वत्तद्भ्यासः कथमिति । तमाह पितामहः । सत्यवाग्ज्ञानवराग्याभ्याः विशिष्टदेहावशिष्टो वसेत् । ज्ञानं शरीरं वैराग्यं जीवनं विद्वि शान्तिदान्ती नेत्रे मनो मुखं बुद्धिः कला पञ्चविंशतितत्त्वान्यवयवा अवस्था पञ्चमहा-भूतानि कर्म भक्तिज्ञानवैराग्यं शाखा जायत्स्वमसुषुतितुरीयाश्चतुर्दशकरणानि पङ्कसम्भाकाराणीति । एवमपि नावमतिपङ्कं कर्णधार इव यन्तेव गर्ज स्रवुद्धा वशीकृत्य स्वचातिरिक्तं सर्वं कृतकं नश्वरमिति मत्वा विरक्तः पुरुषः सर्वदा ब्रह्माहमिति व्यवहरेन्नान्यिंकचिद्वेदितव्यं खव्यतिरेकेण । जीवनमुक्तो वसेत्कृतकृत्यो भवति । न नाहं ब्रह्मेति व्यवहरेत्कितु ब्रह्माहमसीत्यजसं जाग्रत्स्वप्तसुयुप्तिषु । तुरीयावस्थां प्राप्य तुरीयातीतत्वं वजेदिवा जाग्रवकं स्त्रमं सुपुष्तमर्धरात्रं गतमित्येकावस्थायां चतस्रोऽवस्थास्त्वेकेककरणाघीनानां चतुर्दशकरणानां व्यापारश्रक्षुरादीनाम् । चक्षुषो रूपग्रहणं श्रोत्रयोः शब्दग्रहणं जिह्नाया रसास्वादनं घाणस्य गन्धग्रहणं वचसो वाग्यापारः पाणेरादानं पादयोः संचारः पायोरुत्सर्ग उपस्थस्यानन्दग्रहणं त्वचः स्पर्शग्रहणम्। तद्घीना च विषयग्रहणबुद्धिः बुद्धा बुध्यति चित्तेन चेतयसहंकारेणा-हंकरोति । विसुज्य जीव एतान्देहाभिमानेन जीवो भवति । गृहाभिमानेन गृहस्थ इव शरीरे जीवः संचरति । प्राग्दले पुण्यावृत्तिराग्नेय्यां निद्राळस्या दक्षिणायां क्रीर्यबुद्धिनेंर्ऋत्यां पापबुद्धिः पश्चिमे क्रीडारतिर्वायव्यां गमने बुद्धिरुत्तरे शान्तिरीशान्ये ज्ञानं कर्णिकायां वैराग्यं केसरेष्वात्मचिन्ता इत्येवं वक्रं ज्ञात्वा जीवदवस्थां प्रथमं जायद्वितीयं स्वप्नं तृतीयं सुषुप्तं चतुर्थं तुरीयं चतुर्भिर्विरहितं तुरीयातीतम् । विश्वतैजसप्राज्ञतटस्यभेदैरेक एव एको देवः साक्षी निर्गुणश्च तद्रह्माहमिति व्याहरेत्। नो चेजाग्रदवस्थायां जाग्रदादि-चतस्रोऽवस्थाः स्त्रमे स्त्रमादिचतस्रोऽवस्थाः सुषुते सुषुध्यादिचतस्रोऽवस्थाः तुरीये तुरीयादिचतस्रोऽवस्थाः न त्वेवं तुरीयातीतस्य निर्गुणस्य । स्थूलस्यम-कारणरूपैर्विश्वतजसप्राज्ञेश्वरैः सर्वावस्थासु साक्षी त्वेक एवावतिष्ठते । उत तटस्थो दृष्टा तटस्थो न दृष्टा दृष्ट्रवात दृष्टैव कर्तृत्वभोक्तृत्वाहंकारादिभिः स्पृष्टो जीवः जीवेतरो न स्पृष्टः। जीवोऽपि न स्पृष्ट इति चेन्न। जीवाभि-मानेन क्षेत्राभिमानः । शरीराभिमानेन जीवत्वम् । जीवत्वं घटाकाशमहा-काशवद्यवधानेऽस्ति । व्यवधानवशादेव हंसः सोऽहमिति मन्नेणोच्छास-

निःश्वासव्यपदेशेनानुसन्धानं करोति । एवं विज्ञाय शरीराभिमानं त्यजेब शरीराभिमानी भवति । स एव ब्रह्मेत्युच्यते । त्यक्तसङ्गो जितकोधो कच्वाहारो जितेन्द्रियः । पिधाय बुद्धा द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत ॥ १ ॥ शून्येव्वेवावकारीषु गुहासु च वनेषु । नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ॥ २ ॥ आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च । महाजनेषु सिद्धर्था न गच्छेद्योगवित्कचित् ॥ ३ ॥ यथैनसवसन्यन्ते परिभवन्ति च । तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां वत्र्भं न दूषयेत् ॥ ४ ॥ वाग्दण्डः कर्मदण्डश्र मनोदण्डश्र ते त्रयः । यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महा-यतिः ॥ ५ ॥ विधूमे च प्रशान्तामी यस्तु माधुकशी चरेत्। गृहे च विष्रमुख्यानां यतिः सर्वोत्तमः स्मृतः ॥ ६ ॥ दण्डिभक्षां च यः क्र्यात्स्वधमें व्यसनं विना । यस्तिष्ठति न वैराग्यं याति नीचयति हिं सः ॥ ७ ॥ यस्मिन गृहे विशेषेण लभेदिक्षां च वासनात् । तत्र नो याति यो भयः स यतिर्नेतरः स्मृतः ॥ ८ ॥ यः शरीरेन्द्रियाद्भियो विहीनं सर्वसाक्षिणम् । पारमार्थिकविज्ञानं सुखाःमानं स्वयंप्रभम् ॥ ९ ॥ परतत्त्वं विजानाति सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत । वर्णाश्रमादयो देहे मायया परिकृष्पिताः ॥ १० ॥ नात्मनो बोधरूपस्य मम ते सन्ति सर्वदा । इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥ ११ ॥ यस्य वर्णाश्रमाचारो गलितः स्वात्मदर्श-नात्। स वर्णानाश्रमान्सर्वानतीत्य स्वात्मनि स्थितः ॥ १२ ॥ योऽतीत्य स्वाश्रमान्वर्णानात्मन्येव स्थितः पुमान् । सोऽतिवर्णाश्रमी प्रोक्तः सर्ववेदार्थ-वेदिभिः ॥ १३ ॥ तस्माद्न्यगता वर्णा आश्रमा अपि नारद । आत्मन्यारो-पिताः सर्वे आन्त्या तेनात्मवेदिना ॥ १४ ॥ न विधिर्न निषेधश्च न वर्ज्या-वर्ज्यकल्पना । ब्रह्मविज्ञानिनामस्ति तथा नान्यच नारद ॥ १५ ॥ विरज्य सर्व-भूतेभ्य आ विरिज्ञिपदाद्पि । घृणां विपाट्य सर्वस्मिन्पुत्रमित्रादिकेष्वपि ॥ १६ ॥ श्रद्धालुर्मुक्तिमार्गेषु वेदान्तज्ञानलिप्सया । उपायनकरो भूत्वा गुरुं ब्रह्मविदं वजेत् ॥ १७ ॥ सेवाभिः परितोध्यैनं चिरकालं समाहितः । सदा वेदान्तवाक्यार्थं ऋणुयात्सुसमाहितः ॥ १८ ॥ निर्ममो निरहंकारः सर्वसङ्ग-विवर्जितः । सदा शान्त्यादियुक्तः सन्नात्मन्यात्मानमीक्षते ॥ १९ ॥ संसार-दोषदृष्टयेव विरक्तिर्जायते सदा । विरक्तस्य तु संसाराःसंन्यासः स्यान्न संशयः ॥ २० ॥ सुमुक्षुः परहंसाख्यः साक्षान्मोक्षेकसाधनम् । अभ्यसेद्रहाविज्ञानं

वेदान्तश्रवणादिना ॥ २१ ॥ बहाविज्ञानलाभाय परहंससमाह्नयः । शान्ति-दान्त्यादिभिः सर्वैः साधनैः सहितो भवेत् ॥ २२ ॥ वेदान्ताभ्यासनिरतः शान्तो दन्तो जितेन्द्रियः । निर्भयो निर्ममो नित्यो निर्द्रन्द्रो निष्परिग्रहः ॥ २३ ॥ जीर्णकोपीनवासाः स्थान्मुण्डी नम्नोऽथ वा भवेत् । प्राज्ञो वेदान्तवि-होगी निर्ममो निरहंकृतिः ॥ २४ ॥ मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जन्तुषु । एको ज्ञानी प्रशान्तात्मा स संतरति नेतरः ॥ २५ ॥ गुरूणां च हिते युक्तस्तत्र संवत्सरं वसेत् । नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत् ॥२६॥ प्राप्य चान्ते ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम्। अविरोधेन धर्मस्य संचरेत्पृथिवीमिमाम् ॥ २७ ॥ ततः संवत्सरस्यान्ते ज्ञानयोगमनुत्तमम् । भाश्रमत्रयमुत्सुज्य प्राप्तश्च परमाश्रमम् ॥ २८ ॥ अनुज्ञाप्य गुरूंश्चेव चरेद्धि पृथिवीमिमाम् । त्यक्तमङ्गो जितकोघो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ॥ २९ ॥ द्वा-विमो न विरज्येते विपरीतेन कर्मणा। निरारम्भो गृहस्थश्च कार्यवांश्चेव भिक्ष-कः ॥ ३० ॥ साद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति । तस्मादृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ३१ ॥ संभाषणं सह स्त्रीभिरालापः प्रेक्षणं तथा । नृतं गानं सहासं च परिवादांश्च वर्जयेत् ॥ ३२ ॥ न स्नानं न जपः पूजा न होमो नैव साधनम् । नामिकार्यादिकार्यं च नैतस्यासीह नारद् ॥ ३३ ॥ नार्चनं पितृकार्यं च तीर्थयात्रा बतानि च । धर्माधर्मादिकं नास्ति न विधि-लैंकिकी किया॥ ३४॥ संत्यजेत्सर्वकर्माणि लोकाचारं च सर्वशः। कृमि-कीटपतङ्गांश्च तथा योगी वनस्पतीन् ॥ ३५ ॥ न नाशयेद्धधो जीवन्परमार्थ-मतिर्यतिः । नित्यमन्तर्भुखः स्वच्छः प्रशान्तात्मा स्वपूर्णघीः ॥ ३६ ॥ अन्तः-सङ्गपरित्यागी लोके विहर नारद। नाराजके जनपदे चरत्येकचरो मुनिः ॥ ३७ ॥ निःस्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च । चलाचलनिकेतश्च यतिर्याद्दच्छिको भवेदित्युपनिषत्॥ ३८॥

इति नारदपरिवाजकोपनिषत्सु षष्टोपदेशः ॥ ६ ॥

अथ यतेर्नियमः कथमिति पृष्टं नारदं पितामहः पुरस्कृत्य विरक्तः सन्यो वर्षासु ध्रुवशीळोऽष्टो मास्येकाकी चरन्नेकत्र निवसेद्विक्ष्रभयात्सारङ्गवदेकत्र न तिष्ठेत्स्वगमनिरोधग्रहणं न कुर्योद्धस्ताभ्यां नद्यत्तरणं न कुर्योन्न वृक्षारो-हणमपि न देवोत्सवदर्शनं कुर्यान्नैकत्र।श्री न बाह्यदेवार्चनं कुर्यात्स्वव्यतिरिकं सर्वं सक्त्वा मधुकरवृत्याहारमाहरन्क्षशो भूत्वा मेदोवृद्धिमकुर्वनाज्यं रुधिर-

मिव त्यजेदेकत्रान्नं पललमिव गन्धलेपनमशुद्धिलेपनमिव क्षारमन्त्यजमिव वस्त्रमुच्छिष्टपात्रमिवाभ्यक्नं स्त्रीसङ्गमिव मित्राह्णादकं मूत्रमिव स्पृहां गोमांस-मिव ज्ञातचरदेशं चण्डालवाटिकामिव खियमहिमिव सुवर्णं कालकूटमिव सभास्थकं इमशानस्थलमिव राजधानीं कुम्भीपाकमिव शवपिण्डवदेकत्रानं न देहान्तरदर्शनं प्रपञ्चवृत्ति परित्यज्य स्वदेशसुत्स्ज्य ज्ञातचरदेशं विहाय विस्मृतपदार्थं पुनः प्राप्तहर्ष इव स्वमानन्दमनुस्मरन्स्वशरीराभिमानदेशवि-स्मरणं मत्वा स्वशरीरं शवमिव हेयमुपगम्य कारागृहविनिमुक्तचोरवरपुत्राप्त-बन्धुभवस्थलं विहाय दूरतो वसेत् ॥१॥ अयतेन प्राप्तमाहरन्ब्रह्मप्रणवध्यानानु-सन्धानपरो भूत्वा सर्वकर्मनिर्मुक्तः कामकोधलोभमोहमदमात्सर्यादिकं द्रग्ध्वा त्रिगुणातीतः षड्वभिरहितः षड्भावविकारश्र्न्यः सत्यवाक्शुचिरद्रोही ग्राम एकरात्रं पत्तने पञ्चरात्रं क्षेत्रे पञ्चरात्रं तीर्थे पञ्चरात्रमनिकेतः स्थिरमः तिनीनृतवादी गिरिकन्दरेषु वसेदेक एव हो वा चरेत् यामं त्रिभिर्नगरं चतु-भिर्मामित्येकश्चरेत्। भिक्षुश्चतुर्दशकरणानां न तत्रावकाशं द्यादविच्छित्न-ज्ञानाद्वेराग्यसंपत्तिमनुभूय मत्तो न कश्चित्रान्यो व्यतिरिक्त इत्यात्मन्यालोच्य स्वरूपमेव पदयञ्जीवनमुक्तिमवाष्य प्रारब्धप्रतिभासनाशपर्थन्तं चतुर्विधं स्वरूपं ज्ञाःवा देहपतनपर्थन्तं स्वरूपानुसंधानेन वसेत्॥ २॥ त्रिषवणः स्नानं कुटीचकस्य बहूदकस्य द्विवारं हंसस्येकवारं परमहंसस्य मानसस्नानं तुरीयातीतस्य भस्मस्नानमवधृतस्य वायव्यस्नानम् । ऊर्ध्वपुण्डूं कुटीचकस्य त्रिपुण्ड्ं बहूदकस्य ऊर्ध्वपुण्ड्ं त्रिपुण्ड्ं हंसस्य भस्मोद्भूलनं परमहंसस्य तुरीया-तीतस्य तिलकपुण्ड्मवधृतस्य न किंचित्। तुरीयातीतावधृतयोः ऋतुक्षौरं कुटीचकस्य ऋतुद्वयक्षोरं बहूदकस्य न क्षोरं हंसस्य परमहंसस्य च न क्षोरम्। अस्ति चेदयनक्षौरम् । तुरीयातीतावधूतयोः न क्षौरम् । कुटीचकस्पैकार्ध माधुकरं बहूदकस्य हंसपरमहंसयोः करपात्रं तुरीयातीतस्य गोमुखं अवधूत-स्याजगरवृत्तिः । शाटीद्वयं कुटीचकस्य बहूदकस्यैकशाटी हंसस्य खण्डं दिग-म्बरं परमहंसस्य एककोपीनं वा तुरीयातीतावधूतयोजीतरूपधरत्वं हंसपरम-हंसयोरजिनं न त्वन्येषाम् ॥३॥ कूटीचकबहूदकयोदेंव।चनं हंसपरमहंसयोमीन-सार्चनं तुरीयातीतावधूतयोः सोहं भावना। कुटी चकबहू दकयोर्मे ब्रजपाधिकारो हंसपरमहंसयोध्यानिधकारस्तुरीयातीतावधृतयोने त्वन्याधिकारस्तुरीयाती-तावधूतयोर्महावाक्योपदेशाधिकारः परमहंसस्यापि । कुटीचकबहूदकहंसानां नान्यस्रोपदेशाधिकारः । कुटीचकबहूदकयोमीनुषप्रणवः हंसपरमहंसयोरा-न्तरप्रणवः तुरीयातीतावधूतयोर्वह्मप्रणवः । कुटीचकबहूदकयोः श्रवणं इंस-परमहंसयोर्मननं तुरीयातीतावधूतयोर्निदिध्यासः । सर्वेषामान्मानुसन्धानं विधिरित्येव सुसुक्षुः सर्वेदा संसारतारकं तारकमनुस्मरञ्जीवन्मुक्तो वसेदधि-कारविशेषेण कैवल्यपाह्युपायमन्विष्येयतिरित्युपनिषत् ॥ ४ ॥

इति नारदपरित्राजकोपनिषत्सु सप्तमोपदेशः ॥ ७॥

अय हैनं अगवन्तं परमेष्ठिनं नारदः पप्रच्छ संसारतारकं प्रसन्नो बृहीति। परमेष्टी वक्तुसुपचक्रमे श्रोमिति ब्रह्मेति व्यष्टिसमष्टिप्रकारेण । का व्यष्टिः का समष्टिः संहारप्रणवः सृष्टिप्रणवश्चान्तर्वहिश्चोभयात्मकत्वात्रि-विधो ब्रह्मप्रजवः । अन्तःप्रणवो व्यावहारिकप्रणवः । बाह्मप्रणव आर्षप्रणवः । उभयात्मको विराद्प्रणवः । संहारप्रणवो ब्रह्मप्रणव अर्धमात्राप्रणवः । सो-मिति ब्रह्म । ओमित्येकाक्षरमन्तःप्रणवं विद्धि । स चाष्ट्रधा भिद्यते । अकारो-कारमकारार्धमात्रानाद्बिन्दुकलाशक्तिश्चेति । तत्र चःवार अकारश्चायुतावय-वान्वित उकारः सहस्रावयवान्वितो मकारः शतावयवोपेतोऽर्धमात्राप्रणवो-ऽनन्तावयवाकारः । सगुणो विराद्मणवः संहारो निर्गुणप्रणव उभयात्मकोत्प-त्तिप्रणवो यथाञ्जतो विराद्युतः युतसंहारो विराद्प्रणवः पोडशमात्रात्मकः पद्त्रिंशत्तत्वातीतः । षोडशमात्रात्मकत्वं कथमित्युच्यते । अकारः प्रथमो-कारो द्वितीया मकारस्तृतीयार्धमात्रा चतुर्थी नादः पञ्चमी विन्दुः पष्टी कला सप्तमी कलातीताष्टमी शान्तिनेवमी शान्त्यतीता दशमी उनमन्येकादशी अनोन्मनी द्वादशी पुरी त्रयोदशी मध्यमा चतुर्दशी पश्यन्ती पञ्चदशी परा। षोडशी पुनश्चतुःपष्टिमात्रा प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यमासाद्याष्टाविंशत्युत्तरभेदमात्रा-स्बरूपमासाच सगुणनिर्गुणस्वसुपेत्वैकोऽपि ब्रह्मप्रणवः सर्वाधारः परंज्योति-रेष सर्वेश्वरो विभुः सर्वदेवमयः सर्वप्रपञ्चाधारगर्भितः ॥ १ ॥ सर्वाक्षरमयः कारूः सर्वागनमयः शिवः । सर्वश्रुत्युत्तमो मृग्यः सक्छोपनिपन्मयः ॥ २ ॥ भूतं भव्यं भविष्यचित्रकालोदितमव्ययम् । तद्प्योंकारमेवायं विद्धि मोक्षप्र-दायकम् ॥ ३ ॥ तमेवात्मानमित्येतद्रह्मशब्देन वर्णितम् । तदेकममृतमजरम-नुभूय तथोमिति ॥ ४ ॥ सशरीरं समक्तेष्य तन्मयःवं तथोमिति । त्रिशरीरं तमात्मानं परं ब्रह्म विनिश्चिनु ॥५॥ परं ब्रह्मानुसंदध्याद्विश्वादीनां कमः कमात्। रथूलत्वाःस्थूलभुक्त्वाच सूक्ष्मत्वात्सूक्ष्मभुक् परम् ॥ ६ ॥ ऐक्यत्वानन्दभोगाच

सोऽयमारमा चतुर्विधः । चतुष्पाजागरितः स्थूलः स्थूलप्रज्ञो हि विश्वभुक ॥ ७॥ एकोनविंशतिमुखः साष्टाङ्गः सर्वगः प्रभुः। स्थूलभुक् चतुरात्माथ विश्वो वैश्वानरः पुमान् ॥ ८ ॥ विश्वजित्प्रथमः पादः स्वप्तस्थानगतः प्रमुः। सुक्ष्मप्रज्ञः स्वतोऽष्टाङ्ग एको नान्यः परंतप ॥ ९ ॥ सुक्ष्मभुक् चतुरात्माथ तैजसो भूतराडयम् । हिरण्यगर्भः स्थूछोऽन्तर्द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १० ॥ कामं कामयते यावद्यत्र सुप्तो न कंचन । स्वमं पदयति नेवात्र तत्सुपुप्तमिप स्फूटम् ॥ ११ एकी भूतः सुषुप्रस्थः प्रज्ञानघनवान्सुखी । नित्यानन्द्मयोऽप्यात्मा सर्वजीवान्तरस्थितः ॥ १२ ॥ तथाप्यानन्दभुक् चेतोसुखः सर्वगतोऽव्ययः। चतुरात्मेश्वरः प्राज्ञस्तृतीयः पादसंज्ञितः॥ १३ ॥ एष सर्वेश्वरश्चेष सर्वज्ञः सुक्षमभावनः । एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाष्ययौ ॥ १४ ॥ भूतानाः त्रयमप्येतःसर्वोपरमबाधकम् । तत्सुपुप्तं हि यत्स्वमं मायामात्रं प्रकीर्ति-तम् ॥ १५ ॥ चतुर्थश्चतुरात्मापि सचिदेकरसो ह्ययम् । तुरीयावसितत्वाच पुकेकत्वानुसारतः ॥ १६ ॥ ज्ञातानुज्ञात्रननुज्ञानृविकल्पज्ञानसाधनम् । वि-कल्पत्रयमत्रापि सुषुप्तं स्वप्नमान्तरम् ॥ ९७॥ मायामात्रं विदिःवेवं सिच्च-देकरसो ह्ययम्। विभक्तो ह्ययमादेशो न स्थूलप्रज्ञमन्वहम् ॥ १८॥ न सूक्ष्मप्रज्ञमत्यन्तं न प्रज्ञं न कचिन्सुने । नैवाप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञमा-न्तरम् ॥ १९ ॥ नाप्रज्ञमपि न प्रज्ञाघनं चाद्रष्टमेव च । तद्रछक्षणमप्राह्यं यद्यवहार्यमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स ब्रह्मप्रणवः स विज्ञेयो नापरस्तुरीयः सर्वत्र भानुवन्मुमुक्षू-णामाधारः स्वयंज्योतिर्वह्याकाशः सर्वद्। विराजते परंवह्यस्वादित्युपनिषत्॥२०॥

इति नारदपरिवाजकोपनिषत्स्वष्टमोपदेशः ॥ ८॥

अथ ब्रह्मस्वरूपं कथमिति नारदः पप्रच्छ। तं होवाच पितामहः किं ब्रह्मस्वरूपमिति। अन्योऽसावन्योऽहमसीति ये विदुस्ते पश्चो न स्वभाव-पश्चस्तमेदं ज्ञात्वा विद्वानमृत्युमुखात्प्रमुच्यते नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। कालः स्वभावो नियतिर्यद्दच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्। संयोग एषां नत्वात्मभावादात्मा द्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ १॥ ते ध्यानयोगा-नुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगृहाम्। यः कारणानि निख्लानि ज्ञानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ २॥ तमेकसिंखिन्नृतं षोडशान्तं शता-धारं विंशतिप्रत्यराभिः। अष्टकैः षद्भिविंश्वरूपेकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकः मोहम् ॥ ३ ॥ पञ्चस्रोतोग्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मि पञ्चबुच्चादि-मुलाम् । पञ्चावता पञ्चदुःखोघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥ ४ ॥ सर्वा-जीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन्हंसो आम्यते ब्रह्मचक्रे । पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्त्रेनामृतत्वमेति ॥ ५ ॥ उद्गीथमेतल्परमं तु ब्रह्म तस्मिस्त्रयं स्वप्रतिष्ठाक्षरं च । अत्रान्तरं वेदविदो विदित्वा लीनाः परे ब्रह्मणि तत्परा-यणाः ॥ ६ ॥ संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः। अनीशश्चारमा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ ७॥ ज्ञाज्ञी द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तुभोगार्थयुक्ता । अनन्तश्राःमा विश्वरूपो हाकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्म ह्येतत् ॥ ८ ॥ क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः । तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भ्यश्चानते विश्वमायानिवृत्तिः ॥ ९ ॥ ज्ञास्वा देवं मुच्यते सर्वपारैः क्षीणैः क्वेरीर्जन्म-मृत्युप्रहाणिः । तसाभिध्यानान्नितयं देहभेदे विश्वेश्वर्यं केवल आत्मकामः ॥ १०॥ एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्। भोका भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म ह्येतत् ॥ ११ ॥ आत्मविद्यातपोमूळं तद्रह्योपनिषत्परम् । य एवं विदिःवा स्वरूपमेवानुचिन्त-यंस्तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ १२ ॥ तसाद्विराद्दभूतं भव्यं भविष्यद्भवत्यनश्वरस्वरूपम् । अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तो-निहितो गुहायाम् । तमऋतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमान-मीशम् ॥ १३ ॥ अपाणिपादो जवनो प्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरप्रयं पुरुषं महान्तम् ॥ १४ ॥ अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा घीरो न शोचित ॥ १५ ॥ सर्वस्य धातारमचिन्त्यशिकं सर्वागमान्तार्थविशेषवेद्यम् । परात्परं परमं वेदितव्यं सर्वावसाने सक्नुद्वेदितव्यम् ॥ १६ ॥ कविं पुराणं पुरुषोत्तमोत्तमं सर्वेश्वरं सर्वदेवैरुपास्यम् । अनादिमध्यान्तमनन्तमव्ययं शिवाच्युताम्भोरुहगर्भभूधरम् ॥ १७ ॥ स्वेनावृतं सर्विमिदं प्रपञ्चं पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्तमानम् । पञ्चीकृतानन्तभवप्रपञ्चं पञ्चीकृतस्यावयवैरसंवृतम् । परा-त्परं यन्महतो महान्तं स्वरूपतेजोमयशाश्वतं शिवम् ॥ १८ ॥ नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः। नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं न स्थूलं नास्थूलं न ज्ञानं नाज्ञानं नोभयतः- प्रज्ञमग्राह्यमन्यवहार्यं स्वान्तःस्थितः स्वयमेवेति य एवं वेद् स नुक्तो भवति स मुक्तो भवतीत्याह भगवान्पितामहः । स्वस्वरूपज्ञः परिवाद परिवाद् केकाकी चरति भयत्रस्तसारङ्गविष्ठित । गमनिवरोधं न करोति । स्वरिर्रित्वयितिरक्तं सर्वं त्यक्त्वा षदपदवृत्त्या स्थित्वा स्वरूपानुसन्धानं कुर्वन्सर्वमन्वयुद्ध्या स्वस्थितेव मुक्तो भवति । स परिवाद सर्विक्रयाकारकनिवर्तको गुरुशित्यशास्त्रादिविनिर्मुक्तः सर्वसंसारं विसृज्य चामोहितः परिवाद कथं निर्धानिकः सुखी धनवाञ्ज्ञानाज्ञानोभयातीतः सुखदुःखातीतः स्वयंज्योतिः प्रकाशः सर्वदेद्यः सर्वज्ञः सर्वसिद्धिदः सर्वेश्वरः सोऽहमिति । तद्विष्णोः परमं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः । सूर्यो न तत्र भाति न शशाङ्कोऽपि न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते तत्कैवल्यमित्युपनिषत् ॥ २० ॥

इति नारदबाजकोपनिषत्सु नवमोपदेशः ॥ ९ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ इति नारदपरिबाजकोपनिषत्समाप्ता ॥ ४५ ॥

त्रिशिखित्राह्मणोपनिषत् ॥ ४६ ॥ (शुक्तयजुर्वेदीया)

योगज्ञानैकसंसिद्धशिवतत्त्वतयोद्धवलम् । प्रतियोगिविनिर्मुक्तं परंब्रह्म भवाम्यहम् ॥ ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः॥

ॐ त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्यलोकं जगामं तं गत्वोवाच। भगवन् किं देहः किं प्राणः किं कारणं किमात्मेति। स होवाच सर्वमिदं शिव एव विजानीहि। किंतु नित्यः गुद्धो निरञ्जनो विभुरद्वयः शिव एकः स्वेन भासेदं सर्वं दृष्ट्वा तप्तायः पिण्डवदेकं भिन्नवद्वभासते। तद्भासकं किमिति चेदुच्यते। सच्छ-द्वाच्यमविद्याशबलं ब्रह्म । ब्रह्मणोऽन्यक्तम् । अन्यक्तान्महत्। महतोऽहं-कारः । अहंकारात्पञ्च तन्मात्राणि। पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्चमहाभूतानि। पञ्चमहाभूतेभ्योऽखिलं जगत्॥ तद्खिलं किमिति। भूतविकारविभागादिरिति। एकस्मिन्पिण्डे कथं भूतविकारविभाग इति । तक्तत्कार्यकारणभेदरूपेणांशत-ववाचकवाच्यस्थानभेदविषयदेवताकोशभेदविभागा भवन्ति। अथाकाशो-

Sन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहंकाराः । वायुः समानोदानव्यानापानप्राणाः । वृद्धः श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्याघाणानि । आपः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । पृथिवी वाक्पाणिपादपायूपस्थाः । ज्ञानसंकल्पनिश्चयानुसंधानाभिमाना आकाश-कार्यान्तःकरणविषयाः । समीकरणोन्नयनप्रहणश्रवणोच्छ्रासा वायुकार्यप्राणा-दिविषयाः । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा अग्निकार्यज्ञानेन्द्रियविषया अवाश्रिताः । वचनादानगमनविसर्गानन्दाः पृथिवीकार्यकर्मेन्द्रियविषयाः । कर्मज्ञानेन्द्रिय-विषयेषु प्राणतन्मात्रविषया अन्तर्भूताः । मनोबुद्धोश्चित्ताहंकारौ चान्तर्भृतौ । अवकाशविभृतदृर्शनिपण्डीकरणधारणाः सूक्ष्मतमा जैवतन्म।त्रविषयाः । एवं द्वादशाङ्गानि आध्यात्मिकान्याधिभौतिकान्याधिदैविकानि अत्र निशाकर-चतुर्मुखद्ग्वातार्कवरुणाश्वयमीन्द्रोपेन्द्रप्रजापतियमा इत्यक्षाधिदेवतारूपैर्द्वाद-शनाड्यन्तःप्रवृत्ताः प्राणा एवाङ्गानि अङ्गज्ञानं तदेव ज्ञातेति । अथ व्योमा-निलानलजलाज्ञानां पञ्चीकरणमिति । ज्ञातृत्वं समानयोगेन श्रोत्रद्वारा शब्द-गुणो वागधिष्ठित आकाशे तिष्ठति आकाशस्तिष्ठति । मनोव्यानयोगेन त्वग्द्वारा स्पर्शगुणः पाण्यधिष्ठितो वायौ तिष्ठति वायुस्तिष्ठति । बुद्धिस्दान-योगेन चक्षुर्द्वारा रूपगुणः पादाधिष्ठितोऽद्गौ तिष्ठत्यग्निस्तिष्ठति । चित्तमपान-योगेन जिह्नाद्वारा रसगुण उपस्थाधिष्ठितोऽप्सु तिष्ठत्यापित्तष्ठिन्त । अहंकारः प्राणयोगेन घ्राणद्वारा गन्धगुणो गुदाधिष्ठितः पृथिव्यां तिष्ठति पृथिवी तिष्ठति य एवं वेद । अत्रैते श्लोका भवन्ति—पृथग्भूते घोडश कलाः स्वार्थ-भागान्परान्क्रमात् । अन्तःकरणव्यानाक्षिरसपायुनभः क्रमात् ॥ मुख्यात्पूर्वोत्तरैर्भागैर्भूते भूते चतुश्चतुः । पूर्वमाकाशमाश्रित्य पृथिन्यादिषु संस्थिताः ॥ २ ॥ मुख्यादृर्ध्वे परा ज्ञेया न परानुत्तरान्विदुः । एवमंशो ह्यभूत्तसात्तेभ्यश्चांशो ह्यभूत्तथा ॥ ३ ॥ तसादन्योन्यमाश्रित्य ह्योतं प्रोतमनुकसात् । पञ्चभूतमयी भूमिः सा चेतनसमन्विता॥ ४॥ तत ओषधयोऽन्नं च ततः पिण्डाश्चतुर्विधाः रसासृद्धांसमेदोऽस्थिमजाशुक्राणि धातवः ॥ ५ ॥ केचित्तद्योगतः पिण्डा भूतेभ्यः संभवाः कचित् । तस्मिन्नन्न-मयः पिण्डो नाभिमण्डलसंख्यितः ॥ ६ ॥ अस्य मध्येऽस्ति हृदयं सनालं पद्मकोशवत् । सत्त्वान्तर्वितनो देवाः कर्त्रहंकारचेतनाः॥ ७॥ अस्य बीजं तमःपिण्डं मोहरूपं जडं घनम् । वर्तते कण्ठमाश्रित्य मिश्रीभूतमिदं जगत् ॥ ८ ॥ प्रत्यगानन्दरूपात्मा मूर्झि स्थाने परे पदे । अनन्तराक्ति-

संयुक्तो जगद्र्पेण भासते ॥ ९ ॥ सर्वत्र वर्तते जायत्स्वमं जायति वर्तते । सुष्प्रं च तुरीयं च नान्यावस्थासु कुत्रचित्॥ १०॥ सर्वदेशेष्वनुस्य-तश्चत्ररूपः शिवात्मकः। यथा महाफले सर्वे रसाः सर्वप्रवर्तकाः॥ ११॥ तथैवान्नमये कोशे कोशाम्तिष्ठन्ति चान्तरे। यथा कोशस्तथा जीवो यथा जीवस्तथा शिवः ॥ १२ ॥ सविकारस्तथा जीवो निर्विकारस्तथा शिवः। कोशास्तस्य विकारास्ते ह्यवस्थासु प्रवर्तकाः ॥ १३ ॥ यथा रसाशये फेनं मथनादेव जायते । मनोनिर्मथनादेव विकल्पा बहवस्तथा ॥ १४॥ कर्मणा वर्तते कर्मी तत्त्यागाच्छान्तिमाप्रुयात् । अयने दक्षिणे प्राप्ते प्रपञ्चा-भिमुखं गतः॥ १५॥ अहंकाराभिमानेन जीवः स्याद्धि सदाशिवः। स चाविवेकप्रकृतिसङ्गत्या तत्र मुह्यते॥ १६॥ नानायोनिशतं गत्वा शेतेऽसौ वासनावशात् । विमोक्षात्संचरत्येव मत्स्यः कूलद्वयं यथा॥ १७॥ ततः कालवशादेव ह्यात्मज्ञानविवेकतः। उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थानात्स्थानान्तरं कमात् ॥ १८ ॥ मृध्याधायात्मनः प्राणान्योगाभ्यासं स्थितश्चरन् । योगा-त्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते ॥ १९ ॥ योगज्ञानपरो नित्यं स योगी न प्रणस्यति । विकारस्थं शिवं पद्येद्विकारश्च शिवे न तु ॥ २०॥ योग-प्रकाशकं योगैध्यीयेचानन्यभावनः । योगज्ञाने न विद्येते तस्य भावो न सिद्यति ॥ २१ ॥ तस्माद्भ्यासयोगेन मनःप्राणानिरोधयेत् । योगी निशित-धारेण क्षुरेणैव निकृन्तयेत् ॥ २२ ॥ शिखा ज्ञानमयी वृत्तिर्यमाद्यष्टाङ्ग-साधनैः। ज्ञानयोगः कर्मयोग इति योगो द्विधा मतः॥ २३ ॥ क्रियायोगम-थेदानीं श्रणु ब्राह्मणसत्तम । अब्याकुलस्य चित्तस्य बन्धनं विषये कचित् ॥२४ ॥ यत्संयोगो द्विजश्रेष्ट स च द्वैविध्यमश्चते । कर्म कर्तव्यमित्येव विहि-तेष्वेव कर्मसु ॥ २५ ॥ बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते । यतचित्तस्य सततमर्थे श्रेयसि बन्धनम् ॥ २६॥ ज्ञानयोगः स विज्ञेयः सर्वसिद्धिकरः शिवः । यस्योक्तलक्षणे योगे द्विविधेऽप्यव्ययं मनः ॥ २७ ॥ स याति परमं श्रेयो मोक्षलक्षणमञ्जसा । देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः ॥ २८ ॥ अनुरक्तिः परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः । सर्ववस्तुन्युदासीनभावमासन-मुत्तमम् ॥ २९ ॥ जगत्सर्वेमिदं मिथ्याप्रतीतिः प्राणसंयमः । चित्तस्यान्तर्भुखी-भावः प्रत्याहारस्तु सत्तम ॥ ३०॥ चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धारणं विदुः। सो इं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते ॥ ३१॥ ध्यानस्य

विस्मृतिः सम्यक्समाधिरभिधीयते । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं द्यार्जवम् ॥ ३२ ॥ क्षमा धतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश । तपःसन्तुष्टिरास्तिक्यं दानमाराधनं हरेः ॥ ३३ ॥ वेदान्तश्रवणं चैव हीर्मतिश्च जपो वतम् ॥ इति । आसनानि तदङ्गानि स्वस्तिकादीनि वै द्विज ॥ ३४ ॥ वर्ण्यन्ते स्वस्तिकं पादतलयोरुभयोरपि । पूर्वोत्तरे जानुनी हे कृत्वासनसुदीरितम् ॥३५॥ सच्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत् । दक्षिणेऽपि तथा सच्यं गोसुसं गोर्मुखं यथा ॥ ३६ ॥ एकं चरणमन्यस्मिन्नूरावारोप्य निश्चलः । आस्ते यदि-दमेनोव्नं वीरासनसुदीरितम् ॥ ३७ ॥ गुदं नियम्य गुल्फाभ्यां न्युत्क्रमेण समाहितः । योगासनं भवेदेतिदिति योगिवदो विदुः॥ ३८॥ ऊर्वोहपरि वै धत्ते यदा पादतले उमे । पद्मासनं भवेदेतत्सर्वन्याधिविषापहम् ॥ ३९ ॥ पद्मासनं सुसंस्थाप्य तदङ्गष्टद्वयं पुनः । न्युत्क्रमेणैव हस्ताभ्यां बद्धपद्मासन भवेत् ॥ ४० ॥ पद्मासनं सुसंस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ । निवेश्य भूमावा-तिष्ठेद्योमस्थः कुकुटासनः ॥ ४१ ॥ कुकुटासनबन्धस्थो दोभ्याँ संवध्य कन्धरम् । होते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम् ॥ ४२ ॥ पादाङ्गद्वौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणाविध । धनुराकर्षकाकृष्टं धनुरासनमीरितम् ॥ ४३ ॥ सीवनीं गुल्फदेशाभ्यां निपीड्य ब्युत्क्रमेण तु । प्रसार्य जानुनोईस्तावासनं सिंहरूपकम् ॥ ४४ ॥ गुल्फो च वृषणस्याधः सीवन्युभयपार्श्वयोः । निवेइय पादौ हस्ताभ्यां बद्धा भदासनं भवेत् ॥ ४५ ॥ सीवनीपार्श्वमुभयं गुल्फाभ्यां ब्युत्क्रमेण तु । निपीड्यासनमेतच मुक्तासनमुदीरितम् ॥ ४६ ॥ अवष्टभ्य धरां सम्यक्तलाभ्यां हस्तयोर्द्वयोः । कर्पूरौ नाभिगर्धे तु स्थापयित्वा मयूर-वत् ॥ ४७ ॥ समुन्नतिशरःपादं मयूरासनिमन्यते । वामोरुमूले दक्षािङ्ग जान्वोर्वेष्टितपाणिना ॥ ४८ ॥ वामेन वामाङ्गुष्ठं तु गृहीतं मत्स्यपीठकम् । योनिं वामेन संपीड्य मेढ्रादुपरि दक्षिणम् ॥ ४९ ॥ ऋजुकायः समासीनः सिद्धासनमुदीरितम् । प्रसार्य भुवि पादौ तु दोर्भ्यामङ्गष्टमादरात् ॥ ५०॥ जानूपरि ललाटं तु पश्चिमं तानमुच्यते । येन केन प्रकारेण सुखं धार्यं च जायते ॥ ५३ ॥ तःसुखासनमित्युक्तमशक्तस्तत्समाचरेत् । आसनं विजितं येन जितं तेन जगत्रयम् ॥ ५२ ॥ यमैश्च नियमैश्चैव आसनैश्च सुंसंयतः । नाडी-शुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत् ॥ ५३ 🛦 देहमान स्टाङ्ग्रिभिः पण्ण-

वत्यञ्जलायतम् । प्राणः शरीराद्धिको द्वादशाञ्जलमानतः ॥ ५४ ॥ देहस्थम-निलं देहससुद्भतेन विद्वना । न्यूनं समं वा योगेन कुर्वन्ब्रह्मविदिप्यते ॥ ५५॥ देहमध्ये शिखिस्थानं तप्तजाम्बूनदप्रभम् । त्रिकोणं द्विपदामन्यचतुरस्रं चतु-ष्पदम् ॥ ५६ ॥ वृत्तं विहङ्गमानां तु पडस्रं सर्पजन्मनाम् । अष्टास्रं स्वेदजानां तु तस्मिन्दीपवदु ज्वलम् । कन्दस्थानं मनुष्याणां देहमध्यं नवाङ्गलम् । चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम् ॥ ५७ ॥ अण्डाकृति तिरश्चां च द्विजानां च चतुष्पदाम् । तुन्दमध्यं तदिष्टं वै तन्मध्यं नाभिरिप्यते ॥ ५८ ॥ तत्र चकं द्वादशारं तेषु विष्णवादिमूर्तयः । अहं अत्र स्थितश्चकं आमयामि स्बमायया ॥ ५९ ॥ अरेषु अमते जीवः क्रमेण द्विजसत्तम । तन्तुपक्षरमध्य-स्था यथा अमित रहितका ॥ ६० ॥ प्राणाविरूढश्चरित जीवस्तेन विना निह । तस्योध्वें कुण्डलीस्थानं नासेस्तिर्यगथोध्वेतः ॥६१॥ अष्टप्रकृतिरूपा सा चाष्ट्रधा कुण्डलीकृता । यथावद्वायुसारं च ज्वलनादि च नित्यशः ॥६२॥ परितः कन्द-णार्थे तु निरुध्येव सदा स्थिता। मुखेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा ॥६३॥ योगकालेन मरुता साग्निना बोधिता सती। स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा महोजवला ॥ ६४ ॥ अपानाद्वयङ्गलादूर्ध्वमधो मेदस्य तावता । देहमध्यं सनुष्याणां हन्मध्यं तु चतुष्पदाम् ॥ ६५ ॥ इतरेषां तुन्दमध्ये प्राणापानस-मायुताः । चतुष्प्रकारद्ययुते देहमध्ये सुषुम्नया ॥ ६६ ॥ कन्द्रमध्ये स्थिता नाडी सुषुम्ना सुप्रतिष्टिता । पद्मसूत्रप्रतीकाशा ऋजुरूध्वेप्रवर्तिनी ॥ ६७ ॥ ब्रह्मणो विवरं यावहिद्युदाभासनालकम् । वैष्णवी ब्रह्मनाडी च निर्वाणप्राप्ति-पद्धतिः ॥६८॥ इडा च पिङ्गला चैव तस्याः सन्येतरे स्थिते । इडा समुत्थिता कन्दाद्वामनासापुटाविध ॥ ६९ ॥ पिङ्गळा चोत्थिता तस्माद्क्षनासापुटाविध । गान्धारी हम्तिजिह्ना च द्वे चान्ये नाडिके स्थिते॥ ७०॥ पुरतः पृष्ठतस्तस्य वामेतरदृशो प्रति । पूषायशस्त्रिनीनाड्यो तस्पादेव समुस्थिते ॥ ७१ ॥ सन्येतरश्चत्यवि पायुमूलादलम्बुसा । अधोगता ग्रुभा नाडी मेदान्ताविध-रायता ॥ ७२ ॥ पादाङ्कष्टावधिः कन्दादधोयाता च कौशिकी । दशप्रकार-भूतास्ताः कथिताः कन्दसंभवाः ॥ ७३ ॥ तन्मूला बहवो नाड्यः स्थूल-सूक्ष्माश्च नाडिकाः । द्वासप्ततिसहस्राणि स्थूलाः सूक्ष्माश्च नाडयः ॥ ७४ ॥ मंख्यातुं नैव शक्यन्ते स्थूलमूलाः पृथग्विधाः । यथाश्वत्थद्छे सूक्ष्माः

स्थूलाश्च विततास्तथा ॥ ७५ ॥ प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च । नागः कूर्मश्च कुकरो देवदत्तो धनंजयः॥ ७६॥ चरन्ति दशनाडीषु दश त्राणादिवाययः । प्राणादिपञ्चकं तेषु प्रधानं तत्र च द्वयम् ॥ ७७ ॥ प्राण एवाथवा ज्येष्ठो जीवात्मानं विभित्तं यः । आस्यनासिकयोर्मध्यं हृद्यं नाभि-मण्डलम् ॥ ७८ ॥ पादाङ्ग्रष्टमिति प्राणस्थानानि द्विजसत्तम । अपानश्चरति ब्रह्मन्गुद्रमेढ्रोरुजानुषु ॥ ७९ ॥ समानः सर्वगात्रेषु सर्वन्यापी न्यवस्थितः। उदानः सर्वसन्धिस्थः पादयोईस्तयोरि ॥ ८० ॥ च्यानः श्रोत्रोरकच्यां च गुल्फस्कन्धगलेषु च । नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः ॥ ८१ ॥ तुन्दस्थजलमन्नं च रसादीनि समीकृतम् । तुन्दमध्यगतः प्राणस्तानि कुर्यात्पृथकपृथक् ॥ ८२ ॥ इत्यादिचेष्टनं प्राणः करोति च पृथक्स्थितम् । अपानवायुर्भूत्रादेः करोति च विसर्जनम् ॥ ८३ ॥ प्राणापानादिचेष्टादि क्रियते व्यानवायुना । उज्जीर्यते शरीरस्थमुदानेन नभस्वता ॥ ८४॥ पोषणादिशरीरस्य समानः कुरुते सदा । उद्गारादिकियो नागः कूर्मीऽक्षादि-निमीलनः ॥ ८५ ॥ कृकरः क्षुतयोः कर्ता दत्तो निदादिकर्मकृत् । मृतगात्रस्य शोभादेर्धनंजय उदाहतः ॥ ८६ ॥ नाडिभेदं मरुद्धेदं मरुतां स्थानमेव च। चेष्टाश्च विविधास्तेषां ज्ञात्वैव द्विजसत्तम ॥ ८७ ॥ शुद्धौ यतेत नाडीनां पूर्वोक्तज्ञानसंयुतः । विविक्तदेशमासाद्य सर्वसंबन्धवर्जितः ॥ ८८ ॥ योगाङ्ग-द्रव्यसंपूर्णं तत्र दारुमये शुभे । आसने कल्पिते दर्भकुशकृष्णाजिनादिभिः ॥ ८९ ॥ तावदासनमुत्सेघे तावद्वयसमायते । उपविश्यासनं सम्यक्खिस्तिकादिः यथारुचि ॥ ९० ॥ बद्धा प्रागासनं विप्रो ऋजुकायः समाहितः । नासा-अन्यस्तनयनो दन्तैर्दन्तानसंस्पृशन् ॥ ९१ ॥ रसनां तालुनि स्वस्थिचित्तो निरामयः। आकुञ्जितशिरः किंचिन्निबञ्चनयोगमुद्रया ॥ ९२ ॥ हस्ती यथोक्तविधिना प्राणायामं समाचरेत् । रेचनं पूरणं वायोः शोधनं रेचनं तथा ॥ ९३ ॥ चतुर्भिः क्रेशनं वायोः प्राणायाम उदीर्यते । हस्तेन दक्षिणेनैव पीडयेन्नासिकापुटम् ॥ ९४ ॥ शनैः शनैरथ बहिः प्रक्षिपेत्पिङ्ग-लानिलम् । इडया वायुमापूर्य ब्रह्मन्घोडशमात्रया ॥ ९५ ॥ पूरितं कुम्भ-येत्पश्चाचतुःषष्ट्या तु मात्रया । द्वात्रिंशन्मात्रया सम्ययेचयेत्पङ्गलानिलम् ॥ ९६ ॥ एवं पुनः पुनः कार्यं व्युत्क्रमानुक्रमेण तु । संपूर्णकुम्भवदेहं कुम्भ-

येन्मातरिश्वना ॥ ९७ ॥ पूरणाञ्चाडयः सर्वाः पूर्यन्ते मातरिश्वना । एवं कृते सित ब्रह्मश्चरन्ति दश वायवः ॥ ९८ ॥ हृदयाम्भोरुहं चापि व्याकोचं भवति स्फुटम् । तत्र पश्येत्परात्मानं वासुदेवमकल्मषम् ॥ ९९ ॥ प्रातर्मध्यन्दिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान् । शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥ १००॥ एकाहमात्रं कुर्वाणः सर्वपापैः प्रमुच्यते । संवत्सरत्रयादूर्ध्वं प्राणायामपरो नरः ॥ १०१ ॥ योगसिद्धो भवेद्योगी वायुजिद्धिजितेन्द्रियः । अल्पाशी स्वल्पनिद्रश्च तेजस्वी बलवान्भवेत् ॥ १०२ ॥ अपसृत्युमानिकम्य दीर्घमायुरवापुयात् । प्रस्वेदजननं यस्य प्राणायामस्तु सोऽधमः ॥ १०३ ॥ कम्पनं वपुषो यस्य प्राणायामेषु मध्यमः । उत्थानं वपुषो यस्य स उत्तम उदाहतः ॥ १०४॥ अधमे व्याधिपापानां नाशः स्थानमध्यमे पुनः । पापरोगमहाव्याधिनाशः स्यादुत्तमे पुनः ॥१०५॥ अल्पसूत्रोऽल्पविष्ठश्च लघुदेहो मिताशनः। पट्टिन्द्रियः पदुमतिः कालत्रयविदात्मवान् ॥ १०६ ॥ रेचकं पूरकं मुक्तवा कुम्भीकरणमेव यः। करोति त्रिषु कालेषु नैव तस्यास्ति दुर्रुभस् ॥ १०७॥ नाभिकन्दे च नासाम्रे पादाङ्क्षष्ठे च यत्नवान् । धारयेन्मनसा प्राणान्सन्ध्याकालेषु वा सदा ॥ १०८ ॥ सर्वरोगैर्विनिर्मुक्तो जीवेद्योगी गतक्रमः । कुक्षिरोगविनाशः स्यान्ना-भिकन्देषु धारणात् ॥ १०९ ॥ नासाम्रे धारणादीर्घमायुः स्यादेहलाघवम् । ब्राह्मे मुहूर्ते संप्राप्ते वायुमाकृष्य जिह्नया ॥ ११०॥ पिवतस्त्रिषु मासेषु वाक्सिद्धिर्महती भवेत् । अभ्यासतश्च षण्मात्मान्महारोगविनाशनम् ॥१११॥ यत्र यत्र धतो वायुरक्ने रोगोदिदृषिते । धारणादेव मरुतस्तत्तदारोग्यमश्चते ॥ ११२ ॥ मनसो धारणादेव पवनो धारितो भवेत् । मनसः स्थापने हेतु-रुच्यते द्विजपुङ्गव ॥११३॥ करणानि समाहृत्य विषयेभ्यः समाहितः । अपान-मूर्ध्वमाकृष्येदुदरोपरि धारयेत् ॥ ११४॥ बझन्कराभ्यां श्रोत्रादिकरणानि यथातथम् । युञ्जानस्य यथोक्तेन वर्त्मना स्ववशं मनः ॥ ११५ ॥ मनोवशा-त्प्राणवायुः स्ववशे स्थाप्यते सदा । नामिकापुटयोः प्राणः पर्यायेण प्रवर्तते ॥ ११६ ॥ तिस्रश्च नाडिकास्तासु स यावन्तं चरत्ययम् । शङ्किनीविवरे याम्ये प्राणः प्राणभृतां सताम् ॥ ११७ ॥ तावन्त च पुनः कालं सौम्ये चरति सं ततम् । इत्थं क्रमेण चरता वायुना वायुजिन्नरः ॥ ११८ ॥ अहश्च रात्रिं पक्षं च मासमृत्वयनादिकम् । अन्तर्भुखो विजानीयान्कालभेदं समाहितः ॥११९॥

अङ्गष्टादिस्वावयवस्फुरणादशनेरपि । अरिष्टेर्जीवितस्यापि जानीयान्क्षयमान्मनः ॥ १२० ॥ ज्ञात्वा यतेत कैवल्यपासये योगवित्तमः । पादाङ्कृष्टे कराङ्कृष्टे स्फुरणं यस्य न श्रुतिः ॥ १२१ ॥ तस्य संवत्सरादृध्वं जीवितस्य क्षयो भवेत् । मणिबन्धे तथा गुल्फे स्फुरणं यस्य नर्द्यात ॥ १२२ ॥ पण्मासावधिरेतस्य जीवितस्य स्थितिर्भवेत् । कूर्परे स्फुरणं यस्य तस्य त्रैमासिकी स्थितिः ॥१२३॥ कक्षिमेहनपार्श्वे च स्फुरणानुपलम्भने । मासावधिजीवितस्य तु दर्शने तदर्धस्य ॥१२४॥ आश्रिते जठरद्वारे दिनानि दश जीवितम् । ज्योतिः खद्योतवद्यस्य तदर्धं तस्य जीवितम् ॥१२५॥ जिह्वायादर्शने त्रीणि दिनानि स्थितिरात्मनः । ज्वालाया दर्शने मृत्युर्द्धिदिने अवति ध्रवम् ॥ १२६ ॥ एवमादीन्यरिष्टानि दृष्टायुः क्षयका-रणस् । निःश्रेयसाय युञ्जीत जपध्यानपरायणः ॥ १२७ ॥ मनसा परमात्मानं ध्यात्वा तद्र्पतामियात् । यद्यष्टादशभेदेषु मर्मस्थानेषु धारणम् ॥ १२८ ॥ स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारा स उच्यते । पादाङ्गष्टं तथा गुरुफं जङ्कामध्यं तथैव च ॥ १२९ ॥ मध्यमूर्वेश्चि मूलं च पायुईदयमेव च । मेहनं देहमध्यं च नाभिं च गलकूर्परम् ॥१३०॥ तालुमूर्लं च मूलं च घाणस्याक्ष्णोश्च मण्डलम् । अवोर्मध्यं ललाटं च मूलमूर्ध्वं च जानुनी ॥१३१॥ मूलं च करयोर्मुलं महा-न्त्येतानि वै द्विज । पञ्चभूतमये देहे भूतेव्वेतेषु पञ्चसु ॥ १३२ ॥ मनसो धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः । धारणा सा च संसारसागरोत्तारकारणम् ॥ १३३ ॥ आजानुपादपर्यन्तं पृथिवीस्थानमिष्यते । पित्तला चतुरस्रा च वसुधा वज्रलाञ्छिता ॥ १३४ ॥ स्मर्तव्या पञ्च वटिकासत्रारोप्य प्रभञ्जनम् । आ जानुकटिपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥ १३५ ॥ अर्धचन्द्रसमाकारं श्वेतमर्जुनलाञ्चितम् । स्पर्तव्यमम्भः श्वसनमारोप्य दश नाडिकाः ॥ १३६ ॥ आ देहमध्यकट्यन्तमग्निस्थानमुदाहृतम् । तत्र सिन्दृरवर्णोऽग्निर्ज्वलनं दश पञ्च च ॥ १३७ ॥ सार्तव्यो नाडिकाः प्राणं कृत्वा कुम्मे तथेरितम् । नामेरुपरि नासान्तं वायुस्थानं तु तत्र वै ॥ १३८ ॥ वेदिकाकारवद्भो बलवानभूतमा-रुतः । सार्तव्यः कुम्भकेनैव प्राणमारोप्य मारुतम् ॥ १३९॥ घटिका विंशति-स्तस्माद्घाणाद्वह्मविलावधि । ब्योमस्थानं नभम्तत्र भिन्नाञ्जनसमप्रभम् ॥ १४० ॥ ज्योम्नि मारुतमारोप्य कुम्भकेनैव यस्तवान् । पृथिव्यंशे तु देहस्य चतुर्वाहुं किरीटिनम् ॥ १४१ ॥ अनिरुद्धं हिर योगी यतेत भवमुक्तये। अवंशे पूरयेद्योगी नारायणमुद्रप्रधीः ॥ १४२ ॥ प्रद्युम्नमग्नौ वाय्वंशे संकर्पण- मतः परम् । व्योमांशे परमात्मानं वासुदेवं सदा स्मरेत् ॥ १४३ ॥ अचिरा-देव तत्प्राप्तिर्युक्षानस्य न संशयः । बद्धा योगासनं पूर्वं हृदेशे हृदयाक्षितः ॥ १४४ ॥ नासाय्रन्यस्तनयनो जिह्नां कृत्वा च तालुनि । दन्तैर्दन्तानसंस्पृश्य ऊर्ध्वकायः समाहितः ॥ १४५ ॥ संयमेचेन्द्रियप्राममात्मजुद्ध्या विशुद्ध्या। चिन्तनं वासदेवस्य परस्य परमात्मनः ॥ १४६ ॥ स्वरूपव्याप्तरूपस्य ध्यानं कैवत्यसिद्धिदम् । यममात्रं वासुदेवं चिन्तयेत्कुम्भकेन यः ॥ १४७ ॥ सप्त-जन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति योगिनः । नाभिकन्दात्समारभ्य यावद्भदय-गोचरम् ॥ १४८ ॥ जाप्रदृत्तिं विजानीयात्कण्ठस्थं स्वप्नवर्तनम् । सुषुप्तं तालु-मध्यस्थं तुर्यं भ्रमध्यसंस्थितम् ॥ १४९ ॥ तुर्यातीतं परं ब्रह्म ब्रह्मरन्ध्रे त लक्षयेत् । जात्रहृत्तिं समारभ्य यावद्रह्मविलान्तरम् ॥ १५० ॥ तत्रात्मायं तुरीयस्य तुर्यान्ते विष्णुरुच्यते । ध्यानेनैव समायुक्तो ब्योग्नि चात्यन्तिर्मिले ॥ १५१ ॥ सूर्यकोटिद्युतिरथं नित्योदितमधोक्षजम् । हृदयाम्बुरुहासीनं ध्यायेद्वा विश्वरूपिणम् ॥१५२॥ अनेकाकारखचितमनेकवदनान्वितम् । अनेक-भुजसंयुक्तमनेकायुधमण्डितम् ॥ १५३ ॥ नानावर्णधरं देवं शान्तमुत्रमुदायु-धम् । अनेकनयनाकीर्णं सूर्यकोटिसमप्रभस् ॥ १५४ ॥ ध्यायतो योगिनः सर्वमनोवृत्तिर्विनश्यति । हत्पुण्डरीकमध्यस्थं चैतन्यज्योतिरव्ययम् ॥ १५५॥ कदम्बगोलकाकारं तुर्यातीतं परात्परम् । अनन्तमानन्दमयं चिन्मयं भास्करं विभुम् ॥ १५६ ॥ निवातदीपसदशमकृत्रिममणिप्रभम् । ध्यायतो योगिनसस् मुक्तिः करतले स्थिता ॥ १५७ ॥ विश्वरूपस्य देवस्य रूपं यत्किंचिदेव हि । स्थवीयः सूक्ष्ममन्यद्वा पर्यन्हद्यपङ्कजे ॥ १५८ ॥ ध्यायतो योगिनो यस्तु साक्षादेव प्रकाशते । अणिमादिफलं चैव सुखेनैवोपजायते ॥ १५९॥ जीवा-त्मनः परस्यापि यद्येवसुभयोरपि । अहसेव परं ब्रह्म ब्रह्माहिसिति संस्थितिः ॥ १६० ॥ समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः । ब्रह्म संपद्यते योगी न भूयः संसृतिं वजेत् ॥ १६१ ॥ एवं विशोध्य तत्त्वानि योगी निःस्पृहचेतसा । यथा निरिन्धनो विद्धः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ १६२ ॥ ग्राह्याभावे मनः याणो निश्चयज्ञानसंयुतः । शुद्धसत्त्वे परे लीनो जीवः सैन्धवपिण्डवत् ॥ १६३ ॥ मोहजालकसंघातो विश्वं पर्यित स्वमवत् । सुपुप्तिवद्यश्चरित स्वभावपरिनिश्चलः ॥ १६४ ॥ निर्वाणपदमाश्रित्य योगी कैवल्यमश्रुत इत्यु-पनिषत् ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इति गुक्तयजुर्वेदीयत्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्समाप्ता ॥ ४६ ॥

सीतोपनिषद् ॥ ४७॥

(आथर्वणीया)

इच्छाज्ञानिकयासिकत्रयं यद्भावसाधनम् । तद्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वसुपास्महे ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

देवा ह वै प्रजापतिमञ्जवन्का सीता किं रूपिमिति । स होवाच प्रजापतिः सा सीतेति । स्लप्रकृतिरूपत्वात्सा सीता प्रकृतिः स्मृता । प्रणवप्रकृतिरूप-त्वात्सा सीता प्रकृतिरुच्यते । सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामयी अवेत् । विष्णुः प्रपञ्जबीजं च माया ईकार उच्यते । सकारः सत्यमसृतं प्राप्तिः सोमश्र कीर्खते । तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराजः प्रस्तरः स्मृतः ॥ १॥ ईकार-रूपिणी सोमासृतावयवदिन्यालंकारसङ्गौक्तिकाद्याभरणालंकृता महामाया-ऽव्यक्तरूपिणी व्यक्ता भवति । प्रथमा शब्दब्रह्मसयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना उद्मावनकरी सारिमका, द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना, तृतीया ईकार-रूपिणी अन्यक्तंस्वरूपा भवतीति सीतेत्युदाहरन्ति । शौनकीये-श्रीराम-सान्निध्यवशाजगदानन्दकारिणी । उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् । सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता । प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन इति । अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति च । सा सर्ववेदमयी सर्वदेवमयी सर्वलोकमयी सर्वकीर्तिमयी सर्वधर्ममयी सर्वाधारकार्यकारणमयी महा-लक्ष्मीर्देनेशस्य भिन्नाभिन्नरूपा चेतनाचेतनात्मिका ब्रह्मस्थावरात्मिका तद्वण-कर्मविभागभेदाच्छरीररूपा देवर्षिमनुष्यगन्धर्वरूपा असुरराक्षसभूतप्रेतपिशा-चभूतादिभूतशरीररूपा भूतेन्द्रियमनः प्राणरूपेति च विज्ञायते ॥२॥ सा देवी त्रिविधा भवति-शक्तासनेच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति इच्छाशक्तिस्रिविधा भवति —श्रीभूमिनीलात्मिका भद्ररूपिणी प्रभावरूपिणी सोमसूर्याग्निरूपा भवति । सोमात्मिका ओषधीनां प्रभवति कल्पवृक्षपुष्पफल-लतागुल्मात्मिका औषधभेषजात्मिका अमृतरूपा देवानां महत्स्तोमफलप्रदा अमृतेन तृप्तिं जनयन्ती देवानामन्नेन पश्चनां तृणेन तत्तजीवानां सूर्यादि-सकल भुवनप्रकाशिनी दिवा च रात्रिः कालकलानिमेषमारभ्य घटिकाष्ट्रयाम-दिवस(वार)रात्रिभेदेन पक्षमासर्त्वयनसंवत्सरभेदेन मनुष्याणां शतायुः- करुपनया प्रकाशमाना चिरक्षिप्रव्यपदेशेन निमेषमारभ्य परार्धपर्यन्तं काल-चकं जगबक्रमित्यादिप्रकारेण चक्रवत्परिवर्तमानाः सर्वस्यैतस्यैव कालस्य विभागविरोषाः प्रकाशरूपाः कालरूपा भवन्ति । अग्निरूपा अन्नपानादि-प्राणिनां श्चर्षःणात्मिका देवानां मुखरूपा वनीषधीनां शीतोष्णरूपा काष्टेप्यन्त-र्बहिश्व नित्यानित्यरूपा भवति ॥ ३ ॥ श्रीदेवी त्रिविधं रूपं कृत्वा भगवत्संक-ल्पानुगुण्येन लोकरक्षणार्थं रूपं धारयति । श्रीरिति लक्ष्मीरिति लक्ष्यमाणा भवतीति विज्ञायते । भूदेवी ससागराम्भःसप्तद्वीपा वसुन्धरा भूरादिचतुर्देश-अवनानामाधाराधेया प्रणवात्मिका भवति । नीला च अखविद्यन्सालिनी सर्वोषधीनां सर्वप्राणिनां पोषणार्थं सर्वरूपा भवति । समस्तभुवनस्याधोभागे जलाकारात्मिका मण्डकमयेति भुवनाधारेति विज्ञायते ॥ कियाज्ञक्तिस्वरूपं हरेर्भुखालादः । तन्नादाद्विन्दुः । विन्दोरोंकारः । ओंकारात्परतो रामवैखान-सपर्वतः । तत्पर्वते कर्मज्ञानमयीभिर्वहुशाखा भवन्ति ॥ ४ ॥ तत्र त्रयीमयं शास्त्रमाचं सर्वार्थदर्शनम् । ऋग्यज्ञःसामरूपत्वात्रयीति परिकीर्तिता।… कार्यसिद्धेन चतुर्धा परिकीर्तिता । ऋचो यज्ंि सामानि अथर्वाङ्गिरसस्तथा । चातुर्होत्रप्रधानत्वालिङ्गादित्रितयं त्रयी । अथवीङ्गिरसं रूपं सामऋग्यजुरात्म-कम् । तथा दिशन्त्याभिचारसामान्येन पृथकपृथक् । एकविंशतिशाखाया-मुख्देदः परिकीर्तितः। शतं च नवशाखासु यज्ञवामेव जन्मनास्। साम्नः सहस्र-शालाः स्यः पञ्चशाला अथर्वणः । वैलानसमतस्तस्मिन्नादौ प्रत्यक्षदर्शनम् । स्मर्यते सुनिभिर्नित्यं वेखानसमतः परम् । कल्पो व्याकरणं शिक्षा निरुक्तं ज्योतिषं छन्द एतानि षडङ्गानि ॥५॥ उपाङ्गमयनं चैत्र मीमांसान्यायविस्तरः। धर्मज्ञसेवितार्थं च वेद्वेदोऽधिकं तथा । निवन्धाः सर्वशाखा च समयाचार-सङ्गतिः । धर्मशास्त्रं सहर्षीणासन्तः करणसंभृतस् । इतिहासपुराणाख्यसुपाङ्गं च प्रकीर्तितम् । वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा सने । आयुर्वेदश्च पञ्चेते उपवेदाः प्रकीर्तिताः । दण्डो नीतिश्च वार्ता च विद्या वायुजयः परः । एक-विंशतिभेदोऽय स्वप्रकाशः प्रकीर्तितः,। वैखानसऋषेः पूर्वं विःणोर्वाणी समुन-वेत् । त्रयीरूपेण संकल्प्य इत्यं देही विज्ञम्भते । संख्यारूपेण संकल्प्य वेखा-नसऋषेः पुरा । उदितो यादशः पूर्वं तादशं इर्णु शश्वद्रह्ममयं रूपं कियाशक्तिरुदाहता । साक्षाच्छक्तिभगवतः सारणमात्ररूपा-विभावपादु भीवात्मिका नियहानुयहरूपा शानिततेजोरूपा भगवत्सहचारिण्यनपायिन्य-कारणचरणसम्प्रावयवस्त्रवर्णभेदाभेदरूपा_

नवरत्तसहाश्रविण्युदितानुदिताकारा निमेषोन्मेषसृष्टिस्थितिसंहारितरोथानानु-ग्रहादिसर्वशक्तिसामर्थ्यास्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते ॥ ६ ॥ इच्छाशस्टि-खितिया प्रलयावस्थायां विश्रमणार्थं भगवतो दक्षिणवक्षःस्थले श्रीवस्सा-कृतिर्भूत्वा विश्राम्यतीति सा योगशक्तिः । भोगशक्तिर्भोगरूपा कल्पवृक्ष-कामधेनु चिन्तामणिशङ्कपद्मनिध्यादिनवनिधिसमाश्रिता अगवदुपासकानाः कामनयाऽकामनया वा भक्तियुक्ता नरं नित्यनैमित्तिककर्मभिरप्तिहोत्रादिभिवाँ यसनियमासनप्राणायासप्रत्याहारध्यानधारणासमाधिभिर्वालमनण्यपि गोपुर-श्राकारादिभिर्विमानादिभिः सह भगवद्विग्रहाचीपूजोपकरणैरर्चनैः ज्ञानादिभिर्वा वितपुजादिभिरज्ञपानादिभिर्वा भगवत्प्रीत्यर्थमुक्त्वा सर्वं क्रियते॥ ७ ॥ अधातो वीरशक्तिश्चतुर्भुजाऽभयवरदपग्नधरा किरीटाभरणयुता सर्थदेवैः परि-वृता कल्पतल्यूले चतुर्थिराजे रलघटैरमृतजलेरभिषिच्यमाना सर्वदेवतैर्वहा-दिभिन्नेन्यमाना अणियाच्यदेश्वर्ययुता संमुखे कामधेनुना स्तूयमाना वेदका-कादिकिः स्त्यमाना जयाद्यप्तरःक्षीिकः परिचर्यमाणा आदिससीमाभ्यां दीपाभ्यां प्रकाश्यमाना तुम्बुरुनारदादिभिगीयमाना राकासिनीवाठीभ्यां छत्रेण ह्यादिनीमायाभ्यां चामरेण स्वाहास्वधाभ्यां व्यजनेन भृगुपुण्यादिश्व-रभ्यच्यमाना देवी दिव्यासिंहासने पद्मासनारूढा सकलकारणकार्यकरी लक्ष्मी-पृथग्भवनकल्पना । अलंचकार स्थिरा प्रसन्नलोचना सर्वदेवतैः पूज्यमाना चीरलक्ष्मीरिति विज्ञायत इत्युपनिषत् ॥ ८॥

ॐ ॥ भदं कर्णभिरिति ज्ञानितः ॥ इत्याधर्वणीयसीतोपनिषत्समाता ॥ ४७ ॥

योगचूडामण्युपनिषत् ॥ ४८ ॥
मूलाधारादिषदचकं सहस्रारोपरि स्थितम् ।
योगज्ञानैकफलकं रामचन्द्रपदं अजे ॥
अ आप्यायन्दिवति शान्तिः ॥

ॐ योगचूडामणि वह्ये योगिनां हितकाम्यया । कैवत्यसिद्धिदं गूढं सेवितं योगवित्तमः ॥ १ ॥ आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा । ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षद ॥ २ ॥ एकं सिद्धःसनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम् । पदचकं पोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् ॥ ३ ॥ स्वदेष्टे यो न जानाति तस्य सिद्धिः कथं भवेत् । चतुर्देलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च

षद्दलम् ॥ ४ ॥ नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम् । पोडशारं विशु-द्धाख्यं अमध्ये द्विदलं तथा ॥ ५ ॥ सहस्रदलसंख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापि । आधारं प्रथमं चकं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ॥ ६ ॥ योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते । कामाख्यं तु गुदस्थाने पङ्कजं तु चतुर्दलस् ॥ ७॥ तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता । तस्य मध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम् ॥ ८ ॥ नाभौ तु मणिवद्विम्बं यो जानाति स योग-वित् । तसचामीकराभासं ति हेंसेवेव विस्फुरत् ॥ ९ ॥ त्रिकोणं तत्पुरं वहेरधो सेदात्प्रतिष्ठितम् । समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतोसुखस् ॥ १०॥ तसिन्दष्टे महायोगे यातायातो न विद्यते । स्वशब्देन अवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तद्।श्रयः ॥ ११ ॥ स्वाधिष्ठानाश्रयादस्मान्सेद्मेवाभिधीयते । तन्तुना मणि-बत्प्रोतो योऽत्र कन्दः सुबुम्नया ॥ १२ ॥ तन्नाभिमण्डले चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् । द्वादशारे महाचके पुण्यपापनिवर्जिते ॥ १३ ॥ तावजीवो अमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति । अर्ध्वं मेढादधो नाभेः कन्दे योनिः खगाण्ड-वत् ॥ १४ ॥ तत्र गांड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः । तेषु गाडीसह-स्रेषु द्विसप्ततिरुदाहता ॥ १५ ॥ प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दश स्मृताः । इडा च पिङ्गला चैव सुषुङ्गा च तृतीयगा ॥ १६ ॥ गान्धारी हितः जिह्ना च पूवा चैव यशस्विनी । अलम्बुसा कुहूश्चैव शिह्वनी दशमी स्सृता ॥ १७ ॥ एतन्नाडीमहाचकं ज्ञातन्यं योगिथिः सदा । इडा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिङ्गला स्थिता ॥ १८ ॥ सुपुन्ना मध्यदेशे तु गान्धारी वाम-चक्किषि। दक्षिणे हिलाजिह्वाच पूषाकर्णेच दक्षिणे॥ १९॥ यशस्त्रिनी वामकर्णे चानने चाप्यलम्बुसा । कुहूश्च लिङ्गदेशे तु मूलस्थाने तु शिङ्गिनी ॥ २० ॥ एवं द्वारं समाश्रिस तिष्ठन्ते नाडयः क्रमात् । इडापिङ्गलासीपुङ्गाः आणमार्गे च संस्थिताः ॥ २१ ॥ सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः । आणापानसमानाख्या व्यानोदानौ च वायवः ॥ २२ ॥ नागः कूर्मोऽथ कुकरो देवदत्तो धनंजयः । हृदि प्राणः स्थितो नित्यमपानो गुदमण्डले ॥२३॥ समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः। व्यानः सर्वशरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः ॥ २४ ॥ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तथा । कुकरः श्चत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ २५ ॥ न जहाति सृतं वापि सर्वन्यापी धनंजयः। एते नाडीषु सर्वासु अमन्ते जीवजन्तवः ॥ २६॥ आक्षिप्ती अजदण्डेन यथा चलति कन्दुकः । प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो त

तिष्टति ॥ २७ ॥ प्राणापानवको जीवो द्यधश्चोर्ध्यं च धावति । वामदक्षिण-मार्गाभ्यां चञ्चलत्वान दश्यते ॥ २८ ॥ रज्जवद्धो यथा इयेनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः । गुणबद्धस्तथा जीवः प्राणापानेन कर्षति ॥ २९ ॥ प्राणापानवद्यो जीवो हाधश्रीधर्वं च गच्छति । अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति । कर्ध्वाधःसंस्थितावेती यो जानाति स योगवित् ॥ ३०॥ हकारेण बहि-र्याति सकारेण विशेत्पुनः । हंस हंसेत्यमुं मन्नं जीवो जपति सर्वदा ॥ ३१ ॥ पटशतानि दिवारात्री सहस्राण्येकविंशतिः । एतत्संख्यान्वितं मम्रं जीवी जपति सर्वदा ॥ ३२ ॥ अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा । अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३३॥ अनया सदशी विद्या अनया सदशौ जपः । अनया सदशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥ ३४ ॥ कुण्डिलन्या समुद्भृता गायत्री प्राणधारिणी । प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदिवत् ॥ ३५ ॥ कन्दौध्वें कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः । ब्रह्मद्वारमुखं निसं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥ ३६ ॥ येन द्वारेण गन्तन्यं ब्रह्मद्वारमनामयम् । मुखे-नाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥ ३७ ॥ प्रबुद्धा विद्वयोगेन मनसा मरुता सह । सूचीवहात्रमादाय व्रजत्यूर्ध्व सुषुन्नया ॥ ३०॥ उद्घाटयेत्कवाटं तु यथा कुञ्चिकया गृहम् । कुण्डलिन्यां तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥ ३९॥ कृत्वा संपुटितो करी दहतरं बद्धा तु पद्मासनं गाढं वक्षसि संनिधाय चुबुकं ध्यानं च तचेष्टितम् । वारंवारमपानमूर्ध्वमनिलं प्रोचारयेत्पूरितं सुञ्चन्प्राण-मुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभावान्नरः॥ ४०॥ अङ्गानां मर्दनं कृत्वा श्रम-संजातवारिणा । कट्टम्ललवणत्यागी क्षीरभोजनमाचरेत् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः । अव्दाद्ध्वं भवेत्सिद्धो नान्न कार्या विचा-रणा ॥ ४२ ॥ सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः । सुञ्जते शिवसंप्रीत्या मिताहारी स उच्यते ॥ ४३ ॥ कन्दोध्वें कुण्डलीशक्तिरष्ट्या कुण्डलाकृतिः । वन्धनाय च स्रूढानां योगिनां मोक्षदा सदा ॥ ४४ ॥ महामुदा नभोमुद्रा ओड्याणं च जलन्धरम् । मूलबन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनसू मुलबन्धो विधीयते ॥ ४६ ॥ अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्स्त्रपुरीषयोः । युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात् ॥ ४७ ॥ ^१ओड्याणं दुरुते यसादिन-श्रान्तं महाखगः । 'ओड्डियाणं तदेव स्थान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ ४८ ॥ उदरा-त्पश्चिमं ताणमधो नाभेर्तिगद्यते । 'ओड्याणमुद्दे वन्धसत्रं वन्धो विधीयते

॥ ४९ ॥ ब्रह्माति हि शिरोजातमधोगामि नभोजलम् । ततो जालन्धरो वन्धः कष्टदुःखोधनाशनः॥ ५०॥ जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे।न षीयूषं पतत्यमी न च वायुः प्रधावति ॥ ५१ ॥ कपालकुहरे जिह्ना प्रविष्टा विपरीतगा । अवोरन्तर्गता दृष्टिर्भुद्रा भवति खेचरी ॥ ५२ ॥ न रोगो मरगं तस्य न निद्रा न धुधा तृषा । न च मूच्छा भवेत्तस्य यो सुद्रां वेत्ति खेचरीस् ॥ ५३ ॥ पीड्यते न च रोगेण लिप्यते न स कर्सिनः । बाध्यते न च केनापि यो सुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ५४ ॥ चित्तं चरति खे यसाजिह्या चरति खे यतः । तेनेयं खेचरी मुद्रा सर्वसिद्धनमस्कृता ॥ ५५ ॥ विन्दुमूलशरीराणि शिरास्तत्र प्रतिष्ठिताः । भावयन्ती शरीराणि आ पादतलमस्तकम् ॥ ५६॥ लेचयां मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोध्वतः । न तस्य क्षीयते बिन्दुः कामि-न्यालिङ्गितस्य च ॥ ५७ ॥ याविद्वन्दुः स्थितो देहे तावन्छत्युभयं कुतः। याबद्वा नभोसुद्रा ताबद्धिन्दुर्न गच्छति ॥ ५८ ॥ ज्वलितोऽपि यथा बिन्दुः संप्राप्तश्च हुताशनम् । वजस्यूर्धं गतः शत्तया निरुद्धो योनिसुदया ॥ ५९ ॥ स पुनर्द्विचिधो निन्दुः पाण्डरो लोहितस्तथा । पाण्डरं शुक्कमित्याहुलीहिताल्यं महारजः ॥ ६० ॥ सिन्दूरवातसंकाशं रविस्थानस्थितं रजः। शशिस्थान-स्थितं गुक्तं तयोरैक्यं सुदुर्लभम् ॥ ६१ ॥ बिन्दुर्वद्या एजः शक्तिविन्दुरिन्दू रजो रविः। उभयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥ ६२॥ वायुना क्राक्तिचालेन प्रेरितं च यथा रजः। याति बिन्दुः सदैवस्यं अवेद्विव्य-वपुसादा ॥ ६३ ॥ शुक्तं चन्द्रेण संयुक्तं रजः सूर्येण संगतम् । तयोः समरसेकत्वं यो जानाति स योगवित् ॥ ६४ ॥ नाडिजालस्य चालनं चनदसूर्ययोः। रसानां शोषणं चैव महासुदाभिधीयते ॥ ६५ ॥ वक्षोन्यस्तहनुः प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामाङ्किणा हस्ताभ्याम-नुधारयन्त्रसरितं पादं तथा दक्षिणम् । आपूर्वं धसनेन कुक्षियुगलं बच्चा इाने रेचयेत्सेयं ज्याधिविनाशिनी सुमहती सुद्रा नृणां कथ्यते ॥ ६६ ॥ चन्द्रां-होन समभ्यस्य सूर्यांशेनाभ्यसेत्पुनः । या तुल्या तु भवेत्संख्या ततो सुद्रां विसर्जयेत् ॥ ६७ ॥ निह पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः । अतिशुक्तं विषं घोरं पीयूषिमव जीर्यते ॥ ६८ ॥ क्षयकुष्ठगुदावर्तगुक्माजीर्णपुरोगमाः । तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत् ॥ ६९ ॥ कथितेयं महा-मुद्रा महासिद्धिकरी नृणाम् । गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित्

॥ ७० ॥ पद्मासनं समारुद्ध समकायशिरोधरः । नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदो-क्कारमञ्चयम् ॥ ७३ ॥ ॐ नित्यं शुद्धं बुद्धं निर्विकल्पं निरञ्जनं निराख्यात-सनादिनिधनमेकं तुरीयं यद्भतं भवद्भविष्यत् परिवर्तमानं सर्वदाऽनविछन्नं परंब्रह्म तस्माजाता परा शक्तिः स्वयंज्योतिरास्मिका। आत्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोर्राप्तः । अप्रेरापः । अन्यः पृथिवी । एतेषां पञ्चभूतानां पतयः पञ्च सदाशिवेश्वरस्द्रनिष्णुब्रह्माणश्चेति । तेषां ब्रह्मविष्णु-रुद्राश्चीरपत्तिस्थितिलयकर्तारः । राजसो ब्रह्मा सारिवको विष्णुस्तामसो रुद् इत्येते त्रयो गुणयुक्ताः । ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव । धाता च सृष्टी विक्लुश्च स्थिती रुद्ध नाही भोगाय चन्द्र इति प्रथमजा बभूदुः। एतेषां ब्रह्मणो लोका देवतिर्थंङ्गरस्थावराश्च जायन्ते । तेषां मनुष्यादीनां पञ्चभूतस-सवायः शरीरस् । ज्ञानकर्मेन्द्रियेर्ज्ञानविषयेः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिन-न्ताइंकारैः स्थूलकल्पितैः सोऽपि स्थूलप्रकृतिरित्युच्यते । ज्ञानकर्मेन्द्रियेर्ज्ञा-नविषयैः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिभिश्च सूक्ष्मस्थोऽपि लिङ्गमेवेरयुच्यते । गुणत्रययुक्तं कारणम् । सर्वेषामेवं त्रीणि शरीराणि वर्तन्ते । जायत्स्वमसुपुप्ति-तुरीयाश्चेत्यवस्थाश्चतस्यः तासामवस्थानामधिपतयश्चत्वारः पुरुषा विश्वतैजस-प्राज्ञात्मानश्चेति । विश्वो हि स्थूलभुङ्गित्यं तैजसः प्रनिविक्तभुक् । आनन्द-अुक् तथा प्राज्ञः सर्वसाक्षीत्यतः परः ॥ ७२ ॥ प्रणतः सर्वदा तिष्ठेत्सर्वजीवेषु भोगतः । अभिरामस्तु सर्वासु द्यवस्थासु द्यधोमुखः ॥ ७३ ॥ अकार उकारो मकारश्चेति त्रयो वर्णास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयो गुणास्त्रीण्यक्षराणि त्रयः स्वरा एवं प्रणयः प्रकाशते । अकारो जाम्रति नेत्रे वर्तते सर्वजन्तुषु । उकारः कण्ठतः स्त्रमे मकारो हृदि सुप्तितः॥ ७४॥ निराश्विश्वः स्थूलश्चा-कारः । हिरण्यगर्भसौजसः सूक्ष्मश्च उकारः । कारणाच्याकृतप्राज्ञश्च मकारः । अकारो राजसो रक्ती ब्रह्मा चेतन उच्यते। उकारः सास्त्रिकः शुक्को विष्णु-रित्यभिषीयते ॥ ७५ ॥ मकारस्तामसः कृष्णो रुद्रश्चेति तथोच्यते । प्रणवा-त्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः ॥ ७६ ॥ प्रणवात्प्रभवो रुद्रः प्रणवो हि परो भवेत्। अकारे लीयते ब्रह्मा ह्युकारे लीयते हरिः ॥ ७७ ॥ मकारे लीयते रुद्रः प्रणवो हि प्रकाशते । ज्ञानिनामूर्ध्वगो भूयादज्ञाने सादधोमुखः ॥ ७८ ॥ एवं वै प्रणवस्तिष्ठेचस्तं वेद स वेदिवत् । अनाहतस्वरूपेण ज्ञानिना-मूर्ष्वगो भवेत् ॥ ७९ ॥ तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्वघण्टानिनादवत् । प्रणवस्य

ध्वनिस्तद्वत्तद्ग्यं ब्रह्म चोच्यते ॥ ८० ॥ ज्योतिर्मयं तद्ग्यं स्यादवाच्यं बुद्धिस्-क्ष्मतः । दृहशुर्ये महात्मानो यस्तं वेद स वेद्वित् ॥ ८१ ॥ जामनेत्रहृयो-र्भध्ये हंस एव प्रकाशते । सकारः खेचरी प्रोक्तस्त्वंपदं चेति निश्चितम् ॥८२॥ हकारः परमेशः स्यात्तत्पदं चेति निश्चितम् । सकारो ध्यायते जन्तुईकारो हि भवेडूवम् ॥ ८३ ॥ इन्द्रियैर्वध्यते जीव आत्मा चैव न वध्यते । मम-त्वेन भवेजीवो निर्ममत्वेन केवलः ॥ ८४ ॥ भूर्भुवः स्वरिमे लोकाः सोम-सूर्यांझिदेवताः । यस्य मात्रासु तिष्टन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८५ ॥ क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रोद्री च वैष्णवी । त्रिधा सात्रास्थितिर्यत्रं तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८६ ॥ वचसा तज्जपेन्नित्यं वपुषा तत्समभ्यसेत्। मनसा तजापेन्नित्यं तत्परंज्योतिरोमिति ॥ ८७ ॥ ग्रुचिर्वाप्यश्रुचिर्वापि ग्रो जपेत्प्रणवं सदा । न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ८८ ॥ चले वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलो भवेत्। योगी स्थाणुत्वसाप्तोति ततो वायुं निरुन्धयेत् ॥ ८९ ॥ यावद्वायुः स्थितो देहे तावजीवो न मुञ्जति । मरणं तस्य निष्कान्तिसतो वायुं निरुंन्धयेत् ॥ ९० ॥ यावद्वायुः स्थितो देहे ताव-जीवो न मुञ्जति । यावदृष्टिर्भुवोर्मध्ये तावत्कालं भयं कुतः ॥ ९१ ॥ अल्प-कालभयाइह्मन् प्राणायामपरो भवेत् (?)। योगिनो मुनयश्चेव ततः प्राणान्नि-रोधयेत् ॥ ९२ ॥ षाड्विंशदङ्गिलिईसः प्रयाणं कुरुते बहिः । वासदक्षिणमार्गेण प्राणायासो विधीयते ॥ ९३ ॥ शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचकं मलाकुलम् । तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणक्षमः ॥ ९४ ॥ बद्धपनासनो योगी प्राणं चन्द्रेण प्रयेत् । धारयेद्वा यथाशक्तया भूयः सूर्येण रेचयेत् ॥ ९५॥ अमृतोद्धिसंकाशं गोक्षीरधवलोपमम् । ध्यात्वा चन्द्रमसं विस्वं प्राणायामे सुखी भवेत् ॥ ९६ ॥ स्फुरत्प्रज्वलसंज्वालापूज्यमादित्यमण्डलस् । ध्यात्वा हृदि स्थितं योगी प्राणायामे सुखी भवेत् ॥ ९७॥ प्राणं चेदिडया पिवे-न्नियमितं भूयोऽन्यथा रेचयेत्पीत्वा पिङ्गलया समीरणमधी बद्धा त्यजेहा-मया। सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिना बिन्दुद्वयं ध्यायतः शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनो मासद्वयाद्ध्वतः ॥ ९८ ॥ यथेष्टधारणं वायोरनलस्य प्रदीपनस् । नादाभिन्यक्तिरारोग्य जायते नानिशोधनात् ॥ ९९ ॥ प्राणी

देहस्थितो यावदपानं तु निरुन्धयेत्। एकधासमयी मात्रा उध्वीधो गगने गतिः॥ १००॥ रेचकः पूरकश्चेव कुम्भकः प्रणवात्मकः। प्राणायामी भवे-देवं मात्राद्वादशसंयुतः ॥ १०१ ॥ मात्राद्वादशसंयुक्तौ दिवाकरनिशाकरौ । दोषजालमवधन्तो ज्ञातन्यौ योगिभिः सदा ॥ १०२ ॥ पूरकं द्वादशं कुर्या-त्कुस्भकं षोडशं भवेत् । रेचकं दश चोंकारः प्राणायामः स उच्यते ॥१०३॥ अधमे द्वादश मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता। उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणाया-मस्य निर्णयः ॥ १०४ ॥ अधमे स्वेदजननं कम्पो भवति मध्यमे । उत्तमे स्थानमाम्रोति ततो वायुं निरुन्धयेत्॥ १०५॥ वद्धपद्मासनो योगी नम-स्कृत्य गुरुं शिवम् । नासाग्रदृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ १०६॥ द्वाराणां नव संनिरुध्य मरुतं वेद्धा दढां धारणां नीःवा कालमपानविद्वस-हितं शक्तया समं चालितम् । आत्मध्यानंयुतस्वनेन विधिना विन्यस्य सूर्जि स्थिरं यावत्तिष्टति ताबदेव महतां सङ्गो न संस्त्यते ॥ ५०७॥ प्राणायासी भवेदेवं पातकेन्धनपावकः । भवोद्धिमहासेतुः प्रोच्यते योगि-भिः सदा ॥ १०८ ॥ आसनेन रुजं हन्ति प्राणायामेन पातकम् । विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुद्धति ॥ १०९ ॥ धारणाभिर्मनोधैयँ याति चैतन्यमद्भुतस् । समाधौ मोक्षमाप्तोति त्यक्त्वा कर्म ग्रुभाग्रुभस् ॥ १९०॥ प्राणायामद्विषद्भेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः। प्रत्याहारद्विषद्भेन जायते धारणा ञुभा ॥ १११ ॥ धारणाद्वादश प्रोक्तं ध्यानं योगविशारदैः । ध्यानद्वादश-केनैव समाधिरभिधीयते ॥ ११२॥ यत्समाधौ परंज्योतिरनन्तं विश्वती-सुखम् । तस्मिन्दष्टे क्रियाकर्म यातायातो न विद्यते ॥ ११३ ॥ संबद्धासनसे-ट्मङ्कियुगलं कर्णाक्षिनासापुटद्वाराद्यङ्कालिभिर्नियम्य पवनं वक्केण वा पूरितस्। बद्धा वक्षांस बह्वयानसहितं (?) मूर्षि स्थिरं धारयेदेवं यान्ति विशेवतत्त्वस-मतां योगीश्वरास्तन्मनः ॥ ११४ ॥ गगनं पवने प्राप्ते ध्वनिरूपद्यते महान् । घण्टादीनां प्रवाद्यानां नादिसिद्धिरुदीरिता ॥ ११५ ॥ प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् । प्राणायामवियुक्तेभ्यः सर्वरोगसमुद्भवः ॥ ११६ ॥ हिका कासस्तथा श्वासः शिरःकर्णाक्षिवेदनाः। भवन्ति विविधा रोगाः पव-नव्यत्ययक्रमात्॥ १९७॥ यथा सिंहो गजी व्यात्रो भवेद्वइयः शनैः शनैः। तथैव सेनितो बायुरन्यथा इन्ति साधकम् ॥ ११८ ॥ युक्तं युक्त त्यनेद्वायुं

युक्तं युक्तं प्रपूर्येत् । युक्तं युक्तं प्रवक्षीयादेवं सिव्हिमवामुयात् ॥ ११९ ॥ धरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम् । यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥ १२० ॥ यथा तृतीयकाले तु रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम्। तृतीयाकृत्थितो योगी विकारं मानसं हरेदिःयुपनिषत् ॥१२१॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ इति योमणूडामण्युपनिषत्समासा ॥ ४८ ॥

निर्वाणोपनिषत् ॥ ४९ ॥

निर्वाणोपनिषद्वेद्यं निर्वाणानन्दतुन्दिलम् । त्रैपदानन्दसाम्राज्यं स्वमात्रमिति चिन्तयेत् ॥

ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः।

अथ निर्वाणोपनिष्दं ज्याख्यास्थामः । परमहंसः सोऽहम् ॥ परिवाजकाः पश्चिमछिङ्गाः । मन्मथक्षेत्रपालाः । गगनसिद्धान्तः असृतकह्वोलनदी । अक्षयं निरक्षनम् । निःसंशय ऋषिः । निर्वाणो देवता । निष्कुलप्रवृत्तिः । निष्केवल-ज्ञानम् । जर्थ्वाज्ञायः । निरालम्बपीठः । संयोगदीक्षा । वियोगोपदेशः। दीक्षासंतोषपानं च । हादशादित्यावलोकनम् । विवेकरक्षा । कर्णैव केलिः। आनन्दमाला एकान्तगुहायां सुक्तासनसुखगोष्ठाः । अकल्पितभिक्षाक्षी । हंसाचारः । सर्वभूतान्तर्वर्ती हंस इति प्रतिपादनस् । धैर्यकन्था । उदासीन-कौपीनम् । विचारदण्डः । ब्रह्मावलोकयोगपट्टः । श्रियां पादुका । परेच्छाच-रणम् । कुण्डलिनीबन्धः । परापवादमुक्तो जीवन्युक्तः । ज्ञिवयोगनिदा च । खेचरीमुद्रा च। परमानन्दी। निर्गतगुंणत्रयम्। विवेकलभ्यम्। मनोवाग-गोचरम् । अनित्यं जगद्यजनितं स्वमजगद्भगजादितुस्यम् । तथा देहादिसंघातं मोहगुणजालकितं तद्रजुसर्ववत्कितम् । विष्णुविष्यादिशताभिधानल-क्ष्यम् । अङ्करो मार्गः । धून्यं न संकेतः परमेश्वसत्ता । अत्यसिद्धयोगो मठः । अमरपदं तत्स्वरूपस् । आदिब्रह्मस्वसंत्रित् । अजपा गायत्री । विकार-दुण्डो ध्येयः । मनोनिरोधिनी कन्था । योगेन सदानन्दस्वरूपदर्शनम् । आन-न्दभिक्षाशी । महाश्मशानेऽप्यानन्दवने वासः । एकान्तस्थानम् । आनन्द-मठम् । उन्मन्यवस्था । शारदा चेष्टा । उन्मती गतिः । निर्मलगात्रम् । 🗁

हासवपीठम् । अमृतकछोलानन्दिक्षया । पाण्डरगगनम् । महासिद्धान्तः ।
हासदमादिदिन्यशक्तयाचरणे क्षेत्रपात्रपद्वता । परावरसंयोगः । तारकोपदेशः ।
अद्वेतसदानन्दो देवता । नियमः स्वान्तरिन्दियनिप्रहः । भयमोहशोककोधस्यागस्यागः । परावरेक्यरसास्यादनम् । अनियामकत्वितर्मत्वक्तिः । स्वप्रकाशःब्रह्मतन्दे शिवशक्तिसंपुटितप्रपञ्चच्छेदनम् । तथा पत्राक्षाक्षिकमण्डलुः ।
आवाभावदहनम् । विभ्रत्याकाशाधारम् । शिवं तुरीयं यज्ञोपवीतम् । तन्मया
शिखा । चिन्मयं चोत्सृष्टिदण्डम् । संतताक्षिकमण्डलुम् । कर्मनिर्मूलनं कन्था ।
सायाममताहंकारदहनम् । इमशाने अनाहताङ्गी निस्त्रेगुण्यस्वरूपानुसन्धानं
समयम् । आन्तिहरणम् । कामादिवृत्तिदहनम् । काठिन्यद्वकौपीनम् ।
चीशिजिनवासः । अनाहतमन्नः । अक्रिययैव जुष्टम् । स्वेच्छाचारस्यस्यभावो
सोक्षः परं ब्रह्म । प्रववदाचरणम् । ब्रह्मचर्यशान्तिसंग्रहणम् । ब्रह्मचर्याश्रमेऽधीत्य वानप्रस्थाश्रमेऽधीत्य ससर्वसंविद्यासं संन्यासम् । अन्ते ब्रह्माखण्डाकारम् । नित्यं सर्वसंदेहनाशनम् । एतिन्नवाणदर्शनं शिष्यं पुत्रं विना न देयमित्युपनिवत् ॥ ॐ वाद्ये मनसीति शान्तिः ॥

इति निर्वाणोपनिषत्समाप्ता ॥ ४९ ॥

सण्डलब्राह्मणोपनिषत् ॥ ५० ॥ बाह्यान्तस्तारकाकारं व्योमपञ्चकविश्रहम् । राजयोगैकसंसिद्धं रामचन्द्रमुपास्महे ॥ १ ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ।

ॐ याज्ञवल्क्यो ह वे महामुनिरादिखलोकं जगाम । तमादित्यं नत्वा भो भगवज्ञादिखात्मतत्त्वमनुबृहीति । स होवाच नारायणः । ज्ञानयुक्तयमाद्यष्टाङ्ग-योग उच्यते । श्रीतोष्णाहारिनद्राविजयः सर्वदा शान्तिर्निश्चल्रत्वं विषयेन्द्र-यनिम्रहश्चेते यमाः । गुरुभक्तिः सत्यमार्गानुरक्तिः सुखागतवस्त्वनुभवश्च तद्व-स्त्वनुभवेन तृष्टिर्निःसङ्गता एकान्तवासो मनोनिष्टृत्तिः फलानभिलापो वैराग्य-भावश्च नियमाः । सुखासनवृत्तिश्चीरवासाश्चेवमासनियमो भवति । प्रक-जुम्भकरेचकैः षोडशाचनुःषष्टिद्वात्रिंशत्संख्यया यथाक्रमं प्राणायामः।विषयेभ्य इन्द्रियार्थभ्यो मनोनिरोधनं प्रत्याहारः। सर्वशरीरेषु चैतन्येकतानता ध्यानम् । विषयस्यावर्तनपूर्वकं चैतन्ये चेतःस्थापनं धारणं भवति । ध्यानविस्मृतिः

समाधिः । एवं सूक्ष्माङ्गानि । य एवं वेद स सुक्तिभाग्भवति ॥ १॥ देहस्य पञ्च दोषा भवन्ति कामकोधनिःश्वासभयनिद्धाः। तिन्नरासस्तु निःसंक-ल्पक्षमालच्वाहाराप्रमादतातत्त्वसेवनम् । निद्राभयसरीसृपं तृःणावर्तं दारपङ्कं संसारवार्धि तरीतुं सूक्ष्ममार्गमवलम्बय सत्त्वादिगुणानितिक्व-म्य तारकमवलोकयेत् । अूमध्ये सचिदानन्दतेजःकूटरूपं तारकं ब्रह्म । तदु-पायं लक्ष्यत्रयावलोकनम् । मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सुषुन्ना सूर्याभा । मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी । तत्र तमोनिवृत्तिः । तद्रशैनात्सर्वपापनिवृत्तिः । तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वये फूत्कारशब्दो जायते । तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यनीलज्योतिः पर्यति । एवं हृद्येऽपि । बहिर्लक्ष्यं तु नासाम्रे चतुः-षडप्टदशद्वादशाङ्गुलीभिः क्रमान्नीलद्युतिश्यामत्वसदयक्तमङ्गीस्फुरत्पीतवर्ण-हुयोपेतं ब्योमत्वं पश्यति स तु योगी चलनदृष्ट्या ब्योमभागवीक्षितुः पुरुषस्य दृष्ट्यम्रे ज्योतिर्मयूखा वर्तन्ते । तदृष्टिः स्थिरा भवति । शीर्पोपरि द्वादशाङ्कितानं ज्योतिः पश्यति तदाऽसृतत्वमेति । सध्यलक्ष्यं तु प्रातिश्च-त्रादिवर्णसूर्यचन्द्रवह्निज्वालावलीवत्तहिहीनान्तरिक्षवत्पर्यति । तदाकारा-कारी भवति । अभ्यासान्निर्विकारं गुणरहिताकाशं भवति । विस्फुरत्तारका-कारगाढतसोपसं पराकाशं भवति । कालानलसमं द्योतमानं महाकाशं भवति । सर्वोत्कृष्टपरमाद्वितीयप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति । कोटिसूर्यप्र-काशं सूर्याकाशं भवति । एवमभ्यासात्तन्सयो भवति य एवं वेद ॥ २॥ तद्योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तरविभागतः। पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कं तदुत्तरमिति । तारकं द्विविधम् — सूर्तितारकमसूर्तितारकमिति । यदिन्दि-यान्तं तन्मूर्तितारकम् । यङ्ग्युगातीतं तदमूर्तितारकमिति । उभयमपि मनोयुक्तमभ्यसेत् । मनोयुक्तान्तरदृष्टिस्तारकप्रकाशाय भवति । अयुगम-ध्यविले तेजस आविभीवः । एतत्पूर्वतारकम् । उत्तरं त्वमनस्कम् । तालु-मूलोर्ध्वभागे महाज्योतिर्विद्यते । तद्दर्शनादणिमादिसिद्धिः । लक्ष्येऽन्तर्धा-ह्यायां दृष्टौ निमेपोन्मेषवर्जितायां चेयं शाम्भवी सुद्रा भवति । सर्वतच्रेषु गोप्यमहाविद्या भवति । यज्ज्ञानेन संसारनिवृत्तिः । तत्पूजनं मोक्षफलदम् । अन्तर्रुक्ष्यं जलज्योतिःस्वरूपं भवति । महर्षिवेद्यं अन्तर्वाह्येन्द्रियरदश्यस् ॥ ३ ॥ सहस्रारे जलज्योतिरन्तर्लक्ष्यम् । बुद्धिगुहायां सर्वोङ्गसुन्दरं पुरुष-क्पमन्तर्रक्ष्यमित्यपरे । शीर्षान्तर्गतमण्डलमध्यगं पञ्चवऋमुमासहायं नील- कण्ठं प्रशान्तमन्तर्रुक्ष्यमिति केचित् । अङ्ग्रष्टमात्रः पुरुषोऽन्तर्रुक्ष्यमित्येके । उक्तिविकल्पं सर्वमारमेव । तल्लक्ष्यं ग्रुद्धात्मदृष्ट्या वा यः पश्यित स एव ब्रह्मितिष्ठो भवति जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विशतितक्त्वं परित्यज्य पर्ज्ञिशः परमात्माहमिति निश्चयाजीवन्मुक्तो भवति । एवमन्तर्रुक्ष्यदर्शनेन जीव-न्मुक्तिदशायां स्वयमन्तर्रुक्ष्यो भृत्वा परमाकाशाखण्डमण्डलो भवति ॥ ४॥

इति मण्डलबाह्मणोपनिषत्सु प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

अथ ह याज्ञवल्क्य आदित्यमण्डलपुरुषं पप्रच्छ। भगवन्नन्तर्रक्ष्यादिकं बहुधोक्तम् । सया तन्न ज्ञातम् । तद्रूहि महाम् । तदुहोवाच पञ्चभूतकारणं तिंडित्कूटाअं तहचतुःपीठम् । तन्मध्ये तत्त्वप्रकाशो भवति । सोऽतिगृह अन्यक्तश्च । तज्ज्ञानष्ठवाधिरूढेन ज्ञेयम् । तद्वाह्याभ्यन्तर्रक्ष्यम् । तन्मध्ये जगङ्घीनम् । तन्नाद्विन्दुकलातीतमखण्डमण्डलम् । तत्सगुणनिर्गुणस्वरूपम् । तद्वेत्ता विमुक्तः। आदाविमण्डलम्। तदुपरि सूर्यमण्डलम्। तन्मध्ये सुघाचन्द्रमण्डलस्। तन्मध्येऽखण्डब्रह्मतेजोमण्डलम्। तद्विद्युक्षेखावच्छुक्कभा-खरम्। तदेव शाम्भवीलक्षणम् । तहर्शने तिस्तो मूर्तयः—अमा प्रतिपत् पूर्णिमा चेति । निमीलितद्रशनममादृष्टिः । अर्थोन्मीलितं प्रतिपत् । सर्वोन्मीलनं पूर्णिमा भवति । तासु पूर्णिमाभ्यासः कर्तव्यः । तल्लक्ष्यं नासाप्रम् । यदा तालुमूले गाढतमो दृश्यते । तद्भ्यासाद्खण्डमण्डलाकारज्योतिर्दृश्यते । तदेव सचिदानन्दं ब्रह्म भवति । एवं सहजानन्दे यदा मनो लीयते तदा शान्तो भवी भवति । तामेव खेचरीमाहुः । तदभ्यासान्मनः स्थैर्यम् । ततो वायुस्थेर्यम् । तचिह्नानि—आदौ तारकवदृत्रयते । ततो वज्रदर्पणम् । तत उपरि पूर्णचन्द्रमण्डलम् । ततो नवरत्नप्रभामण्डलम् । ततो मध्याह्मार्क-मण्डलम् । ततो विह्निशिखामण्डलं क्रमाहृत्यते ॥ १ ॥ तदा पश्चिमाभि-सुखप्रकाशः स्फर्टिकधूम्रबिन्दुनादकलानक्षत्रखद्योतदीपनेत्रसवर्णनवरलादिप्रभा दृश्यन्ते । तदेव प्रणवस्यरूपम् । प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा धतकुम्भको नासाम्रद-र्शनदृढभावनया द्विकराङ्गिलिभः षण्मुखीकरणेन प्रैणवध्वनिं निशम्य मन-सात्र लीनं भवति । तस्य न कर्मलेपः । रवेरुदयासामययोः किल कर्म कर्त-न्यम् । एवंविधश्चिद्।दिलस्योदयास्तमयाभावात्सर्वकर्माभावः । शब्दकाल-लयेन दिवाराज्यतीतो भूत्वा सर्वपरिपूर्णज्ञानेनोन्मन्यवस्थावशेन बह्येक्यं

भवति । उन्मन्या अमनस्कं भवति । तस्य निश्चिन्ता ध्यानम् । सर्वकर्मीत-राकरणमावाहनम् । निश्चयज्ञानमासनम् । उन्मनीभावः पाचम् । सदाऽम-नस्कमर्चम् । सदादीप्रिरपाराश्वतवृत्तिः स्नानम् । सर्वत्र भावना गन्धः । दृक्खरूपावस्थानसक्षताः । चिदाप्तिः पुष्पम् । चिदग्निस्वरूपं धूपः । चिदा-दित्यस्वरूपं दीपः । परिपूर्णचन्द्रामृतरसस्त्रैकीकरणं नैवेद्यस् । निश्चलत्वं प्रदक्षिणम् । सोऽहंभावो नमस्कारः । मोनं स्तुतिः । सर्वसंतोषो विसर्जनमिति य एवं वेद ॥ २ ॥ एवं त्रिपुटयां निरस्तायां निस्तरङ्गसञ्चद्रविद्वातस्थितदीप-वद्चलसंपूर्णभावाभावविद्दीनकैवल्यज्योतिर्भवति । जाम्रक्षिन्दान्तःपरिज्ञानेन ब्रह्मविद्भवति । सुवृप्तिसमाध्योर्मनोलयाविशेषेऽपि महद्रस्युभयोर्भेद्समसि लीनत्वान्मुक्तिहेतुत्वाभावाच । समाधौ मृदिततमोविकारस्य तदाकाराकारि-ताख॰डाकारवृत्यात्मकसाक्षिचैतन्ये प्रपञ्चलयः संपद्यते प्रपञ्चस्य सनःकिष-तःवात् । ततो भेदाभावात् कदाचिद्वहिर्गतेऽपि सिध्यात्वभानात् । सकृहि-भातसदानन्दानुभवेकगोचरो ब्रह्मवित्तदेव भवति । यस संकल्पनाशः स्यात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता । तस्याद्मावाभावी परित्यज्य पर्मात्मध्यानेन मुक्ती भवति । पुनःपुनः सर्वावस्थासु ज्ञान्ज्ञेयो ध्यानध्येयो लक्ष्यालक्ष्ये दृश्यादस्ये चोहापोहादि परित्यज्य जीवन्मुक्तो अवेत्। य एवं वेद ॥ ३ ॥ पञ्चावस्थाः जाप्रत्स्वमसुपुष्तितुरीयातीताः । जाप्रति प्रवृत्तो जीवः प्रवृत्तिमार्गासकः। पापफलनरकादिमांस्तु ग्रुभकर्मफलस्वर्गमस्त्विति काङ्कृते। स एव स्वीकृतवेरा-ग्यात्कर्मफलजैन्माऽलं संसारवन्धनमलमिति विमुत्तर्यक्षिमुखो निवृत्तिमार्गप्र-वृत्तो भवति । स एव संसारतारणाय गुरुमाश्चित्य कामादि त्यक्त्वा बिहितक-र्माचरन्साधनचतुष्टयसंपन्नो हृद्यकमरूमध्ये भगवत्सन्तामात्रान्तर्लक्ष्यरूप-मासाच सुबुत्यवस्थाया सुक्तवसानन्दस्मृति लब्ध्वा एक एवाहमद्वितीयः कंचिक्कालमज्ञानवृत्त्या विस्मृतजामद्वासनानुफलेन तैजसोऽस्मीति तद्दुभय-निवृत्त्या प्राज्ञ इदानीमसीत्यहमेक एव स्थानभेदादवस्थाभेदस्य परंतु निह मदन्यदिति जातविवेकः शुद्धाद्वैतव्रह्माहिमिति भिदागन्धं निरस्य स्वान्तर्विजृ-म्भितभानुमण्डलध्यानतदाकाराकारितपरंत्रह्माकारितमुक्तिमार्गमारूढः परि-पक्को भवति । संकल्पादिकं मनो बन्धहेतु । तिद्वयुक्तं मनो मोक्षाय भवति । तहांश्रक्षुरादिवाद्यप्रपञ्चोपन्नो विगतप्रपञ्चगन्धः सर्वजगदाःसःवेन पद्यंस्य-

काहंकारो ब्रह्माहमस्मिति चिन्तयित्रदं सर्वं यदयमात्मेति भावयन्कृतकृत्यो भवति ॥ ४ ॥ सर्वपरिपूर्णतुरीयातीतब्रह्मभूतो योगी भवति । तं ब्रह्मेति स्तुवन्ति । सर्वछोकस्तुतिपात्रः सर्वदेशसंचारशीलः परमात्मगाने विन्दुं निक्षिप्य छुद्धाद्वेताजाड्यसहजामनस्कयोगनिद्वाखण्डानन्दपदाजुवृत्त्या जीवन्मुक्तो भवति । तद्योगन्दसमुद्रममा योगिनो भवन्ति । तद्येक्षया इन्द्रान्दयः खल्पानन्दाः । एवं प्राप्तानन्दः परमयोगी भवतीत्युपनिवत् ॥ ५॥

इति मण्डलवाह्मणोपनिषत्सु द्वितीयं वाह्मणम् ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्यो सहासुनिर्मण्डलपुरुषं पप्रच्छ स्वामिन्नमनस्कलक्षणसुक्तमपि विस्मृतं पुनस्तलक्षणं बृहीति । तथेति मण्डलपुरुषोऽववीत् । इदममनस्कम-तिरहस्यम् । यज्ज्ञानेन कृतार्थो भवति तन्नित्यं शांभधीमुद्रान्वितम् । परमा-त्मदृष्ट्या तत्मत्ययलक्ष्याणि दृष्ट्वा तद्नु सर्वेशमप्रमेयमजं शिवं परमाकाशं निरालम्बसद्वयं ब्रह्मविष्णुरुद्रादीनामेकलक्ष्यं सर्वकारणं परंब्रह्मात्मन्येव पर्यमानो गुहाबिहरणसेव निश्चयेन ज्ञात्वा भावाभावादिद्वनद्वातीतः संबिद्धिः तमनोन्मन्यनुभवस्तद्ननन्तरम्बिलेन्द्रियक्षयवशादमनस्कसुखब्रह्मानन्दसमुद्रे मनःप्रवाहयोगरूपनिवातस्थितदीपवद्चलं परंबद्य प्राप्तोति । ततः शुक्कपृक्ष-वन्मूर्व्छानिद्रामयनिःश्वासोर्द्यासाभावान्नष्टद्वन्द्वः सदाचञ्चलगात्रः परमशा-निंत स्वीकृत्य मनःप्रचारशून्यं परमात्मनि लीनं भवति। पयःस्नावानन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गे परिनष्टे मनोनाशो भवति तदेवामनस्कम् । तदनु नित्यशुद्धः परमात्माहमेवेति तत्त्वमसीत्युपदेशेन त्वमेवाहमहमेव त्वमिति तारकयोगमार्गेणाखण्डानन्दपूर्णः कृतार्थो भवति ॥ १ ॥ परिपूर्ण-पराकाशमग्रमनाः प्राप्तोनमन्यवस्थः संन्यसायवेनिवयवर्गोऽनेकजन्मार्जित-पुण्यपुअपककेवत्यफलोऽखण्डानन्दनिरस्तसर्वक्षेशकरमलो ब्रह्माहमस्मीति कृत-कृत्यो भवति । त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात्परमात्मनः । इत्युचरन्त्स-मालिङ्गय शिष्यं ज्ञिमनीनयत्॥ २॥

इति मण्डलबाह्मणोपनिषत्सु तृतीयं बाह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ ह याज्ञवरुत्रयो मण्डलपुरुषं पप्रच्छ व्योमपञ्चकलक्षणं विस्तरेणानु-बृह्यिति । स होवाचाकाक्षां पराकाक्षां महाकाक्षां सूर्याकाक्षां परामाकाक्षामिति पज्ञ भवन्ति । बाह्याभ्यन्तरमन्धकारमयमाकाक्षम् । बाह्यस्याभ्यन्तरे काला-चलसद्दशं पराकाक्षम् । सबाह्याभ्यन्तरेऽपरिमितद्युतिनिभं तत्त्वं महाकाक्षम् । सबाह्याभ्यन्तरे सूर्यनिमं सूर्याकाशम् । अनिर्वचनीयज्योतिः सर्वन्यापकं निरतिशयानन्दरुक्षणं परमाकाशम् । एवं तत्तह्रक्ष्यदर्शनात्तत्तद्यो भवति । नवचकं षडाधारं त्रिलक्ष्यं न्योमपञ्चकम् । सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामतो भवेत् ॥ १ ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्सु चतुर्थं ब्राह्मगम् ॥ ४ ॥

सिवषयं मनो बन्धाय निर्विषयं मुक्तये अवति । अतः सर्वं जगिचित्तगो-चरम् । तदेव चित्तं निराश्रयं मनोन्मन्यवस्थापरिपकं लययोग्यं भवति । तल्ल्यं परिपूर्णे मिय समभ्यसेत् । सनोलयकारणमहमेव । अनाहत्स्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः । ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिज्योतिरन्तर्गतं मनः । यन्मनिक्षजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत् । तन्मनो विलयं याति तिद्विष्णोः परमं पदम् । तल्ल्याच्लुद्धाद्वैतसिद्धिर्भेदाभावात् । एतदेव परमतत्त्वम् । स तज्ज्ञो बालोन्मत्तपिशाचवज्जवृत्त्या लोकमाचरेत् । एवममनस्काभ्यासे-नेव नित्यनृप्तिरल्पमूत्रपुरीषितियभोजनद्दाङ्गाजाङ्यनिद्राद्यवायुचलनाभावत्र-द्यदर्शनाज्ज्ञातसुखस्वरूपसिद्धिभवति । एवं चिरसमाधिजनितवद्यामृतपान-परायणोऽसौ संन्यासी परमहंस अवधृतो भवति । तद्र्शनेन सकलं जगत्प-चित्रं भवति । तत्सेवापरोऽज्ञोऽपि मुक्तो भवति । तत्कुलभेकोत्तरशतं तार-यति । तन्मानृपिनृजायापस्यवर्णं च मुक्तं भवति । तत्कुलभेकोत्तरशतं तार-

> इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्सु पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥ ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः ॥ इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत्समासा ॥ ५० ॥

दक्षिणामृत्युपनिषत् ॥ ५१ ॥ यन्मौनन्याख्यया मौनिपटलं क्षणमात्रतः । महामौनपदं याति स हि मे परमा गतिः ॥

ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥

ॐ ब्रह्मावर्ते महाभाण्डीरवटमूले महासत्राय समेता महर्षयः शौनका-दयस्ते ह समित्पाणयस्तत्त्विज्ञासवो मार्कण्डेयं चिरंजीविनमुपसमेत्य पप्रच्छुः केन त्वं चिरं जीवसि केन वानन्दमनुभवसीति । परमरहस्यशिवतत्त्व-ज्ञानेनेति स होवाच । किं तत्परमरहस्यशिवतत्त्वज्ञानम् । तत्र को देवः । के मन्नाः । को जपः । का मुद्रा । का निष्ठा । किं तज्ज्ञानसाधन्त् । कः परिकरः को बलिः । कः कालः । किं तत्स्थानमिति । स होवाच । येन दक्षिणामुखः शिवोऽपरोक्षीकृतो भवति तत्परमरहस्यशिवतत्त्वज्ञानम् । यः सर्वोपरमे काले सर्वानात्मन्युपसंहत्य स्वात्मानन्दसुखे मोदते प्रकाशते वा स देवः । अत्रैते मत्ररहस्यक्षोका भवन्ति । मेधा दक्षिणामूर्तिमन्नस्य ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । देवता दक्षिणास्यः । मन्नेणाङ्गन्यासः । अ आदौ नम उचार्य ततो भगवते पदम् दक्षिणेति पदं पश्चान्मूर्तये पदमुद्धरेत् ॥ १ ॥ असमच्छव्दं चतुर्थ्यन्तं मेघाँ प्रज्ञां पदं वदेत् । समुचार्यं ततो वायु-बीजं च्छं च ततः पटेत् । अग्निजायां ततस्त्वेष चतुर्विशाक्षरो मनुः ॥ २ ॥ ध्यानम् ॥ स्फटिकरजतवर्णं भौक्तिकीमक्षमालाममृतकलशिवद्यां ज्ञानमुद्रां कराग्रे । द्धतसुरगकक्षं चन्द्चूडं त्रिनेत्रं विष्टतविविधभूषं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥ ३ ॥ मन्नेण न्यासः । आदौ वेदादिसुचार्य स्वराद्यं सविसर्गकम् । पञ्चाण तत उद्घृत्य अन्तरं सविसर्गकम् । अन्ते समुद्धरेत्तारं मनुरेष नवाक्षरः ॥ ४ ॥ मुद्रां भद्रार्थदात्रीं स परशुहरिणं वाहुभिर्वाहुमेकं जान्वासक्तं द्धानी भुजग-विलसमावद्धकक्ष्यो वटाधः । आसीनश्चन्द्रखण्डप्रतिघटितजटाक्षीरगौरिश्च-नेत्रो दद्यादाद्यः ग्रुकाद्येर्मुनिभिरभिवृतो भावग्रुद्धिं भवो नः॥ ५॥ मन्नेण न्यासः ब्रह्मिंन्यासः-तारं ब्रूं नम उचार्य मायां वाग्भवमेव च । दक्षिणापद-मुचार्य ततः स्यान्मूर्तये पदम् ॥ ६ ॥ ज्ञानं देहि पदं पश्चाद्विद्वजायां ततो न्यसेत् । मनुरष्टाद्शार्णोऽयं सर्वमन्नेषु गोपितः ॥ ७ ॥ भसम्यापाण्डुराङ्गः शशिशकलधरो ज्ञानमुद्राक्षमालाबीणापुसैर्विराजत्करकैमलधरो योगपट्टाभि-रामः । व्याख्यापीठे निघण्णो सुनिवरनिकरैः सेव्यमानः प्रसन्नः सैव्यालः कृत्तित्रासाः सततमवतु नो दक्षिणामूर्तिरीशः ॥ ८॥ मन्नेण न्यासः । (ब्रह्मर्षिन्यासः) । तारं परं रमाबीजं वदेत्साम्बशिवाय च । तुभ्यं चानल-जायां च मनुद्वीद्शवर्णकः ॥ ९ ॥ बीणां करैः पुस्तकमक्षमालां विभ्राणम-आभगलं वराट्यम् । फणीन्द्रकक्ष्यं मुनिभिः शुकायैः सेव्यं वटाधः कृतनी-डमीडे ॥ १० ॥ विष्णुऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । देवता दक्षिणास्यः । मन्<mark>रेण</mark> न्यासः । तारं नमो भगवते तुभ्यं वटपदं ततः । मूलेति पद्मुचार्य वासिने पद्मुद्धरेत् ॥ ११॥ प्रज्ञामेधापदं पश्चादादिसिद्धं ततो वदेत्। दायिने पद्मु सार्थिने नम उद्घरेत् ॥ १२॥ वागीशाय ततः पश्चान्महा- ज्ञानपदं ततः। वहिजायां ततस्त्वेष द्वात्रिंशद्वर्णको मनुः । आनुष्टुभो मत्रराजः सर्वमत्रोत्तमोत्तमः ॥ १३ ॥ ध्यानम् । सुद्रापुस्तकविह-नागविलसद्वाहुं प्रसन्नाननं मुक्ताहारविभूषणं शशिकलाभास्वत्किरीटोज्व-लम् । अज्ञानापहमादिमादिमगिरामर्थं भवानीपतिं न्यप्रोधान्तनिवासिनं परगुरुं ध्यायाम्यभीष्टासये ॥ १४ ॥ मौनसुद्रा । सोऽहमिति यावदास्थितिः सनिष्ठा भवति । तदभेदेन मन्नाम्रेडन ज्ञानसाधनम् । चित्ते तदेकतानता परिकरः । अङ्गचेष्टार्पणं बलिः । त्रीणि धामानि कालः । द्वादशान्तपदं स्थानमिति । ते ह पुनः श्रद्धानास्तं प्रत्यूचुः । कथं वाऽस्रोदयः । किं स्वरूपम् । को वाऽस्योपासक इति । स होवाच । वैराग्यतैलसंपूर्णे भक्तिवर्तिसमन्विते । प्रबोधपूर्णपात्रे तु ज्ञिसदीपं विलोकयेत् ॥ १५॥ मोहान्धकारे निःसारे उदेति स्वयमेव हि । वैराग्यमरणि कृत्वा ज्ञानं कृत्वा तु चित्रगुम् ॥ १६ ॥ गाडतामिलसंशान्त्ये गूडमर्थं निवेदयेत् । मोह-भानुजसंकान्तं विवेकाख्यं मृकण्डुजम् ॥ १७ ॥ तत्त्वाविचारपारोन बद्धं द्वैतभयातुरम् । उजीवयन्निजानन्दे स्वस्वरूपेण संस्थितः ॥ १८॥ शेमुषी दक्षिणा प्रोक्ता सा यस्याभीक्षणे मुखम् । दक्षिणाभिमुखः प्रोक्तः शिवोऽसौ ब्रह्मवादिभिः ॥ १९ ॥ सर्गादिकाले भगवान्विरिक्किरपास्यैनं सर्गसामर्थ्य-माप्य । तुतोष चित्ते वाञ्छितार्थाश्च लब्ध्वा धन्यः सोपास्योपासको भवति धाता ॥ २० ॥ य इमां परमरहस्यशिवतत्त्वविद्यामधीते स सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति । य एवं वेद स कैवल्यमनुभवतीत्युपनिषत् ॥ २१ ॥

ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥ इति दक्षिणामूर्श्वेपनिषत्समाप्ता॥ ५१॥

शरभोपनिषत् ॥ ५२ ॥

सर्वं संत्यज्य मुनयो यद्गजन्त्यात्मरूपतः । तच्छारभं त्रिपाद्वह्य स्वमात्रमवशिष्यते ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

अथ हैनं पैप्पलादो ब्रह्माणमुवाच भो भगवन् ब्रह्मविष्णुरुद्राणां मध्ये को वाऽधिकतरो ध्येयः स्यात्तत्त्वमेव नो ब्रह्मीति । तस्मै स होवाच पितामहश्च हे पैप्पलाद श्रणु वाक्यमेतत् । बहूनि पुण्यानि कृतानि येन तेनैव लभ्यः परमेश्वरोऽसौ । यस्याङ्गजोऽहं हरिरिन्द्रमुख्या मोहान्न जानन्ति सुरेन्द्रमुख्याः ॥ १ ॥ प्रभुं वरेण्यं पितरं महेशं यो ब्रह्माणं विद्धाति तसी । वेदांश्च सर्वा-न्प्रहिणोति चार्यं तं वै प्रभुं पितरं देवतानाम् ॥ २॥ ममापि विष्णोर्जनकं देवमीड्यं योऽन्तकाले सर्वलोकान्संजहार ॥३॥ स एकः श्रेष्टश्च सर्वशास्ता स एव वरिष्ठश्च । यो घोरं वेषमास्थाय शरभाख्यं महेश्वरः । नृसिंहं छोकहन्तारं संज्ञान महावलः ॥ ४॥ हरिं हरन्तं पादाभ्यामनुयान्ति सुरेश्वराः। मा बधीः पुरुषं विष्णुं विक्रमस्व मेहानास ॥ ५ ॥ कृपया भगवान्विष्णुं विद-द्वार नखेः खरैः । चर्माम्बरो महावीरो वीरभद्रो बभूव ह ॥ ६ ॥ स एको रुद्रो ध्येयः सर्वेषां सर्वसिद्धये । यो ब्रह्मणः पञ्चमवक्त्रहन्ता तस्मै रुद्राय नमी अस्तु ॥ ७ ॥ यो विस्फुलिङ्गेन ललाटजेन सर्वं जगद्भसात्संकरोति । पुनश्च सुद्रा पुनरप्यरक्षदेवं स्वतन्त्रं प्रकटीकरोति । तसी रुद्राय नमी अस्तु ॥ ८॥ यो वामपादेन जघान कालं घोरं पपेऽथो हालहलं दहन्तम् । तसौ रुद्राय नमो अस्तु ॥ ९ ॥ यो वामपादाार्चितविष्णुनेत्रस्तस्मे ददौ चक्रगतीव हृष्टः । तसे रुद्राय नमो अस्तु ॥ १० ॥ यो दक्षयज्ञे सुरसङ्घान्विजित्य विष्णुं बब-न्धोरगपारोन बीरः । तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ ११ ॥ यो लीलयेव त्रिपुरं ददाह विष्णुं कविं सोमसूर्याग्निनेत्रः । सर्वे देवाः पशुतामवापुः स्वयं तसा-त्पशुपतिर्वभूव । तसी रुद्राय नमी अस्तु ॥ १२ ॥ यो मत्स्यकूर्मादिवराहर्सि-हान्विष्णुं क्रमन्तं वामनमादिविष्णुम् । विविक्कवं पीड्यमानं सुरेशं भसीचकार भन्मथं यमं च । तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ १३ ॥ एवंप्रकारेण बहुधा प्रतृष्ट्वा क्षमापयामासुनीलकण्ठं महेश्वरम् । तापत्रयसमुद्भूतजन्ममृत्युजरा-दिभिः। नानाविधानि दुःखानि जहार परमेश्वरः ॥१४॥ एवं मन्नैः प्रार्थ्यमान आत्मा वै सर्वदेहिनाम् । शङ्करो भगवानाद्यो ररक्ष सकलाः प्रजाः ॥ १५॥ यत्पादाम्भोरुहद्गनद्वं मृग्यते विष्णुना सह । स्तुत्वा स्तुत्यं महेशानमवाद्धान-सगोचरम् ॥ १६ ॥ भक्तया नम्रतनोर्विष्णोः प्रसादमकरोद्विसुः । यतौ याचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न विमे<mark>ति</mark> कदाचनेति ॥ १७ ॥ अगोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहा-थाम् । तमकतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ १८॥

वसिष्ठवैयासिकवामदेवविरिञ्जिमुख्येईदि भक्ष्यमानः । सनत्सुजातादिसनात-नाद्यैरीख्यो महेशो भगवानादिदेवः ॥ १९ ॥ सत्यो नित्यः सर्वसाक्षी महेशो नित्यानन्दो निर्विकल्पो निराख्यः । अचिन्त्यशक्तिर्भगवान्गिरीशः स्वाविद्यया कल्पितमानभृमिः ॥ २० ॥ अतिमोहकरी माया मम विष्णोश्च सुवत । तस्य पादाम्बुजध्यानादुस्तरा सुतरा भवेत् ॥ २१ ॥ विष्णुर्विश्वजगद्योनिः स्यांश-भूतैः सकैः सह । ममांशसंभवो भूत्वा पालयत्यखिलं जगत् ॥ २२॥ विनाशं कालतो याति ततोऽन्यत्सकलं मृषा। ॐ तस्मै महायासाय महा-देवाय शूलिने । महेश्वराय मुडाय तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ २३ ॥ एको विष्णुर्महद्भ्तं पृथगभूतान्यनेकशः। त्रीह्रोकान्व्याप्य भूतात्मा सुङ्के विश्व-भुगव्ययः ॥ २४ ॥ चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुन-द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदनु ॥ २५ ॥ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्वह्मान्नी ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २६ ॥ शरा जीवास्तदङ्गेपु भाति नित्यं हरिः स्वयम् । बह्मेव शरभः साक्षान्मोक्षदोऽयं महासुने ॥ २७ ॥ मायावशादेद देवा मोहिता ममतादिभिः। तस्य माहात्म्यलेशांशं वक्तं केना-प्यशक्यते ॥ २८ ॥ परात्परतरं ब्रह्म यत्परात्परतो हरिः । परात्परतो हीशक्त-सात्तु हयोऽधिको न हि ॥ २९ ॥ एक एव शिवो निस्पस्ततोऽन्यत्सकळं सृषा। तस्मात्सर्वान्परित्यज्य ध्येयान्विष्ण्वादिकानसुरान् ॥ ३०॥ शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारमोचकः । तस्मै महाग्रासाय महेश्वराय नमः ॥३१॥ पैप्पलादं महाशास्त्रं न देयं यस्यकस्यचित् । नास्तिकाय कृतन्नाय दुर्वताय दुरात्मने ॥३२॥ दाम्भिकाय नृशंसाय शठायानृतभाषिणे । सुत्रताय सुभक्ताय सुनृत्ताय सुशीलिने ॥ ३३ ॥ गुरुभक्ताय दान्ताय शान्ताय ऋजुचेतसे । शिवभक्ताय दातन्यं ब्रह्मकर्मोक्तथीमते ॥ ३४ ॥ स्वभक्तायैव दातन्यमकृतन्नाय सुवत । न दातव्यं सदा गोप्यं यत्नेनैव द्विजोत्तम ॥ ३५ ॥ एतत्पैप्पलादं महाशास्त्रं योऽधीते श्रावयेद्विजः । स जन्ममरणेभ्यो मुक्तो भवति । यो जानीते सोऽमः तत्वं च गच्छति । गर्भवासाहियुको भवति । सुरापानात्पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति । ब्रह्मेहत्यात्पूतो भवति । गुरुतस्पगमनात्पूतो भवति । स सर्वान्वेदानधीतो भवति । स सर्वान्देवान्ध्यातो भवति । स समस्त-महापातकोपपातकात्पूतो भवति । तस्माद्विमुक्तमाश्रितो भवति । स सततं शिवप्रियो भवति । स शिवसायुज्यमेति । न स पुनरावर्तते न स पुनरा-वर्तते । ब्रह्मैव भवति । इत्याह भगवान्ब्रह्मेत्युपनिषत् ॥॥ ३६ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ इति शरभोपनिषत्समाप्ता ॥ ५२ ॥

स्कन्दोपनिषत् ॥ ५३ ॥

यत्रासंभिन्नतां याति स्वातिरिक्तभिदातिः। संविन्मात्रं परं ब्रह्म तत्स्वमात्रं विजृम्भते॥ ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥

अच्युतोऽस्मि महादेव तव कारु विरुवान । विज्ञानवन एवासि शिवोऽसि किमतः परम् ॥ १ ॥ न निजं निजवद्भात्यन्तः करणज्ञम्भणात् । अन्तः करणनाहोन संविन्मात्रस्थितो हरिः॥ २॥ संविन्मात्रस्थितश्चाहमजोऽस्मि किमतः परम्। व्यतिरिक्तं जडं सर्वं स्वमव्च विनश्यति ॥ ३ ॥ चिजाडानां तु यो द्रष्टा सोऽच्युतो ज्ञानविग्रहः । स एव हि महादेवः स एव हि महाहरिः ॥ ४॥ स एव ज्योतिषां ज्योतिः स एव परमेश्वरः । स एव हि परं ब्रह्म तद्रह्माहं न संशयः ॥ ५ ॥ जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः । तुषेण बद्धो ब्रीहिः स्यातुषाभावेन तण्डुलः ॥ ६ ॥ एवं बद्धस्रथा जीवः कर्मनारो सदाशिवः । पाशवद्धसाथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ॥ ७॥ शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे । शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः ॥ ८ ॥ यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुम्यः शिवः । यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरायुषि ॥९॥ यथान्तरं न भेदाः स्युः शिवकेशवयोस्तथा। देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः। त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजरोत् ॥ १० ॥ अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः । स्नानं मनोमल-त्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ ११ ॥ ब्रह्मामृतं पिवेद्रैक्षमाचरेदेहरक्षणे । वसेदेकान्तिको भूत्वा चैकान्ते द्वैतवर्जिते । इत्येवमाचरेद्धीमान्त्स एवं मुक्तिमामुयात् ॥ १२ ॥ श्रीपरमधाम्ने स्वस्ति चिरायुष्योन्नम इति । विरिज्ञिना-रायणशंकरात्मकं नृसिंह देवेश तव प्रसादतः । अचिन्त्यमन्यक्तमनन्तमन्ययं वेदात्मकं ब्रह्म निजं विजानते ॥ १३ ॥ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥ १४॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः सिमन्धते । विष्णोर्थत्परमं पदिमत्येतन्निर्वाणानुशासनिर्मिति वेदानुशासन-मिति वेदानुशासनिमत्युपनिषत् ॥ १५ ॥ ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः ॥ इति स्कन्दोपनिषत्समाप्ता ॥ ५३ ॥

त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥ ५४॥

यत्रापह्मवतां याति स्वाविद्यापदविश्रमः । तित्रपात्रारायणाख्यं स्वमात्रमविश्वयते ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

अथ परमतत्त्वरहस्यं जिज्ञासुः परमेष्ठी देवमानेन सहस्रसंवत्सरं तपश्चचार । सहस्रवर्षेऽतीतेऽत्युम्रतीव्रतपसा प्रसन्नं भगवन्तं महाविष्णुं ब्रह्मा परिपृच्छति भगवन् परमतत्त्वरहस्यं मे ब्रूहीति। परमतत्त्वरहस्यवक्ता त्वमेव नान्यः कश्चि-दुस्ति तत्कथमिति । तदेवोच्यते । त्वमेव सर्वज्ञः । त्वमेव सर्वशक्तिः । त्वमेव सर्वाधारः । त्वमेव सर्वस्वरूपः । त्वमेव सर्वेश्वरः । त्वमेव सर्वप्रवर्तकः । त्वमेव सर्वपालकः । त्वमेव सर्वनिवर्तकः । त्वमेव सद्सदात्मकः । त्वमेव सद्सद्विलक्षणः । त्वमेवान्तर्वहिर्व्यापकः । त्वमेवातिसूक्ष्मतरः । त्वमेवाति-महतो महीयान् । त्वमेव सर्वमूलाविद्यानिवर्तकः । त्वमेवाविद्याविहारः । त्वमेवाविद्याधारकः । त्वमेव विद्यावेद्यः । त्वमेव विद्यास्वरूपः । त्वमेव विद्या-तीतः । त्वमेव सर्वकारणहेतुः । त्वमेव सर्वकारणसमष्टिः । त्वमेव सर्वकारण-ब्यष्टिः। त्वमेवाखण्डानन्दः। त्वमेव परिपूर्णानन्दः। त्वमेव निरतिशयानन्दः। त्वमेव तुरीयतुरीयः। त्वमेव तुरीयातीतः। त्वमेवानन्तोपनिषद्विमृग्यः। त्वमेवाखिलशास्त्रेविंमृग्यः । त्वमेव ब्रह्मेशानपुरन्दरपुरोगमैरखिलामरैरखिला-गमैर्विमृग्यः । त्वमेव सर्वमुसुक्षुभिर्विमृग्यः । त्वमेवामृतमयैर्विमृग्यः । त्वमे-वामृतमयस्त्वमेवामृतमयस्त्वमेवामृतमयः । त्वमेव सर्वं त्वमेव सर्वं सर्वम् । त्वमेव मोक्षस्त्वमेव मोक्षदस्त्वमेवाखिलमोक्षसाधनम् । न किंचिदिस त्वद्यतिरिक्तम् । त्वद्यतिरिक्तं यात्किंचित्प्रतीयते तत्सर्वं वाधितमिति निश्चितम् । तस्मात्त्वमेव वक्ता त्वमेव गुरुस्त्वमेव पिता त्वमेव सर्वनियन्ता त्वमेव सर्व स्वमेव सदा ध्येय इति सुनिश्चितः। परमतत्त्वज्ञस्तमुवाच महाविष्णुरितप्रसन्नो भूत्वा साधु साध्विति साधुप्रशंसापूर्वं सर्वं परमतत्त्वरहस्यं ते कथयामि। सावधानेन श्रणु । ब्रह्मन् देवदशींत्याख्याथर्वणशाखायां परमतत्त्वरहस्याख्या- थर्बणमहानारायणोपनिषदि गुरुशिष्यसंवादः पुरातनः प्रसिद्धतया जागर्ति । पुरा तत्स्वरूपज्ञानेन महान्तः सर्वं ब्रह्मभावं गताः । यस्य श्रवणेन सर्वबन्धाः प्रविनइयन्ति । यस्य ज्ञानेन सर्वरहस्यं विदितं भवति । तत्स्वरूपं कथमिति । ज्ञान्तो दान्तोऽतिविरक्तः सुग्रुद्धो गुरुभक्तस्तपोनिष्ठः शिष्यो ब्रह्मनिष्ठं गुरुमा-साद्य प्रदक्षिणपूर्वकं दण्डवत्प्रणम्य प्राक्षित्रिर्द्या विनयेनोपसङ्गस्य भगवन् गरो से परमतत्त्वरहस्यं विविच्य वक्तन्यमिति । अत्यादरपूर्वकमिति हर्षेण शिष्यं बहुकृत्य गुरुर्वदति । परमतत्त्वरहस्योपनिषक्तमः कथ्यते सावधानेन श्रयताम् । कथं ब्रह्म । कालत्रयाबाधितं ब्रह्म । सर्वकालाबाधितं ब्रह्म । सगुण-निर्गुणस्वरूपं ब्रह्म । आदिमध्यान्तशून्यं ब्रह्म । सर्वे खिटवदं ब्रह्म । मायातीतं गुणातीतं ब्रह्म। अनन्तमप्रमेयाखण्डपरिपूर्णं ब्रह्म। अद्वितीयपरमानन्द्शुद्धबुद्ध-मुक्तसत्यस्वरूपव्यापकाभिन्नापरिच्छिन्नं ब्रह्म । सिचदानन्दं स्वप्रकाशं ब्रह्म । मनोवाचामगोचरं ब्रह्म । अखिलप्रमाणागोचरं ब्रह्म । अमितवेदान्तवेदं ब्रह्म । देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं ब्रह्म । सर्वपरिपूर्णं ब्रह्म । तुरीयं निराका-रमेकं ब्रह्म। अद्वेतमनिर्वाच्यं ब्रह्म। प्रणवात्मकं ब्रह्म। प्रणवात्मकत्वेनोक्तं ब्रह्म। प्रणवाद्य खिलमञ्जारमकं ब्रह्म । पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म । किं तत्पादचतुष्टयं ब्रह्म भवति । अविद्यापादः सुविद्यापादश्चानन्दपादस्तुरीयपादश्चेति । तुरीयपादस्तु-रीयतुरीयं तुरीयातीतं च । कथं पादचतुष्टयस्य भेदः । अविद्यापादः प्रथमः पादो विद्यापादो द्वितीयः आनन्दपादस्तृतीयस्तुरीयपादस्तुरीय इति । मूला-विद्या प्रथमपादे नान्यत्र । विद्यानन्दतुरीयांशाः सर्वेषु पादेषु व्याप्य तिष्टन्ति । एवं तर्हि विद्यादीनां भेदः कथमिति । तत्तत्प्राधान्येन तत्तद्यपदेशः । वस्तुत-स्त्वभेद एव । तत्राधस्तनमेकं पादमविद्याशबलं भवति । उपरितनपादत्रयं शुद्धवोधानन्दलक्षणममृतं भवति। तचालाैकिकपरमानन्दलक्षणाखण्डामित-तेजोराशिर्ज्वलति । तचानिर्वाच्यमनिर्देश्यमखण्डानन्दैकरसात्मकं भवति । तत्र मध्यमपादमध्यप्रदेशेऽमिततेजःप्रवाहाकारतया नित्यवैकुण्ठं विभाति । तच निरतिशयानन्दाखण्डब्रह्मानन्द्निजमूर्त्याकारेण ज्वलति । अपरिच्छिन्नमण्ड-कानि यथा दृश्यन्ते तद्वद्खण्डानन्दामितवैष्णवदिव्यतेजोर।इयन्तर्गतविलस-न्महाविष्णोः परमं पदं विराजते । दुग्घोदधिमध्यस्थितामृतामृतकलशवद्वैष्णवं धाम परमं संदृश्यते । सुदृर्शनदिव्यतेजोन्तर्गतः सुदृर्शनपुरुषो यथा सूर्यमण्ड-कान्तर्गतः सूर्यनारायणोऽमितापरिच्छिन्नाद्वैतपरमानन्दुकक्षणतेजोराइयन्तर्गत आदिनारायणस्तथा संदर्यते। स एव तुरीयं ब्रह्म स एव तुरीयातीतः स एव विष्णुः स एव समस्तब्रह्मवाचकवाच्यः स एव परंज्योतिः स एव मायान्तीतः स एव गुणातीतः स एव कालातीतः स एवाखिळकर्मातीतः स एव सत्योपाधिरहितः स एव परमेश्वरः स एव चिरंतनः पुरुषः प्रण्वाद्यख्याचकवाच्य आद्यन्तश्च्याच्याचित्रक्षेत्र सामानाधिकश्च्याचित्रक्षेत्र स्वयंत्रयोतिः स्वयंप्रकाशमयः स्वसमानाधिकरणश्च्याः स्वसमानाधिकश्च्यो न दिवारात्रिविभागो न संवत्सरादिकालविभागः स्वानन्दमयानन्ताचिन्त्य-विभव आत्मान्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा तुरीयात्मेत्यादिवाचकवाच्योऽद्वे-तपरमानन्दो विभुनित्यो निष्कल्को निर्विकल्पो निरक्षनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चिदिति य एवं वेद स पुरुषस्तर्दीयो-पासन्या तस्य सायुज्यमेतीत्यसंशयमित्युपनिषत्॥ १॥

इत्याथर्वणित्रपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु पादचतुष्टयस्वरूपनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथेति होवाच च्छात्रो गुरुं भगवन्तम् । अगवन्वैकुण्ठस्य नारायणस्य च नित्यत्वमुक्तम् । स एव तुरीयमित्युक्तमेव । वैकुण्ठः साकारो नारायणः सा-कारश्च। तुरीयं तु निराकारम्। साकारः सावयवो निरवयवं निराकारम्। तसात्साकारमनित्यं नित्यं निराकारमिति श्रुतेः । यद्यत्सावयवं तत्तद्नित्यमि-त्यनुमानाचेति प्रत्यक्षेण दृष्टत्वाच । अतस्तयोरनित्यत्वमेव वक्तुमुचितं भवति । कथमुक्तं नित्यःवमिति । तुरीयमक्षरमिति श्रुतेः । तुरीयस्य नित्यत्वं प्रसिद्धम्। नित्यत्वानित्यत्वे परस्परविरुद्धधर्मो । तयोरेकस्मिन्ब्रह्मण्यत्यन्तविरुद्धं भवति । तसाद्वेकुण्ठस्य च नारायणस्य च नित्यत्वभेव वक्तुमुचितं भवति । सत्यमेव भवतीति देशिकं परिहरति । साकारस्तु द्विविध:-सोपाधिको निरुपाधिकश्र। तत्र सोपाधिकः साकारः कथमिति । आविद्यकमखिलकार्यकारणजास्वमिद्या-पाद एव नान्यत्र । तस्मात्समस्ताविद्योपाधिः साकारः सावयव एव । साव-यवस्वादवक्ष्यमनित्यं भवत्येव । सोपाधिकसाकारो वार्णेतः । तर्हि निरुपा-धिकसाकारः कथमिति । निरुपाधिकसाकारस्त्रितिषः-ब्रह्मविद्यासाकारश्चा-उभयात्मकसाकारश्चेति । त्रिविधसाकारोऽपि पुनर्द्विविधो नन्दसाकार भवति-नित्यसाकारो मुक्तसाकारश्चेति । नित्यासाकारस्वाद्यन्तर्यून्यः शाश्वतः।

उपासनया ये मुक्तिं गतास्तेषां साकारो मुक्तसाकारः । तस्याखण्डज्ञाने-नाविभावो भवति । सोऽपि शाश्वतः । मुक्तसाकारस्वैच्छिक इति । अन्ये चद्नित शाश्वतःवं कथमिति । अद्वैताखण्डपरिपूर्णनिरतिशयपरमानन्दशुद्ध-बुद्धमुक्तसत्यात्मकब्रह्म चैतन्यसाकारत्वात् निरुपाधिकसाकारस्य नित्यत्वं सिद्ध-मेव । तसादेव निरुपाधिकसाकारस निरवयवःवास्त्वाधिकमपि दूरतो निर-स्तमेव । निरवयवं ब्रह्मचैतन्यमिति सर्वोपनिषसु सर्वशास्त्रसिद्धान्तेषु श्रूयते । अथ च विद्यानन्दनुरीयाणामभेद एव श्रूयते । सर्वत्र विद्यादिसाकारभेदः कथिति । सत्यमेवोक्तमिति देशिकः परिहरति । विद्यापाधान्येन विद्यासा-कारः आनन्दप्राधान्येनानन्दसाकारः उभयप्राधान्येनीभयात्मकसाकार-श्चेति । प्राधान्येनात्र भेद एव । स भेदो वस्तुतस्त्वभेद एव । भगव-न्नखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः साकारनिशकारौ विरुद्धभमी । विरु-द्धोभयात्मकत्वं कथमिति । सत्यमेवेति गुरुः परिहरति । यथा सर्वगतस्य निराकारस्य महावायोश्च तदाःमकस्य व्वक्पतित्वेन प्रसिद्धस्य साकारस्य महावायुदेवस्य चाभेद एव श्रूयते सर्वत्र।यथा पृथिव्यादीनां व्यापकशरीराणां देवविशेषाणां च तद्विरुक्षणतद्भिन्नव्यापकापरिच्छिना निजमूर्खाकारदेवताः श्र्यन्ते सर्वत्र तद्वत्परब्रह्मणः सर्वात्मकस्य साकारनिराकारभेदविरोधो नास्त्येव विविधविचित्रानन्तशक्तेः परब्रह्मणः स्वरूपशानेन विरोधो न विद्यते । तद्भावे सत्यनन्तविरोधो विभाति । अथ च रामकृष्णाद्यवतारेष्वद्वैतपरमा-नन्दलक्षणपरब्रह्मणः परमतत्त्वपरमविभवानुसंधानं स्वीयत्वेन श्र्यते सर्वत्र । सर्वपरिपूर्णस्याद्वैतपरमानन्दरुक्षणपरब्रह्मणस्तु किं वक्तव्यम् । अन्यथा सर्वेपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः परमार्थेतः साकारं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवलनिराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडस्वमापद्येत । तसात्परब्रह्मणः परमार्थतः साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ । तथाविधसाद्धै-तपरमानन्दलक्षणस्यादिनारायणस्योन्मेषनिमेषाभ्यां मूलाविद्योदयस्थितिलया जायन्ते । कदाचिदात्मारामस्याखिलपरिपूर्णस्यादिनारायणस्य स्वेच्छानुसा-रेणोन्मेषो जायते । तसात्परब्रह्मणोऽधस्तनपादे सर्वकारणे मूलकारणा-व्यक्ताविभीवो भवति । अव्यक्तानमूलाविभीवो मूलाविद्याविभीवश्च तसादेव सच्छब्द्वाच्यं ब्रह्माविद्याशबळं भवति । ततो महत् । महतोऽहं-कारः । अहंकारात्पञ्चतन्मात्राणि । पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्चमहाभूतानि । पञ्चमहाभूतेभ्यो ब्रह्मेकपाद्व्याप्तमेकमविद्याण्डं जायते । तत्र तत्वतो गुणातीतशुद्धसत्त्वमयो लीलागृहीतनिरतिशयानन्दलक्षणो मायोपाधिको नारायण भासीत्। स एव नित्यपरिपूर्णः पादविभूतिचैकुण्ठनारायणः। स चानन्तको दिब्रह्माण्डानामुद्यस्थितिलयाद्यविलकार्यकारणजालपरमकारण-कारणभूतो महामायातीतस्तुरीयः परमेश्वरो जयति । तस्मास्थूलविराद-स्वरूपो जायते । स सर्वकारणमूलं विराद्धरूपो भवति । स चानन्तशीर्षा पुरुष अनन्ताक्षिपाणिपादो भवति । अनन्तश्रवणः सर्वमावृत्य तिष्ठति । सर्वव्यापको भवति । सगुणनिर्गुणस्वरूपो भवति । ज्ञानवलैश्वर्यशक्तितेजः-स्बरूपो भवति । विविधविचित्रानन्तजगदाकारो भवति । निरतिशयानन्द-मयानन्तपरमविभूतिसमष्ट्या विश्वाकारो भवति । निरतिशयनिरङ्कशसर्वज्ञ-सर्वेशक्तिसर्वेनियन्तृत्वाद्यनन्तकल्याणगुणाकारो भवति । वाचामगोचरान-न्तदिव्यतेजोराश्याकारो भवति । समस्ताविद्याण्डव्यापको भवति । स चानन्तमहामायाविलासानामधिष्ठानविशेषनिरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षण-प्रमह्मविलासविमहो अवति । अस्यैकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि स्थावराणि च जायन्ते । तेष्वण्डेषु सर्वेष्वेकैकनारायणावतारो जायते । नारायणाद्धिरण्यगर्भो जायते । नारायणादण्डविरादस्वरूपो जायते । नारा-यणाद्खिललोकस्रष्ट्रप्रजापतयो जायन्ते । नारायणादेकादशस्त्राश्च जायन्ते । नारायणाद्खिललोकाश्च जायन्ते । नारायणादिन्द्रो जायते । नारायणास्तर्वे देवाश्च जायन्ते । नारायणाद्वादशादित्याः सर्वे वसवः सर्वे सर्वाणि भूतानि सर्वाणि छन्दांसि नारायणादेव समुख्यनते । नारा-यणास्प्रवर्तन्ते । नारायणे प्रलीयन्ते । अथ नित्योऽक्षरः परमः स्वराद । ब्रह्मा नारायणः । शिवश्च नारायणः । शकश्च नारायणः । दिशश्च नारा-यणः । विदिशश्च नारायणः । कालश्च नारायणः । कर्माखिलं च नारा-यणः । मूतामूर्तं च नारायणः । कारणात्मकं सर्वं कार्यात्मकं सककं नारायणः । तदुभयविलक्षणो नारायणः । परंज्योतिः ब्रह्मानन्दमयो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् । न स समानाधिक इत्यसंशयं परमार्थतो य एवं वेद । सकळबन्धांदिलचा मृत्युं तीर्वा स मुक्तो भवति स मुक्तो भवति । य एवं विदित्वा सदा तमुपास्ते पुरुषः स नारायणो भवति स नारायणो भवतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वणत्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु परब्रह्मणः साकारनिराकार-स्वरूपनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ छात्रस्तथेति होवाच । भगवन्देशिक परमतत्त्वज्ञ सविलासमहा-मुलाऽविद्योदयक्रमः कथितः । तदु प्रपञ्चोत्पत्तिक्रमः कीदशो भवति । विशेषेण कथनीयः । तस्य तत्त्वं वेदितुमिच्छामि । तथेत्युक्त्वा गुरुरि-त्युवाच । यथानादिसर्वप्रपञ्चो दृश्यते । नित्योऽनित्यो वेति संशय्यते । द्विविधः—विद्याप्रपञ्चश्चविद्याप्रपञ्चश्चेति नित्यत्वं सिद्धमेव नित्यानन्दचिद्विलासात्मकत्वात् । अथ च शुद्धबुद्धमुक्त-सत्यानन्दस्यरूपत्वाच । अविद्याप्रपञ्चस्य नित्यत्वमनित्यत्वं वा कथमिति । प्रवाहतो नित्यत्वं वदन्ति केचन । प्रलयादिकं श्रूयमाणत्वाद्नित्यत्वं वदन्त्यन्ये । उभयं न भवति । पुनः कथमिति । संकोचविकासात्म-कमहामायाविलासारमक एव सर्वोऽप्यविद्याप्रपञ्चः । परमार्थतो न किं-चिदस्ति क्षणशून्यानादिमूलाऽविद्याविलासत्वात् । तत्कथमिति । एकमे-वाद्वितीयं ब्रह्म । नेहं नानास्ति किंचन । तस्माद्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं बाधित-भेव । सत्यमेव परंब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । ततः सविकासमुखाऽविद्यो-पसंहारक्रमः कथमिति । अत्यादरपूर्वकमतिहर्षेण देशिक उपदिशति । चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिवा भवति । तावता कालेन पुनसस्य रात्रिभैवति । द्वे अहोरात्रे एक दिनं भवति । तसिन्नेकसिन्दिने आ सत्यछोकान्तसुदय-स्थितिलया जायन्ते । पञ्चदशदिनानि पक्षो भवति । पक्षद्वयं मासो भवति । मासद्वयमृतुर्भवति । ऋतुत्रयमयनं भवति । अयनद्वयं वत्सरो भवति । वत्सर-शतं ब्रह्ममानेन ब्रह्मणः परमायुःप्रमाणम् । तावत्कालस्तस्य स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्तेऽण्डविराद्युरुषः स्वांशं हिरण्यगर्भमभ्येति । हिरण्यगर्भस्य कारणं परमात्मानमण्डपरिपालकनारायणमभ्येति । पुनर्वत्सरशतं तस्य प्रक्यो भवति । तदा जीवाः सर्वे प्रकृतौ प्रलीयन्ते । प्रख्ये सर्वश्चन्यं भवति । तस्य ब्रह्मणः स्थितिप्रलयावादिनारायणस्यांशेनावतीर्णस्याण्डपरिपालकस्य म-हाविष्णोरहोरात्रिसंज्ञको । ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमास-संवत्सरादिभेदाच तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालसस स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्ते स्वांशं महाविरादपुरुषमभ्येति । ततः सावरणं ब्रह्माण्डं विनाशमेति। ब्रह्माण्डावरणं विनइयति तद्धि विष्णोः स्वरूपम् । तस्य तावःप्रकयो भवति । प्रलये सर्वशून्यं भवति।अण्डपरिपालकमहाविष्णोः स्थितिप्रलयावादिविरादः पुरुषस्याहोरात्रिसंज्ञको ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमा-ससंवत्सरादिभेदाच तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालसास स्थितिरुचाते। स्थित्यन्ते आदिविरादपुरुषः स्वांशमायोपाधिकनारायणमभ्येति । तस्य विराद-पुरुषस्य याविस्थितिकालस्तावत्प्रलयो भवति । प्रलये सर्वश्र्न्यं भवति । विराद्स्थितिप्रलयौ मूलाविद्याण्डपरिपालकस्यादिनारायणस्याहोरात्रिसंज्ञकौ । ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति । एवं दिनपक्षमाससंवत्सरादिभेदाच तदीय-मानेन शतकोटिवरसरकालसस्य स्थितिरुच्यते । स्थित्यन्ते त्रिपाद्विभूतिनारा-यणसेच्छावशान्त्रिमेषो जायते । तसान्मूलाविद्याण्डस सावरणस विलयो भवति । ततः सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणा-निर्वाच्या लक्षणशून्याविभीवतिरोभावात्मिकानाद्यखिलकारणकारणाननतमहा-मायाविशेषणविशेषिता परमस्दममूलकारणमव्यक्तं विशति । अव्यक्तं विशे-इह्मणि निरिन्धनो वैश्वानरो यथा । तस्मान्मायोपाधिक भादिनारायणस्तथा स्वस्वरूपं भजति । सर्वे जीवाश्च स्वस्वरूपं भजनते । यथा जपाकुसुमसान्नि-ध्याद्गक्तस्फटिकप्रतीतिस्तद्भावे शुद्धस्फटिकप्रतीतिः। ब्रह्मणोऽपि मायोपाधि-वशास्सगुणपरिच्छिन्नादिप्रतीतिरूपाधिविलयान्निर्गुणनिरवयवादिप्रतीतिरिःयुप-निषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वणत्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु मूलाविद्याप्रलयस्रह्मणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ ततस्तसान्निर्विशेषमितिर्मिलं भवति । अतिवापादमितिशुद्धं भवति ।
शुद्धवोधानन्दलक्षणकैवल्यं भवति । ब्रह्मणः पादचतुष्टयं निर्विशेषं भवति ।
अखण्डलक्षणाखण्डपरिपूर्णसचिदानन्दस्वप्रकाशं भवति । अद्वितीयमनीश्वरं
भवति । अखिलकार्यकारणस्वरूपमखण्डचिद्धनानन्दस्वरूपमितिद्व्यमङ्गलाकारं निरितशयानन्दतेजोराशिविशेषं सर्वपरिपूर्णानन्तचिन्मयस्तम्भाकारं
शुद्धवोधानन्दविशेषाकारमनन्तचिद्विलासिवभूतिसमध्याकारमञ्जतानन्दाश्चर्यविभूतिविशेषाकारमनन्तपरिपूर्णानन्ददिव्यसौदामिनीनिचयाकारम् । एवमाकारमद्वितीयाखण्डानन्दवद्यस्वरूपं निरूपितम् । अथ छात्रो वदति ।

भगवन्पादभेदादिकं कथं कथमद्वैतस्वरूपमिति निरूपितम् । देशिकः परि-हरति । विरोधो न विद्यते ब्रह्माद्वितीयमेव सत्यम् । तथैवोक्तं च । ब्रह्ममेदो न कथितो ब्रह्मव्यतिरिक्तं न किंचिदिता। पादभेदादिकथनं तु ब्रह्मस्वरूप-कथनमेव । तदेवोच्यते पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म तत्रैकमविद्यापादं । पादत्रय-मसृतं भवति । शाखान्तरोपनिपत्स्वरूपमेव निरूपितम् । तमसस्तु परं ज्योतिः परमानन्दलक्षणम् । पादत्रयात्मकं ब्रह्म कैवल्यं शाश्वतं परमिति । वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् । भादित्यवर्णं तमसः परसात् । वमेवंविद्वानमृत इह भवति । नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिस्तमसः परमच्यते । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं परंज्योतिस्तमस उपरि बिभाति । यदेकमन्यक्तमनन्तरूपं विश्वं प्राणं तमसः परस्तात । तदेव ऋतं तद सत्यमाहस्तदेव सत्यं तदेव बह्म परमं विशुद्धं कथ्यते । तमःशब्देना-विद्या । पादोऽस्य विश्वा भूतानि । त्रिपादस्यामृतं दिवि । त्रिपाद्ध्वं उदैरपु-रुपः । पादोऽस्पेहाभवत्पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत् । साशनाऽनशने अभि । विद्यानन्दतुरीयाख्यपादत्रयमसृतं भवति । अवशिष्टमविद्याश्रयमिति । भारमारामस्यानादिनारायणस्य कीदशावनमेषनिमेषौ तयोः स्वरूपं कथमिति । गुरुर्वेद्ति । पराग्दष्टिरुन्सेषः । प्रत्यग्दष्टिनिंमेषः । प्रत्यग्दष्ट्या स्वस्वरूप-चिन्तनमेव निमेषः । पराग्दष्ट्या स्वस्त्ररूपचिन्तनमेवोन्मेषः । यावद्रन्मेष-कालस्तावन्निमेषकालो भवति । अविद्यायाः स्थितिरुन्मेषकाले । निमेषकाले तस्याः प्रलयो भवति । यथा उन्मेषो जायते तथा विरंतनातिसूक्षमवास-नादलात्पुनरविद्याया उदयो भवति । यथापूर्वमविद्याकार्याणि जायन्ते । कार्यकारणोपाधिभेदाजीवेश्वरभेदोऽपि दृश्यते । कार्योपाधिरयं जीवः कार-णोपाधिरीश्वरः । ईश्वरस्य महामाया तदाज्ञावशवर्तिनी । तस्संकल्पानुसा-रिणी विविधानन्तमहामायाशक्तिसंसेवितानन्तमहामाया जाळजननमन्दिर। महाविष्णोः क्रीडाशरीररूपिणी ब्रह्मादीनामगोचरा । एतां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजनित नान्ये तरन्ति कदाचन । विविधोपायैरपि अविद्याकार्याण्यन्तः करणान्यतीत्य काळान्तु तानि जायन्ते । ब्रह्मचैतन्यं तेषु प्रतिविम्वितं भवति । प्रतिविम्बा एव जीवा इति कथ्यन्ते अन्तःकरणोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येवं वदन्ति । महाभूतोत्यस्थमाङ्गो- पाधिकाः सर्वे जीवा इत्येके वदन्ति । बुद्धिप्रतिबिन्वितचैतन्यं जीवा इत्यपरे मन्यन्ते । एतेषार्भुपाधीनामत्यन्तभेदो न विद्यते । सर्वपरिपूणों नारायणस्त्व-नया निजया क्रीडित स्वेच्छया सदा । तद्वद्विद्यमानफल्गुविषयसुखाशयाः सर्वे जीवाः प्रधावन्त्यसारसंसारचके । एवमनादिपरम्परा वर्ततेऽनादिसंसार-बिपरीतश्रमादित्युपनिषत् ॥ १ ॥

इत्याथर्वणत्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु महामायातीताखण्डाद्वैत-परमानन्दलक्षणपरव्रह्मणः परमतत्त्वस्ररूपनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ इति पूर्वकाण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ शिष्यो वदति गुरुं भगवन्तं नमस्कृत्य भगवन् सर्वात्मना नष्टाया क्षविद्यायाः पुनरुद्यः कथम् । सत्यमेवेति गुरुरिति होवाच । प्रावृद-कालप्रारम्भे यथा मण्डुकादीनां प्रादुर्भावस्तद्वत्सर्वात्मना नष्टाया अवि-द्याया उन्मेषकाले पुनरुद्यो भवति । भगवन् कथं जीवानामनादिः संसारभ्रमः । तन्निवृत्तिर्वा कथमिति । कथं मोक्षमार्गस्वरूपं च । मोक्ष-साधनं कथिमिति । को वा मोक्षोपायः । की हर्श मोक्षस्वरूपम् । का वा सायुज्यमुक्तिः । एतःसर्वं तत्त्वतः कथनीयमिति । अत्यादरपूर्वकमितहर्षेण शिष्यं बहुकुत्य गुरुर्वदित श्रूयतां सावधानेन । कुत्सितानन्तजनमाभ्य-सात्यन्तोःकृष्टविविधविचित्रानन्तदुष्कर्मवासनाजालविशेषेदेंहात्मविवेको जायते । तसादेव दढतरदेहात्मश्रमो भवति । अहमज्ञः किंचि ज्ञोऽहमहं जीवोऽहमत्यन्तदुःखाकारोऽहमनादिसंसारीति अमवासनावकात्संसार एव प्रवृत्तिस्तन्निवृत्त्युपायः कदापि न विद्यते । मिथ्याभूतान्स्वप्नतुल्यान्विष-यभोगाननुभूय विविधानसंख्यानतिदुर्छभान्मनोरथाननवरतमाशास्यमानः सदा परिधावति । विविधविचित्रस्थूलसूक्ष्मोत्कृष्टनिकृष्टानन्तदे-अतृप्तः तत्तदेहविहितविविधविचित्राऽनेकग्रुभाग्रुभपारदधकर्माण्यतु-हान्परिगृह्य भूय तत्तःक्रमे फलवासनाजालवासितान्तः करणानां पुनः पुनस्तत्तःकर्मे फल-विषयप्रवृत्तिरेव जायते । संसारनिवृत्तिमार्गप्रवृत्तिः कदापि न जायते। तस्पार निष्मेवेष्ट्रमित्र भाति । इष्टमेवाऽनिष्टमित्र भात्यनादिसंसारत्रिपरीतश्र-

मात् । तसास्सर्वेषां जीवानामिष्टविषये बुद्धिः सुखबुद्धिर्द्धः सबि । प्रमार्थतस्त्ववाधितब्रह्मसुस्रविषये प्रवृत्तिरेव न जायते । तत्स्वरूपज्ञानामा-वात् । तिकमिति न विद्यते । कथं बन्धः कथं मोक्ष इति विचाराभावाच । तरकथमिति । अज्ञानप्रावल्यात् । कस्मादज्ञानप्रावल्यमिति । भक्तिज्ञानवैरा-रयवासनाभावाच । तद्भावः कथमिति । अत्यन्तान्तःकरणमछिनविशेषात् । अतः संसारतरणोपायः कथमिति । देशिकस्तमेव कथयति । सक्छवेदशास्त्रसि-द्धान्तरहस्यजनमाभ्यस्तात्यन्तोत्कृष्टसुकृतपरिपाकवशात्सद्भिः सङ्गो जायते । तसाद्विधिनिषेधविवेको भवति । ततः सदाचारप्रवृत्तिर्जायते । सदाचारादिख-लदुरितक्षयो भवति । तसाद्नतःकरणमतिविमछं भवति । ततः सद्गृहकटाक्ष-मन्तःकरणमाकाङ्क्षति । तस्मात्सद्वरुकटाक्षलेशविशेषेण सर्वसिद्धयः सिच्चन्ति । सर्वबन्धाः प्रविनश्यन्ति । श्रेयोविज्ञाः सर्वे प्रळयं यान्ति । सर्वाणि श्रेयांसि स्वयमेवायान्ति । यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा गुरूपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तत्त्वज्ञानं न विद्यते । तस्मात्सद्गरुकटाक्षलेशविशेषेणाचि-रादेव तत्त्वज्ञानं भवति । यदा सद्धरुकटाक्षो भवति तदा भगवत्कथाश्रवण-ध्यानादी श्रद्धा जायते । तसाद्भृदयस्थितानादिदुर्वासनाग्रन्थिवनाशो भवति । ततो हृदयस्थिताः कामाः सर्वे विनइयन्ति । तसाद्भदयपुण्डरीक-कर्णिकायां परमात्माविभावो भवति । ततो दढतरा वैष्णवी भक्तिकायते । ततो वैराग्यमुदेति । वैराग्याद्वद्धिविज्ञानाविर्भावो भवति । अभ्यासात्तन्ज्ञानं क्रमेण परिपकं भवति । पक्रविज्ञानाजीवनमुक्तो भवति । ततः शुभाशुभ-कर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति । ततो दढतरश्चद्धसात्त्विकवासनया भक्तयतिशयो भवति । भक्तयतिशयेन नारायणः सर्वमयः सर्वावस्थास् विभाति । सर्वाणि जगन्ति नारायणसयानि प्रविभान्ति । नारायणव्यतिरिक्तं न किंचिद्स्ति । इत्येतहुद्धा विहरत्युपासकः सर्वत्र । निरन्तस्समाधिपरंपरा-भिर्जगदीश्वराकाराः सर्वत्र सर्वावस्थासु प्रविभान्ति । अस्य महापुरुषस्य कचित्कचिदीश्वरसाक्षात्कारो भवति । अस्य देहत्यागेच्छा यदा भवति तदा वैकुण्ठपार्षदाः सर्वे समायान्ति । ततो भगवच्यानपूर्वकं हृद्यंकमले व्यव-स्थितमात्मानं स्वमन्तरात्मानं संचिन्त्य सम्यगुपचारैरभ्यच्यं हंसमन्नमुचर-न्त्सर्वाणि द्वाराणि संयम्य सम्यञ्जानो निरुध्य चौध्रीगेन वायुना सह प्रणवेन प्रणवानुसंधानपूर्वकं शनै: शनैराब्रह्मरन्ध्राद्विनिर्गत्य सोऽहमिति मन्नेण द्वाद- शान्तस्थितपरमात्मानमेकीकृत्य पञ्चोपचारैरभ्यच्ये पुनः सोऽहमिति मन्नेण षोडशान्तस्थितज्ञानात्मानमेकीकृत्य सम्यगुपचाररम्यच्ये प्राकृतपूर्वदेहं परि-त्यज्य पुनः कित्पतमञ्चमयग्रुद्भवस्तेजोमयनिरतिशयानन्दमयमहाविष्णुसाख-प्यविश्रहं परिगृह्य सूर्यमण्डलान्तर्गतानन्तद्वियचरणारविन्दाङ्ग्छनिर्गतनिर-तिशयानन्दमयापरनदीप्रवाहमाकृष्य भावनयात्र स्नाःवः चारेरातमपूजां विधाय साक्षाजारायणो भूत्वा ततो गुरुनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुडं ध्यात्वा ध्यानेनाविर्भूतमहाप्रणवगरुडं पञ्चोपचारेराराध्य गुर्वेनु-ज्ञ्या प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुडमारुह्य महाविष्णोः समस्तासाधार-णचिह्नचिह्नितो महाविष्णोः समस्तासाधारणदिव्यभूपणैर्भूषितः सुदर्शनपुरूपं पुरस्कृत्य विष्वक्सेनपरिपालितो वैकुण्ठपार्पदैः परिवेष्टितो नभोमार्गमाविश्य पार्श्वद्वयस्थित।नेकपुण्यलोकानतिकस्य तत्रत्यैः पुण्यपुरुषैरभिपूजितः सत्स-लोकमाविश्य ब्रह्माणमभ्यस्यं ब्रह्मणा च सत्यलोकवासिभिः सर्वेर्भिपूजितः क्रीवमीशानकेवल्यमासाद्य शिवं ध्यात्वा शिवसभ्यच्ये शिवगणैः सर्वैः शिवेन चाभिपूजितो महर्षिमण्डलान्यतिकस्य सूर्यसोममण्डले भित्त्वा कीलकनारायणं ध्यात्वा ध्रुवमण्डलस्य दर्शनं कृत्वा भगवन्तं ध्रुवमभिपूज्य ततः शिंशुमार-चकं विभिद्य शिशुमारप्रजापतिसभ्यच्यं चक्रमध्यगतं सर्वाधारं सनातनं महाविष्णुमाराध्य तेन पूजितस्तत उपर्युपरि गत्वा परमानन्दं प्राप्य प्रका-शते । ततो वेकुण्ठवासिनः सर्वे समायान्ति तान्तसर्वान्सुसंपूज्य तैः सर्वे-रिभप्जितश्चोपर्युपरि गःवा विरजानदीं प्राप्य तत्र स्नाःवा भगवस्मानपूर्वकं पुनर्निमज्य तत्रापञ्चीकृतभूतोःयं सूक्ष्माङ्गभोगसाधनं सूक्ष्मशरीरमुत्स्ज्य केवरुमज्ञमयदिव्यतेजोमयनिरतिशयानन्दमयमहाविष्णुसारूप्यविप्रहं गृह्य तत उन्मज्यात्मपूजां विधाय प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं ब्रह्ममयवैकुण्ठमाः विश्य तत्रत्यान्विशेषेण संपूज्य तनमध्ये च ब्रह्मानन्द्रमयानन्तप्राकारप्रासा-निरुपमनित्यनिरवध-दुतोरणविमानोपवनाविलिभि व्वैलिच्छिखरैरूपलक्षितो निरतिशयनिरवधिकबह्यानन्दाचलो विराजते । तदुपरि ज्वलति निरतिशया-नन्ददिव्यतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थाने शुद्धवोधानन्दलक्षणं विभाति। तदन्तरः ले चिन्मयवेदिका आनन्द्येदिकानन्द्वनिवभूषिता । तद्भ्यन्तरे अमिततेजोराशिस्तदुपरिज्वलति । परममङ्गलासनं विराजते । तत्पद्मकर्णि-कार्या ग्रुद्धशेषभोगासनं विराजते । तस्योपरि समासीनमानन्दपरिपाल- कमादिनारायणं ध्यास्वा तमीश्वरं विविधीपचारैराराध्य प्रदक्षिणनमस्कारा-न्विधाय तदनुज्ञातश्चीपर्युपरि गस्वा पञ्चवैकुण्ठानतीत्याण्डविरादकैवल्यं प्राप्य तं समाराध्योषासकः परमानन्दं प्रापेत्युपनिषत् ॥ १ ॥

इति त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु संसारतरणोपायकथनद्वारा परम-

मोक्ष्यार्गस्वरूपनिरूपणं नाम पत्रमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यत उपासकः परसानन्दं प्राप सावरणं ब्रह्माण्डं च भिरवा परितः समव-कोक्य ब्रह्माण्डस्वरूपं निरीक्ष्य परमार्थतस्वरूपं ब्रह्मज्ञानेनावव्यय समस्त-वेदशाखेतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि ब्रह्मादयः सुराः सर्वे समजाः पर्मार्भयशाण्डाभ्यन्तरप्रपञ्चेकदेशसेव वर्णयन्ति । अण्डस्वरूपं न जानन्ति । ब्रह्माण्डाह्रहिःप्रपञ्चज्ञानं न जानन्सेव । क्रतोऽण्डान्तरान्तर्वहिःप्रपञ्चज्ञानं दरती सीक्षप्रपञ्ज्ञानमविद्याप्रपञ्ज्ञानं चेति कथं ब्रह्माण्डस्वरूपमिति । कुक्टाण्डाकारं सहदादिसमध्याकारमण्डं तपनीयमयं तप्तजाम्बृनद्वसम्बद्ध-कोटिदिवाकराभं चतुर्विधस्रष्ट्युपलक्षितं महाभूतैः पञ्चभिरावृतं महदृहंकृति-तमोभिश्च मूलप्रकृत्या परिवेष्टितम् । अण्डभित्तिविशालं सपादकोटियोजन-प्रमाणम् । एकैकावरणं तथैव । अण्डप्रमाणं परितोऽयुतद्वयकोटियोजनप्रमाणं सहासण्डकाद्यनन्तराक्तिभिरधिष्ठितं नारायणकीडाकन्तुकं परमाणुवद्विष्णुली-क्युसंलग्नमदृष्टाश्चतविविधविचित्रानन्तविशेषेरुग्लक्षितम् । अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्ततः स्थितान्येतादशान्यनन्तकोदिवसाण्डानि सावरणानि ज्वलन्ति । चतु-र्सुख्पञ्चसुख्यण्सुख्सतसुखाष्ट्रसुखादिसंख्याक्रमेण सहस्रावधिसुखान्तेनीराय-णांशे रजोगुणप्रधानेरेकैकसृष्टिकर्तृभिरधिष्ठितानि विष्णुमहेश्वराख्यैनीरायणांशेः सत्त्वतमोगुणप्रधानेरेकैकस्थितिसंहारकर्तृभिरधिष्ठितानि महाजकौघमस्यबुद्ध-द्रानन्तसङ्घवद्भमन्ति । कीडासक्तजालककरतलामलकवृन्द्वन्महाविष्णोः कर्-तले विकसन्त्यनन्तकोरिव्रह्माण्डानि । जलयत्रस्यघरमालिकाजालवन्महावि-ब्णोरेकैकरोमकृपान्तरेध्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि भ्रमन्ति । समस्त-ब्रह्माण्डान्तर्वहिः प्रपञ्चरहस्यं ब्रह्मज्ञानेनावबुध्य विविधविचित्रानन्तप्रमविभू-तिसमष्टिविशेषान्समवलोक्यात्मश्रयामृतसागरे तिमज्य निरतिशयानन्द-पारावारो भूत्वा समस्तब्रह्माण्डजालानि समुलङ्घयामितापरिच्छिनानन्ततमः -सागरसुत्तीर्य मूलाविद्यापुरं दृष्ट्वा विविधविचित्रानन्तमहामायाविशेषैः परिवेष्टितामनन्तमहामायाशक्तिसमध्याकारामनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालेरळं. क्रतामनन्तमहामायाविलासानां परमाधिष्ठानविशेषाकारां शश्वदमितानन्दा-चलोपरिविहारिणीं मूलप्रकृतिजननीमविद्यालक्ष्मीमेवं ध्यात्वा विविधोपचा-रेराराध्य समस्तबह्मण्डसमष्टिजननीं वैष्णवीं महामायां नमस्कृत्य तया चानुज्ञातश्चोपर्युपरि गम्बा महाविराद्दपदं प्राप । सहाविराद्स्वरूपं कथमिति। समसाविद्यापादको विराद । विश्वतश्रश्चरत विश्वतो मुखो विश्वतो हस्त उत विश्वतस्पात् । सं बाहुश्यां नमति सं पतत्रैयीवापृथिवी जनयन्देव एकः । न सं हरो तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसा-भिक्कशो य एनं विदुरसृतास्ते भवन्ति । मनोवाचामगोचरमादिविरादसहर्ष ध्यात्वा विविधोपचारेराराध्य तद्वुक्तातश्चोपर्युपरि गत्वा विविधविचित्रानः न्तमकाविद्याविकासानवलोक्योपासकः परमकौतुकं प्राप । अखण्डपरिकृषे परमानन्दकक्षणपरब्रह्मणः समस्तस्वरूपविरोधकारिण्यपरिच्छिन्नतिरस्करिण्या-कारा वैष्णवी महायोगमाया सूर्तिमिहरनन्तमहामायाजारुविशेषैः परिवेषिता तस्याः प्रमितिकौतुकमत्याश्चर्यसागरानन्द्रळक्षणसपृतं भवति । अविद्यासागर-प्रतिबिम्बितनित्यवैङ्कण्डप्रतिवैङ्कण्डप्रिव विभाति। उपासकस्तःपुरं प्राप्य योगः लक्ष्मीमङ्गमायां ध्यात्वा विविधोपचारेराराध्य तया संपूजितश्चानुज्ञातश्चोपर्युपरि गःवाऽनन्तमायाविकासानवलोक्योपासकः परमकोतुकं प्राप ॥ तत उपरि पादविभृतिवैकुण्ठपुरमाभाति । अत्याश्चर्यानन्तविभृतिसमष्टयाकारमानन्दरसः प्रवाहेरळंकृतमभितस्तरक्षिण्याः प्रवाहेरतिमङ्गळं ब्रह्मतेजोविशेषाकारेरनन्त-ब्रह्मवनैरभितस्ततमनन्तिनित्यमुक्तैरभिव्याप्तमनन्ति चिन्मयप्रासाद्जालसंकुरुम-नादिपाद्विभृतिवैकुण्ठसेवसाभाति । तन्मध्ये च चिद्रानन्दाचलो विभाति ॥ तदुपरि ' ज्वलति निरतिशयानन्दद्वित्यतेजोराक्षिः । तद्भ्यन्तरे परमानन्द-विमानं विभाति । तद्भ्यन्तरसंस्थाने चिन्मयासनं विराजते । कर्णिकायां निरतिशयदिव्यतेजोराइयन्तरसमासीनमादिनारायणं विविधोपचारैसं समाराध्य तेनाभिपूजितस्तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गःवा सावरणः मविद्याण्डं च भिरवा विद्यापाद्मुङङ्घय विद्याविद्ययोः सन्धो विष्ववस्तेनवैद्धः ण्ठपुरमाभाति ॥ अनन्तिद्विच्यतेजोज्वालाजालैरभितोऽनीकं प्रज्वलन्तमनन्त-बोधान्तरवोधानन्दन्यूदैरभितस्ततं शुद्धबोधविमानाविसिर्विराजितमनन्ताः नन्द्पर्वतैः परमकौतुकमाभाति । तन्मध्ये च कल्याणाचलोपरि शुद्धानन्दः

विमानं विभाति । तद्भ्यन्तरे दिव्यमङ्गलासनं विराजते । तत्पद्मक्रिकायां ब्रह्मतेजोराइयस्यन्तरसमासीनं भगवदनन्तविभृतिविधिनिवेधपरिपाछकं सर्व-प्रवृत्तिसर्वहेतुनिमित्तकं निरतिशयलक्षणमहाविष्णुखरूपम्बिलाप्रश्रीपरिपाल-कमित्रविक्रमभेवंविधं विष्ववसीनं ध्याःवा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विवि-भोषचारैराराध्य तद्बुज्ञातश्चोपर्थुपरि गत्वा विद्याविश्वति प्राप्य विद्यास-यानन्तवेकण्ठान्परितोऽवस्थितान्त्रह्मतेजोमयानवळोक्योपासकः प्राप ॥ विचामयाननन्तसमुद्रानतिकस्य ब्रह्मविचातरिक्वणीमासाच तत्र स्ताःवा भगवद्यानपूर्वकं पुनर्निमज्य मञ्जमयशरीरमुत्सुज्य विद्यानन्दमयामृत-हिव्यशरीरं परिगृहा नारायणसारूप्यं प्राप्यात्मपूजां विधाय ब्रह्ममयवैक्रण्ठ-वासिभिः सर्वेनित्यमुक्तैः सुपूजितस्ततो ब्रह्मविद्याप्रवाहैरानन्दरसनिर्भरैः कीडा-नन्तपर्वतेरनन्तेरियव्यासं ब्रह्मविद्यामयेः सहस्रप्राकारेरानन्दासृतमयैदिव्य-गन्धस्वभावेश्चिन्सयेरनन्तन्नह्मवनेरतिशोभितसुपासकस्वेवंविधं वैकुण्ठमाविक्य तद्भयन्तरस्थितात्यन्तोन्नतवोधानन्द्रप्रासाद्।प्रस्थितप्रणववि-मानोपरिस्थितामपारब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदेवताममोघनिजमन्दकटासेणाना-दिमूलाविद्याप्रलयकरीमद्वितीयासेकामनन्तमोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीमेवं प्रदक्षिणनमस्काराहिबधाय विविधोपचारैराराध्य पुष्पाञ्जिलं समर्प्य स्तुत्वा स्तोत्रविशेषेस्तयासिपूजितस्तद्नुगतश्चोपर्यपरि गत्वा ब्रह्मविद्यातीरे गत्वा बोधा-नन्दमयाननन्तवेकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य बोधानन्दमयाननन्त-समुद्रानतिक्रम्य गत्वा गत्वा ब्रह्मवनेषु परममङ्गळाचलश्रोणीषु ततो बोधान-न्द्विमानपरंपरासूपासकः परमानन्दं प्राप॥ ततः श्रीतुरुसीवैकुण्ठपुरमाभाति परमकल्याणमनन्तविभवममिततेजोराज्याकारमनन्तवहातेजोराशिसमध्या-कारं चिदानन्दमयानेकप्राकारविद्रोपैः परिवेष्टितममितबोधानन्दाचलोपरि-स्थितं बोधानन्दतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं निरतिशयानन्दैरनन्तवृन्दावनै-रतिशोभितमखिळपवित्राणां परमपवित्रं चिद्रपैरनन्तनित्यसुकैरभिव्यासमा-नन्दमयानन्तविमानजाळेरळंकृतममिततेजोराइयन्तर्गतदिव्यतेजोराशिविशेष-सुपासकस्त्वेचमाकारं तुलसीवैकुण्ठं प्रविश्य तद्दन्तर्गतद्विव्यविमान्गेपरिस्थितां सर्वपरिपूर्णस्य महाविष्णोः सर्वाङ्गंषु विहारिणीं निरतिशयसौन्दर्येलावण्या-धिदेवतां बोधानन्दमयैरनन्तनित्यपरिजनैः परिसेवितां श्रीसखीं तुरुसीमेवं लक्ष्मीं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैराराध्य स्तुत्वा

1-

8

। त न

(-'q'

Î-T-

ता र-

रि हि

न-त-

[-

ष

4-11-

ना ण-

कु• त•

ii-द-

स्तीत्रविशेषेस्तयाभिपूजितस्तत्रस्यश्चाभिपूजितस्तद्नुज्ञातश्चोपर्युपरि गरंवा परमाः नन्द्तरङ्गिण्यास्तीरे गत्वा तत्र परितोऽवस्थितान्युद्धवोधानन्दमयाननन्त वैकुण्ठानवळोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य तन्नत्येश्चिद्र्पेः पुराणपुरुपेश्चाभिः पूजितस्तती गत्वा गत्वा ब्रह्मवनेषु दिव्यगन्धानन्दपुष्पवृष्टिभिः समन्वितेष दिव्यमङ्गलालयेषु निरतिशयानन्दासृतसागरेष्वमिततेजोराइयाकारेषु कहोत. वनसंकुलेषु ततोऽनन्तग्रुद्धवोधविमानजाळसंकुलानन्दाचलश्रोणीषूपासकस्त **उपर्युपरि ग**त्वा विभानपरम्पराखनन्ततेजःपर्यंतराजिष्वेवं ऋमेण प्राप्य विद्यानन्दमययोः सन्धि तत्रानन्द्रतरङ्गिण्याः प्रवाहेषु स्नात्वा बोधानन्दवनं प्राप्य ग्रुद्धवोधपरमानन्दानन्दाकारवनं संततासृतपुष्पवृष्टिभिः परिवेष्टितं परमानन्दप्रवाहैरिभव्याशं सृतिंमिद्धः परमसङ्गलैः परमकौतुकमपरिच्छित्रा-नन्दसागराकारं क्रीडानन्दपर्वतेरिभशोभितं तन्मध्ये च गुद्धवीधानन्द्वेकुणं यदेव ब्रह्मविद्यापादवैकुण्ठं सहस्रानन्द्पाकारैः समुज्वकति । अनन्तानन्द्ि मानजाळसंकुलमनन्तवीधसीधविदीपरिभित्तीऽनिशं प्रज्वलन्तं कीडानन्तमण्ड-पविशेषेविंशेषितं बोधानन्द्रमयानन्तप्रमच्छत्रध्वजचामरवितानतोरणैरलंकृतं षरमानन्द्रन्यृहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततमनन्तद्विव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारमणरिच्छि-क्षान-त्रशुद्धबोधानन्तमण्डलं वाचामगोचरानन्द्रबह्मतेजोराशिमण्डलमालण्ड-ठविशेषं गुद्धानन्द्समष्टिमण्डकविशेषमखण्डचिद्धनानन्द्विशेषमेवं तेजोम-ण्डलविधं बोधानन्दवेकुण्ठमुपासकः प्रविश्य तत्रत्यैः सर्वेरिभपूजितः परमानः न्दाचलोपर्यखण्डबोधविमानं प्रज्वलति । तद्भ्यन्तरे चिन्मयासनं विराजते। तदुपरि विभात्यखण्डानन्दतेजोमण्डलम् । तद्भ्यन्तरे समासीनमादिनारायणं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैः सुसंपूज्य पुष्पाक्षि समर्प्य स्तुत्वा स्तोत्रविशेषेः खरूपेणावस्थितसुपासकमव्कोक्य तसुपासकमा दिनारायणः खसिंहासने सुसंस्थाप्य तद्वैकुण्ठत्रासिभिः सर्वैः समन्वितः समल मोक्षसाम्राज्यपट्टाभिषेकसुद्दिश्य मञ्जपूतैरुपासकमानन्दकलशैरभिषिच्य दिव्य मङ्गलमहावाद्यपुरःसरं विविधोपचारैरभ्यच्यं मूर्तिमद्भिः सर्वेः स्विविह्नैरलंक्ष प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय त्वं ब्रह्मासि अहं ब्रह्मास्मि आवयोरन्तरं न विद्यते त्वमेवाहम् अहमेव त्वम् इलभिधायेत्युक्तवादिनारायणिखरोदधे तदेत्यपनिषत्॥ १॥

इत्याथवेणमहानारायणोपनिषत्सु परममोक्षमार्गस्वरूपनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथोपासकस्तदाज्ञया नित्यं गरुडमारुख वैकुण्ठवासिभिः सर्वेः परिवेष्टितो महासुदर्शनं पुरस्कृत्य विष्वक्सेनपरिपालितश्चोपर्युपरि गःवा ब्रह्मानन्दवि-भूति प्राप्य सर्वत्रावस्थितान्त्रह्मानन्दमयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्य निरतिश-यानन्दसागरी भूत्वाऽऽत्मारामानानन्दविभूतिपुरुषाननन्तानवळोक्य तानस-बीनुपचारैः समध्यच्यं तैः सर्वेरिभप्जितश्रोपासकस्तत उपर्श्वपरि गत्वा ब्रह्मानन्द्विभूतिं प्राप्यानन्तद्वियतेजःपर्वतैरलंकृतान्परमानन्दलहरीवनशो-भितानसंख्याकानानन्दससुद्रानतिक्रम्य विविधविचित्रानन्तपरमतत्त्वविभू-तिसमष्टिविशेषान्परमकौतुकान्ब्रह्मानन्द्विभूतिविशेषानतिकम्योपासकः परम-कौतुकं प्राप ॥ ततः सुदर्शनवैकुण्ठपुरमाभाति नित्यमङ्गळमनन्तविभवं सहस्रानन्द्रपाकारपरिवेष्टितमयुतकुक्ष्युपलक्षितमनन्तोत्कटज्वलद्रमण्डलं निर-तिश्चयदिव्यतेजोमण्डलं वृन्दारकपरमानन्दं शुद्धबुद्धस्वरूपमनन्तानन्दसौ दामिनीपरमविलासं निरतिशयपरमानन्दपारावारमनन्तैरानन्दपुरुषेश्चिद्रप्रै-रिधष्टितम् । तन्मध्ये च सुदर्शनं सहाचक्रम् । चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तराति दुच्छतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाष्मानमराति तरेम । कोकस्य द्वारमर्चिमस्पवित्रं ज्योतिष्मद्राजमानं महस्वत् । अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं चरणं नो लोके सुधितां दधातु । अयुतारं ज्वलन्तमयुतारसमध्याकारं निरतिशयविकमविलासमनन्तदिव्यायुधदिव्य-शक्तिसमष्टिरूपं महाबिष्णोरनर्गलप्रतापविग्रहमयुतायुतकोटियोजनविशाल-मनन्तज्वालाजालैरलंकृतं समस्तिद्वयमङ्गलनिदानमनन्तिद्वयतीर्थानां निज-मन्दिरमेवं सुद्रानं महाचकं प्रज्वकति । तस्य नाभिमण्डलसंस्थाने उपलक्ष्यते निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः । तन्मध्ये च सहस्रारचकं प्रज्वलति । तद्खण्डदिञ्यतेजोभण्डलाकारं परमानन्द्सौद्मिनीनिचयोजवलम् । तद्-भ्यन्तरसंस्थाने पद्शतारचकं प्रज्वलति । तस्यामितपरमतेजः परमविहार-संस्थानविशेषं विज्ञानघनस्वरूपम् । तदन्तराले त्रिशतारचकं विभाति । तच परमकल्याणविळासःविशेषमनन्तचिदादित्यसमध्याकारम् । तद्भ्यन्तरे शतार-चकमाभाति । तच परमतेजोमण्डलविशेषम् । तन्मध्ये षष्ट्यरचक्रमाभाति । तच ब्रह्मतेजः परमविलासविशेषम् । तद्भ्यन्तरसंस्थाने षङ्गोणचकं प्रज्वलति । तचापरिच्छिन्नानन्तदिव्यतेजोराइयाकारम् । तद्भयन्तरे महानन्दपदं विभाति । त्तःकर्णिकायां सूर्येन्दुवह्मिण्डलानि चिन्मयानि ज्वलन्ति । तत्रोप-

8

मा-न्त-भि-

तेषु ल-

तत एय

वनं

न्ना-ज्यदं

वि-ग्रह-

कृतं वेळ-

ग्ड-मि-

ान-ते ।

यणं इलि

मा-

्व्य-कृत्य

न दधे

लक्ष्यते निरतिशयदित्यतेजोशिकः। तद्भ्यन्तरसंस्थाने युगपदुदितानन्तकोः रविप्रकाशः सुदर्शनपुरुषो विराजते । सुदर्शनपुरुषो महाविष्णुरेव । म विष्णोः समस्तासाधारणचिह्नचिह्नितः । एवसुपासकः सुद्र्शनपुरुषं ध्याः प्रदक्षिणनसस्कारान्विधायोपासकस्तेनाभिपृजितस विविधोपचारेराराध्य नुज्ञातश्चोपर्श्वपरि गत्वा परमानन्दमयाननन्तवेकुण्ठानवलोक्योपासकः प्रस वन्दं प्राप । तत उपरि विविधविचित्रानन्तचिद्विलासविभूतिविशेषान् क्रम्यानन्तपरमानन्द्विभूतिसमष्टिविशेषाननन्तिनरतिशयानन्तसमुद्रानतील पासकः क्रमेणाहृतसंस्थानं प्राप ॥ कथमहैतसंस्थानम् । अखण्डानन्दस **रू**पमनिर्वाच्यममितबोधसागरममितानन्दसमुदं विजातीयविशेषविवर्जि सजातीयविशेषविशेषितं निरवयवं निराधारं निर्विकारं निरक्षनसननतम्य वन्दसमष्टिकन्दं परमचिद्विलाससम्बद्धाकारं निर्मलं निरवदं निराध्रयमतिन भैळानन्तको टिरविप्रका शैकस्फुलिङ्गमनन्तौ पनिषद् थे खरूपमखिलप्रमाणातीतं अनीवाचामगोचरं नित्यमुक्तस्वरूपमनाधारमादिमध्यान्तर्भ्यं कैवत्यं परा शान्तं सूक्ष्मतरं महतो महत्तरमपरिमितानन्दविशेषं शुद्धबौधानन्दिभृति विशेषमनन्तानन्दविभूतिविशेषसमष्टिरूपमक्षरमित्रेंश्यं कृटस्थमचलं धुव मदिग्देशकालमन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य परिपूर्ण मरमयोगिभिविमृग्यं देशतः काकतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं निरन्तराभिनवं नित्यपरिपूर्णमखण्डानन्दामः तिविशेषं शाश्वतं परमं पदं निरतिशयानन्दानन्तति स्पर्वताकारमद्वितीयं स्वयंप्रकाशमनिशं ज्वलति । परमानन्दरक्षणापरिच्छिन्नानन्तपरंज्योतिः शाश्वतं शश्वद्विभाति । तद्भ्यन्तरसंस्थानेऽमितानन्दचिदूपाचलमखण्डपरमाः नन्द्रविदोषं बोधानन्द्रमहोज्ज्वलं तिल्यमङ्गलमन्दिरं चिन्मथनाविर्भूतं चित्सा-रमनन्ताश्चर्यसागरममिततेजोराइयन्तर्गततेजोविद्योषमनन्तानन्दप्रवाहैरलंकृतं निरतिशयानन्द्पारावाराकारं निरुपमनित्यनिरवद्यनिरतिशयनिरवधिकतेजी-राशिविशेषं निरतिशयानन्दसहस्रप्राकारैरळंकृतं ग्रुद्वोधसोधावलिविशेषैरळं-कृतं चिदानन्दमयानन्तदिव्यारामैः सुशोभितं शश्वदमितपुष्पवृष्टिभिः समः न्ततः संततम् । तदेव त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठस्थानं तदेव परमकैवत्यम् । तदेवा-बाधितपरमतत्त्वम्। तदेवानन्तोपनिषद्विमृग्यम्।तदेव परमयोगिभिर्मुसुक्षीः सवैराशास्त्रमानम् । तदेव सद्धनम् । तदेव चिद्धनम् । तदेवानन्द्घनम् । तदेव शुद्धवोधवनविशेषमखण्डानन्दब्रह्मचैतन्याधिदेवतास्वरूपम्। सर्वाधिष्ठाः

Į

व

तः

Į.

यं

ì:

T-

7-

नसद्वयपरब्रह्मविहारमण्डलं निरतिशयानन्दतेजोमण्डलसद्वैतपरमानन्दलक्षण-प्रवाह्मणः प्रमाधिष्ठानमण्डलं निरतिशयपरमानन्दपरमम्तिविशेषमण्डलमन-न्तपरमसूर्तिसमधिमण्डलं निरतिशयपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः परममृर्तिपरम-तरवविकासविदेशेषमण्डलं वोधानन्दमयानन्तपरमविलासविभूतिविशेषसमष्टि-**अण्डलमनन्तचिद्विलासिनभूतिविशेषसमिष्टमण्डलमखण्डशुद्धचेतन्यनिजमृर्ति-**वाचामगोचरानन्तशुद्धबोधविशेषविष्रहमनन्तानन्दसमुद्रस-मह्याकारसनन्तवीधाचलैरनन्तवीधानन्दाचलैरधिष्ठितं निरतिशयानन्दपरम-सङ्गळविहोषसमध्याकारमखण्डाहेतपरमानन्दळक्षणपरब्रह्मणः परममूर्तिपरम-तेजः युअपिण्डविशेषं चिद्रपादिस्यमण्डलं द्वात्रिशब्यूहभेदैरिषष्टितम् । ब्यूह-भेदाश्च केशवादिचतुर्विंशतिः । सुदर्शनादिन्यासमन्नाः । (सुदर्शनादियन्नो-द्धारः) । अनन्तरारुडनिष्वक्सेनाश्च निरतिशयानन्दाश्च । आनन्दव्यृहमध्ये सहस्रकोटियोजनायतोज्ञतचिन्मयप्रासादं ब्रह्मानन्दमयविमानकोटिभिरति-सङ्गळमनन्तोपनिषदर्थारामजालसंकुलं सामहंसकूजितैरतिशोभितमानन्दमया-नन्तशिखरैरकंकृतं चिदानन्दरसनिक्षेरैरभिव्यासमखण्डानन्दतेजोराइयन्तर-स्थितमनन्तानन्दाश्चर्यसागरं तद्भयन्तरसंस्थानेऽनन्तकोटिरविप्रकाशातिशयप्रा-कारं निरतिशयानन्दळक्षणं प्रणवाख्यं विमानं विराजते । शतकोटिशिखरैरा-सञ्ज्ञज्ञवलति । तदन्तरास्टे बोधानन्दाचलोपर्यष्टाक्षरीमण्डपो विभाति । तन्मध्ये च चिदानन्दमयवेदिकानन्द्वनविभूविता । तदुंपरि-ज्वलति निरतिशयानन्दतेजोराशिः । तद्भ्यन्तरसंस्थानेऽष्टाक्षरीपद्मविभूषितं चिन्मयासनं विराजते । प्रणवकर्णिकायां सूर्येन्दुविह्नमण्डलानि चिन्मयानि उवलन्ति । तत्राखण्डानन्द्तेजोराइयन्तर्गतं परममङ्गलाकारमनन्तासनं विरा-जते । तस्योपरि च महायत्रं प्रज्वलति । निरतिशयब्रह्मानन्दपरमसूर्तिमहा-यत्रं समस्तव्रह्मतेजोराशिसमष्टिरूपं चित्स्वरूपं निरक्षनं परव्रह्मस्वरूपं पर-बह्मणः परमरहस्यकैवर्त्यं महायन्नमयपरमवैकुण्ठनारायणयन्त्रं विजयते । तत्त्वरूपं कथमिति । देशिकसायेति होवाच । आदौ घटकोणचक्रम् । तन्मध्ये षद्द्रुपञ्चम् । तत्कर्णिकायां प्रणव अमिति । प्रणवमध्ये नारायण-बीजिमिति । तत्साध्यगर्भितं सम सर्वाभीष्टसिद्धिं कुर कुरु स्वाहेति । तत्प-बदलेषु विष्णुनृसिंहषडक्षरमन्त्री ॐ नमो विष्णवे ऐं क्वीं श्रीं हीं क्मों (क्षों) फद। तद्दक्कपोलेखु रामकृष्णषडक्षरमन्त्री। रां रामाय नमः।

क्वीं कृष्णाय नमः । पदकोणेषु सुदर्शनषडक्षरमञ्जः । सहस्रार हुं फिरिते। षदकोणकपोलेषु प्रणवयुक्तशिवपञ्चाक्षरमञ्जः । ॐ नमः शिवायेति । तहहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तस् । वृत्ताद्वहिरष्टदलपद्मम् । तेषु दलेषु नारायणनृसि-हाष्टाक्षरमञ्जी । ॐ नमी नारायणाय । जय जय नरसिंह । तद्दलसन्धिषु रामकृष्णश्रीकराष्ट्राक्षरमञ्जाः । ॐ रामाय हुं फद स्वाहा । क्वीं दामोदराय नमः । उत्तिष्ठ श्रीकर खाहा । तहहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् । वृत्ताहहिन्व-द्रुष्यस् । तेषु द्रुषेषु रामकृष्णहयशीवनवाक्षरसञ्चाः । ॐ रामचन्द्राय नमः अन्तर । हीं कृष्णाय गोविन्दाय छीस् । हों (हसीं) हयधीवाय नमी हों (इसीम् ।) तद्दलकपोलेषु दक्षिणामूर्तिनवाक्षरमञ्जः । ॐ दक्षिणामूर्तिरीध-रोस्। तद्विर्नारायणबीजयुक्तं वृत्तस् । वृत्ताद्वहिर्दशद्रुपद्यस्। तेषु द्रहेषु रामकृष्णद्शाक्षरमञ्जो । हुं जानकीवछभाय स्वाहा । गोपीजनवछभाव ब्बाहा । तहलसन्धिषु नृसिंहमालामन्नः । ॐ नमो अगवते श्रीमहानृसिंहाय करालदंष्ट्वद्नाय सम विघान्पच पच स्वाहा । तद्वहिर्नुसिंहैकाक्षरयुक्तं वृत्तम्। क्रयो (क्षौ)मित्येकाक्षरम् । वृत्ताइहिर्द्वादरुपद्मम् । तेषु द्लेषु नारा-यणवासुदेवद्वादशाक्षरमञ्जो । ॐ नमो भगवते नारायणाय । ॐ नमो भग-वते वासुदेवाय । तद्रजकपोछेषु महाविष्णुरामकृष्णहाद्शाक्षरमञ्जाश्च । कँ नमो भगवते सहाविष्णवे । कें हीं भरतायज राम झीं स्वाहा। श्री हीं क्षीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः । तद्वहिर्जगन्मोहनवीजयुक्तं युत्तं क्षीमि-ति । दुत्ताद्दिश्चतुर्देशद्रव्यग्रम् । तेषु द्रहेषु व्स्मीनारायणहयग्रीवगोपाल-दिधिवासनसञ्जाश । ॐ हीं हीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः । ॐ नमः सर्वकोटिसर्वविद्याराजाय क्षीं कृष्णाय गोपालचूडामणये स्वाहा । ॐ नमो अगवते दिधवामनाय (ॐ) । तद्दलसंधिवन्नपूर्णेश्वरीमन्नः। हीं पद्मा-वसन्तपूर्णे माहेश्वरि स्वाहा । तद्वहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिः षोडशदलपद्मम् । तेषु दलेषु श्रीकृष्णसुदर्शनषोडशाक्षरमञ्जी च । ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फद । तद्दल्संधिषु स्वराः सुद्रीनमालामत्रश्च । अआद्द्वेउजक्रकरूर्षे ओओअंभः। सुदर्शनमहाचकाय दीप्तरूपाय सर्वतो मां रक्ष रक्ष सहसार हुं फद स्वाहा । तद्वहिर्वराहबीजयुक्तं वृत्तम् । तद्विमिति । वृत्ताद्वहिरष्टादशद्व-पद्मम् । तेषु दलेषु श्रीकृष्णवामनाष्टाद्शाक्षरमञ्जो । क्षीं कृष्णाय गोविन्दाय

गोपीजनवङ्घाय खाहा। ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्त्राहा। तद्दककपोलेषु गरुडपञ्चाक्षरीमन्त्रो गरुडमालामन्त्रश्च । क्षिप ॐ स्वाहा। ॐ नमः पक्षिराजाय सर्वविषभूतरक्षः इत्यादिभेदनाय सर्वेष्टसाधकाय स्वाहा । तद्वहिमीं-वाबीजयुक्तं वृत्तम् । वृत्ताद्वहिः पुनरष्टद्रुपद्मम्। तेषु द्रेषु श्रीकृष्णवामनाष्टाः क्षरमञ्जो । ॐ नमो दामोदराय । ॐ वामनाय नमः अम् । तद्दळकपोलेषु नीळ-क्षण्ठन्यक्षरीगरुडपञ्चाक्षरीमत्रौ च। में रीं ठः (श्रीकण्ठः)। नमोऽण्डजाय। वह हिर्मेन्मथवी जयुक्तं वृत्तम् । वृत्ताह हिश्चतु विंशतिदलपद्मम् । तेषु दलेषु क्षरणागतनारायणमञ्जो नारायणहयत्रीवगायत्रीमञ्जो च । श्रीमञ्जारायण-चरणे। क्षरणं अवचे श्रीमते नारायणाय नमः । नारायणाय विद्याहे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । वागीश्वराय विद्याहे हयप्रीवाय धीमहि । तज्ञो हंसः प्रचोदयात् । तद्दरुकपोलेषु नृसिंहसुदर्शनब्रह्मगायत्रीमृत्राश्च । वजनलाय विद्यहे तीक्ष्णदंष्ट्राय घीमहि । तन्नो नृसिंहः प्रचोद्यात् । सुद्र्शनाय विवाहे हेतिराजाय धीमहि। तन्नश्रकः प्रचोदयात्। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचीद्यात् । तद्दहिईयमीवेकाक्षरयुक्तं वृत्तं ह्लोहसी-भिति । वृत्ताद्वहिद्वात्रिंशद्ळपद्मम् । तेषु दळेषु नृसिंहहययीवानुदूभमन्नी उम्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोसुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमा-अ्यहस् । ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाहरणकर्मणे । प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वदिः रसे नमः । तद्दक्कपोलेषु रामकृष्णानुष्टुभमञ्जो । रामभद्र महेष्वास रघुवीर गुपोत्तम । भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां कुरु देहि श्रियं च मे । देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगापते । देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः । तहहिः ग्रणवसंपुटितामिबीजयुक्तं वृत्तम् । ॐ रमोमिति । वृत्ताद्वहिः पदत्रिंशह-ळपञ्चम् । तेषु दलेषु हयग्रीवषदत्रिंशदक्षरमञ्चः पुनरष्टात्रिंशदक्षरमञ्चश्च । हंसः । विश्वोत्तीर्णस्त्ररूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे । तुभ्यं नमो हयप्रीव विद्या-राजाय विष्णवे । सोहम् । ह्रो (हों) ॐ नमो भगवते हयग्रीवाय सर्ववा-गीश्वरेश्वराय सर्ववेदमयाय सर्वविद्यां मे देहि स्वाहा । तद्दळकपोलेख भणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्ध्यन्ताः केशवादिचतुर्विशतिमन्नाश्च । शस्थानेषु रामकृष्णगायत्रीद्वयवर्णचतुष्टयमेकैकस्थले । ॐ केशवाय नमः । ॐ नारायणाय नमः । ॐ माधवाय नमः । ॐ गोविन्दाय नमः । ॐ विष्णवे नमः। ॐ (अं) मधुसूदनाय नमः। ॐ त्रिविक्रमाय नमः। ॐ वाम- नाय नमः । ॐ श्रीधराय नमः । ॐ हवीकेशाय नमः । ॐ पद्मनामार नमः । ॐ दामोदराय नमः । ॐ संकर्षणाय नमः । ॐ वासुदेवाय नमः । कॅं प्रद्युक्ताय नमः । ॐअनिरुद्धाय नमः । ॐपुरुषोत्तमाय नमः । ॐअघोक्षजा-य नमः । ॐ नारसिंहाय नमः । ॐ अच्युताय नमः । ॐ जनार्दनाय नमः । कँ उपेन्द्राय नमः। कँ हरये नमः। कँ श्रीकृष्णाय नमः। दाशरथाय विश्वहे सीतावसभाय धीमहि । तन्नो रामः प्रचीदयात् । दामोदराय विद्यहे वासु-देवाय घीमहि । तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् । तहिः प्रणवसंपुटिताङ्कराबीज-युक्तं वृत्तम् । ॐ कोमोमिति । तद्वहिः पुनर्वृत्तं तन्मध्ये द्वादशकुक्षिस्थानाति सान्तरालानि । तेषु कोस्तुभवनमालाश्रीवत्ससुद्शेनगरुडपद्यध्वजानन्त-बार्ङ्गगदाशङ्खनन्दकमञ्चाः प्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण । ॐ कोस्तुभाय नमः। ॐ वनमालाये नमः। ॐ श्रीवत्साय नमः। ॐ सुदर्शनाय नमः। कें गरुडाय नमः । कें पद्माय नमः। कें ध्वजाय नमः । कें अन-न्ताय नमः । ॐ शाङ्गीय नमः । ॐ गदाये नमः । ॐ शङ्खाय नमः । ॐ नन्द्काय नमः । तदन्तरालेषु—ॐ विष्वनसेनाय नमः । ॐ माचकाय स्वाहा । ॐ विचकाय स्वाहा । ॐ सुचकाय स्वाहा । ॐ धीचकाय स्वाहा । ॐ संचकाय श्वाहा । ॐ ज्वालाचकाय खाहा । ॐ कुद्धोल्काय खाहा । ॐ महोक्काय खाहा। ॐ वीयोंक्काय खाहा । ॐ बुक्काय खाहा। ॐ सहस्रोहकाय स्वाहा । इति प्रणवादिमञाः । तद्वहिः प्रणवसंपुटितगरुडपञ्चाक्षर-युक्तं वृत्तम् । ॐक्षिप ॐस्वाहा । ॐ तच द्वादशवज्रेः सान्तराकैरलंकृतम् । तेषु वज्रेषु ॐ पद्मतिधये नमः। ॐमहापद्मतिधये नमः। ॐगरुडतिधये नमः। ॐ शङ्कतिधये नमः। ॐमकरतिधये नमः। ॐकच्छपतिधये नमः। ॐविद्यातिधये नमः। ॐ परमानन्दनिधये नमः। ॐ मोक्षनिधये नमः। ॐ लक्ष्मीनिधये नमः। ॐ ब्रह्मनिधये नमः। ॐ श्रीमुकुन्दनिधये नमः। ॐ वैकुण्ठनिधये नमः । तःसंधिस्थानेषु —ॐ विद्याकल्पकतरवे नमः । ॐआनन्दकल्पकतरवे नमः । ॐ ब्रह्मकल्पकतरवे नमः । ॐ मुक्तिकल्पकतरवे नमः । ॐ अमृत-कल्पकतरवे नमः । ॐ बोधकल्पकतरवे नमः । ॐ विभूतिकल्पकतरवे नमः । ॐ वैकुण्ठकल्पकतरवे नमः । ॐ वेदकल्पकतरवे नमः । ॐ योग-करुपकतरवे नमः । ॐ यज्ञकरुपकतरवे नमः । ॐ पञ्चकरुपकतरवे नमः । तच शिवगायत्रीपरब्रह्ममत्राणां वर्णेर्वृत्ताकारेण संवेष्ट्य । तत्प्ररुपाय विश्वहे महादेवाय घीमहि । तन्नो रुद्दः प्रचोदयात् । श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः । नारायणपरं ब्रह्म नारायण नमोऽहतु ते । तद्वहिः प्रणवसंपुटितश्रीवीजयुक्तं वृत्तस् । ॐ श्रीमोमिति । वृत्ताद्वहिश्रःवा-रिंशहरुपद्मस् । तेषु दरेषु व्याहतिशिरःसंपुटितवेदगायजीपादचतुष्टय-सूर्याष्टाक्षरीमत्री । ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ सुवः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तपः । ॐ सत्यम् । ॐ तत्सिवितुर्वरेण्यम् । ॐ भगीं देवस्य धीमहि । ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ परोरजसे सावदोम् । ॐआपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् । ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः । तद्दलसंधिषु प्रणवश्रीबीजसंपुटितनारायणबीजं सर्वत्र । ॐ श्रीमं श्रीमौम् । तद्वहिरष्टशूलाङ्कितभूचक्रम् । चक्रान्तश्रतुर्दिश्च हंसःसोहंमन्त्रौ प्रणवसंप्रदिता नारायणास्त्रमञ्जाश्च । ॐ हंसः सोहम् । ॐ नमो नारायणाय हुं फद्। तद्धहिः प्रणवमालासंयुक्तं वृत्तम्। वृत्ताद्वहिः पञ्चाशद्रलपग्रम्। तेषु दलेषु मातृकापञ्चाशदक्षरमाला लकारवर्ग्या । तद्दलसंधिषु प्रणवश्री-बीजसंपुटितरामकृष्णमालामत्रौ । ॐ श्रीमों नमी भगवते रघुनन्दनाय रक्षोन्नविशदाय मधुरप्रसन्नवद्नायामिततेजसे बळाय रामाय विष्णवे नमः। श्रीं ॐ नम्नः कृष्णाय देवकीपुत्राय वासुदेवाय निर्गलच्छेदनाय सर्वकोकाधि-पतये सर्वजगन्मोहनाय विष्णवे कामितार्थदाय स्वाहा श्रीमोम्। तद्वहिर-ष्ट्यूलाङ्कितभूचकम् । तेषु प्रणवसंपुटितमहानीलकण्ठमत्रवर्णानि । ॐमो नमो नीलकण्ठाय । ॐ शूलाग्रेषु लोकपालमञ्जाः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थन्ताः क्रमेण । ॐ इन्द्राय नमः । ॐ अप्रये नमः । ॐ यमाय नमः । ॐ निर्कत-तये नमः। ॐ वरुणाय नमः। ॐ वायवे नमः। ॐ सोमाय नमः। ॐ ईशानाय नमः । तद्दहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तत्रयम् । तद्दहिर्भूपुरचतुष्टयं चतुर्द्वारयुतं चक्रकोणचतुष्टयमहावज्रविभूषितम् । तेषु वज्रेषु प्रणवश्रीवीज-संपुटितासृतवीजद्वयम् । ॐ श्रीं ठं वं श्रीमोमिति । वहिर्भूपुरवीथ्याम्— ॐआधारशक्तये नमः । ॐ मूलप्रकृत्ये नमः । ॐआदिकूर्माय नमः । ॐअन-न्तायं नमः । ॐ पृथिद्यै नमः । मध्यभूपुरवीथ्याम्—ॐ क्षीरसमुद्राय नमः। ॐरत्नद्वीपाय नमः । ॐ मणिमण्डपाय नमः। ॐ श्वेतच्छत्राय नमः । ॐ कल्पकवृक्षाय नमः । ॐ रलसिंहासनाय नमः । प्रथमसूपुर- बीध्याम्-ॐ धर्मज्ञानवैराग्येश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानेश्वर्यसत्त्ररुत्स्त्रमोमायावि-द्यानन्तपद्माः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्ध्यन्ताः ऋमेण । अन्तर्वृत्तवीर्थाम्-ॐअनु-ग्रहाये नमः । ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसं-योगयोगपीठात्मने नमः । वृत्तावकारोषु -वीजं प्राणं च शक्तिं च दृष्टि वश्या-हिकं तथा । मञ्जयञ्चाख्यगायत्रीप्राणस्थापनमेव च । भूतदिक्पालवीजानि यञ्च साङ्गानि वै दश । सूलमञ्जमालामञ्जनचिद्ग्वन्धनमञ्जाख । एवं-विधमेतद्यन्नं महामन्नमयं योगधीरान्तेः परममन्नैरलंकृतं पोडशोपचारेर-भ्यर्चितं जपहोमादिना साधितमेतवज्ञं शुद्धबह्यतेजोमयं सर्वाभयंकरं समस्त-दुरितक्षयकरं सर्वाभीष्टसंपादकं सायुज्यमुक्तिप्रदमेतत्परमवैकुण्ठमहानारा-यणयञ्चं प्रज्वलति । तस्योपरि च निरतिशयानन्दतेजोराश्यभ्यन्तरसमासीनं वाचामगोचरानन्दतेजोराइयाकारं चित्साराविर्भूतानन्द्विग्रहं वोधानन्द्स्य-रूपं निरतिशयसौन्दर्यपारावारं तुरीयस्त्ररूपं तुरीयातीतं चाहेतपरमानन्दनिर-न्तरातित्ररीयनिरातिशयसौन्दर्यानन्दपारावारं लावण्यवाहिनीकल्लौलतिद्धा-सुरं दिव्यमङ्गलविग्रहं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैरुपसेव्यमानं चिदानन्दमयैरनन्त-कोटिरविप्रकाशोरनन्त भूषणेर छंकृतं सुद्र्शनपाञ्चजन्यपद्मगद्रासिशाईसुसल-परिघाचैश्चिन्सयैरनेकायुधगणैर्सूर्तिमिद्धः सुसेवितस् । बाह्यवृत्तवीध्यां विम-छोत्कर्षिणी ज्ञाना किया योगा प्रह्वी सत्येशाना प्रणवादिनमोन्ताश्चनुध्र्यन्ताः कसेण । श्रीवत्सकोस्तुभवनमालाङ्कितवक्षसं ब्रह्मकल्पवनामृतपुष्पवृष्टिभिः सन्ततमानन्दं ब्रह्मानन्दरसनिभरेरसंख्येरतिसङ्गळं शेषायुतफणाजाळविपुळ-च्छत्रशरेभितं तत्फणामण्डलोद्चिमीणचोतितवियहं तद्क्कान्तिनिर्झरेसतं नि-रतिशयबद्यगन्धस्वरूपं निरतिशयानन्दबद्यगन्धविशेषाकारमनन्तब्रह्मगन्धा-कारसमष्टिविशेषभनन्तानन्दनुलसीमाल्येरभिन्तं चिदानन्दमयानन्तपुष्पमा-ह्यैविराजमानं तेजःप्रवाहतरङ्गतत्परम्पराभिजवैलन्तं निरतिशयानन्दं कान्ति-विशेषावतेंरभितोऽनिशं बोधानन्द्रमयानन्तधूपदीपावलिभि-प्रज्वलन्तं रतिशोभितं निरतिशयानन्दचामरविशेषेः परिसेवितं निरन्तरनिरुपमनि-रतिशयोत्कटज्ञानानन्दानन्तगुच्छफळैरलंकृतं विनमयानन्ददिव्यविमानच्छत्र-ध्वजराजिभिविराजमानं परममङ्गलानन्ताद्वेच्यतेजोभिज्वेलन्तमनिशं वाचा-मगोचरमनन्ततेजोराइयन्तर्गतमर्धमात्रात्मकं तुर्वं ध्वन्यात्मकं तुरीयातीत- प्रवाच्यं नाद्विन्दुकलाध्यात्मस्त्ररूपं चेत्याद्यनन्ताकारेणावस्थितं निर्गुणं निष्क्रियं निर्मेलं निरवद्यं निरञ्जनं निराकारं निराश्रयं निरतिद्यायाद्वैतपरमानन्द-लक्षणमादिनारायणं ध्यायेदित्युपनिषत् ॥

इति त्रिपाद्विभृतिसहानारायणोपनिषत्स परममोक्षस्वरूपनिरूपणद्वारापरम-वैकुण्ठमहानारायणयन्त्रस्वरूपनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ततः पितासहः परिष्टुच्छति भगवन्तं सहाविष्णुं भगवञ्छदाद्वैतपरमानन्द-लक्षणपरब्रह्मणस्तव कथं विरुद्धवैकण्ठप्रासादप्राकारविमानाद्यनन्तवस्तुभेदः। सत्यमेवोक्तमिति भगवान्महाविष्णुः परिहरति । यथा ग्रुद्धसुवर्णस्य कटकमुकु-टाङ्गदादिभेदः । यथा समुद्रसल्लिख स्थूलसूक्ष्मतरङ्गकेनबुद्दकरकलवणपा-षाणाद्यनन्तवस्तुभेदः । यथा भूमेः पर्वतवृक्षतृणगुल्मलताद्यनन्तवस्तुभेदः। तथैवाहैतपरमानन्दलक्षणपरव्रह्मणो मम सर्वाह्रैतसुपपन्नं भवत्येव । मत्स्वरू-पसेव सर्वं मद्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते । पुनः पितामहः परिपृच्छित । अगवन परमवैकुण्ठ एव परममोक्षः । परममोक्षस्त्वेक एव श्रूयते सर्वत्र । कथमनन्तवैकुण्ठश्चानन्तानन्दसमुद्रादयश्चानन्तमूर्तयः सन्तीति । तथेति होवाच भगवान्महाविष्णुः । एकस्मिन्नविद्यापादेऽनन्तकोटिव्ह्याण्डानि सावरणानि श्रूयन्ते । तसिन्नेकसिन्नण्डे बहवो लोकाश्च बहवो वैकुण्ठाश्चान-न्तविभूतयश्च सन्त्येव । सर्वाण्डेप्वनन्तलोकाश्चानन्तवैकुण्ठाः सन्तीति सर्वेषाः खल्वभिमतस् । पादत्रयेऽपि किं वक्तन्यं निरतिशयानन्दाविभीवो मोक्ष इति मोक्षलक्षणं पादत्रये वर्तते । तस्मात्पादत्रयं परममोक्षः । पादत्रयं परमवै-कुण्ठः । पादत्रयं परमकैवल्यमिति । ततः शुद्धचिदानन्दव्यक्षविलासानन्दा-श्चानन्तपरमानन्द्विभृतयश्चानन्तवेकुण्ठाश्चानन्तपरमानन्द्ससुद्रादयः न्त्येव । उपासकस्ततोऽभ्येत्यैवंविधं नारायणं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्वि-धाय विविधोपचारैरभ्यर्च्य निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणो भूत्वा तद्ग्रे साव-थानेनोपविश्याद्वेतयोगमास्थाय सर्वाद्वेतपरमानन्दलक्षणाखण्डामिततेजोराज्या-कारं विभाव्योपासकः स्वयं शुद्धबोधानन्दमयामृतनिरतिशयानन्दतेजोराश्या-कारो भूवा महावाक्यार्थमनुस्मरन् ब्रह्माहमस्मि अहमसि ब्रह्माहमस्मि योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा। अहं ब्रह्मेति भावनया यथा परमतेजोमहानदीप्रवाहपरमतेजःपारावारे प्रविशति । यथा परमतेजः-पारावारतरङ्गाः परमतेजःपारावारे प्रविशन्ति । तथैव सचिदानन्दात्मोपासकः सर्वपरिपूर्णाद्वैतपरमानन्दलक्षणे परब्रह्मणि नारायणे मयि सिचदानन्दा- त्मकोऽहमजोऽहं परिपूर्णोऽहमस्मिति शविवेश । तत उपासको निस्त-रङ्गद्वैतापारनितिरशयसिद्धानन्दससुद्रो वभूव । यस्त्वनेन मार्गेण सस्य-गाचरति स नारायणो भवत्यसंशयक्षेत्र । अनेन मार्गेण सर्वे मुनयः सिद्धिः गताः । असंख्याताः परमयोगिनश्च सिद्धिं गताः । ततः शिष्यो गुरुं परिपृच्छति । भगवन्त्सालम्बनिरालम्बयोगौ कथियति बृहीति । सालम्बस्त समस्तकमीतिद्रतया करचरणादिस्तिविशिष्टं मण्डलाद्यालम्बनं सालम्ब-योगः । निरालस्वस्तु समस्तनामरूपकर्मातिदृरतया सर्वकामाद्यन्तः करण-वृत्तिसाक्षितया तदालम्बनसून्यतया च भावनं निरालम्बयोगः । अथ च निरालस्वयोगाधिकारी कीदशो भवति । अमानित्वादिलक्षणोपलक्षितो यः पुरुषः स एव निरालस्वयोगाधिकारी कार्यः कश्चिद्स्ति । तस्मात्सर्वेषाम-धिकारिणामनधिकारिणां अक्तियोग एव प्रशस्यते । अक्तियोगो निरुपद्रवः । भक्तियोगान्मुक्तिः । बुद्धिमतामनायासेनाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति । तत्क-थमिति । अक्तवत्सरुः स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्षविद्येभ्यो भक्तिनिद्यान्त्सर्वान्य-रिपालयति । सर्वाभीष्टान्प्रयच्छति । मोक्षं दापयति । चतुर्भुखादीनां सर्वे-षामपि विना विष्णुभक्तया कल्पकोटिभिमीक्षो न विद्यते। कारणेन विना कार्यं नोदेति । अत्तया विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते । तस्मात्त्वमपि सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय । भक्तिनिष्टो भव । भक्तिनिष्टो भव । अत्तया सर्वसिद्धयः सिध्यन्ति । अत्तयाऽसाध्यं न किंचिद्स्ति । एवंविधं गुरूपदेशमाकण्यं सर्वं परमतत्त्वरहस्यमवबुध्य सर्वसंशयान्विधूय क्षिप्रमेव मोक्षं साधयामीति निश्चित्य ततः शिष्यः समुख्याय प्रदक्षिणनमस्कारं कृत्वा गुरुभ्यो गुरुपूजां विधाय गुर्वनुज्ञ्या क्रमेण अक्तिनिष्ठो भूत्वा अक्त्यतिशयेन वकं विज्ञानं प्राप्य तस्पादनायासेन शिष्यः क्षिप्रसेव साक्षान्नारायणो वभू-वेत्युपनिषत् ॥ ततः प्रोवाच भगवान् महाविष्णुश्चतुर्भुखमवलोक्य ब्रह्मन् परमतत्त्वरहस्यं ते सर्वं कथितम् । तत्सरणमात्रेण मोक्षो भवति । तदनुष्ठा-नेन सर्वमविदितं विदितं भवति । यत्स्वरूपज्ञानिनः सर्वमविदितं विदितं भवति । तत्सर्वं परमरहस्यं कथितम् । गुरुः क इति । गुरुः साक्षादादिना-रायणः पुरुषः । स आदिनारायणोऽहसेव । तस्मान्सामेकं शरणं व्रज । मझ-किनिष्ठो भव । मदीयोपासनां कुरु । मामेव प्राप्स्यसि । भद्यतिरिक्तं सर्व बाधितम् । मद्यतिरिक्तमवाधितं न किंचिद्मत । निरितशयानन्दाद्वितीयोऽ-हमेव । सर्वपरिपूर्णोऽहमेव । सर्वाश्रयोऽहमेव । वाचामगोचरनिराकारपरव्रह्म-

खरूपोऽहसेव । सद्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते । इत्येवं सहाविष्णोः परिम-अञ्जूषदेशं लब्ध्वा पितामहः परमानन्दं प्राप । विष्णोः कराभिमर्शनेन द्विच्यज्ञानं प्राप्य पितामहस्ततः समुत्थाय प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विवि-धोपचारैर्भहाविष्णुं प्रपूज्य प्राक्षिल्भूत्वा विनयेनोपसंगम्य भगवन् भक्तिनिष्ठां क्षे प्रयच्छ । त्वद्भिन्नं मां परिपालय कृपालय । तथैव साधुसाध्विति साधुप्र-हांसापूर्वकं महाविष्णुः घोवाच मदुपासकः सर्वोत्कृष्टः स भवति । मदुपा-सनया सर्वमङ्गलानि भवन्ति । मदुपासनया सर्व जयति । मदुपासकः सर्ववन्यो अवति । मदीयोपासकस्यासाध्यं न किंचिदस्ति । सर्वे वन्धाः श्रविनक्यन्ति । सहुत्तामिव सर्वे देवास्तं सेवन्ते । महाश्रेयांसि च सेवन्ते । अदुपालकस्तस्मान्निरतिरायाद्वैतपरमानन्दरुक्षणं परंब्रह्म भवति । यो वै सुसुक्षु-रनेन मार्गेण सम्यगाचरति स परमानन्दळक्षणं परंत्रह्म भवति । यस्तु परमतत्त्वरहस्याथर्वणमहानारायणोपनिषदमधीते स सर्वेभ्यः पापेभ्यो मुक्तो अवति । ज्ञानाज्ञानकृतेभ्यः पातकेभ्यो मुक्तो भवति । महापातकेभ्यः पूतौ अवति । रहस्यकृतप्रकाशकृतचिरकालात्यन्तकृतेभ्यस्तेभ्यः सर्वेभ्यः पापेभ्यो सक्तो भवति । स सक्छलोकाञ्जयति । स सक्लमञ्जपनिष्ठो भवति । स सकलचेदान्तरहस्याधिगतपरमार्थज्ञो भवति । स सकलभोगभुग्भवति । स सकलयोगविद्धवति । स सकलजगत्परिपालको अवति । सोऽद्वैतपरमानन्द-लक्षणं परंब्रहा भवति । इदं परमतत्त्वरहस्यं न वाच्यं गुरुभक्तिविहीनाय । न चाशुश्रूषवे वाच्यम्। न तपोविहीनाय नास्तिकाय । न दाम्भिकाय मद्गक्तिविहीनाय । मात्सर्याङ्किततनवे न वाच्यम् । न वाच्यं मदसूयापराय कृतन्नाय । इदं परमरहस्यं यो मद्रकेष्वभिधास्यति । मद्रकिनिष्ठो भूत्वा मामेव प्राप्स्यति । आवयोर्थ इमं संवादमध्येष्यति । स नरो ब्रह्मनिष्ठो भवति । श्रद्धावाननसूयुः श्रणुयात्पठति वा य इमं संवादमावयोः स पुरुषो मत्सायुज्यमेति । ततो महाविष्णुस्तिरोदधे । ततो ब्रह्मा स्वस्थानं जगामेत्यु-गनिवत् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शानितः ॥ इति त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्सु परमसायुज्यमुक्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इत्युत्तरकाण्डः समाप्तः ॥ इत्याथर्वणीयत्रिपाद्विभृतिमहानारायणोपनिपत्समाप्ता ॥ ५४ ॥

अद्वयतारकोपनिषत् ॥ ५५ ॥

द्वेतासंभवविज्ञानसंसिद्धाद्वयतारकम् । तारकं ब्रह्मेति गीतं वन्दे श्रीराभवैभवस् ॥

ॐ पूर्णतद इति शान्तिः॥

ॐ अथातोऽद्रयतारकोपनिषदं च्याख्यास्यामो यत्तये जितेन्द्रियाय शम-दमादिष बुणपूर्णाय । चित्स्वरूपो ऽहमिति सदा भावयन्त्सम्यिङ्कभीलिताक्षः किंचिदुन्सीलिताक्षो वाऽन्तर्देष्ट्या अूदहरादुपरि सचिदानन्दतेजःकूटरूपं परंत्रह्मावलोकयंस्तद्रूपो भवति । गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात्मंतार-यति तस्मात्तारकमिति । जीवेश्वरौ मायिकौ विज्ञाय सर्वविशेषं नेतीति विहाय यदवशिष्यते तदह्यं ब्रह्म तिस्छि छक्ष्यत्रयानुसंधानः कर्तव्यः । देहमध्ये ब्रह्मनाडी सुषुक्रा सूर्यरूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते । सा तु मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रगामिनी भवति । तन्मध्ये तडित्कोटिसमानका-न्या मृणालसूत्रवत्सूक्षमाङ्गी कुण्डलिनीति प्रसिद्धास्ति । तां दृष्टा मनसैव नरः सर्वपापविनाशद्वारा सुक्तो भवति । फालोध्वगललाटविशेषसण्डले निरन्तरं तेजस्तारकयोगित्रस्फुरणेन पश्यति चेत्सिद्धो भवति । तर्जन्यप्रोन्सीलितकर्ण-रन्ध्रद्वये तत्र फ़्त्कारशब्दो जायते । तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यगतनील-ज्योतिःस्थलं विलोक्यान्तर्देष्ट्या निरतिशयसुखं प्राप्तोति । एवं हृद्ये पश्यति । एवमन्तर्रुक्ष्यलक्षणं मुमुक्षुभिरुपास्यम् ॥ अथ वहिर्रुक्ष्यलक्षणं नासिकाप्रे चतुर्भिः पड्भिरष्टभिर्दशभिद्धांदशभिः कमादङ्गलान्ते नीलद्युतिश्यामत्वसदः अक्तभङ्गीस्फुरत्पीत ग्रुक्कवर्णद्वयोपेतन्योम यदि पश्यति स तु योगी भवति। चलदृष्ट्या न्योमभागवीक्षितुः पुरुषस्य दृष्ट्यग्रे ज्योतिर्मयूखा वर्तन्ते । तदृर्श-नेन योगी भवति । तप्तकाञ्चनसंकाशज्योतिर्मयूखा अपाङ्गान्ते भूमौ वा पश्यति तदृष्टिः स्थिरा भवति । द्यीषोपिर द्वादशाङ्गुलसमीक्षितुरमृतःवं भवति । यत्र कुत्र स्थितस्य शिरासे न्योमज्योतिर्दष्टं चेत्स तु योगी भवति॥ अथ मध्यलक्ष्यलक्षणं प्रातश्चित्रादिवर्णाखण्डसूर्यचक्रवद्वह्निज्वालावलीवत्तद्विहीना-न्तरिक्षवत्पञ्यति । तदाकाराकारितयाऽवतिष्ठति । तंद्भयोदर्शनेन गुणरहिता-काशं भवति । विस्फुरत्तारकाकारसंदीप्यमानागाढतमोपमं परमाकाशं भवति । कालानलसमद्योतमानं महाकाशं भवति । सर्वोत्कृष्टपरमद्यतिप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति । कोदिसूर्यप्रकाशवैभवसंकाशं सूर्याकाशं भवति । एवं वाह्याभ्यन्तरस्थन्योमपञ्चकं तारकलक्ष्यम् । तद्दर्शी विमुक्तफलस्ता-इग्व्योमसमानो भवति। तस्मात्तारक एव लक्ष्यममनस्कफलप्रदं भवति। तत्तारकं द्विविधं पूर्वार्धतारकमुत्तरार्धममनस्कं चेति । तदेष श्लोको भवति-तद्योगं च हिथा विद्धि पूर्वोत्तरविधानतः। पूर्वं तु तारक दिद्यादमनस्कं तदुत्तरियति । अक्ष्यन्तस्तारकयोश्चन्द्रसूर्यप्रतिफलनं भवति । तार-काभ्यां सूर्यचनद्रमण्डलद्शनं ब्रह्माण्डमिव पिण्डाण्डशिरोमध्यस्थाकाशे रवी-न्दुमण्डलद्वितयमस्तीति निश्चित्य तारकाभ्यां तद्दर्शनमात्राण्युभयैक्यद्रख्या मनोशुक्तं ध्यायेत् । तद्योगाभावे इन्द्रियप्रवृत्तेरनवकाशात् । तस्मादन्तर्दथ्या तारक एवानुसंधेयः । तत्तारकं द्विविधं मूर्तितारकममूर्तितारकं चेति । यदिनिद्यान्तं तन्मूर्तिमत् । यद्भ्युगातीतं तदमूर्तिमत् । सर्वत्रान्तः-पदार्थविवेचने मनोयुक्ताभ्यास इत्यते तारकाभ्यां सदूर्धस्यसत्त्वदर्शनान्म-नोयुक्तेनान्तरीक्षणेन सचिदानन्द्रस्यरूपं ब्रह्मैव । तस्माच्छुक्रतेजोमयं ब्रह्मेति सिद्धम् । तद्रक्ष मनःसहकारिचक्षुयान्तर्देष्ट्या वेद्यं भवति । एवममूर्तितार-कमपि मनोयुक्तेन चक्षुपेव दहरादिकं वेद्यं भवति रूपम्रहणप्रयोजनस्य मनश्रक्षुरधीनत्वाद्वाद्यवदान्तरेऽप्यात्ममनश्रक्षुःसंयोगेनैव रूपप्रहणकायाद-यात् । तस्मान्मनोयुक्तान्तर्देष्टिस्तारकप्रकाशा भवति । भ्रयुगमध्यविले दृष्टिं तद्वारोध्वंस्थिततेज आविर्भूतं तारकयोगो भवति । तेन सह मनोयुक्तं तारकं सुसंयोज्य प्रयतेन अ्युगमं सावधानतया किंचिदू ध्वं सुरक्षेपयेत् । इति पूर्वभागी तारकयोगः। उत्तरं त्वमूर्तिमदमनस्कमित्युच्यते। तालुमूलो-ध्वभागे महान् ज्योतिर्भयूखो वर्तते । तद्योगिभिध्येयम् । तस्मादणिमादि-सिद्धिभवति । अन्तर्वाद्यलक्ष्ये दृष्टी निमेपोन्मेषवर्जितायां सत्यां शांभवी सुदा भवति । तन्सुदारूढज्ञानिनिवासाद्ग्रीमः पवित्रा भवति । तहृद्वां सर्वे लोकाः पवित्रा भवन्ति । तादशपरमयोगिपूजा यस्य लभ्यते सोऽपि युक्तो भवति । अन्तर्रुक्ष्यजलज्योतिःस्वरूपं भवति । परमगुपदेशेन सहस्रारे जलज्योतिर्वा बुद्धिगुहानिहितज्योतिर्वा षोडशान्तस्थतुरीयचैतन्यं वान्तर्रक्ष्यं भवति । तद्दानं सदाचार्यमूलम् । आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः । योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः ग्रुचिः ॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः । एवं छक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिषीयते ॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्भुशब्दस्तिशोधकः । अन्धकारिनरोधित्वाद्धरित्यभिधीयते ॥
गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गितः ॥ गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव
परायणम् ॥ गुरुरेव परा काष्ठा गुरुरेव परं धनम् । यस्मात्तदुपदेष्टासी
तस्माद्धरुतरो गुरुरेति । यः सङ्गदुज्ञारयति तस्य संसारमोचनं भवति ।
सर्वजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । सर्वान्कामानवामोति । सर्वपुरुष्टिसिद्धर्भवति । य एवं वेदेत्युपनित् ॥ १ ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

इत्यद्वयतारकोपनिषत्समाञ्चा ॥ ५५ ॥

रामरहस्योपनिषत् ॥ ५६ ॥
कैवल्यश्रीस्वरूपेण राजमानं महोऽन्ययम् ।
प्रतियोगिविनिर्भुक्तं श्रीरामपदमाश्रये ॥
ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

ॐ रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च सुद्गलस् । शाण्डित्यं पैक्वलं भिश्चं महच्छारीरकं शिलास् ॥ १ ॥ सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्वथा । प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हन्सन्तमथात्रुवन् ॥ २ ॥ वायुपुत्र महावाहो किं तत्त्वं ब्रह्मवादिनास् । पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वि ॥ ३ ॥ चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु विद्यास्वाध्यात्मिकेऽपि च । सर्वेषु विद्यादानेषु विद्यस्येशशक्तिषु । एतेषु मध्ये किं तत्त्वं कथय त्वं महावल ॥ ४ ॥ हन्सान्होवाच ॥ भो योगीनदाश्चेव ऋषयो विष्णुभक्तास्त्रथेव च ॥ श्रणुध्वं मामकीं वाचं भवः बन्धविनाशिनीस् ॥ ५ ॥ एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्म तारकस् । राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥ ६ ॥ वायुपुत्रेणोक्तास्ते योगीन्द्रा ऋषयो विष्णुभक्ता हन्सन्तं पत्रच्छुः रामस्याङ्गानि नो ब्रह्मिति । हन्सान्होवाच । वायुपुत्रं विद्येशं वाणीं दुर्गा क्षेत्रपालकं सूर्यं चन्द्रं नारायणं नारसिंहं वायुदेवं वाराहं तत्सर्वान्त्समान्त्रान्सीतां लक्ष्मणं शत्रुष्टं भरतं विभीवणं सुप्रीवमक्कदं जाम्बवन्तं प्रणवन्मितां लक्ष्मणं शत्रुष्टं भरतं विभीवणं सुप्रीवमक्कदं जाम्बवन्तं प्रणवन्मतेतानि रामस्याङ्गानि जानीथाः । तान्यङ्गानि विना रामो विप्नकरो भवति ।

व

पुनर्वायुपुत्रेगोक्तास्ते हनूमन्तं पप्रच्छुः। आञ्जनेय महावल विप्राणां गृह-स्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्थादिति । स होवाच श्रीराम एवोवाचेति । येपामेव षडक्षराधिकारो वर्तते तेषां प्रणवाधिकारः स्यान्नान्येपाम् । केवलमकारोकारमकारार्धमात्रासहितं प्रणवमूहा यो राममझं जपति तस्य शुभकरोऽहं स्याम् । तस्य प्रणवस्थाकारस्योकारस्य मकरासार्धमात्रायाश्च अस्विरछन्दो देवता तत्तद्वर्णावर्णावस्थानं स्वरवेदाग्निगुणानुचार्यान्वहं प्रणव-मन्नाह्निगुणं जहवा पश्चाद्राममन्नं यो जपेत् स रामो भवतीति रामेणोक्तास्त-साद्रामाङ्गं प्रणवः कथित इति ॥ विभीषण उवाच ॥ सिंहासने समासीनं रामं पौलस्त्यसूद्नम् । प्रणम्य दण्डवद्भुमौ पौलस्त्यो वान्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ रघुनाथ महावाहो केवलं कथितं त्वया। अङ्गानां सुलमं चैव कथनीयं च सौ-लभम् ॥ ८ ॥ श्रीराम उवाच । अथ पञ्च दण्डकानि पितृन्नो मातृन्नो ब्रह्मन्नो गुरुहननः कोटियतिहोऽनेककृतपापो यो मम षण्णवतिकोटिनामानि जपति ल तेभ्यः पापेभ्यः प्रमुच्यते । स्वयमेव सचिदानन्दस्वरूपो भवेन किम्। पुनरुवाच विभीषणः। तत्राप्यशक्तोऽयं किं करोति । स होवाचेमम्। कैकसेय पुरश्चरणविधावशक्तो यो मम महोपनिषदं मम गीतां मन्नामसहस्रं मद्विश्वरूपं ममाष्टोत्तरशतं रामशताभिधानं नारदोक्तस्तवराजं हनूमत्प्रोक्तं मञ्जराजात्मकस्तवं सीतास्तवं च रामषडक्षरीत्यादिश्वमेत्रेयों मां नित्यं स्तौति तत्सदशो भवेन्न किं भवेन्न किम् ॥ ९॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सनकाद्या मुनयो हन् मन्तं पप्रच्छुः। आञ्जनेय महावळ तारकब्रह्मणो रामचन्द्रस्य मन्नप्रामं नो ब्र्हीति। हन् मान्होवाच। विद्वस्थं शयनं विष्णो-रर्धचन्द्रविभूषितम्। एकाक्षरो मनुः प्रोक्तो मन्नराजः सुरद्धमः॥ १॥ ब्रह्मा सुनिः स्याद्गायत्रं छन्दो रामोऽस्य देवता। दीर्घोर्धन्दुयुजाङ्गानि कुर्याद्वद्वया-रमनो मनोः॥ २॥ बीजशक्त्यादित्रीजेन इष्टार्थे विनियोजयेत्। सरयूतीर-मन्दारवेदिकापञ्कजासने॥ ३॥ इयामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्। वामोरुन्यस्ततद्वस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ ४॥ अवेक्षमाणमात्मानमात्म-न्यमिततेजसम्। ग्रुद्धस्पिटकसंकाशं केवलं मोक्षकाङ्गया॥ ५॥ विन्तय-न्यरमात्मानं भानुलक्षं जपेन्मनुम्। विद्वारायणो नाड्यो जाठरः केवलोऽपि च ॥ ६॥ ब्यक्षरो मन्नराजोऽयं सर्वाभीष्टप्रदस्ततः। एकाक्षरोक्तमृष्माद्

स्यादाद्येन षडङ्गकम् ॥ ७ ॥ तारमायारमानङ्गवानस्ववीजेश्च षड्विषः। क्यक्षरो मन्नराजः स्थात्सर्वाभीष्टफलप्रदः॥ ८॥ ब्यक्षरश्चन्द्रभद्रान्तो द्विवि-घश्चतुरक्षरः । ऋष्यादि पूर्ववज्ज्ञेयमेतयोश्च विचक्षणैः ॥ ९ ॥ सप्रतिष्ठौ रमो वायो हत्पञ्चाणी मनुर्मतः। विश्वामित्रऋषिः प्रोक्तः पङ्किरग्रन्दोऽस्य देवता ॥ १० ॥ रामभद्रो बीजशक्तिः प्रथमाणीमिति कमात् । श्रूमध्ये हृदि नाभ्यूवीः पादयोविन्यसेन्मनुम् ॥ ११ ॥ षडक्षं पूर्वविद्वद्यान्मम्राणिमीनुनाम्न-कम् । मध्ये वनं कल्पतरोर्मूले पुष्पलतासने ॥ १२ ॥ लक्ष्मणेन प्रगुणितमक्ष्णः कोणेन सायकम् । अवेक्षमाणं जानक्या कृतव्यजनमीश्वरम् ॥ १३ ॥ जटाभारलसच्छीर्षं स्यामं सुनिगणावृतम् । लक्ष्मणेन धतच्छत्रमथवा पुष्प-कोपरि ॥ १४ ॥ दशास्यमथनं शान्तं ससुग्रीवविभीषणम् । एवं लब्ध्वा जयार्थी तु वर्णलक्षं जपेन्मनुस् ॥ १५ ॥ स्वकामशक्तिवाग्लक्ष्मीस्तवाद्याः पञ्चवर्णकाः । षडश्नरः पड्विधः स्याचतुर्वर्गफलपदः ॥ १६ ॥ पञ्चारान्मातकाः मञ्जवर्णप्रत्येकपूर्वकम् । लक्ष्मीवाज्जन्मथादिश्च तारादिः स्यादनेकधा ॥ १७॥ रश्रीमायामन्मथैकेकं बीजाद्यन्तर्गतो मनुः। चतुर्वर्णः स एव स्यात्पड्वर्णो वाञ्चितप्रदः ॥ १८ ॥ स्वाहान्तो हुंफडन्तो वा नत्यन्तो वा भवेदयम्। अष्टाविंशत्युत्तरशतभेदः षड्वर्ण ईरितः ॥ १९ ॥ वद्या संमोहनः शक्ति-र्दक्षिणामूर्तिरेव च। अगस्त्यश्च शिवः प्रोक्ता सुनयोऽनुक्रमादिमे ॥ २०॥ छन्दो गायत्रसंज्ञं च श्रीरामश्चेव देवता । अथवा कामबीजादेविश्वामित्रो मुनिर्मनोः ॥ २१ ॥ छन्दो देव्यादिगायत्री रामभद्रोऽस्य देवता । बीज-क्षाक्ती यथापूर्व षञ्चर्णान्विन्यसेत्क्रमात् ॥ २२ ॥ ब्रह्मरन्ध्रे अुवोर्मध्ये हजा-भ्यूरुषु पादयोः । बीजैः षड्दीर्घयुक्तैर्वा मन्नार्णेर्वा षडङ्गकम्ना २३॥ कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितं सुद्रां ज्ञानम्यीं दधा-नमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि । सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युक्तिमां राघवं पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोच्चवलाङ्गं भजे ॥ २४॥ श्रीरामश्चनद्वभद्रान्तो हेन्तो नितयुतो द्विधा। सप्ताक्षरो मन्नराजः सर्वकाम्फुलप्रदः ॥ २५॥ तारादिसहितः सोऽपि द्विविघोऽष्टाक्षरो मतः। तारं रामश्चतुर्थेतः कोडास्रं विद्वतिल्पगा ॥ २६ ॥ अष्टार्णीऽयं परो मन्नो ऋष्योदिः स्थात्वडर्णवत् । पुनरष्टाक्षरस्माध राम एव ऋषिः स्मृतः ॥ २७ ॥ गायत्रं छन्द इत्यस्य

u

देवता राम एव च। तारं श्रीबीजयुग्मं च बीजशत्तयादयो मताः॥ २८॥ वडकं च ततः कुर्थान्मज्ञाणैरेव बुद्धिमान् । तारं श्रीबीजयुग्मं च रामाय नम उचरेत् ॥ २९ ॥ ग्लोमों बीजं वदेन्मायां हृदामाय पुनश्च ताम् । शिवो-माराममन्त्रोऽयं वस्त्रर्णस्तु वसुप्रदः ॥ ३० ॥ ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तो गायत्रं छन्द उच्यते । शिवोमारामचन्द्रोऽत्र देवता परिकीर्तिता ॥ ३१ ॥ दीर्घया माययाङ्गानि तारपञ्चाणियुक्तया । रामं त्रिनेत्रं सोमार्धधारिणं श्रुलिनं परम् । भस्मोद्धितसर्वाङ्गं कपर्दिनसुपास्महे ॥ ३२ ॥ रामाभिरामां सौन्दर्यसीमा सोमावतंसिकाम् । पाञाङ्कराधनुर्वाणधरां ध्यायेश्विलोचनाम् ॥ ३३ ॥ ध्याय-क्षेत्रं वर्णलक्षं जपतर्पणतत्परः । बिल्वपन्नैः फलैः पुष्पैस्तिलाज्यैः पङ्कनै-हुनेत् ॥ ३४ ॥ स्वयमायान्ति निधयः सिद्धयश्च सुरेप्सिताः । पुनरष्टाक्षर-स्याथ ब्रह्मगायत्रराघवाः ॥ ३५ ॥ ऋष्यादयस्तु विज्ञेयाः श्रीवीजं सम इाक्तिकम् । तत्त्रीत्वे विनियोगश्च मन्नाणैरङ्गकल्पना ॥ ३६॥ केयूराङ्गद-कङ्कणमिणिगतैर्विद्योतमानं सदा रामं पार्वणचन्द्रकोटिसदशच्छन्नेण वै राजितम् । हेमसम्भसहस्रपोडशयुते मध्ये महामण्डपे देवेशं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे स्यामलम् ॥ ३७ ॥ कि मञ्जैर्वहुभिर्विनश्वरफलैरायाससाध्येर्नृथा किंचि-छोभिवतानमात्रविफलैः संसारदुः खावहैः । एकः सन्निप सर्वमञ्रफलदो लोशादिदोषोडिझतः श्रीरासः शरणं ममेति सततं मन्नोऽयमष्टाक्षरः ॥ ३८॥ एवमष्टाक्षरः सम्यक् सप्तथा परिकीर्तितः। रामसप्ताक्षरो मन्न आद्यन्ते तारसंयुतः ॥ ३९ ॥ नवाणौ मन्नराजः स्याच्छेषं षड्वर्णवन्यसेत् । जानकी-वल्लभं हेन्तं वह्नेजीयाहुमादिकस् ॥ ४०॥ दशाक्षरोऽयं मन्नः स्यात्सर्वाभीष्ट-फलपदः । दशाक्षरस्य मञ्जस्य असिष्टोऽस्य ऋषिर्विराद ॥ ४१ ॥ छन्दोऽस्य देवता रामः सीतापाणिपरिश्रहः । आद्यो बीजं द्विठः शक्तिः कामेनाङ्गित्रया मता ॥ ४२ ॥ शिरोललाटभ्रमध्ये तालुकर्णेषु ह्रचपि । नाभ्यूरुजानुपादेषु प्राणीन्विन्यसेन्मनीः ॥ ४३ ॥ अयोध्यानगरे रत्नचित्रं सौवर्णमण्डपं। मन्द्रारपुष्पैरावद्भविताने तोरणाञ्चिते ॥ ४४ ॥ सिंहासने समासीनं पुष्पकोपिर राघवम् । रक्षोभिर्हिरिभिर्देवैदिंब्ययानगतैः शुभैः ॥ ४५ ॥ संस्तूयमानं श्वनिभिः प्रदेश परिसेवितम् । सीतालंकृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपसेवितम् ॥४६॥ श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् । ध्यायन्नेवं जपेन्मन्नं वर्णलक्षमन-

न्यघीः ॥ ४७ ॥ रामं छेन्तं धनुष्पाणयेऽन्तः स्याद्विसुन्दरी । दशाक्षरोऽयं मन्नः स्यान्मुनिर्वह्मा विराद स्मृतः ॥ ४८ ॥ छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामो राक्षसमर्दनः । शेषं तु पूर्ववत्कुर्याचापवाणधरं खरेत् ॥ ४९ ॥ तारमायार-मानङ्गवाक्स्वबीजेश्च षड्विधः । दशाणीं मन्नराजः स्यादुद्रवर्णात्मको मनुः ॥ ५० ॥ होषं षडणीवज्ज्ञेयं न्यासध्यानादिकं बुधैः । द्वादशाक्षरमञ्जल श्रीराम ऋषिरुच्यते ॥ ५३ ॥ जगती छन्द इत्युक्तं श्रीरामो देवता मतः। प्रणवो बीजमित्युक्तः क्षीं शक्तिहीं च कीलकम् ॥ ५२ ॥ मन्नेणाङ्गानि विन्यस्य शिष्टं पूर्ववदाचरेत् । तारं मायां समुचार्यं भरतायज इसिप ॥ ५३॥ रामं क्रीं विद्वजायान्तं मन्नोऽयं द्वादशाक्षरः । ॐ हृद्धगवते रामचन्द्रभद्दी च हेयुतौ ॥ ५४ ॥ अर्काणी द्विविधोऽप्यस्य ऋषिध्यानादिपूर्ववत् । छन्दस्तु जगती चैव मन्नाणेरङ्गकरुपना ॥ ५५ ॥ श्रीरामेति पदं चोक्त्वा जयराम ततः परम् । जयद्वयं वदेःप्राज्ञो रामेति मनुराजकः ॥ ५६ ॥ त्रयोदशार्ण ऋष्यादि पूर्ववत्सर्वकामदः । पदद्वयद्विरावृत्तेरक्नं ध्यानं दशार्णवत् ॥ ५०॥ तारादिसहितः सोऽपि स चतुर्दशवर्णकः। त्रयोदशार्णसुचार्य पश्चादामेति योजयेत् ॥ ५८ ॥ स वै पञ्चद्शार्णस्तु जपतां कल्पभूरुहः । नमश्च सीताप-तये रामायेति हनद्वयम् ॥ ५९ ॥ ततस्तु कवचास्त्रान्तः षोडशाक्षर ईरितः। तस्यागस्त्यऋषिञ्छन्दो बृहती देवता च सः ॥ ६० ॥ रां बीजं शक्तिरस्रं च कीलकं हुमितीरितम् । द्विपञ्चत्रिचतुर्वणैः सर्वेरङ्गं न्यसेन्क्रमात् ॥ ६१॥ वारादिसहितः सोऽपि मन्त्रः सप्तदशाक्षरः । तारं नमो भगवते रामं डेन्तं महा ततः ॥ ६२ ॥ पुरुषाय पदं पश्चाद्भृदन्तोऽष्टादशाक्षरः । विश्वामित्रो सुनि-इछन्दो गायत्रं देवता च सः ॥ ६३ ॥ कामादिसहितः सोऽपि मम्र एकोन-विंशकः । तारं नमो भगवते रामायेति पदं वदेत् ॥ ६४ ॥ सर्वशब्दं समुचार्य सौभाग्यं देहि मे वदेत्। विद्वजायां तथोचार्य मन्नो विंशार्णको मतः॥ ६५॥ तारं नमो भगवते रामाय सकलं वदेत्। आपन्निवारणायेति विह्वजायां ततो वदेत् ॥ ६६ ॥ एकविंशार्णको मन्नः सर्वाभीष्टफलप्रदः । तारं रमा स्वबीजं च ततो दाशरथाय च ॥ ६७ ॥ ततः सीताबल्लभाय सर्वाभीष्टपदं वदेत्। ततो दाय हृद्न्तोऽयं मन्नो द्वाविंशदक्षरः ॥ ६८ ॥ तारं नमो भगवते वीर-रामाय संवदेत्। कल शत्रून् हन द्वनद्वं विह्नजायां तती वदेत्॥ ६९॥

H

च

II

1

त-

र्ध

11

तो

जं

1

₹-

11

त्रयोविंशाक्षरो मजः सर्वशत्रुनिवर्हणः। विश्वामित्रो मुनिः प्रोक्तो गायत्री छन्द उच्यते ॥ ७० ॥ देवता वीररामोऽसौ वीजाद्याः पूर्ववन्मताः । मूल-मञ्जविभागेन न्यासान्कृत्वा विचक्षणः ॥ ७१ ॥ शरं धनुषि संधाय तिष्ठन्तं रावणोन्सुखस् । वज्रपाणि रथारूढं रामं ध्यात्वा जपेन्मनुम् ॥ ७२ ॥ तारं नमो भगवते श्रीरामाय पदं वदेत् । तारकब्रह्मणे चोक्त्वा मां तारय पदं वदेत् ॥ ७३ ॥ नगस्तारात्मको मन्नश्चतुर्विंशतिवर्णकः । वीजादिकं यथापूर्वं सर्वं कुर्यात्यडणीवत् ॥ ७४॥ कामस्तारो नितश्चैव ततो भगवतेपद्म् । रामचन्द्राय चोचार्य सकलेति पदं वदेत् ॥ ७५ ॥ जनवस्यकरायेति स्वाहा कामात्मको मनुः । सर्ववरयकरो मन्नः पञ्जविंशतिवर्णकः ॥ ७६ ॥ आदौ तारेण संयुक्तो मन्नः पिंद्वंशदक्षरः । अन्तेऽपि तारसंयुक्तः सप्तविंशतिवर्णकः ॥ ७७ ॥ तारं नमो भगवते रक्षोघ्नविशदाय च । सर्वविद्यान्त्समुचार्य निवारय पदद्वयम् ॥ ७८ ॥ स्वाहान्तो मन्त्रराजोऽयमष्टाविंशतिवर्णकः । अन्ते तारेण संयुक्त एकोनत्रिंशदक्षरः ॥ ७९ ॥ आदौ स्ववीजसंयुक्तस्त्रंशद्वर्णात्मको मनुः । अन्तेऽपि तेन संयुक्त एकत्रिशात्मकः स्मृतः ॥ ८० ॥ रामभद्र महे-ष्वास रघुवीर नृपोत्तम । भो दशास्थान्तकास्माकं श्रियं दापय देहि मे ॥८१॥ आनुष्टुभ ऋषी रामश्छन्दोऽनुष्टुप्स देवता । रां बीजमस्य यं शक्तिरिष्टार्थे विनियोज्येत् ॥ ८२ ॥ पादं हृदि च विन्यस्य पादं शिरिंस विन्यसेत्। शिखायां पञ्चभिन्यस्य त्रिवणैंः कवचं न्यसेत् ॥ ८३ ॥ नैत्रयोः पञ्चवणैश्च दापयेत्यस्त्रमुच्यते । चापबाणधरं इयामं ससुग्रीवविभीषणम् ॥ ८४ ॥ हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् । रामभद्गं हृदि ध्यात्वा दशलक्षं जपेन्म-नुस् ॥ ८५ ॥ वदेदाशरथायेति विद्यहेति पदं ततः । सीतापदं समुद्रुत्य वल्लभाय ततो वदेत् ॥ ८६ ॥ धीमहीति वदेत्तन्नो रामश्रापि प्रचोदयात् । तारादिरेषा गायत्री सुक्तिमेव प्रयच्छति ॥ ८७ ॥ मायादिरिप वैदुष्ट्यं रामा-दिश्च श्रियः पद्म् । मद्नेनापि संयुक्तः स मोहयित मेदिनीम् ॥ ८८ ॥ पञ्च त्रीणि घडणेंश्च त्रीणि चत्वारि वर्णकैः । चत्वारि च चतुर्घणेंरङ्ग-न्यासं प्रकल्पयेत् ॥ ८९ ॥ बीजध्यानादिकं सर्वं कुर्यात्षड्वर्णवत्कमात् । तारं नमो भगवते चतुर्थ्या रघुनन्दनम् ॥ ९० ॥ रक्षोन्नविशदं तद्वन्मधुरेति वदेत्ततः । प्रसञ्जवदनं केन्तं वदेदमिततेजसे ॥ ९१ ॥ बलरामी चतुर्ध्यन्तौ विन्णुं हेन्तं नतिस्ततः । प्रोक्तो मालामनुः सप्तचत्वारिंशद्गिरक्षरैः॥ ९२॥

क्रिक्छन्दो देवतादि ब्रह्मानुष्टुभराघवाः । सप्तर्तुसप्तद्भाषद् रुद्रसंख्यैः पड्रहः कम् ॥९३ ॥ ध्यानं दशाक्षरं प्रोक्तं लक्षमेकं जपेन्यनुम् । श्रियं सीतां चतु-ध्येन्तां स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः ॥९४॥ जनकोऽस्य ऋषिइछन्दो गायत्री देवता मनोः। सीता भगवती प्रोक्ता श्रीं बीजं नितशक्तिकम् ॥ ९५ ॥ कीलं सीता चतुर्थ्यन्तमिष्टार्थे विनियोजयेत् । दीर्धस्वरयुताचेन वडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥९६॥ खर्णाभामम्बुजकरां रामालोकनतत्पराम् । ध्यायेत्वदकोणमध्यस्थरामाङ्कोपिर-शोभिताम् ॥ ९७ ॥ लकारं तु समुद्धृत्य लक्ष्मणाय नमोन्तकः । अगस्त-ऋषिरसाथ गायत्रं छन्द उच्यते ॥ ९८ ॥ लक्ष्मणो देवता प्रोक्तो लं बीजं क्राक्तिरस्य हि । नमस्तु विनियोगो हि पुरुषार्थचतुष्टये ॥ ९९ ॥ दीर्घभाजा स्त्रबीजेन घडङ्गानि प्रकल्पयेत् । द्विभुजं स्त्रर्णचिरतन्तुं पद्मनिभेक्षणम्॥१००॥ धनुवाणधरं देवं रामाराधनतत्परस् । भकारं तु ससुद्धत्य भरताय नमोन्तकः ॥ १०१ ॥ अगस्यऋषिरस्याथ होषं पूर्ववदाचरेत् । अरतं इयामछं शान्तं रामसेवापरायणम् ॥ १०२ ॥ धनुर्वाणधरं वीरं कैकेरीतनयं भने । शं बीजं तु समुद्धत्य शत्रुझाय नमोन्तकः । ऋष्याद्यो यथापूर्व विनियोगोऽरिनिप्रहे ॥ १०३ ॥ द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवापरायणस् । लवणासुरहन्तारं सुमिन्ना-तनयं अजे ॥ १०४ ॥ हं हनूमांश्रतुर्ध्यन्तं हदन्तो मन्नराजकः । रामचन्द्र ऋषिः घोक्तो योजयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥ १०५ ॥ द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवा-परायणम् । मौञ्जीकौपीनसहितं मां ध्यायेदामसेवकः वृति ॥ १०६॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सनकाचा सुनयो हन्मन्तं पप्रच्छुः । आञ्जनेय महावल पूर्वोक्तमन्नाणां पूजापीठमनुब्रहीति । हन्मान् होवाच । आदौ बङ्गोणम् । तन्मध्ये रामवीजं सश्रीकम् । तद्धोभागे द्वितीयान्तं साध्यम् । बीजोध्वभागे बष्टयन्तं साधकम् । पार्थे दृष्टिबीजे तत्परितो जीवप्राणशक्तिवश्यबीजानि । तत्मवं सन्युक्तिन्युखाभ्यां प्रणवाभ्यां वेष्टनम् । अभीशासुरवायच्यपुरःपृष्ठेषु बङ्गोणेषु दृष्टिभाञ्जि । हृद्यादिमन्नाः क्रमेण । रां रीं कं रैं रों रः इति दीर्घभाञ्जि तद्युक्तहृद्यायस्नान्तम् । बङ्गोणपार्थे रमामायावीजे । कोणाग्रे वाराहं द्विति । तृद्धीजान्तराले कामबीजम् । परितो वाग्भवम् । ततो वृक्तत्रयं साष्टपन्नम् । तृद्धीजान्तराले कामबीजम् । परितो वाग्भवम् । ततो वृक्तत्रयं साष्टपन्नम् । तेषु दलेषु सरानष्टवर्णान्मतिदलं मालामनुवर्णबङ्गम् । अन्ते पञ्चाक्षरम् । तद्दिककपोलेक्वप्रवर्णान् । पुनरष्टवरूपमम् । तेषु दलेषु नारायणाष्टाक्षरी

मझः। तद्रक्रपोलेषु श्रीबीजम्। ततो वृत्तम्। ततो द्वादशद्रम्। तेषु द्लेषु बासुदेवद्वादशाक्षरो सम्रः । तद्दलकपोलेष्वादिक्षान्तान् (आदित्यान्)। ततो बुत्तम् । ततः योडशद्लम् । तेषु दलेषु हुं फद नितसहितरामद्वादशाक्षरम् । तहलकपोलेषु मायाबीजम् । सर्वत्र प्रतिकपोलं द्विरावृत्त्या हं सं भ्रं वं भ्रमं श्चं जम् । ततो दृत्तम् । ततो द्वात्रिंशहलपद्मम् । तेषु दलेषु नृतिहमधरा-जानुष्टुभसद्भः । तद्दलकपोलेष्वष्टवस्वेकादशरुद्रद्वादशादित्यमद्भाः प्रणवा-दिनसोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण । तद्वहिर्वपङ्कारं परितः । ततो रेखात्रययुक्तं अरुपुरस् । हादशदिक्षु राझ्यादिभूषितम् । अष्टनागैरधिष्ठितम् । चतुर्दिक्षु नारसिंहबीजम् । विदिश्च वाराहवीजम् । एतत्सर्वात्मकं यत्रं सर्वकामप्रदं मोक्षप्रदं च । एकाक्षरादिनवाक्षरान्तानामेतचन्नं भवति । तद्दशावरणाःसकं अवति । बङ्गोणमध्ये साङ्गं राघवं यजेत् । बङ्गोणेब्वङ्गेः प्रथमा चृत्तिः । अष्टद्लस्ले आत्मायावरणम् । तद्मे वासुदेवायावरणम् । द्वितीयाष्ट-दलम्ले घृष्ट्याद्यावरणम् । तद्ये हनूमदाद्यावरणम् । द्वादशद्लेषु वसि-ष्ठाधावरणस् । बोडशद्लेषु नीलाद्यावरणस् । द्वात्रिशहलेषु ध्रुवाद्यावरणस् । भूपुरान्तरिन्द्राद्यावरणम् । तद्वहिर्वञ्राद्यावरणम् । एवमभ्यर्च मनुं जपेत् ॥ अथ द्वाक्षरादिद्वात्रिंवादक्षरान्तानां मन्नाणां पूजापीठमुच्यते । आदौ षङ्गोणस् । तन्मध्ये स्वत्रीजम् । तन्मध्ये साध्यनामानि । एवं कामबीज-वेष्टनम् । ततः शिष्टेन नवार्णेन वेष्टनम् । षद्गीर्णेषु पढङ्गान्यप्रीशासुरवाय-व्यपूर्वपृष्ठेषु । तत्कपोलेषु श्रीमाये । कोणाग्रे क्रोधम् । ततो वृत्तम् । ततोऽष्टद्रुम् । तेषु द्रेषु पदसंख्यया मालामनुवर्णान् । तद्रुकपोलेषु पोडश खराः । ततो वृत्तम् । तत्परित आदिशान्तम् । तद्वहिर्भूपुरं साष्ट्रज्ञायम् । दिश्च विदिश्च नारसिंहवाराहे । एतन्महायम्म । आधारशक्त्यादिवैष्णवपीठम् । अङ्गैः प्रथमा वृत्तिः । मध्ये रामम् । वामभागे सीताम् । तत्पुरतः ज्ञाङ्गं शरं च । अष्टदलमूले हनुमदादिद्वितीयावरणम् । पृष्टयादितृतीयावरणम् । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी । वज्रादिभिः पञ्चमी । एतयन्त्रा-राधनपूर्वकं दशाक्षरादिमझं जपेत् ॥ १ ॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सनकाद्या सुनयो हनूमन्तं पप्रच्छुः। श्रीरासमञ्जाणां पुरश्चरणविधिमनु-ब्रहीति । हनूमान्होवाच । नित्यं त्रिषवणस्त्रायी पयोमूलफलादिभुक् । अथवा पायसाहारो हविष्यान्नाद एव वा ॥ १ ॥ षड्सेश्च परित्यक्तः स्वाश्रमोक्तः विधि चरन् । वनितादिषु वाक्सममनोभिनिःस्प्रहः शुचिः ॥ २ ॥ भूमिशायी ब्रह्मचारी निष्कामो गुरुभक्तिमान् । स्नानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः ॥ ३ ॥ गुरूपदिष्टमार्गेण ध्यायन्नाममनन्यधीः । सूयन्दुगुरुदीपादिगोवाह्मणसमीपतः ॥ ४ ॥ श्रीरामसिक्षधौ मौनी मन्नार्थमनुचिन्तयन् । ज्याघचर्मासने स्थिता स्वस्तिकाद्यासनकमात् ॥ ५॥ तुलसीपारिजातश्रीवृक्षसूलादिकस्थले । पद्मा-क्षतुरुसीकाष्टरुदाक्षकृतमालया ॥ ६॥ सातृकामालया सन्नी मनसैव मनुं जपेत । अभ्यर्य वैष्णवे पीठे जपेद्शरलक्षकम् ॥ ७॥ तर्पयेत्तद्शांशेन पायसात्तद्दशांशतः । जुहुयाद्गोष्टतेनैव भोजयेत्तद्दशांशतः ॥ ८॥ ततः पुष्पाञ्जिलिं मूलमञ्जेण विधिवचरेत् । ततः सिद्धमनुर्भूत्वा जीवन्मुक्तो भवे-न्मुनिः ॥ ९ ॥ अणिमादिर्भजत्येनं यूनं यरवधूरिव । ऐहिकेषु च कार्येषु महापत्सु च सर्वदा ॥ १० ॥ नैव योज्यो राममन्नः केवलं मोक्षसाधकः। ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्परेद्रामसेवकम् ॥ ११ ॥ यो रामं संस्परेक्षित्यं भत्तया मनुपरायणः । तस्याहमिष्टसंसिद्धे दीक्षितोऽस्मि मुनीश्वराः ॥ १२ ॥ वाञ्छितार्थं प्रदास्यामि भक्तानां राघवस्य तु । सर्वथा जागरूकोऽस्मि राम-कार्यधरंधरः ॥ १३ ॥

इति रामरहस्योपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सनकाद्या मुनयो हन् मन्तं पप्रच्छुः । श्रीराममञ्जार्थमनुबृहीति । हन् मानहोवाच । सर्वेषु राममञ्जेषु मञ्जराजः षडक्षरः । एकधाथ द्विधा त्रेषा
चतुर्धा पञ्चधा तथा ॥ १ ॥ षदसप्तधाऽष्टधा चैवः बहुधायं व्यवस्थितः ।
षडक्षरस्य माहात्म्यं शिवो जानाति तत्त्वतः ॥ २ ॥ श्रीराममञ्जराजस्य
सम्यगर्थोऽयमुच्यते । नारायणाष्टाक्षरे च शिवपञ्चाक्षरे तथा । सार्थकार्णद्वयं
रामो रमन्ते यत्र योगिनः । रकारो बह्विवचनः प्रकाशः पर्यवस्यति ॥ ३ ॥
सिञ्चदानन्दरूपोऽस्य परमात्मार्थ उच्यते । व्यञ्जनं निष्करुं ब्रह्म प्राणो
मायेति च स्परः ॥ ४ ॥ व्यञ्जनैः स्वरसंयोगं विद्धि तत्प्राणयोजनम् । रेको
ज्योतिर्मये तस्मात्कृतमाकारयोजनम् ॥ ५ ॥ मकारोऽभ्युद्यार्थत्वात्स मायेति
च कीर्त्यते । सोऽयं बीजं स्वकं यसात्समायं ब्रह्म चोच्यते ॥ ६ ॥ सिबन्दुः

सोऽपि पुरुषः शिवसूर्येन्दुरूपवान् । ज्योतिस्तस्य शिखा रूपं नादः सप्रकृतिर्मतः ॥ ७ ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ समायाद्रहाणः स्मृतौ । बिन्दुनादात्मकं बीजं विद्विसोमकलात्मकम् ॥ ८॥ अग्नीपोमात्मकं रूपं रामबीजे प्रतिष्ठितम् । यथैव वटवीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ॥ ९ ॥ तथैव रामवीजस्थं जगदेतचराचरम् । बीजोक्तयुभयार्थत्वं रामनामनि दृश्यते ॥ १०॥ बीजं मायाविनिर्भुक्तं परंबहोति कीर्खते। मुक्तिदं साधकानां च सकारो सुक्तिदो सतः ॥ ११ ॥ मारूपत्वादतो रामो सुक्तिसुक्तिफलपदः। आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्सकारस्त्वंपदार्थवान् ॥ १२ ॥ तयोः संयोजनमसी-त्यर्थे तत्त्वविदो विदुः। नमस्त्वमर्थो विज्ञेयो रामस्तत्पद्मुच्यते॥ १३॥ असीलार्थे चतुर्थी स्पादेवं मन्नेषु योजयेत् । तत्त्वमस्पादिवाक्यं तु केवल मुक्तिदं यतः ॥ १४ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्तस्माद्प्यतिरिच्यते । मनुष्वेतेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम् ॥ १५ ॥ मुमुक्षूणां विरक्तानां तथा चाश्रमवा-सिनाम् । प्रणवत्वात्सदा ध्येयो यतीनां च विशेषतः । राममञ्जार्थविज्ञानी जीवन्युक्तो न संशयः॥ १६॥ य इमामुपनिषदमधीते सोऽग्निप्तो भवति। स वायुपूतो भवति । सुरापानात्पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति । ब्रह्म-हत्यायाः पूतो भवति । स राममञ्जाणां कृतपुरश्ररणो रामचन्द्रो भवति । तदेतदचाभ्युक्तम् सदा रामोऽहमसीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये । न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥ १७ ॥

(सर्वसारादिरामरहस्यान्तप्रन्थः ३००० । ईशावास्यादिरामरहस्यान्त-

प्रन्थः ८३४८)

ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इति श्रीरामरहस्योपनिषत्समाप्ता॥ ५६॥

श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत् ॥ ५७ ॥ श्रीरामतापिनीयार्थं भक्तोध्येयकलेवरम् । विकलेवरकैवल्यं श्रीरामब्ह्यं में गतिः ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

ॐ चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णो जाते दशरथे हरी। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः ॥ १ ॥ स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः। राश्रसा येन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा ॥ २ ॥ रामनाम भुवि ख्यातम- भिरामेण वा पुनः । राक्षसान्मर्थरूपेण राहुर्मनसिजं यथा ॥ इं ॥ प्रभाहीनांस्तथा कृरवा राज्याहाणां महीशृतास् । धर्ममार्गं चिरत्रेण ज्ञानमार्गं च
नामतः ॥ ४ ॥ तथा ध्यानेन वैराग्यमेश्वर्यं स्वस्य पूजनात् । तथा रात्यस्य
रामाक्या अवि स्वाद्य तत्त्वतः ॥ ५ ॥ रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे
चिदारमिन । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ ६ ॥ चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्करुस्वाद्यिरिणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकरुपना ॥ ७ ॥
रूपस्थानां देवतानां पुंस्यङ्गास्वादिकरुपना । दि चत्वारि घडष्टाऽऽसां दश
द्वादश घोडश ॥ ८ ॥ अष्टादशामी किथता हस्ताः शङ्कादिभिर्युताः । सहस्वान्तास्तथा तासां वर्णवाहनकरुपना ॥ ९ ॥ शक्तिसेनाकरुपना च ब्रह्मण्येवं हि
पञ्चधा । कित्पतस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकरुपना ॥ ९० ॥ ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं मच्चोऽन्वर्थादिसंज्ञकः । जसन्यो मच्चिणा नेवं विना देवः प्रसीदिति
॥ ११ ॥ किया कर्मेति कर्तॄणामर्थं मच्चो वदस्यथ । मननाच्चाणनान्मचः सर्ववाच्यस्य वाचकः ॥ १२ ॥ सोभयस्यास्य देवस्य विग्रहो यच्चकरुपना । विना
यन्नेण चेरपूजा देवता न प्रसीदिति ॥ १३ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

स्वर्भुज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते । जीवत्वेनेद्मों यस्य सृष्टि-स्थितिलयस्य च ॥ १ ॥ कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजःसत्त्वतमोगुणैः । यथैव बटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्वमः ॥ २ ॥ तथैव रामबीजस्थं जगदेतचराचरम् ! रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव चेति ॥ ३ ॥ सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां शुवनानि द्विसप्त । स्थितानि च प्रहतान्येव तेषु ततौ रामो मानवो माययाध्यात् ॥ ४ ॥ जगत्प्राणायात्मनेऽसौ नमः स्यान्नमस्वैनयं प्रवदेश्माग्गुणेनेति ॥ ५ ॥

इति श्रीरामतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

जीववाचि नमो नाम चात्मा रामेति गीयते। तदात्मिका या चतुर्थी तथा चाऽऽयेति गीयते॥ ४॥ मझोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्वाद्योग एतयोः। फल्दश्चेव सर्वेषां साधकानां न संशयः॥ २॥ यथा नामी वाचकेन नाझा योऽभिमुखो भवेत्। तथा बीजात्मको मझो मिश्रणोऽभिमुखो भवेत्॥ ३॥ बीजशक्तिं न्यसेद्श्ववामयोः स्तनयोरि । कीलो मध्येऽविनाभाष्यः स्ववा- न्छाविनियोगवान् ॥ ४॥ सर्वेषामेव मञ्चाणामेष साधारणः क्रमः। अज

रामोऽनन्तरूपर्सेजसा विद्वना समः ॥ ५ ॥ स त्वनुष्णगुविश्वश्चेदग्नीपोमात्मकं जगत् । उत्पन्नः 'दित्या भाति चन्द्रश्चिन्द्रक्रया यथा ॥ ६ ॥ प्रकृत्या सिहतः इयामः पीतवासा जटाधरः । द्विभुजः कुण्डली रस्नमाली धीरो धनुर्धरः ॥ ७ ॥ प्रसन्नवदनो जेता धट्ट्यटकविभूषितः। प्रकृत्या परमेश्वर्या जगद्योन्याऽद्विताङ्कसृत् ॥ ८ ॥ हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता । श्विष्टः कमलधारिज्या पुष्टः कोसलजात्मजः ॥ ९ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥

दक्षिणे ठक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः । हेमामे नानुजेनैव तथा कोणत्रयं भवेत् ॥ १ ॥ तथैव तस्य मन्नस्य यस्याणुश्च स्वङेन्तया । एवं त्रिकोणरूपं स्थात्तं देवा ये समाययुः ॥ २ ॥ स्तुर्तिं चकुश्च जगतः पर्तिं कल्पतरौ स्थितम् । कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ॥ ३ ॥ नमो वेदादिरूपाय ओङ्काराय नमो नमः । रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥ ४ ॥ जानकी देहसूषाय रक्षोन्नाय ग्रुभाङ्गिने । भद्राय रधुवीराय दशास्था-न्तकरूपिणे ॥ ५ ॥ रामभद्र महेष्वास रधुवीर नृपोत्तम ॥ ६ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत् ॥ ४ ॥

भो दशास्तान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते ॥ १ ॥ त्वेमेश्वर्यं दापयाथ संप्रत्मा खरमारणम् । कुर्वन्ति स्तुत्य देवाद्यास्तेन सार्थं सुलं स्थिताः ॥ २ ॥ स्तुवन्त्यवं हि ऋषयस्तदा रावण आसुरः । रामपत्नीं वनस्थां यः स्विनदृत्त्य-र्थमाददे ॥ ३ ॥ स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच रावणः । तद्याजेनेक्षितुं सीतां रामो लक्ष्मण एव च ॥ ४ ॥ विचेरतुस्तदा भूमो देवीं संदृश्य चासुरम् । हत्वा कवन्धं शवरीं गव्या तस्याज्ञया तया ॥ ५ ॥ पूँजितां-वीरपुत्रेण भक्तन च कपीश्वरम् । आहूय शंसतां सर्वमाद्यन्तं रामलक्ष्मणी ॥ ६ ॥ स तु रामे शिक्षतः सन्प्रत्यार्थं च दुन्दुमेः । विप्रहं दशयामास यो रामस्तमचिक्षिपत् ॥ ७ ॥ सप्त सालान्विभवाद्य मोदते राघवसदा । तेन हृष्टः कपीन्द्रोऽसौ सरामस्तस्य पत्तनम् ॥ ८ ॥ जगामागर्जद्वुजो वालिनो वेगतो गृहात् । वाली तदा निर्जगाम तं वालिनमथाहवे ॥ ९ ॥ निहल्य राघवो राज्ये सुग्रीवं स्थापयेत्ततः ॥ १० ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु पश्चमोपनिषत् ॥ ५ ॥

हरीनाहूय सुग्रीवस्त्वाह चाशाविदोऽधुना॥ १॥ आदायं मैथिलीमण दुद्दत श्वाञ्च गच्छत । ततस्ततार हनुमानविंघ रुङ्गां समाययौ ॥ २ ॥ सीतां इष्ट्राऽसुरान्हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम् । आगत्य रामेण सह न्यवेदयत तस्वतः ॥ ३ ॥ तदा रामः क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान् । तैः सार्धमा-दायास्त्रांश्च पुरीं लङ्कां समाययो ॥ ४ ॥ तां दृष्ट्वा तद्धीरोन सार्धं युद्धम-कारयत् । घटश्रोत्रसहस्राक्षजिन्द्यां युक्तं तमाहवे ॥ ५ ॥ हत्वा विभीषणं तत्र स्थाप्याथ जनकात्मजाम् । आदायाङ्कस्थितां कृत्वा स्वपुरं तैर्जगाम् सः ॥ ६॥ ष्टतः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजो रघुनन्दनः । धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरण-अूषितः ॥ ७ ॥ सुद्रां ज्ञानमयीं याम्ये वामे तेजः प्रकाशिनीम् । एखा व्याख्याननिरतश्चिन्मयः परमेश्वरः ॥ ८ ॥ उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धतः । हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात्रिकोणगम् ॥ ९ ॥ भरताधस्तु सुग्रीवं शत्रुद्राधो विभीषणम् । पश्चिमे लक्ष्मणं तस्य धतच्छत्रं सचामरम् ॥ १०॥ तद्धस्तौ तालवृन्तकरौ व्यसं पुनर्भवेत् । एवं घङ्गोणमादौ स्वदीर्घाङ्गरेष संयुः ॥ ११ ॥ द्वितीयं वासुदेवादौराक्षेरयादिषु संयुतः । तृतीयं वायुस्तुं च सुग्रीवं भरतं तथा ॥ १२ ॥ विभीषणं लक्ष्मणं चाङ्गदं चारिविमर्दनम्। जाम्बवन्तं च तेर्युक्तस्ततो छष्टिर्जयन्तकः ॥ १३ ॥ विजयश्च सुराष्ट्रश्च राष्ट्र-वर्धन एव च । अशोको धर्मपालश्च सुमन्नेरेभिरावृतः ॥ १४ ॥ सहस्रहन्व-हिर्धर्मरक्षो वरुणोर्ऽनिलः । इन्द्वीशधात्रनन्ताश्च दशिभस्वेभिरावृतः ॥ १५॥ बहिस्तदायुधेः पूज्यो नीलादिभिरलंकृतः। वसिष्ठवामदेवादिमुनिभिः समु-पासितः ॥ १६ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्स षष्ठोपनिषत् ॥ ६ ॥

एवमुदेशतः प्रोक्तं निर्देशसस्य चाधुना । त्रिरेखापुटमालिख्य मध्ये तारह्रयं लिखेत् ॥ ६ ॥ तन्मध्ये बीजमालिख्य तद्धः साध्यमालिखेत् । द्वितीयान्तं च तस्योध्वं षष्टयन्तं साधकं तथा ॥ २ ॥ कुरुद्धयं च तत्पार्श्वे लिखेद्वीजान्तरे रमाम् । तत्सर्वं प्रणवाभ्यां च वेष्टितं बुद्धिबुद्धिमान् ॥ ३ ॥ दीर्घभाजि षडस्रे तु लिखेद्वीजं हृदादिभिः । कोणपार्थे रमामाये तद्गेऽनङ्ग- मालिखेत् ॥ ४ ॥ कोधं कोणायान्तरेषु लिख्य मञ्च्यभितो गिरम् । वृत्तत्रयं साष्टपत्रं सरोजे विलिखेत्स्वरान् ॥ ५ ॥ केसरेष्वष्टपत्रे च वर्गाष्टकमथा- लिखेत् । तेषु मालामनोर्वर्णान्विलिखेद्भिसंख्यया ॥ ६ ॥ अन्ते पञ्चाक्षरा-

नेवं पुनरष्टदलं लिखेत्। तेषु नारायणाष्टाणं लिखत्तकेसरे रमाम् ॥ ७ ॥ तद्दहिर्द्वादशदलं विलिखेद्वादशाक्षरम् । तथों नमो भगवते वासुदेवाय इत्ययम् ॥ ८ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्यु सप्तमोपनिषत् ॥ ७॥

आदिक्षान्तान्केसरेषु वृत्ताकारेण संलिखेत्। तद्दृहिः पोडशदलं लिख्य तत्केसरे हियम् ॥ १ ॥ वर्मास्वनितसंयुक्तं दलेषु द्वादशाक्षरम्। तत्सिन्धची-रजादीनां मञ्चान्मञ्ची समालिखेत् ॥ २ ॥ १ हृँ सुँ सुँ हुँ हुँ हुँ हुँ हुँ हुँ वुँ च लिखे-त्सम्यक्ततो बहिः। द्वात्रिंशारं महापद्मं नादिन-दुसमायुतम् ॥ ३ ॥ विलि-खेन्मञ्जराजाणाँस्तेषु पत्रेषु यवतः। ध्यायेद्ष्टवसूनेकादश रुद्राश्च तत्र वे ॥ ४ ॥ द्वादशेनांश्च धातारं वषद्वारं ततो बहिः॥ ५ ॥ भूगृहं वज्रश्चलाद्धं रेखात्रय-समन्वितम्। द्वारोपेतं च राह्यादिभूषितं फणिसंयुतम्। अनन्तो वासुकिश्चेव तक्षः कर्कोटपद्मकः॥६॥ महापद्मश्च शङ्खश्च गुलिकोऽष्टो प्रकीर्तिताः॥ ७ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युवनिषत्स्वष्टमोपनिषत् ॥ ८॥

एवं मण्डलमालिख्य तस्य दिश्च विदिश्च च ॥ १ ॥ नारसिंहं च वाराहं लिखेन्म इयं तथा । कृटो रेफानु यहेन्दु नाद शक्त पादि मिर्युतः ॥ २ ॥ यो ग्रेसिंहः समाख्यातो यह मारण कर्मणि । अन्योऽधीं शिवयद्विन्दु नाद बीजं च सौकरम् ॥ ३ ॥ हुंकारं चात्र रामस्य मालाम ब्रोऽधीं शिवयद्विन्दु नाद बीजं च सौकरम् ॥ ३ ॥ हुंकारं चात्र रामस्य मालाम ब्रोऽधु नेरितः । तारो नितश्च निद्रायाः स्मृतिमेदश्च कामिका ॥ ४ ॥ रुद्रेग संयुता विद्वमें धाऽमरिव भूषिता । दीर्घाऽक रयुता ह्वादिन्यथो दीर्घ समानदा ॥ ५ ॥ श्वधा कोधिन्य मोघा च विश्वमप्यथ मेधवा। युक्ता दीर्घा ज्वालिनी च सुस् इमा मृत्यु रूपिणी ॥ ६ ॥ सप्रतिष्ठा ह्वादिनी त्वक इवेलः प्रीतिश्च सामरा । ज्योतिस्ती इणा क्षिसं युक्ता श्वेता नुस्वारसं युत्ता ॥ ७ ॥ कामिकाप ब्रां मोलानतस्तान्ताने धान्त इत्यथ । स सानन्तो दीर्घ युत्तो वायुः सूक्ष्मयुतो विषः ॥ ८ ॥ कामिका कामिका क्वयुक्ताथोऽथ स्थिरा स ए। तापिनी दीर्घ युक्ता भूरनलोऽनन्तगोऽनिलः ॥ ९ ॥ नारायणात्मकः कालः प्राणां भो विद्यया युतम् । पीता रितस्तथा लान्तो योन्या युक्तोऽन्ततो नितः ॥ १० ॥ ससचत्वारिश द्वर्ण गुणान्तः सगुणः स्वयम् । राज्याभिषिकस्य तस्य रामस्योक्तकमा हिलेत् ॥ ११ ॥ इदं सर्वात्मकं यन्नं प्रागुक्तमृषिसेवितम् । सेवकामां मोक्षकरमायुरारोज्यवर्धनम् ॥ १२ ॥ अपुत्रिणां

पुत्रदं च बहुना किमनेन वै। प्राप्तुवन्ति क्षणात्सम्यगत्र धर्मादिकानिष ॥ १३॥ इदं रहस्यं परमसीश्वरेणापि दुर्गमम् । इदं यद्यं समाख्यातं न देयं प्राकृते जने इति ॥ १४ ॥

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु नवमोपनिषत् ॥ ९ ॥

🕉 भूतादिकं शोधयेद्वारपूजां कृत्वा पद्माद्यासनस्थः प्रसन्नः। अर्चाविधाः वस्य पीठाधरोध्वं पार्श्वाचिनं सध्यपद्माचिनं च ॥ १ ॥ कृत्वा मृदुश्वद्मणसत्तिः कायां रतासने देशिकमचीयित्वा । शक्तिं चाधाराख्यकां क्रमेनागौ प्रथिव्यक्के स्वासनाधः प्रकल्प्य ॥ २ ॥ विव्लं दुर्गा क्षेत्रपालं च वाणीं बीजादिकांश्चा-मिदेशादिकांश्च । पीठस्याङ्किप्वेव धर्मादिकांश्च नेज्यूर्वास्तांसस्य दिक्ष्वचेयेच ॥ ३ ॥ मध्ये क्रमादर्कविध्वसितेजांस्युपर्युपर्यादेमैरचितानि । रजः सत्त्वं तम एतानि वृत्तत्रयं वीजाञ्चं क्रमाङ्गावयेच ॥ ४ ॥ आज्ञाज्याज्ञास्वप्यथात्मानम-न्तरात्मानं वा परमात्मानमन्तः । ज्ञानात्मानं चार्चयेत्तस्य दिक्षु मायाविधे वे कलापारतत्त्वे ॥ ५ ॥ संपूजयेद्विमलायाश्च शक्तीरभ्यर्चयेदेवमावाहयेच । अङ्ग-व्यूहानि जलाद्येश्च पूज्य धृष्ट्यादिकेलोकपालैस्तद्खेः ॥ ६ ॥ वासिष्ठाद्येर्भुति-भिर्नीलमुख्येशराधयेदाधवं चन्दनाधैः । मुख्योपहारैविविधेश्च प्रयेससी जपादींश्च सस्यक्समप्ये ॥ ७ ॥ एवंभूतं जगदाधारभूतं रामं वन्दे सिबदा-नन्दरूपम् । गदारिशङ्काव्जधरं भवारिं स यो ध्यायेन्मोक्षमामोति सर्वः ॥ ८ ॥ विश्वव्यापी राघवोऽथो तदानीमन्तर्दधे शङ्खचके गदाङो । धःवा रमा-सहितः सानुजश्च सपत्नजः सानुगः सर्वलोकी ॥ ९ ॥ तद्भक्ता ये लब्धकामाश्च भुक्त्वा तथा पदं परमं यान्ति ते च। इमा ऋचः सर्वकामार्थदाश्च वे ते पठ-न्खमला यान्ति मोक्षं चेते पठन्त्यमला यान्ति मोक्षमिति ॥ १० ॥

चिन्मयेऽस्मिखयोदश । स्वभूज्योतिस्तिसः । सीतारामावेका । जीववाची षद्षष्टिः । भूतादिकसेतादश । पञ्चखण्डेषु त्रिनवतिः ।

इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्सु दशमोपनिषत् ॥ ९० ॥ इति श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ ५७ ॥

श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ५८ ॥

👺 ब्रहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यम् । यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनमविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसद्नम् । तस्माचत्र कचन गच्छेत्तदेव मन्येतेतीदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् । अत्र हि जन्तोः प्राणेपूक्रममाणेषु रुद्धस्तारकं ब्रह्म न्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति । तसाद्विमुक्तमेव निषेवेत । अविमुक्तं न विमुञ्जेत् । एवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः ॥ १ ॥ अथ हैनं अरहाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किं तारकं किं तरतीति । स होवाच याज्ञ-वल्क्यस्तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पुनर्मायां नमश्चनद्वाय नमी भद्राय नम इत्योतद्रह्यात्मिकाः सचिदानन्दाख्या इत्युपासितन्याः । अकारः प्रथमा-क्षरो अवति । उकारो द्वितीयाक्षरो भवति । मकारस्तृतीयाक्षरो भवति । अर्थमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति । विन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति । नादः पष्टाक्षरो भवति । तारकत्वात्तारको भवति । तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि । तदेवो-पास्यमिति ज्ञेयस् । गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात्संतारयतीति । तसा-दुच्यते तारकमिति ॥ य एतत्तारंकं ब्रह्म ब्राह्मणो नित्यमधीते । स सर्वं पाप्मानं तरति । स सृत्युं तरति । स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रणहत्यां तरति । स वीरहत्यां तरित । स सर्वहत्यां तरित । स संसारं तरिते सर्वे तरित । सोऽविमुक्तमाश्रितो भवति । स महान्भवति । सोऽमृतत्वं च गच्छतीति ॥ २ ॥ अथैते स्रोका भवन्ति—अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः । उकाराक्षरसंभूतः शत्रुध्नसौजसात्मकः ॥ १ ॥ प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकारा-क्षरसंभवः । अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकवित्रहः ॥ २ ॥ श्रीरामसांनि-ध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी । उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥ ३ ॥ सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता। प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदनित ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥ इति ॥ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोकार एव । यचान्यत्रिकालातीतं तद्प्योंकार एव । सर्वं होतद्रहा। अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाजागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ स्वप्तस्थानो-ऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंदातिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः॥ यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वमं पद्मयति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्त-

स्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्द्रसयो ह्यानन्द्रसुक् चेतोसुखः प्राज्ञः स्तृतीयः पादः ॥ एव सर्वेश्वर एव सर्वज्ञ एवोऽन्तर्यास्येष योनिः सर्वस प्रभवाष्ययो हि भूतानाम् । नान्तः प्रज्ञं न वहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनसदृष्टमन्यवहार्यस्याह्यसलक्षणसचिन्त्यमन्यपदेश्यमेकाः त्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपरामं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं सन्यन्ते । स आत्मा स विज्ञेयः सदोज्वलोऽविद्यातःकार्यहीनः स्वात्सवन्धहरः सर्वदा हैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति संभाज्या-हमिलों तत्सवत्परंत्रहा रामचन्द्रश्चिदात्मकः । सोऽहमों तद्रामभद्रपरंज्योतीः सोऽहमोमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकी कुर्यात् ॥ सदा रामोऽहमसीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये । न ते संसारिणो नृनं राम एव न संशयः ॥ इत्युपनि-षद्य एवं वेद स सुक्तो भवतीति याज्ञवल्कयः ॥ अथ हैनमित्रः पप्रच्छ थाज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तोऽन्यक्तपरिपूर्णानन्दैकचिदातमा तं कथमहं विजा-नीयामिति । स होवाच याज्ञवल्नयः । सोऽवियुक्त उपास्यो य एषोऽनः न्तोऽन्यक्त आत्मा सोऽनिमुक्ते प्रतिष्ठित इति । सोऽनिमुक्तः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति । वरणायां नाइयां च मध्ये प्रतिष्ठित इति ॥ का वै वरणा का च नाशीति । जन्मान्तरकृतान्सर्वान्दोषान्वारयतीति तेन वरणा अवतीति। सर्वानिन्द्रियकुतान्पापान्नाशयतीति तेन नाशी अवतीति । कतमज्ञास स्थानं भवतीति । भुवोर्घाणस्य च यः सन्धिः स ए५ द्यौलेंकस्य परस्य च सन्धिभैवतीति । एतद्वै सन्धि सन्ध्यां ब्रह्मविद उपासत इति ॥ सोऽविमुक्त उपास्य इति । सोऽविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे यो वैतदेवं वेद स एषोऽक्षरोऽनन्तोऽन्यक्तः परिपूर्णानन्देकचिदात्मा योऽयमविमुक्ते प्रतिष्ठित इति। अथ तं प्रत्युवाच । श्रीरामस्य मनुं काइयां जजाप वृष्यभध्वजः । मन्वन्तर-सहस्रेस्तु जपहोमार्चनादिभिः॥ १॥, ततः प्रसन्नो सगवाञ्जीरासः प्राह शंकरस् । दृणीष्य यद्भीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ॥ २ ॥ इति ॥ अथ सिंच-दानन्दात्मा श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ । मणिकण्या मत्सेत्रे गङ्गायां वा तटे युनः । म्रियेत देही तज्जन्तोर्भुक्तिनांऽतो वरान्तरम् ॥ ३ ॥ इति ॥ अथ ल होवाच श्रीरामः ॥ क्षेत्रेऽत्र तव देवेश यत्रकुत्रापि वा सृताः । कृमिकीटा-दयोऽप्याग्र मुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥ ४ ॥ अवियुक्तं तव क्षेत्रे सर्वेषां सुक्तिसिद्धये । अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥ ५ ॥ झेन्नेऽस्मिन्योः

sचेयेन्नक्या सञ्जेणानेन मां शिव । ब्रह्महत्यादिपापेभ्योः मोक्षयिष्यामि मा ग्रुचः ॥ ६॥ स्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये रुभन्ते पडक्षरम् । जीवन्तो मञ्जसिद्धाः स्युर्भुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥ ७ ॥ मुमूर्पोर्दक्षिणे कर्णे यस्यकस्यापि वा स्यम् । उपदेक्ष्यसि मन्मन्नं स मुक्तो भविता शिवेति ॥ ८॥ श्रीरामचन्द्रे-णोक्तं योऽविमुक्तं पश्यति स जनमान्तिरतान्दोषान्वारयतीति स जनमान्तिर-तान्पापालाशयतीति । अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ कैर्मेत्रैः स्तुतः श्रीरामः श्रीतो भवति । स्वात्मानं दर्शयति तान्नो ब्रुहि भगवन्निति । स होवाच याज्ञवल्क्यः श्रीरामचन्द्रेणवं शिक्षितो ब्रह्मा पुनरे-तया गाथया नमस्करोति ॥ विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयस् । परि-पूर्णानन्द्विज्ञं परंब्रह्मस्बरूपिणम् ॥ मनसा संसारन्ब्रह्म तुष्टाव परमेश्वरम् । ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत्परं ब्रह्म भूर्भुवः स्वसासौ वै नमो नमः ॥ १ ॥ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्चाखण्डेकरसात्मा भूर्भुवः स्वस्तसी वै नमो ममः २ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यच ब्रह्मानन्दामृतं भूभुवः खससौ वै नमो नमः ३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यसारकं भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमो नमः ४ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो ब्रह्मा विष्णुरीश्वरो यः सर्वदेवात्मा भूर्भुवः स्वस्तसे वै नमो नमः ५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये सर्वे वेदाः साङ्गाः सशाखाः सपुराणा भूर्भुवः स्वस्तसै वे नमो नमः ६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो जीवात्मा भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमो नमः ७ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः सर्वभूतान्तरात्मा भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमो नमः ८ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये देवासुरमनुष्यादिभावा भूर्भुवः खसासी वे नमो नमः ९ ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये मत्स्यकूर्माद्य-वतारा भूर्भुवः स्वस्तसौ वै नमो नमः १० ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च प्राणो भूर्भुवः स्वस्तसे वै नमो नमः ११ ॐ यो वै श्रीराम-चन्द्रः स भगवान्योऽन्तःकरणचतुष्टयात्मा भूर्भुवः स्वस्तसौ वै नमो नमः १२ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च यमो भूर्भुवः स्वससी वै नमो नमः १३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्चान्तको भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमी नमः १४ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च मृत्युर्भूर्भुवः स्वसासै वै नमो नमः १५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्रामृतं भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमो नमः १६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यानि पञ्च महाभूतानि

भूर्भुवः स्वसासी वै नमो नमः १७ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः स्थावरजङ्गमात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः १८ ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये पञ्चाप्तयो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः १९ ॐ यो वै श्रीराम-चन्द्रः स भगवान्याः सप्त महाव्याहृतयो भूर्भुवः खस्तसौ वै नमो नमः २० कें यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या विद्या भूर्भुवः स्वस्तस्मे वै नमो नमः २१ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या सरस्वती भूर्भुवः खसासे वै नमो नमः २२ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स अगवान्या लक्ष्मीर्भूर्भुवः खस्तसै वै नमी नमः २३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या गौरी भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमो नमः २४ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्या जानकी सूर्भुवः स्वसः सी वै नमो नमः २५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यच त्रैलोक्यं अर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः २६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च सूर्यो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः २७ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स अगवान्यश्च सोमो भूर्भुवः खसासै वै नमो नमः २८ ॐ यो वै श्रीरामचन्दः स भगवान्यानि नक्षत्राणि भूर्भुवः स्वस्तस्मे वै नमो नमः २९ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये च नव ग्रहा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ३० 🍑 यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये चाष्टी लोकपाला भूर्भुवः स्वससै वै नमो नमः ३१ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये चाष्टौ वसवो भूर्भुवः खस्तसौ वै नमो नमः ३२ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये चैकादश रुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ३३ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ये च द्वादशादित्या भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ३४ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यच भूतं भवद्भविष्यद्भर्भवः स्वस्तसौ वै नमो नमः ३५ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्ब्रह्माण्डस्यान्त्रबहिर्घ्यामीति यो विराइभूर्भुवः स्वस्तसमै वै नमो नमः ३६ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो हिरण्य-गर्भी भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ३७ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भग-वान्या प्रकृतिर्भूर्भुवः स्वस्तसौ वै नमो नमः ३८ ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्चोंकारो भूर्भुवः स्वस्तसी वै नमो नमः ३९ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्याश्रतस्रोऽ भात्रा नूर्धवः स्वस्तस्रै वै नमो नमः ४० अ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः परमपुरुषो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ४१ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च महेश्वरो भूर्भुवः

स्वस्तसै वै नमो नमः ४२ ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यश्च महादेवो भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमो नमः ४३ ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्य ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यो महाविष्णुर्भूर्भुवः स्वस्तसै वै नमो नमः ४४ ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यः परमात्मा भूर्भुवः स्वस्तसै वे नमो नमः ४५ ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो विज्ञानातमा भूर्भुवः स्वस्तसै वे नमो नमः ४६ ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्यो सिद्यानन्दैकरसात्मा भूर्भुवः स्वस्तसै वे नमो नमः ४७ इत्येतान्त्रह्मवित्सस्वत्वारिंशन्मक्रैनित्यं देवं स्तुवंस्ततो देवः श्रीतो भवति । तसाद्य एतैर्मक्रैनित्यं देवं स्तौति स देवं प्रश्चित सोऽमृतत्वं च गच्छित सोऽमृतत्वं च गच्छिति ॥ ५॥

H-

₹:

तेती

₹-

यं

वै

₹:

श

रो

t

7-

ॐ वास्त्रे मनसीति शान्तिः॥ इत्याथर्वणीया श्रीरामोत्तरतापिनीयोपनिषत्समासा॥ ५८॥

वासुदेवोपनिषत् ॥ ५९ ॥

यत्सर्वहृदयागारं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । वस्तुतो यन्निराधारं वासुदेवपदं भजे ॥ ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः॥

ॐ नमस्कृत्य भगवान्नारदः सर्वेश्वरं वासुदेवं पप्रच्छ अधीह मगवन्नू ध्वं-पुण्ड्विधिं द्रव्यमञ्जर्थानादिसहितं मे ब्रह्मिति । तं होवाच भगवान्वासुदेवो वैकुण्ठस्थानादुत्पन्नं मम प्रीतिकरं मद्रक्तेन्नं द्वादिभिधारितं विष्णुचन्द्वं ममाङ्गे प्रतिदिनमालिसं गोपीभिः प्रक्षालनाद्गोपीचन्द्वनमाख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थान्तःस्थितं चक्रसमायुक्तं पीतवर्णं सुक्तिसाधनं भवति । अय गोपीचन्द्वं नमस्कृत्वोद्ध्य । गोपीचन्द्वं पापन्न विष्णुदेहससुद्भव । चक्रा-क्कित नमस्कृत्योद्ध्य । गोपीचन्द्वं पापन्न विष्णुदेहससुद्भव । चक्रा-क्कित नमस्कृत्योद्ध्य । अतो देवा अवन्तु न इत्येतनमञ्जिदिष्णुगायन्या केशवादिनामिन्नां धारयेत् । ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा ललाटहृदयकण्ठवाहुमूलेषु वैष्णवगायन्या कृष्णादिनामिन्नां धारयेत् । इति त्रिवारमिन्नमञ्चय शङ्खचक-गद्माणे द्वारकानिलयाच्युत । गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम् । इति ध्यात्वा गृहस्थो ललाटादिद्वादशस्थलेष्वनामिकाञ्चल्या वैष्णवगायत्रया केशवादिनामभिर्वा धारयेत् । ब्रह्मचारी गृहस्थी वा ललाटहदयकण्डवाहु-भूलेषु वैष्णवगायम्या कृष्णादिनामभिवी धारयेत् । यतिस्तर्जन्या शिरोललाट-हृद्येषु प्रणवेनैव धारयेत् । ब्रह्माद्यस्रयो सूर्तयस्तिस्रो न्याहृतयस्रीणि छन्दांसि त्रयोऽप्रय इति ज्योतिष्मन्तस्रयः कालास्तिस्रोऽवस्थास्रय आत्मानः पुण्डास्त्रय अध्वी अकार उकारी सकार एते प्रणवसयोध्वीपुण्डासादातमा सदे-तदोमिति । तानेकधा समभवत् । जर्ध्वसुन्नमयत इत्योंकाराधिकारी । तसा-दुध्वेपुण्डं धारयेत्। परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकसूर्ध्वपुण्डं वा धारयेत्। तस्वप्रदीपप्रकाशं स्वात्मानं पश्यन्योगी मत्सायुज्यमवामोति । अथवा न्यसहृद्यपुण्ड्मध्ये वा । हृद्यकसलमध्ये वा तस्य मध्ये विह्निशा अणी-योध्वी व्यवस्थिता । नीलतोयद्मध्यस्थाद्विद्युलेखेव भास्तरा । नीवार-ग्लाकवत्तन्वी विद्युष्ठेखेव भास्वरा । तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा ब्यवस्थित इति । अतः पुण्ड्स्थं हृदयपुण्डरीकेषु तमभ्यसेत् । क्रमादेवं स्वात्मानं भावयेनमां परं हरिम् । एकाग्रमनसा यो मां ध्यायते हरि-मन्ययम् । हत्पङ्कजे च स्वात्मानं स मुक्तो नात्र संशयः । मद्रप-सहयं ब्रह्म आदिसध्यान्तवार्जितस् । स्वप्रभं सचिदानन्दं भक्तया जानाति चाच्ययम् । एको विष्णुरनेकेषु जङ्गमस्थावरेषु च । अनुस्यूतो वसस्यात्मा भूतेष्वहमवस्थितः । तैलं तिलेषु काष्टेषु विद्वाः क्षीरे घृतं यथा । गन्धः पुष्पेषु सूतेषु तथात्माऽवस्थितो हाहस् । ब्रह्मरन्ध्रे भुवोर्मध्ये हृद्ये चिद्रविं हिरस्। गोपीचन्दनमालिप्य तत्र ध्यात्वामुयात्परम् । अध्वेदण्डोध्वेरेताश्च अध्वेपुण्डौ ध्वयोगवान् । ऊर्ध्वं पदमवाम्रोति यतिरूर्ध्वचतुष्कवान् । इत्येतिन्निश्चितं ज्ञानं सद्भत्तया सिद्यति स्वयस् । नित्यमेकाग्रभक्तिः स्याद्गोपीचन्दनधार-णात् । ब्राह्मणानां तु सर्वेषां वैदिकानामनुत्तमम् । गोपीचन्द्रनवारिभ्यामूः र्ध्वपुण्ड्रं विधीयते । यो गोपीचन्दनाभावे तुल्सीमूलमृत्तिकाम् । सुसुसुर्धाः रयेन्नित्यमपरोक्षात्मसिद्धये । अतिरात्राग्निहोत्रभस्मनाग्नेर्भसितमिदं विष्णुः स्त्रीणि पदेति मञ्जेवेंदणवगायन्या प्रणवेनोद्धूळनं कुर्यात् । एवं विधिना गोपी चन्दनं च धारयेत्। यस्त्वधीते वा स सर्वपातकेभ्यः पूतो भवति। पाप-बुद्धिस्तस्य न जायते स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो अवति । स सर्वेर्यज्ञैर्याजितो भवति । स सर्वेदेवैः पूज्यो भवति । श्रीमन्नारायणे मय्यचञ्चला भक्तिश्र भवति । स सम्यग् ज्ञानं च लब्ध्वा विष्णुसायुज्यमवामोति । न च पुनरा- वर्तते न च पुनरावर्तते इत्याह भगवान्वासुदेवः । यस्त्वेतद्वाऽधीते सोऽप्ये-वर्तते भवतीत्यों सत्यमित्युपनिषत् ॥ १ ॥

₹.

ह-

णि

नः दे-

1)

वा

गी-

ार-मा

देवं

रि-

प-

ाति

मा पेषु

म् । डो-

ध्रतं

ार-

ामू-

र्धा-

व्या-

पी-

ाप-

नेती

和

रा-

ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः॥ इति वासुदेवोपनिषत्समाता॥ ५९॥

ग्रहलोपनिषत् ॥ ६० ॥

श्रीमत्पुरुषसूक्तार्थं पूर्णानन्दकलेवरम् । पुरुषोत्तमविख्यातं पूर्णं ब्रह्म भवाम्यहम् ॥ ॐ वाक्षो मनसीति शान्तिः ॥

ॐ पुरुषस्तार्थनिर्णयं न्याख्यास्यामः॥ पुरुषसंहितायां पुरुषस्त्तार्थः संप्रहेण प्रोच्यते । सहस्रवीर्धेसत्र सशब्दोऽनन्तवाचकः । अनन्तयोजनं प्राह द्शाङ्कलवचस्तथा ॥ ३ ॥ तस्य प्रथमया विष्णोर्देशतो व्याप्तिरीरिता । द्विती-यया चास्य विष्णोः कालतो व्याप्तिरुच्यते ॥ २ ॥ विष्णोर्मोक्षप्रदृत्वं च कथितं तु कृतीयया । एतावानिति मन्नेण वैभवं कथितं हरेः ॥ ३ ॥ एतेनैव च मन्नेण चतुर्व्यूहो विभाषितः । त्रिपादित्यनया प्रोक्तमनिरुद्धस्य वैभवम् ॥ ४ ॥ तस्माद्विराडित्यनया पादनारायणाद्धरेः । प्रकृतेः पुरुषस्यापि समुत्पत्तिः प्रदृक्तिता ॥ ५ ॥ यत्पुरुषेणेखनया सृष्टियज्ञः समीरितः । सप्तासासन्परिधयः समिधश्र समीरिताः ॥ ६॥ तं यज्ञाविति मन्नेण सृष्टियज्ञः समीरितः। अनेनैव च मन्नेण मोक्षश्च समुदीरितः॥ ७॥ तस्मादिति च मन्नेण जगत्सृष्टिः समी-रिता । वेदाहिसिति सन्नाभ्यां वैभवं कथितं हरेः ॥ ८ ॥ यज्ञेनेत्युपसंहारः सृष्टेर्मोक्षस्य चेरितः । य एवमेतजानाति स हि सुक्तो भवेदिति ॥ ९ ॥ १ ॥ अथ तथा मुद्रलोपनिषदि पुरुषस्कस्य वैभवं विस्तरेण प्रतिपादितम् । वासु-देव इन्द्राय भगवज्ज्ञानसुपदिश्य पुनरिप सूक्ष्मश्रवणाय प्रणतायेन्द्राय परम-रहस्यभूतं पुरुषसूक्ताभ्यां खण्डद्वयाभ्यामुपादिशत् । द्वौ खण्डाबुच्येते । योऽयमुक्तः स पुरुषो नामरूपज्ञानागोचरं संसारिणामतिदुर्ज्यं विषयं विहाय छैशादिभिः संक्रिप्टदेवादिनिहीर्षया सहस्रकलावयवकल्याणं दृष्टमात्रेण मोक्षदं वेपमाद्दे । तेन वेषेण भूम्यादिलोकं न्याप्यानन्तयोजनमत्यतिष्ठत् । पुरुषो नारायणो भूतं भन्यं भविष्यचासीत् । स एष सर्वेषां मोक्षदश्चासीत् । स च सर्वस्मान्महिस्रो ज्यायान् । तस्मान्न कोऽपि ज्यायान् । महापुरुष आत्मानं चतुर्घा कृत्वा त्रिपादेन परमे व्योक्ति चासीत् । इतरेण चतुर्थेनानिरुद्धनारा-यणेन विश्वान्यासन् । स च पादनारायणो जगत्स्रष्टुं प्रकृतिमजनयत् । स स-मृद्धकायः सन्सृष्टिकर्म न जज्ञिवान् । सोऽनिरुद्धनारायणस्तसै सृष्टिमुपादिशत् । ब्रह्मस्तवेन्द्रियाणि याजकानि ध्यात्वा कोशभूतं दृढं अन्थिकलेवरं हविध्यात्वा मां हिन्भुंजं ध्यात्वा वसन्तकालमाज्यं ध्यात्वा श्रीष्मिमध्मं ध्यात्वा शरहतं रसं ध्यात्वैवमस्रो हृत्वाङ्गस्पर्शात्कलेवरो वज्रं ही ध्यते । ततः स्वकार्यान्सर्व-प्राणिजीवानसृद्वा पश्चाद्याः प्रादुर्भविष्यन्ति । ततः स्थावरजङ्गमात्मकं जगन्न-विष्यति । एतेन जीवात्मनोर्योगेन मोक्षप्रकारश्च कथित इत्यनुसंधेयम् । य इसं सृष्टियज्ञं जानाति मौक्षप्रकारं च सर्वमायुरेति ॥ २ ॥ एको देवो बहुधा निविष्ट अजायमानो बहुधा विजायते । तसेतसिप्रिरित्यध्वर्यव उपासते । यज्ञ-रित्येष हीदं सर्वं युनिक । सामेति छन्दोगाः । एतस्मिन्हीदं सर्वं प्रतिष्ठितम । विषमिति सर्पाः । सर्पे इति सर्पविदः । ऊर्गिति देवाः । रथिरिति मनुष्याः । मायेत्यसुराः। स्वधेति पितरः। देवजन इति देवजनविदः। स्पिमिति गन्धर्वाः । गन्धर्व इत्यप्सरसः । तं यथा यथोपासते तथैव भवति । तसाहाः ह्मणः पुरुषरूपं परंब्रह्मैवाहमिति भावयेत् । तद्भपो भवति । य एवं वेद ॥ ३ ॥ तह्नस तापत्रयातीतं पद्घोशविनिर्भुक्तं पद्धभिवर्जितं पञ्चकोशातीतं पर्भाव-विकारग्रन्यमेवमादिसर्वविलक्षणं भवति । तापत्रयं त्वाध्यात्मिकाधिभौतिका-धिदैविकं कर्तकर्मकार्यज्ञातज्ञानज्ञयभोक्तभोगभोग्यामिति त्रिविधम् । त्वबां-सशोणितास्थिस्नायुमजाः षद्वोशाः। कामकोधलोभमोहमदमात्सर्यमित्यिष-द्वर्गः । अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानसयानन्दमया इति पञ्च कोशाः। प्रियात्मजननवर्धनपरिणामक्षयनाशाः षड्भावाः। अशनायापिपासाशोकमी-हजरामरणानीति षडूर्मयः । कुलगोत्रजातिवर्णाश्रमरूपाणि षड् भ्रमाः। एतद्योगेन परमपुरुषो जीवो भवति नान्यः। य एतदुपनिषदं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स आदित्यपूतो भवति । अरोगी भवति । श्रीमांश्च भवति । पुत्रपौत्रादिभिः समृद्धो भवति । विद्वांश्च भवति । महापातकात्पूतो भवति । सुरापानात्पूतो भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । मातृगमनात्पूतो भवति । दुहितृसुषाभिगमनात्पूतो भवति । स्वर्ण-स्तेयात्पूतो भवति । वेदिजन्महानात्पूतो भवति । गुरोरग्रुश्रूषणात्पूतो भवति । अणाज्ययांजनात्पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति । उग्रप्रतिग्रहा-

त्यूतो भवति । परदारगमनात्यूतो भवति । कामक्रोधलोभमोहेर्गादिभिरवा-धितो भवति । सर्वेभ्यः पापेभ्यो मुक्तो भवति । इह जन्मनि पुरुषो भवति । तस्मादेतत्पुरुषसूक्तार्थमितिरहस्यं राजगृद्धं देवगुद्धं गुद्धादिष गुद्धतरं नादी-क्षितायोपिदशेत् । नानूचानाय नायज्ञशीलाय नावेष्णवाय नायोगिने न बहुभाषिणे नाप्रियवादिने नासंवत्सरवेदिने नातुष्टाय नानवीतवेदायोपिदशेत् । गुरुरप्येवंविच्छुचौ देशे पुण्यनक्षत्रे प्राणानायम्य पुरुषं ध्यायन्नुपसन्नाय क्षित्याय दक्षिणकर्णे पुरुषसूक्तार्थमुपदिशेदिद्वान् । न बहुशो वदेत् । यात-यामो भवति । असकृत्कर्णमुपदिशेत् । एतत्कुर्वाणोऽध्येताऽध्यापकश्च इह जन्मनि पुरुषो भवतीत्युपनिषत् ॥ १॥

> ॐ वाक्षे मनसीति शान्तिः॥ इति सुद्रलोपनिषत्समाप्ता॥ ६०॥

शाण्डिल्योपनिषत् ॥ ६१ ॥

शाण्डिल्योपनिषत्योक्तयमाद्यष्टाङ्गयोगिनः। यद्वोधाद्यान्ति कैवल्यं स रामो मे परा गतिः॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

शाण्डिल्यो ह वा अथर्वाणं पप्रच्छ-आस्मरुशियायभूतमष्टाङ्गयोगमनुमूहीति। सहोवाचाथर्वा यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि। तत्र दश यमाः। तथा नियमाः। आसनान्यष्टो। त्रयः प्राणायामाः। पञ्च प्रत्याहाराः। तथा धारणा। द्विप्रकारं ध्यानम्। समाधिस्त्वेकरूपः। तत्राहिंसासत्यास्त्रेयम् सर्चयंदयाजपक्षमाधितिमिताहारशोचानि चेति
यमा दश। तत्र हिंसा नाम यनोवाङ्गायकर्मीभः सर्वभूतेषु सर्वदा छेशजननम्। सत्यं नाम मनोवाङ्गायकर्मीभर्मृतिहतयथार्थाभभाषणम्। अस्त्रेयं नाम
मनोवाङ्गायकर्मीभः परद्रव्येषु निःस्पृहता। मह्मचर्यं नाम सर्वावस्थासु मनोवाङ्गायकर्मीभः सर्वत्र मैथुनत्यागः। दया नाम सर्वभूतेषु सर्वत्रानुप्रहः।
आर्जवं नाम मनोवाङ्गायकर्मणां विहिताविहितेषु जनेषु प्रवृत्तो निवृत्तो वा
एकरूपत्वम्। क्षमा नाम प्रियाप्रियेषु सर्वेषु ताडनपूजनेषु सहनम्। धित-

वा हतुं वी-

नं

1

н-

1]

मं वा ज-

(। :।

XI-

व-हा-ब्रां-

ष-:। मो-

: । तिते ।गी

तो लिन

1

1-

नीमार्थहानौ स्वेष्टवन्धुवियोगे तत्प्रासौ सर्वत्र चेतःस्थापनम् । मिताहारी नाम चतुर्थाशावशेषकसुक्षिण्यमधुराहारः । शौचं नाम द्विविधं-बाह्यमान्तरं चेति । तत्र मृजलाभ्यां बाह्मम् । मनःशुद्धिरान्तरम् । तद्ध्यासमिवस्या ळभ्यम् ॥ १ ॥ तपःसन्तोषास्तिक्यदानेश्वरपूजनसिद्धान्तश्रवणहीमतिजपोः इतानि दश नियमाः । तत्र तपो नाम विध्युक्तकुच्छ्चान्द्रायणादिभिः वारीर-ज्ञोषणम् । संतोषो नाम यहच्छालाभसंतुष्टिः । आस्तिनयं नाम वेदोक्त-धर्माधर्मेषु विश्वासः । दानं नाम न्यायार्जितस्य धनधान्यादेः श्रद्धयार्थिश्यः प्रदानम् । ईश्वरपूजनं नाम प्रसन्नस्वभावेन यथात्रक्ति विष्णुरुद्रादिपूजनम् । सिद्धान्तश्रवणं नाम वेदान्तार्थविचारः। हीर्नाम वेदछौक्तिकमार्गकुत्सितः कर्मणि लजा। मतिनीम वेदविहितकर्ममार्गेषु अद्या। जपो नाम दिधि-वद्गरूपदिष्टवेदाविरुद्धमञ्जाभ्यासः । तद्विविध-वाचिकं मानसं चेति । मानसं तु सनसा ध्यानयुक्तस् । वाचिकं द्विविधमुचैरुपांशुभेदेन । उचैरुचारणं वथोक्तफलम् । उपांगु सहस्रगुणम् । मानसं कोटिगुणम् । वतं नाम वेही-क्तविधिनिषेधानुष्ठाननैयत्यम् ॥ २ ॥ खित्तकगोमुखपद्मवीरसिंहभद्गमुक्तम-यूराख्यान्यासनान्यथौ । स्वस्तिकं नाम-जानुत्रीरस्तरे सम्बद्धस्वा पाइतले उसे । ऋजुकायः समासीनः खिस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ३ ॥ खन्ये दक्षिणगुर्क तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत् । दक्षिणेऽपि तथा सत्यं गोसुखं गोसुखं यथा ॥ ४ ॥ अङ्कुष्टेन निवधीयाद्धस्ताभ्यां न्युस्क्रमेण च । ऊर्वोह्तवरि ज्ञाण्डिह्य कृत्वा पादतले उसे । पद्मासनं अवेदेतत्सर्वेषामि पूजितम् ॥ ५ ॥ एकं पादम-थैकसिन्वन्यस्योरुणि संस्थितः । इतरस्मिस्तथा चोरुं वीरासनमुदीरितम् ॥ ६ ॥ दक्षिणं सव्यगुरुक्तेन दक्षिणेन तथेतरम् । हस्तौ च जान्दोः संस्थाप्य स्वाङ्कर्लीश्र प्रसार्य च ॥ ७ ॥ व्यक्तवक्रो निरीक्षेत नासार्य सुसमाहितः । सिंहासनं भवेदेतत्प्जितं योगिभिः सदा ॥ ८॥ योनिं वासेन संपीड्य मेढादुपरि दक्षिणम् । भूमध्ये च मनोलक्ष्यं सिद्धासनमिदं भवेत् ॥ ९॥ गुरुको तु वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् । पादपार्श्वे तु पाणिश्यां हृदं बद्धा सुनिश्रस्य । भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम् ॥ १०॥ संपीड्य सीविनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु सव्यतः । सव्यं दक्षिणगुल्फेन मुक्ता-सनसुदीरितम् ॥ ११ ॥ अवष्टभ्य धरां सम्यक्तलाभ्यां तु करह्रयोः । हस्तयोः कूर्परी चापि स्थापयेक्नाभिपार्श्वयोः ॥ १२ ॥ समुक्रनिरःपादी दण्डव-

ब्रोक्ति संस्थितः । मयूरासनमेतत्तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥ शरीरान्त-र्शताः सर्वे रोगा विनश्यन्ति । विषाणि जीर्यन्ते । देन केनासनेन सुख-धारणं भवत्यशक्तस्तरसमाचरेत् । येनासनं विजितं जगत्रयं तेन विजितं अवति । यमनियमाभ्यां संयुक्तः पुरुषः प्राणायामं चरेत् । तेन नाड्यः जाना सवन्ति ॥ १४ ॥ अय हैनमथर्वाणं ज्ञाण्डिल्यः पप्रचल केनोपायेन नाड्यः श्रद्धाः स्यः । नाड्यः कतिसंख्याकाः । तासामुलत्तिः कीदशी । तास कति वायवस्तिष्टन्ति । तेषां कानि स्थानानि । तःकर्माणि कानि । देहै यानि यानि विज्ञातव्यानि तत्सर्वं मे बृहीति । स होवाचाथर्वा । अथेदं शरीरं चण्णवत्य क्रुठात्मकं भवति । शरीरात्याणो द्वादशाङ्गळाधिको भवति । शरीरस्यं प्राणमित्रना सह योगाभ्यासेन समं न्यूनं वा यः करोति स योगिपङ्गवी भवति । देहमध्ये शिखिस्थानं त्रिकोणं तप्तजान्वनद्यभं मनु-ब्याणास् । चतुष्पदां चतुरस्रस् । विहङ्गानां वृत्ताकारम् । तन्मध्ये ग्रुमा तन्वी पावकी शिखा तिष्ठति । गुदाहूयज्जुलादूर्ध्वं मेढाहूयज्जुलाद्धो देहमध्यं मनुष्याणां भवति । चतुष्पदां हन्मध्यम् । विहगानां तुन्दमध्यम् । देहसध्यं नवाङ्गुळं चतुरङ्गुळमुःसेधायतमण्डाकृति । तन्मध्ये नाभिः । तज्ञ द्वादशारयुतं चक्रम् । तचकमध्ये पुण्यपापप्रचोदितो जीवो भ्रमति । तन्तुपञ्जरमध्यस्थल्तिका यथा अमित तथा चासी तत्र प्राणश्चरित । देहेऽ-सिक्षीवः प्राणारूढो भवेत्। नाभेस्तिर्थंगध उध्वं कुण्डलिनीस्थानम्। अष्टप्रकृ-तिरूपाऽष्टधा कुण्डलीकृता कुण्डलिनी शक्तिभैवति । यथावद्वायुसंचारं जला-कादीनि परितः स्कन्धः पार्श्वेषु निरुध्येनं मुखेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रं योग-काले चापानेनामिना च स्फुरति । हृदयाकौरी महोज्वला ज्ञानरूपा भवति । मध्यस्थकुण्डलिनीमाश्रित्य सुख्या नाड्यश्चतुर्दश भवन्ति । इडा पिङ्गला सुपुमा सरस्वती वारणी पूषा हिस्तिजिह्ना यशिस्तिनी विश्वोदरी कुहुः शिङ्किनी पयस्विनी अलग्बुसा गान्धारीति नाड्यश्चतुर्दश भवन्ति । तत्र सुषुन्ना विश्व-धारिणी मोक्षमार्गेति चाचक्षते । गुद्ख पृष्ठभागे वीणादण्डाश्रिता मूर्धपर्यन्तं बहार-ँध्रे विज्ञेया व्यक्ता सूक्ष्मा वैष्णवी भवति । सुषुम्नामाः सव्यभागे इडा तिष्ठति । दक्षिणभागे पिङ्गला । इडायां चन्द्रश्चरति । पिङ्गलायां रविः । तमो-रूपश्चन्द्रः । रजोरूपो रविः । विषभागो रविः । अमृतभागश्चनद्रमाः । तावेव सर्वकालं धत्तः । सुपुन्ना कालभोक्त्री भवति । सुपुन्ना पृष्ठपार्श्वयोः सरस्व-तीकुह भवतः । यशस्विनीकुहूमध्ये वारुणी प्रतिष्ठिता भवति । पूपासरस्वती-मध्ये पयस्विनी भवति । गान्धारीसरस्वतीमध्ये यशस्विनी भवति । कन्दम-ध्येऽलम्बुसा भवति । सुषुम्नापूर्वभागे मेहान्तं कुहूर्भवति । कुण्डलिन्या अध-श्रोध्वं वारुणी सर्वगामिनी भवति । यशस्त्रिनी सौम्या च पादाङ्कष्ठान्तमि-ब्यते । पिङ्गला चोर्ध्वमा याम्यनासान्तं भवति । पिङ्गलायाः पृष्ठतो याम्य-नेत्रान्तं पूषा भवति । याम्यकर्णान्तं यशस्त्रिनी भवति । जिह्वाया जध्वीन्तं सरस्वती भवति । आसव्यकर्णान्तम् ध्वेगा शङ्किनी भवति । इडापृष्ठभागास-व्यनेत्रान्तगा गान्धारी भवति । पायुमूलादधोर्ध्वगाऽलम्बुसा भवति । एताश्च चतर्दशस नाडीव्वन्या नाड्यः संभवन्ति । तास्वन्यास्तास्वन्या भवन्तीति विज्ञेयाः ॥ यथाऽश्वत्थादिपत्रं शिराभिर्व्याप्तमेवं शरीरं नाडीभिर्व्याप्तम् । प्राणा-यानसमानोदानव्याना नागकूर्मकुकरदेवदत्तधनञ्जया एते दश वायवः सर्वास नाडीषु चरन्ति । आस्यनासिकाकण्ठनाभिपादाङ्गछद्वयकुण्डल्यधश्चोध्वंभागेषु त्राणः संचरति । श्रोत्राक्षिकटिगुल्फघाणगलस्किग्देशेषु व्यानः संचरति । गुद-मेढोरुजानुद्रवृषणकटिजङ्गानाभिगुद्राह्मगारेष्वपानः संचरति । सर्वसंधिस्य छदानः । पादहस्तयोरपि सर्वगात्रेषु सर्वव्यापी समानः । अकान्नरसादिकं गान्नेऽसिना सह व्यापयन्द्रिससितसहस्रेषु नाडीमार्गेषु चरन्समानवायुरिमना सह साङ्गोपाङ्गकलेवरं व्यामोति । नागादिवायवः पञ्चत्वगस्थ्यादिसंभवाः। तुन्दस्यं जलमन्नं च रसादिषु समीरितं तुन्दमध्यगतः प्रागतानि पृथकुर्यात्। अफ्रेरपरि जलं स्थाप्य जलोपर्यन्नादीनि संस्थाप्य स्वयमपानं संप्राप्य तेनैव सह मारुतः प्रयाति देहमध्यगतं ज्वलनम् । वायुना पालितो विह्नरपानेन शनै-र्देहमध्ये ज्वलति । ज्वलनो ज्वालाभिः प्राणेन कोष्टमभ्यागतं जलमत्युष्णम-करोत्। जलोपरि समर्पितव्यक्षनसंयुक्तमन्नं विद्वसंयुक्तवारिणा पक्रमकरोत्। तेन स्वेद्मूत्रजलरक्तवीर्यरूपरसपुरीवादिकं प्राणः पृथक्क्यीत् । समानवायुना सह सर्वासु नाडीपु रसं व्यापयञ्ज्ञासरूपेण देहे वायुश्वरति । नवभिर्व्योमरन्ध्रेः श्वारीरस्य वायवः कुर्वन्ति विण्मूत्रादिविसर्जनम् । निश्वासोच्छ्वासकासश्च प्राण-कर्मोच्यते । विण्मूत्रादिविसर्जनमपानवायुकर्म । हानोपादानचेष्टादि व्यानकर्म । देहस्योत्रयनादिकमुदानकर्म । शरीरपोषणादिकं समानकर्म । उद्गारादि नाग-कर्म । निमीलनादि कूर्मकर्म । क्षुत्करणं कृकरकर्म । तन्द्रा देवदत्तकर्म ।

श्चेष्मादि धनञ्जयकर्म । एवं नाडीस्थानं वायुस्थानं तत्कर्म च सम्यग्जात्वा नाडीसंशोधनं कुर्यात् ॥१५॥ यमनियमयुतः पुरुषः सर्वसङ्गविवर्जितः कृतविद्यः सस्यधर्मरतो जितकोधो गुरुशुश्वानिरतः पितृमातृविधेयः स्वाश्रमोक्तसदा-चारविद्वच्छिक्षितः फलमूलोदकान्वितं तपीवनं प्राप्य रम्यदेशे ब्रह्मघोषसम-न्विते स्वधर्मनिरतब्रह्मनित्समावृते फलमूलपुष्पवारिभिः सुसंपूर्णे देवायतने नदीतीरे ग्रामे नगरे वापि शुशोभनमठं नात्युचनीचायतमल्पद्वारं गोमया-दिलिसं सर्वरक्षासमन्वितं कृत्वा तत्र वेदान्तश्रवणं कुर्वन्योगं समारमेत्। मादी विनायकं संपूज्य खेष्टदेवतां नःवा पूर्वोक्तासने स्थित्वाप्राञ्चल उद्झुखो वापि खद्वासनेषु जितासनगतो विद्वान्समग्रीविश्रोनासाग्रहम्भ्रमध्ये शशास-हिस्बं पश्यक्षेत्राभ्यामसृतं पिबेत्। द्वादशमात्रया इडया वायुमापूर्योदरे स्थितं ज्वालावलीयुतं रेफविन्दुयुक्तमिमण्डलयुतं ध्यायेद्रेचयेत्पिङ्गलया । पुनः पिङ्गलयाऽऽपूर्य कुम्भित्वा रेचयेदिडया । त्रिचतुस्त्रिचतुःसप्तत्रिचतुर्मासपर्यन्तं त्रिसंधिषु तदन्तरालेषु च पट्कृत्व भाचरेबाडीशुद्धिभवति । ततः शरीरे लघु-दीप्तिवहिवृद्धिनादाभिव्यक्तिर्भवति ॥ १६ ॥ प्राणापानसमायोगः प्राणायामो अवति । रेचकपूरककुम्भकभेदेन स त्रिविधः । ते वर्णात्मकाः । तस्मात्प्रणव पुव प्राणायामः पद्माद्यासनस्यः पुमान्नासाग्रे शशभृद्धिम्बज्योत्स्राजाल-वितानिताकारमूर्ती रक्ताङ्गी हंसवाहिनी दण्डहस्ता वाला गायत्री भवति । उकारसूर्तिः श्वेताङ्गी ताक्ष्यवाहिनी युवती चक्रहस्ता सावित्री भवति । मकारमूर्तिः कृष्णाङ्गी वृषभवाहिनी वृद्धा त्रिशूलधारिणी सरस्वती भवति । अकारादित्रयाणां सर्वकारणमेकाक्षरं परं ज्योतिः प्रणवं भवतीति ध्यायेत्। इंडया बाह्याद्वायुमापूर्य पोडशमात्राभिरकारं चिन्तयन्प्रितं वायुं चतुः-षष्टिमात्राभिः कुम्भयित्वोकारं ध्यायन्प्रितं पिङ्गलया द्वात्रिंशनमात्रया मकार-मूर्तिध्यानेनैवं क्रमेण पुनः पुनः दुर्यात् ॥ १७ ॥ अथासनदढो योगी वदी मितहिताशनः सुषुम्नानाडीस्थमलशोषार्थं योगी बद्धपद्मासनो वायुं चन्द्रे-णापूर्व यथाशक्ति कुम्भयित्वा सूर्येण रेचियत्वा पुनः सूर्येणापूर्व कुम्भयित्वा चन्द्रेण विरेच्य यया त्यजेत्तया संपूर्व धारयेत्। तदेते श्लोका भवन्ति-प्राणं प्रागिडया पिनेन्नियमितं भूयोऽन्यया रेचयेःपीत्वा पिङ्गलया समीरणमयो बद्धा त्यजेद्वामया । सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाऽभ्यासं सदा तन्वतां ग्रुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥ १८ ॥ प्रातमध्यन्दिने सायमर्घरात्रे तु कुम्भकान् । शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समस्यसेत् ॥ १९ ॥ कनीयसि भवेत्स्वेदः कम्पो भवति मध्यमे । उत्तिष्ठत्युत्तमे प्राण्तोधे पद्मासनं महत् ॥ २० ॥ जलेन अमजातेन गाजमदीनमाचरेत् । इतता लघुता चापि तस्य गात्रस्य जायते ॥ २१ ॥ अभ्यासकाले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम् । ततोऽभ्यासे स्थिरीभृते न तावित्रयमग्रहः ॥ २२ ॥ यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वइयः शनैः शनैः। तथेव सेवितो वायुरन्यथा इन्ति साध्कस् ॥ २३ ॥ युक्तं युक्तं खजेद्वायुं युक्तं युक्तं च पूर्येत् । युक्तं युक्तं च बझीयादेवं सिद्धिमवायुयात् ॥ २४ ॥ यथेष्टधारणाद्वायोरनलस प्रदीपनम् । नादाभिव्यक्तिरारोग्यं जायते नाडिशोधनात् ॥ २५ ॥ विधिव-रप्राणसंयामेर्नाडी चके विशोधिते । सुपुन्नावदनं भिष्वा सुखाद्दिशति मास्तः ॥ २६ ॥ मारुते मध्यसंचारे मनःस्थेर्य प्रजायते । यो मनःसुस्थिरो भावः सैवावस्था मनोन्मनी ॥ २० ॥ पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जाळन्धरासिषः। कुम्भकान्ते रेचकादी कर्तव्यस्त् ड्वियाणकः ॥ २८ ॥ अधस्तास्कुञ्चनेनाञ्च कण्ठसंकोचने कृते। मध्ये पश्चिमतानेन खात्प्राणी ब्रह्मनाडिगः॥ २९॥ अपानमूर्ध्वमुखाप्य प्राणं कण्ठाद्धी नयन् । योगी जराविनिर्मुक्तः घोडती वयसा भवेत् ॥ ३० ॥ सुखासनस्थो दक्षनाड्या बहिःस्थं पवनं समाकृष्या-केशमानखायं कुम्भयित्वा सव्यनाड्या रेचयेत् । तेन कपाळशोधनं वातनाडीगतसर्वरोगसर्वविनाशनं भवति । हृदयादिकण्ठपर्यन्तं सखनं नासाभ्यां शनैः पवनमाकृष्य यथाशक्ति कुम्भयित्वा इडया विरेच्य गच्छं सि-छन्कुर्यात् । तेन श्हेष्महरं जठराभिवर्धनं भवति । वक्रेण सीश्कारपूर्वकं वायुं मृहीस्वा यथाशक्ति कुम्भिया नासाभ्यां रेचयेत् । तेन श्रुकृष्णालस्यनिद्रा न जायते । जिह्नया वायुं गृहीत्वा यथाशक्ति कुम्भयित्वा नासाभ्यां रेच-येत्। तेन गुल्मफ्रीहज्वरिपत्तञ्जुधादीनि नइपन्ति ॥ अथ कुस्थकः।स द्विवियः ् द्वितः े ।लक्षेति । रेचकपूरकयुक्तः सहितः । तद्विवर्जितः केवलः । केवलसिद्धिपर्यन सहितनभ्यसेत् । केवलक्रम्भके सिद्धे त्रिषु लोकेषु न तस्य दुर्लभं भवात । केवलकुम्भकाकुण्डलिनीबोधो जायते । ततः कृशवपुः प्रसन्नवदनो निर्म क्लोचनोऽभिव्यक्तनादो निर्मुक्तरोगजालो जित्रबिन्दुः पद्मिः भेवति । अन्तर्रुपं बहिर्दिष्टिनिमेषोन्मेषवर्जिता । एषा सा वैद्णवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ३१ ॥ अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनो योगी सदा वर्तते

इष्ट्या निश्चलतारया बहिरधः पत्र्यन्नपत्रयन्नपि । सुदेयं खलु खैचरी भवति सा छक्ष्येकताना शिवा शून्याशून्यविवर्जितं स्फुरति सा तस्वं पदं वैष्णवी ॥ ३२ ॥ अधीनभी छितलोचनः स्थिरमना नासाप्रदत्तेक्षणश्चनदार्कावपि छीन-हासुपनयक्तिष्यन्द्रभावोत्तरस् । ज्योतीरूपमशेषवाद्यरहितं देदीष्यमानं परं तरवं तत्परमस्ति वस्तुविषयं शाण्डिल्य विद्धीह तत् ॥ ३३ ॥ तारं ज्योतिषि संयोज्य किं चिदुक्तमयन्अवौ । पूर्वास्यासस्य मार्गोऽयमुनमनीकारकः क्षणात् ॥ ३४ ॥ तस्मात्खेचरीयुदामभ्यसेत् । तत उन्मनी भवति । ततो योग-निद्रा भवति । लब्धयोगनिद्रस्य योगिनः कालो नास्ति । शक्तिमध्ये मनः कुरवा शक्ति सानसमध्यगाम् । मनसा मन आलोक्य शाण्डिल्य स्वं सुखी अव ॥ ३५ ॥ खमध्ये कुरु चात्मानमात्ममध्ये च खं करु। सर्व च खमयं कुत्वा न किं चिद्पि चिन्तय ॥ ३६ ॥ बाह्यचिन्ता न कर्तव्या तथैवान्तर-चिन्तिका । सर्वचिन्तां परित्यज्य चिन्मात्रपरमो भव ॥ ३७ ॥ कर्पुरमनले यहरसैन्धवं सिलले यथा। तथा च लीयमानं सन्मनसत्वे विलीयते ॥३८॥ क्षेयं सर्वप्रतीतं च तज्ज्ञानं मन उच्यते । ज्ञानं ज्ञेयं समं नष्टं नान्यः पन्या द्वितीयकः ॥ ३९ ॥ श्रेयवस्तुपरित्यागाद्विलयं याति मानसम् । मानसे विलयं याते कैवल्यमविश्वव्यते ॥ ४० ॥ द्वी क्रमी चित्तनाशस्य योगी ज्ञानं हुनीश्वर । योगस्तद्वत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यंगवेक्षणम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्निरोधिते नूनसुपशान्तं मनो भवेत्। मनःस्पन्दोपशान्त्याऽयं संसारः प्रविलीयते । सूर्यालोकपरिस्पन्दशान्तौ व्यवहृतिर्यथा । शास्त्रसजनसंपर्कवेगा अवास-योगतः॥ ४३ ॥ अनास्थायां कृतास्थायां पूर्व संसारवृत्तिषु । य आविकत-ध्यानाचिरमेकतयोहितात् ॥ ४४॥ एकतस्वद्दबाभ्यासाध्याणस्यन्दो निरुध्यते । प्रकाचनिकायामाद्गुढाभ्यासादखेदजात् ॥४५॥ एकान्तध्यानयोगाच मनःस्प-व्दो निरुध्यते । ओङ्कारोचारणप्रान्तशब्दतस्वानुभावनात् । सुषुप्ते संविदा ज्ञाते आणस्पन्दो निर्व्यते ॥ ४६ ॥ तालुमूकगतां यताजिह्नयाकस्य घण्टिका**म् ।** अर्ध्वरन्ध्रगते प्राणे प्राणस्यन्दो निरुध्यते ॥ ४७ ॥ प्राणे गलितसंवित्तौ तालूर्ध्व द्वादशान्तरो । अभ्यासादूर्ध्वरन्ध्रेग प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ४८ ॥ द्वादशा-जुलपर्यन्ते नासाम्रे विमलेऽम्बरे । संविदृश्चि प्रशाम्यन्यां प्राणस्पन्दो निरुष्यते ॥ ४९ ॥ अमध्ये तारकालोकशान्तावन्तमुपागते । चेतनैकतने तदे

प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ५० ॥ ओमिल्येव यदुन्दूतं ज्ञानं ज्ञेयात्मकं ज्ञिवस् । असंस्पृष्टविकल्पांशं प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ५१ ॥ चिरकालं हृदेकान्तव्योमः संवेदनान्मुने । अवासनमनोध्यानात्प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ५२ ॥ एभिः क्रमेस्तथाऽन्येश्च नानासंकलपकिष्यतैः । नानादेशिकवक्रस्यैः प्राणस्पन्दो निरू-ध्यते ॥ ५३ ॥ आकुञ्चनेन कुण्डलिन्याः कवाटसुद्धाट्य मोक्षद्वारं विभेद्येत्। वेन मार्गेण गन्तव्यं तद्वारं मुखेनाच्छाच प्रसुप्ता कुण्डलिनी कुटिलाकारा सर्पवहेष्टिता भवति । सा शक्तिर्येन चालिता स्थात्स तु मुक्ती भवति । सा कुण्डितनी कण्ठोध्वेभागे सुप्ता चेद्योगिनां सुक्तये भवति । बन्धनायाधी मुढानाम् । इडादिमार्गद्वयं विहाय सुषुझामार्गेणागच्छेत्तद्विष्णोः परमं पद्म्। मस्द्भ्यसनं सर्वं मनोयुक्तं समभ्यसेत् । इतरत्र न कर्तव्या भनोवृत्ति-र्भनीषिणा ॥५४॥ दिवान पूजयेद्विष्णुं रात्रौ नैव प्रपूजयेत् । सततं पूजयेद्विष्णुं दिवारात्रं न पूजयेत् ॥५५॥ सुपिरो ज्ञानजनकः पञ्चल्लोतःसमन्वितः। तिष्ठते खेचरी मुद्रा त्वं हि शाण्डिल्य तां भज ॥५६॥ सव्यद्क्षिणनाडीस्थो मध्ये चरति मारुतः । तिष्ठतः खेचरी सुद्रा तिसन्स्थाने न संशयः ॥ ५७ ॥ इडापिङ्गलः योर्मध्ये शून्यं चैवानिलं प्रसेत् । तिष्ठन्ती खेचरी मुद्रा तत्र सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ ५८ ॥ सोमसूर्यद्वयोर्मध्ये निरालम्बतले पुनः । संस्थिता व्योमचके सा सुदा नाम्ना च खेचरी ॥ ५९ ॥ छेदनचालनदाहैः फलां परां जिह्नां कृत्वा इप्टिं अमध्ये स्थाप्य कपालकुहरे जिह्ना निपरीतगा यदा भवति तदा खेचरी मुद्रा जायते । जिह्ना चित्तं च खे चरति तेनोध्वीजिह्नः पुमानमृतो भवति । वामपादमूलेन योनिं संपीड्य दक्षिणपादं प्रसार्यं तं कराभ्यां ध्त्वा नासाभ्यां वायुमापूर्वं कण्ठबन्धं समारोप्योर्णतो (?) वायुं धारयेत्। तेन सर्वक्केशहानिः । ततः पीयूषमिव विषं जीर्यते । क्षयगुरुमगुदावर्तजीर्णस्य-गादिदोषा नइयन्ति । एष प्राणजयोपायः सर्वमृत्यूपघातकः । वामपादपार्धि योनिस्थाने नियोज्य दक्षिणचरणं वामोरूपिर संस्थाप्य वायुमापूर्य हृदये चुडुकं निधाय योतिमाकुञ्चय मनोमध्ये यथाशक्ति धारयिःवा स्वात्मानं भावयेत्। तेनापरोक्षसिद्धिः । बाह्यात्प्राणं समाकृष्य पूरियत्वोदरे स्थितम् । नाभिमध्ये च नासाम्रे पादाङ्क्षष्ठे च यततः॥ ६०॥ धारयेन्मनसा प्राणं सन्ध्याकालेषु वा सदा । सर्वरोगविनिर्मुक्तो भवेद्योगी गतक्कमः ॥ ६१ ॥ नासाग्रे वायुवि जयं अवति । नाभिमध्ये सर्वरोगविनाशः। पादाङ्ग्रष्टधारणाच्छरीरळघुता अवति । रसनाद्वायुमाकृष्य यः पिनेत्सततं नरः । श्रमदाहौ तु न स्यातां नइयन्ति व्याधयस्तथा ॥ ६२ ॥ सन्ध्ययोर्बाह्मणः काले वायुमाकृष्य यः पिनेत् । त्रिमासात्तस्य कल्याणी जायते वाक् सरस्वती ॥६३॥ एवं पण्मासा-क्यासारसर्वरोगनिवृत्तिः । जिह्नया वायुमानीय जिह्नामूळे निरोधयेत् । यः विवेदस्तं विद्वान्सकळं भद्रमञ्चते ॥ ६४ ॥ आत्मन्यात्मानमिडया धारयित्वा अवोरन्तरे विभेद्य त्रिदशाहारं व्याधिस्थोऽपि विमुच्यते ॥ ६५ ॥ नाडीभ्यां वायुमारोप्य नाभी तुन्दस्य पार्श्वयोः। घटिकैकां वहेद्यस्तु व्याधिभिः स विसुच्यते ॥ ६६ ॥ सासमेकं त्रिसन्ध्यं तु जिह्नयारोप्य मारुतम् । विसेव त्रिदशाहारं धारयेतुन्दमध्यमे ॥ ६७ ॥ ज्वराः सर्वेऽपि नइयन्ति विषाणि विविधानि च । सुहूर्तमिप यो निसं नासाम्रे मनसा सह ॥ ६८ ॥ सर्व तरित पाप्नानं तस्य जनमशतार्जितम् । तारसंयमात्सकळविषयज्ञानं भवित । नासात्रे चित्तसंयमादिनद्वो प्रज्ञानम् । तद्वश्वित्तसंयमाद्विछोकज्ञानम् । चञ्जुषि चित्तसंयमाःसर्वछोकज्ञानम् । श्रोत्रे चित्तस्य संयमाद्यमछोकज्ञानम् । तत्पार्थे संयमान्निकंतिलोकज्ञानम् । पृष्ठभागे संयमाद्वरुणलोकज्ञानम् । वामकर्णे संयमाद्वायुलोकज्ञानम् । कण्ठे संयमात्सोमलोकज्ञानम् । वाम-चक्षुषि संयमाच्छिवलोकज्ञानम् । मूर्श्वि संयमाद्रहालोकज्ञानम् । पादाधोभागे संयमादतळळोकज्ञानम् । पादे संयमाद्वितळळोकज्ञानम् । पादसन्धौ संय-सान्नितळलोकज्ञानम् । जङ्घे संयमात्सुतळलोकज्ञानम् । जानौ संयमान्महा-वललोकज्ञानम् । उरौ वित्तसंयमादसातललोकज्ञानम् । कटौ चित्तसंयमा-त्तलातकलोकज्ञानम् । नाभौ चित्तसंयमाद्भलोकज्ञानम् । कुक्षौ संयमाद्भव-र्छोकज्ञानम् । हृदि चित्तस्य संयमात्स्वर्छोकज्ञानम् । हृदयोध्वभागे चित्तसं-यमानमहर्लोकज्ञानम् । कण्ठे वित्तसंयमाजनोर्लोकज्ञानम्। भ्रूमध्ये चित्त-संयमात्तत्तपोलोकज्ञानम् । मृधिं चित्तसंयमात्सत्यलोकज्ञानम्। धर्माधर्म-संयमादतीतानागतज्ञानम् । तत्तज्ञन्तुध्वनौ चित्तसंयमात्सर्वजनतुरुतज्ञानम् । संचितकर्भणि चित्तसंयमात्पूर्वजातिज्ञानम् । परचिते चितसंयमात्परचित्त-ज्ञानम् । कायरूपे चित्तसंयमादन्याद्दयरूपम् । वले चित्तसंयमाद्रनुमदादि-वलम् । सूर्ये चित्तसंयमाञ्जवनज्ञानम् । चन्द्रे चित्तसंयमात्ताराव्युहज्ञानम् । धुवे तद्गतिदर्शनम् । स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् । नाभिचके कायव्यूद्ज्ञानम् । कण्ठकूपे ध्वास्पपासानिवृत्तिः । कूर्मनाड्यां स्थिर्यम् । तारे सिद्धदर्शनम् । कायाकाशसंयमादाकाशगमनम् । तत्तस्थाने संयमात्तत्तिसद्धयो भवन्ति ॥७॥ अथ प्रत्याद्दारः । स्व पञ्चविधः विषयेषु विचरतामिन्द्रियाणां वलादाद्दरणं प्रत्याद्दारः । यदात्पश्यति तत्सर्वमारमेति प्रत्याद्दारः । नित्यविद्दितकर्मफल् त्यागः प्रत्याद्दारः । सर्वविषयपराञ्चुस्तवं प्रत्याद्दारः । अष्टादश्च मर्मस्थानेषु कमाद्दारणं प्रत्याद्दारः । पादाञ्चष्ठगुल्फजङ्काजान् रूपायुमेदनाभिद्ददयक्षकः कूपतालुनासाक्षिभूमध्यललाटमूर्झा स्थानानि । तेषु कमाद्दारोद्द्वतिदृष्ठभमेण प्रत्याद्देत् ॥ ६९ ॥ अथ धारणा । सा त्रिविधा—आत्मिन मनोधारणं, दृद्दराकाशे बाद्धाकाशधारणं, पृथिव्यसेजोवाय्वाकाशेषु पञ्चमूर्तिधारणं चेति ॥ ७० ॥ अथ ध्यानम् । तद्दिविधं सगुणं निर्गुणं चेति । सगुणं मूर्तिध्यानम् । निर्गुणमात्मयाथात्म्यम् ॥ ७१ ॥ अथ समाधिः । जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था त्रिपुटीरहिता परमानन्दस्वरूपा ग्रुद्धचैतन्यात्मिका भवति ॥ ७२ ॥

इति शाण्डित्योपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ शाण्डिल्यो ह वै ब्रह्मिश्चितुर्षु वेदेषु ब्रह्मविद्यामलभमानः किं नामेत्यथर्वाणं भगवन्तमुपसन्नः पप्रच्छाधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां येन श्रेयो-ऽवाप्स्यामीति। सहोवाचाऽथर्वा शाण्डिल्य सत्यं विज्ञानमनन्तं ब्रह्म यस्मि-नित्रमोतं च प्रोतं च। यस्मिन्निर्दं सं च वि चैति सर्वं यस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति। तदपाणिपादमचक्षुःश्रोत्रमजिद्धमशरीरमम्बाद्यमनिर्देश्यम्। यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। यत्केवलं ज्ञानगम्यम्। प्रज्ञा च यस्मात्रम्तता पुराणी। यदेकमिद्धतीयम् । आकाशवत्सर्वगतं सुसूर्स्म निरक्षनं निष्क्रियं सन्मात्रं चिदानन्दैकरसं शिवं प्रशान्तममृतं तत्परं च ब्रह्म। तत्वमित्र। तज्ज्ञानेन हि विजानीहि। य एको देव आत्मशक्तिप्रधानः सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सर्वभूतान्तरात्मा सर्वभूताधिवासः सर्वभूतिगृढो भूत-योनियोगैकगम्यः। यश्च विश्वं सृजित विश्वं विभित्तं विश्वं भुक्के स आत्मा। आत्मिन तं तं लोकं विजानीहि। मा शोचीरात्मविज्ञानी शोकस्मान्तं गिमिष्यति॥

इति शाण्डिल्योपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अधेनं शाण्डिल्योऽथर्वाणं पप्रच्छ यदेकमक्षरं निष्क्रियं शिवं सन्मात्रं परंब्रह्म । तस्मात्कथमिदं विश्वं जायते कथं स्थीयते कथमिसँ हीयते । तन्मे संशयं छेत्तुमईसीति । स होवाचाथर्वा सत्यं शाण्डित्य परंब्रह्म निष्कियमक्ष-रमिति । अथाप्यस्यारूपस्य ब्रह्मणस्त्रीणि रूपाणि भवन्ति-सक्लं निष्कलं सक-किनक्कलं चेति। (?) यत्सत्यं विज्ञानमानन्दं निष्क्रियं निरञ्जनं सर्वगतं सुसूक्ष्मं सर्वतो मुखमिन देश्यममृतमिस्त तदिदं निष्कलं रूपम् । भधास्य या सहजा-स्त्यविद्या मूलप्रकृतिर्माया लोहितशुक्तकृष्णा। तया सहायवान् देवः कृष्ण-पिङ्गलो मसेश्वर ईटे। तदिदमसा सकलनिष्कलं रूपम्॥ अधेष ज्ञानमयेन तपसा चीयमानोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति । अधैतस्मात्तप्यमानात्सस्य-कामाश्रीण्यक्षराण्यजायन्त । तिस्रो व्याहृतयस्त्रिपदा गायत्री त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो वर्णास्त्रयोऽग्नयश्च जायन्ते । योऽसौ देवो भगवानसर्वेश्वर्यसंपत्तः सर्वव्यापी सर्वभूतानां हृद्ये संनिविष्टो मायावी मायया कीडति स महा। स विष्णुः स रुद्रः स इन्द्रः स सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि स एव पुरस्तात्स एव पश्चारस एवोत्तरतः स एव दक्षिणतः स एवाधस्तात्स एवोपरिष्टात्स एव सर्वम् । अथास्य देवस्यात्मशक्तेरात्मक्रीडस्य भक्तानुकम्पिनो दत्तात्रेयरूपा सुरूपा तनूरवासा इन्दीवरदलप्रख्या चतुर्बाहुरघोरापापकाशिनी । तदिदमस्य सकलं रूपम् ॥ १ ॥ भथ हैनमथर्वाणं शाण्डिल्यः पप्रच्छ भगवनसन्मात्रं चिदानन्दैकरसं कसादुच्यते परंब्रह्मेति । स होवाचाथर्वा यसाच बृहति बृंहयति च सर्वं तसादुच्यते परंब्रहोति । अथ कसादुच्यते आत्मेति । यसारसर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते सर्वमत्ति च तसादुच्यते आत्मेति। अथ कसादुच्यते महेश्वर इति । यसान्महत ईशः शब्दध्वन्या चात्मशत्तया च महत ईशते तसादुच्यते महेश्वर इति । अथ कसादुच्यते दत्तात्रेय इति । यंसात्सुदुश्चरं तपस्तप्यमानायात्रये पुत्रकामायातितरां तुष्टेन भगवता ज्योतिर्मयेनारमैव दत्तो यसाचानसूयायामत्रेस्तनयोऽभवत्तसादुच्यते दत्ता-त्रेय इति । अथ योऽस्य निरुक्तानि वेद स सर्वं वेद । अथ यो ह वै विद्ययैनं परमुपास्ते सोऽहमिति स ब्रह्मविद्भवति ॥ अत्रैते श्लोका भवन्ति— दत्तात्रेयं शिवं शान्तमिनद्रनीलिनमं प्रभुम् । आत्ममायारतं देवमवधूतं दिगम्बरम् ॥ १ ॥ भस्मोद्ध् लितसर्वाङ्गं जटाजूटधरं विभुम् । चतुर्वाहुमुदा- राङ्गं प्रफुङ्कमलेक्षणम् ॥ २ ॥ ज्ञानयोगनिधिं विश्वगुरुं योगिजनिषयम् । भक्तानुकम्पिनं सर्वसाक्षिणं सिद्धसेवितम् ॥ ३ ॥ एवं यः सततं ध्यायेदेवः देवं सनातनम् । स मुक्तः सर्पपापेभ्यो निःश्रेयसमवामुयात् ॥ ४ ॥ इत्यों सत्यमित्युपनिषत् ॥

इति शाण्डिल्योपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ इति शाण्डिल्योपनिषय्समासा ॥ ६१ ॥

पैङ्गलोपनिषत् ॥ ६२ ॥

पैज्ञलोपनिषद्वेद्यं परमानन्द्विञ्रहस् । परितः कलये रामं परमाक्षरवैभवस् ॥ ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः ॥

अथ ह पैङ्गलो याज्ञवल्कयमुपसमेत्य द्वादशवर्षग्रुश्रूषापूर्वकं परमरहस-कैवल्यमनुब्हीति पप्रच्छ । स होवाच याज्ञवल्कयः सदेव सोम्येदमप्र मा-सीत्। तन्नित्यमुक्तमविकियं सत्यज्ञानानन्दं परिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । तस्मिन्मरुशुक्तिकास्थाणुस्फटिकादौ जळरौप्यपुरुपरेखादिवछोहित-शुक्ककृष्णगुणमयी गुणसाम्यानिर्वाच्या मूळप्रकृतिरासीत् । तत्प्रतिविन्वितं यत्तत्साक्षिचैतन्यमासीत् । सा पुनर्विकृतिं प्राप्य सत्त्वोद्रिक्ताऽव्यक्ताल्यावरण-शक्तिरासीत् । तत्प्रतिविभ्वितं यत्तदीश्वरचैतन्यमासीत् । स स्वाधीनमायः सर्वज्ञः सृष्टिस्थितिलयानामादिकर्ता जगदङ्काररूपो भवति स्वस्मिन्वलीनं सकलं जगदाविभीवयति । प्राणिकर्मवशादेष पटो यहस्प्रसारितः प्राणि-कर्मक्षयात्युनिस्तरोभावयति । तस्मिन्नेवाखिकं विश्वं संकोचितपटवद्वर्तते। ईशाधिष्ठितावरणशक्तितो रजोदिका महदाख्या विश्लेपशक्तिरासीत्। तस्म-तिविम्वितं यत्तिद्धरण्यगर्भचैतन्यमासीत्। स महत्तत्वाभिमानी स्पष्टास्पष्ट-वपुर्भवति । हिरण्यगर्भाधिष्ठितविक्षेपशक्तितस्तमोद्गिकाहंकाराभिधा स्थूळ-शक्तिरासीत्। तत्प्रतिविभ्वतं यत्तद्विराद्वैतन्यमासीत्। स तद्भिमानी स्पष्टः वपुः सर्वस्थूलपालको विष्णुः प्रधानपुरुषो भवति । तस्मादास्मन आकाशः संभूतः । आकाशाहायुः । वायोरिप्तः । अग्नेरापः । अन्तः पृथिवी । त्विति

पञ्च तन्मात्राणि त्रिगुणानि भवन्ति । स्नष्टुकामो जगद्योतिस्तमोगुणमधिष्ठाय सूक्ष्मतन्मात्राणि भूतानि स्थूलीकर्तुं सोऽकामयत । सृष्टेः परिमितानि भूतान्येकमेकं द्विधा विधाय पुनश्चतुर्धां कृत्वा खस्त्रेतरद्वितीयांशेः पञ्चधा संयोज्य पञ्चीकृतभूतरनन्तकोटिब्रह्माण्डानि तत्तदण्डोचितचतुर्दशभुवनानि तत्तद्भवनोचितगोलकस्थूलशरीराण्यस्जत्। स पत्रभूतानां रजोंशांश्रतुर्धा कृत्वा भागत्रयात्पञ्चावृत्त्यात्मकं प्राणमस्जत् । स तेषां तुर्यभागेन कर्मेन्द्रि-याण्यसृजत् । स तेषां सत्त्वांशं चतुर्धा कृत्वा भागत्रयसमष्टितः पञ्चिकिया-वृथ्यात्मकमन्तः करणमसृजत् । स तेषां सस्वतुरीयभागेन ज्ञानेन्द्रियाण्य-सृजत् । सःवसमष्टित इन्द्रियपालकानस्जत् । तानि सृष्टान्यण्डे प्राचिक्षि-पत् । तदाज्ञया समष्टयण्डं व्याप्य तान्यतिष्ठन् । तदाज्ञ्याऽहंकारसमन्त्रितौ विराद स्थूलान्यरक्षत्। हिरण्यगर्भस्तदाज्ञया सूक्ष्माण्यपालयत् । अण्ड-स्थानि तानि तेन विना स्पन्दितुं चेष्टितुं वा न शेकुः। तानि चेतनीकर्तुं सोऽकामयत ब्रह्माण्डब्रह्मरन्ध्राणि समस्तव्यष्टिमस्तकान्विद्धयं तदेवानु-प्राविशत्। तदा जडान्यपि तानि चेतनवःस्वकर्माणि चकिरे । सर्वज्ञेशी मायालेशसमन्वितो व्यष्टिदेहं प्रविश्य तया मोहितो जीवत्वमगमत्। शरीर-श्रयतादात्म्यात्कर्तृत्वभोक्तृत्वतामगमत् । जाप्रस्वप्तसुषुप्तिमूच्छामरणधर्मयुक्तो घटीयन्नवदुद्विसो जातो मृत इव कुलालचक्रन्यायेन परिभ्रमतीति ॥ १ ॥

इति पैज्ञलोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ पैङ्गलो याज्ञवल्यमुवाच सर्वलोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकृद्विभुरीशः कथं जीवत्वमगमदिति । स होवाच याज्ञवल्यः स्थूलसूक्ष्मकारणदेहोद्भव-पूर्वकं जीवेश्वरस्वरूपं विविच्य कथयामीति सावधानेनैकाप्रतया श्रूयताम् । ईशः पञ्चीकृतमहाभूतलेशानादाय व्यष्टिसमध्याय्मकस्थूलशरीराणि यथान्नममकरोत् । कपालचर्माञ्चास्थिमांसनसानि पृथिव्यंशाः । रक्तमूत्रलालास्वेदादिक्षमंश्राः । श्रुचल्णोक्णमोहमेथुनाद्या अद्यंशाः । प्रचारणोत्तारणाश्वासादिका वार्यंशाः । कामकोधादयो व्योमांशाः । एतःसंवातं कर्मणि संचितं व्यादियुक्तं वाल्याद्यवस्थाभिमानास्पदं बहुदोषाश्रयं स्थूलशरीरं भवति ॥ अथापञ्चीकृतमहाभूतरजोंशभागत्रयसमष्टितः प्राणमस्वत् । प्राणापानव्यानोद्यानसमानाः प्राणवृत्तयः । नागकूर्मकृकरदेवदत्तधनंजया उपप्राणाः । हदासन्वाभिकण्ठसर्वोङ्गानि स्थानानि । आकाशादिरजोगुणतुरीयभागेन कर्मेन्द्रिय-

मस्जत् । वाक्पाणिपादपायूपस्थास्तद्वत्तयः । वचनादानगमनविसर्गानन्दास-द्विषयाः ॥ एवं भूतसन्वांशभागत्रयसमष्टितोऽन्तःकरणमसृजत् । अन्तःकरणः भनोबुद्धिचित्ताहंकारास्तद्दृत्तयः । संकल्पनिश्चयसारणाभिमानानुसंधानास्तिः षयाः । गळवदननाभिहृदयञ्जूमध्यं स्थानम् । भूतसत्त्वतुरीयभागेन ज्ञानेन्द्रिः यसस्जत् । श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघाणास्तहृत्तयः । शब्दस्पर्शस्परसगन्धास्तिः षयाः । दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीनद्गोपेनद्रमृत्युकाः । चन्द्रो विष्णुश्चतुर्वेत्रः ॥ अथान्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्द्रमयाः शंभुश्च करणाधिपाः पञ्ज कोशाः । अन्नरसेनेव भूत्वाऽन्नरसेनाभिवृद्धि प्राप्यान्नरसमयपृथियां यद्विलीयते सोऽन्नमयकोशः । तदेव स्थूलशरीरस् । कर्मेन्द्रियेः सह प्राणादिः पद्मकं प्राणमयकोशः । ज्ञानेन्द्रियैः सह मनो सनोसयकोशः । ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमयकोशः। एतस्कोशत्रयं लिङ्गशरीरम् । स्वरूपाज्ञानमानन्दः अयकोशः । तत्कारणशरीरस् । अथ ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं प्राणादि-पञ्चकं नियदादिपञ्चकमन्तःकरणचतुष्टयं कामकमैतमांस्यष्टपुरम् ॥ ईशाज्या विराजो व्यष्टिदेहं प्रविश्य बुद्धिमधिष्टाय विश्वत्वमगमत् । विज्ञानात्मा विदा-भासो विश्वो व्यावहारिको जाग्रत्स्थूलदेहाभिमानी कर्मभूरिति च विश्वस नाम भवति । ईशाज्ञ्या सूत्रात्मा व्यष्टिसुक्ष्मशरीरं प्रावश्य मन अधिष्ठाय तैजसत्वमगमत् । तैजसः प्रातिभासिकः स्वप्तकिएत इति तेजसस्य नाम भवति । ईशाज्ञया मायोपाधिरव्यक्तसमन्वितो व्यष्टिकारणशरीरं प्रविश्य प्राज्ञत्वसगमत् । प्राज्ञोऽविच्छिनः पारमार्थिकः सुपुस्यभिमानीति प्राज्ञस नाम भवति । अव्यक्तलेशाज्ञानाच्छादितपारमार्थिकजीवस्य तत्त्वमसादिवा-क्यानि ब्रह्मणेकतां जगुर्नेतरयोर्व्यावहारिकप्रातिभासिकयोः । अन्तःकरणप्रति॰ बिभ्वितचैतन्यं यत्तदेवावस्थात्रयभाग्भवति । स जाग्रत्स्वप्रसुषुष्ठयवस्थाः प्राप्य घटीयञ्जबदुद्विमो जातो सृत इव स्थितो अवति । अथ जाप्रस्वमसुषुप्ति-मुच्छीमरणाद्यवस्थाः पञ्च भवन्ति ॥ तत्तद्देवतात्रहान्वितः श्रोत्रादिः ज्ञानेन्द्रियेः शब्दाद्यर्थविषयग्रहणज्ञानं जाग्रदवस्था भवति । तत्र भ्रूमध्यं गतो जीव आपादमस्तकं व्याप्य कृषिश्रवणाद्यखिलकियाकर्ता भवति । तत्तत्फलभुक् च भवति । लोकान्तरगतः कर्मार्जितफर्लं स एव अुद्धे । स सार्वभौमवद्य-वहाराच्छान्तोऽन्तर्भवनं प्रवेष्टुं मार्गमाश्रित्य तिष्ठति । करणोपरमे जाप्रसं-स्कारोत्यप्रवीधवद्राद्यग्राहकरूपर्फुरणं स्वप्नावस्था भवति । तत्र विश्व एव

2

₫-

₹.

हे.

5:

Π:

ir

}.

:

₹-

11

ī

य

य

स

T-

7.

य

जाप्रद्यवहारकोपाबाडीमध्यं चरंस्तैनसस्वमवाप्य वासनारूपकं जगद्देशित्र्यं स्वभासा भासयन्यथेप्सितं स्वयं भुंद्रे ॥ चित्तैककरणा सुपुस्यवस्था भवति । अमविश्रान्तशकुनिः पक्षो संहत्य नीडाभिमुखं यथा गच्छति तथा जीवोऽपि जाग्रस्वप्तप्रपञ्चे व्यवहृत्य श्रान्तोऽज्ञानं प्रविश्य स्वानन्दं सुक्के ॥ भकस्मानसु-द्वरदण्डायेसाडितवद्भयाज्ञ।नाभ्यामिनिद्भयसंघातैः कम्पश्चिव सूच्छी अवति । जामस्वमसुवृत्तिमूच्छीवस्थानामन्याऽऽत्रह्मादिस्तम्वपर्यन्तं सर्वजीवभयप्रदा स्थूलदेहविसर्जनी मरणावस्था भवति । कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि तत्तद्विषयान्त्राणान्संहत्य कामकर्मान्वित अविद्याभूतवेष्टितो बीबो देहान्तरं प्राप्य छोकान्तरं गच्छति । प्राक्कमैफलपाकेनावर्तान्तरकीट-बृद्धिश्रानित नैव गच्छति । सत्कर्मपरिपाकतो बहुनां जन्मनामन्ते नृणां मोक्षेच्छा जायते । तदा सद्वरुमाश्रित्य चिरकालसेवया बन्धं मोक्ष कश्चित्रयाति । अविचारकृतो बन्धो विचारान्मोक्षो भवति । तस्मास्सदा विचारयेत् । अध्यारोपापवादतः स्वरूपं निश्चयीकर्तुं शक्यते । तस्मास्सदा विचारयेजगजीवपरमात्मनो जीवभावजगद्भावबाधे प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मेवाव-शिष्यत इति ॥ १ ॥

इति पैन्नलोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ हैनं पैङ्गलः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं महावाक्यविवरणमनुबूहीति । स होवाच याज्ञवल्क्यस्तरवमिस त्वं तदिस त्वं ब्रह्मास्यहं ब्रह्मासीत्यनुसंघानं कुर्यात् । तत्र पारोक्ष्यशवलः सर्वज्ञत्वादिलक्षणो मायोपिधः सिचदानन्द-लक्षणो जगद्योनिस्तत्पदवाच्यो भवति । स एवान्तःकरणसंभिन्नवोधोऽस्मत्ययावलम्बनस्त्वंपदवाच्यो भवति । परजीवोपिधमायाविद्ये विहाय तत्त्वं-पदलक्ष्यं प्रत्याभिन्नं ब्रह्म । तत्त्वमसीत्यहं ब्रह्मास्मीति वाक्यार्थविचारः श्रवणं भवति । एकान्तेन श्रवणार्थानुसंघानं मननं भवति । श्रवणमनननिर्विचि-कित्स्थेऽर्थे वस्तुन्येकतानवत्त्या चेतःस्थापनं निदिष्यासनं भवति । ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवद्ययौकगोचरं चित्तं समाधिर्भवति । तदानीमात्मगोचरा वृत्तयः समुत्थिता अज्ञाता भवन्ति । ताः सरणादनुमीयन्ते । इ्हानादिसंसारे संचिताः कर्मकोटयोऽनेनैव विलयं यान्ति । ततोऽभ्यासपाट-वात्सहस्रशः सदाऽस्तवारा वर्षन्ति । ततो योगवित्तमाः समाधि धर्ममेषं प्राहुः । वासनाजाले निःशेषममुना प्रविकापिते कर्मसंचये पुण्यपापे समुलो-

न्यूलिते प्राक्परोक्षमपि करतलामलकवद्वाक्यमप्रतिबद्धापरोक्षसाक्षात्कारं प्रसूयते । तदा जीवन्मुक्तो भवति ॥ ईशः पञ्चीकृतभूतानामपञ्चीकरणं कर्त सोऽकामयत । ब्रह्माण्डतद्गतलोकान्कार्यरूपांश्च कारणत्वं प्रापयित्वा ततः सुस्माङ्गं कर्मेन्द्रियाणि प्राणांश्व ज्ञानेन्द्रियाण्यन्तःकरणचतुष्ट्यं चैकीकृत्य सर्वाणि भौतिकानि कारणे भूतपञ्चके संयोज्य भूमि जले जलं वहीं वहिं वायौ वायुमाकाशे चाकाशमहंकारे चाहंकारं महति महद्व्यक्तेऽव्यक्तं पुरुषे क्रमेण विलीयते । विराद्विरण्यगर्भेश्वरा उपाधिविलयात्परमात्मनि लीयन्ते । पञ्चीकृतमहाभूतसंभवकर्मसंचितस्थूलदेहः कर्मक्षयात्सत्कर्मपरिपाकतोऽप-ब्रीकरणं प्राप्य सूक्ष्मेणेकीभूत्वा कारणरूपत्वमासाद्य तत्कारणं कूटस्थे प्रस्यगात्मनि विलीयते । विश्वतैजसप्राज्ञाः स्वस्वोपाधिलयात्प्रस्यगासमी लीयन्ते । अण्डं ज्ञानाझिना दुग्धं कारणैः सह परमात्मनि लीनं भवति । ततो ब्राह्मणः समाहितो भूत्वा तत्त्वंपदैक्यमेव सदा कुर्यात् । ततो मेघापाचेंऽग्रुमानिवात्माऽऽविभेवति । ध्यात्वा मध्यस्थमात्मानं कलशान्तर-दीपवत् । अङ्ग्रष्टमात्रमात्मानमधूमज्योतिरूपकम् ॥ १ ॥ प्रकाशयन्तमन्तः स्थं ध्यायेत्कूटस्थमव्ययम् । ध्यायन्नास्ते मुनिश्चेत्र चासुप्तेरामृतेस्तु यः ॥ २॥ जीवन्मुक्तः स विज्ञेयः स धन्यः कृतकृत्यवान् । जीवन्मुक्तपदं त्यक्ता स्बदेहे कालसाःकृते । विशलदेहसुक्तःवं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ३ ॥ अशब्द्मस्पर्शमरूपमन्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्यवच यत् । अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं तदेव शिष्यत्यमलं निरामयम् ॥ ४ ॥ इति ।

इति पैज्ञलोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ हैनं पैङ्गलः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं ज्ञानिनः किं कर्म का च स्थितिरिति । स होवाच याज्ञवल्क्यः । अमानित्वादिसंपन्नो मुमुक्षुरेकविंशतिकुलं
तारयति । ब्रह्मविन्मात्रेण कुलमेकोत्तरशतं तारयति । आत्मानं रथिनं विद्वि
शारिरं रथमेव च । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ १ ॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांसेषु गोचरान् । जङ्गमानि विमानानि हृद्यानि मनीविणः ॥ २ ॥ आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तत्याहुर्मेहर्पयः । ततो नारायणः
साक्षाद्धृद्ये सुप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥ प्रारब्धकर्मपर्यन्तमहिनिर्मोकवद्यवहरिते ।
चन्द्रवचरते देही स मुक्तश्चानिकेतनः ॥ ४ ॥ तीर्थे श्वपचगृहे वा तर्तु
विहास याति कैवल्यम् । प्राणानवकीर्यं याति कैवल्यम् ॥ तं पश्चाहिग्विलं

क्रुयीद्थवा खननं चरेत् । पुंसः प्रवजनं प्रोक्तं नेतराय कदाचन ॥ ५॥ नाशीचं नाग्निकार्यं च न पिण्डं नोदकिकया। न कुर्यात्पार्वणादीनि ब्रह्मसू-ताय भिक्षवे ॥ ६ ॥ दम्भस्य दहनं नास्ति पक्षस्य पचनं यथा । ज्ञानाग्नि-द्रमधदेहस्य न च श्रादं न च क्रिया ॥ ७ ॥ यावचोपाधिपर्यन्तं तावच्छ-श्रूषयेद्वरुम् । गुरुवद्वरुभार्यायां तत्पुत्रेषु च वर्तनम् ॥ ८ ॥ शुद्धमानसः शुद्धचिद्र्यः सहिष्णुः सोऽहमस्मि सहिष्णुः सोऽहमसीति प्राप्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेये परमात्मनि हृदि संस्थिते देहे लब्धशान्तिपदं गते तदा प्रभा-मनोबुद्धिशून्यं भवति । असृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम् । एवं स्वात्मानं ज्ञात्वा वेदैः प्रयोजनं किं भवति । ज्ञानामृततृप्तयोगिनो न किंचिकर्तव्य-मस्ति तदस्ति चेन्न स तत्त्वविद्भवति । दूरस्थोऽपि न दूरस्थः पिण्डवर्जितः पिण्डस्थोऽपि प्रत्यगात्मा सर्वव्यापी भवति । हृद्यं निर्मेलं कृत्वा चिन्तयित्वान प्यनामयम् । अहमेव परं सर्वमिति पश्येत्परं सुखम् ॥ ९ ॥ यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरं घृते घृतम् । अविशेषो भवेत्तद्वजीवात्मपरमातमनौः ॥ १०॥ देहे ज्ञानेन दीपिते बुद्धिरखण्डाकाररूपा यदा भवति तदा विद्वान्ब्रह्मज्ञान। श्रिना कर्भवन्धं निर्देहेत्। ततः प्रवित्रं प्रमेश्वराख्यमद्वेतरूपं विमलाम्बराभम् । यथोदके तोयमनुप्रविष्टं तथात्मरूपो निरुपाधिसंस्थितः ॥ १९ ॥ आकाशवरसूक्ष्मशरीर आत्मा न दृश्यते वायुवदन्तरात्मा । स बाह्यमभ्यन्तरनिश्रलात्मा ज्ञानोल्कया पश्यति चान्तरात्मा ॥ १२ ॥ यत्र यत्र मृतो ज्ञानी येन वा केन मृत्युना। यथा सर्वगतं व्योम तत्र तत्र छयं गतः ॥ १३ ॥ घटाकाशमिवारमानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः । स गच्छति निरालम्बं ज्ञानालोकं समन्ततः ॥ १४ ॥ तपेद्वर्षसहस्राणि एकपादस्थितो नरः । एतस्य ध्यानयोगस्य कलां नाईति घोडशीम् ॥ १५॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं तत्सर्वं ज्ञातु-मिच्छति । अपि वर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति ॥ १६॥ विज्ञेयोऽ-क्षरतन्मात्रो जीवितं वापि चन्नलम् । विहाय शास्त्रजालानि यत्सत्यं तदु-पास्यताम् ॥ १७ ॥ अनन्तकर्मशोचं च जपो यज्ञस्तथैव च । तीर्थयात्रामि-गमनं यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ १८॥ अहंब्रह्मेति नियतं मोक्षहेतुर्महास्म-नाम् । द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च ॥ १९॥ ममेति बध्यते जन्तु निंभीमेति विमुच्यते । मनसो ह्युन्मनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ २०॥ यदा यास्युन्मनीभावस्तदा बत्परमं पदम् । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम् १। २१ ॥ तत्र तत्र परं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम् । हन्यान्मुष्टिभिराकाशं ध्रुधार्तः खण्डयेतुषम् ॥ २२ ॥ नाहंब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्तिनं जायते । य एतदुपनिषदं नित्यमधीते सोऽग्निप्तो भवति । स वायुप्तो भवति । स स्वद्भ्यतो भवति । स ब्रह्मप्तो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वेषु वेदेष्वधीतो भवति । स सर्वेषद्वतचर्यासु चिरतो भवति । तेनेतिहासपुराणानां रुदाणां शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । दश पूर्वान्द्शोत्तरान्युनाति । स पङ्किपावनो भवति । स महान्भवति । ब्रह्महत्यासुराणानस्यणं सेयगुरुतलपगमनतस्यंयोगियातकेभ्यः पूर्तो भवति । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततस् ॥ तद्विषासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्थत्यसमं पदम् ॥ २३ ॥

ॐ सत्यमित्युपनिषत्॥ ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः॥ इति पैङ्गलोपनिषत्समाक्षा॥ ६२॥

भिक्षुकोपनिषत् ॥ ६३ ॥

भिक्षूणां पटकं यत्र विश्रान्तिमगमत्सदा । तत्रेपदं ब्रह्मतत्त्वं ब्रह्ममात्रं करोतु मास् ॥

क पूर्णमद इति शानितः॥

ॐ अथ भिक्षूणां मोक्षार्थिनां कुटीचकवहूदकहंसपरमहंसाश्चेति चत्वारः । कुटीचका नाम गौतमभरद्वाजयाज्ञवल्क्यविसष्टप्रभृतयोऽष्टे। प्रासांश्चरन्तो योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । अथ बहूदका नाम त्रिदण्डकमण्डलुशिखाय-ज्ञोपवीतकाषायवस्त्रधारिणो ब्रह्मार्षगृहे मधुमांसं वर्जयित्वाऽष्टे। प्रासान्भेक्षा-चरणं कृत्वा योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । अथ हंसा नाम प्राम एकरात्रं नगरे पद्धरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रं तदुपरि न वसेयुः । गोमूत्रगोमयाहारिणो नित्यं चानद्वायणपरायणा योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । अथ परमहंसा नाम संवर्तकारुणिश्वेतकेतुजडभरतद्तात्रेयग्रुकवामदेवहारीतकप्रभृतयोऽष्टो प्रासां-श्चरन्तो योगमार्गे मोक्षमेव प्रार्थयन्ते । वृक्षमूळे यूच्यगृहे इमशानवासिनो

ş

वा साम्बरा वा दिगम्बरा वा । न तेषां धर्माधर्मों लाभालाभों गुद्धागुद्धौ द्वेतवर्जिता समलोष्टाइमकाञ्चनाः सर्ववर्णेषु भेशाचरणं कृरवा सर्वत्रास्मेवेति प्रश्यित्त । भथ जातरूपधरा निर्द्धन्द्वा निष्परिप्रद्याः गुद्धध्यानपरापणा भारम-निष्ठाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले भेशमाचरन्तः शून्यागारदेवगृहतृणकूट-वल्मीकवृश्चमूलकुलालशालाभिहोत्रवालानदीपुलिनगिरिकन्दरकुहरकोटरनि-र्श्वरस्थिण्डले तत्र ब्रह्ममार्गे सम्यवसंपन्नाः गुद्धमानसाः परमहंसाचरणेन संन्यासेन देहत्यांगं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिष्त् ॥ १ ॥

ध्र्रं पूर्णमद इति शान्तिः॥ इति भिक्षुकोपनिषःसमाप्ता॥ ६३॥

महोपनिषत् ॥ ६४ ॥

यनमहोपनिपद्वेद्यं चिदाकाशतया स्थितम् । परमाद्वेतसाम्राज्यं तद्रामब्रह्म मे गतिः ॥ ॐ भाष्यायन्तितति शान्तिः॥

अथातो महोपनिपदं व्याख्यास्यामस्तदाहुरेको ह वै नारायण आसी ब्र ब्रह्मा नेशानो नापो नाभीषोमे। नेमे द्यावाप्टियवी न नक्षत्राणि न स्यों न चन्द्रमाः। स एकाकी न रमते। तस्य ध्यानान्तः स्थस्य यज्ञसोममुच्यते। तस्मिन्पुरुषाश्चतुर्देश जायन्ते। एका कन्या। दशेन्द्रियाणि मन एकादशं तेजः। द्वादशोऽहंकारः। त्रयोदशकः प्राणः। चतुर्दश आत्मा। पञ्चदशी वुद्धिः। भूतानि पञ्च तन्मात्राणि। पञ्च महाभूतानि। स एकः पञ्चविंशतिः पुरुषः। तत्पुरुषं पुरुषो निवेदय नास्य प्रधानसंवत्सरा जायन्ते। संवत्सरा-द्विजायन्ते। अथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसाऽध्यायत। तस्य ध्यानान्तः स्थस्य ललाटा इयक्षः श्रूलपाणिः पुरुषो जायते। विश्वच्छ्रयं यशः सत्यं व्रह्मचर्यं तपो वैराग्यं मन ऐश्वर्यं सप्रणवा व्याहृतय ऋग्यज्ञः सामाथवी-क्रिरसः सर्वाणि छन्दांसि तान्यक्रे समाश्चितानि। तस्मादीशानो महादेवो महादेवः। षथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसाऽध्यायत। तस्य ध्यानान्तः स्थस्य ललाटा स्वेदोऽपतत्। ता इमाः प्रतता आपः ततस्तेजो हिरण्मयमण्डम्। तत्र ब्रह्मा चतुर्मुकोऽज्ञायत। सोऽध्यायत्। पूर्वाभिमुको भूत्वा भूरिति व्याहृतिगीयत्रं छन्द ऋग्वेदोऽझिदेंवता। पश्चिमाभिमुखो भृत्वा भुविति व्याहृतिखेष्ठुमं छन्दो यजुवेदो वायुदेंवता। उत्तराभिमुखो भृत्वा स्विति व्याहृतिजीगतं छन्दः सामवेदः सूर्यो देवता। दक्षिणाभिमुखो भृत्वा महिति व्याहृतिजीगतं छन्दोऽथर्ववेदः सोमो देवता। सहस्रशीर्षं देवं सहस्राक्षं विश्वशंभुवम्। विश्वतः परमं निस्यं विश्वं नारायणं हिरम्। विश्व- सेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति। पति विश्वेश्वरं देवं समुद्दे विश्वरूपिणम्। पद्मकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकोशसंनिभम्। हृद्यं चाप्यघोमुखं संतस्य (?) सीत्वराभिश्व। तस्य मध्ये महानार्चिविश्वाचिविश्वतोमुखम्। तस्य मध्ये विह्व- शिखा अणीयोध्वां व्यवस्थिता। तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः। स श्रद्धा स ईशानः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराडिति महोपनिषत् ॥ १॥ इति महोपनिषत् ॥ १॥

शुको नाम महातेजाः स्वरूपानन्दतत्परः । जातमात्रेण मुनिराइ यत्सत्यं तद्वाप्तवान् ॥ ३ ॥ तेनासौ स्वविवेकेन स्वयमेव महामनाः । प्रविचार्यं चिरं साधु स्वात्मनिश्चयमाप्तवान् ॥ २ ॥ अनाख्यत्वादगम्यत्वान्मनः पष्टेन्द्रिय-स्थितेः। चिन्मात्रमेवमात्माणुराकाशाद्पि सूक्ष्मकः॥ ३॥ चिद्णोः परम-स्यान्तःकोटिब्रह्माण्डरेणवः । उत्पत्तिस्थितिमभ्येत्य लीयन्ते शक्तिपर्ययात् ॥ ४॥ आकाशं बाह्यशून्यत्वादनाकाशं तु चित्वतः। न किंचिद्यदिनदेशयं वस्तु सत्तेति किंचन ॥ ५॥ चेतनोऽसौ प्रकाशत्वाद्वेद्याभावाच्छिलोपमः । स्वात्मनि व्योमनि स्वस्थे जगदुन्मेषचित्रकृत् ॥ ६॥ तद्भागत्रमिदं विश्वमिति न स्यात्ततः पृथक् । जगद्भेदोऽपि तद्भानमिति भेदोऽपि तन्मयः॥ ७॥ सर्वगः सर्वसंबन्धो गत्यभावान्न गच्छति । नास्त्यसावाश्रयाभावात्सद्रूपत्वाद्यास्ति च ॥ ८ ॥ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातेर्दातुः परायणम् । सर्वसंकल्पसंन्यासश्चेतसा यत्परि-प्रहः॥ ९॥ जाप्रतः प्रत्ययाभावं यस्याहुः प्रत्ययं बुधाः। यत्संकोचिविका-साभ्यां जगत्प्रलयसृष्टयः॥ १०॥ निष्ठा वेदान्तवाक्यानामथ वाचामगोचरः। अहं सच्चित्परानन्दब्रह्मैवास्मि न चेतरः ॥ ११ ॥ स्वयैव सूक्ष्मया बुद्धा सर्व विज्ञातवाञ्छुकः । स्वयं प्राप्ते परे वस्तुन्यविश्रान्तमनाः स्थितः ॥ १२ ॥ इदं वस्विति विश्वासं नासावात्मन्युपाययौ । केवलं विररामास्य चेतो विषय-चापलम् । भोगेभ्यो भूरिभङ्गेभ्यो धाराभ्य इव चातकः॥ १३॥ एकदा

सोऽमलप्रज्ञो मेरावेकान्तसंस्थितः । पप्रच्छ पितरं भक्तया कृष्णद्वेपायनं मुनिम् ॥ १४ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं मुने । कथं च प्रशमं याति किं यस्कस्य कदा वद ॥ १५ ॥ एवं पृष्टेन मुनिना व्यासेनाखिलमा-स्मजे । यथावद् खिलं प्रोक्तं वक्तव्यं विदितात्मना ॥ १६ ॥ अज्ञासिषं पूर्वमे-वमहमित्यथ तत्पितुः । स शुकः स्वकया बुद्धा न वाक्यं बहु मन्यते ॥ १७॥ व्यासोऽपि भगवान्बुद्धा पुत्राभिप्रायमीदशम् । प्रत्युवाच पुनः पुत्रं नाहं जानामि तस्वतः ॥ १८ ॥ जनको नाम भूपालो विद्यते मिथिलापुरे । यथावद्वेत्यसौ वेद्यं तस्मात्सर्वमवाष्यसि ॥ १९ ॥ पित्रेत्युक्तः शुकः प्राया-स्युमेरोर्वसुधातलम् । विदेहनगरीं प्राप जनकेनाभिपालिताम् ॥ २०॥ काचेदितोऽसी याष्टीकैर्जनकाय महात्मने । द्वारि व्याससुतो राजव्युकोऽत्र श्थितवानिति ॥ २१ ॥ जिज्ञासार्थं ग्रुकस्यासावास्तामेवेत्यवज्ञया । उन्तरवा बसूव जनकस्तूव्णीं सप्त दिनान्यथ ॥ २२ ॥ ततः प्रवेशयामास जनकः गुकमङ्गणे । तत्राहानि स ससैव तथैवावसदुन्मनाः ॥ २३ ॥ ततः प्रवेश-यामास जनकोऽन्तःपुराजिरे । राजा न दश्यते तावदिति सप्त दिन।नि तम् ॥ २४ ॥ तत्रोन्मदाभिः कान्ताभिभोजनैभीगसंचयैः। जनको लालयामास क्कं शशिनिभाननम् ॥ २५॥ ते भोगास्तानि भोज्यानि व्यासपुत्रस्य तन्मनः। नाजहुर्भन्दपवनो बद्धपीठिमवाचलम् ॥ २६ ॥ केवलं सुसमः स्वच्छो मोनी सुदितमानसः। संपूर्ण इव शीतांशुरतिष्ठदमलः शुकः॥ २०॥ परिज्ञात-स्वभावं तं शुकं स जनको नृपः । भानीय मुदिताःमानमवलोक्य ननाम ह ॥ २८ ॥ निःशेषितजगस्कार्यः प्राप्ताखिलमनोरथः । किमीप्सितं तवेत्याह कृतस्वागत आह तम् ॥ २९ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं गुरो । कथं प्रशममायाति यथावत्कथयाशु मे ॥ ३०॥ यथावदिख्छं प्रोक्तं जनकेन महात्मना । तदेव तत्पुरा प्रोक्तं तस्य पित्रा महाश्विया ॥ ३१ ॥ स्वयमेव सया पूर्वमभिज्ञातं विशेषतः । एतदेव हि पृष्टेन पित्रा मे समुदाहृतम् ॥३२॥ भवताप्येष एवार्थ: कथितो वाग्विदां वर । एष एव हि वाक्यार्थः शास्त्रेषु परिदृश्यते ॥ ३३ ॥ मनोविकल्पसंजातं तद्विकल्पपरिक्षयात् । क्षीयते दग्ध-संसारो निःसार इति निश्चितः ॥ ३४ ॥ तिकमेतनमहाभाग सत्यं बूहि ममाचलम्। खत्तो विश्रममाप्तीमि चेतसा अमता जगत् ॥ ३५॥ ऋणु वावदिदानीं स्वं कथ्यमानमिदं मया। श्री गुकं ज्ञानविस्तारं बुद्धिसारान्तरा-

न्तरम् ॥ ३६ ॥ यहिज्ञानात्युमानसद्यो जीवनमुक्तत्वमामुयात् ॥ ३७ ॥ दस्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम् । संपन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणित-र्वृतिः ॥ ३८ ॥ अशेषेण परित्यागो वासनायां य उत्तमः । मोक्ष इत्युच्यते सिन्धः स एव विमलक्रमः ॥ ३९ ॥ ये शुद्धवासना भूयो न जन्मानर्थभा-गिनः। ज्ञातज्ञेयास्त उच्यन्ते जीवन्युक्ता महाधियः॥ ४०॥ पदार्थभाव-नादाद्धं वन्ध इत्यभिधीयते । वासनातानवं ब्रह्मनमोक्ष इत्यभिधीयते ॥ ४१॥ तपः प्रभृतिना यस्मै हेतुनैव विना पुनः । भोगा इह न रोचन्ते स जीवन्मुक उच्यते ॥ ४२ ॥ क्षापतत्सु यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतः । न हृष्यति ग्लायति यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४३ ॥ हर्षामर्पभयकोधकामकार्पण्य-दृष्टिभिः । न परामृश्यते योऽन्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४४ ॥ अहंकारमयी त्यक्ता वासनां लीक्येव यः । तिष्ठति ध्येयसंत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४५ ॥ ईप्सितानीप्सिते न स्तो यस्यान्तर्वितिदृष्टिषु । सुषुप्तिवद्यश्चरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४६ ॥ अध्यात्मरतिरासीनः पूर्णः पावनमानसः। प्राप्तानुत्तमविश्रान्तिर्न किंचिदिह वान्छति । यो जीवति गतस्रेहः स जीव-न्मुक्त उच्यते ॥ ४७ ॥ संवेधेन हृदाकाशे मनागपि न लिप्यते । यसासा-वजडा संवित्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४८ ॥ रागद्वेषो सुखं दुःखं धर्माधर्मी फलाफले । यः करोत्यनपेक्ष्येव स जीवन्सुक्त उच्यते ॥ ४९ ॥ मौनवान्निरहं-भावो निर्मानो मुक्तमःसरः। यः करोति गतोद्वेगः स जीवनमुक्त उच्यते ॥ ५० ॥ सर्वत्र विगतस्नेहो यः साक्षिवदवस्थितः । निरिच्छो वर्तते कार्ये स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५१ ॥ येन धर्ममधर्म च मनोमननमीहितम् । सर्व-मन्तःपरित्यक्तं स जीवन्मुक्त छच्यते ॥ ५२ ॥ यावती दृश्यकलना सकलेयं विलोक्यते । सा येन सुष्ठु संत्यका स जीवन्युक्त उच्यते ॥ ५३ ॥ कट्वम्ललवर्णं तिक्तममृष्टं मृष्टमेव च। सममेव च यो भुक्के स जीवन्मुक्त उच्यते॥ ५४॥ जरा मरणमापच राज्यं दादिद्यमेव च। रम्यमित्येव यो अङ्के स जीवन्युक्त उच्यते ॥ ५५ ॥ धर्माधर्मी सुखं दुःखं तथा मरणजन्मनी । धिया चेन सुसंयक्तं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५६ ॥ उद्देगानन्दरहितः समया स्वच्छया धिया। न शोचित न चोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५७ ॥ सर्वेच्छाः सकलाः शङ्काः सर्वेहाः सर्वनिश्रयाः । धिया येन परित्यक्ताः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ५८॥ जन्मस्थितिविनारोषु सोदयास्तमयेषु च। सममेव मनो यस्य स जीवनमुक

बच्यते ॥ ५९ ॥ न किंचन द्वेष्टि तथा न किंचिवपि काङ्क्षति । भुद्धे यः प्रकृतान्भोगान्स जीवन्युक्त उच्यते ॥ ६० ॥ शान्तसंसारकलनः कलावानपि क्रिक्क । यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६१ ॥ यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि निःस्पृहः । परार्थेष्वव पूर्णात्मा स जीवनमुक्त बच्यते ॥ ६२ ॥ जीवन्मुक्तपदं त्यवत्वा खदेहे कालसात्कृते । विशत्यदेहमू-करवं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥ ६३ ॥ विदेहमुक्तो नोदेति नासमेति न शास्यति । न सन्नासन्न दूरस्थो न चाहं न च नेतरः ॥ ६४ ॥ ततः स्तिनि-सगरभीरं न तेजो न तमस्ततम् । अनाख्यमनभिन्यकं सिकंचिदवशिष्यते ॥ ६५॥ न शून्यं नापि चाकारो न दश्यं नापि दर्शनम् । न च भूतपदा-शोंचसदनन्ततया स्थितम् ॥ ६६ ॥ किमप्यच्यपदेशात्मा पूर्णात्पूर्णतराकृतिः। न सन्नासन सदसन आवो आवनं न च ॥ ६७ ॥ चिन्मात्रं चैत्यरहितम-मन्तमजरं शिवस् । अनादिसध्यपर्यन्तं यदनादि निरामयस् ॥ ६८ ॥ द्रष्ट्द-र्शनदृष्यानां मध्ये यदर्शनं स्मृतस् । नातः परतरं किंचिन्निश्चयोऽस्त्यपरो मुने ॥ ६९ ॥ स्वयमेव त्वया ज्ञातं गुरुतश्च पुनः श्रुतम् । स्वसंकल्पवशा-ह्नद्वो निःसंकरपाद्विमुच्यते ॥ ७० ॥ तेन स्वयं त्वया ज्ञातं ज्ञेयं यस महा-रमनः । भोगेभ्यो हारतिर्जाता दृश्याद्वा सकलादिह ॥ ७१ ॥ प्राप्तं प्राप्तव्यम-खिलं अवता पूर्णचेतसा । स्वरूपे तपसि ब्रह्मन्मुक्तस्वं भ्रान्तिमुत्सुन ॥७२॥ अतिबाह्यं तथा व:ह्यमन्तराभ्यन्तरं धिय:। ग्रुक पश्यन्न पश्येस्वं साक्षी संपूर्णकेवलः ॥ ७३ ॥ विशश्राम शुकरतूरणीं स्वस्थे परमवस्तुनि । वीत-शोकभयायासो निरीहदिछन्नसंशयः ॥७४॥ जगाम शिखरं मेरोः समाध्यर्थम-खण्डितम् ॥ ७५ ॥ तत्र वर्षसहस्राणि निर्विकल्पसमाधिना । देशे स्थित्वा शशामासावात्मन्यस्नेहदीपवत् ॥ ७६ ॥ व्यपगतकलनाकलङ्कशुद्धः स्वयमम-काल्मिन पावने पदेऽसौ । सिल्लकण इवाम्बुधौ महाल्मा विगलितवासन-मैकतां जगाम ॥ ७७ ॥

इति महोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

निदाघो नाम मुनिराट प्राप्तिवश्च बालकः । विहृतस्तीर्थयात्रार्थं पित्रा-बुज्ञातवान्स्वयम् ॥ ९ ॥ सार्धित्रकोटितीर्थेषु स्नात्वा गृहमुपागतः । स्वोदन्तं कथयामास ऋभुं नत्वा महायशाः ॥ २ ॥ सार्धित्रकोटितीर्थेषु स्नानपुण्यप्र-भावतः । प्रादुर्भूतो मनिस मे विचारः सोऽयमीदशः ॥ ३ ॥ जायते स्नियते कोको म्रियते जननाय च । अस्थिराः सर्व एवेमे सचराचरचेष्टिताः । सर्वा-पदां पदं पापा भावा विभवभूमयः ॥ ४ ॥ अयःशलाकासदशाः परस्परम-सङ्गिनः । ग्रुष्यन्ते केवला भावा मनःकल्पनयानया ॥ ५ ॥ भावेष्वरतिरा-याता पथिकस्य मरुव्विव । शाम्यतीदं कथं दुःखमिति तहोऽसि चेतसा H ६ ॥ चिन्तानिचयचकाणि नानन्दाय धनानि मे । संप्रस्तकलत्राणि गृहा-ण्युग्रापदामिव ॥ ७॥ इयमसि स्थितोदारा संसारे परिपेछवा। श्रीर्भुने परिमोहाय सापि नूनं न शर्मदा ॥ ८॥ आयुः पछ्नवकोणाप्रलम्बाम्बुकणभ-ङ्कुरम् । उन्मत्त इव संत्यज्य याम्यकाण्डे शरीरकम् ॥ ९ ॥ विषयाशीविषा-सङ्गपरिजर्जरचेतसाम् । अप्रौढात्मविवेकानामायुरायासकारणम् ॥ १० ॥ युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम् । प्रन्थनं च तरङ्गाणामास्था नायुषि युज्यते ॥ ११ ॥ प्राप्यं संप्राप्यते येन भूयो येन न शोच्यते । पराया निर्वृतेः स्थानं यत्तजीवितमुच्यते ॥ १२ ॥ तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः । स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति ॥ १३॥ जातास्त एव जगित जन्तवः साधुजीविताः । ये पुनर्नेह जायन्ते शेषा जरठगर्दभाः ॥ १४ ॥ भारो विवेकिनः शास्त्रं भारो ज्ञानं च रागिणः । अशान्तस्य मनो भारो भारोऽनात्मविदो वपुः ॥ १५॥ अहंकारवशादापदहंकाराहुराधयः। अहंकारवंशादीहा नाहंकारात्परी रिपुः ॥ १६ ॥ अहंकारवंशाद्यद्यन्मया अुक्तं चराचरम् । तत्तत्सर्वमवस्त्वेव वस्त्वहंकारिक्तता ॥ १७ ॥ इतश्चेतश्च सुन्यप्रं ब्यर्थमेवाभिधावति । मनो दूरतरं याति यामे कौलेयको यथा ॥ १८॥ ऋरेण जडतां याता तृष्णाभार्यानुगामिना । वशः कौलेयकेनेव वहान्मुक्तोऽस्मि चेतसा ॥ १९ ॥ अप्यव्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि । अपि वह्नयश-नाइह्मन्विषमश्चित्तनिग्रहः॥ २०॥ चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगत्र-यम् । तस्मिन्क्षीणें जगत्क्षीणं तचिकित्स्यं प्रयत्नतः ॥ २१ ॥ यां यामहं मुनि-श्रेष्ठ संश्रयामि गुणश्रियम् । तां तां कृन्तति मे तृष्णा तत्रीमिव कुमूषिका ॥ २२ ॥ पदं करोत्यलङ्घयेऽपि नृप्ता विफलमीहते । चिरं तिष्टति नैकत्र तृष्णा चपलमर्केटी ॥ २३ ॥ क्षणमायाति पातालं क्षणं याति नभःस्थलम् । क्षणं अमित दिक् भे तृष्णा हत्पद्मषदपदी ॥ २४ ॥ सर्वसंसारदुः लानां तृष्णेका दीर्घदुः खदा । अन्तः पुरस्थमपि या योजयत्यतिसंकटे ॥ २५ ॥ तृष्णाविषूचि-कामन्नश्चिन्तात्यागो हि स द्विज । स्तोकेनानन्द्रमायाति स्तोकेनायाति खेद- ताम् ॥ २६ ॥ नास्ति देहसमः शोच्यो नीचो गुणविवर्जितः ॥ २७ ॥ कलेवरमहंकारगृहस्थस्य महागृहम् । लुठत्वभ्येतु वा स्थैर्यं किमनेन गुरो मम ॥ २८ ॥ पङ्किबद्धेन्द्रियपशुं वलानुष्णागृहाङ्गणम् । चित्तभृत्यजनाकीणै नेष्टं देहगृहं मम ॥ २९ ॥ जिह्वामकंटिकाकान्तवदनद्वारभीषणम् । दृष्ट-दन्तास्थिशकलं नेष्टं देहगृहं सम ॥ ३० ॥ रक्तमांसमयस्यास्य सवाह्याभ्यन्तरे मुने । नाशैकधर्मिणो बृहि केव कायस्य रम्यता ॥ ३१ ॥ तिहत्सु शरदश्रेषु गन्धर्वनगरेषु च । स्थेर्यं येन विनिर्णातं स विश्वसितु विग्रहे ॥ ३२ ॥ शैशवे गुरुतो भीतिमीतृतः पितृतस्तथा । जनतो ज्येष्टवालाच शैशवं भयमन्दिरम् ॥ ३३ ॥ स्वचित्तविलसंस्थेन नानाविभ्रमकारिणा । बलात्कामपिशाचेन विवशः परिभूयते ॥ ३४ ॥ दासाः पुत्राः स्त्रियश्चेव वान्धवाः सुहृदस्तथा । हसन्त्युनमत्तकिमय नरं वार्धककम्पितम् ॥ ३५ ॥ दैन्यदोषमयी दीर्घा वर्धते वार्धके स्पृहा । सर्वापदामेकसखी हृदि दाहप्रदायिनी ॥ ३६॥ कविद्वा विद्यते यैपा संसारे सुखभावना । आयुः स्तम्वमिवासाद्य कालस्तामपि क्रन्ति ॥ ३७ ॥ तृणं पांशुं महेन्द्रं च सुवर्णं मेरुसर्षपम् । आत्मंभरितया सर्वमात्मसात्कर्तुमुद्यतः । कालोऽयं सर्वसंहारी तेनाकान्तं जगत्रयम् ॥३८॥ मांसपाञ्चालिकायास्तु यत्रलोलेऽङ्गपञ्जरे । स्नाय्वस्थित्रन्थिशालिन्याः स्त्रियः किमिव शोभनम् ॥ ३९ ॥ त्वद्धांसरक्तवाष्पाम्बु पृथकृत्वा विलोचने । समा-लोकय रम्यं चेत्किं सुधा परिसुद्धासि ॥ ४० ॥ मेरुगृङ्गतटोल्लासिगङ्गाचल-रयोपमा । दृष्टा यस्मिन्मुने मुक्ताहारस्योल्लासञ्चालिता ॥ ४१ ॥ इमञानेषु दिगन्तेपु स एव ललनास्तनः । श्वभिरास्वाद्यते काले लघुपिण्ड इ्वान्धसः ॥ ४२ ॥ केशकजलधारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः । दुष्कृताग्निशिखा नार्यो दहन्ति तृणवन्नरम् ॥ ४३ ॥ ज्वलतामतिदृरेऽपि सरसा अपि नीरसाः। स्त्रियो हि नरकाझीनामिन्धनं चारु दारुणम् ॥ ४४ ॥ कामनाम्ना किरातेन विकीर्णा मुग्धचेतसः । नार्यो नरविहङ्गानामङ्गवन्धनवागुराः ॥ ४५ ॥ जन्म-पल्वलमःस्यानां चित्तकर्दमचारिणाम् । पुंसां दुर्वासनारज्जुर्नारी बिडश-पिण्डिका ॥ ४६ ॥ सर्वेषां दोषरत्नानां सुसमुद्रिकयानया । दुःखश्रङ्खलया नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया॥ ४७॥ यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क भोगभूः । स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यकं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ४८ ॥ दिशोऽपि नहि द्दयन्ते देशोऽप्यन्योपदेशकृत् । शैला अपि विशीर्यन्ते थ. उ. २८

क्षीर्यन्ते तारका अपि ॥ ४९ ॥ शुष्यन्त्यपि समुद्राश्च ध्रुवोऽण्यध्रुवजीवनः ।
सिद्धा अपि विनइयन्ति जीर्यन्ते दानवाद्यः ॥ ५० ॥ परमेष्ठ्यपि निष्ठावान्हीयते हरिरप्यजः । भावोऽण्यभावमायाति जीर्यन्ते वे दिगीश्वराः ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्ध्व सर्वा वा भूतजातयः । नाशमेवानुधावन्ति सिल्लानीव वाडवम् ॥ ५२ ॥ आपदः क्षणमायान्ति क्षणमायान्ति संपदः । क्षणं जन्माथ मरणं सर्वं नश्वरमेव तत् ॥ ५३ ॥ अशूरेण हताः शूरा एकेनापि क्षतं हतम् । विषं विषयवेषम्यं न विषं विषमुच्यते ॥ ५४ ॥ जन्मान्तरप्ना विषया एकजन्महरं विषम् । इति मे दोषदावाग्निद्रधे संप्रति चेतिस् ॥ ५५ ॥ स्फुरन्ति हि न भोगाशा स्वर्गनृष्णासरःस्वपि । अतो मां वोधयाशु त्वं तत्त्वज्ञानेन वे गुरो ॥ ५६ ॥ नो चेन्मोनं समास्थाय निर्मानो गत-मत्तरः । भावयन्मनसा विष्णुं लिपिकर्मापिदोषमः ॥ ५७ ॥

इति महोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

निदाघ तव नास्त्यन्यज्ज्ञेयं ज्ञानवतां वर । प्रज्ञया त्वं विजानासि ईश्वरा-नुगृहीतया। चित्तमालिन्यसंजातं मार्जयामि असं सुने ॥ १॥ मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः। शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधुसङ्गमः ॥ २ ॥ एकं वा सर्वयत्नेन सर्वमुत्सुज्य संश्रयेत् । एकस्मिन्वरागे यान्ति चत्वारोऽपि वशं गताः ॥ ३ ॥ शास्त्रैः सज्जनसंपर्कपूर्वकेश्च तपोदमैः । आदौ संसारमुक्तयर्थं प्रज्ञामेवाभिवर्धयेत् ॥ ४ ॥ स्वानुभूतेश्च शास्त्रस्य गुरोश्चेवैक-वाक्यता । यस्याभ्यासेन तेनात्मा सततं चावलोक्यते ॥ ५ ॥ संकल्पाशानु-संधानवर्जनं चेत्प्रतिक्षणम् । करोषि तदचित्तत्वं प्राप्त एवासि पावनम् ॥ ६ ॥ चेतसो यदकर्तृत्वं तत्समाधानमीरितम् । तदेव केवलीभावं सा ग्रुभा निर्वृतिः परा ॥ ७ ॥ चेतसा संपरित्यज्य सर्वभावात्मभावनाम् । यथा तिष्ठिस तिष्ठ त्वं मूकान्धवधिरोपमः ॥ ८ ॥ सर्वं प्रशान्तमजमेकमनादि-मध्यमाभास्वरं स्वदनमात्रमचैत्यचिह्नम् । सर्वं प्रशान्तमिति शब्दमयी च दृष्टिर्बाधार्थमेव हि मुधैव तदोमितीदम् ॥ ९ ॥ सर्वं किंचिदिदं दृश्यं दृश्यते चिज्जगद्गतम् । चिन्निष्पन्दांशमात्रं तन्नान्यदस्तीति भावय ॥ १०॥ नित्यप्रबुद्धचित्तस्त्वं कुर्वन्वापि जगत्कियाम् । आत्मैकत्वं विदित्वा त्वं तिष्ठा-श्चव्धमहाव्धिवत् ॥ ११ ॥ तत्त्वावबोध एवासौ वासनातृणपावकः । प्रोक्तः समाधिशब्देन नतु त्र्णीमवस्थितिः ॥ १२॥ निरिच्छे संस्थिते रते यथा

लोकः प्रवर्तते । सत्तामात्रे परे तत्त्वे तथैवायं जगद्रणः ॥ १३ ॥ अतश्चा-त्मिन कर्तृत्वमकर्तृत्वं च वे मुने । निरिच्छत्वादकर्ताऽसौ कर्ता संनिधिमात्रतः ॥ १४ ॥ ते हे ब्रह्मणि विन्देत कर्तृताकर्तृते मुने । यत्रैवैष चमःकारस्तमाश्रित्य स्थिरो भव ॥ १५ ॥ तस्मान्नित्यमकर्ताहमिति भावनयेद्या । परमामृतनान्नी सा ससतैवावशिष्यते ॥ १६॥ निदाघ श्रणु सत्त्वस्था जाता भुवि महा-गुणाः । ते नित्यमेवाभ्युदिता सुदिताः ख इवेन्द्वः ॥ १७ ॥ नापदि ग्लानिमा-यान्ति निशि हैमास्तुर्जं यथा । नेहन्ते प्रकृतादन्यद्रमन्ते शिष्टवर्त्मनि ॥ १८ ॥ आकृत्येव विराजन्ते मैन्यादिगुणवृत्तिभिः । समाः समरसाः सौम्य सततं साधुवृत्तयः ॥ १९॥ अब्धिवद्धतमर्यादा भवन्ति विशदाशयाः । नियतिं न विसुञ्जन्ति सहान्तो भास्करा इव ॥ २० ॥ कोऽहं कथमिनं चैति सैसारसलमाततस् । प्रविचार्यं प्रयतेन प्राज्ञेन सहसाधुना ॥ २१ ॥ नाकर्मसु नियोक्तव्यं नानार्थेण सहायसेत् । द्रष्टव्यः सर्वसंहर्ता न मृत्युरवहेलया ॥ २२ ॥ शरीरमस्थि मांसं च त्यक्त्वा रक्तावशोभनम् । भूतमुक्तावलीतन्तुं चिन्मात्रमवलोकयेत् ॥ २३ ॥ उपादेयानुपतनं हेयैकान्तविसर्जनम् । यदेत-न्मनसो रूपं तद्वाहां विद्धि नेतरत् ॥ २४ ॥ गुरुशास्त्रोक्तमार्गेण स्वानुभूत्या च चिद्धने । ब्रह्मैयाहभिति ज्ञात्वा वीतशोको भवेन्सुनिः ॥ २५ ॥ यत्र निशितासिशतपातनमुत्पलताडनवत्सोढन्यमग्निना दाहो हिमसेचनमिवाङ्गारा-वर्तनं चन्द्रनचर्चेय निरयधिनाराचिकिरपातो निदाविनोदनधारागृहशीकर-वर्षणिमव स्वशिरइछेदः सुखितदेव सूकीकरणमाननमुदेव वाधियं महानुप-चय इवेदं नावहेलनया अवितन्यमेवं दृढवैराग्याद्वोधो भवति॥ गुरुवाक्य-समुद्भृतस्वानुभूत्यादिशुद्धया । यस्याभ्यासेन तेनात्मा सततं चावलोक्यते ॥ २६ ॥ विनष्टदिग्भ्रमस्यापि यथापूर्वं विभाति दिक् । तथा विज्ञानविध्वस्तं जगन्नास्तीति भावय ॥ २७ ॥ न धनान्युपकुर्वन्ति न मित्राणि न वान्धवाः । न कायक्केशवैधुर्यं न तीर्थायतनाश्रयः । केवलं तन्मनोमात्रमयेनासाद्यते पदम् ॥ २८ ॥ यानि दुःखानि या तृष्णा दुःसहा ये दुराधयः । शान्तचेतः**सु** तत्सर्वं तमोऽर्केष्विव नर्यित ॥ २९ ॥ मातरीव परं यान्ति विवमाणि सद्नि च । विश्वासिमह सूतानि सर्वाणि शमकालिनि ॥ ३०॥ न रसायन-पानेन न लक्ष्म्यालिङ्गितेन च। न तथा सुखमाप्नोति शमेनान्तर्यथा जनः ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा स्ष्टुन च भुक्त्वा च दृष्ट्वा ज्ञात्वा शुभाशुभम् । न हृष्यति क्लायाति यः स शान्त इति कथ्यते ॥ ३२ ॥ तुषारकरविम्बाच्छं मनी यस्य निराकुलम् । भरणोत्सवयुद्धेषु स शान्त इति कथ्यते ॥ ३३ ॥ तपस्तिषु बहुद्देषु याजकेषु नृपेषु च। बलवत्सु गुणाक्ष्येषु शमवानेव राजते॥ ३४॥ संतीपामृतपानेन ये शान्तास्तृप्तिमागताः । आत्मारामा महात्मानस्ते महा-पदमागताः ॥ ३५ ॥ अप्राप्तं हि परित्यज्य संप्राप्ते समतां गतः । अदृष्टखेदाः खेदो यः संतुष्ट इति कथ्यते॥ ३६॥ नाभिनन्दत्यसंप्राप्तं प्राप्तं अङ्के यथेप्सि-तम् । यः स सौम्यसमाचारः संतुष्ट इति कथ्यते ॥ ३७ ॥ रमते धीर्यथाशाप्ते साध्वीवाऽन्तः पुराजिरे । सा जीवन्युक्ततोदेति स्वरूपानन्ददायिनी ॥ ३८॥ यथाक्षणं यथाज्ञास्त्रं यथादेशं यथासुखम् । यथासंभवसत्सङ्गिममं मोक्षपथ-क्रमम् । तावहि चारयेत्प्राज्ञो यावहिश्रान्तिमात्मिन ॥ ३९॥ तुर्यविश्रान्ति-युक्तस्य निवृत्तस्य भवार्णवात् । जीवतोऽजीवतश्चेव गृहस्थस्याथवा यतेः ॥ ४० ॥ नाकृतेन कृतेनार्थों न श्रुतिस्मृतिविश्रमैः । निर्मन्द्र इवा-स्भोधिः स तिष्ठति यथास्थितः॥ ४९ ॥ सर्वात्सवेदनं छुद्धं यदोदेति तवात्मवस् । भाति प्रसृतिदिकालबाह्यं चिद्रपदेहकम् ॥ ४२॥ एव-मात्मा यथा यत्र समुहासमुपागतः । तिष्ठलाञ्च तथा तत्र तद्रपश्च विराजते ॥ ४३ ॥ यदिदं दृश्यते सर्वं जगत्स्थायरजङ्गसस् । तत्सुपुप्ताविव स्वप्तः करपान्ते प्रविनश्यित ॥ ४४ ॥ ऋतमारमा परं बहा सत्यमित्यादिका बुधेः । कित्पता व्यवहारार्थं यस्य संज्ञा महात्मनः ॥ ४५ ॥ यथा कटकशब्दार्थः पृथग्भावो न काञ्चनात् । न हेम कटकात्तद्वजागच्छ-ब्दार्थता परा ॥ ४६ ॥ तेनेयमिन्द्रजालश्रीर्जगति प्रवितन्यते । दृष्ट्देश्यस सत्तान्तर्बन्ध इत्यभिधीयते ॥ ४७ ॥ द्रष्टा दर्यवशाद्वद्धो दर्याभावे विमु-च्यते । जगत्त्वमहमित्यादिसर्गात्मा दृत्रयमुच्यते ॥ ४८ ॥ सनसैवेनद्रजाल-श्रीर्जगित प्रवितन्यते । यावदेतत्संभवति तावन्मोक्षो न विद्यते ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणा तन्यते विश्वं मनसैव स्वयं भुवा। मनोमयमतो विश्वं यन्नाम परि-हरयते ॥ ५० ॥ न बाह्ये नापि हृद्ये सहूपं विद्यते मनः । यद्र्थं प्रतिभानं तन्मन इत्यभिधीयते ॥ ५३ ॥ संकल्पनं मनो विद्धि संकल्पस्तत्र विद्यते । यत्र संकल्पनं तत्र मनोऽस्तीत्यवगम्यताम् ॥ ५२ ॥ संकल्पमनसी भिन्ने न कदाचन केनचित्। संकल्पजाते गलिते स्वरूपमवशिष्यते ॥ ५३॥ अहं त्वं जगदित्यादौ प्रशान्ते दश्यसंभ्रमे । स्थात्तादशी केवलता दश्ये सत्तामुपागते ॥ ५४ ॥ महाप्रलयसंपत्तो ह्यसत्तां समुपागते । अरोपदश्ये सगीदी शान्त-भेवाबिक्षित्यते ॥ ५५ ॥ अस्त्यनस्तिमेतो भास्वानजो देवो निरामयः । सर्वदा सर्वेक्टरार्वः परमात्मेत्युदाहतः ॥ ५६ ॥ यतो वाची निवर्तन्ते यो अक्तरय-गम्यते । यस्य चारमादिकाः संज्ञाः किरपता न स्वभावतः ॥ ५७ ॥ वित्ता-काशं चिदाकाशमाकाशं च तृतीयकम्। द्वाभ्यां श्र्यतरं विद्वि चिदाकाशं अहासुने ॥ ५८ ॥ देशादेशान्तरप्राप्ती संविदो मध्यमेव यत् । निमेषेण चिदाकाशं तिहि सिनियुङ्ग ॥ ५९ ॥ तिसिन्निरस्तिःशेषसंकल्पस्थितिमेषि चेत । सर्वीत्मकं पदं ज्ञान्तं तदा प्राप्तोष्यसंज्ञयः ॥ ६० ॥ उदितोदार्थ-सौन्दर्शवैराम्यरसम्भिणी । आनन्दस्यन्दिनी थेपा समाधिरभिषीयते ॥ ६३ ॥ इत्र्यासंभववोधेन रागद्वेपादितानवे । रतिर्वलोदिता यासी समाधिरिमधी-यते ॥ ६२ ॥ इइयासंभववोधो हि ज्ञानं ज्ञेयं चिदात्मकम् । तदेव केवली-आवं ततोऽन्यत्सकर्लं सृपा ॥ ६३ ॥ मत्त ऐरावतो वदः सर्पपीकोणकोटरे । संशक्ति कृतं युद्धं सिंहीचेरेणुकोटरे ॥ ६४ ॥ पद्माक्षे स्थापितो मेरुर्तिगीगी भुक्तसुनुना । निदाध विद्धि तादम्यं जगदेनद्धमात्मकस् ॥ ६५ ॥ चित्तमेव हि संसारी शर्गादिक्केशद्यितम् । तदेव वैत्रिनिर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते ॥ ६६ ॥ सनसा आव्यसाती हि देहला यानि देहकः । देहवासनया मुक्ती देह्धमेंने लिप्यते ॥ ६७ ॥ कर्ष ्णीकरोत्यन्तः क्षणं नयति कल्पताम् । भनोविकाससंसार इति में निश्चिता सतिः ॥ ६८॥ नातिरतो दुश्चरिताका-शान्तो नासमाहितः। नाशान्तसनसी वापि प्रज्ञानेननमाप्रुयात् ॥ ६९॥ तद्रह्मानन्द्रमद्ग्रन्द्रं निरीणं सखिद्याभ्य । विदित्या स्वात्मनो रूपं न विभेति कदाचन ॥ ७० ॥ घरात्परं गत्माहती महान्तं म्बरूपतेकोमयशाश्वतं शिवम् । कवि पुराणं पुरुषं सनातनं सर्वेश्वरं सर्वदेवेएवाख्यस् ॥ ७१ ॥ अहंब्रस्रेति नियतं सोझहेतुर्महात्सवाम् । हे पदे वन्धमोक्षाय निर्ममेति समेति च। ममेति वध्यते जन्तुनिर्भवेति विमुच्यते ॥ ७२ ॥ जीवेश्वरादिरूपेण चेतना-चेतनात्मकम् । ईक्षणाविप्रवेज्ञान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता । जाप्रदादिविमो-क्षान्तः संसारो जीवकदिनतः॥ ७३ ॥ त्रिणाचिकादियोगान्ता ईश्वरभ्रान्ति-माश्रिताः । छोकायतादियांच्यान्ता जीवविभ्रान्तिमाश्रिताः ॥ ७४ ॥ तस्मा-न्सुसुक्षुभितेंच मतिजीवेशवाद्योः। कार्या किंतु ग्रह्मतत्त्वं निश्चलेन विवार्य-ताम् ॥ ७५ ॥ अविक्षेपेण मर्व तु यः पश्यति चिदन्वयात् । स एव साक्षा-

द्विज्ञानी स शिवः स हरिविधिः ॥ ७६ ॥ दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्व-दर्शनम् । दुर्लभा सहजावस्था सद्भुरोः करुणां विना ॥७७॥ उत्पन्नशक्तिवोधस्य त्यक्तिःशेषकर्मणः । योगिनः सहजावस्था स्वयमेवोपजायते ॥ ७८॥ यदा ह्येवैष एतस्मिन्नरूपमध्यन्तरं नरः । विजानाति तदा तस्य भयं स्यानात्र संशयः ॥ ७९ ॥ सर्वगं सचिदानन्दं ज्ञानचक्षुनिरीक्षते । अज्ञानचक्षुनेसेत भास्तन्तं भानुमन्धवत् ॥ ८० ॥ प्रज्ञानमेव तद्रह्म सत्यप्रज्ञानलक्षणम् । एवं व्रह्मपिः-ज्ञानादेव मर्त्योऽसृतो भवेत् ॥ ८१ ॥ भिद्यते हृद्यमन्थिदिछद्यन्ते सर्व-संशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दष्टे परावरे ॥ ८२ ॥ अनात्मतां परि-त्यज्य निर्विकारो जगिल्थितौ । एकनिष्ठतयान्तःस्थः संविन्मात्रपरो भव ॥८३॥ मरभूमो जलं सर्वं मरभूमात्रमेत्र तत् । जगत्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ॥ ८४ ॥ लक्ष्यालक्ष्यमति त्यक्त्वा यस्तिष्ठेतकेवलात्मना । ज्ञिव एव स्वयं साक्षाद्यं ब्रह्मविदुत्तमः ॥ ८५ ॥ अधिष्टानमनौपम्यमवाञ्चनस-गोचरम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तद्व्ययस् ॥ ८६ ॥ सर्वशक्तंमीहे-शस्य विलासो हि मनो जगत् । संयमासंयमाभ्यां च संसारः शान्तिमन्व-गात् ॥ ८७ ॥ मनोव्याधेश्चिकित्सार्थमुपायं कथयामि ते । यद्यत्साभिमतं वस्तु तत्त्यजनमोक्षमश्रुते ॥ ८८ ॥ स्वायत्तमेकान्तहितं स्वेप्सितत्यागवेदनम् । यस्य दुष्करतां यातं धिक्तं पुरुषकीटकम् ॥ ८९ ॥ स्वपौरुषैकताध्येन स्वेप्सितत्यागरूपिणा । सनःप्रश्चसमात्रेण विना नास्ति शुभा गतिः ॥ ९०॥ असंकल्पनशस्त्रेण छिन्नं चित्तमिदं यदा। सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ९१ ॥ भव भावनया सुक्तो सुक्तः परसया धिया । धारयात्मानम-व्ययो यस्तचित्तं चितः पद्म् ॥ ९२ ॥ परं पौरुषसाश्रित्य नीत्वा चित्तमचि-त्तताम् । ध्यानतो हृदयाकाशे चिति चिचकधारया ॥ ९३ ॥ मनो मारय नि:शङ्कं त्वां प्रबप्तन्ति नारयः ॥ ९४ ॥ अयं सोऽहमिदं तन्म एतावन्मात्रकं मनः । तद्भावनमात्रेण दात्रेणेव विंठीयते ॥ ९५ ॥ छिन्नाश्रमण्डलं न्योप्नि यथा शरिद ध्रयते । वातेन कल्पकेनैव तथाऽन्तर्ध्यते मनः ॥ ९६ ॥ कल्पा-न्तपवना वान्तु यान्तु चैकत्वमर्णवाः । तैपन्तु द्वादशादित्या नास्ति निर्मनसः क्षतिः ॥ ९७ ॥ असंकल्पनमात्रैकसाध्ये सकलिसिद्धिदे । असंकल्पातिसा-ज्ञाज्ये तिष्टायष्टव्यतत्पदः॥ ९८॥ न हि चञ्चलताहीनं मनः क्रचन द्वयते। चञ्चलत्वं मनोधर्मो यहेर्धर्मो यथोष्णता ॥ ९९ ॥ एषा हि चञ्चला स्पन्द-शक्तिश्चित्तत्वसंस्थिता। तां विद्धि मानसीं शक्तिं जगदाडम्बरात्मिकाम् ॥१००॥ यत् चञ्चलताहीनं तन्मनोऽसृतसुच्यते । तदेव च तपः शास्त्रसिद्धान्ते मोक्ष उच्यते ॥ १०१ ॥ तस्य चञ्चलता यैषा त्वविद्या वासनात्मिका । वासना-ऽपरनाझीं तां विचारेण विनाशय ॥ १०२ ॥ पौरुषेण प्रयतेन यसिन्नेव पदे मनः । योज्यते तत्पदं प्राप्य निर्विकल्पो भवानघ ॥ १०३ ॥ अतः पौरुप-माश्रित्य चित्तमाऋस्य चेतसा । विशोकं पदमालम्ब्य निरातङ्कः स्थिरो भव ॥ १०४ ॥ मन एव समर्थं हि मनसो दढिनप्रहे । अराजकः समर्थः स्यादाज्ञो निग्रहकर्मणि ॥ ३०५ ॥ तृष्णाग्राहगृहीतानां संसारार्णवपातिनाम् । आवर्ते-रुद्यमानानां दूरं स्वमन एव नौः ॥ १०६ ॥ मनसैव मनिश्चल्वा पाशं परमवन्धनस् । भवादुत्तारयात्मानं नासावन्येन तार्यते ॥ १०७ ॥ या योदेति मनोनान्नी वासना वासितान्तरा। तां तां परिहरेत्याज्ञस्ततोऽविद्या-क्षयो भवेत् ॥ १०८ ॥ भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज्ञ त्वं भेदवासनाम् । भावाभावौ ततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखी भव ॥१०९॥ एप एव मनोनाशः स्त्वविद्यानाश एव च । यत्तत्संवेद्यते किंचित्तत्रास्थापरिवर्जनम् ॥ ११० ॥ अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्थापरिग्रहः ॥ १११॥ अविद्या विद्यमानैव नष्टप्रज्ञेषु दश्यते । नाम्नैवाङ्गीकृताकारा सम्यन्प्रज्ञस्य सा कुतः ॥ ११२ ॥ तावत्संसारभृगुपु स्वात्मना सह देहिनम् । आन्दोलयति नीरन्ध्रं दुःखकण्ट-कशालिपु ॥ ११३ ॥ अविद्या यावदस्यास्तु नोत्पन्ना क्षयकारिणी । स्वयमा-त्मावलोकेच्छा मोहसंक्षयकारिणी ॥ ११४ ॥ अस्याः परं प्रपद्यन्त्याः स्वात्म-नाशः प्रजायते । दृष्टे सर्वगते बोधे स्वयं होषा विलीयते ॥ ११५॥ इच्छा-मात्रमविद्येयं तन्नाशो मोक्ष उच्यते । स चासंकल्पमात्रेण सिद्धो भवति वै मुने ॥ ११६ ॥ मनागपि मनोन्योम्नि वासनारजनीक्षये । कलिका तनु-तामेति चिद्रादित्यप्रकाशनात् ॥ ११७ ॥ चैत्यानुपातरहितं सामान्येन च सर्वेगम् । यश्चित्तत्त्वमनाख्येयं स आत्मा परमेश्वरः ॥ ११८॥ सर्वं च खिवदं ब्रह्म नित्यचिद्धनमक्षतम् । कल्पनाऽन्या मनोनाम्नी विद्यते नहि काचन ॥ ११९॥ न जायते न श्रियते किंचिदत्र जगत्रये। न च भाव-विकाराणां सत्ता क्रचन विद्यते ॥ १२० ॥ केवलं केवलाभासं सर्वसामान्यम-क्षतम् । चैत्यानुपातरहितं चिन्मात्रमिद् विद्यते ॥ १२१ ॥ तस्मिश्रत्ये तते शुद्धे चिन्मात्रे निरुपद्रवे । शान्ते शमसमाभोगे निर्विकारे चिदात्मनि ॥ १२२ ॥ येषा स्वभावाभिमतं स्वयं संकल्प्य धावति । चिचैत्यं स्वयमम्लानं माननान्मन उच्यते । अतः संकल्पांसिद्धेयं संकल्पेनैव नश्यति ॥ १२३॥ नाहंब्रह्मेति संकल्पात्सुदढाद्वध्यते मनः । सर्वं ब्रह्मेति संकल्पात्सुदढान्मुच्यते मनः ॥ १२४ ॥ क्रशोऽहं दुःखबद्धोऽहं हस्तपादादिवानहम् । इति भावानुरूपेण व्यवहारेण बध्यते ॥ १२५ ॥ नाहं दुःखी न मे देहो बन्धः कोऽस्यात्मानि स्थितः । इति भावानुरूपेण व्यवहारेण सुच्यते ॥ १२६॥ नाहं मांसं न चास्थीनि देहादन्यः परोऽस्म्यहम् । इति निश्चितवानन्तः-क्षीणविद्यो विमुच्यते ॥ १२७ ॥ कल्पितेयमविद्येयमनात्मन्यात्मभावनात् । परं पौरुपमाश्रित्य यतात्परमया धिया । भोगेच्छां द्रतस्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखी भव ॥ १२८ ॥ मम पुत्रो सम धनमहं सोऽयमिदं सम । इतीयमि-न्द्रजालेन वासनेव विवल्गति ॥ १२९ ॥ सा भवाज्ञो भव ज्ञस्त्वं जाहि संसारभावनाम् । अनात्मन्यात्मभावेन किसज्ञ इव रोदिषि ॥ १३० ॥ कस्त-वायं जडो मूको देहो मांसमयोऽशुचिः। यदर्थं सुखदुःखाभ्यामवशः परि-भूयसे ॥ १३१ ॥ अहो नु चित्रं यत्सत्यं ब्रह्म तद्विस्मृतं नृणास् । तिष्ठतस्तव कार्येषु माऽस्तु रागानुरञ्जना ॥ १३२॥ अही नु चित्रं पद्मोत्थेर्बद्धास्तन्तुभि-रहयः । अविद्यमाना या विद्या तया विश्वं खिलीकृतम् ॥ १३३ ॥ इदं तह-ज्रतां यातं तृणमात्रं जगत्रयम् ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति महोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऋभुः ॥ अथापरं प्रवक्ष्यामि इग्रणु तात यथीयथम् । अज्ञानभूः सप्तपदा
ज्ञभूः सप्तपदेव हि ॥ १ ॥ पदान्तराण्यसंख्यानि प्रभवन्त्यन्यथैतयोः ।
स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्धंशोऽहन्त्ववेदनम् ॥ २ ॥ ग्रुद्धसन्मात्रसंवितेः स्वरूपात्र
चलन्ति ये । रागद्वेपादयो भावास्तेषां नाज्ञत्वसंभवः ॥ ३ ॥ यः स्वरूपपिअंशश्चेत्यार्थे चिति मज्जनम् । एतस्मादपरो मोहो न भूतो न भविष्यति ॥ ४ ॥
अर्थादर्थान्तरं चित्ते याति मध्ये तु या स्थितिः । सा ध्वस्तमननाकारा स्वरूपस्थितिरुच्यते ॥ ५ ॥ संशान्तसर्वसंकल्पा या शिलावदवस्थितिः । जाप्रिवदानिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥ ६ ॥ अहन्तांशे क्षते शान्ते भेदिनप्यन्दचित्तता । अजडा या प्रचलति तत्स्बरूपमितीरितम् ॥ ७ ॥ बीज-

जायत्तथा जायन्महाजायत्तथैव च । जायत्स्वमस्तथा स्वमः स्वमजा-ब्रत्सुपुप्तिकस् ॥ ८ ॥ इति सप्तविधो मोहः पुनरेष परस्परम् । श्विष्टो भव-त्यनेकाण्यं ऋणु लक्षणमस्य तु ॥ ९॥ प्रथमं चेतनं यत्सादनाख्यं निर्मलं चितः। भविष्यचित्तजीवादिनामशब्दार्थभाजनम् ॥ १० ॥ वीजरूपस्थितं जायद्वीजजायत्तदुच्यते। एषा ज्ञक्षेनैवावस्था त्वं जायत्संस्थिति श्रणु॥ ११॥ नवप्रसूतस्य परादयं चाहमिदं मम ॥ इति यः प्रत्ययः स्वस्थस्तजाप्रत्यागभा-बनात्॥ १२॥ अयं सोऽहमिदं तन्म इति जन्मान्तरोदितः। पीवरः प्रत्ययः श्रोक्तो महाजाश्रदिति स्फुटम् ॥ १३ ॥ अरूडमथवा रूढं सर्वथा तन्मयात्म-कम् । यजायतो मनोराज्यं यजायत्स्वम उच्यते ॥ १४ ॥ द्विचन्द्रशुक्तिकारू-ध्यमृगतृष्णादिभेदतः । अभ्यासं प्राप्य जाप्रत्तत्स्वमो नानाविधो भवेत् ॥ १५॥ अल्पकालं मया दृष्टमेतन्नोदेति यत्र हि । परामर्शः प्रबुद्ध स स्वम इति कथ्यते ॥ १६ ॥ चिरं संदर्शनाभावादप्रफुल्लं बृहद्वचः । चिरका-लानुवृत्तिस्तु स्वमो जाप्रदिवोदितः॥ १७॥ स्वमजाप्रदिति प्रोक्तं जाप्रत्यपि परिस्फुरत् । षडवस्थापरित्यागो जडा जीवस्य या स्थितिः ॥ १८ ॥ भविष्यदुःखवोधाद्या सौपुप्तिः सोच्यते गतिः । जगत्तस्यामवस्थायामन्त-स्तमिस लीयते ॥ १९ ॥ सप्तावस्था इमाः प्रोक्ता मया ज्ञानस्य वै द्विज । एकैका शतसंख्याऽत्र नानाविभवरूपिणी ॥ २० ॥ इमां सप्तंपदां ज्ञानभूमि-माकर्णयानघ। नानया ज्ञातया भूयो मोहपङ्के निमज्जित ॥ २१ ॥ वदन्ति बहुभेदेन वादिनो योगभूमिकाः ॥ मम त्वभिमता नूनमिमा एव शुभप्रदाः ॥ २२ ॥ अववोधं विर्दुर्ज्ञानं तिददं साप्तभूमिकम् । मुक्तिस्तु ज्ञेयमित्युक्ता भूमिकासप्तकात्परम् ॥ २३ ॥ ज्ञानभूमिः ग्रुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता । विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी ॥ २४ ॥ सच्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका। पदार्थभावना पष्टी सप्तमी तुर्यगा स्मृता॥ २५॥ आसामन्तःस्थिता मुक्तिर्यस्यां भूयो न शोचित । एतासां भूमिकानां त्विमिदं निर्वचनं रुगु ॥ २६ ॥ स्थितः किं मूढ एवास्यि प्रेक्षेऽहं शास्त्रसज्जनैः। वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ॥ २७ ॥ शास्त्रसज्ञनसंपर्क-वैराग्याभ्यासपूर्वकम् । सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥ २८॥ विचारणाञ्चभेच्छाभ्यामिनिद्रयार्थेषु रक्तता । यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते

तनुमानसी ॥ २९ ॥ भूमिकात्रितयाभ्यासाचित्ते तु विरतेर्वशात्। सत्त्वा-त्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहता ॥ ३० ॥ दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गकला तु या । रूडसत्त्वचमत्कारा शोक्ता संसक्तिनामिका ॥ ३१ ॥ भूमिकापञ्चका-भ्यासात्स्वात्मारामतया दृढम् । आभ्यन्तराणां वाह्यानां पदार्थानामभावनात् ॥ ३२ ॥ परप्रयुक्तेन चिरं प्रयतेनावबोधनस् । पदार्थभावना नाम पष्टी अवति भूमिका ॥ ३३ ॥ भूमिषद्गचिराभ्यासाद्गेदस्यानुपरुम्भनात् । यत्स्व-भावैकिनिष्टत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः ॥ ३४ ॥ एषा हि जीवन्सुक्तेषु तुर्याव-स्थेति विद्यते । विदेहसुक्तिविषयं तुर्यातीतमतः परस् ॥ ३५ ॥ ये निदाव महाभागाः सप्तमीं भूमिमाश्रिताः । आत्मारामा महात्मानस्ते महत्पद-मागताः ॥ ३६ ॥ जीवन्मुक्ता न मजनित सुखदुःखरसस्थिते । प्रकृतेनाथ कार्येण किंचित्कुर्वन्ति वा न वा ॥ ३७ ॥ पार्श्वस्थवोधिताः सन्तः पूर्वा-चारकमागतम् । आचारमाचरन्त्येव सुसबुद्धवदुत्थिताः ॥ ३८ ॥ भू-मिकाससकं चैतद्धीमतामेव गोचरम्। प्राप्य ज्ञानद्शामेतां पशुम्लेच्छाद-योऽपि ये ॥ ३९ ॥ सदेहा वाप्यदेहा वा ते सुक्ता नात्र संशयः । इप्तिहिं म्रन्थिविच्छेदस्तस्थिनसति विमुक्तता ॥ ४० ॥ सृगतृष्णाम्बुबुद्धादिशान्तिमात्रा-त्मकस्त्वसौ । ये तु मोहार्णवात्तीर्णास्तैः प्राप्तं परमं पदम् ॥ ४१ ॥ ते स्थिता भूमिकास्वासु स्वात्मलाभपरायणाः । मनःप्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते ॥ ४२ ॥ सप्तर्भूमिः स विज्ञेयः कथितास्ताश्च भूमिकाः । एतासां भूमिकानां तु गन्यं ब्रह्माभिधं पदम् ॥ ४३ ॥ त्वत्ताऽहन्तात्मता यत्र परता नास्ति काचन । न कचिद्भावकलना न भावाभावगोचरा ॥ ४४ ॥ सर्व शान्तं निरालम्बं व्योमस्थं शाश्वतं शिवम् । अनामयमनाभासमनामकमकारणम् ॥ ४५ ॥ न सन्नासन्न मध्यान्तं न सर्वं सर्वमेव च । मनोवचोभिरप्राह्यं पूर्णात्पूर्णं सुखात्सुखम् ॥ ४६ ॥ असंवेदनमाशान्तमात्मवेदनमाततम्। सत्ता सर्वपदार्थानां नान्या संवेदनाहते ॥ ४७ ॥ संबन्धे द्रष्टृहरूयानां मध्ये दृष्टिहिं यद्वपुः । दृष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं पदम् ॥ ४८ ॥ देशादेशं गते चित्ते मध्ये यचेतसो वपुः । अजाड्यसंविन्मननं तन्मयो भव सर्वदा ॥ ४९ ॥ अजायत्स्वप्तनिद्रस्य यत्ते रूपं सनातनम् । अचेतंन चाजडं च तन्मयो भव सर्वदा ॥ ५०॥ जडतां वर्जयित्वैकां शिलाया हृद्यं हि तत् । अमनस्कस्वरूपं यत्तन्मयो भव सर्वदा । चित्तं दूरे परित्यज्य

योऽसि सोऽसि स्थिरो भव॥ ५०॥ पूर्व मनः समुदितं परमात्मतत्त्वा-त्तेनाततं जगदिदं सविकल्पजालम् । शुन्येन शून्यमपि विप्र यथाऽम्बरेण नीलत्वमुल्लसति चारतराभिधानम् ॥ ५२ ॥ संकल्पसंक्षयवशाद्गलिते तु चित्ते संसारमोहमिहिका गिलता भवन्ति । स्वच्छं विभाति शरदीय समागतायां चिन्मात्रमेकमजमाद्यमनन्तमन्तः ॥ ५३ ॥ अक-र्तृकमरक्षं च गगने चित्रमुन्धितम् । अद्रष्टृकं स्वानुभवमनिद्रस्वप्नदर्शनम् ॥ ५४ ॥ साक्षिभृते समे स्वच्छे निर्विकस्पे चिदात्मनि । निरिच्छं प्रतिवि-म्बन्ति जगन्ति सुकुरे यथा॥ ५५॥ एकं ब्रह्म चिदाकाशं सर्वात्मकम-खण्डितस् । इति भावय यतेन चेतश्चाञ्चत्यशान्तये ॥ ५६॥ रेखोप-रेखावलिता यथेका पीवरी शिला। तथा त्रेलोक्यवलितं बहैकिमिह दश्यताम् ॥ ५७ ॥ द्वितीयकारणाभाषादनुत्पन्नमिदं जगत् । ज्ञातं ज्ञातव्यमधुना द्वष्टं द्रष्टव्यमञ्जतम् ॥ ५८ ॥ विश्रान्तोऽस्मि चिरं श्रान्तश्चिन्मात्रान्नास्ति किंचन । पद्य विशान्तसंदेहं विगतादेशकौतुकस् ॥ ५९ ॥ निरस्तकल्पनाजालम-चित्तत्वं परं पद्रस् । त एव भूमतां प्राप्ताः संशान्ताशेषकित्विषाः ॥ ६०॥ महाधियः शान्तिधियो ये याता विमनस्कताम् । जन्तोः कृत-विचारस्य विगलद्वृत्तिचेतसः ॥ ६१ ॥ मननं त्यजतो नित्यं किंचित्परिणतं मनः । दृश्यं संत्यजतो हेयसुपादेयसुपेयुषः ॥ ६२ ॥ दृष्टारं पत्यतो नित्यमद्रष्टारमपश्यतः । विज्ञातच्ये परे तत्त्वे जागरूकस्य जीवतः ॥ ६३ ॥ सुप्तस्य घनसंमोहमये संसारवामीन । अत्यन्तपक्षवैराग्यादरसेषु रसेष्वपि ॥ ६४॥ संसारवासनाजाले खगजाल इवाधुना । त्रोटिते हृद्यप्रन्थौ श्चर्ये वैराग्यरंहसा ॥ ६५॥ क्रातकं फलमासाद्य यथा वारि प्रसीदित । तथा विज्ञानवक्षतः स्वभावः संप्रसीदृति ॥ ६६ ॥ नीरागं विरुपासङ्गं निर्द्धन्द्वं निरुपाश्रयम् । विनिर्याति मनो मोहाद्विहङ्गः पक्षरादिव ॥ ६० ॥ शान्तसंदेहदौरात्म्यं गतकौतुकविभ्रमम् । परिपूर्णान्तरं चेतः पूर्णेन्दुरिव राजते ॥ ६८ ॥ नाहं न चान्यदस्तीह ब्रह्मैवास्मि निरामयम् । इत्थं सद-सतोर्मध्याद्यः पद्दयति स पद्भयति ॥ ६९ ॥ अयत्नोपनतेष्वक्षिद्दग्दद्भयेषु यथा मनः । नीरागमेव पतित तद्वत्कार्येषु घीरघीः ॥ ७०॥ परिज्ञा-योपभुक्तो हि भोगो भवति तुष्ट्ये । विज्ञाय सेवितश्चोरी भैन्नीमेति न चोरताम् ॥ ७१ ॥ अशङ्कितापि संप्राप्ता ग्रामयात्रा यथाऽध्वगैः । प्रेक्ष्यते तद्वदेव ज्ञैभींगश्रीरवलोक्यते ॥ ७२ ॥ मनसो निगृहीतस्य लीला-भोगोऽल्पकोऽपि यः । तमेवालब्धविस्तारं क्षिप्टत्वाइहु मन्यते ॥ ७३॥ बद्धमुक्तो महीपालो यासमात्रेण तुष्यति । परैरवद्धो नाकान्तो न राष्ट्र बहु मन्यते ॥ ७४ ॥ हस्ः हस्तेन संपीड्य दन्तेर्दन्तान्विचूर्ण्ये च । अङ्गान्यङ्गेरिवाकम्य जयेदादी स्वकं मनः ॥ ७५ ॥ मनसो विजयानान्या गातिरस्ति भवार्णवे । महानरकसाम्राज्ये मत्तदुष्कृतवारणाः ॥ ७६॥ आशाशरशलाकाच्या दुर्जया हीन्द्रियारयः । प्रक्षीणचित्तदर्पस्य निगृहीते-न्द्रियद्विषः ॥ ७७ ॥ पश्चिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोगवासनाः । तावित्रशीव वेताला वसन्ति हृदि वासनाः । एकतत्त्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः ॥ ७८ ॥ मृत्योऽभिमतकर्तृत्वानमन्त्री सर्वार्थकारणात् । सामन्तश्चेन्द्रियाकान्तेर्मनो मन्ये विवेकिनः ॥ ७९ ॥ लालनात्स्निग्घललना पालनात्पालकः पिता । सुहदुत्तमविन्यासान्मनो सन्ये मनीिषणः ॥ ८०॥ स्यालोकतः शास्त्रदशा स्वबुद्धा स्वानुभावतः । प्रयच्छति परां सिद्धि त्यक्त्वात्मानं मनःपिता ॥ ८१ ॥ सुहृष्टः सुदृढः स्वच्छः सुकान्तः सुप्रवो-धितः । स्वगुणेनोर्जितो भाति हादि हद्यो मनोमणिः ॥ ८२ ॥ एनं मनोमणि ब्रह्मन्बहुपङ्ककलङ्कितम् । विवेकवारिणा सिख्यै प्रक्षाल्यालोकवान्भव ॥ ८३ ॥ विवेकं परमाश्रित्य बुद्धा सत्यमवेक्ष्य च । इन्द्रियारीनलं छित्त्वा तीर्णो भव भवार्णवात् ॥ ८४ ॥ आस्थामात्रमनन्तानां दुःखानामाकरं विदुः । अनास्थामात्रमभितः सुखानामालयं विदुः ॥ ८५ ॥ वासना-तन्तुबद्धोऽयं लोको विपरिवर्तते । सा प्रसिद्धाऽतिदुःखाय सुखायोच्छेदमा-गता ॥ ८६ ॥ धीरोऽप्यतिबहुज्ञोऽपि कुळजोऽपि महानपि । तृष्णया बध्यते जन्तुः सिंहः रुद्धिलया यथा॥ ८० ॥ परमं पौरुषं यत्नमास्थायादाय सूद्यमम् । यथाशास्त्रमनुद्देगमाचरन्को न सिद्धिभाक् ॥ ८८ ॥ अर्ह सर्वमिदं विश्वं परमात्माहमच्युतः । नान्यदस्तीति संवित्त्या परमा सा ह्यहंकृतिः ॥ ८९ ॥ सर्वसाद्यतिरिक्तोऽहं वालाग्रादप्यहं तनुः । इति या संविदो ब्रह्मिन्द्रतीयाऽहंकृतिः शुभा॥ ९०॥ मोक्षायेषा न वन्धाय जीवन्मुक्तस्य विद्यते ॥ ९१ ॥ पाणिपादादिमात्रोऽयमहमित्येप निश्चयः। अहंकारस्तृतीयोऽसौ लौकिकस्तुच्छ एव सः ॥ ९२ ॥ जीव एव दुरा- त्मासौ कन्दः संसारदुस्तरोः । अनेनाभिहतो जन्तुरधोऽधः परिधावति ॥९३॥ अनया दुरहंकृत्या भावात्संत्यक्तयाचिरम् । शिष्टाहंकारवाञ्जन्तुः शमवा-न्याति सुक्तताम् ॥ ९४ ॥ प्रथमौ द्वावहंकारावङ्गीकृत्य त्वलाकिकौ। त्तीयाऽहंकृतिस्त्याज्या लौकिकी दुःखदायिनी॥ ९५ ॥ अथ ते अपि संत्यज्य सर्वाहंकृतिवर्जितः । स तिष्टति तथात्युचैः परमेवाधिरोहति ॥ ९६ ॥ भोगेच्छामात्रको बन्धसत्यागो मोक्ष उच्यते । मनसोऽभ्युदयो नाशो मनोनाशो महोदयः ॥ ९७ ॥ ज्ञमनो नाशमभ्येति मनो-ऽज्ञस्य हि शुङ्खला । नानन्दं न निरानन्दं न चलं नाचलं स्थिरम् । न सन्ना-सन्न चैतेषां मध्यं ज्ञानिमनो विदुः ॥ ९८ ॥ यथा सौक्ष्म्याचिदाभास्य आकाशो नोपलक्ष्यते । तथा निरंशश्चिद्धावः सर्वगोऽपि न लक्ष्यते ॥ ९९ ॥ सर्वसंकलपरहिता सर्वसंज्ञाविवार्जिता । सैपा चिद्विनाशात्मा स्वाःमेत्यादि-कृतासिधा ॥ १०० ॥ आकाशशतभागाच्छा होषु निक्करुरूपिणी । सकरा-मलसंसारस्वरूपैकारमद्रिंनी ॥ १०३ ॥ नास्तमेति न चोदेति नोत्तिष्ठति न तिष्टति । न च याति न चायाति न च नेह न चेह चित् ॥ १०२ ॥ सैपा चिद्मलाकारा निर्विकल्पा निरास्पदा ॥ १०३ ॥ आदौ शमद्मप्रायैगुंणैः शिष्यं विशोधयेत् । पश्चात्सर्वमिदं ब्रह्म शुद्धस्त्वमिति बोधयेत् ॥, १०४ ॥ अज्ञस्यार्धप्रवुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत् । महानरकजालेषु स तेन विनियो-जितः ॥ १०५ ॥ प्रबुद्धबुद्धेः प्रक्षीणभोगेच्छस्य निराशिषः । नास्त्यविद्याम-लमिति प्राज्ञस्तूपदिशेद्धरः ॥ १०६ ॥ सति दीप इवालोकः सत्यर्क इव वासरः । सति पुष्प इवामोदश्चिति सत्यं जगत्तथा ॥ १०० ॥ प्रतिभासत एवेदं न जगत्परमार्थतः । ज्ञानदृष्टी प्रसन्नायां प्रबोधविततोद्ये ॥ १०८ ॥ यथावज्ज्ञास्यसि स्वस्थो मद्वाग्वृष्टिवलावलम् । अविद्ययैवोत्तमया स्वार्थना-शौद्यमार्थया ॥ १०९ ॥ विद्या संप्राप्यते ब्रह्मन्सर्वदोषापहारिणी । शाम्यति स्रास्त्रीण मलेन क्षाल्यते मलम् ॥ ११०॥ शमं विवं विवेणैति रिपुणा हन्यते रिपुः । ईदशी भूतमायेयं या स्वनाशेन हर्षदा ॥ १११ ॥ न लक्ष्यते स्वभावोऽस्या वीक्ष्यमाणैव नश्यति । नास्त्येषा परमार्थेनेत्येवं भावनयेद्या ॥ ११२ ॥ सर्वं ब्रह्मेति यस्यान्तर्भावना सा हि सुक्तिदा । मेद्दष्टिरविद्येयं सर्वथा तां विसर्जयेत् ॥ ११३ ॥ मुने नासाद्यते तद्धि पदमक्षयमुच्यते । कुतो जातेयमिति ते द्विज मास्त विचारणा ॥ ११४ ॥ इमां कथमहं हन्मी- त्येषा तेऽस्तु विचारणा । असङ्गतायां क्षीणायामस्यां ज्ञास्यसि तत्पद्म ॥ ११५ ॥ यत एषा यथा चैषा यथा नष्टेत्यखण्डितस् । तदस्या रोगशालाया यतं कुरु चिकित्सने ॥ ११६ ॥ यथेषा जन्मदुःखेषु न भूयस्त्वां नियो-क्ष्यति । स्वात्मिन स्वपरिस्पन्दैः स्फुरत्यच्छैश्चिद्रर्णवः ॥ ११७ ॥ एकात्मकम-खण्डं तदित्यन्तर्भाव्यतां दृढम् । किंचित्धुभितरूपा सा चिच्छक्तिश्चिन्मया-र्णवे ॥ ११८ ॥ तन्मयेव स्फुरत्यच्छा तत्रैवोर्मिरिवार्णवे । आत्मन्येवात्मना व्योक्ति यथा सरसि मारुतः ॥ ३१९ ॥ तथैवात्माऽऽत्मशक्त्येव स्वात्मन्येवैति लोलताम् । क्षणं स्फुरति सा देवी सर्वशक्तितया तथा ॥ ६२० ॥ देशकाल-कियाशक्तिन यस्याः संप्रकर्षणे । स्वस्वभावं विदित्वोच्चेरप्यनन्तपदे स्थिता ॥ १२१ ॥ रूपं परिमितेनासी भावयत्यविभाविता । यदैवं भावितं रूपं तया परमकान्तया ॥ १२२ ॥ तदैवैनामनुगता नामसंख्यादिका दशः। विकल्पकलिताकारं देशकालिकयास्पद्म् ॥ १२३ ॥ चितो रूपमिदं ब्रह्म-न्क्षेत्रज्ञ इति कथ्यते । वासनाः कल्पयन्सोऽपि यात्यहंकारतां पुनः ॥ १२४ ॥ अहंकारो विनिर्णेता कलङ्की बुद्धिरुच्यते । बुद्धिः संकल्पिताकारा प्रयाति सननास्पद्म् ॥ १२५ ॥ मनो घनविकरुपं तु गच्छतीन्द्रियतां शनैः । पाणिपादसयं देहिमिन्द्रियाणि विदुर्बुधाः ॥ १२६ ॥ एवं जीवो हि संकल्पवासनारज्वेष्टितः । दुःखजालपरीतात्मा कमादायाति नीचताम् ॥ १२७ ॥ इति शक्तिमयं चेतो घनाहंकारतां गतम् । कोशकारकृमिरिव स्वेच्छया याति बन्धनम् ॥ १२८॥ स्वयं किटपततन्मात्राजालाभ्यन्तरवर्ति च । परां विवशतामेति श्रङ्खलाबद्धासिंहवत् ॥ १२९ ॥ कचिनमनः क्रचिद्धाद्धिः कचिज्ज्ञानं कचित्किया। कचिदेतदहंकारः कचिचित्तमिति स्मृतम् ॥ १३० ॥ कचित्प्रकृतिरित्युक्तं कचिन्मायेति करिपतम् । कचिन्मरुमिति प्रोक्तं कचित्कर्मेति संस्मृतम् ॥ १३१ ॥ कचिद्रन्थ इति ख्यातं कचित्पुर्यप्टकं स्मृतम् । प्रोक्तं कचि-दुविद्येति कचिदिःच्छेति संमतम् ॥ १३२ ॥ इमं संसारमखिलमाशापाशिव-धायकम् । द्रथदन्तःफलेहींनं वटधाना वटं यथा ॥ १३३ ॥ चिन्तानलिश-खादग्धं कोपाजगरचर्वितम् । कामाव्धिकछोलरतं विस्मृतात्मपितामहम् ॥ १३४ ॥ समुद्धर मनो ब्रह्मन्मातङ्गमिव कर्दमात् । एवं जीवाश्रिता भावा भवभावनयाहिताः॥ १३५॥ ब्रह्मणा कल्पिताकारा लक्षशोऽप्यथ कोटिशः। संख्यातीताः पुरा जाता जायन्तेऽद्यापि चाभितः ॥ १३६ ॥ उत्पत्स्यन्तेऽपि महोपनिषत्॥ ६४॥

चैवान्ये कणीवा इव निर्झरात् । केचित्प्रथमजन्मानः केचिजन्मशताधिकाः ॥ १३७ ॥ केचिचासंख्यजन्मानः केचिद्वित्रभवान्तराः । केचित्कन्नरगन्धर्व-विद्याधरमहोरगाः ॥ १३८ ॥ केचिद्केन्दुवरुणास्र्यक्षाघोक्षजपद्मजाः । केचि-द्वाह्मणभूपालवैदयद्भृद्वगणाः स्थिताः ॥ १३९ ॥ केचिन्णौपधीवृक्षफल-म्रलपतङ्गकाः । केचित्कद्रस्वजम्बीरसालतालतमालकाः ॥ १४० ॥ केचिन्महे-न्द्रमलयसद्यमन्द्रमेरवः । केचित्क्षारोद्धिक्षीरघृतेक्षुज्लराशयः ॥ १४१॥ केचिद्विशालाः ककुभः केचिन्नद्यो महारयाः। विहायस्युचकैः केचिन्निपत-न्त्युत्पतन्ति च ॥ १४२ ॥ कन्दुका इव हस्तेन मृत्युनाऽविरतं हताः । भुक्त्वा जन्मसहस्राणि भूयः संसारसंकटे ॥ १४३ ॥ पतन्ति केचिद्वधाः संप्राप्यापि विवेकतास् । दिकालाद्यनविच्छन्नमात्मतत्त्वं स्वशक्तितः ॥ १४४ ॥ ठीलयैव यदादत्ते दिकालकलितं वपुः । तदेव जीवपर्यायवासनावेशतः परम् ॥ १४५ ॥ मनः संपद्यते लोलं कलनाऽऽकलनोन्सुखम् । कलयन्ती मनःशक्तिरादौ भाव-यति क्षणात् ॥ १४६ ॥ आकाशभावनामच्छां शब्दबीजरसोन्मुखीम् । ततस्तद्धनतां यातं घनस्पन्दकमान्मनः ॥ १४० ॥ भावयत्यनिलस्पन्दं स्पर्श-बीजरसोन्मुखम् । ताभ्यामाकाशवाताभ्यां द्वाभ्यासवशात्ततः ॥ १४८ ॥ शर्टदस्पर्शस्वरूपाभ्यां संघर्षाज्ञन्यतेऽनलः । रूपतन्मात्रसहितं त्रिभिस्तैः सह संमितम् ॥ १४९ ॥ मनस्ताद्रगुणगतं रसतन्मात्रवेदनम् । क्षणाचेतत्यपां शैसं जलसंवित्ततो अवेत् ॥ १५०॥ ततस्ताद्रग्गुगगतं सनो भावयति क्षणात् । गन्धतन्मात्रमेतसाद्भिसंवित्ततो भवेत् ॥ १५१ ॥ अथेत्धंसूत-तन्मात्रवेष्टितं तनुतां जहत् । वपुर्वेह्निकणाकारं स्फुरितं व्योन्नि पदयित ॥ १५२ ॥ अहंकारकलायुक्तं बुद्धिबीजसमन्वितम् । तत्पुर्यष्टकमित्युक्तं भूत-हत्पद्मपदम् ॥ १५३ ॥ तस्मिस्तु तीव्रसंवेगाद्वावयद्वासुरं वयुः । स्थूल-तामेति पाकेन मनो विल्वफलं यथा ॥ १५४ ॥ मूवास्थद्वतहेमाभं स्फुरितं विमलाम्बरे । संनिवेशसथादते तत्तेजः स्वस्वभावतः ॥ १५५ ॥ ऊर्ध्व शिरः-पिण्डमयमधः पादमयं तथा । पार्श्वयोईस्तसंस्थानं मध्ये चोदरधर्मिणम् ॥ १५६॥ कालेन स्फुटतामेल भवत्यमलविग्रहम् । बुद्धिसत्त्ववलोत्साह-विज्ञानैश्वर्यसंस्थितः ॥ १५७ ॥ स एव भगवान्त्रह्मा सर्वेलोकपितामहः। अवलोक्य वपुर्वह्या कान्तमात्मीयमुत्तमम् ॥ १५८ ॥ चिन्तामभ्येत्य भग-वांचिकालामलदर्शनः । एतस्मिन्परमाकाशे चिन्मात्रैकात्मरूपिणि ॥ १५९ ॥ अदृष्टपारपर्यन्ते प्रथमं किं भवेदिति । इति चिन्तितवान्त्रह्मा सद्योजाताम-लात्मदक् ॥ १६० ॥ अपद्यत्स्वर्गवृन्दानि समतीतान्यनेकदाः । सारत्यथो स सकलान्सर्वधर्मगुणकमात् ॥ १६१ ॥ लीलया कल्पयामास चित्राः संकल्पतः प्रजाः । नानाजारसमारस्भो गन्धर्वनगरं यथा ॥ १६२ ॥ तासां स्वर्गापव-र्गार्थं धर्मकामार्थसिन्ह्ये । अनन्तानि विचित्राणि शास्त्राणि समकल्पयत् ॥ १६३ ॥ विरञ्जिरूपान्मनसः किष्पतत्वाज्ञगत्स्थितेः । तावित्थितिरियं श्रोक्ता तन्नारो नारामामुयात् ॥ १६४ ॥ न जायते न श्रियते क्रचित्किंचित्क-द्याचन । परमार्थेन विप्रेनद्र मिथ्या सर्वे लु दृश्यते ॥ १६५ ॥ कोशमाज्ञा-अुजङ्गानां संसाराडस्वरं त्यज । असदेतदिति ज्ञात्वा मातृभावं निवेशय ॥ १६६ ॥ गन्धर्वनगरस्यार्थे भूषितेऽभृषिते तथा । अविद्यांशे सुतादौ वा कः क्रमः सुखदुःखयोः ॥ १६७ ॥ धनदारेषु बृद्धेषु दुःखयुक्तं न तुष्टता। वृद्धायां मोहमायायां कः समाश्वासवानिह ॥ १६८ ॥ यैरेव जायते रागो सूर्खसाधिकतां गतैः । तैरेव भागैः प्राज्ञस्य विराग उपजायते ॥ १६९॥ अतो निदाध तत्त्वज्ञ व्यवहारेषु संस्रतेः । नष्टं नष्टमुपेक्षस्व प्राप्तं प्राप्तमुपाहर ॥ १७० ॥ अनागतानां भोगानामवाञ्छनमकृत्रिमम् । आगतानां च संभोग इति पण्डितलक्षणम् ॥ १७१ ॥ शुद्धं सदसतोर्मध्यं पदं बुद्धावलम्बय च। सबाह्याभ्यन्तरं दृश्यं मा गृहाण विमुख मा ॥ १७२ ॥ यस्य चेच्छा तथा-निच्छा ज्ञस्य कर्मणि तिष्ठतः। न तस्य लिप्यते प्रज्ञा पद्मपत्रमिवाम्बुभिः ॥ १७३ ॥ यदि ते नेन्द्रियार्थश्रीः स्पन्दते हृदि वै द्विज । तदा विज्ञातिविज्ञेया समुत्तीर्णो भवार्णवात् ॥ १७४ ॥ उच्चैःपदाय परया प्रज्ञया वासनागणात् । पुष्पाद्गन्धमपोद्यारं चेतोवृत्तिं पृथक्कुरु ॥ १७५ ॥ संसाराम्बुनिधावस्मिन्वासना-म्बुपारेष्ठते । ये प्रज्ञानावमारूढास्ते तीर्णाः पण्डिताः परे ॥ १७६ ॥ न त्यजन्ति न वाञ्छन्ति च्यवहारं जगद्गतम्। सर्वमेवानुवर्तन्ते पारावारविदो जनाः ॥ १७७ ॥ अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य सत्तासामान्यरूपिणः । चितश्चेतोन्मुखत्वं यत्तत्संकल्पाङ्करं विदुः ॥ १७८ ॥ लेशैतः प्राप्तसत्ताकः स एव घनतां शनैः। याति चित्तत्वमापूर्य दृढं जोड्याय मेघवत् ॥ १७९ ॥ भावयन्ति चितिश्चेत्यं व्यतिरिक्तमिवात्मनः । संकल्पतामिवायाति बीजमङ्करतामिव ॥ १८० ॥ संकल्पनं हि संकल्पः स्वयमेव प्रजायते। वर्धते स्वयमेवाशु दुःखाय न सुक्षाय यत् ॥ १८१ ॥ मा संकल्पय संकल्पं मा भावं भावय स्थिती ।
संकल्पनाशने यत्तो न भूयोऽननुगच्छित ॥ १८२ ॥ भावनाभावमात्रेण
संकल्पः क्षीयते खयम् । संकल्पेनैव संकल्पं मनसेव मनो मुने ॥ १८३ ॥
छित्ता स्वात्मिनि तिष्ठ त्वं किमेतावित दुष्करम् । यथैवेदं नभः शून्यं जगच्छून्यं तथैव हि ॥ १८४ ॥ तण्डुलस्य यथा चर्म यथा ताम्रस्य कालिमा ।
नज्यिति कियया वित्र पुरुषस्य तथा मलम् ॥ १८५ ॥ जीवस्य तण्डुलस्येव
मलं सहजमण्यलम् । नज्यत्येव न संदेहस्तस्मादुद्योगवान्भवेत् ॥ १८६ ॥

इति महोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अन्तरस्थां परित्यज्य भावश्रीं भावनामयीम् । योऽसि सोऽसि जगत्य-स्मिलीलया विहरानघ ॥ १ ॥ सर्वत्राहमकर्तेति दृढभावनयानया । परमासृतनाञ्ची सा समतैवावशिष्यते ॥ २ ॥ खेदोल्लासविलासेषु स्वातम-कर्तृतयेकया । स्वसंकरुपे क्षयं याते समतैवावशिष्यते ॥ ३ ॥ समता सर्वभावेषु यासौ सत्यपरा स्थितिः । तस्यामवस्थितं चित्तं न भूयो जन्म-भाग्भवेत् ॥ ४ ॥ अथवा सर्वकर्तृत्वमकर्तृत्वं च वै मुने । सर्व त्यन्त्वा मनः पीत्वा योऽसि सोऽसि स्थिरो अव ॥ ५ ॥ शेषस्थिरसमाधानो येन त्यजसि तत्त्यज । चिन्मनःकलनाकारं प्रकाशतिमिरादिकम् ॥ ६ ॥ वासनां वासितारं च प्राणस्पन्दनपूर्वकम् । समूलमखिलं त्यक्ता ज्योमसाम्यः प्रशान्तधीः ॥ ७ ॥ हृद्यात्संपरित्यज्य सर्ववासनपङ्कयः । यस्तिष्ठति गतन्ययः स सुक्तः परमेश्वरः ॥ ८ ॥ दृष्टं दृष्टन्यमिललं भ्रान्तं भ्रान्त्या दिशो दश । युत्तया वै चरतो ज्ञस्य संसारो गोष्पदाकृतिः ॥ ९ ॥ सबा-ह्याभ्यन्तरे देहे हाध ऊर्ध्वं च दिक्षु च। इत आत्मा ततोऽप्यात्मा नास्त्य-नात्ममयं जगत् ॥ १० ॥ न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न तन्मयम् । किमन्यद्भिवाञ्छामि सर्वं सिचनमयं ततम्॥ ११ ॥ समस्तं खिल्वदं बस सर्वमात्मेदमाततम् । अहमन्य इदं चान्यदिति आन्ति त्यजानघ ॥ १२ ॥ तते ब्रह्मघने नित्ये संभवन्ति न कल्पिताः । न शोकोऽस्ति न मोहोऽस्ति न जराऽस्ति न जन्म वा ॥ १३ ॥ यदस्तीह तदेवास्ति विज्वरो भव सर्वदा। यथाप्राप्तानुभवतः सर्वत्रानभिवाञ्छनात् ॥ १४॥ त्यागा-हालपरित्यागी विज्वरो भव सर्वदा । यस्येदं जन्म पाश्चात्त्यं तमाश्वेव अ. उ. २९

*

11

च

य

11

न

6

स

च

नि

त्र

₹

य

₹.

11

3

9

5

11

य

₹

महामते ॥ १५ ॥ विशन्ति विद्या विमला मुक्ता वेणुमिवोत्तमम् । विरक्त मनसां सम्यक्स्वप्रसङ्गादुदाहृतस् ॥ १६ ॥ द्रष्टुर्दश्यसमायोगात्प्रत्यया-नन्दनिश्चयः । यस्तं स्वमात्मतत्त्वोत्थं निष्पन्दं समुपास्महे ॥ १७ ॥ द्रपृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह । दृशनप्रत्ययाभासमात्मानं समु-पासहे ॥ १८ ॥ द्वयोर्मध्यगतं नित्यमस्ति-नास्तीतिपक्षयोः । प्रकाशनं प्रकाशानामात्मानं समुपास्महे ॥ १९ ॥ संत्यज्य हृद्धहेशानं देवसन्यं प्रयान्ति ये । ते रत्नमभिवाञ्छन्ति त्यक्तहस्तस्थकौस्तुभाः ॥ २० ॥ उत्थि-तानुत्थितानेतानिन्द्रयारीन्पुनः पुनः । हन्याद्वियेकदण्डेन वञ्रेणेव हरि-र्गिरीन् ॥ २१ ॥ संसाररात्रिदुःस्वमे शून्ये देहमये अमे । सर्वमेना-पवित्रं तहृष्टं संसृतिविश्रमस् ॥ २२ ॥ अज्ञानोपहतो बाल्ये योवने वनिता-हतः । शेषे कलत्रचिन्तार्तः किं करोति नराधमः ॥ २३ ॥ सतोऽसत्ता स्थिता मूर्जि रम्याणां सूर्व्यरस्यता । सुखानां सूर्जि दुःखानि किमेकं संश्र-याम्यहम् ॥ २४ ॥ येषां निमेषणोन्मेषौ जगतः प्रलयोदयौ । तादशाः पुरुषा यान्ति मादशां गणनेव का ॥ २५ ॥ संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते । तन्मध्ये पतिते देहे सुखमासाद्यते कथम् ॥ २६ ॥ प्रवु-द्धोऽस्मि प्रबुद्धोऽस्मि दुष्टश्चोरोऽयमात्मनः । मनो नाम निहन्स्येनं मन-साऽस्मि चिरं हतः॥ २७॥ मा खेदं भज हेयेषु नोपादेयपरो भव। हेयादेय-दृशौ त्यक्त्वा शेषस्थः सुस्थिरो भव ॥ २८ ॥ निराशता निर्भयता नित्यता समता ज्ञता । निरीहता निष्कियता सौम्यता निर्विकल्पता ॥ २९ ॥ धतिमैंत्री मनस्तुष्टिर्मृदुता सृदुभाषिता। हेयोपादेयनिर्मुक्ते हे तिष्ठन्यपवा-सनम् ॥ ३० ॥ गृहीततृष्णाशवरीवासनाजालमाततम् । संसारवारि प्रसृतं चिन्तातन्तुभिराततम् ॥ ३१॥ अनया तीक्ष्णया तात छिन्धि बुद्धिशलाकया । वात्ययेवाम्बुदं जालं छित्त्वा तिष्ठ तते पदे ॥ ३२॥ मनसैव मनिश्चत्त्वा कुठारेणेव पादपम्। पदं पावनमासाद्य सद्य एव स्थिरो भव ॥ ३३ ॥ तिष्ठनगच्छनस्वपञ्जायन्निवसन्नुत्पतन्पतन् । असदेवेद-मिल्यन्तं निश्चिलास्थां परिलाज ॥ ३४ ॥ दश्यमाश्रयसीदं चेत्तःसचित्तोऽसि बन्धवान् । दश्यं संत्यजसीदं चेत्तदाऽचित्तोऽसि मोक्षवान् ॥ ३५ ॥ नार्ह नेदमिति ध्यायँस्तिष्ठ त्वमचलाचलः । आत्मनो जगतश्चान्तर्देषृद्द्यद्शान्तरे ॥ ३६ ॥ दर्शनाख्यं स्वमात्मानं सर्वदा भावयन्भव । स्वाद्यस्वाद्कसंत्यक्तं

स्वाद्यस्वादकमध्यगम् ॥ ३७ ॥ स्वदनं केवलं ध्यायन्परमात्ममयो भव । अवलक्वय निरालम्बं मध्ये मध्ये स्थिरो भव ॥ ३८ ॥ रज्जबद्धा विमु-च्यन्ते तृष्णावद्धा न केनचित् । तस्मान्निदाघ तृष्णां त्वं त्यज संकल्पवर्जनात् ॥ ३९ ॥ एतामहंभावमयीमपुण्यां छित्त्वाऽनहंभावशलाकयैव । स्वमा-वजां भन्यभवान्त्रभूमौ भव प्रशान्ताखिलभूतभीतिः ॥ ४० ॥ अहमेषां यदार्थीनामेते च मम जीवितम् । नाहमेभिर्विना किंचिन्न मयैते विना किल ॥ ४१ ॥ इत्यन्तर्निश्चयं त्यक्त्वा विचार्य मनसा सह । नाहं पदार्थस्य न मे पदार्थ इति भाविते ॥ ४२ ॥ अन्तैःशीतलया बुद्धा कुर्वतो लीलया क्रियास् । यो नूनं वासनात्यागो ध्येयो ब्रह्मन्प्रकीर्तितः ॥ ४३ ॥ सर्व समतया बुद्धा यः कृत्वा वासनाक्षयम् । जहाति निर्ममो देहं नेयोऽसौ वासनाक्षयः ॥ ४४ ॥ अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः । तिष्ठति ध्येयसंत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४५ ॥ निर्मूलं कलनां त्यक्तवा वासनां यः शमं गतः। ज्ञेयं त्यागिममं विद्धि मुक्तं तं ब्राह्मणी-त्तमम् ॥ ४६ ॥ द्वावेतौ ब्रह्मतां यातौ द्वावेतौ विगतज्वरौ । आपतत्सु यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतौ । संन्यासियोगिनौ दान्तौ विद्धि शान्तौ मुनीश्वर ॥ ४७ ॥ ईप्सितानीप्सिते न स्तो यस्यान्तर्वेर्तिदृष्टिषु । सुषुप्तवद्य-श्चरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४८ ॥ हर्षामर्षभयक्रोधकामकार्पण्य-इप्रिभिः । न हृष्यति ग्लायति यः परामर्शविवर्जितः ॥ ४९ ॥ बाह्यार्थवासनो-द्भूता तृष्णा बद्धेति कथ्यते । सर्वार्थवासनोन्मुक्ता तृष्णा मुक्तेति भण्यते ॥ ५०॥ इदमस्तु ममेत्यन्तमिच्छां प्रार्थनयान्विताम् । तां तीक्ष्ण-रुङ्खलां विद्धि दुःखजन्मभयप्रदाम् ॥ ५१ ॥ तामेतां सर्वभावेषु सत्स्व-सत्सु च सर्वदा । संत्यज्य परमोदारं पदमेति महामनाः ॥ ५२॥ बन्धास्थामथ मोक्षास्थां सुखदुःखदशामपि । त्यक्तवा सदसदास्थां त्वं तिष्ठा-ऽक्षुब्धमहाब्धिवत् ॥ ५३ ॥ जायते निश्चयः साधो पुरुषस्य चतुर्विधः ॥ ५४ ॥ आ पादमस्तकमहं मातापितृविनिर्मितः । इत्येको निश्चयो ब्रह्मन्बन्धा-यासविलोकनात् ॥ ५५ ॥ अतीतः सर्वभावेभ्यो वालाग्रादप्यहं तनुः । इति द्वितीयो मोक्षाय निश्चयो जायते सताम् ॥ ५६ ॥ जगजालपदार्थातमा सर्व एवाहमक्षयः । तृतीयो निश्चयश्चोक्तो मोक्षायैव द्विजोत्तम ॥ ५७ ॥

अहं जगद्वा सकलं शून्यं व्योस समं सदा । एवमेष चतुर्थोऽपि निश्चयो सोक्षासिद्धिदः ॥ ५८ ॥ एतेषां प्रथमः प्रोक्तस्तृष्णया वन्धयोग्यया । शुद्धतृष्णास्त्रयः स्वच्छा जीवन्युक्ता विलासिनः ॥ ५९ ॥ सर्वं चाप्यहमे वेति निश्चयो यो महामते। तमादाय विषादाय न भूयो जायते मितः ॥ ६० ॥ श्रून्यं तत्प्रकृतिर्माया ब्रह्मविज्ञानमित्यपि । शिवः पुरुष ईशानो नित्यमात्मेति कथ्यते ॥ ६१ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्धतेर्जगन्निर्माणलील्या । परमात्ममयी शक्तिरहैतेव विजृम्भते ॥ ६२ ॥ सर्वातीतपदालम्बी परि-पूर्णेंकचिन्मयः । नोद्वेगी न च तुष्टात्मा संसारे नावसीदित ॥ ६३॥ प्राप्तकर्मकरो नित्यं शत्रुमित्रसमानदक् । ईहितानीहितैर्भुक्तो न शोचित न काङ्कृति ॥ ६४ ॥ सर्वस्यासिमतं वक्ता चोदितः पेशलोक्तिमान् । आज्ञ-यज्ञश्च भूतानां संसारे नावसीदित ॥ ६५ ॥ पूर्वी दृष्टिमवष्टभ्य ध्येष-त्यागविलासिनीम् । जीवन्मुक्ततया स्वस्थो लोके विहर विज्वरः ॥ ६६॥ अन्तःसंत्यक्तसर्वाशो वीतरागो विवासनः । वहिःसर्वसमाचारो लोके विहर विज्वरः ॥ ६७ ॥ बहिःकृत्रिमसंरम्भो हृदि संरम्भवर्जितः । कर्ता बहिरकर्ताऽन्तर्लोके विहर शुद्ध्यीः॥ ६८ ॥ त्यक्ताहंकृतिराश्वस्तमितराकाश-शोभनः । अगृहीतकलङ्काङ्को लोके विहर शुद्धधीः ॥ ६९ ॥ उदारः मेशलाचारः सर्वाचारानुवृत्तिमान् । अन्तःसङ्गपरित्यागी बहिःसंभार-वानिव । अन्तर्वेराग्यमादाय बहिराशोन्मुखेहितः॥ ७० ॥ अयं बन्ध रयं नेति गणना लघुचेतसाम् । उदारचरितानां तु वसुधेव कुटुम्बकम् 🛙 ७१ ॥ भावाभावविनिर्भुक्तं जरामरणवर्जितम् । प्रशान्तकलनारम्यं नीरागं पदमाश्रय ॥ ७२ ॥ एषा ब्राह्मी स्थितिः स्वच्छा निष्कामा विगतामया । आदाय विहरन्नेवं संकटेषु न मुह्यति ॥ ७३ ॥ वैराग्येणाथ शास्त्रेण महत्त्वादिगुणैरपि । यन्संकल्पहरार्थं तत्स्वयमेवोन्नयन्मनः॥ ७४॥ वैराग्यात्पूर्णतामेति मनो नाशवशानुगम् । आशया रक्ततामेति शर्दीव सरोऽमलम् ॥ ७५ ॥ तमेव भुक्तिविरसं व्यापारौद्यं पुनः पुनः । दिवसे दिवसे कुर्वन्माज्ञः कस्मान्न लजाते॥ ७६॥ चिच्चेत्वकलितो बन्धसान्मुकौ मुक्तिरुच्यते । चिद्चैत्या किलात्मेति सर्वसिद्धान्तसंग्रहः ॥ ७७ ॥ **एतन्निश्चयमादाय विलोकय घियेद्या । स्वयमे**वात्मनाःसानमानन्दं पद्माप्स्यसि ॥ ७८ ॥ चिदहं चिद्मे लोकाश्चिदाशाश्चिद्माः प्रजाः । हृश्यदर्शननिर्मुक्तः केवलामलरूपवान् ॥ ७९ ॥ निल्योदितो निराभासो दृष्टा साक्षी चिदात्मकः ॥ ८० ॥ चेल्यनिर्मुक्तचिद्द्पं पूर्णज्योतिःस्वरूपकम् । संशान्तसर्वसंवेद्यं संविन्मात्रमहं महत् ॥ ८१ ॥ संशान्तसर्वसंकल्पः प्रशान्तसकलेषणः । निर्विकल्पपदं गत्वा स्वस्थो भव मुनीश्वर ॥ ८२ ॥ इति । य इमां महोपनिषदं ब्राह्मणो निल्यमधीते । अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति । य इमां महोपनिषदं ब्राह्मणो निल्यमधीते । अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति । स सोमपूतो भवति । स सल्पूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वेद्वेवैर्ज्ञातो भवति । स सर्वेषु त्रीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वेद्वेवैर्ज्ञातो भवति । स सर्वेषु त्रीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वेद्वेवैर्ज्ञातो भवति । स सर्वेद्वास्पन्यवित । गायत्र्याः षष्टिसहस्नाणि जप्तानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । आ चश्चषः पङ्कि पुनाति । आ सप्तमान्पुरूषयुगान्पुनाति । इत्याह भगविन । आ चश्चषः । जप्येनासृतत्वं च गच्छतीत्युपनिषत् ॥ ८३ ॥

₹-

11

न

श-

य-

कि

र्ता

হা-

ारः, गर-

न्धु-कम्

स्यं

ामा

गाथ

8 11

दीव

वसे

युक्ती

नन्दं

ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ ॐ तत्सत् ॥ इति महोपनिषत्सु षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ इति महोपनिषत्समासा ॥ ६४ ॥

शारीरकोपनिषत् ॥ ६५ ॥ तत्त्वयामोपायसिद्धं परतत्त्वस्ररूपकम् ।

शरीरोपनिषद्वेद्यं श्रीरामब्रह्म मे गतिः॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः॥

ॐ अथातः पृथिव्यादिमहाभूतानां समवायं शरीरम् । यत्कििनं सा पृथिवी यद्भवं तदापो यदुष्णं तत्तेजो यत्संचरित स वायुर्यत्सुषिरं तदाका-शम्। श्रोत्रादीनि ज्ञानेन्द्रियाणि । श्रोत्रमाकाशे वायौ त्वगन्नौ चक्षुरप्सु जिह्ना पृथिव्यां घाणिमिति । एविमिन्द्रियाणां यथाक्रमेण शब्दस्पर्शरूपरस-गन्धाश्चेति विषयाः पृथिव्यादिमहाभूतेषु क्रमेणोत्पन्नाः । वाक्पाणिपादपायूप-स्थाल्यानि कर्मेन्द्रियाणि । तेषां क्रमेण वचनादानगमनविसर्गानन्दाश्चेते

विषयाः पृथिन्यादिमहाभूतेषु क्रमेणोत्पन्नाः। मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तामित्यन्तः करणचतुष्टयम् । तेषां ऋमेण संकल्पविकल्पाध्यवसायाभिमानावधारणास्वरूपाः श्चेते विषयाः । मनःस्थानं गलान्तं बुद्धेर्वदनमहंकारस्य हृद्यं चित्तस नाभिरिति । अस्थिचर्मनाडीरोममांसाश्चेति पृथिव्यंशाः । मूत्रश्लेष्मरक्तग्रुकः स्वेदा अवंशाः । क्षुत्तृष्णालस्यमोहमैथुनान्यग्नेः । प्रचारणविलेखनस्थूलायु-न्मेषनिमेषादि वायोः। कामकोधलोभमोहभयान्याकाशस्य। शब्दस्पर्शस्य-रसगन्धाः पृथिवीगुणाः । शब्दस्पर्शरूपरसाश्चापां गुणाः । शब्दस्पर्शरूपाण्यः भ्रिगुणाः । शब्दस्पर्शाविति वायुगुणौ । शब्द एक आकाशस्य । सारिवकसः जसतामसरुक्षणानि त्रयो गुणाः ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयब्रह्मचर्यापरिप्रहाः । अक्रोधो गुरुश्रुश्रुषा शीचं संतोष आर्जवम् ॥ ६ ॥ अमानित्वमदस्भित्वमाः स्तिकत्वमहिंसता। एते सर्वे गुणा होयाः सात्त्विकस्य विशेषतः॥ २॥ अहं कर्ताऽस्म्यहं भोक्ताऽस्म्यहं वक्ताऽभिमानवान् । एते गुणा राजसस्य प्रोच्यन्ते ब्रह्मवित्तमैः ॥ ३ ॥ निद्रालस्य मोहरागौ मैथुनं चौर्यमेव च । एते गुणा-स्तामसस्य प्रोच्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वे सान्त्विको मध्ये राजसोऽध-स्तामस इति । सस्यज्ञानं सात्त्विकम् । धर्मज्ञानं राजसम् । तिमिरान्धं ताम-समिति । जायत्स्वमसुषुष्ठितुरीयमिति चतुर्विधा अवस्थाः । ज्ञानेन्द्रियकर्मे-न्द्रियान्तःकरणचतुष्टयं चतुर्दशकरणयुक्तं जाम्रत् । अन्तःकरणचतुष्टयैरेव संयुक्तः स्वप्नः । चित्तैककरणा सुपुष्तिः । केवलजीवयुक्तमेव तुरीयमिति । उन्मीलितनिमीलितमध्यस्थजीवपरमात्मनोर्मध्ये जीवात्मा विज्ञायते । बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया । शरीरं सप्तदशभिः सुसूक्ष्मं लिङ्कमुच्यते ॥ ५ ॥ मनो बुद्धिरहंकारः खानिलाग्निजलानि भूः। एताः प्रकृ तयस्त्वष्टौ विकाराः षोडशापरे ॥ ६ ॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्ना घ्राणं चैव तु पञ्चमम् । पायूपस्थौ करौ पादौ वाक्चैव दशमी मता ॥ ७ ॥ शब्दः स्पर्शश्र रूपं च रसो गन्धसाथैव च । त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानि प्रकृतानि तु ॥ ८ ॥ चतुर्विशतिरन्यक्तं प्रधानं पुरुषः परः ॥ ९ ॥ इत्युपनिषत् ॥ ॐ तत्सत् ॥

> ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥ इति शारीरकोपनिषत्समासा॥ ६५॥

त:∙

पा-

स्य

A.

द्यु-

Ψ.

य-

₹1-

1

गन

भहं

न्ते

П-

ध-

म-भें-

रेव

। ति

श्मं

कृ-

तु

প্ৰ

11

योगशिखोपनिषत् ॥ ६६ ॥

योगज्ञाने यत्पदाप्तिसाधनत्वेन विश्वते । तत्रिपदं ब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमवशिष्यते ॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः॥

सर्वे जीवाः सुखेर्दुःखैर्मायाजालेन विष्टिताः । तेषां सुक्तिः कथं देव कृपया वद शंकर ॥ १॥ सर्विसिद्धिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम् । जन्ममृत्यु-जराज्याधिनाशनं सुखदं वद ॥ २ ॥ इति हिरण्यगर्भः पप्रच्छ स होवाच महे-श्वरः । नानामार्गेस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम् ॥ ३ ॥ सिद्धिमार्गेण रुभते नान्यथा पद्मसंभव । पतिताः शास्त्रजालेषु प्रज्ञया तेन मोहिताः ॥ ४ ॥ स्वात्मप्रकाशरूपं तत्कि शास्त्रेण प्रकाश्यते । निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम् ॥ ५ ॥ तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम् । परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतस् ॥ ६ ॥ तत्त्वातीतं महादेव प्रसादात्कथयेश्वर । सर्व-भावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम् ॥ ७ ॥ वायुवत्स्फुरितं स्वस्मिस्तत्राहंकृति-रुत्थिता । पञ्चात्मकमभूत्पिण्डं धातुबद्धं गुणात्मकम् ॥ ८ ॥ सुखदुःखैः समायुक्तं जीवभावनया कुरु। तेन जीवाभिधा प्रोक्ता विशुद्धे परमात्मनि ॥ ९ ॥ कासकोधसयं चापि मोहलोसमेथो रजः । जन्म मृत्युश्च कार्पण्यं शोकसन्द्रा श्रुधा तृषा ॥ १० ॥ तृष्णा लजा भयं दुःखं विषादो हर्ष एव च । एभिर्दोपैविनिर्मुक्तः स जीवः शिव उच्यते ॥ ११ ॥ तस्माद्दोषविनाशार्थ-सुपायं कथयामि ते । ज्ञानं केचिद्वदन्त्यत्र केवलं तन्न सिद्धये॥ १२॥ योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः । योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ॥ १३ ॥ तस्माज्ज्ञानं च योगं च सुमुक्षुर्देढमभ्यसेत् । ज्ञानस्व-रूपमेवादौ ज्ञेयं ज्ञानैकसाधनम् ॥ १४ ॥ अज्ञानं कीदशं चेति प्रविचार्यं सुसुक्षुणा । ज्ञातं येन निजं रूपं कैवल्यं परमं पदम् ॥ १५ ॥ असौ दोषैर्वि-निर्धुक्तः कामकोधभयादिभिः । सर्वदोषैर्वृतो जीवः कथं ज्ञानेन मुच्यते ॥ १६ ॥ स्वात्मरूपं यथा ज्ञानं पूर्णं तद्यापकं तथा । कामक्रोधादिदोषाणां खरूपान्नास्ति भिन्नता ॥ १७ ॥ पश्चात्तस्य विधिः किंतु निषेघोऽपि कथं भवेत् । विवेकी सर्वदा मुक्तः संसारश्रमवर्जितः ॥ १८॥ परिपूर्णस्वरूपं

तत्सत्यं कमलसंभव। सकलं निष्कलं चैव पूर्णत्वाच तदेव हि॥ १९॥ किलना स्फूर्तिरूपेण संसारअमतां गतम् । निष्कलं निर्मलं साक्षात्सकलं गगनोपमम् ॥ २० ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारस्फूर्तिज्ञानविवर्जितम् । एतदृपं समायातः स कथं मोहसागरे ॥ २१ ॥ निमज्जिति सहाबाहो त्यक्त्वा विद्यां पुनः पुनः । सुखदुःखादिमोहेषु यथा संसारिणां स्थितिः ॥ २२ ॥ तथा-ज्ञानी यदातिष्ठेद्वासनावासितस्तदा। तयोनीस्ति विशेषोऽत्र समा संसार-भावना ॥ २३ ॥ ज्ञानं चेदीदशं ज्ञातमज्ञानं कीदशं पुनः । ज्ञाननिष्ठो विर-क्तोऽपि धर्मक्तो विजितेन्द्रियः ॥ २४ ॥ विना देहेन योगेन न मोक्षं लभते विधे। अपकाः परिपकाश्च देहिनो द्विविधाः स्पृताः ॥ २५ ॥ अपका योग-हीनास्तु पक्का योगेन देहिनः । सर्वो योगाग्निना देहो ह्यजडः शोकवर्जितः ॥ २६ ॥ जडस्तु पार्थिवो ज्ञेयो ह्यपको दुःखदो भवेत् । ध्यानस्थोऽसौ तथा-प्येविमिन्द्रियेर्विक्षो भवेत् ॥ २७ ॥ तानि गार्ड नियम्यापि तथाप्यन्यैः प्रबाध्यते । शीतोष्णसुखदुःखाद्यैर्व्याधिभिर्मानसैस्तथा ॥ २८ ॥ अन्यैनीना-विधेजींवेः शस्त्राग्निजलमारुतेः। शरीरं पीड्यते तैस्तैश्चित्तं संश्चभ्यते ततः ॥ २९ ॥ तथा प्राणविपत्तौ तु क्षोभमायाति मास्तः । ततो दुःखशतैर्व्याप्तं चित्तं क्षुद्धं भवेत्रृणाम् ॥ ३० ॥ देहावसानसमये चित्ते यद्यद्विभावयेत् । तत्तदेव भवेजीव इत्येवं जन्मकारणम् ॥ ३१ ॥ देहान्ते किं भवेजन्म तन्न जानन्ति मानवाः । तस्माज्ज्ञानं च वैराग्यं जीवस्य केवलं श्रमः ॥ ३२ ॥ पिपीलिका यथा लग्ना देहे ध्यानाद्विमुच्यते । असौ किं वृश्चिकैर्द्धो देहान्ते वा कथं सुखी ॥ ३३ ॥ तस्मान्मूहा न जानन्ति मिथ्यातर्केण वेष्टिताः । अहंकृतिर्यदा यस्य नष्टा भवति तस्य वै ॥ ३४ ॥ देहस्त्विप भवेन्नष्टो न्याध-यश्चास्य किं पुनः । जलाग्निशस्त्रसातादिवाधा कस्य भविष्यति ॥ ३५ ॥ यदा यदा परिक्षीणा पुष्टा चाहंकृतिभवेत् । तमनेनास्य नश्यन्ति प्रवर्तन्ते स्गा-दयः ॥ ३६ ॥ कारणेन विना कार्यं न कदाचन विद्यते । अहंकारं विना तद्व-देहे दुःखं कथं भवेत् ॥ ३७ ॥ शरीरेण जिताः सर्वे शरीरं योगिभिर्जितम् । तत्कथं कुरुते तेषां सुखदुःखादिकं फलम् ॥ ३८ ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः कामकोधादिकं जितम् । तेनैव विजितं सर्वं नासौ केनापि बाध्यते ॥ ३९॥ महाभूतानि तत्त्वानि संहतानि कमेण च । सप्तधातुमयो देहो दग्धो योगा-

चिना शनेः ॥ ४० ॥ देवैरपि न **लक्ष्येत योगिदेहो महाबलः । भेदबन्ध**-विनिर्मुक्तो नानाशक्तिधरः परः ॥ ४१ ॥ यथाऽऽकाशस्त्रथा देह आकाशाद्पि निर्मलः । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो दृश्यः स्थूलात्स्थूलो जडाज्जडः ॥ ४२ ॥ इच्छा-क्यो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रस्त्वजरामरः । कीडते त्रिपु लोकेषु लीलया यत्र-क्रत्रचित् ॥ ४३ ॥ अचिन्त्यशक्तिमान्योगी नानारूपाणि धारयेत् । संहरेच पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः ॥ ४४ ॥ नासौ मरणमामोति पुनर्योग-बलेन तु । हटेन सृत एवासो मृतस्य मरणं कुतः ॥ ४५ ॥ मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति । यत्र जीवंन्ति सूढास्तु तत्रासौ सृत एव वै ॥ ४६॥ कर्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते । जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः सर्व-ढोषविवर्जितः ॥ ४७ ॥ विरक्ता ज्ञानिनश्चान्ये देहेन विजिताः सदा । ते कथं योगिभिस्तुल्या मांसपिण्डाः कुदेहिनः ॥ ४८॥ देहान्ते ज्ञानिभिः पुण्यात्पापाच फलमाप्यते । ईदशं तु भवेत्तत्तद्भवत्वा ज्ञानी पुनर्भवेत् ॥४९॥ पश्चारपुण्येन लभते सिद्धेन सह सङ्गतिम् । ततः सिद्धस्य कृपया योगी अवति नान्यथा ॥ ५० ॥ ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम् । योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेद्विधे ॥ ५१ ॥ ज्ञानेनैव विना योगो न सिध्यति कदाचन । जन्मान्तरैश्च बहुभिर्योगो ज्ञानेन लभ्यते ॥ ५२ ॥ ज्ञानं तु जन्मनैकेन योगादेव प्रजायते । तस्माद्योगात्परतरो नास्ति मार्गस्त मोक्षदः ॥ ५३ ॥ प्रविचार्य चिरं ज्ञानं मुक्तोऽहमिति मन्यते । किमसौ मन-नादेव मुक्ती अवति तत्क्षणात् ॥ ५४ ॥ पश्चाजनरान्तरशतैर्योगादेव विमु-च्यते । न तथा भवतो योगाजन्ममृत्यु पुनःपुनः ॥ ५५ ॥ प्राणापानसमा-योगाचन्द्रसूर्येकता भवेत् । सप्तधातुमयं देहमग्निना रक्षयेद्र्वम् ॥ ५६॥ व्याधयस्तस्य नर्यन्ति छेदखातादिकास्तथा । तदासौ परमाकाशरूपो देखव-तिष्टति ॥ ५७ ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन मरणं नास्ति तस्य वै । देहीव दस्यते लोके दग्धकर्पुरवत्स्वयम् ॥ ५८ ॥ चित्तं प्राणेन संवदं सर्वजीवेषु संस्थि-तम् । रजवा यद्रत्सुसंबद्धः पक्षी तद्वदिदं मनः ॥ ५९ ॥ नानाविधैर्विचारेस्तु न बाध्यं जायते मनः । तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एव हि नान्यथा ॥ ६० ॥ तकैंर्जरुपैः शास्त्रजालेर्युक्तिभिर्मन्त्रभेषजैः । न वशो जायते प्राणः सिद्धोपायं विना विधे ॥ ६१ ॥ उपायं तमविज्ञाय योगमार्गे प्रवर्तने । खण्डज्ञानेन सहसा जायते क्रेशवत्तरः ॥ ६२ ॥ यो जित्वा पवनं मोहाद्योगिमच्छति योगिनाम् । सोऽपक्कं कुम्भमारुह्य सागरं तर्तुमिच्छति ॥ ६३ ॥ यस्य प्राणो विलीनोऽन्तः साधके जीविते सति । पिण्डो न पतितस्तस्य चित्तं दोषैः प्रबाधते ॥ ६४ ॥ युद्धे चेतिस तस्यैव स्वात्मज्ञानं प्रकाशते । तस्माज्ज्ञानं भवेद्योगाजन्मनैकेन पद्मज ॥ ६५ ॥ तस्माद्योगं तमेवादौ साधको निसम-भ्यसेत् । सुसुक्षुसिः प्राणजयः कर्तव्यो मोक्षहेतवे ॥ ६६ ॥ योगात्परतां पुण्यं योगात्परतरं शिवस् । योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं निह ॥ ६७ ॥ योऽपानप्राणयोरेक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा । सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपर-मात्मनोः ॥ ६८ ॥ एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते । अथ योग-शिखां वक्ष्ये सर्वज्ञानेषु चोत्तमास् ॥ ६९ ॥ यदानुध्यायते सन्नं गात्र-कम्पोऽथ जायते । आसनं पद्मकं बद्धा यचान्यदिप रोचते ॥ ७० ॥ नासाप्रे ्रष्टिमारोप्य हस्तपादों च संयतो । मनः सर्वत्र संगृह्य ॐकारं तत्र चिन्त-येत् ॥ ७१ ॥ ध्यायते सततं प्राज्ञो हत्कृत्वा परमेश्वरम् । एकस्तम्भे नवद्वारे त्रिस्थूणे पञ्चदैवते ॥ ७२ ॥ ईंदरो तु शरीरे वा मतिमान्नोपलक्षयेत् । आदि-त्यमण्डलाकारं रिझ्मज्वालासमाकुलम् ॥ ७३ ॥ तस्य मध्यगतं विद्वे प्रैज्वले• द्दीपवर्तिवत् । दीपशिखा तु या मात्रा सा मात्रा परमेश्वरे ॥ ७४ ॥ भिन्दन्ति योगिनः सूर्यं योगाभ्यासेन वै पुनः । द्वितीयं सुपुन्नाद्वारं परिशुन्नं समर्पितम् ॥ ७५ ॥ कपालसंपुटं पीत्वा ततः पश्यति तत्पदम् । अथ न ध्यायते जन्तुरालस्याच प्रमादतः ॥७६॥ यदि त्रिकालमागच्छेत्स गच्छेत्पुण्य-संपदम् । पुण्यमेतत्समासाच संक्षिप्य कथितं मया ॥ ७७ ॥ लब्धयोगोऽथ बुध्येत प्रसन्नं परमेश्वरस् । जन्मान्तरसहस्रेषु यदा क्षीणं तु किल्बिषम् ॥७८॥ तदा पश्यित योगेन संसारोच्छेदनं महत् । अधुना संप्रवक्ष्यामि योगा-भ्यासस्य लक्षणम् ॥ ७९ ॥ मरुजयो यस्य सिद्धः सेवयेत्तं गुरुं सदा । गुरुवस्त्र-प्रसादेन कुर्यात्प्राणजयं बुधः॥ ८०॥ वितस्तिप्रमितं दैर्घ्यं चतुरङ्गुरुविस्तृ-तम् । मृदुङं धवलं प्रोक्तं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ॥ ८१ ॥ निरुध्य मारुतं गाढं शक्तिचालनयुक्तितः। अष्टधा कुण्डलीभूतामृज्वीं कुर्यातु कुण्डलीम् ॥ ८२ ॥ पायोराकुञ्चनं कुर्यात्कुण्डलीं चालयेत्तदा । सृत्युचक्रगतस्यापि तस्य सृत्युभयं प्तः ॥ ८३ ॥ एतदेव परं गुद्धां कथितं तु मया तव । बच्चासनगतो नित्य-

मूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत् ॥ ८४ ॥ वायुना ज्वलितो विद्वः कुण्डलीमनिशं दहेत्। संतप्ता साग्निना जीवशक्तिस्रेलोक्यमोहिनी ॥ ८५ ॥ प्रविशेचन्द्रतुण्डे तु सुषुम्नावदनान्तरे । वायुना विद्वना सार्धं ब्रह्मग्रन्थि भिनित्त सा॥ ८६॥ विष्णुप्रस्थि ततो भित्त्वा रुद्रप्रन्थौ च तिष्ठति । ततस्तु कुम्भकेगांढं पूर्यित्वा युनः युनः ॥ ८७ ॥ अथाभ्यसेत्सूर्यभेद्मुजार्यी चापि शीतलीम् । भस्नां च सहितो नाम स्याचतुष्टयकुम्भकः ॥ ८८ ॥ वन्धत्रयेण संयुक्तः केवल-प्राप्तिकारकः । अथास्य लक्षणं सम्यक्कथयामि समासतः ॥ ८९ ॥ एका-किना ससुपगस्य विविक्तदेशं प्राणादिरूपममृतं परमार्थतत्त्वम् । लघ्वाशिना धृतिमता परिभावितव्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ९० ॥ सूर्यनाड्या समाकृष्य वायुमभ्यासयोगिना । विधिवत्कुम्भकं कृत्वा रेचयेच्छीतरिहमना ॥ ९३ ॥ उद्रे बहुरोगन्नं क्रिमिदोषं निहन्ति च । मुहुर्मुहुरिदं कार्य सूर्यभेदमुदाहतम् ॥ ९२ ॥ नाडीभ्यां वायुमाकृष्य कुण्डल्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् । धारयेदुद्रे पश्चाद्रेचयेदिख्या सुधीः ॥ ९३ ॥ कण्ठे कफादि-दोषघ्नं शरीराग्निविवर्धनम् । नाडीजलापहं धातुगतदोषविनाशनम् ॥ ९४ ॥ गच्छतस्तिष्टतः कार्यमुजाय्याख्यं तु कुम्भकम् । मुखेन वायुं संगृह्य घ्राण-रन्ध्रेण रेचयेत् ॥ ९५ ॥ शीतलीकरणं चेदं हन्ति पित्तं क्षुधां तृषाम् । स्त्रनयोरथ भस्नेव लोहकारस्य वेगतः ॥ ९६ ॥ रेचयेत्पूरयेद्वायुमाश्रमं देहगं धिया । यथा श्रमो भवेदेहे तथा सूर्येण पूरयेत् ॥ ९७ ॥ कण्ठसंकोचनं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् । वातपित्तश्चेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥ ९८ ॥ कुण्डलीबोधकं वऋदोषमं ग्रुभदं सुखम् । ब्रह्मनाडीसुखान्तःस्थकपाद्यर्गल-नाशनम् ॥ ९९ ॥ सम्यग्वन्धसमुद्भृतं ग्रन्थित्रयविभेदकम् । विशेषेणैव कर्तन्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं त्विदम् ॥ १००॥ बन्धत्रयमथेदानीं प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् । नित्यं कृतेन तेनासौ वायोर्जयमवाप्नुयात् ॥ १०१॥ चतु-र्णामिप भेदानां कुम्भके समुपस्थिते। बन्धत्रयमिदं कार्यं वक्ष्यमाणं मया हि तत्॥ १०२ ॥ प्रथमो मूलबन्धस्तु द्वितीयोड्डीयनाभिधः। जालन्धर-स्तृतीयस्तु लक्षणं कथयाम्यहम् ॥ १०३ ॥ गुदं पाष्ण्यां तु संपीड्य पायुमाकुञ्चयेद्वलात् । वारंवारं यथा चोर्ध्वं समायाति समीरणः॥ १०४॥ प्राणापानौ नाद्विन्दू मूलबन्धेन चैकताम् । गत्वा योगस्य संसिद्धिं गच्छतो नात्र संशयः ॥ १०५ ॥ कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तूड्डियानकः । बन्धो येन सुपुम्नायां प्राणस्त् ड्डीयते यतः ॥ १०६ ॥ तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं योगिभिः समुदाहतः । उड्डियानं तु सहजं गुरुणा कथितं सदा ॥ १०७ ॥ अभ्यसेत्तदतनद्रस्तु वृद्धोऽपि तरुणो भवेत् । नाभेरूध्वीमधश्रापि तीणं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १०८ ॥ षण्मासमभ्यसेन्छत्युं जयत्येव न संशयः । पूर-कान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः ॥ १०९ ॥ कण्ठसंकोचरूपोऽसौ वायुमार्गनिरोधकः । कण्ठमाकुञ्चय हृद्ये स्थापयेहृदमिच्छया॥ ११०॥ बन्धो जालन्धराख्योऽयममृताप्यायकारकः । अधस्तात्कुञ्चनेनाञ्च कण्ठसंको-चने कृते ॥ १११ ॥ मध्ये पश्चिमतानेन स्यात्प्राणो ब्रह्मनाडिगः । बज्रा-सनस्थितो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम् ॥ ११२ ॥ कुर्यादनन्तरं अस्त्री कुण्डलीमाशु बोधयेत् । भिद्यन्ते प्रन्थयो वंशे तप्तलोहश्चलाकया ॥ ११३॥ तथैंव पृष्ठवैंकाः स्याद्रन्थिभेदस्तु वायुना। पिपीलिकायां लग्नायां कण्डूस्तन्न प्रवर्तते ॥ १९४ ॥ सुपुम्नायां तथाऽभ्यासात्सततं वायुना भवेत् । रुद्रयन्थि ततो भित्त्वा ततो याति शिवात्मकम् ॥ ११५॥ चन्द्रसूर्यौ समी कृत्वा तयोर्थोगः प्रवर्तते । गुणत्रयमतीतं स्याद्रन्थित्रयवि-भेदनात् ॥ ११६ ॥ शिवशक्तिसमायोगे जायते परमा स्थितिः। यथा करी करेणेव पानीयं प्रपिबेत्सदा॥ ११० ॥ सुपुम्नावज्रनालेन पवमानं यसेत्तथा । वज्रदण्डसमुद्भूता मणयश्चैकविंशतिः॥ ११८ ॥ सुपुन्नायां स्थिताः सर्वे सूत्रे मणिगणा इव । मोक्षमार्गे प्रतिष्टानात्सुपुन्ना विश्वरूपिणी ॥ ११९ ॥ यथैव निश्चितः कालश्चन्द्रसूर्यनिबन्धनात् । आपूर्य कुन्भितो वायुर्वहिनों याति साधके ॥ १२० ॥ पुनः पुनस्तद्वदेव पश्चिमद्वारलक्षणम् । पूरितस्तु स तद्वारेरीषत्क्रम्भकतां गतः ॥ १२१ ॥ प्रविशेत्सर्वगात्रेषु वायुः पश्चिममार्गतः । रेचितः क्षीणतां याति पूरितः पोषयेत्ततः ॥ १२२ ॥ यत्रैव जातं सकलेवरं मनस्तत्रेव लीनं कुरुते स योगात्। स एव सुक्तो निरहंकृतिः सुखी मूढा न जायन्ति हि पिण्डपातिनः ॥ १२३ ॥ चित्तं विनष्टं यदि आसितं स्यात्तत्र प्रतीतो महतोऽपि नाशः। न चेद्यदि स्यात्र तु तस्य शास्त्रं नात्मप्रतीतिर्न गुरुर्न मोक्षः ॥ १२४ । जलौका रुधिरं यहद्वलादाकर्षति स्वयम् । ब्रह्मनाडी तथा धातून्मंतताभ्यासयोगतः ॥ १२५ ॥ अनेनाभ्याम-

योगेन नित्यमासनवन्धतः । चित्तं विलीनतामेति विन्दुनीं यात्रधस्तथा ॥ १२६ ॥ रेचकं पूरकं मुक्त्वा वायुना स्थीयते स्थिरम् । नाना नादाः कार्तन्ते संखवेचन्द्रमण्डलम् ॥ १२७ ॥ नइयन्ति श्रुत्पिपासाद्याः सर्वदोषा-स्तंतस्तदा । स्वरूपे सचिदानन्दे स्थितिमामोति केवलम् ॥ १२८॥ कथितं तु तव शीत्या होतदभ्यासलक्षणम् । मन्नो लयो हठो राजयोगोऽन्तर्भूमिकाः क्रमात् ॥ १२९ ॥ एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते । हकारेण वहि-र्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥ १३०॥ हंसहंसेति मन्नोऽयं सर्वेजींवैश्र जप्यते। गुरुवाक्यात्सुपुन्नायां विपरितो भवेजपः ॥ १३१ ॥ सोऽहंसोऽहमिति प्रोक्तो मञ्जयोगः स उच्यते । प्रतीतिर्मञ्जयोगाच जायते पश्चिमे पथि ॥ १३२॥ हकारेण तु सूर्यः स्यात्सकारेणेन्दुरुच्यते । सूर्याचन्द्रमसोरेन्यं हठ इसिभधी-यते ॥ १३३ ॥ हठेन प्रस्यते जाड्यं सर्वदोषसमुद्भवम् । क्षेत्रज्ञः परमात्मा च तयोरैक्यं यदा भवेत् ॥ १३४ ॥ तदैक्ये साधिते ब्रह्मंश्चित्तं याति विली-नतास् । पवनः स्थैर्यमायाति लययोगोदये सति ॥ १३५ ॥ लयात्संप्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्दं परं पदम् । योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपावन्धूकसंनिभम् ॥ १३६ ॥ रजो वसति जन्तूनां देवीतत्त्वं समावृतम् । रजसो रेतसो योगा-द्राजयोग इति स्मृतः ॥ १३७ ॥ अणिमादिपदं प्राप्य राजते राजयोगतः । प्राणापानसमायोगो झेयं योगचतुष्टयम् ॥ १३८॥ संक्षेपाकथितं ब्रह्मन्ना-न्यथा शिवभाषितम् । क्रमेण प्राप्यते प्राप्यमभ्यासादेव नान्यथा ॥ १३९ ॥ एकेनैव शरीरेण योगाभ्यासाच्छनैःशनैः । चिरात्संप्राप्यते मुक्तिर्भर्कटकम एव सः ॥ १४० ॥ योगसिद्धिं विना देहः प्रमादाद्यदि नश्यति । पूर्ववास-नया युक्तः शरीरं चान्यदाप्रुयात् ॥ १४१ ॥ ततः पुण्यवशात्सिद्धो गुरुणा सह संगतः । पश्चिमद्वारमार्गेण जायते व्वरितं फलम् ॥ १४२ ॥ पूर्वजन्म कृताभ्यासात्सत्वरं फलमश्रुते। एतदेव हि विशेयं तत्काकमतमुच्यते॥ १४३॥ नास्ति काकमतादन्यदभ्यासाख्यमतः परम् । तेनैव प्राप्यते मुक्तिर्नान्यथा शिवभाषितम् ॥ १४४ ॥ हठयोगक्रमास्काष्टासहजीवलयादिकम् । प्राकृतं मोक्षमार्गं स्वात्प्रसिद्धं पश्चिमं विना ॥ १४५ ॥ आदौ रोगाः प्रणस्यन्ति पश्चाजाट्यं शरीरजम् । ततः समरसो भूत्वा चन्द्रो वर्षत्यनारतम् ॥ १४६ ॥ धातंश्च संग्रहेद्विः पवनेन समन्ततः । नाना नादाः प्रवर्तन्ते मार्दवं स्थात्क- लेवरे ॥ १४७ ॥ जित्वा बृष्ट्यादिकं जाट्यं खेचरः स अवेद्यरः । सर्व-ज्ञोऽसौ भवेत्कामरूपः पवनवेगवान् ॥ १४८ ॥ कीडते त्रिषु लोकेषु जायन्ते सिद्धयोऽखिलाः । कर्पूरे लीयमाने किं काठिन्यं तत्र विचते ॥ १४९ ॥ अहंकारक्षये तहुदेहे कठिनता कुतः । सर्वकर्ता च योगीन्द्रः खतन्नोऽनन्त-रूपवान् ॥ १५० ॥ जीवन्मुक्तो महायोगी जायते नात्र संशयः । द्विविधाः सिद्धयो लोके किएताऽकिएतास्तथा ॥ १५१ ॥ रसौषधिकियाजालमञ्जा-श्यासादिसाधनात् । सिध्यन्ति सिद्धयो यास्तु कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः ॥ १५२ ॥ अतित्या अल्पवीर्यासाः सिद्धयः साधनोद्धवाः । साधनेन विना-च्येवं जायन्ते स्वत एव हि ॥ १५३ ॥ स्वात्मयोगैकनिष्ठेषु स्वातज्यादीश्वर-प्रियाः । प्रभूताः सिद्धयो यास्ताः कल्पनारहिताः स्पृताः ॥ १५४ ॥ सिद्धा निया महावीर्या इच्छारूपाः स्वयोगजाः । चिरकालाव्यनाथन्ते वासनारहि-तेषु च ॥ १५५ ॥ तीस्तु गोष्या महायोगात्वरमात्मवदेऽव्यये । विना कार्य सदा ग्रसं योगसिद्धस्य लक्षणम् ॥ १५६ ॥ यथाकाशं समुद्दिश्य गच्छद्भिः पथिकैः पथि । नाना तीर्थानि दृश्यन्ते नानामार्गास्तु सिद्धयः ॥ १५७ ॥ स्वयमेव प्रजायन्ते लाभालाभविवर्जिते । योगमार्गे तैथैवेदं सिद्धिजालं प्रव-र्तते ॥ १५८ ॥ परीक्षकैः स्वर्णकारहेंम संप्रोच्यते यथा । सिद्धिभर्लक्षयेत्सिद्धं जीवन्युक्तं तथेव च ॥ १५९ ॥ अलैकिकगुणस्तस्य कदाचिद्दृश्यते ध्रुवस् । सिद्धिभः परिहीनं तु नरं बद्धं तु लक्षयेत् ॥ १६० ॥ अजरामरपिण्डो यो जीवन्युक्तः स एव हि । पशुकुकुटकीटाचा सृतिं संप्राप्नुवन्ति वै ॥ १६१ ॥ तेषां किं पिण्डपातेन मुक्तिर्भवति पद्मज । न वहिः प्राण आयाति पिण्डस्य पतनं कुतः ॥ १६२ ॥ पिण्डपातेन या सुक्तिः सा सुक्तिनं तु हन्यते । देहे ब्रह्मस्वमायाते जलानां सैन्धवं यथा ॥ १६३ ॥ अनन्यतां यदा याति तदा मुक्तः स उच्यते । विमतानि शरीराणि इन्द्रियाणि तथैव च ॥ १६४ ॥ ब्रह्म देहत्वमापन्नं वारि बुहुदतामिव । दशद्वारपुरं देहं दशनाडीमहापथम् ॥ १६५ ॥ दशभिर्वायुभिर्व्याप्तं दशेन्द्रियपरिच्छदम् । षडाधारापवरकं षड• न्वयमहावनम् ॥ १६६ ॥ चतुःपीठसमाकीर्णं चतुराम्नायदीपकम् । बिन्दु-नादमहालिङ्गं शिवशक्तितिकेतनम् ॥ १६७ ॥ देहं शिवालयं शोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम् । गुदमेदान्तरालस्थं मुलाधारं त्रिकोणकम् ॥ १६८ ॥ शिवस्य

जीवरूपस्य स्थानं तिन्धं प्रचक्षते। यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तः प्रतिष्ठिता ॥ १६९ ॥ यसादुत्पचते वायुर्यसाद्विः प्रवतेते। यसादुत्पचते विन्दुर्य-साज्ञादः प्रवतेते ॥ १७० ॥ यसादुत्पचते हंसो यसादुत्पचते मनः। तदेव-स्कामरूपार्व्यं पीठं कामफलपदम् ॥ १७३ ॥ स्वाधिष्टानाद्वयं चकं लिङ्गमूले विस्कृते स्थितं चकं दशारं मणिप्रकम् ॥ १७२ ॥ द्वादशारं महाचकं हृदये चाप्यनाहृतम्। तदेतत्पूर्णगिर्यार्व्यं पीठं कमलसंभव ॥ १७३ ॥ कण्ठकूपे विद्युद्धार्व्यं यचकं षोडशास्त्रकम् । पीठं जालन्धरं नाम तिष्टत्यत्र सुरेश्वरः ॥ १७४ ॥ आज्ञा नाम अवोर्मध्ये द्विदलं चक्रमुत्तमम् । उड्यानार्व्यं महापीठसुपरिष्टात्मतिष्ठितम् ॥ १७५ ॥ चतुरस्रं धरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवता । अर्थचन्द्राङ्चितं चलं विष्णुस्तस्याधिदेवता ॥ १७६ ॥ त्रिकोणमण्डलं वृद्धी कृदस्तस्याधिदेवता । वायोविंम्बं तु षदकोणमीश्वरोऽस्याधिदेवता ॥ १७७ ॥ आक्वासमण्डलं वृत्तं देवताऽस्य सदाशिवः । नादरूपं भ्रवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः ॥ १७८ ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुनर्योगस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शंकर । यस्य विज्ञानमात्रेण खेचरीसमतां व्रजेत् ॥ १ ॥ श्रणु ब्रह्मन्प्रवस्थामि गोपनीयं प्रयत्नतः । द्वाद्रशाब्दं
तु शुश्र्षां यः कुर्याद्प्रमादतः ॥ २ ॥ तस्मै वीच्यं यथातथ्यं दान्ताय ब्रह्मचारिणे । पाण्डित्याद्र्यं छोभाद्वा प्रमादाद्वा प्रयच्छित ॥ ३ ॥ तेनाचीतं श्रुतं
तेन तेन सर्वमनुष्टितम् । मूलमञ्जं विज्ञानाति यो विद्वान्गुरुद्शितम् ॥ ४ ॥
शिवशक्तिमयं मञ्जं मूलाधारात्मसुर्थितम् । तस्य मञ्चस्य व ब्रह्मच्छोता वक्ता
च दुर्लभः ॥ ५ ॥ एतत्पिठिमिति प्रोक्तं नाद्रिकं विद्वासकम् । तस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेज्ञंनः ॥ ६ ॥ अणिमादिकमैश्र्यंमित्रादेव जायते ।
मननात्प्राणनाचेव मद्रपस्याववोधनात् ॥ ७ ॥ मञ्जमित्युच्यते ब्रह्मन्मद्विधानतोऽपि वा । मूलत्वात्सर्वमञ्जाणां मूलाधारसमुद्भवात् ॥ ८ ॥ मूळस्वरूपलिङ्गःवान्मूलमञ्ज इति स्मृतः । स्कृत्वात्कारणत्वाच लयनाद्गमनाद्वि
॥ ९ ॥ लक्षणात्परमेशस्य लिङ्गमित्यभिषीयते । संतिधानात्समस्तेषु जन्तुव्विप च संततम् ॥ १० ॥ सूचकत्वाच रूपस्य सूत्रमित्यभिषीयते । महामाया
महालक्ष्मीर्महादेवी सरस्वती ॥ १९ ॥ आधारशक्तिरव्यक्ता यया विश्वं प्रवर्तते ।

सूक्ष्माभा विन्दुरूपेण पीठरूपेण वर्तते ॥ १२ ॥ विन्दुपीठं विनिभिंच नाद् ि क्षिप्रास्थितम् । प्राणेनोद्यार्थते ब्रह्मन्पण्मुखीकरणेन च ॥ १३ ॥ गुरूपदेश-मार्गेण सहसेव प्रकाशते । स्थूलं स्क्षं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः ॥ १४ ॥ पञ्चब्रह्ममयं रूपं स्थूलं वैराजसुच्यते । हिरण्यगर्भं स्क्षं तु नादं बीजत्रयात्मकम् ॥ १५ ॥ परं ब्रह्म परं सत्यं सिच्दानन्दलक्षणम् । अप्रमेय-मिन्देंश्यमवाद्यानसगोचरम् ॥ १६ ॥ ग्रुदं स्क्षं निराकारं निर्विकारं निर-क्षनम् । अनन्तमपरिच्छेद्यमनूषममनासयम् ॥ १० ॥ आत्ममञ्चसदाभ्यासा-त्यरत्त्वं प्रकाशते । तद्भिव्यक्तिचिह्नाने सिद्धिद्वाराणि मे श्रृणु ॥ १८ ॥ दीपज्वालेन्दुखद्योतविद्युक्षक्षत्रभाखराः । दश्यन्ते स्क्ष्मरूपेण सदा युक्तस् योगिनः ॥ १९ ॥ अणिमादिकमैश्वर्यमविरात्तस्य जायते । नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः ॥ २० ॥ नानुसंघेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम् । गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा सिद्धिमिच्छता । मञ्चक्त एतद्विज्ञाय कृत-कृत्यः सुखी भवेत् ॥ २१ ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यते कथिता द्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ २२ ॥ इति ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यन्नमस्यं चिदाख्यातं यत्सिद्धीनां च कारणस् । येन विज्ञातमात्रेण जनमबन्धात्मसुच्यते ॥ १ ॥ अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते । मूलाधारगता शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी ॥ २ ॥ तस्यासुत्पद्यते नादः सूक्ष्मवीजादिवाङ्करः । तां पश्यन्तीं विदुर्विश्वं यया पश्यन्ति योगिनः ॥ ३ ॥ हृदये
व्यज्यते घोषो गर्जत्पर्जन्यसंनिभः । तत्र स्थिता सुरेशान मध्यमेत्यभिषीयते
॥ ४ ॥ प्राणेन च स्वराख्येन प्रथिता वैखरी पुनः । शाखापछ्यक्ष्पेण ताल्वादिस्थानघट्टनात् ॥ ५ ॥ अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराणि समीरयेत् । अक्षरेभ्यः पदानि स्युः पदेभ्यो वाक्यसंभवः ॥ ६ ॥ सर्वे वाक्यात्मका मञ्रा
वेदशास्त्राणि कृत्स्त्राः । पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधा अपि ॥ ७ ॥
सस स्वराश्च गाथाश्च सर्वे नादसमुद्भवाः । एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगृहाश्रया ॥ ८ ॥ वायुना वह्नियुक्तेन प्रेर्थमाणा शनैः शनैः । तद्विवर्तपदैर्वाक्येरित्येवं वर्तते सदा ॥ ९ ॥ य इमां वैखरीं शक्तिं योगी स्वात्मिन पश्यित ।
स वाक्सिन्धिम्वामोति सरम्बद्याः प्रमादतः ॥ १० ॥ वेदशास्त्रपुराणानां

स्वयं कर्ता अविष्यति । यत्र बिन्दुश्च नादश्च सोमसूर्याप्निवायवः ॥ ११ ॥ इन्द्रियाणि च सर्वाणि लयं गच्छन्ति सुवत । वायवो यत्र लीयन्ते मनो यत्र विलीयते ॥ १२ ॥ यं कब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः । यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ १३ ॥ यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया । यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तथ्यति ॥ १४ ॥ सखमात्यन्तिकं यत्तद्वद्विप्राह्यमतीन्द्रियम् । एतःक्षराक्षरातीतमनक्षरमिती-र्वते ॥ १५ ॥ क्षरः सर्वाणि भूतानि सूत्रात्माऽक्षर उच्यते । अक्षरं परमं ब्रह्म निर्विशेषं निरञ्जनम् ॥ १६ ॥ अलक्षणमलक्ष्यं तद्प्रतक्यंमनुषमम् । अपारपारमच्छेद्यमचिन्त्यमतिनिर्मेलम् ॥ १७ ॥ आधारं सर्वभूतानामनाधार-मनास्यस् । अप्रमाणमनिर्देश्यमप्रमेयमतीन्द्रियस् ॥ १८ ॥ अस्थलमन्ण हस्त्रमदीर्घमजमन्ययम् । अशन्दमस्पर्शरूपमचक्षःश्रोत्रनामकम् ॥ १९ ॥ सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वेषां हृद्ये स्थितम् । सुसंवेद्यं गुरुमतात्सुदुर्वोधमचेतं-साम् ॥ २० ॥ निष्कलं निर्पुणं शान्तं निर्विकारं निराश्रयम् । निर्लेपकं निरा-पायं कूटस्थमचळं ध्रुवम् ॥ २१॥ ज्योतिपामपि तज्योतिस्तमःपारे प्रति-ष्ठितम् । भावाभावविनिर्भुक्तं भावनामात्रगोचरम् ॥ २२ ॥ भक्तिगम्यं परं तस्वमन्तर्लीनेन चेतला । भावनामात्रमेवात्र कारणं पद्मसंभव ॥ २३ ॥ यथा देहान्तरप्राप्तेः कारणं भावना नृणाम् । विषयं ध्यायतः पुंसो विषये रमते मनः ॥ २४ ॥ मामनुसारतश्चित्तं मख्येवात्र विलीयते । सर्वज्ञखं परेशाःवं सर्वसंपूर्णशक्तिता । अनन्तशक्तिमत्त्वं च मदनुसारणाद्भवेत्॥२५॥ इति॥

इति योगशिखोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चैतन्यस्पैकरूपत्वाद्धेदो युक्तो न किहिंचित् । जीवत्वं च तथा श्रेयं रज्वां सर्पग्रहो यथा ॥ १ ॥ रज्ज्वज्ञानात्क्षणेनैव यद्भद्रज्जुिहं सर्पिणी । भाति तद्भिचितः साक्षाद्धिश्वाकारेण केवला ॥ २ ॥ उपादानं प्रपञ्चस्य मह्मणोऽन्यन्न विद्यते । तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत् ॥ ३ ॥ व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात् । इति ज्ञाते परे तत्त्वे मेदस्यावसरः कुतः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः । तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीति विचिन्तय ॥ ५ ॥ ब्रह्मैव सर्वनामानि क्ष्पाणि विविधानि च । कर्माण्यपि समग्राणि विभिर्तीति विभावय ॥ ६ ॥

स्वर्णाजायसानस्य सुवर्णस्वं च बाम्बतस् । ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मस्वं च तथा अवेत् ॥ ७ ॥ खल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवास्यपरमात्मनोः । यिलष्टित विमुहातमा अयं तस्थापि भाषितम् ॥ ८ ॥ यद्ज्ञाना स्वेद्वेतिमितरः त्तरप्रवत्त्वति । आत्मत्वेन तदा सर्व नेतरत्तत्र चाण्वपि ॥ ९ ॥ अतु-भूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन् । असद्रूपो यथा स्वम उत्तरक्षण-बाधितः ॥ १० ॥ स्त्रमे जागरितं नास्ति जागरे स्त्रमता नहि । हयसेव ळये नास्ति लयोऽपि ह्यनयोर्न च ॥ ११ ॥ जयमेव अवेन्सिया गुण-त्रयविनिर्मितम्। अस्य द्रष्टा गुणातीतो निलो होष चिदात्मकः ॥ १२ ॥ यद्रन्मृदि घटश्रान्तिः शुक्तो हि रजतस्थितिः । तद्रद्रह्मणि जीवत्वं वीक्षमाणे विनइयति ॥ १३ ॥ यथा सृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा । शुक्ती हि रजतख्यातिर्जीवशब्दस्तथा परे ॥ १४॥ यथैव ब्योक्ति नीलत्वं यथा नीरं मरुखारे । पुरुषत्वं यथा स्थाणी तह्नहिश्वं चिदात्मिन ॥ १५॥ यथेव अन्यो वेतालो गन्धर्वाणां पुरं यथा । यथाकाशे हिचनद्रत्वं तहस्तसे जगत्स्थितिः ॥ १६ ॥ यथा तरङ्गकछोठैर्जलमेव स्फुरत्यलम् । घटनान्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः ॥ १७ ॥ जगन्नाम्ना चिदासाति सर्वं ब्रह्मेव केवलम्। यथा वनध्यामुतो नास्ति यथा नास्ति मरी जलम् ॥ १८॥ यथा नास्ति नभोवृक्षस्तथा नास्ति जगिस्थितिः । गृह्यसाभे वटे यहन्सृत्तिका भाति वै बकात्॥ १९॥ वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चे तु ब्रह्मेवासाति भासुरम्। सदेवात्मा विशुद्धोऽस्मि हाशुद्धो भाति वे सदा ॥ २०॥ यथैव द्विविधा रज्जुर्जानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम् । यथैव सृन्मयः कुम्भस्तद्वदेहोऽपि चिन्मयः ॥ २१ ॥ आत्मानात्मविवेकोऽयं सुधेव कियते बुधैः । सर्पत्वेन यथा रज्जू रजतत्वेन शुक्तिका ॥ २२ ॥ विनिर्णीता विस्हेन देहत्वेन तथा-ऽऽत्मता। घटत्वेन यथा पृथ्वी जलत्वेन मरीचिका ॥२३॥ गृहत्वेन हि काष्टानि खङ्गत्वेनैव छोहता । तद्वदात्मिन देहत्वं पर्यत्यज्ञानयोगतः ॥ २४ ॥ इति ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पुनर्योगं प्रवक्ष्यामि गुद्धं ब्रह्मस्वरूपकम् । समाहितमना भूत्वा श्रणु ब्रह्मन्यथाकमम् ॥ १ ॥ दशद्वारपुरं देहं दशनाडीमहापथम् । दश-भिर्वायुभिर्च्यासं दशेन्द्रियपरिच्छदम् ॥ २ ॥ षडाधारापवस्कं पडन्वय-महावनम् । चतुःपीठसमाकीर्णं चतुराक्षायदीपका ३ ॥ वेन्दु- नादमहालिङ्गिचेच्युलक्ष्मीनिकेतनम् । देहं विष्ण्वालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्व-देहिनास् ॥ ४ ॥ गुद्मेदान्तराजस्यं मूलाधारं त्रिकोणकम् । शिवस्य जीवरूपस स्थानं तिह प्रचक्षते ॥ ५ ॥ यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता । यसादुत्पचते वायुर्यसाद्रह्मः प्रवतिते ॥ ६ ॥ यसादुत्पचते विनेदुर्यसाञ्चादः प्रवर्तते । यसादुत्पवते हंसो यसादुत्पवते मनः ॥ ७॥ तदेतत्कामरूपार्यं पीठं कामफलपदम् । स्वाधिष्ठानाह्नयं चकं लिङ्गमूले बढलकम् ॥ ८ ॥ नाभिदेशे स्थितं चकं दशासं मणिपुरकम् । द्वादशारं महाचकं हृद्ये चाप्यनाहतम् ॥ ९ ॥ तदेतत्पूर्णगिर्याख्यं पीठं कमक-संभव । कण्ठकूपै विशुद्धाख्यं यसकं पोडशासकम् ॥ १० ॥ पीठं जाल-न्धरं नाम तिष्ठत्वत्र चतुर्मुख । आज्ञा नाम अुवोर्मध्ये द्विद्ळं चक्रमुत्तमम् ॥ ११ ॥ उड्यानाख्यं महापीठमुपरिष्टात्प्रतिष्टितम् । स्थानान्येतानि देहेऽस्मिन्छक्तिरूपं प्रकाशते ॥ १२ ॥ चतुरस्नधरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधि-देवता । अर्धचन्द्राकृति जलं विष्णुस्तस्याधिदेवता ॥ १३ ॥ त्रिकोण-मण्डलं वह्नी रुद्रसास्याधिदेवता । वायोबिंम्बं तु पदकोणं संकर्षांऽत्राधिदेवता ॥ १४ ॥ आकाशमण्डलं वृत्तं श्रीमैन्नारायणोऽत्राधिदेवता । नादरूपं अवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः ॥ १५ ॥ शांभवस्थानमेतत्ते वर्णितं पद्मसंभव । अतः परं प्रवक्ष्यामि नाडीचकस्य दिर्णयम् ॥ १६ ॥ मूला-धारत्रिकोणस्था सुपुन्ना द्वादशाङ्गुला । मूलार्घच्छिन्नवंशाभा बहानाडीति सा स्मृता ॥ १७ ॥ इडा च पिङ्गला चैव तस्याः पार्श्वद्वये गते । विळ-म्बिन्यामनुस्यूते नासिकान्तमुपागते ॥ १८ ॥ इडायां हेमरूपेण वायु-र्वामेन गच्छति । पिङ्गलायां तु सूर्यात्मा याति दक्षिणपार्श्वतः ॥ १९॥ विलम्बिनीति या नाडी व्यक्ता नाओं प्रतिष्ठिता। तत्र नाड्यः समुत्पन्ना-स्तिर्यगूर्ध्वमधोसुखाः ॥ २० ॥ तन्नाभिचक्रमित्युक्तं कुकुटाण्डमिव स्थि-तम् । गान्धारी हस्तिजिह्ना च तसान्नेत्रद्वयं गते ॥ २१ ॥ पूपा चा-लम्बुषा चैव श्रोत्रद्वयमुपागते । शूरा नाम महानाडी तसाऋूमध्यमाश्रिता ॥ २२ ॥ विश्वोदरी तु या नाडी सा भुङ्के उन्नं चतुर्विधम्। सरस्वती तु या नाडी सा जिह्नान्तं प्रसर्पति ॥ २३ ॥ राकाह्रया तु या नाडी पीरवा

च सिंह छं क्षणात् । क्षुतमुत्पाद्येद् घ्राणे श्लेष्माणं संचिनोति च ॥ २४॥ कण्ठकूपोद्भवा नाडी शिङ्खन्याख्या त्वधोमुखी । अञ्चलारं समादाय मुर्मि संचित्रते सदा ॥ २५ ॥ नाभेरधोगतास्तिस्रो नाडयः स्युरधोमुखाः। मलं त्यजेरकुहूर्नोडी मूत्रं मुद्धति वारुणी ॥ २६ ॥ चित्राख्या सीविनी नाडी शुक्रमोचनकारणी । नाडीचक्रमिति प्रोक्तं विन्दुरूपमतः शृणु ॥ २७ ॥ स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः । स्थूलं शुक्कात्मकं बिन्दुः सूक्ष्मं पञ्चाग्निरूपकम् ॥ २८॥ सोमात्मकः परः प्रोक्तः सदा साक्षी सदाच्युतः। पातालानामधोभागे कालाग्निर्यः प्रतिष्ठितः ॥ २९॥ समूलाग्निः शरीरेऽग्निर्यसान्नादः प्रजायते । वडवाग्निः शरीरस्थो ह्यस्थिमध्ये प्रवर्तते ॥ ३० ॥ काष्ट्रपाषाणयोर्विह्यिसियमध्ये प्रवर्तते । काष्ट्रपाषाणजो विहः पार्थिवो ग्रैहणीगतः ॥ ३१ ॥ अन्तरिक्षगतो वह्निवेद्युतः स्वान्तरात्मकः। नमःस्थः सूर्येरूपोऽग्निर्नाभिमण्डलमाश्रितः ॥ ३२॥ विषं वर्षति सूर्योऽसौ स्नवसमृतमुन्मुखः । तालुमूले स्थितश्चन्द्रः सुधां वर्षसधोमुखः ॥ ३३ ॥ अप्रध्यनिलयो बिन्दुः ग्रुद्धस्फटिकसंनिभः । महाविष्णोश्च देवस्य तत्सूक्ष्मं रूपमुच्यते ॥ ३४ ॥ एतत्पञ्चाग्निरूपं यो भावयेद्वुद्धिमान्धिया । तेन भुक्तं च पीतं च हुतमेव न संशयः ॥ ३५ ॥ सुखसंसेवितं स्वप्नं सुजीर्णमितभोज-नम् । शरीरशुद्धिं कृत्वादौ सुखमासनमास्थितः ॥ ३६॥ प्राणस्य शोधये-न्मार्गं रेचपूरककुम्भकैः। गुद्माकुद्धय यत्नेन मूलशक्तिं प्रपूजयेत्॥ ३०॥ नाभौ लिङ्गस्य मध्ये तु उड्यानाख्यं च बन्धयेत् । उड्डीय याति तेनैक शक्तितोड्यानपीठकम् ॥ ३८ ॥ कण्ठं संकोचयेत्किनिद्धन्धो जालन्धरो ह्ययम् । बन्धयेत्वेचरीमुद्रां इडन्नित्तः समाहितः ॥ ३९ ॥ कपालविवरे जिह्ना प्रविष्टा विपरीतगा । अवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ ४० ॥ खेचर्या सुद्धितं येन विवरं लिम्बकोर्ध्वतः। न पीयूषं पतत्यम्भौ न च वायुः प्रधा-वति ॥ ४१ ॥ न क्षुधा न तृषा निद्धा नैवालस्यं प्रजायते । न च मृत्युर्भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ ४२ ॥ ततः पूर्वापरे व्योन्नि द्वादः **बान्तेऽच्युतात्मके । उड्यानपीठे निर्द्धन्द्वे निरालम्बे निर**क्षने ॥ ४३ ॥ ततः पङ्कजमध्यस्यं चन्द्रमण्डलमध्यगम् । नारायणमनुध्यायेत्स्रवन्तममृतं सद् ॥ ४४ ॥ भिचते हृद्यग्रन्थिरिछद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्द्रष्टे परावरे ॥ ४५ ॥ अथ सिद्धि प्रवक्ष्यामि सुखोपायं सुरेश्वर । जितेन्द्रियाणां शान्तानां जितश्वासविचेत साम् ॥ ४६ ॥ नादे मनोलयं महानू दरश्रवणकारणस् । विन्दौ मनोलयं कृत्वा दूरदर्शनमामुयात् ॥ ४७॥ कालात्मनि मनो लीनं त्रिकालज्ञानकारणम् । परकायमनोयोगः परकाय-प्रवेशकृत् ॥ ४८ ॥ असृतं चिन्तयेन्मूर्झि क्षुत्तृपाविपशान्तये । पृथिव्यां धार-बेचित्तं पातालगमनं भवेत् ॥ ४९ ॥ सिलेले धारयेचित्तं नाम्मसा परि-अयते । अझो संधारयेचित्तमिमा दद्यते न सः ॥ ५० ॥ वायौ मनोलयं कुर्यादाकाशगमनं भवेत् । आकाशे धारयेचित्तमणिमादिकमामुयात् ॥ ५१॥ विराहरूपे मनो युअन्महिमानमवामुयात् । चतुर्मुखे मनो युअअगत्सृष्टिकरो अवेत् ॥ ५२ ॥ इन्द्ररूपिणमात्मानं भावयनमर्त्वभागवान्। विष्णुरूपे महायोगी पालयेद्खिलं जगत् ॥ ५३ ॥ रुद्ररूपे महायोगी संहरत्येव तेजसा। नारायणे मनो युञ्जज्ञारायणमयो भवेत् । वासुदेवे मनो युञ्जनसर्वसिद्धिमवामुयात् ॥ ५४ ॥ यथा संकल्पयेद्योगी योगयुक्तो जितेन्द्रियः । तथा तत्तद्वामोति भाव एवात्र कारणम् ॥ ५३ ॥ गुरुर्वेद्या गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः सदाविवः । न गुरोरधिकः कश्चित्रिषु कोकेषु विद्यते ॥ ५६ ॥ दिव्यज्ञानोपदेष्टारं देशिकं परसेश्वरस् । पूजयेत्परया भक्तया तस्य ज्ञानफर्लं भवेत् ॥ ५० ॥ यथा गुरू-स्तथैवेशो यथैवेशस्तथा गुरुः । पूजनीयो महाभत्तया न भेदो विद्यते-Sनयोः ॥ ५८ ॥ नाद्वैतवादं कुर्वीत गुरुणा सह कुत्रचित् । अद्वैतं भाव**ये**-द्धत्तया गुरोदेवस्य चात्मनः ॥ ५९ ॥ योगैशिखां महागुद्धं यो जानाति महा-मतिः। न तस्य किंचिद्ज्ञातं त्रिषु छोकेषु विद्यते ॥ ६०॥ न पुण्यपापे नास्त्रस्थो न दुःखं न पराजयः। न चास्ति पुनरावृत्तिरस्मिन्संसारमण्डले ॥ ६१ ॥ सिद्धी चित्तं न कुर्वीत चञ्चलखेन चेतसः। तथा विज्ञाततस्वोऽसौ सुक्त एव न संशयः ॥ ६२ ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति योगशिखोपनिषत्सुं पश्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उपासनाप्रकारं में बूहि त्वं परमेश्वर । येन विज्ञातमात्रेण मुक्तो भवति संस्तेः ॥ १ ॥ उपासनाप्रकारं ते रहस्यं श्वतिसारकम् । हिरण्यगर्भं वक्ष्यामि श्वत्वा सम्यगुपासय ॥ २ ॥ सुपुम्नाये कुण्डलिन्ये सुधाये चन्द्रमण्डलात् । मनोन्मन्ये नमस्तुभ्यं महाशक्तये चिदात्मने ॥ ३ ॥ शतं चैका च हृदयस्य नाड्यसासां सूर्धानसभिनिःसतैका । तयोध्वैमायन्नसृतत्वमेति विव्वहुत्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥ ४ ॥ एकोत्तरं नाडिशतं तासां मध्ये परा स्मृता। सुषुक्रा तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी ॥ ५ ॥ इडा तिष्ठति वामेन पिङ्गला दक्षिणेन तु । तयोर्मध्ये परं स्थानं यसहेद स वेदवित् ॥ ६ ॥ प्राणाःसंधाः र्येत्तस्मिन्नासाभ्यन्तरचारिणः । भूत्वा तन्नायतप्राणः क्रनेरेव समभ्यसेत् ॥७॥ गुदस्य पृष्ठभागेऽस्मिन्वीणादण्डः स देहश्रुत् । दीर्घास्थिदेहपर्यन्तं ब्रह्म-नाडीति कथ्यते ॥८॥ तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं ब्रह्मनाडीति सूरिभिः। इडापिङ्गल-योर्भध्ये सुपुद्मा सूर्यरूपिणी ॥ ९ ॥ सर्वं प्रतिष्टितं तस्मिन्सर्वगं विश्वतो मुखम् । तस्य मध्यगताः सूर्यसोमाग्निपरमेश्वराः ॥१०॥ भूतलोका दिशः क्षेत्राः समुद्राः पर्वताः शिलाः । द्वीपाश्च निम्लगा वेदाः शास्त्रविद्याकलाक्षराः ॥ ११ ॥ स्वरम-अपुराणानि गुणाश्चेते च सर्वशः । बीजं बीजात्मकस्तेषां क्षेत्रज्ञः प्राणवायवः ॥ १२ ॥ सुषुम्नान्तर्गतं विश्वं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितस् । नानानाडीप्रसवगं सर्व-भूतान्तरात्मनि ॥१३॥ ऊर्ध्वमूळमधःशाखं वायुमार्गेण सर्वगम् । द्विसन्नतिसह-स्त्राणि नाड्यः स्युर्वायुगोचराः ॥ १४ ॥ सर्वमार्गेण सुपिरास्तिर्यञ्चः सुपिरा सताः । अधश्रोध्वं च कुण्डल्याः सर्वद्वारनिरोधनात् ॥ १५॥ वायुना सह जीवो वैज्ञानान्सोक्षसवाप्रुयात् । ज्ञात्वा सुपुन्नां तद्भेदं कृत्वा पा्युं च सध्य-गम् ॥ १६॥ कृत्वा तु चैन्दवस्थाने घाणरन्ध्रे निरोधयेत् । द्विसितिसहस्राणि नाडीद्वाराणि पञ्जरे ॥ १७ ॥ सुयुद्धा शास्थवी शक्तिः शेवास्त्वन्ये निर-र्थकाः । हैं होसे परमानन्दे तालुमूले व्यवस्थिते ॥ १८ ॥ अत उध्वं निरोधे तु मध्यमं मध्यमध्यमस् । उच्चारयेत्परां शक्ति ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनीस् । यदि अमरसृष्टिः स्वात्संसारअमणं त्यजेत् ॥ १९॥ गमागमस्थं गमनादिश्र्त्यं चिद्रपदीपं तिमिरान्धनाशम् । पश्यामि तं सर्वजनान्तरस्थं नमामि हंसं पर-मात्मरूपम् ॥ २०॥ अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वतिः। ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिज्योंतिषोऽन्तर्गतं मनः । तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पद्म् ॥ २१ ॥ केचिद्वदृन्ति चाधारं सुवुद्धा च सरस्वती । आधाराजायते विश्वं विश्वं तत्रैव लीयते ॥ २२ ॥ तसात्सर्वप्रयतेन गुरुपादं समाश्रयेत्। आधारवक्तिनिद्रायां विश्वं अवति निद्रया॥ २३॥ तस्यां वक्ति-प्रवीधन बेटोक्यं प्रतिवृध्यते । आधारं यो विजानाति तमसः परमश्रते ॥ २४ ॥ तस्य विज्ञानमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ २५ ॥ आधारचक-महसा विद्युत्पुक्षसम्प्रभा। तदा मुक्तिन संदेहो यदि तुष्टः खयं गुरः ॥२६॥ शाधारचक्रमहसा पुण्यपापे निकृन्तयेत्। शाधारवातरोधेन छीयते गगना-क्तरे ॥ २७ ॥ आधारवातरोधेन शरीरं कम्पते यदा । आधारवातरोधेन योगी मुलाति सर्वेदा ॥ २८ ॥ आधारवातरोधेन विश्वं तत्रेव इइयते । सृष्टि-राधारमाधारमाधारे सर्वदेवताः । आधारे सर्ववेदाश्च तसादाधारमाश्रयेत् ॥ २९ ॥ आधारे पश्चिमे भागे त्रिवेणीसङ्गमो भवेत् । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरः पापारमञ्ज्यते ॥ ३० ॥ आधारे पश्चिमं छिङ्गं कवाटं तत्र विद्यते । तस्योद्धाटनमात्रेण मुच्यते भववन्धनात् ॥ ३१ ॥ आधारपश्चिमे भागे चन्द्र-सूर्यो स्थिरी यदि । तत्र तिष्ठति विश्वेशो ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ३२ ॥ आधारपश्चिमे भागे मूर्तिसिछित संज्ञया । पद चकाणि च निर्भिय ब्रह्म-रन्धाइहिर्गतम् ॥ ३३ ॥ वामद्श्रे निरुन्धन्ति प्रविशन्ति सुषुन्नया । बहारन्ध्रं प्रैविज्यान्तको यान्ति परमां गतिम् ॥ ३४ ॥ सुपुमायां यदा हंसस्त्वध ऊर्ध्व प्रधावति । खुषुक्तायां यदा प्राणं आमयेद्यो निरन्तरम् ॥ ३५ ॥ सुषुक्रायां यदा प्राणः स्थिरो भवति धीमतास् । सुषुक्रायां प्रवेशेन चन्द्रस्यों लयं गतो ॥ ३६ ॥ तदा समरसं भावं यो जानाति स योगवित् । सुषुम्नायां यदा यसा त्रियते सनसो रयः ॥ ३७ ॥ सुषुम्नायां यदा योगी क्षणैकमपि तिष्ठति । सुपुन्नायां यदा योगी क्षणार्धमपि तिष्ठति ॥ ३८ ॥ सुपुन्नायां यदा योगी सुलक्षो लनणारबुवत् । सुपुन्नायां यदा योगी लीयते क्षीरनीरवत् ॥ ३९ ॥ भिद्यते च तदा अन्थिरिष्ठबन्ते सर्वसंशयाः । श्रीयन्ते परमाकारो ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ४० ॥ गङ्गायां सागरे स्नात्वा नत्वा च मणिकर्णि-कास् । सच्यनाडीविचारस्य कलां नार्हन्ति पोडशीस् ॥ ४१ ॥ श्रीशैकदर्श-नान्सुक्तिवीराणखां सृतख च । केदारोदकपानेन सध्यनाडीप्रदर्शनात् ॥ ४२ ॥ अश्वमेधसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च । सुबुक्षाध्यानयोगस्य कळां नार्हन्ति पोडशीम् ॥ ४३ ॥ सुबुम्नायां सदा गोष्टीं यः कश्चित्कुरुते नरः। स सुक्तेः सर्वणपेम्यो तिःश्रेयसमवाप्रुयात् ॥ ४४ ॥ सुषुन्नैव परं तीर्थं सुषुन्नैव परो जपः । खुबुङ्गैव परं ध्यानं सुबुङ्गैव परा गतिः ॥ ४५ ॥ अनेकयज्ञदानानि वतानि नियमास्तथा । सुपुन्नाध्यानलेशस्य कलां नाईन्ति पोडशीम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्मरन्ध्रे महास्थाने वर्तते सततं शिवा । विच्छक्तिः परमा देवी मध्यमे सुप्र-तिष्ठिता ॥ ४७ ॥ मायाशक्तिर्ललाटामभागे च्योमाम्बुजे तथा । नाद्रूपा परा शक्तिकंलाटस्य तु मध्यमे ॥ ४८ ॥ आगे बिन्दुमयी शक्तिकंलाटस्यापरां-शके। बिन्दुअध्ये च जीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्तते ॥ ४९ ॥ हृद्ये स्थूछ-रूपेण मध्यसेन तु मध्यसे ॥ ५० ॥ प्राणापानवशो जीवो हाधश्रोध्व च धावति । वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलत्वाञ्च दृश्यते ॥ ५१ ॥ आक्षिसो भुज-दण्डेन यथोचलति कन्दुकः । प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो न विश्रमेत् ॥ ५२ ॥ अपानः कर्षति प्राणं प्राणीऽपानं च कर्षति । हकारेणं बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥ ५३ ॥ इंसहंसेत्यसुं मत्रं जीवो जपति सर्वदा । तहिः द्वानक्षरं नित्यं यो जानाति स योगवित् ॥ ५४ ॥ कैन्दोध्वें कुण्डली शक्ति-र्मुक्तिरूपा हि योगिनाम् । वन्धनाय च सृदानां यस्तां वेक्ति स योगवित ॥ ५५ ॥ भूर्भुवः स्वरिमे लोकाश्चन्द्रसूर्याऽ ितदेवताः । यासु मात्रासु तिष्ठन्ति तरपरं ज्योतिरोमिति ॥ ५६ ॥ त्रयः कालाख्यो देवाख्यो लोकाख्यः खराः। त्रयो वेदाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ५७ ॥ चित्ते चलति संसारो निश्चलं मोक्ष उच्यते । तसाचित्तं स्थिरीकुर्यात्प्रज्ञया परया विधे ॥५८॥ वित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगञ्जयम् । तस्मिन्क्षीणे जगःक्षीणं तचिकिःसं प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥ मनोऽहं गगनाकारं मनोऽहं सर्वतोमुखम् । मनोऽहं सर्व-मात्मा च न मनः केवलः परः ॥ ६०॥ मनः कर्माणि जायन्ते मनो लिप्यति पातकैः । मनश्चेदुनमनीभूयात्र पुण्यं न च पातकम् ॥ ६१ ॥ मनसा मन भालोक्य वृत्तिश्चन्यं यदा भवेत्। ततः परं परब्रह्म दृश्यते च सुदुर्लभम् ॥ ६२ ॥ मनसा मन आलोक्य मुक्तो अवति योगवित्। मनसा मन आलोक्य उन्मन्यन्तं सदा स्मरेत् ॥ ६३ ॥ मनसा मन आलोक्य योगनिष्टः सदा भवेत्। मनसा मन आलोक्य दृश्यन्ते प्रत्यया दृश ॥ ६४ ॥ यदा प्रत्यया दृश्यन्ते तदा योगीश्वरो भवेत् ॥ ६५ ॥ विन्दुनादकलाज्योतीरवीन्दुर भ्रुवतारकम् । शान्तं च तदतीतं च परं ब्रह्म तदुच्यते ॥ ६६ ॥ हसत्युद्धसित प्रीत्या कीडते मोदते तदा। तनोति जीवनं बुद्धा बिमेति सर्वतोभयात् ॥ ६७॥ रोध्यते बुद्धयते शोके मुह्यते न च संपदा । कस्पते शत्रुकार्येषु कामेन रमते हसन् ॥६८॥ स्मृत्वा कामरतं चित्तं विजानीयात्कलेवरे । यत्र देशे वसेद्रायुः

श्चित्तं तहसति धुवस् ॥ ६९॥ मनश्चन्द्रो रिवर्वायुर्दे शिरिप्तरुद्धाहतः। बिन्दुनाद्धकला ब्रह्मन् विष्णुब्रह्मेशदेवताः॥ ७०॥ सदा नादानुसन्धानात्संक्षीणा वासना
भवेत्। निरञ्जने विलीयेत मरुन्मनिस पद्मज ॥ ७१ ॥ यो वे नादः स वे
बिन्दुस्तद्धे चित्तं प्रकीर्तितस् । नादो बिन्दुश्च चित्तं च त्रिभिरेक्यं प्रसाद्येत्
॥ ७२ ॥ मन एव हि बिन्दुश्च उत्पत्तिस्थितिकारणम् । मनसोत्पचते बिन्दुयथा क्षीरं गतात्मकस् ॥ ७३ ॥ षद चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत्सुखमण्डलम् । प्रविशेद्धायुमामाकृष्य तथेवोध्वं नियोजयेत् ॥ ७४ ॥ वायुं बिन्दुं तथा
चक्रं चित्तं चैव समभ्यसेत् । समाधिमेकेन समममृतं यान्ति योगिनः ॥७५॥
यथाऽग्निद्दास्यस्थो नोत्तिष्टेन्मथनं विना । विना चाभ्यासयोगेन ज्ञानदीपस्तया निह ॥ ७६ ॥ घटमध्ये यथा दीपो बाह्ये नैव प्रकाशते । भिन्ने तस्मिन्
घटे चैव दीपज्वाला च भासते ॥ ७७ ॥ स्वकायं घटमित्युक्तं यथा जीवो हि
तत्पद्म् । गुरुवाक्यसमाभिन्ने ब्रह्मज्ञानं प्रकाशते ॥ ७८ ॥ कर्णधारं गुरुं
प्राप्य तद्वाक्यं स्ववदृदम् । अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्
॥ ७९ ॥ इत्युपनिषत् ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः ॥ ॐ तस्सत् ॥ इति योगशिखोपनिषस्समाप्ता ॥ ६६ ॥

तुरीर्यातीतोपनिषत् ॥ ६७॥

ॐ तुरीयातीतोपनिषद्वेद्यं यत्परमाक्षरम् । तत्तुर्यातीतचिन्मात्रं स्वमात्रं चिन्तयेऽन्वहम् ॥ १ ॥ तुरीयातीतसंन्यासपरिवाजाक्षमालिका । अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यारमकुण्डिका ॥ २ ॥

हरि: ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥ अथ तुरीयातीतावधूतानां कोऽयं मार्गस्तेषां का स्थितिरिति पितामहो भगवन्तं पितरमादिनारायणं परिसमेत्योवाच । तमाह भगवानारायणो बोऽयसवध्रतमार्गस्थो लोके दुर्कभतरो नतु बाहुत्यो यद्येको भवति स एव निखपुतः स एव वेराज्यमूर्तिः स एव ज्ञानाकारः स एव वेद्पुरुष इति ज्ञानिनो मन्यन्ते । महापुरुषो यसाचित्तं मध्येनानतिष्ठते । अहं च तिसाने-वावस्थितः सोऽयमादौ तावःक्रमेण कुटीचको बहूदकत्वं प्राप्य बहूदको हंस-त्वमवलम्बय हंसः परमहंसी भूत्वा खरूपानुसंधानेन सर्वप्रपञ्चं विदित्वा द्ण्डकमण्डलुकटिस्त्रकोषीनाच्छादनं स्वविध्युक्तियादिकं सर्वमण्यु संन्यस दिगम्बरो भूता विवर्णजीर्णवहकलाजिनपरिग्रहमपि संत्यज्य तद्र्यंगमञ् बदाचरन्क्षोराभ्यङ्गस्तानोध्वेपुण्डादिकं विहाय लोकिकवेदिकसप्युपसंहत्य सर्वत्र पुण्यापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्णसुखदुःखमानावमानं निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दाऽनि दागवीमत्सरद्रभद्पेहेपकामकोधलोध-मोहहर्षामपीस्यात्मसंरक्षणादिकं दुग्ध्वा स्ववपुः कुणपाकारमिव पश्यक्षयतेना-नियमेन लाभालाभी समी कृत्वा गोवृत्या प्राणसंवारणं कुर्वन्यलासं तेनैव निर्लोद्धपः सर्वविद्यापाण्डित्यप्रपञ्चं भस्मीकृत्य स्वरूपं गोपयित्वा उयेष्टाऽज्येष्ट-स्वानपलापकः सर्वोत्कृष्टःवसर्वात्मकत्वाद्वैतं करुपयित्वा मत्तो व्यतिरिक्तः कश्चिनान्योऽस्तीति देवगुद्धादिधनमात्मन्युपसंहत्य दुःखेन नोहिमः युखेन नानुमोदको रागे निःस्पृहः सर्वत्र शुभाशुभयोरनभिक्षेहः सर्वेन्द्रियोपरमः खपूर्वापन्नाश्रमाचारविद्याधर्मप्राभवमननुसरंस्त्रकवणीश्रमाचारः दिवनक्तसमत्वेनास्वमः सर्वदा संचारशीलो देहमात्रावशिष्टो जलस्थलक-मण्डलुः सर्वदाऽनुनमत्तो बालोन्मत्तिवशाचनदेकाकी संचरत्रसंभाषणपरः खरूपच्यानेन निरालम्बमवलम्बय खात्मनिष्ठानुकूलेन सर्व विस्पृख तुरीयाः तीतावधृतवेषेणाद्वेतनिष्ठापरः प्रणवात्मकत्येन देहत्यागं करोति यः सोऽवधूतः स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषत् ॥ ॐ तत्सत् ॥ १ ॥

> ॐ पूर्णमद् इति ज्ञान्तिः ॥ ॥ इति तुरीयातीतोपनिचत्समासा ॥ ६७ ॥

संन्यासोपनिषत् ॥ ६८ ॥

संन्यासोपनिषद्वेद्यं संन्यासिपटकाश्रयम् । सत्तासामान्यविभवं स्वमात्रमिति भावये ॥ १ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ अथातः संन्यासोपनिषदं व्याख्यासामः। योऽनुक्रमेण संन्यस्यति स संन्यासो अवति । कोऽयं संन्यास उच्यते कथं वा संन्यासो अवति । य आत्यानं कियाभिर्गुप्तं करोति भातरं पितरं भार्या पुत्रान्वनधूननुमोद्यित्वा ये चास्यित्विजस्तानसर्वाश्च पूर्ववर्तप्राणित्वा वैश्वानरेष्टिं निवेपेत्सर्वस्वं दद्याद्यज-मानस्य गा ऋत्विजः सर्वैः पात्रैः समारोप्य यदाहवनीये गाईपस्य वाडन्वाहा-र्थपचने सभ्यावसभ्ययोश्च प्राणापानव्यानोदानसमानानसर्वानसर्वेषु समारोप-थेत् । सशिखान्केशान्विस्ज्य यज्ञोपवीतं छिखा पुत्रं दृष्ट्वा स्वं यज्ञ्स्त्वं सर्व-मित्यनुमञ्जयेत् । यद्यपुत्रो भवत्यात्मानमेवेमं ध्यात्वाऽनवेक्षमाणः प्राची-मुद्दीचीं वा दिशं प्रवजेच । त्रिषु वर्णेषु भिक्षाचर्यं चरेत् । पाणिपात्रेणाशनं कुर्यात् । औषधवदशनमाचरेत् । औषधवदशनं प्राक्षीयात् । यथालाभमश्री-यात्प्राणसंघारणार्थं यथा सेदोबृद्धिर्न जायते। कृशो भूता प्राम एकरात्रं नगरे पञ्चरात्रं चतुरो मासान्वार्षिकान्य्रासे वा नगरे वापि वसेत्। पक्षा वै मासी इति हो मासी वा वसेत्। विशीर्णवस्त्रं वल्कलं वा प्रतिगृह्णीयाजा-न्यस्प्रतिगृह्णीयाद्यद्यक्तो भवति हेशतस्तप्यते तप इति । यो वा एवं क्रमेण संन्यस्पति यो वा एवं पद्मित किमस्य यज्ञोपवीतं काऽस्य शिखा कथं वाऽस्यो-पस्पर्शनमिति । तं होवाचेद्सेवास्य तद्यज्ञोपवीतं यदात्मध्यानं विधा शिखा नीरै: सर्वज्ञावस्थितै: कार्यं निर्वर्तयन्नद्ररपात्रेण जलतीरे निकेतनम् । वहा-वादिनो वदुनत्यस्तमित आदित्ये कथं वाडस्योपस्पर्शनमिति । तान्होवाच यथाऽहान तथा रात्री नास्य नक्तं न दिवा तद्प्येतद्दविणोक्तम् । संकृद्दिवा हैवासी भवति व एवं विद्वानेतेनात्मानं संघते ॥ १ ॥

इति संन्यासोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

८ चत्वारिंशत्संस्कारसंपन्नः सर्वतो विरक्तश्चित्तशुद्धिमेत्याशास्येध्याहं-कारं द्रभ्या साधनचतुष्टयसंपन्न एव संन्यस्तुमहीत । संन्यासे निश्चयं कृत्वा पुनर्न च करोति यः । स कुर्यात्कृच्छ्मात्रं तु पुनः संन्यस्तुमईति ॥ १॥ संन्यासं पातयेद्यस्तु पतितं न्यासयेत्तु यः । संन्यासविव्नकर्ता च त्रीनेतान् पतितान्विदुः ॥ २ ॥ इति ॥ अथ पण्टः पतितोऽङ्गविकलः स्त्रेणो बिधरोऽ-र्भको मूकः पाषण्डश्रकी लिङ्गी कुष्ठी वेखानसहरहिजौ भृतकाध्यापकः शिपिविष्टोऽनमिको नास्तिको वैराग्यवन्तोऽप्येते न संन्यासार्हाः। संन्यसा यद्यपि महावाक्योपदेशे नाधिकारिणः ॥ आरूढपतितापत्यः कुनखी स्याव-दन्तकः । क्षीवैस्तथाऽङ्गविकलो नैव संन्यस्तुमहिति ॥ ३ ॥ संप्रत्यवसितानां च महापातिकनां तथा। बात्यानामभिशस्तानां संन्यासं नैव कारयेत् ॥ ४॥ व्रतयज्ञतपोदानहोमस्वाध्यायवर्जितम् । सत्यशाचपरिअष्टं संन्यासं नैव का-रयेत् ॥ ५ ॥ एते नाईन्ति संन्यासमातुरेण विना कमस्। ॐ भूः खाहेति शिखामुत्पाट्य यज्ञोपवीतं बहिर्न निवसेत् । यशो बलं ज्ञानं वैराग्यं मेघां प्रयच्छेति यज्ञोपवीतं छित्वा ॐ भूः खाहेत्यप्स वस्नं कटिसूत्रं च विस्च्य सं-न्यस्तं मयेति त्रिवारमभिमत्रयेत्। संन्यासिनं द्वितं दृष्टा स्थानाच्यकति भास्कः रः । एष मे मण्डलं भिरवा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६ ॥ षष्टिं कुलान्यतीतानि षष्टिमागामिकानि च। कुळान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तिगिति यो वदेत् ॥०॥ ये च संतानजा दोषा ये दोषा देहसंभवाः । प्रेषामिर्निर्दहेत्सर्वास्तुषामिरिव काञ्च-नम् ॥ ८॥ सखा मा गोपायेति दण्डं परिप्रहेत् । दण्डं तु वैणवं सौम्यं सत्वचं समपर्वकम् । पुण्यस्थलसमुत्पन्नं नानाकत्मवशोधितम् ॥ ९ ॥ अद्ग्धमहतं कीटै: पर्वप्रन्थिवराजितम् । नासाद्धं शिरस्तुत्यं भ्रुवोर्वा विभृयाद्यतिः श १० ॥ दण्डात्मनोस्तु संयोगः सर्वथा तु विबीयते । न दण्डेन विना गच्छेदिपुक्षेपत्रयं बुधः ॥ ११ ॥ जगजीवनं जीवनाधारभूतं माते मामत्रयस्व संविसीम्येति कमण्डलुं परिगृद्य योगपट्टाभिषिक्तो भूत्वा यथासुखं विहरेत्॥ त्यज धर्ममधर्म च उमे सत्यानृते त्यज । उमे सत्यानृते त्यक्ता येन त्यजिस तत्त्वज ॥ १२ ॥ वैराग्यसंन्यासी ज्ञानसंन्यासी ज्ञानवैराग्यसंन्यासी कर्म-संन्यासीति चातुर्विध्यसुपागतः । तद्यथेति दृष्टानुश्रविकविषयवैतृष्यमेत्र प्राक्षुण्यकर्मविशेषाःसंन्यस्तः स वैराग्यसंन्यासी । शास्त्रज्ञानाःपापपुण्यलोकाः नुभवश्रवणात्प्रपञ्चोपरतो देहवासनां शास्त्रवासनां लोकवासनां स्रक्त्वा वमनासमिव प्रवृत्तिं सर्वं हेयं मत्वा साधनचतुष्टयसंपन्नो यः संन्यस्वति स

ਚ

:

ना

ब

II

एव ज्ञानसंन्यासी । ऋमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपा-नुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्य-संन्यासी । ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भूत्वा वानप्रस्थाश्रममेत्य वैराग्याभावेऽ-प्याश्रमक्रमानुसारेण यः संन्यस्रति स कर्मसंन्यासी । स संन्यासः पश्चिघो भवति-दुटीचकबहूदकहंसपरमहंसतुरीयातीतावधूताश्चेति । दुटीचकः शिखा-यज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटीकन्थाधरः पितृमातृगुर्वाराधनपरः पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपर एकत्रासादनपरः त्रिदण्डः। बहूदकः शिखादिकन्थाधरस्त्रिपुण्ड्धारी कुटीचकवत्सर्वसमो मधुकर-वृत्याष्टकवल। श्री । हंसी जटाधारी त्रिपुण्ड्रोध्वपुण्ड्र्धारी असंक्रुप्तमाधुकरा-ब्राक्ती कोपीनखण्डतुण्डधारी । परमहंसः शिखायज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेषु करपात्री एककौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीधरो वा भसी-द्भुलनपरः सर्वत्यांगी तुरीयातीतो गोमुखवृत्या फलाहारी अन्नाहारी चेद्रृह-त्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः । अवधूतस्वनियमः पतिताभिशस्तवर्जनपूर्वकं सर्ववर्णेष्वजगरवृत्याऽऽहारपरः स्ररूपानुसंघानपरः। जगत्तावदिदं नाहं सवृक्षतृणपर्वतम् । यद्वाद्यं जडमत्यन्तं तत्स्यां कथमहं विभुः ॥ १३ ॥ कालेनाल्पेन विख्यी देहो नाहमचेतनः । जढया कर्णशष्कुल्याः कल्पमानक्षणस्थया ॥ १४ ॥ श्रून्याकृतिः श्रून्यभवः शब्दो नाहमचेतनः। त्वचा क्षणविनाशिन्या प्राप्योऽप्राप्योऽयमन्यथा ॥ १५ ॥ चित्रसादोप-लब्धातमा स्पर्शो नाहमचेतनः । लब्धातमा जिह्नया र्तुच्छो लोलया लोलसत्तया ॥ १६ ॥ स्वरूपस्यन्दो द्रव्यनिष्ठो रसो नाहमचेतनः । दृश्यदर्शनयोर्जीनं क्षयिक्षणविनाशिनोः ॥ १७ ॥ केवले द्रष्टरि क्षीणं रूपं नाहमचेतनम् । नासया गन्धजडया क्षयिण्या परिकल्पितः ॥ १८ ॥ पेळवो नियताकारो गन्धो नाहमचेतनः । निर्ममोऽमननः शान्तो गतपञ्चेन्द्रियश्रमः॥ १९ ॥ शुद्धचेतन एवाहं कलाकलनवार्जितः। चैत्यवार्जितविन्मात्रमहमेषोऽवभासकः ॥ २०॥ सबाह्याभ्यन्तरव्यापी निष्कलोऽहं निरञ्जनः । निर्विकल्पचिदाभास एक आत्माऽस्मि सर्वगः ॥ २१ ॥ मयैव चेतनेनेमे सर्वे घटपटादयः । सूर्यान्ता अवभाखन्ते दीपेनेवात्मतेजसा ॥ २२ ॥ मयैवैताः स्फुरन्तीइ विचित्रेन्द्रिय-वृत्तयः । तेजसाऽन्तःप्रकाशेन यथाऽग्निकणपङ्गयः ॥२३॥ अनन्तानन्दसंभोगा परोपशमशालिनी । शुद्धेयं चिन्मणी दृष्टिर्भयलाखिलदृष्टिषु ॥ २४ ॥ सर्वभावान्तरस्थाय चैत्यसुक्तचिदात्मने । प्रत्यवचेतन्यरूपाय महामेव नमो नमः॥ २५॥ विचित्राः शक्तयः खच्छाः समा या निर्विकारया। चिता क्रियन्ते समया कलाकलनमुक्तया ॥ २६॥ कालत्रयमुपेक्षित्र्या हीनायाः श्चेत्यबन्धनैः । चितश्चेत्यसुपेक्षित्र्याः समतैनानशिष्यते ॥ २७ ॥ सा हि नाचाः मगस्यत्वादसत्तामिव वाश्वतीम् । नेरात्मसिदात्मदशामुपयातेव शिष्यते ॥ २८ ॥ ईहानीहामयैरन्तर्या चिदावलिता सलैः । सा चिन्नोत्पादितुं शका पाशबद्धेव पक्षिणी ॥ २९ ॥ इच्छाहेषसमुख्येन इन्ह्रमोहेन जन्तवः। धरा-विवरसमानां कीटानां समतां गताः ॥ ३० ॥ आत्मनेऽस्तु नमो महामवि-व्छिन्नचिदारमने । परामृष्टोऽस्मि कव्घोऽस्मि प्रोदिनोऽस्म्यचिरादृहम् । उद्दतोऽस्मि विकल्पेभ्यो योऽस्मि सोऽस्मि नमोऽस्तु ते ॥ ३१ ॥ तुभ्यं महा-मनन्ताय महां तुश्यं चिदारमने । नमस्तुश्यं परेशाय नमो महां शिवाय च ॥ ३२ ॥ तिष्टन्नपि हि नासीनो गच्छन्नपि न गच्छति । शान्तोऽपि व्यवहार-स्थः कुर्वज्ञपि न लिप्यते ॥ ३३ ॥ युलभश्रायमत्यन्तं सुज्ञेयश्राप्तवन्युवत्। शारीरपद्मकहरे सर्वेषामेव पदपदः ॥ ३४ ॥ न मे भोगस्थितौ वाञ्छा न मे भोगविसर्जने । यदायाति तदायातु यत्प्रयाति प्रयातु तत् ॥ ३५ ॥ मनसा मनसि च्छिन्ने निरहंकारतां गते । आवेन गलिते आवे खस्थसिष्ठामि केवळः ॥ ३६ ॥ निर्भावं निरहंकारं निर्मनस्कमनीहितम् । केवलास्पन्दशुद्धारमन्येव तिष्ठति से रिपुः ॥ ३७ ॥ तृष्णारज्जुगणं छित्त्वा सच्छरीरकपक्षरात् । न जाने क गतोड्रीय निरहंकारपक्षिणी ॥ ३८ ॥ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न छिप्यते। यः समः सर्वभूतेषु जीवितं तस्य शोभते ॥ ३९ ॥ योऽन्तः शीतत्या बुद्धा रागद्वेषविभुक्तया । साक्षिवत्पश्यतीदं हि जीवितं तस्य शोभते ॥ ४० ॥ येन सम्यन्परिज्ञाय हेयोपादेयसुज्झता । चित्तस्यान्तेऽर्पितं चित्तं जीवितं तस्य शोभते ॥ ४१ ॥ याद्ययाहकसंबन्धे क्षीणे शान्तिहदे-त्यलम् । स्थितिमभ्यागता शान्तिर्मोक्षनामामिघीयते ॥ ४२ ॥ अष्टत्रीजोपमा भूयो जनमाङ्करविवार्जिता । हृदि जीवद्विमुक्तानां ग्रुद्धा भवति वासना ॥ ४३ ॥ पावनी परमोदारा गुद्धसत्त्वानुपातिनी । आत्मध्यानमयी नित्या सुवुप्तिस्थेव तिष्टति ॥ ४४ ॥ चेतनं चित्तरिक्तं हि प्रत्यक्चेतनमुच्यते । निर्मनस्कस्वभाव-

त्वाच तत्र कळनामळम् ॥ ४५ ॥ सा सत्यता सा शिवता साऽवस्था पारमा-स्मिकी । सर्वज्ञता सा संतृक्षिनंतु यत्र मनः क्षतम् ॥ ४६ ॥ प्रळपन्विस्ज-न्युह्मजुन्मिषश्चिमिषञ्चपि । लिरस्तमननानन्दः संविन्मात्रपरोऽस्म्यहम् ॥ ४० ॥ मळं संवेद्यसुरस्टज्य मनो निर्मूळयन्परस्। आशापाशानळं छित्ता संविन्मात्रपरोड-ह्रयहस् ॥४८॥ अञ्चभाञ्चभसंकरुपः संशान्तोऽस्मि निरामयः। नष्टेष्टानिष्टकळनः संविन्मात्रपरोऽस्व्यहम् ॥४९ ॥ आत्मतापरते त्यक्ता निर्विभागो जगतिस्वतौ । वञ्चस्तरभवदात्मानमवलम्बय स्थिरोऽस्म्यहम् ॥ ५० ॥ निर्मलायां निरा-बायां ख्वमंत्रित्तो स्थितोऽस्म्यहम् । ईहितानीहितैर्मुक्तो हेयोपादेयवर्जितः ॥ ५३ ॥ कदाऽन्तस्तोषसेष्यामि स्वप्रकाशपदे स्थितः । कदोपशान्तमननो धरणीधरकन्दरे ॥५२॥ ससेष्यामि शिलासाम्यं निर्विकत्वसमाधिना । निरंश-ध्यानविश्रान्तिस्कस्य सम सस्तके ॥ ५३ ॥ कदा तीर्णं करिष्यन्ति कुछायं वनपुत्रिकाः । संकल्पपादपं तृष्णालतं छित्त्वा मनोवनम् ॥ ५४ ॥ विततां भुवमासाच विहरामि यथामुखम् । पदं तदनु यातोऽस्मि केवलोऽस्मि जपा-उयहस् ॥ ५५ ॥ निर्वाणोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरंशोऽस्मि निरीप्सितः। खन्छतोर्जितता सत्ता हृद्यता सत्यता ज्ञता॥ ५६॥ आनेन्दितोपशमता सदा श्रमुद्रितोदिता। पूर्णतोदारता सत्या कान्तिसत्ता सदैकता ॥ ५७ ॥ इत्येवं चिन्तयनिमक्षः खरूपस्थितिमञ्जसा । निर्विकल्पखरूपज्ञो निर्विकल्पो बभूव ह ॥ ५८ ॥ आतुरो जीवति चेत्क्रमसंन्यासः कर्तव्यः । न शूद्खीपतितो-दुक्या संभाषणम् । न यतेर्वेवपूजनोत्सवदर्शनम् । तसान्न संन्यासिन एष छोकः । आतुरकुटीचकयोर्भूलोकभुवलेंको । बहूदकस्य स्वर्गलोकः । हंसस्य तपोलोकः । परमहंसस्य सत्यलोकः । तुरीयातीतावधूतयोः स्वात्मन्येव कैवत्यं खरूपानुसंधानेन अमरकीटन्यायवत् । खरूपानुसंधानव्यतिरिका-न्यशास्त्राभ्यास उष्ट्रकुङ्कमभारवद्यर्थः। न योगशास्त्रप्रवृत्तिः । न सांख्य-शास्त्राभ्यासः । न मञ्जतञ्जव्यापारः । नेतरशास्त्रप्रवृत्तिर्यतेरस्ति । अस्ति चेच्छवा-लंकारवत्कर्माचारविद्यादूरः । न परिवाण्नामसंकीर्तनपरी यद्यकर्म करोति तत्तःफलमनुभवति । एरण्डतैलकेनवत्सर्वं परिलाजेत्। न देवताप्रसादमह-णम् । । बाह्यदेवाभ्यर्चनं कुर्यात् । स्वयतिरिकं यर्वं त्यस्वा मध्करवृत्याः ssहारमाहरन्क्रशी भूत्वा मेदोवृद्धिमकुर्वन्विहरेत्। माधुकरेण करपात्रेणास्य पान्नेण वा कार्लं नयेत् । आत्मसंमितमाहारमाहरेदात्मवान्यतिः । आहारस च भागो हो तृतीयमुद्कस्य च।वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवरोषयेत् ॥५९॥ अक्षेण वर्तयेक्षित्यं नैकान्नाशी अवेत्कचित्। निरीक्षन्ते व्वनुद्विप्रास्तुरृहं यस्तो वजेत् ॥ ६०॥ पञ्च सप्त गृहाणां तु भिक्षामि च्छेत्कियावताम् । गोदोहमात्रमाकाः क्कें क्रिष्कान्तो न पुनर्वजेत् ॥ ६१ ॥ नक्ताद्वरश्चोपवास उपवासाद्याचितः। अया-चिताहरं भैक्षं तसाद्भैक्षेण वर्तयेत् ॥ ६२ ॥ नैव सव्यापसव्येन भिक्षाकाले विशेद्धहान् । नातिकामेद्भृहं मोहायत्र दोषो न विचते ॥ ६३ ॥ श्रोत्रियात्रं न भिक्षेत श्रद्धाभक्तिबहिष्कृतस् । बात्यस्यापि गृहे भिक्षेच्छ्द्राभक्तिपुरस्कृते ॥ ६४ ॥ माधूकरमसंकृषं प्राक्पणीतमयाचितस् । तात्कालिकं चोपपसं भेक्षं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ६५ ॥ मनःसंकल्परहितांस्त्रीनगृहान्पञ्च सप्त वा । मधु-मक्षिकवरहरवा माधूकरमिति स्मृतस् ॥ ६६॥ प्रातःकाले च पूर्वेद्युर्यसकैः प्रार्थितं सुहुः। तद्भैक्षं प्राक्प्रणीतं स्थात्स्थिति कुर्यात्तथापि वा ॥ ६७ ॥ भिक्षाटनसमुद्योगाद्येन केन निमन्नितम्। अयाचितं तु तद्भैक्षं भोक्तव्यं च मुमुश्चिभिः ॥ ६८ ॥ उपस्थानेन यत्त्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन तत् । तात्कालिक-मिति ख्यातं भोक्तव्यं यतिभिः सदा ॥ ६९ ॥ सिद्धमन्नं यदानीतं बाह्मणेन मठं प्रति । उपपन्नमिति प्राहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः ॥ ७०॥ चरेन्माधूकरं भैक्षं यतिम्लेंच्छकुलादपि । एकान्नं नतु भुञ्जीत बृहस्पतिसमादपि । याचि-ताऽयाचिताभ्यां च भिक्षाभ्यां करुपयेत्स्थितम् ॥ ७१ ॥ न वायुः स्पर्शदोषेण नामिर्दहनकर्मणा । नापो सूत्रपुरीषाभ्यां नाखदोषेण सस्करी ॥ ७२ ॥ विध्मे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । कांलेऽपराह्वे भूयिष्ठे भिक्षाचरणमा-चरेत् ॥ ७३ ॥ अभिशस्तं च पतितं पाषण्डं देवपूजकम् । वर्जियत्वा चरेद्रैक्षं सर्ववर्णेषु चापदि ॥७४॥ घृतं श्वमूत्रसदृशं मधु स्थात्सुरया समम् । तेलं सूकर-मूत्रं स्वात्स्पं लग्जनसंमितम् ॥७५॥ माषापूपादि गोमांसं क्षीरं मूत्रसमं भवेत्। तसात्सर्वप्रयत्नेन वृतादीन्वर्जवेद्यतिः । वृतस्पादिसंयुक्तमद्गं नाद्यात्कदाचन ॥ ७६ ॥ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं स्थितिं नयेत् । पाणिपात्रश्चरन्योगी नासकृद्रैक्षमाचरेत् ॥ ७७ ॥ आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः। तदा समः स्थात्सर्वेषु सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ ७८ ॥ आज्यं रुधिरमिव त्यजेदेक-त्रावं परुक्रमिव गन्धलेपनमञ्जूद्धलेपनमिव क्षारमन्त्यजमिव वस्रमुच्छिष्टपात्र-

मिवाभ्यक्तं स्त्रीसक्तमिव मित्राह्मादकं मूत्रमिव स्पृहां गोमांसमिव ज्ञातचर-देशं चण्डालवाटिकासिव स्त्रियमहिमिव सुवर्ण कालकूटमिव सभास्थकं इमशानस्थलमिव राजधानीं कुम्भीपाकमिव शवपिण्डवदेकत्रान्नं न देवतार्च-नम् । प्रपञ्चवृत्तिं परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवेत् ॥ श्रासनं पात्रकोपश्च संचयः शिष्यसंचयः। दिवास्वापो वृथालापो यतेर्वन्धकराणि पद ॥७९॥ वर्षाभ्योऽन्यत्र यत्स्थानमासनं तदुदाहृतम्। उक्ताळाव्वादिपात्राणामेकैस्यापीह संप्रहः॥ ८०॥ यतेः संव्यवहाराय पात्रलोपः स उच्यते । गृहीतस्य तु दण्डादेर्द्वितीयस्य परिग्रहः ॥ ८१ ॥ काळान्तरोपभोगार्थं संचयः परिकीर्तितः । गुश्रूपाळाभ-पुजार्थं यशोर्थं वा परिग्रहः ॥ ८२ ॥ शिष्याणां नतु कारुण्याच्छिष्यसंग्रह ईरितः । विद्या दिवा प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते ॥ ८३ ॥ विद्याभ्यासे प्रमादो यः स दिवास्वाप उच्यते । आध्यात्मिकीं कथां सुक्त्वा भिक्षावार्ता विना तथा ॥ ८४ ॥ अनुग्रहं परिप्रश्नं वृथाजल्पोऽन्य उच्यते । एकान्नं मद्-मात्सर्यं गन्धपुष्पिवसूषणम् ॥ ८५ ॥ ताम्बूलाभ्यक्षने कीडा भोगाकाङ्का रसायनस् । कत्थनं कुत्सनं स्वस्ति ज्योतिश्च ऋयविकयस् ॥ ८६ ॥ कियाकर्म विवादश्च गुरुवाक्यविलङ्घनम् । संविश्व विग्रहो यानं मञ्चकं गुक्कवस्रकम् ॥ ८७ ॥ शुक्रोत्सर्गो दिवास्वापो भिक्षाधारस्तु तैजसम् । विवं चेवायुधं बीजं हिंसां तैक्ष्ण्यं च मैथुनम् ॥ ८८ ॥ त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं वतम् । गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमातृकुरुं धनम् । प्रतिषिद्धानि चेतानि सेवमानो बजे-द्धः ॥ ८९ ॥ सुजीर्णोऽपि सुजीर्णासु विद्वांस्त्रीषु न विश्वसेत् । सुजीर्णा-स्वपि कन्थासु सजाते जीर्णमम्बरम् ॥ ९० ॥ स्थावरं जङ्गमं वीजं तेजसं विषमायुधम् । पडेतानि न गृह्णीयाद्यतिर्मूत्रपुरीपवत् ॥ ९१ ॥ नैवाददीत पाथेयं यतिः किंचिद्नापदि । पक्रमापत्सु गृह्णीयाद्यावदन्नं न लभ्यते ॥ ९२ ॥ नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुनीवसथे वसेत्। परार्थं न प्रतिग्राह्मं न द्याच कथं-चन ॥ ९३ ॥ दैन्यभावातु भूतानां सौभगाय यतिश्वरेत् । पकं वा यदि वाऽपकं याचमानो वजेद्धः ॥ ९४ ॥ अंत्रपानपरो भिक्षुर्वस्त्रादीनां प्रति-अही । आविकं वाडनाविकं वा तथा पट्टपटानिप ॥ ९५ ॥ प्रतिगृह्य यति-श्रेतान्यतत्येव न संशयः। अद्देतं नानमाश्रित्य जीवन्मुक्तत्वमाप्नुयात् ॥ ९६॥

वाग्दण्डे मोनमातिष्ठेत्कायदण्डे त्वभोजनम् । मानसे तु कृते दण्डे प्राणा-यामो विधीयते ॥ ९७ ॥ कर्मणा वध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते । तसा-त्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥ ९८ ॥ रथ्यायां बहुवस्त्राणि भिक्षा सर्वत्र रुभ्यते । भूमिः शय्याऽस्ति विस्तीर्णा यतयः केन दुःखिताः ॥ ९९ ॥ प्रपञ्चमखिलं यस्तु ज्ञानामो जुहुयाद्यतिः । आत्मन्यमीन्समारोप्य सोऽप्नि-होत्री महायतिः ॥ १०० ॥ प्रवृत्तिर्द्विधा प्रोक्ता मार्जारी चैव वानरी । ज्ञानाभ्यासवतामोतुर्वानरीभावत्वमेव च ॥ १०३ ॥ नाष्ट्रशः कस्तविद्व्यान्न चान्यायेन पृच्छतः । जानन्नपि हि मेधावी जडवह्योक आचरेत् ॥ १०२ ॥ सर्वेषामेव पापानां सङ्घाते समुपस्थिते । तारं द्वादशसाहस्तमभ्यसेच्छेदनं हि तत् ॥ १०३ ॥ यस्तु द्वादशसाहस्रं प्रणवं जपतेऽन्वहम् । तस्य द्वादशिम-र्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते ॥ १०४ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

> इति संन्यासोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ इति संन्यासोपनिषत्समाप्ता ॥ ६८ ॥

परमहंसपरित्राजकोपनिषत् ॥ ६९ ॥

पारिवाज्यधर्मवन्तो यज्ज्ञानाद्वहातां ययुः । तद्वह्म प्रणवैकार्थं तुर्यतुर्यं हीरं भजे ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरिः ॐ॥ अथ पितामहः स्वपितरमादिनारायणम्पसमेस्य प्रणम्य पप्रच्छ भगवंस्त्वनमुखाद्वणांश्रमधर्मकमं सर्वं श्चतं विदितमवगतम् । इदानीं परम-हंसपरिवाजकलक्षणं वेदितुमिच्छामि-कः परिवाजनाधिकारी, कीद्दशं परिवाज-कलक्षणं, कः परमहंसः, परिवाजकत्वं कथं, तत्सर्वं मे बूहीति । स होवाच भगवनादिनारायणः । सदुरुसमीपे सकलविद्याप रिश्नमज्ञो भूत्वा विद्वान्सर्व-मेहिकामुष्मिकसुखश्रमं ज्ञात्वेषणात्रयवासनात्रयममत्वाहंकारादिकं वमना-ज्ञामिव हेयमधिगम्य मोक्षमागंकसाधनो व्यस्चर्यं समाप्य गृही भवेत्। गृहाद्वनी भूत्वा प्रवजेत् । यदि वेतरथा व्यस्चर्यादेव प्रवजेद्वहाद्वा वनाद्वा। 1-

TE

À-

1

न

भ-

₹5

H"

াল-

ाच

र्व-

ना-

त्।

1 1

अथ पुनरवती वा वती वा स्नातको वाडसातको वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा ग्रदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेदिति बुद्धा सर्वसंसारेषु विरक्तो ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो वा पितरं मातरं कलत्रपुत्रमाप्तत्रन्युवर्गं तदभावे विष्यं सहवासिनं बाउनुमोद्यित्वा तद्देके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति तद् तथा न कुर्यात्। आग्नेरयामेव क्यांत् । अग्निहिं प्राणः प्राणमेवैतया करोति त्रैधातवीयामेव कर्यात । एतयेव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति । अयं ते योनिर्क-वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नम् आरोहाथानो वर्षया रियमि-त्यनेन मन्नेगाशिमाजिन्नेत । एव वा अग्नेयोनिर्यः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्याहेत्येवमेवैतदाह । ग्रामाच्छोत्रियागाराद्भिमाहत्य स्वविध्युक्तक्रमेण पूर्वव-दिशमाजिधेत्। यद्यातुरी वाभिं न विन्देद्रम् जुहुयात्। भाषो वै सर्वा देवताः सर्वास्यो देवताभ्यो जहोमि स्वाहेति हत्वोद्धत्य प्राश्लीयात् साज्यं हविरनाम-यस् । एष विधिवीराध्वाने वाडनाशके वा संप्रवेशे वाडिप्रप्रवेशे वा महाप्र-स्थाने वा। यद्यातुरः स्थान्मनसा वाचा वा संन्यसेदेष पन्थाः । स्वस्थक्रमेणेव चेदात्मश्रादं विरजाहोमं कृत्वाऽग्निमात्मन्यारोप्य छौकिकवैदिकसामर्थ्यं स्वच-नुर्देशकरणप्रवृत्तिं च पुत्रे समारोप्य तद्भावे शिष्ये वा तद्भावे स्वास्मन्येव वा ब्रह्मा त्वं यज्ञस्त्वमित्यभिमच्य ब्रह्मभावनया ध्यात्वा सावित्रीप्रवेशपूर्वक-मप्स सर्वविद्यार्थेस्वरूपां बाहाण्याधारां वेद्मातरं कमाद्याहतिषु त्रिषु प्रविलाप्य व्याहातित्रयमकारोकारमकारेषु प्रविलाप्य तत्सावधानेनापः प्राद्य प्रणवेन शिलामुःकृष्य यज्ञोपवीतं छित्वा वस्नमपि भूमो वाऽप्सु वा विसन्य ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ सुवः स्वाहेत्यनेन जातरूपधरो भूत्वा स्वं रूपं ध्यायन्पुनः पृथक् प्रणवव्याहृतिपूर्वकं मनसा वचसापि संन्यसं मया संन्यसं मया संन्यस्तं मयेति मन्द्रमध्यमतारध्यनिभिस्निवारं त्रिगुणीकृतप्रेपोचारणं कृत्वा प्रणवैकथ्यानपरायणः सन्नभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्व।हेत्यूर्ध्ववाहुर्भूत्वा बह्याऽहमसीति तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थस्वरूपानुसंघानं कुर्वेत्रुदीर्ची गच्छेत्। जातरूपधरश्चरेत्। एष संन्यासः। तद्धिकारी न भवेद्यदि गृह-स्थपार्थनापूर्वकमभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते सखा मा गोपायौजः सला योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारयेखनेन मञ्जेण प्रणवपूर्वकं सलक्षणं वैगवं दण्डं कटिस्त्रं कौपीनं कमण्डलुं विवर्ण-वस्रभेकं परिगृद्ध सद्गुरुमुपगम्य नत्वा गुरुमुखात्तत्त्वमसीति महावाक्यं प्रणव- पूर्वकमुपलस्या । 'जीर्णवहकलाजिनं धरवाथ जलावतरणमूर्ध्वगमनमेकभिक्षां परित्यज्य त्रिकालखानमाचरन्वेदान्तश्रवणपूर्वकं प्रणवानुष्ठानं कुर्वनमहामार्गे सम्यक्संपन्नः स्वाभिमतमात्मनि गोपयित्वा निर्ममोऽध्यात्मनिष्ठः कामः क्रोधलो ममोहमदमात्सर्यद्रभदर्पाहंकारास्यागर्वेच्छाद्वेषहर्पामर्पममत्वाद्यश्र हित्वा ज्ञानवैराग्ययुक्तो वित्तस्त्रीपराञ्ज्यकः ग्रुद्धमानसः सर्वोपनिषद्र्यमालोच्य ब्रह्मचर्यापरिग्रहाहिंसासत्यं यतेन रक्षितिन्द्रियो बहिरन्तः खेहवर्जितः शरीर-संधारणार्थं वा रित्रेषु वर्णेष्वभिशस्तपतितवर्जितेषु पशुरदोही मेक्समाणी ब्रह्मभूयाय भवति । सर्वेषु कालेषु लाभालाभो समी कृत्वा करपात्रमाध्करे-णान्नमभन्मेदोवृद्धिमकुर्वन्कुर्शाभूत्वा बह्याहमस्मीति भावयन्गुर्वर्थं प्राममुपेस भुवशीलोऽष्टी मास्येकाकी चरेद्वावेवाचरेत्। यदाळंबुद्धिभवेत्तदा कुटीचको वा बहुदको वा हंसो वा परमहंसी वा तत्तनमञ्जपूर्वकं कटिसुत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत् । याम एकरात्रं तीर्थे विरात्रं पत्तने पद्मरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रमनिकेतः स्थिरमतिरनिमसेवी निर्विकारो नियमा-नियमसुत्सृज्य प्राणसंघारणार्थमयमेव लाभालाभौ समौ कृत्वा गोवृत्या मैक्ष-माचरनुद्कस्थलकमण्डलुरबाधकरहस्यस्थलवासो न पुनर्लाभालाभरतः ग्रुमा-शुभकर्मीतर्मूळनपरः सर्वत्र भूतळशयनः क्षीरकर्मपरित्यक्तो युक्तचातुर्मास-व्रतनियमः ग्रुक्रध्यानपरायणोऽर्थस्त्रीपुत्रपराञ्जुखोऽनुनमत्त्रोऽप्युन्मत्तवदाचरत्र-व्यक्तिलेङ्गोऽव्यक्ताचारो दिवानकसमत्वेनास्वमः खरूपानुसंधानब्रह्मप्रणवध्या-नमार्गेणावहितः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसपरिवाजको भवति। भगवन् ब्रह्मप्रणवः कीदश इति ब्रह्मा पृच्छति । स होवाच नारायणः। ब्रह्मप्रणवः षोडशमात्रात्मकः सोऽवस्थाचतुष्टयचतुष्टयगोचरः। जाप्रदवस्थायां जामदादिचतस्रोऽवस्थाः स्वमे स्वमादिचतस्रोऽवस्थाः सुषुप्तौ सुषुध्यादिचत-स्रोऽवस्थास्तुरीये तुरीयादिचतस्रोऽवस्था भवन्तीति । जायदवस्थायां विश्वस चातुर्विध्यं विश्वविश्वो विश्वतेजसो विश्वप्राज्ञो विश्वतुरीय इति । स्वप्नावस्थायां तैजसस्य चातुर्विध्यं तैजसविश्वतैजसतैजसत्तैजसप्राज्ञस्तैजसतुरीय इति । सुपु-ह्यवस्थायां प्राज्ञस्य चातुर्विध्यं प्राज्ञविश्वः प्राज्ञतैजसः प्राज्ञप्राज्ञः प्राज्ञतुरीय इति। तुरीयावस्थायां तुरीयस्य चातुर्विध्यं तुरीयविश्वस्तुरीयतेजसस्तुरीयप्राज्ञस्तुः रीयतुरीय इति । ते क्रमेण पोडशमात्रारूढा अकारे जायदिश्व उकारे जायतै-

जसो मकार जामत्माज्ञ अर्धमात्रायां जामतुरीयो विन्दौ स्वप्नविश्वो नादे स्वप्न-तेजसः कळायां स्वमप्राज्ञः कळातीते स्वमतुरीयः शान्तौ सुपुप्तविश्वः शान्यतीते सुपुप्ततेजस उन्मन्यां सुपुप्तप्राज्ञो मनोनमन्यां सुपुप्ततुरीयः तुया तुरीयविश्वो मध्यमायां तुरीयतेजसः पर्यन्त्यां तुरीयप्राज्ञः परायां तुरीयतुरीयः । जाय-न्मात्राचतुष्टयमकारांशं स्वप्नमात्राचतुष्टयमुकारांशं सुपुप्तिमात्राचतुष्टयं मका-रांशं तुरीयमात्राचतुष्टयमर्भमात्रांशम् । अयमेव ब्रह्मप्रणवः । स परमहंस-तुरीयातीतावधृतैरुपास्यः । तेनैव बहा प्रकाशते तेन विदेहमुक्तिः । भगवन् कथमयज्ञोपवीत्यशिखी सर्वकर्मपरित्यक्तः कथं ब्रह्मनिष्टापरः कथं ब्राह्मण इति ब्रह्मा पुच्छति । स होवाच विष्णुभी भोऽर्भक यस्यास्त्रद्वैतमात्मज्ञानं तदेव यज्ञोपवीतम् । तस्य ध्याननिष्ठेव शिखा । तत्कर्म स पवित्रम् । स सर्वकर्म-कृत्। स ब्राह्मणः। स ब्रह्मनिष्ठापरः। स देवः। स ऋषिः। स तपस्वी। स श्रेष्ठः । स एव सर्वज्येष्ठः । स एव जगद्भरः । स एवाहं विद्धि । लोके परम-हंसपरिवाजको दुर्लभतरो यद्येकोऽस्ति । स एव निलप्तः । स एव वेदपुरुषो महापुरुषो यस्तचित्तं मरयेवावतिष्ठते । अहं च तस्मिन्नेवावस्थितः । स एव नित्यतृसः । स शीतोष्णसुखदुःखमानावमानवर्जितः । स निन्दामपंसहिष्णुः । स पडूर्मिवर्जितः । पड्भावविकारश्चन्यः । स ज्येष्ठाज्येष्टव्यवधानरहितः । स खव्यतिरेकेण नान्यद्रष्टा । आशास्त्ररो ननमस्कारो नस्त्राहाकारो नस्त्रधा-कारश्च नविसर्जनपरो निन्दास्तुतिव्यतिरिक्तो नमञ्जतन्त्रोपासको देवान्तर-ध्यानशून्यो लक्ष्यालक्ष्यनिवर्तकः सर्वोपरतः स सचिदानन्दाद्वयचिद्रनः संपूर्णानन्दैकवोधो ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनवरतं ब्रह्मप्रणवानुसंधानेन यः कृतकृत्यो भवति स ह परमहंसपरिवाडित्युपनिषत् ॥ १ ॥

हरिः ॐ तस्तत् । ॐ भदं कणेंभिरिति शान्तिः ॥ इति परमहंसपरित्राजकोपनिपत्समासा ॥ ६९॥

अक्षमालिकोपनिषत् ॥ ७० ॥

अकारादिक्षकारान्तवर्णजातकलेवरम् । विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ ३ ॥

ॐ वाक्षे मनसीति शान्तिः॥

हरि: ॐ ॥ अथ प्रजापतिर्गुहं पप्रच्छ भो वसस्त्रभगलामेदविधि ब्हीति । सा किंकक्षणा, कति भेदा सस्याः, कति सुत्राणि, कथं घटनाप्रकारः, के वर्णाः,

का प्रतिष्ठा, कैवास्याधिदेवता, किं फर्ल चेति । तं गुहः प्रत्युवाच प्रवालमीकि कर्फटिकशङ्खरजताष्टापदचन्दनपुत्रजीविकाब्जे रुद्राक्षा इति । आदिक्षान्तमूर्तिः सावधानभावा । सोवण राजतं ताम्रं चेति सूत्रत्रयम् । तद्विवरे सोवणं तह-क्षपार्थे राजतं तद्वामे ताम्रं तन्मुखे मुखं तत्पुच्छे पुच्छं तदन्तरावर्तनक्रमेण योजयेत्। यदस्यान्तरं सूत्रं तद्रह्म। यद्भपार्थे तच्छेवम्। यद्वामे तद्रैष्णवम्। यन्मुखं सा सरस्वती । यत्पुच्छं सा गायत्री । यत्सुषिरं सा विद्या । या प्रनिथः सा प्रकृतिः । ये स्वरास्ते धवलाः । ये स्पर्शास्ते पीताः । ये परास्ते रक्ताः । अथ तां पञ्चभिर्गन्धेरमृतैः पञ्चभिर्गव्येस्तनुभिः शोधयित्वा पञ्चभिर्ग-व्यैर्गन्धोदकेन संस्नाप्य तस्मात्सोङ्कारेण पत्रकूर्चेन स्नपयित्वाऽष्टभिर्गन्धेरालिप्य सुमनःस्थले निवेश्याक्षतपुष्पैराराध्य प्रत्यक्षमादिक्षान्तैर्वर्णेर्भावयेत् । ओम-क्कार मृत्युंजय सर्वे ज्यापक प्रथमे ऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमाङ्काराकर्षणात्मक सर्व-गत द्वितीयेऽझे प्रतितिष्ठ । ओमिङ्कार पुष्टिदाक्षोभकर तृतीयेऽझे प्रतितिष्ठ । ओमीङ्कार वाक्प्रसादकर निर्मेल चतुर्थेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमुङ्कार सर्वबलप्रद सारतर पञ्चमेऽसे प्रतितिष्ठ । ओमूङ्कारोचाटनकर दुःसह षष्ठेऽसे प्रतितिष्ठ । ओमृङ्कार संक्षोभकर चञ्चल सप्तमेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमृङ्कार संमोहनकरोज्ज्व-लाष्टमेऽसे प्रतितिष्ठ । ओम्लङ्कार विद्वेषणकर मोहक नवमेऽसे प्रतितिष्ठ । ओम्लङ्कार मोहकर दशमेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमेङ्कार सर्ववस्यकर शुद्धसन्वै-काद्रोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमैङ्कार ग्रुद्धसात्विक पुरुषवश्यकर द्वाद्रशेऽक्षे प्रति-तिष्ठ । ओमोङ्काराखिलवाङ्मय नित्यग्रुद्ध त्रयोदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमौङ्कार सर्ववाद्यय वश्यकर चतुर्दशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ओमङ्कार गजादिवश्यकर मोहन पञ्चदशेऽसे प्रतितिष्ठ । ओमःकार मृत्युनाशनकर रौद्र घोडशेऽसे प्रतितिष्ठ । ॐ कङ्कार सर्वविषहर कल्याणद सप्तदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ खङ्कार सर्व-क्षोभकर व्यापकाष्टादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ गङ्कार सर्वविव्वशमन महत्तरैकोन-विंशेऽझे प्रतितिष्ठ । ॐ घङ्कार सौभाग्यद स्तम्भनकर विंशेऽझे प्रतितिष्ठ । 🕉 ङङ्कार सर्वविषनाशकरोग्रैकविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । 🕉 चङ्काराभिचारम् कूर द्वाविंशेऽझे प्रतितिष्ठ । ॐ छङ्कार भूतनाशकर भीषण त्रयोविंशेऽझे प्रतितिष्ठ । ॐ जङ्कार कृत्यादिनाशकर दुर्धर्ष चतुर्विशेऽसे प्रतितिष्ट । ॐ झङ्कार भूत-नाशकर पञ्जविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ जङ्कार मृत्युप्रमथन षड्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ ।

🕉 टङ्कार सर्वेच्या धिहर सुभग सप्तविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ टङ्कार चन्द्र-रूपाष्टाविंशेऽसे प्रतितिष्ठ । ॐ डङ्कार गरुडात्मक विषव्न शोभनैकोनत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ट । ॐ ढङ्कार सर्वसंपत्प्रद सुभग त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ णङ्कार सर्व-सिद्धिपद मोहकरैकत्रिंदोऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ तङ्कार धनधान्यादिसंपत्पद प्रसन्न ह्यात्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ थङ्कार धर्मप्राप्तिकर निर्मेल त्रयिखेशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । 🕉 दङ्कार पुष्टिवृद्धिकर प्रियदर्शन चतुर्खिशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। 🕉 धङ्कार विपज्वरनिव्न विपुल पञ्चत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ नङ्कार भुक्तिमुक्तिप्रद शान्त प्ट्रिंदोऽक्षे प्रतितिष्ट । ॐ पङ्कार विषविघ्रनाशन भन्य सप्तितिरहे प्रतितिष्ट ॐ फङ्काराणिमादिसिद्धिप्रद ज्योतीरूपाष्टत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ बङ्कार सर्वदोषहर शोभनेकोनचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ॐ भङ्कार भूतप्रशान्तिकर भयानक चत्वारिं होऽझे प्रतितिष्ठ । ॐ मङ्कार विद्वेषिमोहनकरैकचत्वारिंहोऽझे प्रतितिष्ठ । ॐ यङ्कार सर्वन्यापक पावन द्विचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । 🕉 रङ्कार दाहकर विकृत त्रिचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । 🕉 रुङ्कार विश्वंसर भासुर चतुश्रत्वारिंदोऽझे प्रतितिष्ठ । ॐ वङ्कार सर्वाप्यायनकर निर्मेछ पञ्चचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ शङ्कार सर्वफलप्रद पवित्र षदचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । 'ॐ पङ्कार धर्मार्थकामद धवल सप्तचत्वारिंकीऽक्षे प्रतितिष्ठ । 🕉 सङ्कार सर्वकारण सार्ववर्णिकाष्टचःवारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ हङ्कार सर्ववाङ्मय निर्मलैकोनपञ्चाशदृक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ ळङ्कार सर्वशक्तिप्रद प्रधान पञ्चाशदक्षे प्रतितिष्ठ । ॐ क्षङ्कार परापरतत्त्वज्ञापक परंज्योतीरूप शिखामणी प्रतितिष्ठ । अथोवाच ये देवाः पृथिवीपदस्तेभ्यो नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभायै पितरोऽनुमद्नतु शोभायै ज्ञानमयीमक्षमालिकाम्। अथोवाच ये देवा अन्तरिक्षसदस्तेभ्य ॐ नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभाये पितरोऽनु-मदन्तु शोभायै ज्ञानमयीमक्षमालिकाम् । अथोवाच ये देवा दिविषद्स्तेभ्यो नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभाये पितरोऽनुमदन्तु शोभाये ज्ञानमयीमक्ष-मालिकाम् । अथोवाच ये मन्ना या विद्यास्तेभ्यो नमस्ताभ्यश्चोन्नमस्त-च्छक्तिरस्याः प्रतिष्ठापयति । अथोवाच ये ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तेभ्यः सगुणेभ्य कें नमस्तद्वीर्यमस्याः प्रतिष्ठापयति । अथोवाच ये सांख्यादितत्त्वभेदास्तेभ्यो नमो वर्तध्वं विरोधेऽनुवर्तध्वम् । अथोवाच ये शेवा वैष्णवाः शाकाः शतसहस्रशस्त्रेभ्यो नमो नमो भगवन्तोऽनुमदन्खनुगृह्णन्तु । अथोवाच

याश्च मृत्योः प्राणवत्यस्ताभ्यो नमो नमसेनैतं मृडयत मृडयत । पुनरेतसां सर्वोत्मकत्वं भावयित्वा भावेन पूर्वमालिकामुत्पाद्यारभ्य तन्मयीं महोपहारै-रुपहत्यादिक्षान्तैरक्षरैरक्षमालामष्टोत्तरशतं स्पृशेत् । अथ पुनरुत्थाप्य प्रदक्षिणीकृत्यों नमस्ते भगवति मन्नमानुके ऽक्षमाले सर्ववशंकर्यों नमस्ते भगवति मञ्जमातृकेऽक्षमालिके शेषस्तम्भिन्यों नमस्ते भगवति मञ्जमातृकेऽक्षमाले उचाटन्यों नमस्ते भगवति मञ्जमातृकेऽक्षमाले विश्वामृत्यों मृत्युंजयस्वरूपिण सकललोकोहीपिनि सकललोकरक्षाधिके सकललोकोजीविके त्पादिके दिवाप्रवर्तिके रात्रिप्रवर्तिके नद्यन्तरं यासि देशान्तरं यासि द्वीपान्तरं यासि लोकान्तरं यासि सर्वदा स्फरासि सर्वहाद वासासे। नमस्ते परारूपे नमस्ते पर्यन्तीरूपे नमस्ते मध्यमारूपे नमस्ते वैखरीरूपे सर्वतत्त्वा-रिमके सर्वविद्यात्मिके सर्वशक्त्यात्मिके सर्वदेवात्मिके वसिष्ठेन मुनिनाराधिते विश्वामित्रेण मुनिनोपजीव्यमाने नसस्ते नसस्ते । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । तत्सायंप्रातः प्रयुक्षानः पापोऽपापो भवति । एवमक्षमालिकया जसो मन्नः सद्यःसिद्धिकरो भवतीलाह अगवान्गुहः प्रजापतिमित्युपनिषत् ॥ १ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

> ॐ वाङ्गे मनसीति शान्तिः॥ इत्यक्षमालिकोपनिषत्समाप्ता॥ ७०॥

अन्यक्तोपनिषत् ॥ ७१ ॥

स्वाज्ञानासुरराङ्ग्रासस्वज्ञाननरकेसरी ।
प्रतियोगिविनिर्भुक्तं ब्रह्ममात्रं करोतु माम् ॥ १ ॥
अ आप्यायन्त्वित शान्तिः ॥

हिर: ॐ॥ पुरा किलेदं न किंचनासीच द्यौर्नान्तिरक्षं न पृथिवी केवलं ज्योतीरूपमनाद्यनन्तमन्वस्थूलरूपमरूपं रूपवद्विज्ञेयं ज्ञानरूपमानन्दम-यमासीत्। तदनन्यत्तद्वेधाऽभूद्धरितमेकं रक्तमपरम्। तत्र यदक्तं तत्यंसो रूपमभूत्। यद्धरितं तन्मायायाः। तौ समगन्छतः। तयोवीर्थमेवमनन्दत्। तद्वर्धतः। तदण्डमभूद्धेमम्। तत्परिणममानमभूत्। ततः परमेष्ठी व्यजाव्यतः। सोऽभिजिज्ञासत किं मे कुलं किं मे कुल्यमिति। तं ह वागद्धयमाना अस्युवाच-भो भो प्रजापते त्वमन्यक्तादुत्पन्नोऽसि व्यक्तं, ते कुल्यमिति। किम-

व्यक्तं यस्मादहमासिषम् । किं तद्यक्तं यन्मे कृत्यमिति । साऽत्रवीदविज्ञेयं हि तत्सौम्य तेजः । यदविज्ञेयं तद्व्यक्तम् । तच्चिज्ञज्ञासिस माऽवगच्छेति । स होवाच कैषा त्वं ब्रह्मवाग्यदसि शंसात्मानमिति। सा त्वब्रवीत्तपसा मां विजिज्ञासस्वेति । स ह सहस्रं समा ब्रह्मचर्यमध्युवासाध्युवास ॥ १ ॥ अथा-प्रयद्यमानुष्टुभीं परमां विद्यां यसाङ्गान्यन्ये मन्नाः । यत्र ब्रह्म प्रतिष्टितम् । विश्वेदेवाः प्रतिष्ठिताः । यस्तां न वेद किमन्यैर्वेदैः करिप्यति । तां विदित्वा स च रक्तं जिज्ञासयामास । तामेवमनुचानां गायन्नासिष्ट । सहस्रं समा आद्यन्तनिहितोङ्कारेण पदान्यगायत् । सहस्रं समास्तथेवाक्षरतः । ततोऽपश्य-जयोतिर्मयं श्रियालिङ्गितं सुपर्णरथं शेषफणाच्छादितमौलिं मृगमुखं नरवपुषं शशिसूर्यहब्यवाहनात्मकनयनत्रयम् । ततः प्रजापितः प्रणिपपात नमो नम इति । तथैवर्चाथ तमस्तौत् । उग्रमित्याह उग्रः खलु वा एष सृगरूपत्वात् । वीरमिलाह वीरो वा एष वीर्यवत्त्वात् । महाविष्णुमिलाह महतां वा अयं महान्नोदसी व्याप्य स्थितः ज्वलन्तमिलाह ज्वलन्निव खल्वसाववस्थितः। सर्वतोमुखमित्याह सर्वतः खल्वयं मुखवान्विश्वरूपत्वात् । नृसिंहमित्याह यथा यजुरेवैतत् । भीषणमित्याह भीषा वा असादादित्य उदेति भीतश्रनद्रमा भीतो वायुर्वाति भीतोऽग्निर्दहति भीतः पर्जन्यो वर्षति । भद्गमित्याह भद्रः खल्वयं श्रिया जुष्टः । मृत्योर्मृत्युमित्याह मृत्योर्वा अयं मृत्युरमृतत्वं प्रजानामन्नादा-नाम् । नमामीत्याह यथा यजुरेवैतत् । अहमित्याह यथा यजुरेवैतत् ॥ २ ॥ अथ भगवांस्तमव्रवीत्प्रजापते प्रीतोऽहं किं तवेप्सितं तदाशंसेति । स होवाच भगवन्नव्यक्तादुत्पन्नोऽस्मि व्यक्तं मम कृत्यमिति पुराऽश्रावि । तत्राव्यक्तं भवा-नित्यज्ञायि व्यक्तं में कथयेति । व्यक्तं वै विश्वं चराचरात्मकम् । यद्यज्यते तद्यक्तस्य व्यक्तत्विमिति । स होवाच न शक्नोमि जगत्स्रष्टुमुपायं मे कथयेति । तमुवाच पुरुषः प्रजापते द्राणु सृष्टेरुपायं परमं यं विदित्वा सर्वं ज्ञास्यसि । सर्वत्र शक्ष्यसि सर्वं करिष्यसि । मय्यग्नौ स्वात्मानं हविध्ययित्तयैवाऽनुष्टुभर्चा । ध्यानयज्ञोऽयमेव । एतद्वे महोपनिषद्देवानां गुह्यम् । न ह वा. एतस्य साम्ना नर्चा न यजुषाऽथीं नु विद्यते । य इमा वेद स सर्वान्कामानवाप्य सर्वाह्रो-का जिल्वा मामेवाभ्युपैति न स पुनरावर्तते य एवं वेदेति ॥ ३॥ प्रजाप-तिस्तं यज्ञाय वसीयांसमात्मानं मन्यमानो मनोयज्ञेनेजे । सप्रणवया तयैवर्चा

हविध्यात्वाऽऽत्मानमात्मन्यय्गौ जुहुयात् । सर्वमजानात्सर्वत्राशकत्सर्वमकरोत् । ये एवं विद्वानिमं ध्यानयज्ञमनुतिष्ठेत्स सर्वज्ञोऽनन्तशक्तिः सर्वकर्ता भवति । स सर्वोह्होकाञ्जित्वा ब्रह्म परं प्रामोति ॥ ४ ॥ अथ प्रजापतिलोकान्सिसृक्षमाण-स्तस्या एव विद्याया यानि त्रिंशद्क्षराणि तेभ्यस्ती होकान् । अथ द्वे द्वे अक्षरे ताभ्यामुभयतो दधार । तस्या एवची द्वात्रिंशद्विरक्षरैस्तान्देवान्निर्ममे । सर्वे-रेव स इन्द्रोऽभवत् । तस्मादिन्द्रो देवानामधिकोऽभवत् । य एवं वेद समा-नानामधिको भवेत्। तस्या एकादशिभः पादैरेकादश रुद्रान्निर्ममे । तस्या एकादशभिरेकादशादित्यान्निर्ममे । सर्वे रेव स विष्णुरभवत् । तसाद्विष्णुरा-दित्यानामधिकोऽभवत् । य एवं वेद समानानामधिको भवेत्। सं चतु-भिश्रतुर्भिरक्षरैरष्टौ वसूनजनयत् । स तस्या आद्येद्वीदशभिरक्षरैर्वाह्मणम-जनयत् । दशभिर्दशभिर्विद्क्षत्रे । तस्माद्राह्मणो मुख्यो भवति । एवं तन्मुख्यो भवति य एवं वेद् । तूर्णीं शूद्रमजनयत्तस्माच्छ्दो निर्विद्यो-उभवत् । न वेदं दिवा न नक्तमासीदव्यावृतं । स प्रजापितरानुष्ट्रभाभ्याः मर्धर्चाभ्यामहोरात्रावकलायत् । ततो व्यैच्छत् व्येवास्मा उच्छति । अथो तम एवापहते । ऋग्वेदमस्या आद्यात्पादादकल्पयत् । यजुर्द्वितीयात् । साम तृतीयात् । अथर्वाङ्गिरसश्चतुर्थात् । यद्ष्टाक्षरपदा तेन गायत्री । यदेकादश-पदा तेन त्रिष्टुप्। यचतुष्पदा तेन जगती । यहात्रिंशदक्षरा तेनानुष्टुप्। सा वा एषा सर्वाणि छन्दांसि । य इमां सर्वाणि छन्दांसि वेद । सर्व जगदानु-ष्टुम एवोत्पन्नमनुष्टुप्प्रतिष्ठितं प्रतितिष्ठति यश्चैवं वेद ॥ ५ ॥ अथ यदा प्रजाः सृष्टा न जायन्ते प्रजापतिः कथं निवमाः प्रजाः सृजेयमिति चिन्तयनुप्रमि-तीमामृचं गातुमुपाकामत् । ततः प्रथमपादादुग्ररूपो देवः पादुरभूत् । एकः इयामः पुरतो रक्तः पिनाकी स्त्रीपुंसरूपसं विभज्य स्त्रीपु तस्य स्त्रीरूपं पुंसि च पुंरूपं व्यधात् । स उभाभ्यामेशाभ्यां सर्वमादिष्टः । ततः प्रजाः प्रजा-यन्ते । य एवं वेद प्रजापतेः सोऽपि व्यम्बक इमामृचमुद्रायनुद्रथितजटाक-लापः प्रत्यग्ज्योतिष्यात्मन्येव रन्तारमिति । इन्द्रो वै क्रिल देवानामनुजावर आसीत् । तं प्रजापतिरबवीद्गच्छ देवानामधिपतिभवेति । सोऽगच्छत् । तं देवा अचुरनुजावरोऽसि त्वमस्याकं कुतस्तवाधिपत्यमिति । स प्रजापतिमभ्ये-

स्योवाचैवं देवा ऊचुरनुजावरस्य कुतस्तवाधिपत्यमिति । तं प्रजापतिरिन्दं त्रिकलशैरसृतपूर्णेरानुष्टुभाऽभिमन्नितैरभिषिच्य तं सुदर्शनेन दक्षिणतो ररक्ष पाञ्चजन्येन वामतो द्वयेनैन सुरक्षितोऽभवत् । रौक्मे फलके सुर्यवर्चिस मन्नमानुष्टुभं विन्यस्य तदस्य कण्ठे प्रत्यमुञ्जत् । ततः सुदुर्निरीक्षोऽभवत् । तसै विद्यामानुष्टुभीं प्रादात् । ततो देवास्तमाधिपत्यायानुमेनिरे । स स्वराडभूत् । य एवं वेद स्वराइ भवेत् । सोऽमन्यत पृथिवीमपि कथमपां जयेयमिति । स व्रजापतिसुपाधावत् । तस्मात्प्रजापतिः कमठाकारमिन्द्रनागभुजगेन्द्राधारं भद्रासनं प्रादात् । स पृथिवीमभ्यजयत् । ततः स उभयोर्लोकयोरिधपति-रभूत् । य एवं वेदोभयोर्लोकयोरिधपतिभवति । स पृथिवीं जयित यो वा अप्रतिष्ठितं शिथिलं भ्रातृच्येभ्यः परमात्मानं मन्यते । स एतमासीनमिित-ष्टेत् । प्रतिष्ठितोऽशिथिलो भ्रातृव्येभ्यो वसीयान्भवति यश्चैवं वेद् यश्चैवं वेद् ॥ ६ ॥ य इमां विद्यामधीते स सर्वान्वेदानधीते । स सर्वेः ऋतुमिर्यजते । स सर्वतीर्थेषु स्नाति । स महापातकोपपातकैः प्रमुच्यते । स ब्रह्मवर्चसं महदा-मुयात् । आ ब्रह्मणः पूर्वानाकल्पांश्चोत्तरांश्च वंश्यान्युनीते । नैनमपस्माराद्यो रोगा आदिधेयुः । सयक्षाः सप्रेतपिशाचा अप्येनं स्पृष्ट्वा दृष्ट्वा श्रुत्वा वा पापिनः पुण्याँ छोकानवामुयुः । चिन्तितमात्रादस्य सर्वेऽर्थाः सि खेयुः । पितर-भिवैनं सर्वे मन्यन्ते । राजानश्चास्यादेशकारिगो भवन्ति । न चाचार्यव्यति-रिक्तं श्रेयांसं दृष्ट्वा नमस्कुर्यात् । न चास्मादुपावरोहेत् । जीवन्मुक्तश्च भवति । देहान्ते तमसः परं धाम प्राप्तुयात् । यत्र विराण् नृसिंहोऽवभासते तत्र खलूपासते । तत्स्वरूपध्यानपरा मुनय आकल्पान्ते तसिन्नेवात्मनि लीयन्ते । न च पुनरावर्तन्ते । न चेमां विद्यामश्रद्धानाय ब्र्यान्नास्यावते नानूचा-नाय नाविष्णुभक्ताय नानृतिने नातपसे नादान्ताय नाशान्ताय नादीक्षि-ताय नाधर्मशीलाय न हिंसकाय नाब्रह्मचारिण इत्येपोपनिषत्॥ १॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः॥ इत्यन्यक्तोपनिषत्समाप्ता॥ ७१॥

एकाक्षरोपनिषत् ॥ ७२ ॥

एकाक्षरपदारूढं सर्वात्मकमखण्डितम् । सर्ववर्जितचिन्मात्रं त्रिपान्नारायणं भजे ॥ ३॥

ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥

हरिः ॐ ॥ एकाक्षरं त्वक्षेरेऽत्रास्ति सोमे सुषुम्नायां चेह दृढी स एकः। त्वं विश्वभूर्भूतपतिः पुराणः पर्जन्य एको अवनस्य गोप्ता ॥ १ ॥ विश्वे निम्यु-पद्वीः कवीनां त्वं जातवेदो भुवनस्य नाथः । अजातमग्रे स हिरण्यरेता यज्ञस्त्वसेवैकविभुः पुराणः ॥ २ ॥ प्राणः प्रसृतिर्भुवनस्य योनिन्यांसं त्वया एकपदेन विश्वम् । त्वं विश्वभूर्योनिपराः स्वेगभें कुमार एको विशिखः सुधन्वा ॥ ३ ॥ वितत्य वाणं तरुणार्कवर्णं व्योमान्तरे आसि हिरण्यगर्भः । भासा त्वया व्योम्नि कृतः सुतार्क्यस्त्वं वै कुमारस्त्वमरिष्टनेमिः ॥ ४ ॥ त्वं वज्रभू-द्भृतपतिस्त्वमेव कामः प्रजानां निहितोऽसि सोमे । स्वाहा स्वधा यच वपस करोति रुद्रः पश्चनां गुँहया निमग्नः ॥ ५ ॥ धाता विधाता पवनः सुपर्णो विष्णुर्वराहो रजनी रेंहश्च। भूतं भविष्यत्मभवः कियाश्च कालः क्रमस्त्वं परमाक्षरं च ॥ ६ ॥ ऋचो यजूंषि प्रसवन्ति वक्रात्सामानि सम्राष्ट्रसुरन्तरि-क्षम् । त्वं यज्ञनेता हुतभुग्विसुश्च रुद्रास्तथा दैत्यगणा वसुश्च ॥ ७ ॥ स एष देवोऽम्बरगश्च चक्रे अन्येऽभ्यधिष्ठेत तमो निरुन्ध्यः । हिरण्मयं यस्य विभाति सर्वं व्योमान्तरे रिक्मिमिवांशुनाभिः ॥ ८ ॥ स सर्ववेत्ता भुवनस्य गोप्ता ताथिः प्रजानां निहिता जनानाम् । प्रोता त्वमोता विचितिः क्रमाणां प्रजा-पतिरछन्दमयो विगर्भः ॥ ९ ॥ सामैश्चिदन्तो विरजश्च वाहु हिरण्मयं वेद-विदां वरिष्ठम् । यमध्वरे ब्रह्मविदः स्तुवन्ति सामैर्यज्ञिभः ऋतुभिस्त्वमेव ॥ १० ॥ त्वं स्त्री पुमांस्त्वं च कुमार एकस्त्वं वे कुमारी ह्यथ भूस्त्वमेव। त्वमेव धाता वरुणश्च राजा त्वं वत्सरोऽइयर्यम एव सर्वम् ॥ ११ ॥ मित्रः सुपर्णश्चन्द्र इन्द्रो वरुणो रुद्रस्त्वष्टा विष्णुः सविता गोपतिस्त्वम् । त्वं विष्णु-र्भूतानि तु त्रासि देखांस्वयाऽऽवृतं जगदुद्भवगर्भः ॥१२॥ त्वं भूर्भुवः सस्तं

हि स्वयंभूरथ विश्वतोमुखः । य एवं नित्यं वेदयते गुहाशयं प्रभुं पुराणं सर्व-भूतं हिरण्मयम् ॥ १३ ॥ हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं स बुद्धिमान्बुद्धि-मतीत्य तिष्ठतीत्युपनिषत् ॥ १ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥ इत्येकाक्षरोपनिषत्समाप्ता॥ ७२॥

अन्नपूर्णोपनिषत् ॥ ७३ ॥

सर्वापह्नवसंसिद्धब्रह्ममात्रतयोज्वलम् । त्रेपदं श्रीरामतत्त्वं स्वमात्रमिति भावये ॥ १ ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ निद्ाघो नाम योगीन्द्र ऋभुं ब्रह्मविदां वरम् । प्रणम्य दण्डव-द्भमावुत्थाय स पुनर्भुनिः ॥ १ ॥ आत्मतत्त्वमनुबृहीस्रेवं पप्रच्छ सादरम् । कयोपासनया ब्रह्मन्नीदशं प्राप्तवानिस ॥ २ ॥ तां मे बूहि महाविद्यां मोक्ष-साम्राज्यदायिनीम् । निदाघ त्वं कृतार्थोऽसि श्रणु विद्यां सनातनीम् ॥ ३ ॥ यस्या विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भविष्यसि । मूलश्रङ्गाटमध्यस्था विन्दुनाद-कलाश्रया ॥ ४ ॥ नित्यानन्दा निराधारा विख्याता विलसःकचा । विष्टपेशी महालक्ष्मीः कामस्तारो नतिस्तथा ॥ ५ ॥ भगवत्यन्नपूर्णेति ममाभिल्पितं ततः । अन्न देहि ततः स्वाहा मन्नसारेति विश्वता ॥ ६ ॥ सप्तविंशतिवर्णात्मा योगिनीगणसेविता ॥ ७ ॥ ऐं हीं सौं श्रीं क्वीं ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्ण ममाभिलिषतमन्नं देहि स्वाहा । इति पित्रोपदिष्टोऽस्मि तदादिनियमः स्थितः । कृतवान्स्वाश्रमाचारो मन्नानुष्ठानमन्वहम् ॥ ८ ॥ एवं गते बहुदिने प्रादुरासीन्ममायतः । अन्नपूर्णा विशालाक्षी स्मयमानमुखाम्बुजा ॥ ९ ॥ तां दृष्ट्वा दण्डवद्भूमौ नत्वा प्राञ्जलिरास्थितः । अहो वत्स कृतार्थोऽसि वरं वरय मा चिरम् ॥ १० ॥ एवमुक्तो विशालाक्ष्या मयोक्तं मुनिपुङ्गव । आस्मतत्त्वं मनिस मे प्रादुर्भवतु पार्विति ॥ ११ ॥ तथैवास्त्विति मामुक्त्वा तत्रैवान्तर-धीयत । तदा में मतिरुत्पन्ना जगद्वैचित्र्यदर्शनात् ॥ १२ ॥ अमः पञ्चविधो भाति तदेवेह समुच्यते ! जीवेश्वरौ भिन्नरूपाविति प्राथमिको भ्रमः ॥ १३ ॥

आत्मनिष्ठं कर्तृगुणं वास्तवं वा द्वितीयकः । शरीरत्रयसंयुक्तजीवः सङ्गी तृती-यकः ॥ १४ ॥ जगत्कारणरूपस्य विकारित्वं चतुर्थकः । कारणाद्भिन्नजगतः सत्यत्वं पञ्चमो अमः । पञ्चअमनिवृत्तिश्च तदा स्फुरति चेतिस ॥ १५ ॥ विम्बप्रतिविम्बद्र्शनेन भेद्भ्रमो निवृत्तः । स्फर्टिकलोहितद्र्शनेन पारमार्थिक-कर्तृत्वश्रमो निवृत्तः । घटमठाकाशदर्शनेन सङ्गीतिश्रमो निवृत्तः । रज्ञ-सर्पदर्शनेन कारणादिवाजगतः सत्यत्वभ्रमो निवृत्तः । कनकरुचकदर्शनेन विकारित्वभ्रमो निवृत्तः । तदाप्रभृति मचित्तं ब्रह्माकारमभृत्स्वयम् । निदाव त्वमपीत्थं हि तत्त्वज्ञानमवागुहि ॥ १६ ॥ निदाघः प्रणतो भूत्वा ऋभं पप्रच्छ सादरम् । बूहि मे श्रद्धानाय ब्रह्मविद्यामनुत्तमाम् ॥ १७ ॥ तथे-त्याह ऋभुः प्रीतसत्त्वज्ञानं वदामि ते । महाकर्ता महासानी भवानघ । स्वस्वरूपानुसंधानमेवं कृत्वा सुखी भव ॥ १८ ॥ निलोदितं विमलमाद्यमनन्तरूपं ब्रह्माऽस्मि नेतरकलाकलनं हि किंचित् । इत्येव भावय निरञ्जनतामपेतो निर्वाणमेहि सकलामलशान्तवृत्तिः॥ १९ ॥ यदिदं द्वयते किंचित्तत्तन्नास्तीति भावय । यथा गन्धर्वनगरं यथा वारि मरुखले ॥ २०॥ यत् नो दृश्यते किंचिद्यन्नु किंचिदिव स्थितम् । मनःपष्टेन्द्रियातीतं तन्मयो भव वै मुने ॥ २१ ॥ अविनाशि चिदाकाशं सर्वात्मकमखण्डितम् । नीरन्धं भूरिवाशेषं तद्सीति विभावय ॥ २२ ॥ यदा संक्षीयते चित्तमभावात्मन-भावनात् । चित्सामान्यस्वरूपस्य सत्तासामान्यता तदा ॥ २३ ॥ नृनं चैत्यांश-रहिता चिद्यदात्मनि लीयते । असदूपवदत्यच्छा सत्तासामान्यता तदा ॥ २४ ॥ दृष्टिरेषा हि परमा सदेहादेहयोः समा । मुक्तयोः संभवस्रेव तुर्याः तीतपदाभिधा ॥ २५ ॥ ब्युत्थितस्य भवत्येषा समाधिस्थस्य चानघ । ज्ञस केवलमज्ञस्य न भवत्येव बोधजा । अनानन्दसमानन्दसुग्धसुग्धसुख धुतिः ॥ २६॥ चिरकालपरिक्षीणमननादिपरिभ्रमः । पदमासाद्यते पुण्यं प्रज्यैवै-कया तथा ॥ २७ ॥ इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः । अन्तःशीतलया याऽसौ समाधिरिति कथ्यते॥२८॥ अवासनं स्थिरं प्रोक्तं मनोध्यानं तदेव च। तदेव केवलीभावं शान्ततेव च तत्सदा ॥२९॥ तनुवासनमत्युचैः प्रदायोद्यत-मुच्यते । अवासनं मेनोऽकर्तृपदं तस्मादवाप्यते ॥ ३०॥ घनवासनमेतत्तु चेतःकर्तृत्वभावनम् । सर्वदृःस्वप्रदं तस्माद्वासनां तनुतां नयेत् ॥ ३१ ॥

चेतसा संपरित्यज्य सर्वभावात्मभावनाम् । सर्वमाकाशतामेति नित्यमन्तर्भुख-स्थितेः ॥ ३२ ॥ यथा विपणगा लोका विहरन्तोऽप्यसःसमाः । असंबन्धा-त्तथा ज्ञस्य प्रामोऽपि विपिनोपमः ॥ ३३ ॥ अन्तर्भुखतया नित्यं सुप्तो बुद्धो व्रजन्पटन् । पुरं जनपदं ग्राममरण्यमिव पश्यति ॥ ३४ ॥ अन्तःशीतलतायां तु लट्यायां शीतलं जगत् । अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत् ॥ ३५ ॥ अवत्यखिलजन्तूनां यदन्तसद्धिः स्थितम् ॥ ३६ ॥ यस्त्वात्मरति-रेवान्तः कुर्वन्कर्मेन्द्रियैः कियाः । न वशो हर्पशोकाभ्यां स समाहित उच्यते ॥ ३७ ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि परद्रव्याणि लोष्टवत् । स्वभावादेव न भयाद्यः पत्र्यति स पश्यति ॥ ३८ ॥ अद्यैव सृतिरायात् कल्पान्तनिचयेन वा । नासौ कलङ्कमामोति हेम पङ्कगतं यथा ॥ ३९ ॥ कोऽहं कथमिदं किं वा कथं मरणजन्मनी । विचारयान्तरे वेत्थं महत्तत्फलमेष्यसि ॥ ४० ॥ विचा-रेण परिज्ञातस्वभावस्य सतस्तव । मनः स्वरूपमुत्सृज्य शममेष्यति विज्वरम् ॥ ४१ ॥ विज्वरत्वं गतं चेतस्तव संसारवृत्तिषु । न निमज्जित तद्रह्मनगोष्प-देश्विय वारणः ॥ ४२ ॥ कृपणं तु मनो ब्रह्मन्गोष्पदेऽपि निमज्जित । कार्ये गोप्पदतोयेऽपि विशीणों मशको यथा ॥ ४३ ॥ यावद्यावन्सुनिश्रेष्ठ स्वयं संत्यज्यतेऽखिलम् । तावत्तावत्परालोकः परमात्मैव शिष्यते ॥ ४४॥ याव-रसर्वं न संत्यक्तं ताबदात्मा न लभ्यते । सर्ववस्तुपरित्यागे शेष आत्मेति कथ्यते ॥ ४५ ॥ आत्मावलोकनार्थं तु तस्मात्सर्वं परित्यजेत् । सर्वं संत्यज्य दूरेण यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ ४६ ॥ सर्वं किंचिदिदं दृश्यं दृश्यते यज्जगद्ग-तम् । चिन्निष्पन्दांशमात्रं तन्नान्यिंकचन शाश्वतम् ॥ ४७ ॥ समाहिता नित्यतृप्ता यथाभूतार्थदार्शनी । ब्रह्मन्समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः ॥ ४८ ॥ अक्षुट्धा निरहंकारा द्वन्द्वेष्वननुपातिनी । प्रोक्ता समाधिशब्देन मेरोः स्थिरतरा स्थितिः ॥ ४९ ॥ निश्चिता विगताभीष्टा हेयोपादेयवर्जिता । ब्रह्मन्समाधिशब्देन परिपूर्णा मनोगितः ॥ ५० ॥ केवलं चित्प्रकाशांश-कल्पिता स्थिरतां गता। तुर्या सा प्राप्यते दृष्टिर्महद्भिर्वेद्वित्तमैः॥ ५१॥ अदूरगतसाद्द्या सुपुप्तस्योपलक्ष्यते। मनोहंकारविलये सर्वभावान्तरस्थिता ॥ ५२ ॥ समुदेति परानन्दा या तनुः पारमेश्वरी । मनसैव मनिश्चित्त्वा सा स्वयं लभ्यते गतिः॥ ५३॥ तडनु विषयवासनाविनाशसदनु ग्रुभः परमः स्फुटप्रकाशः । तद्तु च समतावशात्स्वरूपे परिणमनं महतामचिन्यरूपम् ॥ ५४ ॥ अखिलमिदमनन्तमात्मतत्त्वं दृढपरिणामिनि चेतिस स्थितोऽन्तः । बहिरुपशमिते चराचरात्मा स्वयमनुभूयत एव देवदेवः ॥ ५५ ॥ असकं निर्मेलं चित्तं युक्तं संसार्यविस्फुटम् । सक्तं तु दीर्घतपसा मुक्तमप्यतिवद्धवत् ॥ ५६ ॥ अन्तःसंसिक्तिनिर्मुक्तो जीवो मधुरवृत्तिमान् । वहिः कुर्वन्नकुर्वन्वा कर्ता भोका न हि कचित् ॥ ५७ ॥

इत्यन्नपूर्णोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

निदाघ उवाच ॥ सङ्गः कीदश इत्युक्तः कश्च बन्धाय देहिनाम् । कश्च मोक्षाय कथितः कथं त्वेष चिकित्स्यते ॥ १ ॥ देहदेहिविभागैकपरित्यागेन भावना । देहमात्रे हि विश्वासः सङ्गो बन्धाय कथ्यते ॥ २ ॥ सर्वमात्मेद-मत्राहं किं वाञ्छामि त्यजामि किम् । इत्यसङ्गस्थितिं विद्धि जीवन्युक्ततनुस्थि-ताम् ॥ ३ ॥ नाहमस्मि न चान्योऽस्ति न चायं न च नेतरः । सोऽसङ्ग इति संप्रोक्तो ब्रह्मासीत्येव सर्वदा ॥ ४ ॥ नाभिनन्दति नैष्कर्स्यं न कर्मस्वनुषज्जते । सुसमो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ५ ॥ सर्वकर्मफलादीनां मन-सैव न कर्मणा । निपुणो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ६ ॥ असंक-टपेन सकलाश्चेष्टा नाना विज्ञिस्भिताः । चिकित्सिता भवन्तीह श्रेयः संपादयन्ति हि॥ ७॥ न सक्तमिह चेष्टासु न चिन्तासु न वस्तुषु। न गमागमचेष्टासु न कालकलनासु च ॥ ८ ॥ केवलं चिति विश्रम्य किंचिचैत्यावलम्ब्यपि । सर्वत्र नीरसमिह तिष्ठत्यात्मरसं मनः ॥ ९ ॥ व्यवहारमिदं सर्वं मा करोतु करोतु वा । अकुर्वन्वापि कुर्वन्वा जीवः स्वात्मरतिकियः ॥ १० ॥ अथवा तमपि त्यक्त्वा चैत्यांशं शान्तचिद्धनः । जीवस्तिष्ठति संशान्तो ज्वलन्मणि-रिवात्मनि ॥ ११ ॥ चित्ते चैत्यदशाहीने या स्थितिः क्षीणचेतसाम् । सोच्यते शान्तकलना जाम्रत्येव सुषुप्तता ॥ १२ ॥ एषा निदाघ सौषुप्तस्थितिरभ्यास-योगतः। प्रौढा सती तुरीयेति कथिता तत्त्वकोविदैः ॥ १३ ॥ अस्यां तुरीया-वस्थायां स्थितिं प्राप्याविनाशिनीम् । आनन्दैकान्तशीलत्वादनानन्दपदं गतः ॥ १४ ॥ अनानन्दमहानन्दकालातीतस्ततोऽपि हि । मुक्त इत्युच्यते योगी तुर्यातीतपदं गतः ॥ १५॥ परिगलितसमस्तजनमपाद्याः सकलविलीनतमो-मयाभिमानः । परमरसमयीं परात्मसत्तां जलगतसैन्धवखण्डवन्महात्मा

॥ १६ ॥ जडाजडदशोर्मध्ये यत्तत्वं पारमार्थिकम् । अनुभृतिमयं तस्मान्सारं ब्रह्मेति कथ्यते ॥ १७ ॥ दृश्यसंविलतो बन्धसन्मुक्तो मुक्तिरुच्यते । दृश्य-दर्शनसंबन्धे याऽनुभूतिरनामया ॥१८॥ तामवष्टभ्य तिष्ट व्यं सौपुर्सी भजते स्थितिस् । सैव तुर्यत्वसामोति तस्यां दृष्टिं स्थिरां कुरु ॥ १९ ॥ आत्मा स्थूलो न चैवाणुर्न प्रत्यक्षो न चेतरः। न चेतनो न च जडो न चैवासन सन्मयः ॥ २० ॥ नाहं नान्यो न चैत्रैको न चानेकोऽद्वयोऽन्ययः । यदीदं इज्यतां प्राप्तं मनः सर्वेन्द्रियास्पदम् ॥ २१ ॥ इक्यदर्शनसंबन्धे यत्सुखं पारमार्थिकम् । तदतीतं पदं यसात्तन्न किंचिदिवैव तत् ॥ २२ ॥ न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले । सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतीष्यते ॥ २३ ॥ मोक्षो मेऽस्त्वित चिन्ताऽन्तर्जाता चेदुत्थितं मनः । सननोत्थे मन-स्येष बन्धः सांसारिको दृढः ॥ २४ ॥ आत्मन्यतीते सर्वसात्सर्वरूपेऽथ वा तते । को बन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मुलं मननं कुरु ॥ २५ ॥ अध्यात्मरति-राशान्तः पूर्णपावनमानसः । प्राप्तानुत्तमविश्रान्तिनं किंचिदिह वाञ्छति ॥ २६ ॥ सर्वाधिष्टानसन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्माने । यो जीवति गतस्रोहः स जीवन्युक्त उच्यते ॥ २७ ॥ नापेक्षते भविष्यच वर्तमाने न तिष्ठति । न संसरत्यतीतं च सर्वमेव करोति च॥ २८॥ अनुबन्धपरे जन्तावसंसर्ग-मनाः सदा । भक्ते भक्तसमाचारः शढे शढ इव स्थितः ॥ २९ ॥ वालो बालेषु बृद्धेषु बृद्धो धीरेषु धैर्यवान् । युवा यौवनवृत्तेषु दुःखितेषु सुदुःखधीः ॥ ३० ॥ घीरघीरुदितानन्दः पेशलः पुण्यकीर्तनः । प्राज्ञः प्रसन्तमधुरी दैन्याद्पगताशयः ॥ ३१ ॥ अभ्यासेन परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते । मनः प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते ॥ ३२ ॥ यतो वाचो निवर्तन्ते विकल्प-कलनान्विताः । विकल्पसंक्षयाज्ञन्तोः पदं तद्वशिष्यते ॥ ३३ ॥ अनाद्यन्ता-वभासात्मा परमात्मेव विद्यते । इत्येतन्निश्चयं स्फारं सम्यग्ज्ञानं विदुर्वधाः ॥ ३४ ॥ यथाभूतार्थदर्शित्वमेतावद्भवनत्रये । यदात्मैव जगत्सर्वमिति निश्चित्य पूर्णता ॥ ३५ ॥ सर्वमात्मैव कौ दृष्टी भावाभावी क वा स्थितौ। क बन्धमोक्षकलने ब्रह्मैवेदं विज़म्भते॥ ३६॥ सर्वमेकं परं व्योम को मोक्षः कस्य बन्धता । ब्रह्मेदं बृंहिताकारं वृहेबृंहदवस्थितम् ॥ ३७ ॥ दूरादस्तमित-द्वित्वं भवात्मैव त्वमात्मना । सम्यगालोकिते रूपे काष्ट्रपाषाणवाससाम् स्फुटप्रकाशः । तदनु च समतावशात्स्वरूपे परिणमनं महतामचिन्यरूपम्
॥ ५४ ॥ अखिलमिदमनन्तमात्मतत्त्वं दृढपरिणामिनि चेतिस स्थितोऽन्तः ।
बहिरुपशमिते चराचरात्मा स्वयमनुभूयत एव देवदेवः ॥ ५५ ॥ असक्तं
निर्मलं चित्तं युक्तं संसार्यविस्फुटम् । सक्तं तु दीर्घतपसा मुक्तमप्यतिवद्धवत्
॥ ५६ ॥ अन्तःसंसिक्तिनिर्मुक्तो जीवो मधुरवृत्तिमान् । वहिः कुर्वज्ञकुर्वन्वा
कर्ता भोक्ता न हि कचित् ॥ ५७ ॥

इत्यन्नपूर्णोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

निदाघ उवाच ॥ सङ्गः कीदश इत्युक्तः कश्च बन्धाय देहिनाम् । कश्च मोक्षाय कथितः कथं त्वेष चिकित्स्यते ॥ १ ॥ देहदेहिविभागैकपरित्यागेन भावना । देहमात्रे हि विश्वासः सङ्गो बन्धाय कथ्यते ॥ २ ॥ सर्वमात्मेद-मत्राहं किं वाञ्छामि त्यजामि किम् । इत्यसङ्गस्थितिं विद्धि जीवन्यक्ततनस्थि-ताम् ॥ ३ ॥ नाहमस्मि न चान्योऽस्ति न चायं न च नेतरः । सोऽसङ्ग इति संप्रोक्तो ब्रह्मास्मीत्येव सर्वदा ॥ ४ ॥ नाभिनन्दति नैक्कर्म्यं न कर्मस्वनुषज्जते । सुसमो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ५ ॥ सर्वकर्मफलादीनां मन-सैव न कर्मणा । निपुणो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः ॥ ६ ॥ असंक-ट्पेन सकलाश्चेष्टा नाना विजिभ्भताः । चिकित्सिता भवन्तीह श्रेयः संपादयन्ति हि॥ ७॥ न सक्तमिह चेष्टासु न चिन्तासु न वस्तुषु। न गमागमचेष्टासु न कालकलनासु च ॥ ८ ॥ केवलं चिति विश्रम्य किंचिचैत्यावलम्ब्यपि । सर्वत्र नीरसमिह तिष्ठत्यात्मरसं मनः ॥ ९ ॥ व्यवहारमिदं सर्वं मा करोतु करोतु वा । अकुर्वन्वापि कुर्वन्वा जीवः स्वात्मरतिकियः ॥ १० ॥ अथवा तमपि त्यक्त्वा चैत्यांशं शान्तचिद्धनः । जीवस्तिष्ठति संशान्तो ज्वलन्मणि-रिवात्मिन ॥ ११ ॥ चित्ते चैत्यदशाहीने या स्थितिः क्षीणचेतसाम् । सोच्यते शान्तकलना जाम्रत्येव सुषुप्तता ॥ १२ ॥ एषा निदाघ सौषुप्तस्थितिरभ्यास-योगतः। प्रौढा सती तुरीयेति कथिता तत्त्वकोविदैः ॥ १३ ॥ अस्यां तुरीया-वस्थायां स्थितिं प्राप्याविनाशिनीम् । आनन्दैकान्तशीलत्वादनानन्दपदं गतः ॥ १४ ॥ अनानन्दमहानन्दकालातीतस्ततोऽपि हि । मुक्त इत्युच्यते योगी तुर्यातीतपदं गतः ॥ १५ ॥ परिगलितसमस्तजनमपाशः सकलविलीनतमो-मयाभिमानः । परमरसमयीं परात्मसत्तां जलगतसैन्धवखण्डवन्महात्मा

॥ १६ ॥ जडाजडदशोर्मध्ये यत्तत्त्वं पारमार्थिकम् । अनुभृतिमयं तस्मात्सारं ब्रह्मेति कथ्यते ॥ १७ ॥ दश्यसंत्रितो बन्धसन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते । द्रव्य-दर्शनसंबन्धे याऽनुभूतिरनामया ॥१८॥ तामवष्टभ्य तिष्ठ स्वं सौप्रप्तीं अजते स्थितिम् । सैय तुर्यत्वमामोति तस्यां दृष्टिं स्थिरां कुरु ॥ १९ ॥ आत्मा स्थूलो न चैवाणुर्न प्रत्यक्षो न चेतरः। न चेतनो न च जडो न चैवासस सन्मयः ॥ २० ॥ नाहं नान्यो न चैवैको न चानेकोऽद्वयोऽन्ययः। यदीदं दृश्यतां प्राप्तं मनः सर्वेन्द्रियास्पद्म् ॥ २१ ॥ दृश्यदृश्चनसंबन्धे यत्सुखं पारमार्थिकम् । तदतीतं पदं यस्मात्तन्न किंचिदिवैव तत् ॥ २२ ॥ न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले । सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतीव्यते ॥ २३ ॥ मोक्षो सेऽस्त्विति चिन्ताऽन्तर्जाता चेद्वत्थितं सनः । सननोरथे सन-स्येष वन्धः सांसारिको दृदः ॥ २४ ॥ आत्मन्यतीते सर्वस्मात्सर्वरूपेऽथ वा तते। को बन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु ॥ २५ ॥ अध्यात्मरति-राशान्तः पूर्णपावनमानसः । प्राप्तानुत्तमविश्रान्तिर्न किंनिदिह बाञ्छति ॥ २६ ॥ सर्वाधिष्ठानसन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मिन । यो जीवति गतस्रोहः स जीवनमुक्त उच्यते ॥ २० ॥ नापेक्षते भविष्यच वर्तमाने न तिष्टति । न संसरत्यतीतं च सर्वमेव करोति च॥ २८॥ अनुबन्धपरे जन्तावसंतर्ग-मनाः सदा । भक्ते भक्तसमाचारः शढे शढ इव स्थितः ॥ २९ ॥ बालो बालेषु बृद्धेषु बृद्धो धीरेषु धैर्यवान् । युवा यौवनवृत्तेषु दुःखितेषु सुदःखधीः ॥ ३० ॥ घीरघीरुदितानन्दः पेशलः पुण्यकीर्तनः । प्राज्ञः प्रसन्त्रमधुरो दैन्याद्पगताशयः ॥ ३१ ॥ अभ्यासेन परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते । मनः प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते ॥ ३२ ॥ यतो वाचो निवतैन्ते विकल्प-कलनान्विताः । विकल्पसंक्षयाज्ञन्तोः पदं तद्वशिष्यते ॥ ३३ ॥ अनाद्यन्ता-वभासात्मा परमात्मैव विद्यते । इत्येतन्निश्चयं स्फारं सम्यग्ज्ञानं विदुर्वधाः ॥ ३४ ॥ यथाभूतार्थदर्शित्वमेतावद्भवनत्रये । यदारमैव जगत्सर्वमिति निश्चित्य पूर्णता ॥ ३५ ॥ सर्वमात्मैव को दृष्टी भावाभावी क वा स्थिती । क बन्धमोक्षकलने ब्रह्मैवेदं विज्ञम्भते ॥ ३६ ॥ सर्वमेकं परं न्योम को सोक्षः कस्य बन्धता । ब्रह्मेदं बृंहिताकारं वृहैदृंहदवस्थितम् ॥ ३७ ॥ दृरादस्तमित-द्वित्वं भवात्मैव त्वमात्मना । सस्यगालोकिते रूपे काष्ट्रपाषाणवाससाम्

॥ ३८॥ मनागिष न भेदोऽस्ति कासि संकल्पनोन्मुखः। आदावन्ते च संशान्तस्वरूपमिनाशि यत् ॥३९॥ वस्तूनामात्मनश्चैतत्तन्मयो भव सर्वदा। द्वैताद्वैतसमुद्रेदैर्जरामरणिवश्रमैः॥ ४०॥ स्फुरत्यात्मिभरात्मैव चित्तरे विविश्वविद्यान्ति। अपात्करञ्जपरश्चे पराया निर्वृतेः पदम्॥ ४१॥ श्रुद्धमात्मानमा-लिङ्ग्य नित्यमन्तः स्थया धिया। यः स्थितस्तं क आत्मेह भोगो वाधितितुं क्षमः ॥ ४२॥ कृतस्फारविचारस्य मनोभोगादयोऽस्यः। मनागिष न भिन्दन्ति दैं मन्दानिला इव॥ ४३॥ नानात्वमस्ति कलनासु न वस्तुतोऽन्तर्नाना-विधासु सरसीषु जलादिवान्यत्। इत्येकनिश्चयमयः पुरुषो विमुक्त इत्युच्यते समवलोकितसम्यगर्थः॥ ४४॥

इत्यन्नपूर्णोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

विदेहमुक्तेः किं रूपं तद्वान्को वा महामुनिः । कं योगं समुपस्थाय प्राप्त-वान्परमं पदम् ॥ १ ॥ सुमेरोर्वसुधापीठे माण्डन्यो नाम वै मुनिः । कौण्डि-न्यात्तत्त्वमास्थाय जीवन्मुक्तोऽभवत्पुरा ॥ २ ॥ जीवन्मुक्तिदशां प्राप्य कदा-चिद्रह्मवित्तमः । सर्वेन्द्रियाणि संहर्तुं मनश्चके महामुनिः ॥ ३ ॥ बद्धपद्मासन-स्तिष्टन्नर्धोन्मीलितलोचनः । वाद्यानाभ्यन्तरांश्चेव स्पर्शान्परिहरञ्जनैः ॥ ४॥ ततः स्वमनसः स्थैर्यं मनसा विगतैनसा । अहो नु चञ्चलमिदं प्रत्याहृतमपि स्फुटम् ॥ ५ ॥ पटाइटमुपायाति घटाच्छकटमुत्कटम् । चित्तमर्थेषु चरति पादपेष्विव मर्कटः ॥ ६ ॥ पञ्च द्वाराणि मनसश्चक्षुरादीन्यमून्यलम् । बुद्धी-न्द्रियाभिधानानि तान्येवालोकयाम्यहम् ॥ ७ ॥ हन्तेन्द्रियगणा यूयं स्पज-ताकुलतां शनैः । चिदात्मा भगवान्सर्वसाक्षित्वेन स्थितोऽस्म्यहम् ॥ ८॥ तेनात्मना बहुन्तेन निर्ज्ञाताश्रक्षुरादयः । परिनिर्वासि शान्तोऽसि दिष्ट्यासि विगतज्वरः ॥ ९ ॥ स्वात्मन्येवावतिष्ठेऽहं तुर्यरूपपदेऽनिशम् । अन्तरेव शशामास्य क्रमेण प्राणसन्ततिः ॥ १०॥ ज्वालाजालपरिस्पन्दो दुर्ग्धेन्धन इवानलः । उदितोऽस्तं गत इव हास्तं गत इवोदितः॥ ११॥ समः सम-रसाभासित्छामि स्वच्छतां गतः। प्रबुद्धोऽपि सुषुप्तिस्थः सुषुप्तिस्थः प्रबुद्धवान् ॥ १२ ॥ तुर्यमालम्बय कायान्तस्तिष्ठामि स्तम्भितस्थितिः । सवाह्याभ्यन्तरा-न्भावान्स्थूलान्सूक्ष्मतरानपि ॥ १३ ॥ त्रैलोक्यसंभवांस्यक्त्वा संकल्पैक विनिर्मितान् । सह प्रणवपर्यन्तदीर्घनिःस्वनतन्तुना ॥ १४ ॥ जहाविन्द्रिय-तनमात्राजालं खग इवानिलः । ततोऽङ्गसंविदं स्वच्छां प्रतिभाससुपागताम् ॥ १५ ॥ सद्योजातिशशुज्ञानं प्राप्तवानमुनिपुङ्गवः । जहाँ चित्तं चैत्यदृशां स्पन्दशक्तिमिवानिलः ॥ १६ ॥ चित्सामान्यमथासाद्य सत्तामात्रात्मकं ततः । सुपुप्तपदमालस्व्य तस्था गिरिरिवाचलः ॥ १७ ॥ सुपुप्तस्थेर्यमासाय तर्य-रूपमुपाययो । निरानन्दोऽपि सानन्दः सचासच वभूव सः ॥ १८ ॥ ततस्तु संवभूवासौ यद्गिरामप्यगोचरः । यच्छून्यवादिनां श्रून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदमलात्मकम् । पुरुषः सांख्यदृष्टी-नामीश्वरो योगवादिनाम् ॥ २० ॥ शिवः शैवागमस्थानां कालः कालेकवादिनाम् । यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तं यत्सर्वहृद्यानुगम् ॥ २१ ॥ यत्सर्वं सर्वगं वस्तु यत्तत्वं तदसौ स्थितः । यद्गुक्तमनिष्यन्दं दीपकं तेजसामिष ॥ २२ ॥ स्वानुभूत्येकमानं च यत्तत्वं तदसौ स्थितः । यदेकं चाप्यनेकं च साञ्जनं च निरञ्जनम् । यत्सर्वं चाप्यसर्वं च यत्तत्वं तदसौ स्थितः ॥ २३ ॥ अजममरम्मनाद्यमान्यमेकं पदममलं सकलं च निष्कलं च।स्थित इति स तदा नमःस्यरूपादिषि विमलस्थितिरीश्वरः क्षणेन ॥ २४ ॥

इत्यन्नपूर्णोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जीवन्मुक्तस्य किं लक्ष्म ह्याकाशगमनादिकम् । तथा चेन्मुनिशार्दृल तत्र नेव प्रलक्ष्यते ॥ १ ॥ अनात्मविद्मुक्तोऽपि नभोविद्दरणादिकम् । द्रव्यमञ्चक्रियाकालशक्त्याऽप्रमोत्येव स द्विजः ॥ २ ॥ नात्मज्ञस्येप विषय आत्मज्ञो ह्यात्ममात्रदक् । आत्मनाऽऽत्मिन संतृप्तो नाविद्यामनुधावति ॥ ३ ॥ ये ये भावाः स्थिता लोके तानविद्यामयान्विदुः । स्यक्ताविद्यो महायोगी कथं तेषु निमज्जति ॥ ४ ॥ यस्तु मूढोऽल्पबुद्धिर्वा सिद्धिजालानि वाञ्छति । स सिद्धिन्ताधानेयोगेरानि साध्यति कमात् ॥ ५ ॥ द्रव्यमञ्जक्रियाकालयुक्तयः साधुनिसिद्धिदाः । परमात्मपद्प्राप्तौ नोपकुर्वन्ति काश्चन ॥ ६ ॥ यस्येच्छा विद्यते काचित्सा सिद्धिं साध्यस्तद्दो । निरिच्छोः परिपूर्णस्य नेच्छा संभवति कचित् ॥ ७ ॥ सर्वेच्छाजालसंशान्तावात्मलाभो भवेन्युने । स कथं सिद्धिजालानि नृतं वाञ्चस्यचिक्तकः ॥ ८ ॥ अपि शीतरुचावके सुतीक्ष्णेऽपीन्दुमण्डले । अप्यधः प्रसरत्यग्नौ जीवन्युक्तो न विस्मयी ॥ ९ ॥ अधिष्ठाने परे तत्त्वे कल्पिता रज्ञुसर्पवत् । कल्पिताश्चर्यजालेषु नाभ्युदेनि कृत्हलम् ॥ १० ॥

ये हि विज्ञातविज्ञेया वीतरागा महाधियः। विच्छिन्नग्रन्थयः सर्वे ते स्वत-जासनौ स्थिताः ॥ ११ ॥ सुखदु:खदशाधीरं साम्यान प्रोहरन्ति यस । निःश्वासा इव शैलेन्द्रं चित्तं तस्य मृतं विदुः ॥ १२ ॥ आपत्कार्पण्यसुत्साहो मदो मान्द्यं महोत्सवः। यं नयन्ति न वैरूप्यं तस्य नष्टं मनो विदुः॥ १३॥ द्विविधिश्वत्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च। जीवन्मुक्तौ सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिगः ॥ १४ ॥ चित्तसत्तेह दुःखाय चित्तनाशः सुखाय च । चित्त-सत्तां क्षयं नीत्वा चित्तं नाशमुपानयेत् ॥ १५ ॥ मनस्तां सूडतां विद्धि यदा नइयति सानघ । चित्तनाशाभिधानं हि तत्स्वरूपमितीरितम् ॥ १६॥ मैन्यादिभिर्गुणैर्युक्तं भवत्युत्तमवासनम् । भूयो जनमविनिर्मुक्तं जीवनमुक्तस्य तन्मनः ॥ १७ ॥ सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते । निदाधाऽरूप-नाशस्तु वर्तते देहसुक्तिके ॥ १८ ॥ विदेहसुक्त एवासौ विद्यते निष्कलाः त्मकः । समग्राभ्यगुणाधारमपि सत्त्वं प्रलीयते ॥ १९ ॥ विदेहसुक्तौ विमले पदे परमपावने । विदेहमुक्तिविषये तस्मिन्सस्वक्षयात्मके ॥ २०॥ चित्त-नारो विरूपाख्ये न किंचिदिह विद्यते । न गुणा नागुणास्तत्र न श्रीर्नाश्रीन लोकता ॥ २१ ॥ न चोदयो नास्तमयो न हर्पामर्थसंविदः। न तेजो न तमः किंचित्र संध्यादिनरात्रयः । न सत्तापि न चासत्ता न च मध्यं हि तत्पदम् ॥ २२ ॥ ये हि पारङ्गता बुद्धेः संसाराडम्बरस्य च । तेषां तदास्पद स्फारं पवनानामिवाम्बरम् ॥ २३ ॥ संशान्तदुःखमजडात्मकमेकसुप्तमान-न्द्मन्थरमपेतरजस्तमो यत्। आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्तस्तस्मिन्पदे गालितचित्तलवा भवन्ति ॥ २४ ॥ हे निदाघ महाप्राज्ञ निर्वासनमना भव । बलाचेतः समाधाय निर्विकल्पमना भव ॥ २५ ॥ यज्जगद्वासकं भानं नित्य भाति स्वतः स्फुरत् । स एव जगतः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः ॥ २६ ॥ प्रतिष्टा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः । तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्व-यम् ॥ २७ ॥ एकं ब्रह्माऽहमसीति कृतकृत्यो भवेन्मुनिः ॥२८॥ सर्वाधिष्ठान-मद्गन्द्रं परं ब्रह्म सनातनम् । सचिदानन्दरूपं तदवाद्धानसगोचरम् ॥ २९ ॥ न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते न वान्ति वाताः सकलाश्च देवताः। स एव देवः कृतभावभूतः स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते ॥ ३० ॥ भिद्यते हृदय-अन्थिश्छियन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दष्टे परावरे ॥३१॥ द्वौ सुपणों शरीरेऽसिञ्जीवेशाल्यों सह स्थितौ । तयोजीवः फलं अङ्के

कर्मणो न महेश्वरः ॥ ३२ ॥ केवलं साक्षिरूपेण विना भीगो महेश्वरः । वैकाशते स्वयं भेदः कल्पितो मायया तयोः । चिचिदाकारतो भिन्ना न भिन्ना चित्त्वहानितः ॥ ३३ ॥ तर्कतश्च प्रमाणाच चिदेकत्वव्यवस्थितेः। चिदेकत्वपरिज्ञाने न शोचित न मुद्यति ॥ ३४ ॥ अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः सत्यचिद्धनम् । अहमस्मीति निश्चित्य वीतशोको भवेन्सुनिः ॥ ३५ ॥ स्वश्रीरे म्बयंज्योतिःस्वरूपं सर्वसाक्षिणम् । क्षीणदोषाः प्रपञ्यन्ति नेतरे मायवा-वृताः ॥ ३६ ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वात ब्राह्मणः । नानुष्याया-हृहञ्छटदान्वाचो विग्लापनं हि तत् ॥ ३७ ॥ बाल्येनैव हि तिष्ठासे-न्निर्विद्य ब्रह्मवेदनम् । ब्रह्मविद्यां च बाल्यं च निर्विद्य सुनिरात्मवान् ॥ ३८ ॥ अन्तर्लानसमारम्भः अभाग्रभमहाङ्करम् । संसृतिवततेर्वीजं शरीरं विद्वि भौतिकम् ॥ ३९ ॥ भावाभावदशाकोशं दुःखरत्समुद्गकम् । बीजमस्य शरी-रस्य चित्तमाशावशानुगम् ॥ ४० ॥ द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिवतिधारिणः । एकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयो दृढभावना ॥ ४१ ॥ यदा प्रस्पन्दते प्राणो नाडी-संस्पर्शनोद्यतः । तदा संवेदनमयं चित्तमाशु प्रजायते ॥ ४२ ॥ सा हि सर्व-गता संवित्प्राणस्पन्देन बोध्यते । संवित्संरोधनं श्रेयः प्राणादिस्पन्दनं वरम ॥ ४३ ॥ योगिनश्चित्तशान्त्यर्थं कुर्वन्ति प्राणरोधनम् । प्राणायामैस्तथा ध्यानैः प्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः ॥ ४४ ॥ चित्तोपशान्तिफलदं परमं विद्धि कारणम् । सुखदं संविदः स्वास्थ्यं प्राणसंरोधनं विदुः ॥ ४५ ॥ दृढभावनया त्यक्तपूर्वा-परविचारणम् । यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥ ४६ ॥ यदा न भाज्यते किं चिद्धेयोपादेयरूपि यत् । स्थीयते सकलं त्यक्तवा तदा चित्तं न जायते ॥ ४७ ॥ अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः । अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा ॥ ४८ ॥ यदा न भाव्यते भावः कचिजागति वस्तुनि । तदा हद्मवरे शन्ये कथं चित्तं प्रजायते ॥ ४९ ॥ यद्भावनमास्थाय यदभावस्य भावनम् । यद्यथा वस्तुदर्शित्वं तद्चित्तत्वमुच्यते ॥ ५० ॥ सर्वमन्तः परित्यज्य शीतलाशयवर्ति यत् । वृत्तिस्थमपि तचित्तमसदूपमुदाहृतम् ॥ ५१ ॥ भृष्टवी-जोपमा येषां पुनर्जननवर्जिता । वासनारसनाहीना जीवनमुक्ता हि ते स्मृताः ॥ ५२ ॥ सन्त्ररूपपरिप्राप्तचित्तास्ते ज्ञानपारगाः । अचित्ता इति कथ्यन्ते देहान्ते च्योमरूपिणः ॥ ५३ ॥ संवेद्यसंपरित्यागात्प्राणस्पन्दनवासने । समूलं नश्यतः क्षिप्रं मूलच्छेदादिव द्रुमः ॥ ५४ ॥ पूर्वदृष्टमदृष्टं वा यद्स्याः प्रतिभासते । संविद्सत्ययत्नेन मार्जनीयं विजानता ॥ ५५ ॥ तद-मार्जनमात्रं हि महासंसारतां गतम् । तत्प्रमार्जनमात्रं तु मोक्ष इसि-धीयते ॥ ५६ ॥ अजडो गलितानन्दस्यक्तसंवेदनो भव ॥ ५७ ॥ संविद्वस्तुद-शालम्बः सा यस्येह न विद्यते । सोऽसंविदजडः प्रोक्तः कुर्वन्कार्यशतान्यपि ॥ ५८॥ संवेद्येन हृदाकारो मनागपि न लिप्यते । यस्यासावजडा संविज्ञी वन्मुक्तः स कथ्यते ॥ ५९ ॥ यदा न भाव्यते किंचिन्निर्वासनतयात्मिनि । बालमूकादिविज्ञानमिव च स्थीयते स्थिरम् ॥ ६० ॥ तदा जाड्यविनिर्भुक्त-मसंवेदनमाततम् । आश्रितं भवति प्राज्ञो यस्माद्भयो न लिप्यते ॥ ६१ ॥ समस्ता वासनास्त्यक्त्वा निर्विकल्पसमाधितः। तन्मयत्वादनाद्यन्ते तदप्य-न्तर्विसीयते ॥ ६२ ॥ तिष्ठनगच्छन्स्पृशक्षित्रञ्चपि तहेपवर्जितः। अजडो गालितानन्दस्यक्तसंवेदनः सुखी ॥ ६३ ॥ एतां दृष्टिमवष्टभ्य कष्टचेष्टायु-तोऽपि सन् । तरेदुःखाम्बुधेः पारमपारगुणसागरः ॥ ६४ ॥ विशेषं संपरि-त्यज्य सन्मात्रं यदलेपकम् । एकरूपं महारूपं सत्तायास्तत्पदं विदुः ॥ ६५॥ कालसत्ता कलासत्ता वस्तुसत्तेयमित्यपि । विभागकलनां त्यक्त्वा सन्मात्रैक-परो भव ॥ ६६ ॥ सत्तासामान्यमेवैकं भावयन्केवलं विभुः । परिपूर्णः परा-निन्दु तिष्टापूरितदिगभरः ॥ ६७ ॥ सत्तासामान्यपर्यन्ते यत्तःकलनयोऽझ-तम् । पद्माद्यमनाद्यन्तं तस्य वीजं न विद्यते ॥ ६८ ॥ तत्र संलीयते संवि-न्निर्विकल्पं च तिष्टति । भूयो न वर्तते दुःखे तत्र लब्धपदः पुमान् ॥ ६९॥ तद्भेतुः सर्वभूतानां तस्य हेतुर्न विद्यते । स सारः सर्वसाराणां तस्मात्सारो न विद्यते ॥ ७० ॥ तस्मिश्चिद्पेणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ताः प्रतिविम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः॥ ७१ ॥ तद्मलमरजं तदाव्मतत्त्वं तद्व-गताबुपशान्तिमेति चेतः । अवगतविगतैकतत्स्वरूपो भवभयमुक्तपदोऽसि सम्यगेव ॥ ७२ ॥ एतेषां दुःखबीजानां प्रोक्तं यद्यन्मयोत्तरम् । तस्य तस्य प्रयोगेण शीघ्रं तत्प्राप्यते पदम् ॥ ७३ ॥ सत्तासामान्यकोटिस्थे द्रागित्येव पदे यदि । पौरुषेण प्रयतेन बलात्संत्यज्य वासनाम् ॥ ७४ ॥ स्थिति वश्नासि तत्त्वज्ञ क्षणमप्यक्षयात्मिकाम् । क्षणेऽसिन्नेव तत्साधु पदमासादयस्यलम् ॥ ७५ ॥ सत्तासामान्यरूपे वा करोषि स्थितिमादरात । तिकंचिद्धिकेनेह

युक्तेनामोषि तत्पदम् ॥ ७६ ॥ संवित्तत्त्वे कृतध्यानो निदाघ यदि तिष्टसि । तद्यत्नेनाधिकेनोचैरासादयसि तत्पदम् ॥ ७७ ॥ वासनासंपरित्यागे यदि यतं करोषि भोः । यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः ॥ ७८ ॥ न क्षीणा वासना यावचित्तं तावन्न शाम्यति । यावन्न तत्त्वविज्ञानं ताविचत्तरामः कुतः ॥ ७९ ॥ यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम् । यावन वासनानाशस्तावत्तत्वागमः कुतः । यावन तत्त्वसंप्राप्तिर्न तावद्वा-सनाक्षयः ॥ ८० ॥ तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च 1 मिथः कारणतां गत्वा दुःसाधानि स्थितान्यतः ॥ ८१ ॥ भोगेच्छां दूरतस्त्यकत्वा व्यमेतत्समाचर् ॥ ८२ ॥ वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते । समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मताः ॥ ८३ ॥ त्रिभिरेभिः समभ्यसौर्हदय-ग्रन्थयो दढाः । निःशेषमेव बुट्यन्ति विसच्छेदाद्वणा इव ॥ ८४ ॥ वासनासंपरित्यागसमं प्राणनिरोधनम् । विदुस्तत्त्वविद्स्तस्मात्तद्प्येवं समा-हरेत ॥ ८५ ॥ वासनासंपरित्यागाचित्तं गच्छत्यचित्तताम् । प्राणस्पन्द्तिरो-वाच यथेच्छिस तथा कुरु ॥८६॥ प्राणायामदढाभ्यासैर्युक्तया च गुरुदृत्तया । आसनाशनयोगीन प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ ८७ ॥ निःसङ्गब्यवहारत्वाद्भव-भावनवर्जनात् । शरीरनाशदृशित्वाद्वासना न प्रवर्तते ॥ ८८ ॥ यः श्राण-पवनस्पन्दक्षित्तस्पन्दः स एव हि । प्राणस्पन्दजये यतः कर्तव्यो धीमतोचकैः ॥ ८९ ॥ न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम् । शुद्धां संविद्मा-श्रित्य वीतरागः स्थिरो भव ॥ ९० ॥ संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकं संवि-त्पदं विकलनं कलयन्महात्मन् । हृद्येव तिष्ठ कलनारहितः क्रियां तु कुर्वेद्य-कर्तृपद्मेल क्षमोदितश्रीः॥ ९९ ॥ मनागपि विचारेण चेतसः स्वस्य निग्रहः। पुरुषेण कृतो येन तेनासं जन्मनः फलम् ॥ ९२ ॥

इलजपूर्णीपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गच्छतसिष्ठतो वाऽपि जायतः स्वपतोऽपि वा। न विचारपरं चेतो यस्यासी सृत उच्यते ॥ १ ॥ सम्यग्ज्ञानसमालोकः पुमाञ्ज्ञेयसमः स्वयम् । न विभेति न चाद्ते वैवश्यं न च दीनताम् ॥ २ ॥ अपवित्रमपथ्यं च विषसंसर्गतृषितम् । भुक्तं जरयति ज्ञानी क्विनं नष्टं च मृष्टवत् ॥ ३ ॥ सङ्गत्यागं विदुमोर्श्वं सङ्गत्यागद्वन्तम् । सङ्गत्या । सङ्गत्या न्यं भावानां जीवन्मुक्तो भवानव ॥ ४ ॥

भावाभावे पदार्थानां हर्पामपीविकारदा । मलिना वासना येषा साऽसङ्ग इति कथ्यते ॥ ५ ॥ जीवन्मुक्तशरीराणामपुनर्जन्मकारिणी । मुक्ता हर्षविषादाभ्यां शुद्धा भवति वासना ॥ ६ ॥ दुःखैर्न ग्लानिमायासि हृदि हृष्यसि नो सुखै:। आशावैवस्यमुत्सुज्य निदाघाऽसङ्गतां व्रज ॥ ७ ॥ दिकालाद्यनविक्वन्नमह्मे-भयकोटिकम् । चिन्मात्रमक्षयं शान्तमेकं ब्रह्मास्मि नेतरत् ॥ ८॥ इति मत्वाऽहमित्यन्तर्भक्तामुक्तवपुः पुमान् । एकरूपः प्रशान्तात्मा मौनी स्वातम-सुखो भव ॥ ९ ॥ नास्ति चित्तं न चाविद्या न मनो न च जीवकः । ब्रह्मैव-कमनाद्यन्तमव्धिवत्प्रविज्मभते ॥ १० ॥ देहे यावदहं भावो दक्ष्येऽस्मिन्याव-दात्मता । यावन्ममेद्रमित्यास्था तावचित्तादिविभ्रमः ॥ ११ ॥ अन्तर्भुखतया सर्वं चिद्वह्वौ त्रिजगत्तृणम् । जुह्वतोऽन्तर्निवर्तन्ते सुने चित्तादिविश्रमाः ॥१२॥ चिदात्माऽस्मि निरंशोऽस्मि परापरविवर्जितः । रूपं स्मरन्निजं स्फारं मा स्मत्या संग्रितो भव ॥ १३ ॥ अध्यात्मशास्त्रमञ्जेण तृष्णाविषविप्रचिका । क्षीयते भावितेनान्तः शरदा मिहिका यथा ॥ १४ ॥ परिज्ञाय परित्यागो वासनानां य उत्तमः । सत्तासामान्यरूपत्वात्तत्कैवल्यपदं विदुः ॥ १५ ॥ यत्रास्ति वासना लीना तत्सपुसं न सिद्धये । निर्वाजा वासना यत्र तत्त्रयं सिद्धिदं हमृतम् ॥ १६ ॥ वासनायासाथा वह्नेऋणव्याधिद्विषामपि । स्नेहवैरविषाणां च होषः स्वल्पोऽपि बाधते ॥ १७ ॥ निर्दग्धवासनावीजः सत्तासामान्यरूप-बान् । सदेहो वा विदेहो वा न भूयो दुःखभाग्भवेत् ॥ १८ ॥ एतावदेवा-विद्यात्वं नेदंबहोति निश्चयः। एष एव क्षयस्तस्या ब्रह्मेद्मिति निश्चयः॥१९॥ ब्रह्म चिद्रह्म भुवनं ब्रह्म भूतपरम्परा । ब्रह्माहं ब्रह्म चिच्छत्रुर्बह्म चिनिमन्न-वान्धवाः ॥ २० ॥ ब्रह्मेव सर्विमित्येव भाविते ब्रह्म वै पुमान् । सर्वत्रावस्थितं शान्तं चिद्रहोत्यनुभूयते ॥ २१ ॥ असंस्कृताध्वगालोके मनस्यन्यत्र संस्थिते । या प्रतीतिरनागस्का तचिद्रह्मास्मि सर्वगम् ॥ २२ ॥ प्रशान्तसर्वसंकल्पं विग-ताखिलकोतुकम् । विगताशेषसंरम्भं चिदारमानं समाश्रय ॥ २३ ॥ एवं पूर्णिधयो श्रीराः समा नीरागचेतसः । न नन्दन्ति न निन्दन्ति जीवितं मरणं तथा ॥ २४ ॥ प्राणोऽयमनिशं ब्रह्मन्स्यन्दशक्तिः सदागतिः । सबाह्याभ्यन्तरे देहे प्राणोऽसावूर्ध्वगः स्थितः ॥ २५ ॥ अपानोऽप्यनिशं ब्रह्मन्स्पन्द्शक्तिः सदागतिः । सबाह्याभ्यन्तरे देहे अपानोऽयमवाविस्थतः ॥ २६ ॥ जायतः

स्वपतश्चेच प्राणायामोऽयमुत्तमः । प्रवर्तते ह्यभिज्ञस्य तं तावच्छेयसे द्युणु ॥ २७ ॥ द्वादशाञ्चलपर्यन्तं बाह्यमाक्रमतां ततः । प्राणाङ्गनामा संस्पर्शो यः स पूरक उच्यते ॥ २८ ॥ अपानश्चन्द्रमा देहमाप्याययति सुन्नत । प्राणः सर्योऽग्निरथवा पचत्यन्तरिदं वपुः ॥ २९ ॥ प्राणक्षयसमीपस्थमपानोदयको-टिगम् । अपानप्राणयोरेक्यं चिदात्मानं समाश्रय ॥ ३० ॥ अपानोऽस्तङ्गतो यत्र प्राणो नाभ्युदितः क्षणम् । कलाकलङ्करहितं तचित्तत्वं समाश्रय ॥ ३१॥ नापानोऽस्तंगतो यत्र प्राणश्चास्तमुपागतः । नासाप्रगमनावर्तं तचित्तत्त्वसपा-श्रय ॥ ३२ ॥ आआसमात्रमेवेदं न सन्नासज्जगत्रयम् । इत्यन्यकलनात्यागं सम्यग्ज्ञानं विदुर्बुधाः ॥ ३३ ॥ आभासमात्रकं ब्रह्मश्चित्तादर्शकलङ्कितम् । ततस्तद्पि संत्यज्य निराभासो भवोत्तम ॥ ३४ ॥ भयप्रदमकल्याणं धेर्यसर्व-स्बहारिणम् । मनःपिशाचमुत्सार्य योऽसि सोऽसि स्थिरो भव॥ ३५॥ चिद्योमेव किलास्तीह परापरविवर्जितम् । सर्वत्रासंभवचैत्यं यःकल्पान्तेऽव-शिष्यते ॥३६॥ वाञ्छाक्षणे तु या तुष्टिस्तत्र वाञ्छैव कारणम् । तुष्टिस्त्वतुष्टि-पर्यन्ता तस्माद्वाव्छा परित्यज ॥ ३० ॥ आशा यातु निराशात्वसभावं यातु भावना । अमनस्त्वं मनो यातु तवासङ्गेन जीवतः ॥ ३८ ॥ वासनारहितैर-न्तरिन्दियराहरन्त्रियाः । न विकारमवामोषि खवत्क्षोभशतैरपि ॥ ३९॥ चित्तोन्मेषनिमेषाभ्यां संसारप्रख्योदयौ । वासनाप्राणसंरोधमनुनमेषं मनः कुर ॥ ४० ॥ प्राणीन्मेषनिमेषाभ्यां संसृतेः प्रख्योदयौ । तमभ्यासप्रयोगा-भ्यामुनमेपरहितं कुरु ॥ ४३ ॥ मौरूर्योन्मेषनिमेषाभ्यां कर्मणां प्रलयोदयो । तदिलीनं कुरु बलादुरुशास्त्रार्थसंगमैः ॥ ४२ ॥ असंविःस्पन्दमात्रेण याति चित्तमचित्तताम् । प्राणानां वा निरोधेन तदेव परमं पदम् ॥ ४३ ॥ दृश्य-दर्शनसंबन्धे यःसुखं पारमार्थिकम् । तदन्तैकान्तसंवित्त्या ब्रह्मदृष्ट्याऽवलोकय ॥४४॥ यत्र नाभ्युदितं चित्तं तह्नै सुखमक्रुत्रिमम् । क्षयातिशयनिर्मुक्तं नोदेति न च शाम्यति ॥ ४५ ॥ यस्य वित्तं न वित्ताख्यं चित्तं चित्तत्वमेव हि । तदेव हुर्योवस्थायां तुर्योतीतं भवत्यतः ॥ ४६ ॥ संन्यस्तसर्वसंकल्पः समः शान्तमना सुनिः । संन्यासयोगयुक्तात्मा ज्ञानवान्मोक्षवान्भव ॥ ४७ ॥ सर्वसंकल्प-संशान्तं प्रशान्तघनवासनम् । न किंचिद्रावनाकारं यत्तद्रह्म परं विदुः ॥४८॥ सम्परज्ञानावरोधेन नित्यमेकसमाधिना । सांख्य एवावबुद्धा ये ते सांख्या योगिनः परे ॥ ४९ ॥ प्राणाद्यनिकसंशान्तौ युत्तया ये पदमागताः । अना-

मयमनाद्यन्तं ते स्मृता योगयोगिनः ॥ ५०॥ उपादेयं तु सर्वेषां शान्तं पद्मकृत्रिमम् । एकार्थाभ्यसनं प्राणरोधश्चेतःपरिक्षयः ॥ ५१ ॥ एकस्मिन्नेव संसिद्धे संसिध्यन्ति परस्परम् । अविनाभाविनी नित्यं जन्तूनां प्राणचेतसी ॥ ५२ ॥ आधाराधेयवचैते एकभावे विनश्यतः । कुरुतः स्वविनाशेन कार्यं मोक्षाख्यमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ सर्वमेतिद्धिया त्यक्त्वा यदि तिष्ठसि निश्चलः। तदाऽहङ्कारविकये त्वमेव परमं पदम् ॥५४॥ महाचिदेकैवेहास्ति महासत्तेति योच्यते । निष्करुङ्का समा शुद्धा निरहङ्काररूपिणी ॥ ५५ ॥ सकृद्धिभाता विमला नित्योदयवती समा । सा ब्रह्म परमात्मेति नामभिः परिगीयते ॥५६॥ सैवाहमिति निश्चित्य निदाय कृतकृत्यवान् । न भूतं न भविष्यच चिन्तयापि कदाचन ॥ ५७ ॥ दृष्टिमालम्बय तिष्टामि वर्तमानामिहात्मना । इदमय सया कब्धमिदं प्राप्सामि सुनदरम् ॥ ५८ ॥ न स्तामिः न च निन्दामि आत्मनीsन्यन्नहि कचित्। न तुष्यामि ग्रुभप्रासी न खिद्याम्यग्रुभागमे ॥ ५९ ॥ प्रज्ञा-न्तचापलं वीतशोकमस्तसमीहितम् । मनो मम मुने शान्तं तेन जीवास्य-नामयः ॥ ६० ॥ अयं वन्धः परश्चायं मसायमयमन्यकः । इति व्रह्मन्न जानामि संस्पर्श न ददाम्यहम् ॥ ६१ ॥ वासनामात्रसंत्यागाज्जरामरणवर्जि-तम । सवासनं मनो ज्ञानं ज्ञेयं निर्वासनं मनः ॥ ६२ ॥ चित्ते त्यके लयं याति द्वेतमेतच सर्वतः । शिष्यते परमं शान्तमेकमच्छमनामयम् ॥ ६३ ॥ अनन्तमजमव्यक्तमजरं शान्तमच्युतम् । अद्वितीयमनाद्यन्तं यदाद्यमुपलस्थ-नम् ॥ ६४ ॥ एकमाद्यन्तरहितं चिन्मात्रममलं ततम् । खादप्यतितरां सुक्षमं तद्रहास्मि न संशयः ॥ ६५ ॥ दिक्कालाद्यनविच्छनं स्वच्छं नित्योदितं ततस् । सर्वार्थमयमेकार्थं चिन्मात्रममलं भव ॥ ६६ ॥ सर्वमेकमिदं शान्तमादि-मध्यान्तवर्जितम् । भावाभावमजं सर्वमिति मत्वा सुखी भव ॥ ६७ ॥ न बद्धोऽस्मि न मुक्तोऽस्मि ब्रह्मैवास्मि निरामयम् । द्वैतभावविमुक्तोऽस्मि सचि-दानन्दलक्षणः । एवं भावय यत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥ ६८ ॥ पदार्थः वृन्दे देहादिधिया संयज्य दूरतः । आशीतलान्तः करणो निलमातमपरो भव ॥ ६९ ॥ इदं रम्यमिदं नेति बीजं ते दुःखसंततेः । तस्मिन्साम्याभिना दुग्धे दु:खस्यावसरः कुतः ॥ ७० ॥ शास्त्रसजनसंपकैः प्रज्ञामादौ विवर्धयेत् ॥७१॥ ऋतं ससं परं बहा सर्वसंसारभेपजम् । असर्थममलं निरामादिमध्यान्त-

वार्जितम् ॥ ७२ ॥ तथा स्थूलमनाकाशमसंस्पृत्यमचाक्षुपम् । न रसं न च गन्धाख्यमप्रमेयमन्पमम् ॥ ७३ ॥ आत्मानं सचिदानन्दमनन्तं ब्रह्म सुवत । अहमसीत्यभिष्यायेच्येयातीतं विमुक्तये ॥ ७४ ॥ समाधिः संविद्वलितः परजीवैकतां प्रति । नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कृटस्थो दोपवर्जितः ॥ ७५ ॥ एकः सन्भिचते आन्या मायया न स्वरूपतः । तसादद्वैत एवास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः ॥ ७६ ॥ यथाकाशो घटाकाशो महाकाश इतीरितः । तथा भ्रान्तेर्द्धिया प्रोक्ती ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना ॥ ७७ ॥ यदा मनिस चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा । योगिनोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम् ॥ ७८ ॥ यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव हि पश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ७९ ॥ यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति । एकी-भूतः परेणासी तदा भवति केवछः ॥ ८० ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यास-रूपिणी । प्रथमा भूमिकैपोक्ता मुमुक्षुत्वप्रदायिनी ॥ ८१ ॥ विचारणा द्वितीया स्यान्ततीया साङ्गभावना । विलापिनी चतुर्थी स्याद्वासना विलया-स्मिका ॥ ८२ ॥ ग्रुद्धसंविन्मयानन्दरूपा भवति पञ्चमी । अर्धसुप्तप्रबुद्धाभो जीवन्युक्तोऽत्र तिष्ठति ॥ ८३ ॥ असंवेदनरूपा च पष्टी भवति भूमिका। आनन्दैकचनाकारा सुपुप्तसद्दशी स्थितिः ॥ ८४ ॥ तुर्यावस्थोपशान्ता सा मुक्तिरेव हि केवला । समता खच्छता सौम्या सप्तमी भूमिका भवेत्॥ ८५॥ तुर्यातीता तु याऽवस्था परा निर्वाणरूपिणी । सप्तमी सा परा प्रौढा विषयो नैव जीवताम् ॥ ८६ ॥ पूर्वावस्थात्रयं तत्र जाम्रदिस्येव संस्थितम् । चतुर्थाः स्त्रम इत्युक्ता स्वमाभं यत्र वै जगत्॥ ८७ ॥ आनन्दैकघनाकारा सुषुप्ताख्या तु पञ्चमी । असंवेदनरूपा तु पष्टी तुर्यपदाभिधा ॥ ८८ ॥ तुर्यातीतपदा-ऽवस्था सप्तमी भूमिकोत्तमा । मनोवचोभिरम्राह्या स्वप्रकाशसदात्मिका ॥८९॥ अन्तःप्रसाहतिवशाचौसं चेन्न विभावितम्। मुक्त एव न संदेहो महासम-तया तया ॥ ९० ॥ न स्रिये न च जीवामि नाहं सन्नाप्यसन्मयः । अहं न किंचिचिदिति मत्वा घीरो न शोचित ॥ ९१ ॥ अलेपकोऽहमजरो नीरागः शान्तवासनः । निरंशोऽस्मि चिदाकाशमिति मत्वा न शोचिति ॥ ९२ ॥ भहंमत्या विरहिता ग्रुद्धो बुद्धोऽजरोऽमरः । शान्तः शमसमाभास इति सत्वा न शोचित ॥ ९३ ॥ तृणाग्रेष्वम्बरे भानौ नरनागामरेषु च । यत्ति-ष्ठति तदेवाहसिति मत्वा न शोचित ॥ ९४ ॥ भावनां सर्वभावेभ्यः समु-

त्सृज्य समुत्थितः । अवशिष्टं परं ब्रह्म केवलोऽस्मीति भावय ॥ ९५ ॥ वाचा-मतीतविषयो विषयाशादशोज्झितः । परानन्दरसाध्ववधो रमते स्वात्मनात्मनि ॥ ९६ ॥ सर्वकर्मपरित्यागी नित्यतृक्षो निराश्रयः । न पुण्येन न पापेन नेत-रेण च लिप्यते ॥ ९७ ॥ स्फटिकः प्रतिबिम्बेन यथा नायाति रञ्जनम्। तउज्ञः कर्मफलेनान्तस्तथा नायाति रञ्जनम् ॥ ९८ ॥ विहरञ्जनतावृन्दे देव-कीर्तनपूजनैः । खेदाह्रादौ न जानाति प्रतिबिम्बगतैरिय ॥ ९९ ॥ निःस्तोत्रो निर्विकारश्च पुज्यपूजाविवार्जितः । संयुक्तश्च वियुक्तश्च सर्वाचारनयक्रमेः ॥ १०० ॥ तनुं त्यजतु वा तीर्थे श्वपचस्य गृहेऽथ वा । ज्ञानसंपत्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥ १०१ ॥ संकल्पत्वं हि बन्धस्य कारणं तत्परित्यज्ञ। मोक्षो भवेदसंकल्पात्तदभ्यासं धिया कुरु ॥ १०२ ॥ सावधानो भव त्वं च ब्राह्मब्राहकसंगमे । अजस्त्रमेव संकल्पदशाः परिहरव्शनैः ॥ १०३ ॥ मा भव प्राह्मभावात्मा प्राह्कात्मा च मा अव । भावनामखिलां ताक्तवा यचित्रप्रं तन्मयो भव ॥ १०४ ॥ किंचिचेद्रोचते तुभ्यं तद्वद्वोऽसि भवस्थितौ। न किंचिद्रोचते चेत्ते तन्मुक्तोऽसि अवस्थितौ ॥ १०५ ॥ अस्मात्पदार्थनिचगाद्या-वत्स्थावरजङ्गमात्। तृणादेर्देहपर्यन्तानमा किंचित्तत्र रोचताम्॥१०६॥ अहंभा-वानहंभावो त्यक्ता सदसती तथा । यदसक्तं समं स्वच्छं स्थितं तत्तुर्वमुच्यते ॥ १०७ ॥ या स्वच्छा समता शान्ता जीवनमुक्तव्यवस्थितिः । साक्ष्यवस्था व्यवहतौ सा तुर्या कलनोच्यते ॥ १०८ ॥ नैतजायन च स्वमः संकल्पाना-मसंभवात् । सुषुप्तभावो नाऽप्येतद्भावाज्जडतास्थितेः ॥ १०९॥ शान्त-सम्यक्पबुद्धानां यथास्थितमिदं जगत्। विलीनं तुर्यमित्याहुरबुद्धानां स्थितं स्थिरम् ॥ ११० ॥ अहंकारकलात्याने समतायाः समुद्रमे । विशरारी कृते चित्ते तुर्यावस्थोपतिष्ठते ॥ १११ ॥ सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि। नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्कमम् ॥ ११२॥ शान्त एव चिदाकाशे खच्छे शमसमात्मिन । समप्रशक्तिखचिते ब्रह्मेति कलिता-भिधे ॥ ११३ ॥ सर्वमेव परित्यज्य महामौनी भवानव । निर्वाणवान्निर्मननः क्षीणचित्तः प्रशान्तथीः ॥ ११४ ॥ आत्मन्येवास्य शान्तात्मा मूकान्धवधि-रोपमः । नित्यमन्तर्भुषः स्वच्छः स्वात्मनान्तःप्रपूर्णधीः ॥ ११५॥ जाप्र-त्येव सुषुप्रस्थः कुरु कर्माणि वै द्विज । अन्तः सर्वपरित्यागी बहिः कुरु यथा-गतम् ॥ ११६ ॥ चित्तसत्ता परं दुःखं चित्तत्यागः परं सुखम् । अतिश्चतं

चिदाकारो नय क्षयमवेदनात्॥ ११७ ॥ इष्ट्रा रम्यमरम्यं वा स्थेयं पाषाण-वत्सदा । एतावतात्मयसेन जिता भवति संस्तिः ॥ ११८ ॥ वेदान्ते परमं गुद्धं पुराकल्पप्रचोदितम् । नाप्रशान्ताय दातत्र्यं ने चाशिष्याय वे पुनः ॥ ११९ ॥ अन्नपूर्णोपनिषदं योऽघीते गुर्वनुप्रहात् । स जीवन्मुक्ततां प्राप्य ब्रह्मैव भवति स्वयम् ॥ १२० ॥ इत्युपनिषत् ॥

इत्यन्नपूर्णोपनिषत्सु पश्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ इत्यन्नपूर्णोपनिषत्समासा ॥ ७३ ॥

सूर्योपनिषत् ॥ ७४ ॥ सूदितस्वातिरिक्तारिसूरिनन्दात्मभावितम् ॥ सूर्यनारायणाकारं नौमि चित्सूर्यवैभवम् ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हिरः ॐ॥ अथ स्त्रीथर्वाहिरसं व्याख्यास्यामः। ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। आदित्यो देवता। हंसः सोऽहमग्निनारायणयुक्तं बीजम्। हृञ्छेखा शक्तिः। वियदादिसर्गसंयुक्तं कीलकम्। चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धार्थे विनियोगः। षदस्वरारूढेन वीजेन पडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम्। सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवणं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरदृहस्तं कालचकप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वे बाह्मणः ॐ भूर्भुवःसुवः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भगों देवस्य धीमिहः। धियो यो नः प्रचोदयात्। सूर्य आत्मा जगतस्त्रस्थुषश्च। सूर्याद्वै खिल्वमानि भूतानि जायन्ते। सूर्याद्यज्ञः पर्जन्योऽज्ञमात्मा नमस्त आदित्य। त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि। त्वमेव प्रत्यक्षं मह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि। त्वमेव प्रत्यक्षम्यगिस। त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि। त्वमेव प्रत्यक्षम्यर्वासि। सादित्याद्वा जायन्ते। आदित्याद्वा जायन्ते। समा-

नोदानोऽपानः प्राणः । आदित्यो वे श्रोत्रत्वक्चश्लरसन्त्राणाः । आदित्यो व वाक्षाणिपाद्पायूपस्थाः । आदित्यो वे शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । आदित्यो वे वचनादानागमनतिसर्गानन्दाः। आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः। नमो मित्राय भानवे सृत्योमा पाहि । आजिष्णवे विश्वहेतवे नमः । सूर्योद्ध-वित भूतानि सूर्येण पालितानि तु । सूर्ये लयं प्राप्नुविन्त यः सूर्यः सोऽह-मेव च । चक्षुनों देवः सविता चक्षुनं उत पर्वतः । चक्षुर्धाता द्धातु नः । आदित्याय विद्यहे सहस्रकिरणाय घीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् । सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् । सविता नः सुवत सर्वताति सविता नो रासतां दीर्घमायुः। अभि खेकाक्षरं ब्रह्म । पृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इत्यक्षरहयम् । आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि । एतस्यैव सूर्य-स्याष्टाक्षरो मनुः । यः सदाऽहरहर्जपति स वे बाह्मणो भवति स वे बाह्मणो भवति । सूर्याभिमुखो जहवा महाव्याधिभयात्ममुच्यते । अलक्ष्मीर्नश्यति । अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । पतितसंभाषणात्पूतो भवति । असःसंभाषणाः पूर्तो भवति । मध्याह्वे सूर्याभिमुखः पठेत् । सद्यो-त्पन्नपञ्चमहापातकात्रमुच्यते । सेपां सावित्रीं विद्यां न किंचिद्पि न कसी-चित्प्रशंसयेत् । य एतां महाभागः प्रातः पठति स भाग्यवाञ्जायते । पशु-न्विन्द्ति । वेदार्थं रुभते । त्रिकारुमेतज्ञह्वा ऋतुरातफरुमवामोति । यो इस्ता-दित्ये जपति स महामृत्युं तरित स महामृत्युं तरित य एवं वेद ॥ १॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ ॥

> ॐ भदं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इति सूर्योपनिषत्समाप्ता॥ ७४॥

अक्ष्युपनिषत् ॥ ७५ ॥

यस्ससभूमिकाविद्यावेद्यानन्दकलेवरम् ! विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ स ह नावविद्यति शान्तिः ॥

हरिः ॐ॥ अथ ह सांकृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम। तमादित्यं नत्वा चाश्चष्मतीविद्यया तमस्तुवत्॥ ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः। ॐ खेचराय नमः। ॐ महासेनाय नमः। ॐ तमसे नमः। ॐ रजसे नमः। ॐ सत्त्वाय नमः। ॐ असतो मा सत् गमय। तमसो मा ज्योति-र्गम्य। मृद्योमांऽमृतं गमय। हंसो भगवान्द्युचिरूपः प्रतिरूपः। विश्वरूपं

वृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूवं तपन्तम् । सहस्ररहिमः शतधा वर्त-मानः पुरुषः प्रजानामुद्यत्येप सूर्यः। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्या-याक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वाहेति । एवं चाक्षुध्मतीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽन्नवीचाधुष्मतीविद्यां न्नाह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुलेऽन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान्याहिय-ह्वाऽथ विद्यासिद्धिर्भवति । य एवं वेद स महान्भवति ॥१॥ अथ ह सांकृति-रादिलं पप्रच्छ भगवनब्रह्मविद्यां में बूहीति । तमादिलो होवाच । सांकृते श्रुण वक्ष्यामि तस्वज्ञानं सुदुर्छभम् । येन विज्ञातमात्रेण जीवन्मुक्तो भवि-ध्यसि ॥ २ ॥ सर्वमेकमजं शान्तमनन्तं ध्रुवमव्ययम् । पश्यन्भूतार्थचिद्रूपं शान्त आस्व यथासुलम् ॥ ३॥ अवेदनं विदुर्योगं चित्तक्षयमक्तिमम्। योगस्थः कुरु कर्माणि नीरसो वाऽथ मा कुरु ॥४॥ विरागमुपयात्यन्तर्वासना-खनुवासरम् । कियास्दाररूपासु कमते मोदतेऽन्वहम् ॥ ५ ॥ प्राम्यासु जड-चेष्टासु सततं विचिकित्सते । नोदाहरति मर्माणि पुण्यकर्माणि सेवते ॥ ६॥ अनन्योद्देगकारीणि मृदुकर्माणि सेवते । पापाद्विभेति सततं न च भोगमपेक्षते ॥ ७ ॥ स्नेहप्रणयगर्भाणि पेशलान्युचितानि च । देशकालोपपन्नानि वचना-न्यभिभाषते ॥ ८ ॥ मनसा कर्मणा वाचा सज्जनानुपसेवते । यतः कुतश्चि-दानीय नित्यं शास्त्राण्यवेक्षते ॥ ९ ॥ तदासौ प्रथमामेकां प्राप्तो भवति भूमिकाम् । एवं विचारवान्यः स्यात्संसारोत्तारणं प्रति ॥ १०॥ स भूमिका-वानित्युक्तः शेपस्त्वार्य इति स्मृतः । विचारनाम्नीमितरामागतो योगभूमि-कास् ॥ ११ ॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारधारणाध्यानकर्मणः । सुख्यया व्याख्यया ख्याताञ्छ्यति श्रेष्टपण्डितान् ॥ १२ ॥ पदार्थप्रविभागज्ञः कार्याकार्यविनि-र्णयम् । जानात्यधिगतश्चान्यो गृहं गृहपतिर्यथा ॥१३॥ मदाभिमानमात्सर्य-लोभमोहातिशायिताम् । बहिरप्यास्थितामीपत्यजसहिरिव त्वचम् ॥ ५४॥ इत्थंभूतमातिः शास्त्रगुरुसज्जनसेवया । सरहस्वमशेषेण यथावद्धिगच्छति ॥ १५ ॥ असंसर्गाभिधामन्यां तृतीयां योगभूमिकाम् । ततः पतत्यसौ कान्तः उपमध्यामिवामलाम् ॥ १६॥ यथावच्छास्रवाक्यार्थे मतिमाधाय निश्च-लाम् । तापसाश्रमविश्रान्तैरध्यात्मकथनकमैः । शिलाश्रयासनासीनो जरय-त्यायुराततम् ॥ १७॥ वनावनिविहारेण चित्तोपशमशोभिना । असङ्गसुख-सीख्येन कालं नयति नीतिमान् ॥ १८॥ अभ्यासात्साधुशास्त्राणां करणा- त्पुष्यकर्भणाम् । जन्तीर्यथावदेवेयं वस्तुदृष्टिः प्रसीदृति ॥ १९ ॥ तृतीय्र भूमिकां प्राप्य बेद्धोऽनुभवति स्वयम् ॥ २०॥ द्विप्रकारमसंसर्गं तस्य भेड-मिसं श्रुणु । द्विविधोऽयमसंसर्गः सामान्यः श्रेष्ठ एव च ॥ २३ ॥ नाहं कर्ता न भोक्ता च न बाध्यो न च बाधकः । इत्यसञ्जनमर्थेषु सामान्यासङ्गनामः कम् ॥ २२ ॥ प्राक्तमीनिर्भितं सर्वमीश्वराचीनमेव ना । सुखं ना यदि ना दुःखं कैवात्र तव कर्तृता ॥ २३ ॥ भोगाभोगा महारोगाः संपदः परमापदः । वियोगायैव संयोगा आधयो व्याधयोऽधियाम् ॥ २४ ॥ कालश्च कलनोद्यक्तः सर्वभावाननारतम् । अनास्थयेति भावानां यद्भावनमान्तरम् । वाक्यार्थ-लब्धमनसः सामान्योऽसावसङ्गमः ॥ २५ ॥ अनेन ऋमयोगेन संयोगेन महात्मनाम । नाहं कर्तेश्वरः कर्ता कर्म वा प्राक्तनं सम ॥ २६ ॥ क्रता दरतरे जुनसिति शब्दार्थभावनम् । यन्मौनमासनं शान्तं तच्छेष्ठासङ्ग उच्यते ॥ २७ ॥ संतोपामोदमधुरा प्रथमोदेति भूमिका । भूमिप्रोदितमात्रोऽन्तर-सृताङ्करिकेव सा ॥ २८ ॥ एषा हि परिसृष्टान्तःसंन्यासा प्रसर्वेकभः । द्वितीयां च तृतीयां च भूमिकां प्राप्त्यात्ततः ॥ २९ ॥ श्रेष्ठा सर्वगता होषा वतीया समिकाऽत्र हि । भवति प्रोज्झिताशेषसंकल्पकलनः प्रमाग् ॥ ३० ॥ भूमिकात्रितयाभ्यासादज्ञाने क्षयमागते । समं सर्वत्र पश्यन्ति चतुर्थी भूमिकां गताः ॥ ३१ ॥ अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते । पश्यन्ति स्वमवहोकं चतुर्थीं भूमिकां गताः ॥ ३२ ॥ भूमिकात्रितयं जायचतुर्थी स्वम उच्यते ॥ ३३ ॥ चित्तं त शरदभांशविलयं प्रविलीयते । सत्त्वावशेष एवासे पञ्चमीं भूमिकां गतः ॥ ३४ ॥ जगद्विकल्पो नोदेति चित्तस्यात्र विलापनात्। पञ्चभीं भूमिकामेत्य सुपुसपदनामिकाम् । शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमा-त्रकः ॥ ३५ ॥ गलितहैतनिर्भासी मुदितोऽन्तःप्रवीधवान् । सुषुप्तमन एवास्ते पञ्चमीं भूमिकां गतः ॥३६॥ अन्तर्मुखतया तिष्ठन्बहिर्नृत्तिपरोऽपि सन् । परि-श्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥ ३० ॥ कुर्वज्ञभ्यासमेतस्यां भूमिकार्या विवासनः । षष्टीं तुर्याभिधामन्यां कमात्पतति भूमिकाम् ॥ ३८ ॥ यत्र नासक-सदूपो नाहं नाप्यनहंकृतिः । केवछं क्षीणमननमास्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः ॥३९॥ निर्मन्थः शान्तसंदेहो जीवन्मुक्तो विभावनः । अनिर्वाणोऽपि निर्वाण-श्चित्रदीप इव स्थितः ॥ ४० ॥ प्रष्टां भूमावसौ स्थित्वा सप्तमीं भूमि-

माप्नुयात् ॥ ४१ ॥ विदेहसुक्तताऽत्रोक्ता सप्तमी योगभूमिका । अगम्या वचसां शान्ता सा सीमा सर्वभूमिषु ॥ ४२ ॥ छोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्ता देहानुवर्तनस् । शास्त्रानुवर्तनं त्यक्ता स्वस्ता साध्यासापनयं कुरु ॥ ४३ ॥ ओंकार-मात्रमिखलं विश्वप्राज्ञादिलक्षणम् । वाच्यवाचकताभेदाभेदेनानुपलिधतः ॥ ४४ ॥ अकारमात्रं विश्वः स्यादुकारस्तेजसः स्मृतः । प्राज्ञो मकार इत्येवं परिपश्येत्कमेण तु ॥ ४५ ॥ समाधिकालात्यागेव विचिन्त्यातिप्रयत्ततः । स्यूलस्वमक्तमात्सर्वं चिदात्मिनं विलापयेत् ॥ ४६ ॥ चिदात्मानं नित्यग्रद्व- बुद्धमुक्तसदद्वयः । परमानन्दसंदेहो वासुदेवोऽहमोमिति ॥ ४७ ॥ आदिमध्यावसानेषु दुःखं सर्विसिदं यतः । तस्मात्सर्वं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवानय ॥ ४८ ॥ अविद्यातिसिरातीतं सर्वाभासविवर्जितम् । आनन्दममलं ग्रुदं मनोवाचामगोचरम् ॥ ४९ ॥ प्रज्ञानघनमानन्दं ब्रह्मासीति विभावयेत् ॥ ५० ॥ इत्युपनिपत् ॥ हिरः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः॥ इत्यक्ष्युपनिषत्समाप्ता॥ ७५॥

अध्यातमोपनिषत् ॥ ७६ ॥ यत्रान्तर्याम्यादिभेदस्तत्त्वतो न हि युज्यते । निर्भेदं परमाद्वैतं स्वमात्रमवशिष्यते ॥ ॐ पूर्णमदः इति शान्तिः ॥

हिर: ॐ॥ अन्तः शरीरे निहितो गुहायामज एको नित्यसस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरे संचरन्यं पृथिवी न वेद । यस्यापः शरीरं यो अपोऽन्तरे संचरन्यमापो न विदुः । यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरे संचरन्यं तेजो न वेद । यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरे संचरन्यं वायुर्न वेद । यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरे संचरन्यमाकाशो न वेद । यस्य मनः शरीरं यो मनो-ऽन्तरे संचरन्यं मनो न वेद । यस्य वृद्धिः शरीरं यो वृद्धिमन्तरे संचरन्यं वृद्धिनं वेद । यस्याहंकारः शरीरं योऽहंकारमन्तरे संचरन्यमहंकारो न वेद । यस्य वित्तं शरीरं यिश्वत्तमन्तरे संचरन्यं वित्तं न वेद । यस्याव्यक्तं शरीरं योऽव्यक्तमन्तरे संचरन्यम्वयं वित्तं न वेद । यस्याव्यक्तं शरीरं योऽव्यक्तमन्तरे संचरन्यं मुत्रुं शरीरं यो मृत्युमन्तरे संचरन्यं मुत्रुं संचरन्यमक्षरं न वेद । यस्य मृत्युः शरीरं यो मृत्युमन्तरे संचरन्यं मुत्रुं अ. उ. ३३

वेद । स एष सर्वभूतान्तरात्माऽपहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः । अहं-ममेति यो भावो देहाक्षादावनात्मिन । अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुचा ब्रह्म-निष्टया ॥ १ ॥ ज्ञात्वा स्वं प्रत्यगात्मानं बुद्धितद्वृत्तिसाक्षिणम् । सोऽहमित्येव तद्रच्या स्वान्यत्रात्ममतिं त्यजेत् ॥ २ ॥ लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहा-नुवर्तनम् । शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ ३ ॥ स्वात्मन्येव सदा स्थित्या मनो नर्यात योगिनः । युक्तया श्रुत्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा सार्वोत्म्यमात्मनः ॥ ४ ॥ निदाया लोकवार्तायाः शब्दादेरात्मविस्सृतेः। कचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मिनि ॥ ५ ॥ मातापित्रोर्भेलोद्धतं मल-मांसमयं वपुः । त्यक्त्वा चण्डालयदूरं ब्रह्मभूय कृती भव ॥ ६ ॥ घटाकाशं महाकाश इवात्मानं परात्मानि । विलाप्याखण्डभावेन तूण्णीं अव सदा सुने ॥ ७ ॥ स्त्रप्रकाशमधिष्ठानं स्वयं भूय सदात्मना । ब्रह्माण्डमपि पिण्डाण्डं व्यज्यतां मलभाण्डवत् ॥ ८॥ चिदात्मिन सदानन्दे देहरूढामहंधियम्। निवेश्य लिङ्गसुत्सुज्य केवलो भव सर्वदा ॥ ९ ॥ यत्रैष जगदासासो दुर्पणा-न्तःपुरं यथा । तद्वसाहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भवानव ॥ १० ॥ अहंकार-अहान्मुक्तः स्वरूपमुपपद्यते । चन्द्रवद्विस्रलः पूर्णः सदानन्दः स्वयंप्रभः ॥११॥ कियानाशाद्भवेचिन्तानाशोऽस्माद्वासनाक्षयः । वासनाप्रक्षयो जीवन्मुक्तिरिप्यते ॥ १२ ॥ सर्वत्र सर्वतः सर्वेबद्धमात्रावलोकनम् । सद्भाव-भावनादाद्योद्वासनालयमश्चते ॥ १३ ॥ श्रमादो ब्रह्मनिष्टायां न कर्तव्यः <mark>कदाचन । प्रमादो मृत्युरित्याहुर्विद्यायां ब्रह्मवादिनः ॥ १४ ॥ यथाऽपकृष्टं</mark> शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति । आवृणोति तथा माया प्रात्नं वापि पराब्धुलम् ॥ १५ ॥ जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहोऽपि स केवलः । समाधिनिष्टतामेल निर्विकल्पो भवानघ ॥ १६॥ अज्ञानहृदयग्रन्थेर्निःशेषविलयस्तदा । समा-धिना विकल्पेन यदाऽद्वैतात्मदर्शनम् ॥ १७ ॥ अत्रात्मत्वं दृढीकुर्वन्नहमादिषु संत्यजन् । उदासीनतया तेषु तिष्ठेइटपटादिवत् ॥ १८ ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं मृपामात्रा उपाधयः । ततः पूर्णं स्वमात्मानं पर्यदेकात्मना स्थितम् ॥१९॥ स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः । स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मा-दन्यन किंचन ॥ २० ॥ स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः । स्वयमेव परंब्रह्म पूर्णमद्वयमिकयम् ॥ २१ ॥ असत्कल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येक-वस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ २२ ॥ दृष्ट्रदर्शनदृश्या-

हिभावग्रन्ये निरामये । कल्पाणेव इवात्यन्तं परिपूर्णे चिदात्मि ॥ २३ ॥ तेजसीव तमो यत्र विलीनं आन्तिकारणम् । अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ २४ ॥ एकात्मके परे तत्त्वे भेदकर्ता कथं वसेत् । सुपुष्ती सुखमात्रायां भेदः केनावलोकितः ॥ २५ ॥ चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्ता-भावे न कश्चन । अतिश्चित्तं समाधेहि प्रत्यप्रूपे परात्मिन ॥२६॥ अखण्डानन्द-मात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः । वहिरन्तःसदानन्दरसास्वादनमात्मनि ॥ २७ ॥ वैराग्यस्य फलं वोधो बोधस्योपरतिः फलम् । स्वानन्दानुभवाच्छा-ितरेपैवोपरतेः फलम् ॥ २८ ॥ यद्यत्तरोत्तराभावे पूर्वरूपं तु निष्फलम् । निवृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः ॥ २९ ॥ मायोपाधिर्जगद्योतिः सर्वज्ञत्वादिलक्षणः । पारोक्ष्यशबलः सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः ॥ ३०॥ आलम्बनतया भाति योऽस्मत्प्रत्ययशब्दयोः । अन्तःकरणसंभिन्नवोधः सत्वंपदाभिधः ॥ ३१ ॥ मायाविद्ये विहायेव उपाधी परजीवयोः । अखण्डं सचिदानन्दं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ॥ ३२ ॥ इत्थं वाक्येस्तथाऽर्थानुसंघानं श्रवणं भवेत् । युक्तया संभावितत्त्वानुसंधानं मननं तु तत् ॥ ३३ ॥ ताभ्यां निर्वि-चिकित्स्येऽर्थे चेतसः स्थापितस्य यत् । एकतानत्वमेतद्धि निदिध्यासनमुच्यते ॥ ३४ ॥ ध्यातृध्याने परित्यज्य कमाद्ध्येयैकगोचरम् । निवातर्दापविचत्तं समाधिरभिधीयते ॥ ३५ ॥ वृत्तयस्तु तदानीमप्यज्ञाता आत्मगोचराः । स्मरणादनुमीयन्ते च्युत्थितस्य समुत्थिताः ॥ ३६ ॥ अनादाविह संसारे संचिताः कर्मकोटयः । अनेन विलयं यान्ति शुद्धो धर्मो विवर्धते ॥ ३७॥ धर्ममेविममं प्राहुः समाधि योगवित्तमाः। वर्षत्येष यथा धर्मामृतधाराः सहस्रशः ॥ ३८ ॥ असुना वासनाजाळे निःशेषं प्रविलायिते । समूलोन्मूलिते पुण्यपापाख्ये कर्मसंचये ॥ ३९ ॥ वाक्यमप्रतिबद्धं सत्प्राक्परोक्षावभासिते । करामलकवद्वोधमपरोक्षं प्रसूयते॥ ४०॥ वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदावधिः । अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमावधिः ॥ ४१ ॥ लीनवृत्तेरनु-त्पत्तिर्मर्याः परतेस्तु सा । स्थितप्रज्ञो यतिरयं यः सदानन्दमश्चते ॥ ४२ ॥ ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्कियः। ब्रह्मात्मनोः शोधितयोरेक-भावावगाहिनि ॥ ४३ ॥ निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते । सा सर्वदा भवेदास स जीवन्मुक इप्यते ॥ ४४ ॥ देहेन्दियेष्वहंभाव

इदंभावस्तदन्यके । यस्य नो भवतः कापि स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४५ ॥ न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः। प्रज्ञया यो विजानाति स जीव-न्मुक्त इष्यते ॥ ४६ ॥ साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन्पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः। समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इप्यते ॥ ४७ ॥ विज्ञातब्रह्मतत्त्रस् यथापूर्वं न संसृतिः। अस्ति चेन्न स विज्ञातब्रह्मभावो बहिर्मुखः॥ ४८॥ सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्पारब्धमिष्यते । फलोद्यः क्रियापूर्वो निष्क्रियो निह कुत्रचित् ॥ ४९ ॥ अहंब्रह्मोतिविज्ञानात् कल्पकोटिशतार्जितम् ॥ संचितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्तकर्मवत् ॥ ५० ॥ स्वमसङ्गमुदासीनं परि-ज्ञाय नभी यथा। न श्रिष्यते यतिः किंचित्कदाचिद्गाविकर्मभिः॥ ५१॥ न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते। तथाऽऽत्मोपाधियोगेन तद्धमी नैव लिप्यते ॥ ५२ ॥ ज्ञानोद्यात्पुराऽऽरव्धं कर्म ज्ञानान्न नर्यात । अदत्त्वा स्वफलं लक्ष्यमदिश्योत्सृष्टबाणवत् ॥ ५३ ॥ व्याघ्रवुच्या विनिर्भुक्तो वाणः पश्चात गोमतौ । न तिष्ठति भिनस्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम् ॥ ५४ ॥ अ-जरोऽस्म्यमरोऽस्मीति य आत्मानं प्रपद्यते । तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कृतः प्रारब्धकल्पना ॥ ५५ ॥ प्रारब्धं सिद्धाति तदा यदा देहात्मना स्थितिः। देहात्मभावो नैवेष्टः प्रारब्धं त्यज्यतामतः ॥ ५६ ॥ प्रारब्धकल्पनाप्यत्य देहस्य आन्तिरेव हि ॥ ५७ ॥ अध्यस्तस्य कुतसत्त्वमसत्यस्य कुतो जिनः। अजातस्य कृतो नाशः प्रारब्धमसतः कृतः ॥ ५८ ॥ ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य समलस्य लयो यदि । तिष्ठत्ययं कथं देह इति शङ्कावतो जडान् । समाधातुं बाह्यदृष्ट्या प्रारव्धं वदति श्रुतिः ॥ ५९ ॥ न तु देहादिसत्यत्ववोधनाय विपश्चिताम् । परिपूर्णमनाद्यन्तमप्रमेयमविक्रियम् ॥ ६० ॥ सद्धनं चिद्धनं नित्यमानन्द्यनमञ्ययम् । प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोसुखम् ॥ ६१ ॥ अहेयमनुपादेयमनाधेयमनाश्रयम् । निर्गुणं निष्क्रियं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ॥ ६२ ॥ अनिरूप्यस्वरूपं यन्मनोवाचामगोचरम् । सैत्समृद्धं स्वतःसिद्धं शुद्धं बुद्धमनोदशम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ६३ ॥ स्वानुभूत्या स्वयं ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डितम् । ससिद्धः ससुखं तिष्ठ निर्विकल्पात्मनात्मिन ॥ ६४ ॥ क गतं केन वा नीतं कुत्र लीनिमदं जगत्। अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महद्दुतम् ॥ ६५ ॥ किं हेरं किसुपा-

देयं किमन्यिक विलक्षणम् । अखण्डानन्दपीयूपपूर्णब्रह्ममहार्णवे ॥ ६६ ॥ न किंचिद्त्र पश्यामि न श्र्णोमि न वेदयहम् । स्वात्मनेव सदानन्दरूपेणास्मि स्वलक्षणः ॥ ६० ॥ असङ्गोऽहमनङ्गोऽहमिलङ्गोऽहमहं हरिः । प्रशान्तोऽह-मनन्तोऽहं परिपूर्णश्चिरन्तनः ॥ ६८ ॥ अकर्ताऽहमभोक्ताऽहमविकारोऽहमन्वयः । शुद्धो बोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः ॥ ६९ ॥ एतां विद्यामन्तरतमाय ददौ । अपान्तरतमो ब्रह्मणे ददौ । ब्रह्मा घोराङ्गिरसे ददौ । घोराङ्गिर रेकाय ददौ । रेको रामाय ददौ । रामः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ददा-वित्येतिन्वर्गणानुशासनं वेदानुशासनं वेदानुशासनमित्युपनिषत् ॥ हरिः अत्यत्सत् ॥ ७० ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥ इत्यध्यात्मोपनिषत्समाप्ता॥ ७६॥

कुण्डिकोपनिषत् ॥ ७७ ॥

कुण्डिकोपनिपत्ख्यातपरिव्राजकसंतितः । यत्र विश्रान्तिमगमत्तद्रामपदमाश्रये ॥ १ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ॥ ब्रह्मचर्याश्रमे क्षीणे गुरुशुश्रूषणे रतः। वेदानधीयानुज्ञात उच्यते गुरुणाश्रमी॥ १॥ दारमाहृत्य सहशमिश्रमाधाय शक्तितः। ब्राह्मीमिष्टिं यजेत्तासामहोरात्रेण निर्वपेत् ॥ २॥ संविभज्य सुतानर्थे आम्यकामान्विसृज्य च। संचरन्वनमार्गेण शुचौ देशे परिश्रमन् ॥ ३॥ वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा विहितैः कृन्दमूलकैः। स्वशरीरे समाप्याथ पृथिन्यां नाश्च पातयेत् ॥ ४॥ सह तेनेव पुरुषः कथं संन्यस्त उच्यते। सनामधेयो यस्मिस्तु कथं संन्यस्त उच्यते ॥ ५॥ तस्मात्फलविशुद्धाङ्गी संन्यासं संहितात्मनाम् । अग्निवर्ण विनिष्कम्य वानप्रस्थं प्रपद्यते ॥ ६॥ लोकवद्मार्ययाऽऽसक्तो वनं गच्छिति संयतः। संत्यक्त्वा संसृतिसुखमनुतिष्ठति किं मुधा॥ ७॥ किंवा दुःखमनुस्त्य भोगांस्त्यज्ञति चोच्छित्तान्। गर्भवासभयाद्यीतः श्रीतोष्णाभ्यां तथेव च ॥ ८॥ गुद्धं प्रवेष्ट्रिमच्छामि परं पदमनामयमिति । होन्यस्याप्रिमपुनरावर्तनं यनस्थार्थाय (?) मावहमिति । अथाध्यात्ममञ्चा व्रवेत । दोक्षामुपेयात्कापाय-

बासाः । कक्षोपस्थलोमानि वर्जयेत् । ऊँर्ध्ववाहुर्विमुक्तमार्गी भवति । अनि-केतश्चरेज्ञिक्षाञ्ची । निर्दिध्यासनं दध्यात् । पवित्रं धारयेज्जन्तुसंरक्षणार्थम् । तद्पि श्लोका भवन्ति । कुण्डिकां चमसं शिक्यं त्रिविष्टपमुपानहौ । शीतो पंघातिनीं कन्थां कौपीनाच्छादनं तथा ॥ ९ ॥ पवित्रं स्नानशाटीं च उत्तरा सङ्गमेव च । अतोऽतिरिक्तं यिकिचित्सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः ॥ १० ॥ नदीपुरिन-शायी स्यादेवागारेषु बाह्यतः । नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरसुपतापयेत ॥ ११ ॥ स्नानं पानं तथा शौचमिद्धः पूताभिराचरेत् । स्त्यमानो न तुष्येत निन्दितो न शपेत्परान् ॥ १२ ॥ भिक्षादिवैदलं पात्रं स्नानद्रव्यमवारितम् । एवंवृत्तिमुपासीनो यतेन्द्रियो जपेत्सदा ॥ १३ ॥ विश्वाय मनुसंयोगं मनसा भावयेत्सुधीः । आकाशाद्वायुर्वायोज्योतिज्योतिष आपोऽन्यः पृथिवी । एपां भूतानां ब्रह्म प्रपद्ये । अजरममरमक्षरमञ्ययं प्रपद्ये । मध्यखण्डसुखाम्भोधौ बहुधा विश्ववीचयः। उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुतविश्रमात् ॥ १४॥ न में देहेन संबन्धो मेघेनेव विहायसः। अतः कुतो में तद्धर्मा जायत्स्वम-सुप्रिषु ॥ १५ ॥ आकाशवत्कलपविद्रगोऽहमादित्यवद्वास्यविलक्षणोऽहम। अहार्यवित्रित्यविनिश्चलोऽहमस्भोधिवत्पारविवर्जितोऽहम् ॥ १६ ॥ नारायणोsहं नरकान्तकोऽहं पुरान्तकोऽहं पुरुषोऽहमीशः । अखण्डबोधोऽहमशेष-साक्षी निरीश्वरोऽहं निरहं च निर्ममः ॥ १७ ॥ तद्भ्यासेन प्राणापानौ संयम्य तत्र छीका भवन्ति ॥ वृषणापानयोर्मध्ये पाणी आस्थाय संश्रयेत् । संदर्य शनकैर्जिह्नां यवमात्रे विनिर्गताम् ॥ १८ ॥ साषमात्रां तथा दृष्टिं श्रोत्रे स्थाप्य तथा अवि । अवणे नासिके गन्धा यतः स्वं न च संअयेत् ॥ १९ ॥ अथ शैवपदं यत्र तद्रहा बहा तत्परम् । तद्भ्यासेन लभ्येत पूर्वजन्मार्जितात्म-नाम् ॥ २० ॥ संभूतैर्वायुसंश्रावैर्हदयं तप उच्यते । ऊर्ध्वं प्रपद्यते देहा-द्भित्त्वा सूर्धानमन्ययम् ॥ २१ ॥ स्वदेहस्य तु सूर्धानं ये प्राप्य परमां गतिम्। भूयस्ते न निवर्तन्ते परावरविदो जनाः ॥ २२ ॥ न साक्षिणं साक्ष्यधर्माः संस्पृशन्ति विलक्षणम् । अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत् ॥२३॥ जले वापि स्थले वापि लुठःवेष जडात्मकः । नाहं विलिप्ये तद्धमें र्घटधर्में र्नभो यथा ॥ २४ ॥ निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि निष्कलोऽस्मि निराक्रतिः । निर्विकल्पो-

ऽस्मि नित्योऽस्मि निरालम्बोऽस्मि निर्द्वयः ॥ २५ ॥ सर्वात्मकोऽहं सर्वो-ऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः । केवलाखण्डबोघोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः ॥ २६ ॥ स्वमेव सर्वतः पश्यन्सन्यमानः स्वमद्वयम् । स्वानन्दमनुभुञ्जानो निर्विकल्पो भवाम्यहस् ॥ २७ ॥ गच्छंस्तिष्ठनुपविशञ्छयानो वाऽन्यथापि वा । यथेच्छया वसेद्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ॥ २८ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ आाप्यायन्त्विति शान्तिः॥ इति कुण्डिकोपनिषत्समाप्ता॥ ७७॥

सावित्र्युपनिषत् ॥ ७८ ॥

सावित्र्युपनिषद्वेद्यचित्सावित्रपदोज्ज्वलम् । प्रतियोगिविनिर्भुक्तं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ सावित्र्यात्मा पाञ्चपत परंत्रह्मावधूतकम् । त्रिपुरातपनं देवी त्रिपुरा कठभावना ॥ २ ॥

ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः॥

हरिः ॐ॥ कः सविता का सावित्री अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री स यत्राग्निस्तत्पृथिवी यत्र वै पृथिवी तत्राग्निस्ते हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ १॥ कः सविता का सावित्री वरुण एव सविताऽऽपः सावित्री स यत्र वरुणस्तदापो यत्र वा आपस्तद्वरुणस्ते हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ २॥ कः सविता का सावित्री वायुरेव सविताकाशः सावित्री स यत्र वायुस्तदाकाशो यत्र वा आकाशस्तद्वायुस्ते हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ ३॥ कः सविता का सावित्री यग्न एव सविता छन्दांसि सावित्री स यत्र यग्नस्तत्र छन्दांसि यत्र वा छन्दांसि स यज्ञस्ते हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ ४॥ कः सविता का सावित्री सानयित्रुरेव सविता विद्युत्सावित्री स यत्र सानयितुस्तद्विद्युत् यत्र वा विद्युत्तत्र सानयित्रुसे हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ ५॥ कः सविता का सावित्री आदित्य एव सविता द्योः सावित्री स यत्रादित्यस्तद्योर्यत्र वा द्योस्तदादित्यस्ते हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ ६॥ कः सविता का सावित्री चन्द्र एव सविता वक्षत्राणि सावित्री स यत्र चन्द्रस्तत्रक्षत्राणि यत्र वा नक्षत्राणि स चन्द्रमास्ते हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ ७॥ कः सविता का सावित्री मन एव सविता हे योनी तदेकं मिथुनम्॥ ७॥ कः सविता का सावित्री मन एव सविता

वाक् सावित्री स यत्र मनस्तद्वाक् यत्र वा वाक् तन्मनस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ८ ॥ कः सविता का सावित्री पुरुष एव सविता स्त्री सावित्री स यत्र पुरुषस्तत्स्त्री यत्र वा स्त्री स पुरुषस्ते हे योनी तदेकं मिथुनस् ॥ ९॥ तस्या एव प्रथमः पादो भूस्तत्सवितुर्वरेण्यमित्यभिवें वरेण्यमापो वरेण्यं चन्द्रमा वरेण्यम् । तस्या एव द्वितीयः पादो भर्गमयोऽपो भुवो भर्गो देवस्य धीमहीत्यप्तिवें भर्ग आदित्यो वे भर्गश्चन्द्रमा वे भर्गः । तस्या एष तृतीयः पादः स्वर्धियो यो नः प्रचोदयादिति । स्त्री चैव पुरुपश्च प्रजनयतो यो वा एतां सावित्रीमेवं वेद स पुनर्मृत्युं जयित वलातिवलयोर्विराट् पुरुष ऋषिः। गायत्री छन्दः। गायत्री देवता। अका-रोकारमकारा वीजाद्याः । क्षुधादिनिरसने विनियोगः । क्लीमित्यादिषडङ्ग-न्यासः । ध्यानम् । अमृतकरतलाङ्गीं सर्वसंजीवनाढ्यावघहरणसुदक्षौ वेद-सारे मयूखे । प्रणवमयविकारौ भास्कराकारदेहौ सततमनुभवेऽहं तौ बला-तिबलानतो ॥ ॐ हीं बले महादेवि हीं महाबले छीं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिः प्रदे तत्सवितुर्वरदाहिमके हीं वरेण्यं भर्गी देवस्य वरदाहिमके अतिबले सर्व-दयामूर्ते बले सर्वश्च इमोपनाशिनि धीमांहे धियो यो नो जाते प्रचुर्यः यो प्रचोदयादात्मिके प्रणवशिरस्कात्मिके हुं फद स्वाहा। एवं विद्वान् कृत-क्रत्यो भवति सावित्र्या एव सलोकतां जयतीत्युपनिषत् ॥९॥ हारैः ॐ तत्सत्॥

ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः॥ इति सावित्र्युपनिषत्समाप्ता॥ ७८॥

आत्मोपनिषत् ॥ ७९ ॥

यत्र नात्मप्रपञ्चोऽयमपह्नवपदं गतः । प्रतियोगिविनिर्मुक्तः परमात्माऽवशिष्यते ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरिः ॐ॥ अथाङ्गिरास्त्रिविधः पुरुषस्तद्यथा-बाह्यात्माऽन्तरात्मा परमात्मा चेति । त्वक् चर्ममांसरोमाङ्गुष्ठाङ्गुल्यः पृष्ठवंशनखगुल्फोदरनाभिमे०्कव्यूरुकपोल-श्रोत्र श्रृं ललाटबाहुपार्श्वशिरोधमनिकाऽक्षीणि भवन्ति जायते स्रियत इत्येष

बाह्यात्मा । अथान्तरात्मा नाम पृथिव्यापस्तेनोवायुराकारोच्छाद्वेपसुख-दुःखकाममोहविकल्पनादिभिः स्मृतिलिङ्ग उदात्तानुदात्तहस्वदीर्धश्वतस्वलि-तगार्जितस्फुटितसुदितनृत्तगीतवादित्रप्रलयविजृम्भितादिभिः श्रोता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः पुराणन्यायमीमांसाधर्म-शास्त्राणीति श्रवणद्राणाकर्षणकर्मविशेषणं करोत्येपोऽन्तरात्मा नाम अथ परमात्मा नाम यथाक्षर उपासनीयः । स च प्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसमाधियोगानुमानाध्यात्मचिन्तकं वटकणिका कतण्डुलो वा वालाप्रशतसहस्राविकल्पनाभिः स लभ्यते वनोपलभ्यते न जायते न मियते न शुप्यति न किसते न दहाति न कम्पते न भिद्यते न च्छिद्यते निर्गुणः साक्षीभूतः । शुद्धो निरवयवात्मा केवलः सूक्ष्मो निष्कलो निरञ्जनो निर्विकारः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवर्जितो निर्विकल्पो निराकाङ्कः सर्वव्यापी सोऽचिन्त्यो निर्वर्ण्यश्च पुनात्यशुद्धान्यपूतानि । निष्क्रियस्तस्य संसारो नास्ति । आत्मसंज्ञः शिवः शुद्ध एक एवाद्वयः सदा । ब्रह्मरूपतया ब्रह्म केवलं प्रतिभासते ॥ १ ॥ जगदूपतयाप्येतद्रह्मेव प्रतिभासते । विद्याऽविद्या-दिभेदेन भावाऽभावादिभेदतः ॥ २ ॥ गुरुशिष्यादिभेदेन ब्रह्मेव प्रतिभासते । ब्रह्मैव केवलं शुद्धं विद्यते तत्त्वदर्शने ॥ ३ ॥ न च विद्या न चाविद्या न जगच न चापरम् । सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥ असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम् । घटोऽयमिति विज्ञातुं नियमः को न्वपेक्षते ॥ ५ ॥ विना प्रमाणसुष्ठुत्वं यस्मिन्सति पदार्थधीः । अयमात्मा नित्यसिद्धः प्रमाणे सित भासते ॥ ६ ॥ न देशं नापि कालं वा न शुद्धं वाप्यपेक्षते । देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञानं निरपेक्षकम् ॥ ७ ॥ तद्वद्रह्मविदोऽप्यस्य त्रह्माहमिति वेदनम् । भानुनेव जगत्सर्वं भास्यते यस्य तेजसा ॥ ८ ॥ अनात्मकमसत्तुच्छं किं नु तस्यावभासकम् । वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि ॥ ९॥ येनार्थवन्सि तं किं नु विज्ञातारं प्रकाशयेत्। क्षुघां देहन्यथां त्यक्त्वा बालः कीडित वस्तुनि ॥ १०॥ तथैव विद्वान्नमते निर्ममो निरहं सुखी । कामान्नि-प्कामरूपी संचरत्येकचरो मुनिः॥ ११ ॥ स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वा-त्मना स्थितः । निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महावलः ॥ १२ ॥ नित्य-तृसोऽप्यभुभानोऽप्यसमः समदुर्शनः । कुर्वन्नपि न कुर्वाणश्चाभोक्ता फल-

भोग्यपि॥१३॥शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः। अशरीरं सदा सन्तिमिदं ब्रह्मविदं कचित् ॥ १४ ॥ प्रियाप्रिये न स्पृशतस्त्रथैव च शुभाशुभे । तमसा अस्तवद्वानाद्यस्तोऽपि रविर्जनैः ॥ १५ ॥ अस्त इत्युच्यते आन्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम् । तद्वदेहादिबन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम् ॥ १६ ॥ पत्रयन्ति देहिवन्यूढाः शरीराभासदर्शनात् । अहिनिर्व्यमीवायं मुक्तदेहस्तु तिष्ठति ॥ १७ ॥ इतस्ततश्चात्यमानो यत्किचित्प्राणवायुना । स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम् ॥ १८ ॥ दैचेन नीयते देहो तथा कालोप भुक्तिपु । लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना ॥ १९ ॥ शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः । जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ॥ २०॥ उपाधिनाशाह्रहैव सद्रह्माप्येति निर्द्वयम् । शैलुषो वेषसन्नावाभावयोश्च यथा पुमान् ॥ २१ ॥ तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्टः सदा ब्रह्मैव नापरः । घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ॥२२॥ तथैवोपाधिविलये ब्रह्मेव ब्रह्मवित्स्वयम् । क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले ॥ २३ ॥ संयुक्तमेकतां याति तथाssत्मन्यात्मतिन्मुनिः । एवं विदेहकैवत्यं सन्मात्रत्वमखण्डितस् ॥ २४ ॥ व्रह्मभावं अपधेष यतिर्नावर्तते पुनः । सदात्मकत्वविज्ञानद्रयाविद्यादिवर्ष्मणः ॥ २५ ॥ अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद्रह्मणः कृत उद्भवः । सायाक्रुसौ वन्धसोक्षौ न स्तः स्वात्मनि वस्तुतः ॥ २६ ॥ यथा रज्जौ निष्क्रियायां सर्पाभासविनिर्गमौ । अवृतेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे ॥२७॥ नावृतिर्व्रह्मणः काचिदन्या-भावादनावृतम् । अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि ॥ २८॥ बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः । अतस्तौ मायया ऋषौ बन्धमोक्षौ न चात्मिन ॥ २९ ॥ निष्कले निष्किये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने । अद्वितीये परे तत्त्वे व्योमवत्कल्पना कुतः ॥ ३० ॥ न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इलेदा परमार्थता ॥ ३१ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इत्यात्मोपनिषत्समाप्ता॥ ७९॥

पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥ ८० ॥

पाञ्चपतब्रह्मविद्यासंवेद्यं परमाक्षरम् । परमानन्दसंपूर्णं रामचन्द्रपदं भजे ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरि: ॐ ॥ अथ ह वे स्वयंभूर्वह्मा प्रजाः सृजानीति कामकामो जायते कामेश्वरो वैश्रवणः । वैश्रवणो ब्रह्मपुत्रो वालखिंत्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति जगतां का विद्या का देवता जाअनुरीययोरस्य को देवो यानि तस्य वशानि कालाः कियत्प्रमाणाः कस्याज्ञया रविचन्द्रग्रहादयो भासन्ते कस्य महिमा गगनस्वरूप एतदहं श्रोतुमिच्छामि नान्यो जानाति त्वं ब्रुहि ब्रह्मन् । स्वयंभूरुवाच-कृत्स्रजगतां मातृका विद्या द्वित्रिवर्णसहिता द्विवर्णमाता त्रिवर्णसहिता। चतुर्मात्रात्मकोङ्कारो मम प्राणात्मका देवता। अहमेव जगत्रयस्यैकः पतिः। मम वशानि सर्वाणि युगान्यपि । अहोरात्रादयो मत्संवर्धिताः कालाः । मम रूपा रवेस्तेजश्चन्द्रनक्षत्रग्रहतेजांसि च । गगनो मम त्रिशक्तिमायास्वरूपो नान्यो मद्स्ति । तमोमायात्मको रुद्रः सात्विक-मायात्मको विष्णु राजसमायात्मको ब्रह्मा । इन्द्रादयस्तामसराजसात्मिका न सात्त्विकः कोऽपि । अघोरः सर्वसाधारणस्वरूपः । समस्तयागानां रुद्रः पैशुपतिः कर्ता। रुद्रो यागदेवो विष्णुरध्वर्युर्होतेन्द्रो देवता यज्ञभुग मानसं ब्रह्म माहे-श्वरं ब्रह्म मानसं हंसः सोऽहं हंस इति । तन्मययज्ञो नादानुसंधानम् । तन्मयविकारो जीवः । परमात्मस्वरूपो हंसः । अन्तर्वहिश्वरति हंसः । अन्त-र्गतोऽनवकाशान्तर्गतसुपर्णस्यरूपो हंसः । पण्णवतितत्त्वतन्तुवद्यक्तं चित्सूत्र-त्रयचिन्मयलक्षणं नवतत्त्वत्रिरावृतं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्मकमग्नित्रयकलोपेतं चिद्रन्थिवन्धनम् । अद्वैतग्रन्थिः यज्ञसाधारणाङ्गं बहिरन्तर्ज्वेलनं यज्ञाङ्ग-लक्षणब्रह्मस्वरूपो हंसः । उपवीतलक्षणसूत्रब्रह्मगा यज्ञाः । ब्रह्माङ्गलक्षणयुक्तो यज्ञसूत्रम् । तद्रह्मसूत्रम् । यज्ञस्त्रसंबन्धी ब्रह्मयज्ञः । तत्स्वरूपोऽङ्गानि मात्राणि । मनो यज्ञस्य हंसो यज्ञसूत्रम् । प्रणवं ब्रह्मसूत्रं ब्रह्मयज्ञमयम् । प्रणवान्तर्वतीं हंसो ब्रह्मसूत्रम् । तदेव ब्रह्मयज्ञमयं मोक्षक्रमम् । ब्रह्मसंध्या-किया मनोयागः । संध्याकिया मनोयागस्य लक्षणम् । यज्ञसूत्रप्रणवब्रह्मयज्ञ-

भोग्यपि ॥ १३॥शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः । अशरीरं सदा सन्तिमिदं ब्रह्मविदं कचित् ॥ १४ ॥ प्रियाप्रिये न स्पृशतस्त्रथैव च शुभाशुभे । तमसा अस्तवद्वानाद्यस्तोऽपि रविर्जनैः ॥ १५ ॥ अस्त इत्युच्यते आन्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम् । तद्वदेहादिवन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम् ॥ १६ ॥ पर्वयन्ति देहिवन्सूढाः शरीराभासद्शेनात् । अहिनिव्वयनीवायं मुक्तदेहस्तु तिष्ठति ॥ १७ ॥ इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किंचित्प्राणवायुना । स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम् ॥ १८ ॥ दैवेन नीयते देहो तथा कालोप अक्तिपु । लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना ॥ १९ ॥ शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः । जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ॥ २०॥ उपाधिनाशाद्रहैव सद्रह्माप्येति निर्द्वयम् । शैल्र्षो वेषसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् ॥ २१ ॥ तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्टः सदा ब्रह्मैव नापरः । घटे नष्टे यथा ब्योम ब्योमैव भवति स्वयम् ॥२२॥ तथैवोपाधिविलये ब्रह्मेव ब्रह्मवित्स्वयम् । क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले ॥ २३ ॥ संयुक्तमेकतां याति तथा-ऽऽत्मन्यात्मतिन्मुनिः । एवं विदेहकैवत्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम् ॥ २४ ॥ ब्रह्मभावं अपधेष यतिर्नावर्तते पुनः । सन्तात्मकत्वविज्ञानद्रयाविद्यादिवर्ष्मणः ॥ २५ ॥ अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद्रह्मणः कृत उद्भवः । सायाङ्क्रसौ वन्ध्रमोक्षौ न स्तः स्वात्मनि वस्तुतः ॥ २६ ॥ यथा रज्जो निष्कियायां सेर्पाभासविनिर्गमौ । अवृतेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे ॥२७॥ नावृतिर्व्रह्मणः काचिदन्या-भावादनावृतम् । अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि ॥ २८॥ बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः । अतस्तौ मायया ऋप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मिन ॥ २९ ॥ निष्कले निष्किये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने । अद्वितीये परे तत्त्वे ब्योमवत्कल्पना कुतः ॥ ३० ॥ न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इलेदः परमार्थता ॥ ३१ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सव् ॥

> ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इत्यात्मोपनिषत्समाप्ता॥ ७९॥

पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥ ८० ॥

पाशुपतब्रह्मविद्यासंवेद्यं परमाक्षरम् । परमानन्दसंपूर्णं रामचन्द्रपदं भजे ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरि: ॐ ॥ अथ ह वै स्वयंभूर्वह्मा प्रजाः स्जानीति कामकामो जायते कामेश्वरो वैश्रवणः । वैश्रवणो ब्रह्मपुत्रो वालखिंत्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति जगतां का विद्या का देवता जायनुरीययोरस्य को देवो यानि तस्य वशानि कालाः कियत्प्रमाणाः कस्याज्ञया रविचन्द्रग्रहादयो भासन्ते कस्य महिमा गगनस्वरूप एतदहं श्रोतुमिच्छामि नान्यो जानाति त्वं ब्रूहि ब्रह्मन् । स्वयंभूरुवाच-कृत्स्रजगतां मातृका विद्या द्वित्रिवर्णसहिता द्विवर्णमाता त्रिवर्णसहिता। चतुर्मात्रात्मकोङ्कारो मम प्राणात्मका देवता। अहमेव जगत्रयस्यैकः पतिः। मम वशानि सर्वाणि युगान्यपि । अहोरात्रादयो मत्संवर्धिताः कालाः । सम रूपा रवेस्रोजश्चनद्दनक्षत्रग्रहतेजांसि च । गगनो मम त्रिशक्तिमायास्वरूपो नान्यो मदस्ति । तमोमायात्मको रुद्रः साव्यिक-मायात्मको विष्णु राजसमायात्मको ब्रह्मा । इन्द्रादयस्तामसराजसात्मिका न सारिवकः कोऽपि । अघोरः सर्वसाधारणस्वरूपः । समस्तयागानां रुद्रः पैशुपितः कर्ता। रुद्रो यागदेवो विष्णुरध्वर्युर्होतेन्द्रो देवता यज्ञभुग् मानसं ब्रह्म माहे-श्वरं ब्रह्म मानसं हंसः सोऽहं हंस इति । तन्मययज्ञो नादानुसंधानम् । तन्मयविकारो जीवः । परमात्मस्वरूपो हंसः । अन्तर्वहिश्वरति हंसः । अन्त-र्गतोऽनवकाशान्तर्गतसुपर्णस्यरूपो हंसः । पण्णवतितत्त्वतन्तुवद्यक्तं चित्सूत्र-त्रयचिन्मयलक्षणं नवतत्त्वत्रिरावृतं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्मकमग्नित्रयकलोपेतं चिद्रन्थिवन्धनम् । अद्वैतप्रन्थिः यज्ञसाधारणाङ्गं बहिरन्तर्ज्वेलनं यज्ञाङ्ग-लक्षणब्रह्मस्वरूपो हंसः । उपवीतलक्षणसूत्रब्रह्मगा यज्ञाः । ब्रह्माङ्गलक्षणयुक्तो यज्ञसूत्रम् । तद्रह्मसूत्रम् । यज्ञस्त्रसंबन्धी ब्रह्मयज्ञः। तत्स्वरूपोऽङ्गानि मात्राणि । मनो यज्ञस्य हंसो यज्ञसूत्रम् । प्रणवं ब्रह्मसूत्रं ब्रह्मयज्ञमयम् । प्रणवान्तर्वर्ती हंसो ब्रह्मसूत्रम् । तदेव ब्रह्मयज्ञमयं मोक्षक्रमम् । ब्रह्मसंध्या-किया मनोयागः । संध्याकिया मनोयागस्य लक्षणम् । यज्ञसत्रप्रणवबह्ययज्ञ-

कियायुक्तो ब्राह्मणः । ब्रह्मचर्येण चरन्ति देवाः । हंससूत्रचर्या यज्ञाः । हंस-प्रणवयोरभेदः । हंसस्य प्रार्थनास्त्रिकालाः । त्रिकालास्त्रिवर्णाः । त्रेताझ्यनु-संधानो यागः । त्रेताझ्यात्माकृतिवणीङ्कारहंसानुसंधानोऽन्तर्यागः । चित्स्व-रूपवत्तन्मयं तुरीयस्वरूपम् । अन्तरादित्ये ज्योतिःस्वरूपो हंसः। यज्ञाङ्गं ब्रह्म-संपत्तिः । ब्रह्मप्रवृत्तौ तत्प्रणवहंसस्त्रेणैव ध्यानमाचरन्ति । प्रोवाच पुनः स्वयं भुवं प्रतिजानीते ब्रह्मपुत्री ऋषिर्वालखिल्यः । हंससूत्राणि कतिसंख्यानि कियद्वा प्रमाणम् । हृद्यादित्यमरीचीनां पदं पण्णवितः । चित्सूत्रघाणयोः स्वर्निर्गता प्रणवधारा षडञ्जुलदशाशीतिः । वामबाहुर्दक्षिणकट्योरन्तश्चरति हंसः परमात्मा ब्रह्मगुद्धप्रकारो नान्यत्र विदितः । जानन्ति तेऽसृतफलकाः । सर्वकालं 'हंसं प्रकाशकम् । प्रणवहंसान्तध्यानप्रकृतिं विना न सुक्तिः । नव-सुत्रान्प रचर्चितान् । तेऽपि यद्रह्म चरन्ति । अन्तरादित्येन ज्ञातं मनुष्या-णास् । जगदादित्यो रोचत इति ज्ञात्वा ते मर्त्या विवुधास्तपनप्रार्थनायुक्ता आचरन्ति । वाजपेयः पशुहर्ता अध्वर्युरिन्द्रो देवता अहिंसा धर्मयागः परम-हंसोऽध्वर्युः परमात्मा देवता पशुपतिर्वह्योपनिषदो ब्रह्म । स्वाध्याययुक्ता ब्राह्मणाश्चरन्ति । अश्वमेघो महायज्ञकथा । तद्राज्ञा ब्रह्मचर्यमाचरन्ति । सर्वेषां पूर्वोक्तब्रह्मयज्ञकमं मुक्तिकममिति । ब्रह्मपुत्रः प्रोवाच । उदितो हंस ऋषिः। स्वयंभूस्तिरोद्धे । रुद्रो ब्रह्मोपनिषदो हंसज्योतिः पशुपतिः प्रणव-स्तारकः स एवं वेद । हंसात्ममालिकावर्णब्रह्मकालप्रचोदिता । परमात्मा प्रमानिति ब्रह्मसंपत्तिकारिणी ॥ ३ ॥ अध्यात्मब्रह्मकल्पस्याकृतिः कीदशी कथा। ब्रह्मज्ञानप्रभासन्ध्याकालो गच्छति धीमताम् । हंसाख्यो देवमात्मा-ख्यमात्मतत्त्वप्रजः कथम् ॥ २ ॥ अन्तःप्रणवनादाख्यो हंसः प्रत्ययबोधकः । अन्तर्गतप्रमागूढं ज्ञाननाउं विराजितम् ॥ ३ ॥ शिवशक्तयात्मकं रूपं चिन्म-यानन्दवेदितम् । नादविन्दुकला त्रीणि नेत्रं विश्वविचेष्टितम् ॥ ४ ॥ त्रियङ्गानि शिखा त्रीणि द्वित्राणां सांख्यमाकृतिः । अन्तर्गृद्धमा हंसः प्रमाणान्निर्गतं बहिः ॥ ५ ॥ ब्रह्मसूत्रपदं ज्ञेयं ब्राह्मं विध्युक्तलक्षणम् । हंसार्कप्रणवध्यानमित्युक्तो ज्ञानसागरे ॥ ६ ॥ एतद्विज्ञानमात्रेण ज्ञानसागरपारगः । स्वतः शिवः पग्र-पतिः साक्षी सर्वस्य सर्वदा ॥ ७ ॥ सर्वेपां तु मनस्तेन प्रेरितं नियमेन तु ।

विषये गच्छति प्राणश्रेष्टते वाग्वदत्यपि ॥ ८ ॥ चश्चः पश्यति रूपाणि श्रोत्रं सर्व श्रणोत्यपि । अन्यानि खानि सर्वाणि तेनैव प्रेरितानि तु ॥ ९ ॥ स्वं स्वं विषयमुद्दिश्य प्रवर्तन्ते निरन्तरम् । प्रवर्तकत्वं चाप्यस्य मायया न स्वभावतः ॥ १० ॥ श्रोत्रमात्मिन चाध्यस्तं स्वयं पञ्जपतिः पुमान् । अनुप्रविद्य श्रोत्रस्य ददाति श्रोत्रतां शिवः ॥ ११ ॥ मनः स्वात्मनि चाध्यस्तं प्रविदय परमेश्वरः । मनस्त्वं तस्य सत्त्वस्थो दृदाति नियमेन तु ॥ १२ ॥ स एव विदितादृन्यस्तथै-वाविदितादपि । अन्येषामिनिद्रयाणां तु कल्पितानामपीश्वरः ॥१३॥ तत्तद्रप-मनु प्राप्य ददाति नियमेन तु । ततश्रक्षश्र वाक्चैव मनश्रान्यानि खानि च ॥ १४ ॥ न गच्छन्ति स्वयंज्योतिःस्वभावे परमात्मनि । अकर्तृविषयप्रत्यक्प-काशं स्वात्मनेव तु ॥ १५ ॥ विना तर्कप्रमाणाभ्यां ब्रह्म यो वेद वेद सः । प्रस्रगातमा परंज्योतिर्माया सा तु महत्तमः ॥ १६ ॥ तथा सति कथं माया-संभवः प्रस्वगात्मिन । तस्मात्तर्कप्रमाणाभ्यां स्वानुभूत्या च चिद्धने ॥ १७ ॥ स्वप्रकाशैकसंसिद्धे नास्ति माया परात्मिन । व्यवहारिकदृष्ट्येयं विद्याऽविद्या न चान्यथा ॥१८॥ तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् । व्यावहारिक-दृष्टिस्तु प्रकाशान्यभिचारतः॥ १९॥ प्रकाश एव सततं तस्मादृद्वैत एव हि । अद्वैतिमिति चोक्तिश्च प्रकाशाव्यभिचारतः ॥ २० ॥ प्रकाश एव सततं तस्मान्मौनं हि युज्यते । अयमर्थी महान्यस्य स्वयमेव प्रकाशितः ॥ २१ ॥ न स जीवो न च ब्रह्म न चान्यदिप किंचन । न तस्य वर्णा विद्यन्ते नाश्र-माश्च तथैव च ॥ २२ ॥ न तस्य धर्मोऽधर्मश्च न निषेधो विधिर्न च । यदा ब्रह्मात्मकं सर्वं विभाति तत एव तु ॥ २३ ॥ तदा दुःखादिभेदोऽयमाभा-सोऽपि न भासते । जगजीवादिरूपेण पश्यन्नपि परात्मवित् ॥ २४ ॥ न तत्पश्यति चिद्रूपं ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति । धर्मधार्मित्ववार्ता च भेदे सति हि भिद्यते ॥ २५ ॥ भेदाभेदस्तथा भेदाभेदः साक्षात्परात्मनः । नास्ति स्वात्मा-तिरेकेण स्वयमेवास्ति सर्वदा ॥ २६ ॥ ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद्वस्तुतोऽवस्तु-तोऽपि च। तथैव ब्रह्मविज्ज्ञानी किं गृह्णाति जहाति किम् ॥२७॥ अधिष्ठान-मनौपम्यमवाङ्मनसगोचरम् । यत्तदद्देश्यमश्राह्मगोत्रं रूपवर्जितम् ॥२८॥ जचक्षुःश्रोत्रमत्यर्थं तद्पाणिपदं तथा। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं च तदः व्ययम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मेवेदमसृतं तत्पुरस्ताद्रह्मानन्दं परमं चैव पश्चात् । ब्रह्मा-

नन्दं परमं दक्षिणे च ब्रह्मानन्दं परमं चोत्तरे च ॥ ३० ॥ स्वात्मन्येव स्वयं सर्व सदा पश्यित निर्भयः । तदा मुक्तो न मुक्तश्च वेद्धस्यैव विमुक्तता ॥३१॥ एवंरूपा परा विद्या सत्येन तपसापि च । ब्रह्मचर्यादिभिर्धमैंर्छभ्या वेदान्त-वर्त्मना ॥ ३२ ॥ स्वशरीरे स्वयंज्योतिःस्वरूपं पारमार्थिकम् । क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृताः ॥ ३३ ॥ एवं स्वरूपविज्ञानं यस्य कस्यान्ति योगिनः । कुत्रचिद्गमनं नास्ति तस्य संपूर्णरूपिणः ॥ ३४ ॥ आकाशमेकं संपूर्णं कुत्रचित्र हि गच्छति । तद्वद्वहात्मविच्छ्रेष्टः कुत्रचित्रैव गच्छति ॥३५॥ अभक्ष्यस्य निवृत्त्या तु विशुद्धं हृद्यं भवेत् । आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धि-र्भवति स्वतः ॥ ३६ ॥ चित्तशुद्धौ कमाज्ज्ञानं बुट्यन्ति प्रन्थयः स्फ्रटम् । अभक्ष्यं ब्रह्मविज्ञानविहीनस्यैव देहिनः ॥ ३७ ॥ न सम्यग्ज्ञानिनसद्धत्स्वरूपं सकलं खलु । अहमन्नं सदान्नाद इति हि ब्रह्मवेदनस् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मविद्रसति ज्ञानात्सर्वं ब्रह्मात्मनेव तु । ब्रह्मक्षत्रादिकं सर्वं यस्य स्यादोदनं सदा ॥ ३९॥ यस्योपसेचनं मृत्युसं ज्ञानी तादशः खलु । ब्रह्मस्वरूपविज्ञानाज्ञगद्गोज्यं भवेत्खलु ॥ ४० ॥ जगदात्मतया भाति यदा भोज्यं भवेत्तदा । ब्रह्मस्वात्म-तया नित्यं सक्षितं सकलं तदा ॥ ४१ ॥ यदासासेन रूपेण जगद्रोज्यं भवेत तत् । मानतः स्वात्मना भातं भक्षितं भवति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥ स्वस्-रूपं स्वयं भुङ्के नास्ति भोज्यं पृथक् स्वतः । अस्ति चेदस्तितारूपं ब्रह्मैवास्ति-त्वलक्षणम् ॥ ४३ ॥ अस्तितालक्षणा सत्तासत्ता ब्रह्म न चापरा । नास्ति सत्तातिरेकेण नास्ति माया च वस्तुतः ॥ ४४ ॥ योगिनामात्मनिष्टानां माया स्वात्मनि करिपता । साक्षिरूपतया भाति ब्रह्मज्ञानेन बाधिता॥ ४५॥ ब्रह्मिक्जानसंपन्नः प्रतीतसंखिलं जगत् । परयन्निप सदा नैव परयति स्वात्मनः पृथक् १५ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

इति पाशुपतब्रह्मोपनिषत्समाप्ता ॥ ८० ॥

परब्रह्मोपनिपत् ॥ ८१ ॥

परब्रह्मोपनिषदि वेद्याखण्डसुखाकृति । परिवाजकहद्गेयं परितस्त्रेपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरि: ॐ ॥ अथ हैनं महाशालः शौनकोऽङ्गिरसं भगवन्तं पिप्पळादं विधि-बदुपसन्नः पप्रच्छ दिच्ये ब्रह्मपुरे के संप्रतिष्ठिता भवन्ति । कथं सुज्यन्ते । नित्यात्मन एष महिमा। विभज्य एष महिमा विभुः। क एषः। तस्मे स होवाच । एतस्सत्यं यत्प्रविचीमि ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां देवेभ्यः प्राणेभ्यः । परब्रह्म-पुरे विरजं निष्कलं ग्रुभमक्षरं विरजं विभाति । स नियच्छति मधुकरः श्वेव ु विकर्सकः । अकर्मा स्वामीव स्थितः । कर्मतरः कर्पकवत्फलमनुभवति । कर्मे-समैज्ञाता कर्म करोति । कर्ममर्म ज्ञात्वा कर्म कुर्यात् । को जालं विक्षिपे-देको नैनमपकर्षस्यपकर्पति । प्राणदेवताश्चत्वारः । ताः सर्वा नाड्यः सुषुप्त-. इथेनाकाशवत् । यथा इथेनः समाधित्य याति स्वमालयं कुलायम् । एवं सुपुरं जूत । अयं च परश्च स सर्वत्र हिरण्मये परे कोहो । अमृता ह्येषा नाडी त्रयं संचरति । तस्य त्रिपादं ब्रह्म । एषात्रेष्य ततोऽनुतिष्ठति । अन्यत्र बूत । अयं च परं च सर्वत्र हिरण्मये परे कोही । यथैष देवदत्ती यष्ट्या च ताड्यमानो नैवेति । एवसिष्टापूर्तकर्मा ग्रुभाशुभैनं लिप्यते । यथा कुमारको निष्काम आनन्द्रमभियाति । तथैष देवः स्वम आनन्द्रमभियाति । वेद एव परं ज्योतिः । ज्योतिषा मा ज्योतिरानन्दयत्येवमेव । तत्परं यच्चित्तं परमा-स्मानमानन्द्यति । ग्रुअवर्णमाजायतेश्वरात् । भूयस्तेनैव मार्गेण स्वप्तस्थानं नियच्छति । जल्रकाभाववद्यथाकाममाजायतेश्वरात् । तावतात्मानमानन्द्यति । परसंधि यदपरसन्धीति । तत्परं नापरं त्यजति । तदैव कपालाष्टकं संधाय य एव स्तन इवावलम्बते सेन्द्रयोनिः स वेद्योनिरिति । अत्र जाप्रति । शुभाशुभातिरिक्तः शुभाशुभैरपि कर्मभिनं लिप्यते । य एष देवोऽन्यदेवास्य संप्रसादोऽन्तयीस्यसङ्गचिद्रपः पुरुषः । प्रणवहंसः परं ब्रह्म । न प्राणहंसः । मणवो जीवः। आद्या देवता निवेदयति। य एवं वेद तत्कथं निवेदयते : जीवस्य ब्रह्मःवमापाद्यति । सत्त्वमथास्य पुरुषस्यान्तःशिखोपवीतःवं ब्राह्म-णस्य । मुमुक्षोरन्तःशिखोपत्रीतधारणम् । बहिर्लक्ष्यमाणशिखायज्ञोपवीतधाः रणं कर्मिणो गृहस्थस्य । अन्तरुपवीतलक्षणं तु वहिस्तन्तुवद्व्यक्तमन्तस्तत्व-मेलनम् । न सन्नासन्न सद्सद्भिन्नाभिन्नं न चोअयम् । न सभागं न निर्भागं न चाप्यभयरूपकम् ॥ ब्रह्मात्मैकत्विवज्ञानं हेयं मिध्यात्वकारणा-दिति । पञ्चपाद्रह्मणो न किंचन । चतुष्पादन्तर्वितिनोऽन्तर्जीवब्रह्मणश्चरवारि स्थानानि । नाभिहृदयकण्डमूर्धेसु जाप्रत्स्वप्रसुपुप्तितुरीयावस्थाः । आह्वनीः यगाईपखदक्षिणसभ्यामिषु । जागरिते ब्रह्मा स्वमे विष्णुः सुपुत्तौ रुद्रस्तरीय-मक्षरं चिन्मयम् । तस्माचतुरवस्था । चतुरङ्गळवेष्टनमिव षण्णवतितत्त्वानि तन्तवद्विभज्य तदाहितं त्रिगुणीकृत्य द्वात्रिंशत्तत्वनिष्कर्षमापाद्य ज्ञानपतं त्रिगणस्वरूपं त्रिमृतित्वं पृथग्विज्ञाय नवबह्याख्यनवगुणोपेतं ज्ञात्वा नवमा-नमितस्त्रिगुणीकृत्य सूर्येन्द्वश्चिकलास्वरूपत्वेनैकीकृत्याद्यन्तरेकत्वमपि त्रिरावृत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरत्वमनुसंधायाद्यन्तमेकीकृत्य चिद्रन्थावद्वेतब्रन्थि कृत्वा नाभ्यादिबहाबिलप्रमाणं पृथक् पृथक् सप्तविंशतितत्त्वसंबन्धं त्रिगुणो-पेतं त्रिमृतिंकक्षणलक्षितमध्येकत्वमापाद्य वामांसादिदक्षिणकव्यन्तं विभा-व्याचन्तप्रहसंमेलनमेकं ज्ञात्वा मुकमेकं सत्यं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचार-रभणं विकारो नामधेयं सृत्तिकेत्येव सत्यं । हंसेति वर्णद्वयेनान्तःशिखोपवी-तित्वं निश्चित्य ब्राह्मणत्वं ब्रह्मध्यानाईत्वं यतित्वमलक्षितान्तःशिखोपवीतित्व-मेवं बहिर्छक्षितकर्मशिखा ज्ञानोपवीतं गृहस्थस्याभासब्राह्मणःवस्य केशसमूहः शिखाप्रत्यक्षकार्पासतन्तुकृतोपवीतःवं चतुर्गुणीकृत्य चतुर्विशतितस्वापादनतन्तु-कृत्वं नवतत्त्वमेकमेव परंब्रह्म तत्प्रतिसरयोग्यत्वाद्वहमार्गप्रवृत्तिं कल्पयन्ति। सर्वेषां ब्रह्मादीनां देवर्षाणां मनुष्याणां मृतिरेका । ब्रह्मेकमेव । ब्राह्मणत्वमेक-मेव। वर्णाश्रमाचारविशेषाः पृथवपृथक् शिखा वर्णाश्रमिणामेकैकेव। अपवर्गस यतेः शिखायज्ञोपवीतमूळं प्रणवसेकसेव वदन्ति । हंसः शिखा । प्रणय उपवी-तम् । नादः संधानम् । एष धर्मों नेतरो धर्मः । तत्कथमिति । प्रणवहंसो नादिख्ववृत्सूत्रं स्वहृदि चैतन्ये तिष्ठति त्रिविधं ब्रह्म । तिहृद्धि प्रापञ्चिकशिखो-पवीतं त्यजेत् । सशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेहुधः । यदक्षरं परंबद्ध तस्मूत्रमिति धारवेत् ॥ १ ॥ पुनर्जनमितृत्यर्थं मोक्षम्याहर्नितं सारेत्।

स्चनात्स्त्रमित्युक्तं स्त्रं नाम परं पदम् ॥ २ ॥ तत्स्त्रं बिदितं येन स मुमुक्षुः स भिक्षुकः । स वेदवित्सदाचारः स विप्रः पङ्किपावनः ॥ ३ ॥ येन अअअ सर्वप्रिदं मोतं सूत्रे सणिगणा इव । तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगविद्राह्मणो यतिः ॥ ४ ॥ बहिः सूत्रं त्यजेद्विषो योगविज्ञानतत्परः । त्रह्मभाविमदं सूत्रं धारयेद्यः स युक्तिआक् ॥ ५ ॥ नाशुचित्वं न चोच्छिष्टं तस्य सूत्रस्य धारणात् । सूत्र-अन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपनीतिनाम् ॥ ६ ॥ ये तु स्त्रविदो लोके ते च यज्ञोपवीतिनः । ज्ञानिशिखिनो ज्ञानिष्टा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः । ज्ञानमेव परं तेवां पवित्रं ज्ञानसीरितस् ॥ ७ ॥ अम्नेरिव शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा । स शिखीत्युच्यते विद्वान्नेतरे केशधारिणः ॥ ८ ॥ कर्मण्यधिकृता वे तु वैदिके छौकिकेऽपि वा । बाह्मणाभासमात्रेण जीवन्ते कुक्षिपूरकाः। वजन्ते निरयं ते तु पुनर्जनमनि जनमनि ॥ ९ ॥ वामांसद्श्वकव्यन्तं ब्रह्मसूत्रं तु सन्यतः । अन्तर्वहिरिवात्यर्थं तत्त्वतन्तुसमन्वितम् ॥ १० ॥ नाभ्यादिवहा-उ रन्ध्रान्तप्रसाणं धारयेत्सुधीः । तेभिधांयंगिदं सूत्रं कियाङ्गं तन्तुनिर्मितम् ॥ ११ ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम् । ब्राह्मण्यं सकलं तस्य नेतरेषां तु किंचन ॥ १२ ॥ इदं यज्ञोपबीतं तु परमं यत्परायणम् । विद्वा-न्यज्ञोपनीती संघारयेवः स सुक्तिभाक् ॥ १३ ॥ वहिरन्तश्चोपनीती विप्रः संन्यस्तुमहीत । एकयद्योपवीती तु नेव संन्यस्तुमहीत ॥ १४ ॥ तसात्सर्वप्रय-बेन मोक्षापेक्षी अवेद्यतिः। वहिःसूत्रं परित्यज्य खान्तःसूत्रं तु धारयेत् ॥१५॥ बहिः प्रपञ्जशिखोपनीतित्वमनादृत्य प्रणवहं सशिखोपनीतित्वमवलस्वय मोक्ष-साधनं कुर्यादित्याह भगवाञ्छीनक इत्युपनिषत् ॥ १६ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इति परवस्रोपनिषत्समासा॥ ८१॥

अवधूतोपनिषत् ॥ ८२ ॥

गोणसुख्यावध्तालिहृद्याम्बुजवर्ति यत् । तत्रैपदं ब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमवशिष्यते ॥ १ ॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ॥ अथ ह सांकृतिर्भगवन्तमवध्तं दत्तात्रेयं परिसमेल पप्रच्छ भग-वन्कोऽवध्तसस्य का स्थितिः किं लक्ष्म किं संसरणिमति । तं होवाच भगवो ा. उ. ३४

दत्तात्रेयः परमकारुणिकः ॥ अक्षरत्वाद्वरेण्यस्वाद्कृतसंसारबन्धनात् । तत्त्व-मस्यादिलक्ष्यत्वाद्वधृत इतीर्यते ॥ १ ॥ यो विल्ल्याश्रमान्वर्णानातमन्येव स्थितः सदा। अतिवर्णाश्रमी योगी अवधृतः स कथ्यते ॥ २ ॥ तस्य प्रियं शिरः कृत्वा मोदो दक्षिणपक्षकः । प्रमोद उत्तरः पक्ष आनन्दो गोष्पदाः यते ॥ ३ ॥ गोपाळसदृशं शीर्षे नापि सध्ये न चाप्यधः । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्टेति पुच्छाकारेण कारयेत् ॥ ४ ॥ एवं चतुष्पर्थं कृत्वा ते यान्ति परमां गतिम । न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनेके असृतत्वसानशुः ॥ ५ ॥ स्वैरं स्वरित-हरणं तत्संसरणम् । साम्बरा वा दिगम्बरा वा । न तेषां धर्माधर्मों न मेध्या-मेध्यो । सदा सांग्रहण्येष्ट्याश्वमेधीमन्तर्यागं यजते । स महामसो महा-योगः । कृत्स्त्रमेतिचित्रं कर्म । स्वैरं न विगायेत्तन्महानतम् । न स मूढविह-प्यते । यथा रिवः सर्वरसान्त्रभुद्धे हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः । तथैव योगी विषयान्भुद्धे न लिप्यते पुण्यपापेश्च शुद्धः ॥ ६ ॥ आपूर्यमाणम्चलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् । तद्वश्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमा-मोति न कामकामी ॥ ७ ॥ न निरोधो न चौत्वत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वे मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ८॥ ऐहिकामुष्मिकवातिसद्धी मुक्तेश्च सिद्धये। बहुकृत्यं पुरा स्थान्मे तत्सर्धमधुना कृतम् ॥ ९ ॥ तदेव कृतकृत्यःवं प्रतियोगिपुरःसरम् । (अनुसंद्धदेवायमेवं तृष्यति नित्यशः) ॥ १० ॥ दुःखिनोऽज्ञाः संसरन्तु कामं पुत्राचपेक्षया । परमानन्दपूणोंऽहं संसरामि किमिच्छया ॥ ११ ॥ अनुतिष्ठन्तु कर्माणि परलोकैयियासवः । सर्व-लोकात्मकः कस्मादनुतिष्ठाप्ति किं कथम् ॥ १२ ॥ व्याचक्षतां ते शास्त्राणि वेदानध्यापयन्तु वा । येऽत्राधिकारिणो मे तु नाधिकारोऽक्रियत्वतः ॥ १३ ॥ निदाभिक्षे स्नानशोचे नेच्छामि न करोमि च । द्रष्टारश्चेत्कल्पयन्तु किं मे स्याद्न्यकल्पनात् ॥ १४ ॥ गुञ्जापुञ्जादि दह्येत नान्यारोपितवह्निना । नान्या-रोपितसंसारधर्मा नैवमहं अजे ॥ १५ ॥ शुण्वन्त्वज्ञाततत्त्वास्ते जानन्क-स्माच्छृणोम्यहम् । मन्यन्तां संशयापन्ना न मन्येऽहमसंशयः ॥ १६ ॥ विप-र्यसो निदिध्यासे किं ध्यानमविपर्यये । देहात्मस्वविपर्यासं न कदाचिद्रना म्यहम् ॥ १७ ॥ अहं मनुष्य इत्यादिव्यवहारो विनाप्यमुम् । विपर्यासं विरा-

अयस्तवासनातोऽवकल्पते ॥ १८ ॥ आरब्धकर्मणि श्रीणे व्यवहारो निवर्तते । कर्मक्षये त्वसो नेव शाम्येखानसहस्रतः ॥ १९॥ विरल्खं व्यवहृतेरिष्टं चेच्यानमस्तु ते । वाधिकर्मव्यवहृतिं पद्यन्ध्यायाम्यहं कृतः ॥ २० ॥ विद्येषो नास्ति यस्मान्मे न समाधिस्ततो मम । विश्लेपो वा समाधिवा मनसः स्याद्वि-कारिणः । नित्यानुभवरूपस्य को मेऽन्नानुभवः पृथक् ॥ २१ ॥ कृतं कृत्यं प्रापणीयं प्राप्तिसित्येव नित्यशः। व्यवहारो लौकिको वा शास्त्रीयो वाडन्यथापि वा । समाकर्तुरलेपस्य यथारब्धं प्रवर्तताम् ॥ २२ ॥ अथवा कृतकृत्येऽपि कोकानुप्रहकाम्यया । शास्त्रीयेणैव मार्गेण वर्तेऽहं मम का क्षतिः ॥ २३ ॥ देवार्चनस्त्रानशोचिभिश्रादौ वर्ततां वपुः । तारं जपतु वाक्तद्रस्वस्त्रायमस्त-कस् ॥ २४ ॥ विष्णुं ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानन्दे विलीयताम् । साध्यहं किंवि-द्प्यत्र न कुर्वे नापि कारये ॥ २५ ॥ कृतकृत्यतया तृप्तः प्राप्तप्राप्यतया युनः । तृष्यन्नेवं स्वमनसा मन्यतेऽसा निरन्तरम् ॥ २६ ॥ धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमञ्जला वेद्यि । धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति से स्पष्टम् ॥ २० ॥ धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽच । धन्योऽहं धन्योऽहं खत्याज्ञानं पलायितं कापि ॥ २८ ॥ धन्योऽहं धन्योऽहं कैर्तव्यं मे न विद्यते किंचित्। धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमत्र संपन्नम् ॥ २९ ॥ धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेछोके । धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो धन्यः पुनःपुनर्धन्यः ॥ ३० ॥ अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढम् । अस्य पुण्यस्य संपत्तेरहो वयमहो वयम् ॥ ३/३ ॥ अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो युखमही सुखम् । अही शास्त्रमही शास्त्रमही गुरुरही गुरुः ॥ ३२ ॥ इति य इदमधीते सोऽपि कृतकृत्यो भवति । सुरापानात्पूतो भवति । स्वर्णस्तेया-त्पूतो भवति । ब्रह्महत्यात्पूतो भवति । कृत्याकृत्यात्पूतो भवति । एवं विदित्वा स्वेच्छाचारपरो भूयादोंसत्यमित्युपनिषत् ॥ ३३ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

> ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥ इत्यवधृतोपनिषस्तमासा ॥ ८२॥

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ॥ ८३ ॥

त्रिपुरातापिनीविद्यावेद्यचिच्छक्तिविद्यहम् । वस्तुतश्चिन्मात्ररूपं परं तस्वं भजाभ्यहम् ॥ ३ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरि: ॐ ॥ अथैतस्मिन्नन्तरे भगवान्त्राजापत्यं वैष्णवं विलयकारणं खपमा॰ श्रित्य त्रिपुराभिधा भगवतीत्येवमादिशक्तया भूर्भुवः खस्रीणि खर्गभूपाता-लानि त्रिपराणि हरमायात्मकेन हीङ्कारेण हुछेखाख्या अगवती त्रिकटाव-साने निल्ये विलये धान्नि महसा घोरेण प्राप्तीति । सैवेयं भगवती निष् रेति व्यापट्यते । तत्सवितुर्वरेण्यं अर्गो देवस्य घीमहि । धियो यो नः प्रची-दयात परो रजसे सावदोम् । जातवेदसे खुनवाम सोममरातीयतो निद-हाति वेदः । स नः पर्पदिति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धं दुरितास्यप्तिः। ज्यस्वकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वाहकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय साम्रतात । शताक्षरी परमा विद्या त्रयीमयी साष्टाणी त्रिपुरा परसेक्षरी । आद्यानि चःवारि पदानि परब्रह्मविकासीनि । द्वितीयानि शक्तयाख्यानि । तृतीयानि शैवानि । तत्र लोका वेदाः शास्त्राणि पुराणानि धर्माणि वै चिकि-त्सितानि ज्योतींपि शिवशक्तियोगादित्येवं घटना व्यापट्यते। अथैतस्य परं गहरं व्याख्यासामो महामनुसमुद्भवं तदिति । ब्रह्म शाश्वतम् । परो भगवा-न्निर्छक्षणो निरक्षनो निरुपाधिराधिरहितो देवः । उन्मीलते पद्यति विका-सते चैतन्यभावं कामयत इति । स एको देवः शिवरूपी दश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते । कानं जायते । स एप निरक्षनोऽकामध्वे-नोज्जृम्भते । अकचटतपयशान्सृजते । तसादीश्वरः कामोऽभिचीयते । तत्व-रिभाषया कामः ककारं व्यामोति । काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते । ट आत्तलदार्थ इति य एवं वेद । सवितुर्वरेण्यमिति पूङ् प्राणिप्रसवे सविता प्राणिनः सूते प्रसूते शक्तिम् । सूते त्रिपुरा शक्तिराधेयं त्रिपुरा परमेश्वरी सहाकुण्डलिनी देवी। जातवेदसमण्डलं योऽधीते सर्वं व्याप्यते। त्रिकोण-क्राक्तिरेकारेण महाभागेन प्रसूते । तस्मादेकार एव गृह्यते । वरेण्यं श्रेष्ठं भज-नीयमक्षरं नमस्कार्यम् । तस्माद्वरेण्यमेकाराक्षरं गृह्यत इति य एवं वेद । अर्गो देवस्य घीमहीत्येवं व्याख्यास्यामः । धकारो धारणा । धियेव धार्यते अगवान्परमेश्वरः । भगों देवो सध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं सर्वाः न्तर्भतम् । तुरीयाक्षरमीकारं पदानां मध्यवर्तीत्येवं व्याख्यातं भगोंक्पं व्या-चक्षते । तस्माद्रगों देवस्य घीमहीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते । महीत्यस्य व्याख्यानं महत्त्वं जडत्वं काठिन्यं विद्यते यस्मिन्नक्षतेरेतन्महि लकारः परं धाम । कैाठिन्याट्यं ससागरं सपर्वतं ससप्तद्वीपं सकाननमुज्जनलदूपं मण्डल-मेवोक्त लकारेण। पृथ्वी देवी महीत्यनेन व्याचक्षते । थियो यो नः प्रची-दयात् । परमात्मा सदाशिव धादिभूतः परः । स्थाणुभूतेन लकारेण ज्योति-र्लिङ्गमात्मानं धियो बुद्धयः परे वस्तुनि ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पके प्रची-द्याः प्रेरयेदित्युचारणरहितं चेतसेव चिन्तयित्वा भावयेदिति। परो रजसे सावदोसिति तदवसाने परं ज्योतिरमछं हृदि देवतं चेतन्यं चिल्लिङ्गं हृदया-गारवासिनी हृ छेखेलादिना स्पष्टं वाग्भवकृटं पञ्चाक्षरं पञ्चभूतजनकं पञ्चक-लामयं न्यापत्यत इति । य एवं वेद । अथ तु परं कामकलाभूतं कामकूट-माहः । तत्सिनतुर्वरेण्यमित्यादिद्वात्रिंशदक्षरीं पठिःवा तदिति परमारमा सदाशिवोऽक्षरं विमलं निरुपाधितादात्म्यप्रतिपादनेन हकाराक्षरं शिवरूपं निर-क्षरसक्षरं व्यालिख्यत इति । तत्परागव्यावृत्तिमादाय शक्ति दर्शयति । तत्स-वितुरिति पूर्वेणाध्वना सूर्याधश्चनिद्रकां व्यालिख्य मूलादिवहारन्ध्रगं साक्षर-सद्वितीयसाचक्षत इत्याह अगवन्तं देवं शिवशक्त्यात्मकमेवोदितम् । शिवोऽयं गरमं देवं शक्तिरेषा तु जीवजा । सूर्याचन्द्रमसोर्यागाईसस्तवद्रमुच्यते ॥१॥ तसादुज्यस्थते कामः कामास्कामः परः शिवः । कार्णीऽयं कामदेवोऽयं वरेण्यं भर्ग उच्यते ॥ २ ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवः क्षीरं सेचनीयमक्षरं समध्वमक्षरं परमात्मजीवात्मनोयोगात्तदिति स्पष्टमक्षरं तृतीयं ह इति तदेव सदाशिव एव निष्कल्मष आद्यो देवोऽन्समक्षरं व्याकियते । परमं पदं घीति धारणं विद्यते जडत्वधारणं महीति ककारः शिवाधस्तानु ककारार्थः स्पष्ट-मैन्लमक्षरं परमं चेतन्यं धियो यो नः प्रचोदयात्परो रजसे सावदोमित्येचं कूटं कासकलालयं पडध्वपरिवर्तको वैष्णवं परमं धामैति भगवश्चितसाद्य एवं वेद । अथेतसादपरं तृतीयं शक्तिकृटं प्रतिपद्यते । द्वात्रिंशद्श्यर्थ वायण्या तत्सवितुर्वरेषयं तसादातमन आकाश आकाशाद्वायुः स्फ्रवति तद्धीनं वरेण्यं समुदीयमानं सवितुर्वा योग्यो जीवात्मपरमात्मसमुद्भवद्धं प्रकाशशक्तिरूपं जीवाक्षरं स्पष्टमापद्यते । भगों देवस्य धीत्यनेनाधाररूप-

श्चिवास्माक्षरं गण्यते । महीत्यादिनाशेषं काम्यं रमणीयं दृश्यं शक्तिकृटं स्पष्टीकृतमिति । एवं पञ्चद्शाक्षरं त्रेपुरं योऽघीते स सर्वान्कामानवामोति । स सर्वान्भोगानवामोति । स सर्वाञ्चोकाञ्जयति । स सर्वा वाचो विजम्म-यति । स रुद्रस्वं प्रामोति । स वैष्णवं धाम भिरवा परं ब्रह्म प्रामोति । य एवं वेद । इत्याचां विद्यामिभधायैतत्याः शक्तिकृटं शक्तिशिवाद्यं लोपासुद्दे-यम् । द्वितीये धामनि पूर्वेणैव मनुना बिन्दुहीना शक्तिभूतहछेखा क्रोधमु-निनाऽधिष्ठिता । तृतीये धामनि पूर्वस्था एव विद्याया यद्वागभवकूटं तेनैव मानवीं चान्हीं कोबेरीं विद्यामाचक्षते । मदनाधः शिवं वारभवस् । तद्रध्यं कामकलामयस् । शत्तयूर्ध्वं शक्तिमिति मानवी विद्या । चतुर्थे धामनि शिव-शक्तयाख्यं वाग्भवम् । तदेवाधः शिवशक्तयाख्यमन्यस्तीयं चेयं चान्द्री विद्या । पञ्चमे धामनि ध्येयेयं चान्द्री कामाधः शिवाद्यकामा । सैव कोवेरी षष्ठे धामनि व्याचक्षत इति । य एवं वेद । हित्वेकारं तुरीयस्वरं सर्वादौ सुर्याचन्द्रमस्केन कामेश्वर्येवागस्त्यसंज्ञा । सप्तमे धामनि वृतीयमेतस्या एव पूर्वोक्तायाः कामाद्यं द्विधाधः कं सदनकलाद्यं शक्तिवीजं वारभवाद्यं तयो-रधींवशिरस्कं कृत्वा नन्दिविद्येयम् । अष्टमे श्रामनि वाग्भवमागस्यं वागर्थ-कलामयं कामकलाभिधं सकलमायाशक्तिः प्रभाकरी विद्ययम् । नवसे धामनि पुनरागरत्यं वारभवं शक्तिमन्मथशिवशक्तिमन्मथोवींमायाकासकलालयं चन्द्र--सूर्यानङ्गधूर्जिटिमहिमालयं नृतीयं घण्मुखीयं विद्या । दशसे धामनि विद्याप्रका-जितया भूय एवागस्त्रविद्यां पठित्वा भूय ख्वेसामन्त्रमायां परमशिवविद्येय-सेकादक्के धामनि भूय एवागस्त्यं पठित्वा एतस्या एव वाग्भवं यद्धनजं काम-कलालयं च तत्सहजं कृत्वा लोपासुद्रायाः शक्तिकूटराजं पठित्वा वैष्णवी विद्या द्वादरो धामनि व्याचक्षत इति ॥ ३ ॥ य एवं वेद । तान्हीवाच भगवान्सर्वे यूयं श्रुत्वा पूर्वा कामाख्यां तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कटां सर्वमन्नासन-गतां पीठोपपीठदेवतापरिवृतां सकलकलाच्यापिनीं देवतां सामोदां सपरागां सहद्यां सामृतां सकलां सेन्द्रियां सद्ोदितां परां विद्यां स्पष्टीकृत्वा हृद्ये निधाय विज्ञायानिलयं गमयित्वा त्रिकूटां त्रिपुरां परमां मायां श्रेष्ठां परां वैष्णवीं संनिधाय हृद्यकमलकर्णिकायां परां भगवतीं लक्ष्मीं मायां सदोदितां - सहावश्यकरीं मदनोन्मादनकारिणीं धनुर्वाणधारिणीं वारिवजृम्भिणीं चन्द्र-

मण्डलमध्यवर्तिनीं चन्द्रकलां ससद्शीं महानित्योपस्थितां पाशाक्कशमनोज्ञ-पाणिपछवां समुचद्किनिभां त्रिनेत्रां विचिन्त्य देवीं महालक्ष्मीं सर्वलक्षमीमर्थीं सर्वलक्षणसंपन्नां हृदये चेतन्यरूपिणीं निरक्षनां त्रिक्टाल्यां स्मितमुर्खी सुन्द्रीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीमकथादि-श्रीपीठे परां भैरवीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेनेयमेवं वेदेति महोपनिषद् ॥ ४ ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनित्सु प्रथमोपनिषत्॥ १॥

अथातो जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा त्रेपुरी व्यक्तिर्रुक्यते। जातवेदस इत्येकचेंसूकस्याद्यमध्यमावसानेषु तत्र स्थानेषु विलीनं वीजसागर-रूपं व्याचक्ष्वेत्यृपय ऊचुः । तान्होवाच भगवाञ्जातवेदसे सुनवाम सोमं तदन्त्यमवाणीं विलोमेन पठित्वा प्रथमस्याद्यं तदेवं दीर्घं द्वितीयस्याद्यं सुन-वाम सोमित्यनेन कौरूं वामं श्रेष्ठं सोमं महासौभाग्यमाचक्षते। स सर्व-संपत्तिभूतं प्रथमं निवृत्तिकारणं द्वितीयं स्थितिकारणं तृतीयं सर्गकारणमित्य-नेन करशुद्धिं कृत्वा त्रिपुराविद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममि-त्यादि पठित्वा महाविद्येश्वरीविद्यामाचक्षते त्रिपुरेश्वरीं जातवेदस इति । जाते आद्यक्षिरे मातृकायाः शिरसि वैन्द्वममृतरूपिणीं कुण्डलिनीं त्रिकोणरूपिणीं चेति वाक्यार्थः । एवं प्रथमस्याद्यं वाग्भवम् । द्वितीयं कामकलालयम् । जात इत्यनेन परमात्मनो जुम्भणम् । जात इत्यादिना परमात्मा शिव उच्यते । जातमात्रेण कामी कामयते काममिलादिना पूर्णं व्याचक्षते । तदेव सुनवाम गोत्रारूढं मध्यवर्तिनाऽसृतमध्येनार्णेन मन्नार्णान्स्पष्टीकृत्वा । गोत्रेति नामगोत्रायामित्यादिना स्पष्टं रामकङालयं शेषं वाममित्यादिना । पूर्वेणा-ध्वना विद्येयं सर्वरक्षाकरी व्याचक्षते । एवमेतेन विद्यां त्रिपुरेशीं स्पष्टीकृत्वा जातवेदस इत्यादिना जातो देव एक ईश्वरः परमो ज्योतिर्मञ्जतो वेति तुरीयं वरं दस्वा विन्दुपूर्णज्योतिःस्थानं कृत्वा प्रथमस्यादं द्वितीयं च तृतीयं च सर्वरक्षाकरीसंबन्धं कृत्वा विद्यामात्मासनरूपिणीं स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा रक्षाकरीं विद्यां स्मृत्वाद्यन्तयोधीं होः शक्ति-शिवरूपिणीं विनियोज्य स इति शक्तयात्मकं वर्णं सोममिति शैवात्मकं धाम जानीयात्। यो जानीरो स सुभगो भवति ॥ १ ॥ एवमेतां चक्रासनगतां त्रिपुरवासिनीं विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममिति पठित्वा

त्रिपुरेश्वरीविद्यां सदोदितां शिवशक्तयात्मिकामाचेदितां जातवेदाः शिव इति सेति शक्तयास्माक्षरमिति शिवादिशक्तयन्तराळभूतां त्रिक्टादिचारिणीं सूर्याः चन्द्रमस्कां मञ्जासनगतां त्रिपुरां महालक्ष्मीं सदोदितां स्पष्टीकृत्वा जात-वेद्से सुनवाम सोमामित्यादि पठित्वा पूर्वा सदात्मासनरूपां विद्यां स्मृत्वा वेद इलादिना विश्वाहसंततोदयवेन्दवसुपरि विन्यस्य सिद्धासनस्थां त्रिपुरां मालिनीं विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोमामिलाहि पिठत्वा त्रिपुरां सुन्दरीं श्रित्वा कले अक्षरे विचिन्त्य स्तिंभृतां स्तिंकिपणी सर्वविद्येश्वरीं त्रिपुरां विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेद्से इत्यादि पठित्वा त्रिपुरां लक्ष्मीं श्रिःवाऽशिं निदहाति सेवेयसस्यानने ज्वलतीति विचिन्त्य त्रिज्योति-षसीश्वरीं त्रिपुरामस्वां विद्यां स्पष्टीकुर्यात् । एवसेतेन स नः पर्षदित दुर्गाण विश्वेत्यादिपरप्रकाशिनी प्रत्यस्थता कार्या । विद्ययसाह्यानकर्मणि सर्वती धीरेति व्याचक्षते । एवमेतिद्विद्याष्टकं महासायादेव्यङ्गभूतं व्याचक्षते । देवा ह वै भगवन्तमञ्जवन्महाचक्रनायकं नो बूहीति सार्वकासिकं सर्वाराध्यं सर्व-रूपं विश्वतोमुखं मोक्षद्वारं यद्योगिन उपविदय परं ब्रह्म भिन्ता निर्वाणसुप-विशन्ति॥ २॥ तान्होवाच सगवाञ्शीचकं व्याख्यास्याम इति। त्रिकोणं त्र्यसं कृत्वा तद्न्तर्मध्यवृत्तमानयष्टिरेखामाकृष्य विशालं नीत्वात्रतो योनिं कृत्वा पूर्वयोन्यग्ररूपिणीं मानयिं कृत्वा तां सर्वोध्वा नीत्वा योनिं कृत्वाद्यं त्रिकोणं चकं भवति । द्वितीयमन्तरार्छं भवति । नृतीयमष्टयोन्यङ्कितं भवति । अथा-ष्टारचकाद्यन्तविदिक्कोणायतो रेखां नीत्वा साध्याद्याकर्षणबद्धरेखां नीत्वेसे-वसथोध्वंसंपुटयोन्यङ्कितं कृत्वा कक्षाभ्य जध्वंगरेखाचतुष्टयं कृत्वा यथाक्रमेण मानयष्टिद्वयेन दशयोन्यङ्कितं चकं अवति । अनेनैव प्रकारेण पुनर्दशारचकं अवति । सध्यत्रिकोणायचतुष्टयादेखाचरायकोणेषु संयोज्य तद्शारांशतोनीतां मानयष्टिरेखां योजयित्वा चतुर्दशारं चकं भवति । ततोऽष्टपत्रसंवृतं चकं अवति । षोडशपत्रसंवृतं चकं चतुर्द्वारं अवति । ततः पार्थिवं चकं चतुर्द्वारं भवति । एवं सृष्टियोगेन चकं व्याख्यातस् । नवात्मकं चकं प्रातिलोग्येन वा विच्य । प्रथमं चकं त्रेलोक्यमोहनं भवति । साणिमाद्यष्टकं समात्रष्टकं अवति । ससर्वसंक्षोभिण्यादिदशकं अवति । सप्रकटं अवति । त्रिपुरयाधिष्टितं भवति ससर्वसंक्षोभिणीसुद्या जुष्टं भवति । द्वितीयं सर्वाशाः

परिपूरकं चकं भवति सकामाद्याकपिंणीपोडशकं भवति । सगुप्तं भवति । त्रिपुरेश्वर्याधिष्ठितं अवति । सर्वविदाविणीसुद्रया जुष्टं भवति । तृतीयं सर्व-संक्षोअणं चकं अवति । सानङ्गकुसुमाद्यष्टकं भवति । सगुप्ततरं भवति । त्रिप्रसन्दर्भाऽधिष्ठितं भवति । सर्वाकर्षिणीसुद्रया जुष्टं भवति । तुरीयं सर्व-सीभाग्यदायकं चर्कं भवति । ससर्वसंक्षोभिण्यादिद्विसप्तकं भवति । ससंप्रदायं अवति । त्रिपुरवासिन्याधिष्टितं भवति । सप्तर्ववशंकरिणीमुद्रया जुष्टं भवति । तरीयान्तं सर्वार्थसाधकं चकं भवति । सप्तर्वसिद्धिप्रदादिदशकं भवति । सक-ळकाँळं भवति । त्रिपुरामहालक्ष्याऽधिष्ठितं भवति । महोन्मादिनीसुद्रया जुष्टं अवति । ष्ष्ठं सर्वरक्षाकरं चकं भवति । ससर्वज्ञत्वादिदशकं भवति । सनिगर्भ सवति । त्रिपुरमालिन्याऽधिष्ठितं भवति । महाङ्करामुद्रया जुष्टं अवति । सप्तमं सर्वरोगहरं चकं भवति । सर्वविशन्याद्याप्टकं भवति । सरहस्यं भवति । त्रिपुरतिचाऽधिष्टितं भवति । सखेचरीमुद्रया जुष्टं भवति । अष्टमं सर्व-सिद्धिपदं चकं भवति । सायुधचतुष्टयं भवति । सपरापररहस्यं भवति । त्रिपुरास्वयाऽधिष्टितं भवति । वीजमुद्रयाऽधिष्टितं भवति । नवमं चक्रनायकं भवीनन्द्रमयं चकं भवति । सकामेश्वर्यादित्रिकं भवति । सातिरहसं भवति । महात्रिपुरसुन्दर्याऽधिष्टितं भवति । योनिसुद्रया जुष्टं भवति । संकामन्ति वै सर्वाणि छदांसि चकाराणि । तदेव चकं श्रीचकम् । तस्य नाश्यामग्नि-मण्डले सूर्याचन्द्रमसो । तत्रोंकारपीठं पूजयित्वा तत्राक्षरं विन्दुरूपं तद-न्तर्गतच्योमरूपिणीं विद्यां परमां स्पृत्वा महात्रिपुरसुन्दरीमावाद्य । क्षीरेण स्नापिते देवि चन्दनेन विलेपिते । विस्वपत्राचिते देवि दुर्गेऽहं शरणं गतः । इसेकयर्चा प्रार्थ्य मायालक्ष्मीतत्रेण पूजयेदिति भगवानववीत्। एतेर्राग्रे-भगवतीं यजेत्। ततो देवी प्रीता भवति। स्वात्मानं दर्शयति। तसाद्य पुतैर्भन्नेर्यजति स ब्रह्म पश्यति । स सर्वं पश्यति । सोऽमृतस्वं च गच्छति । य एवं वेदेति महोपनिषत्॥ ३॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

देवा ह वे सुद्राः स्रुजेमेति भगवन्तमब्रुवन् । तान्होवाच भगवानविनकृतजानुमण्डलं विस्तीर्थ पद्मासनं कृत्वा सुद्राः स्रुजतेति । स सर्वानाकर्षयिति
यो योनिसुद्रामधीते स सर्वं वेत्ति स सर्वे फलमश्रुते स सर्वान्यक्षयति स विद्वेषिणं स्तस्भयति । मध्यमे अनामिकोपरि विन्यस्य कनिष्टिका-

क्कुष्ठतोऽधीते मुक्तयोस्तर्जन्योर्दण्डवद्धस्तादेवंविधा प्रथमा संपद्यते । सैव मिलितमध्यमा द्वितीया । तृतीयाङ्कशाकृतिरिति । प्रातिकोश्येन पाणी सङ्घर्ष-यित्वाङ्क्षष्टौ साधिमौ समाधाय तुरीया । परस्परं कनीयसेदं मध्यमावदे अनामिके दण्डिन्यो तर्जन्यावालिङ्ग्यावष्टभ्य मध्यमानखमिलिताङ्क्षप्टौ पञ्चमी। सैवाग्रेऽह्वशाकृतिः षष्टी । दक्षिणशये वामबाहुं कृत्वाऽन्योन्यानामिके कनीय-सीमध्यगते मध्यमे तर्जन्याकान्ते सरलास्बङ्ख्या सेचरी सप्तमी। सर्वोध्वे सर्वसंहति स्वमध्यमानामिकान्तरे कनीयसि पार्श्वयोस्तर्जन्यावङ्कशास्त्रे युक्ता साञ्ज्रध्योगतोऽन्योन्यं सममञ्जलिं कृत्वाऽष्टमी । परस्परमध्यमापृष्ठवर्तिन्यावः नामिके तर्जन्याकान्ते समे मध्यमे आदायाङ्ग्रष्टी मध्यवर्तिनी नवमी प्रति-पद्यत इति । सेवेयं कतीयसे समे अन्तरितेऽ जुष्टो समावन्तरितो कृत्वा त्रिखण्डापद्यत इति । पञ्च बाणाः पञ्चाद्या मुद्राः स्पष्टाः । क्रोमङ्करा । हस-खुफ्रं खेचरी । हस्रों वीजाष्टमी वाग्भवाद्या नवसी दशमी च संपद्यत इति। य एवं वेद । अथातः कामकलाभूतं चकं व्याख्यासामी हीं क्रीमें व्हूँ खीमेते पञ्च कामाः सर्वचकं व्यावर्तन्ते । मध्यमं कामं सर्वावसाने संपुटीकृत्य ब्लूंका-रेण संपुटं व्यासं कृत्वा द्विरेन्द्वेन मध्यवर्तिना साध्यं बद्धा भूर्जपत्रे यजति। तक्क यो वेत्ति स सर्व वेत्ति । स सकलाँ छोकानाकर्पयति । सर्व सम्भ-यति । नीलीयुक्तं चकं रात्रूनमारयति । गतिं स्तरभयति । लाक्षायुक्तं कृत्वा सक्ललोकं वसीकरोति । नवलक्षजपं कृत्वा रुद्रस्वं प्राप्नोति। मानृकया वेष्टितं कृत्वा विजयी अवति । भगाङ्ककुण्डं कृत्वामिमाधाय पुरुषो हविषा हुत्वा योषितो वशीकरोति । वर्तुछे हुत्वा श्रियमतुका प्रामोति । चतुरसे हुत्वा वृष्टिर्भवति । त्रिकोणे हुत्वा शत्रून्मारयति । गतिं स्तम्भयति । पुष्पाणि हुत्वा विजयी भवति । महारसिर्हुत्वा परमानन्दनिर्भरो भवति । गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपसश्रवस्तमम् । ज्येष्ठ-राजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रण्वज्ञृतिभिः सीद सादनम् । इत्ये॰ वमाद्यमक्षरं तद्वत्यविन्दुपूर्णमित्यनेनाङ्गं स्पृशति । गं गणेशाय नमं इति गणेशं नमस्क्रवीत । ॐ नमी अगवते अस्माङ्गरागायोग्रतेजसे इन इन दह दह पच पच सथ सथ विध्वंसय विध्वंसय हलसञ्जन सूलमूले व्यञ्जनः सिद्धिं कुरु कुरु समुद्दं पूर्वप्रतिष्ठितं शोषय शोषय स्तम्भय स्तम्भय परमञ्च परयञ्जपस्तज्ञपस्तूतपरकटकपरच्छेदनकर विदारय विदारय चिछन्धि चिछन्धि

हीं फद स्वाहा । अनेन सेत्राध्यक्षं पूजयेदिति । कुलकुमारि विद्यहे मत्रको-रिषु धीमहि । तज्ञः कौलिः प्रचोदयात् । इति । कुमायंचनं कृत्वा यो नै साध-कोऽभिलिखति सोऽस्तत्वं गच्छति । स यद्य आमोति । स परमायुष्यमथ-वा परं ब्रह्म भिरवा तिष्ठति । य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥

देवा ह वे भगवन्तमञ्जवन्देव गायत्रं हृदयं नो व्याख्यातं त्रेपुरं सर्वोत्त-मम् । जातवेदससूक्तेनाख्यातं नस्रेपुराष्टकम् । यदिष्टा मुच्यते योगी जन्म-संसारवन्धनात् । अथ मृत्युंजयं नो बूहीत्येवं बुवतां सर्वेषां देवानां श्रुत्वेदं वाक्यमथातस्वयम्बकेनानुष्टुभेन सृत्युंजयं दर्शयति । कस्मान्नयम्बकमिति । त्रयाणां पुराणामस्वकं स्वामिनं तसादुच्यते व्यम्बकमिति । अथ कसादुच्यते यजामह इति । यजामहे सेवामहे वस्तु महेत्यक्षरद्वयेन कूटत्वेनाक्षरैकेण मृत्युंजयभित्युच्यते तसादुच्यते यजामह इति । अथ कसादुच्यते सुगन्धि-मिति । सर्वतो यश आमोति । तस्मादुच्यते सुगन्धिमिति । अथ कस्मादु-च्यते पुष्टिवर्धनमिति । यत्सर्वाङ्घोकानस्जति यत्सर्वाङ्घोकांसारयति यत्सर्वा-छोकान्व्यामोति तस्मादुच्यते पुष्टिवर्धनमिति । अथ कस्मादुच्यते उर्वास्क-मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयेति । संल्लग्नत्वादुर्वास्कमिव मृत्योः संसारवन्धनाः त्सं इमत्वाइद्द्वान्मोक्षीभवति मुक्तो भवति । अथ कसादुच्यते मामृता-दिति असृतत्वं प्रामोत्यक्षरं प्रामोति स्वयं रुद्रो भवति । देवा ह वै भगव-न्तमूचुः सर्वं नो व्याख्यातम् । अथ कैर्मेत्रेः स्तुता भगवती स्वात्मानं दर्श-यति तान्सर्वाञ्छेवान्वैष्णवान्सौरान्गाणेशान्नो बूहीति । स होवाच भगवां-ख्यम्बकेनानुष्टुभेन सृत्युंजयसुपासयेत् । पूर्वेणाध्वा व्यासमेकाक्षरमिति स्मृतम् । ॐ नमः शिवायेति याज्ञवमत्रोपासको रुद्रस्वं प्राप्तोति । कल्याणं प्रामोति । य एवं वेद । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । विष्णोः सर्वतोमुखस्य स्नेहो यथा परुलपिण्डमोतप्रोतमनुज्यासं व्यतिरिक्तं व्याप्नुत इति व्याप्नुवतो विष्णोस्तत्परमं पदं परं व्योमेति परमं पदं पश्यन्ति वीक्षन्ते । सूरयो ब्रह्मादयो देवास इति सदा हृदय आद्धते । तसाद्विष्णोः स्वरूपं वसति तिष्ठति भूतेष्विति वासुदेव इति । ॐ नम इति त्रीण्यक्षराणि । भगवत इति चःवारि । वासुदेवायेति पञ्चाक्षराणि । एतद्वै

१ हि.ससं प्राप्तीते,

वासुदेवस्य द्वादशार्णमभ्येति । सोपष्ठवं तरति । स सर्वमायुरेति । विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं च तमश्चते प्रस्मानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम-कार उकारो मकार इति । तानेकधा संभवति तदोधिति । हंसः शुचिपद्वपु-रन्तरिक्षसद्धोता वेदिषद्विधिर्दुरोणसत् । नृपद्वरसहतसद्योमसदद्वा गोजा ऋतजा अदिजा ऋतं बृहत् । हंस इत्येतन्मनोरक्षरिद्वितीयेन प्रभापुञ्जेन सौरेण धतमञ्जा गोजा ऋतजा अदिजा ऋतं सत्या-प्रभा-पुञ्जि-न्युपा-संध्या-प्रजािभः शक्तिभः पूर्वं सौरमधीयानः सर्वं फलमश्चते । सत्योक्षिपरमे धामित सौरे निवसते । गणानां त्वेति त्रेष्टुभेन पूर्वेणाध्वना सनुनेकाणेन गणाधिप-सभ्यव्यं गणेशत्वं प्राप्तोति । अथ गायत्री सावित्री सरस्वत्यजपा मानृका प्रोक्ता तया सर्वसिदं व्यासम् । ऐं वागिश्वरि विद्यहे छीं कामेश्वरि धीमिहि । सौराजः शक्तिः प्रचोदयादिति । गायत्री प्रातः सावित्री मध्यन्दिने सरस्वती सायमिति निरन्तरमजपा । हंस इत्येव सानृका । पञ्चाशद्वर्णवित्रहेणाकारा-दिक्षकारान्तेन व्यासानि श्वनानि शास्त्राणि छन्दांसित्येवं भगवती सर्वं व्याप्तोति सर्वे नमो नम इति । तान्भगवानवत्रीदेतेर्मञ्जेनित्यं देवीं यः स्तौति स सर्वं पर्यति । सोऽस्वतः च गच्छित । य एवं वेदेत्युपनिषत्॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत् ॥ ४॥

देवा ह वे अगवन्तमञ्चवन्त्वासिन्नः कथितं स्फुटं क्रियाकाण्डं सिववयं नेपुरसिति। अथ परमिनिर्विशेषं कथयस्वेति। तान् होवाच अगवांस्तुरीयया माययाऽन्त्यया निर्दिष्टं परमं ब्रह्मेति। परमपुरुषं चिद्रूपं परमात्मेति। श्रोता मन्ता द्रष्टाऽऽदेष्टा स्प्रष्टा घोष्टा विज्ञाता प्रज्ञाता सर्वेषां पुरुषाणामन्तःपुरुषः स आत्मा स विश्चेय इति। न तत्र लोका अलोका न तत्र देवा अदेवाः पश्चोऽपशवस्तापसो न तापसः पौल्कसो न पौल्कसो विप्रा न विष्राः। स इत्येक्षेय परं ब्रह्म विश्वाजते निर्वाणम्। न तत्र देवा ऋपयः पितर ईशते प्रति- चुद्धः सर्वविद्येति। तत्रेते श्लोका अवन्ति—अतो निर्विपयं नित्यं मनः कार्यं सुमुक्षुणा। यतो निर्विषयो नाम मनसो मुक्तिरिष्यते॥ १॥ मनो हि द्विष्यं प्रोक्तं ग्रद्धं चाग्रुद्धं मा समसो स्वान्ते श्लोकं ग्रद्धं चाग्रुद्धं कामसंकर्त्यं ग्रद्धं कामविवर्विनतम्॥ २॥ मन प्रव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः। वन्धनं विषयासकं सुक्त्यं निर्विषयं मनः॥ ३॥ निरस्तविषयासङ्गं संनिरुष्यं मनो हि । यदा यात्यमनीभावस्तदा तत्यरमं पद्दस्॥ ४॥ तावदेव निरोद्ध्यं यावद्वः

दिगतं क्षयम् । एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो प्रन्थविस्तरः ॥ ५ ॥ नैव चिन्ह्यं न चाचिन्त्यं नाचिन्त्यं चिन्त्यमेव च । पक्षपातवितिमुक्तं ब्रह्म संपद्यते धुवस् ॥ ६॥ स्वरेण संह्रयेद्योगी स्वरं संभावयेत्परस् । अस्वरेण तु आबेन न भावो भाव इष्यते ॥ ७ ॥ तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्ज-नम् । तद्रह्माहमिति ज्ञात्त्रा ब्रह्म संपद्यते कमात् ॥ ८॥ निर्विकल्पमनन्तं च हेतुरष्टान्तवर्जितस् । अप्रमेयमन। चन्तं यज्ज्ञात्वा मुच्यते बुधः ॥ ९ ॥ न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वे मुक्त इत्येषा पर-सार्थता ॥ १० ॥ एक एवात्मा सन्तच्यो जाग्रत्स्वससुपुरिषु । स्थानत्रयव्यती-तस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ११ ॥ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दश्यते जलचन्द्रवत् ॥ १२ ॥ घटसंवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा। घटो नीयेत नाकाशं तथा जीवो नभोपमः॥ १३॥ घटबद्विवि-धाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः । तद्वेदे च न जानाति स जानाति च नित्यसः ॥ १४ ॥ शब्दमायावृतो यावत्तावत्तिष्ठति पुष्कले । भिन्ने तमसि चैकत्वमेक एवानुपद्यति ॥ १५ ॥ शब्दार्णसपरं ब्रह्म तस्मिन्क्षीणे यद्क्षरम् । तद्विद्वा-नक्षरं ध्याये चदी च्छे च्छान्तिमात्मनः ॥ १६ ॥ द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये शब्द-ब्रह्म परं च यत् । शब्द्बह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १७॥ ब्रन्थ-सभ्यस्य सेधावी ज्ञानविज्ञानतःपरः। पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्रन्थम-शेषतः ॥ १८ ॥ गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता । क्षीरवत्पद्यति ज्ञानी लिङ्गिनस्तु गर्वा यथा ॥ १९ ॥ ज्ञाननेत्रं समाधाय स महत्परमं पदम्। निष्कलं निश्चलं शान्तं ब्रह्माहमिति संसारेत् ॥ २०॥ इत्येकं परब्रह्मरूपं सर्वभृताधिवासं तुरीयं जानीते सोऽक्षरे परमे व्योमन्यधिवसति । य एतां विद्यां तुरीयां ब्रह्मयोनिस्वरूपां तामिहायुपे शरणमहं प्रपद्ये । भाकाशाचतुः कसेण सर्वेषां वा एतन्द्रतानामाकाशः परायणम् । सर्वाणि ह वा इमानि भूलान्याकाशादेव जायन्ते । आकाश एव लीयन्ते । तसादेव जातानि जीवन्ति । तस्मादाकाशजं वीजं विन्द्यात् । तदेकाकाशपीठं स्पार्शनं पीठं तेजःपीठमसृतपीठं रलपीठं जानीयात् । यो जानीते सोऽसृतरवं च गच्छति । तसादेतां तुरीयां श्रीकामराजीयामेकादशधा भिन्नामेकाक्षरं ब्रह्मेति यो जानीते स तुरीयं पदं प्रामोति। य एवं वेदेति महोपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत्स पश्चमोपनिषत् ॥ ५ ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ इति श्रीत्रिपुरातापिन्युपनिपरसमाप्ता ॥ ८३ ॥ देव्युपनिषत् ॥ ८४ ॥ श्रीदेव्युपनिषद्विद्यावेद्यापारसुखाकृति । त्रैपदं ब्रह्मचेतन्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरि: ॐ॥ सर्वे वे देवा देवीसुपतस्थुः। कासि त्वं महादेवि। सानवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यं चात्रून्यं च अहमानन्दाः नानन्दाः विज्ञानाविज्ञाने अहम् । ब्रह्मा ब्रह्मणी वेदितव्ये । इत्याहाथर्वणी श्रुतिः। अहं पञ्च भूतान्यपञ्चभूतानि । अहमखिलं जगत् । वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहस्। अजाहमनजाहस्। अधश्रोध्वं च तिर्यवचाहस्। अहं रुद्रेभि-र्चसुभिश्वराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं सित्रावरुणानुभौ विभम्यहिमिन्दाप्ती अहमश्विनाबुभौ। अहं सोमं व्वष्टारं पूषणं भगं द्धास्यहम् ॥ १ ॥ विष्णुमुरुकमं ब्रह्माणमुत प्रजापति द्धामि । अहं द्धासि द्वविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३ यजमाः नाय सुन्वते ॥ २ ॥ अहं राष्ट्री सङ्गमनी वस्तुनामह सुवे पितरमस्य मूर्धनमम योनिरप्खन्तः समुद्रे । एवं वेद स देवीपदमामोति । ते देवा अनुवन् । नमो देव्ये महादेव्ये शिवाये सततं नमः। नमः प्रकृत्ये भदाये नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ३ ॥ तामिशवर्णां तपसा उवलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेष जुष्टाम् । दुर्गां देवीं शरणमहं प्रवचे सुतरां नाशयते तमः ॥ ४ ॥ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पश्चो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्ज दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥ ५ ॥ कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्द-मातरम् । सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥ ६ ॥ महा-लक्ष्मीश्च निग्नहे सर्वासिद्धिश्च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्॥ ७॥ अदि-तिर्द्धजिनिष्ट दक्ष या दुहिता तव । तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतवन्धवः ॥ ८ ॥ कामो योनिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा हसा । मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः पुनर्गुहा सकला मायया च पुनः कोशा विश्वमाता दिवि द्योम् ॥ ९ ॥ एषा-ऽऽत्मशेक्तिः । एषा विश्वमोहिनी पाशाङ्कराधनुर्वाणधरा । एषा श्रीमहाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरित । नमस्ते अस्तु भगवति भवती मातरस्मान्पातु सर्वतः । सैषाऽष्टौ वसवः । सैषैकादश रुद्धाः । सैषा द्वादशादित्याः । सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च । सेषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाच-यक्षाः सिद्धाः । सैषा सत्त्वरजस्तमांसि । सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः । सेषा प्रहा

नक्षत्रज्ञयोतीं कि कलाकाष्टादिकालरूपिणी । तामहं प्रणौमि नित्यम् । तापाप-हारिणीं देवीं अक्तियुक्तिप्रदायिनीस् । अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवास् ॥ १० ॥ वियदाकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितस् । अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥ ११ ॥ एवमेकाक्षरं मत्रं यतयः शुद्धचेतसः । ध्यायन्ति परसानन्दसया ज्ञानाम्बुराशयः ॥ १२ ॥ वाद्यया ब्रह्मभूसस्मा-त्वष्ठं वक्त्रसमन्वितस् । सूर्यो चामश्रोत्रबिन्दुः संयुताष्टतृतीयकः ॥ १३ ॥ नारायणेन संयुक्ती वायुश्वाधरसंयुतः । विश्वे नवार्णकोऽर्णः स्थान्महदान-न्ददायकः ॥ १४ ॥ हत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम् । पाज्ञाङ्करा-थरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् । त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भने ॥ ६५ ॥ नमामि त्वामहं देवीं महाभयविनाशिनीम् । महादुर्गप्रशमनी महाकारुण्यरूपिणीम् ॥ १६ ॥ यस्याः स्वरूपं ब्रह्माद्यो न जानन्ति तस्मा-दुच्यतेऽज्ञेया । यस्या अन्तो न विद्यते तस्मादुच्यतेऽनन्ता । यस्या प्रहणं नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽलक्ष्या । यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽजा । पुकेव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यत एका । एकेव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यतेऽज्ञेयाऽनन्ताऽलक्ष्याऽजेका नैकेति। मन्नाणां मानुका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी । ज्ञानानां चिन्मयातीता श्रून्यानां श्रून्यसाक्षिणी ॥ १७ ॥ यस्याः प्रतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता [दुर्गात्संत्रायते यसादेवी दुर्गेति कथ्यते ॥ १८ ॥ प्रपद्ये शरणं देवी दुंदुर्गे दुरितं हर ॥] तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम् । नमामि भवभीतोऽहं संसारा-र्णवतारिणीम् ॥ १९ ॥ इदमथर्वशीर्षं योऽघीते स पञ्चाथर्वशीर्घजपफलम-वामोति । इदमथर्वशीर्षं ज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति । शतलक्षं प्रजस्वापि सोऽचीिसिद्धिं च विन्दति । शतमष्टोत्तरं चास्याः पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥२०॥ दशवारं पठेचस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते । महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसा-दुतः ॥ २१ ॥ प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । तस्तायंप्रातः प्रयुक्षानः पापोऽपापो अवति । निशीथे तुरीयसंध्यायां जस्वा वाक्सिद्धिर्भवति । नृतनप्रतिमायां जस्वा देवतासांनिध्यं भवति । प्राणप्रतिष्टायां जस्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति । भौमाश्वियां महादेवीसंनिधौ जात्वा महामृत्युं तरित । य एवं वेदेत्युप-निषत् ॥ २२ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इति देव्युपनिषत्समाप्ता॥ ८४॥ त्रिपुरोपनिषत् ॥ ८५ ॥ त्रिपुरोपनिषद्देचपारमेश्वर्यवैभवम् । अखण्डानन्दसाम्राज्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १॥ ॐ वास्रे मनसीति शान्तिः॥

ॐ तिस्रः पुरस्तिपथा विश्वचर्षणा अत्राकथा अक्षराः संनिविष्टाः । अधि-ष्टायैना अजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम् ॥ १ ॥ नवयोनीनव-चक्राणि द्धिरे नवैव योगा नव योगिन्यश्च । नवानां चक्रा अधिनाथा स्थोना नव अद्रा नव सुद्रा महीनास् ॥ २ ॥ एका स आसीत्प्रथमा सा नवासीदासोनविंशादासोनिंशात् । चत्वारिंशाद्थ तिस्रः समिधा उशती-रिव मातरो मा विशन्तु ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वज्वलज्वलनं ज्योतिरप्रे तमो वै तिर-श्रीनमजरं तद्रजोऽभूत् । आनन्दनं मोदनं ज्योतिरिन्दोरेता उ वै मण्डला मण्डयन्ति ॥ ४ ॥ यास्तिस्रो रेखाः सद्नानि अस्त्रीस्त्रिविष्टपास्त्रिगुणास्त्रिय-काराः । एतत्रयं पूरकं पूरकाणां मन्नी प्रथते मदनो मदन्या ॥ ५ ॥ मद-न्तिका मानिनी सङ्गला च सुभागा च सा सुन्द्री सिद्धिमत्ता । लजा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा लक्ष्मीरुमा लिलता लालपन्ती ॥ ६ ॥ इमां विज्ञाय सुधिया मदन्ती परिस्नुता तर्पयन्तः स्वपीठम् । नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति परं धाम त्रेपुरं चाविशन्ति ॥ ७ ॥ कासो योतिः कामकला वज्रपाणिर्गुहा-हसा मातरिश्वाश्रमिन्द्रः । पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमा-तादिविद्या ॥ ८ ॥ पष्टं सप्तममथ विद्वसारिधमस्या मूलित्रकमादेशयन्तः । कथ्यं कविं करपकं काममीशं तुष्टुवांसो असृतत्वं अजन्ते ॥ ९ ॥ पुरं हन्नी-सुखं विश्वमात् रवे रेखा स्वरमध्यं तदेषा । वृहत्तिथिर्दश पञ्च च निसा सपोडशीकं पुरमध्यं विभाति ॥ १० ॥ यहा मण्डलाहा स्तनविस्वमेकं मुखं चाधस्त्रीणि गुहासदनानि । कामी कलां कामरूपां चिकित्वा नरो जायते कामरूपश्च कामः ॥ ११ ॥ परिस्रुतं झघमाजं फलं च भक्तानि योनीः सुप-रिष्कृताश्च । नियेदयन्देवतायै महत्ये स्वात्मीकृते सुकृते सिद्धिमेति ॥ १२ ॥ सुण्येव सितया विश्वचर्षणिः पारोनेव प्रतिवक्षात्यभीकाम् । इपुभिः पञ्चभि-र्धनुषा च विध्यत्यादिशक्तिररुणा विश्वजन्या॥ १३॥ भगः शक्तिर्भगवा-न्काम ईश उथा दाताराविह सौभगानाम् । समप्रधानौ समसन्त्रौ समोजौ

तयोः शक्तिरजरा विश्वयोनिः ॥ १४ ॥ परिस्नुता हविषा भावितेन प्रसंकोचे गिलिते वैमनस्कः । शर्वः सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति ॥ १५ ॥ इयं महोपनिषत्रेषुर्या यामक्ष्यं परमो गीभिरीटे । एपर्ग्यंजः परमोनेत्व सामायमथर्वेयमन्या च विद्या ॥ १६ ॥ ॐ हीमों हीमित्युपनिषत् ॥ हिरः ॐ तत्सत् ॥

ॐ वाङ्मे सनसीति शान्तिः॥ इति श्रीत्रिपुरोपनिषत्समाप्ता॥ ८५॥

कठरुद्रोपनिषत् ॥ ८६ ॥

परिव्रज्याधर्मपूगालंकारा यत्पदं ययुः । तदहं कठविद्यार्थं रामचन्द्रपदं भने ॥ १ ॥ ॐ सह नाववित्विति शान्तिः ॥

हरिः 👺 ॥ देवा ह वै अगवन्तमबुवन्नधीहि भगवन्त्रहाविद्याम् । स प्रजा-पतिरब्रवीत्सशिखान्केशान्निष्कृष्य विस्त्य यज्ञोपवीतं निष्कृष्य पुत्रं दृष्ट्वा त्वं ब्रह्मा त्वं यज्ञस्त्वं वषद्भारस्त्वमोंकारस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं धाता त्वं विधाता त्वं प्रतिष्ठाऽसीति वदेत् । अथ पुत्रो वदत्यहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं वष-द्वारोऽहमोंकारोऽहं स्वाहाहं स्वधाहं धाताहं विधाताहं त्वष्टाहं प्रतिष्टासीति । तान्येतान्यनुवजन्नाश्चमापातयेत् । यदश्चमापातयेत्पजां विच्छिन्द्यात् । प्रद-क्षिणमावृत्त्येतच्चेतचानवेक्षमाणाः प्रत्यायन्ति । स स्वर्ग्यो भवति ब्रह्मचारी वेदमधीत्य वेदोक्ताचरितब्रह्मचर्यो दारानाहृत्य पुत्रानुत्पाद्य ताननुपाधिभिर्वि-तत्येष्ट्रा च शक्तितो यज्ञैः । तत्य संन्यासो गुरुभिरनुज्ञातस्य बान्धवैश्व। सोऽरण्यं परेत्य द्वादशरात्रं पयसाग्निहोत्रं जुहुयात् । द्वादशरात्रं पयोभक्षा स्यात् । द्वादशरात्रस्यान्ते अग्नये वैश्वानराय प्रजापतये च प्राजापत्यं चहं वैष्णवं त्रिकपालमि संस्थितानि पूर्वाणि दारुपात्राण्यसौ जुहुयात् । मृण्म-यान्यप्सु जुहुयात् । तैजसानि गुरवे दद्यात् । मा त्वं मामपहाय परागाः । नाहं त्वामपहाय परागामिति । गार्हपत्यदक्षिणाझ्याहवनीयेष्वंरणिदेशाद्धस-मुष्टिं पिबेदित्येके । सिकाखान्केशान्निष्कृष्य विसुज्य यज्ञोपवीतं भूःस्वाहेत्यसु जुहुयात् । अत अर्ध्वमनशनमपां प्रवेशमिग्नप्रवेशं वीराध्वानं महाप्रस्थानं

वृद्धाश्रमं वा गरुछेत् । पयसा यं प्राक्षीयात्सोऽस्य सायंहोसः । यत्प्रातः सोऽयं प्रातः । यहर्शे तहर्शनम् । यत्पौर्णमास्ये तत्पौर्णमास्यस् । यहसन्ते केशस्मश्र-छोमनखानि वापयेत्सोऽस्याग्निष्टोमः । संन्यस्याग्निं न पुनरावर्तयेन्मृत्यु-र्जयमावहिंससभ्यात्ममञ्जान्पठेत् । स्वस्ति सर्वजीवेभ्य इत्युक्तवाऽऽत्मानमनन्यं ध्यायन् तदूर्ध्वबाहुर्विमुक्तमार्गो भवेत् । अनिकेतश्चरेत् । भिक्षाशी यिकं-चित्राद्यात् । लवैकं न धावयेजन्तुसंरक्षणार्थं वर्षवर्जमिति । तदपि श्लोका अवन्ति - कुण्डिकां चमसं शिक्यं त्रिविष्टप्रमुपानहों । शीतोपघातिनीं कन्थां कौषीनाच्छाद्नं तथा॥ १॥ पवित्रं स्नानशाटीं च उत्तरासङ्गसेव च। यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वं तहुर्जयेचितिः ॥ २ ॥ स्नानं पानं तथा शौचमद्भिः पूताभिराचरेत्। नदीपुलिनशायी स्यादेवागारेषु वा स्वपेत्॥३॥ नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरयुपतापयेत् । स्तूयमानो न तुष्येत निन्दितो न हापेत्परान् ॥ ४ ॥ ब्रह्मचर्येण संतिष्ठेदप्रमादेन सस्करी । दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम् ॥ ५ ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च । एतन्सेथुनमष्टाङ्गं प्रवद्नित सनीषिणः ॥ ६ ॥ विपरीतं व्रह्मचर्यमनुष्टेयं मुसुक्षाः । यजगद्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरत् ॥ ७ ॥ स एव जगतः साधी सर्वात्मा विमलाकृतिः । प्रतिष्ठा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः । ८ ॥ न कर्मणा न प्रजया न चान्येनापि केनचित् । ब्रह्मवेदनमात्रेण बहाभोत्यंव मानवः ॥ ९ ॥ तद्विद्याविषयं त्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्वयम् । संसारे ६ गुहाबाच्ये नायाज्ञानादिसंज्ञके ॥ १०॥ निहितं ब्रह्म यो वेद परमे व्योक्ति संज्ञिते । सोऽश्रुते सकलान्कामान्क्रमेणैव द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ अत्यगात्मानमज्ञानमायाशकेश्व साक्षिणम् । ऐकं ब्रह्माहमसीति ब्रह्मेव . भवति स्वयम् ॥ १२ ॥ बह्मभूतात्मनस्तसादेतसाच्छक्तिमिश्रितात् । अपञ्चीकृत आकाशसंभूतो रज्जुसर्पवत् ॥ १३ ॥ आकाशाद्वायुसंज्ञस्त स्पर्शोऽपञ्चीकृतः पुनः । वायोरप्तिस्तथा चाग्नेराप अन्यो ॥ ९७ ॥ तानि भूतानि सूक्ष्माणि पञ्चीकृत्येश्वरस्तदा । तेभ्य एव विसृष्टं तद्रह्माण्डादि शिवेन ह ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डस्योदरे देवा दानवा यक्षिकन्नराः । मनुष्याः पञ्चपक्ष्याद्यास्तत्त्कर्मानुसारतः ॥ १६ ॥ अस्थि-स्नाय्यादिरूपोऽयं शरीरं भाति देहिनाम् । योऽयमन्नमयो ह्यात्मा भाति सर्व-

शरीरिणः ॥ १७ ॥ ततः प्राणमयो ह्यात्मा विभिन्नश्चान्तरस्थितः । ततो विज्ञान आत्मा तु ततोऽन्यश्चान्तरः स्वतः ॥ १८॥ आनन्दमय आत्मा तु वतोऽन्यश्चान्तरस्थितः । योऽयमन्नमयः सोऽयं पूर्णः प्राणमयेन तु ॥ १९ ॥ मनोमयेन प्राणोऽपि तथा पूर्णः स्वभावतः। तथा मनोमयो ह्यात्मा पूर्णी ज्ञानमथेन तु ॥ २० ॥ आनन्देन सदा पूर्णः सदा ज्ञानमयः सुखम्। तथा-नन्दमयश्चापि ब्रह्मणोऽन्येन साक्षिणा ॥ २१ ॥ सर्वान्तरेण पूर्णश्च ब्रह्म नान्येन केनचित् । यदिदं ब्रह्मपुच्छाख्यं सत्यज्ञानाद्वयात्मकम् ॥ २२ ॥ सारसेव रसं छडध्वा साक्षादेही सनातनम् । सुखी भवति सर्वत्र अन्यया सुखता कुतः ॥ २३ ॥ असत्यस्मिन्परानन्दे स्वात्मभूतेऽखिलात्मनाम् । को जीवति नरो जन्तुः को वा नित्यं विचेष्टते ॥ २४ ॥ तस्मात्सर्वात्मना चित्ते भासमानो हासौ नरः । आनन्दयति दुःखाद्यं जीवात्मानं सदा जनः ॥२५॥ यदा होवैष एतस्मिन्नदृश्यत्वादिलक्षणे । निर्भेदं परमाद्वैतं विन्दते च महा-यतिः ॥ २६ ॥ तदेवाभयमत्यन्तकत्याणं परमामृतम् । सदूपं परमं ब्रह्म त्रिपरिच्छेदवर्जितस् ॥ २७ ॥ यदा ह्येवैष एतसिन्नल्पमप्यन्तरं नरः । विजा-नाति तदा तस्य अयं स्यान्नात्र संशयः ॥ २८ ॥ अस्यैवानन्दकोशेन सम्बान्ता विष्णुपूर्वकाः । अवन्ति सुखिनो नित्यं तारतम्यक्रमेण तु ॥ २९ ॥ तत्तत्पद्-विरक्तस्य श्रोत्रियस्य प्रसादिनः । स्वरूपभूत आनन्दः स्वयं भाति परे यथा ॥ ३० ॥ निमित्तं किंचिदाश्रित्य खलु शब्दः प्रवर्तते । यतो वाचो निवर्तन्ते निमित्तानामभावतः ॥ ३१ ॥ निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते । तसादेतन्मनः सुक्षमं च्यावृतं सर्वगोचरम् ॥ ३२ ॥ यसाच्छ्रोत्रत्वगक्ष्यादि-खादिकर्मेन्द्रियाणि च। व्यावृत्तानि परं प्राप्तुं न समर्थानि तानि तु ॥ ३३॥ तद्रह्मानन्द्रमद्गन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्रनम् । विदित्वा स्वात्मरूपेण न विसेति कुतश्चन ॥ ३४ ॥ एवं यस्तु विजानाति स्वगुरोरुपदेशतः । स साध्वसाधु-कर्मभ्यां सदा न तपति प्रभुः ॥३५॥ ताप्यतापकरूपेण विभातमखिलं जगत्। प्रलगात्मतया भाति ज्ञानाद्वेदान्तवाक्यजात् ॥३६॥ शुद्धमीश्वरचैतन्यं जीव-चैतन्यमेव च । प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं च फलं तथा ॥ ३७ ॥ इतिः सप्तविधं त्रोक्तं भिराते व्यवहारतः । मायोपाधिविनिर्मुक्तं शुद्धमित्यिनिधीयते ॥३८॥ मायासंबन्धतश्चेशो जीवोऽविद्यावशस्तथा । अन्तःकरणसंबन्धात्प्रमाते- त्यभिधीयते ॥ ३९ ॥ तथातद्वृत्तिसंवन्धाःप्रमाणमिति कथ्यते । अज्ञातमिष् चैतन्यं प्रमेयमिति कथ्यते ॥ ४० ॥ तथा ज्ञातं च चैतन्यं फलमिलभि-धीयते । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं स्वात्मानं भावयेत्सुधीः ॥ ४१ ॥ एवं यो वेद तत्त्वेन ब्रह्मभूयाय कल्पते । सर्ववेदान्तिसिद्धान्तसारं चिन्म यथार्थतः ॥४२॥ स्वयं मृत्वा स्वयं भृत्वा स्वयमेवावशिष्यते ॥ इत्युपनिषत् ॥ हिरः ॐ तत्सत् ॥ ॐ स ह नावविविति शान्तिः ॥

ॐ स ह नाववात्वात शान्तः॥ इति कठरुद्दोपनिवत्समाप्ता॥ ८६॥

भावनीपनिपत् ॥ ८७॥ स्वाविद्यापदतत्कार्यं श्रीचक्रोपरि भासुरम्। बिन्दुरूपशिवाकारं रामचन्द्रपदं भने॥ १॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरि: ॐ ॥ आत्मानमखण्डमण्डलाकारमावृत्य सकलब्रह्माण्डमण्डलं स्वप्र-काशं ध्यायेत् । ॐ श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः । तेन नवरन्ध्ररूपो देहः । नवशक्तिरूपं श्रीचक्रस् । वाराही पितृरूपा । कुरुकुछा बलिदेवता माता । पुरुषार्थाः सागराः । देहो नवरलद्वीपः । आधारनवकसुद्धाः शक्तयः । त्वगा-दिसप्तधातुभिरनेकैः संयुक्ताः ं कल्पाः कल्पतरयः । तेजः कल्पकोद्यानम् । रसनया भाग्यमाना सधुराम्ठातक्तकटुकपायलवणसेदाः षड्साः षड्तवः कियाशिकः पीठम् । कुण्डलिनी ज्ञानशिक्तर्गृहम् । इच्छाशिक्तर्महात्रिपुर-सुन्दरी । ज्ञाता होता ज्ञानमितः हेयं हविः । ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम् । नियतिसहिताः शृङ्गाराद्यो नव रसा अणिमादयः। कामकोधलोभमोहमद्मात्सर्यपुण्यपापमया बाह्याद्यष्ट शक्तयः । पृथिन्य-क्षेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघाणवाक्याणिपादपायूपस्थमनोविकाराः षोडश शक्तयः। वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपेक्षावुद्धयोऽनङ्गकुसुमादिश-कयोऽष्टौ । अलम्बुसा कुहूर्विश्वोदरी वरुणा हस्तिजिह्वा यशस्वलिश्वनी गान्धारी पूपा शिक्क्षनी सरस्वतीडा पिङ्गळा सुयुक्ता चेति चतुर्दश नाड्यः। सर्वसंक्षीभिण्यादिचतुर्दशारमा देवताः । प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्म-कुकरदेवदत्तधनंजया इति दश वायवः । सर्वसिद्धिपदा देव्यो बहिर्न्जारगा

देवताः । एतद्वायुदशकसंसर्गोपाधिभेदेन रेचकपूरकशोषकदाहष्ठावका अमृत-मिति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चविघोऽस्ति । क्षारको दारकः क्षोभको मोहको जुम्भक इत्यपालनमुख्यत्वेन पञ्चविधोऽस्ति । तेन मनुष्याणां मोहको दाहको ट अक्ष्यभोज्यलेखचोष्यपेयात्मकं चतुर्विधमन्नं पाचयति । एता दश बह्निकलाः सर्वज्ञत्वाद्यन्तर्दशारगा देवताः । शीतोष्णसुखदुःखेच्छासत्त्वरजस्तमोगुणा विशन्यादिशक्तयोऽष्टो । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्चतन्मात्राः पञ्च पुष्पवाणाः मन इक्षुधनुः । वश्यो वाणो रागः पाशः । द्वेषोऽङ्कराः । अन्यक्तमहत्तत्त्व-सहदृहंकार इति कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमालिन्योऽन्तश्चिकोणात्रगा देवताः। पञ्चद्शतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनस्थितिः पञ्चद्श निसाः । श्रद्धा-नुरूपा धीर्देवता । तयोः कामेश्वरी सदानन्द्घना परिपूर्णस्वात्मैक्यरूपा देवता । सिळळिमिति छीहित्यकारणं सत्त्वम् । कर्तव्यमकर्तव्यमिति भावना-युक्त उपचारः । अस्तिनास्तीति कर्तव्यतानूपचारः। बाह्याभ्यन्तःकरणानां रूपग्रहणयोग्यतास्त्वित्यावाहनम् । तस्य बाह्याभ्यन्तःकरणानामेकरूपविषय-ग्रहणमासनम् । रक्तशुक्रपदैकीकरणं पाद्यम् । उज्ज्वलदामोदानन्दासनदान-मर्थम् । स्वच्छं स्वतःसिद्धमित्याचमनीयम् । चिचन्द्रमयीति सर्वाङ्गस्रवणं स्नानम् । चिद्निप्तस्वरूपपरमानन्दशक्तिस्फुरणं वस्त्रम् । प्रत्येकं सप्तविंशतिधा भिन्नत्वेनेच्छाज्ञानिकयात्मकब्रह्मप्रनिथमद्गसतन्तुब्रह्मनाडी ब्रह्मसूत्रम् । स्वब्य-तिरिक्तवस्तुसङ्गरहितस्मरणं विभूषणम् । सचित्सुखगरिपूर्णतास्मरणं गन्धः। समस्तविषयाणां मनसः स्थैयेंणानुसंधानं कुसुमम् । तेषामेव सर्वदा स्वीक-रणं धूपः। पवनावच्छिन्नोध्वेज्वलनसचिदुल्काकाशदेहो दीपः। संमस्तया-तायातवर्ज्यं नैवेद्यम् । अवस्थात्रयाणामेकीकरणं ताम्बूलम् । मूलाधारादा बहारन्ध्रपर्यन्तं बहारंध्रादा मूलाधारपर्यन्तं गतागतरूपेण बादक्षिण्यम् । तुर्यावस्था नमस्कारः। देहर्यून्यप्रमातृतानिमजनं विलहरणम्। सत्यमस्ति कर्तव्यमकर्तव्यमादःसीन्यनित्यात्मविलापनं होमः । स्वयं तत्पादुकानिमज्जनं परिपूर्णध्यानम् । एवं मुहूर्तत्रयं आवनीपरो जीवनमुक्तो भवति । तस्य देवताः मैर्नेयसिद्धिः । चिन्तितकौर्याण्ययतेन सिद्धान्ति । स एव शिवयोगीति कैथ्यते । कादिहादिमतोक्तेन भावना प्रतिपादिता । जीवन्मुक्तो भवति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इत्याथर्वणीया भावनोपनिषत्संपूर्णा॥ ८७॥

रुद्रहृदयोपनिषत् ॥ ८८ ॥

यद्रह्म रुद्रहृदयमहाविद्याप्रकाशितम् । तद्रह्ममात्रावस्थानपदवीमधुना भजे ॥ १ ॥ ॐ स ह नाववितिति शान्तिः॥

हरिः 🕉 ॥ हृदयं कुण्डली अस्सरुदाक्षगणदर्शनस् । तारसारं महावान्यं पञ्चवह्यामिहोत्रकस् ॥ १ ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ शुको ब्याससुवाच ह । को देवः सँवदेवेषु कस्मिन्देवाश्च सर्वशः॥ २॥ कस्य शुश्रूषणान्नित्यं प्रीता देवा भवन्ति मे । तस्य तहचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पिता शुकस् ॥ ३ ॥ सर्व-देवात्मको रुद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः । रुद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे रिवर्शक्षा त्रयोऽप्तयः ॥ ४ ॥ वामपार्श्वे उमा देवी विष्णुः सोमोऽपि ते त्रयः । या उसा सा स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स हि चन्द्रमाः ॥ ५ ॥ ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम् । येऽर्चयन्ति हरिं भत्तया तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ॥ ६॥ ये द्विपन्ति विरूपाक्षं ते द्विपन्ति जनार्दनम् । ये रुद्ं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम् ॥ ७ ॥ रुद्रात्प्रवर्तते बीजं बीजयोनिर्जनार्द्नः । यो रुद्रः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्नीपोमात्मकं जगत्। पुंलिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं भगवत्युमा॥ ९॥ उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः । व्यक्तं सर्वभुमारूपमन्यक्तं तु महेश्वरम् ॥ १० ॥ उमाशंकरयोगो यः स योगो विष्णुरुच्यते । यस्तु तस्मै नमस्कारं कुर्याद्वक्तिः समन्वितः ॥ ११ ॥ आत्मानं परमात्मानमन्तरात्मानमेव च । ज्ञात्वा त्रिविधमात्मानं परमात्मानमाश्रयेत् ॥ १२ ॥ अन्तरात्मा भवेद्रह्या परमात्मा महेश्वरः । सर्वेषामेव भूतानां विष्णुरात्मा सनातनः ॥ १३ ॥ अस्य त्रैठोक्य-बृक्षस्य भूमौ विटपशाण्विनः । अग्रं मध्यं तथा मूलं विष्णुबह्यमहेश्वराः

॥ १४ ॥ कार्यं विष्णुः किया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः । व्रयोजनार्थं रुद्रेण सूर्तिरेका त्रिधा कृता ॥ १५ ॥ धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्व-ज्ञानं पितामहः । श्रीरुद्ध रुद्ध रुद्धेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ १६ ॥ कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । रुद्रो नर उमा नारी तसी तसी नमो नमः ॥ १७ ॥ रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तसी तसी नमो नमः । रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तसे तस्ये नमो नमः ॥ १८॥ रुदः सूर्य उमा छाया तसी तसी नमा नमः । रुद्रः सोम उमा तारा तसी तसी नमी नमः ॥ १९॥ रुद्दो दिवा उमा रात्रिसासै तसै नमो नमः। रुद्दो यज्ञ उमा वेदिसासै तस्यै नमो नमः ॥ २०॥ रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः। रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्मै नमो नमः ॥ २१ ॥ रुद्रो वृक्ष उमा वली तसी तसी नमी नमः। रुद्रो गन्ध उमा पुष्पं तसी तसी नमी नमः॥ २२॥ रुद्दोऽर्थ अक्षरः सोमा तसी तसी नमो नमः। रुद्दो लिङ्गसुमा पीठं तसी तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥ सर्वदेवात्मकं रुद्रं नमस्कुर्यात्पृथकपृथक् । एभि-र्मेत्रपदेरेव नमस्यामीशपार्वतीम् ॥ २४ ॥ यत्र यत्र भवेत्साधीममं मन्नमु-दीरयेत् । ब्रह्महा जलमध्ये तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २५ ॥ सर्वाधिष्ठानम-द्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् । सचिदानन्दरूपं तदवाञ्चनसगोचरम् ॥ २६ ॥ तसिन्सुविदिते सर्वं विज्ञातं स्यादिदं शुक । तदात्मकत्वात्सर्वस्य तसाद्विन्नं नहि क्वित् ॥ २७ ॥ हे विद्ये वेदितन्ये हि परा चैवापरा च ते । तत्रापरा तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च ॥ २८ ॥ सामवेदस्तथाऽथर्यवेदः शिक्षा मुनी-श्वर । कल्पो व्याकरणं चैव निरुक्तं छन्द एव च ॥ २९ ॥ ज्योतिषं च यथा नात्मविषया अपि बुद्धयः । अथैषा परमा विद्या ययात्मा परमाक्षरम् ॥ ३० ॥ यत्तददेश्यसप्राह्मसगोत्रं रूपवर्जितम् । अचक्षुःश्रोत्रमत्यर्थं तदपाणिपदं तथा ॥ ३१ ॥ नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्षं च तद्व्ययम् । तद्भ्तयोनिं पश्यन्ति धीरा आत्मानमात्मिन ॥ ३२ ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद्यो यस्य ज्ञानमयं तपः। तसादत्रान्नरूपेण जायते जगदाविलः॥ ३३॥ सत्यवद्गाति तत्सर्वं रज्ञुसर्प-वदास्थितम् । तदेतदक्षरं सत्यं तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ ज्ञानेनैव हि संसारितनाशो नैव कर्मणा । श्रोत्रियं वहातिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद्यथाविधि ॥ ३५ ॥

ı

गुरुस्तस्मे परां विद्यां दद्याद्रह्मात्मवोधिनीम् । गुहायां जिहितं साक्षादक्षरं वेद चेन्नरः ॥ ३६ ॥ छित्त्वाऽविद्यामहाम्रान्थि शिवं गच्छेत्सनातनम् । तदे-तदसृतं सत्यं तद्दोद्धन्यं सुसुक्षुभिः ॥ ३७ ॥ धनुस्तारं शरो ह्यात्मा ब्रह्म तह्यक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ३८ ॥ लक्ष्यं सर्व-गतं चेव शरः सर्वगतो सुखः। वेद्धा सर्वगतश्चेव शिवलक्ष्यं न संशयः ॥ ३९॥ न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते न वान्ति वाताः सकला देवताश्च। स एष देवः कृतभावभूतः स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते ॥ ४० ॥ हो सुपणों शरीरेऽस्मि अविशाख्यों सह स्थिती। तयोजींवः फलं सुङ्के कर्मणो न महेश्वरः ॥ ४९ ॥ केवलं साक्षिरूपेण विना ओगं महेश्वरः । प्रकाशते स्वयं भेदः कल्पितो मायया तयोः ॥ ४२ ॥ घटाकाशमठाकाशौ यथाकाज्ञ-प्रसेटतः । कृष्टिपतो परमा जीवशिवरूपेण कृष्टिपता ॥ ४३ ॥ तत्त्वतश्च शिवः साक्षाज्ञिजीवश्च स्वतः सदा । चिचिदाकारतो भिन्ना न भिन्ना चित्त्वहानितः ॥ ४४ ॥ चितश्चित्र चिदाकाराद्मियते जडरूपतः । भियते चेजाडो भेटश्चि-देका सर्वदा खल ॥ ४५ ॥ तर्कतश्च प्रमाणाच चिद्कत्वन्यवस्थितेः । चिदे-करवपरिज्ञाने न शोचित न मुद्यति ॥ ४६ ॥ अद्वैतं परमानन्दं शिवं याति त केवलम् ॥ ५७ ॥ अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः सत्यचिद्धंनम् । अहम-स्मीति निश्चित्य वीतशोको भवेन्मुनिः ॥ ४८ ॥ स्वशरीरे स्वयंज्योतिःस्वरूपं सर्वसाक्षिणस् । क्षीणदोषाः प्रपर्यन्ति नेतरे साययावृताः ॥ ४९ ॥ एवं रूपपरिज्ञानं यस्यास्ति परयोगिनः । कुत्रचिद्गमनं नास्ति तस्य पूर्णस्वरू-पिणः ॥ ५० ॥ आकाशमेकं संपूर्णं कुत्रचित्रैव गच्छति । तद्वत्स्वात्मपरिज्ञानी कुत्रचिन्नेव गच्छति ॥ ५३ ॥ स यो ह वे तत्परमं ब्रह्म यो वेद वे सुनिः। ब्रह्मैव भवति स्वस्थः सचिदानन्दमातृकः ॥ ५२ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

> ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥ इति रुद्रहृदयोपनिषत्संमाक्षा ॥ ८८ ॥

योगकुण्डल्युपनिपत् ॥ ८९ ॥ योगकुण्डल्युपनिषद्योगसिद्धिहदासनम् । निर्विशेषब्रह्मतस्वं स्वमात्रमिति चिन्तये ॥ १ ॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः 👺 ॥ हेतुद्रयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः । तयोर्विनष्ट एक-सिंस्त्ह्राविप विनश्यतः ॥ ३ ॥ तयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्नरः सदा । मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः ॥ २ ॥ एतेषां लक्षणं वक्ष्ये ऋण गौतम सादरम् । सुक्तिग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ॥ ३ ॥ सुज्यते शिव-संप्रीत्ये मिताहारः स उच्यते। आसनं द्विविधं प्रोक्तं पद्मं वज्रासनं तथा ॥ ४॥ ऊर्वोहपरि चेद्धत्ते उभे पादतले यथा। पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपाप-... त्रणाशनम् ॥ ५॥ वामाङ्ग्रिमूलकन्दाधो ह्यन्यं तदुपरि क्षिपेत् । समग्रीविरारः-कायो वज्रासनितीरितम् ॥६॥ कुण्डल्येव भवेच्छिकसां तु संचालयेहुधः। स्वस्थानादाञ्चवोर्मध्यं शक्तिचालनमुच्यते ॥ ७ ॥ तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्व-त्यास्तु चालनम् । प्राणरोधमथाभ्यासादञ्ची कुण्डलिनी भवेत् ॥ ८ ॥ तयो-रादौ सरस्वत्याश्चालनं कथयामि ते । अरुन्धत्येव कथिता पुराविद्धिः सर-स्वती ॥ ९ ॥ यस्याः संचालनेनैव स्वयं चलति कुण्डली । इडायां वहति प्राणे बख्वा पद्मासनं दृढम् ॥ १० ॥ द्वादशाङ्गुरुदैर्घ्यं च अम्बरं चतुरङ्गुलम् । विस्तीर्थ तेन तन्नाडीं वेष्टयित्वा ततः सुधीः ॥ ११॥ अङ्कुष्टतर्जनीभ्यां तु हस्ताभ्यां धारयेहृढम् । स्वशक्तया चाल-वैद्वामे दक्षिणेन पुनः पुनः ॥ १२॥ मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयाचालवे-त्सुधीः । अर्ध्वमाकर्षयेत्किंचित्सुपुन्नां कुण्डलीगताम् ॥ १३ ॥ तेन कुण्डलिनी तस्याः सुपुन्नाया सुखं वजेत् । जहाति तस्मात्प्राणोऽयं सुपुन्नां वजित स्वतः ॥ १४ ॥ तुन्दे तु ताणं कुर्याच कण्ठसंकोचनेव कृते । सरस्वत्यां चाल-नेन वक्षसश्चोर्ध्वगो मरुत् ॥ १५॥ सूर्येण रेचयेद्वायुं सरस्वत्यास्तु चालने । कण्डसंकोचनं कृत्वा वैक्षसश्चोध्वंगो मरुत् ॥ १६ ॥ तस्मात्संचालयेन्नित्यं शब्दगर्भा सरस्वतीम् । यस्याः संचालनेनैव योगी रोगैः प्रमुच्यते ॥ १७ ॥ गुरुमं जलोदरः श्लीहा ये चान्ये तुन्दमध्यगाः । सर्वे तु शक्तिचालेन रोगा नश्यन्ति निश्चयम् ॥ १८ ॥ प्राणरोधमथेदानीं प्रवक्ष्यामि समासतः । प्राणश्च देहगो वायुरायामः कुम्भकः स्मृतः ॥ १९ ॥ स एव द्विविधः प्रोक्तः सहितः केवल-स्तथा । यावत्केवलिसिद्धिः स्यात्तावत्सिहितमभ्यसेत् ॥ २०॥ सूर्योजायी श्रीतली च भस्री चैव चतुर्थिका। भेदैरेव समं कुम्भो यः स्यात्सहित-कुम्भकः ॥ २१ ॥ पवित्रे निर्जने देशे शर्करादिविवर्जिते । धनुःप्रमाणपर्यन्ते श्रीताग्निजलवर्जिते ॥ २२ ॥ पवित्रे नात्युचनीचे ह्यासने सुखदे सुखे। बद्धपद्मासनं कृत्वा सरस्वत्यास्तु चालनम् ॥ २३ ॥ दक्षनाड्या समाकृत्य बहिष्ठं पवनं शनैः । यथेष्टं पूरयेद्वायुं रेचयेदिडया ततः ॥ २४ ॥ कपाल-शोधने वापि रेचयेत्पवनं शनैः। चतुष्कं वातदोषं तु कृमिदोषं निहन्ति च ॥ २५ ॥ पुनःपुनरिदं कार्यं सूर्यभेद्मुदाहृतम् । मुखं संयम्य नाडिभ्या-माकृष्य पवनं शनैः ॥ २६ ॥ यथा लगति कण्ठात्तु हृदयावि सस्त्रनम् । पूर्ववत्करभयेत्प्राणं रेचयेदिङया ततः ॥ २७ ॥ शीपोदितानलहरं गलक्षेप्म-हरं परस् । सर्वरोगहरं पुण्यं देहानलविवर्धनस् ॥ २८ ॥ नाडीजलोदरं धातुगतदोषविनाशनम् । गच्छतस्तिष्टतः कार्यसुजायाख्यं तु कुस्भकम् ॥२९॥ जिह्नया वायुमाकृष्य पूर्ववत्कुम्भकादनु । शनैस्तु घाणरन्ध्राभ्यां रेचयेदनिलं सुधीः ॥ ३० ॥ गुल्मश्लीहादिकान्दोषान्क्षयं पित्तं ज्वरं तृषाम् । विषाणि श्रीतंली नाम क्रम्भकोऽयं निहन्ति च ॥ ३१॥ ततः पद्मासनं बद्धा सम-श्रीवोदरः सुधीः । मुखं संयस्य यत्नेन प्राणं घाणेन रेचयेत् ॥ ३२ ॥ यथा लगति कण्ठात् कपाले सस्वनं ततः। वेगेन पूरयेत् किंचिद्रत्पद्माविध सार-तम् ॥ ३३ ॥ पुनर्विरेचयेत्तद्वत्पूरयेच पुनः पुनः । यथैव लोहकाराणां भस्ना वेगेन चाल्यते ॥ ३४ ॥ तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं शनैः । यथा श्रमो भवेदेहे तथा सूर्येण पूरयेत् ॥ ३५ ॥ यथोदरं भवेत्पूर्णं पवनेन तथा लघु । धारयन्नासिकामध्यं तर्जनीभ्यां विना दृढम् ॥ ३६ ॥ कुम्भकं पूर्ववत्कृत्वा रेचयेदिडयानिलम् । कण्ठोत्थितानलहरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥३०॥ कुण्डलीः बोधकं पुण्यं पापमं शुभदं सुखम् । ब्रह्मनाडीमुखान्तस्थकफाद्यगैठनाश-नम् ॥ ३८ ॥ गुणत्रयसमुद्भत्प्रान्थित्रयविभेदकम् । विशेषेणैव कर्तव्यं भस्राख्यं कुम्भकं त्विदम् ॥ ३९॥ चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके समुपिश्यते। बन्धत्रयमिदं कार्यं योगिभिर्वीतकल्मपैः ॥ ४० ॥ प्रथमो मूलवन्धस्तु

द्वितीयोड्डीयणाभिधः । जालन्धरस्तृतीयस्तु तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ४१ ॥ अधोगतिमपानं वै ऊर्ध्वंगं कुरुते बलात् । आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूल-बन्धोऽयसुच्यते ॥ ४२ ॥ अपाने चोर्ध्वगे याते संप्राप्ते विह्नमण्डले । ततोऽनलशिखा दीर्घा वर्धते वायुनाहता ॥ ४३ ॥ ततो यातौ वह्नयमानौ प्राणसुक्णस्वरूपकस् । तेनाखन्तप्रदीसेन ज्वलनो देहजस्तथा॥ ४४॥ तेन कुण्डलिनी सुप्ता संतप्ता संप्रवुध्यते। दण्डाहतसुजङ्गीव निःश्वस्य ऋजुतां व्यजेत् ॥ ४५ ॥ विलप्रवेशतो यत्र ब्रह्मनाड्यन्तरं वजेत् । तसाक्षित्यं मूलवन्धः कर्तव्यो योगिभिः सदा ॥ ४६ ॥ कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्त् ह्वियाणकः । बन्धो येन सुपुम्नायां प्राणस्त् ड्वीयते यतः ॥ ४७ ॥ तस्मादुङ्घीयणाख्योऽयं योगिभिः समुदाहतः । सति वज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेहृदम् ॥ ४८॥ गुल्फदेशसमीपे च कन्दं तत्र प्रपीडयेत् । पश्चिमं ताणमुदरे धारयेदृदये गले ॥४९॥ शनैः शनैर्यदा प्राणस्तुन्दसन्धि निगच्छति । तुन्ददोषं विनिर्धूय कर्तव्यं सततं शनैः ॥ ५० ॥ पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः । कण्ठ-संकोचरूपोऽसौ वायुमार्गनिरोधकः ॥ ५३ ॥ अधसात्कृञ्चनेनाशु कण्ठसं-कोचने कृते । मध्ये पश्चिमताणेन स्यात्प्राणो ब्रह्मनाडिगः ॥ ५२.॥ पूर्वीकेन क्रमेणैवं सम्यगासनमास्थितः । चालनं तु सरख्याः कृत्वा प्राणं निरोधयेत् ॥ ५३ ॥ प्रथमे दिवसे कार्यं कुम्भकानां चतुष्टयम् । प्रत्येकं दशसंख्याकं द्वितीये पञ्चभिस्तथा ॥ ५४ ॥ विशयलं नृतीयेऽह्वि पञ्चतृच्या दिने दिने । कर्तव्यः कुम्भको नित्यं बन्धत्रयसमन्वितः ॥ ५५ ॥ दिवा सुप्तिर्निशायां तु जागरादितिमैथुनात् । बहुसंक्रमणं नित्यं रोधान्मूत्र-पुरीषयोः ॥ ५६ ॥ विषमाञ्चनदोषाच प्रयासप्राणचिन्तनात् । शीघ्रमुत्पचते रोगः स्तम्भयेद्यदि संयमी ॥ ५७ ॥ योगाभ्यासेन मे रोग उत्पन्न इति कथ्यते । ततोऽभ्यासं त्यजेदेवं प्रथमं विष्ठमुच्यते ॥ ५८ ॥ द्वितीयं संशयाख्यं च तृतीयं च प्रमत्तता । आलस्याल्यं चतुर्थं च निद्रारूपं तु पञ्चमम् ॥ ५९ ॥ षष्ठं ८ विरतिश्रीन्तिः सप्तमं परिकीर्तितम् । विषमं चाद्यमं चैव अनाख्यं नवमं स्मृतम् ॥ ६० ॥ अलब्धियोगतत्त्रस्य दशमं प्रोच्यते वुधैः । इत्येत-द्विघ्रदशकं विचारेण त्यजेद्वधः॥ ६९॥ प्राणाभ्यासस्ततः कार्यो नित्यं सत्त्व-स्थया थिया । सुपुन्ना लीयते चित्तं तथा वायुः प्रधावति ॥ ६२ ॥ शुन्के मले तु योगी च स्याद्गतिश्वलिता ततः। अधोगितिसपानं वै उध्वंगं कुरुते वलात् ॥ ६३ ॥ आकुञ्जनेन तं प्राहुर्मूलवन्वोऽयमुच्यते । अपानश्चोध्वंगो अरवा बह्विना सह गच्छति ॥ ६४ ॥ प्राणस्थानं ततो बह्विः प्राणापानौ च सत्तरम् । मिलित्वा कुण्डलीं याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः ॥ ६५ ॥ तेना-शिना च संतप्ता पवनेनैव चालिता । श्रसार्थ खशरीरं तु सुपुन्ना वदनान्तरे ॥ ६६ ॥ ब्रह्मब्रन्थि ततो भित्त्वा रजोगुणसमुद्भवम् । सुपुन्ना वदने शीधं विद्युक्षेत्रेव संस्फुरेत् ॥ ६७ ॥ विष्णुग्रन्थि प्रयात्युचैः सत्वरं हृदि संस्थिता । ऊर्ध्वं गच्छति यचास्ते रुद्रमन्थि तदुद्धवस् ॥ ६८ ॥ अवोर्मध्यं तु संभिद्य थाति शीतांशुमण्डलम् । अनाहताख्यं यचकं दुलैः पोडशभिर्युतम् ॥ ६९ ॥ तत्र शीतां शुसंजातं द्वं शोषयति स्वयस् । चलिते प्राणवेगेन रक्तं पित्तं रवेर्प्रहात् ॥ ७० ॥ यातेन्दुचकं यत्रास्ते गुद्धेष्मद्रवात्मकम् । तत्र सिक्तं असत्युर्ण कथं शीतस्वभावकम् ॥ ७३ ॥ तथैव रभसा शुक्तं चन्द्ररूपं हि तप्यते । जर्ध्वं प्रवहति ध्रुट्धा तदैवं अमतेतराम् ॥ ७२ ॥ तस्यास्यादवशा-चित्तं वहिष्ठं विषयेषु यत्। तदेव परमं भुक्त्वा स्वस्थः स्वात्मरतो युवा ॥ ७३ ॥ प्रकृत्यप्टकरूपं च स्थानं गच्छति कुण्डली । क्रोडीकृत्य शिवं याति क्रोडीकृत्य विलीयते ॥ ७४ ॥ इत्यधोध्वरजः शुक्तं शिवे तद्नु मास्तः । प्राणापानौ समौ याति सदा जातौ तथैव च ॥ ७५ ॥ भूतेऽल्पे चाप्यनल्पे वा वाचके त्वतिवर्धते । धावयत्यिकला वाता अग्निमूषाहिरण्यवत् ॥ ७६ ॥ आधिभौतिकदेहं तु आधिदैविकविग्रहे । देहोऽतिविमलं याति चातिवाहि-कतामियात्॥ ७७॥ जाड्यभावविनिर्मुक्तममलं चिन्मयात्मकम्। तस्याति-वाहिकं मुख्यं सर्वेषां तु मदात्मकम् ॥ ७८ ॥ जायाभवविनिर्मुक्तिः काल-रूपस्य विभ्रमः । इति तं स्वस्वरूपा हि मती रज्ञुभुजङ्गवत् ॥ ७९॥ मृपैवोदेति सकलं मृषैव प्रविलीयते । रौप्यबुद्धिः शुक्तिकायां स्रीपुंसी-र्भमतो यथा ॥ ८० ॥ पिण्डवह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि । स्वापान्या-कृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः ॥ ८९ ॥ शक्तिः कुण्डलिनी नाम विस-तन्तुनिभा ग्रुभा । सूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्द्वत् ॥ ८२ ॥ मुखेन पुच्छं संगृह्य अद्यरन्श्रसमन्विता । पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकु≆य साधकः ॥ ८३ ॥ बायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुस्भकाविष्टमानसः । बाय्वाघातवशादिष्टः म्बाधिष्टानगती उवलन् ॥ ८४ ॥ ज्वलनाघातपवनाघातरिक्विदितोऽहिराद । ब्रह्मग्रनिथ ततो भित्त्वा विष्णुयनिथ भिनत्यतः ॥ ८५ ॥ रुद्रग्रनिथ च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति पद । सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते ॥ ८६ ॥ सैवावस्था परा ज्ञेया सैव निर्मृतिकारिणी इति ॥

इति योगकुण्डल्युपनिषत्सु प्रथमोऽघ्यायः॥ १॥

अथाहं संप्रवक्ष्यामि विद्यां खेचरिसंज्ञिकाम् । यथा विज्ञानवानस्या लोकेऽस्मिन्नजरोऽमरः ॥ १ ॥ मृत्युच्याधिजराप्रस्तो दृष्ट्वा विद्यासिमां मुने । बुद्धिं दृढतरां कृत्वा खेचरीं तु समभ्यसेत् ॥ २ ॥ जरामृत्युगद्द्वो यः खेचरीं वेत्ति भूतले । यन्थतश्चार्यतश्चेव तद्भ्यासप्रयोगतः ॥ ३ ॥ तं मुने सर्वभा-वेन गुरुं मत्वा समाश्रयेत्। दुर्लभा खेचरी विद्या तदभ्यासोऽपि दुर्लभः ॥ ४ ॥ अभ्यासं मेलनं चैव युगपन्नेव सिध्यति । अभ्यासमात्रनिरता न विन्दन्ते ह सेलनस् ॥ ५ ॥ अभ्यासं लभते ब्रह्मजन्मजन्मान्तरे कचित् । मेलनं तत्तु जन्मानां शतान्तेऽपि न लभ्यते ॥ ६ ॥ अभ्यासं बहुजन्मान्ते कृत्वा तद्भावसाधितम् । मेलनं लभते कश्चिद्योगी जन्मान्तरे कचित् ॥ ७ ॥ यदा तु मेलनं योगी लभते गुरुवक्त्रतः। तदा तत्सिद्धिमामोति यदुक्ता शास्त्रसंततौ ॥ ८ ॥ प्रन्थतश्रार्थतश्रेव मेलनं लभते यदा । तदा शिवत्वमा-मोति निर्धुक्तः सर्वसंस्तेः ॥ ९ ॥ शास्त्रं विनापि संबोद्धं गुरवोऽपि न शक्तुयुः । तस्मात्सुदुर्रुभतरं छभ्यं शास्त्रमिदं सुने ॥ १० ॥ यावन्न छभ्यते शास्त्रं तावद्गां पर्यटेचितिः । यदा संलभ्यते शास्त्रं तदा सिद्धिः करे स्थिता ॥ ११ ॥ न शास्त्रेण विना सिद्धिर्देष्टा चैव जगन्नये । तस्मान्सेलनदा-तारं शास्त्रदातारमच्युतम् ॥ १२ ॥ तद्भयासप्रदातारं शिवं मत्वा समाध्र-येत् । लब्ध्वा शास्त्रमिदं मह्यामन्येषां न प्रकाशयेत् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रय-लेन गोपनीयं विजानता । यत्रास्ते च गुरुर्वहान्दिन्ययोगप्रदायकः ॥ १४ ॥ तत्र गत्वा च तेनोक्तविद्यां संगृद्य खेचरीम् । तेनोकः सम्यगभ्यासं कुर्यादा-दावतन्द्रितः ॥ १५ ॥ अनया विद्यया योगी खेचरीसिद्धिभाग्भवेत् । खेचर्या खेचरीं युञ्जन्खेचरीबीजपूरया ॥ १६ ॥ खेचराधिपतिर्भूत्वा खेचरेषु सदा वसेत् । खेचरावसथं वह्निमम्बुमण्डलभूषितम् ॥ १७ ॥ आख्यातं खेचरीबीजं तेन योगः प्रसिध्यति । सोमांशनवकं वर्णं प्रतिलोमेन चोद्धरेत् ॥ १८॥ तसाध्यंशकमाख्यातमक्षरं चन्द्ररूपकम् । तसादप्यष्टमं वर्णं विलोमेन परं मुने ॥ १९ ॥ तथा तत्परमं विद्धि तदादिरिप पञ्चमी । इन्द्रोश्च बहुभिन्ने च क्टोऽयं परिकीर्तितः ॥ २० ॥ गुरूपदेशलभ्यं च सर्वयोगप्रसिद्धिदम् । यत्तस्य देहजा माया निरुद्धकरणाश्रया ॥ २१ ॥ स्वप्नेऽपि न लमेत्तस्य नित्यं द्वादश-जप्यतः । य इसां पञ्च लक्षाणि जपेदपि सुयन्नितः ॥ २२ ॥ तस्य श्रीसेचरी-सिद्धिः स्वयमेव प्रवर्तते । नश्यन्ति सर्वनिद्वानि प्रसीदन्ति च देवताः ॥ २३ ॥ वरीपिलतनाशश्च भविष्यति न संशयः । एवं लब्ध्वा महाविद्या-सभ्यासं कारयेत्ततः ॥ २४ ॥ अन्यथा क्तिस्यते ब्रह्मन सिद्धिः खेचरीपथे । यदभ्यासविधो विद्यां न लभेद्यः सुधामयीम् ॥ २५ ॥ ततः संमेलकादौ च लटध्वा विद्यां सदा जपेत् । नान्यथा रहितो ब्रह्मन्न किंचित्सिहिभाग्भवेत ॥ २६ ॥ यदिदं लभ्यते शास्त्रं तदा विद्यां समाश्रयेत् । ततस्तदोदितां सिद्धि-माञ्च तां रुभते मुनिः ॥ २७ ॥ तालुमूरुं समुन्कृप्य सप्तवासरमातमवित् । खगुरूक्तप्रकारेण मलं सर्वं विशोधयेत् ॥ २८ ॥ खुहिपत्रनिभं शस्रं सुतीक्ष्णं क्षिण्धनिर्मलस् । समादाय ततस्तेन रोसमात्रं समुच्छिनेत् ॥ २९ ॥ हिला सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रकर्षयेत् । पुनः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समु-च्छिनेत् ॥ ३० ॥ एवं क्रमेण घण्मासं नित्योद्युक्तः समाचरेत् । घण्मासा-इसनामूलं सिराबन्धं प्रणस्यति ॥३१॥ अथ वागीश्वरीधाम शिरो वस्रेण वेष्ट-येत्। शनैरुत्कर्पयेद्योगी कालयेलाविधानवित् ॥ ३२ ॥ पुनः पण्मासमात्रेण नित्यं संघर्पणान्मुने । अमध्यावधि चाप्येति तिर्यक्कणविलावधिः ॥ ३३॥ अधश्च चुबुकं मूळं प्रयाति कमचारिता । पुनः संवत्सराणां तु तृतीयादेव स्रीलया ॥ ३४ ॥ केशान्तमूर्ध्वं क्रमति तिर्यक्शास्त्राविधर्मुने । अधस्तात्कण्ट-कृपान्तं पुनर्वर्षत्रयेण तु ॥ ३५ ॥ ब्रह्मरन्ध्रं समावृत्य तिष्टेदेव न संशयः । तिर्यक् चूलितलं याति अधः कण्ठविलाविध ॥ ३६ ॥ शनैः शनैर्ममतकाच महावञ्जकपाटभित् । पूर्वं बीजयुता विद्या ह्याख्याता याऽतिदुर्लभा ॥ ३० ॥ तस्याः पडङ्गं कुर्वीत तया षदस्वरभिन्नया। कुर्यादेवं करन्यासं सर्वसिद्धा-दिहेतवे ॥ ३८ ॥ शनैरेवं प्रकर्तव्यमभ्यासं युगपन्नहि । युगपद्वर्तते यस्य शरीरं विलयं बजेत् ॥३९॥ तस्माच्छनेः शनैः कार्यमभ्यासं सुनियुङ्गव । यदा च वाह्यमार्गेण जिह्ना ब्रह्मबिलं ब्रजेत्॥ ४०॥ तदा ब्रह्मार्गलं ब्रह्मन्दुर्भेद्य त्रिद्दौरपि । अङ्गल्यग्रेण संघृष्य जिहामात्रं निवेशयेत् ॥ ४१ ॥ एवं वित्वयं कृत्वः बद्मद्वारं प्रविद्यति । बह्मद्वारे प्रविष्ट तुः त्रम्यङ्गथनमाचरेतः॥ ४०॥ मधनेन विना केचित्साधयन्ति विपश्चितः । खेचरीमग्रसिद्धस्य सिध्यते मथनं विना ॥४३॥ जपं च मथनं चेव कृत्वा शीग्रं फलं लमेत् । स्वर्णजां रौप्यजां वापि लोहजां वा शलािककाम् ॥ ४४ ॥ नियोज्य नासिकारन्त्रं दुग्धिसिकेन तन्तुना । प्राणािकरुध्य हृदये सुखमासनमात्मनः ॥ ४५ ॥ शनैः सुमथनं कुर्याद्भमध्ये न्यस्य चक्षुपी । पण्मासं मथनावस्था भावेनेव प्रजायते ॥ ४६ ॥ यथा सुपुसिर्वालानां यथा भावस्था भवेत् । न सदा मथनं श्रस्तं मासे मासे समाचरेत् ॥ ४० ॥ सदा रसनया योगी मार्गं न परिसंक्रमेत् । एवं द्वादशवर्षान्ते संसिद्धिर्भवति ध्रुवा ॥ ४८ ॥ शरीरे सकलं विश्वं पश्यत्या-त्माविसेदतः । ब्रह्माण्डोऽयं महामार्गे राजदन्तोध्वंकुण्डली ॥ ४९ ॥ इति ॥

इति योगकुण्डल्युपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मेलनसनुः। हीं भं सं पं फं सं क्षम्। पद्मज उवाच । अमावास्या च प्रतिपत्पौर्णमासी च शंकर । अस्याः का वर्ण्यते संज्ञा एतदाख्याहि तत्त्वतः ॥ १ ॥ प्रतिपद्दिनतोऽकाले अमावास्या तथैव च । पौर्णमास्यां स्थिरीकुर्यात्स च पन्था हि नान्यथा ॥ २ ॥ कामेन विषयाकाङ्की विषयात्काममोहितः । द्वावेव संत्यजेन्नित्यं निरञ्जनमुपाश्रयेत् ॥ ३ ॥ अपरं संत्यजेत्सर्वं यदीच्छेदा-त्मनो हितम् । शक्तिमध्ये मनः कृत्वा मनः शक्तेश्च मध्यगम् ॥ ४ ॥ मनसा मन आलोक्य तत्त्यजेत्परमं पदम्। मन एव हि विन्दुश्च उत्पत्तिस्थिति-कारणम् ॥ ५ ॥ मनसोत्पद्यते विन्दुर्यथा क्षीरं घृतात्मकम् । न च वन्धन-मध्यस्थं तद्वै कारणमानसम् ॥ ६ ॥ चन्द्रार्कमध्यमा शक्तिर्यत्रस्था तत्र बन्ध-नम् । ज्ञात्वा सुपुन्नां तद्गेदं कृत्वा वायुं च मध्यगम् ॥ ७ ॥ स्थित्वाऽसौ बैन्दवस्थाने घाणरन्ध्रे निरोधयेत् । वायुं बिन्दुं समाख्यातं सत्त्वं प्रकृतमेव च ॥ ८ ॥ षद चकाणि परिज्ञात्वा प्रविशेत्सुखमण्डलम् । मूलाधारं स्वाधि-ष्टानं मणिपूरं तृतीयकम् ॥ ९ ॥ अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचकं च षष्टकम् । आधारं गुद्रमित्युक्तं स्वाधिष्ठानं तु लैङ्गिकम् ॥ १०॥ मणिपूरं नाभिदेशं हृदयस्थमनाहृतम् । विशुद्धिः कण्ठमूले च आज्ञाचकं च मस्तकम् ॥११॥ षट चकाणि परिज्ञात्वा प्रविशेत्सुखम॰डले । प्रविशेद्वायुमाकृत्य तथेवोध्वं नियोज-येत् ॥१२॥ एवं समभ्यसेद्वायुं स ब्रह्माण्डमयो भवेत् । वायुं विन्दुं तथा चर्क चित्तं चैव समभ्यसेत् ॥ १३ ॥ समाधिमेकेन समममृतं यान्ति योगिनः । यथाऽग्निर्दारुमध्यस्थो नोत्तिष्टेन्मथनं विना ॥ १४॥ विना चाभ्यासयोगेन ज्ञानदीपस्तथा न हि। घटमध्यगतो दीपो बाह्य नैव प्रकाशते ॥ १५॥ भिन्ने तस्मिन्घटे चैव दीपज्वाला च भासते । स्वकायं घटमित्युक्तं यथा दीपो हि तत्पदम् ॥ १६ ॥ गुरुवाक्यसमाभिन्ने ब्रह्मज्ञानं स्फुटीभवेत् । कर्णधारं गुरुं प्राप्य कृत्वा सूक्ष्मं तरन्ति च ॥ १७ ॥ अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम् । परायामङ्करीभूय पश्यन्त्यां द्विदलीकृता ॥ १८ ॥ मध्यमायां मुकुलिता वैखर्या विकसीकृता । पूर्व यथोदिता या वाग्विलोमेनासगा अवेत् ॥ १९ ॥ तस्या वाचः परो देवः कृटस्थो वानप्रवोधकः । सोऽहमस्मीति निश्चित्य यः सदा वर्तते पुमान् ॥ २०॥ शब्दैरुचावचैनींचैभीपितोऽपि न लिप्यते । विश्वश्च तैजसश्चेव प्राज्ञश्चेति च ते त्रयः ॥ २१ ॥ विराहिरण्य-गर्भश्च ईश्वरश्चेति ते त्रयः । ब्रह्माण्डं चैव पिण्डाण्डं लोका भूराद्यः कमात् ॥ २२ ॥ स्वस्वोपाधिलयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मिन । अण्डं ज्ञानामिना तप्तं लीयते कारणैः सह ॥ २३ ॥ परमात्मिन लीनं तत्परं ब्रह्मैव जायते । ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् ॥ २४ ॥ अनाख्यमनभिव्यक्तं सिकंचि-दवशिष्यते । ध्याःवा मध्यस्थमारमानं कलशान्तरदीपवत् ॥ २५ ॥ अङ्गद्व-मात्रमात्मानमधूमज्योतिरूपकम् । प्रकाशयन्तमन्तःस्यं ध्यायेस्कूटस्थमव्ययम् ॥ २६ ॥ विज्ञानात्मा तथा देहे जायत्स्वप्रसुपुष्तितः । सायया मोहितः पश्चाद्वहुजन्मान्तरे पुनः ॥ २७ ॥ सत्कर्मपरिपाकात्तु स्वविकारं चिकीर्पति । कोऽहं कथमयं दोषः संसाराख्य उपागतः ॥ २८ ॥ जात्रत्स्वमे व्यवहरन्सु-पुसौ क गतिर्सम । इति चिन्तापरो भूत्वा स्वभासा च विशेषतः ॥ २९॥ अज्ञानात्तु चिदाभासो बहिस्तापेन तापितः । दग्धं भवस्रिव तदा त्रुलिण्ड-मिवाग्निना ॥ ३० ॥ दहरस्थः प्रत्यगात्मा नष्टे ज्ञाने ततः परम् । विततौ व्याप्य विज्ञानं दहत्येव क्षणेन तु ॥ ३१ ॥ मनोमयज्ञानमयानसम्यग्दाध्वा क्रमेण तु । घटस्थदीपवच्छश्वदन्तरेव प्रकाशते ॥ ३२ ॥ ध्यायन्नास्ते मुनिश्चे-वमासुप्तेरामृतेस्तु यः । जीवन्मुक्तः स विज्ञेयः स धन्यः कृतकृत्यवान् ॥ ३३॥ जीवन्युक्तपदं त्यवस्वा स्वदेहे कालसास्कृते । विशत्यदेशमुक्तस्वं पवनोऽस्प-न्दतामिव ॥ ३४ ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमत्र्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं तदेव शिष्यत्यमकं निरामयम्॥ ३५॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

इति योगकुण्डल्युपनिषत्मु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॐ स ह नाववित्ति शान्तिः । इति योगकुण्डल्युपनिषत्समाता ॥ ८९ ॥

भसाजाबालोपनिषत् ॥ ९० ॥

यत्साम्यज्ञानकालाग्निस्वातिरिक्तास्तिताश्रमम् । करोति अस निःशेषं तद्वस्त्रैवास्मि केवलम् ॥ १ ॥ ॐ अदं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ अथ जावालो असुण्डः कैलासशिखरावासमोंकारस्वरूपिणं महादेवसुमार्थकृतशेखरं सोमसूर्याग्निनयनमनन्तेन्दुरविप्रभं व्याव्रचर्मास्वरधरं मृगहस्तं भस्मोद्वृछितविग्रहं तिर्यक्त्रिपुण्ड्रेसाविराजमानभालप्रदेशं स्मित-संपूर्णपञ्जविधपञ्जाननं वीरासनारूढमप्रमेयमनाद्यनन्तं निष्कछं निर्गुणं शान्तं निरक्षनमनामयं हुम्फट्कुर्वाणं शिवनामान्यनिशसुचरन्तं हिरण्यबाहुं हि-रण्यरूपं हिरण्यवणं हिरण्यनिधिमद्वैतं चतुर्थं ब्रह्मविष्णुरुद्वातीतमेकमाशास्यं अगवन्तं शिवं प्रणम्य मुहुर्मुहुरभ्यच्यं श्रीफळदछैस्तेन भसाना च नतोत्तमाङ्गः कृताञ्जलिपुटः पप्रच्छाधीहि भगवन्वेदसारमुङ्ख त्रिपुण्ड्विधि यसादन्या-नपेक्षमेव मोक्षोपळव्धः । किं भसनो द्रव्यम् । कानि स्थानानि । मनवोऽ-प्यत्र के वा। कित वा तस्य धारणम् । के वात्राधिकारिणः । नियमस्तेषां को वा। मामन्तेवासिनमनुशासयामोक्षमिति। अथ स होवाच भगवान्य-रमेश्वरः परमकारुणिकः प्रमथान्सुरानपि सोऽन्वीक्ष्य पूर्व प्रातरुद्याद्गोमयं ब्रह्मपर्णे निधाय व्यम्बकमिति मन्नेण शोषयेत्। येन केनापि तेजसा तःस्त्र-गृद्योक्तमार्गेण प्रतिष्ठाप्य विह्नं तत्र तद्रोमयद्रव्यं निधाय सोमाय स्वाहेति मञ्जेण ततस्तिल्बीहिभिः साज्यैर्जुहुयात् । अयं तेनाष्टोत्तरसहस्नं सार्धमेतद्वा । तत्राज्यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति । तेन न पापं श्रणोति । तद्धोममञ्रस्थयम्ब-कमित्येव अन्ते स्विष्टकृत्पूर्णाहुतिस्तेनैवाष्ट्रदिक्षु बलिप्रदानम् । तद्रसा गायञ्या संप्रोक्ष्य तद्धमे राजते ताम्रे मृण्मये वा पात्रे निधाय रुद्रमन्त्रेः पुनर-भ्युक्ष्य ग्रुद्धदेशे संस्थापयेत्। ततो भोजयेद्राह्मणान् । ततः स्वयं पूतो अवति । मानस्तोक इति सद्यो जातमित्यादि पञ्चत्रसमन्नेभस संगृद्धाः त्रिरिति भस वायुरिति भस जलमिति भस खलमिति भस व्योमेति भस देवा भस ऋषयो भसा। सर्वं ह ो एता दूरं भसा पूर्त पावनं नमामि सद्यः समस्ताघशासकमिति शिरसाभिनम्य । पूर्ते वामहस्ते वामदेवायेति निधाय

न्यम्बकमिति संप्रोक्ष्य शुद्धं शुद्धेनेति संमृज्य संशोध्य तेनेवापादशीर्षमुद्ध-छनमाचरेत्। तत्र ब्रह्ममञ्राः पञ्च। ततः शेषस्य अस्मनो विनियोगः। तर्जनीमध्यमानामिकाभि रभेर्भसासीति भस्म संगृहा सूर्धानमिति मूर्धन्यप्रे न्यसेत्। व्यम्वकमिति ललाटे नीलमीवायेति कण्ठे कण्ठस्य दक्षिणे पार्श्वे ज्यायुषितिवामेति कपोलयोः कालायेति नेत्रयोखिलोचनायेति श्रोत्रयोः श्रुणवासेति वक्रे प्रववासेति हृद्ये आत्मन हृति नाभी नाभिरिति मन्नेण दक्षिणभुजमूले भवायेति तन्मध्ये रुद्रायेति तन्मणिवन्धे शर्वायेति तत्कर-पृष्ठे पशुपतय इति वामवाह्मूले उपायेति तन्मध्ये अधेवधायेति तनमः णिवन्धे दूरेवधायेति तत्करपृष्ठे नमो हम्र इति असे शंकरायेति यथाकमं भस धत्वा सोमायेति शिवं नत्वा ततः प्रकाल्य तद्भसापः पुनन्त्वित पिनेत्। नाघो लाज्यं नाघो त्याज्यम् । एतन्मध्याह्नसायाहेषु त्रिकालेषु विधिवद्मसाधारणसप्रमादेन कार्यस् । प्रमादात्पतितो भवति । ब्राह्मणानाम-यमेव धर्मोऽयमेव धर्मः । एवं अस्पधारणसकृत्वा नाश्चीयादापोऽज्ञमन्यद्वा । प्रमादात्त्वक्ता भस्मधारणं न गायत्रीं जपेत् । न जुहुयादुसौ तर्षयेदेवानुः धीन्पित्रादीन् । अयसेव धर्मः सनातनः सर्वपापनात्रको सोक्षहेतः । निस्योऽयं धर्मो ब्राह्मणानां ब्रह्मचारिगृहिवानप्रस्थयतीनाम् । एतद्करणे प्रस्थ-वैति ब्राह्मणः । अकृत्वा प्रमादेनैतद्षष्टोत्तरशतं जलमध्ये स्थित्वा गायत्री जश्वीपोषणेनैकेन खुद्धी अवति । यतिर्भस्मधारणं त्यवस्वैकरोपोध्य द्वादश-सहस्रपणनं जस्वा अन्हो भवति । अन्यथेन्द्रो यतीनसालावृकेभ्यः पात-यति । भसनो यद्यभावस्तदा नर्यभस्मदाहनजन्यमन्यद्वावश्यं मन्नपूर्त धार्यम् । एतत्प्रातः प्रयुक्षानो रान्निकृतात्पापात्पृतो भवति । स्वर्णस्तेपात्प-मुच्यते । मध्यन्दिने माध्यन्दिनं कृत्वोपस्थानान्तं ध्यायमान आदित्याभि-मुखोऽघीयानः सुरापानाःपूतो भवति । स्वर्णस्तेयास्पूतो भवति । ब्राह्मण-वधारपूर्तो भवति । गोवधारपूर्तो भवति । अश्ववधारपूर्तो भवति । गुरुवधा-त्पूतो भवति । मातृवधात्पूतो भवति । पितृवधात्पूतो भवति । त्रिकालः मेतत्त्रयुञ्जानः सर्ववेदपारायणफलमवामोति । सर्वतीर्थफलमश्रुते । अनप-ब्रवः सर्वभायुरेति । विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यम् । एवमावर्तये-दुपनिषदमित्याह भगवान्सदाशिवः साम्बः सदाशिवः साम्बः ॥

इति भस्मजावालोपनिषत्स प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अय सुद्धुण्डो जावालो महादेवं साम्बं प्रणम्य पुनः पप्रच्छ किं नित्यं ब्राह्मणानां कर्तेव्यं यदकरणे अत्यवेति ब्राह्मणः । कः पूजनीयः । को वा ध्येयः। कः खर्तक्यः। कथं ध्येयः। क स्थातन्यमेतद्रहीति । सामासेन तं होवाच । प्रागुद्याविर्वर्स शौचादिकं ततः खायात् । मार्जनं रुद्रसुकेः । ततश्चाहतं वासः परिधत्ते पाष्मनोपहत्ये । उद्यन्तमादित्यमिभध्यायलुद्ध्छि-ताई कृत्वा यथास्थानं अस्मना त्रिपुण्डं श्वेतेनैव रदाक्षाञ्छेतान्विश्वयात् । नेतत् संमर्शः । तथान्ये । सूर्धि चःवारिंशत् । शिखायामेकं त्रयं वा । श्रोत्र-बोर्द्वाद्वा । कण्टे द्वात्रिंशत् । बाह्नोः पोडश पोडश । द्वादश द्वादश मणिब-म्धयोः षद्यडङ्कुष्टयोः । ततः संध्यां सक्क्तोऽहरहरूपासीत । अग्निज्यांति-रित्यादिभिरसौ जुहुयात् । शिवलिङ्गं त्रिसंध्यमभ्यर्च्यं कुरोध्वासीनो ध्यारवा साम्बं मामेव वृषभारूढं हिरण्यवाहुं हिरण्यवर्णं हिरण्यरूपं पशुपाशविमोचकं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ध्वेरेतसं विरूपासं विश्वरूपं सहस्राक्षं सहस्रशीपं प्रहस्रचरणं विश्वतीबाहुं विश्वारमानसेकमद्वैतं निष्कलं निष्कियं शान्तं शिवमक्षरमण्ययं हरिहरहिरण्यगर्भेच्छारमप्रमेयमनाचन्तं रुद्धसुत्तेरभिषिच्य सितेन भसना श्रीफलद्लैश्च त्रिशाखेराद्वेरनाद्वेवां । न तत्र संस्पर्शः । तत्प्तासाधनं कल्प-वेच नैवेदं । ततश्चेकाद्यगुणरुद्दो जपनीयः । एक्गुणोऽनन्तः । पडश्वरौsष्टाक्षरो वा शैवो सन्त्रो जपनीयः। ओसिस्येये व्याहरेत्। नम इति पश्चात्। ततः शिवायेळक्षरत्रयस् । ओप्रित्यप्रे व्याहरेत् । नम इति पश्चात् । ततौ महादेवायेति पञ्चाक्षराणि । नातस्तारकः परमो मन्नः । तारकोऽयं पञ्चा-क्षरः । कोऽयं शैवो मनुः । शैवस्तारकोऽयमुगदिश्यते मनुरविमुक्ते शेवेश्यौ जीवेश्यः । शैवोऽयमेव मञ्जलारयति । स एव ब्रह्मोरदेशः । ब्रह्म सोमोऽई पवनः सोमोऽहं पवते सोमोऽहं अनिता मतीनां सोमोऽहं जनिता पृथिच्याः सोमोऽहं जनिताऽझेः सोमोऽहं जनिता सूर्यस्य सोमोऽहं जनितेन्द्रस्य सोमोऽहं जनितोत विष्णोः सोमोऽहमेव जनिता स यश्चन्द्रमसो देवानाः भूर्भुवःस्वरादीनां सर्वेषां लोकानां च विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्सर्वस्य सोमोऽहमेव जनिता विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः हिर-ण्यगर्भादीनहं जायमानान्पश्यामि । यो रुद्रो अग्नी यो अप्सु य सोषधीषु यो रुद्रो विश्वा अवना विवेशैवमेव । अयमेवात्मान्तरात्मा ब्रह्मज्योतिर्थ-सान्न मत्तोऽन्यः परः । अहमेव परो विश्वाधिकः । मामेव विदिःवाऽमृतःव-सेति । तरित शोकम् । मामेव विदिःवा सांसृतिकीं रुनं द्वावयति । तसा-

द्धं रुद्रो यः सर्वेषां परमा गतिः । सोऽहं सर्वाकारः । यतो वा इसानि अतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तं साभेव विदित्वोपासीत। भूतेभिदेवेभिरभिष्ठतो ऽहमेव। भीषासाहात: पवते। भीषोदेति सूर्यः भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । सोमोऽत एव योऽहं सर्वेपामधि-छाता सर्वेषां च भूतानां पालकः । सोऽहं पृथिवी । सोऽहसापः । सोऽहं तेजः । सोऽहं वायुः। सोऽहं कालः। सोऽहं दिशः। सोऽहमात्मा। मथि सर्वं प्रति-ष्टितम् । ब्रह्मविदामोति परम् । ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् । अच्छु-विश्वतश्रस्र कर्णो विश्वतः कर्णोऽपादो विश्वतः पादोऽपाणिविश्वतः पाणिरहमिशरा विश्वतःशिरा विद्यामञ्जेकसंश्रयो विद्यारूपो विद्यामयो विश्वेश्वरोऽहमजरोsहम् । मामेवं विदिखा संस्तिपाशाष्यमुच्यते । तस्मादहं पशुपाशवि-मोचकः । पश्चश्रामानवान्तं मध्यवर्तिनश्च युक्तात्मानो यतन्ते मामेव आप्तम् । प्राप्यन्ते मां न पुनरावर्तन्ते । त्रिश्लगां काशीमधिश्रिख खका-सवौऽपि मध्येव संविद्यान्ति । प्रज्वलद्वह्निगं हविर्यथा न यजमानमा-साद्यति तथासौ त्यक्तवा कुणपं न तत्तादशं पुरा प्राप्नवन्ति । एष प्वा-देशः एष उपदेशः । एष एव परमो धर्मः । सत्यात्तत्र कदाचित्र प्रमदि-त्रुयं तत्रोद्धलनित्रपुण्डाभ्याम् । तथा रुद्राक्षाखघारणात्तथा मद्र्चनाच । प्रमार देनापि नान्तरेवसदने प्ररीपं कुर्यात् । वतान प्रमदितव्यम् तदि तपस्ति वपः काइयासेव मुक्तिकामानाम् । न तत्त्याज्यं न तत्त्याज्यं मो वकोऽहमविमुक्ते निवसताम् । नाविमुक्तात्परमं स्थानम् । नाविमुक्तात्परमं स्थानम् । काइयां स्थानानि चत्वारि । तेषासभ्यहितसन्तर्गृहस् । तत्राप्यविसुक्तसभ्यहितस् । तत्र स्थानानि पञ्च । तन्मध्ये शिवागारमभ्यहितम् । तत्र प्राच्यामैश्वर्यस्था-नम् । दक्षिणायां विचालनस्थानम् । पश्चिमायां वैराग्यस्थानम् । उत्तरायां ज्ञानस्थानम् । तस्मिन्यद्नतिर्निक्षमव्ययमनाचन्तमशेषवेदवेदान्तवेद्यमिन-देंद्रयसित्रस्तमप्रस्यवमाशास्यमद्वैतं सर्वाधारमनाधारमनिरीक्ष्यमद्दरहर्वस्रवि-ष्णुपुरन्दराधमरवरसेवितं मामेव ज्योतिःस्वरूपं लिङ्गं मामेवोपासितव्यं तदेवोपासितव्यम् । नैव भावयन्ति तिह्नक्तं भानुश्चन्द्रोऽग्निर्वायुः । खप्रकाशं विश्वेश्वराभिधं पातालमधितिष्ठति । तदेवाहम् । तत्रार्चितोऽहम् । साक्षादः र्चितः त्रिशाखैबिंद्वद्केदींसैर्वा योऽभिसंपूज्येन्मनमना मध्याहितासुर्मध्ये-बार्पिताखिलकर्मा भसादिग्धाङ्गो रुद्राक्षभूषणो मासेव सर्वमावेन प्रवत्नो मदे॰

कपूजानिरतः संयुजयेत् । तदहमसामि । तं मोचयामि संसृतिपातात् । अहर-हर्म्यच्यं विश्वेश्वरं लिङ्गं तत्र रुद्रस्कैरभिषिच्य तदेव स्नप्नपश्चः पीरवा महापातकेश्यो सुच्यते । न शोकमामोति । सुच्यते संसारवन्धनात् । तद्व-अयर्थं नाक्षीयात्फलमसमन्यद्वा । यदश्रीयाद्रेतोभक्षीभवेत् । नापः पिवेत ॥ यदि पित्रेत्यूयपो अवेत् । प्रमादेनैकदा त्वनभ्यच्यं मां भुक्ता भोजयित्वा केशान्वापियत्वा गव्यानां पञ्च संगृह्योपोष्य जले रुद्रस्नानम् । जदेशिवारं रुद्रानुवाकस् । आदित्यं परयक्षभिध्यायन्स्वहतकर्मकृदौदैरेव मन्नैः कुर्यानमान र्जनम् । ततो भोजियत्वा श्राह्मणानपूतो भवति । अन्यया परेतो यातनाम-अते । पत्रैः फलैवां जलैवांन्येवांभिपूज्य विश्वेश्वरं मां ततोऽश्रीयात । काषिलेन पयसाभिषिच्य रदसुकेन मामेव शिवलिङ्गरूषिणं व्याहत्यायाः पुतो भवति । कापिलेन दश्लाभिषिच्य सुरापानात्पुतो भवति । कापिलेना-इयेनाभिषिच्य स्वर्णस्तेयाःपूर्तो भवति । मधुनाभिषिच्य गुरुद्वारगमनात्पूर्तो अवति । सितया शर्करयाभिषिच्य सर्वजीववधारपुतो अवति । श्लीरादिभि-रेतैरिभिषिच्य सर्वानवामोति कामान् । इत्येकेकं महान्त्र खशतं महान्त्र स्थश-तमानैः शतरभिष्ज्य मुक्ती अवति संखारवन्यनात् । मामेव शिवलिङ्गरूपि-णमाद्वीयां पौर्णमास्यां चाऽमावास्थायां वा महाव्यतीपाते प्रहणे संकान्ताविम-विच्य तिलै: सतण्डलै: सयवै: संपूज्य बिल्वदलैर्भ्यच्ये कापिलेनाज्यान्वित-गन्धसारध्येः परिकरूप्य दीपं नैवेद्यं साज्यमुपहारं करुपयित्वा द्याःपुष्पा-अलिम् । एवं प्रयतोऽभ्यर्च्य सम सायुज्यमेति । शतैर्महाप्रस्थरसण्डैस्तब्डु-करिभिषिच्य चन्द्रकोककामश्रन्द्रलोकमवामोति । तिलैरेतावद्भिरिभिषच्य वा-युकोककामो वायुकोकमवामोति । मापैरेतावद्भिरभिषिच्य वरुगळोककामो व-रुणलोकमवामोति । यवैरेतावद्भिरभिषिच्य सूर्यलोककामः सूर्यलोकमवामोति। पुतैरेतावद्गिद्विंगुणैरिशिषच्य स्वर्गलोककामः स्वर्गलोकमवामोति । पुतैरेताव-द्भिश्चतुर्गुणैरभिषिच्य ब्रह्मलोककामो ब्रह्मलोकमवामोति । पुतैरेतावद्भिः शत-गुणैरभिषिच्य चतुर्जालं ब्रह्मकोशं यन्मृत्युर्नावपश्यति । तमतीत्य मल्लोककामो महोकमवाभोति नान्यं महोकात्परम् । यमवाप्य न शोचति । न स पुनरा-वर्तते न स पुनरावर्तते । लिङ्गरूपिणं मां संपूज्य चिन्तयन्ति योगिनः सिद्धाः सिद्धिं गताः । यजन्ति यज्वानः । मामेव स्तुवन्ति वेदाः साङ्गाः सोपनिषदः सेतिहासाः । न मत्तोऽन्यदहमेव सर्वम् । मयि सर्वे प्रतिष्ठितम् । ततः काइयां

प्रयतरेवाहमन्वहं पूज्यः । तत्र गणा रौद्रानना नानासुखा नानाशखधारिणो नानारूपथरा नानाचिह्निताः । ते सर्वे अस्मदिग्धाङ्गा रुद्राक्षाअरणाः कृताल-छयो निलमभिष्यायन्ति । तत्र पूर्वस्यां दिशि वह्या कृताक्षित्रहर्निशं मासु-पास्ते। दक्षिणस्यां दिशि विष्णुः कृत्वैव सूर्धाञ्जिकं मासुपास्ते। प्रती-च्यामिन्द्रः सञ्चताङ्ग उपास्ते । उदीच्यामिकायसुमानुरका हेमाङ्गि अवणा हेमवस्ता मासुपासते मामेव वेदाश्चतुर्म्तिधराः । दक्षिणायां दिशि अत्तिस्थानं तन्युक्तिमण्डपसंज्ञितस् । तत्रानेकगणाः पालकाः सायधाः पापघातकाः । तत्र ऋषयः शांभवाः पाशुपता महाशैवा वेदावतंसं शैवं पञ्चाक्षरं जपन्तस्तारकं सप्रणवं मोदमानास्तिष्टन्ति । तत्रैका रत्नवेदिका। तन्नाहमासीनः काइयां त्यक्तकुणपाञ्छैनानानीय खत्याङ्के संनिवेश्य असित-कद्राक्षभ्षितानुपस्पृश्य मा भूदेतेषां जन्म सृतिश्चेति तारकं शैवं अनुमुपिः शामि । ततस्ते युक्ता सामनुविशन्ति विज्ञानसयेनाङ्गेन । न पुनरावर्तन्ते इताज्ञनप्रतिष्टं हविरिव तत्रैव युक्तयर्थसुपदिश्यते शैवोऽयं मन्नः पञ्चाक्षरः। तन्युत्तिःस्थानम् । तत ओंकार रूपम् । ततो मद्पितकर्मणां मदाविष्टचेतसां मद्रः पता अवति । नान्येषामियं ब्रह्मविद्येयं ब्रह्मविद्या । सुसुक्षवः काइयामेवासीना बीर्यवन्तो विद्यावन्तः । विज्ञानसयं बह्यकोशस् । चतुर्जालं ब्रह्मकोशस् । यन्सृत्युर्नावपस्यति । यं ब्रह्मा नावपस्यति । यं विष्णुर्नावपस्यति । यमि-न्द्राभी नावपश्येताम् । यं वरुणाद्यो नावपश्यन्ति । तमेव तत्तेजःह्रष्ट-विद्भावं हैमसुमां संश्विष्य वसन्तं चन्द्रकोटिसमप्रभ चन्द्रकिरीटं सोम-सूर्यामिनयनं भृतिभृषितविश्रहं शिवं मामेवमभिध्यायन्तो मुक्तकिलिववाः स्यक्तबन्धा मरयेव लीना अवन्ति । ये चान्ये काइयां पुरीपकारिणः प्रति-ग्रहरत।स्यक्तभस्मधारणास्यक्तरुद्राक्षधारणास्यक्तसोमवारवतास्यक्तप्रहयागा-स्यत्त विश्वेश्वरार्चनारत्यक्त.पञ्चाक्षरजपारत्यक्तभैरवार्चना भैरवीं घोरादियातनां नानाविधां काइयां परेता भुक्त्वा ततः ग्रुद्धा मां प्रपद्यन्ते च । अन्तर्गृहे रेतो मूत्रं पुरीषं वा विस्जन्ति तदा तेन सिञ्चन्ते पितृन् । तमेव पापकारिण मृतं पर्यज्ञीलकोहितो भैरवस्तं पातयत्यस्ममण्डले उवलज्जवलनकुण्डेव्वन्ये-म्बपि । ततश्राप्रमादेन निवसेदप्रमादेन निवसेत्काइयां लिङ्गरूपिण्यामित्युः पनिषत् ॥ हरिः ॐ तस्सत् ॥

इति भस्मजावालोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ इति भस्मजावालोपनिषत्समासा ॥ ९० ॥

रुद्राक्षजाचालोपनिषत् ॥ ९१ ॥

हद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रतयोज्यसम् । प्रतियोगिविनिर्भुक्तं शिवमात्रपदं भने ॥ ३ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरि: ॐ ॥ अथ हैनं कालाग्निरुदं भुसुण्डः पप्रच्छ कथं रदाक्षोत्पत्तिः। तद्धारणारिक फलमिति । तं होवाच भगवान्कालाग्निहदः । त्रिपुरवधार्थमहं विसी छिताक्षोऽभवस् । तेभ्यो जलविन्दवो भूमौ पतितास्ते रुद्राक्षा जाताः । सर्वानुग्रहार्थाय तेषां नामोचारमात्रेण दशगोप्रदानफळं दर्शनस्पर्शनाभ्यां द्विगुणं फलमत ऊर्ध्वं वक्तुं न शक्तोमि । तत्रेते श्लोका भवन्ति । कस्मिस्थितं तु किं नाम कथं वा धार्यते नरैः। कतिभेद्मुखान्यत्र केर्मत्रेर्धार्यते कथम् ॥ १ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि चक्षुरु-मीलितं मया। भूमावक्षिपुटाभ्यां तु पतिता जलविन्द्वः ॥ २ ॥ तत्राश्चिन्द्वो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः । स्थावर-त्वसनुप्राप्य भक्तानुप्रहकारणात् ॥ ३ ॥ भक्तानां धारणात्पापं दिवारात्रि-कृतं हरेत् । छक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिसाद्वारणाद्ववेत् ॥ ४॥ तस्य कोटिशतं पुण्यं लभते धारणान्नरः । लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ ५ ॥ तज्जपाञ्चभते पुण्यं नरो रुदाक्षधारणात् । धात्रीफलप्रमाणं यच्छेष्ट-मेतदुदाहतस् ॥ ६ ॥ बदरीफलमात्रं तु मध्यमं प्रोच्यते बुधैः । अधमं चण-मात्रं स्यात्प्रक्रियेषा मयोच्यते ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैइयाः झूदाश्चेति शिवाज्ञया । वृथा जाताः पृथिव्यां तु तजातीयाः शुभाक्षकाः ॥ ८ ॥ श्वेतास्तु त्राह्मणा होयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः । पीतास्तु वैदया विद्येयाः कृष्णाः ग्रुदा उदाहृताः ॥ ९ ॥ त्राह्मणो विभृयाच्छ्वेतात्रक्तात्राजा तु धारयेत् । पीतान्वे-इयस्तु विभ्रुयात्कृष्णाञ्छूदस्तु धारयेत्॥ १०॥ समाः स्निग्वा दढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुत्ताः शुभाः। कृमिद्ष्टं भिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च ॥ ११॥ व्रणयुक्तमयुक्तं च पड्रदाक्षा विवर्जयेत् । खयमेव कृतं द्वारं रुद्राक्षं स्याद्-होत्तमम् ॥ १२ ॥ यतु पौरुषयतेन कृतं तन्मध्यमं भवेष् । समान्सिन्धान्द-ढान्स्थूलान्क्षौमस्त्रेण धारयेत् ॥ १३ ॥ सर्वगात्रेण सौम्येन सामान्यानि विचक्षणः । निकषे हेमरेलाभा यस रेला प्रदश्यते ॥ १४ ॥ तदक्षमुत्तमं विद्यात्तद्वार्यं शिवपूजकैः । शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिश्चतं शिरसा वहेत् ॥ १५॥

षदित्रंशतं गळे दथ्याद्वाहोः षोडश षोडश । मणियन्धे द्वादशैव स्कन्धे पञ्च-शतं वहेत् ॥ १६॥ अष्टोत्तरशतैर्मालामुपनीतं प्रकल्पयेत् । द्विसरं त्रिसरं वापि सराणां पञ्चकं तथा ॥ १७ ॥ सराणां सप्तकं वापि विभृयास्कण्टः देशतः । मुकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहारकेऽपि वा ॥ १८ ॥ केयूरकटके सुन्ने कुक्षिबन्धे विशेषतः। सुप्ते पीते सदाकालं रुद्राक्षं धारयेज्ञरः ॥ १९॥ त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते । सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं भेदेन धारयेत ॥ २०॥ शिरसीशानमंत्रेण कण्ठे तत्पुरुषेण तु । अबोरेण गले धार्य तेनैव हृद्येऽपि च ॥ २१ ॥ अघोरवीजमञ्जेण करयोधारयेत्सुघीः । पञ्चाशदक्ष-अथितान्व्योमन्याप्यपि चोद्रे ॥ २२ ॥ पञ्च ब्रह्मभिरङ्गेश्च त्रिमाका पञ्च सप्त च । यथित्वा सूलमन्रेण सर्वाण्यक्षाणि धारयेत् ॥ २३ ॥ अथ हैनं भग-वन्तं कालाग्निरुदं असुण्डः पत्रच्छ रुद्राक्षाणां सेदेन यदक्षं यत्स्वरूपं यत्काः लमिति । तत्स्वरूपं मुखयुक्तमरिष्टनिरसनं कामाभीष्टफलं बूहीति होवाच । तत्रेते श्लोका अवन्ति-एकवक्षं तु रुद्र'क्षं परतत्त्वखरूपकम् । तद्धारणा-त्परे तत्त्वे लीयते विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ द्विवकं तु सुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरा-त्मकम् । धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥ २ ॥ त्रिमुखं चैत्र रहा-क्षमित्रयस्वरूपकम् । तद्धारणाख हुतसुक्तस्य तुम्यति नित्यदा ॥ ३ ॥ चतु-र्मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्रस्वरूपकम् । तद्धारणाञ्चतुर्वकः प्रीयते तस्य निसद-॥ ४ ॥ पञ्चवकं तु रुद्राक्षं पञ्चबह्मस्वरूपकम् । पञ्चवकः स्वयं ब्रह्म पुंहत्या च न्यपोहति ॥ ५ ॥ षड्वक्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकेयाधिदैवतम् । तद्धारणा-न्महाश्रीः स्थान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ ६ ॥ मतिविज्ञानसंपत्तिशुद्धये धारये-त्सुची:। विनायकाधिदैवं च प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ७॥ सप्तवक्रं तु रुद्रक्षं सप्तमालाधिदैवतम् । तद्धारणान्महाश्रीः स्थान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ ८॥ महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिधारणतः सदा । अष्टवक्रं तु रुद्राक्षमष्टमात्राधि-दैवतम् ॥ ९ ॥ वस्वष्टकप्रियं चैव गङ्गाप्रीतिकरं तथा । तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ॥ १० ॥ नववक्रं तु रुद्राक्षं नवशक्तयधिदैवतम् । तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नव शक्तयः ॥ ११ ॥ दशवक्रं तु रुद्राक्षं यमदैवत्य-मीरितम् । देशाप्रशान्तिजनकं धारणात्रात्र संशयः ॥ १२ ॥ एकादशमुखं स्वक्षं रुद्रेकादशदेवतम् । तदिदं दैवतं प्राहुः सदा सौभाग्यवर्धनम् ॥ १३ ॥

रुद्राक्षं द्वादशमुखं महाविष्णुखरूपमम् । द्वादशादिखरूपं च विभर्तेव हि तत्परस् ॥ १४ ॥ त्रयोदशसुखं त्वक्षं कामदं सिद्धिदं शुक्षम् । तस्या धारण-मात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥ १५ ॥ चतुर्दशमुखं वाक्षं रुद्रनेत्रसमुद्रवम् । सर्वन्याधिहरं चैव सर्वदारोग्यमाप्तुयात् ॥ १६॥ मद्यं मांसं च लग्नुनं पळाण्डुं शिग्रुसेव च । श्रेष्मातकं विद्वराहमभक्ष्यं वर्जयेत्राः ॥ १७ ॥ ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि च। द्रांषु पूर्णमासे च पूर्णेषु दिवसेषु च। हदा-क्षधारणात्सद्यः सर्वेपापेः प्रमुच्यते ॥१८॥ रुद्राक्षमूलं तद्रह्मा तन्नालं विष्णुरेव च । तन्मुखं रुद्र इत्याहुस्तद्दिन्दुः सर्वदेवताः ॥१९॥ इति । अथ कालाग्निरुदं भगवन्तं सनन्कुमारः पप्रच्छाधीहि भगवन्नुदाक्षधारणविधिम् । तस्मि-न्समये निदाधजडभरतद्त्तात्रेयकात्यायनभरद्वाजकपिलवसिष्ठपिप्पलादाद्यश्च कालाग्निरुदं परिसमेलोचुः । अथ कालाग्निरुदः किमर्थं भवतामागमनमिति होवाच । रुद्राक्षधारणविधिं वे सर्वे श्रोतुमिच्छामह इति । अथ कालाग्नि-रुद्रः प्रोवाच । रुद्रस्य नयनादुत्पन्ना रुद्राक्षा इति लोके ख्यायन्ते । अथ सदाशिवः संहारकाले संहारं कृत्वा संहाराक्षं मुकुलीकरोति । तन्नयनाजाता रुद्राक्षा इति होवाच । तसाद्वद्राक्षत्वमिति कालाग्निरुद्रः प्रोवाच । तद्वद्राह्मे बाग्विषये कृते दशगोप्रदानेन यत्फलमवामोति तत्फलमश्रुते । स एप भस्म-ज्योती रुद्राक्ष इति । तद्वदाक्षं करेण स्पृष्टा धारणमात्रेण द्विसहस्रगोप्रदान-फलं भवति । तदुदाक्षे कर्णयोर्धार्यमाणे एकादशसहस्रगोप्रदानफलं भवति । एकादशरुद्रत्वं च गच्छति । तद्वद्राक्षे शिरसि धार्यमाणे कोटिगोप्रदान-फलं भवति । एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तं न शक्यमिति होवाच । य इमां रुद्राक्षजाबालोपनिषदं निल्यमधीते बालो वा युवा वा वेद स महा-न्भवति । स गुरुः सर्वेषां मन्नाणामुपदेष्टा भवति एतैरेव होमं कुर्यात् । पुतैरेवार्चनम् । तथा रक्षोन्नं मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्टे वाहौ शिखायां वा बन्नीत । सप्तद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते । तस्माच्छ्दया यां कांचिद्रां दद्यात्सा दक्षिणा भवति । य इमामुपनिषदं ब्राह्मणः सायमधी-यानो दिवसकृतं पापं नाशयति । मध्याद्वेऽधीयानः षड्जन्मकृतं पापं नाशयति । सायं प्रातः प्रयुक्तानोऽनेकजन्मकृतं पापं नाशयति । षदसहस्र-लक्षगायत्रीजपफलमवामोति । ब्रह्महत्वासुरापानस्वर्णस्तेयगुरुदारगमनतःसं-योगपातकेभ्यः पूतो भवति । सर्वतीर्थफलमश्चते । पतितसंभाषणात्पूतो अवित । पिक्किश तसहस्वपावनो अवित । शिवसायुज्यमवामोति । न च पुन-दावर्तते न च पुनरावर्तत इत्योंसत्यमित्युपनिषत् ॥ हिरः ॐ तत्सत् ॥ ॐ आप्यायन्त्वितशान्तिः ॥ इति रुद्राक्षजावालोपनिषत्समासा ॥ ९१ ॥

> गणपत्युपनिषत् ॥ ९२ ॥ यं नत्वा सुनयः सर्वे निर्विधं यान्ति तत्पद्म् । गणेशोपनिषद्वेद्यं तद्रसेवास्मि सर्वगस् ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरि: ॐ ॥ नमस्ते गणपतये । त्वसेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि । त्वसेव केव छं कर्तासि । त्वमेव केवलं धर्तासि । त्वमेव केवलं हर्तासि । त्व मेव सर्वं खिल्वदं ब्रह्मासि । त्वं साक्षादात्मासि नित्यं । ऋतं विमा सत्यं विचम । अव त्वं साम् । अव वक्तारस् । अव श्रोतारम् । अव दातारम् । अव धातारम् । अवान्चानमव शिष्यम् । अव पश्चात्तात् । अव पुरस्तात् । अव चोत्तरात्तात् । अव दक्षिणात्तात् । अव चोध्वात्तात् । अवाः धरात्तात् । सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात् । त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्द्मयस्त्वं ब्रह्मययः । त्वं सिच्चदानन्दाद्वितीयोऽसि । त्वं प्रसक्षं ब्रह्मासि । त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि । सर्वं जगिददं त्वत्तो जायते । सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति । सर्वं जगदिदं त्विय लयमेप्यति । सर्वं जगदिदं त्विय प्रत्येति । त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः । त्वं चत्वारि वार्क्यदानि । त्वं गुणत्रयातीतः । त्वं कालत्रयातीतः । त्वं देहत्रयातीतः । त्वं मूलाधार-स्थितोऽसि नित्यम् । त्वं शक्तित्रयात्मकः । त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम् । त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुर्स्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवःसुवरोम् । गणादिं पूर्वमुचार्यं वर्णीदिं तदनन्तरम् । अनुस्वारः परतरः । अर्धेन्दुलसितम् ॥१॥ तारेर्णं रुद्दम् । एत-

त्तव मनुस्वरूपम् । गकारः पूर्वरूपम् । अकारी सध्यमरूपम् । अनुस्वारश्चा-न्त्यरूपम् । बिन्दुरुत्तररूपम् । नादः संधानम् । संहिता संधिः । सैषा गैणेश-विद्या । गणक त्रापिः निचृद्गायत्री छन्दः । श्रीमहागणपतिर्देवता । ॐ गम् । (गणपतये नमः)। एकदन्ताय विश्वहे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दैन्ती प्रचोदयात् ॥ एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कशधारिणम् । अभैयं वरदं हस्तै-विभाणं मूषकध्वजम् ॥ रक्तं लम्बोदरं र्सूर्पकर्णकं रक्तवाससम् । रक्तगन्धा-न्छिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम् ॥ भक्तानुकस्पिनं देवं जगत्कारणमंच्युतम् । आविर्भूतं च सुट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम् ॥ एवं ध्यायति यो नित्यं स थोगी थोगिनां वरः। नमो बातपतथे नमो गणपतथे नमः प्रमथपतथे नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकद्नताय विञ्चविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदम्तंये नमो नमः ॥ एतद्थर्विहारो योऽधीते स ब्रह्मभूयाय कलाते । सं सैर्वविद्रौर्न बाध्यते । स सर्वतः सुखमेधते । स पञ्च महापातकोपपातकात्प्रमु-च्यते । सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रि-कृतं पापं नाशयति । सायंप्रातः प्रयुंजानोऽपापो भवति । धर्मार्थ-काससीक्षं च विन्दति । इदमथर्वशीर्पमशिष्याय न देयस् । यो यदि मोहादास्थात स पापीयान्भवति । सहस्रावर्तनाद्यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत् । अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति । चतुर्थ्या-मनश्रञ्जपति स विद्यावानभवति । इत्यथर्वणवाक्यम् । ब्रह्माद्याचरणं विद्यात् । न विभेति कदाचनेति। यो दूर्वाङ्करैर्यजिति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्वजति स यशोवान्भवति । स मेधावान्भवति । यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवामोति । यः साज्यसमिद्धिर्यजति स सर्वं लभते स सर्वं रुभते । अष्टी ब्राह्मणान्सम्यग्बाहियत्वा सूर्यवर्चस्वी भवति । सूर्यप्रँहे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जहवा सिद्धमत्रो भवति । महाविद्यात्प्रमुच्यते । महापापात्प्रमुच्यते । महादोषात्प्रमुच्यते । स सर्वविद्ववति स सर्वविद्ववति : य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

म। अव

अव

वा॰

ः । यक्षं

ने ।

ार-

न्त

त्वं

दिं

ત•

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति द्यान्तिः॥ इति गणपत्युपनिषत्समासा॥ ९२॥

श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् ॥ ९३ ॥

यमाद्यष्टाङ्गयोगेद्धं ब्रह्ममात्रप्रवोधतः । योगिनो यत्पदं यान्ति तत्कैवल्यपदं अजे ॥ १ ॥

ॐ आप्यायन्त्वित शान्तिः॥

हरिः ॐ ॥ दत्तात्रेयो महायोगी भगवानभूतभावनः । चतुर्भुजो महाविष्णु-र्योगसाम्राज्यदीक्षितः ॥ १ ॥ तस्य शिष्यो सुनिकरः सांकृतिर्नाम भक्तिमान । पप्रच्छ गुरुमेकान्ते प्राञ्जिलिविनयान्वितः ॥ २ ॥ भगवन्त्रहि भे योगं साष्टाङ्गं सप्रपञ्चकम् । येन विज्ञीतमात्रेण जीवन्युक्तो भवास्यहम् ॥ ३ ॥ सांकृते इर्ण वक्ष्यामि योगं साष्टाङ्गदर्शनम् । यमश्च नियमश्चेव तथैवासनसेव च ॥ ४ ॥ प्राणायामस्तथा ब्रह्मन्प्रत्याहारस्ततः परम् । धारणा च तथा ध्यानं समाधिश्राष्टमं मुने ॥ ५ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं द्यार्जवस् । क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥ ६ ॥ वेदोक्तेन प्रकारेण विना सत्यं तपोधन । कायेन मनसा वाचा हिंसाऽहिंसा न चान्यथा ॥ ७ ॥ आत्मा सर्वगतोऽच्छेद्यो न श्राह्य इति मे सतिः। सा चाहिंसा वरा श्रोक्ता सने वेदान्तवेदिभिः ॥ ८ ॥ चक्षुरादीन्द्रियेदेष्टं श्चतं घातं सुनीश्वर । तस्यैवोक्तिः र्भवेत्सत्यं विष्र तन्नान्यथा भवेत् ॥ ९ ॥ सर्वं सत्यं परं ब्रह्म न चान्यदिति या मतिः । तच सत्यं वरं प्रोक्तं वेदान्तज्ञानपारगैः ॥ १०॥ अन्यदीये नृणे रते काञ्चने मौक्तिकेऽपि च। मनसा विनिवृत्तिर्या तदस्तेयं विदुर्बुधाः ॥ ११॥ आत्मन्यनात्मभावेन व्यवहारविवर्जितम् । यत्तदस्तेयमित्युक्तमात्मविद्रिर्म-हामते ॥ १२ ॥ कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम् । ऋतौ भार्या तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते ॥ १३ ॥ ब्रह्मभावे मनश्चारं ब्रह्मचर्यं परन्तप ॥ १४ ॥ स्वात्मवत्सर्वभूतेषु कायेन मनसा गिरा । अनुज्ञा या दया सैव प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः ॥ १५ ॥ पुत्रे मित्रे कलत्रे च रिपौ स्वात्मनि संततम्। एकरूपं मुने यत्तदार्जवं प्रोच्यते मया ॥ १६ ॥ कायेन मनसा वाचा शत्रुभिः परिपीडिते । बुद्धिक्षोभिनेवृत्तिर्या क्षमा सा मुनिपुङ्गव ॥ १७ ॥ वेदादेव विनिर्मोक्षः संसारस्य न चान्यथा । इति विज्ञाननिष्पत्तिर्धतिः प्रोक्ता हि वैदिकैः । अहमात्मा न चान्योऽसीत्येवमप्रच्युता मतिः ॥ १८ ॥ अल्पमृष्टा-

शनाभ्यां च चतुर्थाशावशेषकम् । तसाद्योगानुगुण्येन भोजनं मित-भोजनम् ॥ १९ ॥ स्वदेहमलिनेमीक्षो मृजलाभ्यां महामुने। यत्तच्छीचं भवे-द्वाद्यं मानसं मननं विदुः। अहं ग्रुद्ध इति ज्ञानं शौचमाहुर्मनीषिणः ॥ २० ॥ अत्यन्तमिलनो देहो देही चात्यन्तिर्मिलः। उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते ॥ २१ ॥ ज्ञानशौचं परित्यज्य बाह्ये यो रमते नरः । स मृदः काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्टं गृह्णाति सुत्रत ॥ २२ ॥ ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः। न चास्ति किंचित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥ २३ ॥ लोकन्न-येऽपि कर्तव्यं किंचिन्नास्त्यात्मवेदिनाम् ॥ २४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयक्षेन मुनेऽहिं-सादिसाधनेः। आत्मानमक्षरं त्रह्म विद्धि ज्ञानात्तु वेदनात् ॥ २५ ॥

इति जायालदर्शनोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

तपः संतोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् । सिद्धान्तश्रवणं चैव हीर्मतिश्र जपो वतस् ॥ १ ॥ एते च नियमाः प्रोक्तास्तान्वक्ष्यामि क्रमाच्छ्णु ॥ २ ॥ वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्चान्द्रायणादिभिः । शरीरशोषणं यत्तत्तप इत्युच्यते बुधैः ॥ ३ ॥ को वा मोक्षः कथं तेन संसारं प्रतिपन्नवान् । इत्यालोकनमर्थ-ज्ञास्तपः शंसन्ति पण्डिताः ॥ ४ ॥ यहच्छालाभतो नित्यं प्रीतिर्या जायते नृणाम् । तत्संतोषं विदुः प्राज्ञाः परिज्ञानैकतत्पराः॥ ५ ॥ ब्रह्मादिलोकपर्य-न्ताद्विरक्तया यञ्जभेटिपयम् । सर्वत्र विगतस्रेहः संतोषं परमं विदुः । श्रौते स्रातें च विश्वासो यत्तदास्तिक्यमुच्यते॥ ६॥ न्यायार्जितधनं श्रान्ते श्रद्धया वैदिके जने । अन्यद्वा यत्प्रदीयन्ते तद्दानं प्रोच्यते मया ॥ ७ ॥ रागाद्यपेतं हृद्यं वागदुष्टानृतादिना । हिंसादिरहितं कर्म यत्तदीश्वरपूजनम् ॥ ८ ॥ सत्यं ज्ञानसनन्तं च परानन्दं परं ध्रुवम् । प्रत्यगित्यवगन्तव्यं वेदान्तश्रवणं बुधाः ॥ ९ ॥ वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यद्भवेत् । तस्मिन्भवति या लजा हीः सैवेति प्रकीर्तिता। वैदिकेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ॥ १०॥ गुरुणा चोपदिष्टोऽपि तत्र संबन्धवर्जितः। वेदोक्तेनैव मार्गेण मन्त्राभ्यासौ लपः स्मृतः ॥ ११ ॥ कल्पसूत्रे तथा वेदे धर्मशास्त्रे पुराणके । इतिहासे च वृत्तिर्या स जपः प्रोच्यते मया॥ १२॥ जपस्तु द्विविधः प्रोक्तो वाचिको मानसस्तथा ॥ १३ ॥ वाचिकोपांग्रुरुचैश्र द्विविधः परिकीर्तितः । मानसो सननध्यानभेदाद्वेविध्यमाश्रितः ॥ १४ ॥ उच्चैर्जपादुपांगुश्च सहस्रगुणसुच्यते । सानसश्च तथोपांशोः सहस्रगुणसुच्यते ॥ १५ ॥ उच्चेर्जपश्च सर्वेषां यथोक्त-फलदो भवेत् । नीचैः श्रोत्रेण चेन्मज्ञः श्चतश्चेत्रिष्फलं भवेत् ॥ १६ ॥ इति ॥ इति जावालदर्शनोपनिषस्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

स्वस्तिकं गोयुखं पद्मं वीरसिंहासने तथा । अदं युक्तासनं चैव मयूरास-नमेव च ॥ १ ॥ सुखासनसमाख्यं च नवमं सुनिपुङ्गव । जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक् पादतले उसे ॥ २ ॥ समग्रीविशःकायः खिसिकं नित्यमभ्य-सेत्। सच्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्टपार्थे नियोजयेत् ॥ ३ ॥ दक्षिणेऽपि तथा सन्यं गोसुखं तत्प्रचक्षते । अङ्गुष्टावधि गृह्णीयाद्स्ताभ्यां न्युत्क्रमेण तु ॥ ४॥ कवींरुपरि विप्रेन्द्र कृत्वा पादतलद्वयम् । पद्मासनं अवेत्प्राज्ञ सर्वरोगअया-पहम् ॥ ५ ॥ दक्षिणेतरपादं तु दक्षिणोरुणि विन्यसेत् । ऋजुकायः सम्रा-सोनो वीरासनमुदाहतस् ॥ ६ ॥ गुल्फो तु वृषणसाधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्। पार्श्वपादी च पाणिभ्यां दृढं बन्दा सुनिश्चलस् । भद्रासनं भवेदेत-द्विषरोगविनाशनम् ॥ ७ ॥ निपीड्य सीवनीं सूक्ष्मं दक्षिणेतरगुरुकतः । वाम्रं याम्येन गुल्फेन सुक्तासनिमदं भवेत् ॥ ८॥ सेद्रादुपरि तिक्षिण्य सन्यं गुल्फं तथोपरि । गुल्फान्तरं च संक्षिप्य सुक्तासनिमदं सुने ॥ ९ ॥ कूर्पराग्रे सुनिश्रेष्ठ निक्षिपेक्वाभिपार्श्वयोः । सूस्यां पाणितल्हन्हं निक्षिप्येकाग्रमानसः ॥ १० ॥ समुन्नतशिरःपादो दण्डवद्योन्नि संस्थितः । मयूरासनमेतत्स्यात्स-र्वपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥ येन केन प्रकारेण सुखं धेर्यं च जायते । तत्सु-खासनमित्युक्तमशक्तस्तसमाश्रयेत् ॥ १२ ॥ आसनं विजितं येन जितं तेन जगञ्जयम् । अनेन विधिना युक्तः प्राणायामं सदा कुरु ॥ १३ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

शरीरं ताबदेव स्यात्षण्णवस्यङ्गुलात्मकम् । देहमध्ये शिखिस्थानं तश्जा-म्ब्नद्रभम् ॥ १ ॥ त्रिकोणं मनुजानां तु सत्यमुक्तं हि सांकृते । गुदानु ब्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रानु ब्यङ्गलाद्धः ॥ २ ॥ देहमध्यं मुनिप्रोक्तमनुजानिहिं सांकृते । कन्दस्थानं मुनिश्रेष्ठ मूलाधारात्रवाङ्गलम् ॥ ३ ॥ चतुरङ्गलमाया-मविस्तारं मुनिपुङ्गव । कुकुटाण्डसमाकारं भूषितं तु त्वगादिभिः ॥ ४ ॥ वन्मध्ये नाभिरित्युक्तं योगज्ञैर्मुनिपुङ्गव । कन्दमध्यस्थिता नाडी सुपुन्नेनि प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥ तिष्टन्ति परितस्तस्या नाड्यो हि मुनिपुङ्गव । द्विसप्ततिस-

हसाणि तासां सुख्याश्चतुर्दश ॥ ६ ॥ सुपुन्ना पिङ्गला तहृदिडा चैव सर-खती। पूषा च वरुणा चैव हस्तिजिह्ना यशस्त्रिनी॥ ७॥ अलम्बुसा कुट्ट-श्रीय विश्वीदरी तपस्विनी । शङ्किनी चैव गान्धारा इति सुख्याश्रतुर्दश ॥८॥ आसां मुख्यतमास्तिस्रस्तिष्वेकोत्तमोत्तमा । ब्रह्मनाडीति सा प्रोक्ता सुने वेदान्तवेदिभिः ॥ ९ ॥ पृष्टमध्यस्थितेनास्त्रा वीगादण्डेन सुवत । सह म्रस्तकपर्यन्तं सुपुन्ना सुप्रतिष्ठिता ॥ १० ॥ नाभिकन्दाद्धः स्थानं कुण्डल्याः ह्यञ्जलं सुने । अष्टप्रकृतिरूपा सा कुण्डली सुनिसत्तम ॥ ११ ॥ यथावद्वायु-चेष्टां च जलानादीनि नित्यशः । परितः कन्दपार्श्वेषु निरुध्येव सदा स्थिता ॥ १२ ॥ स्वसुखेन सैमावेध्य ब्रह्मरन्ध्रसुखं सुने । सुपुन्नाया इडा सब्वै दक्षिणे पिङ्गला स्थिता ॥ १३ ॥ सरस्वती कुहूश्चेव सुपुन्नापार्श्वयोः स्थिते । गान्धारा हस्तिजिह्ना च इडायाः पृष्ठपार्श्वयोः ॥ १४ ॥ पूषा यशस्त्रिनी चैव पिङ्गला पृष्ठपूर्वयोः । कुहोश्च हस्तिजिह्वाया मध्ये विश्वोदरी स्थिता ॥ १५॥ यशस्त्रिन्याः कुहोर्मध्ये वरुणा सुप्रतिष्ठिता । पूपायाश्च सरस्वत्या मध्ये श्रोक्ता यशस्त्रिनी ॥ १६ ॥ गान्धारायाः सरस्त्रत्या मध्ये प्रोक्ता च शङ्किनी । अलम्बुसा स्थिता पायुपर्यन्तं कन्दमध्यगा ॥ ३७ ॥ पूर्वभागे सुवुन्नाया राकायाः संस्थिता कुहुः । अधश्रोध्वं स्थिता नाडी याम्यनासान्तिपव्यते ॥ १८ ॥ इडा तु सञ्यनासान्तं संस्थिता मुनिपुङ्गव । यशस्विनी च वामस्य पादाङ्कष्टान्तसिष्यते ॥ १९ ॥ पूषा वामाक्षिपर्यन्ता पिङ्गलायास्तु पृष्टतः । पयस्त्रिनी च याम्यस्य कर्णान्तं प्रोच्यते बुधैः ॥ २० ॥ सरस्रती तथा चोर्ध्व-गता जिह्ना तथा सुने । हस्तिजिह्ना तथा सन्यपादाङ्गुष्टान्तमिष्यते ॥ २१ ॥ शक्किनी नाम या नाडी सन्यकर्णान्तामिष्यते । गान्धारा सन्यनेत्रान्ता प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः ॥ २२ ॥ विश्वोदराभिधा नाडी कन्द्रमध्ये व्यवस्थिता । प्राणोऽपानस्तथा च्यानः समानोदान एव च ॥ २३ ॥ नागः कूर्मश्र कृकरो देवदत्तो धनंजयः । एते नाडीषु सर्वासु चरन्ति दश वायवः ॥ २४ ॥ तेषु प्राणाद्यः पञ्च मुख्याः पञ्चसु सुत्रत । प्राणसंज्ञस्तथापानः पूज्यः प्राणस्त-योर्भुने ॥ २५ ॥ आस्पनासिकयोर्मध्ये नाभिमध्ये तथा हृदि । प्राणसंज्ञो-्रिलेलो नित्यं वर्तते मुनिसत्तम ॥ २६ ॥ अशानो वर्तते नित्यं गुद्मध्योह-जानुषु ! उदरे सकले कट्यां नाभी जङ्के च सुवत ॥ २७ ॥ व्यानः श्रोत्रा-

क्षिमध्ये च ककुच्यां गुल्फयोरिप । प्राणस्थाने गले चैव वर्तते मुनिगुङ्गव ॥ २८ ॥ उदानसंज्ञो विज्ञेयः पादयोईस्तयोरपि । समानः सर्वदेहेषु ग्याप्य तिष्ठत्यसंशयः ॥ २९ ॥ नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः । निः-श्वासोच्छ्रासकासाश्च प्राणकर्म हि सांकृते॥ ३०॥ अपानाख्यस्य वायोस्त विण्मुत्रादिविसर्जनम् । समानः सर्वसामीप्यं करोति सुनिपुङ्गव ॥ ३१॥ उदान अर्ध्वगमनं करोत्येव न संशयः। व्यानो विवादकुत्शोक्तो मुने वेदा-न्तवेदिभिः ॥ ३२ ॥ उद्गारादिगुणः प्रोक्तो ज्यानाख्यस्य महामुने । धनं-जयस्य शोभादि कर्म प्रोक्तं हि सांकृते ॥ ३३ ॥ निसीलनादि कूर्मस्य क्षुधा तु कुकरस्य च । देवदत्तस्य विभेनद्र तन्द्रीकर्स प्रकीर्तितम् ॥ ३४ ॥ सुपु-**ञ्चायाः** शिवो देव इडाया देवता हरिः । पिङ्गलाया विरिञ्जः स्यात्सरस्वसा विराण्मुने ॥ ३५ ॥ पूषाधिदेवता प्रोक्ता वरुणा वायुदेवता । हस्तिजिह्ना-भिधायास्तु वरुणो देवता भवेत् ॥ ३६ ॥ यशस्विन्या मुनिश्रेष्ठ भगवानभा-स्करस्तथा । अलम्बुसाया अम्ब्वात्मा वरुणः परिकीर्तितः ॥ ३७॥ कुहोः क्षु-देवता श्रोक्ता गान्धारी चन्द्रदेवता । शङ्किन्याश्चन्द्रमास्तद्वत्पयस्विन्याः प्रजा-पतिः ॥ ३८ ॥ विश्वोदराभिधायास्तु भगवान्पावकः पतिः । इडायां चन्द्रमा निस्यं चरत्येव महामुने ॥ ३५ ॥ पिङ्गलायां रविस्तद्वनमुने वेदविदां वर । पिक्नलायामिडायां तु वायोः संक्रमणं तु यत् ॥ ४० ॥ तदुत्तरायणं श्रोक्तं सुने वेदान्तवेदिभिः । इडायां पिङ्गलायां तु प्राणसंक्रमणं सुने ॥ ४१॥ दक्षिणायनमित्युक्तं पिङ्गलायामिति श्रुतिः । इडापिङ्गलयोः संधि यदा प्राणः समागतः ॥ ४२ ॥ अमावास्या तदा प्रोक्ता देहे देहभृतां वर । मूलाधारं बदा प्राणः प्रविष्टः पण्डितोत्तम ॥ ४३ ॥ तदाद्यं विषुवं प्रोक्तं तापसैस्ताप-स्रोत्तम । प्राणसंज्ञो सुनिश्रेष्ठ सूर्धानं प्राविशद्यदा ॥ ४४ ॥ तदन्त्यं विषुवं श्रोक्तं तापसैसत्त्वचिन्तकैः । निःश्वासोच्छ्वासनं सर्वं मासानां संक्रमो भवेत् ॥ ४५ ॥ इडायाः कुण्डलीस्थानं यदा प्राणः समागतः । सोमग्रहणमित्युक्तं तदा तत्त्वविदां वर ॥ ३६ ॥ यदा पिङ्गलया प्राणः कुण्डलीस्थानमागतः। तदा तदा भवेत्सूर्थग्रहणं मुनिपुङ्गव ॥ ४७ ॥ श्रीपर्वतं शिरःस्थाने केदारं ग्र ल्लाटके । वाराणसी महाप्राज्ञ अवीर्घाणस्य मध्यमे ॥ ४८ ॥ कुरुषेत्रं कुचस्थाने प्रयागं हत्सरोरुहे । चिद्म्बरं तु हृन्मध्ये आधारे कमलालयम्

a

य

तु

11

П

1

11

॥ ४९ ॥ आत्मतीर्थं समुत्सुज्य बहिस्तीर्थानि यो वजेत् । करस्थं स महारतं त्यक्त्वा काचं विमार्गते ॥ ५० ॥ भावतीर्थं परं तीर्थं प्रमाणं सर्वकर्मसु । अन्यथालिङ्ग्यते कान्ता अन्यथालिङ्ग्यते सुता ॥ ५१ ॥ तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्काष्टादिनिर्मितास् । योगिनो न प्रपूज्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ॥ ५२ ॥ बहिस्तीर्थात्परं तीर्थमन्तस्तीर्थं महामुने । आत्मतीर्थं महातीर्थमन्यत्तीर्थं निर-र्थकम् ॥ ५३ ॥ चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न ग्रुच्यति । शतशोऽपि जलै-र्धीतं सुराभाण्डमिवाञ्चि॥ ५४ ॥ विपुवायनकालेपु प्रहणे चान्तरे सदा। वाराणस्यादिके स्थाने स्नात्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥ ५५ ॥ ज्ञानयोगपराणां तु पादप्रक्षालितं जलम् । भावशुद्धर्धमज्ञानां तत्तीर्थं मुनिपुङ्गव ॥ ५६॥ तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्टे पापाणके सदा । शिवं पश्यित मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ॥ ५७ ॥ अन्तःस्थं मां परित्यज्य बहिष्टं यस्तु सेवते । हस्तस्थं पिण्ड-मुत्सुज्य लिहेत्कूर्परमात्मनः ॥ ५८॥ शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः । अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः ॥ ५९ ॥ अपूर्व-मपरं ब्रह्म स्वात्मानं सत्यमद्वयम् । प्रज्ञानवनमानन्दं यः पश्यति स पश्यति ॥ ६० ॥ नाडीपुञ्जं सदा सारं नरभावं महामुने । समृत्सुज्यात्मनाऽऽत्मानम-हमित्येव धारय ॥ ६३ ॥ अशरीरं शरीरेषु महान्तं विभुमीश्वरम् । आन-न्दमक्षरं साक्षानमत्वा धीरो न शोचित ॥ ६२ ॥ विभेदजनके ज्ञाने नष्टे ज्ञानबलान्मुने । आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं किं^१ करिष्यति ॥ ६३ ॥ इति ॥ इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

सम्यक्तथय मे ब्रह्मनाडीशुद्धिं समासतः। यथा शुद्धा सदा ध्यायञ्जीवन्मु-क्तो भवाम्यहम् ॥ १ ॥ सांकृते रुगु वक्ष्यामि नाडीशुद्धिं समासतः। विध्युक्त-कर्मसंयुक्तः कामसंकल्पवर्जितः॥ २ ॥ यमाद्यष्टाङ्गसंयुक्तः शान्तः सत्यपरा-यणः। स्वात्मन्यवस्थितः सम्यग्ज्ञानिभिश्च सुशिक्षितः॥ ३ ॥ पर्वताग्रे नदी-तीरे बिल्वमूले वनेऽथवा। मनोरमे शुचो देशे मठं कृत्वा समाहितः॥ ४ ॥ आरभ्य चासनं पश्चात्प्राञ्ज्यखोदञ्ज्यखोऽपि वा। समग्रीविश्ररःकायः संवृतासः सुनिश्चलः॥ ५ ॥ नासाग्रे शश्चमित्रं विन्दुमध्ये तुरीयकम्। स्वन्तमस्रतं पश्चेत्रेत्राभ्यां सुसमाहितः॥ ६ ॥ इउया प्राणमाकृत्य प्रियन्वोदरे स्थितम् । ततोऽग्निं देहमध्यस्यं ध्यायक्ष्यावावलीयुतम् ॥ ७ ॥

विन्दुनाद्समायुक्तमधिवीजं विनिन्तयेत् । पक्षाद्विरेचयेत्सम्यक्त्राणं विद्वस्वा गुप्तः ॥ ८ ॥ पुनः पिङ्गस्यापूर्यं विद्विश्वीजमनुस्मरेत् । पुनर्विरेचयेद्वीमानिस्येव शनैः सनैः ॥ ९ ॥ त्रिचतुर्वासरं वाथ त्रिचतुर्वारमेव च । पदकृत्वा विचरित्रस्यं रहस्येवं त्रिसंधिषु ॥ १० ॥ नाडीश्चिद्वमवामोति पृथक्विद्वीपस्यक्ताः । शरीररूपुता दीतिर्वहेर्जाठरवर्तिनः ॥ ११ ॥ नादाप्तिस्यकिरिस्येतिवाहं तत्तिद्विस्युक्तम् । यावदेतानि संपत्र्येत्तावदेवं समाचरेत्
॥ १२ ॥ अथवेतत्परित्यज्य स्वात्मशुद्धिं समाचरेत् । आत्मा ग्रुद्धः सदा
नित्यः सुखस्यः स्वयस्प्रभः ॥ १३ ॥ अञ्चानान्मस्तिनो आति ज्ञानान्युद्धो
स्वत्ययम् । अञ्चानमरूपद्धं यः क्षारुयेज्ञ्चानतो यतः । स एव सर्वदा ग्रुद्धो
नान्यः कर्मरतो हि सः ॥ १४ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषरसु पचमः खण्डः ॥ ५ ॥

प्राणायामक्रमं वस्ये सांकृते श्रणु सादरम् । प्राणायाम इति प्रोक्तो रेक पूरककुम्भकैः ॥ १ ॥ वर्णत्रयात्मकाः प्रोक्ता रेचपूरककुम्भकाः । स एष प्रणवः प्रोक्तः प्राणाचामस्तु तन्ययः ॥ २॥ इडवा वायुसाकृष्य प्रवि-रवीदरे स्थितम् । शनैः षोडशिसमात्रैरकारं तत्र संसारेत् ॥ ३॥ पूरितं श्वारवेत्पश्चाखतुःषष्ट्या तु मात्रया । उकारमूर्तिमत्रावि संस्वरन्यणवं जपेत् ॥॥ थाबद्वा शक्यते ताबद्धारयेजापतत्परः । प्रितं रेचयेत्पश्चानमकारेणानिढं बुषः ॥ ५ ॥ शनैः पिङ्गलया तत्र द्वार्तिशन्मात्रया पुनः । प्राणायामो भवे-देवं ततश्चेवं समभ्यसेत् ॥ ६ ॥ पुनः पिङ्गलयापूर्य मात्रेः षोडनामित्रया। अकारमूर्तिमत्रापि स्परेदेकाग्रमानसः ॥ ७ ॥ धारचेत्पूरितं विद्वानप्रणवं संजयन्वशी । उकारमृति स ध्यायंश्चतुःपद्या तु मात्रया ॥ ८ ॥ मकारं तु स्मरन्पश्चादेचयेदिडयाऽनिलम् । एवसेव युनः कुर्यादिडयाप्ये वृद्धिमार् ॥ ९॥ एवं समभ्यसेन्नित्यं प्राणायामं सुनीश्वर । एवमभ्यासतो निर्व षण्यासाचत्रवान्भवेत् ॥ १० ॥ वत्सराद्रह्मविद्वान्त्यात्तसान्तिलं सप्तस्यसेत्। योगाभ्यासरतो नित्यं स्वधर्मनिरतश्च यः ॥ १९ ॥ प्राणसंयमनेतैव ज्ञानान्युक्तो अनिप्यति । नाह्यादापुरणं नायोरुद्रे पूरको हि सः॥ १२॥ संपूर्णकुरभवद्वायोधीरणं कुरभको भवेत् । बहिर्विरेचनं वाबोरदराद्रेचकः स्सृतः ॥ १३ ॥ प्रस्वेदजनको यस्तु प्राणायाचे । वा । कम्पनं प्रध्यमं ः स्थानसंभवः। विषादुत्थानं चोत्तमं विदुः॥ १४

: 8 पेङ्ग वचे-पद-प्यू-हरा-रित नदा खो हिंदी रेच-पुष रचि-रितं 11811 निलं सर्व-था। प्रणवं नकारं सन् क्षित्व सेत्। नेनेव 9311 चकः ध्यमं

वः।

संभवत्युत्तमे प्राज्ञः प्राणायामे सुखी भवेत् ॥ १५ ॥ प्राणायामेन चित्तं तु शुद्धं अवति सुवत । चित्ते शुद्धे शुचिः साक्षात्प्रत्यग्ज्योतिव्यव-स्थितः ॥ १६ ॥ प्राणिश्चत्तेन संयुक्तः परमात्मनि तिष्ठति । प्राणायामपर-स्यास्य पुरुवस्य अहात्मनः ॥ १७ ॥ देहश्चोत्तिष्ठते तेन किंचिज्ज्ञानाद्वि-मुक्तता। रेचकं पूरकं सुक्रवा कुम्भकं नित्यमभ्यसेत् ॥ १८ ॥ सर्व-पापविभिशुक्तः सम्यग्ज्ञानसवापुयात् । मनोजवत्वमामोति पछितादि च नस्यति ॥ १९ ॥ प्राणायामैकनिष्ठस्य न किंचिदपि दुर्लभम् । तस्मात्सर्वे-प्रयक्षेत्र क्राणायास्त्रव्ससम्यसेत् ॥ २० ॥ विनियोगान्प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य सुवत । संध्यबोर्बाह्यकालेऽपि मध्याह्ने वाऽथवा सदा ॥ २१ ॥ बाह्य प्राणं सम्राकृष्य प्रथित्वोदरेण च । नासात्रे नाभिमध्ये च पादानुहे च धारयेत् ॥ २२ ॥ सर्वरोगिविनिर्भुक्तो जीवेद्वर्षशतं नरः । नासाप्र-धारणाहापि जितो भवति सुवत ॥ २३ ॥ सर्वरोगनिवृत्तिः स्यान्नाभिमध्ये तु धारणात् । शरीरलघुता वित्र पादाङ्गुष्टनिरोधनात् ॥२४॥ जिह्नया वायुमा-कृष्य यः पिवेत्सततं नरः । श्रमदाहविनिर्मुक्तो योगी नीरोगतामियात् ॥२५॥ जिह्नया वायुमाकृष्य जिह्नामूले निरोधयेत् । पिनेदमृतमन्यम् सकलं सुलमा-मुयात् ॥ २६ ॥ इडया वायुमाकृष्य भ्रुवोर्मध्ये निरोधयेत् । यः पिबेद्सृतं शुद्धं न्याधिभिर्मुच्यते हि सः ॥२०॥ इडया वेदतत्त्वज्ञस्तथा पिङ्गलयैव च । नाभौ निरोधयेत्तेन व्याधिभिर्मुच्यते नरः ॥ २८ ॥ मासमात्रं त्रिसन्ध्यायां जिह्नयारोप्य मारुत्स् । असृतं च पिवेन्नाभौ मन्दं मन्दं निरोधयेत् ॥ २९ ॥ वातजाः पित्तजा दोषा नश्यन्त्येव न संशयः । नासाभ्यां वायुमाकृष्य नेश्न-द्वन्द्वे निरोधयेत् ॥ ३० ॥ नेत्ररोगा विनक्यन्ति तया श्रोत्रनिरोधनात् । तथा वायुं समारोप्य धारयेच्छिरसि स्थितम् ॥ ३१ ॥ शिरोरोगा विनइयन्ति सत्यमुक्तं हि सांकृते । स्वस्तिकासनमास्थाय समाहितमनास्तथा ॥ ३२ ॥ अपानसूर्ध्वमुत्थाप्य प्रणवेन शनैः शनैः । हस्ताभ्यां धारयेत्सम्यक्कर्णादिकर-णानि च ॥ ३३ ॥ अङ्गुष्ठाभ्यां मुने श्रोत्रे तर्जनीम्यां तु चक्षुषी । नासापुटा-वधानाभ्यां प्रच्छाद्य करणानि वै ॥ ३४ ॥ आनन्दाविभवो यावत्तावनमूर्धनि धारणात् । प्राणः प्रयात्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्रं महामुने ॥ ३५ ॥ ब्रह्मरन्ध्रं गते वायौ नादश्चोत्पद्यतेऽनव । शङ्कध्वनिनिभश्चादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा ॥ ३६ ॥ शिरोमध्यगते वायौ गिरिप्रस्रवणं यथा । पश्चान्त्रीतो महाप्राज्ञः साक्षादात्मो-

म्मुखो भवेत् ॥ ३७ ॥ पुनस्तज्ज्ञाननिष्पत्तियोगात्संसारनिह्नतिः । दक्षिणोत्तर-गुल्फेन सीवनी पीडयेत्स्थरम् ॥ ३८ ॥ सन्येतरेण गुल्फेन पीडयेद्याद्ध-मान्नरः। जान्वोरधःस्थितां सन्धि स्मृत्वा देवं त्रियम्बकम् ॥ ३९ ॥ विना-यकं च संस्मृत्य तथा वागीश्वरीं पुनः । लिङ्गनालात्समाकृष्य वायुमप्यमतो सुने ॥ ४० ॥ प्रणवेन नियुक्तेन बिन्दुयुक्तेन बुद्धिमान् । मूलाधारस्य विप्रेन्द्र मध्ये तं तु निरोधयेत् ॥ ४१ ॥ निरुध्य वायुना दीस्रो विद्वरूहित कुण्ड-लीम्। पुनः सुपुन्नया वायुर्वेह्निना सह गच्छति ॥ ४२ ॥ एवमभ्यसतस्त्र जितो वायुर्भवेद्धशस् । प्रस्वेदः प्रथमः पश्चात्कम्पनं सुनिपुङ्गव ॥ ४३ ॥ उत्थानं च शरीरस्य चिह्नमेतिजितेऽनिले । एवमेभ्यसतस्य मूलरोगो विन-इयति ॥ ४४ ॥ भगन्दरं च नष्टं स्थात्सर्वरोगाश्च सांकृते । पातकानि विन-इयन्ति क्षुद्राणि च महान्ति च ॥ ४५ ॥ नष्टे पापे विशुद्धं स्याचित्तदर्पणम-द्भतम् । पुनर्वह्मादिभोगेभ्यो वैराग्यं जायते हृदि ॥ ४६ ॥ विरक्तस्य तु संसाराज्ज्ञानं कैवल्यसाधनम् । तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम् ॥ ४७ ॥ ज्ञानामृतरसो येन सकृदास्त्रादितो भवेत् । स सर्वकार्यमुत्सुज्य तस्रैव परिधावति ॥ ४८ ॥ ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विलक्षणम् । अर्थस्वरूप-मज्ञानात्परयन्त्यन्ये कुदृष्टयः ॥ ४९ ॥ आत्मस्बरूपविज्ञानादज्ञानस्य परिश्लयः। क्षीणेऽज्ञाने महाप्राज्ञ रागादीनां परिक्षयः ॥ ५० ॥ रागाद्यसंभवे प्राज्ञ पुण्यपापविमर्दनम् । तयोर्नाशे शरीरेण न पुनः संप्रयुज्यते ॥ ५१ ॥ इति ॥ इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारं महामुने । इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ॥ १ ॥ बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते । यत्परयित तु तत्सर्व वह परयन्समाहितः ॥ २ ॥ प्रत्याहारो भवेदेष ब्रह्मविद्धः परोदितः । यद्यच्छुद्धमञ्जद्धं वा करोत्यामरणान्तिकम् ॥ ३ ॥ तत्सर्व ब्रह्मणे कुर्यात्प्रत्याहारः स उच्यते । अथवा नित्यकर्माणि ब्रह्माराधनबुद्धितः ॥ ४ ॥ काम्यानि च तथा कुर्यात्प्रत्याहारः स उच्यते । अथवा वायुमाकृष्य स्थाना-रस्थानं निरोधयेत् ॥ ५ ॥ दन्तमूलात्तथा कण्ठे कण्ठादुरित मारुतम् । उरोद्धात्ममाकृष्य नाभिदेशे निरोधयेत् ॥ ६ ॥ नाभिदेशात्समाकृष्य कुण्डत्यां तु निरोधयेत् ॥ ७ ॥ अथा-

Ą

य

11

तु

ने

यां 1पानात्किटिद्वन्द्वे तथोरों च सुमध्यमे । तस्माजानुद्वये जङ्के पादाङ्कृष्ठे निरोध्येत् ॥ ८ ॥ प्रत्याहारोऽयमुक्तस्तु प्रत्याहारस्परेः पुरा । एवमभ्यासयुक्तस्य पुरुषस्य महात्मनः ॥ ९ ॥ सर्वपापानि नश्यन्ति भवरोगश्च सुवत । नास्माभ्यां वायुमाकृष्य निश्चलः स्वस्तिकासनः ॥ १० ॥ पूरयेदनिलं विद्वानापादतलमस्तकम् । पश्चात्पादद्वये तद्वन्मूलाधारे तथैव च ॥ ११ ॥ नामिकन्दे च हन्मध्ये कण्ठमूले च तालुके । भ्रुवोर्मध्ये ललाटे च तथा मूर्धनि धारयेत् ॥ १२ ॥ देहे स्वात्ममितं विद्वानसमाकृष्य समाहितः । आस्मना-ऽऽत्मिनि निर्द्वन्द्वे निर्विकल्पे निरोधयेत् ॥ १३ ॥ प्रत्याहारः समाख्याः साक्षाद्वेदान्तवेदिभिः । प्रवमभ्यसतस्तस्य न किंचिदिप दुर्लभम् ॥ १४ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु सप्तमः खण्डः ॥ ७॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि धारणाः पञ्च सुवत । देहमध्यगते ज्योन्नि बाद्धाऽऽकाशं तु धारयेत् ॥ १ ॥ प्राणे बाद्धानिलं तद्वज्जवलने चान्निमौदरे । तोयं
तोयांशके भूमिं भूमिभागे महामुने ॥ २ ॥ हयवरलकाराख्यं मन्नमुचारयेरक्षमात् । धारणेषा परा प्रोक्ता सर्वपापविशोधिनी ॥ ३ ॥ जान्वन्तं पृथिवी
द्धांशो ह्यपां पाय्वन्तमुच्यते । हृद्यांशस्त्रथाद्वयंशो भूमध्यान्तोऽनिलांशकः
॥ ४ ॥ आकाशांशस्त्रथा प्राज्ञ मूर्यांशः परिकीर्तितः । ब्रह्माणं पृथिवीमारे
विष्णुं तोयांशके तथा ॥ ५ ॥ अद्वयंशे च महेशानमीश्वरं चानिलांशके ।
आकाशांशे महाप्राज्ञ धारयेतु सदाशिवम् ॥ ६ ॥ अथवा तव वक्ष्यामि
धारणां मुनिपुङ्गव । पुरुषे सर्वशास्तारं बोधानन्दमयं शिवम् ॥ ७ ॥ धारयेदुद्धिमान्निल्यं सर्वपापितशुद्धये । ब्रह्मादिकार्यरूपाणि स्वे स्वे संहृत्य कारणे
॥ ८ ॥ सर्वकारणमन्यक्तमनिरूप्यमचेतनम् । साक्षादात्मिन संपूर्णे धारयेरप्रणवेन तु । इन्द्रियाणि समाहृत्य मनसात्मिन योजयेत् ॥ ९ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्स्वष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि ध्यानं संसारनाशनम् । ऋतं सत्यं परं व्रह्म सर्व-संसारभेषजम् ॥ १ ॥ ऊर्ध्वरेतं विश्वरूपं विरूपाक्षं महेश्वरम् । सोऽहमित्या-दरेणैव ध्यायेद्योगीश्वरेश्वरम् ॥ २ ॥ अथवा सत्यमीशानं ज्ञानमानन्दमद्वयम् । अत्यर्थमचलं नित्यमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ३ ॥ तथाऽस्थलमनाकाशमसं- स्पृत्यमचाक्षुषम् । न रसं न च गन्धाख्यमप्रमेयमन्पमम् ॥ ४ ॥ आत्मानं सिचिदानन्दमनन्तं बह्य सुवत । अहमसीत्यभिष्यायेचेयातीतं निमुक्तये ॥ ५ ॥ एवमभ्यासयुक्तस्य पुरुषस्य महात्मनः । कमाद्वेदान्तविज्ञानं विजा-बेत न संज्ञयः ॥ ६ ॥ इति ॥

इति जाबालदर्शनोपनिषत्सु नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि समाधि अवनाशनम् । समाधिः संविद्वत्पत्तिः पर-जीवैकतां प्रति ॥ १ ॥ नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कृटस्थो दोषवर्जितः । एकः संभिचते आन्या मायया न स्वरूपतः ॥ २ ॥ तस्मादद्वैतसेवास्ति न प्रपञ्ची न संसृतिः । यथाकाशो घटाकाशो मठाकाश इतीरितः ॥ ३ ॥ तथा आन्तै-र्द्धिधा प्रोक्तो ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना । नाहं देही न च प्राणो नेन्द्रियाणि अनो नहि ॥ ४ ॥ सदा साक्षिस्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलः । इति धीर्या सुनिश्रेष्ट सा समाधिरिहोच्यते ॥ ५ ॥ साहं बहा न संसारी न मत्तोऽन्यः कदाचन । यथा केनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः ॥ ६ ॥ समुद्रे लीयते तदः जनन्मय्यनुलीयते । तस्मान्मनः पृथङ्क नास्ति जगन्माया च नास्ति हि ॥०॥ यसैवं परमात्माऽयं प्रत्यम्भूतः प्रकाशितः । ल तु याति च पुंभावं स्वयं साक्षात्परामृतम् ॥ ८ ॥ यदा सनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा । योगि-नोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयस् ॥ ९ ॥ यदा सर्वाणि भूतानि स्वातम-न्येव हि पश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ १० ॥ यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति । एकी भूतः परेणाऽसौ तदा भवति केवलः ॥ ११ ॥ यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः । मायामात्रं जग-त्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतिः ॥ १२ ॥ एवसुक्त्वा स भगवान्दत्तात्रेयो महा-युनिः । सांकृतिः स्वस्वरूपेण सुखमास्तेऽतिनिर्भयः ॥ १३ ॥ इति ॥

> इति जाबालदर्शसोपनिषत्सु दशमः खण्डः ॥ १० ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ इति श्रीजाबालदर्शनोपनिषत्समाप्ता ॥ ९३ ॥

तारकोषनिषत् ॥ ९४ ॥

वजारायुणनारायसत्यज्ञानसुलाकृति । जिपाजारायणाकारं तहस्रोवास्मि केवलम् ॥ १ ॥

ॐ वूर्णसद इति शान्तिः॥

हरिः व्या एहरपतिस्वाच याज्ञवहनयं यद्नु हुरुसेत्रं देवानां देवयकनं सर्वेणां भूतानां ब्रह्मस्वनं तस्याध्यत्र कचन गच्छेत्तदेव 'बन्येतेति । इदं वै कुरुसेत्रं देवानां देवयकनं सर्वेणां भूतानां ब्रह्मस्वन्मविमुक्तं वे हुरुसेत्रं देवानां देवयकनं सर्वेणां भूतानां ब्रह्मसद्दनमिष्ठमुक्तं वे हुरुसेत्रं देवानां देवयकनं सर्वेणां भृतानां ब्रह्मसद्दनम् । अत्र हि जन्तोः प्राणेषुक्तमम्। पेषु कृत्रस्वारकं ब्रह्मस्वारकं ब्रह्मस्वारकं विद्युक्तित् । एवमेवेष भगविष्ठित वे याज्ञवहन्यः ॥ १ ॥ अध हैनं भारद्वाजः पत्रच्छ याज्ञवह्वयं कि तारकम् । कि तारयतीति स होदाच याज्ञवहत्यः । व्या नारायणायेति तारकं चिद्युक्तस्वस्यम् । नम इति स्वक्षरं प्रकृतिस्वरूपम् । नारायणायेति तारकं चिद्युक्तस्वरूपम् । नम इति स्वक्षरं प्रकृतिस्वरूपम् । नारायणायेति व्याक्षरं परंब्रह्मस्वरूपम् इति । य एवं वेद सोऽप्रतो मवति । कोशिति ब्रह्म भवति । क्वारो विष्णुभवित । मकारो हृत्यो भवति । क्वारो व्यावारभवति । दकारोऽण्डं विराष्ट् भवति । यकारः प्रतो भवति । ककारो स्वावारभवति । वकारः परमात्मा भवति । एतदे नारायणस्वाष्टाक्षरं वेद यसम्प्रकृषो भवति ॥

तारसारोपनिषत्सु ऋग्वेदः प्रथमः पादः ॥ १ ॥

अभित्तेतद्क्षरं परं श्रह्म । तदेवीपासितव्यम् । एतदेव स्दमाष्टाक्षरं अभित । तदेतद्ष्टात्मकोऽष्ट्रधा भवति । अकारः प्रथमाक्षरो अवति । उकारो द्वितीयाक्षरो अवति । मकारस्तृतीयाक्षरो अवति । विन्दुस्तुरीयाक्षरो अवति । वित्रु स्तुरीयाक्षरो अवति । वादः पञ्चमाक्षरो अवति । कला यद्यक्षरो अवति । कलातिता सहमाक्षरो अवति । तत्वेव वादं अवति । तत्वेव वादं अवति । तदेव वादं विद्धि । तदेवोपासितव्यम् ॥ अत्रेते श्लोका अवन्ति — जकाराद्यम् अवति । वादकावातिका अवन्ति — जकाराद्यम् । अत्रेते श्लोका अवन्ति — जकाराद्यम् । अवन्ति । विन्दुरीखरसंज्ञस्तु शत्रु अवक्षकराद्यम् सकाराक्षरसंभूतः शिवस्तु इनुमान्स्यतः । विन्दुरीखरसंज्ञस्तु शत्रु अवक्षकराद्य

म्बयम् ॥ २ ॥ नादो महाप्रभुर्जेयो भरतः इन्द्रनामकः । कलायाः पुरुषः साक्षास्त्रक्षमणो धरणीधरः ॥ ३ ॥ कलातीता पराश्राक्रःस्वयं सीतेति संज्ञिता । तत्परः परमात्मा च श्रीरामः पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ श्रोमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् । तस्योपन्याख्यानं भूतं भन्यं भविष्यद्यद्यान्यत्तस्वमञ्जवर्णदेवतान्नदो- ऋक्काशक्तिसष्ट्यात्मकमिति । य एवं येद ॥

तारसारोपनिषत्सु यजुर्नेदो द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाध केर्सचैः परमात्मा प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति तन्नो बूहि भगव इति । स होताच याज्ञवल्यः । ॐ यो ह वे श्रीपरमात्मा नारायणः स अगवानकारवाच्यो जाम्बवान्सूर्भुवः सुव-स्तस्म व नमो नमः ॥ १॥ ॐ यो ह व श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवानुकारवाच्य उपेन्द्रस्वरूपो हरिनायको भूर्भुवः सुवस्तस्म वे नमो नमः ॥ २ ॥ ॐ यो ह वै परमात्मा नारायणः स भगवान्मकारवाच्यः क्षिवस्तरूपो हन्मान्भूर्भुवः सुवस्तस्म वे नमो नमः॥ ३॥ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्त्रिन्दुस्त्ररूपः शत्रुत्रो भूर्भुवः सुवस्तसै वै नमो नमः ॥ ४ ॥ ॐ यो ह वे श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्नादस्वरूपो भरतो भूर्भुवः सुवस्तसौ वै नमो नमः॥ ५॥ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्कलास्बरूपो लक्ष्मणो भूर्भुवः सुवस्तसौ वै नमो नमः ॥ ६॥ ॐ यो ह वे श्रीपरमास्मा नारायणः स भगवान्कछातीता भगवती सीता चित्स्वरूपा भूर्भुवः सुवस्तस्मे वै नमो नमः॥ ७ ॥ यथा प्रथममञ्जोक्तावाद्यन्ती तथा सर्वमन्नेषु द्रष्टव्यम् । उकारवाच्य उपेन्द्रस्वरूपो हरिनायकः २ मकारवाच्यः शिवस्वरूपो हनुमान् ३ बिन्दु-स्बरूपः शत्रुष्टः ४ नादस्बरूपो भरतः ५ कलास्बरूपो लक्ष्मणः ६ कला-तीता भगवती सीता चिःस्वरूपा ७ ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारा-यणः स भगवांसात्परः परमपुरुषः पुराणपुरुषोत्तमो नित्यशुद्धबुद्धमुक्त-सस्यपरमानन्ताद्वयपरिपूर्णः प्रसात्मा ब्रह्मैवाहं रामोऽस्मि भूर्भुवः सुव-स्तस्मै नमो नमः ॥ ८ ॥ एतद्ष्विधमञ्जं योऽधीते सोऽन्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति । स आहि सपूतो भवति । स स्थाणुपूतो भवति । स सर्वेदेवैर्जातो अवति । तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जसानि फकानि भविः श्रीमजारायणाष्ट्राक्षरानुसारणेन गायण्याः शत-

सहस्तं जसं भवति । प्रणवानामयुतं जसं भवति । दशपूर्वान्दशोत्तरान्दु-नाति । नारायणपदमवामोति य एवं वेद । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विष्ठासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

तारसारोपनिषत्सु सामवेदस्तृतीयः पादः ॥ १ ॥ ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः ॥ इति तारसारोपनिषत्समाप्ता ॥ ९४ ॥

महावाक्योपनिषत् ॥ ९५ ॥ यन्महावाक्यसिद्धान्तमहाविद्याकलेवरम् । विकलेवरकैवत्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरि: ॐ ॥ अथ होवाच भगवान्ब्रह्मापरोक्षानुभवपरोपनिषदं व्याख्या-स्यामः। गुद्धादुद्धपरमेषा न प्राकृतायोपदेष्टच्या । सास्विकायान्तर्भुखाय परिशु-श्रूपवे अथ संसृतिबन्धमोक्षयोर्विद्याविद्ये चक्षुषी उपसंहत्य विज्ञायाविद्याछी-काण्डस्तमोदक्। तमो हि शारीरप्रपञ्चमात्रहास्थावरान्तमनन्ताखिलाजाण्ड-भूतम् । निखिलनिगमोदितसकामकर्मव्यवहारो लोकः । नैपोऽन्धकारोऽय-मारमा । विद्या हि काण्डान्तरादित्यो ज्योतिर्मण्डलं ग्राह्यं नापरम् । असावादित्यो ब्रह्मेत्यजपयोपहितं हंसः सोऽहम् । प्राणापानाभ्यां प्रतिलोमानुलोमाभ्यां समुपलभ्येवं सा चिरं लब्धवा त्रिवृदात्मित ब्रह्मण्यभिध्यायमाने सिचदानन्दः प्रमात्माविभवति । सहस्रभानुमच्छुरिताप्रितस्वाद्लिप्या पारावारप्र इव । नैपा समाधिः । नेपा योगसिद्धिः । नेपा मनोख्यः । ब्रह्मेक्यं तत् । आदिख-वर्णं तमसस्तु पारे सर्वाणि रूपाणि विचित्य घीरः। नामानि कृत्वाऽभिवद्-न्यदास्ते धाता पुरस्ताचमुदाजहार । शकः प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्नः तमेवं विद्वानसृत इह भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते । यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्ते । यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः । सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः । आस-ज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावदोम् । य एतदथर्वशिरोऽघीते । प्रातरघी- यानो राजिकृतं पापं नाज्ञयति । सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाण्यति । तस्सायं प्रातः प्रयुक्षानः पापोऽपापो भवति । प्रध्यन्दिनसादिखाभिकुलो-ऽषीयानः पञ्चमहापातकोपपातकारप्रमुख्यते । सर्वनेदपारायणपुण्यं सप्ते । श्रीमहाविष्णुसायुज्यमवामोतीरयुपनिषत् ॥ हरिः ॐ तस्सन् ॥

ॐ अदं कर्णेभिरिति शान्तिः। इति सहावाक्योपनिषत्समाहा ॥ ९५ ॥

पश्चनज्ञोपनिषत् ॥ ९६ ॥

मह्मादिपञ्चमह्माणो यत्र विश्वान्तिमामुयुः । तद्खण्डसुखाकारं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ स ह नावनत्विति शान्तिः ॥

हरि: ॐ ॥ अथ पैप्पळादो अगवान्स्रो किसादी कि जातसिति । सबी जातभिति । किं भगव इति । अघोर इति । किं भगव इति । वामदेव इति । किं वा पुनिरमे अगव इति । तत्पुरुष इति । किं वा पुनिरमे अगव इति । सर्वेषां दिव्यानां प्रेरयिता ईशान इति । ईशानी सूतस्रव्यस्य सर्वेषां देव-योगिनाम् । कति वर्णाः । कति भेदाः । कति शक्तयः । यस्सवं तद्वसम्। तसे नमो महादेवाय महाहदाय प्रोवाच तसी भगवान्महेशः। गोषा-द्वीप्यतरं लोके यद्यस्ति श्रुण शाकल । सद्यो जातं मद्दी पूजा रमा बहा श्रिष्रस्बरः ॥ १ ॥ ऋग्वेदो गाईएत्यं च सञ्चाः सप्त स्वराखधा । वर्णं पीतं किया शक्तिः सर्वाभीष्टफलपदम् ॥ २ ॥ अघोरं सिखकं चन्द्रं गौरी वेद द्वितीयकम् । नीरदाभं स्वरं सान्दं दक्षिणाधिरुदाहृतम् ॥ ६ ॥ पञ्चाशद्वर्णसं-युकं स्थितिरिच्छा कियान्वितम् । शक्तिरक्षणसंयुक्तं सर्वा वी विनाशनम् ॥ ॥॥ सर्वेदुष्टप्रशमनं सर्वेश्वर्यफलप्रदम् । वामदेवं महावोधदायकं पावकात्मकम् ॥ ५ ॥ विद्याकोकसमायुक्तं भानुकोटिसममभम् । प्रसन्नं सामवेदास्यं नानाष्टकसमन्वितम् ॥६॥ धीरस्वरमधीनं चाहवनीयमनुक्तमम्। ज्ञानसंहार-संयुक्तं शक्तिद्वयसमन्वितम् ॥ ७ ॥ वर्णं शुक्तं तमोमिश्रं पूर्णबोधकरं खयम् । धामत्रयनियन्तारं धामत्रयसमन्वितम् ॥ ८ ॥ सर्वसीभाग्यदं नूर्णा

सर्वकर्मकळण्डम् । अष्टाक्षरसमायुक्तमष्टपत्रान्तरस्थितम् ॥ ९ ॥ यत्तत्तस्पु-क्षं श्रीकं वायुभण्डलसंवृतस् । पञ्चामिना समायुकं मञ्जनकिनियामकस् ॥ १० ॥ पञ्चाकारवरवर्णास्यमधर्ववेदस्वरूपकम् । कोटिकोटिगणाध्यक्षं ज्ञाणिडाखण्डवियहम् ॥ ११ ॥ वर्णं रक्तं कामदं च सर्वाधिव्याधिसेव-जस् । सृष्टिस्थितिल्यादीनां कारणं सर्वशक्तिपृक् ॥ १२ ॥ अवस्थान्नि-तयातीतं तुरीयं ब्रह्मसंज्ञितम् । ब्रह्मविष्णवादिभिः सेव्यं सर्वेषां जनकं परम् ॥१३॥ हृशानं परसं विद्यास्त्रेरकं बुद्धिसाक्षिणम् । आकाशात्मकमव्यक्तमों हार-ख्वरभूषितम् ॥ १४ ॥ सर्वदेवमयं शान्तं शान्त्वतीतं खर।द्वहिः । अकारादि-स्वराध्यक्षमाकाशसयविग्रहम् ॥१५॥ पञ्चकृत्यनियन्तारं पञ्चवह्यात्मकं वृहत् । वस्त्रव्यक्षीपसंहारं कृत्वा स्वात्मिन संस्थितः ॥ १६ ॥ स्वमायावैभवानसर्वानसं-हृत्य स्वात्मनि स्थितः । पञ्चवहात्मकातीतो भासते स्वस्वतेजसा ॥ १७॥ भादावन्ते च मध्ये च भाससे नान्यहेतुना । मायया मोहिताः शंभोर्महादेवं जगद्वरुम् ॥ ३८ ॥ न जाननित सुराः सर्वे सर्वकारणकारणम् । न संदर्शे तिष्ठति रूपमस्य परात्परं पुरुपं विश्वधाम ॥ १९ ॥ येन प्रकाशते विश्वं यभैव प्रविलीयते । तद्रह्म परमं शान्तं तद्रह्मास्मि परं पद्म् ॥ २० ॥ पद्म-ब्रह्म परं विचात्सद्यो जातादिपूर्वकम् । दृश्यते श्रूयते यस पञ्चश्रहात्मकं स्वयम् ॥ २१ ॥ पञ्चधा वर्तमानं तं ब्रह्मकार्यमिति स्मृतम् । ब्रह्मकार्यमिति ज्ञात्वा हुँ झानं प्रतिपद्यते ॥ २२ ॥ पञ्चन्रह्मात्मकं सर्वं स्वात्मिन प्रविकाप्य च । सोऽहमसीति जानीय।द्विद्वान्ब्रह्माऽमृतो भवेत् ॥ २३ ॥ इत्येतद्रह्म जानी-बाधः स मुक्तो न संशयः। पत्नाक्षरमयं शंभुं परव्रह्मस्वरूपिणम्॥ २४॥ नकारादियकारान्तं ज्ञास्वा पञ्चाक्षरं जपेत्। सर्वं पञ्चास्मकं विचारपञ्जन-बात्मतस्वतः ॥ २५ ॥ पञ्चम्रह्मात्मिकीं विद्यां योऽघीते भक्तिभावितः । स पञ्चात्मकताप्रेत्य भासते पञ्चधा स्वयम् ॥ २६ ॥ एवमुकत्वा महादेवी गालवस्य महातमनः । कृपां चकार तन्नैव स्वान्तर्धिमगमत्स्वयम् ॥ २७ ॥ यस्य अवणमात्रेणाश्रुतमेव श्रुतं भवेत्। अमतं च मतं ज्ञातमविज्ञातं च शाकळ ॥ २८ ॥ एकेनैव तु पिण्डेन मृत्तिकायाम गौतम । विज्ञातं मृण्मयं सर्वं स्दिभिन्नं हि कार्यकम् ॥ २९ ॥ एकेन लोहमणिना सर्व लोहमयं यथा। विज्ञातं स्याद्येकेन नखानां कृत्तनेन च ॥ ३० ॥ सर्वं कार्ष्णायसं ज्ञातं तद्-

ति ।

ची १ ।

य-

ति । द

川西河

ए-हरं जा भिन्नं स्वभावतः । कारणाभिन्नरूपेण कार्यकारणसेव हि ॥ ३१ ॥ तद्र्पेण सदा सत्यं भेदेनोक्तिर्मृपा खलु । तच्च कारणसेकं हि न भिन्नं नोभयात्म-कम् ॥ ३२ ॥ भेदः सर्वत्र सिथ्येव धर्मादेरनिरूपणात् । अतश्च कारणं नित्यः सेकमेवाद्वयं खलु ॥ ३३ ॥ अत्र कारणमद्वैतं गुद्धचैतन्यमेव हि । अस्मिन्नः द्वापुरे वेदम दहरं यदिदं सुने ॥ ३४ ॥ पुण्डरिकं तु तन्मध्ये आकाशो दहः रोऽस्ति तत् । स शिवः सच्चिदानन्दः सोऽन्वेष्टव्यो सुमुक्षुभिः ॥ ३५ ॥ अयं हृदि स्थितः साक्षी सर्वेषामिवशेषतः । तेनायं हृदयं प्रोक्तः शिवः संसास्मीचकः ॥ ३६ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हिरः ॐ तत्सत् ॥

ॐ स ह नावचित्वति शान्तिः॥ इति पञ्चब्रह्मोपनिषत्समाक्षा॥ ९६॥

प्राणाग्निहीत्रोपनिषत् ॥ ९७ ॥

शरीरयज्ञसंशुद्धचित्तसंजातबोधतः । सुनयो यत्पदं यान्ति तद्रामपदमाश्रये ॥ १ ॥ ॐ स ह नाववत्विति शान्तिः ॥

हिरः ॐ॥ अथातः सर्वोपनिपत्सारं संसारज्ञानातीतमञ्जस्त्रं शारीरं यशं व्याख्यास्यामः। अस्मिन्नेव पुरुषशरीरे विनाप्यमिहोत्रेण विनापि सांख्ययोगेन संसारविमुक्तिर्भवतीति । स्वेन विधिनाऽन्नं भूमौ निक्षिप्य या अविधीः सोमराज्ञीरिति तिस्भिरञ्जपत इति द्वाभ्यामनुमन्नयते । या ओषध्यः सोमराज्ञीर्वद्धाः शतविचक्षणाः । बृहस्पतिप्रस्तास्ता नो मुन्नन्वंहसः॥ १॥ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रस्तास्ता नो मुन्नन्वंहसः॥ १॥ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रस्तास्ता नो मुन्नन्वंहसः॥ २॥ जीवलां नवारिषां माते वभ्राम्योषधिम् । या त आयु रूपहरादप रक्षांसि चातयात् ॥ ३॥ अन्नपतेऽनस्य नो धेहानमीवस्य शुष्पिणः। प्रवदातारं तारिष जर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥४॥ यदन्नमि बहुधा विराद्धम् । रुद्धैः प्रजर्धं यदि वा पिशाचैः। सर्वतदीशानो अमर्य कृणोतु शिवमीशानाय स्वाहा॥ ५॥ अन्तश्चरिस भूतेषु गुहायां विश्वतीमुकः।

: 9

्पेण

रम-

त्य-

-A-

दह-

अयं

सस्-

यज्ञं

गेन

षीः

म-

9 11

नो

भायु

वस्य विभ

भर्य १२ । रबं यज्ञस्त्वं ब्रह्मा त्वं रुद्गस्त्वं विष्णुस्त्वं वषद्वार आपो ज्योती रसोऽसृतं ब्रह्मा भूर्भुवः सुस्वरें नमः । आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पृता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पति ब्रह्मपूता पुनातु माम् । यदु व्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु तं द्यापोऽसतां च प्रतिग्रहं । असृतमस्पसृतोपस्तरणमस्पसृतं प्राणे जुहोस्यमा शिष्यान्तोऽसि । प्राणाय स्वाहा । अपानाय स्वाहा । स्वानाय स्वाहा । समानाय स्वाहा । उदानाय स्वाहा इति कनिष्ठिकाङ्कृत्या- कृष्ठेन च प्राणे जुहोग्नि । अनामिकयाऽपाने । मध्यमया व्याने । सर्वाभिरुद्दाने । प्रदेशिन्या समाने । तृष्णीमेकामेकऋषौ जुहोति । द्वे आहवनीये । एकां दक्षिणान्नौ । एकां गार्हपत्ये । एकां सर्वप्रायश्चित्तीये ॥ अथापिधानमस्पसृत- व्यायोपस्पृत्रय पुनरादाय पुनरुपस्पृत्रोत् । सत्ये प्राणावापो गृहीत्वा हृद्यमन्वारुभ्य जपेत् । प्राणोऽन्निः परमात्मा पञ्चवायुभिरावृतः । अभयं सर्वभूतेभ्यो न भवेदहं कदाचनेति ॥ १ ॥

इत्याथर्वणीयप्राणामिहोत्रोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

विश्वोऽसि वैश्वानरो विश्वरूपं त्वया धार्यते जायमानम् । विश्वं त्वाहुतयः सर्वा यत्र ब्रह्माऽमृतोऽसि । महानवोऽयं पुरुषो योऽक्रुष्टात्रे प्रतिष्ठितः । तमिद्रः प्रतिषिञ्चामि सोऽस्यान्ते अमृतायामृतयोनावित्येष एवाःमा । ध्यायेताग्निहोत्रं जुहोमीति सर्वेषामेव स्नुभवाते । अथ यज्ञपरिवृत आहुतीहोंमयति । स्वे शरीरे यज्ञं परिवर्तयामीति । चःवारोऽप्रयस्ते किंनामधेयाः । तत्र
स्योऽग्निनाम स्यंमण्डलाकृतिः सहस्ररिमपरिवृत एकिंभूत्वा मूर्गि
तिष्ठति यसादुक्तः । दर्शनाग्निनाम चतुराकृतिराहवनीयो भूत्वा मुखे तिष्ठति ।
शारीरोऽग्निनाम जराप्रणुदा हविरवस्कन्दति । अर्धचन्द्राकृतिदंक्षिणाग्निर्भूत्वा
हदये तिष्ठति तत्र कोष्ठाग्निनांमाशितपीतलीढखादितानि सम्यग् व्यष्ट्यां
अपयित्वा गार्हपत्यो भूत्वा नाभ्यां तिष्ठति । प्रायश्चित्तयस्त्वधस्तात्तियंक्
तिस्नो हिमांग्रुप्रैमाभिः प्रजननकर्मा ॥

इत्याथर्वणीयघ्राणामिहोत्रोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अस्य वारीरयज्ञस्य यूपरवानावोजितस्य को यजमानः । का पत्ती । के प्रतिवजः । के सवसाः । कानि यज्ञपात्राणि । कानि हवीचि । का वेदिः । को स्विवजः । के सवसाः । को रथः । कः पशुः । कोऽध्वर्युः । को होता । को ब्राह्मणाष्ट्यंसी । कः प्रतिवस्थाता । कः प्रस्तोता । को मैत्रावरुणः । क खद्भाता । का धारापोता । के दर्भाः । कः स्वाः । काज्यस्थाती । कावावारी । कावाव्यभागी । के प्रयाजाः । के अनुयाजाः । केहा । कः स्वत्वाकः । कः वंयुवाकः । काडिंशा । के प्रवीसंयाजाः । को यूपः । का स्वाना । का हृष्टयः । का दक्षिणा । किसवस्थामिति ॥

इसाथर्वणीयप्राणाभिहोत्रोपनिषद्ध तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अस्य शारीरयञ्चस्य यूपरश्चनाशोभितस्यात्मा यजमानः । बुद्धः पत्ती । वेदां महर्त्विजः । अहंकारोऽध्वर्युः । चित्तं होता । प्राणो ब्राह्मणाच्छंसी । अपानः प्रतिप्रस्थाता । व्यानः प्रस्तोता । समानो मैत्रावरुणः । उदान ब्रह्मला । शरीरं वेदिः । नासिकोत्तरवेदिः । सूर्धा द्रोणकळशः । पादो रथः । द्रिलणहस्तः सुवः । सव्यहस्त आज्यस्थाली । श्रोत्रे आधारो । चक्षुषी आज्यस्थानी । श्रीवा धारापोता । तत्मात्राणि सदस्याः । महाभूतानि प्रयाजाः । स्वत्रव्याचाः । जिह्नेहा । दन्तोष्ठी स्क्रत्राकः । तालुः शंयुवाकः । स्वतिदंवा श्वान्तिरहिंसा पत्नीसंयाजाः । श्रोंकारो यूपः । भाशा रशना । सनो रथः । कामः पंशुः । केशा दर्भाः । बुद्धीन्द्रयाणि यज्ञपात्राणि । कर्मेन्द्रियाणि हर्वीषि । अहिंसा दृष्टयः । स्वागो दक्षिणा । अवस्थं मरणात । सर्वा द्यस्ति विद्याणि हर्वीषि । अहिंसा दृष्टयः । स्वागो दक्षिणा । अवस्थं मरणात । सर्वा द्यस्ति विद्याणि हर्वीषि । अहिंसा हृष्यः । स्वागो दक्षिणा । अवस्थं मरणात । सर्वा द्यस्ति । पहेत जन्मना जन्तुर्मोक्षं च प्राप्रुयादिति मोक्षं च प्राप्रुया दित्युपनिषत् ॥ ३ ॥ अत्र सह नाववत्विति शान्तिः ॥ हरिः अत्रत्व ॥

इत्याथवंणीया प्राणामिहोत्रोपनिषत्समाप्ता ॥ ९७ ॥

गीपालपूर्वतापिन्युपनिषत् ॥ ९८ ॥ श्रीमध्यञ्चवरागारं सिवशेषतयोजवळम् । श्रीतयोगिविनिर्धुकं निर्विशेषं हरि भने ॥ १ ॥ ॐ अतं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ गोपाधतापनं कृष्णं बाह्यवस्त्रयं वराहकम् । शास्त्रायनी हषशीवं दशाष्ट्रयं च गाहडम् ॥ २ ॥

ॐ कृषिर्भूवाचकः शब्दो नश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण ह्रव्यक्षिणीयते ॥ १ ॥ ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाहिष्टकारिणे । नमी वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥ ॐ मुनयो ह वे बाह्मणमूचुः कः परमो देवः कुतो मृत्युविभेति कस्य विज्ञानेनाखिलं भाति केनेदं विश्वं संसरतीति । तदु होवाच ब्राह्मणः श्रीकृष्गो वै परमं दैवतं गोदिन्दान्यत्यु-र्विभिति गोषीजनवहुभज्ञानेन तज्ज्ञातं भवति स्वाहेदं संसरतीति । वदु होतुः कः कृष्णो गोविन्द्श्च कोऽसाविति गोपीजनवस्रभः कः का स्वाहेति तानुवाच ब्राह्मणः पापकर्षणो गोभूमिवेदविदितो वेदिता गोपीननाविधा-ककामेरकः । तन्माया चेति सक्कं परं ब्रह्मैतद्यो ध्यायति रसति अजति सोऽस्तो अवति सोऽस्तो अवतीति ॥ १ ॥ ते ोचुः किं तद्र्षं किं रसनं कथं वाऽहो सज्जनं तस्तर्वं विविदिषतामाख्याहीति । तदु होवाच हैरण्यो गोपवेषमञ्जासं तरुणं करपद्वमात्रितम्। तदिह श्लोका भवन्ति—सःपुण्डरीक-नयनं भैधाभं वैद्युताम्बरम् । द्विभुजं ज्ञानसुद्राद्धं वनमाछिनमीश्वरम् ॥ गोपगोपाङ्गनाचीतं सुरदुमतलाश्रितम् । दिव्यालंकरणोपेतं रस्नपङ्कतम-ध्यगम् ॥ कालिन्दीजलकञ्जोलासङ्गमारुतसेवितम् । चिन्तयंश्रेतसा कृष्णं सुक्तो अवति संसुतेः ॥ इति । तस्य पुना रसनभजनभूमीन्दुसंपातः कामादि क्षणायेसेकं पदं गोविन्दायेति द्वितीयं गोपीजनेति तृतीयं वहामायेति तुरीयं खाहेति पञ्चममिति पञ्चपदीं प्रजपन् पञ्चाङ्गं द्यावाभूमी सूर्याचन्द्रमसौ साझी तद्र्पतया ब्रह्म संपद्यते ब्रह्म संपद्यत इति ॥ २ ॥ तदेष श्लोकः-क्वीमिलेवादावादाय कृष्णाय योगं गोविन्दायोत च । गोपीजनवछभाय

को गः। शि।

: 8

1 के

: 1

क: का

1 1

ः । त्य-ः ।

सन

11

र्। वा

बृहद्घनं क्यामं तद्प्युचरेयो गतिस्तस्यास्ति मङ्कु नान्या गतिः स्यादिति अक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैराइयेनैवामुध्मिन्मनःकल्पनमेतदेव च नैष्कर्म्य कृष्णं सन्तं विप्रा बहुधा यजन्ति गोविन्दं सन्तं बहुधा रसन्ति गोपी. जनवछभो भुवनानि दधे स्वाहाश्रितो जगदैजयत्सुरेताः, वायुर्यथैको भुवनं प्रतिष्ठो जन्ये जन्ये पञ्चरूपो बभूव। कृष्णसाधिकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासी पञ्चपदो विभातीति ॥ ३ ॥ ते हो चुरुपासनमेतस्य परमात्मनो गोविन्दस्या-खिकाधारिणो बृहीति । तानुवाच ब्रह्मा यत्तस्य पीठं हैरण्यमष्टपलाशमस्त्रतं तदन्तरालिकानलासयुगं तदनतराद्याणं त्रिलिखीत कृष्णाय । नम इति बीजाट्यं स बाह्मणमाधायानङ्गमनु गायत्रीं यथावद्वयासच्य भूमण्डलं मुलवेष्टितं कृतवाऽङ्गवासुदेवादिरुविमण्यादिस्वशक्तीनदादिवसुदेवादिपार्थादिति-ध्यावीतं यजेरसंध्यासु प्रतिपत्तिभिरूपचारैस्तेनास्याखिलं भवताति ॥ ४ ॥ तदिह श्लोका भवन्ति—एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन्बहुधा यो विभाति । तं पीठस्थं येऽनुभजन्ति घीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेपाम् ॥ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहुनां यो विद्धाति कामान्। तं पीठगं येऽनुयजन्ति विवास्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ एतद्विष्णोः परमं पदं ये नित्योद्यक्ताः संयजन्ते न कामात् । तेपामसौ गोपरूपः प्रयक्षात्प्रकाशयेदात्मपदं तदेव ॥ यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं यो विद्याससै गापयति स्म कृष्णः । तं ह देवमात्मवृत्तिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणममुं वजेत्॥ ओंकारेणान्तरितं यो जपति गोविन्दस्य पञ्चयदं मनुंतम् । तस्यैवासौ दुर्शयेदात्मक्षं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्ये ॥ एतस्मादन्ये पञ्चपदाद-भूवनगोविन्दस्य मनवो मानवानाम् । दशाणीचास्तेऽपि संक्रन्दनाचैरभ्यस्यन्ते भूतिकामैर्यथावत् ॥ तदेतस्य स्वरूपार्थं वाचा वेदयेति ते पप्रच्छुसहु होवाच बाह्मणः, अनवरतं मया ध्यातस्ततः परार्धान्ते सोऽबुध्यत गोपवेषो मे पुरस्तादाविर्वभूव ततः प्रणतो मया, अनुकूलेन हृदा मह्ममष्टाद्शा^{र्ण} खरूनं सृष्ट्ये दस्वाऽन्तर्हितः पुनः सिस्क्षा मे प्रादुरभूतेष्वक्षरेषु भविष्य-जगद्र्पं प्रकाशयंस्तदाह तदाह ॥ ५॥ अनुकूलेन हदा मद्यमष्टादशाणी स्तरूपं सृष्ट्ये दस्वाऽन्तर्हित इति । आकाशादापो जलाःपृथ्वी ततोऽप्निर्वि न्दोरिन्दुः, तत्संपातादर्कः । इति क्षींकारादस्तं कृष्णादाकामं खाद्वायुरि-त्युत्तरात्सुरभिविद्याः प्रादुरकापं तदुत्तरातु स्त्रीपुमादि स, इदं सकलमिदं

9

ते

व

सक्किति ॥ ६ ॥ एतस्येव यजनेन चन्द्रध्वजो गतमोहमात्मानं वेद्यित्वोंकारान्तरालिकं मनुमावर्तयन्, सङ्गरहितोऽत्यापतत् । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति स्र्राः । दिवीव चक्षुराततम् । तसादेतिन्नत्यमभ्य-सेन्नित्यमभ्यनेतिन्नत्यमभ्य-सेन्नित्यमभ्यनेतिन्नत्यमभ्य-सेन्नित्यमभ्यनेतिन्नत्यमभ्य-सेन्नित्यमभ्यनेति ॥ ७ ॥ तदाहुरेके यस्य प्रथमपदाद्विमिद्वितीयपदाज्ञलं तृतीयपदात्तेजश्चतुर्थोद्वायुश्चरमाद्योमेति वैष्णवं पद्धव्याहृतिमयं मन्नं कृष्णावभासं केवल्यस्त्ये सत्तनमावत्येयेदिति । तदत्र गाथाः—यस्य पूर्वपदाद्विमिद्वितीयात्सिलिलोद्भवः । तृतीयात्तेज उद्भृतं चतुर्थोद्धन्धवाहनः ॥ पद्धमाद्मव्ययस् ॥ ततो विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम् । यत्तरपदं पद्धपदं तदेव स वासुदेवो न यतोऽन्यदक्ति ॥ तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविमहं पद्धपदं वृन्दावने सुरभूरुहत्लासीनं सततं समरुद्रणोऽहं परमया स्तुत्या तोषयामि ॥ ८ ॥

इति गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतचे ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ३ ॥ नमो निज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ॥ कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २ ॥ नमः कमछनेत्राय नमः कमछ-मालिने ॥ नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥ ३ ॥ वर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ॥ रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४ ॥ कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने ॥ वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः ॥ ५ ॥ वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्दिने ॥ कालिन्दीकूलकोलाय लोल-कुप्डलधारिणे ॥ ६॥ बल्लवीनयनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने ॥ नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ७ ॥ नमः पापप्रणाशाय गोवर्धन-धराय च ॥ पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥ ८ ॥ निष्कछाय विमोहाय गुद्धायाग्रुद्धवैरिणे ॥ अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ९ ॥ प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ॥ आधिव्याधिभुजंगेन दृष्टं मासुद्धर प्रभो ॥ ३० ॥ श्रीकृष्ण रुक्तिमणीकान्त गोपीजनमनोहर ॥ संसार-सागरे मम्ने मामुद्धर जगद्धरो ॥ ११ ॥ केशव क्वेशहरण नारायण जनार्दन ॥ गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥१२॥ अथ हैवं स्तुतिभिराराधयामि ते यूयं तथा पञ्चपदं जपन्तः श्रीकृष्णं ध्यायन्तः संसृतिं तरिष्यथेति स होवाच हैरण्यः । अमुं पञ्चपदं मन्नमावर्तयेदाः स यात्यनायासतः केवलं तत् । अनेजदेकं मनसो जवीयो नैतदेवा आमुवन्पूर्वमर्षदिति । तसात्कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्तं रसेत्तं भजेतं भजेदित्यों तत्सदिति ॥ १३ ॥ इति गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥ ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ -इत्याथर्वणीया गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥ ९८ ॥

> गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ९९ ॥ ॐ सिचदानन्दरूपाय कृष्णायाक्तिएकर्मणे । नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १॥ ॐ भद्धं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

ॐ एकदा हि वजिख्यः सकामाः शर्वशीसुवित्वा सर्वेश्वरं गोपालं कर्ण हि ता अचिरे । उवाच ताः कृष्णमनुः कस्मै बाह्मणाय भेक्षं दातव्यं भवति टर्वाससेति । कथं यास्यामोऽतीर्त्वा जलं यसुनायाः, यतः श्रेयो भवति कृष्णेति कृष्णो ब्रह्मचारीत्युक्तवा आर्ग वो दाखत्युत्ताना अवित यं मां हमत्वा. अगाधा गाधा अवति यं सां हमृत्वा, अपूतः पूतो अवति यं मां स्मृत्वाऽव्रती व्रती अवित यं मां स्मृत्वा, निष्कामः सकामो अवित यं मां स्मृत्वा, अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति यं मां स्मृत्वा श्रुत्वा तद्वाचं हुवै स्मृत्वा तद्वाक्येन तीर्त्वा तां सौर्या हि वै गत्वाश्रमं पुण्यतमं नत्वा सुनिश्रेष्ठतमं हि रोदं चेति दत्त्वाऽस्मै ब्राह्मणाय क्षीरमयं घृतमयं मिष्टतमं हि वा इष्टतमः स तुष्टः स्नात्वा भुक्तवाऽऽशिषं प्रयोज्याज्ञामदात्कथं यास्यामी-ऽतीरवीं सौर्याम्, स होवाच मुनिर्दुवींसिनं मां स्मृत्वा वो दास्पतीति मार्गम्। तासां मध्ये श्रेष्टा गान्धर्वी होवाच सहैवैताभिरेवं विचार्य कथं कृष्णी बहाचारी, कथं दुर्वासिनो मुनिस्तां हि मुख्यां विधाय पूर्वमनु कृत्वा तृष्णी-मासुः । शब्दवानाकाशः शब्दाकाशाभ्यां भिन्नस्तस्मिन्नाकाशे तिष्ठत्याकाशसं न वेद स द्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ १ ॥ स्पर्शवान्वायुः स्पर्शवा-युभ्यां भिन्नस्तस्मिन्वायौ तिष्ठति वायुर्न वेद तं स ह्यात्माऽहं कथं भोका भवामि रूपविदं तेजो रूपाग्निभ्यां भिजस्तस्मिन्नग्नौ तिष्टत्यमिन वेद तं हि स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवासि ॥ २ ॥ रसवत्य आपी रसाच्ची भिन्नासी-स्त्रप्सु तिष्ठति । आपो न विदुस्तं हि स ह्यात्माऽई कथं भोक्ता भवामि॥ ३॥ गन्धवती भूमिर्गन्धभूमिभ्यां भिन्नस्तस्यां भूमौ तिष्ठति भूमिर्न वेद तं हि स

ह्यात्माऽहं कथं भोका भवामि ॥ ४ ॥ इदं हि मनस्तेष्वेवं हि मनुते तानिदं गुह्णाति । यत्र हि सर्वभारमैवाभूतत्र वा कुत्र मनुते क वा गच्छतीति स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि॥ ५॥ अयं हि कृष्णो यो वो हि प्रेष्टः दारीरह्रयकारणं भवति हो सुपणां भवतो ब्रह्मणांऽशभृतस्तयेतरो भोका अवति । अन्यो हि साक्षी अवतीति ॥ ६ ॥ वृक्षधर्मे तौ तिष्टतोऽभोक्त्मोक्तारौ पूर्वो हि भोक्ता अवति । तथेतरोऽभौका कृष्णो अवतीति यत्र विद्याविद्ये न विदामो विद्याविद्याभ्यां भिन्नो विद्यामयो यः स कथं विषयी भवतीति ॥ ७ ॥ यो हि वै कासेन कामान्कामयते स कामी भवति यो हि वे त्वकामेन कामाञ्च कामयते सोऽकामी भवतीति । जन्मजराभ्यां भिन्नः स्थाणुरयम-च्छेबोऽयम् । योऽसो सूर्ये तिष्ठति योऽसो गोषु तिष्ठति योऽसी गोपान्पालयति योऽसो गोपेषु तिष्ठति योऽसो सर्वेषु देवेषु तिष्ठति योऽसौ सर्वेनेंदेर्गायते योऽसौ सर्वेषु भूतेष्वाविश्य तिष्ठति भूतानि च विद्धाति स वो हि स्वामी भवतीति ॥ ८ ॥ सा होवाच गान्धर्वी कथं वाऽस्मासु जातोऽसौ गोपालः कथं वा ज्ञातोऽसौ त्वया सुने कृष्णः, को वाऽस्य सन्तः, किं वाऽस्य स्थानं, कथं वा देवक्यां जातः, को वाऽस्य ज्यायान्समो अवति, की दशी पूजाऽस्य गोपालस्य भवति, साक्षा-त्प्रकृतिपरयोरयमात्मा गोपाङः कथमवतीर्णो भूस्यां हि वे ॥ ९॥ स होवाच तां हि वा एको हि वे पूर्व नारायणो देवो यसिँ छोका भोताश्च प्रोताश्च तस्य हत्पन्नाज्ञातोऽब्जयोनिः । स पिता तस्मे ह वरं ददौ । स कामप्र-अमेव वन्ने । तं हास्मे ददौ स होवाचान्जयोनिरवताराणां मध्ये श्रेष्टोऽवतारः को भवति चेन लोकास्तुष्टा देवास्तुष्टा भवन्ति यं स्मृत्वा वा मुक्ता अस्मा-त्संसाराज्ञवन्ति कथं नाऽस्यानतारस्य बहाता भवति ॥ १० ॥ स होवाच तं हि नारायणो देवः सकाम्या मेरोः ऋहे यथा सप्त पुर्यो अवन्ति तथा हि निष्कास्याः सकास्याश्च भूलोकचके सप्त पुर्यो भवन्ति तासां मध्ये साक्षा-इसगोपालपुरी हीति सकास्या निष्कास्या च देवानां सर्वेषां भूतानां च भवति ॥ ११ ॥ यथा हि वै सरसि पद्मं तिष्ठति तथा भूम्यां हि तिष्ठतीति । चक्रेण रक्षिता हि वै मधुरा तस्माद्गोपालपुरी हि भवतीति । बृहदृहद्दनं मधोर्मधुवनं तालस्तालवनं काम्यः कामवनं बहुलो बहुलवनं कुमुदः कुमुद-वनं खिद्रः खिद्रवनं अद्गो अद्भवनं आण्डीर इति आण्डीरवनं श्रीवनं छोहवनं वृन्द्या बृन्दावनमेतैरावृता पुरी भवति ॥ १२ ॥ तत्र तेष्वेवं

गहने ब्वेव देवा मनुष्या गन्धर्वा नागाः किंनरा गायन्तीति नृत्यन्तीति तत्र द्वादशादित्या एकादश रुद्रा अष्टी वसवः सप्त मुनयो ब्रह्मा नारदश्च पञ्च विनायका वीरेश्वरो रुद्रेश्वरोऽस्विकेश्वरो गणेश्वरो नीलकण्ठविश्वश्वरो गोपाले-श्वरो भद्रेश्वर एतदाद्यानि लिङ्गानि चतुर्विशतिर्भवन्ति । द्वे वने स्तः दृष्णवनं अद्भवनं तयोर-तद्वांदश वनानि पुण्यानि पुण्यतमानि तेष्वेव देवासिष्ठन्ति सिद्धाः सिद्धिं प्राप्तास्तत्र हि रामस्य रामा सूर्तिः प्रयुक्तस्य प्रयुक्तमूर्तिरितिहः द्धस्यानिरुद्धमूर्तिः कृष्णस्य कृष्णमूर्तिर्वनेष्देव मधुरास्वेव द्वादश मूर्तयो भवन्ति ॥ १३ ॥ एकां हि रुद्रा यजन्ति द्वितीयां हि ब्रह्मा यजति तृतीयां हि ब्रह्मजा यजन्ति चतुर्थी मरुतो यजन्ति पञ्चमी विनायका यजन्ति पष्टी वसवो यजन्ति सप्तमीमृषयो यजन्त्रप्टभीं गन्धर्वा यजन्ति नवमीमप्तरसो यजन्ति दशमी हि दिवोऽन्तर्धाने तिष्ठत्येकाद्रयन्तरिक्षपदं गता द्वाद्शी त भूम्यां तिष्ठति ता हि ये जयन्ति ते मृत्युं तरन्ति अक्ति लभन्ते गर्भजनमजरामरणतापत्रयासम दुः खं तरन्ति ॥ १४ ॥ प्रथमां सधुरां रम्यां सदा ब्रह्मादिसेविताम् । शङ्घ-चकगदाशाईरक्षितां सुशलादिभिः॥ अत्रासी संस्थितः कृष्णसिभिः शक्या समाहितः । रामानिरुद्धपद्यन्ने रुक्तिमण्या सहितौ विशुः ॥ चतुःशब्दो अवेदेको ह्योंकारः समुदाहतः । तस्मादेव परो रजस इति सोऽहमिलवधार्य गोपालोऽहमिति भावयेत्। स मोक्षमश्चते स ब्रह्मत्वमधिगच्छति स ब्रह्मवि-द्भवति गोपाञ्जीवान्वा आत्मत्वेनासृष्टिपर्यन्तमालाति स गोपालो भवति ह्यों तद्यत्तत्परं ब्रह्म कृष्णात्मको नित्यानन्दैकरूपः सोऽहम् । ॐ तद्गोपाल-देव एव परं सत्यमवाधितं सोऽहमित्यात्मानमादाय मनसैक्यं कुर्यात्, आत्मनो गोपालोऽहमिति भावयेत्स एवाव्यक्तोऽनन्तो निल्यो गोपालः । मधुरायां स्थितिर्वह्मन्सर्वदा मे भविष्यति । शङ्खचऋगदापद्मवनमालावृतस्त वै ॥ चित्स्वरूपं परंज्योतिःस्वरूपं रूपवर्जितम् । सदा मां संस्परन्ब्रह्मनम्परं याति निश्चितम् ॥ मधुरामण्डले यस्तु जम्बुद्वीपस्थितोऽपि वा । योऽर्चयेत्प्र-तिमां प्रीत्या स में प्रियतरो अवि ॥ १५॥ तस्यामधिष्ठितः कृष्णरूपी पूज्यस्वया सदा । चतुर्घा चास्याधिकारिभेदत्वेन यजन्ति माम् ॥ युगातु-वर्तिनो छोका यजन्तीह सुमेधसः ॥ गोपाळं सानुजं रामं रुक्मिण्या सह तत्परम् ॥ गोपालोऽहमजो नित्यः प्रद्युम्नोऽहं सनातनः । रामोऽहं झनिरुद्धो **ऽहमात्मानमर्चयेद्धधः ॥ मयोक्तेन स्वधर्मेण निष्कामेण विभाग**शः ।

तैरयं पूजनीयो वे भद्रकृष्णो निवासिभिः ॥ तद्धर्मगतिहीना ये तस्यां मि परायणाः। कछिना ग्रसिता ये वे तेषां तस्यामवस्थितिः ॥ यथा त्वं सह पुत्रैस्तु यथा रुद्रो गणैः सह । यथा श्रियाऽभियुक्तोऽहं तथा भक्तो मम प्रियः ॥ १६ ॥ स होवाचाव्जयोनिश्चतुर्भिर्देवैः कथमेको देवः स्यात् । एकमक्षरं यद्विश्चतं हानेकाक्षरं कथं भूतं स होवाच । तं हि वै पूर्वं होकमे-वाद्वितीयं ब्रह्मासीत्तस्माद्रव्यक्तं व्यक्तमेवाक्षरं तस्मादक्षरान्महान्महतो वा अहंकारस्तस्मादेवाहंकारात्पञ्च तन्मात्राणि तेभ्यो भूतानि तैरावृतमक्षरं भवति । अक्षरोऽहमोंकारोऽहमजरोऽभयोऽमृतो ब्रह्माभयं हि वे स मुक्तोऽह-मस्यक्षरोऽहमस्सि । सत्तामात्रं विश्वरूपं प्रकाशं व्यापकं तथा। एकमेवा-द्वयं ब्रह्म मायया तु चतुष्टयम् ॥ रोहिणीतनयो रामो अकाराक्षरसंभवः। तैजसात्मकः प्रयुच्च उकाराक्षरसंभवः ॥ प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धो वे मकाराक्षर-संभवः । अर्धमात्रात्मकः कृष्णो यसिन्विधं प्रतिष्टितम् ॥ कृष्णात्मिका जगस्कर्त्री सूलप्रकृतिरुक्मिणी ॥ वजस्त्रीजनसंभूतः श्रुतिभ्यो वहासंगतः। प्रणवेन प्रकृतित्वं नद्नित ब्रह्मवादिनः ॥ तस्मादोंकारसंभूतो गोपालो विश्व-संस्थितिः । इतिमोकारं च एकत्वं पठ्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ मधुरायां विशेषेण मां ध्यायन्मोक्षमञ्जते ॥ अष्टपत्रं विकसितं हत्पद्मं तत्र संस्थितम् । दिव्यध्व-जातपत्रेस्तु चिद्धितं चरणद्वयस् । श्रीवरसलान्छनं हरस्यं कौरसुभं प्रभया युतम् ॥ चतुर्भुनं शङ्कचक्रशार्क्गपद्मगदान्वितम् । सुकेयूरान्वितं बाहुं कण्ठं मालासुशोभितम् ॥ द्यमत्किरीटमभयं स्फुरन्मकरकुण्डलम् । हिरण्मयं सौम्यतनुं स्वभक्तायाभयप्रदम् ॥ ध्यायेन्मनसि मां नित्वं वेणुशृङ्गधरं तु वा॥ मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा। तस्सारभूतं यद्यसां मथुरा सा निगद्यते । अष्टदिक्पालिभिर्भूमिपद्मं विकसितं जगत् ॥ संसारार्णवसंजातं सेवितं सममानसैः । चन्द्रसूर्याम्बरौचित्या ध्वजो मेरुहिरण्मयः ॥ आतपत्रं बहालोकं समोध्वंचरणः रसृतम् । श्रीवत्सं च स्वरूपं च वर्तते लान्छनैः सह । श्रीवःसलाञ्छनं तस्माःकथ्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ येन सूर्याभिवाक्चन्द्र-तेजसा स्वस्वरूपिणा । वर्तते कौस्तुभमणि तं वदुन्तीशमानिनः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति अहंकारश्चतुर्विधः । पञ्चभूतात्मकः शङ्खः परो रजसि संस्थितः ॥ चलस्वरूपमत्यन्तं मनश्चकं निगद्यते । आद्या माया भवेच्छाई पद्मं विश्वं करे स्थितम् । आद्या विद्या गदा वेद्या सर्वदा मे करे

ζ,

Ġ

ч-

पी

नु-

ह

श्रिता । धर्मार्थकामकेयूरैर्दिव्यैर्नित्यमवारितैः । कण्ठं तु निर्गुणं प्रोक्तं मास्यते माययाऽजया । माला निगचते ब्रह्मंस्तव पुत्रस्तु मानसः ॥ कूटस्थस्य स्वरूपं च किरीटं प्रवदन्ति सास् । अक्षरोत्तमं प्रस्कर-त्तरकुण्डलं युगुलं स्मृतम् ॥ ध्यायेन्मम प्रियो नित्यं स मोक्षमधि-गच्छति । स मुक्ती भवति तस्मै च आत्मानं ददामीति ॥ एतःसर्वं अविष्यति सया प्रोक्तं विधे तव। स्वरूपं द्विविधं चैव सगुणं निर्गुणं तथा ॥ १७ ॥ स होवाचाब्जयोनिर्व्यक्तानां मूर्तीनां प्रोक्तानां कथं वाऽवधारणा अवन्ति कथं वा देवा यजन्ति रुद्रा यजन्ति ब्रह्मा यजित विनायका यज्ञन्ति द्वादशादित्या यजन्ति वसवी यजन्त्यप्सरसी यजन्ति गन्धर्वा अजन्ति स्वपदं गताऽन्तर्धाने तिष्ठति कां अनुष्या यजन्ति । स होवाच तं त ह वै नारायणो देवः । आद्या अव्यक्ता द्वादश सूर्तयः सर्वेषु कोकेष सर्वेष देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठति रुद्रेषु रोद्री ब्रह्मण्येव ब्राह्मी देवेषु देवी मानसेषु मानसी विनायके विव्ननाशिन्यादिखेषु ज्योतिर्गन्धर्वेषु गान्धर्यः प्सरः खेवं गौर्वसुष्वेवं काम्यान्तर्धाने प्रकाशन आविभावा तिरोभावा केवका त स्वपदे तिष्ठति तामसी साचिवकी राजसी मानुषी विज्ञानघन आनन्द्घनः सचिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठति ॥ १८ ॥ ॐ टां प्राणास्त्रने दां तत्सन्दर्भवः स्वस्तस्मे प्राणात्मने नमी नमः ॥ १ ॥ ॐ दां कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवहाभाय टां तत्सद्भूर्भुवः स्वस्तस्ये वै नमो नमः॥ २॥ ॐ टामपानात्मने टां तत्सन्द्रभुवः खन्तस्मा अपानात्मने नमो नमः॥ ३॥ छँ टां कृष्णाय प्रद्युम्नायानिरुद्धाय टां तत्सन्द्रर्भुवः स्वस्तस्मे वै नमो नमः ॥ ४ ॥ ॐ टां व्यानात्मने टां तत्सद्भ र्भुवः स्वस्तस्मे व्यानात्मने नमो नमः ॥ ५ ॥ ॐ टां कृष्णाय रामाय टां तत्सन्दर्भुवः स्वस्तसौ वै नमो नमः ॥ ६ ॥ ॐ टामुदानात्मने टां तत्सद्भर्भुवः खस्तस्मा उदानात्मने नमो नमः॥ ७॥ ॐ टां कृष्णाय देवकीनन्दनाय टां तत्सङ्गर्भुवः स्वससे वै नमो नमः ॥ ८ ॥ ॐ टां समानात्मने टां तत्सन्द्र्भुवः खससी समानात्मने नमो नमः॥ ९॥ ॐ टां गोपालाय निजस्त्ररूपाय टां तत्सन्दर्भुवः स्वससी वै नमो नमः ॥ १० ॥ ॐ टां योऽसौ प्रेयानात्मा गोपालः टां तत्सन्द्रभुवः स्वसासी वै नमो नमः ॥ ११ ॥ ॐ टां योऽसाविन्द्रियात्मा गोपालः टां तत्सद्भुवः खसासी वे नमो नमः ॥ १२ ॥ ॐ टां योऽसो भूतात्मा

गोपालः टां तत्सद्भुंवः ख्रस्तसे वे नमो नमः॥ १३॥ ॐ टां योऽसावुत्तमपुरुषो गोपालः टां तत्सद्भुंवः ख्रस्तसे वे नमो नमः॥ १४॥
ॐ टां योऽसो परब्रह्मगोपालः टां तत्सद्भुंवः ख्रस्तसे वे नमो नमः
॥ १५॥ ॐ टां योऽसो सर्वभूताःमा गोपालः टां तत्सद्भुंवः ख्रस्तसे वे
नमो नमः ॥ १६॥ ॐ टां योऽसो जायत्स्वमसुषुतिमतीत्य तुर्यातीतो
गोपालः टां तत्सद्भुंवः ख्रस्तसे वे नमो नमः॥ १७॥ एको देवः
सर्वभूतेषु गृदः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्र ॥ रुद्राय नम आदिलाय नमो विनायकाय
नमः सूर्याय नमो विद्याय नमः। इन्द्राय नमोऽप्रये नमः पित्रे नमो निर्नदतये नमो वरुणाय नमो मरुते नमः क्वेराय नम ईशानाय नमो ब्रह्मणे
नमः सर्वभ्यो देवेभ्यो नमः। दत्ता स्तुतिं पुण्यतमां ब्रह्मणे ख्रस्क्षिणे।
कर्नत्वं सर्वजोकानामन्तर्धाने वभूव सः॥ ब्रह्मणो ब्रह्मपुत्रेभ्यो नारदानु श्रुतं
यथा। तथा प्रोक्तं तु गान्धर्वि गच्छ त्वं स्वालयान्तिकं गच्छ त्वं
स्वालयान्तिकमिति॥ १९॥

ॐ स ह नाववस्विति शान्तिः॥ इसाथर्वणीया गोपालोत्तरतापिन्युपनिषसमाप्ता॥ ९९॥

कृष्णोपनिषत् ॥ १००॥

यो रामः कृष्णतामेत्य सार्वात्म्यं प्राप्य लीलया । अतोषयदेवमानिपटलं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः।

हिरः ॐ ॥ श्रीमहाविष्णुं सिचदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं सुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवः । तं होचुर्नोऽवद्यमवतारान्वै गण्यन्ते आलिङ्गामो भवन्तमिति। भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ अन्ये येऽवतारास्ते हि गोपा न स्त्रीश्च नो कुरु। अन्योन्यविप्रहं धायँ तवाङ्गस्पर्शनादिह । शश्चत्स्पर्शयिताऽस्माकं गृह्णीमोऽवतारान्वयस् ॥१॥ रुद्वादीनां वचः श्चत्वा प्रोवाच भगवान्स्वयस् । अङ्गसङ्गं करिष्यामि भवद्वाक्यं करोम्यहम् ॥२॥ मोदिताक्षे सुराः सर्वे कृतकृत्याष्ट्रेना वयस् । यो नन्दः परमानन्दो यशोदा

मुक्तिगेहिनी ॥ ३ ॥ माया सा त्रिविधा प्रोक्ता सत्त्वराजसतामसी । प्रोक्ता च सात्त्विकी रुद्रे भक्ते ब्रह्मणि राजसी ॥ ४॥ तामसी दैलपक्षेषु माया श्रेषा ह्यदाहता। अजेया वैष्णवी माया जप्येन च सुता पुरा ॥ ५ ॥ देवकी ब्रह्मपुत्रा सा या वेदैरुपगीयते । निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः कृष्णरामयोः ॥ ६ ॥ स्तुवते सततं यस्तु सोऽवतीणों महीतले । वने वृन्दावने क्रीडन्गोप-गोपीसुरैः सह ॥ ७ ॥ गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः । वंशस्तु भगवात्रुद्रः श्रङ्गमिन्द्रः सगोसुरः ॥ ८॥ गोकुलं वनवैकुण्ठं ताप-सास्तत्र ते द्वमाः । लोभकोधादयो दैलाः कलिकालस्तिरस्कृतः ॥ ९॥ गोपरूपो हरिः साक्षान्मायाविग्रहधारणः । दुर्वोधं कुहकं तस्य मायया मोहितं जगत् ॥ १० ॥ दुर्जया सा सुरैः सर्वेर्धष्टिरूपो भवेद्विजः । रही येन कृतो वंशस्तस्य माया जगत्कथम् ॥ ११ ॥ वलं ज्ञानं सुराणां वै तेषां ज्ञानं हतं क्षणात् । रोषनागो भवेदामः कृष्णो बहीव शाक्षतम् ॥ १२॥ अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिक्यः स्त्रियस्तथा । ऋचोपनिषद्स्ता वै ब्रह्मरूपा ऋचः स्त्रियः ॥ १३ ॥ द्वेषश्चाणूरमछोऽयं मत्सरो मुप्टिको जयः । दर्पः कुवलया-पीडो गर्वो रक्षः लगो वकः ॥ ६४ ॥ दया सा रोहिणी माता सत्यभामा भरेति वै । अघासुरो महान्याधिः कलिः कंसः स भूपतिः ॥ १५॥ शमो मित्रः सुदामा च सत्याकृरोद्धवो दमः। यः शङ्खः स स्वयं विष्णुर्रुक्ष्मीरूपो ब्यवस्थितः ॥ १६ ॥ दुग्धसिन्धौ समुत्पन्नो मेघघोषस्तु संस्मृतः । दुग्धो-द्धिः कृतस्तेन भग्नभाण्डो द्धिग्रहे ॥ ३७ ॥ क्रीडते बालको भूत्वा पूर्वव-त्सुमहोद्यो । संहारार्थं च शत्रूणां रक्षणाय च संस्थितः ॥ १८॥ कृपार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् । यत्स्रष्टुमीश्वरेणासीत्तचकं ब्रह्मरूपधक् ॥ १९ ॥ जयन्तीसंभवो वायुश्चमरो धर्मसंज्ञितः । यस्यासौ ज्वलनाभासः खङ्गरूपो महेश्वरः ॥ २० ॥ कश्यपोलूखलः ख्यातो रज्जुर्माताऽदितिस्तथा। चक्रं शङ्कं च संसिद्धिं बिन्दुं च सर्वमूर्धनि ॥ २१ ॥ यावन्ति देवरूपाणि वद्नित विबुधा जनाः । नमन्ति देवरूपेभ्य एवमादि न संशयः ॥ २२॥ गदा च कालिका साक्षात्सर्वशत्रुनिवर्हिणी। धनुः शार्कं स्वमाया च शर-त्कालः सुभोजनः ॥ २३ ॥ अज्ञकाण्डं जगद्वीजं धतं पाणौ स्वलीलया। गरुडो वटभाण्डीरः सुदामा नारदो सुनिः ॥ २४ ॥ वृन्दा भक्तिः क्रिया बुद्धिः सर्वजनतुप्रकाशिनी । तस्मान्न भिन्नं नाभिन्नमाभिर्भिन्नो न वै विभुः॥ भूमानुत्तारितं सर्वं वैकुण्ठं स्वर्गवासिनाम् ॥ २५ ॥ सर्वतीर्थफलं लभते य एवं वेद । देहवन्धाद्विमुच्यते इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ इति कृष्णोपनिषत्समासा ॥ १०० ॥

> याज्ञवल्कयोपनिषत् ॥ १०१॥ संन्यासज्ञानसंपन्ना यान्ति यद्वैष्णवं पदम् । तद्वै पदं ब्रह्मतत्त्वं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥

हरिः ॐ॥ अथ जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवन्संन्यास-मनुबृहीति कथं संन्यासलक्षणम् । स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् । गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् । यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव-जेद्गृहाहा वनाहा । अथ पुनर्वती वाऽत्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वा उत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेत् । तदेके प्राजाप-त्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति । अथवा न कुर्यादाग्नेय्यामेव कुर्यात् । अग्निर्हि प्राणः। प्राणमेवैतया करोति । त्रैधातवीयामेव कुर्यात् । एतयैव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति । अयं ते योनिर्ऋत्विजो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नप्न आरोहाथानो वर्धया रियमित्यनेन मन्त्रेणा-क्षिमाजिवेत् । एष वा अक्षेर्योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहे-त्येवमेवैतदात्रामाद्ग्निमाहत्य पूर्ववद्ग्निमाजिघेत् । यद्ग्निं न विन्देदप्सु जुहुयादापो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहेति साज्यं हिवरनामयम् । मोक्षमन्नस्रय्येवं वेद तद्रहा तदुपासितन्यम् । शिखां यज्ञो-पवीतं छित्त्वा संन्यस्तं मयेति त्रिवारमुचरेत्। एवमेवैतद्भगवन्निति वै याज्ञ-वल्क्यः ॥१॥ अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं यज्ञोपवीती कथं ब्राह्मण इति । स होवाच याज्ञवल्क्य इदं प्रणवमेवास्य तद्यज्ञोपवीतं य आत्मा । प्राइयाच-म्यायं विधिरथ वा परिवाड्विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रहः ग्रुचिरद्रोही भैक्षमाणो ब्रह्मभूयाय भवति । एष पन्थाः परिव्राजकानां वीराध्वनि वाऽनाशके वापां प्रवेशे वामिप्रवेशे वा महाप्रस्थाने वा। एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनेति

स संन्यासी ब्रह्मविदिति । एवमेवैष भगवित्रिति वै याज्ञवल्क्य । तत्र परम-स सम्यासा महानानुः । १८ परम-हंसा नाम संवर्तकारुणिश्वेतकेतुदूर्वासऋभुनिदाघदत्तात्रेयग्रुकवामदेवहारी-तकप्रभृतयोऽन्यक्तिलङ्गाऽन्यक्ताचारा अनुनमत्ता उन्मत्तवदाचरन्तः परस्त्रीपुर-पराझुखास्त्रिदण्डं कमण्डलुं भुक्तपात्रं जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं वहिरन्त-श्चेत्वेतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् । यथा जातरूपधरा निर्द्धन्द्वा निष्परिप्रहास्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नाः शुद्धमानसाः प्राणसंधार-णार्थं यथोक्तकाले विसुक्तो भैक्षमाचरबुद्रपात्रेण लाभालाभौ समौ भूत्वा करपात्रेण वा कमण्डलद्रकपो भैक्षमाचरलुद्रमात्रसंग्रहः पात्रान्तरश्चन्यो जलस्थलकमण्डलुरबाधकरहःस्थलनिकेतनो लाभालाभौ समौ भूत्वा शुन्या-गारदेवगृहतृणऋटवल्मीकवृक्षस्लकुलालशालाग्निहोत्रशालानदीपुलिनगिरिकु-हरकोटरकन्द्रतिर्झरस्थण्डिलेप्विनिकेतिनवास्यप्रयतः शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसी नामेटि । आज्ञाम्बरी ननमस्कारी नदारपुत्राभिलापी लक्ष्यालक्ष्यनिर्वर्तकः परिवाद परमेश्वरो भवति । अत्रैते श्लोका भवन्ति--यो भवेत्पूर्वसंन्यासी तुल्यो वै धर्मतो यदि । तसौ प्रणामः कर्तव्यो नेतराय कदाचन ॥ १ ॥ प्रमादिनो बहिश्चित्ताः पिशुनाः कल्हो-त्सुकाः । संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते देवसंदूषिताशयाः ॥ २ ॥ नामादिभ्यः परे भूम्नि स्वाराज्ये चेत्स्थितोऽद्वये । प्रणमेत्कं तदात्मज्ञो न कार्यं कर्मणा तदा ॥ ३ ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति । प्रणमेदण्डवन्सूमावा-श्वचण्डालगोखरम् ॥ ४ ॥ मांसपाञ्चालिकायास्तु यञ्चलोकेऽङ्गपञ्जरे । स्नाय्व-स्थिप्रन्थिशालिन्यः स्त्रियः किमिव शोभनम् ॥५॥ त्वङ्गांसरक्तवाष्पाम्बु पृथकृ-त्वा विलोचने । समालोकय रम्यं चेत्किं सुधा परिमुद्यासे ॥६॥ मेरुशुङ्गतरो-ल्लासिगङ्गाजलस्योपमा । दृष्टा यस्मिन्मुने सुक्ताहारस्योल्लासशालिता ॥ ७ ॥ इमशानेषु दिगन्तेषु स एव ललनास्तनः । श्वभिरास्वाद्यते काले लघुपिण्ड इवान्धसः ॥ ८ ॥ केशकजलधारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः । दुष्कृता-ग्निशिखा नार्यो दहन्ति तृणवन्नरम् ॥ ९ ॥ ज्वलना अतिदूरेऽपि सरसा अपि नीरसाः। स्त्रियो हि नरकाझीनामिन्धनं चारु दारुगम्॥ १०॥ कामनान्ना किरातेन विकीर्णा सुग्धचेतसः । नार्यो नरविहङ्गानामङ्गवन्धनवागुराः॥ ११॥ जनमपल्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम् । पुंसां दुर्वासनारज्जुर्नारीबडिश-

पिण्डिका ॥ १२ ॥ सर्वेषां दोषरतानां सुसमुद्गिकयानया । दुःखरुह्रह्वलया नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया ॥ १३ ॥ यस स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क भोगभूः । स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ १४ ॥ अल-भ्यमानस्तनयः पितरौ क्षेत्रायेचिरम् । लब्धो हे गर्भपातेन प्रसवेन च बाधते ॥ १५ ॥ जातस्य महरोगादि कुमारस्य च धूर्तता । उपनीतेऽप्यविद्यत्वमनु-द्वाहश्च पण्डिते ॥ १६ ॥ यूनश्च परदारादि दारिद्यं च कुटुम्बिनः । पुत्रदुःखस्य नास्यन्तो धनी चेन्छियते तदा ॥ १७ ॥ न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो यतिः । न च वाक्चपलश्चेव ब्रह्मभूतो जितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ रिपौ बद्धे स्वदेहे च समेकात्स्यं प्रपश्यतः । विवेकिनुः कुतः कोपः खदेहावयवेष्विव ॥ १९॥ अपकारिणि कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसद्ध परिपन्थिनि ॥ २० ॥ नमोऽस्तु मम कोपाय स्वाश्रयज्वालिने भृशम्। कोएस्य सम वैराग्यदायिने दोषबोधिने ॥ २१ ॥ यत्र सुप्ता जना नित्यं प्रबुद्धस्तत्र संयमी । प्रबुद्धा यत्र ते विद्वान्सुपुप्तिं याति योगिराद् ॥ २२ ॥ चिद्हि। स्तीति चिन्मात्रिमदं चिन्मयमेव च। चित्त्वं चिद्हमेते च लोका-श्चिदिति भावय् ॥ २३ ॥ यतीनां तदुपादेयं पारहंस्यं परं पदम् । नातः परतरं किंचिद्रियते सुनिपुङ्गव ॥ २४ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ पूर्णमद् इति शान्तिः ॥ इति याज्ञवल्क्योपनिषत्समाप्ता ॥ १०१ ॥

वराहोपनिषत् ॥ १०२ ॥

श्रीमद्वराहोपनिषद्वेद्याखण्डसुखाकृति । त्रिपान्नारायणाख्यं तद्रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ स ह नाववित्तिति शान्तिः ॥

हिरः ॐ॥ अथ ऋभुवें महामुनिर्देवमानेन द्वादशवत्सरं तपश्चचार । तद-वसाने वराहरूपी भगवान्प्रादुरभूत् । स होवाचोत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं वृणीष्वेति । सोदितिष्ठत् । तस्मै नमस्कृत्योवाच भगवन्कामिभिर्यचत्कामितं तत्तत्त्वत्सका-शात्स्वप्रेऽपि न याचे । समस्तवेदशास्त्रोतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि अह्यादयः सुराः सर्वे त्वद्रपज्ञानान्मुक्तिमाहुः । अतस्त्वद्रपप्रतिपादिकां ब्रह्म-विद्यां बृहीति होवाच । तथेति स होवाच वराहरूपी भगवान् । चतुर्विशिति-

तस्वानि केचिदिच्छन्ति वादिनः । केचित्षद्त्रिंशत्तस्वानि केचित्षण्णवतीनि च ॥ ३ ॥ तेषां क्रमं प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः रुगु । ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चेव श्रोत्रत्वग्लोचनादयः॥ २॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चेत्र वाक्पाण्यङ्गयादयः क्रमात् । प्राणादयस्तु पञ्चेत्र पञ्च शब्दादयस्तथा ॥ ३ ॥ मनोबुद्धि-रहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम् । चतुर्विशतितत्त्वानि तानि ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४ ॥ एतैस्तत्त्वैः समं पञ्चीकृतभूतानि पञ्च च । पृथिन्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥ ५ ॥ देहन्नयं स्थूलसूक्ष्मकारणानि विदुर्बुधाः । अवस्था-त्रितयं चैव जायत्स्वमसुपुसयः ॥ ६ ॥ आहत्य तत्त्वजातानां घटत्रिंशनसुनयो विदुः । पूर्वोक्तेस्तस्वजातेस्तु समं तत्त्वानि योजयेत् ॥ ७ ॥ षड्भावविकृति-श्चास्ति जायते वर्धतेऽपि च । परिणामं क्षयं नाशं पड्भावविकृतिं विदुः ॥ ८॥ अज्ञाना च पिपासा च शोकमोही जरा सृतिः। एते पहुर्मयः प्रोक्ताः षदकोशानथ विचम ते ॥ ९ ॥ त्वकच रक्तं मांसमेदोमजास्थीनि निबोधत । कामकोधौ लोभमोही मदो मान्सर्यमेव च ॥ १०॥ एतेऽरिपड्डा विश्वश्च तैजसः प्राज्ञ एव च । जीवत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि च गुणत्रयम् ॥ ११ ॥ प्रार-ब्धागाम्यर्जितानि कर्मत्रयमितीरितम् । वचनादानगमनविसर्गानन्दपञ्चकम् ॥ १२ ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च अभिमानोऽवधारणा । मुदिता करुणा मैत्री उपेक्षा च चतुष्टयम् ॥ १३ ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्वीन्द्रोपेन्द्रंमृत्युकाः । तथा चन्द्रश्चतुर्वेक्त्रो रुद्रः क्षेत्रज्ञ ईश्वरः ॥ १४॥ आहत्य तत्त्वजातानां पण्ण-वत्यस्तु कीर्तिताः । पूर्वोक्ततत्त्वजातानां वैलक्षण्यमनामयम् ॥ १५ ॥ वराह-रूपिणं मां ये भजन्ति मयि भक्तितः । विमुक्ताज्ञानतत्कार्या जीवनमुक्ता भवन्ति ते ॥ १६ ॥ ये पण्णवितत्त्वज्ञा यत्र कुत्राश्रमे रताः । जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥ १७ ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऋभुर्नाम महायोगी कोडरूपं रमापतिस् । वरिष्टां ब्रह्मविद्यां त्वमधिहि भगवन्मम ॥ १ ॥ एवं स पृष्टो भगवान्प्राह भक्तार्तिभञ्जनः । स्ववर्णाश्रम- धर्मेण तपसा गुरुतोषणात् ॥ २ ॥ साधनं प्रभवेत्पुंसां वेराग्यादिचतुष्टयम् । नित्यानित्यविवेकश्च इहामुत्र विरागता ॥ ३ ॥ शमादिषद्भसंपत्तिर्मुमुक्षा तां समभ्यसेत् । एवं जितेन्द्रियो भूत्वा सर्वत्र ममतामतिम् ॥ ४ ॥ विहाय साक्षिचैतन्ये मिय कुर्यादहंमतिम् । दुर्छभं प्राप्य मानुष्यं तत्रापि नरिह्महम्

॥५॥ ब्राह्मण्यं च महाविष्णोर्वेदान्तश्रवणादिना । अतिवर्णाश्रमं रूपं सिचदा-नन्दलक्षणम् ॥६॥ यो न जानाति सोऽविद्वान्कदा मुक्तो भविष्यति । अहमेव सुखं नान्यद्न्यचेन्नेव तत्सुखम् ॥७॥ अमद्र्थं न हि प्रेयो मद्र्थं न स्वतःप्रियम्। परप्रेसास्पदतया मा न भूवमहं सदा ॥ ८ ॥ भूयासिमति यो द्रष्टा सोऽहं विष्णुर्मुनीश्वर । न प्रकाशोऽहमित्युक्तिर्यत्प्रकाशैकवन्धना ॥ ९ ॥ स्वप्रकाशं तमात्मानमप्रकाशः कथं स्पृशेत् । स्वयं भातं निराधारं ये जानन्ति सुनि-श्चितम् ॥ १० ॥ ते हि विज्ञानसंपन्ना इति मे निश्चिता मितः । स्वपूर्णात्मा-तिरेकेण जगजीवेश्वराद्यः ॥ ११ ॥ न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षणः । अज्ञानान्धतमोरूपं कुर्मधर्मादिलक्षणम् ॥ १२ ॥ स्वयंप्रकाशन सात्मानं नेव मां स्प्रष्टुमर्हति । सर्वसाक्षिणमात्मानं वर्णाश्रमविवर्जितम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मरूपतया पर्यन्ब्रह्मेव भवति स्वयम् । भासमानमिदं सर्वं मान-रूपं परं पद्म् ॥ १४ ॥ पश्यन्वेदान्तमानेन सद्य एव विमुच्यते । देहात्म-ज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् ॥ १५ ॥ आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छ-न्नपि सुच्यते । सत्यज्ञानानन्दपूर्णलक्षणं तमसः परम् ॥ १६॥ ब्रह्मानन्दं लदा पञ्यन्कथं वध्येत कर्मणाः । त्रिधामसाक्षिणं सत्यज्ञानानन्दादिलक्षणम् ॥ १७ ॥ त्वमहंशव्दलक्ष्यार्थमसक्तं सर्वदोषतः । सर्वगं सिबदात्मानं ज्ञान-चक्कुर्निरीक्षते ॥ १८ ॥ अज्ञानचक्कुर्नेक्षेत भास्त्रन्तं भानुमन्धवत् । प्रज्ञानमेव तद्रहा सत्यप्रज्ञानलक्षणम् ॥ १९ ॥ एवं ब्रह्मपरिज्ञानादेव मर्त्योऽमृतो भवेत् । तद्रह्यानन्द्रसद्गनद्रं निर्गुणं सत्यचिद्रनम् ॥ २०॥ विदित्वा स्वात्मनो रूपं न विभेति कुतश्चन । चिन्मात्रं सर्वगं नित्यं संपूर्णं सुखमद्वयम् ॥ २१ ॥ साक्षाद्र<mark>द्वोव</mark> नान्योऽस्तीत्येवं ब्रह्मविदां स्थितिः । अज्ञस्य दुःखोधमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत् ॥ २२ ॥ अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सुचक्षुषाम् । अनन्ते सिंबदानन्दे मिय वाराहरूपिणि ॥ २३ ॥ स्थितेऽद्वितीयभावः स्यात्को बद्धः कश्च मुच्यते । स्वस्वरूपं तु चिन्मात्रं सर्वदा सर्वदेहिनाम् ॥ २४॥ नैव देहादिसंघातो घटवदृशिगोचरः । स्वात्मनोऽन्यदिवाभातं चराचरमिदं जगत्॥ २५ ॥ स्वात्ममात्रतया बुद्धा तदस्मीति विभावय । स्वस्वरूपं स्वयं भुङ्के नास्ति भोज्यं पृथक् स्वतः ॥ २६ ॥ अस्ति चेदस्तितारूपं ब्रह्मैवास्तित्व-लक्षणम् । ब्रह्मविज्ञानसंपन्नः प्रतीतमित्वलं जगत् ॥ २७ ॥ पश्यन्नपि सदा नैव पद्दयति स्वात्मनः पृथक् । मत्स्वरूपपरिज्ञानात्कर्मभिनं स बध्यते ॥ २८ ॥

यः शरीरेन्द्रियादिभ्यो विहीनं सर्वसाक्षिणम् । परमार्थेकविज्ञानं सुखात्मानं स्वयंप्रभम् ॥ २९ ॥ स्वस्वरूपतया सर्व वेद स्वानुभवेन यः । स धीरः स त विज्ञेयः सोऽहंतत्त्वं ऋभो भव॥ ३०॥ अतः प्रपञ्चानुभवः सदा न हि स्वरूपबोधानुभवः सदा खलु । इति प्रपत्र्यन्परिपूर्णवेदनो न बन्धमुक्तो न च बद्ध एव तु ॥ ३१ ॥ स्वस्वरूपानुसंघानार्चृत्यन्तं सर्वसाक्षिणम् । सुहुर्तं विन्तयेन्मां यः सर्वबन्धेः प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥ सर्वभूतान्तरस्थाय नित्यमुक्त-चिदात्मने । प्रत्यक्चतन्यरूपाय महामेव नमो नमः ॥ ३३ ॥ त्वं वाऽहमस्म भगवो देव तेऽहं वै त्वमासि । तुभ्यं महामनन्ताय महां तुभ्यं चिदात्मने ॥ ३४ ॥ नमो महां परेशाय नमस्तुभ्यं शिवाय च । किं करोमि क गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥ ३५ ॥ यन्मया पूरितं विश्वं महाकल्पास्त्रना यथा । अन्तःसङ्गं बहिःसङ्गमात्मसङ्गं च यस्त्यज्ञेन् । सर्वेसङ्गनिवृत्तात्मा स मामेति न संशयः ॥ ३६ ॥ अहिरिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेदाः कुणपमिव सुनारीं त्यक्तकामो विरागी । विषमिव विषयादीनमन्यमानो दुरन्ताञ्जगति परमहंसो वासुदेवोऽहमेव ॥ ३७ ॥ इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतिदिहोच्यते । अहं सत्यं परं ब्रह्म मत्तः किंचिन्न विद्यते ॥ ३८॥ उप समीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनोः । उपवासः स विज्ञेयो न नु कायस्य शोषणम् ॥ ३९॥ कायशोषणमात्रेण का तत्र द्यविवेकिनाम् । वल्मीकताडनादेव सृतः किं नु महोरगः॥ ४० ॥ अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद परोक्षज्ञानमेव तत् । अहंब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते ॥ ४१ ॥ यस्मिन्काले स्त्रमात्मानं योगी जानाति केवलम् । तस्मात्कालात्समारभ्य जीवन्युक्तो भवेदसौ ॥ ४२ ॥ अहंबह्मेति नियतं मोक्षहेतुर्महात्मनाम् । हे पदे बन्धमोक्षाय निर्ममेति ममेति च ।। ४३ ॥ ममेति वध्यते जन्तुर्निर्ममेति विसुच्यते । वाह्यचिन्ता न कर्तव्या तथैवान्तरचिन्तिका । सर्वचिन्तां समुत्सुज्य स्वस्थो भव सदा ऋभो ॥ ४४॥ संकल्पमात्रकलनेन जगत्समप्रं संकल्पमात्रकलने हि जगद्विलासः। संकल्प-मात्रमिद्मुत्सूज निर्विकल्पमाश्रित्य मामकपदं हृदि भावयस्त्र ॥ ४५ ॥ मचि-न्तनं मत्कथनमन्योन्यं मत्प्रभाषणम् । सदेकपरमो भूत्वा कालं नय महा-मते ॥ ४६ ॥ चिदिहास्तीति चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च । चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति भावय ॥ ४७ ॥ हागं नीहागतां नीत्वा निर्लेपो भव सर्वदा । अज्ञानजन्यकर्त्रादिकारकोत्पन्नकर्मणा ॥ ४८ ॥ श्रुत्युत्पन्नात्मविज्ञान-

व्रदीपो बाध्यते कथम् । अनात्मतां परित्यज्य निर्विकारो जगित्स्थतौ ॥ ४९ ॥ एकनिष्ठतयान्तःस्थसंविन्मात्रपरो भव। घटाकाशमठाकाशौ महाकाशे प्रतिष्ठितौ ॥ ५०॥ एवं मयि चिदाकारो जीवेशौ परिकल्पितौ। या च प्रागात्मनो माया तथान्ते च तिरस्कृता ॥५१॥ ब्रह्मवादिभिरुद्गीता सा मायेति विवेकतः । माया-तत्कार्यविलये नेश्वरत्वं न जीवता ॥ ५२ ॥ ततः शुद्धश्चिदेवाहं व्योमवन्निरुपा-धिकः । जीवेश्वरादिरूपेण चेतनाचेतनात्मकम् ॥ ५३ ॥ ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीहोन कल्पिता । जायदादिविमोक्षान्तः संसारो जीवकल्पितः ॥ ५४ ॥ त्रिणाचिकादियोगान्ता ईश्वरभ्रान्तिमाश्रिताः । लोकायतादिसांख्यान्ता नीवविश्रान्तिमाश्रिताः ॥ ५५ ॥ तस्मान्मुसुक्षुभिनैव मतिजीवेशवादयोः। कार्या किंतु ब्रह्मतत्त्वं निश्चलेन विचार्यताम् ॥ ५६ ॥ अद्वितीयब्रह्मतत्त्वं न जानन्ति यथा तथा। भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क मुक्तिः केह वा सुखम् ॥ ५० ॥ उत्तमाधमभावश्चेत्तेषां स्वादस्ति तेन किम् । स्वमस्वराज्यभिक्षाभ्यां प्रबुद्धः स्पृशते खलु ॥ ५८ ॥ अत्ताने बुद्धिविलये निद्धा सा भण्यते बुधैः । विलीनाज्ञानतत्कार्ये मयि निदा कथं भयेत् ॥ ५९ ॥ बुद्धेः पूर्णविकासोऽयं जागरः परिकीर्त्यते । विकारादिविहीनत्वाजागरो मे न विद्यते ॥ ६०॥ सूक्ष्मनाडियु संचारो बुद्धेः स्वप्तः प्रजायते । संचारधर्मरहिते मयि स्वप्नो न विद्यते ॥ ६१ ॥ सुपुप्तिकाले सकले विलीने तमसावृते । स्वरूपं महदा-नन्दं भुङ्के विश्वविवर्जितः ॥ ६२ ॥ अविशेषेण सर्वं तु यः पश्यति चिदन्व-बात् । स एव साक्षाद्विज्ञानी स शिवः स हरिविधिः ॥ ६३ ॥ दीर्घस्वमिदं यत्तदीर्घं वा चित्तविश्रमम् । दीर्घं वापि मनोराज्यं संसारं दुःखसागरम् । सुप्तेरुत्थाय सुत्यन्तं ब्रह्मेकं प्रविचिन्त्यताम् ॥ ६४ ॥ आरोपितस्य जगतः प्रविलापनेन चित्तं मदात्मकतया परिकल्पितं नः । शत्रू ब्रिहत्य गुरुषद्वगणा-न्निपाताद्गन्धद्विपो भवति केवलमद्वितीयः ॥ ६५ ॥ अद्यास्तमेतु वपुराशिश-तारमास्तां कस्तावतापि सम चिद्वपुषो विशेषः । कुम्से विनश्यति चिरं सम-वस्थिते वा कुम्भाम्बरस्य नहि कोऽपि विशेषलेशः॥ ६६॥ अहिनिर्ल्वयनी सर्पनिर्मोको जीववर्जितः । वल्मीके पतितस्तिष्ठेत्तं सर्पो नासिमन्यते ॥ ६० ॥ एवं स्थूलं च सूक्ष्मं च शरीरं नाभिमन्यते । प्रत्यन्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्या-ज्ञाने सहेतुके । नेति नेतीति रूपत्वादशरीरो भवत्ययम् ॥ ६८ ॥ शास्त्रेण

न स्यात्परमार्थदृष्टिः कार्यक्षमं पश्यति चापरोक्षम् । प्रारब्धनाशात्प्रतिभान-नाश एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया ॥ ६९ ॥ ब्रह्मत्वे योजिते स्वामिश्लीवः भावो न गच्छति । अद्वैते बोधिते तत्त्वे वासना विनिवर्तते ॥ ७० ॥ प्रार-व्धान्ते देहहानिर्मायेति क्षीयतेऽखिला। असीत्युक्ते जगत्सर्वं सदसं ब्रह्म तद्भवेत् ॥ ७१ ॥ भातीत्युक्ते जगत्सर्व भानं ब्रह्मेव केवलम् । मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभुमात्रमेव तत् । जगत्रयसिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ॥ ७२॥ अज्ञानमेव न कुतो जगतः प्रसङ्गो जीवेशदृशिकविकल्पकथातिदृरे । एकान्त-केवलचिदेकरसस्वभावे बह्मैव केवलमहं परिपूर्णमस्मि ॥ ७३ ॥ बोधचन्द्रमसि पूर्णविश्रहे मोहराहु मुषितात्मतेजसि । स्नानदानयजनादिकाः किया मोचना-विध वृथैव तिष्ठते ॥ ७४ ॥ सिलले सैन्धवं यहत्साम्यं भवति योगतः। तथाऽऽत्ममनसोरैक्यं समाधिरिति कथ्यते ॥ ७५ ॥ दुर्छभो विषयत्यागो दुर्छभं तत्त्वदर्शनम् । दुर्रुभा सहजावस्था सहुरोः करुणां विना ॥ ७६ ॥ उत्पन्न-शक्तिबोधस्य त्यक्तिनःशेषकर्मणः। योगिनः सहज्ञावस्था स्वयमेव प्रकाशते ॥ ७७ ॥ रसस्य मनसश्चेव चञ्चलत्वं स्वभावतः । रसो बद्धो मनो बद्धं किं न सिद्धाति भूतले ॥ ७८ ॥ सूर्चिछतो हरति व्याधिं सृतो जीवयति स्वयम । बद्धः खेचरतां धत्ते ब्रह्मत्वं रसचेतसि ॥ ७९ ॥ इन्द्रियाणां मनो नाथो सनीनाथस्त मारुतः। मारुतस्य लयो नाथस्तन्नाथं लयमाश्रय ॥ ८० ॥ निश्चेष्टो निर्विकारश्च लयो जीवति योगिनाम्। उच्छिन्नसर्वसंकल्पो निःशे-षाशेषचेष्टितः । स्वायगस्यो लयः कोऽपि सनसां वागगोचरः ॥ ८१ ॥ पुङ्खानुपुङ्खविपयेक्षणतत्परोऽपि ब्रह्मावलोकनिधयं न जहाति योगी। सङ्गीत-ताललयवाद्यवशं गतापि मौलिस्थकुम्भपरिरक्षणधीनैटीव ॥ ८२ ॥ सर्व-चिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा । नाद एवानुसंधेयो योगसाम्राज्यमि-च्छता ॥ ८३ ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

निह नानास्वरूपं स्यादेकं वस्तु कदाचन । तस्यादखण्ड एवास्यि यन्मद-न्यन्न किंचन ॥ १ ॥ दृश्यते श्रूयते यद्यद्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् । नित्यग्रुद्धवि-सुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् । सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ २ ॥ आनन्दरूपोऽहमखण्डवोधः परात्परोऽहं घनचित्प्रकाशः । मेधा यथा ब्योम न च स्पृशन्ति संसारदुःखानि न मां स्पृशन्ति ॥ ३ ॥ सर्वं सुखं विद्धि सदःखनाशात्सर्वे च सद्पमसत्यनाशात् । चिद्र्पमेव प्रतिभानयुक्तं तसादः खण्डं सस रूपसेतत् ॥ ४ ॥ न हि जनिर्मरणं गमनागर्मो न च मलं विसलं न च वेदनस् । चिन्मयं हि सकलं विराजते स्फुटतरं परमस्य तु योगिनः ॥ ५ ॥ सत्यचिद्धनमखण्डमद्वयं सर्वेदश्यरहितं निरामयम् । यत्पदं विमलस-हुयं शिवं तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय ॥ ६॥ जन्ममृत्युसुखदुःखवर्जितं जातिनीतिङ्खानेत्रदूरगम् । चिद्विवर्तजगतोऽस्य कारणं तत्सदाऽहमिति मौन-माश्रय ॥ ७ ॥ पूर्णसद्वयमखण्डचेतनं विश्वभेदकलनादिवर्जितम् । अद्वितीय-प्रसंविदंशकं तत्सदाऽहामिति मौनमाश्रय ॥ ८ ॥ केनाप्यबाधितत्वेन त्रिकालेsच्चेकरूपतः । विद्यमानत्वसस्त्येतत्सद्रपत्वं सदा सम ॥ ९ ॥ निरुपाधि-कनित्यं यत्सुसौ सर्वसुखात्परम् । सुखरूपत्वमस्त्येतदानन्दत्वं सदा मम ॥ १०॥ दिनकरिकरणैहिं ज्ञावरं तसो निविडतरं झटिति प्रणाशमेति। वनतरभवकारणं तमो यद्धरिदिनकृत्प्रभया न चान्तरेण ॥ ११ ॥ मम चरण-खारणेन पूज्या च स्वकतमसः परिमुच्यते हि जन्तुः । न हि मरणप्रभव-शणाशहेतुसीम चरणसारणाइतेऽस्ति किंचित् ॥ १२ ॥ आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया । तथा चेद्विश्वकर्तारं को न मुच्येत वन्धनात् ॥ १३ ॥ आदित्यसंनिधौ लोकश्रेष्टते स्वयसेव तु । तथा मत्संनिधावेव समस्तं चेष्टते जगत् ॥ १४ ॥ गुक्तिकाया यथा तारं कल्पितं मायया तथा । महदादि-जगन्मायामयं मरयेव केवलम् ॥ १५ ॥ चण्डालदेहे पश्चादिस्थावरे ब्रह्म-विम्रहे । अन्येषु तारतस्येन स्थितेषु न तथा सहस् ॥ १६ ॥ विनष्टदिग्भ्रमस्या-पि यथापूर्वं विभाति दिक् । तथा विज्ञानविध्वस्तं जगन्मे भाति तस हि ॥ १७ ॥ न देहो नेन्द्रियप्राणी न मनोबुद्धहंकृति । न चित्तं नैव माया च न च व्योमादिकं जगत्॥ १८॥ न कर्तानैय भोक्ताच न च भोजयिता तथा । केवलं चित्सदानन्दबह्मैवाहं जनार्दनः ॥ १९ ॥ जलस्य चलनादेव चञ्चलत्वं यथा रवेः । तथाऽहंकारसंबन्धादेव संसार आत्मनः ॥ २० ॥ चित्तसूलं हि संसारस्तत्प्रयक्षेन शोधयेत्। हन्त चित्तमहत्तायां कैषा विश्वासता तव ॥ २३ ॥ क धनानि महीपानां ब्राह्मणः क जगन्ति वा । प्राक्तनानि प्रयातानि गताः सर्गपरम्पराः । कोटयो ब्रह्मणां याता भूपा नष्टाः पराग-वत् ॥ २२ ॥ स चाध्यात्माभिमानोऽपि विदुषोऽप्यासुरत्वतः । विदुषोऽप्यासुर- श्चेत्सानिष्फलं तत्त्वदर्शनम् ॥ २३ ॥ उत्पाद्यमाना रागाद्यः विवेकज्ञानविद्वा । यदा तदैव दहान्ते कुतस्तेषां प्ररोहणम् ॥ २४ ॥ यथा सुनिपुणः
सम्यक् परदोषेक्षणे रतः । तथा चेन्निपुणः स्त्रेषु को न सुच्येत वन्धनात्
॥ २५ ॥ अनात्मविद्युक्तोऽपि सिद्धिजालानि वाञ्छति । दृष्यमञ्जक्षियाकालयुक्त्यामोति सुनीश्वर ॥ २६ ॥ नात्मज्ञस्यैष विषय आत्मज्ञो ह्यात्ममात्रदक् ।
आत्मनाऽऽत्मिन संतृष्ठो नाविद्यामनुधावति ॥ २० ॥ थे केचन जगद्भावासानिवद्यामयान्विदुः । कथं तेषु किलात्मज्ञस्त्रस्त्राविद्यो निमज्जति ॥ २८ ॥
दृन्यमञ्जक्षियाकालयुक्तयः साधुसिद्धिदाः । परमात्मपद्प्राप्तो नोपकुर्वन्ति
काश्चन ॥ २९ ॥ सर्वेच्छाकलनाशान्तावात्मलाभोदयाभिधः। स पुनःसिद्धिवाञ्छायां कथमईत्यचित्ततः ॥ ३० ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ ह ऋभुं भगवन्तं निदाघः पप्रच्छ जीवन्मुक्तिलक्षणसनुबृहीति । तथेति स होवाच । सप्तभूमिषु जीवन्मुक्ताश्चत्वारः । शुभेच्छा प्रथमा भूमिका भवति । विचारणा द्वितीया । तनुमानसी तृतीया । सस्वापत्तिस्तुरीया। असंसक्तिः पञ्चमी । पदार्थभावना षष्टी । तुरीयगा सप्तमी । प्रणवासिका स्मिकाऽकारोकारमकारार्धमात्रात्मिका । स्थूलसूक्ष्मवीजसाक्षिभेदेनाकारा-द्यश्चतुर्विधाः । तद्वस्था जाग्रत्स्वमसुषुप्तितुरीयाः । अकारस्थूलांशे जाग्र-द्विश्वः । सूक्ष्मांशे तत्तेजसः । बीजांशे तत्प्राज्ञः । साक्ष्यंशे तत्तुरीयः । उकार-स्थूलांशे स्वमविश्वः । सूक्ष्मांशे तत्तैजसः । बीजांशे तत्याज्ञः । साक्ष्यंशे तत्तु-रीयः । मकारस्थूलांशे सुपुप्तविश्वः । सूक्ष्मांशे तत्त्रैजसः । बीजांशे तत्प्राज्ञः । सांक्ष्यंरो तत्तुरीयः । अर्धमात्रास्थूळांरो तुरीयविश्वः । सूक्ष्मांरो तत्तेजसः। बीजांशे तत्प्राज्ञः । साक्ष्यंशे तुरीयतुरीयः । अकारतुरीयांशाः प्रथमद्वितीय-नृतीयभूमिकाः । उकारनुरीयांशा चतुर्थी भूमिका । मकारनुरीयांशा पञ्चमी । अर्धमात्रातुरीयांशा षष्ठी । तदतीता सप्तमी । भूमित्रयेषु विहरन्मुमुधुर्भवति। तुरीयभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद्भवति । पञ्चमभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद्वरो भवति। षष्ठभूस्यां विहरन्ब्रह्मविद्वरीयान्भवति । सप्तमभूस्यां विहरन्ब्रह्मविद्वरिष्ठो भवति । तत्रैते श्लोका भवन्ति—ज्ञानभूमिः ग्रुभेच्छा स्यात्प्रथमा समुदीरिता । विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी ॥ १ ॥ सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्तती-

sसंसक्तिनामिका । पदार्थभावना षष्टी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ २ ॥ स्थितः किंमूढ एवास्मि प्रेक्ष्योऽहं शास्त्रसज्जनैः । वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुमे-च्छेत्युच्यते बुधेः ॥ ३ ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम् । सदाचार-प्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥ ४ ॥ विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषु रक्तता । यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसी ॥ "॥ भूमिकात्रितया-भ्यासाचित्तेऽर्थविरतेर्वशात् । सत्त्वात्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥६॥ दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गफला तु या। रूढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ता संसक्ति-नामिका ॥ ७ ॥ भूमिकापञ्चकाभ्यासात्स्वात्मारामतया भृशम् । आभ्यन्त-राणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात् ॥ ८ ॥ परप्रयुक्तेन चिरं प्रत्ययेनावबो-धनम् । पदार्थभावना नाम पष्टी भवति भूमिका ॥ ९ ॥ पड्भूमिकाचिरा-भ्यासाद्भेदस्थानुपलम्भनात्। यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः॥१०॥ शुभेच्छादित्रयं भूमिभेदाभेद्युतं स्मृतम् । तथाबद्वेद बुच्चेदं जगजाप्रति इइयते ॥ ११ ॥ अद्वेते स्थैर्यमायाते द्वेते च प्रशमं गते । पश्यन्ति स्वमव-होकं तुर्यभूमिसुयोगतः ॥ १२ ॥ विच्छिन्नशरदभ्रांशविलयं प्रविलीयते । सत्त्वावदीव एवास्ते हे निदाघ दढीकुरु ॥ १३ ॥ पञ्चभूमिं समारुह्य सुपुप्ति-पदनामिकास् । शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रके ॥ १४ ॥ अन्तर्भुखतया निसं वहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् । परिश्रान्ततया निसं निदालुरिव लक्ष्यते ॥१५॥ कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूम्यां सम्यग्विवासनः । सप्तमी गाढसुश्याख्या क्रम-प्राप्ता पुरातनी ॥ १६ ॥ यत्र नासन्न सद्भूपो नाहं नाप्यनहंकृतिः । केवलं क्षीणमनन आस्तेऽद्वेतेऽतिनिर्भयः ॥ १७ ॥ अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्य-कुम्भ इवाम्बरे । अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे ॥ १८ ॥ मा भव याह्यभावात्मा **याहकात्मा च मा भव । भावनामखिलां** त्यक्त्वा यच्छि**ष्टं** तन्मयो भव ॥ १९ ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह । दर्शनप्रथ-माभासमात्मानं केवलं भज ॥ २० ॥ यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च । अस्तङ्गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २१ ॥ नोदेति नास्तमा-याति सुखे दुःखे मनःप्रभा । यथाप्राप्तस्थितिर्यस स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२२॥ यो जागर्ति सुपुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते । यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २३ ॥ रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि । योऽन्तर्व्यो-मवदुच्छन्नः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २४ ॥ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते । कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २५ ॥ यसान्नो-

द्विजते लोको लोकाकोद्विजते च यः । हर्षामर्पभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक उच्यते ॥ २६ ॥ यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः । परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्सुक्त उच्यते ॥ २७ ॥ प्रजहाति यदा कामान्सर्वाश्चित्त-गतान्मुने । मिथ सर्वात्मके तुष्टः स जीवनमुक्त उच्यते ॥ २८ ॥ चैत्यवर्जित-चिन्मात्रे पदे परमपावने । अक्षुव्धचित्तो विश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २९ ॥ इदं जगदहं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवस् । यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३० ॥ सद्रहाणि स्थिरे स्फारे पूर्णे विषयवर्जिते । आचार्यशास्त्रमार्गेण प्रविक्याशु स्थिरो भव ॥ ३१ ॥ शिवो गुरुः शिवो वेदः शिवो देवः शिवः प्रभुः । शिवोऽस्म्यहं शिवः सर्वं शिवादन्यन्न किंचन ॥३२॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत बाह्मणः । नानुध्यायाद्वहूञ्छव्दान्वाचो विग्लापनं हि तत् ॥ ३३ ॥ शुको सुक्तो वासदेवोऽपि सुक्तस्ताभ्यां विना मुक्तिभाजो न सन्ति । शुकमार्गं येऽनुसरन्ति धीराः सद्यो मुक्तास्ते भव-न्तीह लोके ॥ ३४ ॥ वामदेवं येऽनुसरन्ति नित्यं सृत्वा जनित्वा च पुनःपुन-स्तत्। ते वे लोके क्रममुक्ता भवन्ति योगैः सांख्यैः कर्मभिः सत्त्वयुक्तैः ॥ ३५ ॥ शुकश्र वामदेवश्र हे सती देवनिर्मिते । शुको विहङ्गमः प्रोक्तो वामदेवः पिपीलिका ॥ ३६ ॥ अतद्यावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन वा। महावाक्यविचारेण सांख्ययोगसमाधिना ॥ ३७ ॥ विदित्वा स्वात्मनो रूपं संप्रज्ञातसमाधितः । शुक्रमार्गेण विरजाः प्रयान्ति परमं पदम् ॥ ३८॥ यमाद्यासनजायासहठाभ्यासात्पुनःपुनः । विघ्नबाहुत्यसंजात अणिमादिवशा-दिह ॥ ३९ ॥ अलब्ध्वापि फलं सम्यक्पुनर्भूत्वा महाकुले । पुनर्वासनयैवायं योगाभ्यासं पुनश्चरन् ॥ ४० ॥ अनेकजन्माभ्यासेन वामदेवेन वै पथा। सोऽपि मुक्तिं समाम्रोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४१ ॥ द्वाविमावपि पन्थानौ ब्रह्मप्राप्तिकरौ शिवौ । सद्योमुक्तिप्रदश्चिकः क्रममुक्तिप्रदः परः । अत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपद्यतः ॥ ४२ ॥ यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिसत्वे प्रव-र्तते । तदृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ४३ ॥ खेचरा भूचराः सर्वे ब्रह्मविदृष्टिगोचराः । सद्य एव विमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः ॥ ४४ ॥ इति ॥

इति वराहोपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ अथ हैनं ऋभुं भगवन्तं निदाघः पप्रच्छ योगाभ्यासविधिमनुबृहीति । तथेति स होवाच । पञ्चभूतात्मको देहः पञ्चमण्डलपूरितः । काठिन्यं

पृथिवीमेका पानीयं तद्भवाकृति ॥ १ ॥ दीपनं च भवेत्तेजः प्रचारो वायु-लक्षणम् । आकाशः सत्त्वतः सर्वं ज्ञातन्यं योगमिन्छता ॥ २ ॥ षदशतान्यधि-कान्यत्र सहस्राण्येकविंशतिः । अहोरात्रवहैः श्वासैर्वायुमण्डलघाततः ॥ ३ ॥ तत्पृथ्वीसण्डले क्षीणे बलिरायाति देहिनाम् । तद्वदापो गणापाये केशाः स्युः पाण्डुराः कमात् ॥ ४ ॥ तेजःक्षये श्रुधा कान्तिर्नश्यते मारुतक्षये । वेपथुः संअवेक्तित्यं नाम्भसेनैव जीवति ॥ ५॥ इत्थंभूतं क्षयान्नित्यं जीवितं भूतधारणस् । उड्याणं कुरुते यसादविश्रान्तं महाखगः ॥ ६॥ उड्डियाणं तदेव स्थात्तत्र बन्धोऽभिधीयते । उड्डियाणो ह्यसौ बन्धो मृत्यु-मातङ्गकेसरी ॥ ७ ॥ तस्य मुक्तिस्तनोः कायात्तस्य वन्धो हि दुष्करः। अझौ तु चालते कुक्षौ वेदना जायते मृशम् ॥ ८॥ न कार्या श्रुधि-तेनापि नापि विण्युत्रवेगिना । हितं सितं च भोक्तव्यं स्तोकं स्तोकसनेकथा ॥ ९ ॥ सृदुसध्यसमन्त्रेषु कमान्मन्नं लयं हठम् । लयमन्नहठा योगा योगो ह्यप्टाङ्गसंयुतः ॥ १० ॥ यमश्च नियमश्चेव तथा चासनमेव च । प्राणायाम-स्तथा पश्चात्प्रत्याहारस्तथा परम् ॥ ११ ॥ धारणा च तथा ध्यानं समाधि-श्राष्टमो भवेत् । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ॥ १२ ॥ क्षमा धितिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश । तपः सन्तोषमास्तिनयं दानमीश्वर-पूजनम् ॥ १३ ॥ सिद्धान्तश्रवणं चैव हीर्मतिश्च जपो वतम् । एते हि नियमाः शोक्ता दश्येव महामते ॥ १४॥ एकादशासनानि स्युश्चकादि मुनिसत्तम । चकं पद्मासनं कूर्मं मयूरं कुक्कुटं तथा ॥ १५ ॥ वीरासनं स्वस्तिकं च भद्नं सिंहासनं तथा। मुक्तासनं गोमुखं च कीर्तितं योगवित्तमैः ॥ १६ ॥ सन्योरु दक्षिणे गुल्के दक्षिणं दक्षिणेतरे । निद्ध्यादजुकायस्तु चक्रासनमिदं मतम् ॥ १७ ॥ पुरकः कुम्भकसाद्वद्वेचकः पूरकः पुनः। प्राणायामः स्वनाडीभिस्तस्मान्नाडीः प्रचक्षते ॥ १८ ॥ शरीरं सर्वजन्तूनां घण्णवत्यङ्गुलात्मकम् । तन्मध्ये पायु-देशात्तु ब्रङ्गलात्परतः परम् ॥ १९॥ मेद्रदेशादधस्तातु ब्रङ्गलान्मध्यमुच्यते । मेंद्रान्नताङ्गुलादूध्वं नाडीनां कन्दमुच्यते॥ २०॥ चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुल-मायतम् । अण्डाकारं परिवृतं मेदोमजास्थिशोणितैः ॥ २१ ॥ तत्रैव नाडीचकं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम् । शरीरं भ्रियते येन वर्तते तत्र कुण्डली ॥ २२ ॥ ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्ना या वदनेन पिधाय सा । अलम्बुसा सुषुम्नायाः कुहूर्नांडो वसत्यसौ ॥ २३ ॥ अनन्तरारयुग्मे तु वारुणा च यशस्त्रिनी ।

दक्षिणारे सुपुम्नायाः पिङ्गला वर्तते कमात् ॥ २४ ॥ तदन्तरारयोः पृषा वर्तते च पयस्विनी । सुपुम्ना पश्चिमे चारे स्थिता नाडी सरस्वती ॥ २५॥ क्राङ्किनी चैव गान्धारी तदनन्तरयोः स्थिते। उत्तरे तु सुपुम्नाया इडाल्या निवसत्यसौ ॥ २६ ॥ अनन्तरं हस्तिजिह्वा ततो विश्वोदरी स्थिता। प्रदक्षिण-क्रमेणेव चक्रस्यारेषु नाडयः ॥ २७ ॥ वर्तन्ते द्वादश ह्येता द्वादशानिल-वाहकाः । पटवत्संस्थिता नाड्यो नानावर्णाः समीरिताः ॥ २८ ॥ पटमध्यं त यत्स्थानं नाभिचकं तदुच्यते । नादाधारा समाख्याता ज्वलन्ती नादरूपिणी ॥ २९ ॥ पररन्ध्रा सुषुम्ना च चत्वारो रलपूरिताः । कुण्डल्या पिहितं शक्ष-द्रह्मरन्ध्रस्य मध्यमम् ॥ ३० ॥ एवमेतासु नाडीषु धरन्ति द् त्र वायवः। एवं नाडीगतिं वायुगतिं ज्ञात्वा विचक्षणः ॥ ३१ ॥ समग्रीविशरः कायः संवृतास्यः सुनिश्चलः । नासाग्रे चैव हन्मध्ये विन्दुमध्ये तुरीयकम् ॥ ३२॥ स्रवन्तमसृतं पश्येनेत्राभ्यां सुसमाहितः । अपानं सुकुलीकृत्य पायुमाकृष्य चोन्मुखम् ॥ ३३ ॥ प्रणवेन समुत्थाप्य श्रीवीजेन निवर्तयेत् । स्वात्मानं च श्रियं ध्यायेदसृतष्ठावनं ततः ॥ ३४ ॥ कालवञ्चनमेतिद्धि सर्वमुख्यं प्रचक्षते। मनसा चिन्तितं कार्यं मनसा येन सिच्चति ॥ ३५ ॥ जलेऽग्निज्वलनाच्छा-खापळ्यानि भवन्ति हि । नाधन्यं जागतं वाक्यं विपरीता भवेत्क्रिया ॥ ३६॥ मार्गे विन्दं समाबध्य विह्नं प्रज्वाल्य जीवने । शोषयित्वा तु सिललं तेन कायं दृढं भवेत् ॥ ३७ ॥ गुदयोनिसमायुक्त आकुञ्चत्येककालतः । अपान-मूर्ध्वगं कृत्वा समानोऽन्ने नियोजयेत् ॥ ३८ ॥ स्वात्मानं च श्रियं ध्यायेदमृत-क्रावनं ततः । वलं समारभेद्योगं मध्यमद्वारभागतः ॥ ३९ ॥ भावयेदूर्ध्व-गत्यर्थं प्राणापानस्योगतः । एषु योगो वरो देहे सिद्धिमार्गप्रकाशकः ॥ ४० ॥ यथैवापां गतः सेतः प्रवाहस्य निरोधकः । तथा शरीरगा च्छाया ज्ञातव्या योगिभिः सदा ॥ ४१ ॥ सर्वासामेव नाडीनामेष वन्धः प्रकीर्तितः । बन्ध-स्यास्य प्रसादेन स्फुटीभवति देवता ॥ ४२ ॥ एवं चतुष्पथो बन्धो मार्गत्रय-निरोधकः । एकं विकासयन्मार्गं येन सिद्धाः सुसङ्गताः ॥ ४३ ॥ उदानमूः र्ध्वगं कृत्वा प्राणेन सह वेगतः । बन्धोऽयं सर्वनाडीनामूर्ध्वं याति निरोधकः ॥ ४४ ॥ अयं च संपुटो योगो मूलबन्धोऽप्ययं मतः । बन्धत्रयमनेतेव सिद्धलभ्यासयोगतः ॥४५॥ दिवारात्रमविच्छित्रं यामे यामे यदा यदा । अते-नाभ्यासयोगेन वायुरभ्यसितो भवेत् ॥ ४६ ॥ वायावभ्यसिते विहः प्रह्म

वर्धते तनौ । वहाँ विवर्धमाने तु सुखमन्नादि जीर्यते ॥ ४७ ॥ अन्नस्य परि-पाकेन रसवृद्धिः प्रजायते । रसे वृद्धिङ्गते नित्यं वर्धन्ते धातवस्तथा ॥ ४८॥ धातुनां वर्धनेनेव प्रवोधो वर्धते तनौ । दद्धन्ते सर्वपापानि जन्मकोट्यर्जि-तानि च ॥ ४९ ॥ गुड्मेड्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् । शिवस्य बिन्दु-रूपस्य स्थानं तिद्ध प्रकाशकम् ॥ ५० ॥ यत्र कुण्डिलेनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता । यसादृत्पद्यते वायुर्यसादृह्धिः प्रवर्धते ॥ ५३ ॥ यसादृत्पद्यते बिन्दुर्यसाञ्चादः प्रवर्धते । यसादुत्पवते हंसो यसादुत्पवते मनः ॥ ५२ ॥ मलाधारादिषद्चकं शक्तिस्थानमुदीरितम् । कण्ठादुपरि मूर्धान्तं शांभवं ख्यानस्ययते ॥ ५३ ॥ नाडीनामाश्रयः पिण्डो नाड्यः प्राणस्य चाश्रयः। जीवस्य निलयः प्राणो जीवो हंसस्य चाश्रयः ॥ ५४ ॥ हंसः शक्तेरिधष्ठानं वराचरमिदं जगत् । निर्विकल्पः प्रसन्नात्मा प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ५५ ॥ सस्यावन्धत्रयस्थोऽपि लक्ष्यलक्षणकारणम् । वेद्यं समुद्धरेन्नित्यं सत्यसंधान-मानसः ॥ ५६ ॥ रेचकं पूरकं चैव कुम्भमध्ये निरोधयेत् । दृश्यमाने परे लक्ष्ये ब्रह्मणि स्वयमाश्रितः ॥ ५७ ॥ बाह्मस्थविषयं सर्वं रेचकः समुदाहृतः । पूरकं शास्त्रविज्ञानं कुम्भकं स्वगतं स्पृतस् ॥ ५८ ॥ एवमभ्यासचित्तश्चेत्स सुक्तो नात्र संशयः। कुम्भकेन समारोप्य कुम्भकेनैव पूरयेत् ॥ ५९ ॥ कुम्भेन कुम्भयेत्कुरभं तद्नतःस्यः परं शिवम् । पुनरास्फालयेदय सुस्थिरं कण्ठसुद्रया ॥ ६० ॥ वायूनां गतिमावृत्य घत्वा प्रककुम्भकौ । समहस्तसुगं भूमौ समं पाद्युगं तथा ॥ ६१ ॥ वेधकक्रमयोगेन चतुष्पीठं तु वायुना। आस्फालचेन्महासेरं वायुवक्रे प्रकोटिभिः॥ ६२॥ पुटद्वयं समाकृष्य वायुः स्फुरति सत्वरम् । सोमसूर्याञ्चिसंवन्धाजानीयाद्मृताय वै ॥ ६३ ॥ मेर-मध्यगता देवाश्वलन्ते नेरुचालनात्। आहो संजायते क्षिप्रं वेघोऽस्य ब्रह्म-म्रन्थितः ॥ ६४ ॥ ब्रह्ममन्थि ततो भित्त्वा विष्णुमन्धि भिनत्त्यसौ । विष्णु-य्रानिय ततो भित्त्वा रुद्रयनिय भिनत्यसौ ॥ ६५ ॥ रुद्रयनिय ततो भित्त्वा छित्त्वा मोहमलं तथा। अनेकजन्मसंस्कारगुरुदेवप्रसादतः॥ ६६॥ योगाद-भ्यासात्ततो वेघो जायते तस्य योगिनः । इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुयुम्नानाडि-मण्डले ॥ ६७ ॥ मुद्रावन्धविद्रोपेण वायुमूध्वं च कारयेत् । इस्बो दहित पापानि दीर्घो मोक्षप्रदायकः॥ ६८॥ आप्यायनः ष्ठुतो वापि त्रिविधोचा- रणेन तु । तैल्धारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ॥ ६९ ॥ अवाच्यं प्रणव-स्थायं यसं वेद स वेद्वित् । हस्वं विन्दुगतं दैर्ध्यं ब्रह्मरन्ध्रगतं छुतम् । हाद्कान्तगतं मझं प्रसादं मञ्चसिद्धये ॥ ०० ॥ सर्वविव्यहरश्चायं प्रणवः सर्व-दोषहा । आरम्भश्च घटश्चेष पुनः परिचयस्त्वा ॥७६॥ निष्पत्तिश्चेति कथिता-श्चतस्त्रस्य भूमिकाः । कारणत्रयसंभूतं बाद्धं कर्म परित्यजन् ॥ ७२ ॥ आन्तरं कर्म करते यत्रारम्भः स उच्यते । वायुः पश्चिमतो वेधं कुर्वन्नापूर्य सुस्थिरम् ॥ ७३ ॥ यत्र तिष्ठति सा प्रोक्ता वटाख्या भूमिका व्रधेः । न सजीवो न निर्जीवः कार्ये तिष्ठति सा प्रोक्ता वटाख्या भूमिका व्रधेः । न सजीवो न निर्जीवः कार्ये तिष्ठति निश्चलम् । यत्र वायुः स्थिरः स्वे स्थास्तेयं प्रथमभूमिका ॥ ७४ ॥ यत्रात्मना सृष्टिक्यौ जीवन्मुक्तिद्वागतः । सहजः कुरुते योगं सेयं निष्पत्तिभूमिका ॥ ७५ ॥ इत्येतदुपनिषदं योऽधीते सोऽग्निप्तो भवति । स वायुप्तो अवति । सुरापानात्पृतो भवति । स्वर्णस्तेपात्पृतो भवति । स वीवन्मुक्तो भवति । तदेवदचाभ्युक्तम् — तद्विष्णोः परमं पदं सदा पद्यन्ति स्त्रयः । दिवीव चञ्चरात्ततम् । तद्विप्रासो विषन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदमित्युपनिषद् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

इति वराहोपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः ॥ इति वराहोपनिषत्समाप्ता ॥ १०२ ॥

शाट्यायनीयोपनिषत् ॥ १०३॥

शाट्यायनीवस्वविद्याखण्डाकारेसुखाकृति । यतिवृन्दहृदागारं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ पूर्णमृद् इति शान्तिः ॥

हरिः ॐ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः । वन्धाय विषया-सक्तं मुन्तये निर्विषयं स्मृतम् ॥ १ ॥ समासक्तं सदा चित्तं जन्तोर्विषयगो-चरे । यद्येवं ब्रह्मणि स्थान्तत्को न मुच्येत वन्धनात् ॥ २ ॥ चित्तमेव हि संसारस्तरप्रयक्षेन शोधयेत् । यिचत्तस्तनमयो भवति गृह्यमेतत्सनातनम् ॥३॥ नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं नाब्रह्मवित्परमं प्रैति धाम । विष्णुकान्तं वासुदेवं विजानन्विप्रो विष्रत्वं गच्छते तत्त्वद्वर्शी ॥ ४ ॥ अथाह यत्परं ब्रह्म सनातनं

वे श्रोत्रिया अकामहता अधीयुः । शान्तो दान्त उपरतिसतिश्चर्योऽन्चानो ह्यभिजज्ञो समानः ॥ ५॥ त्यक्तेषणो ह्यनुणस्तं बिदिस्वा मौनी वसेदाश्रमे यत्र कुत्र । अथाश्रमं चरमं संप्रविश्य यथोपपत्ति पञ्चमात्रां दधानः ॥ ६॥ त्रिदण्डसुपवीतं च वासःकौपीनवेष्टनम् । शिक्यं पवित्रमित्येतद्विभृयाद्याय-दायुषम् ॥ ७ ॥ पञ्चेतास्तु यतेमीत्रास्ता मात्रा ब्रह्मणे श्वताः । न त्यजेद्याय-दुत्कान्तिरन्तेऽपि निखनेत्सह ॥ ८ ॥ विष्णुलिङ्गं द्विधा प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तमेव च। तयोरेकमपि लक्त्वा पतस्वेव न संशयः ॥ ९॥ त्रिदण्डं वैष्णवं लिक्षं विद्राणां सुक्तिसाधनस् । निर्वाणं सर्वधर्माणामिति वेदानुशासनस् ॥१०॥ अध खलु सोस्य दुटीचको बहूदको हंसः परमहंस इसेते परिवाजकाश्चतुर्विधा भवन्ति । सर्व एते विष्णुलिङ्गिनः शिखिनोपवीतिनः गुद्धचित्ता आत्मानमा-त्मना ब्रह्म भावयन्तः शुद्धचिद्र्पोपासनरता जपयमवन्तो नियमवन्तः सुशीलिनः पुण्यक्षोका भवन्ति । तदेतहचाभ्युक्तम् — कुटीचको बहुदकश्चापि हंसः परमहंस इति बृत्त्या च भिन्नाः। सर्व एते विष्णुलिङ्गं दधाना बृत्त्या न्यक्तं वहिरन्तश्च नित्यस् । पञ्चयज्ञा वेदिशरः प्रविष्टाः क्रियावन्तो sमी संगता ब्रह्मविद्याम् । त्यक्त्वा वृक्षं वृक्षमूरुं श्रितासः संन्यसपुष्पा रसमेवाश्रुवानाः । विष्णुक्रीडा विष्णुरतयो विमुक्ता विष्ण्यात्मका विष्णुमेवापियन्ति ॥ १९॥ त्रिसंध्यं शक्तितः स्नानं तर्पणं मार्जनं तथा । उपस्थानं पञ्चयज्ञानकुर्यादामर-णान्तिकम् ॥ १२ ॥ दशभिः प्रणवैः सप्तब्याहृतिभिश्चतुष्पदा । गायत्रीजप-यज्ञश्च त्रिसंध्यं शिरसा सह ॥ १३ ॥ योगयज्ञः सदैकाव्यभक्तया सेवा हरे-र्गुरोः । अहिंसा तु तपोयज्ञो वाङ्मनुःकायकर्मभिः ॥ १४ ॥ नानोपनिषद्-भ्यासः स्वाध्यायो यज्ञ ईिंहितः। अभित्यात्मानमन्त्रय्रो ब्रह्मण्ययौ ब्रह्मोति यत् ॥ १५ ॥ ज्ञानयज्ञः स विज्ञेयः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः ! ज्ञानदण्डा ज्ञान-शिखा ज्ञानयज्ञोपदीतिनः ॥ १६ ॥ शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्म-यम् । ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति वेदानुशासनम् ॥ १० ॥ अथ खलु सोम्येते परिवाजका यथा प्रादुर्भवन्ति तथा भवन्ति । कामक्रोधलोभमोहदम्भदर्पा-स्याममत्वाहंकारादींस्तितीर्थ मानावमानौ निन्दास्तुती च वर्जयित्वा वृक्ष इव तिष्ठासेत्। छिद्यमानो न बूंबात्। तदेवं विहांस इहेवामृता भवन्ति। तदेतदचाभ्युक्तम्—बन्धुपुत्रमनुस्रोद्यित्वानवेक्ष्यमाणो द्वनद्वसहः प्रशान्तः । पाचीमुदीचीं वा निर्वर्तयंश्चरेत पात्री दण्डी युगमात्रावलोकी विखा मुण्डी

चोपवीती कुटुम्बी यात्रामात्रं प्रतिगृह्णन्मनुःयात् ॥ १८ ॥ अयाचितं याचितं वोत भैक्षं सुदार्वेटावूफलपर्णपात्रम्। क्षीणं क्षीमं तृणं कन्थाजिने च फ्रां-माच्छादनं स्यादहतं वा विमुक्तः ॥ १९ ॥ ऋतुसन्धौ मुण्डयेन्मुण्डमात्रं नाधौ नाक्षं जातु शिखां न वापयेत् । चतुरो मासान्ध्रवशीलतः स्थात्स यावत्सुसोsन्तरात्मा पुरुषो विश्वरूपः । अन्यानथाष्टौ पुनरुत्थितेऽस्मिन्स्वकर्मेलिप्सुर्वि-हरेद्वा वसेद्वा ॥ २० ॥ देवाझ्यगारे तरुमूले गुहायां वसेदसङ्गोऽलक्षित-शीलवृत्तः । अनिन्धनो ज्योतिरिवोपशान्तो न चोहिजेदुहिजेद्यत्र कुत्र ॥ २१॥ आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूर्वयः । किःसिच्छन्कस्य कामाय शरीरमन्-संज्वरेत् ॥ २२ ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत बाह्यणः । नानुध्या-याद्वहुङ्ख्दान्याचो विग्लापनं हि तत् ॥ २३ ॥ बाल्येनैव हि तिष्ठालेष्टि-विंद्य ब्रह्मवेदनम् । ब्रह्मविद्या च बाल्यं च निर्विद्य सुनिरात्मवान् ॥ २४ ॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मत्योऽसृतो भवत्यत्र बहा समञ्जते ॥ २५ ॥ अथ खळु सोम्येटं पारिवाज्यं नैष्टिकमात्मधर्भं यो विजहाति स थीरहा भवति । स ब्रह्महा भवति । स भ्रणहा भवति । स महा-पातकी भवति । य इमां वैष्णवीं निष्ठां परिस्यजति स स्तेनो भवति । स गुरुतल्पगो भवति । स मित्रधुग्भवति । स कृतन्नो अवति । स सर्वसाहो-कात्प्रच्युतो भवति । तदेतद्याभ्युक्तम् —स्तेनः सुरापो गुरुतल्पगामी मित्रधु-गेते निष्कृतेर्यान्ति शुद्धिम् । व्यक्तमव्यक्तं वा विध्तं विष्णुलिङ्गं त्यजन्न शुध्येद्खिलैरात्मभासा ॥ २६ ॥ त्यक्त्वा विष्णोर्लिङ्गमन्तर्वहिर्वा यः स्वाश्रमं सेवते नाश्रमं वा । प्रत्यापत्तिं भजते वाऽतिमूहो नैपां गतिः कल्पकोट्यापि दृष्टा ॥ २७ ॥ त्यक्त्वा सर्वाश्रमान्धीरो वसेनमोक्षाः विरम् । मोक्षाश्रमा-त्परिश्रष्टो न गतिम्तस्य विद्यते ॥ २८ ॥ पारित्राज्यं मुहीत्वा तु यः र मैं न तिष्ठति । तमारूढच्युतं विद्यादिति वेदानुशासनम् ॥ २९ ॥ अय खलु सोम्येमं सनातनमात्मधर्म वैष्णवीं निष्टां छब्ध्वा यस्तामदृषयन्वर्तते स वशी भवति । स पुण्यश्लोको भवति । स लोकज्ञो भवति । स वेदान्तज्ञो भवति । स ब्रह्मज्ञो भवति । स सर्वज्ञो भवति । स स्वराड् भवति । स परं ब्रह्म भगवन्तमाप्तोति । स पितृन्संविन्धनो बान्धवान्सुहृदो मित्राणि च भवादु-त्तारयति । तदेतदचाभ्युक्तम्—इतं कुलानां प्रथमं वभूव तथा पराणां 1

त्रिशतं समयम् । एते भवन्ति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यसतीह विद्वान् ॥ ३० ॥ त्रिंशत्पराँ स्थिंशत्पराँ स्थिंशत्य परतः परान् । उत्तारयति धर्मिष्टः परिव्रान्ति वे श्रुतिः ॥ ३१ ॥ संन्यस्तमिति यो वृयात्कण्ठस्थप्राणवानिष । तारिताः पितरस्तेन इति वेदानुशासनम् ॥ ३२ ॥ अथ खलु सोम्येमं सना-तनमात्मधर्म वैष्णवीं निष्टां नासमाप्य प्रवृयात् । नान्चानाय नानात्मविदे नावीतरागाय नाविश्चत्ताय नानुपसन्नाय नाप्रतत्मानसायेति ह स्माहुः । तदेतद्याभ्युक्तम्—विद्या ह वै वाह्मणमान्नगाम गोपाय मां शेवधिष्टेऽहम्मस्मि । अस्प्यकायानुन्नवे शठाय मा मा वृया वीर्यवती तथा स्याम् ॥ ३३ ॥ यमेव विद्याश्चतमप्रमत्तं मेधाविनं वह्मचर्योपपन्नम् । अस्मा इमामुपसन्नाय सम्यक् परीक्ष्य द्याहेष्णवीमात्मनिष्टाम् ॥ ३४ ॥ अध्यापिता ये गुरुं नाहिन्यन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा । यथैव तेन न गुरुभोंननीयस्तथैव चान्नं न भुनक्ति श्चतं तत् ॥ ३५ ॥ गुरुरेव परो धर्मो गुरुरेव परा गतिः । एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिनन्दति । तस्य श्चतं तथा ज्ञानं स्वत्यामघटाम्बुवत् ॥ ३६ ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । स ब्रह्मवित्परं प्रेयादिति वेदानुशासनम् ॥ ३७ ॥ इत्युपत्पित् ॥ हिरः ॐ तत्सत् ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥

इति शाट्यायनीयोपनिषत्समाप्ता ॥ १०३ ॥

हयग्रीवोपनिषत् ॥ १०४॥

स्वज्ञोऽपि यत्प्रसादेन ज्ञानं तत्फलमाप्तुयात् । सोऽयं हयास्यो भगवान्हृदि मे भातु सर्वदा ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ नारदो ब्रह्माणमुपसमेत्योवाचाधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां यया चिरात्सर्वप्मपं व्यपोद्ध ब्रह्मविद्यां रुव्ध्वेश्वर्यवान्भवति । ब्रह्मोवाच हय-प्रीवदेवत्यान्मत्रान्यो वेद् स श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणानि वेद । स सर्वेश्वर्य-वान्भवति । त एते मन्नाः—विश्वोत्तीर्णस्वरूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे । तुभ्यं नमो हयप्रीव विद्याराज्यय स्वाहा स्वाहा नमः ॥ १ ॥ ऋग्यजुःसामरूपाय वेदा- हरणकर्मणे । प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे नमः स्वाहा स्वाहा नमः ॥ २ ॥ उद्गीथ प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर । सर्ववेदमयाचिन्त्य सर्व वोधय वोधय स्वाहा स्वाहा नमः ॥ ३ ॥ ब्रह्मात्रिरविस्वितृभागंवा ऋषयः । गायत्रीत्रिष्टुवनुष्टुष्टु इन्हांसि । श्रीसान्ह्यश्रीवः परमात्मा देवतेति । दहौं (ह्सौ)िमित बीजम् । सोऽहमिति शक्तः । व्हू (ह्सौ)िमित कीलकस् । सोगमोक्षयोविनियोगः । अकारोकारमकारेरङ्गन्यासः । ध्यानस् । शङ्खचकमहासुद्रापुस्तकाळां चतुः भुंजम् । संपूर्णचन्द्रसंकाशं हयश्रीवसुपास्महे ॥ ॐ श्रीमिति द्वे अक्षरे । व्हौं (ह्सौ)िमत्येकाक्षरम् । ॐ नमो सगवत इति सप्ताक्षराणि । हयश्रीवायेति पद्याक्षराणि । विष्णव इति व्यक्षराणि । मह्यं सेघां प्रज्ञामिति पद्यक्षराणि । श्रायच्छ स्वाहेति पद्याक्षराणि । हयश्रीवस्य तुरीयो भवति ॥ ४ ॥ ॐ श्रीमिति द्वे अक्षरे । व्हौं (ह्सौ)िमत्येकाक्षरम् । ऐसेगैिमिति त्रीग्यक्षराणि । इहीं क्षिमिति द्वे अक्षरे । व्हौं सित्येकाक्षरम् । ॐ नमो सगवत इति सप्ताक्षराणि । मह्यं सेघां प्रज्ञामिति पद्यक्षराणि । प्रयच्छ स्वाहेति पद्याक्षराणि । मह्यं सेघां प्रज्ञामिति पद्यक्षराणि । प्रयच्छ स्वाहेति पद्याक्षराणि । पद्यमो सनुर्भवित ॥ ५ ॥

इति हयग्रीवोपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

हयग्रीवैकाक्षरेण ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि । ब्रह्मा महेश्वराय महेश्वरः संकर्पणाय संकर्पणो नारदाय नारदो व्यासाय व्यासो लोकेम्यः प्रायच्छ-दिति हकारोंसकारोमकारों त्रयमेकस्वरूपं भवति । व्हाँ (ह्साँ) बीजाक्षरं भवति । बीजाक्षरेण व्हाँ (ह्साँ) रूपेण तज्जापकानां संपरसारस्रती भवतः । तत्स्वरूपज्ञानां वेदेही मुक्तिश्च भवति । दिक्पालानां राज्ञां नागानां किन्नराणामधिपतिभवति । हथन्रीवैकाक्षरजपशीलाज्ञ्या सूर्यादयः स्वतः स्वस्वकर्मणि प्रवर्तनते । सर्वेषां वीजानां हयग्रीवैकाक्षरवीजमनुक्तमं मन्नराजात्मकं भवति । व्हाँ (ह्साँ) हथन्नित्रस्र श्रीसिद्धिरप्राङ्गयोगसिद्धिश्च भवति । व्हाँ (ह्साँ) सकलसाम्राज्येन सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा । तज्जापकानां वाक्सिद्धः श्रीसिद्धिरप्राङ्गयोगसिद्धिश्च भवति । व्हाँ (ह्साँ) सकलसाम्राज्येन सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा । तानेतान्मन्नान्यो वेद अपवित्रः पवित्रो भवति । अत्रह्मचारी भवति । अत्रह्मचारी भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । पतितसंभाषणात्पूतो भवति । ब्रह्मचारी भवति । प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म तत्त्वमिस अयमात्मा ब्रह्म अहं ब्रह्मासीति महान्वात्ते । प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म तत्त्वमिस अयमात्मा ब्रह्म अहं ब्रह्मासीति महान्वाक्येः प्रतिपादितमर्थं त एने मन्नाः प्रतिपाद्यन्ति । स्वरव्यञ्जनभेदेन हिधा

एते । अथानुमन्नाञ्जपति । यहाग्वदन्स्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निपसाद्
मन्द्रा । चतस्र ऊर्ज दुदुहे पयांसि क स्विद्स्याः परमं जगाम ॥ १ ॥ गौरीमिमाय सिलेलानि तक्षस्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी
बभृवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ २ ॥ ओष्टापिधाना नकुली दन्तैः
परिवृता पविः । सर्वस्य वाच ईशाना चारु मामिह वाद्येति च वाप्रसः
॥ ३ ॥ सर्सपरीरमितं वाधमाना वृहनिममाय जमदिवद्ता । आसूर्यस्य
दुरिता तनान श्रवो देवेष्वमृतमर्ज्यम् ॥ ४ ॥ य इमां ब्रह्मविद्यामेकाद्द्रयां
पठेद्रयशीवप्रभावेन महापुरुषो भवति । स जीवन्मुको भवति । क नमो
ब्रह्मणे धारणं से अस्त्वनिराकरणं धारियता भूयासं कर्णयोः श्रुतं भाच्योद्वं
ममामुष्य ओसित्युपनिषत् ॥ हरिः क तत्सत् ॥

क् भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इति हयत्रीवोपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत्॥ २॥ इति हयत्रीवोपनिषत्समासा॥ १०४॥

दत्तात्रेयोपनिषत् ॥ १०५ ॥ दत्तात्रेयीत्रह्मविद्यासंवेद्यानन्दविग्रहम् । त्रिपान्नारायणाकारं दत्तात्रेयमुपास्महे ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

हिरः ॐ॥ सत्यक्षेत्रे ब्रह्मा नारायणं महासाम्राज्यं किं तारकं तन्नो क्रैंहि भगवित्तत्युक्तः सत्यानन्द्चिदात्मकं सार्त्विकं मामकं धामोपास्वेत्याह । सदा दक्तोऽहमसीति प्रत्येतत्संवद्गित येन ते संसारिणो भवन्ति नारायणेनैवं विवक्षितो ब्रह्मा विश्वरूपधरं विष्णुं नारायणं दक्तात्रेयं ध्यात्वा सद्भद्रति । दिमिति हंसः । दामिति दीर्घं तद्गीजं नाम बीजस्थम् । दामित्येकाक्षरं भवति । तदेवोपासितव्यं विज्ञेयं गर्भादितारणम् । गायत्री छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दक्तात्रेयो देवता । वटबीजस्थमिव दक्तवीजस्थं सर्वं जगत् । एतदेवैकाक्षरं व्याख्यातम् । व्याख्यास्ये षडक्षरम् । ओमिति द्वितीयम् । हामिति नृतीयम् । ह्यामिति चतुर्थम् । गर्लोमिति पञ्चमम् । द्वामिति षद्भम् । षडक्षरोऽयं भवति । योगानुभवो भवति । गायत्री छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दक्तात्रेयो देवता । दमित्युक्त्वा द्वामित्युक्त्वा वा दक्तात्रे-

याय नम इत्यष्टाक्षरः । दत्तात्रेयायेति सत्यानन्द्चिदात्मकम् । नम इति पूर्णानन्दकविग्रहम् । गायत्री छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । दत्तात्रेयायेति कीलकम् । तदेव वीजम् । नमः शक्तिभवति । ओमिति प्रथ-सस्। आमिति हितीयम्। हीसिति तृतीयस्। क्रोसिति चतुर्थम्। एहीति तदेव वदेत् । दत्तात्रेयेति स्वाहेति मन्नराजोऽयं हादशाक्षरः । जगती छन्दः। सदाशिव ऋषिः। दत्तात्रेयो देवता। ओमिति बीजम्। स्वाहेति शक्तिः। सेंबुद्धिरिति कीलकम्। इमिति हृदये। हीं क्लीमिति शीर्षे। एहीति क्षिना-याम् । दत्तेति कवचे आत्रेयेति चक्षुषि । स्वाहेलस्त्रे । तन्मयो भवति । य एवं वेद । पोडशाक्षरं व्याख्यास्य । प्राणं देयम् । मानं देयम् । चक्षुर्देयम् । श्रोत्रं देयम् । षड्दशशिरिइछनित षोडशाक्षरमन्त्रो न देयो भवति । अतिसे-वापरभक्तगुणविच्छिप्याय वदेत् । ओसिति प्रथमं भवति । ऐसिति द्वितीयम । कोमिति तृतीयस् । क्वीमिति चतुर्थस् । क्ल्मिति पञ्चमस् । हामिति पष्टम् । हीमिति सप्तमम् । हमित्यष्टमम् । सौरिति नवमम् । दत्तात्रेयायेति चतुर्दशम् । स्वाहेति षोडशस् । गायत्री छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । ॐ वीजम् । स्वाहा शक्तिः । चतुर्थ्यन्तं कीलकम् । ओमिति हृदये । क्वां क्वीं क्ल्मिति शिखायाम् । सौरिति कवचे । चतुर्ध्यन्तं चक्षुपि । स्वाहेत्सस्त्रे । यो नित्यमधीयानः सचिदानन्दसुखी मोक्षी भवति । सौरित्यन्ते श्रीवैष्णव इस्यु-च्यते । तजापी विष्णुरूपी भवति । अनुष्टृप् छन्दो व्याख्यास्य । सर्वत्र संदु-द्धिरिमानीत्युच्यन्ते । दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्ददायक । दिगम्बर मुने बालिपशाच ज्ञानसागर ॥ १ ॥ इत्युपनिषत् । अनुष्टुप् छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता दत्तात्रेयेति हृदये । हरे कृष्णेति दािषे । उन्मत्ता-नन्देति शिखायाम् । दायक सुन इति कवचे । दिगम्बरेति चक्षुषि । पिशा-चज्ञानसागरेत्यस्त्रे । अनुष्टुभोऽयं मयाधीतः । अब्रह्मजन्मदोषाश्च प्रण-स्यन्ति । सर्वोपकारी मोक्षी भवति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ १ ॥

नी दत्तात्रेयोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

ओमिति ब्याहरत् । ॐ नमो भगवते दत्तात्रेयाय स्मरणमात्रसंतुष्टाय महाभयनिवारणाय महाज्ञानप्रदाय चिदानन्दात्मने बालोनमत्तपिशाचवेषा-येति महायोगिनेऽवधूतायेति अनसृयानन्दवधेतायात्रिपुत्रायेति सर्वकाम- फलप्रदाय ओसिति व्याहरेत् । भववन्धमोचनायेति हीमिति व्याहरेत् । सकलविभूतिदायेति कोसिति व्याहरेत् । साध्याकर्पणायेति सौरिति व्याहरेत् । सर्वमनःश्लोभणायेति श्रीमिति व्याहरेत् । महोमिति व्याहरेत् । चिरंजीविने वपिति व्याहरेत् । वशीकुरु वशीकुरु वौपिति व्याहरेत् । आकर्षयाकर्पय हुमिति व्याहरेत् । विद्वेषय विद्वेषय फिति व्याहरेत् । उच्चाटयोच्चाटय टटेति व्याहरेत् । सम्भय सम्भय खलेति व्याहरेत् । मारय मारय नमः संपन्नाय नमः संपन्नाय नमः संपन्नाय व्याहरेत् । सार्यय प्राप्य प्रमन्नपरयन्नपरतन्नां हिल्लि व्याहरेत् । स्वाव्य स्वाहा पोषय पोषय परमन्नपरयन्नपरतन्नां हिल्लि व्याहरेत् । स्वाव्य देहं पोषय पोपय चित्तं तोषय तोषयेति सर्वमन्नसर्वयन्न-सर्वतन्नसर्वप्रवस्त्रस्वप्रवस्त्रस्वप्रस्वस्ति क्षेत्रस्वस्त्रस्वप्रस्वस्त्रस्वप्रस्वस्त्रस्वप्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वप्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वप्रस्ति । स्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्वस्त्रस्ति ।

इति दत्तात्रेयोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

य एवं वेद । अनुष्टुप् छन्दः । सदाशिव ऋषिः । दत्तात्रेयो देवता । ओमिति बीजस् । स्वाहेति शक्तः । द्रामिति कीलकम् । अष्टमूर्यप्टमम्रा अवन्ति । यो नित्यमधीते वाय्विप्रस्तोनादित्यम् सविष्णुरुदेः पूतो भवित । गायञ्या शतसहस्तं जसं भवित । महारुद्रशतसहस्रजापी भवित । प्रणवायुत्तकोटिजसो भवित । शतपूर्वाञ्छतःपरान्युनाति । स पङ्किपावनो भवित । महारुद्रशतसहस्रजापी भवित । नुलापुरुपादिदानैः प्रपापानतः पूतो भवित । आशेषपापानमुक्तो भवित । भक्ष्या-भक्ष्यपापमुक्तो भवित । सद्या-भक्ष्यपापमुक्तो भवित । स्वाह्मणो भवित । स एव ब्राह्मणो भवित । तस्माच्छिद्यं अक्तं प्रतिगृद्धीयात् । सोऽनन्तफलमक्षुते । स जीव-न्युक्तो भवतीत्याह भगवालारायणो ब्रह्मणमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ अदं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इति दत्तात्रेयोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः॥ ३॥ इति दत्तात्रेयोपनिषत्समाप्ता॥ १०५॥

गारुडोपनिपत् ॥ १०६ ॥

विषं ब्रह्मातिरिक्तं स्थादमृतं ब्रह्ममात्रकम् । ब्रह्मातिरिक्तं विषवद्रह्ममात्रं लगेडहम् ॥ १ ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ।

हरिः ॐ॥ गारुडब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि यां ब्रह्मा विद्यां नारदाय प्रोवाच गारदो बृहत्सेनाय बृहत्सेन इन्द्राय इन्द्रो भरहाजाय भरहाजो जीवत्का-

मेभ्यः शिष्येभ्यः प्रायच्छत् । अस्याः श्रीमहागरुडवहाविद्याया वहा ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीभगवान्महागरुडो देवता । श्रीमहागरुडभीलार्थे मम सकलविषविनाशनार्थे जपे विनियोगः। ॐ नमो भगवते अङ्गुष्टाभ्यां नमः। श्रीमहागरुडाय तर्जनीभ्यां स्वाहा । पक्षीनद्राय मध्यमाभ्यां वषद । श्रीवि-ष्णुवल्लभाय अनामिकाभ्यां हुस् । त्रैलोक्यपरिपूजिताय कनिष्ठिकाभ्यां वौषद । उग्रभयंकरकालानलरूपाय करतलकरपृष्टाभ्यां फद । एवं हृदया-दिन्यासः । भूर्भुवः सुवरोमिति दिग्वन्धः । ध्यानम् । स्वस्तिको दक्षिणं पादं वामपादं तु कुञ्चितम् । प्राक्षकीकृतदोर्थुग्मं गरुडं हरिवछभम्॥१॥ अनन्तो वामकटको यज्ञसूत्रं तु वासुकिः । तक्षकाः कटिसूत्रं तु हारः कार्कोट उच्यते ॥ २ ॥ पद्मो दक्षिणकर्णे तु महापद्मस्तु वामके । शङ्कः शिरः-प्रदेशे तु गुलिकस्तु भुजान्तरे॥ ३॥ पौण्ड्कालिकनागाभ्यां चामराभ्यां सुवीजितस् । एलापुत्रकनागाद्येः सेव्यमानं सुदान्वितस् ॥ ४॥ कपिलाक्षं गरुत्मन्तं सुवर्णसदशप्रभम् । दीर्वबाहुं बृहत्स्कन्धं नादाभरणसूपितम् ॥५॥ आजानुतः सुवर्णाभमाकण्ट्योस्तुहिनप्रभम् । कुङ्कमारुणमाकण्ठं शतचन्द्र-निभाननम् ॥ ६ ॥ नीलायनासिकावक्रं समहचारुकुण्डलम् । दंष्टाकराल-वदनं किरीटमुकुटोज्वलम् ॥ ७ ॥ कुङ्कमारुणसर्वाङ्गं कुन्देन्दुधवलाननम् । विष्णुवाह नमस्तुभ्यं क्षेमं कुरु सदा मम ॥ ८॥ एवं ध्यायेत्रिसंध्यासु गरुडं नागभूषणम् । त्रिषं नाशयते शीघं त्लराशिमियानलः ॥ ९ ॥ ओ-मीमों नमो भगवते श्रीमहागरुडाय पक्षीन्द्राय विष्णुवहुभाय त्रेलोक्य-परिपूजिताय उग्रभयंकरकालानलरूपाय वज्रनखाय वज्रतुण्डाय वज्र-दन्ताय वज्रदंष्ट्राय वज्रपुच्छाय वज्रपक्षालक्षितशरीराय ओसीकेहोहि श्रीम-हागरुडाप्रतिशासनास्मिन्नाविशाविश दुष्टानां विषं दूषय दूषय स्पृष्टानां नाशय नाशय दन्दश्कानां विषं दारय दारय प्रलीनं विषं प्रणाशय प्रणाशय सर्विविपं नाशय नाशय हन हन दह दह पच पच भसीकुरु असीकुरु हुं फट स्वाहा ॥ चन्द्रमण्डलसंकाश सूर्यमण्डलमुष्टिक । पृथ्वीमण्डलमुद्राङ्ग श्रीम-हागरुडाय विषं हर हर हुं फद स्वाहा ॥ ॐ क्षिप स्वाहा ॥ ओमीं सच-रति सचरति तत्कारी मत्कारी विषाणां च विषरूपिणी विषद्षिणी विष-क्रोपणी विषनाशिनी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषमन्तः प्रलीनं विषं प्रनष्टं विषं हतं ते ब्रह्मणा विषं हत्तिमन्द्रस्य बच्चेण स्वाहा ॥ ॐ नमी

मम

: 1

वि-

यां

पा-

ादं

11

ारः

₹:-

यां

ाक्षं

411

द्र-

ल-

्। ख

रो-

य-

ज्र-

म-

नां

ाय

त्र

म-

ਰ-

ष-

मो

भगवते महागरुडाय विष्णुवाहनाय त्रैलोक्यपरिपृजिताय वज्रनखवज्र-तुण्डाय वज्रपक्षालंकृतशारीराय पुहोहि महागरुड विषं छिन्धि च्छिन्ध आवे-ब्रुयावेशय हुं फद स्वाहा ॥ सुपर्णोऽसि गरुःमाब्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः स्तोम आत्मा साम ते तनूर्वामदेन्यं बृहद्रथन्तरे पक्षी यज्ञायज्ञियं पुच्छं छन्दास्यङ्गानि धिष्णिया शका यर्जूषि नाम ॥ सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ सुवः पत ओमीं ब्रह्मविद्याममावास्यायां पौर्णमास्यायां पुरोवाच सचरति सच-रति तत्कारी मत्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं प्रनष्टं विषं हतसिन्द्रस्य बज्जेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषसिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ ततस्वयम् । यद्यनन्तकदूतोऽसि यदि वानन्तकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषद्षिणी हतं विषं नष्टं विषं हतसिन्द्रस्य बन्नेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य बन्नेण स्वाहा। यदि वासुकिदूतोऽसि यदि वा वासुकः स्वयम्। सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विशानाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्दस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा यदि वा तक्षकः स्वयम् । सचरित सचरित तत्कीरी मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं इतमिनदस्य वज्रेण विषं हतं ब्रह्मणा विषमिन्दस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि कर्कोटकदूतोऽसि यदि वा कर्कोटकः स्वयस् । सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विवनाशिनी विषदृषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषिन-न्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि पद्मकदूतोऽसि यदि वा पद्मकः स्वयम् । सचरति सच-रित तत्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषदूषिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्द्रस्य वज्रेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि महापद्मक-दूतोऽसि यदि वा महापद्मकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी मर्त्कारी विषनाशिनी विषद्षिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिनद्रस्य वज्रेण विपं हतं ते बसणा विषमिनदस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि शङ्ककदूतोऽसि यदि वा शङ्ककः खयम्। सचरति सचरति तत्कारी मर्त्कारी विषनाशिनी विषदृषिणी हतं विषं नष्टं विपं हतिमन्द्रस्य बज्जेण विषं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्द्रस्य बज्जेण स्वाहा ॥ यदि गुलिकदूतोऽसि यदि वा गुलिकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विषनाशिनी विषद्षिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिनद्रस्य वज्रेण विपं हतं ते ब्रह्मणा विषमिन्दस्य वज्रेण स्वाहा ॥ यदि पौण्डकालिक-

वृतोऽसि यदि वा पौण्डूकालिकः स्वयम् । सचरति सचरति तर्कारी मर्कारी विवनाशिनी विषद्षिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं हतमिन्दस्य वन्नेण विवं हतं ते ब्रह्मणा विषामिन्द्रस्य वञ्जेण स्वाहा ॥ यदि नागकदूतोऽसि यदि वा नागकः स्वयस् । सचरति सचरति तत्कीरी मत्कीरी विषनाशिनी विषदृषिणी जिपहारिणी हतं विपं नष्टं विपं हतमिन्द्रस्य बज्जेण विपं हतं ते ब्रह्मणा विपमि-न्द्रस्य बद्रिण स्वाहा ॥ यदि लूतानां प्रल्तानां यदि वृश्चिकानां यदि घोटकानां यदि स्थावरजङ्गमानां सचरति सचरति तत्कीरी मत्कीरी विषनाशिनी विष-द्भिणी विषहारिणी हतं विषं नष्टं विषं हतसिन्दस्य वज्रेण विषं हतं ते त्रज्ञणा विषमिनद्रस्य वज्रेण स्वाहा । अतन्तवासुकितक्षककर्कोटकपद्मकमहा-पद्मकशङ्खकगुलिकपौण्ड्कालिकनागक इत्येषां दिन्यानां महानागानां महा-नागादिरूपाणां विषतुण्डानां विषद्नतानां विषद्ष्राणां विषाङ्गानां विष-पुच्छानां विश्वचाराणां वृश्चिकानां ऌ्वानां प्रॡ्वानां सूपिकाणां गृहगौलिकानां गृहगोधिकानां घ्रणसानां गृहगिरिगह्नरकालानलवल्मीकोद्भतानां तार्णानां काष्टदारुवृक्षकोटरस्थानां सूलत्वग्दारुनिर्यासपत्रपुष्पफलोद्भृतानां दुष्टकीटकपिश्वानमार्जारजम्बुकन्याघ्रवराहाणां जरायुजाण्डजोद्गिजस्वेदजानां शस्त्रवाणक्षतस्फोटवणमहावणकृतानां कृत्रिमाणामन्येषां भूतवेतालकृष्माण्ड-पिशाचप्रेतराक्षसयक्षभयप्रदानां विषतुण्डदंष्ट्राणां विषाङ्गानां विषपुच्छानां विषाणां विषरूपिणीः विषदूषिणीः विषशोषिणी विषनाशिनी विषहारिणी हतं विपं नष्टं विपसन्तः प्रलीनं विप्रनष्टं विपं हतं ते ब्रह्मणा विपसिन्द्रस्य वज्रेण स्वाहा । य इमां ब्रह्मविद्यासमावास्थायां पठेच्छृणुयाद्वा यावजीवं न हिंसन्ति सर्पाः । अष्टौ बाह्मणान्याहयित्वा तृणेन मोचयेत् । शतं बाह्मणात् शाहियत्वा चक्षुपा मोचयेत्। सहसं ब्राह्मणान् ब्राहियत्वा मनसा मोचयेत्। सर्पाञ्जले न मुञ्जन्ति । तृणे न मुञ्जन्ति । काष्टे न मुञ्जन्तीत्याह भगवान्त्रहे-त्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्वत् ॥

> ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इति श्रीग्रहडोपनिषत्समाप्ता॥ १०६॥

गरी

ज्रेण

यदि

वेणी

मि-

ानां

वेष-

तं ते

हा-

हा-

वि-

ानां

नां

नां

नां

ड-

नां

इतं

स्य

न

ान् र्।

ह्ये-

किलंतरणोपनिषत् ॥ १०७ ॥ यहिच्यनाम स्मरतां संसारो गोष्पदायते । सा नच्यभक्तिभेवति तदामपदमाश्रये ॥ १ ॥ ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ हापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटनकिंक संतरेयमिति । स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छुणु येन किंतरंबारं तरिष्यसि । भगवत आदिपुरुष्य नारायणस्य नामोचारण-मात्रेण निर्धृतकिंकिर्भवति । नारदः पुनः पप्रच्छ तन्नाम किमिति । स होवाच हिरण्यगर्भः । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ १ ॥ इति पोडशकं नाम्नां किंतरक्षणम्यनाशनम् । नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु हत्र्यते ॥ २ ॥ इति पोडशकं लोक्नां किंतरक्षण्यत्यस्य जीव-स्थावरणविनाशनम् । ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रिवरिष्टममण्डळीचिति । प्रनाशन्दः पप्रच्छ भगवन्कोऽस्य विधिरिति । तं होवाच नास्य विधिरिति । सर्वदा ग्रुचिरग्रुचिर्वा पटन्त्राह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायु-ज्यतामिति । यदाऽस्य पोडशिकस्य सार्धत्रिकोटीर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरित । तरित वीरहत्याम् । स्वर्णसेवारपूतो भवति । पितृदेवमनुष्याणामपकारास्यूतो भवति । सर्वधर्मपरित्यागपापारसद्यः श्रुचितामामुयात् । सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यते इर्युपनिषद् ॥ ३ ॥ हरिः ॐ तस्सत् ॥

ॐ स ह नाववित्विति शान्तिः॥ इति श्रीकल्पितरणोपनिषसमासा॥ १०७॥

जाबाल्युपनिषत् ॥ १०८ ॥

जाबाल्युपनिषद्वेद्यपद्तत्त्वस्यरूपकस् । पारमैश्वर्यविभवं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हिरः ॐ ॥ अथ हैनं अरावन्तं जाबािलं पैप्पलािदः पप्रच्छ अरावन्से बृहि परमतस्वरहस्वम् । किं तस्वं को जीवः कः पशुः क ईशः को मोक्षोपाय इति । स तं होवाच साधु पृष्टं सर्वं निवेदयािम यथाज्ञातिमिति । पुनः स तमुवाच

कुतस्त्वया ज्ञातिमिति । पुनः स तसुवाच पडाननादिति । पुनः स तसुवाच तेनाथ कुतो ज्ञातमिति । पुनः स तमुवाच तेनेशानादिति । पुनः स तमुवाच कथं तस्मात्तेन ज्ञातियिति । पुनः स तसुवाच तदुपासनादिति । पुनः स तस्वाच भगवन्कृपया में सरहस्यं सर्वं निवेदयेति । स तेन पृष्टः सर्वं तिवेदयामास तत्त्वम् । पशुपतिरहंकाराविष्टः संसारी जीवः स एव पशुः। सर्वज्ञः पञ्चकृत्यसंपन्नः सर्वेश्वर ईशः पशुपतिः । के पराव इति पुनः स तमुवाच जीवाः पशव उक्ताः । तत्पतित्वात्पशुपतिः । स पुनस्तं होवाच कथं जीवाः पशत्र इति । कथं तत्पतिरिति । स तसुवाच यथा तृणाहिनो विवेकहीनाः परप्रेष्याः कृष्यादिकसीसु नियुक्ताः सकलदुः खसहामिः बध्यमाना गवाद्यः पशवः। यथा तत्स्वामिन इव सर्वश है शः पशुपतिः। तज्ज्ञानं केनोपायेन जायते । पुनः स तसुवाच विभूतिधारणादेव । तत्प्रकारः कथमिति । कुत्र कुत्र धार्यस् । पुनः स तसुवाच सद्योजातादिपञ्चवसमन्नेर्भस संगृह्या शिरिति भस्मेत्यनेना भिम इय मानस्तोक इति समुद्धत जलेन संमुख त्र्यायुपिमिति शिरोल्ट्टाटनक्षःस्कन्धेप्निति तिस्भिस्थायुपैधियस्यकैतिस्रो रेखाः प्रकुर्वात । व्रतमेतच्छाम्भवं सर्वेषु वेदेषु वेदवादिभिरुक्तं भवति। तःसमाचरेन्युमुक्षुर्न पुनर्भवाय । अथ सनन्कुमारः प्रमाणं पृच्छति । त्रिपुण्ड्धारणस्य त्रिधा रेखा आललाटादाचक्षुपोराञ्ज्वोर्भध्यतश्च। याऽसं प्रथमा रेखा सा गाईपत्यश्चाकारो रजो भूलोंकः स्वात्मा क्रियाशक्तिः ऋग्वेदः प्रातःसवनं प्रजापतिदेंवो देवतेति । याऽस्य द्वितीया रेखा सा दक्षि-णामिरुकारः सत्त्वमन्तरिश्चमन्तरात्मा चेच्छाशक्तिर्यजुर्वेदो माध्यन्दिनसवनं विष्णुदेवो देवतेति । याऽस्य तृतीया रेखा साऽऽहवनीयो मकारसामो चौलाँकः परमात्मा ज्ञानशक्तिः सामवेद्स्तृतीयसवनं महादेवो देवतेति त्रिपुण्ड्रं भसाना करोति । यो विद्वान्त्रहाचारी गृही वानप्रस्थो यतिर्वा स महापात-कोपपातकेभ्यः पूतो भवति । स सर्वान्देवानध्यातो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सकलरुद्रमञ्जापी भवति । न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते ॥ इति । ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

> ॐ आप्यायन्तिवति शान्तिः॥ इति श्रीजाबाल्युपनिपत्समासः॥ १०८॥

च

च

स

1

स

च

गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् ॥ १०९ ॥

गणेशं प्रसथाधीशं निर्गुणं सगुणं विसुम् । योगिनो यत्पदं यान्ति तं गौरीनन्दनं भजे ॥ ३ ॥

ॐ तसो वरदाय विञ्चहर्त्रे ॥ अथातो ब्रह्मोपनिषदं व्याख्यासामः । ब्रह्मा देवानां सवितुः कवीनासृथिर्विपाणां महिषो सृगाणाम् । धाता वस्नां सुरभिः सृजानां नमो ब्रह्मणेऽथर्वपुत्राय मीढुषे ॥ भाता देवानां प्रथमं हि चेतौ मनो वनानीव सनसाऽकलपयदाः । नमो ब्रह्मणे ब्रह्मपुत्राय तुभ्यं ज्येष्ठायाथर्वः पुत्राय धन्विने ॥ ३ ॥ ॐ प्रजापतिः प्रजा अस्जत । ताः सृष्टा अञ्चवस् कथमजाचा अभविज्ञिति । स त्रेधा व्यभजद्भर्भवःस्वरिति । स तपोऽतप्यत । स ब्रह्मा स विष्णुः स शिवः स प्रजापतिः सेन्द्रः सोऽग्निः समभवत् । स तूर्णीं मनसा ध्यायन् कथिमिमेऽज्ञाचाः स्युरिति । सोऽपश्यदारमनाऽऽत्मानं गजरूपधरं देवं शशिवणे चतुर्भुनं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यती वायन्ति यन्नैव यन्ति च । तदेतदक्षरं परं ब्रह्म । एतस्माजायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुरापो ज्योतिः पृथिवी विश्वस्य धारिणी । पुरुष एवेदं विश्वं तपो ब्रह्म प्रासृतमिति ॥ २ ॥ सोऽस्तुवत नमो ब्रह्मणे नमो ब्राह्मणेश्यो नमो वेदेश्यो नमो देवेश्यो नम ऋषिश्यो नमः कुरुयेश्यः प्रकु-व्येभ्यो नमः सवित्रे प्रसवित्रे नमो भोज्याय प्रकृष्टाय कपर्दिने चकाय चक्र भरायाचायाचपत्रये शिवाय सदाशिवाय तुर्याय तुरीयाय भूर्भुवःसः पते रायस्पते वाजिपते गोपते ऋग्यज्ञःसामाथर्वाङ्गरःपते नमो ब्रह्मपुत्रायेति ॥ ३ ॥ सोऽव्रवीद्वरदोऽस्म्यहमिति । स प्रजापतिरव्रवीत्कथमिमेऽन्नाद्याः स्युरिति । स होवाच ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेषे सिद्धक्षेत्रे महायशाः। स सर्वस्य वक्ता सर्वस ज्ञातासीति । स होवाच तपस्यन्तं सिद्धारण्ये भृगुपुत्रं प्रच्छध्वमिति । ते प्रलाययुः। स होवाच किमेतदिति। ते होचुः कथं वयमनाया भवाम इति । स तूर्णी मनसा ध्यायन् कथिममेऽन्नाद्याः स्युरिति । स एतमानुष्टुभं मञ्रराजमपश्यत् । यदिदं किञ्च सर्वमस्जत । तसाःसर्वमानुष्टुभमित्याचक्षते यदिदं किञ्च । अनुष्टुभा वा इमानि भूतानि जायन्ते । अनुष्टुभा जातानि जीव-न्सपुर्भं प्रयन्त्यभिसंविसन्ति । तस्येषा भवति — अनुष्ट्प्रथमा भवत्नुष्ट्य-

630

त्तमा भवति । वाग्वा अनुष्टुदवाचैव प्रयन्ति वाचेवोद्यन्ति । परमा वा एपा छन्दसां यदनुष्टुप्। सर्वमनुष्टुप्। एतं मञ्जराजं यः पश्यति स पश्यति। स अक्तिं सुक्तिं च विन्दति । तेन सर्वज्ञानं भवति । तदेतन्निदर्शनं भवति— एको देवः प्रापको यो वसूनां श्रिया जुष्टः सर्वतीसद एषः। मायादेवो बलगहनो ब्रह्मारातीस्तं देवसीडे दक्षिणास्यस्॥ आ त् न इन्द्र धुमन्तं चित्रं ग्राभं सङ्गभाय। महाहस्ती दक्षिणेन ॥ इति सहस्रकृत्वस्तुष्टाव ॥ १॥ अथापस्यन्महादेवं श्रिया जुष्टं मदोत्कटम् । सनकादिमहायोगिवेदविद्विस्ता सितम् ॥ दुहिणादिमदेवेशषदपदाछिविराजितम् । कसत्कर्णं महादेवं गजरूपधरं शिवम् ॥ स होवाच वरदोऽस्मीति । स तूर्णीं मनसा वने । स तथेति होवाच । तदेष श्लोकः — स संस्तुतो दैवतदेवसूनुः सुतं भूगोर्वाक्यः स्वाच तृष्टः । अवेहि मां भागव वक्रतुण्डमनाथनाथं त्रिगुणात्मकं शिवम् ॥ अथ तस्य षडङ्गानि प्रादुर्वभूतुः । स होवाच जपध्वमानुष्टुर्भ मन्नराज पद-पदं सपडक्षरम् । इति यो जपति स भृतिमान् भवतीति यूयमनाग्रा अवेयुरिति । तदेतन्निद्शेनस्-गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनामः तिमेधविग्रहम् । ज्येष्ठराजं वृषभं केतुमेकं सा नः शृण्वकृतिभिः सीद् शक्त ॥ ५ ॥ ते होचुः कथमानुष्ट्रमं मन्त्रराजमभिजानीम इति । स एतमानुष्ट्रमं षदपदं मञ्जराज कथयाञ्चके । स साम भवति । ऋग्वै गायत्री यजुरुष्णिग-ब्रष्टप् साम । स आदित्यो भवति । ऋग्वै वसुर्यजू रुद्राः सामादिता इति । स पदपदो भवति । साम वै पदपदः । ससागरां सप्रद्वीपां सपर्वतां नसु-न्धरां तत्सामः प्रथमं पादं जानीयाद्रायस्पोषस्य दातेति । तेन सप्तद्वीपा-धिपो भवति भू:पतिस्वं च गच्छति । यक्षगन्धर्वाप्सरोगणसेवितमन्तरिक्षं द्वितीयं पादं जानीयान्निधिदातेति । तेन धनदादिकाष्टापतिर्भवति भुवःप-तिःवं च गच्छति । वसुरुद्रादित्येः सवैंदेंवैः सेवितं दिवं तत्साम्नस्तृतीयं पादं जानीयाद्वदो मत इति । तेन देवाधिपत्यं स्वःपतित्वं च गच्छति । ऋग्य-जुःसामाथर्वाङ्गिरोगणसेवितं ब्रह्मलोकं तुर्यं पादं जानीयाद्रक्षोहण इति। तेन देवाधिपत्यं ब्रह्माधिपत्यं च गच्छति । वासुदेवादिचतुर्च्यूहसेवितं विष्णुः कोकं तस्साम्नः, पञ्चमं पादं जानीयाद्वलगहन इति । तेन सर्वदेवाधिपसं तिष्णुकोकाधिपत्यं च गच्छति । ब्रह्मस्वरूपं निरञ्जनं परमन्योक्षिकं तात्मामः षष्टं पादं जानीयात्। तेन वक्रतुण्डाय हुमिति यो जानीयाःसोऽमृतःवं च

11

गच्छिति । सत्यलोकाधिपत्यं च गच्छिति ॥ ६॥ ऋग्यजःसामाथर्वाश्चत्वारः पादा भवन्ति । रायस्पोषस्य दाता चेति प्रथमः पादो भवित, ऋग्वे प्रथमः पादः । निधिदाताऽन्नदो मत इति द्वितीयः पादः, यजुर्वे द्वितीयः पादः । रक्षोहणो वो बलगहन इति तृतीयः पादः, साम वे तृतीयः पादः। वक्रतुण्डाय हुमिति चतुर्थः पादः अथर्वश्चतुर्थः पादोऽथर्वश्चतुर्थः पाद इति ॥ ७ ॥

इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

स होवाच प्रजापतिरिप्तें वेदा इदं सर्वं विश्वानि भूतानि विराद स्वराद सम्राह तत्सामाः प्रथमं पादं जानीयात् । ऋग्यजुःसामाथर्वरूपः सूर्योऽन्त-रादित्ये हिरण्मयः पुरुषस्तत्साम्लो द्वितीयं पादं जानीयात्। य ओषधीनां प्रभविता तारापतिः सोमस्तत्साञ्चस्तृतीयं पादं जानीयात् । यो ब्रह्मा तत्साञ्चश्रुत्रुर्थं पादं जानीयात् । यो हरिस्तत्साम्नः पञ्चमं पादं जानीयात् । यः शिवः स परं ब्रह्म तत्साम्लोऽन्त्यं पादं जानीयात् । यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति घरं ब्रह्मेव भवति । तसादिदमानुष्टुभं साम यत्र क्रविन्नाचष्टे । यदि दातुमपेक्षते पुत्राय ग्रुश्रूषवे दास्यत्यस्य शिष्याय वेति ॥ १ ॥ तस्य हि षडङ्गानि भवन्ति--ॐ हृद्याय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषद, कवचाय हुं। नेत्रत्रयाय वौषद, अस्त्राय फिडिति प्रथमं प्रथमेन द्वितीयं द्वितीयेन तृतीयं तृतीयेन चतुर्थं चतुर्थेन पञ्चमं पञ्चमेन पष्टं पष्टेन प्रत्यक्षरमुभयतो माया लक्ष्मीश्च भवति । माया वा एपा वैनायकी सर्वमिदं स्जति, सर्वमिदं रक्षति, सर्वमिदं संहरति, तसान्मायामेतां शक्तिं वेद्। स मृखुं जयति। स पाप्मानं तरित । स महतीं श्रियमश्चते । सोऽभिवादी पदकर्मसंसिद्धो भवत्यमृतत्वं च गच्छति । मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनो हस्वा वा दीर्घा वा द्वता वेति । यदि हस्वा भवति सर्वेपाप्मानं तरत्यमृतस्वं च गच्छति । यदि दीर्घा भवति महतीं श्रियमाप्रुयादमृतःवं च गच्छति । यदि ष्ठुता भवति ज्ञानवान् भवत्यमृतःवं च गच्छति । तदेतदृषिणोक्तं निदर्शनम्—स ई पाहि य ऋजीपी तरुद्रः स श्रियं लक्ष्मीमौपलाम्बिकां गाम्। पर्धा च यामिन्द्रसेनेत्युत भाहुस्तां विद्यां ब्रह्मयोतिस्वरूपाम् ॥ तामिहायुपे शरणं प्रपद्ये । क्षीरोदार्णय-शायिनं कल्पद्वमाधःस्थितं वरदं व्योमरूपिणं प्रचण्डदण्डदोर्दण्डं वक्रतुण्ड-स्वरूपिणं पार्श्वाधःस्थितकामधेनुं शिवोमातनयं विभुम् । रुनमाम्बरनिभा-काशं रक्तवर्णं चतुर्भुजम् । कपिंदैनं शिवं शान्तं भक्तानामभयप्रदम्॥

उन्नतप्रपदाङ्कष्ठं गूढगुल्फं सपार्ध्णिकम् । पीनजंवं गूढनातुं स्थूलोहं प्रोन्नमः त्कटिम् ॥ निम्ननाभि कम्बुकण्ठं लम्बोष्टं लम्बनासिकम् । सिद्धिबुद्ध्यभयाः श्चिष्टं प्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥ इति संसर्गः ॥ २॥ अथ छन्दोदैवतम् । अनुष्टप्छन्दो भवति, हात्रिंशद्धरानुष्टुब भवति । अनुष्टुमा सर्वमिदं स्ष्टमनुष्टुभा सर्वमुपसंहतम् । शिवोमायुतः परमात्मा वरदो देवता। ते होचुः कथं शिवोमायुत इति । स होवाच शृगुपुत्रः प्रकृतिपुरुपमयो हि स धनद इति, प्रकृतिर्माया पुरुषः शिव इति । स्रोऽयं विश्वास्मा देवतेति । तदेतन्निदर्शनम्—इन्द्रो मायाभिः पुरुहूत ईडे शर्वो विश्वं मायया स्विद्धार । सोऽजः होते मायया स्विद्वहायां विश्वं न्यस्तं विष्णुरेको विजरे ॥ तदेतन्माया हंसमयी देवानाम् ॥ सर्वेषां वा एतन्ह्तानामाकाशः परायणम्। सर्वाणि ह वा इसानि भूतान्याकाशादेव जायन्ते जातानि जीवन्याकाशं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तसादाकाशवीजं शिवी विद्यात् । तदेतन्निदर्शनम्-इंसः ग्रुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषद्तिथिर्दुरोणसत् । नृपद्वरसद्दतसद्यो-मसद्ब्जा गोजा ऋतजा अद्भिजा ऋतं बृहदिति ॥ ३ ॥ अथाधिष्ठानम्— मध्ये बिन्दुं त्रिकोणं तदनु ऋतुगणं वसुद्छं द्वादशारं पोडशकणिकेति। मध्ये वीजात्मकं देवं यजेत् । वामदक्षिणे सिद्धिर्वुद्धिः । अग्रे कामदुघा पदकोणे सुमुखादयः षड्विनायकाः । वसुदले वक्रतुण्डाग्रष्टविनायकाः। द्वादशारे बहुको वामनो सहादशकमहोदरौ सुभद्रो माली वरो राम उमा शिवः स्कन्दो नन्दी । तद्वाह्येऽणिमादिसिद्धयः । षोडशारे दिक्पालाः सायुधा इति ॥ ४ ॥ अथ प्रसारः —य एतेन चतुर्थीषु पक्षयोरुभयोरि । लक्षं जुहुयादपूपानां तस्क्षणाद्धनदो अवेत् ॥ सिद्धौदनं त्रिमासं तु जुह्नदमा-वनन्यथीः । तावज्जुह्नत्पृथुकान्हि साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ॥ उचाटयेद्विभीतेश्र मारयेद्विषवृक्षजैः । वश्याय पङ्कजैविद्वान्धनार्थी मोदकैर्हुनेत् ॥ एवं ज्ञाला कृतकर्मा भवति कृतकर्मा भवतीति ॥ ५ ॥

इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

अथ होवाच सृगुपुत्रसम्बं विजिज्ञासितव्यमिति । मूले शूर्यं विजानीयात्। शूर्यं वै परं ब्रह्म। तत्र सतारं समायं साम न्यसेश्विरेखं भवति, त्रयो हीमे लोकास्त्रयो हीमे वेदाः। ऋग्वै भूः सा माया भवति। यर्जे सुवः स शिवो भवति। साम वै स्वः स हिरण्यगभों भवति। षदकोणं अवित पड् हीमें लोकाः पहा ऋतवो भवन्ति। तत्र तारमायारमामारविश्वेश-धरणीक्रमादयसेत् । अष्टपत्रं भवत्यद्यक्षरा गायत्री भवति ब्रह्मगायत्रीं न्यसेत् । हादशपत्र भवित हादशादित्या भवन्ति ते स्वरा भवन्ति । स्वरान् ज्ञात्वादित्यलोकमञ्जते । पोडशपत्रं भवित घोडशकलो वै पुरुपो वर्णो ह वै पुरुषः स लोकाधिष्ठितो भवत्यनुष्टुव् वै पुरुषः ॥ १ ॥ स होवाच भृगुपुत्र एतमानुष्टुभं मञ्जराजं साङ्गं सप्रसृतिकं समायं साधिष्ठानं सतन्त्रं यो जानाति स भूतिमान् भवित सोऽमृतत्वं च गच्छित सोऽमृतत्वं च गच्छतीति ॥ २ ॥

इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्स तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥ इत्याथर्वणीया गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्समासा ॥ १०९ ॥

गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ॥ ११० ॥

ॐ ॥ ओसित्येकाक्षरं ब्रह्मेदं सर्वम् । तस्योपव्याख्यानम् । सर्वं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । एतचान्यच त्रिकाछातीतं तद्ष्योङ्कार एव । सर्वं होतद्गणेशोऽयमास्मा ब्रह्मेति । सोऽयमात्मा चतुष्पात् । जागरितस्थानी बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः स्थृलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः। स्वमस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः । यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वमं पश्यति तत्सुपुप्तस् । सुषुप्तिस्थान एकीभृतः प्रज्ञानघन एवानन्द्रभुक् चेतोसुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः । एव सर्वेश्वर एव सर्वेज्ञ एपोऽन्तर्याम्येष योतिः सर्वस्य प्रभवाष्ययो हि भूतानाम् । नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमैका-रम्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशर्मं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स गणेश आत्मा विज्ञेयः । सद्रोज्ज्वको विद्यातःकार्यहीनः स्वात्मवन्धरहितः सर्वद्रोपरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातसोमोहमेवेति सम्भाव्या-हमों तत्सत्परं ब्रह्म विव्वराजश्चिदात्मकः सोऽहमों तद्विनायकं परं ज्योती रसोऽहमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकीकुर्यात् । विनायकोऽहमित्येतत्त-चितः प्रवद्नित ये । न ते संसारिणो नूनं प्रमोदो वै न संशयः॥ इरयुपनिषत्। य एवं चेद स मुख्यो भवतीति याज्ञवल्कय इति याज्ञवल्क्य इति । एतदेव परं ध्यानमेतदेव परं तपः । विनायकस्य यण्ज्ञानं पूजनं भवमोचनम् ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । एकस्य ध्यानयोगस्य कळां नाईन्ति षोडशीम् ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत् ॥ १ ॥

ॐ ॥ स विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा सेन्द्रः सेन्दुः स सूर्यः स वायुः सोऽग्निः स ब्रह्मायमात्मने सर्वदेवाय आत्मने भूताय आत्मन इति मन्यन्ते। ॐ सोऽहं ॐ सोऽहं ॐ सोऽहमिति। ॐ ब्रह्मन् ॐ ब्रह्मन् ॐ ब्रह्मत्ति। ॐ शिवं ॐ शिवं ॐ शिवमिति । तं गणेशं तं गणेशमिदं श्रेष्टम्। ॐ गणानां त्वा गणपतिः । सप्रियाणां त्वा प्रियपतिः । सनिधीनां त्वा निधिः पतिः। ॐ तत्पुरुपाय विद्यहे वऋतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोद-यात्। ॐ तद्रणेशः। ॐ सद्रणेशः। ॐ परं गणेशः। ॐ ब्रह्म गणेशः। गणनाकारो नादः। एतत्सर्वो नादः। सर्वाकारो नादः। एतदाकारो नादः। महान्नादः । स गणेशो महान् अवति । सोऽणुर्भवति । स वन्द्यो भवति । स मुख्यो भवति । स प्ज्यो भवति । रूपवान् भवति । अरूपवान् भवति । हैतो भवति । अहैतो भवति । स्थावरस्वरूपवान् भवति । जङ्गम-खरूपवान भवति । सचेतनविचेतनो अवति । सर्वं अवति । स गणेशोऽ-व्यक्तो योऽणुर्यः श्रेष्ठः स वे चेगवत्तरः । अहस्वाहस्वश्च । अतिहस्त्रातिहस्ता-तिहस्तश्च । अस्युलास्युलास्युलश्च । ॐ न वायुर्नाग्निर्नाङ्गानो नापः पृथियी न च। न दुर्यं न दुर्यं न दुर्यम् । न शितं नोक्णं न वर्षं च। न पीतं न पीतं न पीतम् । न श्वेतं न श्वेतं न श्वेतम् । न रक्तं न रक्तं न रक्तम् । न कृष्णं न कुछ्णं न कुष्णस्। न रूपं न नास न गुणस्। न प्राप्यं गणेशं मत्यन्ते। स गुद्धः स गुद्धः स गुद्धो गणेशः । स ब्रह्म स ब्रह्म स ब्रह्म गणेशः । स शिवः स शिवः स शिवो गणेशः । इन्हो गणेशो विष्णुर्गणेशः सूर्यो गणेश एतत्सर्वं गणेशः । स निर्गुणः स निरहङ्कारः स निविकहपः स निरीहः स निराकार आनन्दरूपस्तेजोरूपमनिर्वाच्यमप्रमेथः पुरातनी गणेशो निगवते। स आद्यः सोऽक्षरः सोऽनन्तः सोऽव्ययो महान्पुरुपः। तच्छुद्धं तच्छ्यलं ततः प्रकृतिमहत्त्रवानि जायन्ते । तत्रश्चाहङ्कारादिपञ्चतन्मात्राणि जायन्ते । ततः पृथ्यप्तेजोवाय्याकाशपञ्चमहन्द्रतानि जायन्ते । एथिव्या ओषध्य ओषधीभ्योऽन्नमन्नाद्भेतस्ततः पुरुपस्ततः सर्वं ततः सर्वं ततः सर्वं जगत्।

सर्वाणि भूतानि जायन्ते । देवा नु जायन्ते । तस्श्र जीवन्ति । देवा नु जीवन्ति । यज्ञा नु जीवन्ति । सर्वं जीवति । स गणेश आत्मा विज्ञेयः । इत्युपनिषत् । य एवं वेद स सुख्यो भवतीति याज्ञ्वह्वय इति याज्ञ्वह्वय इति ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत् ॥ २ ॥

ॐ ॥ गणेशो वै ब्रह्म तद्विद्यात् । यदिदं किञ्च सर्वं भूतं भव्यं जायमानं च तत्सर्वमित्याचक्षते । असान्नातः परं किञ्चित् । यो वै वेद स वेद ब्रह्म ब्रह्मैदोपामोति । तत्सर्वमित्याचक्षते । ब्रह्मविष्ण्वादिगणानामीशभूतमित्याह तद्गणेश इति । तत्परिमत्याह यमेते नामुबन्ति पृथिवी सुवर्चा युवितः सजीपाः । यह वाङ् नाकामित मनसा सह नामिर्न पृथ्वी न तेजो न वायुर्न व्योस न जलसित्याह। नेन्द्रियं न शरीरं न नाम न रूपम्। न ग्रुक्तं न रक्तं न पीतं न कृष्णमिति । न जाप्रत स्वमो न सुष्टिन वे तुरीया । तच्छन्द्रमत्राप्यमत्राप्यं च । अज्ञेयं चाज्ञेयं च । विकल्पासहिष्णु तत्सशक्तिकं राजवकं राजाकारं जगदेवावरुन्धे । दिवमनन्तशीपेंदिंशमनन्त-करेंच्योंमानन्तजठरेर्महीमनन्तपादैः स्वतेजसा बाह्यान्तरीयान्याप्य तिष्ठती-त्याह । तहै परं ब्रह्म गणेश इत्यात्मानं मन्यन्ते । तहै सर्वतः पश्यति सा न किञ्चिददर्श । ततो वै सोऽहमभूत् । नैकाकिता युक्तेति गुणान्निर्ममे । नामे रजः स वे ब्रह्मा । सुखात्सस्त्रं स वे विष्णुः । नयनात्तमः स वे हरः। ब्रह्माणसुपदिशति स्म ब्रह्मन् कुरु सृष्टिम् । ब्रह्मावाच नाहं वेदि । गणेश उवाच मदेहे ब्रह्माण्डान्तर्गतं विलोकय तथाविधामेव कुरु सृष्टिम्। अथ बह्या जन्मद्वारेण ब्रह्माण्डान्तर्गतं विल्लोकयति सा । समुदान् सरितः पर्वतान् वनानि महीं दिवं पाताछं च नरान् पश्रून्सगान्नागान् हयान् गोवजान् सूर्याचन्द्रमसो नक्षत्राण्यसीन् वायून्दिशस्ततो वे सृष्टिमचीकरत् । ततश्चारमानमिति मन्यते सा। न वै मत्तः परं कि खिद्हमेव सर्वस्येश इति यावद्वदति तावःऋरा अजायेरन् । सहदेहा जिह्नया भुवं छिहाना दंष्टाव्यासा-सहच्छव्दा ब्रह्माणं हन्तुमुद्युक्ताः । तान्द्रष्ट्वाविभ्यत्तत्संस्मार । ततश्चाम्रे कोटिसूर्यप्रतीकाशमानन्दरूपं गजवकं विलोकयति सा। तुष्टावाथ गणेश्वरस् । स्वं निर्माता क्ष्माभृतां सरितां सागराणां स्थावराणां जङ्गमानां च । त्वत्तः परतरं किञ्चिन्नेवास्ति जगतः प्रभो । कर्ता सर्वस्य विश्वस्य पात-

संहारकारकः । अवानिदं जगत्सर्वं ब्याप्येत परितिष्ठति ॥ इति स्तत्वा मह्याणं तद्वाच ब्रह्मंस्तपस्व तपस्वेत्युक्त्वाऽन्तर्हिते तस्मिन् ब्रह्मा तपश्चचार । कियस्वतीतेव्वनेहःसु तपसि स्थिते ब्रह्मणि पुरो भूत्वोवाच। प्रसन्नोऽहं प्रसन्तोऽहं वरान् वरय । श्रुत्वैवं वचीन्सीत्य नयने यावरपुरः पश्यित वाबद्वणेशं दुर्श । स्तौति स्म । त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं हरस्त्वं प्रजापतिस्त-बिन्द्रस्त्वं सूर्यस्त्वं सोमस्त्वं गणेशः । त्वया व्याप्तं चराचरं त्वहते न हि कि अन । ततश्र गणेश उवाच । स्वं चाहं च न वे भिन्नो कुर सृष्टिं व्रजापते । शक्ति गृहाण सद्तां जगत्सर्जनकर्मणि ॥ ततो वै गृहीतायां शस्त्रा ब्रह्मणः सृष्टिरजायत । ब्राह्मणो वे सुखाजहे वाह्नोः क्षत्रमृतीवेश्यः पन्नां शुद्धश्चुपो वे सूर्यो मनसश्चनद्रमा अग्निवें मुखात्प्राणाहायुनीभेत्रीम शीटणों द्याः पच्चां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् । तथा लोकानकल्पयन्निति । ततो वै सत्त्रमुवाच त्वं वे विष्णुः पाहि पाहि जगत्सर्वम् । विष्णुस्वाच न मे शक्तिः । सोवाच गृहाणेमां विद्याम् । ततो वे सन्तं तामादाय जगलाति स्म । हरमुवाच कुरु हर संहारस् । जगद्धरणाद्दरी भव । हरश्रात्मान-मिलावेति सान वै मत्परं कि ब्रिहिश्वस्यादि रहं हर इति गर्वं दधौ यावता। वद्याप्तं व्योम गजनक्त्रेर्महच्छब्दैहरं हर्नुसुद्युक्तेः। हरो वै विलोक्य रुद्ति स्म । रोदनाद्वदसंज्ञः । ततस्तं पुरुषं स्पृत्वा तुष्टाव त्वं ब्रह्मा त्वं कर्ता त्वं प्रधानं त्वं कोकान् सजसि रक्षसि हरसि । विश्वाधारस्त्वमनाधारोऽनाधेयो sिनर्देश्योऽप्रतक्यों व्याप्येदं सर्वं तिष्ठसीति स्तवनाद्विनायकं ददर्श। ततश्च तं ननाम । राणेशा उवाच ऋर हर हरणस् । तहे संहर्ताऽभूद्रदः । य एवं वेद स गणेशो भवति । इत्युपनिषत् ॥

इतिं गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत् ॥ ३ ॥

ध्या गणेशो व सद्जायत तह परं ब्रह्म। तहिदामोति परम्। तदेषा-भ्युक्ता यदनादिभूतं यदनन्तरूपं यहिक्तानरूपं यदेवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्टमुपासते न व कार्यं करणं न तत्समश्राधिकश्च दृश्यः। सूर्योऽस्माद्धीत उदेति। वातो-ऽस्माद्धीतः पचते। अग्निवें भीतस्तिष्ठति। तिच्चत्स्वरूपं निर्विकारमहैतं च। तन्मायाशवलमजनीत्माह। अनेन यथा तमस्ततश्चोमिति ध्वनिरभूत्। स व गजाकारः। अनिवंचनीया सेव माया जगद्वीजमित्माह। सेव प्रकृतिरिति गणेश दृति प्रधानमिति च मायाशवलिगित च। एतसाह सहत्तत्वमजा-

यत । ततः कराग्रेणाहङ्कारं सृष्टवान् । स वै त्रिविधः सान्त्रिको राजसस्ताम-सश्चेति । सारिवकी ज्ञानशक्तिः । राजसी कियाशक्तिः । तामसी द्व्य-इक्तिः । तामस्याः पञ्चतन्मात्रा अजायन्त पञ्चभृतान्यजायन्त । राजस्याः पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च वायवश्चाजायन्त । सात्त्विक्या दिशो वायुः सूर्यो वरुणोऽश्विनाविति ज्ञानेन्द्रियदेवता अमिरिन्द्रो विष्णुः प्रजापतिर्मित्र इति कर्मेन्द्रियदेवताः । इदमादिपुरुषरूपम् । परमातमनः सूक्ष्मशारीरमिद्नेवोच्यते । अथ द्वितीयम् । पञ्चतन्मात्राः पञ्चसूक्ष्मभूतान्यु-पादाय पञ्चीकरणे ऋते पञ्चमहाभूतान्यजायन्त । अवशिष्टानां पञ्चपञ्चाशानां कल्पारम्भसमये भुतविभागे चैतन्यप्रवेशादहमित्यभिमानः । तस्मादादि-गणेशो अवानुच्यते। ततो वे भूतेभ्यश्चतुर्दश छोका अजायेरन्। तदन्तर्गत-जीवराशयः स्थृलशरीरैः सह विराडित्युच्यते । इति द्वितीयम् । राजसो ब्रह्मा सान्त्रिको विष्णुस्तामसो वै हरः। त्रयं मिलिखा परस्परमुवाच अह-भैव सर्वस्येश इति । ततो वै परस्परमसहमानाश्चोध्वं जग्मुः । तत्र न किञ्चिह्ह्युः । ततश्चाधःप्रदेशे दशदिक्षु भ्रमन्तो न किञ्चिल्इयन्ति सा। ततो वै ध्यानस्थिता अभूवन् । ततश्र हृदेशे महान्तं पुरुषं गजवनत्रमसंख्य-शीर्षमसंख्यपादमनन्तकरं तेजसा व्याप्ताखिललोकं ब्रह्ममूर्धानं दिक्श्रवणं बह्माण्डगण्डं चिद्योमतालुकं सत्यजननं च जगदुत्पत्यपायोग्मेषनिमेषं सोमा-कीं भिनेत्रं पर्वतेशरदं पुण्यापुण्योष्ठं प्रहोडुदशनं भारतीजिह्नं शक्त्राणं कुरुगोत्रांसं सोमेन कण्ठं हरिशरोह्हं सरिन्नद्भुजमुरगाङ्गुलिकमृक्षनखं श्रीह-स्कमाकाशनाभिकं सागरोदरं महीकटिदेशं सृष्टिलिङ्गकं पर्वतेशोरं दस्रजा-नुकं जठरान्तःस्थितयक्षगन्धर्वरक्षःकिन्नरम्।नुषं पातालजंबकं मुनिचरणं कालाङ्गुष्ठकं तारकाजाललाङ्गुलं दष्ट्वा स्तुवन्ति सा। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यतोऽभ्रिः पृथिव्यसेजो वायुर्यत्कराम्राह्रह्मविष्णुरुद्रा अजायन्त यतो वै ससुदाः सरितः पर्वताश्च यतो वै चराचरमिति स्तवनात्प्रसन्नो भूरवो-वाचाऽहं सर्वस्येशो मत्तः सर्वाणि भूतानि मत्तः सर्वं चराचरं भवन्तो वे न मिन्निजा गुणा मे वे न संशयः । गुणेशं मां हृदि संचिन्त्य राजस त्वं जगत्कुरु सारित्रक स्वं पालय तामस त्वं हरेत्युक्स्वान्तर्हितः । स वै गणेशः सर्वात्मा विज्ञेयः सर्वदेवात्मा वै स एकः । य एवं वेद स गणेशो भवति । इत्युपनिषत् ।

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत् ॥ ४ ॥

कँ ॥ देवा ह वै रुद्रमञ्जवन् कथमेतस्योपासनम् । स होवाच रुद्रो गणको निचद्रायत्री श्रीगणपतेरेनं मजराजमन्योन्याभावात्यणवस्बरूपस्यास्य परमा-स्मनोऽङ्गानि जानीते स जानाति सोऽस्रतत्वं च गच्छति । योऽधीते स सर्व तरति । य एनं मजराज गणपतेः खर्वदं नित्यं जपति सोऽप्तिं स्तम्भयति स उदकं स्तरभयति स वायुं स्तरभयति स सूर्यं स्तरभयति स सर्वान्देवान्सारभ-श्राति स विषं स्तम्भयति स सर्वोपदवान्स्तम्भयति । इत्युपनिषत् । य एतं मन्त्राजं नित्यमधीते स विज्ञानाकर्षयति देवान्यक्षान् रोगान् अहानमनुष्यान सर्वानाकर्पयति । स भूलोंकं जयति स अवलोंकं जयति स खलोंकं स महलोंकं स जनोलोंकं स तपोलोंकं स सवलोंकं स समलोंकं स सर्वलोंकं जयति । सोऽग्निष्टोमेन यजते सोऽत्यग्निष्टोमेन स उन्ध्येन स पोडगीयेन स वाजपेयेन सोऽतिरात्रेण सोऽहोर्यामेण स सर्वेः ऋतुभिर्यजते। य एनं मन्नराजं वैद्यराजं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यज्ंष्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स पुराणान्यधीते स कर्गानधीते स गाथा अधीते स नाराशंसीरधीते स प्रणवसधीते। य एनं मन्नराजं गाणेशं वेद स सर्वं वेद स सर्वं वेद । स वेदसमः स मुनिसमः स नागसमः स सूर्यसमः सोऽझिसम इति । उपनीतैकाधिकशतं गृहस्थैकाधि-कशतं वानप्रस्थकाधिकशतं रुद्रजापकसमस् । यतीनामेकाधिकशतमथर्व-शिरःशिखाध्यापकसमम् । रुद्रजापकैकाधिकशातमथवीशिरःशिखाध्यापकैकाधि-करातं गाणेशतापिनीयोपनिषद्ध्यापकसमस् । मन्नराजजापकस्य यत्र रिव-सोमों न तपतो यत्र वायुर्नक्षत्राणि न वाति भानित यत्राग्निर्मृत्युर्न दहित प्रविशति यत्र मोहो न दुःखं सदानन्दं परानन्दं समं शाश्वतं सदाशिवं परं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परमं पदं चिन्मात्रं ब्रह्मणस्पतिमेकाक्षरमेवं पर-मात्मानं बाह्यान्ते लब्धांशं हृदि समावेश्य किञ्चिज्ञह्वा ततो न जपो न माला नासनं न ध्यानावाहनादि । स्वयमवतीणी ह्ययमात्मा ब्रह्म सोऽहमात्मा चतुप्पात् । बहिःप्रज्ञः प्रविविक्तभुक् तेजसः । यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वमं पश्यति तत्सुषुप्तम् । तत्रैकीभूतः प्रज्ञानघन एवा-नन्द्भुक् चेतोमुखः प्राज्ञः । एष सर्वेश्वरः सर्वान्तयीमी एष योनिः सर्व-भूतानाम् । न बहिःप्रज्ञं नान्तःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमन्यपदेश्यम-व्यवहार्थमश्राह्मसलक्षणमचिन्त्यमैकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्जोपशमं शिवमद्वैतमेवं

चतुःषादं ध्यायन् स एवाःमा भवति । स आत्मा विज्ञेयः सदोज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मवन्धरिहतो हैतरिहतो निरस्ताविद्यातमोमोहाहङ्कारप्रधानमहमेव सर्वमिति सम्भाव्य विक्षराज्ञह्यण्यस्ते तेजोमये परंज्योतिर्मये
सदानन्दमये स्वप्रकाशे सदोदिते नित्ये गुद्धे मुक्ते हेश्वरे परे ब्रह्मणि रमते
रमते रमते रमते । य एवं गणेशतापनीयोपनिषदं वेद स संसारं तरित वोरं
तरित दुःखं तरित विक्षांस्तरित महोपसर्गं तरित । आनन्दो भवति स नित्यो
भवति स गुद्धो अवति स मुक्तो भवति स स्वप्रकाशो भवति स द्वंश्वरो
भवति स मुख्यो अवति स वैधानरो भवति स तेजसो भवति स प्राज्ञो
भवति स साक्षी अवति स एव भवित स सर्वो भवति स सर्वो भवति ।
इत्युपनिषत् । ॐ स ह नाववतु ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु पश्चमोपनिषत्॥ ५॥

ॐ ॥ अथोवाच भगवती गौरी ह वै रुद्रमेतस्य मन्नराजस्यानुष्ठानविधिं मे बूहीति । स होवाच रुद्दो विधि लब्धांशं गुरुदेवतयोरालभ्य मनसा पुष्पं निवेद्योपक्रम्य भूतोत्सारणमासनवन्धाद्यात्मरक्षासुनियमभूतछुद्धिप्राणस्थापन-प्रणवावर्तनमातृपूजनान्तर्मातृकान्तर्यागादि सम्पाद्यात्र केचन समत्रं मुलवै-दिककल्पैरुपक्रमं यहणसमर्पणनिवेदनानि बाह्येऽन्यथेति महार्घ्यं शंखं त्रिपा-द्योर्गन्धादिना पूजितयोः स्थाप्य पात्रासादनं दक्षिणोपक्रमेण पाद्यार्घ्याचमन-मधुपर्कपुनराचमननिवेदनपात्राणि संस्थासु यथोपदिष्टं चतुथ्योः पर्वणि संस्थासु यथाविधि स्थाप्य निवेदने प्रक्षालनमेव ततोऽर्वाक् पञ्चामृतपात्राणि रिक्तं च सूलेनालभ्य निवेदिन्यार्थोदकेनात्मानं पात्राणि सम्भारं च प्रोक्ष्य पात्राति-रिक्तानि महाच्योंदकेन सर्वनिवेदनं करशुद्धिं मूलासुनियमं यथोक्तर्षिच्छन्दो-दैवतं स्मृत्वा विनियोगश्च नित्ये पूजाङ्गो जपो जपाङ्गा पूजा जप हत्यङ्गुष्टव्याप-कस्बान्ताष्टाङ्गद्विडमुण्डिन्यासादि कृत्वा मुखमवेक्ष्यात्मानं देवरूपिणं सम्भाव्य मूर्मि पुष्पं दत्त्वा पीठं सम्पूज्यासनं दत्त्वा ऋष्यादि कृत्वा ध्यात्वा हृदया-म्भोजे योगिनोऽत्र जपन्ति । स्वान्ताम्भोजाद्देवमावाद्य सुद्रां दर्शयित्वा देवस्य सकलीकरणाङ्गुष्टहृदयापिन्या स्वान्ते मुद्रां निवेद्य पात्राणि च मूलेन द्त्वा रिक्ते पञ्चामृतं संयोज्य तेन पञ्चवारं सकृद्वाऽभिषिच्य नित्येन संतर्ष्य कल्पस्तवनादिपुरुषसूक्तरुद्राध्यायघोपशान्त्यादिना मूळेन चाभिषिच्य सर्वपूजां निवेद्य दीपं त्रिर्श्वास्य सब्येनाष्ठाच्य महानैवेद्यपीठावरणान्युपसंहत्य दर्शयेत्।

ताम्बूलान्ते किञ्चिन्मूलमावर्य पुनर्धृपादित्रयभक्ष्यादि निवेद्य सुद्राः सर्वोप-चारस्य दुर्शियत्वा निवेदनिमद्मासर्न नमः पाद्ये एघोऽव्यः स्वाहेति दक्षिण-करेऽच्यें इदं स्वधिति पुरिक्षिके मुखे नम इति सानेप्वेप गन्धो नमोऽश्रतेषु ॐ पुष्पाणि नमः पुष्पेष्त्रेष धूपो दीपो नमो धूपदीपयोः समर्पयामीति नैवे-द्यफलताम्ब्लेषु निवेदयामि नमो हिरण्ये एव पुष्पाञ्जलिनेम इति मालाया-मिति परमं रहस्यमप्रकाइयं बीजं य एवं वेद स सर्व वेद स सर्व वेद । वर्णार्थं लब्धांशेन सम्रार्थेन च पीठावरणदेवतावधानेन वा जपति स जपति। मुख्यं लब्धांशमासनं सृदुलं भुक्तरिक्तवासःशौसुम्भमाक्षिष्टरक्तकम्बलचित्रम्-गन्याञ्चाजिनं वा यथोक्तसुक्तान्यतरेरासनान्तरयोजनार्फटिककमलभद्राक्षमणि-मुक्ताप्रवालरुद्राक्षकुरायन्थिषु वा जपति स जपति । कुरामयी निलाक्षालनं चन्द्रनालेपो धूपेनासिमचय पृथगिसम्बर्ण सद्योजातैः पञ्चिभः प्राणस्थापन-जीवनतर्पणगुप्तानि च स्वसूले गुद्धं वासेन स्पृशेन्न दर्शयेत् । एवं श्रावणे पवि-त्रेण मधौ दमनेन जपसालया महानवस्यां तापस्यां चतुर्थां तिललड्डकैः सप्तम्यां शीतलचन्दनेन शिवरात्र्यां विल्वदलमालयाऽन्यस्मिन्पर्वणि महसार्च-यन्ति तेऽर्चयन्ति । मोद्कपृथुकलाजसक्तुरम्भाफलेक्षुनारीकेलापूपानन्यानि च यथोपदिष्टमाहुतिभिर्जुहोति । जपश्च प्राक्त्प्रवणे होमोऽन्यथोपासः । एवं यः करोति सोऽसृतत्वं विन्दति स प्रतिष्ठां प्रामोति सुक्तिं विन्दति सुक्तिं सुनिक वाचं वदति यशो लभते । इदं रहस्यं यो जानाति स जानाति योऽधीते सोऽधीते स आनन्दों भवति स नित्यो भवति स विशुद्धो भवति स मुक्तो भवति स पकाशो भवति स द्यावानभवति ज्ञानवानभवत्याननद्वानभवति विज्ञानवान्भवति विज्ञानानन्दो भवति सोऽमृतत्वं भवत्यमृतत्वं भवतीति ।

> ॐ सं हं नाववित्विति शान्तिः॥ इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु षष्ठोपनिषत्॥ ६॥ इत्याथर्वणीया गणेशतापिन्युपनिषत्समाप्ता॥ ११०॥

संन्यासोपनिषत् ॥ १११ ॥

देही संन्यसनाद्याति परां सालोक्यतां पराम् । ॐ तत्सचिन्मयं ब्रह्म सर्वातीतं समाश्रये ॥ १ ॥ ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥

हारिः ॐ ॥ अथाहिताग्निर्भियेत प्रेतस्य मन्नैः संस्कारोपतिष्ठते । स्वस्थो गच्छेयमिति । एतान्पितृमेधिकानोषधिसंभारान्संभृत्यारण्ये वाश्रमपारं गत्बाऽमावास्यायां प्रातरेवाशीनुपसमाधाय पितृभ्यः श्राद्धतर्पणं कृत्वा बह्मेष्टिं निर्वपेत् । स सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्यैपाहुतिर्दिब्याऽमृतत्वाय कल्पतामित्येवमत अर्ध्व यद्रह्माभ्युद्यद्विं च लोकमिद्ममुं च सर्व सर्वम-भिजन्युः । सर्विश्रियं द्धतु सुमनस्यमाना ब्रह्मजज्ञानमिति ब्रह्मणेऽथर्वणे प्रजापतयेऽनुमतयेऽप्रये स्विष्टकृत इति हुत्वा यज्ञ् यज्ञं गच्छेत्यप्नावरणी हुत्वोचित्सखायमिति चतुर्भिरनुवाकैराज्याहुतीर्जुहुयात्तेरेवोवितष्टते मय्यम्रेऽभ्रिमिति चाथो अभीन्समारोपयेद्वतवान्स्यादतन्द्रित इति ॥ १ ॥ तत्र श्लोकाः -- ब्रह्मचर्याश्रमे खिलो गुरुशुश्रूषणे रतः । वेदानघीत्यानुज्ञात उच्यते गुरुणाश्रमी ॥ दारमाहत्य सदशमग्निमाधाय शक्तितः । बाह्मीमिष्टिं यजेत्तासामहोरात्रेण निर्वपेत् ॥ संविभज्य सुतानथैंर्प्राम्यकामान्विसज्य च । चरेत वनमार्गेण शुचौ देशे परिश्रमः ॥ वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा विहिता-नोत्तरः फलैः । स्वशरीरे समारोपः पृथिन्यां नाश्रुपातकाः । सह तेनैव पुरुषः कथं संन्यस्त उच्यते ॥ २ ॥ सनामधेयस्तु स किं यस्प्रिन्संन्यस उच्यते । तस्मात्फलनिशुद्धाङ्गी संन्यासं सहतेऽर्चिमान् ॥ अग्निवर्णं निष्कामित वानप्रस्थं प्रपद्यते । लोकाद्वार्यया सहितो वनं गच्छति संयतः ॥ त्यक्त्वा कामान्संन्य-सित भयं किमनुपश्यति । किंवा दुःखं समुद्दिश्य भोगांस्त्यजित सुस्थितान् ॥ गर्भवासभयाद्गीतः शीतोष्णाभ्यां तथैव च । गुहां प्रवेष्टुमिच्छामि परं पदमनामयमिति ॥ ३ ॥ संन्यस्याप्तिं न पुनरावर्तनं यन्मन्युर्जायामावहदि-त्यथाध्यात्ममत्राञ्जपेदीक्षामुपेयात् । काषायवासाः कक्षोपस्थलोमानि वर्जये-दूर्ध्वगोपायुर्विमुक्तमार्गो भवत्यनयैव चेद्रिक्षाशनं दध्यात्पवित्रं धारयेजन्तु-संरक्षणार्थम् । तत्र श्लोकाः -- कुण्डिकां चमसं शिक्यं त्रिविष्टपमुपानहम् । दी । पियातिनीं कन्थां कौपीनाच्छादनं तथा ॥ पिवत्रं स्नानशाटीं चोत्तरा-सङ्गस्त्रिदण्डकम् । अतो ऽतिरिक्तं यिकंचित्सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः ॥ ३ ॥ नदीपुलिन-थ. उ. ४९

शायी स्यादेवागारेषु वाऽण्युत । नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतापयेत् ॥ स्नानं दानं तथा शीचमिद्धः पूताभिराचरेत् । स्तूयमानो न तुष्येत निन्दितो न शपेत्परान् ॥ भिक्षादि वैदलं पात्रं स्नानद्रव्यमवारितम् । एतां वृत्ति- मुपासीना घातयन्तीन्द्रियाणि च ॥ विद्याया मनिस संयोगो मनसाकाशश्चा- काशाद्वायुर्वायोज्योतिज्योतिष आपोऽद्भयः पृथिवी पृथिव्या इत्येषा भूतानां ब्रह्म प्रपद्यते ॥ ४ ॥ अजरममरमक्षरमञ्ययं प्रपद्यते तद्भ्यासेन प्राणापानौ संयम्य तत्र श्लोकाः— वृष्ठणापानयोर्मध्ये पाणी आस्थाय संश्रयेत् । संदश्य दशनैर्जिद्धां यवमात्रे विनिर्गताम् ॥ माषमात्रां तथा दृष्टं श्लोत्रे स्थाप्य तथा श्लोव । श्रवणे नासिके न गन्धाय न त्वचं न स्पर्शयेत् ॥ अथ शैवं पदं यत्र तद्भ्या नासिके न गन्धाय न त्वचं न स्पर्शयेत् ॥ अथ शैवं पदं यत्र तद्भ्या तयायाम् । तद्भ्यासेन लभ्यते पूर्वजन्मार्चितात्मनः ॥ अथ तैः संभूतैर्वायुः संस्थाप्य हृदयं तपः । ऊर्ध्वं प्रपद्यते देहाद्भित्त्वा मूर्धानम-व्ययम् ॥ अथाऽयं मूर्धानमस्य देहैषा गतिर्गतिमताम् । ये प्राप्य परमां गतिं भूयस्ते न निवर्तन्ते परात्परमवस्थात्परात्परमवस्थादिति ॥ ५ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥ इत्याथर्वणीया संन्यासोपनिषत्समाप्ता॥ १११॥

गोपीचन्दनोपनिषत् ॥ ११२ ॥

गोपिकास्वान्तसंलीनं श्रीकृष्णाख्यं परं महः। ब्रह्मानन्दस्वरूपं तत्स्वमात्रमिति चिन्तये॥१॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरिः ॐ॥ गोपी का नाम। संरक्षणी। कुतः संरक्षणी। लोकस्य नरकान्मृत्योर्भयाच संरक्षणी। चन्दनं तुष्टिकारणं च। किं तुष्टिकारणम्। ब्रह्मानन्दकारणम्। य एवंविद्वानेतदाख्यापयेद्य एतच धारयेद्रोपीचन्दनमृत्तिकाया निरुत्तया
धारणमात्रेण च ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयत इति ॥ १ ॥ गोप्यो
नाम विष्णुपत्यः स्युस्तासां चन्दनमाह्कादनम्। कश्चाह्वादः। एष ब्रह्मानन्दरूपः। कश्च विष्णुपत्यो गोप्यो नाम। या आत्मना ब्रह्मानन्दैकरूपं
कृष्णाख्यं परं धामाजयंस्ता जगत्सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः प्रकृतिमहद्हमाद्या
महामायाः। कश्च विष्णुः। परं ब्रह्मैव विष्णुः। कश्चाह्वादः। गोपीचन्दनसंसक्तमानुषाणां पापसंहरणाच्छुद्धान्तःकरणानां ब्रह्मज्ञानप्राप्तिश्च। य प्वं

बेदेत्युपनिषत् ॥ २ ॥ गोपीत्यम्र उच्यतां चन्दनं तु ततः पश्चात् । गोपी-त्यक्षरद्वयं चन्द्रनं तु त्रियक्षरं तस्मादक्षरपञ्चकम् । य एवविद्वान् गोपीचन्द्रनं धारयेदक्षयं पदमामोति, पञ्चत्वं न स पश्यति, ततोऽमृतत्वमश्रुते, ततोऽमृत-त्वमश्रुत इति ॥ ३ ॥ अथ मायाशवितं ब्रह्मासीत्ततश्च महदाया ब्रह्मणी महामायासिमालितात् । पञ्चभूतेषु गन्धवतीयं पृथिव्यासीत् । पृथिव्याश्च वैभवाद्वर्णभेदाः । पीतवर्णा मृदो जायन्ते लोकानुग्रहार्थम् । मायासिहत-ब्रह्मसम्भोगवशादस्य चन्दनस्य वैभवम् । य एवंविद्वान्यतिहस्ते दद्या-दुनुपह्नवः सर्वमायुरेति । ततः प्राजापत्यं रायस्पोषं गौष्पत्यं च । य एतद्रहस्यं सायंप्रातध्यायेदहोरात्रकृतं पापं नाशयति, मृतो मोक्षमश्रुत इति ॥ ४ ॥ गोपीचन्दनपङ्केन ललाटं यस्तु लेपयेत् । एकदण्डी त्रिदण्डी या स वै मोक्षं समश्रुते ॥ १ ॥ गोपीचन्द्रनिष्ठप्ताङ्गो यं यं पद्यति चक्षुषा । तं तं पूर्वं विजानीयाद्राजिभः सत्कृतो भवेत् ॥ २ ॥ ब्रह्महन्ता कृतप्रश्च गोव्रश्च गुरुतल्पगः । तेषां पापानि नश्यन्ति गोपीचन्द्रनधारणात् ॥ ३ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो म्रियते यत्र कुत्रचित् । अभिन्याप्यायतो भूत्वा देवेन्द्र-पदमश्रुते ॥ ४ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गं पुरुषं य उपासते । एवं ब्रह्मादयो देवास्तन्मुखास्तानुपासते ॥ ५ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः पुरुषो येन पूज्यते । विष्णुपूजितभूतित्वाद्विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥ सदाचारः शुभाकल्पो मिताहारो जितेन्द्रियः । गोपीचन्द्रनिल्लाङ्गः साक्षाद्विष्णुमयो भवेत् ॥ ७ ॥ गोपीचन्द्रनलिप्ताङ्गो व्रतं यस्तु समाचरेत् । ततः कोटिगुणं पुण्यमित्येवं मुनिरव्रवीत् ॥ ८ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गैर्जपदानादि यत्कृतम् । न्यूनं संपूर्णतां याति विधानेन विशेषतः ॥ ९ ॥ गोपीचन्दनमायुष्यं बलारोग्यविवर्धनम् । कामदं मोक्षदं चैव इत्येतं मुनयोऽबुवन् ॥ १०॥ अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च । तेषां पुष्यमवाप्त्रोति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ११॥ गोपीचन्द्नदानस्य नाश्वमेधकृतः फलम् । न गङ्गया समं तीर्थं न शुद्धिगोपि-चन्दनात् ॥ १२ ॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन गोपीचन्द्रनमण्डनम् । न तत्तुत्यं भवेछोके नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥ चन्दनं चापि गोपीनां केलिकुङ्कम-सम्भवम् । मण्डनात्पावनं नॄणां भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १४ ॥ कृष्णगोपी-रतोद्भृतं पापन्नं गोपिचन्दनम् । तत्प्रसादात्सर्वदैव चतुर्वर्गफलप्रदम् । तिलमात्रप्रदानेन काञ्चनादिसमं फलम् ॥ १५ ॥ कुङ्कमं ऋष्णगोपीनां

जलकीडासु सम्भृतम् । गोपीचन्दनमित्युक्तं द्वारवत्यां सुरेश्वरैः॥ १६॥ कृष्णगोपीजलक्रीडाकुङ्कमं चन्दनैर्युतम् । तिलमात्रं प्रदायेदं पुनात्या दशमं कुलम् ॥ १७ ॥ गोपीचन्दनखण्डं तु चकाकारं सुलक्षणम् । विष्णुरूपमिहं पुण्यं पावनं पीतवर्णकम् ॥ १८ ॥ आपो वा अग्र आसन् । तत्र प्रजापितर्शन युर्भूत्वाऽश्राम्यतेदं सुजेयमिति । स तपोऽतप्यत । तत ओङ्कारमपश्यत् । ततो व्याहतीस्ततो गायत्रीम् । गायव्या वेदास्तैरिदमस्जत । धूममार्गविस्तृतं हि वेदार्थमभिसन्धाय चतुर्दश लोकानस्जत । तत उपनिषदः श्रुतय । अर्चिर्मार्गविस्तृतं वेदार्थमभिसन्धाय आविर्वभूवुः रहस्योपनिषदङ्गान्बह्मलोके स्थापयामास । ताश्चोपादिशहैवस्वतेऽन्तरे सगुणं ब्रह्म चिद्धनानन्दैकरूपं पुरुषोत्तमरूपेण मथुरायां वसुदेवसग्नन्यावि-भीविष्यति । तत्र भवत्यः सर्वेलोकोत्कृष्टसौन्दर्यक्रीडाभोगा गोपिकास्तरूपैः परब्रह्मानन्दैकरूपं कृष्णं भजिष्यथ । तत्र श्लोकाः-इति ब्रह्मवरं लब्धवा श्रुतयो बह्मश्लोकगाः । कृष्णमाराधयामासुर्गोकुले धर्मसङ्क्ले ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णाख्यं परं ब्रह्म गोपिकाः श्रुतयोऽभवन् । एतत्सम्भोगसम्भूतं चन्दनं गोपीचन्दनं चन्दनं गोपीचन्दनमित्युपनिषत्॥ २०॥

ॐ भद्गं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ इत्याथर्वणीया गोपीचन्दनोपनिवत्समाप्ता ॥ ११२ ॥

सरस्वतीरहस्योगनिषत् ॥ ११३ ॥

प्रतियोगिविनिर्मुक्तब्रह्मविद्यैकगोचरम् । अखण्डनिर्विकल्पं तद्रामचन्द्रपदं भजे॥ १॥ ॐ वाङ्ये मनसीति शान्तिः॥

हरिः ॐ॥ ऋषयो ह वै भगवन्तमाश्वलायनं संपूज्य पप्रच्छुः केनोपायेन तज्ज्ञानं तत्पदार्थावभासकम् । यदुपायनया तत्त्वं जानासि भगवन्वद ॥ १ ॥ सरस्वतीदशस्त्रोक्या सऋचा बीजमिश्रया । स्तुत्वा ज्ञात्वा परां सिद्धिमलभं मुनिपुङ्गवाः ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं सारस्वतप्राप्तिः केन ध्यानेन सुवत । महासरस्वती येन तुष्टा भगवती वद् ॥ ३ ॥ स होवाचाश्वलायनः । अस्य श्रीसरस्वतीदशस्त्रोकीमहामञ्रस्य । अहमाश्वलायन ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्रीवागीश्वरी देवता । यद्वागिति बीजम् । देवीं वाचमिति शक्तिः । प्रणो

देवीति कीलकम् । विनियोगस्तत्प्रीत्यर्थे । श्रद्धाः मेघा प्रज्ञाः धारणा वाग्देवताः महासरस्वतीत्येतैरङ्गन्यासः ॥ नीहारहारघनसारसुधाकराभां कल्याणद्रां कनकचम्पकदामभूषाम् । उत्तुङ्गपीनकुचकुम्भमनोहराङ्गी वाणीं नमामि मनसा वचसा विभूत्ये ॥ १ ॥ ॐ प्रणो देवीत्यस्य मन्नस्य भरद्वाज ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीसरस्वती देवता । प्रणवेन वीजशक्तिः कीलकम् । इष्टार्थे विनि-योगः । मन्नेण न्यासः ॥ या वेदान्तार्थतत्त्वैकस्बरूपा परमार्थतः । नामरूपा-त्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती ॥ ॐ प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वा-जिनीवती । धीनामविज्यवतु ॥ १ ॥ आ नो दिव इति मन्नस्य अत्रिर्ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । द्वीमिति वीजशक्तिः कीलकम् । इष्टार्थे विनियोगः । मन्नेण न्यासः ॥ या साङ्गोपाङ्गवेदेषु चतुष्वेंकैव गीयते । अद्वैता ब्रह्मणः शक्तिः सा मां पातु सरस्वती ॥ हीं आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वनी यजतागंतु यज्ञम् । हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचा मुशनी श्रणोतु ॥ २ ॥ पावका न इति मन्नस्य । मधुच्छन्द ऋषिः । गायत्री छन्दः । सरस्वती देवता । श्रीमिति बीजशक्तिः कीलकम् । इष्टार्थे विनि-योगः । मन्नेण न्यासः ॥ या वर्णपदवाक्यार्थस्वरूपेणेव वर्तते । अनादिनिध-नानन्ता सा मां पातु सरस्वती ॥ श्रीं पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजि-नीवनी । यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ३ ॥ चोदयित्रीति मन्नस्य मथुच्छन्द ऋषिः । गायत्री छन्दः । सरस्वती देवता । ब्ल्सिमिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्नेण न्यासः ॥ अध्यात्ममधिदैवं च देवानां सम्यगीश्वरी । प्रत्यगास्ते वदन्ती या सा मां पातु सरस्वती ॥ ब्लूं चोद्यित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं द्धे सरस्वती ॥ ४ ॥ महो अर्ण इति मन्नस्य मधुच्छन्द ऋषिः। गायत्री छन्दः । सरस्वती देवता । सौरिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्नेण न्यासः **।** अन्तर्याम्यात्मना विश्वं त्रैलोक्यं या नियच्छति । रुद्रादिखादिरूपस्या यस्या-साबेदय तां पुनः । ध्यायन्ति सर्वरूपैका सा मां पातु सरस्वती । सौः महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयित केतुना । धियो विश्वा विराजित ॥ ५ ॥ चत्वारि वागिति मञ्जस्य उचध्यपुत्रं ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । ऐमिति बीजजिक्तः कीलकम् । मन्नेण न्यासः। या प्रत्यरदृष्टिभिर्जीवेर्व्यज्यमानाऽनुभूयते । ब्याधिती इसिरूपैका सा मां पातु सरस्वती ॥ एँ चत्वारि वाक् परिमिता पदानि

तानि विदुर्बोद्धणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ६ ॥ यद्वाग्वदन्तीति मन्नस्य भार्गव ऋषिः । त्रिष्टुप् अनुवा । छन्दः । सरस्वती देवता । क्वीमिति वीजशक्तिः कीलकम् । मन्नेण न्यासः । नामजात्यादिभिभेदैरष्टधा या विकल्पिता। निर्विकल्पात्मना व्यक्ता सामां पातु सरस्वती ॥ क्लीं यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्वा। चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क स्विद्स्याः परमं जगाम ॥ ७ ॥ देवीं वाचिमिति मत्रस्य भागव ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । सौरिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्नेण न्यासः ॥ व्यक्ताव्यक्तगिरः सर्वे वेदाद्या व्याहरन्ति याम् । सर्वकामदुघा धेनुः सा मां पातु सरस्वती ॥ सौः देवीं वाचमजनयन्त देवासां विश्वरूपाः पश्चा वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागसानुप स्ट्रतेतु ॥ ८ ॥ उत त्व इति मञ्जस्य बृहस्पतिर्ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । समिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्नेण न्यासः । यां विदित्वाऽिखलं बन्धं निर्मथ्याखिलवर्सना । योगी याति परं स्थानं सा मां पातु सर-स्वती ॥ सं उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचसुत त्वः श्रण्वन्न श्रणोत्येनाम् । उतो त्वसमें तन्वं १ विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ९ ॥ अभ्वितम इति मन्नस्य गृत्समद ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । सरस्वती देवता । ऐमिति बीजशक्तिः कीलकम् । मन्नेण न्यासः । नामरूपात्मकं सर्वं यस्यामावेश्य तां पुनः । ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मां पातु सरस्वती ॥ ऐं अस्वितमे नदी-तमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मासि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १० ॥ चतुर्भु बमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम । मानसे रसतां नित्यं सर्वगुक्का सरस्ती ॥ १ ॥ नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनि । त्वामहं प्रार्थये निसं विद्यादानं च देहि मे ॥ २ ॥ अक्षसूत्राङ्कराधरा पारापुस्तकधारिणी । मुक्ताहारसमायुक्ता वाचि तिष्ठतु मे सदा ॥ ३ ॥ कम्बुकण्ठी सुताम्रोष्ठी सर्वा-भरणभूषिता। महासरस्वती देवी जिह्वाग्रे संनिविश्यताम् ॥ ४ ॥ या श्रदा धारणा मेधा वाग्देवी विधिवल्लभा । भक्तजिह्वाग्रसद्ना शमादिगुणदायिनी ॥ ५ ॥ नमामि यामिनीनाथलेखालंकृतकुन्तलाम् । भवानीं भवसंताप-निर्वापणसुधानदीम् ॥ ६ ॥ यः कवित्वं निरातङ्कं भुक्तिमुक्ती च वाञ्छति। सोऽभ्यच्येंनां दशश्लोक्या निर्ह्यं म्तौति सरस्वतीस् ॥ ७॥ तस्यैवं स्तुवती

मां

1

T

क्षित्यं समभ्यर्च्यं सरस्वतीम् । भक्तिश्रद्धाभियुक्तस्य पण्मासात्प्रत्ययो भवेत् ॥ ८ ॥ ततः प्रवर्तते वाणी स्वेच्छया लिखताक्षरा । गद्यपद्यात्मकैः शब्दै-रप्रमेयैर्विवक्षितैः ॥ ९ ॥ अश्रुतो बुध्यते प्रन्थः प्रायः सारस्वतः कविः । इत्येवं निश्चयं विप्राः सा होवाच सरस्वती ॥ १० ॥ आत्मविद्या मया लब्धा ब्रह्मणैव सनातनी । ब्रह्मत्वं मे सदा नित्यं सचिदानन्दरूपतः ॥ ११॥ प्रकृतित्वं ततः सृष्टं सत्त्वादिगुणसास्यतः । सत्यमाभाति चिच्छाया दुर्पणे प्रतिविस्ववत् ॥ १२ ॥ तेन चित्प्रतिविस्वेन त्रिविधा भाति सा पुनः। प्रकृत्यवच्छिन्नतया पुरुषत्वं पुनश्च ते ॥ १३ ॥ शुद्धसत्त्वप्रधानायां मायायां बिस्वितो ह्यजः । सत्त्वप्रधाना प्रकृतिर्मायेति प्रतिपाद्यते ॥ १४ ॥ सा माया स्ववशोपाधिः सर्वज्ञस्येश्वरस्य हि । वश्यमायत्वमेकत्वं सर्वज्ञत्वं च तस्य तु ॥ ३५ ॥ सात्त्विकत्वात्समष्टित्वात्साक्षित्वाज्जगतामपि । जगत्कर्तुमकर्तुं वा चान्यथा कर्तुमीशते ॥ १६ ॥ यः स ईश्वर इत्युक्तः सर्वज्ञत्वादिभिर्गुणैः। शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृतिरूपकम् ॥ १७ ॥ विक्षेपशक्तिर्छिङ्गादि ब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत् । अन्तर्देग्दरययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः॥ १८॥ आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम् । साक्षिणः पुरतो भातं लिङ्ग-देहेन संयुतस् ॥ १९ ॥ चितिच्छायासमावेशाजीवः स्याद्यावहारिकः । अस्य जीवत्वमारोपात्साक्षिण्यप्यवभासते ॥ २०॥ आवृतौ तु विनष्टायां भेदे भातेऽपयाति तत् । तथा सर्गब्रह्मणोश्च भेदमावृत्य तिष्ठति ॥ २१ ॥ या शक्तिस्तद्वशाद्रह्म विकृतत्वेन भासते । अत्राप्यावृतिनाशेन विभाति ब्रह्म-सर्गयोः ॥ २२ ॥ भेदस्तयोर्विकारः स्यात्सर्गे न ब्रह्मणि क्रचित् । अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ॥ २३ ॥ आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्र्पं ततो द्वयम् । अपेक्ष्य नामरूपे द्वे सचिदानन्दतत्परः ॥ २४ ॥ समाधि सर्वदा कुर्याद्धृदये वाथ वा बहिः । सविकल्पो निर्विकल्पः समाधिर्द्विविधो हृदि ॥ २५ ॥ दृश्यशब्दानुभेदेन स विकल्पः पुनर्द्विधा । कामाद्याश्चित्तगा दृश्या-सत्साक्षित्वेन चेतनम् ॥ २६ ॥ ध्यायेद्दृश्यानुविद्धोऽयं समाधिः सवि-कल्पकः । असङ्गः सिबदानन्दः स्वप्रभो द्वैतवर्जितः ॥ २७ ॥ असीतिश्रव्द-विद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः । स्त्रानुभूतिरसावेशादृश्यशब्दाद्यपेक्षितुः ॥ २८ ॥ निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निवातस्थितदीपवत् । हृदीव वाह्य-देशेऽपि यस्मिन्कसिश्च वस्तुनि ॥ २९ ॥ समाधिरौद्यसन्मात्रान्नामरूपपृथ- कृतिः । स्तब्धीभावो रसास्वादानृतीयः पूर्ववन्मतः ॥ ३० ॥ एतैः समा-धिभिः षद्धभिनयेत्कालं निरन्तरम् । देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मि। यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम् ॥ ३१ ॥ भिद्यते हृद्यप्रन्थिश्चिः द्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दष्टे परावरे ॥ ३२ ॥ मयि जीवत्वमीशत्वं किल्पतं वस्तुतो निह । इति यस्तु विज्ञानाति स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्स्वत् ॥

> ॐ वाङ्मो मनसीति शान्तिः॥ इति सरस्वतीरहस्योपनिषत्समाप्ता॥ ११३॥

विण्डोपनिषत् ॥ ११४ ॥

पितृणां हंसरूपाणां यन्ता श्रीमज्जनार्दनः। भवतापप्रणुत्त्यर्थं सततं तमहं श्रये॥ १॥ ॐ पूर्णमदः पूर्णमद्मिति शान्तिः॥

ॐ॥ देवता ऋषयः सर्वे ब्रह्माणिमदमञ्जवन् । मृतस्य दीयते पिण्डः कथं गृह्णन्त्यचेतसः॥ १॥ भिन्ने पञ्चात्मके देहे गते पञ्चसु पञ्चधा । हंसस्लक्त्वा गतो देहं किसाँस्थाने व्यवस्थितः ॥ २॥ व्यहं वसित तोयेषु व्यहं वसित चान्निषु ॥ व्यहमाकाशगो भूत्वा दिनमेकं तु वायुगः ॥ ३॥ प्रथमेन तु पिण्डेन कलानां तस्य संभवः । द्वितीयेन तु पिण्डेन मांसत्वक्शोणितोद्भवः॥ ४॥ तृतीयेन तु पिण्डेन मांतस्तस्याभिजायते । चतुर्थेन तु पिण्डेन अस्थि मजा प्रजायते ॥ ५॥ पञ्चमेन तु पिण्डेन हस्ताञ्जल्यः शिरो मुखम् । पष्टेन कृतपिण्डेन हत्कण्ठं तालु जायते ॥ ६ ॥ सप्तमेन तु पिण्डेन दीर्घमायुः प्रजायते । अष्टमेन तु पिण्डेन वाचं पुष्यित वीर्यवान् ॥ ७ ॥ नवमेन तु पिण्डेन सर्वेन्द्रियसमाहृतिः । दशमेन तु पिण्डेन भावानां प्रवनं तथा। पिण्डेन पिण्डशरीरस्य पिण्डदानेन संभवः॥ ८ ॥ हरिः ॐ तत्सदित्युपनिषत्॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥ इत्याथर्वणीया पिण्डोपनिषत्समाप्ता ॥ ११४ ॥

महोपनिषत् ॥ ११५ ॥

नारायणः परंत्रह्म सर्वेषां महसां महः। अभ्यासाद्यद्विपश्यन्ति सन्तः संसारभेषजम् ॥ १ ॥

अथातो महोपिनषद्मेव । तदाहुरेको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्नीपोमौ नेमे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि न सूर्यः स एकाकी नर एव । तस्य ध्यानान्तःस्थस्य यन्नःस्तोमसुच्यते । तस्मिन् पुरुषाश्चतुर्दशा-जायन्त एका कन्या । दशेन्द्रियाणि मन एकादशम् । तेजो द्वादशम् । अह-द्वारस्त्रयोदशः । प्राणाश्चतुर्दश आत्मा । पञ्चदशी बुद्धिः । पञ्चतन्मात्राणि पञ्चमहाभूतानि । स एप पञ्चविंशकः पुरुषः । तं पुरुषं पुरुषो निवेश्य । नास्य प्रजा नसंवत्सरा जायन्ते संवत्सरादिध जायन्ते ॥ १ ॥

इस्रथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसा ध्यायेत तस्य ध्यानान्तः-स्थस्य ललाटाइयक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत् विश्वच्छियं सत्यं व्रह्मचर्यं तपो वैराग्यं मन पेश्वर्यं सप्रणवा व्याहृतय ऋग्यज्ञःसामाथवाङ्गिरसः सर्वाणि छन्दांसि तान्यङ्गेष्वाश्रितानि ॥ २ ॥

अथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसा ध्यायेत । तस्य ध्यानान्तःस्थस्य ललाटात्स्वेदोऽपतत् । ता इमाः प्रतता आपस्तासु तेजो हिरण्मयमण्डं तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत । सोऽध्यायत पूर्वामुखो भूत्वा भूरिति
व्याहतिर्गायत्रं छन्द ऋग्वेदः । पश्चिमामुखो भूत्वा भुव इति व्याहतिस्रेष्टुभं
छन्दो यजुर्वेदः । उत्तरामुखो भूत्वा स्वरिति व्याहतिर्जागतं छन्दः सामवेदः ।
दक्षिणामुखो भूत्वो जनदिति व्याहत्यानुष्टुभं छन्दोऽथर्ववेदः । के सहस्रक्षीर्ष
देवं सहस्राक्षं विश्वशमभुवम् । विश्वतःपरमं नित्यं विश्वं नारायणं हिरम् ।
विश्वमेवेदं पुरुपं तं विश्वमुपजीवति । ऋपि विश्वेश्वरं देवं समुद्रेतं विश्वरूपिणम् । पद्मकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकोशसित्तमम् । हृदये चाप्यधोमुखं सन्तते
शीकराभिश्च । तस्य मध्ये महानचिविश्वाचिविश्वतोमुखम् । तस्य मध्ये
विह्विशिखा अणीयोध्वां व्यवस्थिता । तस्य शिखाये मध्ये पुरुषः परमात्मा
व्यवस्थितः । स ब्रह्मा स ईशानः सोऽक्षरः परमः स्वराद ॥ ३ ॥

य इदं महोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीतेऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवत्यनुपनीत उप-नीतो भवति । सोऽग्निपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स सूर्यपूतो भवति । स सोमपूर्तो भवति । स सत्यपूर्तो भवति । स सर्वपूर्तो भवति । स सर्वेद्वै-र्ज्ञातो भवति । स सर्वेवेदेरेनुध्यातो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । तेन सर्वेः कर्नुभिरिष्टं भवति । गायण्याः षष्टिसहस्नाणि जप्तानि भवन्ति । इतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्नाणि जप्तानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । आ चक्षुषः पङ्किं पुनात्यासप्तमात्पुरुषयुगात्पुनातीत्याह भगवान् हिरण्यगर्भः । जाप्येनामृतत्वं गच्छत्यमृतत्वं गच्छतीति ॥ ४ ॥

> ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ इत्याथर्वणीया महोपनिषत्समाप्ता ॥ ११५॥

बह्वचोपनिषत् ॥ ११६ ॥

बहुचाख्यब्रह्मविद्यामहाखण्डार्थवैभवम् । अखण्डानन्दसाम्राज्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥ ॐ वास्त्रे मनसीति शान्तिः ॥

हरिः ॐ॥ देवी होकाय आसीत् सैव जगदण्डमस्जत् । कामकलेति विज्ञायते । श्रङ्कारकलेति विज्ञायते तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत् । विष्णुर-जीजनत् । रुद्रोऽजीजनत् । सर्वे मरुद्रणा अजीजनत् । गन्धर्वाप्तरसः किंनरा वादित्रवादिनः समन्ताद्जीजनत् । भोग्यमजीजनत् । सर्वमजीजनत् । सर्वं शाक्तमजीजनत् । अण्डजं स्वेद्जमुद्धिजं जरायुजं यिकंचैतत्प्राणि स्थावर-जङ्गमं मनुष्यमजीजनत् ॥ सेषाऽपरा शक्तः । सेषा शांभवी विद्या कादि-विद्येति वा सादिविद्येति वा रहस्यम् । ओमों वाचि प्रतिष्ठा सेव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तरवभासयन्ती देशकालवस्वन्त-रसङ्गान्महात्रिपुरसुन्दरी वे प्रत्यक् चितिः । सेवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा अत एष ब्रह्मसंविक्तिभावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिदाद्याद्वितीयब्रह्मसंविक्तिः सिचदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्च स्वयमेकेव विभाति । यदिस सन्मात्रम् । यद्विभाति चिन्मात्रम् । यदिप्रमानन्दं तदेतत्सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी । त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता । इतरत्सर्वं महात्रिपुर-

मुन्दरी । सत्यमेकं लिलताख्यं वस्तु तद्द्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म । पञ्चरूप-परित्यागादस्वरूपप्रहाणतः । अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सिच्छ्ज्यते महत् ॥ इति । प्रज्ञानं ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्मासीति वा भाष्यते । तत्त्वमसीत्येव संभाष्यते । अयमात्मा ब्रह्मेति वा ब्रह्मेवाहमसीति वा योऽहमस्मि वा सोऽहमसीति वा योऽसौ सोऽहमसीति वा या भाष्यते सेषा पोडशी श्रीविद्या पञ्चद्शाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी वालाम्बिकेति वगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्किरिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सारस्वती ब्रह्मानन्दकलेति । ऋचो अश्वरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्त्व वेद किमृचा करिष्टाति । य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ वाज्जो मनसीति शान्तिः॥ इति बह्नुचोपनिपत्समाप्ता॥ ११६॥

आश्रमोपनिषत् ॥ ११७ ॥

सर्वाश्रमाः समभवन् यसात्सोऽयं जनार्दनः । कैवल्यावाप्तये भूयात्सदाचाररतान्हि तान् ॥ १ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ 🏮

हिरः ॐ॥ अथातश्रत्वार आश्रमाः षोडशमेदा भवन्ति। तत्र ब्रह्मचारिणश्रतुर्विधा भवन्ति गायत्रो ब्रह्मणः प्राजापत्यो बृहन्निति। य उपनयनादूर्ध्वं
त्रिरात्रमक्षारलवणाशी गायत्रीमन्ने स गायत्रः। योऽष्टाच्यारिशद्वर्षाणि
वेदब्रह्मचर्यं चरेत्प्रातिवेदं द्वादश वा यावद्रहणान्तं वा वेदस्य स ब्राह्मणः।
स्वदारिनरत ऋतुकालाभिगामी सदा परदारवर्जी प्राजापत्यः। अथवा
चतुर्विशतिवर्षाणि गुरुकुलवासी ब्राह्मणोऽष्टाच्य्वारिशद्वर्षवासी च प्राजापत्यः। आ प्रायणाद्वरोरपरित्यागी नैष्टिको बृहन्निति॥ १॥ गृहस्था अपि
चतुर्विधा भवन्ति—वार्ताकवृत्तयः शालीनवृत्तयो यायावरा घोरसंन्यासिकाश्रेति। तत्र वार्ताकवृत्तयः कृषिगोरक्षवाणिज्यमगहितमुपयुञ्जानाः शतसंवत्सराभिः कियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते। शालीनवृत्तयो यजन्तो न

याजयन्तोऽधीयाना नाध्यापयन्तो ददतो न प्रतिगृह्णन्तः शतसंवत्सराभिः कियाभिर्यजनत आत्मानं प्रार्थयन्ते । यायावरा यजनतो याजयन्तोऽधीयाना अध्यापयन्तो ददतः प्रतिगृह्णन्तः शतसंवत्सराभिः कियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । घोरसंन्यासिका उद्धृतपरिपृताभिरद्धिः कार्यं कुर्वन्तः प्रतिदिव-समाहृतोञ्छवृत्तिसुपयुञ्जानाः शतसंवत्सराभिः कियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥ वानप्रस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति वैखानसा उदुम्बरा बालखिल्याः फेनपाश्चेति । तत्र वैखानसा अकृष्टपच्यौषधिवनस्पतिभिर्याम-बहिष्कृताभिरग्निपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञियां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । उदुम्बराः प्रातरुत्थाय यां दिशमभिप्रेक्षन्ते तदाहृतोदुम्बरबद्र-नीवारइयामाकैरशिपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञियां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । बालखिल्या जटाधराश्चीरचर्मवल्कलपरिवृताः कार्तिक्यां पौर्णमासां पुष्पफलमुत्स्जन्तः शेषानष्टौ मासान् वृत्त्युपार्जनं कृत्वाऽग्निपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञित्रयां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । फेनपा उन्मत्तकाः शीर्णपर्णफलभोजिनो यत्र यत्र वसन्तोऽग्निपरिचरणं कृत्वा पञ्चमहायज्ञक्रियां निर्वर्तयन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते ॥ ३ ॥ परिव्राजका अपि चतुर्विधा भवन्ति— कुटीचरा बहूदका हंसाः परमहंसाश्चेति । तत्र कुटीचराः खपुत्रगृहेषु भिक्षाचर्यं चरन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । बहूदकास्त्रिदण्डकमण्डलुशिक्यपक्ष-जलपवित्रपात्रपादुकासनशिखायज्ञोपवीतकोपीनकाषायवेषधारिणः साधुवृत्तेषु बाह्मणकुलेषु मैञ्जाचर्यं चरन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते । हंसा एकदण्डधराः शिखावर्जिता यज्ञोपवीतधारिणः शिक्यकमण्डलुहस्ता यामेकरात्रवासिनो नगरे तीर्थेषु पञ्चरात्रं वसन्त एकरात्रद्विरात्रकुच्छूचान्द्रायणादि आत्मानं प्रार्थयन्ते । परमहंसा नदण्डधरा मुण्डाः कन्थाकौपीनवाससी-ऽन्यक्तिलङ्गा अन्यकाचारा अनुनमत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डकमण्डलु-शिक्यपक्षजलपवित्रपात्रपादुकासनशिखायज्ञोपवीतानां त्यागिनः शून्यागार-देवगृहवासिनो न तेषां धर्मो नाधर्मो न चानृतं सर्वसहाः सर्वसमाः सम-लोष्टारमकाञ्चना यथोपपन्नचातुर्वर्ण्यभैक्षाचर्यं चरन्त आत्मानं मोक्षयन्त आत्मानं मोक्षयन्त इति ॥ ४ ॥ ॐ तत्सदित्युपनिषत् ॥

> ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥ इत्याथर्वणीयाश्रमोपनिषत्समाप्ता॥ ११७॥

सोभाग्यलक्ष्म्युपनिपत् ॥ ११८॥ सोभाग्यलक्ष्मीकैवल्यविद्यावेद्यसुखाकृति । त्रिपान्नारायणानन्दरामचन्द्रपदं भजे ॥ १॥ ॐ वाक्रो मनसीति शान्तिः॥

हरि: ॐ॥ अथ भगवन्तं देवा ऊचुहें भगवन्नः कथय सौभाग्यलक्ष्मी-विद्याम् । तथेत्यवोचद्भगवानादिनारायणः सर्वे देवा यूयं सावधानमनसो भूत्वा इग्रुपत तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कटां सर्वमन्नासनगतां पीठोपपीठ-देवतापरिवृतां चतुर्भुजां श्रियं हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्गिभध्यायेत्। अथ पञ्चदश ऋगात्मकस्य श्रीसूक्तस्यानन्दकर्दमचिक्कीतेन्दिरासुता ऋषयः। श्री-रिष्याचा ऋचः चतुर्दशानामृचामानन्दाऋषयः। हिरण्यवर्णाद्याद्यत्रयस्यानुष्टुष् छन्दः । कांसोऽस्मीत्यस्य बृहती छन्दः । तदन्ययोर्द्वयोस्त्रिष्टुप् । पुनरष्टकस्यानु-ष्टुप्। शेषस्य प्रस्तारपङ्किः। श्र्यप्तिर्देवता। हिस्ण्यवर्णामिति बीजम्। कांसोऽ-स्मीति शक्तिः । हिरण्मया चन्द्रा रजतस्रजा हिरण्यवर्णति प्रणवादि-नमोऽन्तेश्चतुर्ध्यन्तेरङ्गन्यासः । अथ वक्रत्रपैरङ्गन्यासः । मस्तकलोचनाश्च्रघाण-वदनकण्ठवाहुद्वयहृदयनाभिगुह्यपायूरुजानुजङ्केषु श्रीसूक्तेरेव क्रमशो न्यसेत्। अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा करकमलध्तेष्टाऽभीतियुग्माम्बुजा च । मणि॰ कटकविचित्रालंकृताकल्पजालैः सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः ॥ १ ॥ तत्पीठकर्णिकायां ससाध्यं श्रीबीजम् । वस्त्रादित्यकलापग्रेषु श्रीसु-कगतार्घार्धर्चा तद्दहिर्यः शुचिरिति मातृकया च श्रियं यच्राङ्गदशकं च विञिख्य श्रियमावाहयेत् । अङ्गेः प्रथमा वृतिः । पद्मादिभिर्द्वितीया । लोके-शैस्तृतीया । तदायुधैस्तुरीया वृतिर्भवति । श्रीसूक्तैराहनादि । षोडशस-हस्तजपः । सौभाग्यरमैकाक्षर्या भृगुनिचृद्गायत्री । श्रिय ऋष्यादयः । शमिति बीजशक्तिः । श्रीमित्यादि एडङ्गम् । भूयाद्भयो द्विपद्माभयवरदकरा तस-कार्तस्वराभा शुश्राश्राभेभयुग्मद्वयकरष्टतकुम्भाद्भिरासिच्यमाना । रक्तौघा-बद्धमौलिविंमलत्रदुकूलातेवालेपनाच्या पद्माक्षी पद्मनाभोरसि कृतवसतिः पद्मगा श्रीः श्रिये नः ॥ १ ॥ तत्पीठम् । अष्टपत्रं वृत्तत्रयं द्वादशराशिखण्डं चतुरसं रमापीठं भवति । कर्णिकायां ससाध्यं श्रीवीजम् । विभूतिरुव्वतिः कान्तिः सृष्टिः 'कीर्तिः सन्नतिन्युष्टिः सत्कृष्टिर्ऋद्विरिति प्रणवादिनमोन्तै-श्चतुर्ध्यन्तैर्नवशक्ति यजेत् । अङ्गे प्रथमा वृतिः । अञ्चलेतादिभिर्द्वितीया ।

बालाक्यादिभिस्तृतीया । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी भवति । द्वादशलक्षणः श्रीलक्ष्मीर्वरदा विष्णुपती वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्णमालिनी रजतसज स्वर्णप्रभा स्वर्णप्राकारा पद्मवासिनी पद्महस्ता पद्मप्रिया सुक्तालंकार चनद्रसूर्या विल्विपया ईश्वरी भुक्तिर्भुक्तिर्वभूतिर्क्रिद्धः समृद्धिः कृष्टि पृष्टिर्धनदा धनेश्वरी श्रद्धा भोगिनी भोगदा सावित्री धात्री विधा त्रीत्यादिप्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थन्ता मन्ताः । एकाक्षरवदङ्गादिपीठम् लक्षजपः । दशांशं तर्पणस् । दशांशं हवनस् । द्विजनृप्तिः । निष्काः मानामेव श्रीविद्यासिद्धिः । न कदापि सकामानामिति ॥ १ ॥ अथ हैनं देवा ऊचुस्तुरीयया मायया निर्दिष्टं तत्त्वं ब्रह्मीति। तथेति स होवाच। योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्धते । योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम् ॥ १ ॥ समापय्य निद्धां सुजीर्णेऽल्पभोजी श्रमलाज्यवाधे विविक्ते प्रदेशे। सदा शीतनिस्तृष्ण एप प्रयक्षोऽथ वा प्रणरोधो निजाभ्याः समार्गात् ॥ २ ॥ वक्रेणापूर्य वायुं हुतवहनिलयेऽपानमाकृष्य एत्वा साङ्गुष्ठाः द्यङ्गलीभिवरकरतलयोः षद्भिरेवं निरुध्य । श्रोत्रे नेत्रे च नासापुरयाः लमथोऽनेन मार्गेण सम्यक्पस्यन्ति प्रत्ययांशं प्रणवबहुविधध्यानसंलीन-चित्ताः ॥ ३ ॥ श्रवणमुखनयननासानिरोधनेनैव कर्तव्यम् । ग्रद्धसुप्रमा सरणौ स्फुटममलं श्रूयते नादः॥ ४ ॥ विचित्रघोषसंयुक्तानाहते श्रूपते ध्वनिः । दिन्यदेहश्च तेजस्वी दिन्यगन्धोऽप्यरोगवान् ॥ ५ ॥ संपूर्णहृदयः क्रून्ये त्वारम्भे योगवान्भवेत् । द्वितीया विघटीकृत्य वायुर्भविति मध्यगः ॥ ६॥ दृडासनो भवेद्योगी पद्माद्यासनसंस्थितः । विष्णुग्रन्थेस्ततो भेदात्परमा-नन्दसंभवः ॥ ७ ॥ अतिशून्यो विमर्दश्च भेरीशब्दस्ततो भवेत् । तृतीयां यलतो भित्त्वा निनादो मर्दनध्वनिः ॥ ८ ॥ महाश्रून्यं ततो याति सर्वतिहि-समाश्रयम् । चित्तानन्दं ततो भित्त्वा सर्वपीठगतानिलः ॥ ९॥ निष्पत्ती वैष्णवः शब्दः क्रणतीति कणो भवेत् । एकीभूतं तदा चित्तं सनकादिमुनी हितम् ॥ १० ॥ अन्तेऽनन्तं समारोप्य खण्डेऽखण्डं समर्पयन् । भूमानं प्रकृतिं ध्यात्वा कृतकृत्योऽमृतो भवेत् ॥ ११ ॥ योगेन योगं संरोध्य भाव भावेन चाञ्जसा । निर्विकल्पं परं तत्त्वं सदा भूत्वा परं भवेत् ॥ १२ ॥ अहं भावं परित्यज्य जगद्भावमनीदशम् । निर्विकल्पे स्थितो विद्वानभूयो नाष्य नुशोचित ॥ १३ ॥ सिलेले सैन्धवं यहत्साम्यं भवति योगतः । तथात्ममन सोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ १४ ॥ यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रही यते । तदा समरसत्वं यत्समाधिरभिधीयते ॥ १५ ॥ यत्समत्वं तयोरः

ार

ष्टि

धा

का.

हैनं

व ।

ोगी

ाधे

या-

ह्या-

ग-

न-

त्रा-यते

यः

गः

11-

यां

हे-

ती

ft.

Τá

य

जीवात्मपरमात्मनोः । समस्तनष्टसंकल्पः समाधिरभिधीयते ॥ १६ ॥ प्रभा-श्रुन्यं मनःश्रुन्यं बुद्धिश्रुन्यं निरामयम् । सर्वश्रुन्यं निराभासं समाधिरभि-धीयते ॥ १७ ॥ स्वयमुचालिते देहे देही नित्यसमाधिना । निश्चलं तं विजा-नीयात्समाधिरभिधीयते ॥ १८ ॥ यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम् । तत्र तत्र परं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम् ॥ १९ ॥ इति ॥ २ ॥ अथ हेनं देवा ऊचुर्नवचकविवेकमनुब्हीति । तथेति स होवाच आधारे ब्रह्मचकं त्रिरावृतं अगमण्डलाकारम् । तत्र मूलकन्दे शक्तिः पावकाकारं ध्यायेत् । तत्रेव काम-रूपपीठं सर्वकामप्रदं भवति । इत्याधारचक्रम् । द्वितीयं खाधिष्टानचकं पद्द-दलम् । तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्करसदशं ध्यायेत् । तत्रेवो-ङ्याणपीठं जगदाकर्पणसिद्धिदं भवति । तृतीयं नाभिचकं पञ्चावतं सर्पकुटि-लाकारम् । तन्मध्ये कुण्डलिनीं वालाकैकोटिप्रभां तडित्प्रभां (तनुमध्यां) ध्यायेत् । सामर्थ्यशक्तिः सर्वसिद्धिप्रदा भवति । मणिपुरकचकं हृदयचक्रम् । अष्टदलमधोसुखम् । तन्मध्ये ज्योतिर्मयलिङ्गाकारं ध्यायेत् । सैव इंसकला सर्विप्रिया सर्वलोकवर्यकरी भवति । कण्ठचकं चतुरङ्गुलम् । तत्र वामे इडा चन्द्रनाडी दक्षिणे पिङ्गला सूर्यनाडी तन्मध्ये सुपुन्नां श्वेतवर्णां ध्यायेत्। य एवं वेदानाहता सिद्धिदा भवति । तालुचकम् । तत्रामृतधाराप्रवाहः । घण्टि-कालिङ्गमूलचकरन्ध्रे राजदन्तावलम्बिनीविवरं दशद्वादशारम् । तत्र सून्यं ध्यायेत् । चित्तलयो भवति । सप्तमं श्रूचकमङ्गुष्टमात्रम् । तत्र ज्ञाननेत्रं दीपशिखाकारं ध्यायेत् । तदेव कपालकन्दवाक्सि।द्धदं भवति । आज्ञाचक-मष्टमम् । ब्रह्मरन्ध्रं निर्वाणचक्रम् । तत्र सूचिकागृहेतरं धूम्रशिखाकारं ध्यायेत् । तत्र जालन्धरपीठं मोक्षप्रदं भवतीति परब्रह्मचक्रम् । नवममाकाश-चक्रम् । तत्र षोडशद्लपद्ममूर्ध्वमुखं तन्मध्यकर्णिकात्रिकूटाकारम् । तनमध्ये ऊर्ध्वशक्तिः । तां परयन्ध्यायेत् । तत्रैव पूर्णगिरिपीठं सर्वेच्छालिद्धि-साधनं भवति । सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषदं नित्यमधीते सोऽग्निप्तो भवति । स वायुपूतो भवति । स सकलधनधान्यसत्पुत्रकलत्रहयभूगजपशुमहिषीदासी-दासयोगज्ञानवान्भवति । न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तत इत्युपनिषत् ॥ ॐ वाखे मनसीति शान्तिः ॥ हरिः ॐ तस्सत् ॥

इति श्रीसौभाग्यलक्ष्मयुपनिषत्समाप्ता ॥ ११८॥

योगशिखोपनिषत् ॥ ११९ ॥

योगीश्वरं रमानाथं सचिदानन्दविग्रहम् ॥ योगशास्त्रप्रवक्तारं नोमि कैवल्यप्राप्तये ॥ १॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥

ॐ योगिशिखां प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानेषु चोत्तमाम्। यदा तु ध्यायते मन्नं गान्नकम्पोऽभिजायते ॥ १ ॥ आसनं पद्मकं बद्धा यञ्चान्यद्वापि रोचते । कुर्यान्नासाग्रदृष्टिं च हस्तौ पादौ च संयतौ ॥ २ ॥ मनः सर्वत्र संयम्य ओंकारं तत्र चिन्तयेत् । ध्यायेत सततं प्राज्ञो हत्कृत्वा परमेष्ठिनम् ॥ ३ ॥ एक-स्तम्भे नवद्वारे त्रिस्थूणे पञ्चदैवते । ईदशे तु शरीरे वा मितमानुपलक्षयेत् ॥ ४ ॥ आदित्यमण्डलं दिव्यं रिश्मिज्वालासमाकुलम् । तस्य मध्यगतो विद्वः प्रज्वलेदीपवर्तिवत् ॥ ५ ॥

इति योगिदाखोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

दीपशिखायां या मात्रा सा मात्रा परमेष्टिनः ॥ १ ॥ भिन्दन्ति योगिनः सूर्यं योगाभ्यासेन वै पुनः ॥ २ ॥ द्वितीयं सुपुन्नाद्वारं परिशुद्धं विसर्पति । कपालसंपुटं भित्त्वा ततः पश्यन्ति तत्परम् ॥ ३ ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ न ध्यायेजन्तुरालस्याच प्रमादतः । यदि त्रिकालमावर्तेत्स गच्छे-त्परमं पदम् ॥ १ ॥ पुण्यमेतत्समासाद्य संक्षेपात्कथितं मया । लब्धयोगेन बोद्धव्यं प्रसन्नं परमेष्ठिनम् ॥ २ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु यदा नाश्चाति किल्बि-षम् । तदा पश्यन्ति योगेन संसारच्छेदनं परं संसारच्छेदनं परमिति ॥ ३ ॥

इति योगशिखोपनिषत्सु तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

ॐ पूर्णमद इति शान्तिः ॥ इत्याथर्वणीया योगशिखोपनिपत्समाप्ता ॥ १९९॥

मुक्तिकोपनिषत् ॥ १२० ॥

ईशाद्यष्टोत्तरशतवेदान्तपटलाशयम् । मुक्तिकोपनिषद्वेद्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

हरिः ॐ पूर्णमद इति शान्तिः॥

हरिः ॐ ॥ अयोध्यानगरे रस्ये रत्नमण्डपमध्यमे । सीताभरतसौमित्रिशत्र-ब्राचैः समन्वितम् ॥ १ ॥ सनकाचैर्मुनिगणैर्वसिष्टाचैः शुकादिभिः । अन्यै-र्भागवतेश्चापि स्त्यमानमहर्निशम् ॥ २ ॥ धीविकियासहस्राणां साक्षिणं निर्वि-कारिणस् । स्वरूपध्याननिरतं समाधिविरमे हरिम् ॥ ३ ॥ भक्त्या ग्रुश्रूपया रामं स्तुवन्पत्रच्छ मारुतिः । राम त्वं परमात्मासि सचिदानन्दविग्रहः ॥ ४॥ इदानीं स्वां रचुश्रेष्ठ प्रणमामि सुहुर्सुहुः । स्वदूपं ज्ञातुमिच्छामि तस्वतो राम मुक्तये ॥ ५ ॥ अनायासेन येनाहं मुच्येयं भववन्धनात् । कृपया वद मे राम येन सुक्तो भवाम्यहम् ॥ ६ ॥ साधु पृष्टं महाबाहो वदामि श्रुणु तत्त्वतः । वेदान्ते सुप्रतिष्ठोऽहं वेदान्तं ससुपाश्रय ॥ ७ ॥ वेदान्ताः के रघुश्रेष्ठ वर्तन्ते कुत्र ते वद । हनूमञ्छृणु वक्ष्यामि वेदान्तस्थितिमञ्जसा ॥ ८॥ निःश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः । तिलेषु तैलबद्वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्टितः ॥ ९ ॥ राम वेदाः कतिविधास्तेषां शाखाश्च राघव । तासूपनि-षदः काः स्युः कृपया वदः तत्त्वतः ॥ १० ॥ श्रीराम उवाच । ऋग्वेदादि-विभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः। तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा ॥ ३१ ॥ ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः । नवाधिकशतं शाखा यजुषो सारुतात्मज ॥ १२ ॥ सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप । अथर्वणस्य ज्ञाखाः स्युः पञ्चाज्ञद्भेदतो हरे ॥ १३ ॥ एकैकस्यास्तु ज्ञाखाया एकैकोपनिषन्मता । तासामेकामृचं यश्च पठते भक्तितो मयि ॥ १४ ॥ स मत्सायुज्यपद्वीं प्राप्तोति सुनिदुर्लभाम् । राम केचिन्सुनिश्रेष्ट सुक्तिरेकेति चक्षिरे ॥ १५ ॥ केचित्त्वज्ञामभजनात्काइयां तारोपदेशतः । अन्ये तु सांख्ययोगेन भक्तियोगेन चापरे ॥ १६ ॥ अन्ये वेदान्तवाक्यार्थविचारात्परमर्पयः । सालो-क्यादिविभागेन चतुर्घा युक्तिरीरिता ॥ १७ ॥ स होवाच श्रीरामः । कैवत्य-मुक्तिरेकेव पारमार्थिकरूपिणी । दुराचाररती वापि मन्नामभजनात्कपे ॥१८॥

सालोक्यमुक्तिमामोति न तु लोकान्तरादिकम्। काइयां तु ब्रह्मनालेऽस्सि-नमृतो मत्तारमामुयात् ॥ १९ ॥ पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिं प्रामोति मानवः। यत्र कुत्रापि वा काश्यां सरणे स सहेश्वरः ॥ २०॥ जन्तोर्दक्षिणकर्णे त मत्तारं समुपादिशेत् । निर्धृताशेषपापौघो मत्सारूप्यं भजत्ययम् ॥ २१॥ सैव सालोक्यसारूप्यमुक्तिरिलाभिधीयते । सदाचाररतो भूत्वा हिजो निल-मनन्यधीः ॥ २२ ॥ मयि सर्वात्मके भावो सत्सामीप्यं भजस्यम् । सैव सालोक्यसारूप्यसामीप्या मुक्तिरिष्यते ॥ २३ ॥ गुरूपदिष्टमार्गेण ध्यायन्म-द्वणमन्थयम् । सत्सायुज्यं द्विजः सम्यग्भजेन्द्रमरकीटवत् ॥ २४॥ सैव सायुज्यमुक्तिः स्याद्रह्मानन्दकरी शिवा । चतुर्विधा तु या मुक्तिर्मदुपासनया भवेत् ॥ २५ ॥ इयं कैवल्यसुक्तिस्तु केनोपायेन सिध्यति । माण्डुन्यमेकमे-वालं मुमुक्षूणां विमुक्तये ॥ २६ ॥ तथाप्यसिदं चेज्ञानं दशोपनिषदं पठ। ज्ञानं लब्धवाऽचिरादेव सामकं धाम याखासि ॥ २७ ॥ तथापि दृहता नो चेद्विज्ञानस्याञ्जनासुत । द्वात्रिंशाख्योपनिषदं समभ्यस्य निवर्तय ॥ २८॥ विदेहसुक्ताविच्छा चेदष्टोत्तरशतं पठ । तासां क्रमं सशानित च श्रणु वश्यामि तत्त्वतः ॥२९॥ ईशकेनकठप्रश्रमुण्डमाण्ड्लयतितिरिः । ऐतरेयं च छान्दोत्यं बृहदारण्यकं तथा ॥ ३० ॥ ब्रह्मकैवल्यजाबाळधेताश्रो हंस आरुणिः। गर्भो नारायणो हंसो बिन्दुर्नादशिरःशिखा ॥ ३३ ॥ मैत्रायणी कौषीतकी बृहजाबा-लतापनी । कालाग्निरुद्रमैत्रेयी सुवालक्षुरिमन्त्रिका ॥ ३२ ॥ सर्वसारं निरा-लम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम् । तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥३३॥ परिवाद त्रिशिखी सीता चृडा निर्वाणमण्डलम् । दक्षिणा शरभं स्कन्दं महानारायणाह्नयम् ॥ ३४ ॥ रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च सुद्रलम् । शाण्डित्यं पैङ्गलं भिक्षुमहच्छारीरकं शिखा ॥ ३५ ॥ तुरीयातीतसंन्यासपरि-बाजाक्षमालिका । अन्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यात्मकुण्डिका॥३६॥ साविज्यात्मा पाशुपतं परं ब्रह्मावधूतकम् । त्रिपुरातपनं देवीत्रिपुरा कठ-भावना । हृद्यं कुण्डली भसा रुद्राक्षगणदर्शनम् ॥ ३७ ॥ तारसारमहावा-क्यपञ्चब्रह्माभिहोत्रकम् । गोपालतपनं कृष्णं याज्ञवल्कयं वराहकम् ॥ ३८ ॥ शाट्यायनी हयत्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम् । कलिजाबालिसौभाग्यरहस्यऋच-मुक्तिका ॥ ३९ ॥ एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम् । ज्ञानवैराग्यदं पुंसां वासनात्रयनाशनम् ॥ ४० ॥ पूर्वोत्तरेषु विहिततत्तव्छान्तिपुरःसरम् । वेदः

विद्यावतस्रातदेशिकस्य मुस्रात्स्वयम् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वाऽष्टोत्तरक्षतं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः । प्रारब्धक्षयपर्यन्तं जीवन्मुक्ता भवन्ति ते ॥ ४२ ॥ ततः काळवशादेव प्रारब्धे तु क्षयं गते। वैदेहीं मामकीं मुक्तिं यान्ति नास्त्वत्र संशयः ॥ ४३ ॥ सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम् । सकृच्छ्वणमात्रेण सर्वाघोधनिकुन्तनम् ॥ ४४ ॥ मयोपदिष्टं शिष्याय तुभ्यं पवननन्दन । इदं शास्त्रं सयादिष्टं गुद्धमष्टोत्तरं शतम् ॥ ४५ ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पठतां बन्धमीचकम् । राज्यं देयं धनं देयं याचतः कामपूरणम् ॥ ४६ ॥ इद-मद्योत्तरशतं न देयं यस्य कस्यचित्। नास्तिकाय कृतन्नाय दुराचाररताय वै ॥ ४७ ॥ मद्धक्तिविद्युखार्यापि शास्त्रगतेषु मुद्धते । गुरुभक्तिविद्दीनाय दातन्यं न कदाचन ॥ ४८ ॥ सेवापराय शिष्याय हितपुत्राय मारुते । मद्भकाय सुशीलाय कुलीनाय सुमेधसे ॥ ४९ ॥ सम्यक् परीक्ष्य दातन्यमेवमष्टोत्तरं शतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स मामेति न संशयः । तदेतद्दवाभ्युक्तम्— विद्या ह वे ब्राह्मणसाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमसि । असूयकायानु-जवे शठाय मा मा बूया वीर्यवती तथा स्याम् । यमेव विद्याश्वतमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपञ्चम् । तस्मा इमामुपसन्नाय सम्यक् परीक्ष्य दद्याद्वैष्ण-वीमात्मनिष्ठाम् ॥ इति ॥ १ ॥ अथ हैनं श्रीरामचन्द्रं मारुतिः पप्रच्छ ऋग्वेदादिविभागेन पृथक् शान्तिमनुत्रूहीति । स होवाच श्रीरामः । ऐतरेय-कौपीतकीनाद्विन्द्वारसप्रबोधनिर्वाणसुद्गलाक्षमालिकात्रिपुरासौभाग्यवह्नचा-नामृग्वेदगतानां दशसंख्याकानामुपनिषदां वाझ्ये मनसीति शान्तिः॥ ९ ॥ ईशावास्यबृहद्रारण्यजाबालहंसपरमहंससुवालमश्रिकानिरालम्बत्रिशिखीबाह्य-णम॰डलबाह्मणाद्वयतारकपैङ्गलभिक्षुतुरीयातीताध्यात्मतारसारयाज्ञवल्क्यशा-शुक्क यजुर्वेदगतानामेकोनविंशतिसंख्याकानामुपनिषदां व्यायनी मुक्तिकानां पूर्णमद इति शान्तिः ॥ २ ॥ कठवल्लीतैत्तिरीयकब्रह्मकैवल्यश्वेताश्वतरगर्भना-रायणासृतविन्द्रसृतनादकालाग्निरुद्रश्चरिकासर्वसारग्रुकरहस्यतेजोविन्दुध्यान-विन्दुब्रह्मविद्यायोगतस्वदक्षिणामूर्तिस्कन्दशारीरकयोगशिखेकाक्षराध्यवधूत-कठरुद्रहृद्ययोगकुण्डलिनीपञ्चब्रह्मप्राणाग्निहोत्रवराहकलिसंतरणसरस्वतीरह-स्यानां कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत्संख्याकानामुपनिषदां स ह नाववत्विति शान्तिः ॥ ३ ॥ केनच्छान्दोग्यास्णिमैत्रायणिमैत्रेयीवञ्रस्चिकायोगचूडामणि-

स-

स्य-

तैव या मे-

5 । नो

ाम यं भ

7-7-

दं

t-11

-

वासुदेवमहःसंन्यासान्यक्तकुण्डिकासावित्रीरुद्राक्षजाबालदर्शनजाबालीनां सामविद्रगतानां पोडशसंख्याकानासुपनिषदामाप्यायन्तिति शान्तिः॥ ४॥ प्रश्नमुण्डकमाण्ड्स्यार्थविशिरोऽथविशिखाबृहजाबालनृसिंहतापनीनारदपरिनाजकसीताशरभमहानारायणरामरहस्यरामतापनीशाण्डिल्यपरमहंसपरिनाजकसीताशरभमहानारायणरामरहस्यरामतापनीशाण्डिल्यपरमहंसपरिनाजकाञ्चपण्यास्यां स्पार्थवाजन्य स्पार्थिति क्षान्तिः॥ प्रश्नमुक्षवः पुरुषाः साधनवत्तृष्ट्यसंपन्नाः अद्यावन्तः सुकुल्यभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्तरस्यगुणवन्तः सक्ष्यकानामुपनिषदां भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ प्रश्न मुमुक्षवः पुरुषाः साधनवत्तृष्ट्यसंपन्नाः अद्यावन्तः सुकुल्यभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्तरस्यगुणवन्तः मकुटिलं सर्वभूतहिते रतं दयाससुद्रं सद्वसं विधिवदुपसंगम्योपहारपाणयोऽष्टेतरश्तरोपनिषदं विधिवद्धीत्य अवणसनननिद्धियासनानि नैरन्तर्येण कृत्वा प्रारव्धक्षयाद्देहत्रयभङ्गं प्राप्योपाधिविनिर्धुक्तघटाकाशवत्परिपूर्णता विदेह-सुक्तिः। सेव कैवल्यमुक्तिरिति। अत एव ब्रह्मलोकस्था अपि ब्रह्मसुस्देदान्तश्रवणादि कृत्वा तेन सह कैवल्यं लभन्ते। अतः सर्वेषां कैवल्यमुक्तिर्गनन्तः मात्रेणोक्ता। न कर्मसांख्ययोगोपासनादिभिरित्युपनिषत्॥

इति मुक्तिकोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तथा हैनं श्रीरामचन्द्रं सारुतिः पप्रच्छ । केयं वा तिसिद्धिः सिद्या वा किं प्रयोजनिमिति । स होवाच श्रीरामः । पुरुषस्य कर्नृत्वभोक्नृत्वसुखदुःखादि- लक्षणश्चित्तधर्मः क्षेत्ररूपत्वाद्धन्धो भवति । तिन्नरोधनं जीवन्मुक्तिः । उपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशवत्पारच्धक्षयाद्विदेहसुक्तिः । जीवन्मुक्तिविदेहसुक्त्योर्धिविनर्मुक्तवादेदुःखिनवृत्तिद्वारा नित्यानन्दावािः प्रयोजनं भवति । तत्पुरुषप्रयत्नसाध्यं भवति । यथा पुत्रकामेष्टिना पुत्रं वाणिज्यादिना वित्तं ज्योतिष्टोमेन स्वर्गं तथा पुरुषप्रयत्नसाध्यवेदान्तश्रवणादिज्ञातिसमाधिना जीवनमुक्तयादिलाभो भवति । सर्ववासनाक्षयात्त्वाभः । अत्र श्लोका भवन्ति—उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं मतम् । अत्र श्लोका भवन्ति पर्मार्थाय शास्त्रितम् ॥ १ ॥ लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च । देहवासनया ज्ञानं यथावन्नेव जायते ॥ २ ॥ द्विविधो वासनाव्यूहः शुभश्चेवाशुभश्च तौ । वासनौचेन शुद्धेन तत्र चेदनुनीयसे ॥ ३ ॥

तत्क्रमेणाञ्च तेनैव मामकं पदमाप्रुहि । अथ चेदञुभो भावस्त्वां योजयति संकटे ॥ ४ ॥ प्राक्तनस्तद्सौ यलाजेतच्यो भवता करे । ग्रुभाग्रुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित् ॥ ५ ॥ पौरुवेण प्रयक्षेत योजनीया शुमे पथि । अशुभेषु समाविष्टं शुभेन्देवावतारयेत् ॥ ६ ॥ अशुभाचालितं याति शुभं तस्मादपीतरत् । पौरुषेग प्रयत्नेन लालयेचित्तवालकम् ॥ ७ ॥ द्राग-अयासवज्ञाद्याति यदा ते वासनोदयम् । तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमम-रिमर्दन ॥ ८ ॥ संदिग्धायामपि भृदां शुभामेव समाचर । शुभायां वासनावृद्धौ न दोषाय मरुत्सुत ॥ ९ ॥ वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महा-सते । समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मताः ॥ १० ॥ त्रय एवं समं यावन्नाभ्यस्ताश्च पुनः पुनः । तावन्न पद्संप्राप्तिर्भवत्यपि समारातैः ॥ ११ ॥ एकैकशो निषेट्यन्ते यद्येते चिरमप्यलम् । तन्न सिद्धिं प्रयच्छन्ति मन्नाः संकीर्तिता इव ॥ १२ ॥ त्रिभिरेतैश्चिराभ्यसौईदयप्रन्थयो दृढाः । तिःश-ङ्कमेच बुट्यन्ति विसच्छेदाद्वुणा इव ॥ १३ ॥ जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या संसारवासना । सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् ॥ १४ ॥ तस्मान्सीम्य प्रयहेता पौरुपेण विवेकिना । भोगेच्छां दूरतस्यक्त्वा त्रयमेव समाश्रय ॥ १५ ॥ तस्माहासनया युक्तं मनो वद्धं विदुर्वधाः । सम्यग्वास-नया त्यक्तं युक्तमित्यभिधीयते । मनोनिर्वासनीभावमाचराशु महाकपे ॥ १६॥ सम्यगालोचनात्सलाद्वासना प्रविठीयते । वासनाविठये चेतः शममायाति दीपवत् ॥ १७ ॥ वासनां संपरित्यज्य मिय चिन्मात्रविग्रहे । यस्तिष्टति गत-व्ययः सोऽहं सचित्सुखात्मकः॥ १८॥ समाधिमथ कार्याणि मा करोतु करोतु वा। हृदयेनात्तसर्वेहो सुक्त एवोत्तमाशयः ॥ १९ ॥ नैष्कर्म्येण न तस्यार्थ-स्तसार्थोऽस्ति न कर्मभिः । न ससाधनजाप्याभ्यां यस निर्वासनं मनः ॥ २० ॥ संत्यक्तवासनान्मौनादते नास्त्युक्तमं पदम् ॥ २१ ॥ वासनाहीनम-प्येतचक्षुरादीन्द्रियं स्वतः । प्रवर्तते बहिः स्वार्थे वासनामात्रकारणम् ॥ २२ ॥ अयत्रोपनतेष्वक्षि दग्द्रव्येषु यथा पुनः । नीरागमेव पतति तद्रत्कार्येषु धीरधीः ॥ २३ ॥ भावसंवित्प्रकटितामनुरूपा च मारुते । चित्त-स्योत्पत्त्युपरमा वासनां मुनयो विदुः ॥ २४ ॥ द्वाभ्यस्तपदार्थैकभावना-दतिचञ्चलम् । चित्तं संजायते जन्मजरामरणकारणम् ॥ २५ ॥ वासना-

वशतः प्राणस्पन्दस्तेन च वासना । क्रियते चित्तवीजस्य तेन वीजाङ्करकमः ॥ २६ ॥ द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पन्दनवासने । एकस्मिश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः॥ २७ ॥ असङ्गन्यवहारत्वाङ्गवभावनवर्जनात् । शरीर-नाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते । वासनासंपरित्यागाचित्तं गच्छत्यचित्तताम् ॥ २८ ॥ अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः । असनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा ॥ २९ ॥ अब्युत्पन्नमना यावद्मवानज्ञाततत्पदः । गुरुशास्त्र-प्रसाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर ॥ ३०॥ ततः पक्ककषायेण नूनं विज्ञात-वस्तुना । शुभोऽप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनीघो निराधिना ॥ ३१॥ द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च । जीवन्मुक्तः सरूपः स्वादरूपो देहसुक्तिगः ॥ ३२ ॥ अस्य नाशमिदानीं त्वं पावने श्रृणु सादरम् ॥ ३३ ॥ वित्तनाशाभिधानं हि यदा ते विद्यते पुनः । सैन्यादिभिर्गुणैर्थुक्तं शान्ति-मेति न संशयः । भूयोजनमित्रिक्तं जीवनमुक्तस्य तन्मनः॥ ३४॥ सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते। अरूपस्तु मनोनाशो वैदेही-मुक्तिगो भवेत् ॥ ३५ ॥ सहस्राङ्करशाखात्मफलपञ्जवशालिनः ॥ ३६ ॥ अस्य संसारवृक्षस्य मनोमूलमिदं स्थितम्। संकल्प एव तन्मन्ये संकली-पशमेन तत् ॥ ३७ ॥ शोषयाशु यथा शोषमेति संसारपादपः । उपाय एक एवास्ति मनसः स्वस्य नियहे ॥ ३८॥ मनसोऽभ्युदयो नाशो मनोनाशो महोदयः । ज्ञमनो नाशमभ्येति मनो ज्ञस्य हि श्रङ्खला ॥ ३९॥ ताव-न्निशीव वेताला वरुगन्ति हृदि वासनाः । एकतत्त्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः ॥ ४० ॥ प्रक्षीणचित्तदर्पस्य निगृहीतेन्द्रियद्विषः । पश्चिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोगवासनाः ॥ ४१ ॥ हस्तं हस्तेन संपीड्य दन्तेर्दन्तान्विच्ण्यं च । अङ्गान्यङ्गेः समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः ॥ ४२ ॥ उपविद्योपवि-स्यैकां चिन्तकेन मुहुर्मुहुः । न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम् ॥ ४३ ॥ अङ्करोन विना मत्तो यथा दुष्टमतङ्गजः । अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगतिरेव च ॥ ४४ ॥ वासनासंपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् । एतास्ता युक्तयः पुष्टा सन्ति चित्तजये किल ॥ ४५॥ सतीयु युक्ति बेतासु हठानियमयन्ति ये । चेतसो दीपमुत्सुज्य विचिन्वत्ति नभोऽअनैः ॥ ४६ ॥ विम्ढाः कर्तुमु खुक्ता ये हठाचेतसी जयम् । ते निवधनित नागेन्द्रमुन्मत्तं

बिसतन्तुभिः ॥ ४७ ॥ द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणः । एकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयं दृढभावना ॥ ४८ ॥ सा हि सर्वगता संवित्प्राण-स्पन्देन चात्यते । चित्तैकाथ्याद्यतो ज्ञानमुक्तं समुपजायते ॥ ४९ ॥ तत्सा-धनमयो ध्यानं यथावदुपदिश्यते । विनाप्यविकृतिं कृत्सां संभवस्यत्य-यक्रमात् । यशोऽरिष्टं च चिन्मात्रं चिदानन्दं विचिन्तय ॥ ५० ॥ अपा-नेऽस्तंगते प्राणी यावसाभ्युदितो हृदि । तावत्सा कुम्भकावस्था योगिभि-र्याऽनुभूयते ॥ ५१ ॥ बहिरस्तंगते प्राणे यावन्नापान उद्गतः । तावत्पूर्णां समावस्थां बहिष्ठं कुम्भकं विदुः ॥ ५२ ॥ ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना । संप्रज्ञातसमाधिः स्याच्यानाभ्यासप्रकर्षतः ॥ ५३ ॥ प्रशानतवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददायकम् । असंप्रज्ञातनामायं समाधियोगिनां प्रियः ॥ ५४ ॥ प्रभाग्न्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम् । अतबावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मु-निभावितः ॥ ५५ ॥ अध्वेपूर्णमधःपूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् । साक्षा-द्विधिमुखो होष समाधिः परमर्धिकः ॥ ५६ ॥ दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणस् । यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥ ५७ ॥ भावितं तीव्रसंवेगादात्मना यत्तदेव सः । भवत्याशु कपिश्रेष्ठ विगते-तरवासनः ॥ ५८ ॥ ताद्यपूरो हि पुरुषो वासनाविवशीकृतः । संपर्यति यदैवैतत्सद्वस्विति विमुह्यति ॥ ५९ ॥ वासनावेगवैचित्र्यात्स्वरूपं न जहाति तत् । आन्तं पद्मयति दुर्देष्टिः सर्वं मदवशादिव ॥ ६० ॥ वासना द्विविधा शोक्ता शुद्धा च मलिना तथा। मलिना जन्महेतुः स्याच्छुद्धा जन्मविनाशिनी ॥ ६९ ॥ अज्ञानसुबनाकारा घनाहंकारशालिनी । पुनर्जनमकरी प्रोक्ता मिलना वासना बुधैः । पुनर्जनमाङ्करं त्यक्त्वा स्थितिः संभृष्टनीजवत् ॥ ६२ ॥ वहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथेव किम् । अन्वेष्टन्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योति-रान्तरम् ॥ ६३ ॥ दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः । य आस्ते कपि-शार्द्क ब्रह्म स ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ६४ ॥ अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राण्यने-कशः । ब्रह्मतस्यं न जानाति दुर्वी पाकरसं यथा ॥ ६५ ॥ खदेहाशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान् । विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते ॥ ६६ ॥ अत्यन्तमिलनो देहो देही चात्यन्तिर्मिलः । उभयोरन्तरं ज्ञाखा कस्य शौचं विधीयते ॥ ६७ ॥ वद्धो हि वासनावद्दो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयः । वासनां

संपरित्यज्य मोक्षार्थित्वमि स्वज ॥ ६८ ॥ मानसीर्वासनाः पूर्वं त्यन्तवा विषयवासनाः । मैत्र्यादिवासनानाञ्चीर्गृहाणामलवासनाः ॥ ६९ ॥ ता अप्यतः परित्यज्य ताभिन्यवहरन्निष । अन्तःशान्तः समन्नेहो भव चिन्मात्र-वासनः ॥ ७० ॥ तामप्यथ परित्यज्य मनोनुन्हिसमन्विताम् । शेषस्थिर-समाधानो मयि त्वं भव मास्ते ॥ ७९ ॥ अशब्दमस्पर्शमरूपमन्ययं तथाऽत्रसं नित्यमगन्धवन्य यत् । अनामगोत्रं मम रूपमीहशं भजस्व नित्यं पवनासना-विहन् ॥ ७२ ॥ दशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् । अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सक्लं विमुक्त ॐ ॥ ७३ ॥ दिस्तु अख्रोऽहमनिकियात्मको न सेऽस्ति कश्चिद्विषयः स्वभावतः । पुरस्तिरश्चोर्ध्व-सध्य सर्वतः सुपूर्णभूमाहिपतीह भावय ॥ ७४ ॥ अजोऽमरश्चेव तथाऽजरो-ऽम्बर्ध सर्वतः सुपूर्णभूमाहिपतीह भावय ॥ ०४ ॥ अजोऽमरश्चेव तथाऽजरो-ऽम्बर्ध सर्वतः सुपूर्णभूमाहिपतीह भावय ॥ ०४ ॥ तदेतहचाभ्युक्तम्—तद्विणोः परमं पदं सदा पश्चित्त सूरयः । दिवीव चञ्चराततम् ॥ तद्विमासो विपन्यवो परमं पदं सदा पश्चित्त सूरयः । दिवीव चञ्चराततम् ॥ तद्विमासो विपन्यवो जागृवांसः सप्तिन्थते । विष्णोर्थत्यरमं पदम् ॥ ॐसस्तिमित्युपनिषत् ।

ॐपूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्दयते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ इति मुक्तिकोपनिषत्मु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

ॐ ज्ञान्तिः ज्ञान्तिः ज्ञान्तिः ॥

इति गुक्कयजुर्वेदगता मुक्तिकोपनिषत्समाप्ता ॥ १२० ॥

संपूर्णोऽयमुपनिषत्समुचयः ।

ॐतत्सद्रह्मार्पणमस्तु ।

१. योग-उपनिषदः

योगराजोपनिषत

योगराजं प्रवक्ष्यामि योगिनां योगसिद्धये ।
मन्त्रयोगो लयश्चैव राजयोगो हठस्तथा ॥ १ ॥
योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
आसनं प्राणसंरोधो ध्यानं चैव समाधिकः ॥ २ ॥
एतच्चतुष्टयं विद्धि सर्वयोगेषु सम्मतम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मन्त्रं जाप्यं विशारदैः ॥ ३ ॥
साध्यते मन्त्रयोगस्तु वत्सराजादिभिर्यथा ।
कृष्णद्वैपायनाद्येस्तु साधितो लयसंज्ञितः ॥ ४ ॥
नवस्वेव हि चक्रेषु लयं कृत्वा महात्मिभः ।
प्रथमं ब्रह्मचकं स्यात् त्रिरावृत्तं भगाकृति ॥ ५ ॥
अपाने मूलकन्दाख्यं कामरूपं च तज्जगुः ।
तदेव विह्वकुण्डं स्यात् तत्त्वकुण्डलिनी तथा ॥ ६ ॥

तां जीवरूपिणीं ध्यायेज्योतिष्ठं मुक्तिहेतवे । स्वाधिष्ठानं द्वितीयं स्याचकं तन्मध्यगं विदुः॥ ७॥ पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसन्निभम्। तत्रोद्रीयाणपीठेषु तं ध्यात्वाकर्षयेज्जगत् ॥ ८॥ तृतीयं नाभिचकं स्यात्तन्मध्ये तु जगत् स्थितम् । पञ्चावर्तो मध्यशक्तिं चिन्तयेद्विद्युदाकृति ॥ ९ ॥ तां ध्यात्वा सर्वसिद्धीनां भाजनं जायते बुधः। चतुर्थं हृदये चक्रं विज्ञेयं तदधोमुखम् ॥ १०॥ ज्योतीरूपं च तन्मध्ये हंसं ध्यायेत् प्रयत्नतः । तं ध्यायतो जगत् सर्वे वश्यं स्यान्नात संशय: ॥ ११ ॥ पञ्चमं कण्ठचकं स्यात् तत्र वामे इडा भवेत्। दक्षिणे पिङ्गला ज्ञेया सुषुम्ना मध्यतः स्थिता॥ १२॥ तत्र ध्यात्वा शुचि ज्योतिः सिद्धीनां भाजनं भवेत्। षष्ठं च तालुकाचकं घण्टिकास्थानसुच्यते ॥ १३ ॥ दशमद्वारमार्गे तद्राजदन्तं च तज्जगुः। तत शून्ये रुवं कृत्वा मुक्तो भवति निश्चितम् ॥ १४ ॥ भूचकं सप्तमं विद्याद्विन्दुस्थानं च तद्विदुः। भुवोर्मध्ये वर्तुलं च ध्यात्वा ज्योतिः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥ अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं स्यात् परं निर्वाणसूचकम् । तं ध्यात्वा स्तिकाग्रामं धूमाकारं विमुच्यते ॥ १६ ॥ तच जालन्धरं ज्ञेयं मोक्षदं नीलचेतसम्। नवमं व्योमचकं स्यादश्रैः षोडशिभर्युतम् ॥ १७ ॥

संविद्ब्र्याच तन्मध्ये शक्तिरुद्धा स्थिता परा ।
तल पूर्णो गिरौ पीठे शक्ति ध्यात्वा विमुच्यते ॥ १८ ॥
एतेषां नवचकाणामेकैकं ध्यायतो मुनेः ।
सिद्धयो मुक्तिसहिताः करस्थाः स्युर्दिने दिने ॥ १९ ॥
एको दण्डद्वयं मध्ये पश्यित ज्ञानचक्षुषा ।
कदम्यगोलकाकारं ब्रह्मलोकं ब्रजन्त ते ॥ २० ॥
ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन अधःशक्तेनिकुञ्चनात् ।
मध्यशक्तिप्रवोधेन जायते परमं सुखं
जायते परमं सुखम् । इति ॥ २१ ॥

इति योगराजोपनिषत् समाप्ता

२. सामान्यवेदान्त-उपनिषदः

अद्वेतोपनिषत्

अहैतपुरुषस्य न द्वितीयो भेदोऽस्ति । स्थिरजंगममध्ये अहैतं ब्रह्म प्रकाशितम् । सर्वलोकमध्ये ब्रह्म द्विधारूपं विचरति । चैतन्यिचतेजसः अन्तरात्मा । मध्ये कैवल्यात्मा । एकैकं यथा रिवतेजः रिवर्भवेत् तथा अखिण्डतब्रह्म मायाजगत्त्रयं अवस्थात्यं परमात्मनः एकं भवित । या बुद्धिर्गर्भमध्ये सा बुद्धिर्वाल्यावस्था न भवित । या बुद्धिर्योवनावस्था सा बुद्धिर्य्वावस्था न भवित । जरावस्था कालसंप्रीकामेवधर्मकीयते कारणं तत्त्वज्ञानं भवित । ज्ञानप्रवोधो यिस्मिन्मध्ये मायामोहं पित्यज्य सर्वकर्मिविनिर्धक्तः स शब्दातीतोऽपि जायते । अथेतोऽपि अद्वैतपुरुषस्य पूर्णं ब्रह्म प्रतिभातिनतम् । यथा नदी जायते सागर एकोऽपि सागरप्रतिभातितः तथा ब्रह्म सर्वान्तरान्मा मध्ये प्रकाशितम् । नाप्रसं संपुटं सत्त्वरजस्तमोगुणरिहतं तत्तं चेति । यथा योगी वायुनिरोधनं उक्ताचरणगुरुराङ्किनोति किल्बिषम् । सर्वदिव्यदेहमध्ये परमात्मा प्रकाशितः विनिर्मक्तभवसागरः स्वर्गे देवमध्ये उत्तमस्वल्यस्य बुद्धिप्रकाशः अस्मिन्मध्ये मायामोहं पित्यजेत् । प्रकाशमधं उत्तमस्वल्यस्य बुद्धिप्रकाशः अस्मिन्मध्ये मायामोहं पित्यजेत् । प्रकाशमधं उत्तमस्वल्यस्य बुद्धिप्रकाशः अस्मिन्मध्ये मायामोहं पित्यजेत् । प्रकाशमधं

माया करोति । तैलमध्ये यथा यथा मिक्षका एकदेहिमध्ये ब्रह्म दशधा रूपं विचरित । चक्षुःप्राणमनोबुद्धिपश्चेन्द्रियाणि पञ्चतत्त्वानि तथा घटघटमध्ये बहुचन्द्रोऽपि दश्यते प्रकाशितः सर्वलोकमध्ये ब्रह्मणो रूपं विचरित तथा घटघटमध्ये बहुचन्द्रोऽपि दश्यते । अद्वैतं कथितं येन पुरुषोऽम्हो भवित । देवासुरमुनिमनुष्याणां अधः ऊर्ध्व चतुर्दिशम् । भुवर्णायुदेवादाव्यदेहितेरसकारो दश्यते रसकाराकारमध्ये भवित निराकारः अकारउकारमध्ये ब्रह्म परिपूर्ण सत्यसत्यं वेदवाक्यं वेदशास्त्रप्रतिभासितं कैवल्यं द्वैताद्वैतरहितं मनोमय आनन्दमयतत्त्वमयतेजोमयसर्वमयः विष्णुवृक्ष-फलं उत्पन्नं परमहंसपूर्णोऽपि जायते । ज्ञानं माता विज्ञानं पिता सगुणब्रह्म निर्गुणब्रह्मापितं अष्टमी च निर्गुणावस्था ब्रह्म शरीरज्ञानलहरी ब्रह्मणः । ब्रह्मणो यज्ञोपवीतमनिष्टं गंभीरमहे क्षेमसर्ववैराग्यप्रभावेन सन्तोषलाम-समस्तगुणोऽपि जायते । परमहंसपुरुषस्य द्वितीयं भेदं यथा जलरहिते भिन्नं प्राणप्रीतेयन् । द्वितीयवस्तुरहितः अखण्डितं वस्तु मध्ये प्रविष्टं अर्धस्थाने अर्धमृचस्थाने आत्मा दृश्यते आत्मव्यापकं ब्रह्मज्ञानविज्ञानम् ॥

इति अद्वैतोपनिष्त् संपूर्णा

आचमनोपनिषत्

ॐ आचमनविधिं व्याख्यास्यामः । जङ्घे पाणिपादौ प्रक्षाल्य पाङ्मुख उदङ्मुखो वा बद्धशिखो यज्ञोपवीती । ब्राह्मणस्य दक्षिणे हस्ते पञ्च तीर्थानि भवन्ति । अङ्गुल्यप्रे देवतीर्थ कनिष्ठिकामूले आर्षिकं तीर्थ

á

[अङ्गुष्ठतर्जन्योर्मध्ये] पैतृकं तीर्थ अङ्गुष्ठमूले ब्रह्मतीर्थ मध्ये अग्नितीर्थम् । न तिष्ठन्न हसन् न बुहुदैर्न च लोमैः गोकर्णाकृतिवत् कृत्वा मापममजलं पिबेत् । तेन त्रिराचामेत् । प्रथमं यः पिबेदग्वेदः प्रीणातु । द्वितीयं यः पिबेदजुर्वेदः प्रीणातु । तृतीयं यः पिबेत् सामवेदः प्रीणातु । लोमाधरोष्ठमथर्ववेदः प्रीणातु । मुखमित्रतृप्तं सर्वे प्रोक्षति । यः पादौ प्रोक्षति यश्चक्षुषी यश्चन्द्रमादित्यौ यन्नाभिं तेन पृथिवी यस्ततस्तेन विष्णुः । यच्छिरस्तेन रुदः । मूर्घि शतकुबेरः । सर्वदेवत्यास्ते प्रीणन्तु । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याचमनोपनिषत् समाप्ता

आत्मपूजोपनिषत्

ॐ तस्य निश्चिन्तनं ध्यानम् । सर्वकर्मनिराकरणमावाहनम् । निश्चल्ज्ञानमासनम् । समुन्मनीभावः पाद्यम् । सदामनस्कमध्यम् । सदामनस्कमध्यम् । सदामनस्कमध्यम् । सदामनस्कमध्यम् । सदामनिराचमनीयम् । वराकृतप्राप्तिः स्नानम् । सर्वात्मकत्वं दृश्यविलयो गन्धः । दृगविशिष्टात्मानः अक्षताः । चिदादीप्तिः पुष्पम् । सूर्यात्मकत्वं दीपः । परिपूर्णचन्द्रामृतरसैकीकरणं नैवेद्यम् । निश्चलत्वं प्रदक्षिणम् । सोऽहंभावो नमस्कारः । परमेश्वरस्तुतिमौनम् । सदासन्तोषो विसर्जनम् । एवं परिपूर्ण-राजयोगिनः सर्वात्मकपूजोपचारः स्यात् । सर्वात्मकत्वं आत्माधारो भवति । सर्वनिरामयपरिपूर्णोऽहमस्मीति मुमुक्षूणां मोक्षेकसिद्धिर्भवति ॥ इत्युपनिषत् ॥

- इत्यात्मपूजोपनिषत् समाप्ता

आर्षेयोपनिषत्

ॐ ऋषयो वै ब्रह्मोद्यमाह्न्यितवा ऊचुः परस्परमिवानुब्रुवाणाः । तेषां विश्वामित्रो विजितीयमिव मन्यमान उवाच । यदेतदन्तरे द्यावाप्टिश्रवी अनश्नुवदिव सर्वमक्षवद्यदिद्माकाशमिवेतश्चेतश्च स्तनयन्ति विद्योतमाना इवावस्फूर्जयमाना इव तद्वह्मोति । तस्योपव्याख्यानम् । यदिदमग्निमिज्वंलयन्ति पोप्छ्ययन्त्यद्भिरमिषीवयन्ति वद्धीभिरमिप्रश्नंति वरत्राभिरमिन्नंत्ययोघनैर्विध्यंति स्चीभिः निखानयंति शंकुभिरभितृन्दन्ति पड्वीशिकाभिरभिलिम्पन्ति मृत्स्वया तक्ष्णुवंति वासीभिः कृष्णंति फलिभिनेहैव शक्नुवत इति नास्येशीमहि नैनमतीयीमहि ॥

तदु ह जमदिमिनीनुमेने आर्तिमिव वा एष तन्मेने यदिदमन्तरेणैन-दुपयंति पर्यास इवैष दिवस्पृथिन्योरिति । स होवाच अन्तरिक्षं वा एतद्यदिदमित्थेत्थोपन्यास्त्ये इति । महिमानं त्वमुप्येह पश्यामीति यदिद-मस्मिन्नन्वायत्तमिति । स यदिदमेतस्मिन्नन्वायत्तं वेदाथ तथोपास्तेऽन्वायत्तो हैवास्मिन् भवति । तदेतदिवद्वानेवास्मिन्नन्वायत्तमुपास्ते वीवपद्यत् आर्ति-मृच्छेत् । तस्मादेवमेवोपासीत ॥

तमितरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति । तं होवाच । यदिदमिति द्यावापृथिव्योरनारंभिव नोपयन्ति नाभिचक्षते नाश्नुवन्ति । तस्योपव्याख्यानम् । यदिदमितश्चेतश्चाण्डकोशा उदयन्ति नापद्यन्त इव न विसंसन्त इव न स्वलंतीव न पर्यावर्तन्त इव । न ह वा एनत्केचिदु-पधावन्तो विन्दन्ति नाभिपश्यन्ति । यदिदमेक इदप एवाहुस्तम एके ज्योति-रेकेऽवकाशमेके परमं व्योमैक आत्मानमेक इति ॥

तदु ह भरद्वाजो नानुमेने। यदिह सर्वे वेत्थेत्थेति द्यूदिरे नास्य तद्रुपं पर्याप्तमिति। स होवाच। आर्तमिवेदं ते विज्ञानमि स्विदेनद्रोद-

स्योरेव पर्यायेणोपवन्वीमिह यदिदमित्थेत्थोपव्याख्यास्याम इति । मिहमानं त्वेवास्योपासे । यदिदमलान्वायत्तमिति । स यदिदमलान्वायत्तं वेदाय तथैवोपास्तेऽत्रैवान्वायत्तो भवति । स य इहान्वायत्तमिदमिवद्वानेवैतदुपास्ते पापीयान् भवत्यार्तिमार्च्छत्यविष्ठयते यदेवमेतदन्वायत्तमुपास्ते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । स य एतदेनमुपास्ते ॥

तिमतरः पप्रच्छ । कतमत् त्वमनार्ते मन्यस इति । स होवाच । यदेतिस्मन् मण्डलेऽचिदीप्यते बंश्रम्यमाणिमव चाकस्यमानिमव जाज्वल्यमानिमव देदीप्यमानिमव लेलिहानं तदेव मे ब्रह्म । तस्योपव्याख्यानं यदिदमद्भैव पराः परावतोऽभिपद्यते संपन्नमेवैतत् संमितमेव यथोपयातमालेवा-भिचक्षत इति । य एतदिभपद्येव गृह्णीयादथो विस्फुरन्तीव धावन्तीवोत्छवंतीबो-पिक्लप्यंतीव न हैवाभिपद्यन्ते । तदिदमन्तिके दवीयो नेदीय इव दूरतो न वा अस्य महिमानं किथ्यदेतीति ॥

तदु ह न मेने गौतमो यदिदमार्तमिव स्तिमितिमिव पर्यायेण परयन्तीवेमं मोघं संविदाना इति । य इमे पुण्डाः सुद्धाः कुलुम्भा दरदा वर्बरा इति । न ह वा असंविदाना एव द्वागिवामि तत्पद्यन्त इति । महिमानं त्वेवास्योपासे । य एतदिसम्बन्तरे हिरण्ययः पुरुषो हिरण्यवर्णो हिरण्यश्मश्रुरानखाग्रेभ्यो दीप्यमान इव । स य एवमेन-मुपास्तेऽतीव सर्वभूतानि तिष्ठंति सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । न ह वा एष परमतीवोदेति । यस्त्वेनं परमतीवोद्यन्तं पश्यन्नुपास्ते पापीयान् भवति वीवपद्यत आर्तिम् च्छिति । यस्त्वेनं परमन्द्यन्तं वेदाथ तथोपास्ते परं ज्योति-रुपसंपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । स य एवमेनमुपास्ते ॥

तमितरः पप्रच्छ। कतमत् त्वमनार्ते मन्यस इति । तं होवाच। विस्फुरंतीरेवेमा लेलायन्तीरिव संजिहाना इव नेदीयसितमा इव दवीय सितमा एव दवीयसितमा इव नेदीयसितमा एवेति । यदपि बहुधाचक्षीरन्न किञ्च प्रतिपद्यत इति तन्मे ब्रह्मेति ॥

तदु ह वसिष्ठो नानुमेने । यदिमा विस्फूर्जयत एवाभिपद्यन्ते वीवयन्ति मिथु चेति विचक्षतेऽकाण्ड इवेमा न ह वै परिमत्था कश्चनाक्षोत्य-संविदान इव । अप ये संविद्रते तदेतदन्तर्विचक्षत इति । मिहम्नः पश्येमा विजान इति । स य एविममा मिहम्न एवास्य पश्यन्नुपास्ते मिहम्न एवाश्चोति सर्वमायुरेति वसीयान् भवति । यस्त्विमा अवयतीरेवोपास्ते न परा संपद्यमाना नो एव परेति पापीयान् भवति वीवपद्यते प्रमीयते । अथ य इमाः परा संपद्यमाना एवोपास्ते परैव संपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति ॥

तिमतरः पत्रच्छ । कतमत् त्वमनार्त मन्यस इति । महाविज्ञानिमव प्रतिपदेनाध्यवसायमिव यत्नैतिदित्येत्येत्यभिपश्यति । अथ नेति नेत्येतिद्त्ये-त्येति । स वा अयमात्मा अनन्तोऽजरोऽपारो न वा अरे बाह्यो नान्तरः सर्वविद्धारूपो विघसः प्रसरणोऽन्तज्योतिर्विश्वभुक् सर्वस्य वृशी सर्वस्येशानः सर्वमिभिक्षिपन्न तमश्रोति कश्चन ॥

परोवरीयांसमभिप्रणुत्यमन्तर्जुषाणं भुवनानि विश्वा।
यमश्रवन्न कुशिकासो अप्ति वैश्वानरमृतजातं गमध्ययी॥ १॥
भरेभरेषु तमुपह्वयाम प्रसासिहं युध्ममिन्द्रं वरेण्यम्।
सत्नासा [ह] मवसे जनानां पुरुद्धतमृम्मिणं विश्ववेदसम् ॥ २॥ विश्ववेदसम् ॥ २॥

तदु ह प्रतिपेदिरे । ते वाभिवाद्यैवोपसमीयुः । नमोऽमये । नम इन्द्राय । नमः प्रजापतये । नमो ब्रह्मणे । नमो ब्रह्मणे ॥

इत्यार्षेयोपनिषत् समाप्ता

इतिहासोपनिषत्

ॐ वृषादर्विकुल १ ह वै शिबिकुलं वभूव । तस्यायमितिहास: कुल-विद्या बभूव । तद्यो ह स्मेममधीते स ह स्मै राजा भवति । स किंचित्प्राप्यान्तर्हितः । सोऽत्रवीतः । यो मामितिहासं प्राहयेत् । वरमसै द्यामिति । ततो ब्राह्मणः संयोगं संयुयुजे । तमादित्यात् पुरुषो भास्करवणों निष्कम्य स एनं ग्राह्याञ्चकार । तमप्रच्छत् । कोऽसीति वा वृषादविरिति । तस्माद्य इममितिहासमधीते । आदित्यलोके स कामचारो भवति । तस्माद इममितिहासमुपनीतो माणवको गृह्णीयात्। गृहीत्वाऽथ ब्राह्मणाञ्छावयेत्। मेघावी भवेत्। वर्षशतं च जीवेत्। षडङ्गं च वेदमवाप्नुयात्। तस्माद्य इमिनितिहासं पठन् पितृभ्य उदकाञ्जिलिं दद्यात् । अपूपकूला नद्यः सर्पिष्पायसकर्दमा उपतिष्ठेरन् । तस्माद्य इममितिहासं पठन् पितृभ्यः श्राद्धं दद्यात् । तद्यथा स्थूलया गयाश्राद्धं कृतं भवेत् । स्वधा सह पितृणाम् । एवमस्य पितृणामनन्ता तृप्तिर्भवति । य एवं वेद । सोऽयमितिहासः धन्यः पुण्यः पुत्रीयः पशव्य आयुप्यः स्वर्ग्यः। सार्वकालिकसर्वभय-प्रमोक्षणः । नाधिभ्यो भयं भवति । न चोरेभ्यः । न रक्षोभ्यः । नाध्वनि प्रमीयते । नाप्सु प्रमीयते । नामौ प्रमीयते । नाप्सु न शस्त्रेण वध्यते । नानपत्यः प्रमीयते । सायं प्रयुक्तानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातः प्रयुज्जानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायंप्रातः प्रयुज्जानः पापोऽपापो भवति । पापभाजो हि श्रोतृणामनस्यावतां पापा १ श्रापकामन्ति । एकशतं चान्ये साधव आगमाः । एतावती परिभाषा । अत ऊर्ध्व विद्यात् ।

जिह्वा रसं विजानाति हृदयं वेदयत् प्रियम् । चक्षुर्दिष्टः साक्षिभागो मनसा साधु पश्यति ॥

मनसा वाचं नयति चक्षुषा मीयते जगत्। भूतस्य कर्णौ श्रोतारावनं प्राणेन संमितम् ॥ असं प्राणो वृषाद्विः पर्जन्यो दत्तवान्महत् । अग्निश्च हव्यवाहनस्तदिदं गाव इद्धविः ॥ वित्तं बन्धुः प्रजातन्तुः कर्मरूपं बृहत्सस्वा । प्रज्ञा प्रतिष्ठा तन्तूनामिष्टापूर्तेः परायणम् ॥ सत्यं वदन्त्यनृतमुद्धहन्ति क्षीरं पिबन्ति मधु ते पिबन्ति । सोमं पिबन्त्यमृतेन सार्धे मृत्योः परस्तादमृता मवन्ति ॥ ये ब्राह्मणा ब्रह्मचर्ये चरन्त्यथो खल्वाहुर्वेदसंमितोऽयमितिहासः॥ धर्म चरति नाधर्म सत्यं वदति नानृतम् । दीर्घ पश्यति मा इस्वं परं पश्यति माऽपरम् ॥ ऋचो ह यो वेद स वेद देवान् यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम्। सामानि यो वेद स वेद सर्व यो मानसं वेद स वेद ब्रह्म ॥ यः कौद्धव्येन कुद्धस्तिष्ठति सोऽतिवाचं च दीक्षयति । योऽतिवाचं नयति स वै सर्वे द्विजः खलु मानसं वेदेति नः श्रुतम् ॥ तपोऽवधिः परमा ब्राह्मणस्य श्रद्धा माता पितरंसत्यमाहुः । योग आत्मा चरणमस्य बन्धुर्दमः प्रतिष्ठा विदुषो न भूमिम् ॥ दु:खं जन्म जरा दु:खं दु:खं मृत्यु: पुन: पुन: । संसारमण्डलं दु:खं पच्यन्ते यत्र जन्तवः ॥ यो ब्राह्मणः पापकृत् मन्त्रकृच स जीवति । ब्रह्मण्यो ब्रह्मकुच्छश्वत् ब्रह्मलोके महीयते ॥ तृणानि हीच्छन्ति कुशत्वमेव वृक्षा यूपत्वं पशवश्च गोत्वम् । सर्वाः प्रजा ब्राह्मणत्वं नरेन्द्र न ब्राह्मणत्वात परमस्ति किञ्चित ॥

शताहानशतशरः शतशकऋजीिषणाम् ।

शतं त्रद्य तपस्विनां कृपोऽरण्यस्य तिष्ठति ।

ऋतेनापिहिता गुहा श्रुतेनापिहिता गुहा ।

स्मृतेनापिहिता गुहा शमेनापिहिता गुहा ॥

दमेनापिहिता गुहा सत्येनापिहिता गुहा ।

आत्मनापिहिता गुहा ब्रह्मणापिहिता गुहा ॥

ब्रह्मिक्विषि मनसा वेदयन्तः पश्यन्तो गुह्ममपरं परं च ।

अनध्वगा अध्वस्र पारियण्णवः ब्राह्मणास्तु सहशाः सूर्येण ॥

यः च्छ्राद्धानि कुरुतेऽसंगतानि न देवयानेन पथा स याति ।

परिमुक्तं पिप्पलं बन्धनादिव स्वर्गाक्षोकाच्च्यवतेऽश्राद्धमित्रः ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनः तन्तुर्देविष्वाहुतः । तमाहुतमशीमहि । नावेदिवन्मनुतेदं बृहन्तम् । सर्वानुभुमात्मान १ संपराये । एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य । न कर्मणा वर्धते नो कनीयान् । तस्यैवात्मा पदिवत्तं विदित्वा । न कर्मणा लिप्यते पापकेन् ॥

> अग्निहोत्रं वलीवृद्धाः काले चातिथिरागतः । बालाश्च कुलवृद्धाश्च निर्दहन्त्यवमानिताः ॥ संभोजनी नाम पिशाचिभक्षा नैषा पितृन् गच्छित नोत देवात् । इहैव सा चरित क्षीणपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टबत्सा ॥ शृद्धायां सजते रेतः श्राद्धं भुक्त्वाऽथ यो द्विजः । स शृद्धयोनिसिञ्छिनं रेतसा सिश्चते पितृन् ॥ यः काममोहितः शृद्ध्यां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः । यावदुत्पाद्यते भूमौ तावितिष्ठेत् सुदारुणे ॥

अश्रोत्रियं ब्राह्मणं मोजयानस्य षोडश श्राद्धानि पितरो न भुझते । ततो निराशाः पितरो भवन्ति सेन्द्राः स्म देवाः प्रहरन्ति वज्रम् ॥ यावतः खलु पिण्डान् स प्राश्नन्ति हविषो नृचः। तावतः शूलान् प्रसति प्राप्य वैवस्वतं यमम् ॥ छिन्दन्ति दातृहस्तं च जिह्नाप्रमितरस्य च। मन्त्रपूतं तु यच्छाद्धममन्त्राय प्रयच्छति ॥ नियुक्तस्तु यतिः श्राद्धं देवे वा मांसमुत्सुजेत् । यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥ यथेरिणे बीजमुप्तं नरेन्द्र नास्य बप्ता रूमते बीजभागम् । एवं श्राद्धमप्रतिष्ठितं विनश्यति ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सङ्गमं न समाचरेत् । पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते रेतमोजनाः ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सपङ्क्तिः सहभोजनम् । षण्मासान् पितरोऽश्वन्ति कर्तुरुच्छिष्टमोजनम् ॥ श्राद्धं भुक्त्वा पुनः श्राद्धं भुङ्गीयाल्लोभमोहितः। नष्टं भवति तच्छ्राद्धं रौरवं नरकं वजेत् ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च भारमुद्धहते द्विजः। पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते भारपीडितांः ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं बीऽधिगच्छति । पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते पांसुभोजनाः ॥ अनमिकस्य वेदोऽमिर्वेदहीनोऽप्यनमिकः । सामिकोऽप्यनधीतः स्यात् स एषोऽनमिकः स्मृतः ॥

स्नीशृद्धबालिशादिभ्य उच्छिष्टं न प्रदापयेत् । यदि दद्यात प्रमादेन न तद्गच्छति तान् पितृन् ॥ आहितामिः सदा पात्रं सदा पात्रं तु वेदवित् । पात्राणामुत्तमं पात्रं शृद्धात्रं यस्य नोदरे ॥ पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनसङ्गमम् । दानं प्रतिमहं होमं श्राद्धभुक्चाष्ट वर्जयेत्॥ दन्तधावनताम्बूलं नखकेशनिकृन्तनम् । कर्ता चैव तु पूर्वेद्युर्भोक्ता चैव परेऽहिन ॥ दन्तघावनताम्बुलं क्षौराभ्यक्षनभोजनम् । रत्यीषधपरानं च श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥ श्राद्धकर्ता परश्राद्धं यस्तु भुङ्गीत लोलुपः । नष्टं भवति तच्छाद्ध रौरवं नरकं वजेत् ॥ निमन्तितेऽध्वानगते पुनर्भुक्त्वा तु वायसम् । करोति कर्म यत् गृष्ठः यामसूकरसङ्गमात् ॥ प्रतिप्रहेषु दारिद्रचं दानं निष्फलमेव च। होमे तु कुष्ठरोगी स्यात् स्वाध्यायैर्मृत्युमाप्नुयात् ॥ यस्यानृचस्तु भुङ्क्ते तस्य विद्धि ब्रह्मैव वित्तं पुरुषस्य केवलम्। धर्मः त्वधायां चरते ददाति च सत्यं रसः स्वादुतमो रसानाम् । सत्यं श्रेष्ठचं व्याहृतीनां तथैव प्रज्ञानं सप्तमं जीवनानाम् ॥ बाक्षणातिकमो नास्ति मूर्खो मन्त्रं विवर्जयेत् । ज्वलन्तमिमुत्सृज्य न हि भस्मनि ह्रयते ॥ यः शतं च सहस्राणां सहसं श्राद्ध आचरेत् । एकरमान्यत्त्रवित पूतः सर्वमहित ब्राद्मणः ॥

ब्राह्मणानां सहस्रेषु भुक्ता तु नव सप्त च । भवन्ति ज्ञायिके भूत्वा ध्यायिके च न संशयेत् ॥ कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यते । कुलं तारयते तेषां दशपूर्वो दशापराम् ॥

त्राह्मणो द्विपदां वरः । चतुष्पदां गौरुत्तमा । लोहानां काश्चनं वरम् । तिलेषु तैलं दिधनीव सिर्पः । यदापस्त्रोतस्सरण्योरिवामिः । एवमात्मात्मनि

जायते ॥

सत्येनैनं मनसा साधु पश्यित सत्येनैनं मनसा वाचं नयित ॥
प्राङ्मुखाश्च सुरा हव्यं पितरश्चाप्युदङ्मुखाः ।
प्रितगृह्धन्ति संवाधमिमना ब्राह्मणेन च ॥
वेदाध्यायीति यो विप्रः सततं ब्राह्मणः स्थितः ।
साचारः सामिहोत्री च सोऽमिर्वे कव्यवाहनः ॥
विकिरं प्रकिरं दद्याद्विकिरं ह वे प्रकिरं भुज्जीत । तृप्तिरूपाणि

दर्शयन् ॥

परिश्रिते त्वेव दद्याद्ध्लीका हि पितरः स्मृताः । कव्यादाः पितरस्सर्वे तिलज्योतिर्घृतप्रियाः ॥ देशकालपात्रमन्त्राष्टशौचेप्साः कृष्णपक्षक्षयोत्सवाः ॥ उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं मृतकर्पटम् । श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कृतपस्तिलाः ॥ त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कृतपस्तिलाः । त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमकोधमत्सराः ॥ दिवसस्याष्टमे भागे यदा मन्दायते रविः । स कालः कृतपो नाम पितृणां दत्तमक्षयम् ॥

आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारोहणं बुधः। विधिज्ञा विधिमास्थाय रौहिणीं नैव लङ्घयेत् ॥ रौहिणीं लब्धयेचस्तु ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा । आसुरं तद्भवेच्छाद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ॥ यातुषानाश्च रक्षांसि पिशाचा असुरास्तथा। एते हरन्ति वै श्राद्धं दैवं यत्र निवर्तयेत् ॥ राक्षसं भवति श्राद्धं दैवं यत्र निवर्तयेत् । तत्र रक्षांसि पैशाचा न च विद्वेष्टि यो जनः॥ पुरो देवाः प्रपद्यन्ते पश्चाहैवं विसर्जयेत् । पक्षेस्तु कुक्कुटो हन्ति निकर्षेण तु स्करः। आगतं गतया श्वानं चक्षुषा वृषळीपतिः॥ यस्य देशं न जानाति नामगोत्रे त्रिपूरुषम् । कन्यादानं पितृश्राद्धं नमस्कारं च वर्जयेत् ॥ यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् । स वै दुर्बाह्मणो नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ अष्टवर्षा भवेत् कन्या नववर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेत् गौरी ह्यत ऊर्ध्व रजस्वला ॥ पितृगेहेषु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । सा कन्या वृषळी नाम तत्पतिर्वृषळीपतिः॥ वृषळीपतिभुक्तानि श्राद्धानि च हवींषि च। पितरो न प्रतिगृह्णन्ति दाता स्वर्ग न गच्छति ॥ महिषीत्युच्यते भार्या भगेनोपाजितं धनम् । तद्द्रव्यमुपजीवन् यः स वै माहिषिकः स्मृतः ॥ समर्घे धनसुद्धृत्य महार्घे यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ अमे माहिषिकं दृष्ट्या मध्ये तु वृषळीपतिम् । अन्ते वार्धुपिकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥ श्वित्री कुष्ठी तथा चैव कुनखी स्यावदन्तकः। रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पंगुः पुनर्भवः ॥ अवकीर्णी कुण्डगोळावायुधी परदारगः। भृतकाध्यापकः क्लीवः कन्यादूष्यभिशस्तकः ॥ मित्रधुक् पिशुनश्चैव विकयी वेदनिन्दकः। मातापितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषळात्मजः ॥ परपूर्वापरस्तेन शूद्रजः श्राद्धकर्मणि । रजस्स्त्रीसंगमी चैव परोपद्रवकारिणः ॥ देवब्राह्मणघाती च तेषां द्रव्यापहारिणः। एते गुणा न वक्तव्याः श्राद्धकर्मबहिष्कृताः ॥ भ्रातन्वा भोजयेच्छ्राद्धं पुत्रं वाऽपि गुणान्वितम् । आत्मा च वाऽपि भुझीत न विप्रं वेदवर्जितम् ॥ तेभ्यः श्राद्धं तु दत्तं चेत्तच्छाद्धं निष्फलं भवेत्। निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवाः सहर्षिभिः॥ मदमोहेन यः शृद्ग्यां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः । यावत्तिष्ठेत् स वै भूमौ तावत्तिष्ठेत् सुदारुणे ॥ क्षीरं वा दिध वा तैलं तक्रमाज्यं मधूनि च। एतेषां विक्रयी विप्रो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं तावद्भुजीत वाग्यतः । पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरो यावदर्पिताः । तृप्तेस्तु पितृभिः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ य इमां देवीमिह वेद सर्वे सर्वेषु भूतेषु प्रतिष्ठितानास् ।

सती नैनं पश्यन्ति हृदयं न शोकाः न पुत्रदाराः पशुचोदमाहितम् ॥

अपां रसो मधुनस्सर्पिषश्च क्षीरस्य चान्नस्य च संस्थितस्य ।
एते रसानां सरसेन श्राद्धं प्राप्नुवन्ति वाग्यतानां संयुतानाम् ।
उदेहि सूर्यं वरं वृणीष्वेति राजोवाच पञ्चेमानि रत्नानि गौर्मेऽजरु
दुद्धति । हविमेंऽजस्नं विल्रहृति । त्विषिमेंऽजस्नं पिनष्टि । रथो मे सर्वात्
समुद्रान् संयाति । आदित्यवर्णे इमे मणिकुण्डले इति । अथो ह्येवमेवैषामेकं
वृणीष्वेति । ब्राह्मण उवाच । यावत्संपृच्छसीति भार्यो समप्रच्छत् ।
हविर्गृहाणेति भार्योवाच । पुत्रं समप्रच्छत् । रथं गृहाणेति पुत्र उवाच ।
कन्यां समप्रच्छत् । मणिकुण्डले इति कन्योवाच । दासीं समप्रच्छत् । हषदं
गृहाणेति दास्युवाच । अनुपेत्योवाच हविर्मार्या रथं पुत्रः कन्या मणिकुण्डले
दासी दषदमिच्छति । गामहं शिबिसप्तमे इति । सर्वाण्येवमेवैनं ददामीति
होवाच वृषादिवस्तिददमितिहासो ब्रह्मादित्यः पुरोगाय । पुरोगः काश्यपाय ।
काश्यपो भरद्वाजाय । भरद्वाजः बहुभिः अनेकमहाराजाय । ततः प्रच्य . .

धनपतेर्द्विजः ब्राह्मणकुले जातस्म . . . भवति ॥ सप्तजन्मकृतात्मापान्मुच्यते यस्तु पर्वभिः । कन्यागते यदा सूर्ये तिष्ठन्ति पितरो गृहे ॥

दिने दिने गयातुल्यं भरण्यां गयपञ्चके । दशतुल्यं व्यतीपाते पक्षमध्ये तु विंशतिः॥ द्वाद्द्यां शतमित्याहुरमावास्यां सहस्रकम् । आश्वयुक्छुक्कपक्षस्य द्वितीयामयुतं फलम् ॥ अन्नेन वाऽथवा येन शाकमूलफलेन वा। तस्मात् सर्वप्रयनेन कुर्याच्छ्राद्धं महालयम् ॥ शून्या प्रेतपुरी तत्र याबद्धश्चिकदर्शनात्। वृश्चिका दर्शनं यान्ति निराशाः पितरो गताः॥ ततः स्वभवनं यान्ति शापं दत्वा सुदारुणम् । अहोवन्नवाच्यमिति केचित् पितरो वदन्ति ॥ अपुत्राश्चैवापरावो लोके सन्ति च निन्दिताः। रौरवे नरके घोरे यावदाभूतसंष्ठवात् ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाऽश्वमेधं वा लीलं वा वृषमुत्सुजेत् ॥ श्वेतः खुरविषाणाभ्यां मुखे पुच्छे च पाण्डुरम् । रोहितो यस्तु वर्णेन स लीलो वृष उच्यते ॥ गौरीं वा वरयंत् कन्यां चरेद्वा श्रवणे न्ति जपति ॥ संहितायां फलमवाप्नोतीत्याह भगवान् ब्रह्मा । अष्टो ब्राह्मणान् सम्यक् ग्राहयेन्मेधावी भवेत्। वर्षशतं च जीवेत । षडङ्गं च वेदमवामुयात् ॥

वृद्धो वसूनि पुरोवाच पुत्रेभ्यः परमं निधिम् । एतद्घो धनमार्याणां मन्त्राश्चैव त्रतानि च ॥ नमो नमश्च मन्त्राश्च त्रतानि च नमो नमः। एतत् सकलं ब्रह्मप्रणवस्तुतिः काण्वशाखे पारयति॥

इति इतिहासोपनिषत् संपूर्णा

श्राद्धकाले विशेषेण पितॄणां दत्तमक्षयम् । मनोजन आयमानो आया . . . तरत्परम् ॥ दिवं मुपर्णं गत्वा या सोमं न . . . महत् । मुपर्णोऽसि गहत्मान् दिवं गच्छ मुनः पत ॥ यस्तिलञ्योतिस्तिंशत् वृषादिर्वमुनः पत ॥

चतुर्वेदोपनिषत्

ॐ अथातो महोपनिषद्मेव तदाहुः । एको ह वै नारायण आसीत्। न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्निः न वायुः नेमे द्यावापृथिवी न नक्षताणि न सूर्यः। स एकाकी नर एव। तस्य ध्यानान्तस्स्थस्य ठठाटात् स्वेदोऽपतत्। ता इमा आपः। ता एते नो हिरण्यमयमत्रम्। तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायतः। स ध्यातपूर्वामुखो भूत्वा भूरिति व्याहृतिः गायत्रं छन्द ऋग्वेदः। पश्चिमामुखो भूत्वा भूरिति व्याहृतिस्त्रैष्टुमं छन्दः यजुर्वेदः। उत्तरामुखो भूत्वा भूविरित व्याहृतिर्जागतं छन्दः सामवेदः। दक्षिणामुखो भूत्वा जनदिति व्याहृतिरानुष्टुमं छन्दोऽथवेवेदः।।

सहस्रशीर्षं देवं सहस्राक्षं विश्वसंभवम् । विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ॥ विश्वमेवेदं पुरुषं तं विश्वमुपजीवति । ऋषिं विश्वेश्वरं देवं समुद्रे तं विश्वरूपिणम् ॥ पद्मकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकोशसिन्नभम् ।

हृदये चाप्यधोमुखं सतस्यत्यैशीत्कराभिश्च ॥

तस्य मध्ये महानग्निर्विश्वाचिर्विश्वतोमुखः ।

तस्य मध्ये विहिशिखा अणीयोध्वा व्यवस्थिता ॥

तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।

स ब्रह्मा स ईशानः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ॥

य इमां महोपनिषदं त्राह्मणोऽधीते अश्रोतियः श्रोतियो भवति । अनुपनीतः उपनीतो भवति । सोऽग्निप्तो भवति । स वायुप्तो भवति । स स्र्यप्तो भवति । स स्र्यप्तो भवति । स सर्वेदं वैर्ज्ञातो भवति । तेन सर्वेः ऋतुभिरिष्टं भवति । गायच्याः षष्टिसहस्राणि जप्तानि भवन्ति । इतिहासपुराणानां सहस्राणि जप्तानि भवन्ति । प्रणवानामयुतं जप्तं भवति । आचक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति । आसप्तमात् पुरुषं पुनाति । जाप्येन अमृतत्त्वं च गच्छिति अमृतत्वं च गच्छिति इत्याह भगवान् हिरण्यगर्भः ॥

देवा ह वै स्वर्ग लोकमायंस्ते देवा रुद्रमप्टच्छंस्ते देवा ऊर्ध्वबाह्वो रुद्रं स्तुवन्ति । भूस्त्वादिर्मध्यं भुवस्ते स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा तिथा शान्तिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वे विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम् । अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवा नमस्याम धूर्तेरमृतं मृतं मर्त्यं च सोमस्र्यपूर्वजगदधीतं वा यद्धरं प्राजापत्यं सोम्यं स्कूमं ग्राहं ग्राहेण भावं भावेन सौम्यं सौम्यंन सूक्ष्मं सूक्ष्मंण ग्रसति तस्मै महाग्रासाय नमः ॥

इति चतुर्वेदोपनिषत् संपूर्णा

चाश्चषोपनिषत्

ॐ अथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षूरोगहरां व्याख्यास्यामः। यच्चक्षूरोगाः सर्वतो नश्यंति। चाक्षुषी दीप्तिभीविष्यतीति। तस्याश्चाक्षुषी-विद्याया अहिर्बुष्ट्य ऋषिः। गायती छन्दः। स्यो देवता। चक्षूरोगिनृवृत्तये जपे विनियोगः। ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाऽहं अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूल्य निर्मूल्य। ॐ नमः चक्षुस्तेजोदाते दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायाम्वतय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमः स्र्याय। ॐ नमः वक्षात्रो नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवाञ्छिचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। य इमां चक्षुष्मितिद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुले अन्धो भवति। अष्टो ब्राह्मणान् प्राह्यित्वा विद्यासिद्धिर्भवति।।

ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं पुरुषं ज्योतिरूपं तपन्तम् । विश्वस्य योनिं प्रतपन्तमुग्रं

पुरः प्रजानामुद्यत्येष सूर्यः ॥

ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिन्यहोवाहिनी स्वाहा । ॐ वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः । अपध्वान्तमृण्रीहि पृद्धि चक्षुर्मुसुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् । पुण्डरीकाक्षाय नमः । पुण्करेक्षणाय

नमः। अमलेक्षणाय नमः। कमलेक्षणाय नमः। विश्वरूपाय नमः। महाविष्णवे नमः॥

इति चाक्षुषोपनिषत् संपूर्णा

[अस्या उपनिषदः " चक्षुरुपनिषत्, चक्षूरोगोपनिषत्, नेत्रोपनिषत्" इति नामान्त-राणि वर्तन्ते ।]

छागलेयोपनिषत्

ॐ ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत । तेऽश्व कवषमैद्धषं दास्याः पुत्र इति दीक्षाया आच्छिदन् । ते होचुः । अप वा एतदृग्यजुषादप साम्न इति । स होवाच । भगवन्तो यदिदं सत्रमाध्वै यद्दचोऽधीध्वै यद्यजूंषि यत्सामानि कस्यायं महिमेति । ते होचुर्जाझणा वाव स्मस्तेषामेवमिति ॥

स होवाच। यदिदमिच्छाचिदिच्छाचिदीक्षध्वै किं तद्येन ब्राह्मण इति। ते होचुर्यदिदम्मयजुषैरेवोपवत्वन्नो जुहुवुर्यद्वैनमुपाघ्रासिषुर्यदुपानेषतैतद्वाद्मणा इति । स हाविदूर एव शवक्षित्यानेयमच्छावदमुपदर्शयन्नुवाच । यदिद-मृग्यजुषैरुपवत्वं जुहोपाघ्रासीदथोपानेष्ट नैतदत्यगादिति । किं तदिति होचुः॥

स होवाच । नैमिषेऽमी शुनकाः सत्नमासत । तेषामात्रेयोऽच्छावदः सर्वाण्येवावर्तयद्यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं यन्मरुत्वतीयमित्यथ यन्महावीरसंभरणानि यदमेरिभवर्तनानि यद्राजामि-क्रयणानि यदभिषाविलाणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविंश इति । कास्य तदगादिति । तेहाभुहन् । अथैते सर्व एवोपसमेत्योचुरुप नो नयस्वेम एव त इति । स ह स्मयमान उवाच ।

संपञ्यध्वा एव मा प्रमदत । न होत्तमानधम उपनेतेति । ते होचुर्भैव स्मोपनथा गतिस्तु त्वमिदिति ॥

स होवाच । कुरुक्षेत्र एवोपसमेत्य ये बालिशास्तानुपाध्वै । ते व इदं प्रवक्ष्यन्तीति । ते ह तत एवोपसमेत्य कुरुक्षेत्रमुपजम्मुः । ते ह बालिशानेवोपासदन् । तानिम उपसीदत एव विदांचकुरिति कामुका इति । ते होचुर्यत्किमिव बालिशानुपासदत महाशाला वै महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः सन्तः यन्महाशाला महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः कुरुक्षेत्रमध्यासत इति । ते हान्योन्यस्याभिसमीक्षामासुः । ते हापश्यन्त हास्मान्मिथुचिदेवासाववोच्द्वा-लिशानेव चैतान्विचक्षतेति । ते होचुर्नमस्यानतीव वचो रेचियप्यथ यदन्त-नोंऽसाविह प्राहैयात् । यथैव तु स्मोपसन्ना अथानस्यवो यथोपश्रद्धिन इति ॥

ते होचुः । किं वा अस्मत्प्रतीच्छथेति । ते होचुः । नैमिषेऽमी शुनकाः सत्रमासत । तेषामात्रेयोऽच्छावदः सर्वाण्येवावर्तयत् । यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं यन्मरुत्वतीयमित्यथ यन्महा-वीरसंभरणानि यदमेरभिवर्तनानि यद्राजाभिक्रयणानि यदभिषावित्राणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्यं चदशः सप्तदश एकविंश इति । कास्य तदगाद्यदयं शवशयितमशयिष्टेति । ते होचुर्नहासंवत्सरवासिनामनुब्रूयादिति स्तु नः पूर्वेऽन्वशिषन् । यत्संवत्सरं वत्स्यथाथ वेदिप्यथेति । ते ह संवत्सरमृषुः ॥

ततो ह बालिशा ऊचुरवात्त वा संवत्सरिममे ब्राह्मणाः। हन्तैषामनुब्रवामेति। ते ह गृहीत्वैवैनान् पथोऽभिसमीयुः। ते ह संक्रीडत एव कूबरिणो रथकट्यामविन्दन्। ते होचुः संपश्यध्वमिति। किं हीति। कूबरिणमेव सौम्या इति। तथेति। कथिमेवेति। यथैवोपस्रत्वरो वार्षि-स्तर्यगुल्ललन्तीभिरिव वीचिभिः शफाभिरेवोपस्कन्दन्नुत्स्रवेदेवं हैवैषोभिस्तर्यगुल्ललन्तीभिरिव वीचिभिः शफाभिरेवोपस्कन्दन्नुत्स्रवेदेवं हैवैषोभिस्तर्यगणामेव धुर्याणां चंक्रमतामरीणामुत्स्रवतीति। यथैवासौ प्रतिस्त्वरेण

समः समेव क्रीडेदेवं हैष संक्रीडतीति । यथैवासावितश्चेतोऽमृतश्चामृतश्च संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्रात्यभिपातयेदेवं हैष इतश्चेतश्चा-मृतश्च संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्रात्यभिपातयित । यथैवासौ राजानं वा राजपुरुषं वा निलयनं प्रायेदेवं हैवैष यन्ता निलयनं प्रापयतीति । ते होचुरपीदं साधीय इति । साधीय इति होचुः । ते ह तस्यैव पन्थानमनुप्रातिष्ठन्नन्तं ह सायाहन्येवोपसंपादयामासुः ॥

तं यदावसायाश्वांस्तक्षापोद्यापागादय बालिशा व्यलिष्ट । अहीदृशत् । कथिमिवेति । ते होचुर्यथैतं काष्टभारमानद्धमनुपश्यामस्तथैवावशो भूस्थः स्पन्दते । नेक्कते न विवर्तते न च वीत इति । ते ह बालिशा ऊचुर्यदयमी-दृगभूत् किमस्यापागादिति । तक्षेवेति । तथैवैतत् सौम्या इति । आत्मा वा अस्य प्रचोदियता करणान्यश्वाः शिरा नद्धयोऽस्थीन्युपप्रहा असृगाञ्जनं कर्म प्रतोदो वाक्यं काणनं त्वगुपानह इति । स यथा प्रचोदियत्रापोज्झितो नेक्केक्च रुरुवीतवं हैष प्राज्ञेनात्मनापोज्झितो न ब्रूते न चैत्यि न श्वसत्यिप प्रयत्यि श्वान उपधावन्त्यि काकाः पतन्त्यि गृधा आस्कन्दन्ति शिवा जिघत्सन्तिति । ते तत एव द्रागिव व्यज्ञासिषुः । ते ह पादयोरेवाभिमर्श्य बालिशानृचुः । न ह वाव नस्तथेन निष्कुर्म इममेवेत्यञ्जिलं कृत्वोपास्थिष-तेत्याह भगवान् छागलेयस्त इमे स्रोकाः —

यथैतत्कूबरस्तक्ष्णापोज्झितो नेङ्गते मनाक् । परित्यक्तोऽयमात्मा नस्तद्धदेहो विरोचते ॥ १ ॥ यदस्य प्रधयश्चका युगमक्षो वरत्रिका । प्रतोदश्चर्मकील ॥ २ ॥

एतावानेवोपलब्धः

तुरीयोपनिषत्

कलातीतश्चेति । तन्न चत्वारः । अकारश्चायुतावयवान्वितः । उकारः शतावयवान्वितः । मकारः सहस्रावयवान्वितः । अर्धमात्रप्रणवोऽनन्तावय-वान्वितः । सगुणो विराट्प्रणवः । संहारो निर्गुणप्रणवः । उभयात्मक उत्पत्तिप्रणवः । यथार्थकथनोमित्युच्चार्याभिमानोत्पत्तिप्रणवः । सर्वोपसंहारेण संहारप्रणवः । उभयात्मकत्वात् विराट्प्रणवः । उत्पत्तिप्रणवो दीर्घप्रुत-विराट् । प्रत्यत्प्रप्रसंहारः । विराट्प्रणवः षोडशमात्रान्वितः । षट्त्रिशत्वायुतः । षोडशमात्रात्मकं कथमित्युच्यते । अकारः प्रथमः । द्वितीय उकारः । मकारस्तृतीयः । अर्धमात्रा चतुर्थः । नादः पश्चमः । विन्दः षष्टः । कला सप्तमः । शक्तिरष्टमी । शान्तिर्नवमी । समाना दशमी । आत्मनैकादश । मनोन्मना द्वादश । वैखरी त्रयोदश सध्यमा चतुर्दश । पर्यन्ती पश्चदश । परा षोडश । इति षोडशमात्रात्मकः प्रणवः । षोडशमात्रा जामत्त्वप्रसुषुतितुरीयावस्थाभेदैरैकैकमात्राचातुर्विध्यमेत्य । षोडशमात्राश्चतुष्पष्टिभेदमेत्य । पुनश्चतुष्पष्टिमात्राः प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यमापाद्याष्टा-विंशत्युत्तरभेदमात्रास्वरूपमासाद्य सगुणनिर्गुणत्वमेत्य एकोपि ब्रह्म प्रणवः ॥

सर्वाधारः परं ज्योतिरेष सर्वेश्वरो विभुः । सर्वदेवमयः सर्वप्रपञ्चाधारगर्भितः । सर्वाक्षरमयः कालः सदसद्भक्तिवर्जितः ॥ इति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इति तुरीयोपनिषत् समाप्ता

द्योपनिषत्

ॐ अथातः श्रीमद्द्वयोत्पत्तिः । वाक्यो द्वितीयः । षट्पदान्यष्टादश । पञ्चविंश्रत्यक्षराणि । पञ्चदशाक्षरं पूर्वम् । दशाक्षरं परम् । पूर्वो नारायणः शोक्तोऽनादिसिद्धो मन्त्ररत्नः सदाचार्यमूलः ।

आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
मन्तज्ञो मन्तभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः ग्रुचिः ॥
गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषवित् ।
एवं रुक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥
आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारस्थापनादिष ।
स्वयमाचरते यस्तु तस्मादाचार्य उच्यते ॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारिनरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः ।
गुरुरेव परं विद्या गुरुरेव परा गतिः ।
गुरुरेव परं कामः गुरुरेव परायणः ।
यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्माद्गुरुतरो गुरुः ॥

यस्सकृदुचारणः संसारिवमोचनो भवति । सर्वपुरुषार्थसिद्धिर्भविति । न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तत इति । य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥

इति द्वयोपनिषत् समाप्ता

निरुक्तोपनिषत्

स यद्यनुरुध्यते तद्भवति । यदि धर्मोऽनुरुध्यते तदेवोद्भवति । यदि ज्ञानमनुरुध्यते तदमृतो भवति । यदि काममनुरुध्यते संचरतां इमां योनिं संदध्यात्तदिदमल मनः श्रेष्मरेतसः संभवति । श्रेष्मणो रसः । रसाच्छोणितम् । शोणितान्मांसम् । मांसान्मेदः । मेदसः स्नावा । स्नावोऽस्थीनि । अस्थिभ्यो मज्जा । मज्जातो रेतः । तदिदं योनौ रेतः सिक्तं पुरुषः संभवति । शुक्रातिरेके पुमान् भवति । शोणितातिरेके स्नी भवति । द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति । शुक्रभिन्नेन यमो भवति । शुक्रशोणितसंयोगान्मातृपितृसंयोगाच्च कथमिदं शरीरं परं संयम्यते । सौम्यो भवत्येकरालोषितं कललं भवति । पञ्चरालाद्वुद्धः । सप्तरालात् पेशी । द्विसप्तरालाद्वुदः । पंचविंशतिरालस्थितो योनौ घनो भवति । मासन्यण प्रीवाव्यादेशः । मासचतुष्केण त्वग्व्यादेशः । पञ्चमे मासे नखरोमव्यादेशः । षष्ठे मुखनासिकाक्षिश्रोलं च संभवति । सप्तमे चलनसमर्थो भवति । अष्टमे वुद्धचाध्यवस्यते । नवमे सर्वाङ्गसंपूर्णो भवति ॥

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः । नानायोनिसहस्राणि भया यान्युषितानि वै ॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः । मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥ अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः । सांस्त्र्यं योगं समभ्यस्ये पुरुषं पञ्चविंशकम् ॥ इति ॥ ततश्च दशमे मासे प्रजायते । जातश्च वायुना स्पृष्टो न स्मरित जन्म मरणम् । अन्ते च शुभाशुभं कर्मैतच्छरीरस्य प्रामाण्यम् ॥

इति निरुक्तोपनिषदि विंशतितमोध्यायः

अष्टोत्तरं सन्धिशतमष्टाकपालं शिरः संपद्यते । षोडश वपापलानि । नव स्नायुशतानि । सप्तशतं पुरुषस्य मर्माणि । अर्धचतस्रो रोमाणि कोटयः । हृदयं ह्यष्टकपलानि । द्वादशकपलानि जिह्वा । वृषणो हृष्टसुपणौ । तत उपस्थ-गुदयोन्येतन्मृत्वपुरीषं कस्मादाहारापानसिक्तत्वादनुपचित । कर्मणा अन्योन्यं जायत इति । तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञां च । महत्यज्ञानतमसि मम्रो जरामरणक्षुत्पिपासाशोककोधद्रोहलोभमोहमदभयमत्सरहर्षविषादेर्प्यान्स्यात्मकैर्द्वन्द्वेरिमभूयमानः सोऽस्मादार्जवं जवीभावनान्तं निर्मुच्यते । सोऽस्मादान्तं महाभूमिकावत् शरीरान्निमेषमात्रैः प्रक्रम्य प्रकृतिभिरभिपरीत्य तैजसं शरीरं कृत्वा कर्मणानुरूपं फलमनुभूय तस्य संक्षये पुनरिमं लोकं प्रतिपद्यते ॥

इति निरुक्तोपनिषदि एकविंशोऽघ्यायः

इति निरुक्तोपनिषत् समाप्ता

पिण्डोपनिषत्

ॐ देवता ऋषयः सर्वे ब्रह्माणमिदमब्रुवन् । मृतस्य दीयते पिण्डं कथं गृह्णस्यचेतसः ॥ भिन्ने पञ्चात्मके देहे गते पञ्चसु पञ्चधा । हंसस्त्यक्वा गतो देहं कस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः ॥ त्र्यहं क्सति तोगेषु त्र्यहं वसति चाग्निषु ।
त्र्यहमाकाश्चगो भूत्वा दिनमेकन्तु वायुगः ॥
प्रथमेन तु पिण्डेन कलानां तस्य सम्भवः ।
द्वितीयेन तु पिण्डेन मांसत्वक्च्छोणितोद्भवः ॥
तृतीयेन तु पिण्डेन मतिस्तस्याभिजायते ।
चतुर्थेन तु पिण्डेन अस्थि मज्जा प्रजायते ॥
पश्चमेन तु पिण्डेन हस्ताङ्गुल्यः शिरो मुखम् ।
पष्टेन कृतपिण्डेन हत्कण्ठं तालु जायते ॥
सप्तमेन तु पिण्डेन दीर्घमायुः प्रजायते ।
अष्टमेन तु पिण्डेन वाचं पुष्यति वीर्यवान् ॥
नवमेन तु पिण्डेन सर्वेन्द्रियसमाहृतिः ।
दशमेन तु पिण्डेन भावनं हावनं तथा ।
पिण्डे पिण्डे शरीरस्य पिण्डदानेन सम्भवः ॥

इति पिण्डोपनिषत् समाप्ता

प्रणवोपनिषत्

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ पुरस्ताद्वह्मणस्तस्य विष्णोरद्भुतकर्मणः । रहस्यं क्याक्खाया धृताग्निं संप्रचक्षते ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म बदुक्तं ब्रह्मवादिमिः। शरीरं तस्य वस्यामि स्थानकालत्रयं तथा ॥ तत्र देवास्वयः प्रोक्ता लेका वेदास्वयोऽगयः। तिस्रो मात्रार्धमात्रा च प्रत्यक्षस्य शिवस्य तत् ॥ ऋग्वेदों गाईपत्यं च प्रथिवी ब्रह्म एव च । अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिमिः ॥ यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाभिस्तयैव च । विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परिकीर्तितः॥ सामवेदस्तथा द्योधाहवनीयस्तथैव च। ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः ॥ सूर्यमण्डलमामाति ह्यकारश्चन्द्रमध्यगः। उकारश्चन्द्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः ॥ मकारश्चामिसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः। विस्रो मात्रास्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याभितेजसः ॥ शिखा च दीपसंकाशा यस्मिन्नु परिवर्तते । अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता ॥ पद्मसूत्रनिमा सूक्ष्मा शिखाभा दश्यते परा । नासादिस्यंसंकाश्चा स्य हिला तथापरम् ॥ द्विसप्ततिसहसामि नाडिभिस्ता तु मूर्धनि । बरदं सर्वभ्तानां सर्व व्याप्येव विष्ठति ॥ कांस्यध्यानिनादः स्थाकदा रिप्यति शान्तये । ओक्कारस्तु तथा योज्यः श्रुतवे सर्वमिच्छति ॥

यस्मिन् स लीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते । सोऽमृतत्वाय कल्पते सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ इति ॥

प्रणवोपनिषत

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे पुष्करे सस्रजे। स खल्ल ब्रह्मा सष्ट-श्चिन्तामापेदे । केनाहमेकेनाक्षरेण सर्वोश्च कामान् सर्वोश्च लोकान् सर्वोश्च देवान् सर्वोश्च वेदान् सर्वोश्च यज्ञान् सर्वोश्च शब्दान् सर्वाश्च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्यनुभवेयमिति । स ब्रह्मचर्यमचरत् । स ओमित्येतदक्षरमपश्यत् । विवर्णे चतुर्मात्रं सर्वव्यापि सर्वविभवयातयाम-ब्रह्म ब्राह्मी व्याहर्ति ब्रह्मदैवतं तथा सर्वोध्य कामान् सर्वोध्य लोकान् सर्वोश्च देवान् सर्वोश्च वेदान् सर्वोश्च यज्ञान् सर्वोश्च शब्दान् सर्वाश्च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्यन्वभवत् । तस्य प्रथमेन वर्णेनापस्त्रहश्चान्वभवत् । तस्य द्वितीयेन वर्णेन तेजो ज्योतींष्यन्वभवत् । तस्य प्रथमया स्वरमात्रया पृथिवीमग्निमोषधिवनस्पतीनृग्वेदं भूरिति व्याहृतिर्गायत्रं छन्दिश्चवृतं स्तोमं प्राचीं दिशं वसन्तमृतुं वाचमध्यात्मं जिह्वां रसमितीन्द्रि-याण्यन्वभवत् । तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयान्तरिक्षं वायुं यजुर्वेदं भुव इति व्याहति त्रेष्टुमं छन्दः पञ्चदशं स्तोमं प्रतीची दिशं प्रीष्मस्तुं प्राणम्ध्यात्मं नासिके गन्धन्राणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् । तस्य तृतीयया स्वरमात्रया दिवमादित्यं सामवेदं स्वरितिव्याहृतिं जागतं छन्दः सप्तदशं

स्तोममुदीची दिशं वर्षर्तु ज्योतिरध्यात्मं चक्षुषी दर्शनमितीन्द्रियाण्यन्व-भवत् । तस्य वकारमात्रया यश्चन्द्रमसमथर्ववेदं नक्षत्राण्योमिति स्वमात्मानं जनदित्यंगिरसामानुष्टुभं छन्दः एकविंशं स्तोमं दक्षिणां दिशं शरदमृतुं मनोऽध्यात्मं ज्ञानं ज्ञेयमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् । तस्य मकारश्रुत्येति-हासपुराणं वाकोवाक्यगाथानाराशंसीरुपनिषदोनुशासमानानामिति वृधत्कर-द्रहन्महत्तच्छमोमिति व्याहृतीः स्वरशस्यनानातन्त्रीस्वरनृत्यगीतवादित्राण्य-न्वभवचैत्ररथं दैवतं वैद्युतं ज्योतिर्वार्हतं छन्दस्तृणवत्त्रयस्त्रिशस्तोमौ ध्रुवामूर्ध्वो दिशं हेमन्तशिशिरावृत् श्रोत्रमध्यात्मं शब्दश्रवणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् । सैषैकाक्षर ऋग्ब्रह्मणस्तपसोऽमे पादुर्बभूव । ब्रह्म वेदस्याथर्वणं शुक्रमत एव मन्ताः प्रादुर्वभूवः । स तु खलु मन्त्राणां तपसा गुश्रूषानध्यायाध्ययनेन यदूनं च वरिष्ठं च यातयामं च करोति । तथाप्यथर्वणं तेजसा प्रत्याप्याययेन्मन्त्राश्च मामभिमुखीभवेयुर्गर्भा इव मातरमभिजिषांसुः परस्ता-दोङ्कारप्रयुक्तयैतयैव तद्दचा प्रत्याप्याययदेष यज्ञस्य पुरस्ताधुज्यत एषा पश्चात् सर्वत एतया यज्ञस्तपते तदप्येतदृचोक्तं—"या पुरस्ताधुंजत ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्निति "। तदेतदक्षरं ब्राह्मणो यं काममिच्छेत् त्रिरात्रोपोषितः प्राङ्मुखो वाग्यतो बर्हिष्युपविश्य सहस्रं ऋच आवर्तयेत् सिध्यन्त्यस्यार्थाः सर्वकर्माणि चेति ब्राह्मणम् ॥

वसोर्द्वाराणामिन्द्रनगरं तदसुराः पर्यवारयन्त । ते देवा भीता आसन् । क इमानसुरान् हनिष्यतीति । तमोङ्कारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं दह्शुस्ते तमब्रुवन् । भवता मुख्येनेमानसुरान् जयेमेति । स होवाच किं मे प्रतीवाहो भविष्यतीति । वरं वृणीष्वेति । वृण इति । स वरमवृणीत । "न मामनीरियत्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत्स्यात्" इति । तथेति ते देवा देवयजनस्योत्तरार्धेऽसुरैः संयत्ता आसंस्तानोङ्कारेणामीष्ठीया

देवा असुरान् पराभावयन्त । तद्यत्पराभावयन्त तस्मादोङ्कारः पूर्वमुच्चार्यते । यो ह वा एतमोङ्कारं न वेदावश्यःस्यादित्यथ य एवं वेद ब्रह्मवशः स्यादिति तस्मादोङ्कार ऋग्भवति यजुषि यजुः साम्नि साम स्त्रे स्त्रं ब्राह्मणे ब्राह्मणं श्लोके श्लोकः प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम् ॥

ओंकारे पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकं किं नामाख्यातं किं लिक्कं किं च वचनं का विभक्तिः कः प्रत्ययः कः स्वरः उपसगों निपातः किं वे व्याकरणं को विकारः को विकारी कितमातः कितवर्णः कत्यक्षरः कतिपदः कः संयोगः किं स्थानानुप्रदानकरणं शिक्षकाः किमुचारयन्ति किं छन्दः को वर्ण इति पूर्वे प्रश्नाः । अथोत्तरे मन्ताः । कल्पो ब्राह्मणं ऋग् यजुः साम । कस्माद्रह्मवादिन ओङ्कारमादितः कुर्वन्ति । किं दैवतं किं ज्योतिषं किं निरुक्तं किं स्थानं का प्रकृतिः किमध्यात्ममिति षट्तिंशत्प्रश्नाः पूर्वोत्तराणां तयो वर्गा द्वादश एकाशतैरोङ्कारं ज्यास्थामः ॥

इन्द्रः प्रजापितमपृच्छत् भगवन्नभ्यस्तूय पृच्छामीति। पृच्छ वत्सेत्यब्रवीत्। किमयमोङ्कारः कस्य पुतः किं चैतच्छन्दः किं चैतद्वर्णः किं चैतद्वर्षाः ब्रह्म संपद्यते। तस्माद्वैतमोङ्कारं पूर्वमालोभस्विरतोदात्त एकाक्षर ओङ्कार ऋग्वेदे तैस्वर्योदात्त एकाक्षर ओङ्कारः सामवेदे हस्वोदात्त एकाक्षरः उकारोऽध्यवेदेऽनुदात्तोदात्तिद्वपद अ उ इत्यर्धचतस्रो माला मकारे व्यञ्जनमित्याहुः। या सा प्रथमा माला ब्रह्मदैवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वाह्मं पदम्। या सा द्वितीया माला विष्णुदैवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम्। या सा तृतीया मान्ना ईशानदैवत्या किएला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम्। या सा तृतीया मान्ना ईशानदैवत्या किएला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम्। या सा तृतीया मान्ना ईशानदैवत्या किएला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम्। या सा तृतीया मान्ना ईशानदैवत्या किएला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानं पदम्। या सार्धचतुर्थी माला

सर्वदैवत्या व्यक्तीभृता खं विचरित गुद्धस्फिटिकसिन्नमा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत् पदमनामकम् । ओङ्कारस्योत्पित्तं विष्रो यो न जानाति तत्पुनरुपनयनं तस्माद्भाक्षणवचनमादर्तव्यम् । यथा ठातव्यो गोलो ब्राह्मणः । पुत्रो गायतं छन्दः गुक्को वर्णः । पुंसो वत्सो रुद्रो देवता । ओङ्कारो वेदानां उत्तरोपनिषदं व्याख्यास्यामः । को धातुरित्याप्तेर्धातुरवित-मप्येके । रूपसामान्याद्यर्थसामान्यान्यन्यदीयस्तस्मादापेरोङ्कारः सर्वमामोतित्यर्थः । कृदन्तमर्थवत्प्रातिपदिकमदर्शनं प्रत्ययस्य नाम संपद्यते । निपातेषु चैनं वैय्याकरणा उक्षत्तं समामनन्ति । तदव्ययीभृतमन्वर्थवाची शब्दो न व्यति कदाचनेति ।

सदृशं तिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तद्व्ययम् ॥

को विकारी च्यवते प्रकारणमाप्नोतिराकारपकारौ विकारौँ आदितः ओकारो विकियते । द्वितीयो मकार एवं द्विवर्ण एकाक्षर ओमित्योङ्कारो निर्वृत्तः । कितमाल इत्यादेस्तिल्लो मालाः अभ्याधाने हि छवते । मकारश्चतुर्थी किं स्थानमित्युभावोष्ठौ स्थानमाधानकरणी च द्विःस्थानं सन्ध्यक्षरमवर्णलेशः कण्ठ्यो यथोक्तशेषः पूर्वो विवृत्तकरणस्थितश्च द्वितीयः स्पृष्टकरणस्थितश्च । नायं योगे विद्युत आख्यातोपसर्गानुदात्तः स्विरितलिङ्कविभक्तिवचनानि च संच्छित्राध्यायिन आचार्याः पूर्वे वभूवः । श्रवणादेवं प्रतिपद्यन्ते । न कारणं प्रयच्छन्त्यथापरपक्षीयाणां किवः पञ्चालचण्डः परिपृच्छको वभूवांबुः पृथगुद्गीथदोषान् भवन्तो ब्रुविन्ति । तद्वाच्युपलक्षयेत् वर्णाक्षरपदाङ्कशो विभक्त्यामृषिनिपेवितामिति वाचं स्तुवन्ति । तस्मात् कारणं ब्रूमो वर्णानामयमिदं भविष्यतीति षडङ्ग-विदस्तत्तथाधीमहि । किं छन्द इति । गायत्रं हि छन्दो गायत्री वैविदस्तत्तथाधीमहि । किं छन्द इति । गायत्रं हि छन्दो गायत्री वैविदस्तत्तथाधीमहि । किं छन्द इति । गायत्रं हि छन्दो गायत्री वैविदस्तत्तथाधीमहि ।

देवानामेकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता । द्वौ द्वादशको वर्गावेतद्वै व्याकरणं धात्वर्थवचनं सैक्षं छन्दो वचनं चाथोत्तरौ द्वौ द्वादशको वर्गो वेदरहिसकी (१) व्याख्याता मन्त्रकल्पो ब्राह्मणमृग्यजु:सामाथर्वाण्येषा व्याहृतिश्चतुर्णो वेदानामानुपूर्व्येण । उ० भूर्भुवस्सुवरिति व्याहृतय: ॥

असमीक्ष्य प्रविह्तानि श्रूयन्ते द्वापरादावृषीणामेकदेशो दोषयतीह् चिन्तामापेदे । त्रिभिः सोमः पातव्यः समाप्तिमव भवति । तस्मादृय-जुस्सामान्यपकान्ततेजांस्यासंस्तत्र महर्षयः परिदेवयाञ्चिकरे । महच्छोकभयं प्राप्ताः स्मो न चैतत्सर्वेः समिभिहितं ते वयं भगवन्तमेवोपधावाम । सर्वेषामेव शर्म भवानिति । ते तथेत्युक्त्वा तूष्णीमितिष्ठन्नानुपसन्नेभ्य इत्युपोपसीदामेति नीचैर्वभृवुः । स एभ्य उपनीय प्रोवाच । मामिकामेव व्याहृतिमादितः कृणुध्विमत्येवं मामका अधीयन्ते । नर्ते भृग्विक्तरोविद्भयः सोमः पातव्य ऋत्विजः पराभवन्ति । यजमानो रजसापध्वस्यति श्रुतिश्चापध्वस्तापितष्ठ-तीत्येवमेवोत्तरोत्तराद्योगाल्लोकं तोकं प्रशाध्विमत्येवं प्रतापो न पराभविष्य-तीति । तथाह् भगविन्नित प्रतिपेदिरे आप्याययंस्ते तथा वीतशोक्भया वभृवुः । तस्माद्भिवादिन ओक्कारमादितः कुर्वन्ति ॥

किं दैवतमित्यृचामिमदेंवतं तदेव ज्योतिर्गायत्रं छन्दः पृथिवी स्थानं "अमिमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम्।" इत्येवमादिं कृत्वा ऋग्वेदमधीयते । यजुषां वायुदेंवतं तदेव ज्योतिस्त्रेष्टुमं छन्दोऽन्तिरिक्षं स्थानं "इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रापयतुः श्रेष्ठतमाय कर्मणे" इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । साम्नामादित्यो दैवतं तदेव ज्योतिर्जागतं छन्दो द्योः स्थानं "अम आयाहि वीतये गृणानो हल्यदातये । निहोता सत्ति बहिषि।" इत्येवमादिं कृत्वा सामवेदमधीयते । अथर्वणां चन्द्रमा दैवतं तदेव ज्योतिः सर्वाण छन्दांस्यापः स्थानं "शत्रो

देवीरभिष्टये '' इत्येवमादिं ऋत्वा अथर्ववेदमधीयते । अद्भयः स्थावरजङ्गमो भूतग्रामः संभवति । तस्मात् सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयं अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिता इत्यविति प्रकृतिरपामोङ्कारेण चैतस्माद्वचासः ॥

इति प्रणवोपनिषत् समाप्ता

बाष्कलमन्त्रोपनिषत्

मेधातिथिं काण्वमिन्द्रो जहार द्यां मेषभूयोपगतो विदान:। तमन्य इत्तमनं परिपाट् पद एनं नियुयुजे परस्मिन् ॥ १ ॥ को ह स्मैष भवसि व्यवायो नावायो म इह शश्वदस्ति। सुरोविमचंक्रमसि प्रपत्र्यन्नित्था न कश्चोरणमाचचक्षे ॥ २ ॥ नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः को अद्धामूमभिचङ्कमीति । तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमो न त्वाश्वबद्धस रिषा मयस्वि॥ इन्द्रो नृचक्षा वृषभस्तुराषाट् प्रसासहिस्तपसा मा विचक्षे । स इद्देवो ऋतमन्वयन्तं प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात् ॥ ४ ॥ कुहेव मावशमितो नयातै कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा । कुहाचिदेष स्विपता पिता नो यो न वेद न हतं हरन्तम् ॥५॥ प्रत्यङ्ङवाङ्पाङितरौ च नेह नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा । न मामिमे नूनमित्था पथो विदुर्ये मा न यन्ति मिथु चाकशानाः ॥ परः स्मियानो अविवरस्य शूकं किं सीमिच्छरणं मन्यमानः। न ह त्वाहमप्रणीय स्वविष्ठामित्था जहामि शपमानमिन्नु ॥ ७॥ अहमस्मि जरितृणामु दावा अहमाशिरमहमिदं दधम्वान् । अहं विश्वा भुवना विचक्षत्रहं देवानामासन्नवोऽदः ॥ ८ ॥

मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशा वि चैमि सं च हि नु यो विरश्पी। अहं न्विहं पर्वते शिश्रियाणमुत्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा ॥ ९ ॥ प्रवङ्क्षणा अभिदं पर्वतानां यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकैः । को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् को अश्ववदिममातिं विजन्नुषः ॥ को मे अवो दाशुषो विष्वगृतीरित्था ददश्रे भुवनाधि विश्वा । रूपं रूपं जनुषा बोभवीमि मायाभिरेको अभिचाकशानः ॥११॥ विश्वं विचक्षे यमयन्नभीको नेशे मे कश्च महिमानमन्यः । अहं द्यावाप्टथिवी आततानो विभिम धर्ममवसे जनानाम् ॥१२॥ अहमु ह प्रवितं यिज्ञयामियां

अहं वेद भुवनस्य नाभिम् । आपिः पिता स्रहमस्य विप्वङ्

अहं दिव्या आन्तरिक्ष्यास्तुका वहम् ॥ १३ ॥ अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम् । अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव सरिरस्य मध्ये ॥ १४ ॥ अहमिन्नु परमो जातवेदा यमध्वर्युरिमलोकं पृणेधीत् । यमन्वाह नभसो न पक्षी काष्ठा मिन्दन् गोभिरितोऽमुतश्च ॥१५॥ अहम यन्नपतता रथेन द्विषडारेण प्रधिनैकचकः । अहमिन्नु दिद्युतानो दिवे दिवे तन्वं पुपुष्यानमृतं वहामि ॥१६॥ अहं दिशः प्रदिश आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकम् । अहं विश्वा ओषधीर्गर्भ आधां याभिरिदं धिनुयुर्दाशुषः प्रजाः ॥ अहं चरामि भुवनस्य मध्ये पुनरुचावचं व्यश्नुवानः । यो मा वेद निहितं गुहा चित् स इदित्था बोभवीदाशयध्ये॥१८॥ यो मा वेद निहितं गुहा चित् स इदित्था बोभवीदाशयध्ये॥१८॥

अहं पश्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमत्र ।

मया ततिमतीदमश्नुते तदन्यथासद्यदि मे असिद्धदुः ॥ १९ ॥

न मामश्नोति जिरता न कश्चन न मामश्नोति पिर गोभिराभिः ।

न मेऽनाश्चानुत दाश्चानजप्रभीत् सर्व इन्मामुपयन्ति विश्वतः ॥

क शरारुः क समरः क नूरणः सर्विमिदं त्वन्त्विदितो वहामि ।

यन्मिदमे विभ्यति तन्म एकं ते मे अक्षत्रहमु ताननुक्षम् ॥२१॥

यत्तप्यथा बहुधा मे पुरा चित्तन्नु भुवेऽहमुरणो बोभुवे ।

ऋतस्य पन्थामिस हि प्रपन्नोऽयसे स मे सत्यमिदेकमेहि ॥२२॥

अहं ज्योतिरहमृतं विनद्धिरहं जातं जिन जिन्यमाणम् ।

अहं त्वमहमहं त्विमन्नु त्वमहं चक्ष्व विचिकित्सीर्म ऋज्वा ॥२३॥

विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः प्रजापितः

हंसो विशोको अजरः पुराण ऋतीयमानो अहमिस नाम ॥२॥

अहमिस जिरता सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः ।

अहं विष्वङ्डहमिस प्रसत्वानहमेकोऽस्मि यदिदं नु किं च ॥

इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् समाप्ता

बाष्कलमन्त्रोपानिषत्

(सवृत्तिका)

मेथातिथि काण्वमिन्द्रो जहार इत्याद्या वाष्कलानां मन्त्रोपनिषत तस्याश्चेयमल्पाक्षरा वृत्तिरारभ्यते । मेधातिथिनामानमृषिं कण्वस्य

सामवेदब्राह्मणशसिद्धमिन्दः जहार । द्या मेषभूयोपगतो विदानः । मेषभूयं मेषभावम् । भुवः क्यप् । उपगतः प्राप्तः । सामवेदब्राह्मणप्रसिद्धास्त्र्यायिकः । द्याः स्वर्गलोकान् प्रतीति विवक्षितं जहार हृतवान् । विदानः ज्ञानी ॥ तमन्य इत्तमनं परिप्राट् । तं इन्द्रं अन्यः मेधातिथिः इदिति निरर्थको निपातः । तमनं हरणेन ग्लानिपदम् । परिपृच्छतीति परिप्राट् । मेधातिथिः पद एनं नियुयुजे परस्मिन् ॥ १ ॥ परस्मिन् पदे ज्ञेये तत्त्वरूपे पदार्थे नियुयुजे नियुक्तवान् । विलक्षणमेषीभूतेन्द्रकर्तृकविलक्षणिकयादर्शनात् आपाततो विलक्षणः परो देवः कश्चिन्न तु मेष इति तात्विकतत्स्वरूपज्ञानाय वक्ष्यमाणप्रश्नेन परं पदं ज्ञेयं स्वस्वरूपं कथयेति प्रश्नेन नियोजितवानित्यर्थः। प्रश्नमेवाह श्रुतिः । को ह स्मैष भवसि व्यवायः । ह इति पूर्ववृत्तावद्योतको निपातः । स्मेति निरर्थकम् । एष प्रत्यक्षः । व्यवायो ज्ञेयः । व्यवपूर्व-स्यैतेर्घित्र रूपम् । कचित् ज्ञातुं योग्यस्त्वमसि । नावायो म इह शक्षदस्ति । मे मम शश्वदिति ध्रुवार्थे आवायो ज्ञानं नास्ति कस्त्विविति । दश्यमाने मेषस्वरूपे कथमेवं संशय इति चेत्। तत्राह । सुरोविमचंक्रमि । शोभनमेव चंक्रमणं करोषि । प्रपञ्यन् इत्था न कश्चोरणमाचचक्षे ॥ २ ॥ इत्था न । इत्थमिव । नकार इवार्थः । को वा इत्थं क्रममाणं प्रपत्यन् उरणं मेषं आचचक्षे । उक्तवान् । दृष्टवान् वा । इत्थं क्रममाण उरणो न केनचिद्दष्ट इति भावः क्रमेण वैलक्षण्यमेवाह । नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः । इमां पृथिवीं उदस्यमानः । इत् एवार्थे । कूर्दन्नेव न अस्पृक्षत् न स्पृशतीति लकारव्यत्ययः । नैतावता वैलक्षण्यमत आह । को अद्धामूमभिचङ्कमीति । अद्धा साक्षात् । अनेनैव शरीरेण । अमूं द्याम् । कः अभिचङ्कमीति अभिकामति । प्रश्नमुपसंहरति । तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमः । तत् तस्मात् शाधि । इदित्यनर्थकम् । शिक्षय यस्त्वं सर्ववित्तमः सर्वज्ञतमः

असि तत्स्वरूपं कथयेति भावः । अकथनेऽनिष्टं संभाव्यते । तन्मा भवित्व-त्याह । न त्वाश्ववद्रह्म रिपा मयस्वि ॥ ३ ॥ मयस्वि तेजस्वि ब्रह्म ब्राह्मण्यं रिषा क्रोथेन त्वा त्वां न अश्ववत् न अश्वोति न व्यामोत् । अस्मदीय-क्रोधव्यापारविषयो मा भूदित्यभिष्रायः। कुतस्तवैवं बलमत आह । इन्द्रो नृचक्षा नृपभस्तुराषाद् । इन्द्रः परमेश्वरः नृचक्षा सर्वजगत्कर्मसाक्षी वृषभः कामप्रदस्तुराषाट् तुरः परवलं सहते अभिभवतीति सहेः छन्दसीति िष्वः। पसासहिस्तपसा मा विचक्षे । प्रसासहिः प्रसहनशीलः । तपसा उपलक्षणे तृतीया । मा मां विचक्षे पश्यति । अतः सत्यमकथयत ईश्वराद्भयमप्याह । स इदेवो ऋतमन्वयन्तम् । इत् एवार्थे । स इत् स एव देवः ऋतं सत्यं अनु रुक्षीकृत्य अयन्तं अगच्छन्तं सत्येन पथा अगच्छन्तं सत्यमब्रुवाणमिति यावत् । प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात् ॥ ४ ॥ अपविद्धात् क्षिप्तात् तवसो वज्रात् प्रभी प्रकृष्टं भयं मा अकः कार्षीत्। प्रष्टव्यमाह। कुहेव मावशमितो नयाते । कुहेच कुत्रेव मा मां अवशं इतः अस्मात् स्थानात् नयातै नेप्यसि । किं च । कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा । स्पष्टम् । ईटकष्टे कायवाङ्मनोनिर्निपेवितमीश्वरं स्मरति । कुहाचिदेष स्विपता पिता नः । एष मानसप्रत्यक्षो नः पिता ईश्वरः कुहाचित् कुत्र स्विपता स्विपिति । मो न वेद न हृतं हरन्तम् ॥ ५ ॥ यः हृतं मां न वेद न वा हरन्तं वेदेत्यन्वयः । किं च — इतरेऽप्याजन्मनिपेविता देवा न मत्सहाया इत्याह । मत्यङ्ङवाङ्माङितरो च नेह। पञ्चसु दिक्षु तत्र तत्र वर्तमानाः प्राणपञ्चका-धिष्टातारो देवा लक्ष्यन्ते । इतरौ चेत्यन्तेषु । सर्वत्र सप्तम्यर्थो बोध्यः । वर्तमाना इति च शेषः । तेऽत्र देवा अपि किं नेह सन्ति । पक्षान्तरमाह । नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा । एनात् देवात् । अद्धा सत्येन । अहं नोपतस्थिः नोपस्थाता इति न । अपि तु उपस्थातैव । किं च । न मामिमे नृनमित्था

पयो विदु: । नूनं निश्चितोऽयमर्थः । इमे देवाः मां इत्था इत्थंभृतं न विदुः । ये मा न यन्ति मिथु चाकशानाः ॥ ६ ॥ ये पथो मार्गात् मा मां न नयन्ति । कीद्दशः मिथु मिथः चाकशानाः भासमानाः । अतः परमिन्द्रस्य मेषवेषधारिणः प्रतिवचनसुपक्रमते । परः स्मियानो अविवरस्य शुक्रम् । परः इन्द्रः स्मियानः हसन् अस्य मेघातिथेः शुक् शङ्कां अविवः विवृतवान् । किं सीमिच्छरणं मन्यमानः । सीमिति निरर्थको निपातः । इत् प्रश्ने । किं शरणं रक्षकं मन्यमानः असीति शेषः । इत्थंभृतस्त्व किं शरणं मन्यस इत्यर्थः । पुनरिन्द्र आह--न ह त्वाहमप्रणीय स्विवष्टामित्था जहामि शपमानमिन्तु ॥ ७ ॥ हेत्यैतिह्यार्थः । त्वा त्वां स्विवष्ठां स्वस्थानं अप्रणीय अप्रापय्य इत्था इत्थंभृतं अज्ञानपङ्किनमम् न जहामि रापमानमिन्नु रापमानमपि । तथा च त्वामज्ञानपङ्कादुद्धृत्य स्वस्थानमात्म-स्वरूपं यावन प्रापयामि तावन त्वां मुख्यामीति फलितोऽर्थः । तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमः इत्यस्योत्तरमाह । अहमस्मि जितृणामु दावा । अहं उ इति निश्चये। जरितृणां यजमानानां ''जरिता वै यजमानः " इति श्रुतेः । दावा दाता फलस्येति शेषः । अस्मि भवामि । यागादिफल-पदोऽहमेव । अहमाशिरम् । सोमसंस्कारकं पयः तद्प्यहमेव । अहमिदं द्भग्वान् । इदं हिवः दभग्वान् दाहकः । एतस्य हिवषो दाहकश्चाहमेवेत्यर्थः । किं च। अहं विश्वा भुवना विचक्षत्रहं देवानामासत्रवोऽदः ॥ ८॥ विश्वा भुवनानि विश्वेषां भुवनानां विचक्षन् साक्षी सन्नहं देवानां आसन् आस्ये अवः अन्नाद्यं अदः ददामि । कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा इत्यस्योत्तरमाह । मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशाः। भुव उत्पादकस्य मम आण्डकोशाः ब्रह्माण्डानि प्रतिष्ठा 'तत्स्रष्ट्वा '' इति श्रुतेः । वि चैमि सं च हि तु यो विरश्पी। योऽहं व्येमि वियुक्तो भवामि समेमि सङ्गतश्च भवामि

संसारेऽस्मिन् विरञ्पी विविधं रपति शब्दं करोतीति विरञ्पी रपधातोः शिनिन् । शब्दवान् वेदप्रवक्तेति यावत् । अहं न्विहं पर्वते शिश्रियाणम् । नु इति निश्चये । अहमेव नान्यः । अहिं वृत्रासुरं पर्वते शिश्रियाणं पर्वताश्रितं अहनम् । उम्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा ॥ ९ ॥ उम्रः कूरकर्मा नु निश्चितं अहमेव। तवसा वज्रेण अद्धा निश्चितम्। अवस्युः अन्नेच्छुः। ऐश्वर्येच्छुरिति यावत् । सोऽप्यहमेव । प्रवङ्क्षणानभिदं पर्वतानाम् । प्रवङ्क्षणान् पक्षान् पर्वतानां अभिदं भेदितवानस्मि । यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकै: । यत् पुरुषसाध्यं कर्मेन्द्रः अनीकैः अकरोत्तत् अहमेवाकरवमिति वाक्यशेषः । सीमिति निरर्थको निपातः । को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् । अद्धा सत्यं मम स्वरूपमिति शेष: । को वेद कः वेत्ता । को वा प्रवक्ता । को अश्वन-दिभमाति विजध्नुषः ॥ १०॥ कि च अभिमाति अरिसैन्यं विजध्नुषः हतवतो मम मामित्यर्थः । कः अक्षवत् कः अक्षोत् । मयि व्यापकतां कर्तुं न कोऽपि समर्थ इत्यर्थः । को मे अवो दाशुपो विष्वगृतीरित्था ददश्रे भुवनाधि विश्वा । अवोऽत्रं दाशुषो दत्तवतः मे ऊतीः शक्तीः विश्वा भुवनान्यि । अधिरीश्वर इति कर्मप्रवचनीयता । सर्वेषु भुवनेषु कः ददश्रे कः ददर्श । किं च । रूपंरूपं जनुषा बोभवीमि । जनुषा शरीरश्रहणेन रूपंरूपं अनेकरूपः बोभवीमि भवामि शुद्धस्य तव कथं शरीरग्रहणमत आह । मायाभिरेको अभिचाकशानः ॥ ११ ॥ अनेकामिर्विचित्रशक्ति-भिर्मायाभिः एकोऽपि अभितः चाकशानः भासमानः मायाप्रतिविम्बित इति यावत् । किं च । विश्वं विचक्षे यमयन्नभीकः । अभीको निर्भयः विश्वं यमयन् । अन्तर्यामिस्वरूपेण अधितिष्ठन् । विचक्षे पश्यामि । किं च । नेरो मे कथ महिमानमन्य: । महिमानं प्राप्तुमिति शेष: । स्पष्टम् । किं च । अहं द्यावापृथिवी आततानो विभर्मि धर्ममवसे जनानाम् ॥ १२ ॥

द्यावाप्टिथिवी आततानस्तन्वन्नहं जनानां अवसे जनानां अवितुं धर्मे महावीरं यज्ञशिरो विभर्मि । इदमुपलक्षणम् । कर्ममार्गप्रवर्तनेनापि लोकरक्षक इति फलितोऽर्थः । '' आहुत्याप्यायते सोमः '' इत्यादिस्मृतेः । अहस्र ह प्रवित यिज्ञयामियाम् । अहं उ ह यिज्ञयां प्रवितं यज्ञसंविन्धनं काममहिमयाम् । कर्मफलप्रदोऽप्यहमेवेति भावः। अहं वेद अवनस्य नाभिम्। त्रैलोक्य-वर्तिपदार्थमात्रं नाभिपदेनोपलक्ष्यते । आपिः पिता सुरहमस्य विष्यङ् । आपिः पितामहः पिता जनकः सूर्माता अहमेव अस्य विश्वस्य । कि च। अहं दिन्या आन्तरिक्ष्यास्तुका वहं ॥ १३ ॥ दिन्या आन्तरिक्ष्याश्च तुकाः बिन्दून् अहं वहं वहामि । लकारव्यत्ययः अडागमाभावश्च छान्दसः। वृष्टिकर्ताप्यहमेवेत्यर्थः । अहं वेदानाम्रुत यज्ञानामहं छन्द्सामविदं रयीणाम् । सर्वत्र कर्मणि षष्ठी अविदं वेदि । अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव सरिरस्य मध्ये ।। १४ ।। परस्य सरसः समुद्रस्य मध्य यत इत् उदर्थे । उदेतीव । उदयं बडबानलस्वरूपेण उदयं प्रामोतीति यावत् । तत् बडबानलस्वरूपं तेजः अहमेव सन् सरिरस्य सलिलस्य कर्मणि पष्ठी सलिल-महमेव पचामि । अहमिन्तु परमो जातवेदा यमध्वर्धरभिलोकम्पृणैधीत् । अहमिन्नु परमः पवित्रतमो जातवेदा अग्निः यं जातवेदसं अध्वर्युः अभिलोकं-पृणा लोकम्प्रणामिष्टकामभि लक्षीकृत्य अध्वर्युः ऐधीत् समिद्धं चकार । यमन्वाह नभसो न पक्षी काष्टा भिन्दन् गोभिरितोऽम्रुतश्च ॥ १५॥ यमध्वर्युमनु लक्ष्यीकृत्य नभसो न पक्षी नभसः पक्षीव नकार इवार्थे गोभिर्वाग्भिः। इतः अमुतश्च काष्ठाः दिशं भिन्दन् अन्वाह शंसित। होतेति शेषः । अहमु यन्नपतता रथेन द्विपडारेण प्रधिनैकचकः । अहं उ । द्विषडारेण द्वादशारेण द्वादशमासात्मकेन संवत्सररूपेण अन्तरिक्षेऽपि अपतता रथेन प्रधिना चक्रधारया उपलक्षितेन यन् गच्छन् यः सोऽहमेवेत्यन्वयः।

कीदृशोऽहं एकचकः। न सल्वन्योऽहमिव एकेन चक्रेण याति। एवं सूर्यक्रपेण प्रस्तूय चन्द्ररूपेण स्तौति । अहमिन्तु दिद्युतानो दिवेदिवे तन्वं पुपुष्यानमृतं वहामि ॥ १६ ॥ अहमेव दिवेदिवे प्रतिदिनं तन्वं शरीरं पुपुष्यान् पोषयन् अमृतं वहामि प्रापयामि प्रजाभ्य इति शेषः । कीदृशः दिच्यतानः प्रकाशमानः । अथ वायुरूपेण स्तौति । अहं दिशः प्रदिश आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकम् । स्पष्टम् । अथ पृथिवीरूपेण स्तौति । अहं विश्वा ओषधींर्गर्भ आधां याभिरिदं धिनुयुर्दाश्चषः प्रजा: ।। १७ ।। विश्वाः सर्वा ओषधीः अन्नानि । आधां द्रषे । दाशुषः यजमानस्य प्रजा याभिरोषधीभिः इदं विश्वं घिनुयुः प्रीणयन्ति । अथ सकलजीवरूपतामाह । अहं चरामि भ्रुवनस्य मध्ये पुनरुचावचं व्यश्नुवानः । उच्चावचं ऊर्ध्वमधश्च । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तजीवरूपोऽहमेवेति भावः। यो मा वेद निहितं गुहा चित्स इदित्था वोभवीदाशयध्यै।।१८॥ यो मा मां गुहा गुहायामन्तः करणे निहितं हत्कमलान्तर्वितिनमेतदुक्तरूपामेदेन वेद उपास्ते स इत्था इत्थं आशयध्ये आशयितुं आशयं कर्तुं बोमवीति भवति । इत्थमाशयो ब्रह्मज्ञानी मत्तुल्यो भवतीति यावत् । चिदिति निरर्थकम् । अहं पश्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमत्र । भत्र विश्वस्मिन् । शेषं स्पष्टम् । मया ततमितीदमञ्जुते तदन्यथासद्यदि मे असद्भिदुः ।। १९ ।। मया ततमिदं विश्वमिति । (अमुं अमुं प्रकारं) अञ्नुते प्राप्नोति । तत् तदेतत् मदुक्तम् । अन्यथा असत् अन्यथा स्यात् । यदि एवं केऽपि ब्र्युरिति शेषः । तर्हि ते असद्भिदुः । स्पष्टम् । न मामश्रोति जरिता कश्चन न माश्रोति परि गोभिराभिः। कश्चित् जरिता यजमानः मां न अश्लोति न प्राप्नोति । " न कर्मणा न प्रजया धनेन '' इति श्रुतेः । आभिर्गोभिर्वाग्मिः वेदैरिति यावत् । न मां परि

अश्लोति परिप्राप्नोति । परीति सामस्त्यार्थम् । तथा च "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः '' इति श्रुतिसमानार्थमेतत् । न मेऽनाश्वानुत दाश्वानजग्र-भीत सर्व इन्मामुपयन्ति विश्वतः ॥ २०॥ मे मां कर्मणि षष्टी। अनाश्वान् अनशनव्रती न अजग्रभीत्। न गृह्णाति। दाश्वान् दाता। दानानाशकयोरिप ''यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन '' इति श्रुत्या लोकप्राप्ति-हेतुत्वस्यैवोक्तेः। न चाहमेकस्मिन्नेव लोके नियतः। अतो ज्ञानिनः सर्व एव इदेवार्थे मां विश्वतः विश्वस्मिन्नुपयन्ति उपगच्छन्ति । क शरारु: क स्टमरः क नूरणः सर्वमिदं त्वन्वदितो वहामि । शरारुः व्याघादिः समरः वृकश्च केति कचित् प्रत्येकं उरणः मेषः सर्वमिदं त्वत् त्वत् त्वच्छब्दः अन्यपर्याय: । अन्यदन्यच इतः अनया दिशा अनेन सृष्टिप्रकारेण तसिरुः सर्वविभक्तिकत्वोक्तेः । वहामि । सर्वमपीति भावः । अतश्च पुनरप्याह । यन्मदिमे विभ्यति तन्म एकम् । यत् मत् मत्ः इमे व्याव्रादयो विभ्यति भयं प्राप्नुवन्ति । व्याघादिभ्यो भूयांसो विभ्यति । व्याघादयोऽपि बहुभ्यो बिभ्यति । यस्माच व्याघादयो बिभ्यति सोऽहमेव । तदेतदाह । तन्म एकं तत्सर्वमपि मे मम एकमेव । एवमैक्ये स्वस्य तद्पेक्षया विशेषमाह । मे ते अक्षन्नहसु ताननुक्षम् ।। २१ ।। ते मे मां न अक्षन् न मक्षयन्ति । अदेर्घस्युपधालोपः । उ इति अनर्थकम् । अहमु तान् अनुक्षं भक्षयामि अडागमाभावः छान्दसः । यत्तप्यथा वहुधा मे पुरा चित् । यत् बहुधा मे मदर्थे पुरा पूर्व तप्यथाः तप्तवानसि । चिदित्यनर्थकम् । तन्तु भ्रुवेऽहं उरणो बोग्रुवे। तत् तस्मादेव हेतोः नु निश्चयेन। भुवे भवाय सत्तायै ज्ञानेन तवैव सत्स्वस्वरूपावासय इति यावत् । उरणो मेषः । बोसुवे अभवम् । अतः परमुपसंहरन्नाह । ऋतस्य पन्थामिस हि पपन्नोऽयसे स मे सत्यमिदेकमेहि ॥ २२ ॥ अयसे प्राप्तये ब्रह्मण इति शेषः । ऋतस्य

सत्यस्य पन्थां पन्थानं प्रपन्नोऽसि । स त्वं मे मम एकं सत्यमित् सत्यमेव । न त्वन्यत् किमपि सांसारिकं ऐहिकं प्राप्नुहि । पुनः शुद्धं स्वस्वरूपमाह । अहं ज्योतिरहममृतं विनद्धिः । नद्धिः बन्धनम् । तद्रहितम् । स्पष्टम् । स्वविवर्तत्वेन विश्वस्य स्वाभेदमाह । अहं जातं जिन जिन्यमाणम् । जिन जायमानम् । स्पष्टम् । मेघातिथेः स्वाभेदमुपदर्शयन्नाह । अहं त्वमहमहं त्विमन्त्र त्वमहं चक्ष्व । अहं त्वमेव । अहं दश्यमानश्चेत् प्रतिविम्बवत् त्वम् । तर्हि कदाचित् मम मिध्याभ्तत्वं प्रतिबिम्बवत् स्यादत आह । अहं चाहमेव । न प्रतिविम्ववन्मिथ्याभूत इत्यर्थः । तर्हि तवैव प्रतिविम्ववन्मिथ्याभूतत्वं कदाचित् स्यादत आह । त्विमन्नु त्वमहं चक्ष्व । त्वमपि त्वमेव अहं चेति चक्ष्व जानीहि । विचिकित्सीर्म ऋज्या ।। २३ ।। ऋज्वा ऋजुः साम्प्रतं न तथाऽपककषायोऽब्रह्मज्ञश्चेति मा विचिकित्सीः मा संशयं कार्षीः । कुतः सन्देहे सन् । मा इत्यत्र ऋत्यक इति इस्वः । विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः प्रजापति: । विधरणः जगद्धारकत्वात् । प्रणीती जगत्प्रणेतृत्वात् अन्तर्यामिस्व-रूपेणेति भावः । तमनः शमनः । यमस्वरूपत्वात् । स्पष्टम् । हंसो विशोको अजर: पुराणो ऋतीयमानो अहमस्मि नाम ॥ २४ ॥ हंसो विवेचकत्वसामान्यात् ऋतीयमानत्वं सर्वत्र घृणावत्त्वेन निर्लेपत्वम् । ऋतिः सौत्रो चृणार्थः प्रसिद्धः । ऋच्छतेरियतेर्वा ल्युट् । अहमस्मि दरिता सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः । जितता यजमान इति व्याख्यातं प्राक् । पर्यारणः व्यापकः । नृचक्षाः साक्षी । अ**हं विष्वङ्-ङःहमस्मि** पसत्वानहमेको अस्मि यदिदं नु किञ्च ॥ २५ ॥ विष्वङ् व्यापकत्वात प्रसत्वान् साक्षी । स्पष्टम् । इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् ।

इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत् सन्नृत्तिका समाप्ता

मठाम्नायोपनिषत्

ॐ ऊर्ध्वाम्नायगुरूपदेशभुवनाकारसिंहासनसिद्धाचारवन्दितं समस्त-वेदवेदान्तसारनिर्माणं परात्परं निरञ्जनज्ञानार्थेषट्चकजामतीमयं परावाचा परात्परं सर्वसाक्षिधृतं चिन्मयं ज्योतिर्छिङ्गं निराकारं गळितं पूर्णप्रभाशोभितं शान्तं चन्द्रोदयनिभं भज मनस्तच्छ्रीगुरुचैतन्यं प्रणमामि ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ॐ प्रश्रमे पश्चिमाम्नायः शारदामठः कीटवारिसंप्रदायः तीर्थाश्रमपदं द्वारकाक्षेत्रं सिद्धेश्वरो देवः भद्रकाळी देवी ब्रह्मस्वरूपाचार्यः गङ्गागोमतीतीर्थं स्वरूपब्रह्मचारी सामवेदप्रपठनं ''तत्त्वमसि'' इत्यादिवाक्य-विचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासम्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ द्वितीये पूर्वाम्नायः गोवर्धनमठः भोगवारिसंप्रदायः वनारण्ये पुरुषोत्तमं क्षेत्रं जगन्नाथः विमला देवी भद्रपद्मपादाचार्यः महोद्दिष्वतीर्थं प्रकाशत्रह्मचारी ऋग्वेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ " प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ तृतीये उत्तराम्नायः ज्योतिर्मठः आनन्दवारिसंप्रदायः गिरिपर्वत-सागरपदानि वदरिकाश्रमक्षेत्रं नारायणो देवता पूर्णगिरी देवी त्रोटकाचार्यः अलकनन्दातीर्थं आनन्दब्रह्मचारी अथर्वणवेदपठनं तमे वैक्यं जानथ ''अयमात्मा ब्रह्म '' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे अस्तरार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासम्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥ ॐ चतुर्थे दक्षिणाम्नायः शृङ्गेरीमठः भूरिवारिसंप्रदायः सर-स्वतीभारतीपुरी चेतिपदानि रामेश्वरक्षेत्रं आदिवराहो देवता कामाक्षी देवी शृङ्गी ऋषिः पृथ्वीधराचार्यः तुङ्गभद्रातीर्थं चैतन्यब्रह्मचारी यजुर्वेद-प्रपठनं तमे वैक्यं जानथ "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासम्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ॥

ॐ पञ्चमे ऊर्ध्वाम्नायः सुमेरुमठः काशीसंप्रदायः जनकयाज्ञव-ल्वयादिशुकवामदेवादिजीवन्मुक्ताः एतत्सनकसनन्दनकपिलनारदादिब्रह्मनिष्ठाः नित्यब्रह्मचारी कैलासक्षेत्रं नानससरोवरं तीर्थं निरञ्जनो देवता माया देवी ईश्वराचार्यः अनन्तब्रह्मचारी शुकदेववामदेवादिजीवन्मुक्तानां सुसंवेदप्रपठनं परोरजसेसावदों ''संज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवे-केनात्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिप्ये। ॐ नमो नारायणायेति।

ॐ पष्ठे आत्माम्नायः परमात्मा मठः सत्यसुसंप्रदायः नाभिकुण्ड-लिक्षेत्रं त्रिकुटी तीर्थं हंसो देवी परमहंसो देवता अजपासोहंमहामन्त्रः ब्रह्म-विप्णुमहेश्वराद्याः जीवब्रह्मचारी हंसविद उपास्तिः उपाधिभेदसंन्यासार्थं ज्ञानसंन्यासग्रहणं करिप्ये । ॐ नमा नारायणायेति ॥

ॐ सप्तमे जम्बूद्धीपः सम्यन्ज्ञानं शिखा न सृत्रं वेद्यवेदकः श्रद्धा नदी विमलातीर्थे आत्मलिङ्गशान्त्यर्थे विचारः नित्यानित्यविवेकेन आत्मनोपास्ति आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिप्ये। ॐ नमो नारायणायेति॥

इति श्रीमत्परमहंसपरित्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता मटाम्नायोपनिषत् समाप्ता

ग

विश्रामोपनिषत्

ॐ पूर्वदले श्वेतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः। तदा धैर्यमुदारं च धर्मकीर्तिमतिभे वेत् ॥ अधिदले रक्तवर्णे यदा विश्राम्यते मनः। तदा क्रोधश्च कामश्च मन्दं बुद्धिर्मतिर्भवेत् ॥ कृष्णवर्णे दक्षिणदले यदा विश्राम्यते मनः। निदालस्यभयं देवि मत्सरे च मतिर्भवेत् ॥ नैर्ऋतदले नीलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः। तदा कोधश्च कामश्च मनोभिन्नमतिर्भवेत् ॥ पश्चिमदले कपिलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः। तदा हास्यविनोदौ च उत्साहे च मतिर्भवेत् ॥ इयामवर्णे वायुदले यदा विश्राम्यते मनः । तदा चिन्तोचाटनं च वैराग्ये च मतिर्भवेत् ॥ पीतवर्णोत्तरदले यदा विश्राम्यते मनः। तदा शृंगारभोगो च कल्पनायां मतिर्भवेत् ॥ गौरवर्णेशानदले यदा विश्राम्यते मनः । तदा कृमात्मानं धर्मकीर्तिमतिभवेत ॥ सन्धौ सन्धौ मिश्रितानां यदा विश्राम्यते मनः। तदा देहो गृहं राज्यं निर्दोषा च मतिर्भवेत् ॥ श्यामवर्णे मध्यदले यदा विश्राम्यते ममैः । तदा सर्वगुणं ज्ञानं चैतन्यं च मतिर्भवेत् ।!

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । ये पठन्ति सदा भक्त्या सायुज्यपद्मामुयुः॥

इति विश्रामोपनिषत् संपूर्णा

शौनकोपनिषत

ॐ देवासुराः संयत्ता आसन् । तेपामिन्द्रो न प्रत्यपद्यत । ते ह वस्नेव प्रातस्सवनेषु पुरोधाय व्यजिगीपन्त । ते ह नुन्नेषु नाराशंसेषु ऋषीणां यज्ञवास्त्वभ्यायन् हनिष्याम वा एतहो यद्देवान्न पराभावयिष्यथेति । ते ह विभ्यत एव स्तोकानुद्कलपयन् विजेप्यध्ये वावैतानन्विति । ते ह तत एवार्तिमार्च्छम्तानन्वितरान् पराभावयन् । ततो हेन्द्रोऽपर्यत् । स ह गायत्रीमेव प्रतिसंदिदेश । सा होवाच । विभिन्न वा एतदेतेभ्यो यथैत-त्परावृतन्त्रिति । स प्रणवमेवास्याः पुरोगमक्ररोदेप वाव ते गोप्यायेति । सा होवाच । यदेप परोगाः उदेष में भागधंयी स्यादिति । स होवाच । न ह वावेप त्वद्भागधेयी भवति । महान्वा अस्य महिमा न ह वा महीयांसो भागक्लिप्तिमप्याभजन्तीति । विश्वमित्र समन्वालभध्वमिति । सेनान्यास्तु प्रथमजानाप्याययिष्यसीत्योमिति होवाच । स होवाच यत्प्रथमं नाभ्यकीर्तयो नामश्राहमथ नानुवत्स्य इति । नामश्राहमेतेन सर्वमभिपद्यन्ते । सर्वे वा एष सर्वमश्रोतीति । अक्षरं वा एषः । तम्मादोमित्यनुजानन्ति । ओ-मिति प्रतिपद्यन्त ओमित्यभ्याद्वत ओमित्यभिनिधापयन्ति । तदेतदक्षरं जैत्रमभित्वरं सर्वाणि भृतान्यभ्यात्तं यदनेकमेकं नानावर्णं नानारूपं नानाशब्दं नानागन्धं नानाग्सं नानाम्पर्शमिति । अथो खल्वाहरिन्द्रो वा

चैतदक्षरम् । सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्येतदक्षरमन्वायत्तानि सर्वे वेदाः सर्वे यज्ञा इत्यथ खल्विन्द्रमन्वायत्तमिति ॥

स मंद्रेणैवान्वाभक्तो विदिधुतेऽ असेव श्रातृ व्यानपहनानीति।
तस्मान्मन्द्रं प्रातः सवनमभवधद्वायत्रं तद्वायत्री तद्वायत्रं यद्वसवः तद्वसव्यम्।
स ह प्रणव उवाच। यदहं सर्व भवानि यद्वायत्री व पुरागाः तर्ति मे
स्यादिति। गायत्रमन्वेव गायत्रीमन्वेव त्वा सर्वरूपिममं कृत्वा हिंकुर्वन्ति।
स हापश्यत्रेतदञ्जसेव सर्वा रूपाण्यवमभिचक्षीरित्रिति। स हान्तत
एवात्मानमुपसंहत्य तावदेवायाहयत्। स विशृङ्ग एवाभवत्। तस्माद्विशृङ्गमेवैतदिहानुद्रवन्ति। तदाहुर्यद्वा एतस्य वीर्य यच्छुकं यज्ज्योतिर्यदमृतं यदज्यै
तदवरमिति। तस्मात्तत एवातो ज्योतिरमृतमजर्यं प्रतिपद्यन्ते। ततो हासुराः पराभवन्। स एष इन्द्रः सर्व यद्वायत्री उद्वीथो वसवः प्रातस्सवनिमिति।
तदाहुः। सर्व वा एतदिन्द्रो यज्जगद्यथैवेति।।

ततो हासुराः पुनरेबोदयन्ति । ते ह माध्यंदिनस्यैव सवनस्य पवमानेषु यज्ञवास्त्वभ्यायन् । तेषां जिरतारो बिभ्यत एव वस-तीवरीरुपाकल्पयन् । ते ह ताभिरेव जिघांसन् । तेषामिन्द्रो रुद्रानेव सेनान्योऽकः । ते हाक्षीयन्त । स ह त्रिष्टुभमेव प्रतिसंददत् । साबवीत् । बिभेमि वा एतदेतेभ्यो यथौजीयांसो बलीयांस इमे पराभविति । स ह प्रणवमेवोवाच पुरोगायमेवारभस्वेति । सोऽब्रवीत् । किं मेऽतः स्यादिति । यद्वहं स त्वं ममैव रूपेण न्यूंखियप्यन्ति त्वामिति । स हापश्यत् । सर्व एव न्यूंखयन्तो मामभिचक्षीरित्रिति । स ह सर्वमेवात्मानमुपसंहत्य शृंग एवाग्रह्यत् । स ह विश्वज्ञ एवाभवत् । तस्मादित्यैव न्यूंखयन्ति । तत्मादित्यैव न्यूंखयन्ति । तत्माद्वद्येव न्यूंखयन्ति । तत्मादित्यैव न्यूंखयन्ति । तत्माद्वद्येव न्यूंखयन्ति ।

ते हासुराः पुनरेवोदपितप्यन्त । ते ह तृतीयस्येह सवनस्य पवमानेषु यज्ञवास्त्वभ्यायन् । तेषामिमे बिभ्यत एवांग्रूनुपाकल्पयन् । ते ह तैरेव देवानपाजिधांसन् । तेषामिन्द्रो जगतीमेव प्रतिसंदिदेश । साब्रवीत् बिभेमि वा एतदेतेभ्यो यथौजीयांसो बळीयांस इमे परावृतन्निति । तस्या इन्द्रः प्रणवमेव पुरोगामकरोत् । स होवाच । किं मेऽतः स्यादिति । स होवाचेन्द्रो यत्त्वामुद्गीथेनोपावनेष्यन्ते तेनैव ते कल्पयिष्यन्तिति । सेनान्यो हि तर्द्धादित्यानकल्पयन् तस्माज्जागतं तृतीयसवनमादित्यानाम् । स हापश्यदादित्यो वा उद्गीथोऽसो खल्वादित्यो ब्रह्म । न ह वा एनं मिथु चिदेमीति । स ह स्वेनैव रुपेणादित्यानगच्छत् । स ह तेनैव वज्रेणासुरान् पराभावयन् । तद्यत् स्वेनैव रूपेणाविस्तरामगच्छत्तस्रतिष्ठामविन्दत् । प्रतिष्ठा ह वा एषा यत्प्रणवः । सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्रणव एव प्रतिष्ठिन्ति । तस्य ह वा एषा प्रतिष्ठा यत्रासावात्मानमुपसंहत्याजूगुपत् । तस्मात्तदेवोपन्वीतेति तदेवोपासीत । तदेतद्याभ्यक्तम्—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य । त्रिधा बद्घो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥ इति ॥

यदिमास्तिस्रोथासाविति चत्वारीति । यदिमे द्वे एवाक्षरे त्रिभिरुपन्वन्ति तत्त्रय इति । यद्प्रत्यक्षं तद्वे इति । यदुद्गीथं सप्तभिरभिप्रपद्यन्ते तत्सप्तेति । अथो खल्वाहुः । सप्तभिरेनं स्वारयन्तीति । यदीमान् त्रीनभिधत्ते तित्रधेति । यदिनद्र एवोद्गीधस्तद्वृषम इति । तदेतदृचाम्युक्तम्—

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानम् । यद्वावयन्ति तद्रोरवीति ॥ यदेष सर्वाणि भूतान्यनुप्रविष्टस्तन्मर्त्याः आविवेशेति । तस्मादो-मित्येकाक्षरमुद्रीथमुपासीतेत्याह भगवान् शौनकः शौनक इति ॥

इति शौनकोपनिषत् समाप्ता

सूर्यतापि-युपनिषत्

प्रथम: पटल:

उँ अथ भगवन्तं कमलासनं चतुर्मुखं पितरं ब्रह्माणं सनत्कुमार उपससार । प्रणनामाहं भो इति । अधीहि भो इति पप्रच्छ । को मनुः । दिव्यं किं ध्येयम् । यज्जपात्सर्वेनोनिवृत्तिः । यद्वचानात्सारूप्यसिद्धिः तद्ववीतु भगवान् लोकानुप्रहायति । तच्छूत्वा पितामह आह — शृणोतु भवानेकमनाः सर्वदा यमामनन्ति यन्नमस्यन्ति देवाः स ब्रह्मा स शिवः स हरिस्तेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् स सूर्यो भगवान् सहस्रांशुः तं सूर्यं भगवन्तं सर्वस्वरूपिणं निगमा बहुधा वर्णयन्ति । कश्यपः पश्यको भवति । यत्सर्व परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात् । कश्यपादुदिताः सूर्याः पापानिर्व्वन्ति । यत्ववि परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात् । कश्यपादुदिताः सूर्याः पापानिर्व्वन्ति । असौ योऽपक्षीयति । एव हि देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः । स विजायमानः स जनिष्यमाणः प्रत्यञ्चस्तास्तिष्ठति विश्वतोमुखः । असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उत्तेनं विश्वा भूतानि स दृष्टो मृद्धयाति नः । ऋग्भः पूर्वोह्वे दिवि देवं ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये मृद्धयाति नः । ऋग्भः पूर्वाह्वे दिवि देवं ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठित मध्ये

अहः । सामवेदेनास्तमये महीयते । वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः । ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मर्तिमाहुः ॥

> एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः। त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥ इति।

योगेन ऊर्ध्वमन्थिनः सूर्यं भगवन्तमुपासते । धनधान्यबहुरत्नवन्तो निर्व्याधिवन्त आयुप्यवन्त आरोग्यवन्तो रियवन्तो धनवन्तो बलवन्तो बहुपुत्रवन्त इति । श्रीकामः शान्तिकामः तुष्टिकामः पुष्टिकामो मेधाकामः प्रज्ञाकाम आयु^{प्}काम आरोग्यकामोऽन्नाद्यकामो भास्करं भगवन्तमुपासीत । सयोनिः सरूपतां सलोकतां गत्वा स्तुत्वा महानन्दमुदकमुपस्पृश्यापोऽवगाह्य वाग्यतः नित्यकर्म कृत्वा शुचौ देशेऽप्यासीनो दर्भान् धारयमाणः प्राङ्मुख उपविस्य प्राणानायम्य देशकालो सङ्कीर्त्य त्रिवेदमयं त्रिमूर्ति त्रिगुणं चतुष्पदं पञ्च-रूपं पडर्णवेद्यं सप्ताश्वमष्टशापेति (१) मुद्याद्रिसमारूढमुद्यन्तं पद्मकरं पद्मासनं पद्मवान्धवं दिव्याम्बर्धरं दिव्यगन्धानुरुपनं सर्वाभरणभूषितं सर्ववेदसं सर्वदेवाधिदैवतं सर्वदेवनमस्यन्तं काश्यपं भास्करं ध्यात्वा प्रस्कण्वः कण्वपुत्रो मुनिरस्य छन्दोऽनुष्टुब्भास्करो द्वादशात्मको दैवतमुदात्तस्वरो ज्ञानं नेत्रं सूर्यस्तत्त्वं प्रथमं वीजं द्वितीयं शक्तिस्तृतीयं कीलकमथापि श्रीवीजं शक्तिः सूर्य इति कीलकम् । अथ पादाद्यैरर्धर्चैः ऋगिभस्तृचेन द्वादशभिर्नामभिः मित्ररविसूर्यभानुखगपूषहिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवित्रर्कभास्कराख्यैः षड्बीजैः संपुटिताः । स्तस्य सिध्यन्ति । गच्छेदंते परं पदम् ॥

प्रोक्तमादित्यमाहात्म्यं यन्मां त्वमनुष्टच्छिस । प्रत्यक्षदैवतं भानुः परोक्षं सर्वदेवताः ॥ तद्धचानं पूजनं कार्यं श्रेयस्कामैर्जितेन्द्रियैः । जितेन्द्रियाय शान्ताय मन्त्रं देयमिदं महत् ॥

न देयं चञ्चलाक्षाय नामक्ताय कदाचन । हसन्ति लोकायतिका हसन्ति कृटिला जनाः ॥ तस्माद्गोप्यं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् । रोगी रोगात् प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ तथा प्रत्यर्थिकृत्याभिर्मन्त्रयन्त्रादिकिल्यिषैः । किं पुत्र बहुनोक्तेन सत्यं सत्येन मे शपे ॥ इति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये प्रथम: पटल:

द्वितीय: पटल:

सनत्कुमारो भगवन्तं पितरं प्रणिपत्य पप्रच्छ ॥

कथं ध्यानं कथं न्यासः कथं पूजाविधानकम् ।

अर्ध्यदानं कथं कार्यं ब्रवीतु भगवानिदम् ॥ इति ॥

ततो भगवान् पितामह आह—

यतवाकायमनसः सूर्यभक्तो ब्रह्मचारी व्रतधरः ष समुदायगुरुं कृषि । उद्यन्नद्यमिनो भज । पिता पुत्रभ्यो यथा । दीर्घायुत्वस्य हेशिषे । तस्य नो देहि सूर्य । इति द्वचर्च महामन्त्रं जस्वा प्रत्यर्थिनो जयित । उद्यन्नद्यमित्र महः । आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृदोगं मम सूर्य । हृरि-माणं च नाशय । शुकेषु मे हिरमाणम् । रोपणाकामु द्ध्मिस । अथो हारिद्रवेषु मे । हिरमाणं निद्धमिस । उद्यनाद्यमादित्यः । विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मम रन्धयन् । मो अहं द्विषतो रथम् । उद्यन्नद्वेत्ययं तृचो रोगन्नः उपनिषदंत्यार्धर्चशो द्विषं (१) ना (१) यो नः शपादशपत् । यध नः

शपतः शपात् । उषाश्च तस्मै निम्रुक् च । सर्वे पापं सम्हताम् । इत्येकचीं रोगन्नः प्रत्यर्थिहारी ॥

आकाशो विह्ना युक्तो दीर्घाद्यश्च सिवन्दुकः । आद्योऽयमर्णकोपिष्ठो द्वितीयेन द्वितीयकः ॥ तृतीयन तृतीयन तृतीयः स्यात् द्वादशेन तृतीयकः । भृतेन पञ्चमः प्रोक्तः पष्टः षोडशतः स्वरात् ॥ षडर्चोऽयं महामन्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः । एतन्मन्तं मयोद्दिष्टं गुह्याद्गुह्यतमं महत् ॥ एतज्जस्वा महामन्तं सर्वपापैः प्रमुच्यते । पूजियत्वा विवस्वन्तमर्ध्यदानं समाचरेत् । एवं यः कुरुते पूजां मुच्यते सर्विकित्विषैः ॥ सर्वामश्तत इति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये द्वितीयः पटलः

तृतीयः पटलः

अथ सौरमनृनि प्रवक्ष्यामि निगमोदितानि । घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इति त्रीणि । आदित्य इति त्रीणि । एतद्वे सावित्रस्याष्टाक्षरं पदं श्रियाभिषिक्तम् । य एवं वेद । श्रिया हैवाऽभिषिच्यते । सह वा एतस्य स्वधा न यजुषा न साम्नामधोंऽस्ति । यस्सावित्रं वेद । अहो नाहाश्वश्यः । सावित्रं विदाश्वकार । तं ह वागदृश्यमानाभ्युवाच । संर्वे वत गौतमो वद । यस्सावित्रं वेदेति । स होवाच । सेषा वागसीति । अयमहं सावित्रः । यस्सावित्रं वेदेति । सुद्धं महो विश्रदिति । एतावदिह गौतमः यज्ञोपवीतं

कृत्वाऽघो निपपात । नमो नम इति । स होवाच । मा भैषीगौतम जितो वै ते लोक इति । तस्माद्ये केच सावित्रं विदुः । सर्वे ते जितलोकाः । उद्यन्नद्य मित्र महः । सपत्नान्मे अनीनशः । दिवैनान्विद्युता जिह । निम्नो-चन्नधरान् कृषि । न्यासोपयोगस्तथैवार्घ्यदाने च पादन्यास आद्योऽर्धर्चन्यासो द्वितीयरुज्ञस (१) स्तृतीयस्तृचन्यासश्च बीजन्यासो हंसन्यास इति बहुधा वर्णयन्ति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये तृतीय: पटल: ।

चतुर्थः पटलः

अथ पूजाविधानं वक्ष्ये — यन्त्रस्य पूर्वद्वारे द्वारिश्रये क्षेत्रपालाय मायाये नम इति दक्षिणतो द्वारिश्रये गणेशाय मायाये प्रत्यक्तो दुर्गाये मायाये उदक्तो महालक्ष्म्ये मायाये नमः । पूर्वपत्रे सूर्यायाग्नेयपत्रे रवये दक्षिणे विवस्वते नैर्ऋतौ खगाय पिश्चमे वरुणाय वायव्ये मित्राय सौम्ये आदित्याय ईशान्ये नमो महसे भास्कराय नम इत्यथाष्टदळपूजादित्यसिवतु-सूर्यखगपूषगभित्तमार्ताण्डजगच्छभिरष्टभिर्जातैरथ पीठपूजाधारशक्तिमूल-प्रकृतिकूर्मानन्तवराहपृथिवीसुवर्णमण्टपरत्निसिहासनैिङन्तैः धर्मज्ञानवैराग्येश्व-येर्नजपूर्वेश्च क्रिन्तैऋग्वेदादिभिश्चतुभिः कृतादिभिश्चतुभिर्मन्दारादिभिः पञ्चिभः पीठकल्पमूलकन्दनाळपद्मपत्रकेसरकणिकासूर्यमण्डलसोमविह्नब्रह्मविण्णुरुद्रसत्व - रजस्तमआत्मान्तरात्मा परमात्मभः पुरुषभुवः पुरुषसुवः पुरुषभूर्भुवस्सुवः पुरुषायैक्षिन्तैस्तृचेन सर्वोपचारोपयोगस्तेन सर्वाघोधनिवृत्तिः सिद्ध्यतीति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये चतुर्थः पटलः

पञ्चम: पटल:

अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि देवतासु प्रसाधनम् । यन्त्रं विना देवता च न प्रसीदति सर्वदा ॥

वृत्तमादौ विलिख्य साष्टपत्रं ततिस्त्रिकोणं वृत्तं पडश्रं वृत्तयुगळं साधुकोणं समालिखेदिति । तत्रैता देवता आवाह्य द्वादशावरणानि कुर्यात्तत्र देवतामार्ताण्डादिभान्वादित्यहंसस्पर्यदिवाकरतपनभास्करा किन्ताः प्रथमावरणे मित्रादयो द्वादशमन्त्राद्याः द्वितीये स्योदये नवखेटस्तृतीयं धाता ध्रुव-सोमानिलानलप्रत्यृषप्रभासश्चतुर्थे वीरभद्रगिरिशशंकरैकपार्दाहर्वृध्न्यादीनाः भुवनाधिपतिविशांपतिपशुपतिस्थाणुभवाः पश्चमे धात्रर्यमांशुमध्यमणि-भवेन्द्रविवस्वत्पूषगभस्तिमार्ताण्डजगच्चक्षुषः षष्ठे अरुणस्यवेदाङ्गभान्विन्द्र-रिवगभस्तियमसुवर्णरेतोदिवाकरमित्रविष्णुमाधादिद्वादशमासाधिपतयः सप्तमे असिताङ्गो रुरुश्चन्द्रकोधोन्मत्तकपालिभीषणसंहाराः अष्टमे ब्राह्मचादयः सप्तमातरो नवमे इन्द्रादयोऽष्टो दशमे मेषादयो द्वादशैकादशे वज्रशक्ति-खङ्गपाशाङ्कुशगदात्रिशूलचन्द्रमुसलपद्यानि द्वादशे मध्ये भास्करं ध्यायेदुप-चारान् समर्प्याणि दद्यात् भगवान् सुप्रीतो भवेत् ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये पश्चमः, पटलः

षष्ठः पटलः

अथ यन्त्रे बीजोद्धारं प्रवक्ष्यामि देवतासन्निधये वृत्तभानुमती-द्वर्चणमुद्धरेत्कमलाष्टपणेंषु दण्ड एषः पिङ्गाक्षप्रचण्डक्षेत्रपालगणपतिदुर्गाल-क्ष्म्यो डेन्ता अष्टी स्याद्वर्ण (?) बीजकाद्याः षट्कोणेषु तारया हंसस्सोहमिति चतुराशासु मायामङ्कुशं च माख (१) प्वष्टसु तत्तदाद्यर्णमध्ये तृतीय-नामादिकमिति देशिकोक्त्या सर्वे विज्ञाय साधकः सिद्धचति ॥

गुरुभक्ताय शान्ताय प्रदेयं नियतात्मने ।
न च शुश्रूषवे वाच्यं हैतुकाय कदाचन ॥
देशिकोक्तविधानेन यन्त्रे देवं प्रपूजयेत् ।
अर्घ्यदानं ततः कुर्याद्वानुरर्घ्यप्रियः सदा ॥
देशिकोक्तेन मन्त्रेण तृचेन च यथाविधि ।
साधकः साधयेत् सर्वमिह लोके परत्र च ॥
किं पुत्र बहुनोक्तेन सत्यं सत्येन मे शपे ।
प्रत्यक्षन्वतं सूर्यः परोक्षं सर्वदेवताः ॥
सूर्यस्योपासनं कार्यं गच्छेत् सूर्यसः सदम् ।
गच्छेत् सूर्यसः सदं गच्छेत् सूर्यसः सदमिति ॥

इत्याथर्वणशिरसि सूर्यतापिनीये षष्टः पटलः

सूर्यतापिन्युपनिषत् समाप्ता

स्वसंवेद्योपनिषत्

ॐ सर्वेषां प्राणिबुद्धुदानां निरंजनाव्यक्तामृतनिधौ विलयिविलासः स्थितिर्विजृम्भते । तेषामेव पुनर्भवनं नो इहास्ति । स यथा मृत्यिण्डे घटानां तन्तौ पटानां तथैवेति भवति । वस्तुतो नोपादानमत एव नोपादेयमत एव न निमित्तमत एव न विद्या न पुराणं नो वेदा नेतिहासा इति न जगदिति न ब्रह्मा नो विष्णुः नाथ रुद्रो नेश्वरो न बिन्दुः नो कलेति अप्रे मध्येऽवसाने सर्वे यथावस्थितं यथावस्थितज्ञानं तेषां नो भवत्यागमपुराणेति-हासधर्मशास्त्रेषु धृताभिमानास्ते । यत्तानितु मुग्धतरमुनिशब्दवाच्यैः जीवबुद्धुदैः रचितानीति भवन्ति । तत्र प्रामाण्यं तादृशानामेव । ते त्वज्ञानेनावृताः स-यत्नेन गर्भास्तद्प्येष श्लोको भवति । तदत्र श्लोको भवति ॥

इह तेनाप्यज्ञानेन नो किञ्चित्। अथ यथावस्थितज्ञानेन किंचित् नेति यदस्ति तदस्ति यत्रास्ति नास्ति तत्। कालकर्मात्मकमिदं स्वभावात्मकं चेति। न सुकृतं नो दुष्कृतम्। अत एव सुमेरुदातारो गोदातारो वा गोन्नैः ब्राह्मणन्नैः सुरापानैः पश्यतोहरैः परोक्षहरैर्वा गुरुपापनिष्ठैः सर्वपापनिष्ठैः समानास्त एते। तैश्च न गेंः न ब्राह्मणः न सुरा न पश्यतोहरः न परोक्षहरः न गुरुपापानि न लघुपापानि मत एव तन्निष्ठाः मत एव न निर्वाणं नो निरय इति तदप्येष श्लोको भवति॥

तत्त्वज्ञानं गुहायां निविष्टमज्ञानिकृतमार्गे सुष्ठु वदन्ति । ते तत्र साभिमाना वर्तन्ते । पुष्पितवचनेन मोहितास्ते भवन्ति । स यथातुरा भिषग्महणकाले बाला अपथ्याहितगुडाविना जनन्या विद्यता इति नानादेवता गुरुकर्मतीर्थनिष्ठाश्च ते भवन्ति । केचिद्वयं वैदिका इति वदन्ति । नान्येऽस्मभ्यम् । केचिद्वयं सर्वशास्त्रज्ञा इति । केचिद्वयं देवा इति । केचिद्वयं स्वमे उपास्यदेवताभाषिणः । केचिद्वयं देवा इति । केचिद्वयं श्रीमद्रमारमणनिलनभृङ्गा इति । केचित्तु गृत्यन्तु । केचित्तु मूर्स्वा वयं परमभक्ता इति वदन्तो रुद्दिन्त पतन्ति च । ये केचनैते ते सर्वेऽप्य-ज्ञानिनः । ये तु ज्ञानिनो भवन्ति ये तत्त्वज्ञानिनश्च तैस्तेषां को विशेषः । मत एव केषाश्चित्केश्चिद्भेदः । मत एव यत्न विरिश्चिविष्णुरुद्रा ईश्वरश्च गच्छन्ति तत्नैव श्वानो गर्दमाः मार्जाराः कृमयश्च मत एव न श्वानगर्दभौ न मार्जारः न कृमिः नोत्तमाः न मध्यमाः न जघन्याः । तद्प्येष स्रोको भवति ॥

न तच्छब्दः न किंशब्दः न सर्वे शब्दाः न माता नो पिता न बन्धुः न भार्या न पुत्रो न मित्रं नो सर्वे तथापि साधकरात्मस्त्रस्यं वेदिद्यमिच्छद्भिजीवन्मुमुश्लुभिः सन्तः सेव्याः। भार्या पुत्रो गृहं धनं सर्वे तेभ्यो देयम्। कर्माद्वैतं न कार्य भावाद्वैतं तु कार्यम्। निश्चयेन सर्वाद्वैतं कर्तव्यम्। गुरो द्वैतमवश्यं कार्यम्। यतो न तस्मादन्यत्। येन सर्वमिदं प्रकाशितम्। कोऽन्यः तस्मात्परः। स जीवन्मुक्तो भवति स जीवन्मुक्तो भवति। य एवं वेद। य एवं वेद॥

इति स्वसंवेद्योपनिषत् संपूर्णा

३. वैष्णव-उपनिषदः

ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत्

अथ श्रीवराहरूपिणं भगवन्तं प्रणस्य सनत्कुमारः पप्रच्छ । अधीहि भगवन् ऊर्ध्वपुण्ड्विधिम् । किं द्रव्यं किं स्थानं का रेखा को मन्तः कः कर्ता किं फलमिति च । श्रीवराह उवाच । क्षीराव्धितः श्वेतद्वीपे क्षीरखण्डान् वैनतेय आनीय सटाभिः द्विदळनश्वेतमृत्तिकाखण्डमुक्तिसाधिका भवन्ति । विण्णुपत्नीं महीं देवीमिति श्वेतमृत्तिकां नमस्कृत्य, ओमिति हस्तेनोद्धृत्य ।

अश्वकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसुन्धरा । शिरसा धारिता देवि रक्षस्व मां पदे पदे ॥

इत्येताभिः प्रार्थयेत् । इमं मे गङ्गेति जलमादाय, गन्धद्वारेति निक्षिप्य, विष्णोर्नुकमिति मर्दयेत् । तन्मध्ये नृसिंहबीजं विलिख्य, "अतो देवा अवन्तु नः" इति विष्णुगायत्र्या त्रिवारमभिमन्त्र्य "नारायणाय विद्यहे व सुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।" इत्येकवारम् ॥

> श्वेतमृद्देवि पापघ्ने विष्णुदेहसमुद्भवे । चक्राङ्किते नमस्तेऽस्तु धारणान्मुक्तिदा भव ॥

श्रीचृर्णे श्रीकरं दिव्यं श्रियश्चाङ्गे समुद्भवम् । पुण्ड्रं च यस्य मध्ये तु धार्ये मोक्षार्थिभिः स्मृतम् ॥ तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत त्रतमेतत्तु वैप्णवम् ॥

यस्त्वेवं विजानीयात् स नारायणसायुज्यमवाभोति । न च पुनः कुल कुत्र धार्यम् । मत्पादाकृतयश्च ऊर्ध्वपुण्ड्रा नासादयः स्मृताः रेखाद्वादशकस्थाने । प्रथमं तु ललाटके द्वितीयं तु नाभौ तृतीयं वक्षसि चतुर्थं कण्ठे पञ्चमं नाभिदक्षिणे षष्ठं दक्षिणवाहौ सप्तमं तदू-र्ध्वस्कन्ये अष्टमं नाभ्युत्तरे नवमं वामवाहौ दशमं तदूर्ध्वस्कन्ये एकादशं पृष्ठोर्ध्वतः द्वादशं कण्ठपृष्ठे मोक्षं देहि शिरिस । नारायणे मय्यचला भक्तिस्तु वर्धते । संज्ञेन फलं लब्ध्वा तद्विष्णोः परमं पदमवाप्नोति । केशवादिद्वादशनामभिः ब्रह्मचारी गृहस्थो यतिश्च सर्वेभ्यो दुःखेभ्यो मुक्तो भवति । सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । सर्वेदेवैः ज्ञातो भवति । अश्रोत्रियः श्रोत्वयो भवति । अनुपनीतोऽप्युपनीतो भवति । आचक्षुषः पङ्क्तिं पुनाति । न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते । इत्याह भगवान् वराहरूपी । य एवं वेदेत्युपनिपत् ॥

इत्यूर्ध्वपुण्ड्रोपनिषत् समाप्ता

कात्यायनोपनिषत्

अथ प्रणिपत्य कात्यायनो ब्रह्माणमन्वयुङ्क्त । अधीहि भगवः किं पवित्राणां पवित्रम् । केन वा कर्मणा सफलानि । किं दुष्करं तपो मत्रानाम् । केन सुकरेणामृतत्वमेति । स होवाच । साधु ते सुयोगः शृणु । भो पिवत्रं सुलभं सुकरम् । यद्विष्णुक्षेत्रम् । तत्र मृत्स्नां श्वेतां "उद्धृतासि" इत्युद्धरेत् । अमृतमेव श्वेतमृत्स्ना भवति । तां गुद्धजलेन प्रणवेन घर्षयेत् । देविपतृकर्माण्यारभमाणस्तया नित्यमूर्ध्वपुण्ड्ं बिभृयान्मन्त्रैः केशवादीनाम् । तद्वहितं कर्म निष्फलं रक्षांसि गृह्णीयुः । तदेवमभ्युक्तं भवति । नासादिकेशान्तमूर्ध्वपुण्ड्ं विष्णोः स्थितस्य चरणद्वयाकृति । एकाङ्गुलं पादतरोन्स्य मूलम् । तदुत्पन्ने द्वे शाखे । तदेव च मध्याकारोऽङ्गुलादन्यूनः । स श्रीः प्रतिष्ठाये । श्रीर्हरिद्धा । यतो हरिं द्वावयित तच्छीचूर्णं श्रियावधृतं आदित्यवर्णं श्रीफले धारयत् । तज्जलेन श्रीबीजेन संमृज्य तत्स्क्ष्मरेखां धारयत् । स श्रीमान् भवति । ते द्वे शाखे हंसवर्णे गायत्रीत्रिष्टुप्छन्दसी आत्मपरमात्मदैवत्ये दर्शपूर्णमासिके इष्टापूर्तिक्रये मुक्तिमुक्तिफले । सा रेखा श्रीवर्णा । गायत्री छन्दः । आनन्दिक्तयामृतत्वफला । अयमूर्ध्वपुण्ड्-विधिः । एवं विदित्वा यो धारयित स सर्वकर्माहों भवति । कायिकात्यूतो भवति । स विष्णुसायुज्यमवाभोति स विष्णुसायुज्यमवाभोति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति कात्यायनोपनिषत् समाप्ता

गोपीचन्द्नोपनिषत्

ॐ नमस्कृत्य भगवन्तं न।रदः सर्वेश्वरं वासुदेवं पप्रच्छ । श्रीभगवन् ऊर्ध्वपुण्ड्विधिं द्रव्यमन्त्रस्थलादिसहितं मे ब्रूहीति । तं होवाच भगवान् वासुदेवो वैकुण्ठस्थानोद्भवं मम प्रीतिकरं मद्भक्तेब्ब्लादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं वैकुण्ठस्थानादाहृत्य द्वारकायां मया प्रतिष्ठितं चन्दनं कुङ्कुमादिसहितं विष्णुचन्दनं ममाङ्गे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनात् गोपीचन्दनमा-ख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थान्तः स्थितं चक्रसमायुक्तं पीतवर्णं सुक्तिसाधनं भवति ॥ अथ गोपीचन्दनं नमस्कृत्योद्धृत्य,

गोपीचन्दन पापन्न विष्णुदेहसमुद्भव । चकाङ्कितं नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव ॥

इति प्रार्थनम् । "इमम्मे गङ्गे" इति जलमादाय, "विष्णोर्नुकं" इति मर्दयेत् । "अतो देवा अवन्तु नः" इत्येताभिर्ऋग्भिर्विष्णुगायत्र्या त्रिवारमभिमन्त्र्य,

> शंखचकगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत । गोविन्दः पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम् ॥

इति मां ध्यात्वा, गृहस्थो ठठाटादिस्थरुप्वनामिकाङ्गुल्या विष्णुगायच्या केशवादिद्वादशनामिभर्वा धारयेत्। ब्रह्मचारी वानप्रस्थो ठठाटकण्ठहृदयवाहुमूरुपु वैष्णवगायच्या कृष्णादिपञ्चनामिभर्वा धारयेत्। यतिस्तर्जन्या शिरोठठाटहृदयेषु प्रणवेन धारयेत्। ब्रह्मादयस्रयो मूर्तयस्तिस्रो व्याहृतयस्त्रीणि छन्दांसि त्रयो ठोकाः त्रयो वेदास्रयः स्वराः त्रयोऽमयो ज्योतिष्मन्तस्रयः कालास्तिस्रोऽवस्थास्रय आत्मानः पुण्ड्रास्त्रयः उध्वाः अकारोकारमकाराः एते सर्वे प्रणवमयोध्वपुण्ड्त्रयात्मकास्तदेतदोमि-त्यक्था समभवन्। परमहंसो ठलाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुण्ड्ं वा धारयत्। तत् दीपप्रकाशं स्वमात्मानं परं ब्रह्मैवाहमस्मीति भावयन् योगी मत्सायुज्य-मवामोति॥

अथान्यो हृदयस्योध्वं पुण्ड्रं मध्ये बहुहृदयकमलमध्ये वा स्वमात्मानं भावयेत् ॥

तस्य मध्ये बह्विशिखा अणीयोध्वां व्यवस्थिता ।

गोपी का। का नाम संरक्षणी। कुतः संरक्षणी। लोकस्य नरकात् मृत्योर्महाभयाच संरक्षणी। चन्दनं तुष्टिकरणम्। किं तुष्टिकरणम्। ब्रह्मानन्दकारणम्। य एवं विद्वानेतदाख्यापयेत्। य एतच धारयेद्गोपी-चन्दनमृत्तिकानिरुक्त्यानि (१) धारणमात्रेण च ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयत इति ॥

गोप्यो नाम विष्णुपत्न्यस्तासां चन्दनं आहादनम् । कश्चाहाद एष ब्रह्मानन्दरूपः । काश्च विष्णुपत्न्यो गोप्यो नाम जगत्सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः प्रकृतिमहदहमाद्या महामायाः । कश्च विष्णुः परं ब्रह्मैव विष्णुः । कश्चाहादो गीपीचन्दनसंसक्तमानुषाणां पापसंहरणाच्छुद्धान्तःकरणानां ब्रह्म-ज्ञानप्राप्तिश्च य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

गोपीत्यग्र उच्यताम् । चन्दनं तु ततः पश्चात् । गोपीत्यक्षरद्वयम् । चन्दनं च्यक्षरम् । तस्मादक्षरपञ्चकम् । य एवं विद्वान् गोपीचन्दनं धारयदक्षयं पदमामोति । पंचत्वं न स पश्यति । ततोऽमृतत्वमश्नुत इति । अथ मायाशबिलतब्रह्मासीत्ततश्च महदाद्या ब्रह्मणो महामायासंमीलनात् पंचभृतेषु गन्धवती पृथिव्यासीत् । पृथिव्याश्च वैभवाणवभेदाः पीतवर्णा मृदो जायन्ते । लोकानुग्रहार्थं मायासिहतं ब्रह्म संभोगवशादस्य चन्दनस्य वैभवं य एवं विद्वान् यतिहस्ते दद्यादनुग्रहार्थं मायापल्लवः सर्वमायुरेति ॥ ततः प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं यच्च एतद्रहस्यं सायंप्रातध्ययिदहोरात्रकृतं पापं नाशयति मृतो मोक्षमश्नुते मृतो मोक्षमश्नुत इति ॥

गोपीचन्दनपङ्केन ठठाटं यस्तु ठेपयेत् । एकदण्डी त्रिदण्डी वा स वै मोक्षं समश्तुते ॥ १ ॥ गोपीचन्दनिठिप्ताङ्गो यं यं पश्यित चक्षुषा । तं तं पूतं विजानीयाद्राजिभः सत्कृतो भवेत् ॥ २ ॥

ब्रह्ममध्य कृतमध्य गोमध्य गुरुतल्पगः । तेषां पापानि नश्यन्ति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ३ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो म्रियते यत्र कुत्रचित् । अभिन्याप्यायतो भूत्वा देवेन्द्रपदमश्नुते ॥ ४ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गं पुरुषं य उपासते । एवं ब्रह्मादयो देवाः सन्मुखास्तमुपासते ॥ ५ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः पुरुषो येन पूज्यते । विष्णुपूजितभूतित्वाद्विष्णुलोके महीयते ॥ ६ ॥ सदाचारः ग्रुभाकल्पो मिताहारो जितेन्द्रियः । गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः साक्षाद्विष्णुमयो भवेत् ॥ ७ ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो त्रतं यस्तु समाचरेत् । ततः कोटिगुणं पुण्यमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ८॥ गीपीचन्दनलिप्ताङ्गैर्जपदानादिकं कृतम्। न्यूनं संपूर्णतां याति विधानेन विशेषतः ॥ ९ ॥ गोपीचन्दनमायुष्यं बलारोग्यविवर्धनम् । कामदं मोक्षदं चैव इत्येवं मुनयोऽब्रुवन् ॥ १० ॥ अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च । तेषां पुण्यमवामोति गोपीचन्दनधारणात् ॥ ११ ॥ गोपीचन्दनदानस्य चारवमेधसमं फलम्। न गङ्गया समं तीर्थ न शुद्धिर्गोपिचन्दनात् ॥ १२ ॥ बहुनात्र किमुक्तेनं गोपीचन्दनमण्डनम् । न तत्तुल्यं भवेल्लोके नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥ चन्दनं वापि गोपीनां केलिकुङ्कुमसम्भवम् । मण्डनात् पावनं नृणां भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १४ ॥

कृष्णगोपीरतोङ्कृतं पापघं गोपिचन्दनम् । तत्प्रदानात्सर्ववेदचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ १५ ॥ तिलमात्रप्रदानेन काञ्चनाद्रिसमं फलम् । कुङ्कुमं कृष्णगोपीनां जलकीडासु संभृतम् ॥ १६ ॥ गोपीचन्दनमित्युक्तं द्वारवत्यां सुरेश्वरैः । कृष्णगोपीजलकीडाकुङ्कुमं चन्दनैर्युतम् ॥ १७ ॥ तिलमात्रं प्रदायेदं पुनात्यादशमं कुलम् । गोपीचन्दनस्वण्डं तु चकाकारं सुलक्षणम् । विष्णुरूपमिदं पुण्यं पावनं पीतवर्णकम् ॥ १८ ॥

आपो ह वाग्रे आसन् । तत्र प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाश्राम्यतेदं सृजेयमिति । स तपोऽतप्यत । तत योङ्कारमपश्यत्ततो व्याहृतीस्ततो गायत्री गायत्र्या वेदास्तैरिदमसृजत् । धूममार्गविसृतं हि वेदार्थमभिसन्धाय चतुर्दश लोकानसृजत् । तत उपनिषदः श्रुतयः आविर्वभृवः । अर्चिर्मार्गविसृतं वेदार्थमभिसन्धाय सर्वान् वेदान् सरहस्योपनिषदङ्कान् ब्रह्मलोके स्थापयामास । स एताश्चोपनिषद्वैवस्वतेन्तरे सगुणं ब्रह्म विधिनानन्दैकरूपं पुरुषोत्तमरूपेण मथुरायां वसुदेवसद्मन्यावर्भविप्यति । तत्रभवत्यः सर्वलोकैः कृष्णसौन्दर्यं क्रीडामोगागोपिकास्वरूपैः परब्रह्मानन्दैकरूपं कृष्णं भिन्य्यथ । तत्र श्लोकी —

इति ब्रह्मवरं लब्ध्वा श्रुतयो ब्रह्मलोकगाः। कृष्णमाराधयामासुर्गोकुले धर्मसंकुले॥ श्रीकृष्णास्त्यपरं ब्रह्म गोपिकाः श्रुतयोऽभवन्। एतत्संभोगसंभूतं चन्दनं गोपिचन्दनम्। इति॥

इत्यथववदोक्तगोपीचन्दनोपनिषतः समाप्ता

तुलस्युपनिषत्

अथ तुलस्युपनिषदं व्याख्यास्यामः । नारद ऋषिः। अथर्गक्तिः ररुछन्दः। अमृता तुल्सी देवता । सुधा बीजम् । वसुधा शक्तिः । नारायणः कीलकम् । रथामां रथामवपुर्धरां ऋक्स्वरूपां यजुर्मनां [?] ब्रह्माथर्वप्राणां कल्पहस्तां पुराणपिठतां अमृतोद्भवां अमृतरसमञ्जरीं अनन्तां अनन्तरसभोगदां वैप्णवीं विष्णुवल्लमां मृत्युजन्मिनवर्हणीं दर्शनात्पापनाशिनीं स्पर्शनात्पावनीं अभिवन्दनाद्रोगनाशिनीं सेवनान्मृत्युनाशिनीं वैकुण्ठार्चनाद्विपद्धन्त्रीं भक्षणात् वयुनप्रदां प्रादक्षिण्याद्दारिद्रचनाशिनीं मूलमृल्लेपनान्महापापभित्ननीं प्राणत्पणादन्तर्मलनाशिनीं य एवं वेद स वैष्णवो भवति । वृथा न छिन्द्यात् । दृष्ट्वा प्रदक्षिणं कुर्यात् । यां न स्पृशेत् । ५ णि न विचिन्वेत् । यदि विचिन्वित स विष्णुहा भवति । श्रीतुलस्यै स्वाहा । विष्णुप्रियायै स्वाहा । अमृतायै स्वाहा । श्रीतुलस्यै विद्याहे विष्णुप्रियायै धीमिहि । तन्नो अमृता प्रचोदयात् ॥

अमृतेऽमृतरूपासि अमृतत्वप्रदायिनि । त्वं मामुद्धर संसारात् क्षीरसागरकन्यके ॥ श्रीसखि त्वं सदानन्दे मुकुन्दस्य सदा प्रिये । बरदाभयहस्ताभ्यां मां विलोकय दुर्लमे ॥ अमृक्षवृक्षरूपासि वृक्षत्वं मे विनाशय । दुलस्यदुलरूपासि तुलाकोटिनिमेऽजरे ॥ अतुले त्वतुलायां हि हरिरेकोऽस्ति नान्यथा । त्वमेव जगतां धात्री त्वमेव विष्णुवल्लमा ॥

त्वमेव सुरसंसेव्या त्वमेव मोक्षदायिनी । त्वच्छायायां वसेल्रक्ष्मीस्त्वन्मूले विष्णुरव्ययः ॥ समन्ताद्देवताः सर्वाः सिद्धचारणपन्नगाः । यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये ब्रह्मदेवताः ॥ यदमे वेदशास्त्राणि तुलसीं तां नमाम्यहम्। तुलसि श्रीसिव शुभे पापहारिणि पुण्यदे ॥ नमस्ते नारदनुते नारायणमनःप्रिये। ब्रह्मानन्दाश्रसंजाते बृन्दावननिवासिनि ॥ सर्वावयवसंपूर्णे अमृतोपनिषद्रसे । त्वं मामुद्धर कल्याणि महापापाव्धिदुस्तरात् ॥ सर्वेषामपि पापानां प्रायश्चित्तं त्वमेव हि । देवानां च ऋषीणां च पितृणां त्वं सदा प्रिये ॥ विना श्रीतुलसीं विपा येऽपि श्राद्धं प्रकुर्वते । वृथा भवति तच्छाद्धं पितृणां नोपगच्छति ॥ तुलसीपत्रमुत्सुज्य यदि पूजां करोति वै। आसुरी सा भवेत् पूजा विष्णुप्रीतिकरी न च ॥ युज्ञं दानं जपं तीर्थं श्राद्धं वै देवतार्चनम् । तर्पणं मार्जनं चान्यन्न कुर्यात्त्रुलसीं विना॥ तुलसीदारुमणिभिः जपः सर्वार्थसाधकः। एवं न वेद यः कश्चित् स विप्रः श्वपचाधमः ॥

इत्याह भगवान् ब्रह्माणं नारायणः, ब्रह्मा नारदसनकादिभ्यः, सनका-दयो वेदव्यासाय, वेदव्यासः शुकाय, शुको वामदेवाय, वामदेवो मुनिभ्यः, मुनयो मनुभ्यः प्रोचुः । य एवं वेद स स्त्रीहत्यायाः प्रमुच्यते । स वीरह- त्यायाः प्रमुच्यते । स ब्रह्महत्यायाः प्रमुच्यते । स महाभयात् प्रमुच्यते । स महादुःखात् प्रमुच्यते । देहान्ते वैकुण्ठमवामोति वैकुण्ठमवामोति । इत्युपनिषत् ॥

इति तुलस्युपनिषत् समाप्ता

नारदोपनिषत्

अथ प्रणिपत्य नारदो ब्रह्माणं प्रायुङ्क । अधीह भगवन्मे किं पित्राणां पित्रत्रं केन सुकरेणामृतत्वमेति । स होवाच साधुत्वे नियोगं सुलमं पित्रत्रं सुलमं सुकरं तद्विष्णुक्षेत्रं तत्र मृदं श्वेतं '' उद्भृतासि '' इत्युद्धरेत् । अमृतमेव श्वेतमृद्भवति । मूलमन्त्रद्वयं च '' विष्णोर्नुकम्,'' '' गन्धद्वाराम् '' इत्येताभिरभिमन्त्रयेत् । देविपतृकर्माण्यारभमाणस्त्रयी नित्यमूर्ध्वपुण्डूं च कुर्यान्मन्त्रैः केशवादीनाम् । तत्कर्म सफलं च भवति । न रक्षांसि गृहीयुः । तदेवमभ्युक्त भवति । नासादिकेशान्त्तमूर्ध्वपुण्डूं विष्णोः स्थितस्य चरणद्वयाकृति । आयतमेकाङ्गुलं पादतरोरस्य मूलम् । तदुत्पन्ने द्वे रेखे । तथैव च धृतं विष्णुना वा '' आदित्यवर्णे तपसः'' इति हरिद्रां श्रीफले धारयेत् । तज्जलेन श्रीबीजेन संमृज्य तत्सूक्ष्मरेखां धारयेत् । ते द्वे शाखे हंसवर्णे गायत्रीत्रिष्टुब्दैवत्ये आत्मपरमात्मदैवत्ये लक्ष्मीनारायणदैवत्ये दर्शपूर्णमासेष्टके इष्टापूर्तिकये

मातृकायामेताबदेवोपलब्धम्

नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत्

प्रथमः खण्डः

अथ ब्रह्माणं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छ । कीदृशं नारायणाष्टाक्षरं भवतीति व्याचष्टे । अथ यो वै नारायणः स भगवान् परब्रह्मण आनन्दो भवति । ज्ञात्वा जीवन्मुक्तो भवति । सचिदानन्दस्वरूपपरवस्तु भवति । अष्टाक्षरं अष्टमूर्ति भवति । प्रथमरूपः पृथिवीरूपो भवति । द्वितीयमापो भवति । तृतीयस्तेजो भवति । चतुर्थो वायुर्भवति । पश्चम आकाशो भवति । षष्टश्चन्द्रमा भवति । सप्तमः सूर्यो भवति । अष्टमो यजमानः ॥

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः । सूर्यः पुमांस्तथाचेति मृर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः ॥

अकारोकारमकारनादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति । अकारः सद्योजातो भवति । उकारो वामदेवः । अघोरो मकारो भवति । तत्पुरुषो नादः । बिन्दुरीशानः । कला व्यापको भवति । अनुसन्धानो नित्यः । ध्यानस्वरूपं ब्रह्म । सर्वव्यापकोऽष्टाक्षरः ॥

> नारायणः परं ब्रह्म ज्ञानं नारायणः परः । नारायणं महापुरुषं विश्वमात्मानमव्ययम् ॥ अन्तर्विहिश्च तत्सर्वं स्थितो नारायणः परः । सहस्रशीर्षं देवमक्षरं परमं पदम् ॥ नारायणं शिवं शान्तं सर्ववेदान्तगोचरम् । सृष्टिः स्थितिश्च संहारितरोधानानुसंमतम् । पञ्चकृत्यस्य कर्तारं नारायणमनामयम् ॥

द्वितीय: खण्ड:

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणाष्टाक्षरमन्त्रं व्याचष्टे। श्रीमन्नारायणस्य दशमन्ताः कथ्यन्ते । ॐ नमो नारायणाय इत्यष्टाक्षरो मन्तः । स एव मन्त्रराजो भवति । एतन्नारायणस्य तारकं भवति । तदेवोपासितव्यं भवति । इत्युवाच भगवान्नारायणशब्दपरब्रह्मश्रीमहामाया-प्रकृतिसर्वमेकजननीलक्ष्मीर्भवति । देवानां देवलक्ष्मीर्भवति । सिद्धानां सिद्धलक्ष्मीर्भवति । मुमुक्षूणां मोक्षलक्ष्मीर्भवति । योगिनां योगलक्ष्मीर्भवति । मुनीनां विवेकबुद्धिर्भवति । राज्ञां राज्यलक्ष्मीर्भवति । सृष्टिक्ष्पा सरस्वती भवति । स्थितिक्ष्पा महालक्ष्मीर्भवति । संहारक्ष्पा रुद्धाणी भवति । तिरोधानकरी पार्वती भवति । अनुमहरूपा उमा भवति । पञ्चकृत्यक्षपा परमेश्वरी भवति । श्रीमहालक्ष्म्यै नम इति सप्ताक्षरो मन्तः ॥

सर्वेषामेव भूतानां महासौभाग्यदायिनी । महालक्ष्मीर्महादेवी सर्वलोकैकमोहिनी ॥ साम्राज्यदायिनी नित्यं सर्ववेदस्वरूपिणी । महाविद्या जगन्माता मुनीनां मोक्षदायिनी । ज्ञानिनां ज्ञानदा सत्यं दानवानां विनाशिनी ॥

इति महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिर्भवति । नारायणः स भगवान् परब्रह्मस्व-रूपी सर्ववेदान्तगोचरः नित्यशुद्धबुद्धपरब्रह्मानन्दमयो भवति । तस्मालक्ष्मी-नारायण इति स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये द्वितीयः खण्डः

तृतीय: खण्ड:

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणमन्त्रः कीदृशो भवति । "ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् " इति गायत्री भवति । "इदं विष्णुर्विचकमे त्रेधा निद्धे पदम् । समूद्धमस्य पाभ्सुरे।", "अतो देवा भवन्तु नो यतो विष्णुर्विचकमे । पृथिव्याः सप्तधामिभः" इति मन्त्रद्वयेन नारायणप्रतिपादितं भवति । "स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्" । नारायणायेति पञ्चाक्षरं भवति । ॐ नमो विष्णव इति षडक्षरं विज्ञातम । नमो नारायणायेति सप्ताक्षरं भवति । ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति द्वादशं परिकीर्तितम् । ॐ श्रीं हीं क्कीं नमो नारायणाय स्वाहा । यस्य कस्यापि न देयम् ।

पुत्रो देयः शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी।
न वदेद्यस्य कस्यापि किं तु शिप्याय तां वदेत्।।
ॐ श्रीं हीं नमो भगवते लक्ष्मीनारायणाय विष्णवे वासुदेवाय
स्वाहा।।

श्रीमहाविष्णवे तुभ्यं नमो नारायणाय च । गोविन्दाय च रुद्राय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥ नारायण महाविष्णो श्रीधरानन्त कशव । वासुदेव जगन्नाथ हृषीकेश नमो नमः॥

इत्यनुष्टुबद्धयं मन्त्रं व्याख्यातम् । अथ माठामन्त्रं व्याख्यास्यामः । स होवाच भगवान् ब्रह्मा य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये तृतीयः खण्डः

चतुर्थः खण्डः

स होवाच भगवान् पितामहः गायत्रीं व्याचष्टे । गोविन्दाय विद्याहे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो नारायणः प्रचोदयात् । कामदेवाय विद्याहे पुष्पवाणाय धीमहि । तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् । महादेव्ये च विद्याहे विष्णुपत्नी च धीमहि । तन्नो ठक्ष्मीः प्रचोदयात् । ''विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाः सि यो अस्कभायदुत्तरः सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः '', '' त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताम् । विचक्रमे शत्र्वसं महित्वा । प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् । त्वेषः ह्यस्य स्थविरस्य नाम ।"

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत । अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि॥

"प्रतिद्विष्णुस्तवते वीर्याय। मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु । अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।", "य ईश्थणोत्यलकः श्रृणोति । न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्।" अक्षन्वन्तः कर्णवन्तः सरवायो मनो जीवेष्वसमा बभूवुः । तस्माह्नद्वभीनारायणं सर्ववीजं सर्वभूताधिवासं यो वेत्ति स विद्वान् भवति । उपासकानां मोक्षप्राप्तिर्भवति । स जीवन्मुक्तो भवति । स होवाच भगवान् उपासनविधि व्याचष्टे । ब्रह्मा ऋषिर्भवति । गायत्री छन्द उच्यते । श्रीमन्नारायणपरमात्मा देवता । प्रणवं

बीजम् । नमः शक्तिरुच्यते । कीलकं नारायणेति ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगोऽथ भावना ।

महोल्काय वीरोल्काय वृद्धोल्काय पृथूल्काय विद्युल्काय ज्वलदुल्काय च षडङ्गकल्पिताः नमःस्वाहावषड्वोषट्पदान्ता अङ्गन्यासा भवन्ति ।

> नीलजीम्तसंकाशं पीतकीशेयवाससम् । किरीटकुण्डलधरं कौस्तुभोद्धासितोरसम् ॥

शङ्कचकगदाखङ्गधारिणं वनमालिनम् । वामभागे महालक्ष्म्यालिङ्गितार्धशरीरिणम् ॥ सनकादिभिः संसेव्यं स्त्यमानं महर्षिभिः। ब्रह्मादिभिः सदा ध्येयं ध्यात्वा नारायणं विभुम् ॥ कर्मणा मनसा वाचा संस्मरेत् प्रजपेत् सुधीः। अयुतं जपमात्रेण सर्वज्ञानपदो भवेत् ॥ लक्षमात्रं तु प्रजपेत् स्वस्वरूपं भवेन्मनः। अत ऊर्ध्व सदा ध्यायेत् साक्षान्नारायणो हरिः ॥ स होवाच भगवान य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

14 1हे

हि

णि

थं

सं

इत्यायर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये चतुर्थ: खण्ड:

पश्चम: खण्ड:

स होवाच भगवान् ब्रह्मा दशकळात्मकोऽवतारः कथ्यते ॥ जरा पालिनिका शान्तिरीश्वरी रतिकामिका। वरदा ह्रादिनी प्रीतिर्दीर्घा दशकला हरेः॥ नारायणाद्वतारा मन्त्ररूपा जायन्ते। ॐ नमो नारायणाय स्वाहा । एवं दशाक्षरो महामन्त्रो भवति । तत्र प्रथमो मत्स्यावतारः । द्वितीय: कूर्म. । तृतीयो वराहः । चतुर्थो नरसिक्षः । पश्चमो वामनः । षष्ठो जमद्ग्रिः । सप्तमो रामचन्द्रः । अष्टमः कृष्णः परमात्मा । नवमो बुद्धावतारः । दशमः कल्किर्जनार्दनः । ॐ मत्स्यावताराय नमः । श्री कूर्मावताराय नमः । ह्री वराहावताराय नमः । हुं नृसिंहावताराय नमः ।

सौः वामनावताराय नमः । ऐं परशुरामावताराय नमः । ग्लौं रामचन्द्राय नमः । क्लौं कृष्णाय नमः । व्लूं बुद्धावताराय नमः । सः कल्वयवताराय नमः इति । प्रजापतिः प्रजायते । तस्मान्नारायणः प्रजायते । त्रह्मा जायते । त्रह्माणः पञ्चमहाभृतानि तन्मात्राणि जायन्ते । ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रियाणि मनोवुद्धिचित्ताहंकारा जायन्ते । प्रकृतिर्जायते । चतुर्विशति-तत्त्वात्मको नारायणः । पञ्चविंशतितत्त्वात्मकः पुरुषत्वं परब्रह्म भवेत् । शिवश्च नारायणः । शक्रश्च नारायणः । दिशश्च नारायणः । ऊर्ध्वच नारायणः । अन्तश्च नारायणः । नारायणः सर्वे खिल्वदं ब्रह्म । तस्मान्नारायणादण्डजस्वेदजोद्भिज्जरायुजमनसिजादयः सर्वे महाभृताः प्रजायन्ते ॥

अजामेकां लोहितशुक्ककृष्णां वहीं प्रजां जनयन्ती सहस्पाम्। अजो ह्येको जुपमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

अण्डजाः सर्वस्वगरूपा जायन्ते । स्वेदजाः क्रिमिकीटादयः । उद्भिज्जास्तरुगुल्मलतादयः । जरायुजा नरपशुमृगादयो जायन्ते । मनिसजा नारदादयः सर्वे ऋषयः । नारायणः स्थावरजङ्गमात्मको भवति । अष्टवसवो नारायणः । एकादशरुद्धा नारायणः । नारायणात् द्वादशादित्याः । सर्वे देवा ऋषयो मुनयः सिद्धगन्धर्वयक्षरक्षःपिशाचाः सर्वे नारायणः । नारायण एवेदं सर्वम् । लक्ष्मीर्मूलप्रकृतिरिति विज्ञायते । वस्त्वेकं परब्रह्म नारायणः सनातनः ॥

साक्षान्नारायणो देवः परब्रह्माभिधीयते । सिचदानन्दात्मकाः स्युर्विष्णौ नित्ये प्रकल्पिताः । नानाविधानि रूपाणि हाटके कटकादिवत् ॥ " चत्वारि वाक्परिमिता पदानि । तानि विदुर्जाक्षणा ये मनीिषणः । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति । तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।" परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपा सरस्वतीति चतुर्विधा वाचो वदन्ति । वैखरी सर्वविद्यासु प्रशस्ता ॥

य

य

मा

Ì-

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वं मन्त्रशास्त्रकम् । विद्याश्चाष्टादश प्रोक्ता नारायणनिवेशिताः ॥

तस्य निश्वसितमेव ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो इधर्वाङ्गरश्चेति । सर्ववेदवेदान्तानां नारायणपरब्रह्मण्येव तात्पर्यम् । स होवाच भगवान् य एवं वेद । इस्युपनिषत् ॥

इत्यायर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये पश्चमः खण्डः

षष्ठः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणयन्त्रमन्त्रावरणपूजामाचचक्षे । त्रिकोणं प्रथमं भवति । द्वितीयं षट्कोणं भवति । वृत्तमष्टदलं तृतीयम् । चतुर्थे द्वादशदलम् । पञ्चमं षोडशदलम् । चतुर्विशति[ः]षष्टम् । द्वार्त्रिशति[ः] सप्तमम् । अष्टमं भृपुरम् । एवं यन्त्रं समाल्खिते । मध्ये लक्ष्मीनारायणं विक्षेपशक्त्यावरणं शक्तिप्रभाशक्तित्रिकोणदेवताः षट्कोणं वृद्धोल्कादयः पूज्याः । सर्वज्ञानित्वतृह्यनादिबोधस्वतन्त्रनित्यमल्जप्तानन्तं षट्कोणशक्तयः । सनकसनन्दनसनत्सुजातसनत्कुभारसनातननारदतुम्बुरुसमन्तादयोऽष्टदलाः । वसिष्ठवालिक्यविश्वामित्रकर्यपात्रिभरद्वाजाङ्गीरसजामद्भिगौतमागस्यजा बालिकपिला द्वादशदलाः । मत्स्यकूर्मवराहनारसिंहवामनरामरामकृष्णबुद्ध-किल्कसद्योजातवामदेवा अघोरतत्पुरुषेशानपरमेश्वराः षोडशदलाः । शंखकक-गदापद्मखड्गश्रीवत्सकौरनुभवनमालादिकिरीटकुण्डलकेयूरहाराङ्गदशाङ्गिशर -नन्दकपद्मवेणुबर्हिपिञ्छशेषानन्तगरुडविष्वक्सेनब्रह्माणश्चतुर्विशतिदलाः केश-वादिचतुर्विशत्यनुकमम् । हरिश्रीकृष्णमुकुन्दकुमुदाक्षपुण्डरीकाक्षधामकश्चरू-वर्णसर्वनेत्रसुमुखसुप्रतीका द्वात्रिशह्लाः । ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुण्य-दन्तसार्वभौमसुप्रतीकाक्षाश्चतुरश्रदेवताः । ॐ नमो नारायणायाष्टाक्षरसंज्ञा-वरणदेवतापूजा कर्तव्या । स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

> इत्यायर्वणरहस्ये नारायणपूर्वतापिनीये षष्ठ: खण्डः इति नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत् समाप्ता

नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषत्

प्रथम: खण्ड:

स होवाच भगवान् ब्रह्मा आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् सचिदानन्दस्वरूपो भवति ।

> द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्चनन्यो अभिचाकशीति ॥ यो वेदादौ स्वरः पोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तमकतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥ वासनाद्वासुदेवस्य वासितं हि जगत्त्रयम् । सर्वभूतिनवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

भूश्च नारायणः । भुवश्च नारायणः । सुवश्च नारायणः । महश्च नारायणः । जनश्च नारायणः । तपश्च नारायणः । सत्यं च नारायणः । नारायणः परं ब्रह्म । नारायण एवेदं सर्वम् । नारायणात्र किश्चिदस्ति । सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । तस्पाद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरिमः । अम्रेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओपध्यः । ओपधीभ्योऽत्रम् । अन्नात्पुरुषः । नारायणः सर्वपुरुष एवेदं परब्रह्म । नारायणः सर्वभूतान्तर्याम्यात्मा । आत्मेदं सर्वे नारायणः । नारायणः स्वयं ज्योतिः । तस्मात्प्रकाशात्मा ॥

नीवारश्क्वत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ।
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ॥
पाशवद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तः सनातनः ।
तुपेण बद्धो त्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः ॥
परब्रह्म स्वयं चात्मा साक्षान्नारायणः स्मृतः ।
नारायणमनादिं च योगनिद्रापरायणम् ॥
जाअत्स्वप्तसुपुप्तीषु सर्वकालव्यवस्थितम् ।
नारायणं महात्मानं महाध्यानपरायणम् ।
च्वेवेदान्तसंलक्ष्यं तद्वह्मेत्यभिधीयते ॥
होथाच भगवान् नारायण एवेदं सर्व प्रतिष्ठितं य एवं वेद ।

इत्युपनिषत् ॥

इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये प्रथम: खण्ड:

द्वितीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परवस्तु भवतीति विज्ञायते। सचिदानन्दरूपाय ज्ञानायामिततेजसे। परब्रह्मस्वरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते॥ नित्यशुद्धाय बुद्धाय नित्यायाद्वैतरूपिणे। आनन्दायात्मरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते॥

ओं नमो भगवते श्रीमन्नारायणाय महाविष्णवे अमितबलपराक्रमाय शङ्खचक्रगदाधराय लक्ष्मीसमेताय गरुडवाहनाय दशावताराय सर्वदुष्टदै-त्यदानवसंहरणाय शिष्टप्रतिपालकाय परब्रह्मरूपाय महात्मने परमपुरुषाय पुण्डरीकाक्षाय पुराणपुरुषाय शुद्धबुद्धाय सिच्चदानन्दस्वरूपाय महात्मने पणिः सूर्य आदित्य ॐ नमो नारायणाय सहस्रार हुं फट् स्वाहा ॥

नारायणाय शान्ताय शाश्वताय मुरारये । यज्ञेश्वराय यज्ञाय शरण्याय नमो नमः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा सर्वे विश्वमिदं नारायणः य एवं वेद इत्युपनिषतः॥

इत्याधर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये द्वितीयः खण्डः

तृतीयः खण्डः

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परब्रह्मेति य एवं वेद । नारायणात्मा वेदं सर्वे निर्विकारं निरञ्जनवस्तु प्रतिपाद्यते । स नारायणो विराट्पुरुषो भवति । देवानां वासवो भवति । इन्द्रियाणां मनो भवति । सर्वेषां वस्तूनां मुख्यवस्तु भवति । ॐ नमो नारायणादन्यो मन्त्रः नारायणादन्योपास्तिनास्ति । नान्यन्नारायणादुपासितव्यम् । सर्व नारायण एव भवतीति विज्ञायते । योऽधीते नित्यं सर्वान् कामानवामोति । स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । सुरापानात् पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति । गुरुतल्पगमनात् पूतो भवति । अगम्यागमनात् पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षात् पूतो भवति । स उपपातकमहापातकेभ्यः पूतो भवति । सर्ववेदमधीयानो भवति । सर्वकतुफलं प्रामोति । सर्वकर्मकर्ता भवति । चतुर्वर्गफलं प्रामोति । ब्रह्मचारी ज्ञानवान् भवति । गृही पुत्रपौत्रमहैश्वर्यवान् भवति । सञ्यासी मोक्षवान् भवति । सञ्यासी मोक्षवान् भवति ।

पठनाच्छ्वणाद्वाऽपि सर्वान् कामानवामुयात् । नारायणप्रसादेन वैकुण्ठपदमञ्जते ॥ इति स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजोत्तमैः । तावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः ॥ नारायण हरे कृष्ण वासुदेव जगद्भरो । सुकुन्दाच्युत देवेश महाविष्णो नमोऽस्तु ते ॥ भूतानि तत्त्वसंज्ञानि कृटस्थोऽक्षरसंज्ञितः । उत्तमश्चापि पुरुषो नारायण इतीर्यते ॥

इत्याधर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये तृतीयः खण्डः

इति नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषत् समाप्ता

नृसिंहषद् चकोपनिषत

ॐ देवा ह वै सत्यं लोकमायंस्तं प्रजापितमपृच्छन्नारसिंहचकन्नो बृहीति । तान्प्रजापितनीरसिंहचक्रमवोचत् । षड्वै नारसिंहानि चक्राणि भवन्ति । यत् प्रथमं तच्चतुररं यद्वितीयं तचतुररं यत्तृतीयं तदष्टारं यच्चतुर्थं तत्पञ्चारं यत्पञ्चमं तत्पञ्चारं यत् षष्टं तद्ष्टारं तदंताित षडेव नारसिंहािन चक्राणि भवन्ति ॥

अथ कानि नामानि भवन्ति । यत् प्रथमं तदाचकं यद्द्वितीयं तत्सुचकं यत्तृतीयं तन्महाचकं यच्चतुर्थं तत्सकललोकरक्षणचकं यत्रञ्चमं तद्द्यूतचकं यद्धे षष्ठं तदसुरान्तकचकं तदेतानि षडेव नारसिंहचकनामानि भवन्ति ॥

अथ कानि लीणि वलयानि भवन्ति । यत्प्रथमं तदान्तरवलयं भवति । यद्द्तियं तन्मध्यमं वलयं भवति । यत् तृतीयं तद्वाद्यं वलयं भवति । तदेतानि लीण्येव वलयानि भवन्ति । यदा तद्वैतद्वीजं यन्मध्यमं तां नारसिंहगायलीं यद्वाद्यं तन्मन्तः ॥

अथ किमान्तरं व्लयम् । षड्वान्तराणि वलयानि भवन्ति । यन्नारिसहिं तत्प्रथमस्य यन्माहालक्ष्म्यं तद्द्वितीयस्य यत्सारस्वतं ततृतीयस्य यस्य यत्कामं देवं तच्चतुर्थस्य यत् प्रणवं तत्पञ्चमस्य यत्कोषदेवतं तत् षष्ठस्य । तदेतानि षण्णां नारिसहचक्राणां षडान्तराणि वलयानि भवन्ति ॥

अथ किं मध्यमं वलयम् । षड्वै मध्यमानि वलयानि भवन्ति । यन्नारसिंहाय तत्प्रथमस्य यद्विद्महे तद्द्वितीयस्य यद्वज्रनस्वाय तत्तृतीयस्य यद्धीमहि तच्चतुर्थस्य यत्तन्नस्तत्पञ्चमस्य यत्सिहः प्रचोदयादिति तत् षष्ठस्य । तदेतानि षण्णां नारसिंहचकाणां षण्मध्यमानि वलयानि भवन्ति ॥ अथ किं बाह्यं वलयम् । षड्डे बाह्यानि वलयानि भवन्ति । यदाचकं यदात्मा तत्प्रथमस्य यत्सुचकं यत्प्रियात्मा तद्द्वितीयस्य यन्महाचकं यज्ज्योतिरात्मा तत्तृतीयस्य यत्सकललोकरक्षणचकं यन्मायात्मा तच्चतुर्थस्य यदाचकं यथोगात्मा तत्पञ्चमस्य यदसुरान्तकचकं यत्सत्यात्मा तत् पष्टस्य । तदेतानि षण्णां नारसिंहचकाणां पट् बाह्यानि वलयानि भवन्ति ॥

कैतानि न्यस्यानि । यत्प्रथमं तद्भृद्यं,यद्द्वितीयं तच्छिरसि यत्तृतीयं तच्छिखायां यच्चतुर्थं तत्सर्वेप्वङ्गेषु यत्पञ्चमं तत्सर्वेषु [?] यत् पष्ठं तत्सर्वेषु देशेषु । य एतानि नारसिंहानि चंकाण्येतेप्वङ्गेषु विभृयात् तस्यानुष्टुष् सिध्यति । तं भगवान् नृसिंहः प्रसीदिति । तस्य कैवल्यं सिध्यति । तस्य सर्वे लोकाः सिध्यन्ति । तस्य सर्वे जनाः सिध्यन्ति । तस्मादेतानि पण्णां नारसिंहचकाण्यङ्गेषु न्यस्यानि भवन्ति । पवित्रं च एतत्तस्य न्यसनम् । न्यसनान्नृसिंहानन्दी भवति । कर्मण्यो भवति । ब्रह्मण्यो भवति अन्यसनान्न नृसिंहानन्दी भवति । न कर्मण्यो भवति । तस्मादेत्र्म्पि त तस्य न्यसनम् ॥

यो वा एतं नारसिंहं चक्रमधीते स सर्वेषु वेदेष्वश्रीतो भवति । स सर्वेषु यज्ञेषु याजको भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वेषु मन्त्रेषु सिद्धो भवति । स सर्वत्र शुद्धो भवति । स सर्वरक्षो भवति । भूतिपशाचशाकिनीप्रेतवंताकनाशको भवति । स निर्भयो भवति । तदेतन्त्राश्रद्दधानाय प्रत्रूयात्तदेतन्त्राश्रद्दधानाय प्रत्रूयादिति ॥

इत्याथर्वणीये नृसिंहषट्चकोपनिषत् समाप्ता

पारमारिमकोपनिषत्

सन्याख्या

ओं विष्णुस्सर्वेषामधिपतिः परमः पुराणः परो लोका-नामजितो जितात्मन् भवते भवाय स्वाहा ॥ १ ॥

यः सर्वलोकैरिप वन्दनीयः स्मृतिं शुभां यच्छिति यो नराणाम्।
तस्मै नमो यः कुलदैवतं नरः स राघवो मे हृदि सिन्नधत्ताम्॥
श्रीलक्ष्मीवल्लभाद्यां तां विखनोमुनिमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥
श्रीविण्णुमानसाज्ञातो विण्णवागमविशारदः।
तं वन्दे सूत्रकर्तारं वैप्णवं विखनोमुनिम्॥
व्यामोतीति विण्णुः सर्वन्यापक इत्यर्थः॥
यच किञ्चिज्ञगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽिप वा।
अन्तर्विहश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥ इति श्रुतेः
विश्वव्यापनशीलत्वाद्विप्णुरित्युच्यते वृधैः॥ इति॥
नन्वादौ तावत् परंत्रह्मपरंज्योतिःपरंतत्त्वपरमात्मादिशब्दा विद्यन्ते
चत्वारः पारमात्मिकं भवति।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् । अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं ताल्पर्यनिर्णये ॥ इति वचनात् त्रयाणां पारमात्मिकत्वमिति चेदुच्यते ॥ अष्टाक्षरश्च यो मन्त्रो द्वादशाक्षर एव च । षडक्षरश्च यो मन्त्रो विप्णोरमिततेजसः ॥ एते मन्त्राः प्रधानास्तु वैदिकाः प्रणवैर्युताः । प्रणवेन विहीनास्तु तान्त्रिका एव कीर्तिताः ॥

इति भगवन्मन्त्रेप्वव्यापकमन्त्रापेक्षया व्यापकमन्त्राः प्रधानाः । व्यापकमन्त्रेपु च अष्टाक्षरषडक्षरो । अष्टाक्षरेण प्रतिपाद्यो नारायणः । षडक्षरेण प्रतिपाद्यो विष्णुः । प्रधानभृतनारायणविष्णुशब्दाभ्यां वासु-देवादिशब्दैश्च उत्तरत्र प्रतिपाद्यैः परंत्रह्मपरंज्योतिः परंतत्त्वपरमात्मादिशब्दैः पर्यायवाचकैश्च क्रियाकाण्डत्वाद्दुः स्वित एव विष्णुशब्दप्रयोगः ॥

किञ्च— "विष्णोरंशस्तु पुरुषः " इति दैविकव्यृहभूतस्य पुरुषस्य मानुषव्यृहभृतस्य वासुदेवस्य मूलभृतत्वाद्विष्णुशब्दग्रहणम् । यद्वा— सर्वमन्त्रा अपि परंत्रह्मपरंज्योतिः परंतत्त्वपरमात्मादिशब्दप्रयोगात् अद्वारकत्वेन सद्वारकत्वेन भगवल्लीलाप्रतिपादकत्वात् भगवत्प्रादुर्मावाविभावलीलाप्रतिपादकत्वाद्वा सर्वेषामिष्यपतिः सर्वेषां ब्रह्मरुद्वादीनां नित्यमुक्ताः सर्वशब्दस्य सङ्कोचाभावात् चेतनाचेतनवर्गाणामण्डाद्वहिर्भृतानामप्यिषपतिनि . . . "पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम् " इति श्रुतेः ॥

श्वेताश्वतरे—

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् । ब्रह्मादिदेवसङ्घेषु स एव पुरुषोत्तमः । स्त्रीपायमितरत् सर्वे जगद्वसपुरस्सरम् ॥ इति ।

पर्मः परि . . मास्सेति परमः समाभ्यधिकरहितः । यद्वा उत्कृष्टः पुराणः अनादिः परो लोकानाम् ।

> एकतो वा जगत्सर्वमेकतो वा जनार्दनः । सारतो जगतः कृत्स्यादितरिन्तवे जनार्दनः ॥ इति ॥

अजितः जेतुमशक्यः ब्रह्मरुद्रादिभिर्देवदानवयक्षराक्षसादिभिः रहितः इत्यर्थः ।

यद्वा--

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । इति श्रुतेरवाङ्मनसो गोचरत्वात् योगिभिरप्यजितः॥ नारसिंहपुराणे —

हिरण्यकशिपोस्रस्तान् सेन्द्रान् देवान् बृहस्पतिः । क्षीरोदस्यान्तरं गत्वा स्तूयतां तत्र केशवः । युष्माभिः संस्तुतो विष्णुः प्रसन्नो भवति क्षणात् ॥ इत्यारभ्य हिरण्यवधानन्तरम् ।

तस्य कोपाभिभृतस्य नृसिंहस्य जगत्पतेः ।

दृष्ट्वा भयानकं रूपं तत्रसुर्देवदानवाः ॥

इत्यारभ्य शरभनिर्माणादिकं प्रतिपाद्यते । ततस्तस्य भवानीश . . .

ण्डस्थानमयाचत ।

पृष्ठभागे चतुर्वक्तं तस्य रुद्रो न्यवेशयत् । सोमस्यौँ नयनयोर्मारुतं पक्षयोर्द्वयोः ॥ पादेषु भूचरान् सर्वान् शिवस्तस्य न्यवेशयत् । एवं निर्माय शरभं भवः प्रमथनायकः ॥ ससर्ज नरसिंहं तं समुद्दिश्य भयानकम् । ततः क्षणेन शरभो नादपूरितदिङ्मुखः ॥ अभ्याशमगमद्विष्णोः निनदन्भैरवस्वनम् । तमभ्याशगतं दृष्टा नृसिंहः शरभं रुषा । जधान निशितरुग्रैस्तीक्ष्णैर्नखवरायुधैः ॥ निहते शरभे तस्मिन् रौद्रे मधुनियातिना । तुष्टुबुः पुण्डरीकाक्षं देवा देवर्षयस्तथा ॥ इति ॥ भवाय रुद्राय अजितः जिंतार्तभक्तैः जितात्मन, अहं भक्तपराधीनो सस्वतन्त्र इव द्विजः ॥ इति वचनात्,

भक्तया त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन । इति भगवद्वचनाच ।

यद्वा—परशुराममन्तरत्वात् रामभद्रेण जितात्मन् । यद्वा— स्वभक्तस्य भीष्मस्य प्रतिज्ञापरिपालनार्थं जगद्रक्षणार्थं न भवाय उत्पन्नाय भवते तुभ्यं स्वाहा ।

स्वाहास्वधावषड्वीषण्णमःपर्यायवाचकाः ।

भारते —

ओमिति ब्रह्मणो योनिर्नमःस्वाहास्वधावषर् ।

यस्यैतानि प्रयुज्यन्ते यथाशक्ति कृतान्यंपि ॥

न तस्य त्रिषु लोकेषु परं लोकेषु संविदुः ।

इति वेदां वदन्ति स्म वृद्धाश्च परमर्षयः ॥

स्वधा नम इति . . . वषट्कारोति च [१] ।

नमःशब्दप्रधानाद्वा स्वाहाशब्द इवेति तु ॥

स्वाहाशब्दे नमःशब्दः प्रतिपादितः । अनेन प्रपत्तिः प्रतिपादिता ॥

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारुण्यरूपया ।

रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते ॥

लक्ष्मीं महीं च शेषं हि विभूतिमुभयात्मिकाम् ॥

U 12

'' अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी '',

लक्ष्मीविशिष्ट एवैकः प्रपत्तव्य इहोदितः ॥ इति ॥ लक्ष्मीविशिष्ट एव प्रपत्तव्य इत्यभिप्रायणादौ विष्णुशब्दः । एतर्सर्व-मेकादशानुवाके विस्तरेणोच्यते ॥ १ ॥

सुसूक्ष्मः सार्वः सर्वेपायन्तरात्या तस्युः तस्थुषां जङ्गमो जङ्गमानां विश्वविश्रूणां विभवोद्धवाय स्वाहा ॥ २ ॥

अजडं स्वात्मसंबोधि नित्यं सर्वावगाहि यत् ।
ज्ञानं नाम गुणं प्राहुः प्रथमं गुणचिन्तकाः ॥
स्वरूपं ब्रह्मणस्तच गुणश्च परिगीयते ।
जगत्पकृतिभावो यः सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥
श्रमहानिस्तु या तस्य सततं कुर्वतो जगत् ।
वलं नाम गुणस्तस्य कथितो गुणचिन्तकैः ॥
कर्तृत्वं नाम यत्तस्य स्वातन्त्र्यं परिवृंहितम् ।
ऐश्वर्यं नाम तत्प्रोक्तं गुणतत्त्वार्थचिन्तकैः ॥
तस्यापादानभावेऽपि विकारिवरहे हि यः ।
वीर्यं नाम गुणस्यायमच्युतस्यापराह्वयः ।
सहकार्यमपेक्ष्यं यत् तत्तैजसमुदाहृतम् ॥ इति ॥ ।

ज्ञानादिषाड्गुण्यसंपूर्णं नानाव्यृहैकहेतुकं लक्ष्मीलक्षणसंयुक्तम् । "'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म '' इति श्रुतेः । निरुपाधिकसत्तायोगत्वं सत्यत्वं नित्या-सङ्कुचितज्ञानैकाकारत्वं ज्ञानत्वं कालतो वस्तुतो देशतश्चापरिच्छित्रत्व-मनन्तत्विमिति ब्रह्मस्वरूपशोधकवाक्चप्रतिपन्नसत्त्वादिविशिष्टम् ।

श्रीविष्णुपुराणे---

संभतेंति तथा भर्ता भकारोऽर्धद्वयान्वितः । नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तया मुने ॥ ऐश्वर्यस्य समप्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चेव षण्णां भग इतीरणा ॥ वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि । स च सर्वेषु भृतेषु वकारार्थस्तथा मुने ॥ ज्ञानशक्तिवलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः । भगवच्छव्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥ एवमेव महाभाग मैत्रेय भगवानिति । परमत्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यथा । शब्दोऽयं सोपचारेण ह्यन्यत्र ह्युपचारतः ॥ इति ॥

भगवच्छव्दशन्दितमित्यादिगुणविशिष्टं परं ब्रह्म विष्णुरेवेति

विज्ञाप [नेन] सुमूक्ष्म इत्युक्तम् ।

विष्णोरकुण्ठवीर्यस्य नानाव्यृहैकहेतुकृत् ।
ततः षड्गुणसंपूर्णं लक्ष्मीलक्षणसंयुतम् ॥
सत्यं ज्ञानमनन्तास्यं भगवच्छब्दशब्दितम् ।
स्क्ष्मात्स्क्ष्ममिति स्व्यातं स्वरूपं रूपवर्जितम् ॥
जातिक्रियादिरहितं सरूपं गुणसङ्गतम् ।
स्क्ष्मात्स्क्ष्ममवामोति परंब्रह्मेदमञ्ययम् ॥ इति ॥
सार्वः " सर्वं खिल्वदं ब्रह्म " इत्यादिश्रुतिसिद्धम् ।
आत्मा बुद्धौ धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मिनि ॥ इति ॥

सर्वेषामन्तरात्मा ब्रह्मरुद्रादीनामन्तरात्मा । " अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाः सर्वात्मा " इति श्रुतेः, " यस्त्वात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरम् " इत्यादिश्रुतेश्च । तस्युः तस्थुषां स्थावराणां मध्ये अतिशयेन तथा परभूतः " मेरुः शिखरिणामहम् " इति भगवद्वचनात । जङ्गमो जङ्गमानां जङ्गमेष्वप्यतिशयं जङ्गमभूतः । यद्वा शक्तिप्रदः । विश्वविभूणां आकाशादीनामपि । तथा विभवोद्भवाय एवं तस्य परमात्मन उद्भवः प्रादुर्भावः अवतारादिषु—

यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः । अपश्यन्तः परं भावं नमस्तस्मै परात्मने ॥ इति ॥ एवमवतारादिषु प्रादुर्भावः— न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते । आत्ममायां विनेशस्य परस्य स्रष्टुरात्मनः ॥ रामायणे—-

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ॥ अर्थितो मानुपे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥ इति ॥ तस्मे दिशं प्रतिपाद्य ज्योतिर्मयानि सर्वाण्यपि पारमात्मिकान्येवेति प्रतिपादयति ॥ २ ॥

ज्योतिर्वा पारमात्मिकं सार्व विश्वं भवं भवाय प्राभूतं प्राहिण्वन् परम्पराय सुकृतं कृताय तस्मै पराय ईशिषे स्वाहा ॥३॥

> स्र्यचन्द्रामचादिषु स्थितं ज्योतिः पारमास्मिकम् । यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यचन्द्रमसि यचामौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ इति ॥ ज्योतीिष विष्णुर्भवनानि विष्णुना सर्वाणि विष्णुर्गिरयो दिशश्च । नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वे यदस्ति यन्नास्ति च विषवर्यः ॥ इति ॥

नक्षत्राणि च विश्वलोकं साव विश्वं सर्वलोकसंज्योति:। पार-मात्मिकं ''अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते '', '' विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषु '' इत्यादिश्रुतिसिद्धम्। '' एक एव रुद्रो न द्वितायाय तस्ये '',।

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भे जनयामास पूर्वे स नो बुद्धचा शुभया संयुनक्तु ॥

इति श्रुतिषु श्रूयमाणत्वात् । विश्वाधिपस्य रुद्रस्य जननं कथमुपपद्यत इति राङ्कायां तद्वा श्रुत्यर्थं भवशब्दः भवाय रुद्राय प्राभृतं प्रभृतं वहुविधमित्यर्थः । परं भवमुत्पत्तिं प्राहिण्वन् प्रायच्छन् । "नारायणादुद्रो जायते" इत्यादिश्रुतिभ्यः " ललाटात्कोधजो रुद्रो जायते" इत्यादि ।

ब्रह्मणो वै ललाटाच ततो देवस्य वै द्विज । क्रोधाविष्टस्य संजज्ञे रुद्रः संहारकारकः ॥ इति ॥ "अष्टो वसव एकादश रुद्राः", "सहस्राणि महस्रशो य रुद्राः" इति श्रुत्यन्तरेषु श्रृयमाणत्वात् पारमात्मिकोपनिषदि च प्राभूतं प्राहिष्व- नित्युक्तम् । अनेनैकत्विनवृत्तिः । अस्य मन्त्रस्य परम्पराय इत्यारभ्य ईशो यस्मादित्यत्रान्वयः । सुकृतं कृताय तस्मै पराय ईशिषे ॥ ३ ॥

ईशो यस्मादिततं वितत्य कं धृतं कामहुतो जुहोति ककुदं कुच्छित्वा भूयः पराय स्वाहा ॥ ४ ॥

ईशः रुद्र: यस्मात् सागराणामुज्जीवनकारणात् विततं विस्तृतं शृतं शिरसा धृतं कं गङ्गाजलं वितत्य भूमौ विस्तार्य सुकृताय कृतवते वरमनं विश्वं भवं भवाय पाभूतं प्राहिण्वन् परम्पराय सुकृतं कृताय तस्मै पराय परं कामहुत: कामदाहको रुद्रः ककुदं श्रेष्ठः दक्षः ककुच्छित्वा जुहोति अग्नौ प्रक्षिप्तवान् । भूयः पुनरपि पराय विभक्तिव्यत्ययः ब्रह्मणः शिरिङ्कित्वा प्रक्षिप्तवान् । एवंभृताय रुद्राय सुकृतं कृताय इंशिषे सम्र्थाय तुभ्यं इत्यर्थः ।

अयमेवार्थो मात्स्ये— ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च । वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण छिन्नं तस्य शिरो मया ॥

ब्रह्मा---

यस्मादनपराद्धस्य शिरिश्छन्नं त्वया मम ।
तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि ॥
ब्रह्महत्याकुलो भूत्वा चरन् तीर्थानि भृतले ।
ततोऽहं गतवान्देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥
तत्र नारायणः श्रीमान् मया भिक्षां प्रयाचितः ।
ततस्तेन स्वकं पार्श्व नखाग्रेण विदारितम् ॥

स्रवतो महती धारा तस्य रक्तस्य निःसृता । विष्णुप्रसादात्सुश्रोणि कपालं तत्सहस्रधा । स्फुटितं बहुधा जातं स्वप्नलब्धं धनं यथा ॥ विष्णुधर्मे—

अच्युतानन्तगोविन्दमन्त्रमानुष्टुभं परम् । ॐ नमःसंपुटीकृत्य जपन् विषधरो हरः ॥ यन्नजीर्णे च गरळं कण्ठे स्तब्धं कपालिनः । अन्तरात्मधृतस्तस्य हृद्ये गरुडध्वजः ॥ इति ॥ मैत्रलोके भक्ष्यमाणे तथा मातृगणेन वै । नृसिंहमूर्तिदेवेशं प्रदद्याद्भगवान् शिवः ॥ इति ॥

वराहे —

प्रागितिहासेऽगस्त्यं प्रति रुद्रः — ब्रह्माणं च पुरा सृष्टः पुण्डरीकाक्षः रुद्रेण दृष्टः । कस्त्वमिति प्रोक्तः सृज इति प्रजाः ।

अविज्ञातासमर्थोऽहं निमग्नः सिलले द्विजः।

इत्यारभ्य जलमध्ये कालमेघसङ्काशः पुण्डरीकाक्षः **रुद्रेण दष्टः** कस्त्वमिति पृष्टस्य वचनम्—

> अहं नारायणो देवो जलशायी सनातनः । दिव्यं चक्षुर्भवतु ते तेन व . . यन्नतः ॥ एवमुक्तस्तदा तेन यावत्तस्याप्यहं तनुः । तावदङ्गुष्ठमात्रं तु ज्वलद्भास्करतेजसम् ॥ तमेवाहं प्रपश्यामि तस्य नाभौ तु पङ्कजम् । ब्रह्माणं तत्र पश्यामि ह्यात्मानं च तदङ्कतः ॥

इत्यारभ्य रुद्रेणानन्तरं [?] विष्णुः—
सर्वज्ञस्त्वं न सन्देहो ज्ञानराशिः सनातनः ।
देवानां च परः पूज्यः सर्वदा त्वं भविष्यसि ॥
एवमुक्तः पुनर्वाक्यमुवाचोमापतिस्तथा ।
अन्यदेहि वरं देव प्रसिद्धं सर्वजन्तुषु ॥
मत्यों भूत्वा भवानेव मामाराध्य केशव ।
मां वहस्व च देवेशं वरं मत्तो गृहाण च ।
येनाहं सर्वदेवानां पूज्यात्पूज्यतरोऽभवम् ॥

विष्णु:---

देवकार्यावतारेषु मानुषत्वमुपागतः । त्वामेवाराधयिष्यामि त्वं च मे वरदो भव ॥ यत्त्वयोक्तं वहस्वेति देवदेव उमापते । सोऽहं नमामि देव त्वां मेघो भृत्वा शतं समाः ॥ एवमेव हरिदेंवः सर्वेशः सर्वभावनः । वरदोऽभूत्ततो मह्यं तेनाहं दैवतैर्नतः ॥ इत्यादि ॥

पुराणसङ्ग्रहे—

अङ्गुष्ठामविनिर्भिण्णादण्डकोशात्सवज्जलम् । विष्णोरादाय चार्ध्यं वै ददो तस्मै चतुर्मुखः ॥ तत्पादशौचविमलं तोयमासीत्सरिद्वरा । पुण्या त्रिपथगङ्गा यां दधार शिरसा स्वयम् ॥

ईश्वरसंहितायाम्-

पुरा त्रिभुवनाकान्तं हरिणा बलिबन्धने । मम लोके पदं प्राप्तं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः ॥ पाद्यं दत्तं मया पुत्र कमण्डलुजलेन वै।
कमण्डलुजलं स्वल्यं कृतमन्तर्गतं हि तत् ॥
धर्मं समीपतो दृष्ट्वा . चोक्तं जलं भव।
द्रवीभृतस्तथा धर्मो हिरिभक्त्या महामुने ॥
गृहीत्वा धर्मपानीयं पादं नाथस्य तुष्टये।
क्षाळितं परया भक्त्या पाद्यार्ध्यादिभिरर्चितः॥
तदम्बु पतितं दृष्ट्वा दधार शिरसा हरः।
पावनार्थं जटामध्ये योग्योऽस्मीत्यवधारणात्।
वर्षायुतानथ बहून् न मुमोच तथा हरः॥

रायामीको रहितो भरन्त्यै सं रा बहन्त्याहितः राया पर्ति रां शं धरते धरित्रयै सं बहतोद्वहाय स्वाहा ॥ ५ ॥

रायां ''रे ऐश्वर्ये'' इति धातुसिद्धैश्वर्यवाचकरैशब्दाभिहि-तानामैश्वर्याणां ईश्वः तङ्कोगार्हः परमतमः प्रभुः रहितः ताभिरैश्वर्येर्वि-हीनः चतुर्दशाब्दप्रमाणवनवासहेतुकपितृवाक्यपरिपालनद्वारा समस्तैश्वर्यरहित इत्यर्थः। रां सकलप्राणिपोषकां रां भूमिं प्रति वहन्त्या आत्मसोशील्यानुकूल-प्रभुसेवां वाञ्छन्त्या अतिभक्तिभरसहितभरतोपयुजा सकलप्रजया भरन्त्ये सकलप्राणिसंरक्षणमाप प्रक्रियायै रां आहितः भूमिं प्रति तत्प्राप्तिं प्रति यः वनवासात्पुरमागच्छेति महाभक्तिपुरस्कृतप्रयत्नेन प्रार्थितः यः रायां परित प्रसिद्धक्षत्रियधर्मरूपाणामैश्वर्याणां पति अत्र विभक्तिव्यत्ययरछान्दसः । "बहुळं छन्दिस " इत्यत्र बहुळग्रहणादतः पतिः प्रतिष्ठापक इत्यर्थः । यः ग्रां स्वीयपठनश्रवणधारणानुष्ठानैः परिपावियत्रीं सकललोकान् गां रावयति समस्तदुरितातिगा ऋग्यजुस्सामात्मिका श्रुतिः तां धरते तत्प्रतिपाद्यतेन प्रतिष्ठां धत्ते । प्रतिपाद्यमाहात्म्य इत्यर्थः । यः पुनरिप चतुर्दशाव्दसङ्कल्पित-वनवासप्रतिज्ञानिष्टत्त्यनन्तरं धरिष्ठये श्रीमदयोध्याभृमिप्राप्त्ये हेतुभृतां गां सकललोकपावनहेतुभृतश्रीरामायणकथारूपिणीं कीर्तिसम्पत्तं वहतः वहते । अत्रापि विभक्तिव्यत्ययरछान्दसः । उद्वहाय अवतारिवशेषेऽपि परमपावन-शक्तिवहाय श्रीरामस्वरूपाय परमात्मने स्वाहा नम इति स्वार्थः ॥ ५ ॥

यो ब्रह्मशब्दः प्रणवः प्रधानः शब्दः शब्दान्तरात्मिनित्यो वियन्तः यत्तः प्रतरन् प्रकामं प्राजापत्यं प्रतरन् प्रकुर्वन् भूयो भूत्ये अचरं चराय स्वाहा ॥ ६ ॥

उत्तरप्रतिपाद्यमानायाः न्यासिवद्यायाः प्रधानभृतप्रणवस्वरूपप्रिति पादनमुखेन न्यासिवद्याफलं च प्रतिपादयिति—यो ब्रह्मशब्द इत्यादिना। यो ब्रह्मशब्दवाच्यप्रणवः। अभिति ब्रह्म ११ इति श्रुतिः। तस्य प्रधानोऽयं शब्दः शब्दान्तरात्मशब्द्युद्धिकर्मणां त्रित्रिक्षणावस्थायित्वात् शब्दनाशेऽपि परमात्मनो नाशाभावात् नित्य इत्युक्तम् ।

कठविक्षकोपनिपदि--

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्ये चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ एतद्वचेवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदेवाक्षरं परम् । एतद्वचेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तम्य तत् ॥ एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ इति ॥ विज्ञानसारिथर्यस्तु मनःप्रमहवान्नरः । सोऽध्वनः पारमाम्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ अकारेणोच्यते विष्णुः सर्वलोकेश्वरो हरिः । उद्घृता विष्णुना लक्ष्मीरुकारेण तथोच्यते । मकारस्तु तयोर्दास इति प्रणवलक्षणम् ॥

सर्वशेषिंस्तवाहिमिति प्रपत्तिप्रतिपाद्यद्वारा प्रपन्नस्य प्राप्यं प्रतिपादयित— वियत्त इत्यादिना । वियत्तः आकाशात्परं प्रतर्न् स्वर्गादिकमतिकम्य प्रकामं अत्यन्तं प्राजापत्यं प्रजापतिलोकं प्रतर्न् प्रकुर्वन् प्रकर्षेण ब्रह्मलोकमपि तरणं कुर्वन् भूयो भूत्ये नित्यैश्वर्याय अणिभाद्यष्टैश्वर्यानपेक्षया नित्यत्वात् ''अपहत-पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिधित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः'' इति गुणाष्टकाविर्मावायार्चिरादिमार्गेण गत्वा सायुज्यं प्रतिपन्नायेति प्रपन्नास्ते तपस्वनः भक्तास्तपस्वनः ।

किंकरा मम ते नित्यं भवन्ति निरुपद्रवाः ॥
लोकेषु विष्णोर्निवसन्ति केचित्समीपमृच्छन्ति च केचिदन्ये ।
अन्ये तु रूपं सदृशं भजन्ते सायुज्यमन्ये स तु मोक्ष उक्तः ॥
सायुज्यमुभयोरत्र भोक्तव्यस्याविशिष्टता ।
सार्षिता तत्र भोगस्य तारतम्यविहीनता ।
सामरस्यं हि सायुज्यं वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥
ऐहलौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम् ।
कैवल्यं भगवन्तं च मन्त्रोऽयं साधियष्यिति ॥

वसिष्ठकराळजनकसंवादे-परेण परधर्में च भवत्येष समेत्य वै। विशुद्धधर्मा शुद्धेन वुधेन च सुवुद्धिमान् ॥ विमुक्तधर्मा मुक्तेन समेत्य भरतर्षभ । वियोगधर्मणा चैवावियोगात्मा भवत्यपि ॥ विमोक्षणाविमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत्। ग्रुचिकर्मा ग्रुचिश्चैव भवत्यमिति . . . त्पमान् ॥ विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना । केवलात्मा तथा वैषः केवलेन समेत्य वै॥ स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमुपाइनुते । एतावदेतत्कथितं मया ते तथ्यं महाराज यथार्थतत्त्वम् । अमत्सरस्वं प्रतिगृह्य चार्घ सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम् ॥ इति ॥

अप्रैश्वर्य मानसोलाम-

अत्यन्तमणुपु प्राणिप्वात्मत्वेन प्रवेशनम् । अणिमासंज्ञमैश्वर्ये व्याप्तस्य परमात्मनः ॥ त्रह्माण्डादिशिवान्तायाः पट्त्रिंशत्त<mark>त्त्वसं</mark>हतेः । भवाश्च व्याप्यवृत्तित्वमैश्वर्यं महिमाह्यम् ॥ परमाणुसमाङ्गम्य समुद्धरणकर्मणि । गौरवे मेरुतुल्यत्वं गरिमाणं विदुर्वुधाः ॥ महामेरुसमाङ्गस्य समुद्धरणकर्मणि । अत्यल्पत्वमतुल्यत्वं लिघमेति प्रकीर्त्यते ॥ पाताळवासिनः पुंसो ब्रह्मलोकावलम्बनम् । प्राप्तिनामकमैश्वर्यं सुष्ठुहाष्ट्रज्ञौपयोगिनाम् [?] ॥ आकाशगमनादीनामन्यासां सिद्धिसम्पदाम् ।
स्वेच्छामात्रेण संसिद्धिः प्राकाम्यमभिधीयते ॥
स्वशरीरप्रकाशेन सर्वार्थानां प्रकाशनम् ।
प्राकाम्यमिदमैश्वर्यमिति केचित्प्रचक्षते ॥
स्वेच्छामात्रेण लोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकर्तृता ।
सूर्यादिना वियोक्तृत्वमीशित्वमभिधीयते ॥
सलोकपालाः सर्वेऽपि लोकाश्चेद्वशवर्तिनः ।
तदैश्वर्यं वशित्वाख्यं सुलमं शिवयोगिनाम् ॥ इति ॥

चराय संसरते प्रत्यगात्मने अचरन्नाशरहितमैश्वर्य कुर्वन् । यद्धा अचरन्नाशरहितमैश्वर्य कुर्वन् चराय सृष्टिस्थितिसंहारादिगर्ति कुर्वते तुभ्यमित्यर्थः ॥

विष्णुपुराणे—

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां ब्राह्मं सच्यासिनां स्मृतम् । एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनो हि ते । तेषां तत्परमस्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥ इति ॥

प्रधानशब्द इत्यनेन त्रिमात्रशब्दः । एवं श्रूयते उपनिषदि—" यः पुनरेतित्त्तमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजिस सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्तीयते ब्रह्मलोकम् " इति । प्रणवशब्दार्थः अथर्वशिरिसि— " अरसादुच्यते प्रणवः यस्मादुचार्यमाण एव ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरस्थ यज्ञब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणवयित । तस्मादुच्यते प्रणवः " इति । न्यास-विद्यास्वरूपमुत्तरत्र प्रतिपाद्यते ॥ ६ ॥

यो वा त्रिमूर्तिः परमः परश्च त्रिगुणं जुषाणः सकलं विधत्ते। त्रिधा त्रिधा वा विद्धे समस्तं त्रिधा त्रिरूपं सकलं धराय स्वाहा ॥ ७॥

त्रिविकमस्यायं मन्तः। यः परमात्मा विष्णुः त्रिमूर्तिः ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।

विष्णुपुराणे—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ इति ॥

यद्वा—त्रिविक्रमत्वात्पद्विक्षेपभेदेन त्रिम्तिः "इदं विष्णुर्विचकमे त्रेधा निद्धे पदम्" इति श्रुतिः । पर्मः त्रिविक्रमावतारापेक्षया ब्रह्मरुद्रादिषु समाभ्यधिकाभावात् परमशन्दः । परश्च अवतारत्वेऽपि उत्कृष्टः । त्रिगुणं जुपाणः "जुषी प्रीतिसेवनयोः" इति त्रिगुणेषु सात्विकराजसतामसेषु प्रीतिं कुर्वन् । यद्वा — सेवमानः स्वक्तं चिद्चिदात्मकं प्रपश्चं विधने । "व्यस्कभाद्रोदसी विष्णुरेते दाधार पृथिवीमभितो मयूर्यः" इति विष्णुरेव कृषशब्दवाच्य इति ज्ञापयितुं ब्रह्माभ्यधितिष्ठतु भुवनानि धारयन्निति । "नमो विष्णवे बृहते करोमि ।"

वृहत्वात् वृंहणत्वाच तद्घेष्मति प्रकीर्तितम् ॥ इति ॥
यद्गा—विधत्ते जगत्सृष्ट्यादिश्चरभदेन त्रिथा त्रिथा वा विद्ये
समस्तं ह्र्स्वदीर्घसमरूपेण गाईपत्यान्वाहार्याहवनीय इति त्रिधाप्तिरूपेण
उत्तममध्यमाधमस्वर्गनरकमोक्षइत्यादि समस्तं त्रिधा त्रिधा विद्ये चकार
त्रिरूपं स्त्रीपुत्रपुंसकादि त्रिधा भृत्वा त्रिविक्रमरूपी भूत्वा निवहं
स्वरचकीयसहितैदेवमनुप्यादिभिरावृतं विधन्ते धृतवान् तस्मै ॥ ७ ॥

यद्वा कृतममृतञ्चराणां यत्सर्वनिष्टमजरं समस्तं यत्पश्यमान-मात्माभिजुपाणमन्तस्सुपुप्त्यानभिगम्यमानाय स्वाहा ॥ ८ ॥

त्रिविकमावतारे प्रत्यक्षे कृतस्य परमात्मानपरं रूपं स्वप्नेऽपि द्वैर्द्र्ष्टुमशक्यमित्याह — यचेति । कृतं त्रिविकमरूपेण कृतं सर्वनिष्ठमन्तर्व्या-प्तमजरमपहतपाप्मत्वादियुतं समस्तं बहिश्च व्याप्तम् । यद्वा परिदृश्यमानं सर्वमात्माभिजुषाणम् ।

आत्मा बुद्धौ धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि । इति ॥

जीवात्मना सेवमानमेवंविधरूपमन्तर्हदये सुपुप्त्या स्वमेनापि अमृतंचराणां अमृतं चरन्तीति अमृतंचरा देवाः । तेषामपि अनिमगम्यमानाय
ध्यातुमशक्याय । यद्वा—चराणां देवादीनाममृतं कृतं समुद्रम्थनादिकं
कृतम् । यद्वृपं तत्यश्यद्यान चेदिष सुपुप्त्या स्वमेनापि प्राप्तुमशक्त्यमिति
तस्मै ॥ ८ ॥

क: कोशमङ्गे कुशलं विधाय साकृतं कृष्वतेऽय इदः सुकान्तं ककुट्दते ते कामचरं चराय स्वाहा ॥ ९ ॥

कः कोशं ब्रह्माण्डकोशमङ्गे म्वाङ्गे कुशाल क्षेमसहितं विधाय साकृत आकृतिसहितं कृण्वते तत्र ब्रह्माणं कुर्वते अग्रे सृष्ट्यादौ ककुदूते श्रेष्ठचराय ब्रह्मणं सुकान्त मनोहरं कामचरं अण्डकोशं विधाय तत्र साकृतं आकृतिसहितब्रह्माणं कृण्वते तुभ्यम् । अन्यत्रोपनिषदि — ''अथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यं कामो मनसाध्यायत । तस्य ध्यानान्तस्थस्य ललाटात् स्वेदोपहताः प्रपत आपस्तासु तेजो हिरण्मयमण्डलस्तत्र ब्रह्मा चतुर्भुखोऽजायत'' इति ॥ ९ ॥

यं यद्वैर्धुनयो जुषन्ति यं देवाः परमं पवित्रं भविष्य-न्त्यार्तिषु प्रणताः प्रधानाः यं सूरयो जपन्तो योगिनः सूक्ष्मैः सुप्रदर्शनैः पश्यन्तीश्वराय स्वाहा ॥ १० ॥

यं परमात्मानं महाविष्णुं यह्नैः "यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" इति समाराधनैः पाकयज्ञहविर्यज्ञसोमयज्ञैः ।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ इति ॥

" यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन ब्राह्मणा विविदिवन्ति " इतिश्रुतेः। द्रव्ययज्ञादिभिर्मुनयः वैखानसाः।

> वैखानसैर्मुनिगणैः नित्यमाराधितोऽमलैः । वैखानसैर्मुनिश्रेष्टैः पूजिताय वेङ्कटेशाय नमः ॥

इति पद्मवचनार्चनम् । अत्र प्रतिपादिता सुनय आपस्तम्बादयः । किनरः स्वरिति चेत् ।

गारुडे--

इत्यारभ्य,

पुरा चतुर्मुखादेशाच्चत्वारो मुनयोऽमलाः ।
प्रणीय वैष्णवं शास्त्रं भूमावभ्यर्च्य यं नृषः ॥
मरीचिर्मन्दरे विष्णुमर्चयामास केशवम् ।
आदेशाद्वाद्यणो विष्णुं श्रीनिवासे त्रिरर्चयेत् ॥
कास्त्रपो विष्ण्वधिष्ठाने शुभक्षेत्रे भृगुर्मुनिः ।
नन्दायां दक्षिणे सीम्नि श्रमात्तरे [१] सखा ।
तच्छुद्धौ शुचिषं नाम भृगुणा स्थापितो हरिः ॥ इति ।
ब्रह्मकैवतं पुष्करतीर्थवैभववर्णने—-" निम्नगानां यथा गङ्गा"

यथा मुनीनां विखना आदिभ्त उदाहतः ॥ इति श्रुतिः ॥ धेनुर्वहाणामदितिस्सुराणां ब्रह्मा ऋभूणां विखना मुनीनाम् ॥ इति ॥ एवं श्रुतिस्मृतिपुराणादिमुख्यत्वेन वैखानसानामेव मुनिशब्दवाच्यत्व-प्रतिपादनात् यज्ञेष्ठुनयो जुपन्ति इत्युक्तत्वात् । आपस्तम्बादीनामद्वार-भगवद्भजनविधिप्रतिपादनाभावात् । पञ्चप्जाप्रतिपादकस्य यमित्यत्र एकवच-नास्वारस्याभावाच । वैखानसाः मुनयः जुपन्ति । यज्ञैः प्रीणयन्ति सेवां कुर्वन्तीति वा । यज्ञशब्द आराधनपरः यं महाविष्णुं प्रधानदेवाः ब्रह्मरुद्रादयः ।

न यस्य रूपं न वलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः । विज्ञायते शर्विपितामहाधैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥ इति ॥ रूपवलप्रभावातिशयेन चिन्त्यत्वात् परमं इत्युक्तम् । पवित्रं उपनिषदि "स एप सर्वभृतान्तरात्मापहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः" इति । अग्रुद्धा ब्रह्मरुद्राद्या जीवा विष्णोर्विभृतयः । तान्वे कुटप्रसाम्यत्व परत्वादप्युपासते ॥ इति ॥

अतएव पवित्रमित्युक्तम् । यद्वा स्वभक्तान् वज्रादिष त्रायत इति पवित्रशब्दप्रयोगः ।

दन्ता गजानां कुलिशाम्रविप्णुराशीर्णयत्तेन जलं ममैतत् । महद्रिपत्तित्वविनाशनो यो जनार्दनानुस्करणानुभावः ॥ इति ॥ अमृतापहरणे गरुडेन्द्रयोर्युद्धे च द्रष्टव्यम् । अत एव आर्तिषु प्रणता

भविष्यन्ति ।

श्रीमद्रामायणे वालकाण्डे— राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योत्सेकेन वाधते । इत्यादि । वधार्थ वयमायातास्तस्य वै मुनिभिस्सह । सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ॥ त्वं गतिः परमो देवः सर्वेषां नः परन्तपः ।

वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ॥

एवमुक्तः सुरगणैः विष्णुह्तिदशपुङ्गवः ।

पितामहपुरोगांश्च सर्वलोकनमस्कृतः ॥

अबवीत् त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसंहितान् ।

भयं त्यजत भद्रं वो वधार्थं युधि रावणम् ॥

सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥

हत्वा कर्रं दुरात्मानं देवर्षीणां भयावहम् ॥ इत्यादि ॥

भागवते—

पुरासुराय गिरिशो वरं दत्वाप सङ्कटम् । इत्यारभ्य अन्ते तु सङ्कटं लेभे नर चितः शिव इत्युक्तम् [?] बाणासुर-युद्धे च द्रष्टव्यम् ।

प्रसादयामास भवो देवं नारायणं प्रभुम् ।

शरणं च जगामाद्यं वरेण्यं वरदं हिरम् ॥ इति ॥
अनेन ब्रह्मरुद्रादीनामुपास्यराहित्यं तत्प्रयुक्तव्रतानामप्युपादेयराहित्यं वर्शितम् । प्रधानधर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थेषु स्वाभिमतार्थप्रधानमार्तिषु स्वाभिमतार्थालाभे नाशे च प्रणता भविष्यन्ति ।
गीतायाम्—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः । उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् । इति ॥ यं परमात्मानं यं मन्त्रमिति काकाक्षिन्यायेनोभयत्रान्वयः । यं मन्त्रराजमष्टाक्षरं यं विष्णुषडक्षरं मन्त्रं जपन्तः ।

पराशर:-

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ।
यदुच्चनीचस्विरतैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत् ॥
अपरैरश्रुतं किञ्चिद्य उपांशुजपः स्मृतः ।
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्ण पदात्पदम् ॥
मन्तार्थचिन्तनं भ्यः कथ्यते मानसो जपः ।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥
अष्टाक्षरश्च यो मन्त्रो द्वादशाक्षर एव च ।
षडक्षरश्च यो मन्त्रो विष्णोरमिततेजसः ॥
एते मन्त्राः प्रधानाः स्युवैदिकाः प्रणवैर्युताः ।
प्रणवेन विहीनास्तु तान्तिका एव कीर्तिताः ॥ इति ॥

सूरयो नित्यस्रयः अनन्तगरुडादयः पश्यन्ति । "तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः" इति श्रुतिः । यद्वा ब्रह्मविदः पश्यन्ति योगिनः यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरित्यष्टाङ्गयोगिनः ध्यानेन पश्यन्ति ।

यद्वा

योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतिभक्तिषु । इति भगवत एवोपायोपेयत्वम् । अनेन सिद्धरूपा प्रपत्तिः साध्यरूपा प्रतिपाद्यते । समर्थपुरुषार्थानां साधकस्य द्यानियेः।
प्रमतः पूर्वसिद्धत्वात्सिद्धोपायविदो विदुः॥
भक्तिप्रपत्तिप्रमुखैस्तद्वशीकारकारणम्।
तत्तद्वलानि साध्यत्वात्साध्योपायं विदुर्वधाः॥ इति॥
ईदशः परमात्मा यः प्रत्यगात्मा तथेदशः।
तत्सम्बन्धानमिति [१] योगः प्रकीर्तितः॥

यद्वा---

योगःसन्नहनोपायध्यानसङ्गतिभक्तियु ॥ इति ॥ स्वामिन् स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् । स्वदत्तस्वधया स्वार्धं स्वस्मिन्नचस्यति मां स्वयम् ॥ इति ॥

र्सर्वदानुसन्धानम्-

स्वोज्जीवनेच्छा यदि ते स्वदत्तायां स्पृहा यदि । आत्मनिक्षेपणं दास्यं हरेः स्वाम्यं सदा स्मरेत् ॥ इति ॥ कर्मयोगिनस्तं सुप्रदर्शनैः उदिष्टादिकालव्यतिरिक्तकालेषु भगव-दाराधनादिकं कुर्वन्ति । भगवद्भक्ताः कैङ्कर्यपराः परात्मयोगिन इत्युच्यन्ते । एतेषां भगवद्विश्लेषमसहमानानाम् ।

न प्रदोपे हिरं पश्येत् ।

यदि पश्येत्प्रमादेन द्वादशाब्देन नश्यित ॥

इति हरिदर्शननिपेधे नास्येव स्मृतिः—

अर्चकात् परिचारांश्च वैष्णवान् ज्ञानिनो यतीन् ।

दासीदासादिकांश्चैव ॥

तापत्रयानलोज्वालामालिते देहमन्दिरे ।

विष्णुभक्तिरसैः शान्ति जानन् कः कालमीक्षते ॥

कालोऽस्ति यज्ञे कालोऽस्ति दाने कालोऽस्ति वै जपे। सर्वेशदर्शने कालो वक्ष्यमाणस्तदिश्चतः ॥ इति ॥ मौनं वाचोनिवृत्तिः स्यान्नात्र भाषणसंस्कृतम्। नान्यदेवेरणं विष्णोः सदा ध्यायेच कीर्तयेत्॥

सुप्रदर्शनैरित्युक्तं सुप्रदर्शनैः पश्यन्ति । अत्र प्रणता इत्यनेन परमात्मनो नारायणस्य पादारविन्दे न्यस्तभरा उच्यन्ते । परमात्मनि नारायणे सर्वभारसमर्पणात् ।

> संज्ञातनैरपेक्षं तु नम इत्युच्यते बुधैः । भरन्यासबलादेव स्वयत्नविनिवृत्तये । अत्रोपायान्तरस्थाने रक्षको विनिवेशते ॥ इति ॥

प्रकर्षेण नताः प्रणताः । नमःशब्दस्य स्थूलस्क्ष्मपरमो जन इति अहिर्बुध्न्येन व्याख्यातम् ।

> प्रेक्षावतः प्रवृत्तिर्या प्रह्मावात्मिका स्वतः । उत्कृष्टः परमुद्दिश्य तन्नमः परिगीयते ॥ लोके चेतनवर्गस्तु द्विधैव परिगीयते । ज्यायांश्चैव तथाज्यायान् नैवाख्या विद्यते परा ॥ कालतो गुणतश्चैव प्रकर्षो यत्र तिष्ठति । शब्दस्योन्मुख्यया वृत्त्या ज्यायानित्यवलम्ब्यते ॥ अतश्चेतनवर्गस्तु स्मृतः प्रत्यवरो वुधैः । तज्ज्यायांश्च तथोयोंगः शेषशेषितयेष्यते ॥ अज्यायांसः परे सवें ज्यायानेको मतः परः । नन्त्वनन्तृस्वभावेन तेषां तेन समन्वयः ॥

नन्तव्यः परमः शेषी शेषा नन्तार ईरिताः । नन्तृनन्तव्यभावोऽयं न प्रयोजनपूर्वकः ॥ निश्चयो हि स्वभावोऽयं नन्तृनन्तव्यतात्मकः। उपाधिरहितो नायं येन यावेन चेतनाः॥ नमनं जायते तस्मै तद्वा नमनमुच्यते । भगवान् नः परो नित्यमहं प्रत्यवरः सदा ॥ इति भावो नमः प्रोक्तो नमसः कारणं हि सः। नमयत्यपि वा देवं प्रह्मावयति ध्रुवम्। अतो वा नम उद्दिष्टं यत्तनामयति स्वयम् ॥ वाचा नम इति पोच्य मनसा वपुषा च यत्। तन्नमः पूर्वमुद्दिष्टमतोऽन्यन्यूनमुच्यते ॥ इयं करणपूर्तिः स्यादङ्गपूर्तिमिमां शृणु । शाश्वती मम संसिद्धिरियं प्रह्वो भवामि यत् ॥ पुरुषं परमुद्दिश्य न मे सिद्धिरतोऽन्यथा । इत्यङ्गमुदितं श्रेष्ठं फलेच्छा तद्विरोधिनी ॥ अनादिवासनारोहादनैश्वर्यत्वभावजात् । मलावकुणिठतत्वाच दक्कियाविहतिहिं या ॥ तत्कार्पण्यं तदुद्बोधो द्वितीयं सङ्गमीदशम् । स्वस्वातन्त्रचावगोधस्थं तद्विरोध उदीर्यते ॥ परत्वे सति देवोऽयं भूतानामनुकम्पया । अनुग्रहैकधीर्नित्यमित्येतद्भक्तवत्सलः ॥

उपेक्षको यथा कर्मफलदायीति या मति:। विश्वासात्मतया यत्तो त्वदीयं वा तु वै सदा ॥ एवंभृतोऽप्यशक्तः सन् नस्नाता भवितुं क्षमः। इति बुद्धा स्वदेवस्य गोप्तृशक्तिनिरूपणम् ॥ चतुर्थमङ्गमुदिष्टममुष्या व्याहतिः पुनः । उदासीनो गुणाभावादित्युत्प्रेक्षा निमित्तजा ॥ स्वस्वामिनिवृत्तिर्या प्रातिकृल्यविवर्जनम् । तदङ्गं पश्चमं प्रोक्तमाज्ञाव्याख्यातवर्जनम् ॥ अशास्त्रीयोपवासे तु तद्वचाख्यात उदीर्यते । चराचराणि भूतानि सर्वाणि भगवद्वपुः ॥ अतस्तदानुकूल्यं मे कार्यमित्येव निश्चयः । षष्ठमङ्गं समुद्दिष्टं तद्विघाते निराकृतिः॥ पूर्णमङ्गैरुपाङ्गेश्च नमनं ते प्रकीर्तितम् । स्थूलो यो नमनस्यार्थः स्क्ष्ममन्यं निशामय ॥ चेतनस्थं यदा मन्त्रं स्वस्मिन् स्वीये च व्रस्तुनि । नम इत्यक्षरद्वन्द्वं तद्धाम ह्यन्यवाचकम्।। अनादिवासनारूढिमध्याज्ञाननिबन्धनात् । आत्मात्मीयपरार्चस्ता यास्वतन्त्रस्वतामिति [?] । मेन एवं समीचीना बुद्धचा साऽत्र निवार्यते ॥ नाहं मम स्वतन्त्रोऽहं नास्तितस्स्वार्थ उच्यते । न मे देहादिकं वस्तु स शेषः परमात्मनः ॥ इति बुद्धा निवर्तन्ते तानि सेयं मनीषिका। अनादिवासनाजातैर्बोधैस्तैस्तैर्विकल्पितै: ॥

रुषितं यद्दढं चित्तं स्वातन्त्र्यं सत्त्वधीमयम् । चित्तद्वैष्णवसार्वात्म्यप्रतिबोधसमुत्थया ॥ नम इत्यनया वाचा मन्त्रात्स्वस्मादपोद्यते । इति ते सुक्ष्म उद्दिष्टः परमं स्वं निद्भामय ॥ पन्था नकार उद्दिष्टो मः प्रधान उदीर्यते । विसर्गः परमेशस्तु तत्राधोंऽयं निरूप्यते ॥ अनादिपरमेशस्तु शक्तिमान् पुरुषोत्तमः । स्वपासयं प्रधानोऽयं पन्था नमननामवान् ॥ इति ते त्रिविधः प्रोक्तो नमःशब्दार्थतां प्रति । निवेदयेत् स्वमात्मानं विप्णोरमिततेजसि ॥ तदात्मना मनःशान्तस्तद्विष्णोरिति मनत्रतः । शरीरपातकाले च सार्थस्वानुग्रहं स्वयम् ॥ परिपाकं प्रपन्नानां प्रयच्छति यथातथम् । अङ्कोलतैलसिका नं वीजानामचिराद्यथा । विपाकः फलपर्यन्तस्तथात्रेति निद्दितः ॥ १०॥

इति प्रथमोऽनुवाकः

द्वितीयोऽनुवाकः

यो वा गविष्टः परमः प्रधानः पदं वा यस्य सत्त्वमासीत् यस्योपरि त्वं मुनयो न पश्यन्ति तस्मै मुख्याय विष्णवे स्वाहा ॥ १॥ यो वा गविष्ठ इत्यादि पञ्चमन्ताननुक्रमात् पञ्चोपनिषन्मन्त्रे यः परमात्मा गविष्ठः भूमिस्थः अवकाशप्रदः। यद्वा चराचरात्मकेषु लोकेषु आकाशरूपेण स्थितः। परमः व्याप्त्या परमः प्रधानः पञ्चभूतेषु प्रधानः कारणभूतः। पदं वा यस्य सत्त्वमासीत् यस्याकाशस्य पदमुत्पितस्थानं त्वमेवासीत्। आसीदिति छान्दसः। यस्य परमात्मनस्तव उपिर त्वं धुनयो न पश्चयन्ति। मननशीलो मुनिः नारायणपारायणो निर्द्धन्द्वो मुनिरिति वा धुख्याय तस्मै विष्णवे तुभ्यम्॥ १॥

यो वा वायुर्द्रिगुणोऽन्तरात्मा सर्वेषामन्तश्चरतीह विष्णोः स त्वं देवान् मनुष्यान् मृतान् परिसंजीवसे स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा वायुः महाभूतचतुर्थः । द्विगुणः शब्दस्पर्शवान् इति । द्वी वायोरिति अन्तरात्मा व्याप्तः । सर्वेषामन्तश्चरतीह प्रकृतिमण्डले विष्णोः स वायुः त्वं देवान् मनुष्यान् मृतान् परिसंजीवसे देवान् वर्धयिस मृतान् मनुष्यान् सान्दीपनीपुत्रब्राह्मणपुत्रादीत् सङ्घीवसे तुभ्यम् ॥ २ ॥

त्वममे त्रिगुणो वरिष्टः परं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वेषां स्वं पालनाय हुतममृतं वहिष्यसे स्वाहा ॥ ३ ॥

हे अग्ने त्वं त्रिगुणो गन्धरसविहीनास्त्रयोग्नेरिति वरिष्ठः श्रेष्ठः परं त्रसा परं ज्योतिः "अग्नः सर्वा देवताः"इति श्रुतिः । सर्वदेवात्मकत्वात्परं-श्रसाब्दप्रयोगः । प्रळयकालापेक्षया उत्कृष्टज्योतिः । सर्वेषां देवमनुष्यादीनां त्वं पालनाय रक्षणाय हुतममृतं विहष्यसे । अमृतक्रपेण सर्वेषां प्रापयिष्यसि । त्वया हुतममृतक्रपेण कलाद्वारेण प्रापयिष्यसि । श्रीवैखानसस्त्रे "यथावास्य सुषुम्ना ज्योतिष्मती प्राणाहुती रेतोधाः" इत्येता आहुतीर्गृहीत्वा "रक्ष्मयश्च-तस्तः पृश्नी सन्दधीरन् सह वा शुद्धा अमृतावहाचीनुहि दिव्याश्रोकपावनीत्ये-

तामिश्चन्द्रमसमाप्याययत्यसौ नु राजा सोम आप्यायितो मूल्गामीव पाबान्नस्यमृतोद्गारिसुरिप्रया '' इत्येताभिरमृतेन तां देवतां तर्पयित । मनुष्याणां त्विधकं पाकभेदेन प्राप्यसि । त्वं समर्थः । एवंरूपायामिस्वरूपिण इत्सर्थः ॥ ३ ॥

त्वं जीवस्त्वमापस्सर्वेषां जनिता त्वमाहरः त्वं विष्णो श्रमापनुदाय चतुर्गुणाय स्वाहा ॥ ४॥

हे विष्णो जीवकारणभूता आपस्त्वं छान्दोग्ये ईरितम् "पश्चम्या-माहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति "इति ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वे तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति ॥

सर्वेषां जिनता उत्तरोत्तरं कारणत्वेन जिनता । त्वयाहरः त्वमाहर छान्दसत्वात् त्वमाहर इति । सर्वेषां श्रमापनुदः सर्वेषां स्नानपानादिना श्रमशान्तिपदः । यद्वा रामकृष्णाद्यवतारादिषु काळिन्द्यादिरूपेण श्रम-शान्तिपदः ।

संभक्षयित्वा भूतानि जगत्येकार्णवीकृते । नागपर्यक्कशयने शेतेऽसौ परमेश्वरः ॥ इति ॥ चतुर्गुणाय गन्धविहीनाश्चत्वारोऽपां गुणा इति तस्मै ॥ ४ ॥ भूमेर्वितन्वन् मतरन्मकामः पोपूयमानः पश्चभिः स्वगुणैः प्रसक्षेस्सर्वाणि मां धारियष्यसि स्वाहा ॥ ५ ॥

हे परमात्मन् प्रकाम: । धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ । कामभूतः भूमेः पश्चिभिः स्वगुणैः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा इति पश्चिन्द्रियविषयभूतेर्गुणैः सर्वान् वितन्वन् विस्तारयन् विषयप्रवणान् कुर्वन् पोपूयमानः पवित्रभूतः प्रतरन् तदाकम्य स्थितस्सन् ,

गीतायाम्—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिस्सर्विमिदं जगत् । मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ इति ॥ स्वतेजसाऽप्याधीतैः **प्रसन्ते**र्गुणैरिमान् लोकान् **धारयिष्यसि ।** ''व्यस्कभ्राद्रोदसी विष्णुरेते दाधार प्रथिवीमभितो मयूखैः''इति श्रुतेः । भूम्या ऐन्द्रियविषयशक्तप्रदायेत्यर्थः ॥ ५ ॥

मनस्त्वं भूत्वा मनः प्रदोऽय्रे त्वत्तो भूतं सम्भावियष्यसि सर्वेषां कायानामई महिते स्वाहा ॥ ६ ॥

हे परमात्मन् त्वं अग्ने सष्टियादौ मनो भृत्वा त्वत्तः त्वत्तकाशादुङ्कृत-मनोभिमानिदेवतां संभावियष्यसि सङ्कल्पियप्यसि । सर्वेषां देवमनुष्यादीनां कायानां शरीराणां यथाई मनःपदः ।

> एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । इति श्रुतेः ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ इति ॥ मनोरूपेण भवितुं अईते समर्थायत्यर्थः ॥ ६ ॥

त्वं बुद्धिर्भूतानामन्तरात्मा पुण्यवतां पुण्येषु सज्जमानः त्वं बुद्धा विचिन्वमानः पुण्यरूपाय स्वाहा ॥ ७ ॥

हे परमात्मनं त्वं वुद्धिः वुद्धिरूपः । भूतानां पश्चभ्तानां अन्तरात्मा तत्तदंभिमानिदेवतानामन्तरात्मा । पुण्यवतां पुण्येषु सज्जमानः निविष्टः । त्वं बुद्धा विचिन्वमानः "बुद्धिस्तात्कालिकी मता "इति । तया बुद्ध्या विचिन्वमानः पुण्यरूपाय "सत्यं तपो दमः शमो दानं धर्मः प्रजननमझयोऽग्निहोत्रं यजमानः संन्यासः" इति ते पुण्यशब्दवाच्याः । "यद्व्योप्तः स्थानं गळान्तरं बुद्धेर्वचनमहंकारस्य हृदयचित्तस्य नाभिरिति बुद्ध्या विचिन्वमानः" इत्युक्तत्वात् । अभ्यासरूपमात्रेण वा विचिन्वमानः तस्मै ॥ ७ ॥

यः मुक्ष्मान् सञ्चरमाणान् भावाभावान् भव्याभव्यान् कुर्वन्नात्मीयममितो धुनोति धुरं वहिष्यसे स्वाहा ॥ ८॥

यः परमात्मा सृक्ष्मान् भृतस्क्ष्मान् सञ्चरमाणान् विरजापर्यन्तं सञ्चरमाणान् भावाभावान् स्क्ष्मरूपत्वात् भावरूपान् सुखदुः खानुभवा-भावात् अभावरूपान् भव्यान् "अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिधत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः" इति गुणाष्टकाविर्भावाय भव्यान् अमानवकरस्पर्शात्पूर्वे गुणाष्टकाविर्भावाभावात् अभव्यान् कुर्वनात्मीयं ब्रह्मालङ्कारादिनालङ्कृत्य मुक्तं परमात्मसम्बन्धं कुर्वन अभितः अमानवः सुकृतदुष्कृते धुनोति ।

कौषीतिकत्राह्मणे—

"तमेतं देवयजनं पन्थानमासाद्याग्निलोकंमागच्छति । स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकम् । तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्यारो हृदो मुह्तोंऽन्वेष्टिहा विरजा नदील्यो वृक्षः सालज्जं संस्थानं अपराजितमायतनं इन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ विभुप्रमितं विचक्षणसन्ध्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यादायावयतौ वै च जगन्यम्बा चाम्यावयवाश्चाप्सरसोऽम्बया नद्यः । तमित्थंविधा गच्छति । तं ब्रह्माहाभिधावत मम यशसा विरजां वा पालयन्नदीं प्रापं न वा अयं जिगीप्यतीति ॥

तं पश्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति । शतं मालाहस्ताः शत-माञ्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फणहस्तास्तं वद्या-लङ्कारेणालङ्कुर्वन्ति । स ब्रह्मालङ्कारेणालङ्कृतो ब्रह्मविद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति । स आगच्छत्यारं हृदं तं मनसात्येति । तमृत्वा संप्रतिविदो मज्जन्ति । स आगच्छति । मुह्र्तान्विहेष्टिहास्तेऽस्मादपद्रवन्ति । स आगच्छति विरजां नदीं तां मनसैनात्येति । तत्सुकृतदुष्कृते धूनुते । तस्य प्रिया ज्ञातयस्सुकृतमुपयन्त्य-प्रिया दुष्कृतम् । तद्यशा रधेन धावयन् स्थनके पर्यवेक्षत एवमहोरात्रे पर्यवेक्षते । एवं सुकृतदुष्कृते धूनुते सर्वाणि च द्वन्द्वानि । स एष विस्रकृतो विदुष्कृतो ब्रह्मविद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति ॥

स आगच्छतील्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति । स आगच्छति सालज्जं संस्थानं तं ब्रह्म स प्रविशति । स आगच्छत्यपराजितमायतनं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति । स आगच्छतिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ तावस्मा-दपद्रवतः । स आगच्छति विभुप्रमितं तं ब्रह्मयशः प्रविशति । स आगच्छति विमक्षणामासन्दीं वृहद्रथन्तरे सामनी पूर्वी पादौ ध्यैत नौधसे चापरौ पादौ वैरूपवैराजे शाकररैवते तिरश्ची सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपश्यति । स आगच्छत्यमितौजसं पर्यङ्कं तं स प्राणः । तस्य भूतं च भविष्यच पूर्वी पादौ श्रीश्चेरा चापरौ वृहद्रथन्तरे अनुच्चं भद्रयज्ञायज्ञीये शीर्षण्यमृचश्च सामानि च पाचीनागानं यजूषि तिरश्चीनानि सोमांशव उपस्तरणमुद्गीय उपश्चीः श्रीरुपवर्हणम् । तिस्मन् ब्रह्मास्ते । तिमत्थंवित्पादेनैवाप्र आरोहति । तं ब्रह्माह कोऽसीति । तं प्रतिब्र्याते ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेम्संभूतो हाव । एतत् संवत्सरस्य तेजोभृतस्य भृतस्य त्वमात्मासि यस्त्वमिस सोऽहमस्मीति । तमाह कोऽहमस्मीति ॥

सत्यमिति ब्र्यात् । र्कि तत्सत्यमिति । यदन्यद्वेवम्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सद्ध यद्देवाश्च प्राणाश्च तद्यत्तदेतया वाचाभिव्याद्वियते सत्यमिति । एतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसीत्येवैनं तदाह ।

तदेतच्छ्लोकेनाप्युक्तम्—

यजूदरः सामशिरा असावृङ्मूर्तिरव्ययः । स ब्रह्मेति हि विज्ञेय ऋषिर्वह्ममयो महान् ॥ इति ॥

तमाह केन पौसानि नामान्यामोतीति । प्राणेनेति ब्रूयात् । केन स्वीनामानीति । वाचेति । केन नपुंसकनामानीति । मनसेति । केन गन्धानिति । प्राणेनेति ब्रूयात् । केन रूपाणीति । चक्षुषेति । केन शब्दानिति । श्रोत्रेणेति । केनास्तरसानिति । जिह्नयेति । केन कर्माणीति । हस्ताभ्यामिति । केन सुखदुःखे इति । शरीरेणेति । केनानन्दं रित प्रजातिमिति । उपस्थेनेति । केनेत्या इति । पादाभ्यामिति । केन धियो विज्ञातव्यं कामानिति । प्रज्ञयेति प्रब्रूयात् । तमाहापैन खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति । सा या ब्रह्मणि चिति या व्यष्टिस्तां चितिं जयित तां व्यष्टिं व्यश्नुते य एवं वेद य एवं वेद ॥

धुरं वहिष्यसे पारमात्मिकोपनिषन्मन्त्राध्येता वैष्णवो मन्त्रार्थवित्पर-मैकान्ती च तस्य धुरं वहिष्यसे ॥

> शरणं त्वां प्रपन्ना ये ध्यानयोगिवविजिताः । तेऽपि मृत्युमितिकम्य यान्ति तद्वैष्णवं पदम् ॥ "ब्रह्मविदाप्नोति परम् " इति श्रुतेश्च । मत्पदद्वन्द्वमेकं ये प्रपद्यन्ते परायणम् । उद्धरिष्याम्यहं देवि तस्मात् संसारसागरात् ॥ इति ॥ ८ ॥

यस्या दो भयाद्भगवानुत्तस्ते स्वयं सूर्यस्य त्वं कालं वहमान: यस्मात्तेज आत्मीयं कृत्वा सर्वानस्मान् पालियप्यसि स्वाहा ॥ ९ ॥

यस्य सृष्टिस्थितिसंहारादिकं परमात्मनो नारायणस्य नियमनाति-क्रमभयात् भगवान्—

उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

उत्पत्त्यादिकं परमात्माधीनमिति यो वेति स भगवान् षाड्गुण्य-वित्पूर्व "भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादिम-श्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ।" कथमुपेति । सत्यं कालं वहमानः । "कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः । अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च कल्पन्ताम् ।" इति । अहोरात्रादिकालं यथाप्रकारं देवमनुष्यादिषु प्रापय . . चं देहाचैः प्रतिदिनं युद्धसामर्थ्यसंभवकारणात् । आत्मीयं तेजः पराभवाभिभव-सामर्थ्यं तेज इति प्रणवादिकं तेजः सर्वानस्मान् सूर्यक्षपेण पालियप्यसि ।

षडिंशब्राह्मणे---

"देवाश्च वा असुराश्च होकेप्वंसन्ततेऽसुरा आदित्यमिद्रवन् स आदित्यो . . भित्त . . र्मरूपेण तिष्ठत्यप्रजापतिमुपायावत् । तस्य प्रजा-पतिरेतत् भेषजमस्यत् ऋतं च सत्यं च ब्रह्म चोङ्कारं च त्रिपदां च गायत्रीं ब्रा . . . मपद्रयत् " इत्यादि ॥

श्रीविष्णुपुराणे--

मन्देहा राक्षसा घोराः सूर्यमिच्छन्ति घातितुम् । प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय रक्षसाम् ॥ अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिनेदिने ।
ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् ॥
इत्यादि ।
वैष्णव कारं तस्य तत्प्रेरकं परम् ।
तेन तत्प्रेरितं ज्योतिरोङ्कारेणाथ दीप्तिमान् ॥
दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यानि यानि वै ।
ततः प्रयाति . . ब्राह्मणैरिभरक्षितः ॥

वालिखल्यादिभिश्चैव प्रभुवैंखानसैरपि।

महात्मभिर्महात्मा वै जगतः पालनाद्यतः ॥

इति भगवदाज्ञा यात् जगत्पालनादिकं करोति जगत्पालनादिशक्तिप्रदाय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यं त्वं पालनायाभिभूतं देवास्सर्वे विचरन्ति ते देवास्त्व-मेव सर्वे माया मायैषते स्वाहा ॥ १० ॥

हे परमात्मन् पुत्रेण सह बाणासुरपरिपालनार्थमागतं सर्व त्वयाभि-भूतं अभिभवं प्राप्तं रुद्धं सर्वदेवाः ब्रह्मादयः प्रमुखं श्रुत्वा अध्याहारः पश्येति जीवभूतेन नरसिंहे कोपशान्त्यर्थं विचरन्ति शरभ विनागतिं कुर्वन्ति ये च सर्वे रुद्धदेवाः [१] ब्रह्मादयः विचरन्ति स्वरक्षकत्वेन गतिं कुर्वन्ति देवास्त्वमेव सर्वे

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम् इति ॥
त्वद्विभूतिभूताश्चेच्छरभनिर्माणादिगतं कथं कुर्वन्तीति चेत् तत्राह
माया मायेषते पूषा ते माया आश्चर्यकारिणी विद्या सैव माया।
अन्येषां माया का माया।

देवी होपा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

इति भगवद्वचनात् । शरभरूपेण गतानां ब्रह्मरुद्रादीनामपि नृसिंह-रूपिणा संहारादिकं नारसिंहपुराणादिप्ववगम्यते सप्तत्रिंशेऽध्याये—

हिरण्यकशिपोस्रस्तान् सेन्द्रान् देवान् बृहस्पतिः । श्लीरोदस्यान्तरं गत्वा स्तूयतां तत्र केशवः । युप्माभिः संस्तुतो विप्णुः प्रसन्नो भवति क्षणात् ॥

इत्यारभ्य -

युप्मदागमनं सर्वं जानाम्यसुरस्द्नाः । हिरण्यकविनाशार्थं स्तुतोऽहं शङ्करेण च ॥

इत्यारभ्य हिरण्यवधानन्तरम्—

तस्य कोपाभिभूतस्य नृसिंहस्य जगत्यतेः । दृष्ट्वा भयानकं रूपं तत्रसुर्देवदानवाः ॥

इत्यादिस्तोत्रानन्तरं ब्रह्मसमीपगमनादिकं प्रतिपाद्य— तिस्मन् भगवित कुद्धे नरिसंहे महात्मिनि । प्रवेपते जगदिदं देवेशे कुपिते मृशम् ॥ त्वत्तो हि नान्यच्छरणं देवानामिह विद्यते । नरिसंहसमुद्भतं भयं नाशय नो हरे ॥

इत्यारभ्य अनन्तरं रुद्रवचनम् --

हतो हिरण्यकशिपुर्यो स दैत्यो महाबलः । को नः शमयिता तस्य . . . हिरमेधसः ॥ त्वं मे जनयिता तात स ते जनयिता हिरः । तस्य देवस्य कः शक्तो विष्णोर्वे निम्रहे भवेत् ॥ यद्भयात्पवते वायुः सूर्यस्तपति यद्भयात् । यद्भयाद्धरणी धत्ते निम्रहे तस्य कः प्रभुः ॥ तथाप्यपायं पश्यामः परमेण समाधिना । कृते यस्मिन् भवेच्छ्रेयस्तूर्णीभावो न रोचते ॥ अश्वानां माहिषः शत्रुर्वारणानां मृगाघिपः । वानराणां तथा मेषः पक्षिणां गरुडः स्मृतः ॥ मूषकानां तु मार्जालो मृगाणां श्वा प्रकीर्तितः । वायसानां दिवाभीतः सिंहानां शरभस्तथा ॥ ततः समे भजिष्यामः शरमं भयशान्तये । शरभोऽधिष्ठितोऽस्माभिः नृसिंहं शमयिष्यति ॥ इत्येवमुक्तो भगवान् ससर्ज शरभं तथा । यस्य सन्दर्शनादेव त्रस्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥ ततस्तस्य भवानीशस्तुण्डस्थानमरोचत । पृष्ठभागे चतुर्वक्तस्तस्य रुद्रो न्यवेशयत् ॥ सोमसूर्यौ नयनयोर्मारुतः पक्षयोर्द्वयोः । पादेषु भूधरान् सर्वान् शिवस्तस्य न्यवेशयत् ॥ एवं निर्माय शरभं भवः प्रमथनायकः । ससर्ज नरसिंहं तं समुद्दिश्य भयानकम् ॥ ततः क्षणेन शरभो नादपूरितदिङ्मुखः । अभ्याशमगमद्विष्णोर्विनदन् भैरवस्वरम् ॥ तमभ्याशगतं दृष्ट्या नृसिंहः शरभं रुषा । जघान निशितैरुप्रैर्देष्ट्रानखवरायुधैः ॥

निहते शरमे तस्मिन् रौद्रे मधुनिघातिना । तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं देवा देवर्षयस्तथा ॥ इति ॥ गारुडे —

हन्तुमभ्यागतं रौद्रं शरमं नरकेसरी । नखैर्विदारयामास हिरण्यकशिपुं यथा ॥ निकृत्तबाह्ररुशिरा वज्रकल्पमुखैर्नखैः । मेरुपृष्ठे नृसिंहेन सहस्रार्कसमं च तत् ॥

पाद्मे-

तो युध्यमानौ तु चिरं वेगेन बलवत्तरौ ।
विनाशं जम्मतुर्देवौ नृसिंहशरभाविति ॥
ततः कुद्धो महाकायो नृसिंहेऽभिमुखस्वनः ।
सहस्रशिरसं नेत्रैस्तस्य गात्रं न्यकर्तयत् ॥
पतितं भीममत्युमं विबुधा द्रष्टुमागताः ।
ऋषयो देवगन्धर्वा यत्र शेते हरो हतः ॥
तं दृष्ट्वा परमं जम्मुर्विस्मयं ते दिवौकसः ।
पशशंसुस्तदा कर्म नरसिंहस्य चाद्भुतम् ॥ इति ॥ १० ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः

तृतीयोऽनुवाकः

यस्त्वं भूत्वा पर्जन्यो विमेति रन्ध्रे मजाभिराकृष्य-माणः सत्यं कालं व्रतेन पालयन् हादयिष्यसे स्वाहा ॥ १ ॥ यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।

इति यज्ञोद्भवो भूत्वा यः पर्जन्यः सत्यं कालं पालयन् रन्ध्रे भगवदा-ज्ञाभक्ते विभेति सः । त्वं रन्ध्रे अनाष्ट्रष्ट्यादौ व्रतेन कारिकेष्ट्यादिना प्रजाभिराकृष्यमाणः वर्षप्रदानादिना हाद्यिष्यसे उभ्यम् ॥ १॥

कामो भूत्वा प्रजानामन्तरास्थितस्सर्वान् लोकान् हाद्यन् जीवमानः सन्दर्गणाय हरये पराय स्वाहा ॥ २ ॥

हे परमात्मन् कामो भूत्वा प्रजानामन्तरास्थित: । अनक्ष्वाचत्र स्थितस्सन् सर्वान् लोकान् जनान् हादयन् जीवमानः अभिलिषतवस्तु-लाभादिमुखेन सन्तोषयन् सन्दर्पणाय गर्वरूपाय हरये हरियत्रे ननु कामदाह-कत्वाद्रद्रस्य सर्वहन्तृत्वमुपपद्यत इति चेत् तदसत् ।

ब्रह्माणिमन्द्रमिं च यमं वरुणमेव च । निगृह्य हरते यस्मात्तस्माद्धिरिरहोच्यते ॥ स शुक्काज्जायते कामो मज्जायाः कोध एव च । अस्थिम्यो जायते लोभो मेदसश्च मदस्तथा ॥ मांसात् प्रजायते मोहोऽस्ग्रभ्यः कोधः प्रजायते । त्वचश्चैवापि धर्मस्तु कमाज्जातस्ततो दश ॥ इति ॥ भगवतोऽपि शुक्कादुत्पत्त्यादिकं श्रूयत इति चेत् ॥ २ ॥

अङ्गादङ्गादनुपाविशत्सर्वान् लोकान् संरक्षणाय यो वा वसन् देवो मातरिश्वा स योऽस्माकं भूत्ये भूतये स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा मातरिश्वा वाय्वन्तर्यामी देव: क्रीडाकामः अङ्गादङ्गादनुमाविशत् त्वदङ्गात्पुत्रस्याङ्गं जीवेन सह दीपात् दीपिमव जननात्माविशत् ''अङ्गादङ्गात्सम्भविस हृदयादिधिजायसे ''इति श्रुतेः। भारते --

वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना । इति ।

स देवः सर्वान् लोकान् जनान् प्रति संरक्षणाय निवसन् योऽस्माकं मातरिश्वनः अन्तर्यामिणः अस्माकं भूत्ये भूतये निरवधि-कैश्वर्याय ॥ ३ ॥

यो मोहयन् भूतानां सर्गादिरक्षणाय यः सङ्कोचः सङ्कोचनाय भवते स्वाहा ॥ ४ ॥

यः परमात्मा सर्गादिरक्षणाय सृष्टिस्थितिसंहारार्थं भूतानां इन्द्रियाणि मोहयेत्। " मुह वैचित्र्ये " इति यः अन्तर्यामी सन् सङ्कोचः। " अणोरणी- यान् " इत्यादि सङ्कोचनाय भवते तस्मै ॥ ४ ॥

यो वा द्शात्मा उपरि स्पृशन्वा देवानां जेनातिपामुत्तरः जेनातिज्योतिषे स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा मत्स्यादिदशावताररूपी द्वादशात्मापि केषांचित् वा आदित्यमण्डलवर्ती उपिर स्पृश्नन् सेर्वषामुपिर स्थित्वा स्विकरणैर्मेध्या-मेध्यादिकं स्पृश्नन देवानां मध्ये ज्योतीरूपः जेनातिपां चन्द्रा-म्यादिज्योतिपां उत्तरः स्वयं वा स्पृश्नन् तैरमंद्यैरस्पृष्टः जेनातिज्योतिषे ज्योतिषां जेनातिर्मवित तस्मै ॥ ५ ॥

यो ब्रह्मा ब्रह्मविदामात्मा स्यादात्मचक्षुपां भूतिर्भूतिमतां सुकृतं कृताय स्वाहा ॥ ६ ॥

यः परमात्मा व्रह्मविद्गं ब्रह्मा छान्द्रसत्वात् दीर्घः परंब्रह्म । आत्मा स्यादात्मचक्षुपां अन्तः प्रविश्य नियन्ता य आत्मा । परमात्मत्वेन पश्यतां परमात्मा । भूतिर्भूतिमतां ऐश्वर्यवतामैश्वर्यरूपः सुकृतं कृताय कृतवते तस्मै ॥ ६ ॥

सारस्वतो वा एष देवो न हि पारमात्मिकः हयोऽभयो वा सर्वे सन्धुषे स्वाहा ॥ ७ ॥

हयग्रीवमन्तः—एष देवो लीलाविभूतो हयग्रीवरूपेण स्थितः अयं केवलहयो न भवति । किन्तु अभयप्रदः भयरहितः सारस्वतः अखिल-विद्याधारस्वरूपी पारमात्मिकः परमात्मा जगत् सर्व सन्धुषे कृपाकटाक्षेण प्रेक्षयसि तुभ्यम् ॥ ७ ॥

यो वा परं ज्योतिः परं सन्द्धानः परमात्मा पुरुषं संजनयिष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परं ज्योतिः परमात्मा यं निर्हेतुककृपाकटाक्षेण रक्षितुमिच्छति तं पुरुषं परं सन्दधानः उत्कृष्टगुणं सन्दधानं संजनयति संजनियप्यसे तुभ्यं व्यत्ययः । यद्वा रामकृष्णाद्यवतारादिषु वसुदेवदशरथादिषु परं सन्दधानः पुरुषं प्रति सम्यक् जनिष्यसे ''जनी प्रादुर्भावे '' इति प्रादुर्भावं प्रजननं कुर्वते ।

न तस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते । आत्ममायां विनेशस्य परमा सृष्टिरात्मना ॥ इति ॥ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्येष आत्मा विवृणुते तन्त्रं स्वाम् ॥इति॥ जायमानं हि पुरुषं यं पञ्चेन्मधुसूदनः । सात्त्विकः स तु विश्चेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः ॥ पत्रयत्येनं जायमानं ब्रह्मा रुद्रोऽथवा पुनः रजसा तमसा चास्य मानसं समभिप्छतम् ॥ इति ॥

अनेन निर्हेतुत्वं प्रतिपादितम् । अधिकारिविशेषेण निर्हेतुकं सहेतुकं च ॥ ८ ॥

यो दोपश्चतुरश्चतुर्थश्चतुरः पदार्थान् सर्वे होकस्य सन्द-धानस्ते सन्ते सन्त्वमादधानाय स्वाहा ॥ ९ ॥

यो दोषः यस्य परमात्मनो बाहुषु चतुर्थः । वरप्रदानहस्तः चतुरः वरप्रदानेन चतुरः समर्थः चतुरः पदार्थान् धर्मार्थकाममोक्षाख्यान् सर्वे लोकस्य सर्वजनानां सन्दधानः पयच्छमानः सन्ते सत्सु सच्चमादधानाय "एको बहुनां यो विधाति कामान् " इति श्रुतिः । ते इदम् ॥ ९ ॥

यस्यैता ब्रह्ममूर्तयो बृहह्रह्माणं ब्रह्म आद्धानः यं ब्रह्म ब्रह्मगुप्तये परम्पराय स्वाहा ॥ १० ॥

यस्य परंब्रह्मणः एता: अव्यया ब्रह्ममूर्तयः दत्तोऽयं चतुर्मुखब्रह्म-गुप्तये वेदगुप्तये परम्पराय सजिति तस्मै ।

श्वेताश्वतरे—

यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ इति ॥ १० ॥

इति तृतीयोऽनुवाकः

चतुर्थोऽनुवाकः

वाको वा अनुवाको वाकं वाकं संजुषमाणः देवस्य स्वं स्वगुप्तये स्वयं जेनातिषे ज्योतिषे स्वाहा ॥ १ ॥

वाकः अनुवाक एव यद्वा वाकं वाकं प्रत्यनुवाकं प्रतिवाक्यं वा संजुषमाणः अस्य मन्त्रस्याध्येतरि प्रियमाणः ॥

> वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजोत्तमैः। यावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः। तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम्॥

इति स्वनामत्वाच " स ह वा एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यद्यवेदः"

इत्यादिश्रुतेर्निश्वासरूपत्वाच वाकं संजुषमाण इत्युक्तम् । देवः "दिवु क्रीडा-विजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्तकान्तिगतिषु" इति । स देवः स्वं स्वतेजोरूपं स्वगुप्तये स्वकृतलोकमर्यादरक्षणार्थे त्रयोमयं सूर्यं जेनातिषे कल्पयति । "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इति श्रुतिः । "आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तद्दचा मण्डल् स ऋचां लोकोऽथ य एष एतिस्मन् मण्डलेऽर्चिदींप्यते तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष एतिस्मन्मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजू १षि स यजुषा मण्डल् स यजुषां लोकः सैषा त्रय्येव विद्या तपति" इत्यादिस्वय ज्योतिषे अनश्वरज्योतिषे तुभ्यम् ॥ १॥

द्वावेतौ पक्षी अचरं चरन्तौ नाधुरं व्यथुनीते यश्चैकं भ्रुनिक भोक्ते स्वाहा ॥ २ ॥ शरीरस्य तौ एतौ द्दौ जीवात्मपरमात्मानौ पक्षी पक्षिप्रायौ अचरं प्रकृतिं चरन्तौ शरीरे स्थितौ । यद्वा " चर गतिमक्षणयोः" इति प्रयोज्य-प्रयोजक्रभावेन प्रकृतिं भक्षयन्तौ ।

यद्वा कर्मफलमुपनिषदन्तरे—

ऋतं पिवन्तो सुकृतस्य लोके

गुहां प्रविष्टो परमे परार्धे ।

छायातपो ब्रह्मविदो वदन्ति

पञ्चाग्रयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ इति ॥

नाधुरं व्यधुनीते तत्र परमां धुरं भारं धुनित इति न धुनित एव ।

श्रुत्यन्तरे—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्चन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ यश्चैकं सुनक्ति यः परमात्मा एकजीवात्मानं चकारात्प्रकृतिं च

भुनक्ति संहरति ।

श्रुतिः—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उमे भवत ओदनः।

मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥ इति॥

हरेरेव सर्वसंहारकरत्वं श्रूयते "हिर्द् हरन्तमनुयन्ति देवाः।

विश्वस्येशानं वृषमं मतीनाम् "इति। ईशानशब्दश्रवणाद्भुद्र एवेति चेत्

सत्यम्। "विश्वस्येशानम्", "पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम्", "अस्येशाना

करातो विष्णुपत्नी" इत्यादिश्रुतिषु लक्ष्मीनारयणयोर्जगदीश्वरत्वश्रवणात्केव
लेशानशब्दश्रवणाभावात्। "ईशानः सर्वविद्यानाम् " इति विद्यामात्रेशा-

नत्वस्य श्रवणात्।

ब्रह्मा शम्भुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतकतुः । एवमाद्यास्तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा ॥ जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा । वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चत्वमुपयान्ति च ॥ इति ॥

अत एव सर्वसंहारकत्वं श्रीमन्नारायणस्य सर्वसंहारकस्य ॥ २॥

यो वा आयुः परमात्मा न मीहुषः पारम्पर्यात्परं परायणः पराय लोकानां परमाद्धानः परम्पराय स्वाहा ॥ ३ ॥

यः परमात्मा नारायणः भीढुषो रुद्रस्य " नमो रुद्राय मीढुषे " इति परमायुः आपन्निवारकत्वात् परममृत्युः वाच्च । आरण्यके — " किं तद्विष्णोर्वरु-माहुः " इत्यारभ्य बलादिकमुत्पाद्य " प्रच्छामि त्वा परं मृत्युम् " इति प्रश्नस्य प्रतिवचनम् । "अमुमाहुः परं मृत्युम् । पवमानं तु मध्यमम् । अमिरेवावमो । मृत्युः । चन्द्रमाश्चतुरुच्यते ॥" इति भगवत्येव परं मृत्युत्वं प्रतिपादितम् । परमात्मानमन्तर्यामिणम् । विभक्तिव्यत्ययः । परमात्मा पारम्पर्यात्परम्पराय लोकानां परमुत्कृष्टपरः भिन्नपरः शत्रुश्च परमाद्धानः उत्कृष्टतं प्रथमानः अत एव परायणः परमगितभूतः मोक्षोपायभृत इत्यर्थः । यद्वा चतुर्विष-पुरुषार्थानां गतिभूतः । पराय उत्कृष्टगितभूताय ।

ननु,

यो ब्रह्मा ब्रह्मण उज्जहार प्राणेश्वरः कृतिवासाः पिनाकी । ईशानो देवः स न आयुर्दधातु तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन ॥ इत्यायुषो निमित्ते कथं रुद्रप्रार्थना प्रतिपाद्यत इति चेत्सत्यम् ।

भारते-

ततस्ते च सुरास्सर्वे ब्रह्मा ते च महर्षयः । वेददृष्टेन विधिना वैष्णवं कृतुमारभन् ॥ तस्मिन् सन्ने तदा ब्रह्मा स्वयं भागमकल्पयत् । देवा महर्षयश्चैव सर्वे भागानकल्पयन् ॥ ते कार्तयुगधर्माणो भागाः परमसत्कृताः । प्रापुरादित्यवर्णान्तं पुरुषं तमसः परम् ॥

श्रीभगवान--

येन यः कल्पितो भागः स तथा समुपागतः । यतोऽहं प्रविशाम्यद्य फलमावृत्तिलक्षणम् ॥ यज्ञैर्ये वापि यक्ष्यन्ति सर्वलोकेषु वै सुराः । कल्पयिष्यन्ति वै भागांस्ते नरा वेदकल्पितान् ॥ यो मे यथा कल्पितवान् भागमस्मिन् महाकतौ । स तथा यज्ञभागाहों वेदस्त्रे मया कृते ॥ इति ॥

अतो ब्रह्मरुद्रादीनां तत्तत्कर्मसु पूजाईत्वं भगवतो नारायणस्य वरप्रदानरुञ्धम्। यद्वा संहारकत्वेन भगवता सृष्टत्वात् तत्पूजेति इदं प्रपन्नविषयं न भवति। भगवन्मन्त्रस्य मृत्युञ्जयत्वम्। " एते सहस्रमयुतं पाशा मृत्यो मर्त्याय हन्तवे। तान् यज्ञस्य मायया सर्वानवयजामहे।" अस्यार्थः — हे मृत्यो मर्त्याय हन्तवे वर्तसे व्रतसहस्रमयुत्तमेते पाशाः तान्पाशान् यज्ञस्य मायया "यज्ञो वै विष्णुः" इति श्रुतेः।

उपनिषदन्तरे-

यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्यते तस्य होतृभिः । उपनीतं ततोऽस्यैतत्तस्माद्यज्ञोपवीतकम् ॥ इति ॥ विष्णोर्मायया आश्चर्यकारिण्या वैष्णव्या विद्यया मन्त्रेण सर्वान् तान् पाशानवयजामहे अधस्तात्कुर्मः ।

> यदन्तस्तमशेषेण वाङ्मयं देववैदिकम् । तस्मै व्यापकमुख्याय मन्त्राय महते नमः ॥

ननु "हरि इरन्तमनुयन्ति देवाः । विश्वस्येशानं वृषभं मतीनाम् । ब्रह्म सरूपमनु मेदमागात् ।" इत्यादिषु हरिं नृसिंहं हरन्तं शरमरूपेण ईशानं रुद्रं देवा अनुयान्ति गतिं कुर्वन्ति । अतः सर्वसंहारकारको रुद्र एवेति चेत् तदसत् ।

पूर्वापरपरामृष्टशब्दानां कुरुते मतिम् । इति ।

पूर्वानुवाके—''भर्ता सिन्श्रियमाणो विभित्ते। एको देवो बहुधा निविष्टः।'' इत्यारभ्य ''तमेव मृत्युममृतं तमाहुः। तं भर्तारं तम्र गोप्तारमाहुः'' इत्यादिषु भर्तृशब्देन ''व्यष्टभ्राद्रोदसी विष्णवेते। दाधर्ष पृथिवीमभितो मयूसैः'' इति स्वकान्त्यैवावतीर्य तेन रूपेण जगद्धरणम् ''किं तद्धिष्णोर्बलमाहुः। का दीप्तिः किं परायणम्। एको यद्धारयद्देवः। रेजती रोदसी उमे। वाताद्विष्णोर्बलमाहुः।'' इत्यारभ्य। ''पृच्छामि त्वा परं मृत्युम्। अवमं मध्यमं चतुम्। लोकं च पुण्यपापानाम्। एतत्पृच्छामि संप्रति। अमुमाहुः परं मृत्युम्। पवमानं तु मध्यमम्। अग्निरेवावमो मृत्यः। चन्द्रमाश्चतुरुच्यते॥'' इति परमात्मनो विष्णोरेव परं मृत्युत्वं प्रतिपादितम्। देवशब्दः सामान्यवाचीति एको देव इत्युक्तम्। '' एको देवो नारायणः'', '' रुद्रास्तु बहुवः'', '' अपहतपाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः'', '' रुद्रास्तु बहुवः'', '' सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्राः'', '' तमेव मृत्युम् '', '' परं मृत्यो अनु परेहि पन्थाम्।'' इति।

नृसिंहतापनीयोपनिषदि—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ इति ॥

तत्रैव—'' अथ कस्मादुच्यत उग्रमिति। स होवाच प्रजापितः— यस्मात्स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि उद्गृह्णाति अजस्रं सजिति विसजिति वासयित उदग्राह्यते।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् । मृडा जरित्रे सिंह स्तवानो अन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः॥

तस्मादुच्यत उम्रमिति ॥ "

''अथ कस्मादुच्यते वीरमिति । यस्मात्स्वमिहिमा सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमित विरामयत्यज्ञसं स्जिति विस्जिति वासयति । यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः । तस्मादुच्यते वीरमिति ॥ ''

"अथ कस्मादुच्यते महाविष्णुमिति। यस्मात्त्वमिहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि व्याप्नोति व्यापयति स्रोहो यथा पललपिण्डं शान्तमूलमोतं प्रोतमनुव्याप्तं व्यतिषिक्तो व्याप्यते व्यापयते।

> यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया संविदानः त्रीणि ज्योती १ वि सचते स षोडशी ॥

तस्मादुच्यते महाविष्णुमिति ॥ "

"अथ कस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति । यस्मात् स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वतेजसा ज्वलित ज्वालयति ज्वाल्यते ज्वालयते । सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन् दीप्यमानः ज्वलन् ज्वलिता तपन् वितपन् संतपन् रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः । तस्मादुच्यते ज्वलन्तमिति ॥"

" अथ कस्मादुच्यते सर्वतोभुखमिति । यस्मात्स्वमिहम्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि स्वयमनिन्द्रियोऽपि सर्वतः पश्यति सर्वतः शृणोति सर्वतो गच्छति सर्वत आदत्ते सर्वगः सर्वगतिस्तष्ठति ।

> एकः पुरस्ताद्य इदं बभूव यतो वभूव अवनस्य गोपाः। यमप्यति अवनः सांपराये नमामि तमहं सर्वतोमुखमिति। तस्मादुच्यते सर्वतोमुखमिति॥ ''

" अथ कस्मादुच्यते नृसिंहमिति । यस्मात्सर्वेषां भूतानां ना वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च सिंहो वीर्यतमः श्रेष्ठतमश्च तस्मानृसिंह आसीत् परमेश्वरो वा जगद्धितमेतद्रृपं यदक्षरं भवति ।

प्रतिद्विष्णुः स्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥ तस्मादुच्यते नृसिंहमिति॥"

" अथ कस्मादुच्यते भीषणमिति । यस्माद्भीषणं यस्य रूपं दृष्ट्वा सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि भीत्या पलायन्ते स्वयं यतः कुतश्च न विभेति ।

> भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥

तस्मादुच्यते भीषणमिति ॥ "

" अथ कस्मादुच्यते भद्रमिति । यस्मात् स्वयं भद्रो भूत्वा सर्वदा भद्रं ददाति । रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः ।

भद्रं कोंभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरेरङ्गेस्तुष्टुवाः सस्तनृभिः व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

तस्मादुच्यते भद्रमिति॥"

'' अथ कस्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति । यस्मात् स्वमहिन्ना स्वमक्तानां स्मृत एव मृत्युमपमृत्युं च मारयति ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय इविषा विषेम ॥ तत्मादुच्यते मृत्युमृत्युमिति ॥ " "अथ कस्मादुच्यते नमामीति । यस्माद्यं सर्वे देवा नमन्ति

मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च ।

श्रुयन्ते ।

प्रनृतं ब्रह्मणस्पतिर्मन्तं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिनिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चिकरे ॥
तस्मादुच्यते नमामीति ॥ "
"अथ कस्नादुच्यते अहमिति ।
अहमिस्म प्रथमजा ऋतस्य पूर्व देवेभ्यो अमृतस्य नाभिः ।
यो मा ददाति स इ देवमावाः अहमन्नमन्नमदन्तमद्भि ।
अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां सुवर्णज्योतीः ॥
य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ " उपनिषत्सु नृसिंहस्य प्रभावा एवं

पुराणेषु च —

ब्रह्मरुद्देन्द्रवहीन्दुदिवाकरमनुष्रहाः । तच्छक्त्याऽधिष्ठितास्सन्तो मोदन्ते दिवि देवताः ॥ जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा । वितेजसश्च ते सर्वे पश्चतामुपयान्ति च ॥ इति ॥ भारते—

सत्त्वमादाय सर्वेषां तेजसोऽथ दिवोकसाम् । तेजसाऽप्यधिको भूत्वा भ्योऽप्यतिबलोऽभवत् ॥ ततः प्रभृति देवानां देवदेवो भवोद्भवः । पतिश्च सर्वभूतानां पश्नां चाभवत्तदा ॥ भासयामास तान् सत्त्वान् देवदेवो महाद्युतिः । अर्थमादाय सर्वेषां तेजसा प्रज्वलिति ॥ ततोऽभिषिषिचुः सर्वे सुरा रुद्रा सुरारिहम् । महादेव इति ह्यासीहेवदेवो महेश्वरः ॥

अत एव महादेवादिशब्दवाच्यत्वं रुद्रस्य वरप्रदानरुब्धं अत एव तमेव मृत्युमित्युक्तम् । अत्र परंब्रह्मण एवामृतशब्दवाच्यत्वं न तु रुद्रस्य । आरण्यके— ''नैव देवो न मर्त्यः । न राजा वरुणो विभुः । नामिनेन्द्रो न पवमानः । मातृकच्चन विद्यते । दिव्यस्यैका धनुरार्षिः पृथिव्यामपरा श्रिता । तस्येन्द्रो विश्रक्षपेण । धनुज्यामिच्छिनत्स्वयम् । तदिन्द्रधनुरित्यज्यम् । अभ्रवणेषु चक्षते । एतदेव शंयोर्बार्हस्यत्यस्य । एतद्रुद्रस्य धनुः । रुद्रस्य त्वेव धनुरार्तिः । शिर उत्पिषेष । स प्रवर्ग्योऽभवत । तस्माद्यस्स प्रवर्ग्येण यज्ञेन यजते । रुद्रस्य स शिरः प्रतिद्धाति । नैन १ रुद्र आरुको भवति " ॥ इति ॥ त्रिपुरसंहारकस्य रुद्रस्य पशुपितत्वादिप्रार्थना श्र्यते यजुषि—
"तेषामसुराणां तिस्रः पुर आसन्नयस्मय्यवमाथ रजताथ हरिणी
ता देवा जेतुं नाशक्नुवन् ता उपसदैवाजिगीषन् तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च
नोपसदा वै महापुरं जयन्तीति त इषु समस्कुर्वताग्निमनीक सोम शल्यं
विष्णुं तेजनं तेऽज्ञुवन् क इमामिसिष्यतीति रुद्र इत्यन्नुवन् रुद्रो वै कूरः
सोऽस्यत्विति सोऽन्नवीद्वरं वृणा अहमेव पश्नामिषपितरसानीति तस्मादुद्रः
पश्नामिषपितः" इत्यादि ॥

श्वेताश्वतरे-

तं विश्वरूपं भवभूतमीडचं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ।
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् ॥
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ॥
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीडचम् ।
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ॥
परास्य शक्तिर्विविधेव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलिकया च ।
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चित्वनिता न चाधिपः ॥

इत्यादि । तं विश्वरूपमित्यारभ्य प्रतिपादितानि विशेषणानि रुद्रपराणीति चेत् तदसत् ।

सहस्रशीर्ष पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । सहस्रशीर्षे देवं विश्वाक्षं विश्वशंसुवम् ॥ विश्वं नारायणं देवसक्षरं परमं पदम् । विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणः हिरम् ॥ विश्वमेवेदः सर्वे तद्विश्वमुपजीवति । पतिं विश्वस्यात्मेश्वरः शाश्वतः शिवमच्युतम् ॥ इत्यादि ॥

मुण्डकोपनिषदि---

अग्निर्मूर्घा चक्षुषि चन्द्रस्यौं

दिशः श्रोत्रे वाम्विवृताश्च वेदाः ।

वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य

पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ इत्यादि ॥

दिवौकसामर्धतेजसाप्याये तस्य अखिलदेवतावरप्रदानेन पशुपति त्वादिकं प्राप्तस्य पशुपतेः सर्वसंहारकत्वं नोपपद्यते ।

किञ्च-

नमास्यहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम । तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् । पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीडचम् ॥

इत्याद्यपनिषद्वाक्येषु भगवन्महिमा प्रतिपाद्यते । व्यक्तं हि भगवान् देवः साक्षान्नारायणः स्वयम् । अष्टाक्षरस्वरूपेण मुखेषु परिवर्तते ॥

इति भगवन्मन्ताः केवलमृत्युञ्जया न भवन्ति । किन्तु चतुर्वर्गफलप्रदा वा ॥ ३ ॥

तेजसां तेजस्तेज आद्धानः सन्वस्तेजसीजसी तेजस्तेजसे स्वाहा ॥ ४ ॥ यः परमात्मा तेजसां तेजस्तेज आद्धानः नक्षत्राभिचन्द्रसूर्याणा-मुत्तरोत्तरं तेजः प्रयच्छमानः सत्त्वस्तेजस्तेजसां सूर्यादीनां तेजोयुक्तानां यदा कदाचित् तेजोदर्शनाभावात् ।

कठवल्लीषु---

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वे तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ इति ॥

सूर्याद्यपेक्षयाऽधिकतेजोरूपत्वश्रवणात् नाशरहितत्वाच सत्त्वस्तेजसा-मित्युक्तम् । तेजस्विषु स्थितानां तेजसां तेषां तेजसामपि तेजसे पराभि-भवनसामर्थ्यं तेज इति तस्मै ॥ ४ ॥

सह संपायास्त्वमाशिषमाश्चिम्ताभृताभृतमाशिषमाशिराशी -राशिरनुभूमि: स्वाहा ॥ ५ ॥

चेतनाचेतनेषु सर्वत्रान्तर्यामित्वेन वसन् वैषम्यनैर्घृण्यामावात् शत्रुमित्रोदासीनानां सहासमत्वे समत्वायाः पासि त्वं आशिषमाशिभृताभृतं आशिभृतं अभृतं च आशिषमाशिः आशीराशिः आशिषां राशिः अनुभृषिः उत्पत्तिस्थानम् । तुभ्यमित्यर्थः ॥ ५ ॥

यो ह संयोगो ध्यानं जुषमाणः सन्धुः सन्धुक्षणानां संयोगः सन्द्धानः पुण्यः पुण्यानां पुण्याय स्वाहा ॥ ६ ॥

जीवात्मपरमात्मनोर्यो वा संयोगः उपायत्वेन च ध्यानं संयोगः । उपायत्वेनोपेयत्वेन च प्रीतिपूर्वकं जुषमाणः सेवमानः सन्धुक्षणानां कृपाकटाक्षेण प्रोक्षणाप्रोक्षणानां विषयभूतः सन्धुः सम्यक् प्रोक्षित इत्यर्भः ।

संयोगः सन्द्धानः एवंभूतः संयोगः सन्द्धानः । पुण्यानां पुण्यशरीराणां एव एव साधु कर्मकरायते । यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निषति एष एव साधुकर्म कारयति यमरो निनीषतीति ।

श्रीगीतायाम्—

तेषां सततयुक्तानां अजतां शीतिपूर्वकम् । ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

यद्वा पुण्यानां पुण्य इतरेषां मध्यस्थः तेन विना तृणात्रमपि न चलतीति । पुण्याय पुण्यस्वरूपिणे तुभ्यम् ॥ ६ ॥

सहस्रं वा यस्य वै वितानमादधानः सहस्रं वा आशिषः सहस्रं यस्य वे सासिकाः सहस्रं सहस्राय स्वाहा ॥ ७॥

मुक्तानामैश्वर्य प्रतिपादयति । यस्य मुक्तस्य परमपदं गच्छतः सहस्रं वा यस्य वै वितानं मण्टपादूध्वीच्छादनादि आद्धानः । स्वयमेवा-तपमप्रयच्छमानः । सहस्रं वा आश्चिषः सक्चन्दनादयः । सासिकाः आसनादिभिः सहिताः । सहस्रं यस्य वे सासिकाः आसने सह रन्तं योग्याः स्वियः । सहस्रं सहस्राय । "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इत्यादिश्रुति-सिद्धाय तुभ्यम् । "तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति शतं मालहस्ताः" इत्यादि ॥ ७ ॥

स्वातीका गुप्तयो गुप्तिः सत्त्वं सत्त्वानां (सत्यं सत्यानां) सात्वंपदं तत्सत्त्वं सत्त्वमासीत् सात्त्वं सात्त्वं वे सत्त्वमाद्धानाय स्वाहा ॥ ८ ॥

स्वातीका गुप्तयः स्वर . . शं परमात्मानं नारायणमितकम्य देवतान्तरमन्त्रान्तरसाधनान्तरप्रयोजनान्तरादीनामिकश्चित्करत्वात् तेषां गोप्तृ- त्वशक्त्यभावात गोप्तृत्वेन वरणं गुप्तयः। यद्वा स्वान्तर्यामिणः परमात्मन एव गोप्तृत्वादयः।

> आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् । रक्षिप्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥ आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः । अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम् । तदेकोपायता याच्ञा प्रपत्तिः शरणागतिः ॥ इति ॥

गुप्तिः रक्षणं सत्त्वं यथार्थं सत्त्वानां सत्त्वभूतहितमिति भूतहित-युक्तानां स्नान्तंपदं सत्त्वपदपदं तत्सन्त्वं तत्सान्त्विकपदं नान्यदिति ।

यत्पदं सात्वताभिख्यं विष्णुलोके महीयते ।

"देवैः सुकृतकर्मभिस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव" इति ऋग्वेदब्राह्मणे। यद्वा परमात्मनो गुप्तयः गोप्तृत्वादिकमेव धर्मोत्तरापेक्षया सत्यं यथार्थमिति ये गृह्णन्ति तेषां सत्यानां सत्यत्वेन गृहीतानां सान्वंपदं परमपदं सन्वमासीत्। सान्विकमेवासीत्। सान्वं वे सन्त्वमेव सान्वं सात्वतशब्दवाच्यम्। "नामैकदेशे नामग्रहणम्" भीमो भीमसेन इतिवत्।

नित्यनैमित्तिकाजस्रा याज्ञीयाः परमाः क्रियाः । सर्वे सात्वतमास्थाय विधिश्चके समाहितः ॥ इति ॥ सत्त्वप्रधानत्वात् सात्वतशब्दप्रयोगः । भारतोक्तसात्वतशब्दवाच्यं पश्चरात्रं न भवति सात्त्विकनामत्वेन प्रणीतत्वात् ।

अथांशोः सात्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् । महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः ॥ स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः । शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोळादिभिः श्रुतम् ॥ तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतं नाम शोभनम् । प्रवर्तते महाशास्त्रं कुण्डादीनां हिताबहम् ॥ इति ॥ साङ्ख्यपुराणे —

श्रुतिश्रष्टः श्रुतिप्रोक्तप्रायिश्वत्ते भयं गतः ।
क्रमेण श्रुतिविध्यर्थे मनुष्यस्तन्त्रभाश्रयेत् ॥
धर्मशास्त्रपुराणे च प्रोक्तं हि मरणान्तिकम् ।
प्रायिश्वत्तं मनुष्याणां पापिष्ठानां सुदारुणम् ॥
भयं प्रबलचित्तानां मरणे जायते भृशम् ।
तेषामेवाभिरक्षार्थे खल्वहं तन्त्रमुक्तवान् ॥
पाञ्चरात्रं भागवतं तन्त्रं सात्वतनामकम् ।
वेदाग्रहं समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवान् ॥ इति ॥

भागवते—

त्रिवक्ताया उपश्लोकः पुत्रः कृष्णमनुत्रतः । शिष्यः साक्षान्नारदस्य ददौ चित्तमखण्डितम् ॥ तेनोक्तं सात्वतं तन्त्रं यज्ज्ञात्वा मुक्तिभाग्भवेत् । यत्र स्त्रीशृद्धदासानां संस्कारो वैष्णवः स्मृतः ॥

इति परमात्मपरत्वात् पारमात्मिकं सात्वतशब्दवाच्यं स्वातन्त्र्येण देवतान्तर-मन्त्रान्तरादिप्रतिपादनाभावात् वैदिकत्वेन प्रसिद्धं श्रीमद्वैखानसं सात्विक-मेव। सत्वमादधानाय सात्त्विकगुणं प्रयच्छमानाय तुभ्यम् ॥ ८॥

सत्त्वं वा उद्रेकमासीद्यत्सत्त्वम्रुभयोरनुगोप्ता तत्सत्यं सत्यं-पदाय सत्याय स्वाहा ॥ ९ ॥

सत्त्वं वा सात्विकमेव यत्तस्य परमात्मनः उद्रेकमासीत् प्रचुरमासीत्। यत्सन्त्वं सात्त्विकप्रधानं ब्रह्म उभयोरपि ऐहिकामुष्मिकयोः अनुगोर्गा साकल्येन गोप्ता । यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकयोः । यद्वा मृते जन्मनो रक्षतः तत्सत्यं सत्यंपदाय ततः ब्रह्मपदाय परमपदाय सत्यं परमपदप्राप्तये सत्यमित्यर्थः । "नान्यः पन्था अयनाय विद्यते " इति श्रुतेः । सत्याय यथार्थभृताय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

सत्यो जेनातिः सत्यान्तरात्मा सत्योद्योगः सत्यः सत्कर्मा सत्यं सत्यं वितानमासीत्सत्यं सत्याय स्वाहा ॥ १० ॥

विनाशरहितत्वात् सत्यो जेनातिः । यद्वा भृतहितत्वात् सर्वेषां हितरूपः । जेनातिः दीप्तिः । सत्यान्तरात्मा सत्यस्वभावः । सत्योद्योगः सत्यसङ्कल्पः । सत्यः नित्यः । सत्कर्मा शोभनकर्मा । ननु यदि परमात्मा विष्णुः सत्कर्मा तर्हि भृगुपत्न्यादिस्त्रीवधादिकमेव नोपपद्यत इति चेत्सत्यम् ।

उत्तरश्रीरामायणे---

शृणु राजन् यथावृत्तं पुरा देवासुरा युधि ।
दैत्यासुरैर्भज्यमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः ॥
यदा दत्ताभयास्तत्र न्यवसिन्नर्भयास्तदा ।
तया परिगृहीतांस्तान् दृष्ट्वा कुद्धः सुरोत्तमः ॥
चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत् ।
ततस्तान्निहतान् दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्भवः ॥
शशाप सहसा कुद्धो विष्णुं परबलार्दनम् ।
यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः ॥
तस्मान्त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन ।
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम् ।
ततः प्रतिहरः शापस्तमृषिं पुनरागमत् ॥
इत्यादिसृष्टिस्थितिसंहारकर्तृत्वात् दुष्टनिग्रहकर्तृत्वाच् ॥

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामागमो वशी । मोदते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ इति ॥ लीलाविभूतिकत्वात् सर्वात्मकत्वात् निरङ्कुशे स्वतन्त्रत्वाच न दोषः। अत एव सत्कर्मा सत्यं सत्यं वितानमासीत् सत्यं यथार्थभूतहितं सत्याय यथार्थभूताय तुभ्यम् ॥ १० ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

पञ्चमोऽनुवाकः

सत्यः सत्यं पुण्यमासीत्पुण्यो वा दैविकं सत्यं सत्त्वमार्ष सत्यं सत्त्वं सत्यथाय स्वाहा ॥ १ ॥

सत्यः चिदचिदात्मकः परमात्मा सत्यं पुण्यमासीत् । सत्यशब्देन मोक्षोपायभूतज्ञानरूपः । पुण्यशब्देन इष्टापूर्तादयः स्वयमेवासीत् । पुण्यो वा देविकं "तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सकृतस्य लोके" इति श्रुतेः । भगवत्प्रीत्यर्थं कृतं पुण्यदैविकं कालान्तरेऽपवर्गप्रदम् । सत्यं सत्त्वमार्षं मोक्षोपायभूतज्ञानरूपं ग्रुमाश्रय-संशीलनमननमिति मननविषयत्वादार्षमित्युक्तम् । तत्परं ब्रह्म "नारायणपरं ब्रह्म" इति श्रुतेः । श्रीमन्नारायण एव सत्यं सत्त्वं सत्यथाय सन्मार्गभूतः सत्त्वशब्दवाच्यः परमात्मा अचिरादिमार्गभूत इत्यर्थः । "ये चत्वारः पथयो देवयानाः" इति देवयानमार्गाश्चतुर्विधाः ।

स्वामिन स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् । स्वदत्तस्विधयं स्वार्थं स्वस्मिन्नचस्यति मां स्वमम् ॥

इति न्यासविद्यानां विविधानामित्तरादिमार्गाः प्रतिमद्यन्ते । "अर्चि-पोऽहरह् आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्डेति मासांस्तान्मासे भ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याचन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्युरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयति " इत्यादि ।

> ये तु दम्बेन्धना लोके पुण्यपापविवर्जिताः। तेषां वै क्षेममध्वानं गच्छतां द्विजसत्तमः॥ सर्वलोकतमोहन्ता आदित्यश्चारमुच्यते । ज्वालामालिमहातेजा येनेदं धार्यते जगत्॥ आदित्यदम्धसर्वाङ्गा अदृश्याः केचन कचित्। परमाण्वात्मभूताश्च तं देशं प्रविशन्सुत ॥ तस्मादपि विनिर्मुक्ता अनिरुद्धं तथा स्थिताः। मनोभूतास्ततो भूयः प्रद्युमं प्रविशन्स्यत ॥ प्रयुक्ताच विनिर्मुक्ता जिह्नासङ्कर्षणं ततः । प्रविशन्तीति प्रबला सङ्ख्यायोनांश्च तैस्सह ॥ ततस्त्रैगुण्यहीनास्ते परमात्मानमोजसा । सर्वावासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः ॥ समाहितमनस्कास्तु नियताः संयतेन्द्रियाः। एकान्तभावा हि गताः वासुदेवं व्रजन्ति ते ॥ श्वेतद्वीपमितः प्राप्य विश्वरूपघरं हरिम् । ततोऽनिरुद्धमासाद्य श्रीमम् क्षीरोद्धौ हरिम् ॥

ततः प्रयुक्तमासाच देवं सर्वेश्वरेश्वरम् । ततः सङ्क्षणं विद्वयं भगवन्तं सनातनम् ॥ ततःभप्यपरो मार्गः सदा ब्रह्महितैषिणाम् । परमैकान्तिसिद्धानां पञ्चकालरतात्मनाम् ॥ तेभ्यो विशिष्टाज्जानामि गतिमेकान्तिनां नृणाम्। उत्क्रामन्ति च मार्गस्थाः शीतभूतो निरामयः ॥ देवयानः परं पन्था योगिनां क्लेशसङ्क्षये । अनन्ता रस्मयस्तस्य दीषवद्यः स्थितो हृदि ॥ सितासिता व्यानिलाः [?] कपिलाः पीतलोहिताः । ऊर्ध्वमेते स्थितास्तेषां यो भित्त्वा सूर्यमण्डलम् ॥ ब्रह्मलोकमतिकम्य [नूनं] याति परां गतिम् । यदस्यां न द्रव्यमस्ति ह्यूर्ध्वमेतद्वचवस्थितम् ॥ तेन देवशरीराणि सधामानि प्रपद्यते । एकैकरूपाश्चाधस्ताच्छर्म येऽस्यामृतप्रभाः। इह कर्मप्रभोगाय तैस्सन्नरतिरेव सः ॥ इति ॥

"अग्रयो वै त्रयी विद्या देवयानः पन्था गार्हपत्य ऋक पृथिवी रथन्तरमन्वाहार्यपचनं यजुरन्तरिक्षं वामदेव्यमाहवनीयस्साम सुवर्गो लोको बृहत्तस्मादमीन् परमं वदन्ति '' इति श्रुतिः । अथाऽयं देहजं जन्म ऋता भार्यामयपाशबन्धनो भगवन्मायया कामकोधलोभमोहमदमात्सर्यिहंसादीनि कार्याणि ऋत्वा तद्द्वारेण निष्कम्य पुनः पापीयसी योनि प्राप्य पुनर्जायते । स्वर्गनरकफलेषु प्रवर्तते । तस्माद्वगवन्मायया मोहितत्वात भगवन्तं समाश्रित्य मक्त्या नारायणमुपासीत । उपासनात्सोऽपि मक्तवत्सळ्वात् भक्तानुकम्पया स्वमायया विमोचयति । तत आत्मा सम्यक् शानं प्रविद्यति । पश्चादाश्रम-

धर्मसंयुक्तो भगवत्समाश्रयणं करोति । तत्समाश्रयणेन संसारार्णवनिमम्रो जीवात्मा परमात्मानं नारायणं पश्यति । सोऽप्यपुनरावृत्तिकं दिव्यलोकं प्राप-यति । पश्चात्कृतकृत्यो भवति । संसारवनवासनामोक्षो मुक्तिः मोक्षविशेषः । चतुर्विधपदावाप्तिः सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्य इति । आमोदप्राप्तिः सालोक्यम् । प्रमोद्पाप्तिः सामीप्यम् । वैकुण्ठप्राप्तिः सायुज्यमिति । तच नित्यानन्दामृतरसपानवत्सर्वदा तृप्तिकरं परमात्मनो नित्यनिपेवणं परंज्योतिः-प्रवेशनम् । ''तद्विप्णोः परमं पदः सदा पश्यन्ति सूरयः '' इति श्रुतिः । तस्मात् भगवतो नान्यथाप्राप्तिरिति विज्ञायते इति । मोक्षोपि तारतम्यता-ब्रह्मविदां भगवदाराधकानामग्रिहोत्रिणामर्चिरादिना ब्रह्मप्राप्तिः "अचिरादिना तत्प्रथिते:" इति वेदान्तसूत्रे उक्तत्वात् । भक्त्या भगवन्तं नारायणमर्चयेत् ''तद्विष्णोः परमं पदम् '' सम्यक् भवतीति विज्ञायत इति। अर्चिरादिमार्गाप्रतिपादनाच । न्यासविद्यानिष्ठानामर्चिरादिना परमपदप्राप्तिः । साङ्ख्यानां थोगनिष्ठानामामोदप्राप्तिः । एकान्तिनां प्रमोदप्राप्तिः । परमै-कान्तिसिद्धानां पञ्चकालस्तात्मनां श्वेतद्वीपादिना ब्रह्मप्राप्तिः। मोदप्राप्तिः केवलस्यामोद एव । तत्रापि स्वानुभव एव ।

छान्दोग्यं — '' यथाऋतुरस्मिन् होके पुरुषा भवन्ति । तथेतः पेत्य ते भवन्ति '' इति श्रुतेः । तं यथायथोपासते तथैव भवन्तीति ॥ १ ॥

सत्यो ज्योतिः सन्त्वं प्राणाः सन्त्वाधाराः सन्त्वं संयानाः सत्यः सन्त्वं प्रकाशं ज्योतिषे स्वाहा ॥ २ ॥

हे परमात्मन् सत्यो ज्योतिज्योतिष्मत् षड्भावविकाररहितत्वात् अनेकरूपरहित इत्यर्थः । सत्त्वं प्राणाः " नव वै पुरुषे प्राणाः " इति भगवद्भिमानदेवतान्तर वागाद्यभिमानिदेवतौन्तर्यामिसत्त्वाधाराः वागादयः सन्ताधाराः आधारभृता इत्यर्थः । सन्त्वं संयानाः सत्यः सत्य-भृतहितः सन्त्वं "सन्त्वात् संजायते ज्ञानम् " इति । ज्ञानरूपं ज्योतिः-प्रकाशं ज्योतिषे तस्मै ज्योतिषे तुभ्यम् ॥ २ ॥

कामीभ्रमामीशिषमीशिषाणां तत्सत्त्यं सत्यरूपं सत्यं सत्याय सन्द्धानाय स्वाहा ॥ ३ ॥

> कामीमुमां ब्रह्मणो मा ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् । अहं तवाङ्गसम्भूतस्तस्मात्केशवनामबान् ॥ इति ॥

कां सरस्वर्ती ईं लक्ष्मी उमां पार्वर्ती ईिमापं सृष्टिस्थित्यन्तकरणी ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

> स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः । तत्तद्रृपे पालयन्तमाशिषस्सत्यमीशिषम् ॥

रुद्रस्यापि पालकं **ईिम्नाणां** तत्सत्यं सत्यरूपं ''तमीश्वराणां परमं महेश्वरम् ''इति श्रुतेः । तत्परममहेश्वरत्वं यथार्थसत्यरूपं यथार्थसत्यं सत्याय चिदचिदात्मकपपञ्चाय सत्यं हितं सन्दधानाय प्रयच्छमानाय तुभ्यम् ॥ ३॥

अरिणिर्वा आरन्द आवारन्द आरन्दोऽयमानन्दते मारन्द-मीशिषे स्वाहा !। ४ ॥

अयं परमात्मा अरं वेगः येषामस्तीति अरिणिः वेगवत्सु मुख्यः वेगवानेव । आरन्दः आसरपतादरं वेगं ददाति आरन्दः आवारन्दः अवगत वेगमान्दं ददातीति आवारन्दः । "आर पीडायाम् "इति पीडापदः ।

यस्यानुम्रहमिच्छामि तस्य वित्तं रराम्यहम् । बन्धून् वा नाशयिष्यामि व्याधीनुत्पादयाम्यहम् ॥ इति ॥ अयं परमात्मा मारं कामं ददातीति मारन्दः कामप्रदः । आनन्दते एवमाकारेण कीडते—

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामगमो वशी । मोदते भगवान् भूतैर्वालः क्रीडनकैरिय ॥ इति तुभ्यम् ॥ ४ ॥

यत्सत्यं वा विष्णुरुद्योगः सूर्यो गौर्वा विष्णुर्विशत् विश्वं विश्वं सन्द्धानः तद्विश्वं विष्णवे विश्वरूपाय स्वाहा ॥ ५ ॥

यत्सत्यं स हरिर्देव इति जीवजातिमत्यर्थः । विष्णुः व्याप्तिमान् जद्योगः सर्वोपायभूत इत्यर्थः । सूर्यो गौर्वा सूर्यं किरणं च विष्णुर्विशत् विश्वं विश्वं सन्द्धानः प्रविश्य चिदचिदात्मकं जगत् वसन्ते प्रीप्मके रिक्मिशतैस्सन्तपतन् त्रिभिः—

तदा शरदि वर्षासु वर्षत्येष चतुःशतैः । हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजित त्रिभिः ॥ इति ॥ भारते—

उदितों वर्धमानाभिरा मध्याहं तपन् रविः । ततः परं हसन्तीभिगोंभिरस्तं निगच्छति ॥ इति ॥

''तदेवानुपाविशत् '' इत्यादिश्रुतेः । प्रविश्य विश्वं जीवं विश्वं लोकं सन्द्धानः धारयन् तद्विश्वं जीवीत्मानं विष्णवे सर्वभ्तात्मकाय ददामीति आत्मसमर्पणमुच्यते ॥

नीचीभावेन संयोज्य ह्यात्मनो यत्समर्पणम् । विष्ण्वादिषु चतुर्धा तु तत्प्रदानप्रदर्शिनी ॥ नीचीभृतोऽप्यसावात्मा यत्त्यंशतयेष्यते । तत्त्रसमादित्यपेक्षायां विष्णवे स इतीर्यते ॥ इति ॥ आत्मसमर्पणप्रतिपादनाच्यासविद्या । हविर्गृहीत्वा स्वात्मानं वसुरण्वेति मन्त्रतः । जुहुयात्प्रणवेनामावच्युतास्त्र्यं सनातने ॥

योगरले-

पयोभक्षा वायुभक्षाः शीणपर्णाशिनो वा समलोष्टकाञ्चना वाग्यताः प्राणायामाद्यासननिरताः सर्वतोऽरता बहिष्कृतसर्वकामाः परमात्मनि गोविन्दे सदा निहितमानसाः वसुरण्वमन्त्रमुचारयन्त आत्मानं नेजोमये परमात्मामी दहन्ति तेऽपि मुक्ता भवन्ति । एष जीवात्मपरमात्मनोर्ज्ञान-गो मोक्षयुक्त इति विजानीयात् । एतज्ज्ञानमात्रादेवाचिरान्मोक्षः सिध्यतीति जानीयादिति । प्रसङ्गाद्वसुरण्वमन्त्रस्यार्थे उच्यते । हे प्रत्यगात्मन् वसुर्वसुस्सर्वेषां सवितासि सर्वेषां धनमिवासीति । वसुरण्वशब्दे च सर्वे: कीर्तनीय-श्चासि । विभूरसि सङ्कल्पमात्रेण विविधं भावयितासि । प्राणे त्वमसि सन्धाता पाणे वसन् सर्वस्यानुसन्धाता चासि ब्रह्मन् तृचोत्तरस्त्वमिस विश्वं त्वमेवासि विश्वस्रष्टा चासि। तेजोदास्त्वमस्यग्नेः तेजसि भास्कराग्नेये प्रकाशोप्णस्वरूपिणीति पराभवसामर्थ्यम् । तेजसो वा वर्चोदास्त्वमिं सूर्यस्य वर्चोदा अस्त्विति दीप्तिप्रदः युम्नोदास्त्वमसि चन्द्रमसः युम्नशब्दो दीप्ति-विशेषपरः उपयामगृहीतोऽसि हिवयोः स्कन्दने हेतुभूत उपभृदादिहरूप उपयामः तत्र प्रकृतिपुरुषज्ञानमुपयामः तेन गृहीतोऽसि त्रह्मणे त्वामहस ओमित्यात्मानं युङ्गीत ॥

> अकारेणोच्यते विष्णुः सर्वलोकेश्वरो हरिः । उद्भृता विष्णुना लक्ष्मीरुकारेण तथोच्यते । मकारस्तु तयोर्दास इति प्रणवलक्षणम् ॥

अकारवाच्याय सर्वकारणभूताय सर्वरक्षकाय सर्वशेषिणे श्रियः पतय एवाहमनन्य इत्याह — निरुपाधिकशेषभूतस्त बरणारविन्दयोरेकात्मीयभरस्त-स्यात्मा नारायणायैव सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितसर्वकैक्कर्याणि स्युरिति कारणभूताय विष्णवे तुम्बम् ॥ ५ ॥

तद्भूर्भूस्यं भूस्यो वा विश्वरूपस्तद्भुः प्राणः सङ्ख्यातः भूरासीद्भूरसि भ्रुवोऽसि सुवरसि भूर्भूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

तद्भः आकाशः भूर्यं जलं भूस्यः अग्निः विश्वरूपः नानारूपः पञ्चसङ्ख्यात्वेन विद्यमानः प्राणः तद्भृश्रुतिः । " तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायः । वायोरिमः । अग्नेरापः । अद्भयः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः " इत्यादि भूरासीत् । भूमेरिप भूमिः आधारमृते-त्यर्थः । भूरिस भुवोऽसि सुवरिस भ्रादिलोकरूपोऽसि भूः भूतये भूरादिलोकानामैश्वर्यभूतोऽसि तुभ्यम् ॥ ६ ॥

आपो वा अपोऽन्तरात्मा यो वेदो वेदानामाधारः वेदान्तरात्मा सरसो रससङ्ख्यातो रसं रसमासीद्रसाप स्वाहा ॥ ७ ॥

यः परमात्मा सर्वकारणभूता आपः सृष्ट्यर्थमित्यर्थः । अण्डस्यापि कारणभूता इत्यभिप्रायेण पृथक्त्वेनोपादानम् । ततो ''येन जीवान्व्यचसर्ज भूम्याम् ''इति श्रुतिः ।

अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपास्जत् । तदण्डमभवद्दैवं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ इति ॥

अपोऽन्तरात्मा योऽप्सु तिष्ठनिति । यः परमात्मा वेदः वेदरूपः वेदानामाधारः "तस्य ह वा एतस्य महतो भृतस्य निश्वसितगेतद्यदृन्वेदः" इत्यादि । वेदान्तरात्मा तदन्तर्यामी सरसः अन्तर्वहिश्च सारवान् रससङ्ख्यातः समग्रवाङ्गुण्यपरिपूर्णः । यद्वा—

श्रृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः । बीभत्सरौद्रशान्ताश्च रसाश्च नव कीर्तिताः ॥ इति ॥ यद्वा — लवणाम्लकदुतिक्तकषायाः । **रसं रसमासीत्** रसानां रस आसीत् । **रसाय** रसरूपाय तुभ्यम् ॥ ७ ॥

त्रयी वा कामं त्रयीमयं त्रिगुणं त्रेतात्मकं त्रयी वा जेनातिः त्रिगुणं त्रिगुणात्मकं तस्मै त्रेताग्नये त्रिगुणाय स्वाहा ॥ ८ ॥

त्रयी वा कामं इत्यनेनैव वेदवाक्यव्यतिरिक्तभाषान्तरव्यावृत्तिः। शान्तिपर्वणि——

ओक्कारमुद्गिरन्नेतां सावित्रीं च तदन्वयात् । शेषेभ्यश्चैव वक्तेभ्यश्चतुर्वेदगतं वसु ॥ इति ॥

त्रयीमयं वेदस्वरूपं वेदेषु प्राचुर्येण प्रतिपाद्यं वेदमेदादु नीचादिस्वरमेदेन त्रिगुणं त्रेतात्मकं गाईपत्यान्वाहार्यपचनाहवनीयमेदेन त्रेतात्मकम् । यद्वा गाईपत्यादीनां प्राणभूतत्वात् त्रेतात्मकमित्युक्तम् । त्रयी वा जेनातिः वेदरूपजेनातिः त्रिगुणं ियनैमित्तिककाम्यमेदेन त्रिगुणम् । यद्वा—सात्विकराजसतामसमेदेन त्रिगुणम् । त्रिगुणात्मकं आधारभूतमेवं-भूताय तस्मे त्रेताग्नये त्रिगुणाय गुणत्रयसहिताय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

द्वी वा मुख्यो मुख्याधारौ ससुखो सानन्दौ सस्मेरौ स्मेरायितौ सानन्दमानन्दते स्वाहा ॥ ९ ॥

द्वी त्रह्मरुद्रौ । यद्वा प्रतिपुरुषो मुख्यौ मुख्याधारौ अस्वतन्त्रौ परमात्माधारौ । '' अन्तरस्मिन्निमे लोकाः '' इति । ससुस्तौ सुलसहितौ सानन्दौ हितरूपं सुखं अहितं दुःखं सस्मेरौ स्मेरयुतौ हाससहितौ

स्येरायितौ,

एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादकोधजौ स्पृतौ । तथा दर्शितपन्थानी सृष्टिसंहारकारकी ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रवहीन्दुदिवाकरमनुप्रहाः । तच्छक्त्याधिष्ठितास्सन्तो मोदन्ते दिवि देवताः ॥ इति ॥

सानन्दं आनन्दसहितं आनन्दते ।

इष्टे वस्तुनि दृष्टे च प्रियमेवावभासते । तद्वस्तुलाभान्मोदः स्यात्रमोदस्तस्य भोगतः। एते स्म जठरानन्दात् स्वदन्ते जलधेरिव ॥ इति ॥

'' सैषाऽऽनन्दस्य मीमा स्सा भवति । युवा स्यात्साधुयुवा-ध्यायकः । आशिष्ठो द्रिष्ठेशे बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः " इत्यारभ्य "स एको ब्रह्मण आनन्दः " इत्यन्तं मानुषमनुष्यगन्धर्वदेवगन्धर्वाणां पितॄणामाजानजानां कर्मदेवानामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापतेर्व्रह्मण इति मानुषानन्दमुपक्रम्य ब्रह्मानन्दपर्यन्तमुक्त्वा ब्रह्मानन्दस्यापरिभितत्वात् आनन्दो ब्रह्मेति सदतिशयानन्दस्वरूपत्वाच ब्रह्मणः "यतो वाचो विवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह " इत्युक्तम् । एवं-भताय तुभ्यम् ॥ ९ ॥

स एकेंक: साथार: साथिष्टानो नाथिष्टान: कं कं कस्मै पदे पदे पात: पादाय पादिते स्वाहा ॥ १० ॥

स परमात्मा एकैकः अनेन '' सदेव सोम्येदमग्र आसीत् '', '' एक मेवाद्वितीयम् " इतिश्रुतेः । सृष्टेः प्राक् निमित्तोपादानकारणान्तररहिते साधारः हृदयकमलाद्याधारः । साधिष्ठानः "तद्विष्णोः परमं पदम् "इति श्रुतेः परमपदाद्यदिष्ठानसहितः । नाधिष्ठानः अवान्तरकत्वेनाधिष्ठानभूतो न भवति । यद्वा—धारकान्तररहितः एवंभूतस्य परमात्मनः पादाय पातः प्रणतिः कं कं पुरुषमपि पदे पदे परमात्मना संपादिते ।

आमोदश्च प्रमोदश्च संमोदस्तदनन्तरम् ।
वैकुण्ठमिति विज्ञेयास्तेऽन्योन्यमुपिर स्थिताः ॥
अतः परं चतुर्थः स्याल्लोकः परमभास्वरः ।
बासुदेवस्य सुमहत्तदीप्तमजरावृतम् ॥
द्वादशावरणोपेतं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।
सर्वतेजोमयं भास्वदिनिर्देश्यं सुरैरिप ॥
आनन्दं नाम तं लोकं परमानन्दमद्भुतम् ।
यस्मिन् कस्मिन् कुले जाता यत्र कुत्र निवासिनः ।
वासुदेवरता नित्यं यमलोकं न यान्ति ते ॥ इति ॥

पदे पदे आमोदादिपदे पदान्तरे वा तापयतीति शेषः। नित्यमुक्तवन्धेश्च क्रीडते तुभ्यम् ॥ १०॥

इति पश्चमोऽनुवाकः ।

षष्टोऽनुवाकः

स्वयमादिः सर्वान्तरात्मा देवस्य स्वयं क्रीडात्मकमवास्रजत् यः स्वयं लोकमवधारमवधारयन् स्वाहा ॥ १ ॥ अतः परं परत्रक्षणो नारायणस्य परत्वान्तर्यामित्वादिप्रतिपादनमुखेन अर्चावतारादिकं प्रतिपादयति स्वयमादिः इत्यादिना । स्वयमित्यनेन ''सदेव सोम्येदमप्र आसीत् '', ''एकमेवाद्वितीयम् '' इति श्रुतेरमित्र-निमित्तोपादानकारणभूतं ''सत्यं ज्ञानमनन्तं त्रक्ष '' इत्यादिभिः सत्यत्व-ज्ञानत्वानन्तत्वविशिष्टं ''आनन्दो त्रक्ष '' इति निरतिशयानन्दस्वरूपं ''नारायणपरं त्रक्ष '' इत्यादिभिः परंत्रक्षपरंतत्त्वपरंज्योतिःपरमात्मादिशब्द वाच्यं नारायणमेवाह— स्वयमिति ॥

नारस्विति सर्वेपुंसां समूहः परिकीर्तितः । गतिरालम्बनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति ॥ अखिलजगत्कारणभृतो नारायण प्वादिरित्युच्यते । यद्वा— आदिशब्देन परत्वम् ।

परत्वं नाम---

वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्ध जगत्पतिः। आस्ते विष्णुरचिन्त्यात्मा भक्तैर्मागवतैः सह॥

परे लोके---

अतः परं चतुर्थः स्यादित्यादि ॥

श्रिया सार्धम्-

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी । यथा सद्मगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥

जगत्पतिः -

पतिं विश्वस्यारमेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् । एक एव जगत्स्वामी शक्तिमानच्युतः प्रभुः ॥ तदंशाच्छक्तिमन्तोऽन्ये ब्रह्मेशानादयोऽमराः। ब्रह्मादिदेवसङ्घेषु स एव पुरुषोत्तमः॥ स्त्रीप्रायमितरत्सर्वे जगद्भक्षपुरस्सरम्। विश्वव्यापकशीलत्वाद्विष्णुरित्यभिधीयते॥

अचिन्त्यात्मा —

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभावः परमस्य पुंसः । विज्ञायते शर्वपितामहाचैस्तं वासुदेवं प्रणमाभ्यचिन्त्यम् ॥

भक्तैः--

भक्तैस्तद्भक्तवात्सल्यं तत्पूजास्वनुरञ्जनम् । तत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविकिया ॥ तदनुस्मरणं नित्यं तदन्यस्य च वर्जनम् । नित्यं तदेकशेषत्वं यद्भुक्तेनोपजीवति ॥ इति ॥ भागवतैः—

उत्पत्तिश्च विनाशश्च भूतानामागर्ति गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥ पश्चशक्तिमयो विष्णुर्वासुदेवः सनातनः । लोकस्थितिमिमां दीर्घो विशालामतिदुस्तराम् । पश्यन्नास्ते हृषीकेशः परमे व्योम्नि भास्वति ॥

एवं परत्वमुपपादितम् । सर्वान्तरात्मा इत्यनेन "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा ", "यस्यात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरम् " इत्याद्यन्तर्योमित्वं स्वयमादिः इत्युक्तत्वात् । दैविकमानुषभेदेन व्यूहो द्विविषः ।

कथं त्वमर्चनीयोऽसि मूर्तयः कीदशास्तु ते । वैखानसाः कथं वा स्युः कथं वा पाञ्चरात्रिकाः ॥ श्रीभगवान—

शृणु पाण्डव तत्सर्वमर्चनाश्रममात्मनः।
स्थण्डिले पद्मकं कृत्वा साष्ट्रपत्रं सकर्णिकम् ॥
अष्टाक्षरविधानेन अथवा द्वादशाक्षरैः।
वैदिकैरथवा मन्त्रैर्मनुनोक्तेन वा पुनः॥
स्थितं मामन्तरे तस्मिन्नर्चियत्वा समाहितः।
पुन्तं च ततस्सत्यमच्युतं च युधिष्ठरः॥
अनिरुद्धं च मां प्राहुर्वैखानसविदो जनाः।
अन्ये त्वेवं विजानन्ति मां राजन् पाश्चरात्रिकाः॥
वासुदेवं च राजेन्द्र सङ्कर्षणमथापि च।
प्रद्युमं चानिरुद्धं च चतुर्मृर्ति प्रचक्षते॥
एताश्चान्याश्च राजेन्द्र संज्ञाभेदेन मूर्तयः।
विद्धि मेऽर्चान्तराण्येव मामेवं चार्चयेद्ध्यः॥ इति॥

वैभवं त्ववताराणाम्--

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कीति ते दशः॥ इति ॥
देवशब्दप्रयोगसामर्थ्यात् व्यूहिवभवे अभिष्रेते स्वयं इत्यनेन
'' पञ्चधा पञ्चात्मा '' इत्यादिश्रुत्यर्थोऽत्रानुसन्धेयः। पञ्चधेत्यनेन परव्यूहविभवान्तर्याम्यर्चावतार इति पञ्चधा प्रतिपादितासु,

व्याप्तिः कान्तिः प्रवेशोऽर्चा तिक्रयासु निबन्धनाः । परत्वेऽप्यधिकं विष्णोर्देवस्य परमात्मनः ॥

मक्तोऽपि भोगभी अत्वातपरच्युहात्मनो हरे: । तत्कालसिक्कृष्टे च लक्ष्यत्वाद्विभवात्मनः ॥ विशुद्धैर्यागसंसिद्धैश्चिन्त्यत्त्वादन्तरात्मनः। अर्चात्मन्येव सर्वेषामधिकारो निरङ्कुशः॥ अर्चावतारविषयं ममाप्युद्देशतस्तथा । उक्ता गुणा न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि॥ एवं पञ्चप्रकारोऽहमात्मनां पततामधः । पूर्वस्मादपि पूर्वस्माज्जायांश्चैवोत्तरोत्तरः । सौलभ्यतो जगत्स्वामी सुलभो ह्युत्तरोत्तरः ॥ इति ॥ परत्वादौ सोलभ्याभावात् सर्वसुलभत्वाद चीवतारः । शिलादारु च ताम्रं च रजतं काञ्चनं मणि: । उक्तानि कौतुकार्थे तु षड् द्रव्याणि मनीषिभिः ॥ इति ॥ शैलजादिरूपेण विम्रहपरिमहादिकं भगवतः प्रतिपादयति इयं श्रुतिः -- क्रीडात्मकमवासृजत् इति ॥ नृसिंहतापनीयोपनिषदि -

अथ कस्मादुच्यते वीरमिति यस्मात्स्वमिहन्ना सर्वान् लोकान् सर्वान् देवान् सर्वानात्मनः सर्वाणि भूतानि विरमित विरामयत्यज्ञसं सजिति विस्जिति वासयिति यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः तस्मादुच्यते वीरमिति ॥ इत्यादि ॥ यतः भक्तसंरक्षणादिहेतुत्वेन वीरः—

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतिन्द्रतः । मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यो कर्म चेदहम् । संकरस्य च कर्ता स्थामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ इत्यादिभगवद्वचनानुरोधेन नित्यिकभृतौ पादप्रक्षाळनादिकर्मकरणं योम्यताभावात् , विभृतौ पादप्रक्षाळनाचमनस्नानादिकर्मकरणायोग्यतात्व-मिच्छन् सुदक्षां सुतरां स्वापकादीनां यथायोग्यं कामितफलप्रदानसमर्थः "युक्तप्रावा जायते देवकामः" देवतात्विमच्छन् श्रीवैसानसादिशास्त्रोक्त-शैलादिप्रतिमारूपे जायते । यावाग्रहणं सुवर्णरजतादीनामप्युपलक्षणम् ।

किश्च--

पिशङ्गरूपस्सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः । पिशङ्गरूपः सुवर्णवर्णः सुभरः सुखेन भर्तु शक्यः वयोधाः वयसा

गरुडेन घ्रियत इति वयोधाः वीरशब्देन पूर्वोक्तमन्त्रप्रतिपाद्य एवात्रापि प्रतिपाद्यते पिशङ्गरूप इत्यादि गुणशिष्टत्वेनोक्तत्वात सालग्रामपरत्वेन वा ग्रावापरत्वेन वा वक्तुमयुक्तमित्यवगम्यते ।

भारते--

सुरूपां प्रतिमां विष्णोः प्रसन्नवदनेक्षणाम् । कृत्वात्मनः प्रीतिकरीं सुवर्णरजतादिभिः ॥ तामर्चयेत्तां प्रणमेत्तां जपेत्तां विचिन्तयेत् । विश्रत्यपास्तदोषस्तु तामेव ब्रह्मरूपिणीम् ॥

प्रन्थान्तरे-

द्वीपवर्षविभागेषु तीर्थेप्वायतनेषु च । मानुषाश्चात्मना चाहं मामेमामे गृहेगृहे ॥ पुंसिपुंसि संभवानि दारुलोहशिलामयः । अहं पञ्चोपनिषदः पग्व्यूहादिषु स्थितः ॥ आविभविषु सर्वेषु स्वसङ्कल्पशरीरवान् । आविश्वासावतारेषु पाञ्चमौतिकविष्रहः ॥ दारुलोहशिलामृत्स्नाशरीरोर्चात्मकः स्मृतः । चेतनाचेतनैर्देही परमात्मा भवाम्यहम् ॥ अर्चात्मनावतीर्णं मां जानन्तो हि विमोहिताः । कृत्वा दारुशिलावुद्धिं गच्छन्ति नरकायुतम् ॥ स्वयम्भृनां विमानानामभितो योजनद्वयम् । क्षेत्रे पापहरं प्रोक्तं मृतानामपवर्गदम् ॥ योजनं दिव्यदेशानां सिद्धानामर्थमेव च । मनुष्याणां विमानानामभितः क्रोशमुत्तमम् । गृहमात्रं प्रशस्तं वा गृहार्चा यत्र विद्यते ॥ इति ॥

पुरुषसंहितायां नारदं प्रति सनत्कुमारः ---

पुरा नारायणो देवः कृपया परयान्वितः । देवतिर्यङ्मनुप्यादीन् वीक्ष्य मंसारमध्यगान् ॥ एवं सिश्चन्तयामास संस्मरन् वैभवं स्वकम् । स्वतःप्रमाणवाक्येश्च दुर्विज्ञानं वदन्ति माम् ॥ अणोरणीयान्महतो महीयान्त्रिर्गुणो गुणी । दिग्देशकालावस्थायैरसो चाभद्यवैभवः ॥ प्रधीक्षयविहीनश्च सत्यकामो निरञ्जनः । विनेन्द्रियेण सर्वज्ञो विना पादेन सर्वगः ॥ अनासोऽनुभवन् गन्धं स्पृशन् सर्वमपाणिकः । शृण्वन् श्रुतिं विना शब्दमजिह्वोऽपि लिहन् रसम् ॥ साथनेन विना सर्वे साध्यं साथयतेऽन्वहम् । तस्मात्सर्वप्रमाणेन सुदुर्ज्ञानतरो सहम् ॥ मज्ज्ञानाभावगे मोक्षो न सिद्ध्यित कदाचन ।
तस्मात्संसारचकेऽस्मिन् भ्राम्यन्ते च सुदुस्तरे ॥
उद्धरेयिममान् सर्वान् यातनाश्रतसंकुलान् ।
इति सिश्चन्त्य भगवान् स्वच्छन्दोपाचिवमहः ॥
हित्वोपनिषदं वेषं प्रमाणानामगोचरम् ।
सर्वेषां हर्षदं भक्त्या दृष्टमात्रेण मुक्तिदम् ॥
सर्वेकल्याणसंपूर्ण गुणराशिसमाश्रयम् ।
सहसमुखदक्पादमाददे रूपमद्भुतम् ॥ इति ॥
अतः स्वयं च भगवान् कीडात्मकमवास्जत् ।
धर्मज्ञोऽसौ समूहश्च साधुसंरक्षणार्थता ।
इति जन्मरहस्यं यो वेति नास्य पुनर्भवः ॥ इति ॥

पाझे—

उद्धृतायां स मेदिन्यां पूर्ण तद्भूनभोन्तरे । जलं तत्कृतमर्यादं व्यवच्छिन्नमभूत्तव ॥ संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदुर्व्याधारसिद्धये । दिग्गजानहिराजं च कमठं च न्यवेशयत् ॥ तेशामपि च सर्वेशामाधारत्वेन सादरम् । अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युयुजे च दयापरः ॥ इति ॥

यः परमात्मा स्वयं लोकं भूरादिसर्वलोकान् अवधारं अधस्ताद्धृतम् । ए 21 ऐरांवतः पुण्डरीको वामनः कुसुदोऽङ्गनः । पुण्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥

इति शेषदिमाजादिभिर्भृतं दिमाजादीनामाधारत्वेन अधस्तात् धारयन् कूर्मरूपेणेत्यर्थः ॥ १ ॥

यः स्वयं सृष्ट्रमात्मना गुप्तमनुसंदितानमचरं चरन्तं स्वयं क्रीडं क्रीडयन् क्रीडान्तरमनुषाविशत् स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा स्वयं छुष्टं स्वेन सृष्टं आत्मना स्वेनैव गुप्तं रक्षितं अनुसन्दितानं साकल्येन जीवस्य चात्मनः फलितं अचरं स्वातन्त्र्येण गतिरहितं चरन्तं जीवं यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकं तं प्रत्यात्मानं

अप्रमेयोऽनियोज्यश्च यत्र कामागमो वशी । मोदते भगवान् भूतैर्बालः कीडनकैरिव ॥ इति ॥

स्वतन्त्रत्वात्मितिमामायेण क्रीडं क्रीडयन् अन्योन्यं क्रीडयन् स्वयं क्रीडान्तरं वारोहादिरुक्तं अनु साकल्येन भाविश्वत् । यद्वा कूर्मविषयत्वेन स्वसृष्टमन्दरपर्वतं समुद्रमथनेन मन्थरस्योपिर चरन्तं गर्ति कुर्वन्तं स्वयं क्रीडयन् तथारणेन क्रीडयन् क्रीडान्तरममृतप्रदानार्थे स्त्रीवेषधारणादिकं साकल्येन प्राविशत् ।

देवतिर्यङ्मनुष्याख्यचेष्टामत्ति स्वलील्या । जगतामुपकाराय मनःकर्मनिमित्तजः ॥ समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशाद्धृतभृतसर्गः । इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः सनाथिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥

इति तस्मै ॥ २ ॥

स्वोजसा सर्वमादधाति यः पापीयांसमनुपदमाहिसत् सुपुण्यं पुण्यात्मकं पुण्यं वितानं दाधार देवाय स्वाहा ॥ ३ ॥ यः परमात्मा स्वौजसा परबलाहरणशक्त्या सर्व जगत् आद्धाति स्थापयति यः परमात्मा बलभद्ररूपी पापीयांसं प्रलम्बासुरं अनुपदं लीलाकाले गृहीत्वा गच्छन्तं पदमनुसत्य आहिंसत् हिंसितवान् ।

श्रीवैखानसे—

योगनिद्रे ममादेशात् पातालतलसंश्रयान् । एकैकशश्च षड्गर्भान् देवकीजठरे नय ॥ हतेषु तेषु कंसेन शेषाख्यांशस्ततो मम । अंशांशेनोदरात्तस्याः सप्तमः स भविष्यति ॥ गोकुले वसुदेवस्य तथान्या रोहिणी तथा । तस्य संभूतिसमये स विनेयस्त्वयोदरम् ॥ इति ।

सुपुण्यं सुतरां पुण्यस्वरूपं पुण्यात्मकं पुण्यशब्दवाच्यानामन्तर्या-मिणं पुण्यं वितानं वितानरूपत्वेन दाधार शेषरूपेण कृष्णं दाधार सङ्क्षणमूर्तित्वेन क्रीडमानस्तस्मे । यद्वा पापीयांसं सर्वयज्ञविनाशकं हिरण्याक्षपदमनुसत्य अहिंसत् हिंसितवान् सुपुण्यं पुण्यात्मकं यज्ञं "यज्ञो वै विष्णुः" इति पुण्यं वितानं दाधार त्रयीसंवरणं यत इति वेदम्रुल्त्वात् आच्छादकं दाधार स्थापितवान् ।

भृगुः —

हिरण्याक्षोऽपि दैत्येन्द्रो बलवान् बलिनां वरः । परेण गर्वाहुर्बुद्धिर्यज्ञविद्धेषकोऽभवत् ॥ तद्यथाकृतवान्विष्णुर्नरस्करस्तिमान् । हत्वा स दैत्यं सबलं पश्चाद्यज्ञोनुवर्तयन् ॥

यज्ञवराहरूपिणौ इत्यर्थः ।

帝智—

आद्ये कलियुगे प्राप्ते सोमकेन हता त्रयी । इत्यारभ्य ।

अथ मत्स्याकृतिः श्रीशः प्रविश्याम्बुधिमध्यगम् । निर्मध्य सोमकं वेदानदात् कञ्जनयोनये ॥ तादृशं पुण्डरीकाक्षं स्तोत्रैः सन्तोप्य पद्मभूः । उवाच वचनं प्रेम्णा दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ तान्त्रिकेण पुरा प्रोक्तं मार्गेण भवदर्चनम् । न प्रसिद्धचित चास्माकं मनः कमललोचन ॥ वैदिकेन त्वंदर्जी वै यथापूर्व वदाच्युत । इत्युक्तो भगवान् देवः शास्त्रं श्रुतिपथागतम् ॥ सहस्रकोटिभिः श्लोकैः सङ्ख्यातं बहुविस्तरम् । सूत्रे मूलमनाचन्तं कल्पे कल्पे समाश्रितम् ॥ उवाच जगतां प्रीत्ये यज्ञानां पूरणाय च। मूळं सर्वागमानां च पुराणानां तथैव च ॥ स्मृतीनां सर्वसूत्राणां प्रत्यङ्गोपाङ्गशोभनम् । श्रुत्युक्तं तदिदं शास्त्रं वैखानसमहार्णवम् ॥ इत्युक्त्वा भगवानाद्यस्तत्रैवान्तरधीयत । ततः परं चतुर्वक्त्रो जटाकाषायदण्डभृत् ॥ नैमिशारण्यमासाद्य मुनिबृन्दनिषेवितम् । तपस्तस्वा चिरं कालं ध्यायंस्तेजस्तु वैष्णवम् ॥ पश्चादपश्यद्विष्णूक्तमागमं विस्तरं तथा । सश्रौतं च स्वमात्रं च वेदमन्त्रैरभिष्टुतम् ॥

सङ्क्षिप्य सारमादाय शाणोिष्ठिस्तितरत्नवत् । धातुर्विस्तनसा नाम्ना मरीच्यादीन् सुतान् मुनीन् ॥ अबोधयदिदं शास्त्रं सार्धकोटिप्रमाणतः । सुनिभिस्तस्य सङ्क्षिप्तं चतुर्रुक्षप्रमाणतः ॥ कल्पेकल्पे महाविष्णोरुद्भृतं पूर्वतस्सदा । तस्माद्वैदिकमाचारं यः कर्तुं सुवि वाञ्छति । तस्यदं शास्त्रमित्युक्तं नेतरेषामितीरितम् ॥ इति ॥ देवशब्दसामर्थ्यान्मत्स्यादिरूपेण कीडते तुभ्यम् ॥ ३ ॥

क्ष्मामेकां सिल्लावसमां श्रुत्वा स्वनन्तीमनु स्वयं भूत्वा वराहो जहार तस्मै देवाय सुकृताय पित्रे स्वाहा ॥ ४ ॥

क्ष्मां भूमिं एकां सिल्लावसन्नां प्रळयजलाकान्तां स्वनन्तीं कोशन्तीं श्रुत्वा अनु पश्चात् स्वयं बराहो भूत्वा जहार उद्धृतवान् देवाय चोतमानाय सुकृताय सुकृतं कृतवते पित्रे रक्षकाय ।

शान्तिपर्वणि-

आदौ महार्णवे घोरे भाराकान्तामिमां पुनः । तदा बलादहं पृथ्वीं सर्वभूतहिताय वै ॥ सत्त्वैराकान्तसर्वाङ्गां नष्टां सागरमेखलाम् । आगमिष्यामि संस्थातुं वाराहं रूपमास्थितः ॥

इति तस्मै ॥ ४ ॥

यः कुं धरमाणः कुं धरतां कुं धरतामित्यवोचत् तां सानु-मन्तो विद्धात्स्वतेजसा तस्मै देवाय वरिष्टाय वरप्रदाय पित्रे स्वाहा ॥ ५ ॥ यः परमात्मा कुं भूर्मि धरमाणः आषारकूर्मादिरूपेण धारयमाणः कुं धरां धरतां गोवर्धनपर्वतभक्षमयभीतानां मयनिवारणार्थ वर्षादिभयनिवारणार्थ च गोपान प्रति कुं धरतां पर्वतानां सानुषु वसन्तित्यध्याहारः अवोचत् इत्युक्तवान् औचित्यवशात् समीचीनार्थश्व-कारनियमाच तां भूमिं सानुष्यन्तः पर्वताश्च गोपानां रक्षणार्थं स्वतेष्वसा—

सहकार्यनपेक्षं यत्तत्तेजः समुदाहृतम् ॥ इति ॥

विद्धत् भृतवान् वरिष्ठाय श्रेष्ठाय वर्षदाय पित्रे रक्षकाय स्स्मै तुभ्यम् ॥ ५ ॥

पृथां मस्त्रतरुन्तीं ममृज्यामृजाङ्गीं य ऊर्वोरुपादधात् तस्मै मुख्याय वरदाय पित्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

पृथां भूमिं प्रस्वलन्तीं जलमज्जनायासेन प्रकर्षण स्वलन्तीं यथास्थाने स्थातुमसमर्थो अमृजाङ्गी पङ्कादिभिलिप्तशरीरां प्रमृज्य शुद्धि कृत्वा अर्वोरुपाद्धात् अरुमध्ये स्थापितवान् तस्मै भ्रुरूयाय वरदाय पित्रे ॥ ६ ॥

यां गाम्रुशन्तीम्रुशक्षिपूर्णामारक्तनीलाममृतां रजन्तीमा-लालयन् लालितकङ्कणाङ्गीं तस्मै प्रजेशाय वरदाय पित्रे स्वाहा ॥ ७ ॥

यां गां भूमिं उश्चन्तीं आक्रोशन्तीं भृतभूभारपीडया क्रोशन्तीं वराहरूपेणावतीर्य उश्चन् शब्दं कुर्वन् अभिपूर्णी स्थावरजङ्गमादिभिः समृद्धां आरक्तनीलां रक्तनीलवर्णो अमृतां जलेनार्द्रो रजन्तीं रजसाभिष्ठतां लालितकङ्कणाङ्गीं जवोद्धरणवेळायां लालितानि जलकणानि यद्वा कङ्कणानि यस्याः सा लालितकङ्कणाङ्गी तां भूमिं आलालयन् यः परमात्मा तिष्ठति प्रजानामीशाय प्रजेशाय वरदाय पित्रे तस्मै ॥ ७ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता वभूव यत्कामास्ते जुडुमस्तजो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ ८ ॥

प्रजानां प्रतिः प्रजापितः हे प्रजापते शब्दनाच्यपरमात्मन् त्वदन्यः विश्वा जातानि विश्वस्मिन् जातानि परिता पालयिता रक्षकः सष्टा ना न वश्रृव यत्कामास्ते जुहुमस्तको अस्तु वयं स्थाम पतयो रयीणां पतये स्थाम तुभ्यम् ॥ ८ ॥

यो धूर्धुरं धूर्धुरं धूर्वराणां सुघूर्धूरसि धूर्धुराणां धूरसि धूर्वक्ष वे स्वाहा ॥ ९ ॥

यः परमात्मा धूर्घुरं भारस्यापि भारभूतः धूर्वराणां भारवहने पुष्टानां धूर्घुरं भाररूपं सुधूर्घुरसि धूर्धुराणां धूरसि भारभूतोऽसि तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यो वाप्यहिंसीज्ञरया जरन्तं तं दैत्यमुख्यममृतात्मरूपं सुखुरं खुराणां किचित्स्वनन्तं तस्मै नृसिंहाय सुरेशपित्रे स्वाहा ।। १० ।।

यः परमात्मा नृसिंहरूपी जरया जरन्तं जीर्णतारहितं दैत्यमुख्यं प्रथमं अमृतात्मरूपं वरप्रदानेन देवमनुष्यादिभिः दिवारात्रौ च मरणरहितं

भृग:--

हिरण्यकशिपुर्नाम दैत्यराट् स प्रभुर्भवेत् । बरेण गर्बी दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ देवैर्वा मानुवैर्वापि मृगैर्जीवैरजीवकैः । दिवारात्रौ तथा चैवं वयो नैवं ममेति च ॥ एवं बरेण गर्वन्तं दैत्यं देविवरोधिनम् । वधं कर्तु कृतोद्योगश्चिन्तयित्वा हरिः प्रभुः ॥ नरसिंहवपुः कृत्वा दिवारात्रौ व्यपाद्य च । सन्ध्यायां तु वधं कुर्यात् स्वीयाङ्के तु नखाङ्कुरैः ॥ बाह्यमभ्यन्तरं भित्त्वा जीवाजीवैर्नखैः शुभैः । एवं दैत्यवधं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ इति ॥

सुखुरं खुराणां नृसिंहनलापेक्षया सुकुमारनलं किचित्स्वननं वज्राधिकनलामेः हिंसितत्वात् सन्धितुमशक्याद्वा प्रभुत्वाद्वा किञ्चित्स्व नन्तर्माहंसीत् हिंसितव्यन् तस्यै नृसिंहाय नरसिंहरूपिणे सुरेशो ब्रह्मा हदः तस्य पित्रे रक्षकाय तस्यै ॥ १०॥

इति षष्ठोऽनुवाकः

सप्तमोऽनुवाकः

तपोनिधि तपसां रियदं रियमायुरङ्गं व्यसनौघइन्त सासिष्वसन्तं सवने सिक्ति तस्मै सुरेशाय सुरबृन्दकर्त्रे स्वाहा ॥१॥

तपोनिर्धि "ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपश्चान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञं तपो भूर्भुवस्सुवर्ज्ञक्षेतदुपास्वैतत्तपः " इति, तपः स्वधर्मवर्तित्वम् , "तप इति तपो नानशनात् परम् " इत्यादिश्रुतिसिद्धानां तपः शब्दवाच्या-नामावासभृतम् । तपसां र्यिदं तपसामप्यैश्वर्यप्रदम् । र्यि ऐश्वर्यभृतम् । व्यसन्तैघहन्त् आपित्रवारकं स्वमक्तस्वापित्रवारकलं ब्रह्मादेरदृष्टम् । सासिः प्रतिध इत्यर्थः तेष्वसन्तम् । सवने

समये सिवत्रे फलपदाय सुरेशाय ब्रह्मरुद्रादीनामीश्वराय सुरवृन्दकर्त्रे देवसमूहकर्त्रे तस्मै तुभ्यम् ॥ १ ॥

यो वा र्शिसहो विजयं विभिष् साराजियन्तं रियदं कवीनां साराजियन्तं सजयं सहस्रं तस्मै सुयन्त्रे सुरोवधये स्वाहा ॥ २ ॥

यः परमात्मा हिरण्यवधादिना विजयं विभिष् । विष्णुस्के "प्रतिद्विण्णुस्तव ते वीर्याय । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु । अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा" । प्रकर्षेण तस्माद्धिरण्यवधादिकारणादाविर्भृतो नृसिंहो न मृगः किन्तु विष्णुः भीमः दैत्य-दानवरक्षसां भयंकरः,

उत्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ इति ॥

कुचरो गिरिष्ठाः रत्नकूटपर्वते स्थितः सन् पादचारी भूता सन्ध्याकाले हिरण्यवधादिकं कृतवान् । यस्य विष्णोरुरुषु महत्सु त्रिषु विकमणेषु भुवनानि अधिक्षियन्ति अधिक्षिष्ठानि भवन्ति । तस्माद्विष्णुः वीर्यवत्तया स्तवत इति ॥ श्रीमद्वैस्नानसेऽस्निलसंहितायामप्येवमेवोक्तम्—

नरसिंहः सुभविंता कस्माच भुवनेश्वरः।

इत्युपकम्य । \

गत्वा तत्पुरंसाह्ये तु पर्वतं शृङ्गिरूपिणम् । रत्नकूटमिति ख्यातं पर्वतं सुमनोहरम् ॥ तस्यैव शिखरे रम्ये दृष्टः स भगवान् किल । नारायणस्तु सिंहत्वे मुखं कृत्वा च दारुणम् ॥ दंष्ट्राणां च तु तीक्ष्णत्वं सटाभिः स्कन्धसङ्कटम् ।
नररूपं वपुः कृत्वा मानुषत्वे व्यवस्थितः ॥
स्रुदारुणं महद्रुपं शत्रुणां साधनाय च ।
नस्तैस्तीक्ष्णेः सुदंष्ट्रेश्च चतुर्भिर्वाहुभिर्युतम् ॥
नागराश्च किलोधुका हिरण्यपुरवासिनः ।
अपराह्णे महासिंहं पर्वतात्रे प्रतिष्ठितम् ॥
सहस्रादित्यसङ्काशं ज्वलन्तं प्रभया युतम् ।
आगच्छन्तं समुत्पेक्ष्य विद्रुता भयमोहिताः ॥
अपराह्णे मन्दभृते रक्तादित्यकरप्रभे ।
शीष्रमुखार्य वेगेन मन्दिरं प्राविशद्धरिः ॥

इत्यादि ।

शीष्ट्रं चापं च गृह्नतं तत्प्रमुच्यासिमुत्तमम् । उत्पत्य खङ्गं दृष्ट्वा तं हिरण्यकशिपुं रिपुम् ॥ एकेनैव च हस्तेन खड्गं जग्राह तस्य तम् । अन्येन पाणिना चारु समालम्ब्यादिकङ्कतम् । अस्रोण सह संयोज्य विभिद्दे तद्द्विधा हरिः ॥ इति ॥

साराजियन्तं सर्वेश्वर्यवन्तं कवीनां ज्ञानिनां यद्वा भक्तानां साराजियन्तं साम्राज्यं सत्तयं जयसहितं क्ष्यस्तं अपरिमितं तस्मै प्रह्लादाय सुयन्त्रे भगवद्भक्ताय यद्वा परमात्मज्ञानिने सुशेवधये निधिभूताय ॥ २ ॥

रियः ककुबान् दथिहनष्टं रियमिद्विधानं तस्मै ककुत्रे विकटाय पित्रे स्वाहा ॥ ३ ॥

रियः ऐश्वर्यरूपः ककुग्नान् वृषभाववान् यद्वा श्रेष्ठः दश्वद्दिनष्टं यन केन प्रकारेण यस्मै कस्मैचित् विनष्टं पदार्थं वरप्रदानादिमुखेन प्रापयन् रियमिद्धिनं रियः इत्यनेन ''ऋचः सामानि यज्ंषि। सा हि श्रीरमृता सताम् '' इति श्रुत्युक्तं विधानं विधिः श्रुतिप्रसिद्ध इत्यर्थः। अनेन शास्त्रयोनित्वं दिशितम्। ककुत्त्रे ककुदि स्थिताय विकटाय वेद्वटाय। ऋग्वेदे ''अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे शिरिंबिठस्य सत्त्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामिसं '' इति ॥ हे अरायि ऐश्वर्यहीने काणे एकाक्षिन् अन्वस्य गमने सामर्थ्या-भावात्काणस्य यथाकथंचित् गमनयोग्यता संभवतीति काणेत्युक्तम् । विकटे गिरिं गच्छ वेद्वटगिरिं प्रति गच्छ ''चतुर्हतो ह वै नामेषः। तं वा एतं चतुर्हत् सन्तम् । चतुर्होतेत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥'', ''इन्द्रो ह वै नामेषः। तं वा एतिमन्द्रः सन्तम् । इन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षणि । परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥'' इति श्रुतेः परोक्षणोक्तम् । सदान्वे सर्वदा अन्वेषणं कुरु ॥ यद्वा सर्वदा अन्वेषय शिरिं-विठस्य श्रीपीठस्य,

स्वामिपुष्करिणीतीरे कोटिकन्दर्पम्तिमान् । आस्ते लक्ष्म्या च घरया रमन् षोडशवार्षिकः ॥ इति ॥ सत्त्विमः सान्त्विकगुणैः तेभिः तैः त्वा त्वां चातयामसि चातयामः

विनाशयामः ।

पाद्मे-

स्वामिपुष्करिणीतीरे सर्वान्तर्याम्यधोक्षजः । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ चिन्तितस्य तु विद्या तु चिन्तामणिमिमं जगुः । केचिद्दानप्रदत्वाच ज्ञानाद्विरिति तं विदुः ॥ सर्वतीर्थमयत्वाच तीर्थाद्वि प्राहुरुत्तमाः । पुष्कराणां च बाहुळ्यात् गिरावस्मिन् सरस्सु च ।

पुष्कराद्रिं प्रशंसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः । गिरावस्मिन् तपस्तेपे सोऽपि च स्वाभिवृद्धये ॥ तस्मादाहुर्वृषाद्रिं तं मुनयो वेदपारगाः । शातकुम्भस्वरूपत्वात् कनकाद्भिं च तं विदुः॥ द्विजो नारायणः कश्चित् तपः कृत्वा महत्पुरा । पश्चादश्वस्य नामा च व्यपदेशं मुरारितः॥ वैकुण्ठादागतत्वेन वैकुण्ठादिरिति स्पृतः । हिरण्याक्षविनाशाय प्रह्लादानुम्रहाय च ॥ नारसिंहाकृतिं लेभे यस्मात्तस्मात्स्वयं हरिः। सिंहाचल इति प्राहुस्तस्मादेव मुनीश्वराः॥ अञ्जनाद्रौ तपः कृत्वा हनूमन्तं व्यजायत । तदा देवाः समागत्य देवकार्यार्थकारकम् ॥ यस्मात्पुत्रं मम सुतं जम्मुस्तस्मादमुं गिरम्। अञ्जनाद्रिं वराहाद्रिं वराहक्षेत्ररूक्ष्मतः ॥ नीलस्य वासुरेन्द्रस्य यस्मान्नित्यमवस्थितिः । तस्मान्नीलगिरिं नामावदंस्ते तं महर्षयः ॥ वेकारोऽमृतबीजं तु कट ऐश्वर्यमुच्यते । अमृतैश्वर्यसङ्घलाद्वेङ्कटादिरिति स्मृतः ॥ अयं कदाचिद्वानां श्रीनिवास इवाबभौ। श्रीनिवासगिरिं पाहुस्तस्माद्देवा दिवौकसः ॥ आनन्दाद्रिमिमं प्राहुर्वेकुण्ठपुरवासिनः। पाहुर्भगवतः क्रीडाप्राचुर्यातु तवासुराः ॥

श्रीप्रदत्वाच्छियो वासाच्छव्दशक्तचा च योगतः।
रूढचा श्रीशैठ इत्येतन्नाम चास्य गिरेर्भवेत्॥
बहूनि चान्यनामानि कल्पभेदाद्भवन्ति हि॥
सर्वपापानि वें प्राहुः कटस्तदाह उच्यते।
सर्वपापदहो यस्माद्धेश्वटाचेठ इत्यभूत्॥
किल्दोषपरीतानां नराणां पापचक्षुषाम्।
वेश्वटेशात्परो देवो नास्त्यन्यः शरणं भुवि॥ ३॥
राकामह ५ सहवा ५ सृष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा वोधतु
त्यना सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीर भातदायसुक्थ्यं स्वाहा॥ ४॥

राका परमपुरुषरञ्जनाद्राका यद्वा रातीति राका परमपुरुषरञ्जन-योग्या अहं तापत्रयाभिभृतोऽहं यद्वा चतुर्विधपुरुषार्थकामोऽहं सुहवां शोभनहवां लक्ष्म्याराधनं अधिकं शोभनार्थमेव नाभिचारनिमित्तम् ॥

श्रीविष्णुपुराणे—

सत्वेन शौचसत्याभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः । धनैश्चर्येश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥ स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् । स शूरः स च विकान्तो यं त्वं देवि निरीक्षसे ॥ सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः । पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लमे ॥ इति ॥

चतुर्विधपुरुषार्थेप्विप रुक्ष्म्या एव प्राधान्यात् सुहवां इत्युक्तम् । सुष्टुती सुषन्ति शोभनरूपया स्तुत्या हुवे आह्रये शृणोतु नः आर्तनादं शृणोतु यद्वा मम विज्ञापनं सुभगाः, भगः श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययनार्ककीर्तिषु ॥ इति ॥ शृणोति निखिलं दोषं शृणोतु च गुणैर्जगत् ॥ श्रूयते चाखिलैर्नित्यं श्रूयते च परं पदम् ॥ इति ॥

सा भक्तस्य आर्तनादं श्रुत्वा तिन्नवारणे यन्नं कर्तुं समर्था महानुभावा वीर्यवती कीर्तिमतीत्यादिगुणिविशिष्टेत्यभिप्रायेण सुभगा इत्युक्तम् । बोधतु त्मना वेगेन बुध्यताम् । यद्वा सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया सूच्यम-सन्ततधारया कृपाकटाक्षजलेन नः सिञ्चतु ददातु वीरं परमात्मानं यद्वा पुत्रपौत्रादिकं श्रतदायसुक्थ्यं प्राणभूतं ददातु प्रयच्छतु ॥

ननु "पूर्वपक्षो राकापरपक्षः कुहूः" इति श्रुतेः देवतान्तरपरत्वेन श्रूयमाणो राकाशब्दः कथं लक्ष्मीपरो भविष्यतीति चेत्—उच्यते; प्रकरणानुक्तादुक्तां योगो रूढिमपहरतीति न्यायात् अगवच्छब्दस्य तत्रैव सुख्यवृत्तत्वात् पुरुषांकारभूतत्वात् राज्ञि हं रञ्जनात् सतामिति "अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी" इत्यादिभिः पुंस्त्वाभिधानेश्वरेश्वरीमिति सर्वशेषित्वाच ॥४॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसस्तु पारे सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीर: नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते स्वाहा ॥ ५ ॥

श्रीविद्विटेशत्वेन पूर्व प्रतिपादितस्य परमात्मनः स्वरूपं स्तोतुमारभते— वेदाइं इति ॥ एतं वेद्वटाचलनिवासिनं पुरुषं पुरुषसूक्तेन प्रतिपाद्यम् । श्रूयते हि—भगवन् कूर्मरूपं प्रस्तुत्य कूर्मरूपो भगवान् ब्रह्माणमाह—"मम वै त्वङ्मा सा । समभूत् "-—इति ॥ ब्रह्माह—" नेत्यब्रवीत् "—इति ॥ पुनक्ष भगवान् कूर्मः प्राह्—" पूर्वमेवाहिमहासिमिति । तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम् "—इति ॥ तदेव न्यस्तपुरुषत्वात् परं दर्शयति—"स सहस्रशीर्षा पुरुषः । सहस्राक्षः सहस्रपात् । भूत्वोदितष्ठत् '' ॥ इत्यादि ॥ महान्तं ''तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् '' इति ॥ पूर्णत्वात्पुरुषः इति ॥ पान्ने—

शब्दोऽयं सोपचारेण तथा पुरुष इत्यपि ।
निरुपाधौ बदन्त्येते वासुदेवे सनातने ॥
सर्वलोकप्रतीत्या च पुरुषः प्रोच्यते हिरः ।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽन्यः पुरुषशब्दभाक् ॥
बद्याद्याः सकला देवा यक्षतुम्बुरुनारदाः ।
ते सर्वे पुरुषांशत्वादुच्यन्ते पुरुषा इति ॥

उत्तररामायणे अगस्त्यः---

असौ राम महाबाहुः रितमानुषचेष्टया । तेजोमहत्तया चासि संस्कार इति पृरुषम् ॥

हरिवंशे--

गोवर्धनादिधरणीनाथ नन्दसुतोऽपि सन् । पुरुषस्यांशभूतं त्वामादधिकरणे वही ॥

स्कान्दे-

यदा भास्करशब्दोयमादित्ये प्रतितिष्ठति । यदा चाम्नो बृहद्भानुर्यदा वायौ सदा गतिः ॥ तथा पुरुषशब्दोऽयं वासुदेवेऽवतिष्ठति । यदा शक्करशब्दोऽयं यथा देवे व्यवस्थितः ॥

श्रीविष्णुपुराणे--

देवितर्यक्मनुष्यंषु पुंनामा भगवान् हरिः । श्रीनीम लक्ष्मीमैत्रेय नानयोर्विद्यते परम् ॥ नारसिंहे-

य एव वासुदेवोऽयं पुरुषः प्रोच्यते बुधैः । प्रकृतिस्पर्शराहित्यात् स्वातन्त्र्ये वैभवादिप ॥ स एव वासुदेवोऽयं साक्षात्पुरुष उच्यते । स्त्रीप्रायमितरत्सर्वे जगद्गक्षपुरस्सरम् ॥ इत्यादि ॥

सहस्रशीर्षेत्यादिशब्दसिद्धः पुरुषः श्रीवेङ्कटेशः तस्य वैभवं अतिपादयति ॥

अत्र प्रथमया विष्णोर्देशतो व्याप्तिरीरिता।

द्वितीययास्य विष्णोश्च कालतो व्याप्तिरीरिता॥
विष्णोमादसदलं च कथितं तु तृतीयया।
एतावानिति मन्त्रेण वैभवं कथितं हरेः॥
तस्माद्विराडित्यनया वदेन्नारायणाद्धरेः।
प्रकृतेः पुरुषस्यापि समुत्पत्तिः प्रदर्शिता॥
यत्पुरुषेणेत्यनया सृष्टियज्ञः समीरितः।
अनेनैव तु मन्त्रेण मोक्षश्च समुदीरितः॥
तस्मादिति च सप्तार्चान् जगत्सृष्टिः समीरिता।
वेदाहमिति मन्त्राभ्यां वैभवं कथितं हरेः॥
यज्ञेनेत्यनया चर्चा सृष्टेमोक्षस्य चेरितः।
य एवमेतज्ञानाति स हि मुक्तो भवेदिति॥

पुरुषसंहितायां किं स्वरूपं आदित्यवर्णम् — आदित्यवर्ण पुरुषं वासुदेवं विचिन्तय ॥ इति ॥

तमसस्तु पारे तमश्शब्देन प्रकृतिरुच्यते--तमसः परमे दान्ते ह्यस्ति प्रकृतिमण्डलम् । ऊर्ध्वमवस्थितं सर्वाणि विचित्यं निर्माय नामानि कृत्वा ॥ नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रषश्चनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ भारते—

सर्वेषां च सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥ इति ॥

धीरः — धियो रममाणः अभिवदंस्तैराभिमुख्येन वदन् यदास्ते अस्त्येव तिमत्यनेन पूर्व प्रस्तुतमेव नान्यं दद इति । सिन्निहितस्य परित्यागे कारणाभावात् ॥

वेङ्कटाचलमाहात्म्ये-

स्वामिपुष्करिणीतीरे सर्वान्तर्याम्यधोक्षजः । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ इति पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यत्वेनोक्तत्वाच्च ॥ ५ ॥

दिग्दोषो यस्य विदिशश्च कणौं घौरास वक्त्रमुद्रं नमी का सासि वा स्म या स्वयमाप दन्तं तस्म वरत्रे वरदाय कस्मै स्त्राहा ॥ ६ ॥

यस्य परमात्मनः दिग्दोषः दिशः दोषः बाहवः विदिशश्च अवान्तरकणौं द्यौर्वक्त्रमास उद्रक्षभः "माभ्या आसीदन्तरिक्षम्" इत्यादिश्रुतयः। या विश्वंभरा भूमिः सा त्यमेवासि म्म भूतार्थस्चकं अन्तर्यामीत्यर्थः॥

श्रुत्यन्तरे —

- यस्यास्यमग्निर्धोर्मुर्धा खं नामिश्चरको क्षितिः ॥ इत्यादि ॥

पादभ्ता या भूमिः सा स्वयं वराहरूपेण तव दन्तमापं दंष्ट्राप्रस्थि

नेत्यर्थः तस्मै वराहरूपिणे वरत्रे वरप्रदानेन त्राति बरत्रः चरप्रदानसमर्थाय

कस्मै परब्रह्मणे कस्मा इत्युक्तत्वात् ब्रह्मकं ब्रह्ममुखमिति परब्रह्मपरत्वेनोक्तत्वात् । "सदेव सोम्येदमप्र आसीत् ", "एकमेवाद्वितीयम्" इत्यादिश्रुत्यनुसारेण पृथग्देवीभूषणायुधादिरहितत्वेन श्रुतिसिद्धम् । वेङ्कटाचले विद्यमानोऽपि मन्त्रो वेङ्कटेशपरः ॥

पाझे-

येनैव दंष्ट्रायसमुद्धृता धरा विभर्ति विश्वं ससुरासुरेन्द्रम् । नताः स्म तस्मै वरदाय पुंसे सर्वात्मने शेषविभूतिदायिने ॥ इति॥

पद्मास्य वक्षाः परमः सुपुण्यः पद्मा जनित्री परमस्य वासः सूक्ष्मं सावित्रं स्वयमाद्धानः सावित्ररूपं परमं सुपुण्यं स्वाहा ॥७॥

पद्मा लक्ष्मीः अस्य पूर्व प्रतिपादितस्य वेङ्कटेशस्य वक्षाः वक्षिति विभक्तिव्यत्ययः पर्मः अर्चावतारे वरप्रदानादिषु समाभ्यधिकरिहतः सुपुण्यः,

वेद्घटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन । वेद्घटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ याश्च सप्तमहापुर्यः कीर्त्यन्ते मोददायकाः । ता वेद्घटाद्रिपर्यन्ता ग्रामकोटचंशशक्तयः ॥ नास्ति पुण्यतमं तीर्थं स्वामिपुष्करिणीसमम् । सममस्तीति यो ब्र्यात्तसमो नास्ति पातकी ॥ इत्यादि ॥

पद्मा जिन्त्री सर्वत्र जननी । ऋग्वेदे — " अहं रुद्राय धनुरातनोमि त्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ । अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश । अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तस्समुद्रे ।" श्रीस्के — "मातरं पद्ममालिनीम्", श्रीविष्णुपुराणे —

त्वं माता सर्वभूतानां देवदेवो हिरः पिता । त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्वचाप्तं चराचरम् ॥ इति ॥ परमस्य अभ्यधिकरहितस्य अस्य वक्षः पद्मावास इति वा ॥ भगवच्छास्त्रे—

महाप्रळयकाले तु सर्वलोकविनाशने।
तस्मिन्नपि च काले तु वत्सरूपावसत्स्वयम्॥
श्रीवत्साङ्को हरिस्तस्मात् हरिवक्षसि सुस्थिता।
प्रळयान्ते पुनस्सृष्टा पृथग्भूता च सा भवेत्।
स्त्रीवेपेण च सर्वासां भेदमूर्तित्वमेयुषी॥ इति॥

सूक्ष्मं सावित्रं स्वयमाद्धानः ''अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् '' इत्य-स्यार्थोऽत्राभिन्नेतः । छान्दोग्यं—''य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुहिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णस्तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी'' इति ॥ मैत्रायणीश्रुतिः—''स्थिरमचलम-मृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं सर्वापरं धाम'' इति ॥

योगयाज्ञवल्क्यः--

ईश्वरं पुरुषाख्यं च सत्यधर्माणमच्युतम् । भर्गाख्यं विष्णुसंज्ञं च ध्यात्वामृतमुपाश्नुते ॥ इति ॥ दृश्यो हिरण्मयो देव आदित्यो नित्यसंस्थितः । यः सूक्ष्मः सोऽहमित्येव चिन्तयामः सदैव तु ॥

किञ्च स्थ्भं सावित्रं इत्युक्तत्वात् " घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इि त्रीणि आदित्य इति त्रीणि । एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पद श्रियाभिषक्तम् य एवं वेद । श्रिया हैवाभिषिच्यते " ॥ इति ॥ यजुषि — " घृणिः सू आदित्यो न प्रभावात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमापो ज्योत रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् " ॥ इति ॥ एवं श्रुतिस्मृतिषु प्रतिपादितं सावित्रं रूपं पूर्वोक्तः परमात्मा स्वयमादधानः सावित्ररूपं पर्मं सुपुण्यम् । "आदित्यो वा एष एतन्मण्डलम् " इत्यादिश्रुत्यनुसारेण, "असावादित्यो ब्रह्म" इति श्रुतेश्च, आदित्यमण्डलान्तर्वर्ती श्रीवेङ्कटेश इत्यभिप्रायेण सावित्ररूपं परमं सुपुण्यं इत्युक्तम् ॥ ७ ॥

यः पुण्डरीकः परमान्तरात्मा कम्राङ्गरूपं कमलं द्धार सासिष्वसन्तं सरसे रसाय स्वाहा ॥ ८ ॥

यः परमात्मा पुण्डरीकः पुण्डरीकः छान्दसत्वात् । परमान्तरात्मा अत्रापि दहरपुण्डरीकमध्यवर्ती चेत्यर्थः । छान्दोग्ये— "अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्ट-च्यम् " इति ॥ यद्वा—पुरुषच्यात्रः कम्नाङ्गरूपं कमनीयमङ्गरूपं यस्य तत् । कमलं जलमलङ्करोतीति कमलं दधार कमले दधार ब्रह्माणं सरसे रससिहते द्वेऽपि चेति रागात्मकरससूते पद्मे रसाय लोकसृष्ट्ये ब्रह्माणं दधार तस्मै ।

भारते-

स्वयंभुस्तस्य देवस्य पद्मं सूर्यसमप्रभम् ।
नाभ्या विनिस्सृतमरुक् तत्रोत्पत्रः प्रजापितः ॥ इति ॥ ८ ॥
रयीणां पतिं यजतं बृहन्तं रारागम्रुक्तं गुरुं सश्रीकं तं
रायिरूपं रियभूतभूतं रियमत्सुरत्रः स्वाहा ॥ ९ ॥

रयीणां पति ऐश्वर्याणां पति बृहन्तं " वृहद्भह्ममहश्चेतिशब्दाः पर्यायवाचकाः " इति पूर्वस्मिन्मन्त्रे प्रतिपादितं ब्रह्माणं परब्रह्मभूतं रारागम्रक्तं समग्रपाङ्गुण्यपरिपूर्णेश्वर्यत्वात् तुच्छरूपपरत्वादिन्द्राधैश्वर्यराग-रहितम् ,

एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मनः ।

इति वचनात् । गुरुं-

गुशव्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशव्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥ इति॥

विसृष्टचादिसामर्थ्यज्ञानप्रदं सश्चीकं सर्वैश्वर्यवन्तं तं रायिरूपं ऐश्वर्यरूपं रियभूतभूत ऐश्वर्यस्यापि ऐश्वर्यभूतं रियमत्सुरत्रः ऐश्वर्यवतां देवानां रिक्षिता अस्मै ।

आरोग्यं भास्त्ररादिच्छेच्छ्यमिच्छेद्धुताशनात् । शंकराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥ इति ॥ ज्ञानप्रदोऽपि परमात्मैवेत्यभिप्रायेण गुरुशब्दप्रयोगः यद्वा तत्त-दन्तर्यामित्वेन ॥ ९ ॥

रायां पतत्त्रे रियमाद्धात्रे रत्यो बृहन्तं रियमत्सुपुण्यं राराजिमन्तं रतये रमन्तं तं विम्बवन्तं ककुदाय भद्रे स्वाहा ॥१०॥ रायां पतत्त्रे स्वभक्तस्थतुच्छैश्वर्याणां पतनानन्तरं त्रात्रे रिक्षत्रे,

> यस्यानुब्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम् । बन्धून् वा नाशयिष्यामि व्याधीनुत्पादयाम्यहम् ॥ इति ॥

रियमाद्धात्रे अनश्वरैश्वर्यप्रदात्रे रायो बृहन्तं लीलाविभूत्यपेक्षया नित्यविभूतेरधिकत्वात् "पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" इति श्रुतेः । रियमत्सुपुण्यम् ,

> सत्पात्रदानेन भवेद्धनाढचो धनप्रकर्षेण करोति पुण्यम् । पुण्यादवश्यं त्रिदिवं प्रयाति पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी ॥

सुपुण्यं सुप्रसिद्धानां पुण्यप्रदं राराजिमन्तं देशकालाद्यपेक्षा-राहित्येन निरन्तरैश्वर्यवन्तं रतये लीलारसानुभवार्थं रमन्तं परमास्मामं शैरुजादिरूपेण विम्ववन्तं ककुदाय श्रष्टचाय भद्रे शुभाश्रयाय स्वाहा जुहोमीत्यर्थः ॥ १० ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ।

अष्टमोऽनुवाकः

यत्सारभूतं सकलं धरित्रीं मोदमायेणानुभूतमनुविधं सक्ष्मः सुरेशः सकलं विभर्ति तस्मै सुरेशाय सकलं सुपुण्यं स्वाहा ॥१॥

यत्सारभूतं प्रकृतिपुरुषयोर्बलभूतं यद्वा जगतः सकलं ''षोडशकले वै पुरुषः'' इति श्रुतेः । सकलासु हितां धरित्रीं धारणात् त्रायत इति धरित्रीं प्रकृतेः मोद्रमायेणानुभूतं लीलाप्रायेण परमात्मनानुभूतं अनुविधं अनुप्रविद्धं ''तदेवानुपाविशत्'' इति श्रुतेः ॥ सूक्ष्मः,

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ इति श्रुतेः ॥
"अणोरणीयान " इति जीवापेक्षया सूक्ष्मः सुरेशः ब्रह्मादीनामीशः
सकलं चिदचिदात्मकं जगत् विभित्ते । "व्यष्टभाद्रोदसी विष्णुरेते । दाधार
पृथिवीमभितो मयूर्यः " इति तस्मे सुरेशाय पृवीक्तसुरेशः सकलं
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सुपुण्यं सुतरां पुण्यं यत्सुरेशाय तस्मे ॥ १ ॥

फलो वा एष लोकानामजरा महात्मा विश्वं यः पाति विमलोऽमलाख्यस्तस्मै ककुत्त्रे वरदस्य पुष्ट्ये स्वाहा ॥ २ ॥

एप परमात्मा लोकानां भूरादीनां तत्तलोकानां देवमनुष्यादीनां च फल: फलभूतः फलपदश्च। "फलमत उपपत्तेः" इति । अजरः जरारहितः । अश्चनायापिपासे च शोकमोही जरामृती । एताः षडूर्मयः प्रोक्ताः षडूर्मिरहितश्च सः ॥

महात्मा महान् विश्वं जगत् यः पाति रक्षति विमलः अपहतपाप्म-त्वादिगुणः अमलाख्यः,

> वसा शुक्रमसङ्मज्जा मुत्रं विट्कर्णविण्णखाः । श्लेष्माश्रुदृषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥

इति द्वादशमलरहितः ककुत्त्रे श्रेष्ठाय पोषणादिशक्तिसहितायं तस्मै वरदस्य वरपदानसमर्थस्य पुष्टचै,

भृगु:--

श्रीः सा सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च । कीर्तिः शान्तिस्तथा पुष्टिस्तुष्टिरित्यष्टशक्तयः ॥ इति ॥ पोषणस्त्रपायै शक्तयै परमात्मने ॥ २ ॥

धूर्नो बहन्तां रतये रमन्तां प्रभूतिमन्तस्समयं सुषुन्ना अं राजिमन्तं सकलस्य गुप्त्ये स्वाहा ॥ ३ ॥

नः भृः भारं भरत्र्यासं वहन्तां "वह प्रापणे " इति । परमात्मा स्वयमेव प्रापयताम् ।

स्वामी स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् । स्वदत्तस्विधया सार्धं स्वस्मिन्यस्यति मां स्वयम् ॥

इति सर्वदानुसन्धाय संयोज्य धूर्वहन्तां रतये तत्तद्विषयानुभवार्थे तत्तत्त्थाने रमन्तां इन्द्रियाणां प्रभूतिं परमपुरुषानुभविश्वर्यरूपां अन्तस्समयं सुपुन्ना अन्तस्समयं अं राजिमन्तं अकाराक्षरपूर्वकमन्त्रं प्रतिपादयन्तं सकलस्य कला तु षोडशो भागः सर्वेन्द्रियोपरतस्य सुपुन्नानाड्यां गमनं च भरन्यासं श्रुतवतः प्रयच्छति तस्मै ॥ ३ ॥

विश्वं विभित्तं प्रसुरोऽभूदन्तं संराजवन्तं सकलं परूढं स नो वितत्य प्रहिणोतु पत्त्रे स्वाहा ॥ ४ ॥

विश्वं समस्तं प्रसुरोऽभूदन्तं तानत्रयादिना प्रकर्षेण सुरोऽभूदन्तं संराजवन्तं समूहवन्तं स्नकलं कलासहितं प्ररूढं देवमनुष्याद्यनुकारेण समस्तं वितत्य विस्तार्य विभित्तं स देवः नः श्रेयः प्रहिणोतु प्रयच्छतु पत्त्रे पदात् त्रायत इति तस्मै ॥ ४ ॥

सो वा स्वरूप: समद्दक् समग्रो विधुदं तुदन् यो विद्धत्यदं वा वियति प्रकाशं बृहते गुहेन तं विम्बवन्तं समदं समग्रं स्वाहा ॥ ५ ॥

यः परमात्मा देवासुरेषु समुद्रमथनवेळायां समहक् समग्रः विश्चितुं साव-धानः विशुदं विशुश्चन्द्रः तं दमयतीति । दम इतीन्द्रियनिग्रहशक्तिसम्भवात् विश्वदो राहुः तं समदं मदसहितं समग्रं सावधानं विम्ववन्तं राहुममृतपान-वेळायां तुदन् हिंसां कुर्वन् तस्य राहोः वियति आकाशे पदं स्थानं गुहेन शहरूपेण वृहते पूर्वचन्द्राय विद्धत् कल्पितवान् स एव स्वरूपः तस्मै ॥५॥

मूर्भुवं वा भुवो वा सुवो वा किञ्चित्स्वनन्तं सुषुषे समस्तं सर्वस्य दातारमजरं जरित्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

भूभुवं भूमेरिप भूमिं उत्तरकुरुद्देशादिकं भ्रुवो वा सुत्रो वा अन्तरिक्षं स्वर्गे वा वाशव्दो लोकान्तरपरः । किश्चित्स्वनन्तं अल्पशब्द-वाच्यत्वेन स्वनन्तं शब्दयन्तं सुषुवे सृष्टवान् समस्तमि सर्वस्य दातारं नार्द्यर्गीफलप्रदं अजरं जरारिहतम् ।

न जायते म्रियते वा विपश्चिक्तायं कुतश्चित्र बभूव कश्चित् । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरेः॥इति॥ जरित्रे पकृतिद्वारेण जरित्रे । वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ इति ॥
तस्मै ॥ ६ ॥

दाक्षायण्यां प्रसृतं समस्तं सङ्कोचियत्वा सकलं वितानं संवासयन् यः सकलं वरिष्ठं तस्मै प्रजेशाय धुरन्धराय स्वाहा॥७॥

दाक्षायण्यदितिः तस्यां तं प्रसृतं उद्भूतं समरतं दैतेयजातं सङ्कोच-यित्वा अल्पाविशष्टं कृत्वा सकलं कलासिहतं वितानं लोकस्याच्छादन-भूतदेवजातं संवासयन् विष्ठं श्रेष्ठं मनुष्याणां रक्षणार्थे स्थापितवान् "त एनं तृप्त आयुषा तेजसा वर्चसा श्रिया यशसा ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन च तर्पयन्ति " इत्यादि प्रजेशाय प्रजानामीश्वराय धुरंघराय सर्वभारवहाय तुभ्यम् ॥ ७ ॥

आशास्समस्ताः प्रतरत्रजु तमन्तस्तास्ता वसेद्घौः कमला समस्ताः सा मे गृहे समधत्त पुष्टि स्वाहा ॥ ८ ॥

स्वभक्तानां स्वाराधकानां आशाः कामान् प्रतरन् प्रयच्छन् अनु साकल्येन तं अन्तः हृदये परमात्मा तिष्ठति । या कम्ला लक्ष्मीः सापि तास्ताः प्रविश्य वसेत् ।

श्रीविष्णुपुराणे—

त्वं माता सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विप्णुना चाम्ब जगद्वचाप्तं चराचरम् ॥ इति ॥
सर्वत्र व्याप्तिरुच्यते कथं व्याप्तिरिति चेत् यथा परमात्मना
जगद्वचाप्तं तथेति भावः सर्वात्मना सा लक्ष्मीः सैषा लक्ष्मीः मे गृहे पुष्टि,

त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यैः सकलेर्गुणैः । धनैश्वर्येश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि । समधत्त अन्तर्यामिणः परमात्मनो लक्ष्म्याश्चायं मन्तः ॥ ८॥ यो जङ्गमानां सकलं विभर्षि सर्वे वियद्विचरते शक्ष्यन् तन्नोकूले वान्तिकेऽजस्रं स्वाहा ॥ ९॥

यः परमात्मा जङ्गधानां देवमनुप्यादीनां सकलं योगक्षेमादिक विभिष वियद्विपरते आकाशे यिकि चित् विचरते तत् सर्व त्वमेव विभिष् शक्यन् शक्तः तन्नोकूले वा तत्सर्व नौरिव जलधो नौरिव अन्तिके समीपे अजस्तं पृष्टि विभिष तुभ्यम् ॥ ९ ॥

यो वा दशानां प्रस्ताः समस्तास्तां तां दधानास्समयात्स-बीजाः शब्दादिरीत्ये स्ववलं वलाय स्वाहा ॥ १० ॥

वीजाङ्कुरपरोह। दिकं परमात्मशक्त्येत्याह—यो वा दशानां इति॥ यः परमात्मा दशानां देवमनुष्यमृगपिक्षसरीस्पिकिमिश्वेतवृक्षजगुल्मलतादीनां पस्ताः पस्ताः नामरूपकृत्यविभागादिकं तां तां दथानाः समयात् समये सुवीजाः शब्द। दिरीत्ये परमात्मशक्त्या प्ररोहादि-सामर्थ्ययुक्ता भवन्ति ये स्ववस्रं तत्सर्वे परमात्मन एव बस्रं तस्मै बस्राय बस्रस्पाय॥ १०॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः

नवमोऽनुवाकः

चत्वारो दोप: महरन्ति यस्य सर्वस्य गोप्त्रे सुरसाय धाम्ने सोयस्य पुण्यं रियमत्प्रदृद्धचे स्वाहा ॥ १ ॥ यस्य सवितृमण्डलवर्तिनः परमात्मनः चत्वारः सुपुन्नादिका दोपः बाहवः पुण्यमाहुति प्रहरन्ति ।

अमौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥ इति ॥

सर्वस्य गोप्त्रे—

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः । इति सर्वौषधीनां पोषणद्वारा मनुष्यादीनां गोष्तृत्वं सुरसाय सुतरां रसरूपाय धाम्ने अमृतमयतेजःस्वरूपिणे प्रहरन्ति प्रकर्षेण हरन्ति रियमत्प्रदृद्धचे—

> दिनेदिने कलावृद्धिः पौर्णमास्यां तु पूर्णता ॥ इति ॥ श्रीवैखानसस्त्रे—-

"यथा हवास्य सुषुम्ना जेनातिप्यति प्राणावति रेतोधा इत्येताहुर्ति गृहीत्वा रक्ष्मयश्चतस्रः प्रश्नाः सन्दर्धीरन् सह वा ग्रुद्धा अमृतवह चिनुहि दिव्यालोकपावनीत्येताभिश्चन्द्रमसमाप्याययति मूलगामीव वा यावन्नमृतोद्गारिसुरप्रियेत्येताभिरमृतेन तां तर्पयति ।" किंच सर्वस्य गोप्तृत्व-श्रवणात् ॥

ऋषय ऊचु:---

कौतूहरुसमुत्पन्ना देवता ऋषिभिः सह । संशयं परिपृच्छिन्ति व्यासं धर्मार्थकोविदम् ॥ कथं वा क्षीयते सोमः क्षीणो वा वर्धते कथम् । इमं प्रश्नं महामाग ब्रृहि सर्वमशेषतः ॥

व्यासः--

शृण्वन्तु देवताः सर्वे यदर्थमिह आगताः । तदहं संप्रवक्ष्यामि सोमस्य गतिमुत्तमाम ॥

अमी हुतं च दत्तं च सर्वं सोमगतं भवेत् । तत्र सोमः समुत्पन्नः शीतांशुर्हिमलक्षणः ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि विस्तीर्णे योजनानि तत् । प्रमाणं तत्र विज्ञेयं कलाः पश्चदशैव हि ॥ षोडशी तु कलाप्यत्र त्वित्येकोऽपि विधेर्वले । पपुः सोमवपुर्देवाः पर्यायणानुपूर्वशः ॥ प्रथमां पिवते विहर्द्वितीयां पिवते रविः । विश्वेदेवास्तृतीयां तु चतुर्थी सलिलाधिपः॥ पश्चमीं तु वषट्कारः पष्टीं पिवति वासवः। सप्तमीमृषयो दिव्या अष्टमीमज एकपात्।। नवर्मी कृष्णंपक्षस्य यमः प्राभाति वै कलाम् । दशमीं पिबते वायुः पिबत्येकादशीमुमा ॥ द्वादर्शी पितरः सर्वे समं प्राप्नोति भागशः । त्रयोदर्शी धनाध्यक्षः कुबेरः पिबते कलाम् ॥ चतुर्दर्शी पशुपतिः पिबत्यन्त्यां प्रजापतिः । एवं पीतः कलाशेषश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ कला षोडांशिका या तु इयपः प्रविशते सदा । अमायां तु सदा सोम ओषधीः प्रतिपद्यते ॥ तमोषधिगतं गावः पिबन्त्यम्बुगतं च यत्। तत्क्षीरममृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातिभिः॥ हुतमग्निषु यज्ञेषु पुनराप्यायते शशी । दिनेदिने कलावृद्धिः पौर्णमास्यां तु पूर्णिमा ॥ " नवो नवो भवति जायमानोऽहां केतुरुवसामेत्यम्रे " ॥ इत्यादि ॥

त्रिमुह्र्त वसेद्कें त्रिमुह्र्त जले वसेत्। त्रिमुह्र्ते वसेद्गोषु त्रिमुह्र्ते वनस्पतौ ॥ वनस्पतिगते सोमे स्त्रियं वा योऽधिगच्छति । स्वर्गस्थाः पितरस्तस्माच्च्यवन्ते नात्र संशयः॥ वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् । घोरायां भ्रणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ वनस्पतिगते सोमे यस्तु भुङ्क्ते परीदनम्। तस्य मासगतं पुण्यं दातारमधिगच्छति ॥ वनस्पतिगते सोमे नातिहेयांस्तु वाहयेत्। नाश्नन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च ॥ वनस्पतिगते सोमे मन्थानं यस्तु कारयेत् । गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरकालमुपस्थिताः ॥ वनस्पतिगते सोमे क्षियं वा योऽधिगच्छति । स्वर्गस्थाः पितरस्तस्माच्च्यवन्ते नात्र संशयः ॥ सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु गर्भिणीं श्रावयेत्स्रियम् । ऋषभं जनयेत्पुत्रं सर्वज्ञं वेदपारगम् ॥ सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु श्राद्धकाले सदा पठेत्। तदन्नममृतं भृत्वा पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ सोमोत्पत्तिमिमां यस्तु सर्वकाले सदा पठेत्। सर्व मानव आमोति सोमलोकं स गच्छति ॥ इति ॥ एवंविधाकारचन्द्ररूपेण गोप्त्रे तुंभ्यम् ॥ १ ॥

वक्षो वसत्यस्य वरा त्रिष्ठं वाकं द्धाना वर्ध्वे समस्तं तस्मै वरिष्ठाय वर्ष्रदृद्ध्ये स्वाहा ॥ २ ॥ अस्य परमात्मनो वक्षिस वाकं दथाना वरिष्ठं श्रेष्ठं वक्ष: प्राप्य या वसित वरां वाकं दथाना उत्कृष्टरूपां वाकं वाचं दथाना पुरुपाकाररूपां वाचं दथाना श्रावयन्ती वसित वहुधे समस्तं जङ्गमाजङ्गमादिकं प्रति वृद्धिं गता तस्य वरिष्ठाय तस्मै ।। २ ।।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः तमऋतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशं स्वाहा ॥ ३ ॥

अणोरणीयान्यहतः आकाशादिभूपर्वतादिभ्यो महीयानात्मा अन्तः प्रविश्य नियन्ता ह्यात्मा अस्य जीवस्य गुहायां हृदयगुहायां निहितः एवं-भूतं तं अकतुं अकर्माणं पश्यित वीतशोकः धातुः प्रसादात् परमात्मनः प्रसादादः पश्यित वीतशोकः महिमानं महिमावन्तं ईशं इत्यर्थः॥ धातुः प्रसादादित्यनेन—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्येष आत्मा विवृणुते तन्त्रं स्वाम् ॥

इति निर्हेतुकलं तस्य प्रसादात् ॥ ३ ॥

विष्णुविरिष्ठो वरदानमुख्यो यो बिश्वर्धीन् ध्यायनकुर्वन् विश्वं हीषद्भिष्णवे याः प्रभविष्णवे ता अमितंभरत्रे स्वाहा ॥४॥

विष्णु: व्याप्तः परमात्मा विरष्टः श्रेष्ठः वरदानमुख्यः यः परशु-रामरूपी विश्वर्षीन् जमदमीन् । पूजायां बहुवचनम् । ध्यायन् अकुर्वन् विश्वं यथायोग्यत्वेन क्षत्रियवंशजातं ईषत्कार्यं हि विष्णवे याः शक्तयः परमेष्ठी पुमान्विश्वो निवृत्तः सर्व एव च । पञ्चेताः शक्तयः प्रोक्ताः परस्य परमात्मनः ॥ आचार्या वैष्णवी सूक्ष्मा लक्ष्मीः पुष्टिर्निरञ्जना । जीवनी मोहिनी माया नवैता विष्णुशक्तयः ॥ इति ॥

ता विष्णुशक्तयः प्रभविष्णवे रामभद्राय अपितंभरत्रे मितरहित-धनुर्भरणादमितंभरः तेन जनकप्रतिज्ञाप्रातिभरत्वधनुः स्वशक्तिभिस्सहस्व-शोऽधाद्यः अत्र विश्विषिशब्दप्रयोगात् अत्यन्तश्रेष्ठत्वं वा । श्रुतिः—" विश्वा-मित्रजमदग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेता स एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्तेन वै स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमगृङ्क्त " इत्यादि ॥ ४ ॥

अञ्जोऽजुषन्तः पपतत्पतन्तः पूंपूंपुषन्तः पुनयः पवाळः कंकं जिनत्रे समतेजसं ते स्वाहा ॥ ५ ॥

अञ्जः ब्रह्मा । भारते—

निशि सुस्वाय भगवान् क्षपान्ते प्रतिबुध्य यः । पश्चाद्बुध्वा ससर्जापस्तासु वीर्यमवास्त्रत् ॥ तदण्डमभवद्दैवं सहस्रांग्रुसमप्रभम् । अहं कृत्वा ततस्तस्मिन् ससर्ज प्रभुरीश्वरः ॥ हिरण्यगर्भ विश्वात्मा ब्रह्माणं जलजं मुनिम् । भूतभव्यमविष्यस्य कर्तारमनघं विभुम् ॥ इति ॥

अजुषन्तः सृष्टिकर्तृत्वाभिमानेन त्वत्पादसेवामकुर्वन्तः । अञ्ज इति जातावेकवचनम् । यद्वा अण्डबाहुळच्यत्वाभिप्रायेण प्रपतत्पतन्तः पूंपूंपुषन्तः शरीरं पोषयन्तः पुनयः प्रवाळः प्रकर्षेण बालं ववयोरभेदः कंकं जिनित्रे समतेजसं ते एवं रजोगुणदोषदुष्टं ब्रह्माणं ते त्वं समतेजसं जिनत्रे "नारायणाद्वह्मा जायते" इति श्रुतयः तुभ्यम् ॥ ५ ॥

मामात्मगुप्तां वहते स्वभूत्ये तां राजिमन्तां धूर्घूरयन्तीं धूरिस भ्रुवाय स्वाहा ॥ ६ ॥

मां लक्ष्मी आत्मगुप्तां आत्मभूतेन स्वेनैव गुप्तां भूत्ये लोकानामैश्वर्याय वहते वक्षित वहते स्म भूतार्थस्चनत्वात् प्रळयकालेऽपीत्यर्थः । तां राजिमन्तां लावण्यसंपत्सारभूतां धूर्भूरयन्तीं समग्रैश्वर्यगतिभृतां मां वहत इति पूर्वत्रान्वयः धूरिस भारभृतोऽसि ध्रुवाय स्थिराय तुभ्यम् ॥ ६ ॥

यं चिन्तयन्तो निगमान्तरूपं यं विश्वरूपं परमात्मपुण्यं तं विन्दमानां सकलं व्रजन्तीं तं दैवमुख्यं सुरतं भवाय स्वाहा ॥ ७ ॥

यं निगमान्तरूपं ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' इत्यादिवेदान्तप्रति-पाद्यरूपम् । यद्वा यं विश्वरूपं—

यस्यास्यमिमचौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः।

इत्यादिविश्वरूपम् । यद्वा परत्वव्यूह्विधावन्तर्याम्यर्चावतारादिरूपं वा चिन्तयन्तः ध्यायन्तः सकलं स्वकलासहितत्वेन ।

लक्ष्मीतन्त्रे---

महालक्ष्मीः समाख्याता सार्इं सर्वाङ्गसुन्दरी ।
महाश्रीः सा महालक्ष्मीश्रण्डाचण्डी च चण्डिका ॥
मद्रकाळी तथा भेदा काळी दुर्गा महेश्वरी ।
त्रिगुणा भगवत्पन्नी तथा भगवती परा ॥
एताः संज्ञास्तथान्याश्च तत्र मे बहुधा स्पृताः ।
विकारयोगादन्याश्च तास्ता वक्ष्यान्यशेषतः ॥
रक्षयामि जगत्सर्वे पुण्यापुण्ये कृताकृते ।
महनीया च सर्वत्र महालक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥

महाब्धिश्रयणीयत्वान्महाश्रीरिति गद्यते । भण्डस्य दियता भण्डी भण्डत्वाद्भण्डिका मता ॥ कल्याणरूपा भद्रास्मि काळी भद्रा प्रकीर्तिता । कुरात्सतां स्वरूपत्वादि काळी प्रकीर्तिता ॥ सुहृदां च द्विषां चैव युगपत्सदसद्विभोः । अद्रकाली समाख्याता मायाश्चर्यगुणात्मिका ॥ माया योग इति ज्ञेया यज्ज्ञानाज्ञानयोर्नृणाम् । पूर्णषाड्गुण्यरूपत्वात्स्मृता चाऽहं परात्परा ॥ शासनाच्छक्तिरूपाहं राज्यहं रञ्जनात्सताम् । सदा शान्तविकारत्वाच्छान्ताहं परिकीर्तिता ॥ मत्तः प्रक्रमते विश्वं प्रकृतिः सास्मि कीर्तिता । श्रयन्ति ह्ययना चास्मि शृणामि दुरितं सताम् ॥ शृणोिम करुणां वाचं शृणोिम च गुणैर्जगत्। शरणं सर्वभूतानां रमेऽहं सर्वकर्मणाम् ॥ ईडिता च सदा देवै: शरीरं चास्मि वैष्णवम । एतान्मयि गुणान् दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ गुणयोगविधानज्ञाः श्रियं मां संप्रचक्षते । साऽहमेवंविधा नित्या सर्वाकारा सनातना ॥ इति ॥

व्रजन्तीं सर्वस्यापि गतिभृतं तं परमात्मानं विनद्मानां प्राप्तवर्ती च चिन्तयन्तो ये तिष्ठन्ति तेषां भोग्यरूपाय " सोऽञ्जुते सर्वान कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति" इति श्रुतेः ॥ ७ ॥

पुण्यां च पुण्यः पुरुषे पुरये तां राजिमन्तां निशि चोदि-तानां निद्धाति पुष्ट्ये इरन् पराय स्वाहा ।। ८ ।। पुण्यः पोषकः परमात्मा यद्वा परमपावनः पुण्यां पोषिकां पुरुषं पुरुषशब्दः साधारणः स्वकृपाकटाक्षविषयभृते पुरुषे पुरुषे शरीरपूर्वभागे पादगुद्धनाभिहृदयकण्ठमुखेषु पुष्ट्ये ऐश्वर्यानुभवार्थं लक्ष्मीं निद्धाति स्थापयते निश्चि चोदितानां रात्रो चकारात् सन्ध्याकाले च उदिताः जाताः सुरदानवादयः ''दिवा देवानस्जत नक्तमसुरान् '' इति श्रुतेः । तां राजिं दीसिरूपां लक्ष्मीं हरन् तेषामैश्वर्यं हरन् अन्तां शिरिस स्थितां निद्धाति अयमेवार्थों मार्कण्डेयपुराणेऽवगम्यते—

सप्तस्थानान्यतिकम्य येषां लक्ष्मीः शिरःस्थिता । आयुरारोग्यमैश्वर्यं तेषां सम्यक्प्रहीयते ॥ एवंद्रपेण मर्यादास्थापकाय तुभ्यम् ॥ ८ ॥

स नो भूतो यो वाऽमृतात्मा सुपुष्टिमस्मित्पितरं पवित्रं स नोऽस्तु भूत्ये कमलं पराय स्वाहा ॥ ९ ॥

स परमात्मा नो भूतः न जातः "अमानोनाः प्रतिषेषे " इति । श्वेताश्वतरे—

न तस्य कश्चित् पितरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ इत्यादयः ॥

अमृतात्मा—

षड्भावषट्कोशषडूर्मिहीनं शुद्धात् परं निर्मलमप्रमेयम् । ब्रह्माद्यमेकं सदनं समग्रं भजन्ति ये तत्र भवन्ति धन्याः ॥इति॥ अस्ति जायते परिणमते वर्धते अपक्षीयते विनश्यतीति षड्भावविकाराः अस्थिशुक्कमज्जाः पितृतः, त्वङ्मांसरुधिराणीति मातृतः, इति षट्कोशाः । अशनायापिपासे च शोकमोही जरामृती ।
एताः षड्रमेयः प्रोक्ता देहिनां तु विशेषतः ॥ इति ॥
अस्माकं सुपुष्टिं सुतरां पुष्टिं ऐहिकं अस्मित्यितरं पवित्रं पितृशब्देन पितृवंशजानां मातृवंशजानां सर्वेषासुपलक्षणम् ।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः । वैष्णवो नः कुले जातः स पुनस्तारयिष्यति ॥

स नोऽस्तु भूत्ये स परमात्मा नः भूत्ये भगवत्पाप्तिरूपेश्वर्याय अस्तु क्रमलम् ॥ ९ ॥

स एव नित्यं सकलाः समूर्तयः सुरतास्त्वनन्तास्ते जयन्तो वियति क्षयाणां तत्तत्सवित्रे हरते पराय स्वाहा ॥१०॥

नित्यं वियति आकाशे यद्वा अनन्ता इत्यनेन आकाशास्ता उच्यन्ते सुरताः रतिसहिताः सकलाः नृत्यगीतवाद्यादिकलासहिताः समूर्त्यः मूर्तिमन्तः जयन्तः जयशीलास्सन्तः ये तिष्ठन्ति ते सर्वे स एव । तु शब्दो विशेषद्योतकः । सद्वारकत्येन यद्वा अन्तर्यामित्येन—

ज्योतींषि विष्णुर्भवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च । नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वे यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥ वियति क्षयाणां आकाशे स्थानं प्राप्तानां ''देवगृहा वै नक्षत्राणि"

इति श्रुतेः । तत्तत्सिवित्रे तत्तत्कर्मफलानुभवस्थानजनकाय हरते— ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् । ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥

> इति भगवद्वचनात् । पराय---ब्रह्माण्डे---

ब्रह्मा शंभुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतऋतुः । एवमाद्यास्तथा चान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा ॥ जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा । वितेजसश्च ते सर्वे पञ्चत्वमुपयान्ति च ॥ इति ॥ श्रीविष्णुपुराणे—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ इति ॥ जगत्संहारकत्वेन रुद्ररूपक्षयशब्देन स्थानम् । निरुक्ते—

क्रमादिह गृहादीनां नामानि विविदुर्बुधाः। प्रासादमास्पदं सद्म गृहं धाम सनातनम्॥ विमानं निलयं धिष्ण्यं गेहं च वसतिस्तथा। हर्म्यं निकेतनं चैव सौधं वासः श्रयः क्षयम्। आलयो मन्दिरं चैव भवनावासवाचकाः॥ इति॥

इति श्रीवेङ्कटेशपादाञ्जसपर्यासुरतात्मना श्रीमत्कौशिकगोत्रेण गोविन्दाचार्यसूनुना वेदान्तदेशिकश्रीनिवासयञ्चना विरचितपारमात्मिकोपनिषद्वयाख्याने नवमानुवाकार्थविवरणं समाप्तम्

दशमोऽनुवाकः

या गौर्वरिष्ठा सह सोर्धरित्री वसुं वसुं वै वसुनीह भद्रा रेरीजयन्तो रजतं रजते स्वाहा ॥ १ ॥

या गौ: वरिष्ठा धरित्री विश्वंभरा वरिष्ठा या गौ: भूता वसुं ब्रीहियवादिकं वसुं द्रव्यादिकं वसुनीह भूलोके तत्तज्जात्यानुसारेण दुग्ध्वा जङ्गमाजङ्गमादिकं च परमात्मना सह सोर्भद्रा शोमनानां कारणभूता विभित्ते रेरीजयन्तो दीप्तिमन्तो लोकस्थान् रजतं रजोयुक्तं यिकिचिद्व-स्तुजातं रजते दीप्ति कुर्वते तुभ्यम् ॥ १ ॥

वायोरन्तरात्मा वहति समस्तः सपुण्यदेवेति स सूरियुक्तः श्चरिः सुराणां सुरसोऽप्यसुंदः समृह्य देवा वरदाय पित्रे श्चाहा ।। २ ।।

अयं मन्त्रः सुदर्शनपरः । वायोरन्तस्य सुदर्शनस्य वायोगीतिः अन्तरात्मा बुद्धिरूपः चलस्वरूपमत्यन्तमन्तरितानलम् ।

चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥ इति ॥

समस्त:—

विष्णोरपररूपत्वात्सर्व विष्णुवदाचरेत् ॥ इति ॥
सर्वस्वरूपी वहिति भगवता मनिस यिकिचिचिन्ततं तत्सर्व प्रापयति
स सुदर्शनः सूरिमुक्तः भगवता राक्षसवधादिकं प्रति मुक्तः तद्वधप्रयुक्तदोषाभावात् । सपुण्यदेवेति सर्वत्रापि प्रसिद्धः । सुराणां सूरिः पूज्यः सुरसः
हत्त्यादिदोषदुष्टस्य लोके त्याज्यताप्रतिपादनात् तहोषाभावात्सुरसः । यद्वा
रुद्रनिवासभूतत्वाद्वा असुंदः सुन्द दाहे [१] इति प्रतिसंहारकः । यद्वा
प्राणदः अनध्यायेष्वधीयानास्ते चक्रेण हताः प्रणष्टा इति चरणव्यूहैश्छन्दोगानां शिखाप्रहणमात्रेण प्राणदः समृद्य देवा य एवंरूपं
सुदर्शनं समृद्य सम्यक् धृत्वा देवाय वरदाय रुद्रस्य वरदायेत्यर्थः ।
पित्रे "नारायणादुद्रो जायते" इत्यादिश्रुतिभ्यः रुद्रस्य पित्रे रक्षकाय ॥

ननु जगत्संहारकस्य कथं सुदर्शने वास उपपद्यत इति चेत् उच्यते ।

वेक्कटगिरिमाहात्म्ये-

कथं सूर्यं परित्यज्य प्रभाऽन्यस्य भविष्यति । एवं श्रीकौस्तुमं चक्रं शार्क्तं शङ्कं तथैव च ॥ एवमादीनि वस्तूनि नित्यसिद्धानि शंकर । नैतेषां च परित्यागे नान्यस्तेषां व्यपाश्रयः ॥ अशक्यमिदमत्यर्थमित्याह प्रमथाधिपम् । स चाह चान्वेतु वक्ष्ये तथैवास्तु यथेप्सितम् ॥ तत्रैव—

अन्तरात्मा हि सर्वेषां स्तौति नारायणं प्रभुम् ।
तदशक्यं महच्चकं विष्णोरन्यस्य कस्यचित् ॥
शुद्धसत्त्वस्य तद्विष्णोः सर्वेशस्य मया वपुः ।
साक्षात्स्पृष्टो महान् भीतस्तमोगुणसमाश्रयः ॥
यस्तत्त्वं च मया विष्णो दिव्यमङ्गलविश्रह् ।
त्वामेव तदहं नित्यं विष्णोर्नित्यानपायिनम् ॥
अनुप्रविश्य त्वदेहे विसिष्यामि सुदर्शन ।
ननु यद्वैष्णवं तेजः शाणितं विश्वकर्मणा ॥
जाज्वल्यमानमपतत्तद्भूमौ मुनिसत्तम ।
तेन चक्रं महाविष्णोः शिविकामप्यकल्पयत् ॥
दैत्यः पञ्चजनो नाम प्रभुर्जलभरस्तथा ।
तस्यास्थिप्रभवं शङ्खमादाय पुरुषोत्तमः ॥ इति ॥
अनुशासनिके उमा—

बह्नामायुघानां तु पिनाकं घर्तुमिच्छिस । किमर्थं देवदेवेश तन्मे शंसितुमर्हिस ॥ महेश्वरः—

शस्त्रमहं ते वक्ष्यामि शृणु धर्मे शुचिस्मिते । युगान्तरे महादेवि कण्वनामा महामुनिः ॥ सेहे तीवां तपश्चर्यो कर्तुमेवोमयोः प्रियम् । महाविष्णोश्च या माऽस्ति तां मायां प्रकृतिं विदुः ॥ लोकयात्रा विना तां तु नैति श्रीः सा स्मृता बुधैः । तस्याः श्रियाः स्त्रियोऽभिन्नाः पूर्षाश्च पुरुषोत्तमात् ॥ तस्मात्तया श्रिया साधै पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । संसारचक्रयत्नाभ्यां निजं ते स्यात्सुदर्शनम् ॥ हंसाख्यं चेतनारूपं सर्वपाणिहृदि स्थितम् । तच्छङ्करूपो देवश्च पाञ्चजन्याख्य उच्यते ॥ पञ्चभूतात्मको ह्यस्य सर्ववेदमयोऽक्षरः । छन्दोमयाभ्यां पक्षाभ्यां युक्तः पक्षिगणेश्वरः ॥ गरुडो वाहनं चापि विष्णोर्देवस्य कीर्तितः । पृथिवीवायुसंयोगश्चापः शार्क्न हरेः स्पृतः ॥ तेजो वायुमयो ह्यस्य नाम्ना संशरणाच्छरः । विद्याविद्याशर्रेयुक्ते अक्षये ते महेषुधी ॥ लोकालोकाचलः प्रोक्तो विद्योताख्यं तु खेटकम् । कृतान्तो नन्दकः खड्गं सर्वप्राणिहृदि स्थितम् ॥ या दण्डनीतिः सा ख्याता गदा कौमोदकी हरेः। सर्वार्थेषु जयो ह्यस्य स त्वजागरता स्थिता ॥ सर्वबन्धुषु यद्घद्धं प्रेमपाशं परस्परम् । द्दं भ्रातृसमाख्यं तत्त्वाशुसर्वार्थसंमतम् ॥ सर्वप्राणिषु या शक्तिः शक्तिर्विद्युन्निभा मता । मर्यादा यदघोलोके भेरी सा तु महारवा ॥

संसारभित्तियों देहो लीलाख्यः स हरेर्द्विजाः । यन्मनः शीघ्रगं तस्य स रथः कामगो यतः ॥ यो वायुर्वाति सोऽश्वस्तु पुण्डरीकपदाह्वयः। इत्येवं ब्रह्मणा चोक्तं तस्मादेवि श्रिया सह ॥ आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणोऽमलम् । विभर्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान् हरिः ॥ श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम् । प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ॥ भूतादिमिन्द्रियादींश्च द्विधा वै परमीश्वरः। बिमर्ति शङ्खरूपेण शार्ज्जरूपेण च स्थितम् ॥ चलस्वरूपमत्यन्तं जपेनान्तरितानिलम् । चकस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुःकरे स्थितम् ॥ पश्चरते तु या माता वैजयन्ती गदाभृतः । सा भूतहेतुसङ्घातभूता माता च वे द्विज ॥ यानीन्द्रियाण्यशेषेण बुद्धिकर्मात्मकानि वै । शराणि यान्यशेषेण तानि धत्ते जनार्दनः ॥ विभर्ति यचासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम् । विद्यामयं नु तज्ज्ञानमविद्याचर्मसंस्थितम् ॥ भूतानि च हृषीकेशो धत्ते सर्वेन्द्रियाणि च। विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम् ॥ अस्त्रभूषणसंस्थानस्वरूपं रूपवर्जितम् । बिभर्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे भगवान् हरिः ॥ सविकारं प्रधानं च पुमान् स्वं चाखिलं जगत्। बिभर्ति पुण्डरीकाक्षस्तदेवं परमेश्वरः ॥ इति ॥

एवं स्वतः सिद्धानामकृतकानां शङ्कादीनामन्येन धर्तुमशक्यत्वात् योगेन पाञ्चजन्यत्वादिशब्दवाच्यत्वाभावात् रूखा पाञ्चजन्यत्वादिक-सुपपन्नं ब्रह्मणा कल्पितं शार्क्कमिति नाम । एवमन्येषामप्राकृतानां पाञ्च-जन्यादिकं परमात्मन एव । अवतारादिष्वन्यत् अप्राकृतं वाचकवृत्तिप्रभृतिर्वा । कल्पितानि शङ्कादीनि ॥ २ ॥

यस्योपरिष्टाद्धितिष्ठदात्मा सर्वोपरिष्टात् परमात्मा ग्रुक्तं दं विरजं नित्यमनु संपराय स्वाहा ॥ ३ ॥

यस्य बद्धस्य उपरिष्ठात् बद्धापेक्षया मुक्तपरमसर्वोपरिष्ठादधि-तिष्ठदात्मा बद्धमुक्तनित्यापेक्षया परमात्मा तं विरजं बद्धापेक्षया मुक्तं विरजं अपहतपाप्मत्वादिगुणविशिष्टं मुक्तापेक्षया नित्यं अनु साकल्येन संपराय उत्कृष्टाय यद्वा प्रकृत्यपेक्षया बद्धायेत्यादि ॥ ३ ॥

तमस्सर्वभूतमधुनाध्वरेण तं सत्त्वरूपमनुप्रविस्य संक्रेशयन् सृष्टिनिमित्ताय तस्मै परब्रह्मणे परंज्योतिषे स्वाहा ॥ ४ ॥

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्। नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्। अम्भः किमासीद्भहनं गभीरम्। न मृत्यु-रमृतं तर्हि न। रात्रिया अह आसीत् प्रकेतः। आनीदवातः स्वधया तदेकम्। तस्माद्धान्यं न परः किंच नास। तम आसीत् तमसा गूढमग्रे प्रकेतम्" इति। जाबालोपनिषदि— "ओं तदाहुः। किं तदासीत्। तस्मे स होवाच। न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात्तमः स जायते तमसो भूतादिराका-शमाकाशाद्धायुः वायोरिमः अग्नेरापः अद्भराः पृथिवी तदण्डं समभवत्। तद्धत्संवत्सरमात्रमुपित्वा द्विधाऽकरोत्। अधस्तात् भूमिरुपरिष्टादाकाशं मध्ये पुरुषो दिव्यः। सहस्रशीर्षा पुरुषः। सहस्राक्षः सहस्रपात् सहस्रबाहुरिति

सर्व तमोभूतं सृष्टेः प्रागा मनोस्तु सत्त्वरूपं सहस्रशीर्षेत्यादिरूपं प्रजासृष्टिनिमित्ताय सृष्टचर्थम् ।

श्रीविष्णुपुराणे--

प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्य स्वेच्छ्या हरिः। क्षोभयामास संप्राप्ते सर्गकाले व्ययः स्वयम्॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव विध्यनादी उभावपि। मम योनिर्महद्भक्ष तस्मिन् गर्भे दधाम्यहम्। संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥

एवमुक्तप्रकारेण अनुप्रविक्य प्रकृतिपुरुषी शंक्रेश्यन् सृष्टिमकरोत्। कथमिति चेत् सहस्रवाहुरिति सोऽग्रे भूतानां मृत्युमसृजत् । त्र्यक्षं त्रिपादं स्वण्डपरशुमजीजनत् । तस्य ब्रह्माभिपेदे स ब्रह्माणमेव विवेश । स मानसात् सप्त पुत्रानस्जत् । ते ह विराजं सप्तमानसानस्जन् प्रजापतयः " ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् । बाह् राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः । पद्भचा शूद्रो अजायत । चन्द्रमा मनसो जातः । चक्षोः सूयो अजायत '', " श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च हृदयात् इदं जायते अपानान्निषादा यक्षराक्षसगन्धर्वा अप्सरोभ्यः पर्वतो लोमभ्यः ओषधिवनस्पतयो ललाटात् कोधजो रुद्रो जायते । तस्यैतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्यवेदो यजुर्वेदस्सामवेदोऽथर्वणवेदःशिक्षा कल्पो व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि व्याख्या-नान्युपव्याख्यानानि सर्वाणि च भूतानि हिरण्यज्योतिर्यस्मिन्नयमात्मा धीयन्ते भुवनानि विश्वा आत्मानं द्विधाऽकरोत । अर्धेन स्त्री अर्धेन पुरुषो देवो भूत्वा देवानस्जत् ऋषिभूत्वा ऋषीम् यक्षराक्षसगन्धर्वान् ग्राम्याना-रण्यांश्च पशूनसजत् । इतरा गा इतरोऽनडुह इतरा बडवा इतरोऽश्वतरान् इतरा गर्दभीः इतरो गर्दभान् इतरा विश्वंभरीरितरो विश्वंभरान् " इति एवं

सृष्टवान् । अयं परमात्मा क इत्याकाङ्क्षायां तस्मै पर्व्रह्मणे परंज्योतिष इति पुरुषनारायणपरंब्रह्मपरंतत्त्वपरंज्योतिःपरमात्मादिशब्दवाच्यो नारायण एवेति ज्ञापयितुं परब्रह्मणे परंज्योतिष इत्युक्तम् । परब्रह्मप्रहणात् सर्वमपि गृहीतं भवति ।

किञ्च-

तमिश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाम्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधेव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलिकया च ॥
इत्यादि । र्किच—" यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि ।
जगत्कारणं ब्रह्मेत्युक्तं जगत्कारणत्वात विष्ण्वादिमूर्तीनां मृलभूतानां षट्कोशषडुर्मिलेशाभावात् ।

न भूतसङ्घसंस्थानं देवस्य परमात्मनः । न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मोसमेदोऽस्थिसम्मिता । सर्वभूतमयं देहं त्रैलोक्ये सर्वजन्तुषु ॥

इत्यप्राकृतत्वात् "ऋतर सत्यं परं ब्रह्म" इत्यादिपरब्रह्मस्वरूप-प्रतिपादनात् पादादर्धात् त्रिपादात् देवेषु क्रमेणादिमूर्तिश्च मूर्त्या क्रमेण विष्णुं महाविष्णुं सदाविष्णुं व्यापिनारायण इति चतुर्मृर्तयो भवन्तीति मरीच्यादिभिः प्रतिपादितत्वात् "तमीश्वराणां परमं महेश्वरम् " इत्युक्तत्वाच । "ऋतमिम्नवी ऋतमसावादित्यम् ", "अग्निस्सर्वा देवताः", "असा-वादित्यो ब्रह्म" इति समस्तकल्याणगुणाभिप्रायेण ऋतं सत्यमित्युक्तं "पूर्णिल्वात् पुरुषः" इति पादनारायणादिषु पूर्णित्वाभावात्पूर्णित्वाद्वचापिनारायणस्य ।

परशब्देन च व्यापी नारायण इतीरितः । नारशब्देन जीवानां समुहः पोच्यते बुधैः ॥ तेषामयनभूतत्वाचारायण इहोच्यते । नरसंबिन्धनो नारा नरश्च पुरुषोत्तमः ॥ नाम्यत्यखिलविज्ञानं नाशयत्यखिलं तमः । नरिष्यति च सर्वत्र नरस्तस्मात्सनातनः ॥ नरसंबिन्धनः सर्वे चेतनाचेतनात्मकाः । नृगन्तव्यतया नारा भार्या पोष्यतया नराः ॥

तथा--

नियाम्यत्वेन सृज्यत्वप्रवेशंभरणैस्तथा । अयं ते निहितो नारात् व्यामोति क्रिययाऽखिलम् ॥ नाराश्चाप्ययनं तस्य तस्मै भावनिरूपणात् । नराणामयनं वासश्चेतनस्यायनं सदा । परमा च गतिस्तेषां नराणामात्मना स्थितिः ॥

व्यापिनारायणपरत्वाभिप्रायेण तस्मै परज्ञह्मणे इत्युक्तम् ॥ ४ ॥

जेनातिर्जेनातिषां जेनातिरोजो बलमाहरत्सत्त्वात्मकं सं-जेनातिरित्थं तस्मै सुक्ष्मसुक्ष्माय तेजसे स्वाहा ॥ ५ ॥

परब्रह्मभूतनारायणस्य माहात्स्यं प्रतिपादयित अत्यन्तदीपवत् सूर्यचन्द्राम्न्यादीनां जेनातिः दीप्तिः ओजः परबलाहरणसामर्थ्यमोजः जगत्सष्टचादिकं कुर्वतस्तस्य श्रीभहाविष्णोः बलं सत्त्वं सत्त्वात्मकं तदन्त-र्यामिणां संजेनातिः सम्यक् ज्योतिः इत्यं उक्तप्रकारेण तस्मै ॥ ५॥

सत्त्वं सत्त्वात्मकं वा रजो रजस आत्मकस्तमस्तमस आधार: साकृतं निरीश्वरमीश्वराय स्वाहा ॥ ६ ॥ अयमि मन्त्रः पूर्वोक्तपरमात्मपरः सन्तं सान्तिकं सन्तात्मकं तदन्तर्यामिणं रजो रजस आत्मकः तदन्तर्यामिणं तमः तमस आधारः साकृतं आकृतसहितं निरीश्वरम् ,

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव च तस्य लिक्कम् ।

स कारणं करणाधिपाधिपो

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ इति ॥
ईम्बराय सर्वेश्वरायेत्यर्थः ।

विष्रहों हविरादानं युगपत्कर्मसिनिधिः । प्रीतिः फलप्रदत्वं च देवतानां न विद्यते ॥ इति ॥

विश्रहादिपश्चकाभावात् चतुर्थ्यन्तः शब्दो देवता शब्दातिरिक्तदेवता-भावात् मन्त्रार्थवादानां तत्र तात्पर्याभावाच ईश्वरायेति कथमुच्यत इति चेत्—उच्यते; "यद्वै किंच मनुरवदत् तद्वेषजम्" इति श्रुतेः,

मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ॥ इति संवर्तस्मरणाच । प्रमाणत्वेनाभिहितायां मनुस्मृतौ— प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् । त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

त्

जः

त-

इति प्रत्यक्षादीनां त्रयाणां प्रामाण्यपितपादनात "महा इन्द्रो वजन् बाहुः", "वज्रहस्तः पुरन्दरः", "उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः" इत्यादिदेवतासद्भावप्रित्ण्यदनात् गारुडादिषु मन्त्रेषु मन्त्रवर्णानां स्वार्थे तात्पर्यदर्शनात विषहरणादिषु दृष्टत्वाच ईश्वरसद्भावोऽस्तीत्यवगन्तव्यः। स्मृतीनामपि वेदम्लत्वे त्रेधा निर्वाहः कार्य इति। नित्यानुमेयश्रुतिम्लत्वं प्रामाकराः । उत्सन्नशास्त्रास्त्रस्त्रस्त्रमापस्तन्नाद्याः । विप्रकीर्णशास्त्रास्त्रस्तिते । नित्यानुमेयश्रुतिम्लत्वे अक्षरानुपूर्व्यविशेषविशिष्टस्य नित्यानुमेयश्रुतिम्लत्व् । नाक्षरानुपूर्व्यम्लत्वं यद्युच्यते तर्हि घटपटादीनामपि नित्यानुमेयश्रुतिम्लत्वं स्यात् । आनुपूर्व्यविशेषविशिष्टस्येति चेदुः व्यायमाणानुपूर्व्यविशेषणविशिष्टत्व-मिति सिद्धान्तेऽनुमेयत्वं अज्येतेति । उत्सन्नशासा मूलमिति चेत् तेऽपि भिन्नभिन्नपाठाः प्रयोगादनुमीयन्त इति विक्षेपोत्सन्ना वा एकैवेति चेन्न सर्ववेदसाक्षात्कारवतो व्यासस्य एकस्यापि शिष्यस्याध्यापनसामार्थ्याभावेन तथा वक्तुमयुक्तम् । अवेदेवेति चेत् सः पदक्रमादिरूपेणाधीयमानत्वात् तथा वक्तुमयुक्तम् । किन्तु प्रकीर्णशास्त्रास्त्रस्व वक्तुं युक्तम् ॥

तदुक्तम्-

दुर्नोघा वैदिकाश्शब्दाः प्रकीर्णत्वाच ते खिलाः । तथैत एव स्पष्टार्थाः स्मृतितन्त्रे प्रतिष्ठिताः ॥ इति ॥ प्रसङ्गादेतत्सर्वमुपपादितम् ॥ ६ ॥

अनिर्भिण्णं यस्येद्षासीदुदकात्मकं यस्योदानोऽयनुयम्रच-मुचैरुरुगाय स्वाहा ॥ ७ ॥

यस्य परमात्मनः यदा प्रळयः तदा लोके अनिर्भिण्णं भेदरिहतं निरन्तरश्रुदकात्मकमासीत् । यस्य परमात्मनो दग्धुमिच्छा यदा यदा उदावः उत्कृष्टो दावः प्रळयाग्निः अयनुयं तथा असमृद्धिः उचं अत्यन्तं उचेरुरुगाय श्रुतिसमृतिषु सर्वत्र अत्यन्तं गायित इति उरुगः तस्मै ॥ ७॥

यस्येच्छा लोके वा प्रजायतिलोंके यस्मै वासि तस्मै वासीत् यद्वास्संजातं [?] यत्सर्वभीश्वमाशिषे स्वाहा ॥ ८ ॥ यस्य परमात्मनः इच्छा लोके प्रजानामायितः सृष्ट्यादिकं "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजाययेति" इत्यादिश्रुतेः । मनसैव जगत्सृष्टि-संहारौ करोति यः तस्यां पक्षक्षपणे कियान् विस्तर इति लोके

(मातृकायामेतावदेवोपलञ्धम्)

यज्ञोपवीतोपनिषत्

यज्ञोपवीती धृतचकधारी यो ब्रह्मविद्रुद्धविदां मनीषी हिरण्यमादाय सुदर्शनं कृत्वा विह्नसंयुक्तं स्त्री शुद्धो बाहुभ्यां धारयेत् । तस्माद्गभेण जायते । ब्राह्मणस्य शरीरं जायते । श्रीविष्णुं सर्वेश्वरं भजन्ति । नासादिकेशपर्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्ं तु धारयेत् । उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥ मृत्तिके हन मे पापं त्विय सर्वे प्रतिष्ठितम् ॥ तस्माद्विरेखं भवित तं देवकीपुत्रं समाश्रये । अग्निना वै होत्रा चकं पाञ्चजन्यं प्रतप्तं द्वयोर्भुजयोर्धारयेत् । आत्मकृतमाचरेत् । आचार्यस्य संमुखं प्रपद्येत् । तस्माद्वैकुण्ठं न पुनरागमनं सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्यं

इति यज्ञोपनीतोपनिषत् समाप्ता

गच्छति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

राधोपनिषत्

प्रथमः प्रपाटकः

ॐ अथ सुषुप्तौ रामः स्वबोधमाधायेव किं मे देवः कासौ कृष्णो योऽयं मम भ्रातेति तस्य का निष्ठा ब्रहीति। सा वै खुवाच। शृणु भूर्भुवस्स्वर्महर्जनस्तपस्सत्यं तलं वितलं सुतलं रसातलं तलातलं महातलं पातालं एवं पञ्चाशक्कोटियोजनं बहुलं स्वर्णाण्डं ब्रह्माण्डमिति अनन्तकोटिब्रह्माण्डानामुपरि कारणजलोपरि महाविष्णोर्नित्यं स्थानं वैकुण्ठः । स ह प्रच्छति । कथं शून्यमण्डले निरालम्बने वैकुण्ठ इति साऽनुयुक्ता । पद्मासनासीनः कृष्णध्यानपरायणः शेषदेवोऽस्ति । तस्यानन्त-रोमकूपेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि अनन्तकोटिकारणजलानि तस्य सप्तकोटि-परिसहस्रपरिमिताः फणाः तदुपरि वैकुण्ठो विष्णुलोक इति । रुद्रलोकः शिववैकुण्ठ इति । दशकोटियोजनविस्तीर्णो रुद्रलोकः । तदुपरि विष्णु-लोकः । सप्तकोटियोजनविस्तीर्णो विष्णुलोकः । तदुपरि सुदर्शनचक्रं त्रिकोटियोजनविस्तीर्णम् । तदुपरि कृष्णस्य स्थानं गोकुलाढचं माथुरमण्डलं महत्पदं सुधामयसमुद्रेणावेष्टितमिति । तत्राष्टदलकेसरमध्ये मणिपीठे सप्ता-वरणकमिति। स प्रच्छिति। किं रूपं किंस्थानं किं पद्मं किमन्तःकेसरः किमावरणम् । इत्युक्ते साऽनुयुक्ता । गोकुलाढचे माथुरमण्डले वृन्दावनमध्ये सहस्रदळपद्मे षोडशदलमध्ये अष्टदलकेसरे गोविन्दोऽपि स्यामपीताम्बरो द्विभुजो मयुरपिञ्छिशराः वेणुवेत्रहस्तो निर्गुणः सगुणो निराकारः साकारो निरीहः स चेष्टते विराजत इति । पार्श्वे राधिका चेति । तस्या अंशो लक्ष्मीदुर्गाविजयादिशक्तिरिति । पश्चिमे सम्मुखे ललिता । वायन्ये श्यामला । उत्तरस्मिन् श्रीमती । ऐशान्यां हरिप्रिया । पूर्वस्मिन् विशाला । अग्नेय्यां

श्रद्धा । याम्यां पद्मा । नैर्ऋत्यां भद्मा । षोडशदले अग्रे चन्द्रावती । तद्वामे चित्ररेखा । तत्पार्स्वे चित्रकरा । तत्पार्स्वे मदनसुन्दरी । तत्पार्स्वे श्रीमदा । तत्पार्स्वे शिशरेखा । तत्पार्स्वे कृष्णिप्रया । तत्पार्स्वे चृन्दा । तत्पार्स्वे मनोहरा । तत्पार्स्वे योगनन्दा । तत्पार्स्वे परानन्दा । तत्पार्स्वे परानन्दा । तत्पार्स्वे सत्यानन्दा । तत्पार्स्वे चन्द्रा । तत्पार्स्वे करुणाकुशला इति । एवं विविधा गोप्यः कृष्णसेवां कुर्वन्तीति । इति चेदवचनं भवति । इति चेदवचनं भवति । इति चेदवचनं भवति । मानसपूज्या जपेन ध्यानेन कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्रामोति । नान्येनेति । नान्येनेति । नान्येनेति ।

इत्याथर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां प्रथमः प्रपाठकः

द्वितीयः प्रपाठकः

ॐ साऽनुयुक्ता । तस्य बाह्येषु शतदलपद्मपत्रेषु योगपिठेषु रासकीडानुरक्ता गोप्यस्तिष्ठन्ति । एतच्चतुर्द्वारं लक्षसूर्यसमुज्ज्वलम् । तत्र द्रुमाकीर्णम् ।
तत्प्रथमावरणे पश्चिमे सम्मुखे स्वर्णमण्डपे देवकन्या । द्वितीये सुदामादि ।
तृतीये किङ्किण्यादि । चतुर्थे लवङ्कादि । पञ्चमे कल्पतरोर्म्ले उषा तत्सिहतोऽनिरुद्धोऽपि । षष्ठे देवाः । सप्तमे रक्तवर्णो विष्णुरिति द्वारपालाः । एतद्बाह्यं
राधाकुण्डम् । तत्र स्नात्वा राधाङ्गं भवति । ईश्वरस्य दर्शनयोग्यं भवति ।
यत्र स्नात्वा नारद ईश्वरस्य नित्यस्थलसामीप्ययोग्यो भवति । राधाकृष्णयोरेकमासनम् । एका बुद्धिः । एकं मनः । एकं ज्ञानम् । एक आत्मा । एकं
पदम् । एका आकृतिः । एकं ब्रह्म । तथा समं हेममुर्स्ळी वादयन् हेमस्व-

रूपामनुरागसंविल्तां कल्पतरोर्म्ले [आस्ते ।] सुरिभविद्या अक्षमाला श्रुतिरिव प्रमा सिद्धा सान्त्विकी । (¹ग्रुद्धा सान्त्विकी गुणातीता स्नेहमावरिहता । अत एव द्वयोर्न भेदः । कालमायागुणातीतत्वात् । तदेव स्पष्टयति अथेति । अथान्त्रतरं मक्नले वा । अथ वा श्रीवृन्दावनमध्ये ऋग्यजुस्सामस्वरूपम् । ऋगान्त्रको मकारः । यजुरात्मक उकारः । श्रीरामः सामात्मकोऽपि अकारः । श्रीकृष्णः अर्धमात्रात्मकोऽपि । यशोदा इव विन्दुः । परब्रह्म सिच्चदानन्दानंदराधाकृष्णयोः परस्परसुखाभिलाषरसास्वादन इव तत्सिच्चदानन्दामृतं कथ्यते । तस्वक्षणं यत् प्रणवं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकं इच्छाज्ञानशक्तिनिष्ठं कायिकवाचिकमानिसकभावं सत्त्वरजस्तमस्त्रक्षमं सत्यत्रेताद्वापरानुगीतम् । द्वापरस्य पश्चाद्वर्तते किलः । एतच्चतुर्युगेषु गीयते । तद्भूर्भवस्त्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदितिरक्तं कालातीतं तदप्योङ्कार एव । सर्व ह्येतद्वस्वलेक्षणमोङ्कार एव । यच्चान्यदित्यो व एव एतन्मण्डलं तपित " इति यत् श्वेतास्यं श्वेतद्वीपनाम स्थानं तुरीयातीतं गोकुलमथुराद्वारकाणां तुरीयमेतद्विव्यं वृन्दान्यमिति पुरैवोक्तं सर्व संपरसंप्रदायानुगतं यत्र ॥)

इत्याधर्वण्यां पुरुषवोधन्यां पारमहंस्यां द्वितीयः प्रपाठकः

वृतीयः प्रपाठकः

अथानन्तरं भद्रश्रीलोहभाण्डीरमहातालखदिरवकुलकुमुदकाम्यमधुब्-न्दावनानि द्वादशवनानि कालिन्द्याः पश्चिमे सप्तवनानि पूर्वस्मिन् पञ्चवनानि उत्तरस्मिन् गुह्यानि सन्ति । मथुरावनमधुवनमहावनखादिरवनभाण्डी-रवननन्दीश्वरवननन्दवनानन्दवनखाण्डववनपलाशवनाशोकवनकेतकवनदुमवन-

¹ कुण्डलद्वयान्तर्गतो भागो व्याख्यानवत् भाति ।

गन्धमादनवनशेषशायिवनश्यामायुवनभुज्युवनदिधवनवृषभानुवनसंकेतवनदीप -वनरासवनकीडावनोत्सुकवनान्येतानि चतुर्विशतिवनानि नित्यस्थलानि नाना-लीलयाधिष्ठाय कृष्णः क्रीडित । [तानि वनानि] वसन्तऋतुसेवितानि मन्दादिपवनयुक्तानि [सन्ति] यत्र दुःखं नास्ति सुखं नास्ति जरा नास्ति मरणं नास्ति क्रोधो नास्ति तत्र पूर्णानन्दमयः श्रीकैशोरकृष्णः शिखण्डिदललम्बत-त्रियुमगुञ्जावतंसमणिमयिकरीटशिराः गोरोचनातिलकः कर्णयोर्मकरकुण्डलो वन्यस्रग्वी मालतीदामभूषितशरीरः करे कङ्कणं वाहो केयूरं पादयोः किर्क्कणां कट्यां पीताम्व [रं च धारयन्] गम्भीरनाभिकमलः सुवृत्तनासायुगलो ध्वजवज्रादिचिह्नितपादपद्यो महाविष्णु [रास्ते]।

एवंरूपं कृष्णचन्द्रं चिन्तयेन्नित्यशः सुधीः ॥ इति ॥

तस्याचा प्रकृती राधिका नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कारशोभिता प्रसन्ताशे-षलावण्यसुन्दरी । अस्मदादीनां जन्म तदधीनं अस्यांशाद्वहवो विष्णुरुद्रादयो भवन्ति । एवंभृतस्यागाधमहिन्नः सुखसिन्धोरुत्पन्नमिति मानसपूज्या ध्यानेन कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्राप्नोति । नान्येनेति । नान्येनेति । नान्येनेति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति ॥

इत्यायर्वण्यां पुरुषबोधन्यां पारमहंस्यां तृतीयः प्रपाठकः

चतुर्थः प्रपाठकः

अथ पुरुषोत्तमो यस्यां निशायां तुरीयं साक्षाद्वसः । यत्र परमसंन्या-सस्वरूपः कृष्णः कल्पपादपः । यत्र लक्ष्मीर्जाम्बवती राधिका विमला चन्द्रावली सरस्वती ललितादिरिति । साक्षाद्भसम्बरूपो जगन्नाथः अहंशेषांशज्योतीरूपः सुदर्शनो भक्तश्च । एवं पञ्चधा विभूतमिति । यत्र च मथुरा गोकुलं द्वारका वैकुण्ठपुरी श्वेतपुरी रामपुरी यमपुरी नरसिंहपुरी नरनारायणपुरी कुबेरपुरी गणेशपुरी शकपुरी एता देवतास्तिष्ठन्ति । यत्र रसातलपातालगङ्गारोहिणी-कुण्डममृतकुण्डमित्यादिनानापुरी । यत्रात्रं सिद्धात्रम् । (¹शूद्वादिस्पर्शदोषरहितं ब्रह्मादिसंस्कारापेक्षारहितं यत्र श्रीजगन्नाथस्य योगमित्यर्थः। "नाम्या आसीत् " इति मन्त्रेण, "अन्नपतेऽन्नस्य" इति मन्त्रेण, "अन्नाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाय भागमत्समे सुखं प्रमार्यते यशसा च बलेन च " इति मन्त्रेण, " विश्वकर्मणि स्वाहा" इति मन्त्रेण, " आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् " इति मन्त्रेण, " पृथिवी ते पात्रं द्यौरिपधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि स्वाहा " इति मन्त्रेण; "अन्नं ब्रह्म" इति श्रुत्या च कैवल्यमुक्तिरुच्यते । यत्रान्नं ब्रह्म परमं पवित्रं शान्तो रसः कैवल्यमुक्तिः सिद्धा भूभुवस्स्वर्महत्तत्त्वमित्यादि यत्र भार्गवी यमुना समुद्रममृतमयं बृन्दावनानि नीलपर्वतगोवर्धनसिंहासनं प्रासादो मणिमण्टपो विमलादिषोड-शचण्डिकागोप्यो यत्र समुद्रतीरे च निरन्तरं कामधेनुबृन्दं यत्र नृसिंहादयो देवता आवरणानि यत्र न जरा न मृत्युर्न कालो न भन्नो न जयो न विवादो न हिसा न शान्तिन स्वम एवं लीलाकामशरीरी स्विवनोदार्थ भक्तैः सहोत्कण्ठितैस्तत्र क्रीडित कृष्णः ।)

> एको देवो नित्यलीलानुरक्तो भक्तव्यापी भक्तह्यन्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

¹ कुण्डलद्वयान्तर्गतो भागो व्याख्यानवत् भाति ।

मानसपूजया जपेन ध्यानेन कीर्तनेन स्तुत्या मानसेन सर्वेण नित्यस्थलं प्रामोति । नान्येनेति । नान्येनेति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति ॥

इत्यायर्वण्यां पुरुषवोधन्यां पारमहंस्यां चतुर्यः प्रपाठकः

इति राधोपनिषत् समाप्ता

ळाङ्गूळोपनिषत्

ॐ अस्य श्रीअनन्तधोरप्रलयज्वालाग्निरौद्रस्य वीरहनुमत्साध्यसाधना-घोरमूलमन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरामलक्ष्मणौ देवता। सौं बीजम्। अञ्जनास्नुरिति शक्तिः। वायुपुत्र इति कीलकम्। श्रीहनु-मत्प्रसादसिद्धचर्थे भूर्भुवस्स्वर्लोकसमासीनतत्त्वंपदशोधनार्थं जपे विनियोगः।

ॐ भूः नमो भगवते दावानलकालाग्निहनुमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। हृदयाय नमः। ॐ भुवः नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते तर्जनीभ्यां नमः। शिरसे स्वाहा। ॐ स्वः नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते मध्यमाभ्यां नमः। शिखाये वषट्। ॐ महः नमो भगवते पातालगरुडहनुमते अनामिकाभ्यां नमः। कवचाय हुम्। ॐ जनः नमो भगवते कालाग्निरुद्रहनुमते किनिष्ठिकाभ्यां नमः। नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ तपः सत्यं नमो भगवते भद्र- जातिविकटरुद्रवीरहनुमते करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अस्त्राय फट्। पाशुपतेन दिग्बन्धः। अथ ध्यानम्—

वज्राङ्गं पिङ्गनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलाकान्तगण्डं दम्भोलिस्तम्भसारप्रहरणविवशीभृतरक्षोऽधिनाथम्। उद्यलाङ्गूलघर्षप्रचलजलनिधि भीमरूपं कपीन्द्रं ध्यायन्तं रामचन्द्रं प्रवगपरिवृढं सत्त्वसारं प्रसन्नम् ॥

इति मानसोपचारै: संपूज्य, ॐ नमो भगवते दावानलका-लाग्निहनुमते [जयश्रियो जयजीविताय] धवलीकृतजगत्त्रय वज्रदेह वज्रपुच्छ वज्रमुख वजनख वज्रवाहो वज्ररोम वज्रतेत्र वज्रतुण्ड वज्रदन्त वज्रशरीर सकलात्मकाय भीमकर पिङ्गलाक्ष उग्र प्रलयकालगैद शरभसालुवभैरवदोर्दण्ड लङ्कापुरीदाहन उद्धिलङ्घन वीरभद्रावतार दशश्रीवकृतान्त सीताविश्वास इर्श्वरपुत्र अञ्जनागर्भसंभूत उदयभास्तर-बिम्बानलग्रासक देवदानवऋषिमुनिवन्द पाशुपतास्त्रव्रह्मास्त्रवैलवास्त्रनाराय-णास्त्रकालशक्तिकास्त्रदण्डकास्त्रपाशाघोरास्त्रनिवारण पाशुपतास्त्रव्रह्मास्त्रवैल-वास्त्रनारायणास्त्रमुड सर्वशक्तियसन ममात्मरक्षाकर परविद्यानिवारण आत्म-विद्यासंरक्षक अग्निदीप्त अथर्वणवेदसिद्धस्थिरकालाग्निनिराहारक वायुवेग मनोवेग श्रीरामतारकपरब्रह्मविश्वरूपदर्शन लक्ष्मणप्राणप्रतिष्ठानन्दकर स्थल-जलाग्निममेमेदिन् सर्वशत्रुन् छिन्धि छिन्धि मम वैरिणः खादय खादय मम संजीवनपर्वतोत्पाट्न डाकिनीविध्वंसन सुग्रीवसख्यकरण निष्करुष कुमारब्रह्मचारिन् दिगम्बर सर्वपाप सर्वग्रह कुमारग्रह सर्व छेदय छेदय भेदय मेदय भिन्धि भिन्धि खादय खादय टङ्क टङ्क ताडय ताडय मारय मारय शोषय शोषय ज्वालय ज्वालय हारय हारय देवदत्तं नाशय नाशय अति-शोषय अतिशोषय मम सर्व च हनुमन् रक्ष रक्ष ॐ हां हीं हूं हुं फट् घे धे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते महावीराय सर्वदुःखिवनाश-नाय प्रहमण्डलभूतमण्डलप्रेतिपिशाचमण्डलसर्वोच्चाटनाय अतिभयङ्करज्वर-माहेश्वरज्वर-विष्णुज्वर-ब्रह्मज्वर-वेताळब्रह्मराक्षसज्वर-पित्तज्वर-श्लेष्मसान्निपा- तिकज्वर-विषमज्वर-शीतज्वर-एकाहिकज्वर-द्वचाहिकज्वर-च्यैहिकज्वर-चातु -र्थिकज्वर - अर्थमासिकज्वर - मासिकज्वर-पाण्मासिकज्वर-सांवत्सरिकज्वर-अ-स्थ्यन्तर्गतज्वर-महापस्मार-श्रमिकापस्मारांश्च भेदय भेदय खादय खादय ॐ ह्वां हीं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते अङ्गश्ल-अक्षिश्ल-शिरदश्ल-गुल्मश्ल-उदरश्ल-कर्णश्ल-नेत्रश्ल गुदश्ल-किश्ल-जानुश्ल-जङ्घाश्ल-ह स्तश्ल-पादश्ल-गुल्फश्ल-वातश्ल-पित्तश्ल-पायुश्ल-स्तनश्ल-पिणामश्ल-परिधामश्ल-परिवाणश्ल-दन्तश्ल-कुक्षिश्ल सुमनदश्ल-सर्वश्लानि-निर्मूल्य निर्मूलय दैत्यदानवकामिनीवेतालब्रह्मराक्षसकोलाहलनागपाशानन्तवासुकि-तक्षककाकोटकलिङ्गपद्मककुमुदज्वलरोगपाशमहामारीन् कालपाशविषं निर्विषं कुरु कुरु ॐ हां हीं हूं हुं फट् षे षे स्वाहा ॥

द्र

ग

य

ব্ৰ

य

्य

ते-

₹-

ॐ हीं श्रीं क्वीं ग्लां ग्लीं ग्लं ॐ नमो भगवते पातालगरुडहनुमते भैरववनगतगजिसहेन्द्राक्षीपाशबन्धं छेदय छेदय प्रलयमारुत कालाग्नि-हनुमन् शृङ्खलाबन्धं विमोक्षय विमोक्षय सर्वग्रहं छेदय छेदय मम सर्वका-याणि साधय सम्य मम प्रसादं कुरु कुरु मम प्रसन्न श्रीरामसेवकिसह भैरवस्वरूप मां रक्ष रक्ष ॐ हां हीं हूं हां हीं क्ष्मों भें श्रां श्रीं क्वां क्वीं क्वां कीं हां हीं हूं स्व स्व जय जय मारण मोहन घूर्ण घूर्ण दम दम मारय मारय वारय वारय से से हां हीं हूं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते कालागिरौद्रहनुमते श्रामय श्रामय छव छव कुरु कुरु जय जय हस हस मादय मादय प्रज्वलय प्रज्वलय मृडय मृडय त्रासय त्रासय साहय साहय वशय वशय शामय शामय अस्त्रतिश्लडमरुखङ्ग-कालमृत्युकपालखट्टाङ्गधर अभयशाश्वत हुं हुं अवतारय अवतारय हुं हुं उद्यहाङ्गूलघर्षप्रचलजलनिधिं भीमरूपं कपीन्द्रं ध्यायन्तं रामचन्द्रं प्रवगपरिवृढं सत्त्वसारं प्रसन्नम् ॥

इति मानसोपचारैः संपूज्य, ॐ नमो भगवते दावानलका-लाग्निहनुमते [जयश्रियो जयजीविताय] धवलीकृतजगत्त्रय वज्रदेह वज्रपुच्छ वज्रकाय वज्रतुण्ड वज्रमुख वज्रनख वज्रवाहो वज्ररोम वज्रनेत्र वज्रदन्त वज्रशरीर सकलात्मकाय भीमकर पिङ्गलाक्ष उग्र प्रलयकालरौद्र वीरभद्रावतार शरभसाछवभैरवदोर्दण्ड लङ्कापुरीदाहन उद्धिलङ्घन दशश्रीवकृतान्त सीताविश्वास इर्श्वरपुत्र अञ्जनागर्भसंभूत उदयभास्कर-विम्वानलग्रासक देवदानवऋषिमुनिवन्द्य पाशुपतास्त्रब्रह्मास्त्रवैलवास्त्रनाराय-णास्त्रकालशक्तिकास्त्रदण्डकास्त्रपाशाघोरास्त्रनिवारण पागुपतास्त्रब्रह्मास्त्रबैल-वास्त्रनारायणास्त्रमुड सर्वशक्तियसन ममात्मरक्षाकर परविद्यानिवारण आत्म-विद्यासंरक्षक अग्निदीप्त अथर्वणवेदसिद्धस्थिरकालाग्निनिराहारक वायुवेग मनोवेग श्रीरामतारकपरब्रह्मविश्वरूपदर्शन लक्ष्मणप्राणप्रतिष्ठानन्दकर स्थल-जलाग्निमर्मभेदिन् सर्वशत्रुन् छिन्धि छिन्धि मम वैरिणः खादय खादय मम संजीवनपर्वतोत्पाट्न डाकिनीविध्वंसन सुग्रीवसख्यकरण निष्करुष कुमारब्रह्मचारिन् दिगम्बर सर्वपाप सर्वग्रह कुमारग्रह सर्वे छेदय छेदय भेदय भेदय भिन्धि भिन्धि खादय खादय टङ्क टङ्क ताडय ताडय मारय मारय शोषय शोषय ज्वालय ज्वालय हारय हारय देवदत्तं नाशय नाशय अति-शोषय अतिशोषय मम सर्व च हनुमन् रक्ष रक्ष ॐ ह्रां हीं हूं हुं फट् घे धे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चण्डप्रतापहनुमते महावीराय सर्वदुःखविनाश-नाय ग्रहमण्डलभूतमण्डलप्रेतपिशाचमण्डलसर्वोच्चाटनाय अतिभयङ्कर^{ज्वर-} म माहेश्वरज्वर-विष्णुज्वर-ब्रह्मज्वर-वेताळब्रह्मराक्षसज्वर-पित्तज्वर-श्लेष्मसान्निपा- तिकज्वर-विषमज्वर-शीतज्वर-एकाहिकज्वर-द्वचाहिकज्वर-चौहिकज्वर-चातु -र्थिकज्वर - अर्धमासिकज्वर - मासिकज्वर-षाण्मासिकज्वर-सांवत्सरिकज्वर-अ-स्थ्यन्तर्गतज्वर-महापस्मार-श्रमिकापस्मारांश्च भेदय भेदय खादय खादय ॐ ह्वां हीं हूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते चिन्तामणिहनुमते अङ्गशूल-अक्षिशूल-शिरश्शूल-गुल्मशूल-उदरशूल-कर्णशूल-नेत्रशूल गुदशूल-किर्शूल-किर्शूल-जानुशूल-जङ्घाशूल-ह स्तशूल-पादशूल-गुल्फशूल-वातशूल-पित्तशूल-पायुशूल-स्तनशूल-परिणामशूल-परिधामशूल-परिवाणशूल-दन्तशूल-कुक्षिशूल सुमनश्शूल-सर्वशूलानि-निर्मूल्य वैत्यदानवकामिनीवेतालब्रह्मराक्षसकोलाहलनागपाशानन्तवासुकि-तक्षककार्कोटकलिङ्गपद्मककुमुदज्वलरोगपाशमहामारीन् कालपाशिवपं निर्विषं कुरु कुरु ॐ हां हीं हूं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ हीं श्रीं क्वीं ग्लां ग्लां ग्लं ॐ नमो भगवते पातालगरुडहनुमते भैरववनगतगजिसहेन्द्राक्षीपाशबन्धं छेदय छेदय प्रलयमारुत कालाग्निहनुमन् शृङ्खलाबन्धं विमोक्षय विमोक्षय सर्वग्रहं छेदय छेदय मम सर्वकार्याणि साधय साधय मम प्रसादं कुरु कुरु मम प्रसन्न श्रीरामसेवकिसिंह भैरवस्वरूप मां रक्ष रक्ष ॐ हां हीं हूं हां हीं क्ष्मों भ्रें श्रां श्लीं क्वां क्वीं कां कीं हां हीं हूं हें हों है: हां हीं हुं स्व स्व जय जय मारण मोहन घूर्ण घूर्ण दम दम मारय मारय वारय वारय से से हां हीं हूं फट् घे पे स्वाहा ॥

ॐ नमो भगवते कालाग्निरौद्रहनुमते आमय आमय लव लव कुरु कुरु जय जय हस हस मादय मादय प्रज्वलय प्रज्वलय मृहय मृहय त्रासय त्रासय साहय साहय वशय वशय शामय शामय अस्त्रतिशूलडमरुखन्न-कालमृत्युकपालखटुगङ्गधर अभयशाश्वत हुं हुं अवतारय अवतारय हुं हुं अनन्तभूषण परमन्त्र-परयन्त्र-परतंत्र-शतसहस्त-कोटितेजःपुञ्जं भेदय भेदय अग्निं बन्धय बन्धय वायुं बन्धय बन्धय सर्वग्रहं बन्धय बन्धय अनन्तादिदृष्टनागानां द्वादशकुलवृश्चिकानामेकादशख्तानां विषं हन हन सर्वविषं बन्धय बन्धय वज्रतुण्ड उच्चाटय उच्चाटय मारणमोहनवशीकरणस्तम्भनजृम्भणाकर्षणोच्चाटनमिलनविद्वेषणयुद्धतर्कमर्माणि बन्धय बन्धय ॐ कुमारीपदित्रिहारबाणोग्रमूर्तिय ग्रामवासिने अतिपूर्वशक्ताय सर्वायुधधराय स्वाहा अक्षयाय घे घे घे उँ लं लं लं व्रां व्रों स्वाहा ॐ ह्वां हीं हल्हं हुं फट् घे घे स्वाहा ॥

ॐ श्रां श्री श्रुं श्रे श्रों श्रः ॐ नमो भगवते भद्रजानिकटरुद्रवीरहनुमते टं टं ठं ठं ठं ठं ठं ठं ठं देवदत्तदिगम्बराष्टमहाशक्त्यष्टाङ्गधर अष्टमहाभैरवनवब्रह्मस्वरूप दशिविष्णुरूप एकादशरुद्रावतार द्वादशार्कतेजः
त्रयोदशसोममुख वीरहनुमन् स्तंभिनीमोहिनीवशीकरिणीतन्त्रैकसावयव नगरराजमुखबन्धन बलमुखमकरमुखिसिहमुखिजिह्वामुखानि बन्धय बन्धय स्तम्भय
स्तम्भय व्याघ्रमुखसर्ववृश्चिकामिज्वालाविषं निर्गमय निर्गमय सर्वजनवैरिमुखं बन्धय बन्धय पापहर दीर हनुमन् ईश्वरावतार वायुनन्दन अञ्जनासुत बन्धय बन्धय श्रीरामचन्द्रसेवक ॐ हां हां हां आसय आसय हीं हां
श्री कीं यं भै मं मं हट् हट् खट् खट् खट् सर्वजन-विश्वजन-शत्रुजन-वश्यजनसर्वजनस्य हशं ठं ठां श्री हां हीं मनः स्तम्भय स्तम्भय भञ्जय भञ्जय
अदि हीं व हीं हीं मे सर्व हीं हीं सागरहीं हीं वं वं सर्वमन्त्रार्थाश्वर्यणवेदिसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा । श्रीरामचन्द्र उवाच । श्रीमहादेव उवाच ।
श्रीवीरभद्रस्तौ उवाच । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥

इत्याथर्वणग्हस्ये लाङ्गूलोपनिषत् समाप्ता

श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषत्

निरञ्जनो निराख्यातो निर्विकल्पो नमो नमः । पूर्णानन्दो हरिर्मायारहितः पुरुषोत्तमः ॥

अष्टावष्टसहस्रे द्वे स्थियो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । स्मृतिर्जायते पुरुषोत्तमात् । षट्च्छास्त्राणि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । छन्दो जायते पुरुषोत्तमात् । नगमो जायते पुरुषोत्तमात् । प्रजापतिर्जायते पुरुषोत्तमात् । शिर्वारवी जायते पुरुषोत्तमात् । सकलतीर्थानि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । परिश्वशक्तिर्जायते पुरुषोत्तमात् । स्वयोऽनृषयो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । इन्द्रो जायते पुरुषोत्तमात् । द्वादशादित्या रुद्राः सर्वा देवता जायन्ते पुरुषोत्तमात् । देवा जायन्ते पुरुषोत्तमात् । सप्त सागरा जायन्ते पुरुषोत्तमात् । सर्व आत्मा जायते पुरुषोत्तमात् । मनःसर्वेन्द्रियाणि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अष्टादश ब्रह्माण्डानि जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अष्टिसिद्धनवनिषयो जायन्ते पुरुषोत्तमात् । वनभारा अष्टादश जायन्ते पुरुषोत्तमात् । अस्तो जायते पुरुषोत्तमात् । अस्तो जायते पुरुषोत्तमात् । अस्तो जायते पुरुषोत्तमात् । अस्तो जायते पुरुषोत्तमात् । अस्भो जायते पुरुषोत्तमात् ॥

ॐ निगमं शङ्करोऽब्रवीत् । गौः । ग्मा । ज्मा । क्ष्मा । क्षा । क्षमा । क्षोिः । क्षितिः । अविनः । उर्वी । पृथ्वी । मही । रिपः । अदितिः । इळा । ¹जीवामकालागृता जीवः जीवा अस्ताजीव्यामं सर्वमायु-जीव्याप्तं [१] । लोदंकंचनंकांचानु अमृतं न भवति [१] पारमधाराणि [परमधर्माणि] जातवेदाः प्रोवाचैवेदं सर्वम् । शिवशक्तिपशुजीवो ब्रह्मा भक्तः पशुवत् [१] । यन्नत्यादेव पर श्रत्को परिशवः अन्या अवतारातेहि व्यास-वस्त्रश्रविठलेहरयस्तथा [१] । ललाटे अर्ध्वपुण्ड्ं मध्यच्छिद्रं चन्दनतिलकं

भ जीवामकालाञ्चला जीवः " इत्यारभ्य "पुरुष एवेदं सर्वम् " इत्येतत्पर्यन्तं अतीव विकला मातृकेति सानतापं यथास्थित बीयते ॥

राभं हरिमन्दिरं मध्यपद्मं कण्ठेतुलसी राङ्क्षचकं गदा बाहुगोपीचन्दनचर्चनं परं गतिः जीवोत्तमस्य । ब्रह्मा शक्तिर्महादेवो जन्यते पुरुषोत्तमात् । ॐ आपोऽमृतमर्त्यस्य मर्त्योऽपश्यतं यस्तु जन्यते पुरुषोत्तमात् । अमृतात् प्राणाश्चाहो मम जायन्ते पुरुषोत्तमात् । मनिस निषण्णः श्रीप्राणाय प्रज्ञानाय स्वराट् पुरुषोत्तमः । श्रीकृष्णभगवान् नारायणः परमात्मा पुरुषोत्तमः त्रिगुणरहितः स्वयम् । कथम् १ पुरुष एवेदं सर्वम् ॥

इति श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषत् समाप्ता

सङ्क्षणोपनिषत्

अथ तद्विष्णोः इति शान्तिः । अथ सक्कर्षणोपनिषदुच्यते । शेषो ह वै वासुदेवात्सक्कर्षणो नामं जात आसीत् । सोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति । ततः प्रधुन्नसंश्रं मन आसीत् । तस्मादहंकारनामाऽनिरुद्धः । ततो हिरण्य-गर्भोऽजायत । तस्माद्दश प्रजापतयो मरीच्यादयः स्थाणुदक्षकर्दमप्रियत्रतो-तानपादादयोऽप्यजायन्त । तेभ्यः सर्वाणि भृतानि च । तस्माच्छेषादेव सर्वाणि समुत्यद्यन्ते । तस्मिन्नेव प्रलीयन्ते । स एव बहुधा जायमानः सर्वान् परिपाति । स एव काद्रवेयो व्याकरणज्यौतिषादिशास्त्राणि निर्मिमाणो बहुभिर्मुमुक्षुभिरुपास्यमानोऽखिलां भुवमेकस्मिन् शीर्णिण सिद्धार्थवद्धार-यमाणस्सर्वेर्मुनिभिः संप्रार्थ्यमानः सहस्रशिखरमेरोश्चिशरोभिर्वारयमाणो महावायोरहंकारं निराचकार । स भगवान् युगसन्धिकाले स्वेन रूपेण युगे युगे तेनेव जायमानः स्वयमव सौमित्रिरैक्ष्वाके[वंशे जा]यमा[नो] रक्षांसि सर्वाणि विनिन्नन चातुर्वर्ण्यधर्मान् प्रवर्त[यति ।]स एव भगवान् युगसन्धिकाले[शरदश्रस]निकाशो रौहिणेयो वासुदेवः सर्वाणि ग[दा] द्यायुधशास्त्राजन्यमण्डलानिराचिकीर्ष[ति ।] भूभारमस्तिलं निचलान । स एव भगवान् [शेषः] युगे तुरीयेऽपि ब्राह्मण्यां जायमा[नो] रामानुजो भृत्वा सर्वा उपनिषद उद्दिधीर्ष[ति ।] सर्वाणि धर्मशास्त्राणि विस्तारियण्णुः सर्वानिप वैष्णवान् धर्मान् विजृंभयन् सर्वानिप पाषण्डानिचलान् । स एष जग[दाविर्मावतिरोभावहेतुः ।] स एष सर्वात्मकः । स एष मुमुक्षुभिध्येयः । स एष मोक्षप्रदः एतत्स्मृ[त्या] सर्वेभ्यः पाप्मे-[प्म]भ्यो मुच्यते । तन्नाम संकीर्तयन् विष्णुसायुज्यं गच्छति । तदेतद्दिन् प्रभियानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । नक्तमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । तदेतद्देदानां रहस्यम् । तदेतदुपनिषदां रहस्यम् । एतदधीयानः सर्वकृतुफलं लभते । शान्तिमेति । मनश्युद्धिमेति । सर्वतीर्थफलं लभते । य एवं वेद । देहबन्धाद्विमुच्यते । देहबन्धाद्विमुच्यते । इत्येवोपनिषत् ॥

इति सङ्क्षणोपनिषत् समाप्ता

सामरहस्योपनिषत्

एकदा ब्रह्मणः पुत्राः सनकादयस्तत्त्वविवित्सया पितामहं पप्रच्छुः प्रणिपातपुरस्सरम् । अहो पितः निरन्तरं वैकुण्ठे या ठीठास्ता ध्यायमानाः निरन्तरं चिदानन्देन सह संप्रेक्ष्ममहे । वद यदि रुचिरापद्यते । चिदानन्दरसं ब्रह्म किं वदन्ति ? व्यापकतया जगद्वचाप्य तिष्ठति यत्तद्वह्म वदन्तितराम् । आपद्यमानोऽस्ति प्रकृतिं पुरुषः । कस्मात्प्रकृतियोगिता भवति ? जीवाः कीद्दम्बिधाः ? कस्मात्समुत्पन्ना भवन्ति ? तेषां ठोका अठोकाः कियत्प्रमाणाः ? यान् वदन्ति पुराविदः । पितामह उवाच । नारायण-

मुखाच्छ्तोऽयं धर्मः । शृणुत सर्वा येषा सृष्टिस्समुत्पद्यते । क्षराक्षराभ्या-मधिकः पुरुषोत्तमसंज्ञितो भक्तिगम्य आनन्दमयो लोकः संविराजते । तस्य पुरुषोत्तमस्य उत्तरकटाक्षात्समुत्पन्ना जीवाः । तेषां खेहमार्गोऽयमापचते । दक्षिणकटाक्षादुत्पन्नाः कर्मजडा आसुरा अल्पोपासका भवन्ति । तस्मिन् रसिकानन्दस्वरूपात्पार्थात् द्वे एव मूर्ती प्रकटिते । प्रथमा भक्तिसुन्दरी प्रकटिता । पश्चान्मायादासी प्रकटिता । तयोः प्रथमा अत्यन्तवछुभा अम्त । भक्तेस्सकाशादुत्पन्ना जीवाः स्नेहमार्गीया भवन्ति । मायायाः समुत्पन्ना आसुराः कर्मजडा अन्यधर्मरता एव भवन्ति । यदा कर्ममार्गे रतिरसतां ते आसुरा भवन्ति । सा भक्तिस्त्रिविधैव भवति । एका कर्ममिश्रिता देवानामृषीणामुपासकानां भवतितराम् । श्रवणकीर्तन-स्मरणवन्दनसेवनोपकरणदास्यभावेनात्मसमर्पणम् । ते जीवा भक्तिमार्गीयाः एवैते । स एवायं पुरुषः स्वरमणार्थे स्वस्वरूपं प्रकटितवान् । तद्रृपं रससंविलतमानन्दरसोऽयं पुराविदो वदन्ति । सर्वे आनन्दरसा यस्मात् प्रकटिता भवन्ति । आनन्दरूपेषु पुरुषोऽयं रमते । स एवायं पुरुषः स्वयमेव समाराधनतत्परोऽभूत् । तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत् । अतो लोके वेदे श्रीराधा गीयते । तत्त्वरूपात्सृष्टिर्या समुत्पन्ना सा रसिकानन्देन सुसेव्यतां प्राप्ता आसीत्। प्रमाणप्रमेयादस्मान्मार्गाद्तिरिक्तोऽयं मार्गो रसात्मकः । य एतन्मार्गे आसक्तास्ते रसरूपिणी सृष्टिमन्तरुत्पद्यमानाः भवन्ति । लक्ष्मीनारायणीयोऽयं संवादः । निरन्तरं नारायणो वैकुण्ठे रमया रहस्यलीलां सङ्गायमानोऽभवत् । रमारमणो वैकुण्ठे नारायणः स्वयं ध्यानापन्नोऽभवत् । तदा लक्ष्मीः रहस्युपासमाना तम्य तामवस्थां निरीक्ष्य प्रश्रयावनता पप्रच्छ। किं ध्यायसि ? किं जपसि ? परं कौतूहरुं मे मनसि वर्तते। त्वत्तः परं को देवः ? को लोकः ? यस्य त्वं ध्यायसे

प्रतिक्षणम् । तव मनः कां लीलामापनं दृश्यते ? स होवाच रूक्सी प्रति । महालीलास्थानं क्षराक्षराभ्यामधिकं पुरुषोत्तमाधिष्ठानम् । यत्र सप्तावरणानि तेजोमयानि । यत्र ब्रह्माण्डान्युत्पद्यन्ते लीयन्ते । कोटिश अण्डकटाहाः उत्पद्यन्ते लीयन्ते । यस्य प्रतापकल्या उत्पन्ना ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो देवाश्च दिकपालाः कोटिश उत्पद्यमाना लीयमानाश्च भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । अहो क्षराक्षराभ्यामधिकस्य रसिकानन्दस्य स्थानं विस्तरशो ब्रृहि । स होवाच । आदौ पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य अनादिसंसिद्धा लीलाः भवन्ति । अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति । तदेव रूपं द्विघा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत् । तस्मात् तां राघां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति । तस्मादानन्दमयोऽयं लोकः । यत्रायं पुरुषो रमते तत्रायं रसो वजित । तस्माल्लोके वेदे वजलीला गीयते । तन्मध्ये वनानि द्वादश सन्ति । तेषां पृथक् नामानि सन्ति । तालवनं बृहद्वनं कुमुदवनं लोहवनं बकुलवनं भाण्डी-रवनं महावनं गोष्ठं काम्यवनमरिष्टं च सदाशुमं दिधवनं बृन्दावनमिति । सदा आनन्दमयोऽयं लोको वेदविदो यं वदन्ति । यत्र बृन्दावनं सर्वकामसुखावहं भवति । यत्र वृक्षा आधिदैविका देवा एव भवन्ति । यत्र साधनवट-भाण्डीरवटौ । यत्र वंशीवटसंकेतवटौ । अन्ये वृक्षाः कदम्बाद्या यत्र राजन्ते । यत्रोभयतटबद्धा यमुना रत्नलचिता आस्ते । यस्यां कुमुदवनानि राजन्ते । यस्यां हंससारसयूथानि कीडापराणि शोभाढ्यानि भवन्ति । यस्यास्तटे कोटिशः कुञ्जाश्च निकुञ्जाश्च राजन्ते । तस्मिन् मण्डले गोवर्धनोऽयं गिरिः । रत्नमयोऽयं गिरिः राजमानो भवति । अयं गिरिः श्रीराधिकायाः रमणस्थानम् । स एवायं गिरिर्नृन्दावने सदा रसिकानन्दस्य क्रीडास्थानं भवति । तस्मिन् वने पशुपक्षिगणा आधिदैविकी सृष्टि प्राप्ताः सदा सानुभवा मवन्ति । आधिदैिक्की या सृष्टिः सा सृष्टिस्तिस्मन् लोके

लोकतां प्रामोति। सा सृष्टिर्द्विभेदा भवति। एका संसिद्धा अन्या साधनसिद्धा भवति । या संसिद्धा सा तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपात् समुत्पाद्या भवति । या साधनसिद्धा सा भजनमार्गे प्रपन्ना । भक्तास्तां लीलां तद्भावेन प्राप्नुवन्ति । रसलीलायामुपकरणानि रसलीलायामधिकरण सख्यश्चातुर्थगुणयुताः ससखीसमृहा योवनसंपत्तिपूर्णा अनेककलाकोविदाः रसभावेन पूर्णा भवन्ति । यत्र चन्दनवृक्षाणां श्रेणयो राजमाना भवन्ति । मणिविद्रुमलताम्रथिताः सुवर्णसुगन्धसंवलिता वृक्षास्तवा पुष्पाणि संराजमानानि भवन्ति । तत्र सखीयूथानि भोज्यं हस्ते गृहीत्वा तिष्ठन्ति । तासु श्रेणिष लतान्तरैर्भिथितानि द्वाराणि मणिलतायुतानि भवन्ति । मणिमण्डलं यत्र तेजोमयं मणिमण्डपेन सह भ्राजमानं भवति । लताम्रथिता मणिस्तंभाः शतशो राजमाना भवन्ति । तस्मिन् मण्टपे परितः सुवर्णभित्तिषु जटिताः मणयस्तेजोमयाः संराजमाना भवन्ति । तत्राधित्यकासु चन्द्रकान्तमणिना बोतिता जलमणयो जलधाराश्च भवन्ति । तेन जलेन पूरिताः सुगन्ध-मणिपुष्करिण्यो राजमाना भवन्ति । तत्र कमलानि प्रफुलानि श्वेतरक्त-पीतानि मनोहरशोभां ददित । तत्रोपस्थितपरागस्तद्वनं वासयति । तत्र हंसयुम्मानि कोटिशो देववाण्या निकुञ्जदेच्या यशो गायन्ति । यत्र अमराः सानुभवा देववाण्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति । तत्र पुष्करिणीः परितो दश दश मन्दिराणि चतुष्कोणेषु सन्ति । रत्नमयकुडचेषु कृत्रिमाः पक्षिणः सानुभवा इव दृश्यन्ते । तत्र मध्ये मध्ये वृक्षा निकुझतां प्राप्नुवन्ति । सुकोमलै: पत्रैस्तेजोमयै राजन्ते । तेषां सुगन्धेन उन्मदा भ्रमरास्तस्याः श्रीराधिकाया यशो गायन्ति । तत्र केचित् वृक्षाः पुप्पैः शाखाप्रतिशाखाः नम्रा भवन्ति । तेषु वृक्षेषु हरितपीतशुभ्रश्वेता द्योतिताः पुष्पगुच्छा भवन्ति । तेषामधःशृक्कारवत्यादयः सस्यः पुष्पाणां शय्या रचयन्ति । तत्र लतान्तरैः

आच्छादिता वृक्षा निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तत्र मणिजटितानि रमणस्थानानि कोटिशो राजन्ते। यत्र ललिता विशाखा सुभगा कलावती मनोरमा चन्द्रकलामोहिनी गतिरतिविलासिनी मोहिनी शास्त्रगीतज्ञा भोगज्ञा भोगप्रदा कामप्रदा कामदा केलिदा सुरतकलाकोविदा संभोगसुखदा गतत्रपा निःशङ्करतिदा सुतरां सुरतान्तनिद्रिता अन्याः कोटिशः सस्त्यः संविराजमाना भवन्ति । दश मन्दिराणि भक्ष्यभोज्यैः संपूरितानि भवन्ति । यत्र घृतपकानि पकान्नान्यनेकशो विविधरसयुक्तानि सन्ति । तेषु मन्दिरेषु कटुतिक्तकषायमाधुर्यरसा भोगवत्या सख्या कृताः संपूर्णाः प्रतिक्षणं नूतना भवन्ति । अन्ने सिद्धान्नभोगापूपपायसपकान्नभागाः शाकविविध-षड्ससंविलता अन्नपूर्णया संख्या संपादितास्तया निकुञ्जदेव्या सेव्य-माना भवन्ति । वस्त्रवत्या सख्या संपादितान्यनेकशो वस्त्राणि समयो-चितानि मनोरमाणि सन्ति । भूषणभूप्या सख्या रचितानि भूषणानि तस्या निकुञ्जदेव्याः प्रीणनाय तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गाराः कोटिशः सन्ति । तत्रान्ये शृङ्गारादिभोगा भोगवत्या कृतास्तेषु मन्दिरेषु तस्याः सुखार्थ भवन्ति । तत्र चतुःश्रेणीनि दशदशमन्दिराणि सन्ति । तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गारा अनेकधा रचिता भवन्ति । तेषु मन्दिरेषु सखीनां समूहाः पृथक् पृथक् कार्येषु संलझा भवन्ति । तेषां मध्ये रास-मण्डलं तेजोमयमानन्दमयं तस्याः श्रीराधिकायाः सुखार्थं वृन्दानाम्ना सख्या तया संपादितं भवति । तेषु मन्दिरेषु सखीनां एका योगमाया सखी सर्वासां सखीनां सर्वत्र एकभावं करोति । तस्मिन् स्थाने सुनादाः सख्यः सुनादेन सप्तस्वराणि श्रावयन्ति । तत्र त्रह्माण्डे याः सिद्धयोऽणिमा-दयस्तत्र सखीरूपं विधाय तां श्रीराधिकां सेवमानां भवन्ति । सुमेरुहेमा-द्रिमलयाद्याः पर्वता अन्ये ये निधयो देवानां सन्ति ते निधयस्तस्याः

निकु अदेव्याः प्रीणनाय सस्तीनां रूपाणि विधाय तन्मण्डलं सेवन्ते । तस्मिन्मण्डले श्रीरपि सस्वीरूपं विधाय आकारं गोपयन्ती सेवमाना भवति । नित्यलीलायां षड्तवोऽपि सखीनां रूपाणि विधाय सेवमाना भवन्ति । काले काळे तासु निकुञ्जश्रेणिषु सञ्चारिणीनां नानाभोगान् ददति । मेघा नाना-सखीनां रूपाणि कृत्वा जलसेचनं कुर्वन्ति । कामदेवोऽपि सखीरूपं विधाय तत्स्थानं सेवमानो भवति । अहोरात्रमपि स्वस्वरूपेण अहनि निशि च सेवते तन्मण्डलम् । तदिच्छया कचिद्दिवा कचिन्निशा कचित्रातः कचित्सायं कचिन्मध्याद्वः कचिन्निशीथं नानाभावेन कालेकाले तन्मण्डलं सेवते । नानामणय ओषधयो वनस्पतयो वृक्षा ये पृथिव्यां सन्ति ते आधिदैविकीं सृष्टिं प्राप्ताः सेवमाना भवन्ति । सिन्धवः स्वरूपेण निधीन् गृहीत्वा तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति । सुमेरुहेमाद्रिमलयाद्याः पर्वताः तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । सखीरूपेणात्यन्तमणिज्योत्स्नाभिर्यत्र तत्र अन्ये च ब्रह्माण्डवर्तिनस्तत्स्थानं दीपयन्तो भवन्ति । पृथिव्यां यत्किञ्चद्वस्तुमात्रं तस्याधिदैविकं रूपं तत्रैवास्ति । तस्मात्सर्वे समुत्पन्नं भवति । ब्रह्माण्डे ये देवास्ते आधिदैविकेन रूपेण तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । तस्मात्ते सर्वे समुत्पन्ना ब्रह्माण्डे भवन्ति । वेदाः स्वऋचाभिस्तस्मिस्थाने तस्या निकुञ्ज-देव्या यशो गायन्ति । कामदुघाः स्वयूथेनाधिदैविकं रूपं विधाय संसेवन्ते । दिधिदुग्धतऋनवनीतघृताद्यान् रसान् गृहीत्वा सेवमाना भवन्ति। तत्र रासमण्डलमेतैर्गुणैरन्यैर्विविधैः संपूरितं रसिकानन्देन सह श्रीराधिकां सेवमानं भवति । यस्य रासमण्डलस्य परितः स्थानानि द्वादश संशोभमानानि भवन्ति । एकं मज्जनस्थानम् । यत्रोष्णोदकपुष्करिण्यो जलैः संपूर्णा भवन्ति तत्र मज्जनवत्यादयः सख्यो मज्जनार्थं सेवमाना भवन्ति । तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति । तत्र निकुङ्जानां श्रेणयो रत्नालवालैश्चन्द्रोद्भवैर्जलैः

क्षेच्यमाना भवन्ति । तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति । चन्द्रका-न्तमणेरुत्पन्नैर्जलैः सेव्यमाना मुक्तालता मुक्तागुच्छैः संपूरिता भवन्ति । मणिलतास ज्योत्सायां प्रतिबिम्बिताः पक्षिणः परस्परं दृष्टिबन्धेन नृत्यं कुर्वन्ति । द्वितीयं शृङ्गारस्थानम् । यत्र शृङ्गारवत्या सख्या अधिश्रितम् । तस्मिन् स्थाने अधिश्रिता रङ्गवत्यादयः सख्यो मोदन्ते । तृतीयं मानस्थानम् । यत्र मानवत्यादयः सख्यो मानं रचयन्ति । यस्मिन् मन्दारवृक्षाः सुवर्णलताः सुगन्धा प्रथिता भवन्ति । तेषु वृक्षेषु पुष्पाणि सुगन्धसंवल्रितानि भवन्ति । लतान्तरेराच्छादितं स्थानं सुगन्धसंवलितं मनोरमं तेजसा दीप्यमानं भवति। हरितपीतच्छायाभिः संयुतं तेजसा दीप्यमानं भवति । मन्दारनिकुञ्जाः श्रीराधिकाया अधिष्ठानम् । यमुनायास्तीरे धीरसमीरे एकवटश्चकास्ति । तस्य वटस्य परितो निकुङ्जानां श्रेणयो राजमाना भवन्ति । द्वादश निकुङ्जाः सन्ति । सखीनां सञ्चाराः सूक्ष्मतरा लतान्तरैर्भ्रथिता भवन्ति । तत्र ललि-तादयः सख्यो रसिकानन्देन सह वचनप्रतिवचनोत्तरं ददति । कुझान्तर-श्रेणिषु सखीनां मध्यसञ्चारोऽस्ति । रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः स्वयमेव प्रणिपातं करोति । स्वामिनी मनोरमा निकुञ्जे स्वयमेवातिमानातुरतया मनोभावापन्ना भवति । स्वभावसंसिद्धाः सख्यो भावापन्ना भवन्ति । अतिरसलंपटो रसिकानन्दः सर्वासां सखीनां प्रणिपातं करोति । अत्यन्त-मग्नाः सख्यस्तत्सुखं निरीक्ष्य सुरतानन्दे मग्ना भवन्ति । चतुर्थं भोगस्थानम् । यत्र सुभोज्या सख्या सेवितम् । यत्र खाद्यपेयलेखचोप्यरसा अनेकस्वाद्युताः भवन्ति । अन्नपूर्णया सख्या पाचितानन्नरसानत्युष्णान् सद्यःपाचिता-निव श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः सेवते । अगुरुरसांस्तैलरसान् पुष्परसात् नानासुगन्धरसान् श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः संसेवमानो भवति । अन्ये ताम्बुलादयो लवङ्गकर्पूरादय एलाजातीफलपूगफलनाळिके-

रपनससहकारभद्राक्षेक्षुरसैः शर्करादयः पिष्टरसपूर्णतया निकुञ्जदेव्या सं-सेव्यन्ते । लिलता रङ्गवती भोगवती प्रेमोत्कण्ठा सुरतानन्दा सुरतरसको-विदा चेति सख्यः श्रीराधिकया दत्तं प्रसादं भुञ्जते । तत्रैकं रसिकानन्द-शृङ्गारस्थानम् । यत्र पारिजातकवृक्षाः सदा पुष्पैः प्रफुहिता नम्रा भवन्ति । तत्र सुगन्धसुवर्णलताभिः संवलितं भवति । सुगन्धमुक्तालताभिः पारि-जातकवृक्षा प्रथितनिकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तत्र एको अमरो देववाण्या चातुर्येण मानस्थाने राधिकां प्रति दृतत्वं करोति । स अमरो रसिकानन्दं प्रति प्रियो भवति । स अमरः स्वचातुर्येण श्रीराधिकाया मानापकरणं करोति । स अमरोऽत्यन्तमनोहरचातुर्यासीमगुणज्ञः स्वभावसंसिद्धः साधनसिद्धो भवति । स अमरो रसिकानन्दस्य दूतो भवति । निरन्तरं श्रीराधिकायाः मानलीलायां सहकारी भवति । तस्माद्रसिकानन्दस्यातितरां वल्लमो भवति । तेऽत्र भ्रमरा मनोहरशब्देन सङ्गीतरसं गमयन्ति । तत्रैकः शुकः साधनसिद्धः श्रीराधिकाया मानस्थाने मन्दारनिकुञ्जे निवसति । तेन शुकेन श्रमरचातुर्य निरीक्ष्य तस्या निकुञ्जदेव्याः कृपां निरीक्ष्य अत्याश्चर्यं प्रपेदे । स अमरस्तेन शुकेन पृष्टः अहो अले त्वं कः ? केन साधनेन त्वयेदं रूपं प्राप्तम् ? कथं श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकाया दूतत्वं प्राप्तः ? अलिरुवाच । अहो शुक त्वं पूर्व कोऽसि ? केन साधनेनेदं लीलास्थानं प्राप्तम् ? शुक उवाच । अहं पूर्व ब्राह्मणोऽस्मि । विष्णोरुपासककुलोत्पन्न एकात्मभावेन मम मनो हरिं भजमानं भवति । एकस्मिन् वासरेऽस्मि ब्रह्मलोकं गतः । तत्रानन्यमार्गीया भक्ताः मया दृष्टाः। रसमार्गीया भक्ता मया दृष्टाः। तेषां सङ्गमेन मया निकुञ्जलीला अनुभूताः। तत्रारिष्टे श्रीराधाकुप्णपुप्करिण्युद्भवां मृत्तिकां भक्षयता तत्र निरन्तरकीडास्थलं मया श्रुतं पूर्वम् । अस्या मृत्तिकायाः माहात्म्यं महालीलायाः प्राप्तेः कारणम् । भ्रमरो वदति । त्वया किं

श्रुतमस्या माहात्म्यम् ? शुक उवाच । श्रीरसिकानन्देनं वन्दितम् । श्रीराधिकायाः प्रेमवत्यादयः सख्यस्तस्मात्स्थानात्समुत्पन्नाः। स्वयमपि तिसम्थिले रासलीलायाः प्रारम्भः कृतः। तिसमन् काले श्रीरसिकानन्देन स्वयमेव वन्दितं तपसा ध्यानेनाधिकृतम् । तस्माल्लोके वेदे वन्दितमिदं स्थानम् । अस्य स्थानस्य मृत्तिका मया अनुभृता । तेनेदं स्थानं प्राप्तम् । इदं शरीरं तया मृत्तिकया पृष्टं साधनसिद्धं जातम्। अहो भ्रमर त्वं कथय यदि रुचिः स्यात् । अलिरुवाच । अहमपि पूर्व गौडदेशोद्भवकायस्थः । वैष्णवोऽहं निरन्तरं प्रेमाधिक्येन रसिकानन्दं सेवमानोऽभवम् । गुर्वनुप्रहेण साधूनां रसमार्गीयाणां सङ्गेन मया रसमार्गरूपा कथा श्रुता। तेषां साधूनां सङ्गो मयानुभूतः। तत्कथाद्वारेण मम हृदि प्रविष्टो रसः। अहं रसलीलायां प्रपन्नोऽभवम् । रसलीलायां प्रवृत्तिरन्यधर्मविस्मारणपूर्विका जाता । तस्याः सेवाकथायां प्रत्ययो वभूव । ये रसमार्गीया भक्तास्तेषां सम्बन्धालापकीर्तनगोष्ठीमार्गानुभवान्मनो भावमापत्रं प्रेमाधिक्यं सुखसंपत्तिः इष्टतमवस्तुपात्रदेहादि यत्किञ्चित् समर्पयेदिति । इत्यानुभविकेन मार्गेण भक्तैस्सह व्रजलोके प्राप्तोऽहं सर्वसङ्गरिक्तोऽभवम्। तस्मिन् व्रजमण्डले निवसन्नहं प्रतिकक्षं प्रतिकुञ्जं तां ठीठां चिन्तयमानस्तद्भावापन्नो भवामि । तद्भक्तैः सह देहादिसुखं ततो प्राह्यं ततो देयमिति मनसा वाचा तैः सह कालोऽज्ञातकालविषयोऽयते । एवं मम धर्मः सिद्धो भवति । सिद्धधर्मेण शरीरं साधनसिद्धं बभूवः। तदा ममाभिलाषो मनस एवं भूतो भवति । यनाभिलाषेणाहं भ्रमररूपेण तस्या निकुझदेव्या यशः सङ्गायामि । पश्चात्प्रसन्नेन रसिकानन्देन तया देव्या मनसेप्सितं रूपं दत्तम्। इदं मान्यस्थानं दत्तम् । अहो शुक अहमस्मिन् स्थाने श्रीराधिकाया वने क्रीडापरो भवेयमिति । तद्बृन्दावनं सर्वकालसुखसमृद्धिसंपूर्णे श्रीराधिकया

सदा सेवितं रसिकानन्देन सह। तस्मिन् वायवः शीतमन्दसुरभिभावेन सेवमानाः सन्ति । तत्र स्थाने अमृतोदा पुष्करिणी आस्ते । तासु पुष्करिणीप कन्दुकलीलया श्रान्ताः सख्यो मञ्जनं कुर्वन्ति । अतितरां सितजलक्छोलैर्मञ्ज-निकयायां तस्मिन्नत्यन्तरसमग्रानि हंसयूथानि राजन्ते । उपरि पक्षिणां पङ्क्तिः कलकण्ठैः सेव्यमाना अभ्येति । अतितरामानन्दममाः सखीनां गुणगणान् सङ्गायमाना भवन्ति । तत्रोपर्येकं मन्दिरमस्ति । एकं भक्ष्यभोज्यस्थलमस्ति । एकं सखीसङ्गमोपवेशताम्बुल-सुगन्धरससेवनायैवेति । एकं शय्यागृहं सुगन्धमणिमयभोगान्वितम् । आधिदैविकेन रूपेण कामः सखीरूपं विधाय स्वयमेव सेवमान आस्ते। रतिसंभोगातिकलाकौतुकानि नेत्रहावभावकटाक्षसंवलितकामरसभावभेदानि संयोक्ष्यमाणकामरससुखसंपत्तियोग्यतां मनोभवः संयोक्ष्यमाणसुखं च पिबति। नित्यं नित्यनूत्रभावभेदशृङ्गारं नूत्रम् । रूपं नूत्रम् । क्रीडा नूत्रा । वचनं नुज़म् । प्रतिक्षणं प्रतिक्षणं नृज़मेव सुखं सखीनाम् । नूजः सर्वो भाव आस्ते । एकादराश्रेणयः सदा वसन्तस्थानम् । किंशुकवकुलाम्रवृक्षाः शोभायमानल-वङ्गलतापरिशीलिता अत्यन्तं निगूढगुच्छपुष्पपरागा भवन्ति। उन्म-दंकोकिलभ्रमरस्द्भस्वरसङ्गीयमानानि सर्वीनां यथानि वस्त्राण्यतिरञ्जितानि शोभामातन्वन्ति । कलगीतानि वसन्तोद्भवानि सङ्गीयन्ते । तस्मिन् स्थाने सदा कौतुकाविष्टा गोप्यः केसरकर्पूरमृगमदा-गुरुरसान् सेचयन्त्यो भवन्ति । परस्परं हस्तैः कनकखचितजटिताः सर्वाः कन्या मृगमदकर्पूररसं सिञ्चन्त्य आपद्यन्ते । अभिलिम्पन्त्यः परिमृजन्त्यः अञ्जन्त्यो लोचने काश्चित् काश्चित् गानं गायन्त्यो गोप्यः । तां व्रजेश्वरी व्रजनायिकां ताः सख्यो वेषशृङ्कारशोभासंराजितामशोभयन्त । तस्मिन् वसन्तऋतुः सखीरूपं विधाय तां त्रजेश्वरीमुपसेवमान आस्ते । यत्र

वसन्तस्तत्रैव कामावेशो जन्यते । स कामः सखीरूपं विधायोपसेवमानः आस्ते। रतिभावे सा त्रजेश्वरी तां देवीमुपसेवमानातिगुणगणनया क चित्पृष्पावेशेन वसन्तं सुखमुपसेवते । क चित्फलावेशेन वसन्त उपसेवते । कचित्कोमलाङ्कुरावेशेन वसन्त उपसेवमान आस्ते। कचित्पक्षिणां रवेण उपसेव्यमान आसेवामातनोत् । कचिल्लतान्तरैराविभविनोन्मदश्रमर-पिकशुका गीतगानं कुर्वाणा आपद्यन्ते । रसिकानन्दस्तया निकुञ्जदेव्या वसन्तोद्भवैः पत्राङ्कुरैः शय्यां विधाय वसन्तसुखान्यनुभवन्नास्ते । विविधलतान्तरेषु पुष्पगुच्छसंवलिताः सख्यः शय्यां विविधपकारां प्रतिकुञ्जं रचयन्ति । उपकरणकामकलया सुरतकेलिज्ञ उपतापसुखमन्वभूत् । आसे-दिवान् रतिरससुरतानन्दो विविधकलारूपेण प्रतिपद्यमानो भवति । हाव-भावकेलिकौतकानि भवन्ति । वसन्तः कामेन सह रसलीलारितं विस्तार-यति । तत्रानेकलता वसन्तोद्भवैः कुसुमैर्वनलीलायां प्रफुल्लिता नम्राः भवन्ति । नानाकौतुकाविष्टाः प्रेमवत्यादयः सख्य अतिभावापन्ना वभूवः । तस्यां ठीठायां चतस्रः संख्यः श्रीराधिकां संसेवभाना भवन्ति । तस्य वसन्तस्य सुखं केनोपवर्ण्यते । चतस्रः सख्यः कथिताः । तासां नामानि शृण्त । रङ्गवती गुणवती गानवती मनोरमा । एताः सख्यस्तस्मिन् वसन्तस्थाने सेवमाना भवन्ति । तद्वसन्तस्थानं श्रीराधिकाया अतितरां वल्लभं भवति । तत्स्थानं श्रीराधिकया रसिकानन्देन सह सेव्यमानं भवति । ताः सख्यस्तिस्मिन् स्थाने प्रेम्णो भावं विस्तारयन्ति । रङ्गवती रसरङ्गलीलां विस्तारयति । नानाभावेन वसन्तरङ्गभोगान् विस्तारयति । एवं नानाभाव-भेदं सुरतानन्दं विस्तारयति । गुणवती रागरङ्गसुगन्धरसवीणावेणुप्रणाळिकया सर्वासां सखीनां कामलीलायाः प्रवोधं जनयति । गानवती गीतगानगुणेन श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकां प्रीणयति । मनोरमा मनोरमं भावमापन्ना

भवति । ताः सख्यो भावापन्नाः साधनसिद्धा भवन्ति । ता ऊत्तुः । तास साधनं किं येन साधनेन वसन्तलीलायाः स्थानं प्राप्तम् । अहो भक्तानां रसमार्गीयाणां पुण्या रसमार्गिणी कथा निःश्रेयसाय भवति । येषां स्नेहमार्ग-धर्मकर्मरहितकेवलमनसा वृत्तिः श्रीराधिकायां गतिरतिभावो भवेत् ते एव तां लीलां प्राप्नुवन्ति । तस्मात्ताभिर्यत्साधनं कृतं तत्सर्वे कथय । अहो ताः सख्यः वैवस्वतमनोः पुत्र्य आसन् । ताः कन्याः पितुर्गृहे निरन्तरं क्रीडमानाः बभूवः । एकरूपा एकस्थिता एकपाणा एकभावापन्ना बभूवः । अतिगुण-गणनारताः पितृवत्सला भवन्ति । तस्य राज्ञो गृहे एकदा नारदः समागतः ।

ताः कन्या नारदं दृष्ट्वा प्रणिपातपुरस्सराः ।
तद्रूपमद्भृतं दृष्टं जटामकुटमण्डितम् ॥
वस्नालंकरणैर्युक्तं वीणावादनतत्परम् ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वाः स्थितास्तं चोपतस्थिरे ॥
पप्रच्छुस्तं तथाभूतं विनयान्नयकोविदाः ।
भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽटिस ॥
भवादशा महाभागा लोकानां च हिते रताः ।
शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः ॥

इति संप्रार्थितो नारदः प्रसन्नो वभूव। भोः पुच्यः को भवतीनां मनोऽभिलाषः ? तत्सर्व विस्तरशो ब्रूत । नारदेनैवं चोदिताः कन्याः पुनः प्रोचुः । पितुर्गृहे भावापन्नैर्भक्तैः सङ्गीयमानोऽयं व्रजलोकः । त्वं विस्तरशो ब्रूहि तम् । श्रुतमात्रोऽयं रसलीलां ददाति । तस्मात्तस्थानं रिसकानन्देन श्रीराधिकया सह सेवितं वर्णय । नो मनोऽभिलाषो भवति । यदि कृपा स्यात्तर्हि तल्लोकविस्तारं वद । पुनर्नारद उवाचेदं तासां मनोऽभिलाषं ज्ञात्वा । शृणुत सख्यो रहस्यम् । न कदाचिद्वचनीयम् । तत्स्थानं कोटिसूर्यप्रतीकाशं

तेजोमयं यत् निर्गुणं ब्रह्म पुराविदो वदन्ति । यस्मात्प्रजाः समुत्पन्नाः । ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्मादुत्पद्यन्ते लीयन्ते । आत्मविदो ज्ञानिन उत्पद्यन्ते लीयन्ते रसमार्गिणो भक्ता यं स्थानं प्राप्नुवन्ति । कन्या ऊचुः । ये रसमार्गीयाः भक्तास्तेषां लक्षणानि वद । नारद उवाचेदम् । ये रसिकानन्दोपासकास्ते सर्वात्मभावेन भजनं कुर्वते । भजनानन्दोपासकानां न वर्णो नाश्रमो न देशो न कालोऽस्ति । यो धर्माधर्मो परित्यज्य श्रीरसिकानन्दं सेवमानो भवति सः तां लीलां प्रामोति । येषां मनसि निश्चयस्तेषां प्रीतिरुत्पद्यते । य एवं रसमार्गे प्रपन्ना न तेषां धर्माधर्मों वाधमानौ भवतः । विषयैर्वाध्यमानोऽपि न बाध्यते । येषामहोरात्रं सेवाकथायां नित्यमासक्तिस्तेषां भजनानन्दो भवति । ये तस्मिन् मार्गे प्रपन्ना भक्तास्तेषां देयं ततो प्राह्यं यत्किञ्चिद्रस्तुमात्रम् । भक्तानां भक्तैस्सह कार्यं नान्यैः । भक्तानां भक्त एव ज्ञातिः । कुलवर्णधर्मादि सर्वे दैवतं यत्किञ्चिन्मात्रम् । रसगाः सेवकाः तेषां संबन्धो नान्यैः। अहो वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैः शास्त्रैर्नानावादैः नानाकर्मत्रतोपवासादिभिर्यमैर्नियमैश्च नानाऋषिकृतस्मृतिसिद्धान्तैरेकाद्रयुप-वासादिव्रतनियमैस्तुलापुरुषदानादिभिर्नानादर्शनसिद्धान्तविचारैर्वर्णाश्रमोचित -धर्मेः पितृश्राद्धादिभिः सूर्यचन्द्रोपरागकालोचितैर्ग्रहनक्षत्रताराज्योतिदशास्त्र-निश्चयेन भ्रान्तचित्तैर्विधिनिषेधस्मृत्योक्तैर्धर्मेर्भान्ताः सन्ध्योपासनकालसं-स्कारैर्बलिवेश्व देवबलिदानोपसर्पणैर्वेदमार्गादिभिर्नियमरेतैश्वान्यैर्धमैर्विश्रान्तास्तेषां रसिकानन्दः पुरुषोत्तमो न रमते। अहो सख्यः कर्मविश्रान्तास्तां लीलां कदाचित्र जानन्ति। साम्निका अमित्रतथारकाः कर्मजडास्तैः सह कदाचित्तद्धर्मालापनं न कुर्यात्। अतः किं बहुनोक्तेन। ब्राह्मणा य भक्तिमार्गे न विद्नित तेषां संभाषणं स्पर्श न कुर्यात् । कदाचिन्नालपेत् । ता ऊचु: --

भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽटिस । शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः ॥

अतः प्रार्थयामो महालीलाया दर्शनं यत्र रसिकानन्दपुरुषोत्तमो रमते । एवं प्रार्थितो भगवान् नारदस्तासामत्यानन्दमयलोकं दर्शयामास । महामन्त्रविद्यया कृतसंस्कारास्ताः सख्यस्तस्यां लीलायां भावापन्ना वभृतुः। ता ऊचुः । नारदेनोपदिष्टां विद्यां कथय यया विद्यया श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकया सह कीडास्थानं द्रक्ष्यामः । स होवाच । शृणुत सख्यः । यस्यां विद्यायां सद्यः समभ्यसनेन महावनविहारस्पर्शनं भवति । ऋपासमभ्यसनात् रमणानन्दलोकस्पर्शनं भवेत्। र्झी सकलकामदात्रीं भ्रृं भोगदात्रीं हीं रसिकानन्दविलासदात्रीं हीं रतिकेलिकलाकोविदां वां बृन्दावनशशिनीं सुं सुरतानन्दरूपां श्री मनोहारिणीं नृं निकुञ्जकेलिकौतुकाविष्टदेहां भ्रं भोगात्मिकां स्त्रां सस्त्रीनां सुखदायिनीं हीं रासकेलिकलात्मिकां ध्यायेत्। क्कीं नमः। इमां विद्यां भोगात्मिकां नारदेन दत्तां ताः कन्या जगृहुः। रसिकानन्दप्राप्त्यर्थे गृहीत्वा तां विद्यामभ्यसेत् । तासां पितुर्गृहे एकं वनं नानापुष्पवृक्षैः सुशोभाढयम् । तत्र पुष्पलतानां निकुञ्जाः सुशोभाढयाः संराजमाना मनोहराः सन्ति । तत्र ताः कन्या इमां विद्यामभ्यस्तवत्यः बृन्दावनबुद्धया । अहोरात्रं तद्बुद्धयस्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः तस्यां लीलायां मझा नान्यं देहविषयं विदुः। कचिद्रुदन्त्यस्तचिन्तया कचित्रृत्यन्त्यः कचिदलौकिकाः कथा वदन्त्यः कचिद्भक्तेस्सह अनुशील-यन्त्यः कचित्तस्मिन् वने बृन्दावनशोभां विधाय तद्भक्तैः सह राधा-रसिकलील्योरनुभवं कुर्वन्ति । एकदा तासामाश्विन्यां पौर्णमास्यां महालीलाया महोत्सवकाले निकुञ्जदेव्या दर्शनं प्रदत्तम् । अशरीरया वाण्या वरो दत्तः । भवतीनां मनोऽभिलाषो मया ज्ञातः । यदि मम लोकदर्शना-

काङ्क्षा स्यात् । बृन्दावने गोवर्धनाद्रिशिरति पुष्करिणीं विधाय तत्र मम ध्यानापत्रैर्भ्यताम् । ममानुप्रहेण मम लीलावलोको भविष्यतीति ता वरेण छन्दयित्वा अन्तर्दधे। ताः कन्यास्तत्र गत्वा तथाकुर्वन्। तस्मिन् गोवर्धने अप्सरःपुष्करिण्यां ताः सर्वाः पूर्वोक्तया विधया श्रीराधिकाया भजनं चकुः। इत्थं भजनमापन्नाः कन्या मासेनैकेन तं लोकमपञ्यन् । वृन्दावनं श्रीमत् सर्वकालसुखावहम् । यत्र पड्रतवः आधिदैविकेन रूपेण सेवमाना भवन्ति। यत्र रत्नजटिला भूमयो मणिज्योत्स्नाभिर्दीप्यमाना भवन्ति । यत्र फलैः पुप्पैः पत्रैर्मणीनां स्तंभाः शतशो राजमाना भवन्ति । यत्र मणीनां लता श्राजमाना विद्रुमलताभिः प्रथिता भवन्ति । सुवर्णलताप्रथिता मुक्तालता मुक्तागुच्छैः पूर्यमाणाः भवन्ति । यत्र सखीनां यूथानि परस्परं शृङ्गाररसेन क्रीडमानानि भवन्ति । यत्र फलैः पुप्पैः सुकोमलैः पत्रैर्विराजमाना वृक्षा लताभिः संकीर्णा भवन्ति । यत्र मध्यश्रेणीषु सखीनां चारा अतिसुशोभमाना भवन्ति। यत्र वकुलवृक्षाणां वनानि कुत्रचित्संराजमानानि भवन्ति । कुत्रचिन्मन्दारवृक्षाः संराजन्ते । अम्लानपुष्पैर्नारङ्गैः सुशोभाळ्या मवन्ति । कुत्रचित्पारिजातक-वनानि सुगन्धसंविकतानि सन्ति । तत्र वनेषून्मदाः कोकिला गायमानाः भवन्ति । कुत्रचिन्मन्दारवृक्षाः पुष्पपरागैश्चिता वस्त्रैश्छादिता इवासन् । तासु वृक्षाणां श्रेणीषु ताः कन्या एकं महास्थानं ददृशुः। पञ्चविंशधोजनायतं परितो वाप्यो दशदशचतुष्कोणेषु नानारसैः संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवः केसरकर्प्रमृगमदरसैः संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवोऽगुरुरस-संपूर्यमाणा भवन्ति । दश वायवः सुगन्धपयसा संपूर्णा भवन्ति । दश वायव उष्णोद्केनातिनिर्मलेन सुगन्धेन संपूर्यमाणा भवन्ति। तत्र दश वायवो मृज्जलेन सुशीतलेन संपूर्यमाणा भवन्ति । तत्र मध्यमण्डले

पञ्चविंशद्योजनायते सुशोभादचे मणिज्योत्साभिः संवेष्टिते सखीनां यूथानि यत्र क्रीडां कुर्वन्ति तत्र परितो निकुङ्जानां श्रेणयः सूक्ष्मलतान्तरैः संवेष्टिता भवन्ति । तत्र मध्ये एकं रत्नासनं सुखसंपूरितं सुरतानन्दस्थानं भवति । यत्र प्रेमवती स्नेहवती गुणवती उत्कण्ठावती उत्साहवती भोगवती कलावती गानवती मनोरमा सुरतानन्दा सुखसंवलिता निद्रा-संविलता निःशङ्का लज्जागतत्रपा सुभगा शृङ्गारवती संभोगवर्ती भावशुद्धा एता अन्याध्य सख्यस्तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति । निरन्तरं रासकेलिकौतुकेन नृत्यपरा सुगन्धकलावती संगीतज्ञा अङ्गसंवलिता रागज्ञा गुणज्ञा एताः अन्याश्च सिद्धान्तस्थानं सेवमाना भवन्ति । तत्र विहङ्गमानां पङ्क्तयो नानारूपैः कलशब्दैः सङ्गायन्त्यो भवन्ति । कचित् सखीमण्डले ताः रासक्रीडां कुर्वन्ति । कचित् कुञ्जान्तरे पुष्पपछवैः रचितशय्यायां क्रीडां कुर्वन्ति । कचिन्नानापुष्पैरङ्गप्रत्यङ्गेषु परस्परं शृङ्गारं कुर्वन्ति । कचित् पुष्पमालाभिरङ्गप्रत्यङ्गैः शृङ्गाररसं कुर्विति । कचित्कुञ्जान्तरे शृङ्गाररसं कृत्वा सुलं संसेवमाना भवन्ति । ताः कन्याः श्रीराधिकारसिकं दृष्ट्रा अत्यन्तमेव मुमुहुः स्तुतिं चकुः। अतितरां नम्राः कन्याः प्रश्रयावनताः नमश्चकुः विनयभावापन्ना बभूवुः । तया श्रीराधिकया स्वस्वरूपं प्रदत्तम् । तासां महालीलायां योग्यता प्रदत्ता । अहो सत्सङ्गमाहात्म्यं केन वर्ण्यते । दर्शनात्पर्शनादालापाद्भोजनाच्छयनादासनाद्भोजनोच्छिष्टकृपाप्रसादात् रसि-कानन्देन सहितायाः श्रीराधिकायाः कृपा भवति । अहो रसिका-नन्दोपासकानां रुक्षणानि वद येनाहं सतां सङ्गे विचरामि। अहो श्रुतमहालीलाः ! ये निरन्तरं सेवमाना भक्ता वेदमार्गकर्मातिरिक्ता भवन्ति ते रसिकानन्दमार्गमाचार्योक्तमधीत्य यो बृन्दावनोक्तमार्गः स्वीभिरुपासितः तासां मार्गे प्रपन्ना भवन्ति । अहो नानास्मृत्युक्तान् धर्मान् ये कुर्वन्ति

त इह संसारे विचरन्ति । ये पितृन् यजन्ति ते पितृलोकं प्राप्नुवन्ति । देवान् ये यज्ञकर्मणा यजन्ति ते देवलोकं स्वकर्मोपार्जितं यान्ति । ये बाह्मणाः ब्रह्मवर्चसमुपासमानास्ते ब्रह्मलोकं प्राप्नुवन्ति । गायत्रीं य उपासते ते सूर्य-मण्डले लयं यान्ति । येषां मध्ये शैवाः शिवोपासकास्तेषां प्रमादेनापि संभाषणं न कुर्यात् । ये कैवल्यधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासाः जलमाविशेत् । अहो रुद्रोपासका ये तमोधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेत् । यक्षोपासकाः सदा त्याज्याः । गणपतिदुर्गायाः भजनभेदा अनेकशः सन्ति । तान् ये भजन्ति तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेद्रसिकानन्दोपासकः । कर्मकाण्डोपासका रसिका-नन्दमार्गे न जानन्ति । जैनबौद्धचार्वाकमीमांसकवेदान्तन्यायपातञ्जलमतान्त-राणि तेषां सिद्धान्तं कुर्वन्ति । ये श्रान्ता भजनमार्गमविदुषः पण्डितमानिन-स्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च न कुर्यात् । विष्णुभजनरता नारायणोपासकाः श्रवणकीर्तनस्मरणवन्दनरता मत्स्यकच्छपवराहनृसिंहवामनपरशुरामरामोपासका वैष्णवास्तेऽपि तं लोकं न जानन्ति । तस्मात्तेषां सङ्गस्त्याज्यः । विष्णुभक्ताः ज्ञानवैराग्ययुक्ता अनन्याश्रययुक्तास्तेऽपि तं मार्गे न जानन्ति । सूक्ष्मतर-मार्गो ब्रह्मादिभिनारदादिभिः रुद्रादिभिः सृष्टिकर्तभिः प्रजापतिभिरप्य-तस्मात्तया श्रीराधिकयानुगृहीतास्तं रसं जानन्ति नान्ये। यदा यस्य देवतान्तरभजनं भवति वैष्णवेषु विद्वेषो भवति तान रसिकानन्दपुरुषोत्तमो न स्पृशेत्। अहो रसिकानन्दोपासकानां क्रियाः शृणुत । ये मनसि भजने सुनिश्चयास्तल्लीलोपासकाः सत्कथाक्षिप्तमानसाः तल्लीलोपासकानां सङ्गेन कथाकीर्तनासक्तास्ते तत्सेवातद्भावेन शोकमोह-अमत्सरा अहंभावरहिता ज्ञानवैराग्यसहिता बृन्दावन-भयोद्वेगरहिता रसलीलायां निमग्नानां तेषां तद्भजनमेव **ळीळोपासका** भवन्ति ।

साधनं तद्भजनमेव ज्ञानं तद्भक्ता एव ज्ञातिः तद्भक्ता एव कुलं एवं रसठीलाप्रपन्नो भवति । गृहादिधर्मान् त्यक्त्वा वर्णाश्रमधर्मान् त्यक्त्वा जातिकुलधर्मान् त्यक्त्वा मोक्षधर्मान् त्यक्त्वा सन्न्यासधर्मान् त्यक्त्वा देशकालकर्मस्वभावसंसिद्धान् धर्मान् त्यवत्वा रसलीलामभ्यसेत्। रसलीलायाः सेवाविं कथय येन विधिना महालीलायाः प्राप्तिर्भवति । तद्भक्तानां दर्शनं भवेत्। स होवाच। रसलीलाया भजनं त्रिविधात्मकम्। एकं ध्यानमयम् । प्रतिकुञ्जं प्रतिवृक्षं ध्यानापन्नो भवेत् । रात्रौ दिवा रसिकानन्दं श्रीराधिकया सह हृदि चिन्तयमानः सखीभावेन भावापन्नो भवेत्। तदनुभावेन पुलिङ्गं विध्य महालीलायां लयलीयमानो भवेत्। द्वितीयं भजनप्रकारं शृणुत । येन भजनेन रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह दृष्टिपथमापद्येत योऽरममयं वा धातुमयं वा रसिकानन्दस्वरूपं श्रीराधिकया युतं विधाय शय्याभोजनशृङ्गारै राजोपचारैः स्नेहभावेन भजनं करोति अहोरात्रं तद्भावेनापन्नो भजनं करोति स तां लीलां प्रामोति। ये रसिकानन्दोपासका भक्तास्तेषां सेवायां व्रतधारणम् । अहो भक्तानां सेवास्तु दुर्लभतराः । येषां हृदि निश्चय आपन्नस्तेषां श्रीरसिकानन्दः श्रीराधिकया सह प्रसन्नो भवति । भक्तानां सेवास्तु अत्यन्तदुर्रुभा भवन्ति । ये निष्कर्ममार्गिणो भक्तिमार्ग केवलमापन्नास्ते सेव्याः पूज्या एव भवन्ति । ये. अन्यधर्म त्यक्त्वा रसिकानन्दसेवकास्ते भक्ता नान्ये। भक्ताः सुसेवमाना भवि । तस्यात्सुसेवमाना भक्ताः कृपां कुर्वन्ति । साधूनां समचित्तानां कृपया महालीलाया दर्शनं भवति । तस्मात् रसिकानन्दं हृदि स्थाप्य साधूनां सङ्गेन वृन्दावनरहस्यमार्गानुसारेण सुसेवमानो भवति । अतिरसमग्रा भक्ता नान्यं विदन्ति । अहो पुनर्महालीलाया वर्णनं श्रुत्वा वयं न तृप्यामः । शृणुत पुत्राः । वनविहारलीला पूर्व नारायणेन लक्ष्म्यग्रे

कथिता तदा श्रुतं तद्हं वर्णयामि । अहो महालीलायाः स्थानं नारायणेनापि न दृष्टम् । यत्राष्टौ मणयः संराजमाना भवन्ति । चन्द्रकान्तमणिनामृतेन पुष्पपछ्ठविता वृक्षाः सेव्यमाना भवन्ति । लतानामालवालानि सौवर्णानि दीप्यमानानि जलैः पूर्यमाणानि भवन्ति । तत्र सूर्यकान्तमणिना प्रदीप्य-माना वृक्षलताः शोभायमाना भवन्ति । मणिलताभिर्प्रथितानि मन्दिराणि तेजोमयानि संराजन्ते । प्रसारितलता वृक्षेर्प्रथिता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । तेषु निकुञ्जेषु लतानां नानारङ्गाः संदीप्यन्ते । तत्र शृङ्गारवस्यादयः सस्त्यः शय्योपकरणानि रचयन्ति । सुशोभायमानाः पक्षिणः कलशब्देन श्रीराधि-कायाः शृङ्गाररसं सङ्गायन्तो भवन्ति । पिकयूथानि मनोहरेण शब्देन देववाण्या तस्याः श्रीराधिकाया रमणलीलां गायन्ति । तत्र मध्येमण्डलं तेजोमयमस्ति । हाटकमयास्तेजोभूमयस्तेजोमयाः संविराजन्ते । यत्र भूमो परित अष्टो मणयः सन्ति तेषां प्रसारिता लता सुवर्णलताभिर्मका-लताभिर्प्रथिताः पुप्पैः पछवैः संवलिता भवन्ति । प्रतिमण्येकैकं मन्दिरं सकलसिद्धवस्त्रसमन्वितं भवति । रतिमन्दिरे शय्याः पयःफेननिभाः संराजन्ते । तत्रान्नानि विविधानि अन्यपूर्णया सख्या पाचितानि । प्रतिक्षणं नूलानि श्रीराधिकायै भोज्यार्थे भवन्ति । तत्र सुगन्धरसिकया सख्या रचिताः सुगन्धरसा अगुरुचन्दनकेसरीमृगमदकपूरीद्या अनेकसुगन्धरसाः श्रीराधिकया संभोज्या भवन्ति । तत्र शृङ्गारवत्या संख्या रचिताः शृङ्गारा वस्त्रालङ्कारसंयुक्ताः सुभगा नानावस्तुमयाः श्रीराधिकार्थे कल्पिताः सुभोज्या भवन्ति । रङ्गवत्या रचिता रतिरङ्गा वचनप्रतिवचनमया इन्द्रि-यादिभावमयाः श्रीराधिकाया भोगार्थे भवन्ति । गानवत्या रचिता नाना-रागरक्रभोगाः समयोचिताः प्रतिक्षणं नूत्नाः श्रीराधिकार्थे सुभोज्या भवन्ति । नृत्यकवत्या रचिताः सुगन्धकलाः श्रीराधिकार्थे कल्पिता भवन्ति । तत्र

स्थाने भोगवती नाम्ना सखी नानाभोगान् कल्पयति । कटुतिक्तमधुरकषायाः सुस्वादा भोगाः श्रीराधिकाया भोज्यापन्ना भवन्ति । रतिवती नाम्ना सस्वी नानारतिसुखमुत्पादयति । रतिकलाकौतुकानि मनोज्ञानि भवन्ति । सुरतानन्दा सखी नानासुरतकलां श्रीराधिकायै कल्पयति । मनोज्ञा सखी नानामनोभावं ददाति । सुखदा सखी नानासुखं रसिकानन्दं प्रति राधि-कार्थे कल्पयति । ताः सर्वाः सख्यः सुखकेलिकलानुभावेन रासलीलां कुर्वन्ति । तस्मिन् मध्यमण्डले सुरचिता सखी कस्मिश्चित्समये रासलीलां रचयति । तत्र मध्ये कामेन सेवितं तेजोमयमासनं कल्पयित्वा श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं समावेशयति । तत्र परित एताः सख्यः कीडाकलां दर्शयन्ति । कलावती गुणवती पुष्पवती अङ्गचपला सुरतकलाकोविदा रसकलाभिज्ञा रसभावज्ञा विपरीतसुरतनृत्यकलाकोविदा एताश्चान्याः सख्यः तस्मिन् मण्डले स्वान् स्वान् गुणान् प्रकटीकृत्य रसिकानन्दं सेवमानाः भवन्ति । साधनसिद्धाः संसिद्धाः सख्य अनेकरूपैस्ताभ्यां सुसेव्यमानाः भवन्ति । यादशा भक्तास्तादशं सुखं तादशो लीलाभावश्च भवेत् । पुनस्ते ऊचुः । महास्थानं कियत्प्रमाणम् ? संसिद्धोऽयं रसः । संसिद्धः कीद्दन्विधः ? ते संसिद्धा भक्ताः कीद्यन्विधाः ? तेषां रूपं कीद्यन्विधम् ? रसिकशिरोमणिरा-नन्दात्मकपुरुषोत्तमः श्रीराधामानन्दरमणानन्दरूपां तेन रूपेण सह बुभुजे । नित्यानन्दरूपेण सह पुरुषोत्तमो नित्यानन्दरूपः संक्रीडमानो भवति । सः एवं रूपं गोपिकास्वाविभीवेन क्रीडियप्यति । पृथमूपेण क्रीडमाना अभ्येति । तद्भावे कीडिष्यमाणा गोप्यः पृथक् संकीडमाना इव एकमेव स्थानमध्यासते । तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम् ? कीद्दग्विधा भक्ताः ? क्रीडमानं रूपं ताभिः संपीयमानसौष्ठवं किम् ? पुनरुवाचेदम् । रहस्य-मतितरां सौष्ठवम् । षड्विधोऽयं रासः । तेषामेव रासलीलायामापद्यमानं

रूपम् । रहस्यस्थानं महालीलायां शतयोजनायतं पद्मरागजाम्बृनदसुवर्ण-खचितम् । नीलमणिना परिधयः शोभाढचा एवासन् । मध्यमध्ये पुष्यराग-मणीनां स्थानं संभ्राजते । तेषामतितरां मणिज्योत्स्नां राजमानामभ्येत्य तस्मात् परितः शतकुञ्जविद्रुमलताः सुवर्णसुगन्धलताम्रथिताः सुसुगन्धाद्य-मातन्वन् । तेषामेव मणीनां शक्तयो विराजन्ते । पुष्पितवृक्षलता सुगन्धर-साभ्येति । तत्सुगन्धावेशिताः सख्यो भावापन्ना रमणरसरमणे रसरमणा-नन्दे रसे मझा भक्ताः प्रेमवत्यादयो लीलायां योग्यतामभियन्ति । रतिक्रीडा-यामानन्दरसः संभवति । ते सख्यस्तस्मादुत्पन्ना भवन्ति । शृङ्गाररसं दृष्टि-गोचरमुपसंपद्यन्ते । तस्मात् रमणानन्दादुत्पन्ना आत्मानन्दरूपिणः । यत्र यत्र तया देव्या स्वावेशेन सुखं सुसंसिद्धोऽयं रसः। तासां गोपीनां गृहंगृहमापद्यमानः प्रतिरूपं सुखं संयोजयति । तासामेव रसावेशेन रासस्थानं शतयोजनायतं पद्मरागमणिजिटलनीलमणिना विराजितं जांबृनदमणिना सुवर्णेन जटितं शतशो मणिखचितम्। तस्मिस्थाने मणिस्तंभाः शतशो विराजमानास्तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन अनेकशो रूपाणि कृत्वा आत्मानं विभज्य स्वरसभोगसुखं संभुञ्जते । यथायथा रूपाणि तथातथा रसिकानन्दस्य रूपाणि सुखं संभोक्ष्यन्ते । तेषु तेषु रूपेषु क्रीडन्त्यस्ताः निकुञ्जदेव्याः स्वाभिभावेन व्रजलीलायाः सुखमापद्यन्ते । स एव रासः । आनन्दाद्रमणानन्दोऽयं योज्यते । चन्द्रावलीचन्द्रभागासुश्रोणीसुभगाद्याः शतशो गोपभार्या वेदऋचः। वेदपुरुषा इमे गोपास्तासां गोपीनां आत्मस्वरूपेण स्वयमेव रमणानन्देनायोज्यन्त । पञ्चिलता रञ्जुर्दश्यमाना अग्निरेवाभाति । गोकुलोऽयमग्नेः संयोगादेवा-भाति । ता गोप्यस्तद्भावेन रसं अनुभवन्त्यस्तस्या निकुञ्जदेव्या भावमा-पन्ना आसन् । द्वयो रासयोरिदं भवति । तृतीये रासे तु गृहं गृहं प्रति

स्वयंस्वयमेव रसिकानन्दस्वरूपे कीडिता आसन् । स्वानन्दाविर्भावाय तासां योग्यतां निरूपयति । सुखमनुभवन्त्य आत्मभाव एवासन् । चतुर्थे त गोरसविकीडा गोप्यश्चन्द्रावळीप्रभृतयोऽनेकशो दानलीलया निकुञ्जदेव्या स्वावेशेन सुखमनुभूय तद्वचनादभीष्टानि प्रतिपद्य योग्यानीन्द्रियाणि परस्प-रसुखं भुञ्जानास्तस्या निकुञ्जदेच्या रसिकशिरोमणिना सह सुखं स्वयमेव रूपेण अनुभवन्ति । पञ्चमी महालीला स्वयमेव वृषभानुगृहे प्रकटिता । तां तया सह पुरुषोत्तमरसिकानन्दोऽयं स्वयमेव व्रजलीलायां प्रकटितवान् । सः एव सुखं रमणानन्दरूपेण संभोक्ष्यमाणोऽभवत् । परस्परबाललीलासुखयुग्मरूपे एकमेव रूपं भवति । एवं तस्मिन् वृषभानुगृहे स्थानानि शतशः पद्मरा-गकुड्यानि गृहाणि तप्तसुवर्णपरिधीनि विराजमानानि भवन्ति । ललिता-विशाखाशृङ्कारवत्यादयः स्वयमेव प्रकटिताः सख्यः स्वयमेव स्वरसं प्राप्ताः रसमानन्दात्मकमनुभवन्ति । अन्याश्च शतशो गोपीभावं प्राप्तास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति । यं यं भावं संयोक्ष्यमाणा गोपी भवेत्तं भावं द्वारि प्राप्य रास-लीलाकृते उज्जहार । अत्यन्तभावलीलायां संयोक्ष्यमाणा गोपी पुष्करिण्यां तासामङ्गरागेण गीपीचन्दनं तासामेवोच्छिष्टं बुभुजे । भक्तानां तदेव हितकारि भवेत् । तदङ्गरागोद्भततदाविभविन महालीलायोग्यतां प्रतिपेदिरे । पुनः संशयं पप्रच्छुः। अहो द्वारिकायां रासः कस्मिन् समये कृतः? तत्र महालीलायाः स्थानं कुत्रास्ति ? यत्र रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः क्रीडति । केऽत्र भक्ताः १ केषां सहायेन महालीलास्थानं प्रकटितम् १ शृणुत सस्यः । महानयं गोप्यो रसः । ये प्रत्ययापन्ना भक्तास्ते तं रसमनुभवन्ति व्रज्ञिलायाम् । त्रिविधा गोप्यः सन्ति । एका वेदऋचः सन्ति । एके अग्निकुमाराः सन्ति । एके संसिद्धाः श्रीराधिकया सह प्रकटिता भवन्ति । अष्टौ यूथानि संसिद्धानां भवन्ति । तेषां द्वादश यूथानि ब्रह्मणः पुत्राः

अग्निकुमाराः सन्ति । द्वादश यूथानि वेदस्त्रीणां सन्ति । ते साधनसिद्धाः ये भक्ताः श्रीराधिकया सह रसिकानन्दोपासका भवन्ति । याः संसिद्धास्तासां नित्यलीलायामनुभवः। ये अग्निकुमारास्ते व्रजलीलायां श्रीाधिकया सह रसिकानन्दमुपासमानास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति । या वेदरूपिण्यस्तासां विरहभावेन महाननुग्रहः कृतः। प्रथमं महालीलायाः प्राप्तिः पश्चाद्विरहः । ता विरहोत्किण्ठिता गोप्यो नान्यसुखं विदुः । तासामर्थे पञ्चयोजनपर्यन्तं महालीलायाः स्थानं प्रकटीकृतम् । तासां मनोभाववुभुत्सया एकं स्वगणं रहस्यलीलायोग्यं प्रेषयामास । द्वारिकालीलायां महालीला प्रकटिता । सं एव गणस्तास्तत्रैव नयति । रसिकानन्दस्तासां स्वली-लामाविष्करोति । रुविमण्याद्याः पट्टराज्ञ्यस्तां लीलां श्रुत्वा उत्कण्ठिताः बभ्वुः । ताभिः प्रार्थितो रसिकानन्दो महालीलां दर्शयामास । तदा रसिकानन्देनोक्तास्ताः पट्टराज्ञ्यो भवन्त्यस्तलीलायोग्या न भवन्ति । इमाः लीला लोके वेदमर्यादातिरिक्ताः। रसमार्गोपासका भक्ताः स्त्रियस्तां लीलां जानन्ति । वयं राजपुत्र्यः कथं तस्यां लीलायां योग्या न भवेम । बहुराः प्रार्थितो रसिकानन्दस्तथेत्युक्त्वा पुनराह । अहो राजपुत्र्यो भवतीनां यदि महालीलाद्शीनाकाङ्क्षा भवति तर्हि अहं निशीथे आधिदैविकीं रात्रिं प्रकटयिष्यामि । तत्राधिदैविकोऽयं चन्द्रस्तत्राधिदैविका भक्ताः लीलोपयोग्या भवित । भंवत्यस्तत्रैवायान्तु । इति कथितास्ताः सर्वाः विस्मयापन्ना बभूवुः । अहो अत्यन्तमाश्चर्योऽयं विलासः । तत्रागता सुयोगा सखी रासलीलायां योगं चकार। सखी तत्र रामलीलां रचयति। रसिकानन्दः पुरुषोत्तमोऽतिमनोहररूपेण तासां मनांसि जहे। ताः सर्वा गोप्यः श्रीराधिकायाः कृपावशेन रमयांचकुः । तत्र रसिकानन्देन ब्रह्मरात्रिः प्रकटिता । तस्यां रात्रौ ताः सर्वा मनोरथशतै रमयांचकः ।

कीडान्ते ब्रह्मरात्रिरपावृत्ता वभूव । द्वारिकायां स्थिता राजपृत्र्यः द्वारे स्थितान् गुरूनुमसेनवसुदेवाद्यान् ददृशः। रसिकानन्देन मोहि-तास्तत्र स्थिता गुरवो ददृशुः। तासां ता रात्रयो रासलीलाया ध्यानेन व्यतीताः। ब्रह्मरात्रिरपापावृत्तेति पातस्ताः सर्वास्तत्रैव समागताः। तत्र तत्स्थानं ददशुः । यत्र मणिलता मुक्तालताः सुवर्णलताः पृष्पैः पत्रैः फलै: संपूर्णा मणिस्तंभैर्प्रश्निता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति । सिद्धयो मूर्तिमत्यः तत्रैव स्थिता दहशिरे। कामदेवो रत्या सह तत्रैव दहशे। तत्र स्थिताः गोप्यो रसिकानन्देन संयुक्तास्तासां राजपुत्रीणां लीलां दृष्टा निर्गलित-माना बभूवुः। ताः प्रश्रयावनता रसिकानन्दं पप्रच्छुः। अहो रासलीलामस्माकं दर्शय। ताथिः प्रार्थितो रसिकानन्दः प्रोवाच। समयोऽयं व्यतीतः । ब्रह्मरात्रिस्तु गता । मया भवतीनां पूर्वे कथितमस्ति । भवत्यो रासलीलायां योग्या न भवन्ति । ये वेदोक्तकर्ममार्गरतास्ते कदाचिदिमां लीलां न जानन्ति । तस्मात् भवत्य इमा लीलायोग्या न भवन्ति । ब्रह्मलोके स्थिता रुद्रलोके स्थिता इन्द्रलोके स्थिता नागलोके स्थिताः स्त्रियस्ता अपीमां लीलां न जानन्ति । अन्ये मम भक्ताः सन्ति । तेऽपीमां लीलां न जानन्ति । तस्मात् भवत्यो निर्गिलितमाना जाताः । तेन भावेनैतासां दर्शनं न प्राप्ताः । ताः राजपुत्र्यो रुक्मिण्याद्या रसिकानन्देनोक्ता दृष्ट्वा प्रसन्ना वभूवुः। तासां नामानि पप्रच्छुः । सुयोगजा सखी तासां गोपीनां नामानि कथयामास । इयं चन्द्रावली नाम्ना तथा चन्द्रकला विख्याता। चन्द्रानना रोहिणी मनोरमा माधवी पुष्पगन्धा सुरतकलावती भोगवती हंसगमना गुणवती गानवती सुरतकलाकोविदा सुविहारवती नृत्यकलाभिज्ञा एताः सख्यः स्वयूथैस्तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति । ताः पद्वराज्ञ्यस्ताः संपूजयामासुः ।

नानासुगन्धाङ्गरागेण वस्त्रालङ्कारभूषणैस्तासां शृङ्गारमकुर्वन् । तासामुच्छिष्ट-जलेन पङ्काङ्गरागेण गोपीपुष्करिणीति विख्याता वभृव। यस्यामुत्पन्ना मृत्तिका अतिपवित्रा भवति । ता गोप्यस्तद्भावेन महालीलायां लयं प्राप्ता चभ्वुः । सा लक्ष्मीः प्रश्रयावनता नारायणं पप्रच्छ । तेऽभिकुमाराः ऋषयः कुतः समुत्पन्नाः ? तैरिदं स्थानं कथं प्राप्तम् ? केन साधनेन ते सिद्धा भवन्ति ? स होवाच । पूर्वे ब्रह्मा लोकपितामहः सनकादिना पृष्टः । महालीलायाः स्थानं कथय । यत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह नित्यं कीडति । तत्प्रश्नेनातुरो ब्रह्मा ध्यानापन्नो बभूव । स समाधौ महालीलां ददर्श। तद्दर्शनेन विकलेन्द्रियो वभूव। तत इन्द्रियभ्यो रेतः आपद्यत । ततो रेतः अभौ न्यपतत् । गाईपत्यकुण्डे निपतितं रेतः पुरुषायितं बभूव । ततः समुत्पन्नाः पुरुषा अग्निकुमरा भवन्ति । ततस्ते ऋषयो गोवर्धनाद्रौ शिरसि तप आतन्वन् । तिह्नमारभ्यैते तु ऋषयो त्रजं सेवमाना बभूवुः । एकदा ते ऋषयो गोवर्धनादौ शिरस्येकां कन्यां दह्युः । श्रीराधिकयानु-गृहीतां सर्वाक्रमनोहरां तत्राप्सरःपुष्करिण्यां मज्जमानां तां दृष्टा ते प्रश्रयेण नम्रा बभृवुः । सा कन्या तान् प्रत्युवाच । भो ऋषयः कुतः समायाताः ? किं कुरुत? ऋषय ऊचु:। वयं ब्रह्मण: पुत्रा अस्मिन् वने निवसन्तो महावनविहारलीलादर्शनकाङ्क्षिणो भवामः । पुनस्तेऽग्निकुमारा ऋषयः ऊचुः । भो भवती कुतः समायाता किं कार्यं कुरुते ? इदं रहस्यम् । यदि मनसि कृपाविष्टा तर्हि रहस्यं कथय । साधवो दीनवत्सला एवासते । तया देव्या अनुगृहीतानां तेषामतिकृपाशाली स्वभावोऽयमापद्यते । सा पुनरुवाचेदं स्वयमेव करुणया। अहो अहमपि पूर्व महारुद्रराज्ञ: पुत्री आसम् । तस्य गृहे निरन्तरमः इतः क्रीडमाना गीतगानैहरेलीलां मनस्या-सादितास्मि । तस्य गुरुविभाण्डकमुनिपुत्री रूपशालिनी नाम्ना सा

निरन्तरं तस्यां लीलायां सदा ध्यानानुभावना तया देव्यानुगृहीता लीलोपयोग्यैति । तदा श्रावितानामधुनातर्नी लीलां सोपरिष्टामभ्येति । ते ऊचुः । को मन्त्रः ? क उपदेशः ? किं ध्यानं तस्याः ? उपदिश । यदि करुणावती वद । शृणुतेदं रहस्यम् । न कदाचिद्वचनीयोऽयं रसः सर्व एव । धर्माधर्मविरक्ता ये भक्तास्तेषामप्यवचनीयः । रसरहस्यविद्यामुपास-मानः सद्योदर्शनमापद्यते । ॐ क्कीं क्कीं राधे संमोहिनि कामदात्रि काम-केळिकलारूपिणि नमो नमस्ते । इदं रहस्यं सर्वेषामपि दुर्लभतरम्। आनन्दरसिकशिरोमणिमोहनेन रूपेण सद्योलक्षं जिपत्वा ध्यानापन्नो भवेत्। संशृणुयात्तां सा नविकशोरी तप्तहाटकाभरणा केशच्छटाचिक्कणसुगन्धर-सम्नावितसीमन्तसिन्दूरसेचितमणिघटितसुवर्णभूषणैभूषिता रत्नकर्णभूषणज्विल-तकुण्डलाभ्यामन्यैः शुट्याद्यैभूषणैः संयोजिता केसरमृगमदकर्पूरचन्दन-नानारेखासंयोजितललाटा मणिहीरकजात्यतिलकयोजिता संशोभते । काम-कार्मुकअ्रूलतासंमोहितरसिकानन्दा तद्घाणमूर्च्छितेयं सदा तदावेशयोग्यतां प्रपद्य ध्यायमाना भवति । तां प्रपद्य स विश्वजयी भवेत् । नेत्रकृपाकटाक्षैर्भक्ता-नामभयदायिनी भवति । खञ्जनमीनचाञ्चल्यवशीकृतो रसिकानन्दो भवेत् । नासाचञ्चुरतितरां तेजसा राजते । कपोली सुवर्णसंपुटी तेजोमयौ भातः । शोभते नासा आभरणरचिता। मणिमयमुक्ताफलैर्गुम्भितो भवति विम्बाधरो विद्रुमकान्तिः । द्विजाली ताराकारा भवति । सा तेजसा भातितराम् । ज्योत्स्नाराजमानाननोत्कण्ठग्रीवा राजन्तेऽतितरां कपोलकण्ठादयः। तिर-स्कुर्वन्ति तस्या बाहुशोभां केयूरकटकानि मरकतगुम्भितानि वलयानि शतशः तेजोमयानि । अतितरां लघु ताराकान्ति तिलकं शोभामत्येति । राजमानौ हस्तौ करतलाभ्यां यावकरसविभाविताङ्गुलीभ्यां सूक्ष्मतरमणिघटिकाभ्यां भवेताम् । सुवर्णभूषणानि संराजमानानि सुरोचन्ते । तस्या वक्षोजावति- मृगमदागुरुरचितावेव पुरुषोत्तमरसिकानन्दरमणाधिष्ठानं संराजमानावेव भवतः । मुक्तागुम्भितहारवल्लीद्वयौ च गिरी इव संराजमानौ भवतः । गम्भीरनाभिद्वदसन्निधाने नवरोमराजीया शोभा हाटकोपघटितनीलमणि-राजिरिव राजते । कटिमेखला क्षुद्रघण्टिकाराजमाना मणिघटितहाटकस्रचि-तताराजालशोभामभ्येति । संराजमानजधनस्थलवासिमोहनगृहं सौभाग्याढचं शंबरवैरिणोऽधिष्ठानं रसिकानन्दैककलसुरतममलाम्बरैः परिवेष्टितं सुवर्णतार गुम्भितं शोभायमानं राजते । कदळीकाण्डरुचिरावूरू शोभामभीतः । चरणकमलमञ्जरीशोभा राजमाना यावकरङ्गरञ्जितेव शोभामभ्येति। नख-चन्द्रतेजसा राजमानोऽयं लोको विराजमभ्येति । अतः परं शृणुत सखायः । रसिकानन्दस्य रूपं सदा निकुञ्जदेव्या ध्येयम् । आनन्दमात्रोऽयं करपादे तेजोमयोऽमृतमयः । इयामहिरण्यपरिमध्यवनमालया युतो बर्हापीडो नटनाट्ययुक्तो मञ्जो रोचमानो राजमानः शोभायमानः शोभया संराजते अतितराम् । एक एव पुरुषोऽयं स्त्रीषु रमणानन्दीयति । रसः संराजमानत्व-मभ्यति । संशोभायमानो भवेत् । एक एव रसो द्विधा भिन्नोऽयं श्रीराधा-कृष्णरूपाभ्याम् । नित्यानन्दाय नमो नमः । तस्मात् रससंयोगे भक्ता-स्तिस्मिन् रसे संप्रीयमाणमनसः सिलस्थाने शोभायमानमभ्येत्य संगच्छन्ते । कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्रप्रभं संराजमानं तेजोमयं ब्रह्मेति पुराविदो वदन्ति । यस्मात् सृष्टिरुत्पद्यमानाभ्येति । संरोचमानाद्यस्मात् समुत्पन्नसृष्टयो ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्य प्रतापशक्त्योत्पन्ना नानासृष्टिं कुर्वन्ति । यस्य प्रतापशक्त्योत्पत्तिस्थितिलयानातन्वन्ति । यस्मात् प्रेमानन्दान्नित्यानन्दोऽयं लोकः प्रकटितो भवति । प्रेमानन्द एव सृष्टिस्त्वाधिदैविकी । तस्मात् प्रेमानन्दरक्तपुरुषोत्तमाधिष्ठानसौष्ठवं यत्र कोटिशो निकुञ्जनानालताप्रन्थिस्तासु गन्धवृक्षादिः राजमानत्वमभ्येति । यत्र निकुञ्जश्रेणिषु सखीनां यूथान्यतितरां

100 8° - 100

कीडाशृङ्गारयोग्यान्युपकरणानि राजमानान्यभ्येत्य शोभायमानानि राजन्ते । स्थाने स्थाने पृथक् प्रक्रियमाणानि शृङ्गारस्थानानि । हाटकमणिमय्यो भूमयः । नानारक्रमयफलपुष्पयृक्षादिराजमानामभियन्ति षड्तवः । यत्राधि-दैविकरूपेण विराजमाना नानातन्वन् । तेषामेष यादशा भक्तास्तादशलीला-दृष्टिमामद्यमानं शृणुत । सिलप्रेम्णाऽयं लोकः सृष्टोऽस्माभिः पितृगृहं त्यक्ता अस्मिन् वने पर्वते नानारमणस्थानमस्माकमनुभवं प्रतिपद्य रचितं आधिदैविकं स्थानं बृन्दावनं अतिपुष्टपुष्करिणि यत्र निकुञ्जदेव्या सह पुरुषोत्तमो रमणानन्दो नित्यक्रीडामातनोत् । संकेतस्थानं रमणानन्दयुतो रसिकानन्दः क्रीडते । रमणानन्दः स्वरूपस्वामिन्यावेशः । रसिकानन्दस्तु पुरुषावेशः । इमां लीलाविद्यामधीयते ये तेऽनेन व्रजसङ्गिनः सङ्गेन सङ्गच्छ-न्ते । तस्मात् तत्या लीलायाः कथा मद्भक्तेः सह भक्तया लीलाकथायां मगाः रात्रौ यत्र यत्र पुरुषासक्ता आत्मानन्दं तद्रृपिणं कुर्वाणा भवेयुः । रुचिरां लीलां योज्यमानां तां प्रतिपद्यमाना हि तया स्तुत्या ध्यानेन तल्लीलानुभवेन तन्मन्त्रोपासनेन तां लीलां पश्यन्तस्त ऋषयस्तद्भावेन गोवर्धनादिशिरसि अटन्तः आत्मानं तद्भावेन भावयन्तोऽभवन् । रतिरसभावेनानन्द-योग्यतां वृक्षलतौषधयोऽनेकक्षेऽतितरामापद्यन्त । श्रीराधापुष्करिण्यां तं मन्त्रं जेपुः । तद्भ्यानं चकुः । तद्भूपे गुणात्मके एकरसे प्रत्यपद्यन्त । अतितरां गाढप्रेमरूपमापद्यन्त । अतीन्द्रियज्ञानेन आपद्यन्त । रतिप्रसङ्गेन तया निकुञ्जदेव्या स्वलोकदर्शनमनुभाविता अभूवन् । सा अत्यन्तगाढप्रेम्णा तल्लोकसेवनात् स्वोच्छिष्टं भुञ्जानात् तान् प्रति तद्भावाभवत् । बृन्दावनेरहस्यकीडायां महारासस्थलं दर्शया-मास । तद्दर्शनेन योग्यतां प्राप्ता अत्यन्तस्तवनं चकुः । ते अग्नि-नमः । नम आनन्दरसदायिने । प्रेमानन्दाय रतिदायकसुरतानन्दाय

कुमारा ऊचुः । श्रीरसिकानन्दाय नमः । नमस्तुभ्यम् । रसिकानन्दाय नमो नमः ।

अन्याकृतविहारिण्यै सर्वन्याकृतिहेतवे ।
नमः कल्याणनिधये नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥
नमोऽनन्तभोगविधन्यै भोगात्मिकायै भोगसाक्षिण्यै । नमः शृक्कारः
रूपाय । नमो भोगरूपाभ्याम् ।

शरदि क्रीडते तुभ्यं नम आनन्दशालिने । नमोऽनन्तविहाराय नमस्ते रसरूपिणे ॥

नमो रससाक्षिणे । नमो गूढकेलिकलाय । नमो दानशीलाय । नमो बृन्दारण्यविहारिणे । तदनुरूपेण तदा साक्षिणे नमोऽणुरूपाय । नमो धर्माय । नमः सर्वधर्मातिरिक्ताय । नमः कामदेवकुञ्जराय नमो नमः । सङ्केतिबहारिणे नमः। दानलीलायुखदायिने नमः। भोगसुखरूपाय नमः। अत्यन्तसुखदेहिने नमः। सर्वधर्मातिरिक्ताय नमः। अनन्त-सुखसंभवाय नमः। श्रीराधिकावल्लभाय नमः। श्रीराधाधरसुधा-शालिने नमः। र्झी कामवने कुञ्जकेलिरसिकाभ्यां नमः। त्रां त्रीं वृन्दावने रहिस संविलितिनित्यानन्दरूपाभ्यां नमः। नमः ही सृष्टिसमुत्पन्नाभ्याम् । नमः हां सर्वचैतन्यभोगश्रावकाभ्याम् । युवाभ्यां नमो रमणसुखवल्लभाभ्याम् । ॐ श्रीवृन्दावनसदामोददायिभ्यां नमः । ॐ नमो बृन्दावने सखीसमूहे परस्परक्रीडासंवलितदेहाभ्याम् । ॐ नमः परस्परशृङ्गारसुखभोगवद्भचाम् । ॐ नम आद्यनादिसंभोयसुखभोक्त-भोगाभ्याम् । ॐ नमो वृषभानुनन्दगृहे क्रीडार्थं संप्रकटितदेहसंभवाभ्याम् । 🕉 नमो ललितादिसंस्तुत्यदेहाभ्याम् । ॐ नमो यमुनाकेलिरसिकाभ्याम् । 🕉 नमो जलकेलिरसिकाभ्याम्। ॐ नमो नौकारसकल्लोलाभ्याम्।

ॐ नमो ग्रीप्मर्तुसेवितरूषाभ्याम् । ॐ नमो वसंतर्तुसेवितरूपाभ्याम् । ॐ नमः शरदि रासकोडाकुत्रूहलेंनानन्दिवहारसर्वप्रदायिभ्याम् । यत् यौवनेऽद्भृतं रूपं कामकलाचातुर्याभिसंमितं तेभ्य एव नमो नमः। अत्रातिस्नेहमंकुलितमनोसद्म येषां तेभ्य एव नमो नमः । सर्वकारणरूपाभ्याः नमो नमः । सर्वस्रपाविभावाभ्यां नमो नमः । भक्तवात्सल्याविभावाभ्यां नमो नमः। अत्यन्तनिगूढभावसंमोहिताभ्यां नमो नमः। प्रत्ययरस-वीरुत्सुखदानुगुणगणयोग्याभ्यां नमो नमः । अनन्यभावरूपशोभासञ्चरित-स्वारस्यसंविहतगुणगणनाभ्यां नमो नमः । रूपशोभासञ्चरितरसरसवादिगुण-गणनाभावाभावसंवाहिभ्यां नमो नमः । यद्रुपदत्पृथिव्यां तदेकरूपाभ्यां नमो नमः । एवं स्तुत्या स्तावितो सद्योदर्शनमभवताम् । तद्दर्शनप्राप्त्या कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्राहादं तस्या निवु झदेव्याः कटाक्षमन्वभवन् । तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपेणाहो प्रार्थयत वरमित्युक्त्वा मनोऽभिलिषतं उपाच्छन्द्यन्त । त्रजगोपकन्या भविष्यामः । तथा ममावेशेन रसिकानन्दे सुरतानन्दा भवन्तु । तेऽग्निपुत्रा ब्रजे सत्स्वरूपतां प्राप्ता महालीलायाम् । नित्यानन्दरूपमेव यन्ति ते येषां स्थानं शतशो निकुञ्जरासस्थळानि । निकु झदेत्र्या श्रीराधिकयात्मानं शतसहस्रधा कृत्वा तस्मिन् रसिकानन्दे तया देव्यात्मानं रसयाञ्चकुस्त ऋषयः । तद्भावोऽनल्यं विपर्ययमातनोत् । तस्यां लीलायां भावापन्ना भावा अभवन् । शृणु महारुक्षिम लीलायां येऽप्यरण्य-धर्मिणो ये ज्ञानवैराग्यरहितास्ते तां लीलां प्राधुवन्ति । तस्माद्धर्माधर्मी परित्यज्य पापपुण्यं परित्यज्य ये रसिकानन्दीमाज्ञां प्राप्तास्ते तां बाह्यन्ति । इदं रहस्यं न कदाचिद्वाच्यम् । सा लक्ष्मीः पुनरुवाच । ये योग्येषु सदा सहकारिणोऽभवन् नित्यलीलयानुभवलीलामापद्यन्त् तैः साधनं कृतम् ? केन साधनेन सिद्धा आसतः अत्यन्तरसठीलामग्राः

रसिकानन्दे तया देव्या श्रीराधिकया दर्शनसुखं प्राप्तवन्तः। किं प्राप्तं येन आनन्दे अभवन् । स होवाचेदं रहस्यं प्रश्नम् । सखायः समुत्पद्य नित्यं त्रजलीलायां सहकारिणोऽयुज्यन्त । यथापूर्व गोपानां द्विधा भेदा अभवन् । ये गोपाः सदा वनलीलायां सहकारिण आसत ते सदा सुश्लोकदेवप्रस्थवरूथपकृष्णबलरामदेवहार्कुमुदरोचिष्मद्रमणाद्या विरा-जमाना अभियन्ति । तेषां स्वलीलार्थं स्वर्गानन्दात् ते गोपाः प्रकटिताः । तेषां प्रेमानन्दं दत्तवान् । ते प्रेम्णा भजनेन रमणानन्ददर्शनयोग्या. अभवन् । येषां प्रेमानन्दसंपत्तिस्ते रमणानन्ददर्शनयोग्या एव भवन्ति । रमणसंपदि योग्या दर्शनस्पर्शालापसुखलीलारतिरास्तां तेषाम् । रमणानन्द-दर्शनयोग्यतामातन्वन्नन्येषाम् । एकरतिरास्ताम् । रमणसेवायां संस्थापक-शय्योपकरणगुणरूपगानरतिध्यानकीर्तनलीलास्मरणतद्भावापत्तिरूपसेवा यथा-कालोपपन्नसेवैवास्ताम् । रतिसेवायां रतिसेवाकथायां मनोऽयुञ्जत । अहो लिक्म मम रूपाण्यनेकशो ममावतारा अनेकशः। अंशकला आवेशाः पूर्णाशास्तेऽपीमां लीलां न जानन्ति । अन्यास्तवांशकला उत्पन्नास्ताः अपि लीलां न जानन्ति । अन्ये ये शतशः सहस्रशस्तेऽपि तस्या लीलायाः अनन्तरा आपद्यन्ते । तस्मात्तत्तल्लीलोपयोगिलीलापाप्तिरेवास्ताम् । न धर्मो न कर्म न ज्ञानम्। न कर्म केवलम्। एक एव तल्लीलापाठः। एकैव लीलोपसेवा । किशोरनवनूलनवीयस्सदाविहारानन्दकलानियेः रसिका-नन्दिशरोमणः श्रीराधाश्रियोऽतिमोहनस्योपासका भक्तास्तेषामुपासनम् । तल्ली-लायोग्यतया धर्मोपासका वैष्णवा वैकुण्ठलीलामनाश्रिताः सनकादयो नारदा-दयोऽपि । जयन्तकुमुदजयविजया अन्ये च ये तेषां मम रूपाणि रासलीला-योग्या ये ममाविर्भावास्तेषां दर्शनं न भवत्येव। अन्ये कर्मोपासकास्तां रीलां स्वमेऽपि न ददृशुः। अहो अनन्यभक्तिपरा काष्टा। अहो मद्भक्तानां पङ्ग

एवं परा काष्टा। तल्लीलाकथा परा काष्टा। तस्यां लीलायां प्रत्ययः परा काष्ठा । अन्यकथाधर्मदानव्रततीर्थसाधनानि विमुक्तानि । यमनियमप्राणायाम-प्रत्याहारकलासुखभाविता सामान्यभक्तिरपि त्यक्ता। तल्लीलोपासकानां एकैव व्रजलीलातायत । रतौ रमणानन्दे रतिरासां भवति । अवस्थि-तोऽयं रसः । शुष्कवादिनामन्यां लीलां न शृणुयात् । कर्मवेदजनितानि कर्मोपासनानि ये कुर्वन्ति ते कर्मजडा आसुरास्तेवां हठात्सक्रस्त्यज्यते। चित्तवृत्तिं दूषयति । येषां सङ्गं नालपेन्न शृणुयात् ते धर्मविरोधिनस्तां लीलां न जानन्ति । तस्मात्तद्धर्मदृढकारिणो ये ते सेव्याः पूज्याः । ते तां लीलां ददति । अनन्यधर्मान् शृणुयादिति रसमार्गिणां धर्मः । अरसिका जीवाः कर्मजडा ये तेषां स्वेष्टं न दर्शयेत्। स्वेष्टस्य वार्तामपि न श्रावयेत्। सस्वायो येषां विद्याविर्भावस्तेषाम्। अन्य-विद्यारुचिर्न भवत्येव । यदनन्यधर्मे रुचिरास्तेऽरुचिरन्यत्र भवेत् । तस्य स्वेष्टे आविर्भवति रतिः। सोऽन्यदिष्टं विस्मरति। गुरुकृपया जीवत्वं प्रपन्ना-नामनुग्रहत अनुग्राह्यानुग्राहकभावेन रतिराविर्भवति । अतिरतेः स्नेहं विना न प्राप्तिः स्यात् । नारायणं प्रति लक्ष्म्या आविर्भूतया तया निकुञ्जदेव्या यानि सुखान्यनुभूयन्ते तेषां प्रश्नं पुनरभिवदति । ये साधनसिद्धास्तेषां कुतः स्थितिः। कया सरण्या तल्लोकप्राप्तिः स्वरतिरास्ते। कया रसिकानन्देन तस्या निकुञ्जदेव्याः प्राप्तिर्भवेत् । ये गवां गणास्तेऽतितरां तस्या देव्याः दृष्टिगोचरा एवासताम् । पुरुषो रसिकानन्दः स्वहस्तेन तेषां यथासुलं परिमार्जयन् दिधदुग्धनवनीताद्यान् रसान् स्वयमेव भुङ्क्ते । ये वर्त्सतरास्तेषां स्वहस्तेन पृष्ठभागान् परिमार्जयति । तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम् । नन्दादयो गोग वृषभान्वादयश्च ते गोपाः साधनसिद्धा वा संसिद्धा वा । यशोदाद्याः हियो मातृभावं प्राप्तास्ता अनादिसंसिद्धा वा साधनसंसिद्धा वा । यासां

गृहे रितकानन्दोऽयं पूर्व तया श्रीराधया स्वयमेव संसिद्धासु भावप्रकटितः एव भवति । अत्यन्तस्रोहावभवताम् । अत्यन्त उत्सवो रमण एव भवति भजनप्रेमानन्दसुखपाप्तौ । अतितरां रूपासक्तिनं कथं भवेत् । सुखरूप-रतिर्थेधामन्यर्तिक स्मर्यते । स होवाच पूर्वे सृष्टगुत्पन्ना अष्टौ वसवः । तेषां वसुनाम्ना अष्टौ कोटयो वसवो देवप्रवरा मम लीलालोकं श्रुत्वा तल्लोके श्रुते उत्कण्ठमाना लीलयापेदुरिति श्रुतम् । इमं महिमानमभ्येत्य वनलीलासक्ताः अतितरामासताम् । अतिलोछपे चित्ते तस्यां वजलीलायां राधा आस्त । संसिद्धनिकुञ्जलीलायां मयोपविष्टा मौनेनापन्नभावा अभवन् । ओङ्कारा-विभीवलीलारूपश्रीराधारसिकानन्दरूपं प्रतिपद्य मनो भावापन्नं कृत्वा तां लीलां गायमाना अभवन् । ते वसव ऊचुः । ॐ श्रीराधारसिका-नन्दविनोदाभ्यां संयुक्ताभ्यां नमो नमः। नित्यक्रीडात्मने नमो नमः। कामकेलिकौतुकात्मने नमो नमः। केलिकौतुकात्मने नमो नमः। श्रङ्काररसविनोदिने नमो नमः। धात्रे क्रीडासंपादिने नमो नमः। अनन्तरससंपादकारिणे नमो नमः। सीमन्तिने नमो नमः। रतौ संभोगिने नमो नमः । नानासुरतानन्दनिधये नमो नमः । रसिकानन्दशि-रोमणये नमो नमः। रासमानजलकीडात्मने नमो नमः। कीडाविनो-दिने नमो नमः । रतिसंभावितसुखसंविष्ठतात्मने नमो नमः । सुरतो-त्कण्ठिने नमो नमः । यौवनात्मने नमो नमः । रससंभोगात्मने नमो नमः । अत्यन्तकीडाश्रान्तिसंवल्प्तिवदनाय नमो नमः । प्रथमसङ्गरञ्जितात्मने नमो नमः । संभोगचदुचादुवचनाय नमो नमः । मृदुकपोलवाण्यात्मने नमो नमः । निकुन्ते पुष्पशय्याशृङ्गारवत्सखीसुखदात्रे नमो नमः । आलिङ्गनचुम्बनसुरत सुखसंविकतवद्नाय नमो नमः। सुरतानन्दसमयवशीकृतरसिकानन्दाय नमो नमः। आसनभेदसंयोगसुखदात्रे नमो नमः। विपरीतसुखदाय

उदारचेतसे संभावितजितरसिकशिरोमणयं नमो नमः। सुरतानन्दवशी-क्रतस्वाधीनपतिकाशृङ्गारात्मसुखदायिने नमो नमः । ललितायां विशाखायां कलावत्यां शृङ्गारवत्यां योजितात्मने नमो नमः। भोगद्रष्टे भोगसंभवाय नमो नमः । निद्रासंभावितविश्रलंभसुखसमनुभवतिरस्कृतरसिकानन्दात्मने नमो नमः । अत्यन्तप्रवीणरससुखरसिकशिरोमणिभोगभावुकात्मने नमो नमः । सर्वेक्रीडारसपूरिणे नमो नमः । पृथिव्यां यत्र सुरतानन्दभोगास्तद्भोगाविर्भा-वान्तर्यामिणे नमो नमः । पृथिव्यां यदानन्दरूपं तत्तदानन्ददायिने नमो नमः । पृथिव्यामतिकाममनोरथं सिद्धं वासिद्धं सुन्दरं सुभगं तेषामेव नमो नमः । एवं स्तुतस्तदा वसुभिः स्वानन्दाविभीवं ददावतिभीतो रुद्रोऽयम् । वसुनां प्रवरोऽयं नन्दोऽभवत् । धरानाम्नी स्त्री यशोदास्त । बृहद्वसुश्रेष्ठः कीर्तिदेव्या सह वृषभानुरभवत् । निकुञ्जदेव्या रसिकानन्देन सह यत्रा-नन्दोऽभवत् । नन्दोपनन्दभद्राश्वकृतवदुग्रभङ्गोदधिसामन्तातिरोचिष्मत्कात्ये-यमत्यनघरोचिष्मदुष्णीषरिक्मवसुसुजया अन्ये च शतशो वसवः साधनसिद्धाः एवासत । तेषां स्त्रीषु श्रीयशोदा सा च सत्या आस्त । रसिकानन्दशिरोम-णिर्बृन्दावनेश्वर्या सह संक्रीडमानोऽभवत् । अतिरूपलावण्यलवकस्क्ष्मस्व-रूपेणैनं भजमानाय नन्दरूपं दत्तवान् । ते गोपा गोप्यः । ते परस्परमेक-प्राणा एवासत । ते गोपा एकप्राणा एकरूपिण एकभावा अभवन् । येषां पुरुषोत्तम आनन्दः। अन्याश्च गोप्यो नानाभजनभावमाविष्कृत्य भजनानन्दे भजनं कुर्वन्ति । अतितरां स्नेहोऽभवत् । सा लक्ष्मीर्नारायण-मुवाचेदम् । अत्यानन्दोऽयं लोकः । यस्मिन् लोके केवलरसनिधिर्मोहनेन रूपेण क्रीडामकरोत् । सा बृन्दावनेश्वरी कोट्यानन्दरूपा यत्र बालकेलिक्रीडां तेषां स्थानानि कीद्यियानि । गृहाणि कीद्यियानि । वद सर्वमानन्दाविर्भावेन । भजनानन्दः सुखं श्रीराधारसिकमोहनमेवं

क्रीडामातनोत् । स होवाच लक्ष्मीम् । नन्दस्य गृहं सर्वसमृद्धचा-नन्दाव्धि मणिमयमाधिदैविकेन रूपेण स्वप्रकाशमकरोत्। पद्मराग-कुड्यः । सुवर्णजाम्बूनदप्राकारा वीथयो विराजमाना भवन्ति । यत्र वृषभानुगृहं नन्दगृहाद्योजनायितम्। तस्मात् स्थानात् द्वादश लघुकोमलमणय एवासन् । तासु श्रेणिष्वनेकशो श्रेणयोऽतितरां लताप्रतानिन्य एवासन् । सुवर्णयूथिकाप्रवाळैर्मणीनारङ्गप्ररोहैरानन्द-क्रीडास्थानमनुरचितं भवति । तत्रेदं संकेतस्थानम् । अहो किं वर्ण्यते चतुर्योजनायितम्। नन्दवृषभानोर्गृहात् द्वादश विराजमानाः सङ्केतस्थलादुपरितः। तेषु स्थानेषु मध्यस्थिता अनेकशो विविधलताप्रावारा अभियन्ति । मुक्तालताप्रथिता मणीनां तेजसा प्रद्योतिता अभ्येत्यतितराम् । सहस्रनिकुञ्जा कदम्बलता सुगन्धसंवलितातितरां विस्तीर्णाभ्येति सुभगा कदम्बमञ्जरी । हरितपीतनीरुश्वेतशुभ्राः कदम्बाश्च परागोद्भृतपरिधयः सुवासिता आसन्। तद्गन्धलोलुपश्रमराः संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेकशः कोमलकलं यशो गायमानाः सन्ति । कोकिलपिकशुकाः संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेककोमलकलं गायमानाः सन्ति । रूपलावण्ययुताः हंसमयूरादयोऽनेकशो रुचिरा भवन्ति । ते तस्मिन् स्थाने रसिकानन्देऽति-मोहनरूपे नित्यं संक्रीडमाना भवन्ति । वृन्दावनेश्वरीनित्यक्रीडाप्रधानं भवति राससस्वीनां समूहेन दशसहस्राणां समेतानां वृषभानोर्गृहम् । वृषभानुपुरं पूर्णानन्दयुतं प्रेमानन्दयुतं सुखसन्ततियुतम् । सर्वाः समृद्भयो द्वारे तिष्ठन्ति । अष्टमहासिद्धयो द्वारे द्वारे तिष्ठन्ति । अतितरां सुखसंपत्तिः स्वरूपेण सुसेवते । ये ये विद्यासधर्माणः सुभगाः सुरतकलाकामनिद्रालज्जाप्रेमसुरतो-त्कण्ठादयस्ते विराजमाना भवन्ति । अधितत्स्थानं निकुञ्जे मध्ये सुगन्ध-शीतला मणयो ग्रीष्मादिषु ऋतुषु सेन्यरूपाः कचित् सुगन्धपारिजाताः

केचिद्रक्षाश्चम्पकाः सदापुष्पिताः सदा सुकोमलैः पत्रैविराजन्ते सुगन्धाः। केचिद्रक्षाः पकफलसुगन्धरसयुक्ता विराजमाना आसते । केचिल्लताप्रकीर्णाः अतितरां सुगन्धयुताः। आमोदगन्धलुब्धा भ्रमरा मुदा गायन्ति। काश्चिद्गोप्यस्तन्न मज्जन्त्य आसते। काश्चिद्गोप्यस्तस्यां वस्नालंकरणै-र्भूषयांचकः । काश्चिद्गोप्यः प्रेमासक्ता राधारसिकानन्दाभ्यां भोजनं चकुः । काश्चिद्गोप्यो दोळां ताभ्यां सह दोलयित्वा गायमाना आसन्। मुद्रा काश्चिद्गोप्यस्तचित्रशालायां स्वानि स्वानि रूपाणि पश्यन्ति हृप्यन्ति रात्रौ दिवानवरतम् । गोप्यो भावाश्रितास्तद्वाललीलां गायमाना भजनं चकुः । अत्यासक्ताः प्रेमभजनरूपा आनन्दं विन्दन्ते । ततो गोपास्तथा रसिकानन्दे मझा अत्यन्तप्रेमभजनं कुर्वते । ये प्रेमभजने निमझास्ते तां लीलामापद्यन्त । नित्यलीलाभजनानन्दोऽयं रसोऽनिर्वचनीयः । नन्दयशोदा-वृषभानुसत्यादयो ये भक्तास्ते भजनानन्दं नित्यमनुभवन्त्यतितराम् । भूयो भूयः सुखसौष्ठवमभवत् । एवं गोपा गोप्यस्तन्मयतां प्राप्नुवन्ति । तासां मातृभावं प्रपन्ना गोप्यो भजनानन्दे भजनमेव कुर्वाणा आसन्। तासां गृहा दिष्टचानादिसुखसमृद्धिसंपत्तयो भवन्त्यानन्दसुखसमृद्धि-सिद्धयः । नानाभजनयोग्यान्युपकरणानि तद्थें संपादितानि भवन्ति । गोपगोपिकादीनां समृद्धिसुखं तस्य भजनार्थमेव भवति । अतितरां सुखार्थमेव योग्यतापद्यते । अनन्तसुखसंपत्तितया निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन सुखकोट्या-नन्दं प्राप्नुवन्ति । अभियन्ति च सुखसंयोग्यताम् । पृथिव्यां भारते क्षेत्रे आनन्दमयो लोक: स्वसृष्टिलीलार्थं स्वयमेव प्रकटित:। तस्मिन् व्रजलोके सर्वा एव लीलाः सन्ति । ये गोपा गोप्यस्ते आधिदैविकीं लीलामतितरां संसिद्धा अनुभवन्ति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । रहस्य इह व्रजमण्डले यानि पृथक्स्थानानि तानि ब्रूहि। एकविंशतियोजना भूमिरानन्दमय्येवास्ति।

दक्षिणकूलतो महास्थानं पञ्चयोजनायतं विहारस्थानमतितरां सुक्ष्मं नित्यविहाररहस्यकेलिकलाविर्भावभावितम् । तस्मिन् स्थाने ये वृक्षाः गृहाणि निकुञ्जा अन्यानि विहारस्थानानि तान्याधिदैविकान्यासन् । यो वंशीवटोऽयं साक्षाच्छिवोऽयम् । यो भण्डीरवटः स एव देवेन्द्र आसीत् । तत्र स्थिता ये पक्षिणस्ते साधनसिद्धा आसन् । ते निरन्तरं ताभ्यामासन् । ये तत्र मनुष्या आधिदैविकरूपा एवासन् ते बृन्दावनेश्वरीसमनुगृहीतास्सदा तां लीलां दर्शयन्ति तदनुप्रहतः। यासामज्ञात्वा ज्ञात्वा वा यस्मिन् कस्मिन् भावे भावो भवेत्ता भावेन तां लीलां प्राप्नुवन्ति । यत्र कुत्रापि स्थितोऽपि तद्धन्दावनोद्भवां मृत्तिकां भक्षयेत्। स एव तां लीलां प्राप्नोति। तत्स्थानोद्भवानां वृक्षाणां पुष्पमालां ये कण्ठे धारयन्ति ते सर्वकृत्यं विधूय तां लीलां प्राप्नवन्ति । सदा तां लीलां गायमानास्तां लीलां प्राप्ता एव सन्ति । यै: प्रतिक्षणं बृन्दावनं स्मर्यते ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्त्यतितराम् । अस्या-माधिदैविकीं लीलां प्राप्तास्तां लीलां गायन्ति ध्यायन्ति । स्नेहासक्ता ये तस्मिन् स्थले निवसन्ति ते पूर्वे तत्सृष्टचुत्पन्ना एव सन्ति नान्यत्र। तस्मिन् बृन्दावने गोवर्धनोऽयं पर्वतः पश्चयोजनायतः । त्रीणि योजना न्यच्छिद्रितसप्तशृङ्गाणि निरस्तधातुमयानि । यत्र निरन्तरं श्रीराधारसिकः यस्य गहराणि एकोमलानि सुगन्धजुष्टानि संक्रीडते । विराजमानानि भवन्ति । यस्मिन् गोवर्धने स्वयमेव श्रीराधारसिकशिरोमणिः कीडां करोति । अतितरामानन्दमयोऽयं पर्वतो यस्मिन् पर्वते रुद्रो रुद्राण्या सह पूर्व सृष्टचादौ तप आतनोत्। येन तपसा शिवः शिवोऽभूत् तत्र रुद्रशिवपुष्करिण्यां ये मज्जनं कुर्वन्ति ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । ये तं पर्वत-मुपसेवमाना भवेयुस्तेषामनेनैव शरीरेण लीलायोग्यतास्ति । अनेनैव गोवर्धनाद्रौ कामदुघा या तप आतनोत् सेयं गोविन्दपुष्करिणी।

'ये प्रेममभास्तस्यां पुष्करिण्यां मज्जन्ति सेवन्ते ते तां काले काले तस्याः दर्शनयोग्यतामतिप्रेमानन्दप्राप्तिमनुभवन्ति । यत्र मानससरोवरं विधाय मयापि तप आतन्यत । तत्तलोकेच्छया अप्सरसा उर्वश्या तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ तप आतन्यत । सानुभवोऽयं लोको यत्र यत्र परितः शिलाः श्रीराधाकृष्णनामाञ्चितास्तत्र ताः शिलाः श्रीबृन्दावनेश्वर्यधिवसित । आनन्दमयेन सह ये भक्तास्तस्य परिक्रमं कुर्वन्ति ते तल्लीलादर्शनयोग्यतां प्राप्नुवन्ति । इन्द्रपराजयमहोत्सवे अहमपि ब्रह्मादिना सह तस्मिन् स्थाने दर्शनार्थं गमिप्यामि । अतितरां श्रीराधारसिकस्य क्रीडास्थानं भवति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रहस्यस्थानेऽस्मिन् पर्वते रुद्रेण कस्मिन् काले तपः आतन्यत । तल्लीलां विस्तरशो ब्रहि । मम मनोऽतिलोलं तस्यां कथायाम् । सुखे कस्तृप्तिं याति । येन तपसा ध्यानेन तद्भावो भवेदतितराम् । अहो अहं तं लोकं श्रोतुकामा । विस्तरेण ब्र्हि । एवं प्रपन्नां हृद्याधाय स्वयमेव नारायण अभिवदस्यतितरामानन्दमयेन चेतसा । स होवाच । शृणु लक्ष्मि अस्य लोकस्य हन्त माहातम्यम् । अहं वक्तुमशक्तश्च । यस्य श्रीराधिका रसिकानन्दस्य विहारस्थस्य दर्शनालापकथानुभव अतितरां सद्यः सरूपे रमणानन्दे स्नेहाधिक्यं प्रापयन्ति । तथैव ते धन्यास्ते कृतार्थाः । ते अन्य-धर्मरहितत्वेन प्रेमानन्दे प्रीतिमापद्यन्ते । अतितरामासक्तिर्भवेत् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शुद्रो वा अन्ये जात्यन्तरजाः शतशो जात्यन्तरभेदास्ते प्राप्नुवन्ति । न वर्णेन न धर्मेण येषां लीलारतिरास्ते ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति । अन्यभावेनेश्वराविष्टचित्ता अन्यदेव प्राप्नुवन्ति । तद्भावे न कदाचित्तमेव प्राप्नुवन्ति । येषां तल्लीलानुभवो न स्यात तेषामनेकशः साधनानि तृथा स्युः । ब्रह्मविद्यासेविनो ज्ञानिन आत्मवेदनेन तां लीलां न प्राप्नुवन्ति । तस्मात्तलीलादर्शनयोग्या भक्ताः स्वभावेन तस्याः श्रीराधि-

काया अनुग्रहात्स्वात्मभावा भवन्ति । शिष्टानुशिष्टस्वेष्टध्यानकथासेवानुभावेन तेषामनुभवकथायामासक्तिः स्यात् । सा संयोक्ष्यमाणा रतिरिन्द्रियार्थे । रतिसङ्गो भावापन्नो भवति । ये रतिकलनयानुगृह्यन्ते ते तां लीलां प्राप्तवन्तो भवन्ति । सर्वे त्यक्त्वा तल्लीलाया अनुभविनो भवन्ति । अनुभवसंभवस्तदा भवेत् यदा साधवः कृपां कुर्वन्ति रतिर्भवति च । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । त्वयोक्तं येषा वजवासिनी सृष्टिरद्भुतं स्थानं प्राप्तेवेति यस्मिन् स्थाने गोवर्धनोऽयं राजमान आस्ते । तस्मिन् गोवर्धने रुद्रेण तपो रुद्राण्या सहाक्रियत । पुष्करिणीं विधाय तप आतनोत् । यथायं लोको रुद्रेण तपता दृष्टः स्तुतः कथितो हृदि ध्यात एवायं लोकः सर्वेषां भक्तानां संदर्यते । सुशोभनोऽयं लोकः सर्वेषां लोकमहालीलाया आवेशेन तेषां भक्तानामनुग्रहं प्रपद्यमानो भवेत् । कथं रुद्रेण दर्शनं प्राप्तम् ? केन साधनेन शिवः सिद्धोऽभवत् ? स एवं गोवर्धनाद्रौ कियत्कालं किंरूपं तपोऽतप्यत ? दृष्टविभवोऽयम् । विस्तरशो ब्रुहि यदि कृपाभावो भवेत् । स होवाच । पूर्व सृष्ट्यादावेकस्मिन् समये शिवः शिवया वैकुण्ठे तल्लीलादर्शनार्थं गतवान् । तत्र नानासत्त्वमयानि संक्रीडमानान्यनेकशो रुद्रेण दृष्टानि । सर्वा मया कीडिताः कीडा दृष्ट्वा अनुभूय अतृप्तेन्द्रियोऽभवत् । ममाग्रे स्थितो रुद्रो मम ध्यानावस्थां दृष्ट्वा अत्याश्चर्यवान् अहो साक्षान्नारायणोऽयं परं ब्रह्म । रुद्रादयो यं ध्यायन्ति । रुद्रादयो यां वैकुण्ठाश्रितां लीलामभिलपन्ति । आदित्या-दयो यं द्योतयन्ति । यस्य कलावतारान् पृथिव्यां देवा ऋषयः स्तुवन्ति । यं नारायणं ध्यायन्ती तेन रमा सदा क्रीडते। यं गत्वा चतुर्धा मुक्तयो द्वारे तिष्ठन्ति । तद्धाम सर्वेषां देवादीनामपि दुर्रुभतरम् । स एव नारायणः कस्य भजनं कुरुते। अत्याश्चर्यं गतो रुद्रो बद्धाञ्जिलिः नारायणं स्तौति । स होवाच रुद्रः । नमोऽनन्ताय महते वैकुण्ठाय श्रीमते

तेजोमयाय तुभ्यं नित्यं नमो नमः। तवांशकला या नृसिंहाद्याः रामाद्या अनेकशो लीलामयास्ता ध्यायमानोऽहं शिवतां अहमधुनात्याश्चर्यं गतवानस्मि । अहं निरन्तरं तव ध्यानेन विचरामि पृथिव्याम् । त्वं कं ध्यायसि ? सर्वे वर्णय तव कृपा यदि स्यात् । इति शिवेन संप्रार्थितोऽहं तल्लोकस्थितिं कथयिष्यन् —शृण् तात अहं नित्यं तल्लोकं ध्यायामि । यत्र निकुञ्जेश्वर्या कीडते रसिकानन्दो वनविहारे । यद्रहिस क्रीडास्थानम् । यत्र आनन्दमयकामकेलिकौतुकरितरासविनोद-कुङ्जाश्च शतशो विराजन्ते । यत्र गोवर्धनोऽयं गिरिः राजमानो भवति । यत्र कदम्बकुञ्जश्रेणयो गह्दराणि रत्नानि धातुमयानि । यत्र पुष्करिण्योऽ-मृतोदैः पूर्णा विराजन्ते । यत्र मणिगणाकरा ज्योत्स्नातितेजोरूपसंविलत-परस्परवस्त्वभतिबिन्बिता आसते। तस्य लोकस्य दैवतं श्रीराधिकया सहानन्दरसिकं पुरुषं ध्यायेम । यस्य कटाक्षात् समुत्पन्ना लोकानां ब्रह्माण्डानामुत्पत्तिस्थितिलयान् कुर्वन्ति । अनेकशो विद्या अविद्या देवा-श्राप्तराश्चानेकशः सृष्टिस्थितिलयान् लभन्ते । यत्र ब्रह्माण्डानि कोटिशो विराजमानानि राजन्ते । तदिततरां सुशोभायमानं ब्रह्मेति पुराविदो वदन्ति । यत्र गत्वा धाम्नि लयं यान्ति योगीन्द्राः । शृण् यदि ते तस्य लोकस्य द्रष्टुमिच्छा वर्तते तर्हि त्वं व्रज । व्रजमण्डले गोवर्धनो गिरिरास्ते । रत्नधातुमयोऽयं पर्वतः । यत्र रसिकानन्दो बृन्दावनेश्वर्या सह क्रीडमानोऽभवत् । परितः क्रीडोपयुक्तानि वनानि द्वादश शोभाय-मानानि सुगन्धलतौषिधिभः संलग्नानि राजन्ते । यमुनामृतोदकैः क्रीडाविहार-स्थलानि संराजन्ते । यत्र यमुना बद्धोभयतटीविराजमाना भवति । अतितरां पद्मरागपुष्परागचन्द्रकान्तसूर्यकान्तमणीनां तेजोभिर्विराजमानानि जलानि यत्र यमुनाया उपरि शतशो वानीरकुञ्जा विराजन्ते । शोभन्ते ।

जातियृथिकामिककासुवर्णयृथिकाप्रकरसुगन्धसंविकतेऽस्मिन् परागधृतोन्मदाः अमरपिकशुकसारसहंसश्रेणयः शोभायमानाः कलकृष्टैर्निकुञ्जदेव्या यशोऽति-भवन्ति । यत्र बृन्दावनलीलाया निकुञ्जदेव्याः गायमाना रमणलीलास्थानम् । यस्य स्मरणादेव रसाविष्टचित्तो भवेत्। बृन्दावनं बृन्दावनं इति प्रतिक्षणं ये वदन्ति ते देहोपाधिं त्यक्त्वा तस्य लीलारतिमनुभवन्ति । तन्ममापि निरन्तरं ब्रह्मादीनामप्यदृष्टगोचरम् । सहस्रयोजनात् ये वृन्दावनं संस्मरन्ति वृन्दावनमिति प्रतिक्षणं वदन्ति ते तल्लीलोपयोग्या एव भवन्ति । यत्र कुत्रापि मृतो बृन्दावनोपासकस्तत्स्थलं तीर्थरूपं भवेत् । ये वृन्दावनोद्भवास्तुळसीकाष्ठाङ्कितमालाः कण्ठे धारयन्ति ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्ति । तस्यां लताः सरसा आसते । अतितरां प्रीतिः भवति । ये वृन्दावने वृक्षास्ते आधिभौतिकाः सिद्धाः । साधनसिद्धा इतस्ततो भ्रमन्तीर्रुता ओषधिकीडास्थलानि कुर्वन्ति । तया देव्या बृन्दावनेश्वर्या त्रयः कोटयः पुलिन्दगणा उत्पादिताः । तेषां बृन्दावनवासिनां देहोच्छिष्टानि मलमूत्रादीनि देहोद्भवानि कफलालामूत्राणि ते पुलिन्दगणा अपरे उत्क्षिपन्ति । तेषां भक्तानां दिव्यदेह आधिदैविक एवास्ते । अतितरां सौभाग्याट्यो भवति । अहो शिव बृन्दावनमाहात्म्यं केन वर्ण्यते ? सेवका यत्र कुत्रापि यत्किञ्चत् भोगार्थे कुर्वन्ति तद्भोगो रसिकानन्देन सह निकुञ्जदेव्या सर्वः संभोक्ष्यते । अतितरां सुखसंभोगस्थानं तत् स्थानं ममापि ध्येयं भवति । अहं निरन्तरं ध्यानापन्नो भवामि । तस्मिन् बृन्दावने मध्यस्थानं निरन्तरं तस्य स्थानस्य ध्यानेनाहमानन्दस्थानमानन्दावेशेन भवामि । आनन्दध्यानादहं तत् प्रतिपद्ये । अहो शिव त्वमप्यानन्द-स्थानमतितरां प्रतियोज्य तदभ्येहि । ध्यानापन्नो भव । रतिरसभावभेदध्याना-पन्नो भव । तद्भृन्दावनेश्वरीरूपमङ्गप्रत्यङ्गं रसिकानन्देन सह यो ध्यायति

स एव क्रीडायां मनोभावापन्नो भवति । पुनः शिव उवाच । त्वयोक्तानि द्वादशवनानि । तेषु वनेषु पृथक् पृथक् वद सर्वम् । स होवाच । शृणु शिव वर्णनं वनानां यानि श्रुत्वा त्रजलीलायामत्यन्तस्रुखिनः संभवन्ति । महावने नन्दस्याधिष्ठानम् । गोकुले गवामधिष्ठानम् । यमुनायां क्रीडाधिष्ठानम् । बृन्दावने स्वामिन्या लीलाधिष्ठानम् । कामवने महालीलासङ्केतस्याधिष्ठानम् । बृहद्भने वृषभानुपुरनन्दपुराधिष्ठानम् । लोहवने पुलिन्दस्याधिष्ठानम् । तालवने उपनन्दाद्यधिष्ठानम् । दिधित्रामे दध्यिष्ठानम् । गोवर्धनाद्रिष्ठष्ठे दिधिवक्रयाधिष्ठानम् । गोवर्धनाद्रयधो दानश्रेणिदानलीलाधिष्ठानम् । अयं गोवर्धनाद्विः रमणलीलाधिष्ठानं भवति ।

अरिष्टे गोगणे कुब्जवटे वृन्दावने तथा । गोवर्धनगिरौ रम्ये सृष्टिः सर्वात्मना भवेत् ॥

भोः शिव अस्मिन् स्थाने श्रीराधारसिकानन्दावेव रूपेण सदा रमणं कुरुतो लीलासमेतौ । अत्यद्भुता संसिद्धा लीला सदा गोवर्धनाद्रौ । आनन्दमये स्थाने तप आचर । स रुद्रो रुद्राण्या सह तत्र पुष्करिणीं विधाय तन्नारायणमुखात् श्रुतं लोकस्य ध्यानमकरोत् । किश्चिद्धचानेन ध्यानापन्नोऽभवत् । दशसहस्रवर्षे तल्लोकदर्शनार्थे तप आचरत् । तद्धचानेन निकुञ्जदेव्या दृष्टिपथमितमोहनेन रूपेणानन्ददर्शनमापेदे । धनविद्युद्रपम्रूपनवीनया जायया सह केलिसम्पत्तिसमवेतं रमणानन्दं कीडासमितमरूपयत् । तद्र्पदर्शनेन समाकुलोऽयं शिवस्त्रिभिनेत्रीनिरूपयन् पुनःपुनः पञ्चभिवेक्त्रैः स्तुतिमापेदे । उवाचायं शिवः । अं अं अनन्ताय नमो नमः । श्रीं श्रीं श्रीकृष्णाय तुभ्यं नमो नमः । सं सं संभोगिष्रयाय नमो नमः । श्रीं श्रीं श्रीकृष्णाय तुभ्यं नमो नमः । कुं कुं कुञ्जविहारिणे नमो नमः । लं लं लं लिलताविहारिणे नमो नमः । कीं कीं कीडावनविहारिणे नमो नमः । रां रां रां

राधामनोहारिणे नमो नमः। किंच निरन्तररासकीडासक्ताय नमो नमः। सदामनोहारिणे नमो नमः । सदा रतिप्रियाय नमो नमः । सदा गानिप्रयाय नमो नमः । सुरतानन्दाय नमो नमः । आलिङ्गनिपयाय नमो नमः । कूटस्थाय नमो नमः । रमणानन्दसुखदात्रे नमो नमः । अतिभोगप्रियाय नमो नमः । अन्तरात्मने नमो नमः । अतिरतिविहारिणे नमो नमः । अत्यद्भुतचारित्राय नमो नमः । भारद्वाजरूपिणे नमो नमः । रामाय नमो नमः। मोक्षदाय नमो नमः। भक्तिप्रयाय नमो नमः। भक्तानन्दप्रदाय नमो नमः। अत्यानन्ददायकाय नमो नमः। सकलकलाकोविदाय नमो नमः। महाक्रीडासुखदाय नमो नमः। महा-लीलाविहारिणे नमो नमः। कस्तूरीतिलकाङ्किताय नमो नमः। शृङ्गारवत्यादीनां सखीनां सुखदायकाय नमो नमः । मोक्षदाय नमो नमः । स्वच्छन्दोपात्तदेहाय नमो नमः । शोकमोहभयवैराग्यदुःखनाशहेतवे नमो नमः । अन्तर्यामिणे नमो नमः । रसिकानन्दाय नमो नमः । परस्पर-रासकेलिकलाकौतुकाय नमो नमः । विप्रलम्भसुखप्रदाय नमो नमः । अति-रतिकौतुकाय नमो नमः । अगणितानन्ददायिने नमो नमः । एवं स्तुत्वा तदा रुद्रस्तुर्ष्णी केवलेन्द्रियस्तद्भावभावितोऽप्यासीत् । सरतिरासीत् । गतव्यथः आसीत्। समचेता आसीत्। स्तुत्वा रसिकानन्देऽभवत्। तया बृन्दावनेश्वर्या स्तुत्या प्रसन्नया वरेण छन्दितः साभिप्रायेण स्तवेन स्तविता त्वं वरं प्रार्थयेति । अकामो वा सकामो वा मद्भक्तो यजमानोऽयम् । वरेण तां प्रति छन्दयित्वा शिश्राय। अहो मयि यदि तुष्यसि तर्हि त्रजलोके कीडास्थानं दर्शय । अयं देयो वरो ममामिलिषतः । वरोऽसौ तव भवेत् । तया निकुञ्जदेव्या दत्तो वरोऽयं ते दिव्यं चक्षुर्दत्तवत्यस्मि । त्वं चक्षुषाऽनेन मम विहारस्थलं दर्शयिष्यसि । तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ रुद्रस्य

सर्वा त्रजलीला दृष्टिपथे आविरभ्वन् । प्रथमं नन्दस्य भवनं कोटि-वैकुण्ठव्यापिरत्नकुडचैर्वरमणिस्तम्भैः शोभितमप्यासीत् । अतितरां नन्दगृहं पञ्चविंशतियोजनायतं पञ्चयोजनभूमो मणिस्तम्भाकुलं बालकीडायां . रमणयोग्यं यत्र पुरुषोत्तमो रसिकानन्दः संसिद्धलीलां करोति । सा व्रजेश्वरी स्वयमेव देवरूपं विधाय तस्मिन् रसिकानन्दे क्रीडां करोति। यथा पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य संसिद्धप्रकटानुभावस्तथा संसिद्धोऽयं नन्दवसुभिः स्वावेशप्रकटानुभावो वितन्यते । नन्दगृहाद्वृषभानोर्गृहं यो-जनायितम् । रङ्गवत्यादयः सख्यः प्रेमवत्यादयश्च यशोदायाः समीपे क्रीडोपकरणान्यकुर्वेन् । उपनन्दस्य पुत्री विशाखा नाम्ना रसिकानन्दस्य भावाभिज्ञैवास्ते । नन्दस्य वृषभानोर्गृहात् श्रीरसिकशिरोमणिद्वादशश्रेणयः एवासते । रमणस्थानं पञ्चयोजनविस्तीर्णमेवास्ते । अतिरतिरमणकोटिकाम-पूर्णं जाम्बृनदसुवर्णखचितसुकोमलमास्ते । रमणसरसाः शतशः सुगन्धपारि-जातका इव मणयो ललामभूतपरस्परगन्धाढ्या भवन्ति । कल्पद्रुमवृक्षाः वाञ्छितफलदातारो भवन्ति । अतितरां फलपुष्पमणिलताहरितपीतश्वेतशुश्र-भ्रमरसंविकतयोजितानि रतिकलाभावस्थानानि संराजन्ते यमलैर्यमलैः कुञ्जविद्रुमलताम्रथितानि । अतिरसरमणानन्दयोग्यानि शय्योपकरणानि संयोक्ष्यमाणानि भवन्ति । शाखासक्ताः पक्षिणो विराजमाना नानारङ्गेश्च-ञ्चुपक्षैर्भवन्ति । ते पक्षिणः कलशब्दं समवेता यशो गायमाना भवन्ति । तेषु पक्षिषु केचित् साधनसिद्धाः संसिद्धाश्च भवन्ति । अतिप्रव्रजिताः परस्परगोष्ठीयुक्ता आसतेऽतितराम् । मणिज्योत्स्नापाकृतान्धकारैरतितरां रात्रो दिवा तेजसा व्यक्तान्यासत । तस्मिन् स्थाने रङ्गवती प्रेमवती रसि-कानन्देन सह क्रीडतः। वृषभानुकुमारी ललिता विशाखा अनुराधा चन्द्रकला सुमुखी सुभगा भोगवती सुगन्धाङ्गी रतिमती कामपूरा कामदा

कामाक्षी कलावती हरिणाक्षी हंसगमना शृङ्गारवती दृष्टिमोहना जितकामा वशकामा कामवर्धिनी सर्वोङ्गकामा कामदृष्टिः कामकलाकोविदा रतिदात्री रतिसुखसंपत्प्रदा सलज्जा निःशङ्का निर्लज्जा अतिरतिभोक्त्री श्रान्ता सोत्साहा सुरतागमज्ञा वनस्थानज्ञा सङ्केतज्ञा रुतावृक्षज्ञा निकुञ्जश्रेणिषु मार्गज्ञा लतापरीक्षाकोविदा मणिपरीक्षाकोविदा अतिसन्धिज्ञा सङ्केतरसज्ञा केकाभिज्ञा भाषाभिज्ञा पक्षिसंबन्धाभिज्ञा सङ्केतस्थानज्ञा संभावितरसज्ञा शय्योत्पाता खाद्यपेयचोप्यलेखरसास्वादज्ञा नानासुगन्धरसभेदज्ञा वस्न-सुगन्धभेदज्ञा भूषणज्ञा अङ्गयोग्यभेदाभिज्ञा शृङ्गारयथायोग्यकालाभिज्ञा तालाभिज्ञा गीतज्ञा गीतरसभेदज्ञा तन्तूत्पाद्यरागभेदज्ञा सुगन्धज्ञा अङ्गरसभेद-गुणज्ञा सुगन्धनृत्यभेदज्ञा संपत्तिसुखज्ञा सदारासकीडाप्रकटगुणगानको-विदा रासागमसोत्साहा रासठीठा वचनसुखदायिनी एताः सस्यो विहार-स्थाने आसते । कुञ्जपतिकुञ्जसुखदायिनीषु सखीनां कुञ्जश्रेणिषु सुखसंपत्ति-सुखार्थं विद्रुमश्रेणीया नानाकुञ्जा अतितरां संशोभन्ते । तासु श्रेणिषु पुष्पपरागोद्भृता यवनिकाः संभवन्ति । तत्सृष्टिवेष्टितेऽक्कभूषणैर्भूषितानि शोभायमानानि रचितयोग्यान्यत्युन्नतश्रेणिषु स्थानानि भूषयन्ति । वियुथानि विराजमानानि भवन्ति । सखीनां समूहाः श्रेणिषु संभोक्ष्यमाणाः कियामारभन्ते । द्वादशश्रेणिषु श्रीनन्दस्य श्रीवृषभानोर्गृहात् पृथग्द्वाराणि राजन्ते । तत्र जाम्ब्र्नदसुवर्णभूमिमणिगणचित्रितमध्यस्थलं क्रीडाविहारसं-युक्तं मण्डलाकारं पञ्चयोजनायतम्। यत्र काम आधिदैविकेन रूपेण उपसेवमानो भवति । श्रेणीनां द्वाराणि तस्मिन्मण्डले पृथक्शोभायमानानि श्रेणी मणिलतासुगन्धाड्या सुक्रोमलातितरां न कोमला सन्ति । एका न कठिना । अत्यद्भुतसुरचितायां वृन्दा सखी आस्ते । तयातितरां श्रीराधिकायाश्च रचिता शय्यैवास्ते । तत्र तस्मिन् तस्य सेवार्थे

मणिलतान्तरे चतस्रः श्रेणयः शोभायमाना भवन्ति । तासु श्रेणिषु पुष्करिण्य आसते । एका पुष्करिण्युष्णोदकेन पूर्णैवास्ते । पुष्करिणी सुगन्धशीतजलैवास्ते । एका पुष्करिण्यमृतोदकेन पूर्णेवास्ते । तत्र मज्जनस्थानमत्यन्तशोभायमानं चतुःसरं यत्र मणीनां शृङ्गाणि शोभायमानानि, भवन्ति । एकस्माद्गृहादन्तःसुगन्ध-तैलागुरुरसकर्पूरमृगमदकेसररसाः शतशः पुष्पलतापत्रत्वकृपयोभिः सुगन्धि-तेषु रसेषु संपूरिता भवन्ति । मज्जनिकयोपयोग्याः सखीनां समूहाः मज्जनं कारयन्ति । नानाजलकेलिसुखसंपत्तिर्मज्जनावती तन्मज्जनेऽतितरां सरतिरास्ते । जलसंपत्त्ये अतितरां सुजलकल्लोला सखी उपसेवते । तत्र हंसीहंसाः सारसाः पक्षिणोऽग्रेऽग्रे क्रीडन्ति । अतितरां जलकेलिकल्लोलकर्म-करणादनन्तरं तत्राधिदैविकेन रूपेणाग्निरत्यन्तसुखदायकरूपेण सेवते । अतितरां सूक्ष्मस्वरूपिकरणैः सूर्यरूपः सेवमान आस्ते । अङ्गराग-संपूर्णमङ्गरागस्थानम् । मन्दिरमत्यमृतमङ्गसुखदायि शोभायमानमभ्येति । यत्र चन्द्रकिरणाः शोभायमाना आसते । सूक्ष्मतरतेजसा सेवमानाः आसते । तत्र रङ्गवत्यो नानाङ्गरागं प्रकुर्वन्ति । अतिसुखदायिनोऽतितरा-मङ्गरागाः शोभायमानाः सुखभोगा आसते । शोभते तृतीयं शृङ्गारगृहम् । यत्र गृहात् गृहन्तरात् द्वाराणि शोभायमानानि भवन्ति । तत्र सखीनां सञ्चार आस्ते । अतिरतिसञ्चरिताः सख्यः सुखदायिन्यः शृङ्गारमधि-कुर्वन्ति । प्रथममगुरुवासितकवरीसुगोप्यमानानि मन्दारपारिजातपुष्पाणि शोभायमानान्यातन्वन् । तत्कांलं मण्डलेन गुम्भितकेशपाशः शोभते । क्षुद्रघण्टिकाशब्दस्क्ष्मतरसंभाविता बृन्दावनेश्वरी प्रीयमाणा भवति । सीमन्तो नानामणिमुक्ताप्रथितजाम्बूनदसुवर्णखचित एवैति । मेघोपरि चन्द्र-ज्योत्स्रा इव नक्षत्रगणा विराजन्ते । स्यूत्पुष्पसुवर्णजटितमणिसुक्ता-

खचितान्तरज्योत्स्नाभाविताः शोभायमाना आसते । कुटिलजटितज्योस्नाभिः अभ्रच्छायाकर्नुरितचन्द्र इवास्ते । कर्णकुण्डलज्योस्नारुचिमण्डलं कुण्डल-युगळम् । ललाटं तिलकहाटकहीरकमणिज्योस्नाभिरतितरां जटितं संराजते । मणिभ्रवौ विजयकामकार्मुकखण्डलते इव संविराजेते । नेत्रे चितखञ्जनमीन-चातुर्यं जितवती। नासा कनकमुक्तायोजिता संराजते नितराम्। नासाभरणनीलपीतरक्तंमणिज्योत्स्ना राजमाना नासामभ्येति । अतिरति-विम्बाधरोष्ठो विद्रुमरङ्गरञ्जितावास्ताम् । हीरकावलीघटितमुक्ताफलज्यो-त्स्नाभिः रिञ्जतमध्यचिवुकं मुखमण्डलं सलाञ्छनं चन्द्रमण्डलमिवास्ते। घटितकोमळमुक्तावलीको कुचकुंभो हाटकमणिज्योस्नाभिः पुष्पपराग-परीताविवास्ताम् । भुजलताकरकङ्कणमरकतज्योत्स्नाभिर्हस्ताङ्गुलिमुद्रिका-जटितमणितेजांसि राजमानानि सन्ति । नाभिहदकुहरे लोक इव आशङ्कचते । कटिमेखलाक्षुद्रघण्टिकाः कामदेवदुन्दुभिभूषणानि भवन्ति । नागेन्द्रहस्ता अतितिरस्कृता एव त्वचि कर्कशत्वेन । कदलीस्तम्भाः एकान्तशैत्येन तदूर्वीरुपमानवाद्या एवासन् । चरणकमलौ नू पुराभ्यां शोभाय-मानावास्ताम् । आपद्यमाना आसेदुष्यो विशदचरणाङ्गुल्यः शोभायमानाः भवन्ति । गतिरतिविलासवत्यास्ते । रङ्गवती सखी वानीरश्रेणिनिकुङ्गे रसिकानन्दस्य शृङ्गारं दर्शयन्त्यास्ते । इयामहिरण्यपरिधिवनमाल्यवर्हाद्योतित-मुक्तावली शोभते। धातुप्रवालनटवेषविचित्रिताङ्गशोभाव्या सन्निकृष्यन्त्या-सीत् । मकराकृतिकुण्डलो शोभायमानमाननमतनुताम् । कनककपिशं वनमालया विराजते वेणुवादनकलरवकलापकलितं पीताम्बरम् । तस्मिन् मध्यस्थाने चतुर्घा श्रेणयः विद्रुमलतालवङ्गलताप्रथिताः। वृक्षाप्रप्रथिताभिः श्रेणिसञ्चार आस्ते । तस्यां श्रेण्यां मध्ये एकं शय्यामन्दिरं मणिकुञ्जघटितं विराजते । पुष्परागमणिना खचितज्योत्स्नाभिः संविष्ठिताः प्रतिबिम्बिताः

मणयोऽतितरां राजमाना भवन्ति । रङ्गवती प्रेमवती नन्दगृहं सकलशृङ्गार-भूषणैभूषितं रसिकानन्दमतिप्रेम्णा आनयति । अत्यन्तानन्दमझान्यानन्द-रसेन वनान्युक्तिहानि संसिद्धानि कोटिशः । सखीनां समूहाः कोटिशो गीतानि गायन्ति । तासु श्रेणिषु परस्परसञ्चाराय सखीनां मार्गा आसते । मार्गे मणिद्योतिताः परिधयो राजमानाः शोभन्ते । एका पञ्चमी श्रेणी पुष्पिता नानारङ्गरचिता आस्ते। पुष्पाणि फलानि लतायां सन्ति। अनेकमणिलताप्रवरज्योत्स्नापुष्पलता आरक्ता एवासते । पुष्पितवृक्षाणां सुगन्धमणिलतानां परस्परज्योत्स्नासंवलितवीथयो विराजन्ते । अमृतफल-फलिता वृक्षा अतितरां पीतरक्ततरङ्गितनानाज्योत्स्नाः परस्परमिततरां शोभायमाना भवन्ति । अतिस्वादूनि मधुराणि फलानि नम्राणि सन्ति तेषाम् । तेषामधः सूक्ष्माः पुष्पलता नानारागरञ्जिता एवासते । तासां लतानामधः शय्यारचिता रमणानन्दसुखसंभोगायैवातितरां सुगन्धपुष्पसिकतारचिताः योग्या नानास्तरणैः संविलताः कामरसपोषका एवासते। श्रेणिषु विचित्रशाला अनेकशः संराजमाना भवन्ति । तासु शालासु सूक्ष्माणि सुगन्धमणीनां गृहाणि संराजन्ते । तेष्वन्तर्नानाभक्ष्यभोज्यानि वस्तून्य-तितरां सौष्ठवेन राजमानानि प्रकाशन्ते । अन्यतो रचिता शय्या विविक्ता आस्ते । यत्र सा वृषभानुसुता सुरतानन्दश्च संभाषेते । तस्मिन् क्रीडामण्डले षष्ठी श्रेणी मणिप्रेष्टैर्विराजमाना भवतितराम् । द्वारं त्वारक्तमणिखचित-यन्त्रकवाटस्थलहाटकजटितमणिराजिराजमानं भेवति । तत्र षड्रतवः संलग्नाः सेवन्तेऽतितराम् । यत्र ग्रीष्मोऽयं ऋतुः तत्र शीतलजलाः पुष्करिण्यस्तट-भूमिरत्नकुटीचन्द्रकान्तमणिजलयन्त्राणीवासीदन्ति । यत्र हंसीनां यूथानि क्रीडां कुर्वन्ति । अन्ये पक्षिणः देववाण्या परस्परसुखमनुभवन्त आसते । भोगताम्बूलाद्या अतितरां तस्मिन् स्थाने आसते । श्रेणिसप्तमद्वारमतितेजो-

मयमुत्तरा शतं मन्दिराणि एकावल्या सन्ति । दक्षिणतः शतं मन्दिराण्ये-कावल्या राजन्ते । यत्र सखीनां यूथानि तेषां स्थानानि कीडाविहारस्थ-लानि योज्यमानानि संभवन्ति । यत्र लिलता विशाखा अन्याध्य शतशः सख्यो रतिप्रेमानन्दस्थाने रमणानन्दयोग्या भक्तास्तिष्ठन्ति । यस्यां श्रेण्यां गृहं गृहं प्रति अष्ट सिद्धयो मूर्तिमत्यः संराजमाना आसते । अनेकशो भूषणैर्भूषिता अलं गोप्यस्तेषु गृहेषु क्रीडां कुर्वन्ति । नानारसा नवनीतरसाः राधास्वादितमिष्टरसा अनेकरसास्वादसुखदाः सन्ति । दुग्धफेनानेकभोगाः सुखसंभोग्या भवन्ति । तेषु आस्तरणयुक्ताः शय्याः शतशो राजमानाः भवन्ति । तेषु स्थानेषु सुरतानन्दप्रेमानन्दमझाः सख्यस्तदुपकरणरसं सङ्कलयन्ते । अष्टमी श्रेणिः आम्रकदम्बकदळीचम्पकाशोकपुत्रागरोधमन्दा-रपारिजातकल्पकनीपनीरवटन्यग्रोघोदुम्बरजम्बृवृक्षसरलशिंशुपाखदिरवकुलपि -प्पलश्चेष्मातकबदरीतालतालीवनमधुरशाखालवङ्गेलाजातीत्वक्पूगनालिकेरमातु-लङ्गकमुककण्टकिनोऽनेकशः वृक्षाः पुष्पलताम्रथिताः केतक्यः अमृतवल्ल्य-मृतफलैर्ग्रथिता अनेकपुष्पगुच्छलताग्रथिता वल्ल्यो वसन्ते वासन्तीपछवैः योग्यास्तस्मिन् कदम्बवने निर्भरसेचनरससङ्कुलिता अनेकलताप्रश्विताः सुवर्णालवालश्रेणयो प्रथिताः जलपुष्करिण्य इवागाधजलपूरिता एवासते । पट्टडोरिग्रथितसुवर्णघटिको जलप्रवाहो जलयन्त्रमुखाविर्भूतो भवति । तत्र मध्ये पुष्करिण्यां रत्नखचिता मुक्ताखचिता द्वार्जलयन्त्रशीकरैराविष्टा भवति । श्रेणिर्जलेन सिच्यमाना अनेकजलकीडोपकरणा संयोक्ष्यमाणा भवति । कचित्सूर्यवंशीकमलानि कचित्सोमवंशीकमलानि विराजमानानि । तस्य मध्यस्थले वानीरकुञ्जे यमुना जलकछोलवती रत्नबद्धोभयतटी राजमाना भवति । यत्र वृक्षशाखा जलस्पर्शाद्दोलाविद्रुमलता भवन्ति तत्र वृन्दावने-श्वरी रसिकानन्देन सह दोलायामेति। ललिताद्याः संस्यः संगायन्त्यो

4

1

भवन्ति तत्र मयूरकोकिलहंससारसविहगाद्याः सङ्गायमाना गुणगणनायुताः भवन्तितराम् । दशमी श्रेणिः रसिकानन्दस्य कन्दुकलीलाधिष्ठानस्थानं प्रति योजनायत् सुवर्णभूमिजटितख्चितं पद्मरागमणिगणावलितं भूमिरचितं रक्कश्रेणिविराजितमतितरां शोभते। अतिविविक्ते तस्मिस्थाने कन्दु-कलीलया सुशोभमानं स्थानम्। ताः सर्वाः सख्यः कन्दुकलीलायां कन्दुकलीलापरस्परस्वमुर्यादा नातिकामन्ति । स्यामा रसवती ललिता शृङ्गा-रवती रङ्गवती कलावती गुणवती गानवती कुञ्जवती सुश्रोणी मन्द्रमुखी चन्द्रलेखा ताः सर्वाः सख्यः कन्दुककेलियष्टिं गृहीत्वा स्वमर्यादाः नातिकामन्त्यः क्रीडन्ति । रसिकानन्दशिरोमणिः स्वयमेव कन्दुकयष्टि गृहीत्वा क्रीडति । विशाखा चन्द्रलेखानूराधा अतिरतिज्ञा रमणानन्दज्ञा सुरतोपदेशा सुरतकलाकोविदा गानवतीत्येताः सर्वाः सख्यः कन्दुकवष्टि गृहीत्वा श्रीराधिकायाः कन्दुकमर्यादामनतिकम्य कन्दुकं नयन्ति । एवं परस्परं स्वं स्वं मर्यादया कन्दुकं नयन्ति । यदा श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः कन्दुकव्याजेन क्रीडामनुभवति तदा ताः सर्वाः सस्यो जयशब्दमुदीरयन्ति । अन्याः पुष्पवत्यादयः सख्यः पुष्पवृष्टिं कुर्वन्ति । तस्मिन् क्रीडास्थाने एकं मन्दिरं प्रेमवत्या सुरचितं सर्वभोगाढचं मनोरममस्ति । प्रेमवती प्रणिपातपुरस्सरं श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं श्रमापनोदार्थं नयति । तत्र भोगवती सर्वभोगान् गृहीत्वाऽअतस्तिष्ठति । तत्रान्तः सुरचिता सखी सुभगां सर्वभोगान्वितां शय्यां रचियत्वा प्रश्रयावनता श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं नयति । तत्र मनसि सोत्साहं करोति । तत्र रहिस चतस्रः सख्यः सुसेवमाना भवन्ति । सुकामा अरुज्जा सुरतोद्गमा सुरतानन्दा सेवमाना भवन्ति । अन्या ललितादयः सस्यस्तत्सुखं निरीक्ष्यातिरसमग्रास्तां लीलां गायमाना

तदा लीलान्ते चतस्रः सस्यः सेवमाना भवन्ति । निद्रालसा संमीलिता सुसुखा गतत्रपा सुसेवमाना भवन्ति। तत्र जाताः सुलज्जा <mark>भोगव</mark>ती गानवती सुसेवमाना भवन्ति। एवं कन्दुकलीलायाः सुखं प्रत्यवसरं सह रसिकानन्दः सुसेवते । तत्र सहस्रनिकुञ्जैर्यीप्मर्तुः सेव्यमानो भवति । रत्नजटिताः पुष्करिण्यः सुवासितैः सुजलैः संपूर्णाः अवन्ति । तत्र नम्रा वृक्षाः परितः पुष्पैः फलैः संपूर्णा भवन्ति । तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह जलक्रीडां करोति। तत्र मज्जनवती तरङ्गिणी जलकछोला पेङ्खितवती सेव्यमाना अगाधजला नौकावती सुप्रवनवती जलाभिज्ञा सुलहरी हस्तपल्लवा एताश्चान्याः सस्यः श्रीराधिकया सह जलकीडां कुर्वन्ति । तत्र जलकीडाव्याजेन रसिकानन्दो नानासुखं करोति । तत्र जलकीडान्ते शृङ्गारवती सस्वी शृङ्गारस्थानं नयति । तत्र पुष्पवती पुष्पमण्डनं रचयति। एवं ग्रीष्मलीलां नानासखीभिः सार्घे रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह संसेवमानो भवति । ततः पावृ्हीलाया अनुभवः कथ्यते । सहस्रनिकुञ्जैः प्रसारिता प्रावृङानन्दमयी भवति । मेघा नानारूपाणि विधाय मणिमयभूमिं जलैः सिश्चमाना हरितशाडलैः शोभायमानां कुर्वन्ति । मयूरपिकहंससारसयुताः पक्षिणः नानाकलशब्दैः कुञ्जान्तरं सेवमाना भवन्ति । कौसुम्भासुरङ्गाक्षणिकाप्रद्योतिताः सोत्साहाः सख्यः रसिकानन्दं श्रीराधिकया सह सेवन्ते । नानावृक्षा लताभिर्प्रियताः पुष्पैर्नम्रा भवन्ति । तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह नानावेषैः शृङ्गारानुभवैः सुरतानन्दसुखं भुञ्जमानो भवति । प्रावृङ्खीलां निरीक्ष्य लिलादयस्तां लीलां सङ्गायमाना भवन्ति । ततः शारदलीलायाः सुखं संवर्ण्यते । सहस्रेर्निकुञ्जैः प्रस्ता शरत् प्रचोतमाना भवति । यत्र सर्वाः लताः प्रफुल्लिताः सर्वे वृक्षाः प्रफुल्लिताः सर्वासां सखीनां मनांसि

प्रफुलितानि भवन्ति । यत्र शारदनिकुङ्जाः प्रफुलिताः तत्र मध्ये नित्यं रासमण्डलं सदा रसिकानन्देन सेवितम् । यत्र श्रीराधिका स्वसखीभिः सार्धे नित्यानन्दलीलां करोति । तन्मण्डलं पञ्चयोजनायतं नानारङ्गमणिस्तंभ-शतशोभितं नानालताभिः पुष्पिताभिराच्छादितं परितः द्वादशश्रेणि-संविलतम् । तासु श्रेणिषु अनेकशः सख्यः संशोभमाना भवन्ति । प्रथमश्रेण्यां ल्लिताविशाखादयः सख्यः नानाविधान्युपकरणानि कुर्वन्ति । द्वितीय-श्रेण्यां प्रेमवत्यादयः सख्यः राजमाना भवन्ति । तृतीयश्रेण्यां शृङ्गारवत्या-दयः सख्यो नानालंकारसुखरूपा अनेकशः शृङ्गारं कुर्वन्ति । चतुर्थश्रेण्यां भोगवत्यादयः सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानाभोगरसान् रचयन्ति । पञ्चम-श्रेण्यां पुष्पवत्यादयः सख्यो नानाविचित्राणि माल्यानि कुर्वन्ति । षष्ठश्रेण्यां भूषावत्यादयः सख्यो रत्नजिटतानि हाटकमयानि मनईप्सितानि रचयन्ति । सप्तमश्रेण्यामन्नपूर्णाद्याः सख्यो नानान्नमयरसान् पाचयन्ति । नानाविधानि पकान्नानि प्रतिक्षणं नूतनानि पाचयन्ति । अन्या रसभेदान् रचयन्ति । अष्टमश्रेण्यां सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानासुगन्धान् रचयन्ति । गानवत्यादयः सख्यो गानं कुर्वन्ति । तन्तुवादिन्यादयः सख्यस्तालेः सुगानं कुर्वन्ति । नवमश्रेण्यां विलाससुरतरङ्गवत्यादयः सुरतानन्दादय अभिनव-कला आसनमेदान् सङ्गीतसाहित्यकलाकुशलाः सख्य ऋग्यजुस्सा-माथर्वणवेदरूपाः सख्यो नानास्तुतिभेदैर्गुणगणनां कुर्वन्ति । एकादश-श्रेण्यां रङ्गवत्यादयो रङ्गरसभावान् नानाविचित्राणि वचनानि नम्राणि प्रेमोत्पादकयुंतानि श्रावयन्ति । द्वादशश्रेण्यां सखीनां विविधसश्चार आस्ते । तस्यां श्रेण्यामन्तर्भागे चतस्रः श्रेण्यो विराजन्ते । तत्र गृहाणि शतशो हाटकमणिखचितानि संरोचमानानि भवन्ति । रत्नविथिषु श्रेणयः सुवर्णयृथिका अतिसुगन्धा मुक्तायृथिका अतितरां राजमानाः

भवन्ति । तत्र तरुपुष्पाणि नानारङ्गमयानि सुगन्धाढ्यान्यनेकशो राजमानानि भवन्ति । तस्यां हरितपीतारक्तरक्तलता अनेकशः शोभाभेदैरत्यन्तं राजमानाः आसते । मणिलता आन्तरैर्मणिपुष्पैः संराजमाना भवन्ति । लतान्तः सूक्ष्मलताः पुष्पिता राजमाना आसते । तासु श्रेणिषु सखीनां रमणस्थानानि सुरच्यमानानि गुणगन्धाव्यानि रूपप्रतिकृतियुतान्यतितरां सा श्रेणी श्रीराधाया अतितरां वल्लमा आस्ते । यदा गृहवनविहारेच्छाविर्भवति तदा तस्यां श्रीराधा स्वयमेव विचिन्वती स्वयमेव पुष्पहारावर्ली प्रथयति । रसिकानन्दः पुष्पाणि चिनोति । हरितपीतश्वेतारक्तपुष्पगुच्छैर्प्रथितां हाराविं श्रीराधायाः कण्ठे स्वहस्तेन अतितरां विराजते । तस्यां श्रेण्यामेकं मन्दिरं परिधापयति । सा गुप्तकीडास्थलं महातेजोमयं मणिमयसप्तभूमिकं संराजमानं भवति । एका भूमिः कनकमयी । तदुपरि रत्नसोपानसंविलता भूरारक्तमणियुता भवति । अनेकरङ्गरञ्जितान्तरा सोपानपरम्परा संराजमाना भवति । तदुपरि भूः पुष्प-रागरचितातितरां सुशोभाढ्या भवति । तत्र सोपानपरम्परा शोभायमाना भवति । तदुपरि सोपानपरम्परा रत्नावलीखचिता नानारङ्गेः सुरचिता जाम्बृनद्सुवर्णभूषिता परस्परसुगन्धसंविलतैवास्ते । सुरचितमणिवल्ली पुष्प-परागपरिधिमतितरां करोति । तदुपरि चन्द्रकान्तरचिता तत्सकाशात् चतुर्थी भूमिर्जलशीकरसंयोगिनी भवति । जलयन्त्रशीकरकणिकामयैः सुगन्ध-जलैः पूरितायां पुष्करिण्यां ग्रीष्मादौ श्रीराधिकया श्रीरसिकानन्देन च सुरतानन्दसुखमनुभूयते । यत्र सुखमनुभवन्तावासाते तत्र मणिलताग्रथिता विद्रुमदोलास्ते । रत्नजटितदोलायां मणिज्योत्स्नाः प्रतिविम्बभावापन्ना एव भवन्तितराम् । तदुपरि सोपानपरंपरा मणिग्रथिता भवति । तदुपरि सुगन्धमणिरसवलिता भूः संराजमाना आस्ते । तत्र भूम्यां सूर्यचन्द्राग्नि-

देवता आधिदैविकेन रूपेण सखीरूपं विधायोपसेवमाना भवन्ति। भूम्यां सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो भवन्ति । श्रीराधिकायाः रसिकानन्देन सह देहात्समुत्पन्नाः सख्यो दृष्टवती कलावती सोत्साहा प्रेमसंविलता लज्जावती गुणवती गुणाढ्या भवन्ति । अन्या अनेकसख्यो रतिसुखमनुभवन्त्यो भावापन्ना भवन्ति । तदुपरि सोपानपरम्परा चत्वरे आस्ते । अत्यन्तसुखश्रेणिसञ्चारा सोपानपरम्परा रत्नावलीभूषिता भवति । रतिसुखसंपत्तिप्रतिकूजा अनेकभूमयो योजिताः । एवंविधं मण्डलं द्वादशद्वा-रयुतम् । द्वादशद्वारे द्वादश श्रेणिसञ्चारा भवन्ति । अतः परम्पराश्रेणिसञ्चारो भवति । तन्मण्डलं यदेतत् षड्गुणप्रसिद्धं भवति । षड्गुणाः षड्तवः उपसेवमाना भवन्ति । एतस्मिन् मण्डले पूर्वतः सखीरूपं विधाय सूर्यः किरणैरुपसेवमान आस्ते । तस्य मण्डलस्योत्तरतश्चन्द्रः उपसेवमानो भवति । एतस्मिन् मण्डले पश्चिमतोऽग्निराधिदैविकेन रूपेण उपसेवमानो भवति । महास्तास्तारका अन्यानि नक्षत्राण्याधिदैविकं रूपं विधाय सदा उपसेवमाना भवन्ति । इन्द्रोऽपि सखीरूपं विधाय देवाङ्गनाभिः विमानावलीष्र्पविस्य सदोपसेवमानो भवति । पितामहोऽपि सूक्ष्मरूपं विधायान्तरिक्षे तल्लोकदर्शनाकाङ्क्षो भवति निरन्तरम् । अन्ये दिक्पालाः संसिद्धा निरन्तरमाधिदैविकेन रूपेण तन्मण्डलमुपसेवमाना-स्तन्मण्डललोकानन्दममा भवन्ति । तन्मण्डलोपासका भक्ता अन्यं न भजेरन् । अन्यधर्मासक्ता इदं मण्डलं न जानन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। ये मण्डलमुपासते ते किं कर्म कुर्वन्तो भवन्ति ? स होवाच । तेऽनन्योपासकाः भवन्ति । अनन्यभजनसिद्धा आत्मभावा भवन्ति । आत्मभावा मण्डल-मुपासते । आत्मानात्मभावो भवेत् । अतितरामात्मानन्दे मद्या अन्य-रसं न भावयन्ति । आत्मानन्दे मग्ना अभक्तान्न स्पृशन्ति । आत्मानन्दे

मग्ना आत्मभावा भवन्ति । नान्यं शृण्वन्ति न नमन्ति न गायन्ति । ते भक्ता आत्मरसभाविता आत्मनो रतिरसभावनयानन्दं शृण्वन्त्यानन्दं गायन्ति । आनन्दयुता भक्ता अतिरसमझा गुणान् गृणन्ति । अतिरस-मग्रास्तदुच्छिष्टमुपभुञ्जते । अनुच्छिष्टं कदाचित्र भुञ्जते । तन्मण्डलोपासकाः भक्ता अभक्तान् न स्पृशन्ति । ये अन्योपासका भक्ता आनन्देऽनाश्रिताः कर्मजडाः कर्मकाण्डोपासका एव ते । अग्न्युपासका ये ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसो-पासका एव ते । तेषां संभाषणं तन्मण्डलोपासकः प्रमादेनापि न कुर्यात् । ये अन्यधर्मरहिता अन्यासक्तिरहितास्ते तन्मण्डलं प्राप्नुवन्ति । अन्य-धर्मरहिता एव प्राप्नुवन्ति । अन्ये आत्मानं न विदुरात्मना । किं बहुनोक्तेन धर्मेण । ये ब्राह्मणा अन्यविद्योपासकाः कर्मजडाः कर्मकाण्डो-पासकाः कालोपासकाः कर्मधर्मदेवपित्रुपासका एव भवन्ति ते । ये शैवाः शाक्ताः सुरामांसरताः कौला जैनाः पातञ्जला मीमांसकाः जडतां प्राप्ताश्चार्वाका अन्यधर्मदढासक्ता भवन्ति । ये तां त्रजेश्वरी रसिकानन्देन सहोपासते सदानन्दरसमनुभवन्तो भवन्ति । रतिकला-कोमला गुणगणनां कुर्वन्ति । तमेव रसं गायन्तो भवन्ति । अतिरतिमापद्य-माना भवन्ति । ये दर्भे हस्ते गृह्णन्ति ते तं रसं न प्राप्नुवन्ति । तिलाञ्जलिं पितृणां ये ददित ते तन्मण्डलं न प्राप्नुवन्ति । देवाश्चासुराश्च कर्मकाण्डोपासका एवेति, देवाः सद्विद्योपासका वैष्णवा एवेति, गुणातीतास्ते बृन्दावनेश्वरीमुपासते । रसिकानन्देन सह उपसेव्यमानमभियन्ति । अतिगुणममा रात्रौ दिवा सदा सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो युज्यन्ते । रतिकलाकौतुकानि संभोक्ष्यमाणा भवन्ति । भक्तानामनुग्रहात् भगवान् रसिकानन्दोऽनुग्रहं करोति । ते मण्डलं विदुः । ये त्रजमण्डलं सेवन्ते ते मण्डलं जानन्तोऽन्यासिक्तं विना मण्डलासिक्तं कुर्वन्तः सदा सर्वलोक-

रसलीलायामासक्ता भवन्ति । ये मनोरथशतैः रात्रौ दिवा तल्लीलाः प्रथ्नन्ति ते तन्मण्डले भावापन्ना भूत्वा प्रतिष्ठितचित्ता भवन्ति । तन्मण्डलं श्रुत्वानन्दमासीदन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदं नारायणं तदा । वैकुण्ठे यो वै क्रीडयित्वात्मभावो भवतितरामतिप्रीत्या नारायणोऽयं वदत्यभीष्टमनन्तरम् । अन्त्ये व्रजमण्डले पञ्चयोजनायतं मण्डलमस्ति । अधितन्मण्डलमासेदिवान् रुचिररतिमातनोति । यत्र शतशो गृहाणि हाटकमणिमयानि सहस्रपङ्क्तयोऽतितरां श्रेणयो विराजमानाः भवन्ति । येषु मन्दिरेषु सप्तभूमिष्वतितरामभ्येत्य मनुष्या रतिरसमग्नाः भावापन्ना भवन्ति । मणिभूमिष्वतितरामास्ते पुरुषः । तत्र गोपानां गृहाणि पङ्क्तिशो विराजमानानि भवन्ति । गोपानां गृहे गृहे अष्टमहासिद्धयो राजमानाः सन्ति । तेषां गृहे गृहे कल्पद्भमा राजमाना एव भवन्ति । तेषां गृहाश्रमः केवलं क्रीडार्थमेव भवति । तेषामात्मसुखार्थमेव न भवति । कदाचन तेषामतिरसकीडा । अतिरसमझा हि संसिद्धा एवेति ते गोपाः गायन्ति रसिकानन्दस्य यशः । त्रजेश्वर्या सह सङ्क्रीडमानो मानेन रसिकानन्दो गवां यूथान्यनेकशो हरितपीतश्वेतशुअधूम्राताम्राणि विराज-मानान्यनुयाति । कपिलाकज्जलिकाशुभ्राशुभ्राभाजमानानि यूथान्यनेकशो राजन्ते । यूथेषु प्रतिपङ्क्ति घटोध्नीः शतशो राजमानाः सा व्रजेश्वरी प्रतिक्षणमभ्येति । गाः कृपादृष्ट्यासेदिवान् संपोप्यमाणो भवति । सिद्धामं पञ्चयोजनायतं गवाममृतमयं मण्डलम् । गवां गणा गोपैः सह सङ्कीडिताः भवन्ति । तत्र दुग्धसिन्धुरास्ते । वत्सवत्सतरीसहिता महोक्षाः सङ्क्रीडमानाः भवन्ति । तत्र मलम्त्ररहिता गावोऽमृतरसं संभुञ्जाना भवन्ति । तत्र तत्र ता गावः कुञ्जे निकुञ्जे क्रीडमाना भवन्ति । अतिरतिमग्ना गावः क्रीडापरा भवन्ति । नन्दगृहात्परितो गर्वा गणाः कोटिशः शोभमानाः

भवन्ति । ताः सर्वा गोप्यो द्धिमथनक्रियापरा रसिकानन्दस्य व्रजेश्वर्या सह क्रीडां तां तां लीलां गायमाना भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कामदुवया किं तप आचरितम् ? अतिरतिप्रीतिः कथमभूत् ? यासामेव दुग्धद्धिनवनीतरसा चृतरसास्तया निकुञ्जदेव्योपसेव्यमाना वृषभानुगृहे प्रकटिता भवन्ति । निकुञ्जदेव्या सह तस्मिन् गृहे पुरुषो ह वै सङ्कीडा-मातनोत् । तस्मिन् गृहे गवां गणाः शतशो राजमाना भवन्ति । ताः किमाचरितवत्यः किं कृतवत्यः कामापेदिरे रतिप्रीतिं कथमासत ? किं शृण्वन्त्य आपेदिरे ! स होवाच नारायणोऽयम् । गवां भेदौ द्वावेव भवतः । संसिद्धाः साधनसिद्धाश्च । या गावो त्रजमण्डले तिष्ठन्ति ताः संसिद्धाः भवन्ति । एकस्मिन्नवसरेऽहं तां व्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह संविलतां तस्मिन् व्रजमण्डले मनसासेदिवान् । कामदुघा या तप आतनोत् तस्मिन्न-वसरे वैकुण्ठे आगता। कामदुघा मां निरन्तरं ध्यानावस्थायां रममाणं वीक्ष्य विचारितवती । अहो नारायणोऽयं सदा लक्ष्मीकान्तोऽपि प्रतिकलं कस्य ध्यानापन्नो भवतितराम् । पश्चात् यं नारायणो देव्या सह ध्यायति स्म । यस्यावतारकलाः कोविदाः सर्वे ध्यात्वा उपजीवन्ति । यद्येवंविधो नारायणः सर्वसुखसंपत्तिपूर्णानन्दः कस्य ध्यानमापन्न आसेदिवानिति । तथैवेत्यस्या मनोभिलाषं ज्ञात्वाहमुवाचेदम्। अहो कामदुघे तव मनसि किमागतिमिति । सोवाचेदम् ।

> नमोऽनन्ताय महते कृष्णायाकुण्ठमेधसे । योगेशाय च योगाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥

त्वयानुगृहीता भक्ता आत्मानं तन्मयं मत्वा आत्मभावा भवन्ति । गवां यूथानि शतशो विराजमानान्यमृतरससंज्ञिता गावो भवन्ति । तस्मिन्न-वसरे वनेषु तृणसंवलिता निकुञ्जा अतिरसपूर्णा जलाशयाः शतशः शोभमाना आसते । तस्मिन् स्थाने संभाषमाणान् तृणजलीषधयः संभाष-माणा भवन्ति । अतिपुष्टा गावो गोष्टचा आसेदुष्यः सुखसंभोज्यदुग्धरस-चृतरसद्धिरसनवनीतरसाद्यान् भावापन्ना दाशुष्यो भवन्ति । शुअश्वेतकर्बुरिताः गावो रससंविलता गोष्ठान्यनेकशो राजमानान्यभियन्ति । ता गोप्यो दिधमन्थनघोषेण सह संगायमाना भवन्ति । तासां शृङ्गारसुखमापद्य-मानोऽभवत् । गोलोकादागता कामदुघा नारायणमुखाच्छ्तमात्रे गोवर्धनाद्रौं शिरसि मन्त्रं जस्वा तद्भावेनाभवत् । सा त्रजेश्वरी रसिकानन्देन प्रत्यक्ष-भावमातेने । सा प्रसन्ना सती तां लीलां दत्तवतीति । नारायणः प्रत्युत्तरमुवाच । अहो प्रियं अस्य लोकस्य कथा श्र्यमाणा सर्वेषां निविशमाना हृदि गतं कामकोधादिकं नाशयति । अतिरतिभक्तिरापद्यते रसिकानन्दरतिरापद्यते । वर्णाश्रमस्वधर्मा बाधका न भवन्ति । कामदुघा गोवर्धनादिशिरसि गोविन्दपुष्करिण्यां तपश्चकार । महामन्त्रममुं जजाप । शृणु तन्मन्त्रध्यानम् । ॐ नमः श्रीराधारसिकानन्दाभ्याम् । मूलमन्त्रोऽयम् । द्वादशाक्षरसंवलितमोङ्कारबीजसंवलितं यो ध्यायेत् स एव तां लीलां प्राप्नोति । अत एव कृतं पुष्करिण्यां गोविन्द्कुण्डमिति नाम्ना प्रसिद्धं कुञ्जम् । पृथिव्यां तस्मिन्नद्रो सा वनफलतृणौषधीर्भक्षयामास । सा कामदुघा तपः आचरन्ती तस्मिन्नद्रौ परिचकाम । एवं शतं समास्तप आचरितवती । यत्र गोवर्धनाद्रौ रत्नधातुमयलतौषधयः सदा प्रफुछिताः फलिता रससंविलताः अतिशोभायमाना भवन्ति । यत्र गह्वराणि रत्नहाटकमयान्यनेकशः शोभाय मानानि क्रीडास्थानानि भवन्ति । अनेकरक्कविचित्रा ओषधयो नानारक्रैः रचिता एव यत्र फलपुप्पैर्भासिता भवन्ति । यत्र सा त्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह सङ्क्रीडामतितरामातनोति । यत्र सखीनां वृन्दानि विहारपराणि । तत्र तस्यां पुष्करिण्यां सा व्रजेश्वरी स्वस्वरूपं दर्शयामास । रसिकानन्दरूपं रसरूपमेव साक्षादेवंविधमतिगुणसंविलतमेवास्ते । नूतनो नवजायया सह क्रीडनं दर्शयामास । सा कामदुघा स्तोत्रं चकार । नमो रसात्मने । नमो ज्ञानात्मने । नमः सदावनविहारिणे । नमः स्वभक्तकर्मस्वभावदुः स्वनाश-हेतवे । नमः प्राकट्यदेहरूपिणे । नमो यमुनाजलकल्लोलविहारात्मने । नमः कामकेलिकौतुकात्मने । नमः कामप्रियाय । नमः कामात्मने । नमः काम-संबिलतदेहदात्रे । नम आदिकत्रें । नम आदिहेतुरतिदात्रे । नमः श्रीराधा-ध्यानापन्नदेहात्मने । नमो रसात्मने । नमो रसलंपटपरिपूर्णदेहदातृरूपिणे । नमोऽनिर्वचनविहारिणे । नमो रतिदात्रे । नमो रतिकेलिकलाकौतुकात्मने । नमो भक्तिरतिदात्रे । नमो ज्ञाननिर्वाणदात्रे । नम आनन्दस्वरूपिणे । नमस्तदुद्रष्ट्रे । नमस्तस्य हेतवे । नमः कलरासज्ञानविहारात्मने । नमोऽगुणाय । नमः सृष्टिरूपगुणदायिने । नमो गुणकेलिसुरतानन्दसुखभोक्ते । नमो भोग-दायिने । नमो भोगात्मने । नम आत्मरूपिणे । नमः सुरतानन्दरूपरसदात्रे । नमोऽनन्तचरित्रदायिने । नमः क्रमलीलात्मने । नमः श्रीराधाकृष्णरूपिणे । नमः श्रीकृष्णराधारूपिणे । नमोऽनेकविहारदेहधारिणे । नमः शतसहस्र-कोटिशो लक्षकोटिविहाररूपिणे। नमो ललिताप्रतिक्षणसुखदात्रे। नमः कुञ्जान्तरविशाखाद्यनेकसखीविहारात्मने । नम आद्यनादिरूपसंसिद्धभक्ति-रूपिणे । नमो दानधर्मदात्रे । नमः सुखरूपिणे । नमो त्रजाविर्भावभावि-। नमोऽत्यन्तदानरूपिणे । नमः सदा वृन्दावनश्रेणिविहारिणे । नम आदिद्वादशवनविहारात्मने । नमः पृथिव्यां यानि रूपाणि सुन्दराण्यने-कशस्तत्तव विजानीयात् । इति लक्ष्मीलज्जाधृतिकान्त्यनेकाकाराय गुणरति-दायिने नमो नमः इति स्तुत्वा स्थितां कामदुघां तद्दर्शनमहोत्सवाकुलां रसिकानन्दस्तया निकुञ्जदेव्या सहोवाचेदम् । अहो का त्वं स्तुतिं ब्रुवाणासि । मम भक्तिरिह लोके दुर्लभा। दुर्लभतरं वरं वरय। तव मनसि मम

दर्शनाद्धिकं न किश्चिदवशिष्यते । तव स्तवेन यो नित्यं स्तौति समाहितः सदाभीष्टं प्राप्नोति । पुनरुवाचेदं कामदुघा यदि देयो वरो नाथ तव लोके वसाम्यहम् । गोरसद्धिरसद्ग्धरसनवनीतरसञ्चतरसफाण्टरसैरहं सेवे । रसिकानन्द उवाच । अनेकशः स्वाविभविन लोके मम वल्लभा त्वं सदा वस । अहं त्वां रक्षिष्यामि । वनविहारे यथेच्छं विहर । ये अनन्याश्रया मम भक्तास्तेषां न वर्णाश्रमधर्मा आन्तराळिका जायन्ते । तेषां न कर्माणि आन्तराळिकानि जायन्ते । तेषां साधनमान्तराळिकं न जायते । व्रतानि यज्ञारुछन्दांसि योगक्षेमफलानि चानन्यानि धर्मसाधनानि यत्किञ्चितिष कृत्यं सर्वमान्तराळिकं न जायते । ये बाह्मणाः कर्मज्ञानसाधकास्तेषां ज्योतिषागमकर्मसाधकास्तेषां च सङ्गो हठात् त्याज्य एवेति वचनमस्ति । दशयोजनं त्रजपरिणाहः । तत्र पशुपक्षिणो मृगा गावोऽन्ये ये वृक्षाः अनन्यपरा आसते। अतिरसमग्ना गायन्ति। तस्मिन्मण्डले देवाः दर्शनकाङक्षा एव भवन्ति । भक्तिक्रयामापद्यमाना भक्तास्तन्मण्डलं वन-विहारस्थानं ये त्रजवासमिच्छन्ति ते एव सर्वधर्मातिरिक्ता भवन्ति । कर्मातिरिक्ता भवन्ति । सङ्गातिरिक्ता भवन्ति । व्रजमण्डलोपासकाः भवन्ति । अहो लक्ष्मि सा सृष्टिस्तु सृष्ट्यतिरिक्तैवास्ते । तत्सृष्टेरुत्पद्यमानो रसमार्गमाश्रितो भवति । मनः सोत्साहं यद्येतस्मिन्मण्डले तदङ्गीकारं प्राप्तोऽमनोमोहोऽतितरां प्रतिसंयोक्ष्यमाणस्तं रसमन्भवन् भावापन्न आस्ते । यदा यदा देवाश्च पितरश्च कालश्च वजातिसाधने यतन्ते तावत्सहस्र-शाखाध्यायी भवति । सर्वयज्ञकर्मकरोऽपि तन्मण्डलं स्वमेऽपि न जानाति । ज्ञानिनो ये ब्रह्मबोधका योगिनस्तपस्विनस्ते स्वप्नेऽपि तन्मण्डलं न जानन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कैश्चिह्नैस्तान् भक्तान् जानीमहे । स होवाच । ते सदा प्रेममार्गिणो भवन्त्येव । न निर्विण्णा नातिसक्ता गृहादौ विषयादौ

नातिसक्ता यहच्छया प्राप्तवस्तुमात्रमुपसेवमाना एव भवन्ति । न निर्वेदो नाश्रमो न कर्म यदच्छाकथासेवा भक्तानां प्रीतिरनन्या भक्तिर्भवति। एवंविधसंसारातिरिक्तः स्वभावसंसिद्धो भवति । ततस्तां लीलां प्राप्त-वन्तो भवन्ति । एवमुपासकास्तिसमन्मण्डले गत्वातितरां संयोक्ष्यमाणाः आपद्यन्ते । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रसमार्गीया भक्तास्तन्मण्डलं प्राप्तवन्तः । तेषामेका दशा । तेषां का गतिः ? स होवाच । तन्मण्डलोद्भवाः भक्ता आत्मरतिगुणा रतिगुणाढ्या अनन्यमार्गाढ्यास्तां लीलां प्राप्त-वन्तस्तन्नामाङ्कितवर्ष्माणस्तुलसीकाष्ठाङ्कितदेहा आत्मनाम्ना सुखालङ्कृत-शरीरा रासादिलीलाध्यानावस्थायामापद्यमाना युज्यन्ते । कुञ्जे निकुञ्जे श्रेण्यां रतियोग्यताभावमापद्यमाना भवन्ति । तामेव कथां प्रतिक्षणं नूतनामासेवमाना आसते। श्वपचो वा ब्राह्मणो वा वर्णान्तरो वा यो भक्तानां सह सङ्गमापद्यते स एव तां लीलां प्राप्तो भवति । रतिमासेदिवान् यदि तदुच्छिष्टे कदाचिदन्नबुद्धिस्तेषामस्ति । तदुच्छिष्टे जले सदा तीर्थबुद्धिः भवति । तत्र तत्कथायां साक्षाह्रुद्धिर्भवति । ये मण्डलमुपासमानास्तेषां को धर्मः ? किं कर्म ? को रसो भवतितराम् ? ये तन्मण्डलमुपासमानाः भवन्ति तेषां किं तीर्थत्रतयज्ञधर्माः सन्ति ? किं बाध्यमानं भवेत् ? तेषां मुख्यं मनो भवति। ये गुणाढ्या रसरूपिण आनन्दरसनिमम्रास्ते गुणतद्भागिनो भवन्ति । तन्मात्रपाप्तमार्गोऽयं लोकः सदाण्डजो भवेत् । आत्मानन्दे ममासु ये रात्री दिवा व्रजध्यानापन्ना भवन्ति सदा तेषां नित्यं निकुञ्जदेव्या अनुग्रहो भवति । ये महालीलायामत्यासक्तास्तेषां न भवत्येवेति सद्यः कृतार्थतोत्पद्यमाना भवति । कदाचित्कालधर्मभयं अवर्णोऽपि सवर्णतां प्रामोति । ये न भवन्ति ते दुष्टगतयो भवन्ति । ये व्रजमण्डलोपासकास्ते व्रजे निवसन्ति । ये रासमण्डलोपासकास्ते रासलीलां

प्राप्नुवन्ति । अनन्तसुखं संभुञ्जते । या यशोदाद्या लीलामुपासमाना भजने प्रषचमाना भजनानन्दे संयोक्ष्यमाणा भवन्ति । ये नन्दादयोऽत्यन्तसःखी-भावमुपासमाना अत्यन्तसङ्गं प्राप्तास्ते रमणानन्दसखीसमृहं प्राप्ताः । ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति ये निकुञ्जदेवीं ध्यायन्ति रमणानन्दसुपासते । अत्यन्तं सुरतानन्दं प्राप्ता ये संयोक्ष्यमाणा व्रजमण्डलं मध्यस्थानं भजन्ति ते महालीलां प्राप्य संभोगसुखं संप्राप्नुवन्ति । स आह लक्ष्मीम् । श्रुत-परकाष्टा ये सखीभावं प्राप्तवन्तस्ते गोपास्तां लीलां संप्राप्नुवन्ति । यः सर्वधर्मान्परित्यज्य तन्मण्डलोपासको भवति स एव तां लीलां प्राप्य सर्वत्रतातिरिक्तो ज्ञानातिरिक्तो विधृतविधिनिषेधकृत्याकृत्यगुणा-गुणभावाभावः सदा सङ्कृष्यमाणो लीलायां प्रतिपद्यमानः संयुज्य-तेऽतितरां रसे। अहो लक्ष्मि षड्विथेयं रासमाया कथिता। सर्वो लीलां परित्यज्य तत्स्थानं प्राप्तवन्तो भवन्ति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । कीदृग्विषं रासस्थानम्? निरन्तरं तत्स्थानस्योपासका यदुपासनामात्रात्तां लीलां प्राप्नुवन्ति तद्वर्णय । स होवाच नारायणोऽयम् । एकं सहस्रादित्य-सङ्काशमतिहादमयम् । अहं ब्रह्मा रुद्रो देवा दिक्पाला यस्मात्समुत्पद्यमानाः यस्य प्रतापात्तस्मिन् स्थाने संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेकशो भक्ताः । यत्र मणय आधिदैविकेन रूपेण तेजांसि ददति। यत्र संसिद्धः सूर्यः सस्बीरूपं विधायोपसेवते । सूक्ष्मसूक्ष्मरूपं विधाय यत्रात्मना चन्द्रः सेवमानो भवतितराम् । यत्राग्निः सस्तीरूपं विधायोपसेवमान आस्ते । देवास्तस्मिन् स्थाने सदा संसिद्धा एवोपसेवमाना आसते । पृथिव्यां सूर्यचन्द्रनक्षत्राणि अन्ये ये साधनोपकारकास्ते सर्वे उपसेवमाना एवासते । अन्यास्तु यस्मात्स्थानादिमाः प्रजाः समुत्पद्यमाना भवन्ति तल्लोकं वर्ण-यामि। अनेकशः कोटिब्रह्माण्डकान्यतिशयाविर्भावमापद्यमानानि सन्तितराम्।

स्थाने मध्ये मध्ये आवरणज्योतिरास्ते । आवरणस्य मध्ये सहस्रयोजनपरिणाहवति गुणगणनाय श्रीराधाकृष्णस्य गुणगणाः सङ्गीयन्ते । प्रथमपरिणाहे गवां गणाः क्रीडापरा एव भवन्ति गोपगोपीभिः। एतानि क्रीडास्थानानि तृणजलीषधीलताफलपुष्पपत्रकोमलान्यासते । मधुघृतदुग्ध-दधिनवनीताद्या रसाः संसिद्धा भवन्तितराम् । यत्रान्नानि खाद्यपेयचोप्य लेखविविधपकरसानेकसंवलितानि भवन्ति। यत्र वृक्षा अमृतमधुधाराः अतितरामासेद्षां वर्षन्ति । यत्र पुष्करिण्योऽमृतपूर्णा भवन्ति । तत्रामृतं पीत्वा जरामरणगर्भोत्पत्तिविनाशा न भवन्तितराम् । अमृतोदं नाम सरो देवैरुपपीयमानं भवति । तया निकुञ्जदेव्या स्वदृष्टचमृतेन संपूर्यमाणं भवति-तराम् । तस्मिन् स्थाने गोपगोपीगणाः पुलिननिलीनाः सदा क्रीडापराः भवन्ति । द्वितीयपरिणाहे वाटिकाः क्रीडास्थानानि वृक्षाः पकफलपुष्पनम्राः पत्रैर्नम्रा धारा आसीदन्ति । कीडापराणां गोपीनां गणा निकुझदेव्याः श्रीराधायाः स्वावेशेन क्रीडापराः सुरतानन्देन संभोक्ष्यमाणा भवन्ति । यत्र भक्तास्तत्क्रीडापराम्तद्भचानपरास्तद्र्पा आसते । तस्मिस्थाने ये भक्ताः सदा रसमार्गिणस्तेषां सङ्ग आस्ते । अहो भक्तिमार्गरससंविलतोऽनुभवन् तस्य सङ्गं रसिकानन्दस्वरूपो भवति । धर्मः स एव कर्माणि स एव विद्या स एव भवति । ये धर्मास्ते अधर्माः । ये कर्माणि तान्येवाकर्माणि । तृतीयमावरणं महाक्रीडास्थानम् । तस्मिन् स्थाने एकसप्तत्यधिककोटयो शोभायमाना आसते। यस्मिन्नावरणमध्ये रमणस्थलानि कोटिशो राजमानानि । यस्मिन् स्थाने मणीनां वलयाः सुगन्धयुताः राजमाना भवन्ति । पद्मरागमणिलताग्रथिता नीलमणिपुष्पसंवलिता भवन्ति-तरां मध्ये मध्ये । विद्रुमकृता हाटककोटयो लताप्रथिता हाटकभूमिषु शोभाढ्यं कुर्वन्तितराम् । रमणानन्दोऽयं सदा भक्तानां

सुखकरो भवति । यस्य लोकस्य कथाश्रवणमात्रात् सर्वे वर्णाः सर्वे धर्माः प्रतिभान्तितराम् । यस्मिन्नावरणे स्वामिन्याः श्रीराधायाः श्रीरसिकानन्दस्य च सदा क्रीडास्थलं भवति । मणिलतानां सञ्चारे हंसीनां यूथान्यत्यन्तसोल्लासानि पीतग्रीवाणि रक्तचञ्चुपुटानि राजमानानि भवन्ति । ते सुस्वरेण संज्ञिता इव सामगानं कलकण्ठैः कुर्वन्तो भवन्ति । तस्मिन् आवरणे लतायां शुकयूथान्यत्यन्तहरितानि रक्तचञ्चुपुटानि पीतपुच्छपक्षाणि। यै: प्रतिशाखं गान्धर्ववेदो गीयमानो भवति । यस्मिन्नावरणे श्रीराधिकायाः स्वाङ्गात् संभाविताः सख्यः क्रीडापरा भवन्ति । सोत्साहा सोत्कण्ठा प्रेमप्रेक्षणा हास्यवती कटाक्षगुणवती सुस्नेहा मलिना शय्योपकरणा पुष्पवती नि:शङ्का निर्लज्जा सुरतोत्कण्ठा सुरतानन्दा मालावती सुखश्रमा कलावती कलाकोविदा गुणज्ञा शृङ्गाररसा कामभाविता भावोत्साहा निद्रा-जागरिता सरससुखेत्यादिनानासच्यो रतिशृङ्गारमनुभवन्त्यो भवन्ति । निरन्तरं ताः सख्यः क्रीडापराः कुञ्जान्तरे रसिकानन्दं सेवमाना भवन्ति। ल्तान्तरे भक्ष्यभोज्यानि ताम्बूलाद्या भोगाः कामकेलिरसान्तरे सुखभोग-रसकीडाः कृतवत्यो भवन्ति । एतां छीलां संसिद्धाः सखीना गणाः पक्षिणां गणाः प्राप्तवन्तो भवन्ति । साधनसिद्धास्तस्मिन्नावरणे क्रीडापराः भवन्ति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । केन साधनेनेदं स्थानं दृष्टिगोचरं भवति । स होवाच । सृष्टी त्रयो योगा भवन्ति । ज्ञानयोगः कर्मयोगो भक्ति-योगश्चेति । तेषां त्रयाणां योगानां मध्ये प्रेमयोगोऽतिरिक्तो भवतितराम् । येषामेव प्रेमसंपत्तिस्तेषामेव सुरतानन्दसुखं भवति। न धर्मेण नेष्टा-पूर्तेन न वर्णेन नाश्रमेण न तीर्थेन न व्रतेन न देहशोषणयोगेन न वेदोदितेन कर्मणा न धर्माधर्मविचारसाधनेन तत्स्थानं भवति। यो मनिस निरन्तरं तद्ध्यानापन्नो भवति तस्य भवति । यत्र यत्र स्थितं

तत्र तत्र तमेव धर्म जानीमहे। तमेव सुखं जानीमहे। तद्धानिः तदन्तरायः । तदेव सुखं यत् तद्भक्तैः सह संभाषणात्तस्यावरणलीला-वार्तायां कालनिर्यापणम् । गृहोत्सवे येषासुपार्जितवस्तुमात्रं तद्थें विनिहितं भवति ते तल्लोकं प्राप्नुवन्ति । अहो लक्ष्मि इयं सृष्टिस्तु रसरूपिणी भवति । तेषां रसमार्गव्यतिरिक्ता धर्मा बाधका एव भवन्तितराम् । मन:सङ्ग्रहमानीय मनसा भावेनेन्द्रियाणि मनसि धृत्वा मनसा भावेन अहोरात्रं लयमापद्यन्ते । यस्मिन्नावरणे मनो निमग्नतां प्राप्नोति । तया निकुञ्जदेव्यानुगृहीतो रात्रो दिवा कालेऽकाले तन्मार्गीयस्तल्लोकं सेवमानो भवति । अहो मनसो वृत्तिरतितरां चञ्चलापि ते भक्ताः संसारासिकरहिताः लोकेऽनेषणात्मानस्तन्मया अनपेक्षाश्चित्ते संगूर्णाः प्रशान्ताः समदर्शिनो निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्धन्द्वा निष्परिग्रहा भवन्ति । तेषु नित्यं महाभागाः अन्यमार्गरहिता हि ये आत्मानं तन्मयं पश्यन्तस्त एवात्मानं सेवन्ते। ये तन्मार्गीयाः सन्तः सदोपासकास्तेषां प्रेमलक्षणकाष्टाप्रतीक्षा भवति । अहो चतुर्थावरणं महास्थानम्। यस्मिन्नावरणे स्वामिन्याः स्वयं विहारस्थलमस्ति । शतसहस्रकुञ्जा निकुञ्जा लतावती सुवर्णवर्णा विद्रमलता अमला निर्मला व्यक्तमुक्तालता भ्राजमाना आसां सस्वीनां सञ्चा-रोऽत्र स्थान आस्ते । सूक्ष्मलतान्तरे शय्योपकरणानि । अनेकलतान्तरे रासक्रीडा भवतितराम् । अयं रासः सहजसंवल्रितो भवति । तस्मिन्नावरणे अतिक्रीडापराणि रूपाणि कृत्वा रासलीलासुखमनुभवन्ती सा व्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह सङ्क्रीडमाना आपद्यते । पञ्चममावरणं तेजोमयम् । अमृतमय्य ओषघयो राजमानाः फलपुष्पयुताः पक्रफलरसयुक्ता भवन्ति । अन्नरसाः सुपच्यमानाः सरसाः कटुतिक्तमाधुर्यमिष्टरससंयुक्ता अनेकशः स्थानेषु तया श्रीराधिकया सेव्यमाना रसिकानन्देन संमोक्ष्यमाणाः

विराजमाना भवेन्ति । आत्माविभीवेन नानासुखं भवति । भोगस्थानं स्थाने स्थाने तस्मिन्नावरणे रतिसुखं भवतितराम्। भवतितराम् । षष्ठमावरणं तेजोमयम् । यस्मिन् हाटकमयानि मन्दिराणि विराजमानानि भवन्ति । शतं मन्दिराणि तेजोमयानि यत्र राजन्ते । सुवर्णजटितमणिभि-राकान्ताश्चामीकरखचिता मञ्जूषाः शोभायमाना भवन्ति । यत्र राजमानानि हाटकमणिजटितानि भूषणानि यथायोग्यानि वस्त्राणि भवन्तितराम् । यत्रावरणे संभोगस्थाने सखीनां समूहाः शृङ्गारवत्यादयो राजमानाः भवन्ति । आत्मानं शतधा कृत्वा अनेकभोगरसरतिसुखं संभोक्ष्यमाणाः भवन्ति । सप्तमावरणं क्रीडास्थानं सहस्रयोजनायतम् । परितः परितो मणिस्तम्भा अतिरसाढ्याः सुगन्धाढ्या भवन्ति । अतिरसगुणाढ्या हाटकसुगन्धकोमला आविष्टसुखाढ्या भवतितरां संभोक्ष्यमाणैव। भू: वल्लीनां सञ्चाराः परापरसञ्चारा एवासते । हाटकजटितमणि-ज्योत्स्नाभिः सर्वे प्रतिबिम्बितं वस्तुमात्रम्। तत्र कलावती गानवती सुगन्धा नृत्यपरा विशदा भोगपरा भोगवती भोगाभिज्ञा रतिकलाभिज्ञा कामसुखा कामातुरा नि शङ्का सदानन्दा सुरतसुखा सुरतानन्दा सुरतममा आसनभेदाभिज्ञा अतिरसदानाभिज्ञा रसदा रसदातृभोगाभिज्ञा एताः सख्यः संसिद्धा अन्याः साधनसिद्धा अनेककलाकोविदा भवन्ति । तत्र मण्डलावरणे महास्थानं सशय्योपकरणम् । कलावती शय्योकरणानि करोति । सुरतोत्साहा सुरतोत्कण्ठां ददाति । निर्रुज्जा निश्शङ्कं सुखं ददाति । सुरतोद्गमा आलिङ्गनचुम्बननमितप्रेमभररससुखं ददाति । रतिवती रतिसुखं ददाति । रतिकल्लोला रतिभररसालस्यमुकुलितनयना केलिसुखं ददाति । निभृतनिकुञ्जगृहं गतया तया देव्या सह रसिकानन्दः सुखमनु-भवन्नास्ते । तस्मिन्निकुङ्गे सुरचिता सखी प्रतिकुङ्गं शय्यासुखं करोति ।

एका कल्हंसी निरन्तरं तस्मिन्नावरणे सखीनां मण्डले मध्यस्था सदा क्रीडापरा कलशब्देन तां श्रीराधां रसिकानन्दं च क्रीडमानाऽभ्येति । तस्मिन्समये सुस्वरकण्ठेन सुक्ष्मस्वरं यथा भवति तथा तं गायमाना भवति । मानलीलायां रसिकानन्दवचनात्तां त्रजेश्वरीं प्रसादयति निरन्तर-मतिमनोत्साहं च ददाति। सा वजेश्वरी कलहंसीं प्रत्यापद्यमानैव भवतितराम् । सा कल्हंसी रसिकानन्दस्यातितरां वल्लभतया सुखमनु-भवन्ती संरोचते। सा सदा जागरिता सा सदा गुणज्ञा सा सदा रससुरतभोगज्ञा भवतितराम् । सा कल्हंसी सर्वासां सखीनां मनांसि प्रतिहरति स्वकीडया ! सा कलहंसी रसिकानन्दस्यातिवल्लमा भवतितराम् । सा कलहंसी साधनसिद्धैवेति । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । अहो ! कलहंसी पूर्वं केन साधनेनेदं स्थानं प्राप्तवती । महास्थानं प्राप्तवती । अत्याश्चर्यम् ! निरन्तरं केन साधनेन श्रीराधायाः क्रीडासखी भवतितराम् । स होवाच नारायणोऽयम् । सा कलहंसी सृष्टचादौ ब्रह्मणः पुत्री सरस्वती । सर्वविधाः प्रभवा यस्याः सकाशादुत्पद्यन्ते । चत्वारो वेदा उपवेदाः पुराणानि धर्म-शास्त्राणि पृथिव्यां यानि वर्तिप्यमाणानि तानि तस्या उत्पद्यम।नानि भवन्ति । सा ब्रह्मणः पुत्री आप्तयौवनैवास्त । सा एकस्मिन् समये मम लोकं प्राप्ता ममोपासनां चक्रे । स्वसुंखार्थं मम ध्यानापन्नाऽभवत् । बहुकालं मामुपसेव-मानाऽभवत् । तस्या भजनेन प्रसन्नोऽहं मम लीलास्थानं वैकुण्ठं दर्शितवान् । तस्मिन् त्वया मया क्रीडितानि स्थानानि संराजन्ते । यत्र वैकुण्ठे अनेकशो भक्ता जयन्तकुमुद्जयविजयगरुडाद्याः शतशः पार्षदा र।जमाना भवन्ति । यत्र चतुर्घा मुक्तयः सेव्यमाना आसते । यत्र वनानि कोटिशोऽतितरां सन्ति । सा वाग्देव्यतितरामुत्कण्ठमना अत्यन्तं सुखसमाविष्टमना मम कृपादृष्ट्या सुखं प्राप्ता महालीलां प्रार्थयामास । तदा मयोक्ता सा

वाग्देवी —त्वं वजवासे वज । पृथिव्यामच्छोदं नाम सरः कामवने सुगन्ध-श्विलायामस्ति । तत्राच्छोदे मज्जयित्वा सुगन्धशिलायां त्रजेश्वरी ध्यायमाना रसिकानन्देन सह आपद्यस्व - इति। तत्र तत्स्थाने सर्वात्मभावेन प्रीतिरुत्यद्य-माना भवति । प्रेमानन्दमनुभवन्तो भक्तास्तल्लीलोपयोग्या मवन्ति । सा निरन्तरं बृन्दावनं कामवनं श्रीगोवर्धनमुपसेवमानासेदुषी । अच्छोदेऽप्सर:-पुष्करिण्यां निरन्तरं मज्जमानाऽभवत् । शतं समा त्रजलीलां सेवमानाऽभवत् । एकस्यां कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तस्मिन् तद्वासिनो रासलीलां कुर्वन्ति । बहुनो भागवतानां समाजे कलहंसीरूपं विधाय तां लीलामदर्शयन् । निशि दिने सा वजेश्वरी रसिकानन्देन सह दर्शनदृष्टिगोचरो भवतितराम्। अत्यानन्दरूपे सखीनां सम्हमध्यस्थे महाक्रीडापरेऽतिमहामोहनरूपं दृष्ट्रा इन्द्रियशुद्धिप्रेम्णा भावापन्नाऽभवत् । प्रसेदुप्यतिसुकोमललावण्या सा वरं वरयेत्याह । सोवाचेदम् । यदि देयो वरस्तर्हि महालीलायां सदाहं सहचारिणी भवामि । किमन्येन वरेण । अयं तावन्मनोभिलाषो यल्लीला दृश्यते । तथेत्युक्ता सा ताभ्यां स्वस्थानं ययो । या सा तद्दिनमारभ्य क्रीडापरा भवतितराम् । कुङ्गे निकुङ्गे तेनैव कलहंसीरूपेण प्रतिशाखं लीयमाना सामगानेन मनोभावेन स्तौति नानाकौतुककीडामकरोत्। सा महार-प्राप्ता । महालीलायां मझा रतिसुखमनुभवन्त्यास्त । सा मणस्थानं कलंहसी स्वयूथं विघाय कदाचित्समये रात्रिपरभागे सुरतोत्थितां लीला-मगायत् । कदाचिन्मज्जनलीलामागायमाना भवति । शृङ्गारलीलायां शृङ्गारं प्रति प्रतिक्षणं नूतनस्वाविर्भावरतोद्भवा भवतितराम् । लीलामागायमाना संभोक्ष्यमाणा भवति । भोगावस्थायां स्रक्'चन्दनताम्बूलागुरुरसमृग-मदकपूरकेसरसंविलतान्यास्तरणानि प्रतिक्षणं नूतनानि । अनेकशय्यायाः सुगन्धशृङ्गारादुपरिप्रफुल्लितलताम्रथितपरस्परशुभाङ्गशोभनचन्दनवृक्षालम्बिताः

सुवर्णगन्धेन युता लतान्तराः सन्तितराम् । तत्र शृङ्गारे रतिशृङ्गाररसस्थानं सङ्गायमाना भवतितराम् । भूषणस्थानं सुगन्धं सुवर्णम् । सुवर्णजटिता मणयः सुष्ठु गन्त्रेन पूर्यमाणा भवन्तितराम् । वस्त्राण्यतिसुगन्त्रेनातिपद्यमानानि परिधापयति । एवं कलहंसी वाग्भिः स्तुतिं चकार । अत्यर्थे सा निकुञ्जदेव्या गानवल्लभा भवति । महाशृङ्गाररसोऽयम् । विधिनिपेधमार्गाननुसारिणी शृङ्गाररसादनन्तरमात्मभावे भवति । रसमग्रा भवति संभाष्यमाणा मनोमव-भावे भवति । आत्मभावेनेयं प्रत्यनुकरणं क्रियमाणमातनोति । वनलीलां मनस्यातनोति । अतिरतिं संयोक्ष्यमाणा कलहंसी रात्रौ दिवा लतान्तरेषु फल-मिष्टं मधु राधाया दत्वान्यदासेवते । तत्रैका पुष्करिणी मिष्टामृतरसपूरिता भवति चतुर्योजनायता। तत्र पद्मषण्डानि सुवर्णसुगन्धसुकोमलानि मनोहराणि भवन्ति । तस्मिन् पद्मवने विहारकीडापरा कलहंसी सुरोचमाना भवति । अहो लक्ष्मि तस्मिन् केन भाग्योदयेन तस्या निकुञ्जदेव्या अनुग्रहेण अनन्याश्रयधर्मीत्पत्तिर्यदा भवतितरां तदा रतिराविर्भवति । तावद्देहोपाधिकर्म-क्षुत्तृट्पिपासामोहभयदुःखं तथा सुखानि तथा न भवन्ति यथा देवादीनाम् । व्रतोपवासधर्माधर्माः पितृकार्याकार्याणि यत्किञ्चद्धर्माः शोभमाना धर्माः अन्यान्युपवासमयानि पापपुण्यानि ज्ञात्वा यः सर्वधर्मातिरिक्तो भवेत् स एव तन्मण्डलं प्रामोतीत्याह । अहो रम्यं पुण्यमाचरेत् । अतितरां भावो भवेत् । संभोगलीलायां सुरतानन्दोऽयं लोकः सोऽवशिष्यतं । सुरतानन्द-सुखमनुभवन्तो भक्ता आत्मानं तन्मयतां नयन्ति । धर्माधर्मौ त्यक्त्वा समाः भवन्ति । अतिरसमग्रा विद्यातपोध्यानमैत्रीकलागुणसंयुक्ताश्च सहजभावा भवन्ति । अन्यप्रतिपत्तिसहितो नास्तिको न लभते तल्लोकप्राप्तिम् । अहो लक्ष्मि कदाचिन्महाभाग्योदयेन अस्मिन्नावरणे प्रीतिरास्ते । यत्र वृक्षाः फर्लेर्नम्राः पुष्पमिष्टामृतमयरसममा भवन्ति । यत्र शाखाः पुष्पनम्रा भवन्ति । पञ्चमे

आवरणे संसिद्धानि शुकपिकयूथानि संराजमानान्यासते । केचिदाम्रवृक्षाः पकफलाः सदा संभोक्ष्यमाणा आसते । अतिरसमग्नः साधनसिद्ध एकः शुकोऽत्यन्तवल्लभोऽस्ति । यस्य पक्षचञ्चुकाः सा ब्रजेश्वरी स्वहस्तेन मार्ज-यति । रसिकानन्दोऽपि स्वहस्तेन भक्षं ददाति । तस्य सहचारिण्येका शारिका आस्ते । सा साधनसिद्धा भवतितराम् । तच्छुकशारिकामिथुनं रसिकानन्दक्रीडायां सहचार्येव भवतितराम्। तत्र रसिका सा शारिका निरन्तरक्रीडापरा भवति । सुवर्णवर्णासु भूमिषु रत्नपरिधिषु सद्याच्योपकरणं तत्र वृक्षसञ्चाराः सुशोभाढ्या भवन्तितराम् । तत्र विहारस्थलम् । शुकशारिकाः साधनसिद्धाः क्रीडापरा भवन्ति । अत्यासक्ता महाक्रीडायां संभवन्ति । अहो रसमार्गोऽयं दुर्रुभतरोऽप्यासीत् । अहो महाभाग्यवशात्तस्याः निकुञ्जदेव्या अनुप्रहादत्यन्तप्रियतमो भवति । प्रीतिः प्रीत्या भवति भक्तिर्भत्तया भवति स्नेहः स्नेहेन भवति तस्माद्भाग्योदयादतितरामासेदुषः । अहो भाग्यवन्तः कृतकृत्यवन्तः सर्वे तीर्थवन्तो भवन्ति । अतिरसमग्नाः अतिभुञ्जाना अत्यन्तसुखमनुभवन्ति । य इमां लीलां संभुञ्जमानाः भवन्ति य इमां लीलामुपासमाना एव भवन्ति ते भक्ता भवन्ति । यदा महा-भाग्योदयो भवतितरां तदास्यां लीलायां प्रत्ययो भवेत् । ते धर्मकारिणः, ते त्रतकारिणः । येषां लीलायामुपासनारुचिरास्ते ते त्रतकारिणो भवन्ति । यस्य महालीलायां मनोऽभ्येति । यो विधो च प्रतिषेधे च निर्विद्य अस्यां लीलायां मनोभावापन्नो भवेत् स एव लीलोपयोग्यो भवेत् । ये प्रत्ययकारिणः तेषामनुग्रहः । सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम् । रहस्यलीलायां मनो भावापत्रं भवति । अत्यन्तरत्याविष्टचित्ता भावापन्ना भवामि । कः शुकः ? का शारिका भावापन्ना ? यस्यां रसिकानन्दोऽत्यन्तस्नेहाविष्टमना भवति सा त्रजेश्वरी अत्यन्तं सेहं चकार । अतिदुर्लभतरं स्थानं प्राप्तम् । अविच्छिन्ना रतिगति-

योग्यता संयोक्ष्यमाणा भवतितराम् । स होवाच नारायणोऽयम् । शृणु लक्ष्मि आदौ सृष्टे: सुमन्तो नाम ब्राह्मणः कौशिकगोत्रात्समुद्भूतो भवति । स कान्य-कुञ्जदेशे समुद्भूत आसीत्। अतितरां भावापन्नोऽभवत्। तस्य मनोरमा अवत्यतिशयभक्तिमार्गरता । तौ दम्पती अतिसुभगावतितरस्रोहसंपन्नौ निरन्तरसेवायां संयोक्ष्यमाणरती आसाताम् । तौ दम्पती अतिस्रेहेनाविष्ट-चित्तौ काले काले तां व्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह उपसेवमानावासाताम्। तावतिवनलीलायामत्यासक्तौ भवतः । कस्मिन् कियद्भाग्योदयेन भक्तानां सङ्गेन वनं बृन्दावनं प्राप्ती ? तत्र बृन्दावने कामवने कदम्बषण्डे वृषभानुपुरे नन्दग्रामे पावनसरिस प्रतिपद्यमानावभवताम् । एवंविधे रहिस कीडाविहारे कियत्कालं वासमालम्ब्य तिष्ठन्तावभवताम् १ दम्पती साभिलाषौ वने अत्यासक्तावभवताम् । मनोरथेन सह त्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह दृष्टिपथमापेदे । महालीलायां क्रीडापरो संभाषमाणौ संयुङ्जाताम् । तिद्दनमारभ्य तौ दम्पती महालीलायां क्रीडापरावभवताम् । सा लक्ष्मीरुवा-चेदं रहस्यम् । व्रजवासिनीसृष्टिः कीद्यविधाः ? ये संसिद्धास्ते कीद्यविधाः ? अन्ये के जीवाः सृष्ट्यादौ प्रकटिताः ? जीवस्य कीद्दग्विधं रूपम् ? बन्धमोक्षौ कीदृ िक्षो भवतः ? पुनः स होवाच नारायणोऽयम् । अहो ! प्रपञ्चोऽयमनादिसंसिद्धो भवति । यथा ब्रह्म त्रिविधात्मकम् । सचिदानन्दा-त्मकम् । सत्तु व्यापकतयास्ति । तेजोमयं चिदस्ति । आनन्दमयस्तु पुरुषोत्तमोऽतिरिच्यते । यथा ब्रह्मानन्दोऽयं लोकः सचिदानन्दो भवति तथा जीवसङ्घस्त्रिविधो भवति। सोवाचेदम्। किमयं जीवसङ्घो भवेत् ? तेषां का दृष्टिः ? कावस्था भवति ? स होवाचेदम् । शृणु । अनादिः-संसिद्धोऽयं जीवश्चिदंशो भवति । सोवाचेदम् । यदि चिदंशो जीवः कथमज्ञानेन जडतां प्रपद्यते । स होवाच । यथा अनादिसंसिद्धोऽयं

जीवसङ्घस्तथा मायाप्यनादिसिद्धा भवति । सा त्रिविधा व्याप्य तिष्ठति । स एवं जीवस्त्रिविधो भवति । सोवाचेदम् । जीवसङ्घक्तिविधस्तिष्ठति । बर्णय । स होवाच । सद्रुपः संसारात्मको भवति । नानाकर्माणि करोति । वर्णाश्चाश्रमाश्च । धर्माश्च साधनानि संयुज्यन्ते । तेषामुत्पत्तिः स्थितिः । चिद्रुपो जीवो ज्ञानी भवति । स निष्कर्ममार्गीयो भवति । ये जीवाः आनन्दरूपास्तेषां सर्वधर्मत्यागात् रसानन्दस्वरूपा महालीलोपसेव्यमानाः आसते । तान् धर्माधर्मौ न बाधेते तस्यां महालीलायाम् । सोवाचेदम् । कया मायया संयुज्यमानो जीवः कर्ममार्गरतो भवति ? स होवाच । मायारूपं त्रिविधम् । यद्रुपं सद्रुपं तन्मायासंविलतोऽयं जीवसङ्घः कर्म-काण्डरतो भवति । चिद्रुपया मायया संविलतो जीवसङ्घः संन्यासी भवति । आनन्दसंविलतया माययानन्दात्मक एव भवति । आनन्दरसस्तु महालीलायाः कारणं भवतितराम् । तेषां कर्माणि याथातथ्येन वदामि । तेषां ये कर्ममार्गीयाः कर्मप्रतिपादका महावनलीलायामप्रत्ययकारिणोऽसुराः कर्मजडा अन्योपासकास्तदुपाधितयान्यमार्ग न विन्दन्ते । अग्नेरुपासकास्ते यज्ञकर्मवासनात्मकलिङ्गशरीरेषृत्पत्तिं भजनते । तेन वासनात्मकेन लिङ्गे-नोत्पत्तिस्थितिलयानापद्यन्ते । तस्माल्लिङ्गशरीरात्मकोऽयं जीवस्य स्वभावः । यदा सर्वा वासना विध्य महालीलायां प्रविष्टचित्तो जायते अहो लक्ष्मि लीलां ज्ञात्वा ज्ञात्वा ध्यायमानो देहजनितकामकोधलोभमोहभयसुखदुःखलज्जालज्जा-ज्ञानमोहमत्सरादीनागममन्त्रतन्त्रौषधिरसज्योतिषवाग्विलासप्रपन्नान् नाना-संसारजनिताननेकशः सात्त्विकराजसतामसान् संराजमानधर्माधर्मानतित-रामभिमानगुणान्निरस्यन् महालीलां प्रविष्टो भवेत्। आत्मानं तन्मय-मातनोति । अन्यत्र कापि विषयान्तरे प्रविष्टचित्तस्तदा तं लिङ्गं प्राप्नोति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । त्वयोक्तं जीवस्य मायाधीनत्वं जीवो येन वासनालिक्ष-

शरीरे उत्पद्यमानो भवति । किं बलं येन प्रयत्नवान भवति ? स होवाच । तस्यान्यहाभाग्योदयेन यदच्छया गुरुसहायेन सङ्गेन साधूनामन्यधर्मरहितानां विधृतपापं मनस्तन्मयतया तेन मार्गेण लिङ्गशरीरं विध्य महालीलायां त्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सहोपसेवमान आसीदति । सा लक्ष्मीरुवाचेदम् । जीवस्य रूपं कीदृग्विधम् ? केन रूपेणोत्पत्तिस्थितिल्यानापद्यते ? स होवाच । अनिर्वचनीयोऽयं जीवः । नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहत्यिमर्गरुतो नैनं शोषयत्यापो नैनं क्केदयन्ति । यां यां वासनां प्रामोति तं तं लिङ्गशरीरं प्राप्नुवन्नास्ते। अत्यन्तं वासनाबद्धो जीवः। वासनामुक्तो महालीलायामासक्तः संसारे ननिर्विण्णो नातिसक्तो भवति । संसिद्धोऽयं जीवसङ्घो मायोपाधिभेदेन नानाशरीरभावमामोति । असं-सिद्धस्तु रक्तशरीरसंयुक्तो भवति । सोवाचेदम् । शरीरं कीदृन्विधम् : तस्मिन् शरीरे के गुणा के अवगुणाः ? केन बन्धः शरीरे ? केनैव मुक्तिः तस्मिन् शरीरे ? को निरुपाधिः ? तस्मिन् किं ज्ञानं भवति ? कीदृशेन शरीरेण बन्धः ? कीदृशेन मोक्षो भवति ? स होवाच । शरीरमेदाः द्विविधाः । शरीरमेव कर्मोपजनितं यदच्छया चोत्पन्नं तस्या निकुझदेन्याः अनुप्रहाद्भवति । कर्मजडानां कर्मसंभूतवासनाजडात्मकं भवति । येषामनु-श्रहात्संभवो भवति तेषां स्नेहमार्गे रुचिरास्ते । येषां निर्वाणमार्गे रुचिर्भवति ते संन्यासिनो भवन्ति । शरीरं तु एकादशेन्द्रियात्मकम् । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि । पञ्च कर्मेन्द्रियाणि । उभयात्मकं मनो जायते । पञ्च महाभूतानि पञ्च तन्मात्राणि । त्रयो गुणाः। पञ्चविंशत्तमो जीवः। षड्विंशको महाविष्णुः सदा द्रष्टा भवति। इमे जीवाः शरीरोपाधिं मुझानाः सुखं दुःखं प्राप्नुवन्तो भवन्ति । सर्वेषां शरीराणां समानगुणा भवन्ति । रागादयः कामक्रोधलोभमोहजरामरणसुखद्ः-खान्यनुभवन्त आपद्यन्ते । इदं शरीरं जरया प्रस्तं गन्धर्वनगरोपमं मनोरथमयं

भवति । ते सर्वे गुणा लिङ्गशरीरोदयादपेता लिङ्गं विधूयात्मानं तन्मयतां नयन्ति । ते रागादयो दोषाः शरीरसंविल्ताः । ते कामकोधादयस्तदर्थे प्रयुज्यमानाः साधनरूपा भवन्ति । सोवाचेदम् । कथं रागादयः साधन-रूपा भवन्ति ? येषां संसर्गात् विकलतां प्रपेदिरे । भगवदर्थे प्रयुज्यमानाः रागादयः कथं निष्कर्मतां प्राप्नुवन्ति ? एष काम एष कोघ एष छोभ एषः मोह इत्यात्मलीलार्थे जीवं प्रयोजयति । स होवाच । माया त्रिविधा भवति । सद्रुपया माययोत्पादिताः कामकोधादयो गुणाः संसारोत्पत्तिप्रयोजकाः भवन्ति । चिद्र्पे आश्रिता जीवास्ते तान् गुणान् प्रपद्य जडतां प्रपेदिरे । आनन्दरूपे आश्रिता जीवास्तन्मयतां प्रपेदिरे । संसारितोऽयमानन्दमयो रस आत्मानमानन्दमयतया प्रपद्यते । रागादयः कामकोधादयो गुणाः साधनरूपा भवन्ति । अहो ! रसमार्गे प्रपद्यमानोऽयं जीवसङ्घ आत्मानं तन्मयतया ध्यात्वा वासनात्मकं लिङ्गं विधूयात्मभावमभ्यस्य तन्मयतां प्राप्नोति । यां यां वासनामात्मा विलापयमानो भवति तत्तद्भावेन तत्तिल्लं विलीयमानं भवति । अत्यन्तासक्तस्तिस्मन् मार्गे लिङ्गं विध्यापपाप्मा भावापन्नो भवेत् । यो मार्गस्ते कथितोऽयं मार्गो देवादिना न ज्ञातः । रुद्रादिना न ज्ञातः । तन्मण्डलमुपासमानस्तन्मयतां प्रपद्यते । इदं रहस्यं कथितम् । न वचनीयं कस्यचित्त्वया । स्वेष्टं हृदि ध्यात्वा तद्भावेन प्रलीयते । अहो लक्ष्मि इमं मार्गे समाश्रिता भक्ताः शरीरोपाधिधर्मान् मुक्त्वा तद्गुणतां प्राप्नुवन्तीति सामगा निरन्तरं रहसि सङ्गायन्तो भवन्ति ॥

> यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् । तःसर्वे क्षम्यतां राघे प्रसीद हरिवछमे ॥

इति सामरहस्योपनिषत् समाप्ता [अस्याः "रसिकानन्दोपनिषत् " इत्येव नाम सुवचम्]

सुदर्शनोपनिषत्

यज्ञोपवीती धृतचक्रधारी यो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्रह्मविदां मनीषी हिरण्य-मादाय सुदर्शनं कृत्वा विह्नसंयुक्तं स्त्रीशृद्धैर्बाहुभ्यां धारयेत् । तस्माद्गभेण जायते । ब्राह्मणस्य शरीरं जायते । श्रीविष्णुं सर्वेश्वरं भजन्ति ।

> नासादिकेशपर्यन्तम् ध्वेपुण्ड्ं तु धारयेत् । उद्भृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥

मृत्तिके देहि मे पुष्टिं त्विय सर्वे प्रतिष्ठितम् ॥

तस्माद्द्विरेखं भवति । तं देवकीपुत्रं समाश्रये । अग्निना वै होत्रा चकं पाञ्चजन्यं प्रतप्तं द्वयोर्भुजयोर्धारयेत् । आत्मकृतमाचरेत् । आचार्यस्य संमुखं प्रपद्येत । तस्माद्वैकुण्ठं न पुनरागमनं सालोक्यसामीप्यसारूप्य-सायुज्यं गच्छति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ।

यजुर्वेदे तृतीयकाण्डे तृतीयप्रश्ने—" कक्षमुपौषेद्यदि दहित पुण्यसमं भवित यदि न दहित पापसममेतेन" । उष दाहे । उपकक्षं भुजः । "चरणं पित्रं विततं पुराणम् । यन पूतस्तरित दुष्कृतानि । तेन पित्रेण गुद्धेन पूताः । अतिपाप्मानमरातिं तरेम । लोकस्य द्वारमिन्मत्पित्रम् । ज्योतिष्मद्भाजमानं महस्वत् । अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम् । चरणं नो लोके सुधितां दधातु" । "पित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते । प्रभुगांत्राणि पर्येषि विश्वतः । अत्ततनूर्न् तदामो अरुनुते । शृतास इद्वहन्तस्तत्समारात ।"

¹ '' यज्ञोपवीतोपनिषत् '' इत्याख्यया या पूर्व प्रकाशिता सैवेयमेतद्वधीति विभाव्यताम् ।

यो ह वे सुश्लोकमीले धर्माननुतिष्ठमानोऽधिना चकं योऽिमर्वे सहस्नारस्सह-स्नारो नेमिर्नेमिना तसतनूस्सायुज्यं सलोकतामामोतीति ।

> चक्रं बिभर्ति वपुषाभितप्तं बलं देवानामसृतस्य विष्णोः। स एति नाकं दुरिता विध्य विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥ चमूषच्छचेनरशकुनो बिभृत्वा गोविन्दद्रप्स आयुधानि बिभ्रत् [?]। अपामूर्मिं सचमानस्समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति [?] ॥ शङ्खचकोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं स्मरणं हरे: । तदीयाराधनं चैव भक्तिर्बहुविधा स्मृता ॥ पशुपुत्रादिकं सर्वे गृहोपकरणानि च। अङ्कयेच्छङ्खचकाभ्यां नाम कुर्याच वैष्णवम् ॥ पशुर्मनुष्यः पक्षी वा ये च वैष्णवसंश्रयाः । तेनैव ते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् । सन्ये तु शङ्कं विभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैवैँस्यैः शुद्धैश्च कृतलक्षणैः । अर्चनीयश्च सेव्यश्च नित्ययुक्तैः स्वकर्मसु ॥ ये कण्ठलमञ्जलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचकाः। ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्ाः श्रीवैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥ पञ्चार्द्रतत्त्वविदुषां पञ्चसंस्कारसंस्कृतम् ।

पञ्चावस्थास्वरूपं ते विज्ञेयं सततं विभो ॥

पश्चसंस्कारयुक्तानां वैष्णवानां विशेषतः । गृहार्चनविधाने न शङ्कं घण्टारवं त्यजेत् ॥ इति ॥

एतदथर्विशरो योऽधीते य ऊर्ध्वपुण्ड्ं विधिवद्विदित्वा धारयित स वैदिको भवति । स कर्माहों भवति । अनेन तेजस्वी यशस्वी ब्रह्मवर्चस्वी भवति । अनेन कायिकवाचिकमानसपातकेभ्यः पूतो भवति । श्रीविष्णु-सायुज्यमवामोति । श्रीविष्णुसायुज्यमवामोति । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति सुदर्शनोपनिषत् समाप्ता

४. शेव-उपनिषदः

नीलरुद्रोपनिषत्

नारायणकृतदीपिकाख्यव्याख्योपेता

प्रथम: खण्ड:

अपश्यं त्वावरोहन्तं दिवितः पृथिवीमवः ।
अपश्यं रुद्रमस्यन्तं नीलग्रीवं शिखण्डिनम् ॥
दिव उम्रोऽवारुक्षत् प्रत्यस्थाद्भून्यामंधि ।
जनासः पश्यतेमं नीलग्रीवं विलोहितम् ॥
एष एत्यवीरहा रुद्रो जलासभेषजीः ।
वितेऽक्षेममनीनशद्वातीकारोऽप्येतु ते ॥
नमस्ते भवभामाय नमस्ते भवमन्यवे ।
नमस्ते अस्तु बाहुभ्यामुतो त इषवे नमः ॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरिश तां कुरु मा हि स्सीः पुरुषं जगत् ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्षमं सुमना असत् ॥

या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः । शिवा शरव्या या तव तया नो मृड जीवसे ॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शंतमया गिरिशन्ताभिचाकशत् ॥ असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभुविंठोहितः । य चेमे रुद्रा अभितो दिशु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ॥१॥

नीलरुद्रोपनिषदि षोडश्यां खण्डकत्रयम् । श्रुतिरूपेण तं देवं स्तौत्यपश्यमिति कमात् ॥

अस्पर्शयोगमुक्त्वा तत्संप्रदायप्रवर्तकं परमगुरुं योगसिद्धिप्रदं नीलरुदं स्तौति—अपश्यमिति ॥ दिवितो दिवः पृथिवीं भूमिमवः अवस्तात् अवरोहन्तं त्वामहमपश्यमिति मन्त्रद्रष्टुर्वचः । अस्यन्तं क्षिपन्तं दुष्टान् "असु क्षेपणे" इति धातोः । शिखण्डिनं, "शिखण्डो बर्हचूडयोः" इति विश्वः । तयोरन्यतरदस्यास्तीति शिखण्डी तम् । दिवः सकाशादुग्रो रुद्रः अवारुक्षत् अवतीर्णवान् । प्रत्यस्थात् प्रतिष्ठां स्थितिं कृतवान् । भूम्यामि, "अधिरीश्वरे" इत्यधिः कर्मप्रवचनीयः "यस्मादिषकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी " इति स्वात्सप्तमी । भूमेरीश्वर इत्यर्थः । जनासः "आज्ञसेरसुक्,", "संबोधने च" इति प्रथमा । एत्यागच्छित । न वीरहा अवीरहा सौम्यः । यद्वा अवीराणि पापानि हन्तीत्यवीरहा । जले आसः क्षेपो यासां ता जलासाः ताश्च ता मेषज्यश्च ता एतीत्यन्वयः । जलक्षिप्ताना-मोषधीनामक्षेमनिर्णोदकत्वं रुद्धसिन्धानादेव ते तवाक्षेमं व्यनीनशत् । अनेन क्षेमकारित्वमुक्तम् । अलब्धानो योगस्तत्कारित्वमप्याह—वातीकार इति ॥ वातिः प्राप्तः अप्राप्तं प्राप्तं करोतीति वातीकारः सोऽपि ते तवापूर्वलामकरः

एतु आगच्छतु । योगक्षेमकरोऽभिषेकजले संनिहितो भवत्वित्यर्थः । मन्त-लिङ्गाद् भिषेके विनियोगः। भामः कोधः। मन्युः तत्पूर्वावस्था। उतो उत। इषवे बाणरूपाय । अस्तवे '' असु क्षेपणे '' इति धातोः तवेन्प्रत्ययस्तुमर्थे, अस्तुं क्षेप्तुमित्यर्थः । कं क्षेप्तुं गिरिशन्तं स्यतीति स्यन्, गिरेः स्यन् संबन्धसामान्ये षष्ठचा समासः, तं गिरिशन्तं, छान्दसो यलोपः । हे गिरित्र गिरिरक्षक । तां शिवां कल्याणीं कुरु । अच्छा वदामिस । अच्छा निर्मलम् । वदामसि वदाम । अच्छशब्दस्य '' निपातस्य '' इति दीर्घः । "इदन्तो मसि," इदनर्थको निपातः। अयक्ष्मं नीरोगम्। सुमनाः सुमनस्कमसत् भवेन् । लिङ्थें लेट् तिप् इतश्च लोपः । परस्मैपदेषु लेटः प्रभवत्यट् । शरन्या शरसंधात्री ज्या । " शरो दध्यप्रबाणयोः " इति विश्वः । शरमर्हति यत् । अव शरस्य चेत्यवादेशः । शरुवृत्ताद्वा सिद्धं "शरुरायुधकोपयोः"। "उगवादिभ्यो यत्"। जीवसे जीवितुं, मुड मोदय । यद्वा हे मृड । तया तन्वा नः अस्मान् जीवसे जीवयसि । शन्तमया अतिशयेन शं शंतमा तया अभिचाकशत्, कशेर्यङ् उदात्तालेट् तिप् अट्। अतिशयेन प्रकाशयत्विति प्रार्थना । ब्रम्नुः पिङ्गलः अव एषां ह ईडे स्तुतये ईमहे कामयामहे ॥ १ ॥

इति प्रथमः खण्डः

द्वितीय: खण्ड:

अपरयं त्वावरोहन्तं नीलग्रीवं विलोहितम् । उत त्वा गोपा अदृशन्तुत त्वोदहार्यः ॥

उत त्वा विश्वा भ्तानि तस्मै दृष्टाय ते नमः। नमो अस्तु नीलशिखण्डाय सहस्राक्षाय वाजिने ॥ अथो ये अस्य सत्वानस्तेभ्योऽहमकरं नमः। नमांसि त आयुधायानातताय धृष्णवे ॥ उभाभ्यामकरं नमो बाहुभ्यां तव धन्वने । प्रमुख धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्नियोर्ज्याम् ॥ या श्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप । अवतत्य धनुस्त्व ५ सहस्राक्ष शतेषुषे ॥ निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः शंभुराभर । विज्यं धनुः शिखण्डिनो विशल्यो बाणवा ५ उत् ॥ अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गिथः । परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ॥ अथो य इषुधिस्तवारे अस्मिन्निधेहि तम्। या ते हेतिमीं दुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ॥ तया त्वं विश्वतो अस्मानयक्ष्मया परिब्सज । नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमन ॥ ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः । ये वाभिरोचने दिवि ये च सूर्यस्य रिमषु ॥ येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः । या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीनाम् । ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २ ॥ गोपा गोपाला अदृशन् अपश्यन् । उदहार्यः पानीयहारिण्यः । विश्वानि भूतानि अदृशन् । योगिनामप्यदृश्यं त्वां कृपया आविर्भ-

वन्तमादित्यवत्प्रकाशमानं पामरा अपि ददृशुरित्यर्थः । वाजिनेऽन्नवते बाण-रूपाय वा । सीदन्तीति सत्वानो गणाः । नमांसि नमस्काराः । न आत-ताय अनातताय । धृष्णवे प्रगल्भाय । बाहुभ्यां कृत्वा धन्वने नमोऽकरव-मित्यर्थः । उभयोररिप्रत्यरिभृतयो राज्ञोर्धन्वनो ज्यां प्रमुख अनाततं कुरु । राज्ञोर्विप्रहे लोकानां क्रेशो भवति । ततस्तं शमयेति भावः । हे भगवः । यास्ते हस्त इषवो बाणास्ताः परावप पराङ्मुखान् मुंच । त्वमपि कोपं लोकेषु मा कृथा इति भावः। इन्द्ररूपेण जगद्रक्षेति प्रार्थयते — अव-तत्येति । स्विधज्यं कृत्वा । सहस्राक्ष शकरूप । शतमिषुधयस्तूणा यज्ञरूपाः यस्य तत्संबोधने । निशीर्य तीक्ष्णीकृत्य । मुखा मुखानि । नोऽस्मान् । शिवः कल्याणरूपः। शम्भुः सुखहेतुः सन्नाभर धारय पोषय वा। बाणवान् तूणीरः विशल्योऽस्तु भल्लरहितो भवतु । वैरिषु हतेषु तत्प्रयोजना-भावात् । अनेशन् अदृश्या अभूवन् । " निश्चगस्योरलियत्वम् " इति वार्ति-केन छुडि घङि एत्वम् । निषङ्गियः निषङ्गे । विश्वतः सर्वतः । अस्मान् परिवृणक्तु परिवृणातु । अरे सम्बोधने । अथो पश्चाद्रक्षणानन्तरं यस्तव • इषुधिरस्मित्रिषुघो तं बाणं निषेहि स्थापय । हे मीदुष्टम ईडितत-मेत्यर्थः । सेचकतम अयक्ष्मया सज्जया तया हेत्या परिब्सुज परिपालय । सदस्कृतं गृहं कृतं यातुधानानां रक्षसां वनस्पतीनां चेषवः सर्पाः । तैर्हि ते जनान् दशन्ति । अवटेषु गर्तेषु ॥ २ ॥

इति द्वितीय: खण्ड:

तृतीय: खण्ड:

यः स्वजनानीलग्रीवो यः स्वजनान्हरिः । कल्माषपुच्छमोषधे जम्भयोताश्वरुन्धति ॥ बम्रुश्च बम्रुकर्णश्च नीलग्रीवश्च यः शिवः । शर्वेण नीलकण्ठेन भवेन मरुतां पिता ॥ विरूपाक्षेण बम्रुणा वाचं वदिप्यतो हतः । शर्वे नीलशिखण्ड वीर कर्मणि कर्मणि ॥

इमामस्य प्राशं जिह येनेदं विभजामहे। नमो भवाय। नमश्शवीय। नमः कुमाराय अत्रवे। नमः सभाप्रपादिने। यस्याश्वतरौ द्विसरौ गर्दभावभितस्सरौ। तस्मै नीलशिखण्डाय नमः। नीलशिखण्डाय नमः॥ ३॥

केदाराधीशं महिषरूपं स्तौति—य इति । यः शिवः स्वजनान् भक्तान् प्रति नीलग्रीवः । यश्च स्वजनान्भक्तान् प्रति हरिई रितवर्णो भक्तवात्सल्येन भवित । महिषस्य हि तादृश्यं संभवित । ओषषे अरुन्धित रोधरिहते । तं कल्माषपुच्छं कृष्णपाण्डुरपुच्छम् । आशु शिव्रम् । जन्मय वीर्यवन्तं कुरु । ओषधीनां पशुभ्यो बलप्रदत्वात् । "कल्माषो राक्षसे कृष्णे कल्माषः कृष्णपाण्डुरे" इति विश्वः । केदारेश्वरस्य महिषरूपत्वात्पुच्छवत्ता संभवित । बश्चः किवदवयवे पिक्तळवर्णः । बश्चकर्णः अन्तःपिक्तळवर्णकर्णः । पितेति तृतीयार्थे प्रथमा । पितेत्यर्थः । अथ वाचं विद्य्यतः पिता देहिमात्रस्य जनकः ब्रह्म येनेश्वरेण हतस्तं त्वं पश्येत्यन्वयः । हे वीर कर्मणि कर्मणि विहितनिषद्धरूपे इमामस्य जनस्याशां पृच्छतीति प्राट् । तां प्राशं पृच्छकां वाचं जि । वेदविहितनिषिद्धकर्मविषयं संशयं निराकुर्वित्यर्थः ।

येन कर्मणेदं जगद्विभजामहे कर्मभूमिभोगभूमिरूपेण विभक्तं कुर्महे। कुमाराय कालानिभभूताय। शतवे संहर्जे। सभाप्रपादिने सभां प्रपद्यते तच्छीलः सभाप्रपादी तस्मै सभ्यायेत्यर्थः। अश्वतरो ईषदृनमश्चत्वं ययोस्तौ अश्वतरो । गर्दभादश्वायां जातौ । द्विसरौ अभितः सरत इत्यभितःसरौ गर्दभौ वर्तेते तस्मै । द्विरुक्तिः समाप्त्यर्था।

> नारायणेन रचिता श्रुतिमात्रोपजीविता । अस्पष्टपदवाक्यानां नीलरुद्रस्य दीपिका ॥ ३ ॥

> > इति तृतीय: खण्ड:

इति नारायणकृतदीपिकाख्यव्याख्योपेता नीलस्द्रोपनिषत् समाप्ता

पारायणोपनिषत्

अथाह वै वेदानां वेदत्वमेतेन शाक्ते शक्तित्वमेति न वेदमातुर्वेदमातृत्वमेतेन तत्सिवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमिह । धियो यो नः प्रचोदयात् ।
परोरजसे सावदोम् । महाकालाय विद्याहे श्मशानवासिने धीमिह । तन्नो
रुद्रः प्रचोदयात् । रुद्र एवामिरिति । अथ प्रकाशः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ
ऐं क्कीं सौः । ॐ तत्सिवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमिह । धियो यो नः
प्रचोदयात् । परोरजसे सावदोम् । सौः क्कीं ऐं हों कीं कीं कीं हूं हूं
हीं हीं दक्षिणकालिके कीं कीं कीं हुं हूं हीं हीं स्वाहा । हां ऐं
क्कीं श्री ॐ ॐ ॐ श्रीं क्कीं ऐं । महाकालाय विद्याहे श्मशानवासिने
धीमिह । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । रुद्र एवामिरिति संघट्टनाधीशो

भवेत् । तिदिदंपारायणवशादानन्दपूर्णो भवेत् । ओघत्रयनामिविशिष्टमाकृति-विशिष्टं भवनाथनामिविशिष्टं वा नाममयीमाज्ञां दद्यात् । घटिकापारायणं चरेत् । दिनाक्षरयुगाक्षरे तिद्दनित्याहंसस्तदनु मानृकां जपेत् । कालिन्त्यां जपेत् । द्विशतसाहस्रशीर्षं तरसामिजापी भवेत् । मन्त्रपारायणी भवेत् । नामपारायणी भवेत् । चक्रपारायणी भवेत् । स सर्व पश्यति । स सर्व जलमयो भवेत् । वहौ विह्नमयो भवेत् । चराचरगितभवेत् । पराशतषष्टिवाणीज्ञो भवेत् । षोढान्यासाधिकारी भवेत् । मासतः पक्षतो वारतः पारायणी भवेत् । सर्वाधिकारी भवेत् । दृष्टाकं चरेत् । तदाचरणी अमृतत्वं गच्छिति । अक्षत्वं गच्छिति । साक्षात्सप्तमीरूपो भवेदिति प्रोतं वेद ॥

इत्यायर्वणीये सौभाग्यकाण्डे पारायणोपनिषद् समाप्ता

बिल्वोपनिषत्

अथ वामदेवः परमेश्वरं सृष्टिस्थितिलयकारणमुमासहितं स्वशिरसा प्रणम्येति होवाच । अधीहि भगवन् सर्वविद्यां सर्वरहस्यविष्ठां सदा सिद्धः पूज्यमानां निगृदाम् । कया च पूज्या सर्वपापं व्यपोद्ध परात्परं शिव-सायुज्यमामोति ? केनैकेन वस्तुना मुक्तो भवति ? तं होवाच भगवान् सदाशिवः ।

> न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन । मत्त्वरूपस्त्वयं ज्ञेयो बिल्वृहक्षो विधानतः । एकेन बिल्वपत्नेण संतुष्टोऽस्मि महामुने ॥ इति ब्रुवन्तं परमेश्वरं पुनः प्रणस्येति होवाच ॥

भगवन् सर्वलोकेश सत्यज्ञानादिलक्षण । कथं पूजा प्रकर्तव्या तां बदस्व दयानिषे ॥

इति पुनः पृच्छन्तं वामदेवमालिङ्गचेति होवाच ॥

बुद्धिमांस्त्वमिति ज्ञात्वा वक्ष्यामि मुनिसत्तम । मम प्रियेण बिल्वेन त्वं कुरुष्व मदर्चनम् ॥ द्रव्याणामुत्तमैर्लीके मम पूजाविधी तत । पत्रपुष्पाक्षतैर्दिव्यैर्बिल्वपतैः समर्चय ॥ बिल्वपत्रं विना पूजा व्यर्था भवति सर्वदा । मम रूपमिति ज्ञेयं सर्वरूपं तदेव हि ॥ प्रातः स्नात्वा विधानेन सन्ध्याकर्म समाप्य च । भूतिरुद्राक्षभरण उदीची दिशमाश्रयेत् ॥ सद्योजातादिभिर्मन्त्रैर्नमस्कृत्य पुनः पुनः । प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा शिवरूपमिति स्फुटम् ॥ देवीं ध्यायत्त्रथा वृक्षे विष्णुरूपं च सर्वदा । ब्रह्मरूपं च विज्ञेयं सर्वरूपं विभावयेत् ॥ वामदक्षिणमध्यस्थं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । इन्द्रादयश्च यक्षान्ता वृन्तभागे व्यवस्थिताः ॥ पृष्ठभागेऽमृतं यस्मादर्चयेन्मम तुष्टये । उत्तानबिल्वपत्रं च यः कुर्यान्मम मस्तके ॥ मम सायुज्यमामोति नात्र कार्या विचारणा । त्रिमूर्तिस्त्रिगुणं बैल्वमिम्रूपं तथैव च। ब्रह्मरूपं कलारूपं वेदरूपं महामुने ॥

पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि । सबिल्वरूपं सगुणात्मरूपं त्रिमूर्तिरूपं शिवरूपमस्मि ॥ पृष्ठभागेऽसृतं न्यस्तं देवैर्ब्रह्मादिभिः पुरा । उत्तानविल्वपत्रेण पूजयेत् सर्वसिद्धये ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन विल्वपत्रैः सदार्चय । विल्वपत्रं विना वस्तु नास्ति किंचित्तवानघ ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन विल्वपत्नैः सदार्चय । उत्तानपत्रपूजां च यः कुर्यान्मम मस्तके ॥ इह लोकेऽखिलं सौख्यं प्रामोत्यन्ते पुरे मम । तिष्ठत्येव महावीरः पुनर्जन्मविवर्जितः ॥ सोदकैर्बिल्वपतैश्च यः कुर्यान्मम पूजनम् । मम सान्निध्यमामोति प्रमथैः सह मोदते ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते । बिल्वपूजनतो लोके मत्पूजायाः परा न हि॥ त्रिसुपर्णे त्रिऋचां रूपं त्रिसुपर्णे त्रयीमयम् । त्रिगुणं विजगन्मूर्तित्रयं शक्तित्रयं त्रिहक् ॥ कालत्रयं च सवनत्रयं लिङ्गत्रयं त्रिपात् । तेजस्त्रयमकारोकारमकारप्रणवात्मकम् ॥ देवेषु ब्राह्मणोऽहं हि त्रिसुपर्णमयाचितम् । मह्यं वै ब्राह्मणायेदं मया विज्ञप्तकामिकम् ॥ द्द्याद्भस्रुणवीरहत्यायाश्चान्यपातकैः । मुक्तोऽखण्डानन्दबोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

208

त्रिसुपर्णोपनिषदः पठनात्पङ्क्तिपावनः ।
बोधको ह्या सहस्राद्वै पङ्क्ति पावयते ध्रुवम् ॥
त्रिसुपर्णश्रुतिह्येषा निष्कृतौ त्रिदले रता ।
श्रद्धत्त्व विद्वन्नाद्यं तदिति वेदानुशासनम् ॥
अखण्डानन्दसंबोधमयो यस्मादहं मुने ।
विन्यस्तामृतभागेन सुपर्णेनावकुण्ठय ॥
अमृतं मोक्षवाचन्तु तेनास्मदवकुण्ठनात् ।
प्राप्येते भोगमोक्षौ हि स्थित्यन्ते मदनुमहात् ॥
उत्तानभागपर्णेन मूर्धि मे न्युङ्जमर्पयेत् ।
मोक्षेऽमृतावकुण्ठोऽहं भवेयं तव कामधुक् ॥
येन केन प्रकारण विज्वकनापि मां यज ।
तीर्थदानतपोयोगस्वाध्याया निव तत्समाः ॥
बिल्वं विधानतः स्थाप्य वधित्वा च तहलेः ।
यः पूज्यिति मां भक्त्या सीउइमेव न संशयः ॥

य एतदधीते विहासिंहा भ्यानिति स्विर्णस्तैय्यस्तेयी भवति । सुरापाय्यपायी भवति । गुरुवधूगाम्यगामी भवति । भवति । प्रति प्रति प्रति । भवति । न च पुनर्शवर्तते । प्रति प्रति । भवति । न च पुनर्शवर्तते । प्रति । प्रति । प्रति । कि स्विर्ण प्रति । कि स्वर्ण प्रति । कि स्वर्य । कि स्वर्ण प्रति । कि स्वर्ण प्रति । कि स्वर्य । कि स्वर्ण प्रति । कि स्वर्ण प्रति । कि

कालवयं च सवाययं जिक्वारं विषय ।
तेवखयमकारोक्तरमकारभणवासक्य ॥
देवेषु बाह्यणोऽहं हि विसुपर्णमयाचितम् ।
महं वै बाह्यणायेदं मया विज्ञसकापिकम् ॥
दवाङ्गबभूणवीरहत्यायाश्चान्यपातकैः ।
सक्तोऽस्वण्डानन्द्वोधो बह्यमूयाय कल्पते ॥

मृत्युलाङ्ग्लोपनिषत्

अथ मृत्युलाङ्गूलं व्याख्यास्यामः । अस्य मृत्युलाङ्गूलमन्तस्य विसष्ठ ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । कालाग्निरुद्रो यमश्च देवता । मृत्यूपस्थाने विनियोगः । अथातो योगजिह्नः साधुमितयोजितं स मे वाह कालं पुरुष-मूर्ध्विल्जःं विरूपाक्षं विश्वरूपाय नमो नमः । पशुपतये नमः । य इदं शृणुयान्नित्यं मृत्युलाङ्गूलं त्रिसन्ध्यं कीर्तयित वा स ब्रह्महत्यां व्यपोहित । सुवर्णस्तेय्यस्तेयी भवति । गुरुदाराभिगाम्यगामी भवति । सर्वेभ्यः पात-केभ्य उपपातकेभ्यश्च सद्यो विमुक्तो भवति । सक्वज्ञप्तेनानेन गायच्याः पष्टिसहस्राणि फलितानि भवन्ति । अष्टौ ब्राह्मणान् प्राह्मित्वा ब्रह्मलोक-मवाभोति । यः कश्चिन्त ददाति स श्वित्री कृष्टी कुनस्वी वा भवेत् । यः कश्चिद्दीयमानं न गृह्माति सोऽन्धो विधरो मृको वा भवति । मृत्युमुपस्थितः षण्मासादर्वाक् । बन्धोऽयं नश्यित इत्यनेन मृत्युलाङ्गू-लाख्यस्य च महामन्तस्य शतकृत्वो जप्तेन भगवान् धर्मराट् मम प्रीयताम् ।

ऋतं नष्टं यदा काले षण्मासेन मरिष्यति । ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥ ऊर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपं नमाम्यहम् । सत्यं तु पञ्चमे मासे परं ब्रह्म चतुर्थके ॥ पुरुषं च तृतीये वा द्वितीये कृष्णपिङ्गलम् ॥ ऊर्ध्वलिङ्गं तु मासेन विरूपाक्षं तदर्धके । विश्वरूपं तृतीयेऽह्मि सद्यश्चैव नमो नमः ॥

इति मृत्युलाङ्गूलोपनिषत् समाप्ता

रुद्रोपनिषत्

विश्वमयो ब्राह्मणः शिवं व्रजति । ब्राह्मणः पञ्चाक्षरमनुभवति । ब्राह्मणः शिवपूजारतः । शिवभक्तिविहीनश्चेत् स चण्डाल उपचण्डालः । चतुर्वेदज्ञोऽपि शिवभक्त्यान्तर्भवतीति स एव ब्राह्मणः । अधमश्चाण्डालोऽपि शिवभक्तोऽपि ब्राह्मणाच्छ्रेष्ठतरः । ब्राह्मणस्त्रिपुण्ड्र्घृतः । अत एव ब्राह्मणः । शिवभक्तेरेव ब्राह्मणः । शिवलिङ्गार्चनयुतश्चाण्डालोऽपि स एव ब्राह्मणाधिको वित । अग्निहोत्रभिताच्छिवभक्तचाण्डालहस्तविभृतिः शुद्धा । कपिशा वा श्वेतजापि धूम्रवर्णा वा । विरक्तानां तपस्विनां शुद्धा । गृहस्थानां निर्मलविभृतिः । तपस्विभः सर्वभस्म धार्यम् । यद्वा शिवभक्तिसंपुष्टं सदापि तद्वसितं देवताधार्यम् ।

ॐ अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । स्थलमिति भस्म । जलमिति भस्म । व्योमेति भस्म इत्याद्युपनिषत्कारणात् तत् कार्यम् । अन्यत्र "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् । सं वाहुभ्यां नमित सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ।" तस्मात्प्राणिलिङ्गी शिवः । शिव एव प्राणिलिङ्गी । जटाभस्मधारोऽपि प्राणिलिङ्गी हि श्रेष्ठः । प्राणिलिङ्गी शिवरूपः । शिवरूपः प्राणिलिङ्गी । जङ्गमरूपः शिवः । शिव एव जङ्गमरूपः । प्राणिलिङ्गनां शुद्धसिद्धिने भवति । प्राणिलिङ्गनां जङ्गमपूज्यानां पूज्यतपस्विनामधिकश्चण्डालोऽपि प्राणिलिङ्गी । तस्मात्प्राण-लिङ्गी विशेष इत्याह । य एवं वेद स शिवः । शिव एव रुद्धः प्राणिलङ्गी नान्यो भवति ।

ॐ आत्मा परिशवद्वयो गुरुः शिवः । गुरूणां सर्वविश्वमिदं विश्व-मन्त्रेण धार्यम् । दैवाधीनं जगदिदम् । तद्दैवं तन्मन्त्रात् तनुते । तन्मे दैवं गुरुरिति । गुरूणां सर्वज्ञानिनां गुरुणा दत्तमेतदन्नं परब्रह्म । ब्रह्म स्वानुभृतिः । गुरुः शिवो देवः । गुरुः शिव एव लिङ्गम् । उभयोर्मिश्रप्रकाशत्वात् । प्राणवत्त्वात् महेश्वरत्वाच शिवस्तदेव गुरुः । यत्र गुरुस्तत्र शिवः । शिवगुरुस्वरूपो महेश्वरः । अमरकीटकार्येण दीक्षिताः शिवयोगिनः शिवपूजापथे गुरुपूजाविधौ च महेश्वरपूजनान्मुक्ताः । लिङ्गाभिषेकं निर्माल्यं गुरोरिभिषेक-तीर्थं महेश्वरपादोदकं जन्ममालिन्यं क्षालयन्ति । तेषां प्रीतिः शिवप्रीतिः । तेषां तृप्तिः शिवतृप्तिः । तैश्व पावनो वासः । तेषां निरसनं शिवनिरसनम् । आनन्दपारायणः । तस्माच्छिवं त्रजन्तु । गुरुं त्रजन्तु । इत्येव पावनम् ॥

इति स्दोपनिषत् समाप्ता

लिङ्गोपनिष**त्**

ॐ धर्मजिज्ञासा । ज्ञानं बुद्धिश्च । ज्ञानान्मोक्षकारणम् । मोक्षान्मुक्तिस्वरूपम् । तथा ब्रह्मज्ञानाद्बुद्धिश्च । लिङ्गैक्यं देहो लिङ्गभेदे न । अज्ञानात् ज्ञानं बुद्धिश्च । चतुर्वर्णानां धारणां कुर्यात् । पशुपिक्ष-मृगकीटकलिङ्गधारणमुच्यते । पञ्चबन्धस्वरूपेण पञ्चबन्धा ज्ञानस्वरूपाः । पिण्डाज्जननम् । तज्जननकाले धारणमुच्यते । "सर्विलिङ्गं स्थापयित पाणि-मन्तं पवित्रम् ", "अयं मे हस्तो भगवान् " इति धारयेत् । "या ते रुद्र शिवा तनूर्घोराऽपापकाशिनी ", "रुद्रपते जिनमा चारु चित्रम् ", "वयं सोम वर्ते तव । मनस्तनृषु विश्रतः । प्रजावन्तो अशीमिह ।", " त्रियम्बकं यजामहे " इति धारयेत् । ब्राह्मणानां धारणां कुर्यात् । " पवित्रं ते विततं

ब्रह्मणस्पते ", "सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तन्षु भेषजानि धत्तम् । अवस्यतं मुंचतं यन्नो अस्ति तन्षु बद्धं कृतमेनो अस्मत् । सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः । जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् । " इति प्राकटचं कुर्यात् । न कुर्यात्पशुभाषणम् । श्रीतानामुपनयनकाले धारणम् । चतुर्थाश्रमः संन्यासः । पञ्चमो लिङ्ग-धारणम् । अत्याश्रमाणां मध्ये लिङ्गधारी श्रेष्ठो भवति । शिरिस महादेव-स्तिष्ठतु इति धारयेत् । अन्यायो न्यायः । पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाश इति पञ्चस्वरूपं लिङ्गम् । त्ववच्छोत्रनेत्रजिह्वाघ्राणपञ्चस्वरूपमिति लिङ्गम् । रेतोबुद्धचापमनस्त्वरूपमिति लिङ्गम् । सङ्कल्प इति लिङ्गम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वरूपमिति लिङ्गम् । त्रतं चरेत् । संतिष्ठेन्नियमेन । सर्व शाम्भवीरूपम् । शाम्भवी विद्योच्यते । चरेदेतानि सूत्राणि । पञ्चमुखं पञ्चस्वरूपं पञ्चाक्षरं पञ्चसूत्रं ज्ञानम् । सिद्धिर्भवत्येव । ज्ञानाद्धारणं लिङ्गदेह-प्रकार उच्यते । शिरःपाणिपादपायूपस्थं सर्व लिङ्गस्वरूपम् । ब्राह्मणो वदेत् ।

ओक्कारो बाणः शक्तिरेव पीठं सिन्दूरवर्ण सर्व लिक्कस्वरूपम्। कैवल्यं केवलं विद्यात्। व्यवहारपरः स्यात्। प्राण एव प्राणः। पूर्व ब्रह्मा पीठम्। विष्णुर्वाणः। रुद्रः स्वरूपम्। सर्वभृतैरथापरित्याज्यश्च। विग्रहमनुग्रहलिक्केषु शक्तिकपालेषु सर्ववशक्करं विद्यात्। जातिविषयान् त्यजेत्। श्रौताश्रौतेषु धारणम्। वेदोक्तविधिना श्रौतं तद्रहितमश्रौतम्। सर्ववर्णेषु धारणं कैलाससिद्धिभवति। धारणं देहे कैलासस्वरूपम्। धारणं देहे कैलासस्वरूपम्। धारणं देहे प्रणवस्वरूपम्। धारणं देहे वेदस्वरूपम्। धारणं देहे विदस्वरूपम्। धारणं देहे विश्वस्वरूपम्। शिरसि बाणं बाहुनाभिपीठप्रकृतिरूपकं देहे धारणं यस्य न विद्यते तहेहं न पदयेत्। शिरःकपालं केशान् न कुर्यात्। शिरःपीठं लिक्कात्मकं सर्वम्।

शाम्भवीविमह उच्यते । प्राणादिलिङ्गस्वरूपं गुरोलिङ्गम् । गुरुसंभवात्मकं लिङ्गं प्रगुरोः । ततः प्रथमं प्रणिपतित । प्रणवस्वरूपं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गम् । प्रकाशात्मकं लिङ्गं विद्यालिङ्गम् । विद्यालिङ्गं ज्ञानस्वरूपम् । लिङ्गं प्रचरेच्छा-स्नात् । लिङ्गस्वरूपेयं सिद्धिभीविष्यति । सर्वदेहेषु लिङ्गधारणं भवति । इति वेदपुरुषो मन्यते । महापुरुषोपेतं यो वेद स एव नित्यपूतस्थः । स एव नित्यपूतस्थः स्याद्दैवलौकिकः पुरुषः । स एवामुष्मिकपुरुष इति मन्यन्ते । जीवात्मा परमात्मा च स एवोच्यते । इष्टप्राणाभावेषु लिङ्गधारणं वदन्ति । इष्टे धारणम् । तिस्रः पुरस्निपदा विश्वचर्षणी । पुरनाशे लिङ्गस्वरूपाज्ञासिद्धिभीवत्यवज्ञानेऽसति । संयुक्तं लिङ्गं मोक्ष एव भवत्येव । मोक्षमेव धारणं विद्यात् । उशंतीव मातरं कुर्यात् । इत्येवं वेदेत्युपनिषत् । ॐ तत्सत् ॥

इति लिङ्गोपनिषत् समाप्ता

वज्रपञ्जरोपनिषत्

सह नाववतु - इति शान्तिः।

वज्रपञ्जरेण भस्मधारणं कुर्यात् । वामकरे भस्म गृहीत्वा सद्यो-जातिमिति पञ्चब्रह्ममन्त्रः । त्रियम्बकं जातवेदसे गायत्र्या मानस्तोकैरभिमन्त्र्य मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य श्रीविद्येयं शिरिस । ऐं वद वद वाम्वादिनि हस्रैः क्किन्ने क्रेदिनि क्रेद्रय महाक्षोभं कुरु । हसकलरी ओं मोक्षं कुरु कुरु । हसौः इति मुखे । ओं ओं नमो भगवित ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वज्ञानं हारिके जातवेदिस ज्वलन्ति ज्वलन्ति प्रज्वल प्रज्वल हां हीं हूं र र र र ज्वालामालिनि हुं फट् स्वाहा इति हृदये। जलवासिन्यै नमो नामौ। हीं
विह्वासिन्यै नमो गुबे। ओं सह . . . नाभ्यादिजान्वन्तम्। ओं हीं श्री
पशु हुं फट् स्वाहा जान्व।दिपादपर्यन्तम्। ओं हीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर
प्रस्फुर रूप तट तट चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम
बन्धय बन्धय घातय घातय हुं फट् स्वाहा इत्यघोरेण शिरिस। ओं वैष्णव्यै
नमो हृदये। पुनः अघोरेण पृष्ठे। पुनः सुदर्शनेन जान्वादिनाभ्यन्तम्।
पुनः पाशुपतेन पादादिजान्वन्तम्। ह्सौः अ अं क्षं स्होः . . ओं हीं
क्षीं क्षीं श्रीं।

उम्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

श्रीं श्रीं हीं ओं इति दक्षिणबाहों । ओं क्षां ओं नमो भगवते नारसिंहाय ज्वालामालिने तीक्ष्णदंष्ट्राग्निनेत्राय सर्वरक्षोन्नाय सर्वज्वरिवनाशाय सर्वभूतिवनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा इति वामबाहों । उत्तिष्ठ पुरुष हरितिपिङ्गळ लोहिताक्ष देहि मे दापय स्वाहा । ओं हीं दुं उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्विपिषि भयं मे समुपस्थितम् । यदि शक्यमशक्यं वा ते भगवित शमय शमय स्वाहा ।

मृत्योस्तुल्यं त्रिलोकीं ग्रसितुमितरसान्निस्सृता किं नु जिह्वा किं वा कृष्णाङ् घ्रिपद्मसृतिभिररुणिता विष्णुपद्याः पदव्यः । प्राप्ताः सन्ध्याः स्मरारेः स्वयमुत नुतिभिस्तिस्र इत्यूद्धमानाः देवैदेंव्यास्त्रिशूलक्षतमिहषजुषो रक्तधारा जयन्ति ॥ इति बडबानलदुर्गामृत्योस्तुल्यवनदुर्गाभिः सर्वाङ्गमुद्भूळयेत् । ततः

शेषभस्मिन जलं निक्षिप्य त्रिपुण्ड्घारणं कुर्यात् ।

एता एव महाविद्या विभृतेरिभधारणे।
कथिताः परमेशानि सतां पूर्वतराघहाः॥
वज्रपञ्जरनाम्नैव यः कुर्याद्भस्मधारणम्।
स सर्वभयनिर्मुक्तः साक्षाच्छिवमयो भवेत्।
एतानि तानि श्रीमन्त्रपवित्रे यानि भस्मिन॥
दग्धकामाङ्गविभृतित्रैपुण्ड्तानि कथितानि ललाटपट्टे लोपयन्ति
दैवलिखितानि दुरक्षराणि।

इति वज्रपज्जरोपनिषत् समाप्ता

वदुकोपनिषत्

अथ वटुकोपनिषदं व्याख्यास्यामः।

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिर्भविता नेतरेषाम् ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च बिष्णुस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च रुद्धस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च रुद्धस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्चेन्द्रस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्चामिस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च वायुस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च वायुस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः ॥
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सोमस्तस्मै वै नमो नमः ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च ग्रहास्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुकः स भगवान् यश्चोपग्रहास्तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वट्टकः स भगवान् यश्च भूस्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुकः स भगवान् यश्च भुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वदुकः स भगवान् यश्च स्वस्तस्मै वै नमो नमः। यो वै वटुकः स भगवान् यश्चान्तरिक्षं तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्च द्योस्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वट्टकः स भगवान् यश्चापस्तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्च तेजस्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वदुकः स भगवान् यश्च कालस्तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्च मृत्युस्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुकः सं भगवान् यश्चामृत्युस्तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकाशस्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुकः स भगवान् यश्च विश्वं तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्च शुक्कं तस्मै वै नमो नमः। यो वै वटुकः स भगवान् यश्च दम्भस्तस्मै वै नमो नमः॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्चादम्भस्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुकः स भगवात् यश्च सूक्ष्मं तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्च स्थूलं तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुक: स भगवान् यश्च कृष्णस्तस्मै वै नमो नमः ॥ यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकृष्णस्तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सत्यं तस्मै वै नमो नमः । यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सर्वे तस्मै वै नमो नमः ॥

भूस्ते आदिर्मध्यं भुवः स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मेकस्त्वं द्विधा विश्व बुद्धिस्त्वं शान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम् । अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्यो-तिरविदाम देवान् । किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य । सोमसूर्यपुरस्तात् सूक्ष्मः पुरुषः । सर्वं जगद्धितं वा एतदक्षरं प्राजापत्यं सूक्ष्मं सोम्यं पुरुषं प्राह्ममप्राह्मेण भावं भावेन सोम्यं सोम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण वायव्यं बायव्येन प्रसति स्वेन तेजसा तस्माद्पसंहर्त्रे महाप्रासाय वै नमो नमः ।

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः । हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः ॥

तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारो य ओङ्कारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्स्क्ष्मं यत्स्क्ष्मं तच्छुक्कं यच्छुकं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एको य एकः स रुद्रो यो रुद्रः स ईशानो य ईशानः स भगवान् महेश्वरो यो भगवान् महेश्वरः स भगवान् वटुकेश्वरो यो भगवान् वटुकेश्वरः।

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुचार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुक्ताम-यति तस्मादुच्यत ओङ्कारः । अथ कस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुचार्यमाण एव ऋग्यजुस्सामाथर्वाङ्किरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः । अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी यस्मादुचार्यमाण एव सर्वान् लोकान् व्याप्नोति स्नेहो यथा ह्रुच्छिण्डिमिव शान्तरूपमोतप्रोतमनु-प्राप्तो व्यतिषक्तश्च तस्मादुच्यते सवव्यापी । अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तो यस्मादुचार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताचास्यान्तोः नोपलभ्यते तस्मादुच्य-तेऽनन्तः । अथ कस्मादुच्यते तारं यस्मादुचार्यमाण एव गर्भजन्मव्याधि-

जरामरणसंसारमहाभयात्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम् । अथ कस्मादुच्यते सूक्ष्मं यस्मादुचार्यमाण एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्यधितिष्ठति सर्वाणि चाङ्गान्यभिमृशति तस्मादुच्यते सूक्ष्मम् । अथ कस्मादुच्यते शुक्कं यस्मादुचार्यमाण एव क्रन्दते क्रामयति च तस्मादुच्यते शुक्रम् । अथ कस्मादुच्यते वैद्युतं यस्मादुचार्यमाण एवाव्यक्ते महति तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम् । अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म यस्मात् परमपरं परायणं च बृहद्भहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म । अथ कस्मादुच्यत एको यः सर्वान् प्राणान् संभक्ष्य संभक्षणेनाजः संस्टजित विस्टजित तीर्थमेके व्रजन्ति तीर्थमेके देक्षिणाः प्रत्यञ्च उदञ्चः प्राञ्चोऽभिव्रजन्त्येके तेषां सर्वेषामिह सद्गतिः । साकं स एको भूतश्चरति प्रजानां तस्पादुच्यत एकः । अथ कस्मादुच्यते रुद्रो यस्माद्दिभिर्नान्यैर्भक्तैर्द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते तस्मादुच्यते रुद्र:। अथ कस्मादुच्यत ईशानो यः सर्वान् देवानीशत ईशानीभिर्जननी-भिश्च परमशक्तिभिः । अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः सुवर्दशमीशानमिन्द्र तस्थुषः । तस्मादुच्यत ईशानः । अथ कस्मा-दुच्यते भगवान् महेश्वरो यस्माद्भक्ता ज्ञानेन भजन्त्यनुगृह्णाति च वाचं संस्चजित विस्चजित च सर्वान् भावान् परित्यज्यात्मज्ञानेन योगैश्वर्येण महति महीयते तस्मादुच्यते भगवान् महेश्वरः । अथ कस्मादुच्यते भगवान् वदुकेश्वरो यस्मादन्तर्जलौषिषविरुधानाविश्येमं विश्वं भुवनानि वा अवते तस्मादुच्यते भगवान् बदुकेश्वरः । तदेतद्रुद्रचरितम् ।

एको ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ एको बढुको न द्वितीयाय तस्मै

य इमान् लोकानीशत ईशनीभिः।

प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सश्चुकोचान्तकाले

संस्रज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता॥

यस्मिन् कोषं यां च तृष्णां क्षमां च

ह्यक्षमां हित्वा हेतुजालस्य मूलम्।

बुद्धचा सश्चितं स्थापयित्वा तु रुद्धे

शाश्चतं वै रुद्धमेकत्वमाहुः॥

बटुको हि शाश्चतेन पुराणेन

वेषमूर्जीण तपसा नियन्ता॥

अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वे ह वेदं भस्म मन एतानि चक्ष्रंिष यस्माद्व्रतमिदं पाशु-पतं यद्भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद्ब्रह्म तदेतद्वदुकं पशुपाशविमोक्षणाय ।

यस्मिन्निदं सर्वमीतप्रोतं

तस्मादन्यन्न परं किञ्चनास्ति ।

न तस्मात् पूर्वं न परं तदस्ति

न भूतं नोत भव्यं यदासीत् ॥

अक्षराज्ञायते कालः कालाद्वचापक उच्यते ।

व्यापको हि भगवान् वटुको भोगायमानो यदा शेते रुद्रस्तदा संहरते प्रजाः । उच्छासिते तमो भवित तमस आपोऽप्स्वङ्गुल्या मिथते मिथतं शिशिरे शिशिरं मध्यमानं फेनं भवित फेनादण्डं भवत्यण्डाद्वह्मा भवित ब्रह्मणो वायुर्वायोरोङ्कार ओङ्कारात्सावित्री सावित्र्या गायत्री गायत्र्या लोकाः भवन्ति । एतद्धि परमं तपः । आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरों नम इति ।

य इमां वदुकोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीतेऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति । अनुपनीत उपनीतो भवति । स हाम्रिपूतो भवति । स वायुपूतो भवति । स सूर्यपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वपूतो भवति । स सर्वेदेवैरनुक्रातो भवति । स सर्वेदेवैरनुक्यातो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स सर्वविद्भवति । स सर्वविद्भवति । स सर्वविद्भवति । स सर्वविद्भवति । स सर्वविद्भवि । स नालक्षानी भवति । स गुर्वनुष्रहभागी भवति । इत्येवं भगवद्भदुकेश्वरं यः स्तौति स वेद्यं वेदेति ॥

इत्याथर्वणरहस्ये वटुकोपनिषत् समाप्ता

शिवसङ्गल्पोपनिषत्

यज्जायतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरक्षमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्व यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥ यत्प्रज्ञानमृत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ थेन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यस्मिन्नृचः साम यज्ंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥ सुषारिथरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यद्गितं जिवष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

इति वाजसनेयसंहितायां शिवसङ्खल्पोपनिषत् समाप्ता

शिवसङ्गल्पोपनिषत्

यंनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायंते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १ ॥
येन कर्माणि प्रचरन्ति धीरा यतो वाचा मनसा चारु यन्ति ।
यत्संमितमनु संयन्ति प्राणिनस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृष्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वे यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३ ॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
सुषारिथरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
स्वारिष्ठं यदजिरं जिवष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥
यस्मिन्नृचः साम यज्विष्ठं यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनामाविवाराः ।
यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६॥
यदत्र षष्ठं त्रिशतं सुवीरं यज्ञस्य गुद्धं नवनावमाय्यम् [१] ।
दश पञ्च त्रिशतं यत्परं च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥

यज्जाभतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरक्रमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसक्रल्पमस्तु ॥८॥
येन द्यौः पृथिवी चान्तिरक्षं च ये पर्वताः प्रदिशो दिशश्च ।
येनेदं जगद्वचाप्तं प्रजानां तन्मे मनः शिवसक्रल्पमस्तु ॥ ९ ॥
येनेदं विश्वं जगतो बभूव ये देवा अपि महतो जातवेदाः ।
तदेवामिस्तमसो ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसक्रल्पमस्तु ॥१०॥
ये मनो हृदयं ये च देवा ये दिव्या आपो ये सूर्यरिश्मः ।
ते श्रोत्रे चशुषी सञ्चरन्तं तन्मे मनः शिवसक्रल्पमस्तु ॥११ ॥
अचिन्त्यं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपरं च यत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं श्रेयं तन्मे मनः शिवसक्रल्पमस्तु ॥ १२ ॥
एका च दश शतं च सहस्रं चायुतं च

नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च । समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्च

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १३ ॥
ये पश्च पश्चदश शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं च ।
तेऽग्निचित्येष्टकास्तं शरीरं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१४॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
यस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यस्येदं धीराः पुनन्ति कवयो ब्रह्माणमेतं त्वा वृणुत इन्दुम् ।
स्थावरं जङ्गमं द्यौराकाशं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१६॥
परात् परतरं चैव यत्पराचैव यत्परम् ।
यत्परात् परतो श्चेयं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१७॥

परात् परतरो ब्रह्मा तत्परात् परतो हरिः ।

तत्परात् परतोऽधीशस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १८ ॥

या वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी महेश्वरी ।

ऋग्यजुस्सामार्थर्वेश्च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १९ ॥

यो वै देवं महादेवं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।

यः सर्वे सर्ववेदेश्च तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २० ॥

प्रयतः प्रणवोद्धारं प्रणवं पुरुषोत्तमम् ।

ओङ्कारं प्रणवात्मानं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पट्यते ह्यज ईश्वरः ।

अकायो निर्गुणो ह्यात्मा तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २२ ॥ गोभिर्जुष्टं धनेन ह्यायुषा च बलेन च ।

प्रजया पशुभिः पुष्कराक्षं तन्मे मनः शिवसङ्गल्पमस्तु ॥२३॥ त्रियम्बकं यजामहे

सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय

माऽमृतात्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २४ ॥ कैलासशिखरे रम्ये शङ्करस्य शिवालये । देवतास्तत्र मोदन्ते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५ ॥ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो

विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् । संबाहुभ्यां नमति संपतत्रैर्घावापृथिवी

जनयन् देव एकस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २६ ॥

चतुरो वेदानधीयीत सर्वशास्त्रमयं विदु: । इतिहासपुराणानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २७ ॥ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पित्रं मोत मातरं प्रिया मा नः

तनुवो रुद्र रीरिषस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २८॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि

मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिवः।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीईविप्मन्तः

नमसा विधेम ते तन्मे मनः शिवसङ्करपमस्तु ॥ २९ ॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म

पुरुषं कृष्णपिङ्गळम् ।

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३०॥

कदुदाय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ।

सर्वो होष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३१ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्

वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।

स बुधिया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनि

असतश्च विवस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३२ ॥

यः पाणतो निमिषतो

महित्वैक इद्राजा जगतो वभ्व ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय

हविषा विनेम तन्मे मनः शिवसङ्गल्यमस्तु ॥ ३३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय

हविषा विधेम तन्मे मनः शिवसङ्करपमस्तु ॥ ३४ ॥

यो रुद्रो असौ यो अप्सु य ओवधीषु

यो रुद्रो विश्वा भुवनाऽऽविवेश ।

तस्मै रुद्राय नमो अस्तु

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३५ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षो

नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियं

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३६ ॥

य इदं शिवसङ्कल्पं सदा ध्यायन्ति ब्राह्मणाः।

ते परं मोक्षं गमिष्यन्ति तन्मे मनः शिवसङ्कल्यमस्तु ॥ ३७ ॥

इति शिवसङ्कल्पोपनिषत् समाप्ता

[इति शिवसङ्कल्पमन्ताः समाप्ताः]

शिवोपनिषत्

त्रथमोऽध्यायः

कैलासशिखरासीनमशेषामरपूजितम् ।
कालन्नं श्रीमहाकालमीश्वरं ज्ञानपारगम् ॥ १ ॥
संपूज्य विधिवद्भक्त्या ऋष्यात्रेयः सुसंयतः ।
सर्वभूतहितार्थाय पप्रच्छेदं महामुनिः ॥ २ ॥
ज्ञानयोगं न विन्दन्ति ये नरा मन्दबुद्धयः ।
ते मुच्यन्ते कथं घोराद्भगवन् भवसागरात् ॥ ३ ॥
एवं पृष्टः प्रसन्नात्मा ऋष्यात्रेयेण धीमता ।
मन्दबुद्धिविमुक्त्यर्थं महाकालः प्रभाषते ॥ ४ ॥

महादेव उवाच-

पुरा रुद्रेण गदिताः शिवधर्माः सनातनाः । देव्याः सर्वगणानां च संक्षेपाद्ग्रन्थकोटिमिः ॥ ५ ॥ आयुः प्रज्ञां तथा शक्तिं प्रसमीक्ष्य नृणामिह । तापत्रयप्रपीडां च भोगतृष्णाविमोहिनीम् ॥ ६ ॥ ते धर्माः स्कन्दनन्दिभ्यामन्यैश्च मुनिसत्तमैः । सारमादाय निर्दिष्टाः सम्यवप्रकरणान्तरैः ॥ ७ ॥ सारादिष महासारं शिवोपनिषदं परम् । अल्पग्रन्थं महार्थे च प्रवक्ष्यामि जगद्धितम् ॥ ८ ॥ शिवः शिव इमे शान्तनाम चाद्यं मुहुर्मुहुः । उच्चारयन्ति तद्भक्त्या ते शिवा नात्र संशयः ॥ ९ ॥

अशिवाः पाशसंयुक्ताः पशवः सर्वचेतनाः । यस्माद्विलक्षणास्तेभ्यस्तस्मादीशः शिवः स्मृतः ॥ १० ॥ गुणो बुद्धिरहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । भूतानि च चतुर्विशदिति पाशाः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥ पञ्चविंशकमज्ञानं सहजं सर्वदेहिनाम् । पाशजालस्य तन्मूलं प्रकृतिः कारणाय नः ॥ १२ ॥ सत्यज्ञाने निबध्यन्ते पुरुषाः पाशबन्धनैः । मद्भावाच विमुच्यन्ते ज्ञानिनः पाशपञ्जरात् ॥ १३ ॥ षड्विंशकश्च पुरुषः पशुरज्ञः शिवागमे । सप्तर्विश इति प्रोक्तः शिवः सर्वजगत्पतिः ॥ १४ ॥ यस्माच्छिवः सुसंपूर्णः सर्वज्ञः सर्वगः प्रभुः । तस्मात्स पाशरहितः स विशुद्धः स्वभावतः ॥ १५ ॥ पशुपाशपरः शान्तः परमज्ञानदेशिकः । शिवः शिवाय भूतानां तं विज्ञाय विमुच्यते ॥ १६ ॥ एतदेव परं ज्ञानं शिव इत्यक्षरद्वयम् । विचाराद्याति विस्तारं तैलविन्द्रिवाम्भसि ॥ १७ ॥ सकृद्चारितं येन शिव इत्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षोपगमनं प्रति ॥ १८ ॥ द्वचक्षरः शिवमन्त्रोऽयं शिवोपनिषदि स्मृतः । एकाक्षरः पुनश्चायमोमित्येवं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥ नामसङ्कीर्तनादेव शिवस्याशेषपातकैः। यतः प्रमुच्यते क्षिप्रं मन्त्रोऽयं द्वचक्षरः परः ॥ २० ॥ यः शिवं शिवमित्येवं द्वयक्षरं मन्त्रमभ्यसेत् । एकाक्षरं वा सततं स याति परमं पदम् ॥ २१ ॥

मित्रस्वजनबन्ध्नां कुर्यान्ताम शिवात्मकम् । अपि तत्कीर्तनाद्याति पापमुक्तः शिवं पुरम् ॥ २२ ॥ विज्ञेयः स शिवः शान्तो नरस्तद्भावभावितः । आस्ते सदा निरुद्धिमः स देहान्ते विमुच्यते ॥ २३ ॥ हृद्यन्त:करणं जेयं शिवस्यायतनं परम् । हत्पद्मं वेदिका तत्र लिङ्गमोङ्कारमिष्यते ॥ २४ ॥ पुरुषः स्थापको जेयः सत्यं संमार्जनं स्वतम ! अर्हिसा गोमयं प्रोक्तं शान्तिश्च सिटलं परम् ॥ २५ ॥ कुर्यात् संमार्जनं प्राज्ञो वैराग्यं चन्दनं स्पृतम् । पूजयेद्धचानयोगेन सन्तोषैः कुसुमैः सितैः ॥ २६ ॥ धूपश्च गुगालुर्देयः प्राणायामसमद्भवः । प्रत्याहारश्च नैवेद्यमस्तेयं च प्रदक्षिणम् ॥ २०॥ इति दिञ्योपचारैश्च संपृज्य परमं शिवम् । जपेद्धचार्येच मुक्त्यर्थ सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ २८ ॥ ज्ञानयोगविनिर्भुक्तः कर्मयोगसमावृतः । मृतः शिवपुरं गच्छेत्स तेन शिवकर्मणा ॥ २९ ॥ तत्र भुक्ता महाभोगान्प्रलये सर्वदेहिनाम् । शिवधर्माच्छिवज्ञानं प्राप्य मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३० ॥ ज्ञानयोगेन मुच्यंते देहपातादनन्तरम् । मोगान् भुक्त्वा च मुच्यन्ते प्रलये कर्मयोगिनः ॥ ३१ ॥ तस्मात् ज्ञानविदो योगात्तथाऽज्ञाः कर्मयोगिनः । सर्व एव विमुच्यन्ते ये नराः शिवमाश्रिताः ॥ ३२ ॥ स भोगः शिवविद्यार्थे येषा कर्मास्ति निर्मलम् । ते भोगान् प्राप्य मुच्यन्ते प्रलये शिवविद्यया ॥ ३३ ॥

विद्या सङ्कीर्तनीया हि येषां कर्म न विद्यते ।
ते चावर्त्य विमुच्यन्ते यावर्त्कमं न तद्भवेत् ॥ ३४ ॥
शिवज्ञानविदं तस्मात्पूज्यद्विभवेर्गुरुम् ।
विद्यादानं च कुर्वीत भोगमोक्षजिगीषया ॥ ३५ ॥
शिवयोगी शिवज्ञानी शिवजापी तपोऽधिकः ।
कमशः कर्मयोगी च पञ्चैते मुक्तिभाजनाः ॥ ३६ ॥
कर्मयोगस्य यन्मूलं तद्वक्ष्यामि समासतः ।
लिङ्गसायतनं चेति तत्र कर्म प्रवर्तते ॥ ३७ ॥

इति शित्रोपनिषदि सुक्तिनिर्देशाध्यायः प्रथमः

हितीयोऽध्यायः

अथ पूर्वस्थितो लिङ्गे गर्भः स त्रिगुणो भवेत् ।
गर्भाद्वापि विभागेन स्थाप्य लिङ्गे शिवालये ॥ १ ॥
यावलिङ्गस्य दैर्ध्य स्यात्तावद्वेद्याश्च विस्तरः ।
लिङ्गतृतीयभागेन भवेद्वेद्याः समुच्छयः ॥ २ ॥
भागमेकं न्यसेद्भूमौ द्वितीयं वेदिमध्यतः ।
तृतीयभागे पूजा स्यादिति लिङ्गे त्रिधा स्थितम् ॥ ३ ॥
भूमिस्थं चतुरश्चं स्यादष्टाश्चं वेदिमध्यतः ।
पूजार्थ वर्तुलं कार्य दैर्ध्यात् त्रिगुणविस्तरम् ॥ ४ ॥
अधोभागे स्थितः स्कन्दः स्थिता देवी च मध्यतः ।
ऊर्ध्वं रुद्रः ऋमाद्वापि ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः। एत एव त्रयो वेदा एतचान्यत्स्थितं त्रिधा ॥ ६ ॥ नवहस्तः स्मृतो ज्येष्ठः षड्ढस्तश्चापि मध्यमः । विद्यात् कनीयस्त्रेहस्तं लिङ्गमानमिदं स्मृतम् ॥ ७ ॥ गर्भस्यान्तः प्रविस्तारस्तदूनश्च न शस्यते । गर्भस्यान्तः प्रविस्तारात्तदुपर्यपि संस्थितम् ॥ ८ ॥ प्रासादं कल्पयेच्छ्रीमान् विभजेत त्रिधा पुनः। भाग एको भवेजाङ्घा द्वी भागी मझरी स्मृता ॥ ९ ॥ मञ्जर्या अर्धभागस्थं शुकनास् प्रकल्पयेत् । गर्भादधेंन विस्तारमायामं च सुशोभनम् ॥ १०॥ गर्भाद्वापि त्रिभागेन शुकनासां प्रकल्पयेत् । गर्भादर्धेन विस्तीर्णा गर्भाच द्विगुणायता ॥ ११ ॥ जङ्घाभिश्च भवेत् कार्या मञ्जर्यङ्गुलराशिना । प्रासादार्धेन विज्ञेयो मण्टपस्तस्य वामतः ॥ १२ ॥ मण्डपात्पादविस्तीर्णा जगती तावदुच्छ्ता । प्रासादस्य प्रमाणेन जगत्या सार्धमङ्गणम् ॥ १३ ॥ प्राकारं तत्समन्ताच गोपुरादालभूषितम्। प्राकारान्तः स्थितं कार्ये वृषस्थानं समुच्छित्म् ॥ १४ ॥ नन्दीश्वरमहाकालौ द्वारशाखाव्यवस्थितौ । प्राकाराद्वक्षिणे कार्ये सर्वोपकरणान्वितम् ॥ १५ ॥ पश्चभौमं त्रिभौमं वा योगीन्द्रावसथं महत् । पाकारगुसं तत्कार्य मैत्रस्थानसमन्वितम् ॥ १६ ॥ स्थानाद्दशसमायुक्तं भव्यवृक्षजलान्वितम्। तन्महानसमाग्नेय्यां पूर्वतः सत्रमण्डपम् ॥ १७ ॥

स्थानं चण्डेशमैशान्यां पुष्पारामं तथोत्तरम्। कोष्ठागारं च वायव्यां वारुण्यां वरुणालयम् ॥ १८ ॥ शमीन्धनकुशस्थानमायुधानां च नैर्ऋतम्। सर्वलोकोपकाराय नगरस्थं प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥ श्रीमदायतनं शम्भोर्योगिनां विजने वने । शिवस्यायतने यावत्समेताः परमाणवः ॥ २०॥ मन्वन्तराणि तावन्ति कर्तुर्भोगाः शिवे पुरे । महाप्रतिमलिङ्गानि महान्त्यायतनानि च ॥ २१ ॥ कृत्वाऽऽमोति महाभोगानन्ते मुक्ति च शाश्वतीम् । लिक्नप्रतिष्ठां कुर्वीत यदा तल्लक्षणं कृती ॥ २२ ॥ पञ्चगव्येन संशोध्य पूजयित्वाऽधिवासयेत् । पालाशोदुम्बराश्वत्थपृषदाज्यतिलैर्यवैः ॥ २३ ॥ अग्निकार्ये प्रकुर्वीत दद्यात् पूर्णाहुतित्रयम् । शिवस्याष्ट्रशतं हुत्वा लिङ्गमूलं स्पृशेद्बुधः ॥ २४ ॥ एवं मध्येऽवसाने तन्मूर्तिमन्त्रैश्च मूर्तिषु । अष्टौ मूर्तीश्वराः कार्या नवमः स्थापकः स्पृतः ॥ २५ ॥ प्रातः संस्थापये छिङ्गं मन्तैस्तु नवभिः क्रमात् । महास्नापनपूजां च स्थाप्य लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ २६ ॥ ग्रोम्तिंधराणां च दद्यादुत्तमदक्षिणाम् । यतीनां च समस्तानां दद्यान्मध्यमदक्षिणाम् ॥ २७ ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च सर्वासामुपकल्पयेत् । सर्वभक्ष्यात्रपानाद्यैरनिषिद्धं च मोजनम् ॥ २८ ॥ कल्पयेदागतानां च भूतेभ्यश्च बर्लि हरेत्। रात्रौ मातृगणानां च बिंह दद्याद्विशेषतः ॥ २९ ॥

एवं यः स्थापये लिङ्गं तस्य पुण्यफलं शृणु । कुलत्रिंशकमुद्धृत्य भृत्यैश्च परिवारितः ॥ ३०॥ कलत्रपुत्रमित्राधैः सहितः सर्ववान्धवैः । विमुच्य पापकलिलं शिवलोकं ब्रजेन्नरः । तत्र भुक्त्वा महाभोगान् प्रलये मुक्तिमामुयात् ॥ ३१॥

इति शिवोपनिषषि लिङ्गायतनाध्यायो द्वितीय:

तृतीयोऽध्यायः

अथान्यैरल्पवित्तेश्च नृपैश्च शिवभावितैः ।
शक्तितः स्वाश्रमे कार्य शिवशान्तिगृहद्वयम् ॥ १ ॥
गृहस्येशानदिग्भागे कार्यमुत्तरतोऽपि वा ।
स्वात्वा भूमिं समुद्धृत्य शल्यानाकोत्र्य यन्नतः ॥ २ ॥
शिवदेवगृहं कार्यमष्टहस्तप्रमाणतः ।
दक्षिणोत्तरदिग्भागे किंचिद्दीर्घ प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥
हस्तमात्रप्रमाणं च दृढपट्टचतुष्ट्यम् ।
चतुष्कोणेषु संयोज्यमर्ध्यपात्रादिसंश्रयम् ॥ ४ ॥
गर्भमध्ये प्रकुर्वन्ति शिववेदिं सुशोभनाम् ।
उदगर्वाक् च्छितां किंचिच्चतुःशीर्षकसंयुताम् ॥ ५ ॥
तिहस्तायामविस्तारां षोडशाङ्गुलमुच्छिताम् ।
तच्छीर्षाणीव हस्तार्धमायामाद्विस्तरेण च ॥ ६ ॥
शिवस्थण्डिलमित्येतचतुर्हस्तं समं शिरः ।
मूर्तिनैवेद्यदीपानां विन्यासार्थं प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥

शैवलिङ्गेन कार्य स्यात् कार्यं मणिजपार्थिवै:। स्थिण्डिलार्धे च कुर्वन्ति वेदिमन्यां सवर्तुलाम् ॥ ८ ॥ षोडशाङ्गुलमुत्सेधां विस्तीर्णो द्विगुणेन च। गृहे न स्थापयेच्छैलं लिङ्गं मणिजमर्चयेत् ॥ ९ ॥ त्रिसन्ध्यं पार्थिवं वापि कुर्यादन्यद्दिने दिने । सर्वेषामेव वर्णानां स्फाटिकं सर्वकामदम् ॥ १०॥ सर्वदोषविनिर्धक्तमन्यथा दोषमावहेत् । आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी ॥ ११ ॥ वरमिष्टं च लभते लिङ्गं पार्थिवमर्चयन् । तस्माद्धि पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥ १२ ॥ निर्दोषं सुलभं चैव पूजयेत् सततं बुधः। यथा यथा महालिङ्गं पूजा श्रद्धा यथा यथा ॥ १३ ॥ तथा तथा महत्पुण्यं विज्ञेयमनुरूपतः । प्रतिमालिङ्गवेदीषु यावन्तः परमाणवः । तावत्करूपान्महाभोगस्तत्कर्ताऽऽस्ते शिवे पुरे ॥ १४ ॥

इति शिवोपनिषदि शिवगृहाध्यायस्तृतीयः

चतुर्थोऽध्यायः

अधैकभिन्नाविच्छन्नं पुरतः शान्तिमण्टपम् । पूर्वापराष्ट्रहस्तं स्याद्द्वादशोत्तरदक्षिणे ॥ १ ॥ तद्वारभित्तिसंबद्धं कपिच्छुकसमावृतम् । पटद्वयं भवेत् स्थाप्यं सुवाद्यावारहेतुना ॥ २ ॥

द्वारं त्रिशाखं विज्ञेयं नवत्यङ्गुलमुच्छ्तम् । तदर्धेन च विस्तीणें सत्कवाटं शिवालये ॥ ३॥ दीर्घ पञ्चनवत्या च पञ्चशाखासुशोभितम्। सत्कवाटद्वयोपेतं श्रीमद्वाहनमण्टपम् ॥ ४ ॥ द्वारं पश्चान्मुखं ज्ञेयमशेषार्थप्रसाधकम् । अभावे प्राङ्मुखं कार्यमुदग्दक्षिणतो न च ॥ ५ ॥ गवाक्षकद्वयं कार्यमपिधानं सुशोभनम् । धूमनिर्गमनार्थाय दक्षिणोत्तरकुडचयोः ॥ ६ ॥ आग्नेयभागात्परितः कार्या जालगवाक्षकाः । ऊर्ध्वस्तूपिकया युक्ता ईषच्छिद्रपिधानया ॥ ७ ॥ शिवाभिहोत्रकुण्डं च वृत्तं हस्तप्रमाणतः । चतुरश्रवेदिका श्रीमन्मेखलात्रयभूषितम् ॥ ८ ॥ कुडचं द्विहस्तविस्तीणं पञ्चहस्तसमुच्छितम् । शिवाभिहोत्रशरणं कर्तव्यमतिशोभनम् ॥ ९ ॥ जगतीस्तम्भपट्टाद्यं सप्तसंख्यं च कल्पयेत्। बन्धयोगविनिर्मुक्तं तुल्यस्थानपदान्तरम् ॥ १० : । ऐष्टकं कल्पयेदात्राच्छिवाग्न्यायतनं महत्। चतुःप्रेगीवकोपेतमेकप्रेगीवकेन वा ॥ ११ ॥ सुधाप्रलिसं कर्तव्यं पञ्चाण्डकविभूषितम् । शिवामिहोत्रशरणं चतुरण्डकसंयुतम् ॥ १२ ॥ बहिस्तदेव जगती त्रिहस्ता वा सुकुट्टिमा। तावदेव च विस्तीर्णा मेखलादिविभूषिता ॥ १३ ॥ कर्तव्या चात्र जगती तस्याश्चाधः समन्ततः । द्विहस्तमात्रविस्तीर्णा तदर्धार्धसमुच्छ्ता ॥ १४ ॥

अन्या वृत्ता प्रकर्तव्या रुद्रवेदी सुशोभना । दशहस्तप्रमाणा च चतुरङ्गुलमुच्छिता ॥ १५ ॥ रुद्रमातृगणानां च दिक्पतीनां च सर्वदा । सर्वाप्रपाकसंयुक्तं तासु नित्यबिं हरेत् ॥ १६ ॥ वेद्यन्या सर्वभूतानां वहिः कार्या द्विहस्तिका । वृषस्थानं च कर्तव्यं शिवालोकनसंमुखम् ॥ १० ॥ अग्रार्षसवितुर्व्योम वृषः कार्यश्च पश्चिमे । व्योम्नश्चाधिस्त्रगर्भे स्यात् पितृतर्पणवेदिका ॥ १८ ॥ प्राकारान्तर्वहिः कार्ये श्रीमद्गोपुरभूषितम् । पुष्पारामजलोपेतं प्राकारान्तं च कारयेत् ॥ १९ ॥ मृद्दारुजं तृणच्छन्नं प्रकुर्वीत शिवालयम् । भूमिकाद्वयविन्यासादुत्क्षिप्तं कल्पयेद्बुधः ॥ २०॥ शिवदक्षिणतः कार्यं तद्भुक्तेयोग्यमालयम् । शय्यासनसमायुक्तं वास्तुविद्याविनिर्मितम् ॥ २१ ॥ ध्वजिंसही वृषगजी चत्वारः शोभनाः स्मृताः । भूमश्वगर्दभध्वाङ्क्षाश्चत्वारश्चार्थनाशकाः ॥ २२ ॥ रृहस्यायामविस्तारं कृत्वा त्रिगुणमादितः । अष्ट्रभिः शोधयेदापैः शेषश्च गृहमादिशेत् ॥ २३ ॥ इति शान्तिगृहं कृत्वा रुद्रामिं यः प्रवर्तयेत् । अप्येकं दिवसं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥ कलत्रपुत्रमित्राद्यैः स भृत्यैः परिवारितः । कुलैकविंशदुत्तार्य शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥ नीलोत्पलदलक्यामाः पीनवृत्तपयोधराः । हेमवर्णाः स्त्रियश्चान्याः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ २६ ॥

ताभिः सार्धे महाभोगैर्विमानैः सार्वकामिकैः । इच्छया. क्रीडते तावद्यावदाभ्तसंप्रवस् ॥ २७ ॥ ततः कल्पामिना सार्धे दह्यमानं सुविह्नलम् । दृष्ट्रा विरज्यते भृयो भवभोगमहार्णवात् ॥ २८॥ ततः संप्टच्छते रुद्रांस्तत्रस्थान् ज्ञानपारगान् । तेभ्यः प्राप्य शिवज्ञानं शान्तं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ अविरक्तश्च भोगेभ्यः सप्त जन्मानि जायते । पृथिव्यधिपतिः श्रीमानिच्छया वा द्विजोत्तमः ॥ ३० ॥ सप्तमाज्जन्मनश्चान्ते शिवज्ञानमवाप्नुयात् । ज्ञानाद्विरक्तः संसाराच्छुद्धः खान्यधितिष्ठति ॥ ३१ ॥ इत्येतदिखलं कार्य फलमुक्तं समासतः। उत्सवे च पुनर्बूमः प्रत्येकं द्रव्यजं फलम् ॥ ३२ ॥ सद्गन्धगुटिकामेकां लाक्षां प्राण्यङ्गवर्जिताम् । कर्पासास्थिप्रमाणां च हुत्वाझौ शृणुयात् फलम् ॥ ३३ ॥ यावत्सद्गन्धगुटिका शिवामी संख्यया हुता। तावत्कोट्यस्तु वर्षाणि भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ३४ ॥ एकाङ्गुलप्रमाणेन हुत्वाऽसौ चन्दनाहुतिम्। वर्षकोटिद्वयं भोगैर्दिव्यैः शिवपुरे वसेत् ॥ ३५ ॥ यावत्केसरसंख्यानं कुसुमस्यानले हुतम्। तावयुगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ३६ ॥ नागकेसरपुष्पं तु कुङ्कुमार्धेन कीर्तितम् । यत्फलं चन्दनस्योक्तमुशीरस्य तदर्धकम् ॥ ३७ ॥ यत्पुष्पधूपभक्ष्यान्नदिधक्षीरघृतादिभिः । पुण्यलिङ्गार्चने प्रोक्तं तद्धोमस्य दशाधिकम् ॥ ३८ ॥

हुत्वाऽभौ समिधस्तिस्रः शिवोमास्कन्दनामभिः। पश्चाद्द्यातिलानानि होमयीत यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ पळाशाङ्कुरजारिष्टपाळाल्यः समिधः शुभाः । पृषदाज्यप्छता हुत्वा श्रुणु यत्फलमाप्नुयात् ॥ ४० ॥ पलाशाङ्कुरसंख्यानां यावदम्रो हुतं भवेत् । तावत्करपान्महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ४१ ॥ तलक्ष्यमध्यसंभूतं हुत्वासी समिधः शुभाः। कल्पार्धसंमितं कालं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ४२ ॥ शमीसमित्फलं देयमञ्दानपि च लक्षकम्। शस्यर्धफलवच्छेषाः समिधः क्षीरवृक्षजाः ॥ ४३ ॥ तिलसंख्यान् तिलान् हुत्वा बाज्याका यावती भवेत्। तावत्स वर्षलक्षांस्तु भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ४४ ॥ यावत्सुरोषधीरज्ञस्तिलतुल्यफलं स्मृतम् । इतरेभ्यस्तिलेभ्यश्च कृष्णानां द्विगुणं फलम् ॥ ४५ ॥ लाजाक्षताः सगोधूमा वर्षलक्षफलप्रदाः । दशसाहस्रिका ज्ञेयाः रोषाः स्युबीजजातयः ॥ ४६ ॥ पलाशेन्धनजे वहाँ होमस्य द्विगुणं फलम् । क्षीरवृक्षसमृद्धेऽभौ फलं सार्घाधिकं भवेत् ॥ ४७ ॥ असमिद्धे सधूमे च होमकर्म निरर्थकम् । अन्धश्च जायमानः स्याद्दारिद्योपहतस्तथा ॥ ४८ ॥ न च कण्टिकभिर्वृक्षेरिमं प्रज्वाल्य होमयेत्। गुप्कैनवैः प्रशस्तैश्च काष्ठैरिमं सिमन्धयेत् ॥ ४९ ॥ एवमाज्याहुतिं हुत्वा शिवलोकमवाप्नुयात् । तत्र कल्पशतं भोगान् भुङ्क्ते दिव्यान् यथेप्सितान् ॥ ५०॥ सुचैकाहितमात्रेण व्रतस्यापूरितेन च । याह्तिर्दीयते वहाँ सा पूर्णाहुतिरुच्यते ॥ ५१ ॥ एकां पूर्णीहुर्ति हुत्वा शिवेन शिवभावित:। सर्वकाममवामोति शिवलोके व्यवस्थितः ॥ ५२ ॥ अशेषकुलजैः सार्धे स भृत्यैः परिवारितः । आभूतसंघ्रवं यावद्भोगान् मुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥ ५३ ॥ ततश्च प्रलये प्राप्ते संप्राप्य ज्ञानमुत्तमम् । प्रसादादीश्वरस्यैव मुच्यते भवसागरात् ॥ ५४ ॥ शिवपूर्णोहुतिं वहौ पतन्तीं यः प्रपश्यति । सोऽपि पापैर्नरः सर्वेर्मुक्तः शिवपुरं त्रजेत् ॥ ५५ ॥ शिवाग्निधूमसंस्पृष्टा जीवाः सर्वे चराचराः । तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः स्वर्गे यान्ति न संशयः ॥ ५६ ॥ शिवयज्ञमहावेद्या जायते ये न सन्ति वा । तेऽपि यान्ति शिवस्थानं जीवाः स्थावरजङ्गमाः ॥ ५७ ॥ पूर्णाहुतिं घृताभावे क्षीरतैलेन कल्पयेत्। होमयेदतसीतैलं तिलतैलं विना नरः ॥ ५८ ॥ सर्षपेङ्गुदिकाशाम्रकरञ्जमधुकाक्षजम् । प्रियङ्गुबिल्वपैप्पल्यनालिकेरसमुद्भवम् ॥ ५९ ॥ इत्येवमादिकं तैलमाज्याभावे प्रकल्पयेत् । दूर्वया बिल्वपत्रैर्वा सिमधः संप्रकीर्तिताः ॥ ६० ॥ अन्नार्थ होमयेत् क्षीरं दिध मूलफलानि वा । तिलार्थं तण्डुलै: कुर्याद्मीर्थं हरितैस्तृणै: ॥ ६१ ॥ परिधीनामभावेन शरैर्वशैश्च कल्पयेत् । इन्धनानामभावेन दीपयेत् तृणगोमयैः ॥ ६२ ॥

गोमयानामभावेन महत्यम्भिस होमयेत्।
अपामसंभवे होमं भूमिभागे मनोहरे॥ ६३॥
विप्रस्य दक्षिणे पाणावश्वत्थे तदभावतः।
छागस्य दक्षिणे कर्णे कुशमूले च होमयेत्॥ ६४॥
स्वात्माग्नौ होमयेत् प्राज्ञः सर्वाग्नीनामसंभवे।
अभावे न त्यजेत् कर्म कर्मयोगविधौ स्थितः॥ ६५॥
आपत्कालेऽपि यः कुर्याच्छिवाग्नेर्मनसार्चनम्।
स मोहकञ्चुकं त्यक्ता परां शान्तिमवाप्नुयात॥ ६६॥
प्राणाग्निहोत्रं कुर्वन्ति परमं शिवयोगिनः।
बाह्यकर्मविनिर्मुक्ता ज्ञानध्यानसमाकुलाः॥ ६७॥

इति शिवोपनिषदि शान्तिगृहामिकार्याध्यायश्चतुर्यः

पश्चमोऽध्यायः

अथाग्नेयं महास्नानमलक्ष्मीमलनाशनम् ।
सर्वपापहरं दिन्यं तपः श्रीकीर्तिवर्धनम् ॥ १ ॥
अग्निरूपेण रुद्रेण स्वतेजः परमं बलम् ।
भूतिरूपं समुद्गीणं विशुद्धं दुरितापहम् ॥ २ ॥
यक्षरक्षःपिशाचानां ध्वंसनं मन्त्रसत्कृतम् ।
रक्षार्थं बालरूपाणां स्तिकानां गृहेषु च ॥ ३ ॥
यश्च भुङ्क्ते द्विजः कृत्वान्नस्य वा परिधित्रयम् ।
अपि शूद्रस्य पङ्क्तिस्थः पङ्क्तिदोषैर्न लिप्यते ॥ ४ ॥

आहारमर्धभुक्तं च कीटकेशादिव्षितम् । तावन्मात्रं समुद्धृत्य भूतिस्पृष्टं विशुद्धचित ॥ ५ ॥ आरण्यं गोमयकृतं करीषं वा प्रशस्यते । शर्करापांसुनिर्मुक्तमभावे काष्ठभस्मना ॥ ६ ॥ स्वगृहाश्रमब्लीभ्यः कुलालालयभस्मना । गोमयेषु च दम्धेषु हीष्टकानि च येषु च ॥ ७ ॥ सर्वत्र विद्यते भस्म दुःखापार्जनरक्षणम् । शङ्खकुन्देन्दुवर्णाभमादद्याज्जन्तुवर्जितम् ॥ ८॥ भस्मानीय प्रयत्नेन तद्रक्षेचलवांस्तथा । माजारमुषिकाद्यैश्च नोपहन्येत तद्यथा ॥ ९ ॥ पञ्चदोषविनिर्मुक्तं गुणपञ्चकसंयुतम् । शिवैकादशिकाजसं शिवभस्म प्रकीर्तितम् ॥ १०॥ जातिकारुकवाकायस्थानदृष्टं च पञ्चमम् । पापन्नं शाङ्करं रक्षापवित्रं योगदं गुणाः ॥ ११ ॥ शिवव्रतस्य शान्तस्य भासकत्वाच्छुभस्य च । भक्षणात् सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम् ॥ १२ ॥ भस्मस्नानं शिवस्नानं वारुणादिधकं स्मृतम् । जन्तुशैवालनिर्मुक्तमामयं पङ्कवर्जितम् ॥ १३ ॥ अपवित्रं भवेत्तोयं निशि पूर्वमनाहृतम् । नदीतडागवापीषु गिरिपस्रवणेषु च ॥ १४ ॥ स्नानं साधारणं प्रोक्तं वारुणं सर्वदेहिनाम् । असाधारणमेवोक्तं भस्मस्नानं द्विजन्मनाम् ॥ १५ ॥ त्रिकालं वारुणस्नानादनारोग्यं प्रजायते । आग्नेयं रोगशमनमेतस्मात् सार्वकामिकम् ॥ १६ ॥

सन्ध्यात्रयेऽर्घरात्रे च भुक्ता चान्नविरेचने । शिवयोग्याचरेत् सानमुखारादिकियासु च ॥ १७ ॥ मस्मास्तृते महीमागे समे जन्तुविवर्जिते । ध्यायमानः शिवं योगी रजन्यन्तं शयीत च ॥ १८॥ एकरात्रोषितस्यापि या गतिर्भस्मशायिनः । न सा शक्या गृहस्थेन प्राप्तुं यज्ञशतैरपि ॥ १९ ॥ गृहस्थस्त्रचायुषोक्कारैः स्नानं कुर्यात् त्रिपुण्डकैः। यतिः सार्विक्तिकं स्नानमापादतलमस्तकात् ॥ २०॥ शिवभक्तिश्वा वेद्यां मस्मस्नानफलं लमेत्। हृदि मुभि ललाटे च शुद्धः शिवगृहाश्रमी ॥ २१ ॥ गणाः प्रविजिताः शान्ता भूतिमालभ्य पश्चधा । शिरोललाटे हृद्वाह्वोर्भस्मस्नानफलं लमेत् ॥ २२ ॥ संवत्सरं तद्धे वा चतुर्दश्यष्टमीष च। यः कुर्योद्भस्मना स्नानं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २३ ॥ शिवभस्मनि याबन्तः समेताः परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ २४ ॥ एकविंशकुलोपेतः पत्नीपुत्रादिसंयुतः । मित्रस्वजनभृत्यैश्च समस्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥ तत्र भुक्ता महामोगानिच्छया सार्वकामिकान् । ज्ञानयोगं समासाच प्रलये मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥ भस्म भस्मान्तिकं येन गृहीतं नैष्ठिकत्रतम् । अनेन वै स देहेन रुद्रश्चङ्क्रमते क्षितौ ॥ २७ ॥ भस्मस्नानरतं शान्तं ये नमन्ति दिने दिने । ते सर्वपापनिर्मुक्ता नरा यान्ति शिवं पुरम् ॥ २८ ॥

इत्येतत्परमं स्नानमामयं शिवनिर्मितम् । त्रिसन्ध्यमाचरेत्रित्यं जापी योगमबाप्नुयात् ॥ २९ ॥ भस्मानीय प्रदद्याद्यः स्नानार्थे शिवयोगिने । कल्पं शिवपुरे भोगान् भुक्त्वान्ते स्याद्विजोत्तमः ॥ ३०॥ आग्नेयं वारुणं मान्त्रं वायव्यं त्वैन्द्रपश्चमम् । मानसं शान्तितोयं च ज्ञानस्नानं तथाष्टमम् ॥ ३१ ॥ आग्नेयं रुद्रमन्त्रेण भस्मस्नानमनुत्तमम् । अम्भसा वारुणं स्नानं कार्यं वारुणम् तिना ॥ ३२ ॥ मूर्घानं पाणिनाऽऽलभ्य शिवैकादशिकां जपेत् । ध्यायमानः शिवं शान्तं मन्त्रसानं परं स्पृतम् ॥ ३३ ॥ गवां खुरपुटोत्वातपवनोद्भृतरेणुना । कार्य वायव्यकं स्नानं मन्त्रेण मरुदात्मना ॥ ३४ ॥ व्यम्रेऽकें वर्षति स्नानं कुर्यादैन्द्रीं दिशं स्थितः । आकाशमूर्तिमन्त्रेण तदैन्द्रमिति कीर्तितम् ॥ ३५ ॥ उदकं पाणिना गृह्य सर्वतीर्थानि संस्मरेत् । अभ्यक्षयेच्छिरस्तेन स्नानं मानसमुच्यते ॥ ३६ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरांस्यायतनानि च । तेषु स्नातस्य यत्पुण्यं तत्पुण्यं क्षान्तिवारिणा ॥ ३७॥ न तथा शुध्यते तीर्थेस्तपोभिर्वा महाध्वरैः । पुरुषः सर्वदानैश्च यथा क्षान्त्या विशुद्धचित ॥ ३८ ॥ आक्रुष्टस्ताडितस्तस्मादिधिक्षिप्तस्तिरस्कृतः । क्षमेदक्षममानानां स्वर्गमोक्षजिगीषया ॥ ३९ ॥ यैव ब्रह्मविदां प्राप्तिर्येव प्राप्तिस्तपस्विनाम् । यैव योगाभियुक्तानां गतिः सैव क्षमावताम् ॥ ४० ॥

ज्ञानामलाम्भसा स्नातः सर्वदैव मुनिः शुचिः । निर्मलस्सुविशुद्धश्च विज्ञेयः सूर्यरिमवत् ॥ ४१ ॥ मेध्यामेध्यरसं यद्वदपि बत्स विना करै: । नैव लिप्यति तद्दोषैस्तद्वद्ज्ञानी सुनिर्मलः ॥ ४२ ॥ एषामेकतमे स्नातः शुद्धभावः शिवं त्रजेत्। अगुद्धभावः स्नातोऽपि पूजयन्नाप्नुयात् फलम् ॥ ४.३ ॥ जलं मन्त्रं दया दानं सत्यमिन्द्रियसंयमः । ज्ञानं भावात्मशुद्धिश्च शौचमष्टविधं श्रुतम् ॥ ४४ ॥ अङ्गुष्ठतलम्ले च ब्राह्मं तीर्थमवस्थितम्। तेनाचम्य भवेच्छुद्धः शिवमन्त्रेण भावितः ॥ ४५ ॥ यद्धः कन्यकायाश्च तत्तीर्थे दैवमुच्यते । तीर्थं प्रदेशिनीमूले पित्र्यं पितृविधोदयम् ॥ ४६ ॥ मध्यमाङ्गुलिमध्येन तीर्थमारिषमुच्यते । करपुष्करमध्ये तु शिवतीर्थं प्रतिष्ठितम् ॥ ४७ ॥ वामपाणितले तीर्थमौमं नाम प्रकीर्तितम् । शिवोमातीर्थसंयोगात् कुर्यात् स्नानाभिषेचनम् ॥ ४८ ॥ देवान् दैवेन तीर्थेन तर्पयदकृताम्भसा । उद्भृत्य दक्षिणं पाणिमुपवीती सदा बुधः ॥ ४९ ॥ प्राचीनावीतिना कार्यं पितृणां तिलवारिणा। तर्पणं सर्वभूतानामारिषेण निवीतिना ॥ ५० ॥ सव्यस्कन्धे यदा सूत्रमुपवीत्युच्यते तदा । प्राचीनावीत्यसब्येनं निवीती कण्ठसंस्थिते ॥ ५१ ॥

पितणां तर्पणं कृत्वा सूर्यायार्घ्यं प्रकल्पयेत् । उपस्थाय ततः सूर्यं यजेच्छिवमनन्तरम् ॥ ५२ ॥

इति शिवोपनिषषि शिवभस्मक्षानाध्यायः पश्चमः

षष्ट्रोऽध्यायः

अथ भक्त्या शिवं पूज्य नैवेद्यमुपकल्पयंत् । यदन्नमात्मनाऽश्रीयात्तस्याग्रे विनिवेदयेत् ॥ १ ॥ यः कृत्वा भक्ष्यभोज्यानि यत्नेन विनिवेदयेत् । शिवाय स शिवे लोके कल्पकोर्टि प्रमोदते ॥ २ ॥ यः पकं श्रीफलं दद्याच्छिवाय विनिवेदयेत । गरोर्वा होमयेद्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३ ॥ श्रीमद्भिः स महायानैर्भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे । वर्षाणामयुतं साम्रं तदन्ते श्रीपतिर्भवेत् ॥ ४ ॥ कपित्थमेकं यः पक्तमीश्वराय निवेदयेत् । वर्षलक्षं महाभोगै: शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥ एकमाम्रफलं पकं यः शंभोविनिवेदयेत । वर्षाणामयुतं भोगैः क्रीडते स शिवे परे ॥ ६ ॥ एकं वटफलं पकं यः शिवाय निवेदयेत् । वर्षरुक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ७ ॥ यः पकं दाडिमं चैकं दद्याद्विकसितं नवम् । शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृण् ॥ ८ ॥

यावत्तद्वीजसंख्यानं शोभनं परिकीर्तितम् । तावदष्टायुतान्युचैः शिवलोके महीयते ॥ ९ ॥ द्राक्षाफलानि पकानि यः शिवाय निवेदयेत । भक्त्या वा शिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १० ॥ यावत्तत्फलसंख्यानमुभयोविंनिवेदितम्। तावद्यगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ११ ॥ द्राक्षाफलेषु यत्पुण्यं तत्त्वर्जूरफलेषु च । तदेव राजवृक्षेषु पारावतफलेषु च ॥ १२ ॥ यो नारङ्गफलं पकं विनिवेद्य महेश्वरे । अष्टलक्षं महाभोगैः कीडते स शिवे पुरे ॥ १३ ॥ बीजपूरेषु तस्यार्घे तदर्घे लिकुचेषु च । जम्बुफलेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं तिन्दुकेषु च ॥ १४ ॥ पनसं नारिकेलं वा शिवाय विनिवेदयेत्। वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ १५॥ पुरुषं च प्रियालं च मधूककुसुमानि च। जम्बूफलानि पकानि वैकक्कतफलानि च ॥ १६॥ निवेद्य भक्त्या शर्वाय प्रत्येकं तु फले फले। दशवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ १७ ॥ क्षीरिकायाः फलं पकं यः शिवाय निवेदयेत्। वर्षलक्षं महाभोगैर्मोदते स शिवे पुरे ॥ १८ ॥ वालुकात्रपुसादीनि यः फलानि निवेदयेत्। शिवाय गुरवे वापि पकं च करमर्दकम् ॥ १९ ॥ दशवर्षसहसाणि रुद्रलोके महीयते । बदराणि सुपकानि तिन्तिडीकफलानि च ॥ २०॥

दर्शनीयानि पकानि ह्यामलक्याः फलानि च । एवमादीनि चान्यानि शाकमूलफलानि च ॥ २१॥ निवेदयीत शर्वाय शृणु यत्फलमामुयात् । एकैकस्मिन् फले भोगान् प्राप्नुयादनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ पञ्चवर्षसहसाणि रुद्रलोके महीयते । गोधूमचणकाद्यानि सुकृतं सक्तुभर्जितम् ॥ २३ ॥ निवेदयीत शर्वाय तस्य पुण्यफलं शृणु । यावत्तद्वीजसंख्यानं शुभं भ्रष्टं निवेदयेत् ॥ २४ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । यः पकानीक्षुदण्डानि शिवाय विनिवेदयेत् ॥ २५ ॥ गुरवे वापि तद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु । इक्षुपर्णानि चैकैकं वर्षलोकं प्रमोदते ॥ २६॥ साकं शिवपुरे भोगैः पौण्ड्रं पञ्चगुणं फलम् । निवेद्य परमेशाय ग्रुक्तिमात्ररसस्य तु ॥ २७ ॥ वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते । निवेद्य फाणितं शुद्धं शिवाय गुरवेऽपि वा ॥ २८ ॥ रसात् सहस्रगुणितं फलं प्रामोति मानवः । गुडस्य पलमेकं यः शिवाय विनिवेदयेत् ॥ २९ ॥ अब्दकोटिं शिवे लोके महाभोगैः प्रमोदते । खण्डस्य पलनैवेद्यं गुडाच्छतगुणं फलम् ॥ ३०॥ खण्डात् सहस्रगुणितं शर्कराया निवेदने । मत्संडिकां महाशुद्धां शङ्कराय निवेदयेत् ॥ ३१ ॥ कल्पकोर्टि नरः साम्रं शिवलोके महीयते । परिशुद्धं भृष्टमाज्यं सिद्धं चैव सुसंस्कृतम् ॥ ३२ ॥

मांसं निवेद्य शर्वाय शृणु यत्फलमाप्नुयात् । अशेषफलदानेन यत्पुण्यं परिकीर्तितम् ॥ ३३ ॥ तत्पुण्यं प्राप्नुयात् सर्वे महादाननिवेदने । पनसानि च दिव्यानि स्वादृनि सुरभीणि च ॥ ३४ ॥ निवेदयेतु शर्वाय तस्य पुण्यफलं शृण् । कल्पकोटिं नरः साम्रं शिवलोके व्यवस्थितः ॥ ३५ ॥ पिवन् शिवामृतं दिव्यं महाभोगैः प्रमोदते । दिने दिने च यस्त्वापं वस्त्रपूतं समाचरेत् ॥ ३६ ॥ सुखाय शिवभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु । महासरांसि यः कुर्याद्भवेत् पुण्यं शिवाग्रतः ॥ ३० ॥ तत्पुण्यं सकलं प्राप्य शिवलोके महीयते । यदिष्टमात्मनः किश्चिदन्नपानफलादिकम् ॥ ३८॥ तत्तच्छिवाय देयं स्यादुत्तमं भोगमिच्छता । न शिवः परिपूर्णत्वात् किश्चिदश्वाति कस्यचित् ॥ ३९ ॥ किन्त्वीश्वरनिभं कृत्वा सर्वमात्मनि दीयते । न रोहति यथा बीजं स्वस्थमाश्रयवर्जितम् ॥ ४० ॥ पुण्यबीजं तथा सूक्ष्मं निष्फलं स्यान्निराश्रयम् । सुक्षेत्रेषु यथा बीजमुप्तं भवति सत्फलम् ॥ ४१ ॥ अल्पमप्यक्षयं तद्वत् पुण्यं शिवसमाश्रयात् । तस्मादीश्वरमुद्दिश्य यद्यदात्मनि रोचते ॥ ४२ ॥ तत्तदीश्वरभक्तेभ्यः प्रदातव्यं फलार्थिना । यः शिवाय गुरोर्वापि रचयेन्मणिभूमिकम् ॥ ४३ ॥ नैवेद्यं भोजनार्थं यः पत्नैः पुष्पैश्च शोभनम् । यावत्तत्पत्रपुष्पाणां परिसंख्या विधीयते ॥ ४४ ॥

तावद्वषसहस्राणि सुरलोके महीयते । पलाशकदलीपद्मपत्राणि च विशेषत: ॥ ४५ ॥ दत्वा शिवाय गुरवे शृणु यत्फलमाप्नुयात् । यावत्तत्रत्रसंख्यानमीश्वराय निवेदितम् ॥ ४६ ॥ तावदब्दायुतानां स लोके भोगानवाप्नुयात । यावत्ताम्बूलपत्राणि पूगांश्च विनिवेदयेत् ॥ ४७ ॥ तावन्ति वर्षे कक्षाणि शिवलोके महीयते। यच्छुद्धं शङ्खचूर्णं वा गुरवे विनिवेदयेत् ॥ ४८ ॥ ताम्बूलयोगसिद्धचर्थं तस्य पुण्यफलं शृणु । यावत्ताम्बूलपत्राणि चूर्णमानेन भक्षयेत् ॥ ४९ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । **जातीफलं सकङ्कोलं लताकस्तूरिकोत्पलम् ॥ ५० ॥** इत्येतानि सुगन्धीनि फलानि विनिवेदयेत् । फले फले महाभोगैर्वर्षलक्षं तु यन्नतः ॥ ५१ ॥ कामिकेन विमानेन कीडते स शिवे परे। त्रुटिमात्रप्रमाणेन कर्पूरस्य शिवे गुरौ ॥ ५२ ॥ वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते । पूराताम्बुलपत्राणामाधारं यो निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ वर्षकोट्यष्टकं भोगै: शिवलोके महीयते । यर्चूर्णाधारसत्पात्रं कस्यापि विनिवेदयेत् ॥ ५४ ॥ मोदते स शिवे लोके वर्षकोटीश्चतुर्दशः। मृत्काष्ट्रवंशखण्डानि यः प्रदद्याच्छिवाश्रमे ॥ ५५ ॥ प्राप्नुयाद्विपुलान् भोगान् दिव्याञ्छिवपुरे नरः । माणिक्यं कलशं पात्री स्थाल्यादीन् भाण्डसंपुटान् ॥ ५६ ॥

दत्वा शिवायजस्त्वेभ्यः शिवलोके महीयते । तोयाधारपिधानानि मृद्धस्रतरुजानि वा ॥ ५७ ॥ वंशालाबुसमुत्थानि दत्वामोति शिवं पुरम् । पञ्चसंमार्जनीतोयं गोमयाञ्जनकर्पटान् ॥ ५८॥ मृत्कुम्भपीठिकां दद्याद्गोगाञ्छिवपुरे लभेत्। यः पुष्पधूपगन्धानां दिधिक्षीरचृताम्भसाम् ॥ ५९ ॥ दद्यादाधारपात्राणि शिवलोकं स गच्छति । वंशतालादिसंभूतं पुष्पाधारकरण्डकम् ॥ ६०॥ इत्यवमाद्यान् यो दद्याच्छिवलोकमवाप्नुयात् । यः सुक्सुवादिपात्राणि होमार्थे विनिवेदयेत् ॥ ६१ ॥ वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते । यः सर्वधातसंयुक्तं दद्यालवणपर्वतम् ॥ ६२ ॥ शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृण् । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ६३ ॥ स गोत्रमृत्यसंयुक्तो वसेच्छिवपुरे नरः। विमानयानैः श्रीमद्भिः सर्वकामसमन्वितैः ॥ ६४ ॥ भोगान् भुक्ता तु विपुलांस्तदन्ते स महीपतिः। मनःशिलां हरीतालं राजपट्टं च हिङ्गुलम् ॥ ६५ ॥ गैरिकं मणिदन्तं च हेमतोयं तथाष्टमम् । यश्च तं पर्वतवरं शालितण्डुलकल्पितम् ॥ ६६ ॥ शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृण् । कल्पकोटिशतं साम्रं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ६७ ॥ यः सर्वधान्यशिखरैरुपेतं यवपर्वतम् । वृततैलनदीयुक्तं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६८ ॥

कल्पकोटिशतं साम्रं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे । समस्तकुलजैः सार्घे तस्यान्ते स महीपतिः ॥ ६९ ॥ तिलघेनुं पदद्याद्यः कृत्वा कृष्णाजिने नरः। कपिलायाः प्रदानस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ ७० ॥ घृतघेनुं नरः कृत्वा कांस्यपात्रे सकाश्चनाम् । निवेद्य गोप्रदानस्य समग्रं फलमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ दीपिचर्मणि यः स्थाप्य प्रद्यालवणाढकम् । अशेषरसदानस्य यत्पुण्यं तदवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ मरिचाढेन कुर्वीत मारीचं नाम पर्वतम् । दद्याद्यज्जीरकं पूर्वमाग्नेयं हिङ्गुमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ दक्षिणे गुडशुण्ठीं च नैर्ऋते नागकेसरम् । पिप्पलीं पश्चिमें दद्याद्वायव्ये कृष्णजीरकम् ॥ ७४ ॥ कौबेर्यामजमोदं च त्वगेलाश्चेशदैवते । कुत्तुम्बर्याः प्रदेयाः स्युर्बेहिः प्राकारतः स्थिताः ॥ ७५ ॥ ककुभामन्तरालेषु समन्तात् सैन्धवं न्यसेत्। सपुष्पाक्षततोयेन शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ७६ ॥ यावत्तद्दीपसंख्यानं सर्वमेकत्र पर्वते । तावद्वर्षशतादूर्ध्व भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ ७७ ॥ कुश्माण्डं मध्यतः स्थाप्य कालिङ्गं पूर्वतो न्यसेत् । दक्षिणे क्षीरतुम्बीं तु वृन्ताकं पश्चिमे न्यसेत् ॥ ७८ ॥ पटीसान्युत्तरे स्थाप्य कर्कटीमीशदैवते । न्यसेद्गजपटोलांश्च मघुरान् वहिदैवते ॥ ७९ ॥ कारवेछांश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां निम्बकं फलम् । उच्चावचानि चान्यानि फलानि स्थापयेह्नहिः ॥ ८० ॥

अभ्यर्च्य पुष्पधृपेश्च समन्तात् फलपर्वतम् । शिवाय गुरवे वापि प्रणिपत्य निवेदयेत् ॥ ८१ ॥ यावत्तरफलसंख्यानं तदीपानां च मध्यतः । तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ८२ ॥ मूलकं मध्यतः स्थाप्य तत्पर्वे वालमूलकम् । आमेय्यां वास्तुकं स्थाप्य याम्यायां क्षारवास्तुकम् ॥ ८३ ॥ पालक्यं नैर्ऋते स्थाप्य समुखं पश्चिमे न्यसेत् । कुहद्रकं च वायव्यामुत्तरे वापि तालिकीम् ॥ ८४ ॥ क्सम्भशाकमैशान्यां सर्वशाकानि तद्वहिः । पूर्वक्रमेण विन्यस्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ८५ ॥ यावत्तन्मूलनालानां पत्रसंख्या च कीर्तिता । ताबद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ८६ ॥ दत्वा लभेन्महाभोगान् गुग्गुल्वद्धेः पलद्वयम् । वर्षकोटिद्वयं स्वर्गे द्विगुणं गुडमिश्रितैः ॥ ८७ ॥ गुडार्द्रकं सलवणमाम्रमंजरिसंयुतम् । निवेद्य गुरवे भक्त्या सौभाग्यं परमं लभेत् ॥ ८८ ॥ हस्तारोप्येण वा कृत्वा महारत्नान्वितां महीम् । निवेदयित्वा शर्वाय शिवतुल्यः प्रजायते ॥ ८९ ॥ वज्रेन्द्रनीलवैड्यपद्मरागं समौक्तिकम् । कीटपक्षं सुवर्णे च महारत्नानि सप्त वै ॥ ९० ॥ यश्च सिंहासनं दद्यान्महारत्नान्वितं नृपः । क्षद्ररतेश्च विविधैस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९१ ॥ कुलर्त्रिशकसंयुक्तः सान्तःपुरपरिच्छदः । समस्तभृत्यसंयुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ९२ ॥

तत्र भुक्त्वा महाभोगान् शिवत्रस्यपराक्रमः । आमहाप्रलयं यावत्तदन्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ९३ ॥ यदि चेद्राज्यमाकाङक्षेत्रतः सर्वसमाहितः । सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥ ९४ ॥ जन्मकोटिसहस्राणि जन्मकोटिशतानि च । राज्यं कृत्वा ततश्चान्ते पुनः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ९५॥ एतदेव फलं ज्ञेयं मक्टाभरणादिषु । रत्नासनप्रदानेन पादुके विनिवेदयेत् ॥ ९६ ॥ दचाचः केवलं वजं शुद्धं गोधूममात्रकम् । शिवाय स शिवे लोके तिष्ठेदापलयं सुखी ॥ ९७ ॥ इन्द्रनीलपदानेन स वैद्वर्यप्रदानतः । मोदते विविधेर्भोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे ॥ ९८ ॥ मसूरमात्रमपि यः पद्मरागं सुशोभनम् । निवेदयित्वा शर्वाय मोदते कालमक्षयम् ॥ ९९ ॥ निवेद्य मौक्तिकं स्वच्छमेकभागैकमात्रकम् । भोगैः शिवपुरे दिव्यैः कल्पकोटिं प्रमोदते ॥ १०० ॥ कीटपक्षं महाशुद्धं निवेद्य यवमात्रकम् । शिवायाद्यः शिवे लोके मोदते कालमक्षयम् ॥ १०१ ॥ हेम्रा कृत्वा च यः पृष्पमपि माषकमात्रकम् । निवेदयित्वा शर्वाय वर्षकोटिं वसेदिवि ॥ १०२ ॥ क्षदरत्नानि यो दद्याद्वेम्नि बद्धानि शम्भवे । मोदते स शिवे लोके कल्पकोट्ययुतं नरः ॥ १०३ ॥ यथा यथा महारतं शोभनं च यथा यथा । तथा तथा महत्पृण्यं ज्ञेयं तच्छिवदानतः ॥ १०४ ॥

भूमिभागे सविस्तीणे जम्बुद्वीपं प्रकल्पयेत् । अष्टावरणसंयुक्तं नगेन्द्राष्टकभूषितम् ॥ १०५ ॥ तन्मध्ये कारयेद्दिव्यं मेरुप्रासादमुत्तमम् । अनेकशिखराकीर्णमशेषामरसंयुतम् ॥ १०६ ॥ बहिः स्रवर्णनिचितं सर्वरत्नोपशोभितम् । चतुःप्रग्रीवकोपेतं चक्षुर्लिङ्गसमायुतम् ॥ १०७ ॥ चतुर्दिक्षु वनोपेतं चतुर्भिः संयुतैः शरैः। चतुर्णी पुरयुक्तेन प्राकारेण च संयुतम् ॥ १०८ ॥ मेरुप्रासादमित्येवं हेमरत्नविभूषितम्। यः कारयेद्वनोपेतं सोऽनन्तफलमाप्नुयात् ॥ १०९ ॥ भूम्यम्भःपरमाणूनां यथा सङ्ख्या न विद्यते । शिवायतनपुण्यस्य तथा सङ्ख्या न विद्यते ॥ ११० ॥ कुलत्रिंशकसंयुक्तः सर्वभृत्यसमन्वितः । कलत्रपत्रमित्रेश्च सर्वस्वजनसंयुतः ॥ १११ ॥ आश्रितोपाश्रितैः सर्वेरशेषगणसंयुतः । यथा शिवस्तथैवायं शर्वलोके स पूज्यते ॥ ११२ ॥ न च मानुष्यकं लोकमागच्छेत् कृपणं पुनः । सर्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति ॥ ११३ ॥ यः शिवाय वनं कृत्वा मुदाब्दसिललोश्यितम् । तदण्डकोपशोभं च हस्ते कुर्वीत सर्वदा ॥ ११४ ॥ शोभयेद्भतनाथं वा चन्द्रशालां कचित् कचित् । वेदी वाथाभ्यपद्यन्त प्रोन्नताः स्तम्भपङ्क्तयः ॥ ११५ ॥ शातकम्भमयीं वापि सर्वलक्षणसंयुताम् । ईश्वरप्रतिमां सौम्यां कारयेत् पुरुषोच्छिताम् ॥ ११६ ॥

त्रिशूलसव्यहस्तां च वरदाभयदायिकाम् । सन्यहस्ताक्षमालां च जटाकुसुमभूषिताम् ॥ ११७ ॥ पद्मसिंहासनासीनां वृषस्थां वा समुच्छिताम् । विमानस्थां रथस्थां वा वेदिस्थां वा प्रभान्विताम् ॥ ११८ ॥ सौम्यवक्त्रां करालां वा महाभैरवरूपिणीम् । अत्युच्छ्तां सुविस्तीर्णो नृत्यस्थां योगसंस्थिताम् ॥ ११९ ॥ कुर्यादसंभवे हेम्नस्तारेण विमलेन च । आरकूटमयीं वापि ताम्रमुच्छैलदारुजाम् ॥ १२०॥ अशेषकै: सरूपेश्च वर्णकैर्वा पटे लिखेत्। कुडचे वा फलके वापि भक्त्या वित्तानुसारतः ॥ १२१ ॥ एकां सपरिवारां वा पार्वतीं गणसंयुताम् । प्रतीहारसमोपेतां कुर्यादेवाविकल्पतः ॥ १२२ ॥ पीठं वा कारयेद्रौप्यं ताम्रं पित्तलसंभवम् । चतुर्भुसैकवक्त्रं वा बहिः काञ्चनसंस्कृतम् ॥ १२३ ॥ पृथकपृथगनेकानि कारियत्वा मुखानि तु । सौम्यभैरवरूपाणि शिवस्य बहुरूपिणः ॥ १२४ ॥ नानाभरणयुक्तानि हेमरौप्यकृतानि च। शिवस्य रथयात्रायां तानि लोकस्य दर्शयेत् ॥ १२५ ॥ उक्तानि यानि पुण्यानि सङ्क्षेपेण पृथक् पृथक् । कृत्वैकेन ममैतेषामक्षयं फलमाप्नुयात् ॥ १२६ ॥ मातुः पितुः सहोपायैर्दशभिर्दशभिः कुलैः । कलत्रपुत्रमित्राद्यैर्भृत्यैर्युक्तः स बान्धवैः ॥ १२७ ॥ अयुतेन विमानानां सर्वकामयुतेन च । भुङ्क्ते स्वयं महाभोगानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १२८ ॥

मण्डपस्तम्भपर्यन्ते कीलयेदर्पणान्वितम्। अभिषिच्य जना यस्मिन् पूजां कुर्वन्ति विल्वकैः ॥ १२९ ॥ कालकालाकृतिं कृत्वा कीलयेद्यः शिवाश्रमे । सर्वलोकोपकाराय पूजयेच दिने दिने ॥ १३०॥ धुपवेलाप्रमाणार्थे कल्पयेद्यः शिवाश्रमे । क्षरन्तीं पूर्यमाणां वा सदाऽऽयामे घटीं नृपः ॥ १३१ ॥ एषामेकतमं पुण्यं कृत्वा पापविवर्जितः । शिवलोकं नरः प्राप्य सर्वज्ञः स सुखी भवेत् ॥ १३२ ॥ रथयात्रां प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः। सर्वलोकहितार्थाय महाशिल्पिविनिर्मिताम् ॥ १३३ ॥ रथमध्ये समावेश्य यथा यष्टिं तु कीलयेत् । यष्टेर्मध्ये स्थितं कार्ये विमानमतिशोभितम् ॥ १३४ ॥ पञ्चभोमं त्रिभौमं वा दृढवंशप्रकल्पितम् । वर्मणा सुनिबद्धं च रज्जुभिश्च सुसंयुतम् ॥ १३५ ॥ पञ्चशालाण्डकैर्युक्तं नानाभक्तिसमन्वितम्। चित्रवर्णपरिच्छन्नं पटैर्वा वर्णकान्वितैः ॥ १३६ ॥ लम्बकैः सूत्रदाम्ना च घण्टाचामरभूषितम् । बुद्धदैरर्धचन्द्रेश्च दर्पणैश्च समुज्ज्वलम् ॥ १३७ ॥ कदल्यर्धध्वजैर्युक्तं महाच्छत्रं महाध्वजम्। पुष्पमालापरिक्षिप्तं सर्वशोभासमन्वितम् ॥ १३८ ॥ महारथविमाने ऽस्मिन् स्थापयेद्गणसंयुतम् । ईश्वरप्रतिमां हेम्रि प्रथमे पुरमण्डपे ॥ १३९ ॥ मुखत्रयं च बध्नीयाद्वहिः कुर्यात्तथाश्रितम् । पुरे पुरे बहिर्दिक्ष गृहकेषु समाश्रितम् ॥ १४०॥

चतष्कं शिववषत्राणां संस्थाप्य प्रतिपूजयेत्। विनन्नयं प्रकृषीत स्नानमर्चनभोजनम् ॥ १४१ ॥ नृत्यक्रीडाप्रयोगेण गेयमङ्गलपाठकैः। महाबादित्रनिर्घोषै: पौषपूर्णिमपर्वणि ॥ १४२ ॥ भ्रामयेद्राजमार्गेण चतुर्थेऽहनि तद्रथम् । ततः स्वस्थानमानीय तच्छेषमपि वर्धयेत् ॥ १४३ ॥ अवधार्य जगद्धात्री प्रतिमामवतारयेत् । महाविमानयात्रेषा कर्तव्या पट्टकेऽपि वा ॥ १४४ ॥ वंशेनवे: सुपकेश कटं कुर्याद्भरक्षमम्। वृत्तं द्विगुणदीर्घ च चतुरश्रमधः समम् ॥ १४५ ॥ सर्वत्र चर्मणा बद्धं महायष्टिसमाश्रितम् । मुखं बद्धं च कुर्वीत वंशमण्डलिना दृढम् ॥ १४६ ॥ कटेऽस्मिस्तानि वस्त्राणि स्थाप्य बध्नीत यन्नतः । उपर्युपरि सर्वाणि तन्मध्ये प्रतिमां न्यसेत् ॥ १४७ ॥ वर्णकै: कुङ्कुमादेश चित्रपुष्पेश्च पूजयेत्। नानाभरणपूजामिर्मुक्ताहारप्रलम्बिभिः ॥ १४८ ॥ रथस्य महतो मध्ये स्थाप्य पष्टुद्वयं दृढम् । अधरोत्तरभागेन मध्ये छिद्रसमन्वितम् ॥ १४९ ॥ कटियष्टेरघोभागं स्थाप्य छिद्रमयं शुभैः। भावद्वध कीलयेचनाचष्ट्रधर्भ च ध्वजाष्ट्रकम् ॥ १५०॥ कटस्य पृष्ठं सर्वत्र कारयेत् पटसंशृतम् । तत्पटे च लिखेत् सोमं सगणं सवृषं शिवम् ॥ १५१ ॥ विचित्रपुष्पसम्दामा समन्ताक्रुषयेत् कटम् । रवकै: किङ्किणीजालैर्घण्टाचामरभूषितैः ॥ १५२ ॥

महापूजाविशेषेश्च कौतृहलसमन्वितम्। वाद्यारम्भोपचारेण मार्गशोभां प्रकल्पयेत् ॥ १५३ ॥ तद्रथं आमयेचनाद्राजमार्गेण सर्वतः । ततः स्वाश्रममानीय स्थापयेत्तत्समीपतः ॥ १५८ ॥ महाशब्दं ततः कुर्यात्तालत्रयसमन्वितम् । ततस्तूर्णी स्थिते लोके तच्छान्तिमिह धारयेत् ॥ १५५ ॥ शिवं तु सर्वजगतः शिवं गोर्बाह्मणस्य च । शिवमस्तु नृपाणां च तद्भक्तानां जनस्य च ॥ १५६ ॥ राजा विजयमामोतु पुत्रपौत्रेश्च वर्धताम् । धर्मनिष्ठश्च भवतु प्रजानां च हिते रतः ॥ १५७॥ कालवर्षी तु पर्जन्यः सस्यसंपत्तिरुत्तमा । सुमिक्षात् क्षेममामोति कार्यसिद्धिश्च जायताम् ॥ १५८ ॥ दोषाः प्रयान्तु नाशं च गुणाः स्थैर्य भजन्तु वः । बहुक्षीरयुता गावो हृष्टपुष्टा भवन्तु वः ॥ १५९ ॥ एवं शिवमहाशान्तिमुचार्य जगतः क्रमात्। अभिवर्ध्य ततः शेषामैश्वरी सार्वकामिकीम् ॥ १६० ॥ शिवमालां समादाय सदासीपरिचारिकः । फलैर्भक्षेश्च संयुक्तां गृह्य पार्ती निवेशयेत् ॥ १६१ ॥ पार्ती च धारयेन्मूध्नी सोष्णीषां देवपुत्रकः । अलङ्कृतः गुक्कवासा धार्मिकः सततं ग्रुचिः ॥ १६२ ॥ ततश्च तां समुत्क्षिप्य पाणिना धारयेहुभः। प्रब्यादपरश्चात्र शिवधर्मस्य भाजकः ॥ १६३ ॥ तोयं यथा घटीसंस्थमजस्रं क्षरते तथा । क्षरते सर्वलोकानां तद्वदायुरहर्निशम् ॥ १६४ ॥

यदा सर्वे परित्यज्य गन्तव्यमवशैर्ध्रवम् । तदा न दीयते कस्मात् पाथेयार्थमिदं धनम् ॥ १६५ ॥ कलत्रपत्रमित्राणि पिता माता च बान्धवाः । तिष्ठन्ति न मृतस्यार्थे परलोके धनानि च ॥ १६६ ॥ नास्ति धर्मसमं मित्रं नास्ति धर्मसमः सखा । यतः सर्वैः परित्यक्तं नरं धर्मोऽनुगच्छति ॥ १६७ ॥ तस्माद्धमें समुद्दिश्य यः शेषामभिवर्धयेत् । समस्तपापनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥ १६८ ॥ उपर्यपरि वित्तेन यः शेषामभिवर्धयेत् । तस्येयमुत्तमा देया यतश्चान्या न वर्धते ॥ १६९ ॥ इत्येवं मध्यमां शेषां वर्धयेद्वा कनीयसीम् । ततस्तेषां प्रदातव्या सर्वशोकस्य शान्तये ॥ १७०॥ येनोत्तमा गृहीता स्याच्छिवशेषा महीयसी । प्रापणीया गृहं तस्य तथैव शिरसा वृता ॥ १७१ ॥ ध्वजच्छत्रविमानाद्यैर्महावादित्रनिस्त्वनैः । गृहद्वारं ततः प्राप्तामर्चयित्वा निवेशयेत् ॥ १७२ ॥ दद्याद्वोत्रकलत्राणां भृत्यानां स्वजनस्य च । तर्पयेचानतान् भक्त्या वादित्रध्वजवाहकान् ॥ १७३ ॥ एवमादीयते भक्त्या यः शिवस्योत्तमा गृहे । शोभया राजमार्गेण तस्य धर्मफलं श्रृणु ॥ १७४ ॥ समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः । शिवलोकमवामोति सभृत्यपरिचारकः ॥ १७५ ॥ तत्र दिव्यैर्महाभोगैर्विमानैः सार्वकामिकैः। कल्पानां क्रीडते कोटिमन्ते निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १७६ ॥ रथस्य यात्रां यः कुर्यादित्येवमुपशोभया । भक्ष्यभोज्यप्रदानैश्च तत्फलं श्रृणु यत्नतः ॥ १७७ ॥ अशेषपापनिर्मुक्तः सर्वभृत्यसमन्वितः । कुलत्रिंशकमुद्धृत्य सुहद्भिः स्वजनैः सह ॥ १७८॥ सर्वकामयुतैर्दिव्यैः स्वच्छन्दगमनालयैः। महाविमानैः श्रीमद्भिर्दिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥ १७९ ॥ इच्छया क्रीडते भोगैः कल्पकोटिं शिवे पुरे । ज्ञानयोगं ततः प्राप्य संसारादवमुच्यते ॥ १८० ॥ शिवस्य रथयात्रायामुपवासपरः क्षमी । पुरतः पृष्ठतो वापि गच्छंस्तस्य फलं श्रृणु ॥ १८१ ॥ अशेषपापनिर्मुक्तः शुद्धः शिवपुरं गतः । महारथोपमैर्यानै: कल्पाशीतिं प्रमोदते ॥ १८२ ॥ ध्वजच्छत्रपताकाभिर्दीपदर्पणचामरैः । धूपैर्वितानकलशैरुपशोभा सहस्रशः ॥ १८३ ॥ गृहीत्वा याति पुरतः स्वेच्छया वा परेच्छया । संपर्कात् कौतुकाल्लाभाच्छिवलोकं त्रजन्ति ते ॥ १८४ ॥ शिवस्य रथयात्रां तु यः प्रपश्यति भक्तितः । प्रसङ्गात् कौतुकाद्वापि तेऽपि यान्ति शिवं पुरम् ॥ १८५। नानायबादिशेषान्ते नानाप्रेक्षणकानि च । कुर्वीत रथयात्रायां रमते च विभूषिता ॥ १८६ ॥ ते भोगैर्विविधैर्दिव्यैः शिवासन्ना गणेश्वराः । क्रीडन्ति रुद्रभवने कल्पानां विंशतीर्नराः ॥ १८७ ॥ महता ज्ञानसङ्घेन तस्माच्छिवरथेन च। पृथक्जीवा मृता यान्ति शिवलोकं न संशयः ॥ १८८ ॥

श्रीपर्वते महाकाले वाराणस्यां महालये । जल्पेश्वरे कुरुक्षेत्रे केदारे मण्डलेश्वरे ॥ १८९ ॥ गोकर्णे भद्रकर्णे च शङ्कुकर्णे स्थलेश्वरे । भीमेश्वरे सुवर्णाक्षे कालञ्जरवने तथा ॥ १९० ॥ एवमादिषु चान्येषु शिवक्षेत्रेषु ये मृताः । जीवाश्चराचराः सर्वे शिवलोकं त्रजन्ति ते ॥ १९१ ॥ प्रयागं कामिकं तीर्थमविमुक्तं तु नैष्टिकम्। श्रीपर्वतं च विज्ञेयमिहामुत्र च सिद्धिदम् ॥ १९२ ॥ प्रसङ्गेनापि यः पश्येदन्यत्र प्रस्थितः कचित् । श्रीपर्वतं महापुण्यं सोऽपि याति शिवं पुरम् ॥ १९३ ॥ त्रजेद्यः शिवतीर्थानि सर्वपापैः प्रमुच्यते । पापयुक्तः शिवज्ञानं प्राप्य निर्वाणमाप्नुयात् ॥ १९४ ॥ तीर्थस्थानेषु यः श्राद्धं शिवरात्रे पयन्नतः । कल्पयित्वानुसारेण कालस्य विषुवस्य च ॥ १९५ ॥ तीर्थयात्रागतं शान्तं हाहाभूतमचेतनम् । क्षुत्पिपासातुरं लोके पांसुपादं त्वरान्वितम् ॥ १९६॥ सन्तर्पयित्वा यत्नेन म्लानलक्ष्मीमिवाम्बुभिः । पाद्यासनप्रदानेन कस्तेन पुरुषः समः ॥ १९७ ॥ अश्वन्ति यावत्तत्पण्डं तीर्थनिर्धृतकल्मषाः । तावद्वर्षसहस्राणि तद्दातास्ते शिवे पुरे ॥ १९८ ॥ द्याद्यः शिवसत्रार्थे महिषीं सुपयस्विनीम् । मोदते स शिवे लोके युगकोटिशतं नरः ॥ १९९ ॥ आर्ताय शिवभक्ताय दद्याद्यः सुपयस्विनीम् । अजामेकां सुपृष्टाङ्गी तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०० ॥

यावचद्रोमसंख्यानं तत्प्रसूतिकुलेषु च। ताबद्रर्घसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ २०१ ॥ मृदरोमाश्चितां कृष्णां निवेद्य गुरवे नरः । रोम्णि रोम्णि सुवर्णस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ २०२ ॥ गजाश्वरयसंयुक्तैर्विमानैः सार्वकामिकैः । सानुगः क्रीडते भोगैः कल्पकोर्टि शिवे पुरे ॥ २०३ ॥ निवेद्याश्वतरं पृष्टमदुष्टं गुरवे नरः। सङ्गर्ति सोपकरणं भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २०४ ॥ दिव्याश्वयुक्तैः श्रीमद्भिर्विमानैः सार्वकामिकैः । कोटिं कोटिं च कल्पानां तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥ २०५ ॥ अपि योजनमात्राय शिविकां परिकल्पयेत् । गरो: शान्तस्य दान्तस्य तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०६ ॥ विमानानां सहस्रेण सर्वकामयुतेन च। कल्पकोट्ययुतं साम्रं भोगान् मुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २०७ ॥ छागं मेषं मयूरं च कुक्कुटं शारिकां शुकम् । बालकीडनकानेतानित्याद्यानपरानिप ॥ २०८ ॥ निवेदयित्वा स्कन्दाय तत्सायुज्यमवाप्नुयात् । भुक्ता तु विपुलान् भोगांस्तदन्ते स्याद्विजोत्तमः ॥ २०९ ॥ मुसलोळखलाद्यानि गृहोपकरणानि च। दद्याच्छिवगृहस्येभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१० ॥ प्रत्येकं कल्पमेकैकं गृहोपकरणैर्नर: । अन्ते दिवि वसेद्भोगैस्तदन्ते च गृही भवेत् ॥ २११ ॥ खर्ज्रतालपत्रैर्वा चर्मणा वा सुकल्पितम् । दत्वा कोट्यासनं वृत्तं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २१२ ॥

प्रातनींहारवेलायां हेमन्ते शिवयोगिनाम् । कृत्वा प्रतापनायामि शिवलोके महीयते ॥ २ १३ ॥ सूर्यायुतप्रभादीर्प्तेर्विमानैः सार्वकामिकैः । कल्पकोटिशतं भोगान् भुक्त्वा स तु महीपतिः ॥ २१४ ॥ यः प्रान्तरं विदेशं वा गच्छन्तं शिवयोगिनम् । मोजयीत यथाशक्त्या शिवलोके महीयते ॥ २१५ ॥ यस्छत्रं धारयेद्ग्रीप्मे गच्छते शिवयोगिने । स मृतः पृथिवीं कृत्स्नामेकच्छत्रामवाप्नुयात् ॥ २१६ ॥ यः समुद्धरते मार्गे मात्रोपकरणासनम् । शिवयोगप्रवृत्तस्य तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २१७ ॥ कल्पायुतं नरः साम्रं अक्त्वा भोगाञ्छिवे परे । तदन्ते प्राप्नुयाद्राज्यं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ २१८ ॥ अभ्यङ्गोद्धर्तनं स्नानमार्तस्य शिवयोगिनः । कृत्वाऽऽप्रोति महाभोगान् कल्पाञ्छिवपुरे नरः ॥ २१९ ॥ अपनीय समुच्छिष्टं भक्तितः शिवयोगिनाम् । दशधेनुप्रदानस्य फलमामोति मानवः ॥ २२०॥ पश्चगव्यसमं ज्ञेयमुच्छिष्टं शिवयोगिनाम् । तद्भक्ता लभते शुद्धि महतः पातकादिप ॥ २२१ ॥ नारी च भुक्ता सत्पुत्रं कुलाधारं गुणान्वितम् । राज्ययोग्यं धनाट्यं च प्राप्नुयाद्धर्मतत्परम् ॥ २२२ ॥ यश्च यां शिवयज्ञाय गृहम्थः परिकल्पयेत् । शिवभक्तोऽस्य महतः परमं फलमाप्नुयात् ॥ २२३ ॥ शिवोमां च प्रयत्नेन भक्त्याब्दं गोऽनुपालयेत् । गवां रुक्षप्रदानस्य संपूर्णे फलमाप्नुयात् ॥ २२४ ॥

प्रातः प्रदद्यात् सघृतं सुकृतं वालपिण्डकम् । दूर्वी च बालवत्सानां तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २२५ ॥ यावत्तद्वालवत्सानां पानाहारं प्रकल्पयेत् । तावदष्टायुतान् पूर्वैर्भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे ॥ २२६ ॥ विधवानाथवृद्धानां प्रद्याद्यः प्रजीवनम् । आभूतसंष्ठवं यावच्छिवलोके महीयते ॥ २२७ ॥ द्याद्यः सर्वजन्तूनामाहारमनुयन्तः । त्रिः पृथ्वीं रत्नसंपूर्णी यद्दत्वा तत्फलं लभेत् ॥ २२८ ॥ नियमवतदानानि यानि सिद्धानि लोकतः। तानि तेनैव विधिना शिवमन्त्रेण कल्पयेत् ॥ २२९ ॥ निवेदयीत रुद्रायं रुद्राण्याः षण्मुखस्य च । प्राप्त्याद्विपुलान् भोगान् दिव्याञ्छिवपुरे नरः ॥ २३० ॥ पुनर्यः कर्तरीं दद्यात् केशक्केशापनुत्तये । सर्वक्रेशविनिर्मुक्तः शिवलोके सुखी भवेत् ॥ २३१ ॥ नासिकाशोधनं दद्यात् सन्दंशं शिवयोगिने । वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३२ ॥ नखच्छेदनकं दत्वा सुकृतं शिवयोगिने । वर्षलक्षं महाभोगै: शिवलोके महीयते ॥ २३३ ॥ दत्वाञ्जनशलाकां वा लोहाद्यां शिवयोगिने । भोगाञ्छिवपुरे प्राप्य ज्ञानचक्षुरवाप्नुयात् ॥ २३४ ॥ कर्णशोधनकं दत्वा लोहाद्यं शिवयोगिने । वर्षकोटिं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३५ ॥ दद्याद्यः शिवभक्ताय सूर्ची कौपीनशोधनीम् । वर्षलक्षं स लक्षार्घे शिवलोके महीयते ॥ २३६॥

निवेद्य शिवयोगिभ्यः सूचिकं सूत्रसंयुतम् । वर्षलक्षं महाभोगैः क्रीडते स शिवे पुरे ॥ २३७ ॥ द्द्याद्यः शिवयोगिभ्यः सुकृतां पत्रवेधनीम् । वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ २३८ ॥ दद्याद्यः पुस्तकादीनां सर्वकार्यार्थकर्तृकाम् । पञ्चलक्षं महाभोगैर्मोदते स शिवे पुरे ॥ २३९ ॥ शमीन्धनतृणादीनां दद्यात्तच्छेदनं च यः। क्रीडते स शिवे लोके वर्षलक्षचतुष्टयम् ॥ २४० ॥ शिवाश्रमोपभोगाय लोहोपकरणं महत्। यः प्रदद्यात् कुठागद्यं तस्य पुण्यफलं श्रृणु ॥ २४१ ॥ यावत्तत्पलसंख्यानं लोहोपकरणे भवेत्। तावन्ति वर्षलक्षाणि शिवलोके महीयते ॥ २४२ ॥ शिवायतनवित्तानां रक्षार्थं यः प्रयच्छति । भनुःखड्गायुधादीनि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४३ ॥ एकैकस्मिन् परिज्ञेयमायुधे चापि वै फलम्। वर्षकोट्यप्टकं भोगैः शिवलोके महीयते ॥ २४४ ॥ यः स्वात्मभोगभृत्यर्थं कुसुमानि निवेदयेत् । शिवाय गुरवे वापि तस्य पुण्यफ्तलं शृणु ॥ २४५ ॥ यावदन्योन्यसंबन्धास्तस्यांशाः परिकीर्तिताः । वर्षलक्षं स तावच शिवलोके प्रमोदते ॥ २४६ ॥ नष्टापहृतमन्विष्य पुनर्वित्तं निवेदयेत् । शिवात्मकं शिवायैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४७ ॥ यावच्छिवाय तद्वित्तं प्राङ्निवेद्य फलं स्मृतम् । नष्टमानीय तद्भूयः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ २४८ ॥

देवद्रव्यं हतं नष्टमन्वेष्यमपि यत्नतः । न प्राप्नोति तदा तस्य प्राप्नुयाद्विगुणं फलम् ॥ २४९ ॥ ताम्रकुम्भकटाहाद्यं यः शिवाय निवेदयेत् । शिवात्मकं शिवायैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २५० ॥ यावच्छिवाय तद्वित्तं प्राङ्निवेद्य फलं स्मृतम् । नष्टमानीय तद्भूयः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ २५१ ॥ स्नानसत्रोपभोगाय तस्य पुण्यफलं शृणु । यावत्तरालसंख्यानं ताम्रोपकरणे स्थितम् ॥ २५२ ॥ पले पले वर्षकोटिं मोदते स शिवे पुरे । यः पत्रपुष्पवस्तूनां दद्यादाधारभाजनम् ॥ २५३ ॥ तद्वस्तुदातुर्यत्पुण्यं तत्पुण्यं सकलं भवेत्। दत्वोपकरणं किञ्चिदपि यो वित्तमर्थिनाम् ॥ २५४ ॥ यहस्तु कुरुते तेन तत्प्रदानफलं लभेत्। यः शोचपीतवस्त्राणि क्षाराद्येः शिवयोगिनाम् ॥ २५५ ॥ स पापमलनिर्मुक्तः शिवलोकभवाप्नुयात् । यः पुष्पपट्टसंयुक्तं पटगर्भ च कम्बलम् ॥ २५६ ॥ प्रदद्याच्छित्रयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु । तेषां च वस्नतन्तूनां यावत्संख्या विधीयते ॥ २५७ ॥ ताबद्धषसहस्राणि भोगान् सुङ्क्ते शिवे पुरे । अक्षावसाणि शुक्कानि दद्याद्यः शिवयोगिने ॥ २५८ ॥ चित्रवसाणि तद्भक्या तस्य पुण्यफलं शृण् । गापसत्युक्ष्यवञ्जाणां तन्तुसङ्ख्या विधीयते ॥ २५९ ॥ ताब्युगानि संमोगैः शिवलोके महीयते । शहरात्रं तु विस्तीर्ण भाण्डं वापि सुशोभनम् ॥ २६० ॥ प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु । दिव्यं विमानमारूढः सर्वकामसमन्वितम् ॥ २६१ ॥ कल्पकोट्ययुतं साम्रं शिवलोके महीयते । शुक्त्यादीनि च पात्राणि शोभनान्यमलानि च ॥ २६२ ॥ निवेद्य शिवयोगिभ्यः शङ्खार्धेन फलं लभेत्। स्फाटिकानां च पात्राणां शङ्खतुल्यफलं स्मृतम् ॥ २६३ ॥ शैलजानां तद्धेन पात्राणां च तद्धेकम्। तालखर्जूरपालाणां वंशजानां निवेदने ॥ २६४ ॥ अन्येषामेवमादीनां पुण्यं वाक्ष्यीर्घसंमितम् । वंशजार्धसमं पुण्यं फलपात्रनिवेदने ॥ २६५ ॥ नानापर्णपुटानां च साराणां वा फलार्धकम्। यस्ताम्रकांस्यपात्राणि शोभनान्यमलानि च ॥ २६६ ॥ स्नानभोजनपानार्थं दद्याद्यः शिवयोगिने । ताम्रां कांसी त्रिलोहीं वा यः प्रदद्यात् त्रिपादिकाम् ॥ २६७ भोजने भोजनाधारां गुरवे तत्फलं शृणु । यावत्तत्पलसंख्यानं त्रिपाद्या भोजनेषु च ॥ २६८ ॥ तावद्युगसहस्राणि भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे । लोहं त्रिपादिकं दत्वा सत्कृत्वा शिवयोगिने ॥ २६९ ॥ दशकल्पान् महाभोगैर्नरः शिवपुरे वसेत् । यः प्रदद्यात् त्रिविष्टम्भं भिक्षापात्रसमाश्रयम् ॥ २७० ॥ वंशजं दारुजं वापि तस्य पुण्यफलं शृणु । दिव्यस्त्रीभोगसंपन्नो विमाने महति स्थितः ॥ २७१ ॥ चतुर्युगसहस्रं तु भोगान् भुङ्क्ते शिवे पुरे । भिक्षापात्रमुखाच्छादं वस्त्रपर्णादिकल्पितम् ॥ २७२ ॥

दत्वा शिवपुरे भोगान् कल्पमेकं वसेन्नरः । संश्रयं यः प्रदद्याच भिक्षापात्रे कमण्डलौ ॥ २७३ ॥ कंल्पितं वस्त्रसूत्राचैस्तस्य पुण्यफलं शृणु । तद्वस्त्रपूततन्तूनां संख्या यावद्विधीयते ॥ २७४ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । सूत्रवल्कलवालैर्वा शिक्यभाण्डसमाश्रयम् ॥ २७५ ॥ यः कृत्वा दामनीयोक्तं प्रग्रहं रज्जुमेव वा । एवमादीनि चान्यानि वस्तूनि विनिवेदयेत् ॥ २७६ ॥ शिवगोष्ठोपयोगार्थे तस्य पुण्यफलं शृण् । यावत्तद्रज्जुसंख्यानं प्रदद्याच्छिवगोकुले ॥ २७७ ॥ तावचतुर्युगं देही शिवलोके महीयते । यथा यथा प्रियं वस्त्रं शोभनं च यथा यथा ॥ २७८ ॥ तथा तथा महत्पुण्यं तद्दानादुत्तरोत्तरम् । यः पन्थानं दिशेत् पृष्टं प्रणष्टं च गवादिकम् ॥ २७९ ॥ स गोदानसमं पुण्यं प्रज्ञासौस्त्रयं च विन्दति । कृत्वोपकारमार्तानां स्वर्गे याति न संशयः ॥ २८० ॥ अपि कण्टकमुद्धत्य किमुतान्यं महागुणम् । अन्नपानीषधीनां च्यः प्रदातारमुद्दिशेत् ॥ २८१ ॥ आर्तानां तस्य विज्ञेयं दातुस्तत्सदृशं फलम् । शिवाय तस्य संरुद्धं कर्म तिष्ठति यद्विना ॥ २८२ ॥ तदल्पमपि यज्ञाङ्गं दत्वा यज्ञफलं लमेत्। ् अपि काशकुशं सूत्रं गोमयं समिदिन्धनम् ॥ २८३ ॥

शिवयज्ञोपयोगार्थे प्रवक्ष्यामि समासतः । सर्वेषां शिवभक्तानां दद्याद्यत्किञ्चिदादरात् । दत्वा यज्ञफलं विद्यात् वि.मु तद्वस्तुदानतः ॥ २८४ ॥

इति शिवोपनिषदि फलोपकरणप्रदानाध्याय: बष्टः

सप्तमोऽध्यायः

अथ स्वर्गापवर्गार्थे प्रवक्ष्यामि समासतः ।
सर्वेषां शिवभक्तानां शिवाचारमनुत्तमम् ॥ १ ॥
शिवः शिवाय भूतानां यस्माद्दानं प्रयच्छति ।
गुरुमृतिः स्थितस्तस्मात् पूजयेत् सततं गुरुम् ॥ २ ॥
नालक्षणे यथा लिङ्गे सान्निध्यं कल्पयेच्छिवः ।
अल्पागमे गुरौ तद्वत्सान्निध्यं न प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥
शिवज्ञानार्थतत्त्वज्ञं प्रसन्नमनसं गुरुम् ।
शिवः शिवं समास्थाय ज्ञानं वक्ति न हीतरः ॥ ४ ॥
गुरुं च शिववद्भक्त्या नमस्कारेण पूजयेत् ।
कृताङ्गलिक्षिसन्ध्यं च भूमिविन्यस्तमस्तकः ॥ ५ ॥
न विविक्तमनाचान्तं चङ्कमन्तं तथाऽऽकुलम् ।
समाधिस्थं वजन्तं च नमस्कुर्यादुरुं बुधः ॥ ६ ॥
व्याख्याने तत्समाप्तौ च संप्रश्ने खानभोजने ।
भुक्त्वा च शयने स्वमे नमस्कुर्यात् सदा गुरुम् ॥ ७ ॥

प्रामान्तरमभिप्रेप्सुर्गुरोः कुर्यात् प्रदक्षिणम् । सार्वाङ्गिकप्रणामं च पुनः कुर्यात् तदागतः ॥ ८ ॥ पर्वोत्सवेषु सर्वेषु दद्याद्गन्धपवित्रकम् । शिवज्ञानस्य चारम्भे प्रवासगमनागतौ ॥ ९ ॥ शिवधर्मवतारम्भे तत्समाप्तौ च कल्पयेत् । प्रसादनाय कुपितो विजित्य च रिपुं तथा ॥ १० ॥ पुण्याहे ब्रह्शान्तौ च दीक्षायां च सदक्षिणम् । आवार्य पदसंप्राप्तौ पवित्रे चोपविष्रहे ॥ ११ ॥ उपानच्छत्रशयनं वस्त्रमासनभूषणम् । पात्रदण्डाक्षसूत्रं वा गुरुसक्तं न धारयेत् ॥ १२ ॥ हास्यनिष्ठीवनास्फोटमुच्चभाष्यविजृम्भणम् । पादप्रसारणं गीतं न कुर्याद्भुरुसन्त्रिधौ ॥ १३ ॥ हीनान्नपानवस्त्रः स्यान्नीचशय्यासनो गुरोः। न यथेष्टश्च संतिष्ठेत् कलहं च विवर्जयेत् ॥ १४ ॥ प्रतिवातेऽनुवाते वा न तिष्ठेद्धरुणा सह । असंश्रये च सततं न किश्चित् कीर्तयेद्भुरोः ॥ १५ ॥ अन्यासक्तो न भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः। न शयानो न चासीनः संभाष्येद्धरुणा सह ॥ १६ ॥ दृष्ट्रैव गुरुमायान्तमुत्तिष्ठेद्दूरतस्त्वरम् । अनुज्ञातश्च गुरुणा संविशेचानुपृष्ठतः ॥ १० ॥ न कण्ठं पावृतं कुर्यात्र च तत्रावसक्तिकाम् । न पादधावनस्नानं यत्र पश्येद्भुरुः स्थितः ॥ १८॥ न दन्तधावनाभ्यक्रमायामोद्वर्तनिकयाः । उत्सर्गपरिधानं च गुरोः कुर्वीत पश्यतः ॥ १९ ॥

गुरुर्यदर्पयेत् किञ्चिद्गहासन्नं तदञ्जली । पात्रे वा पुरतः शिष्यस्तद्वक्लमभिवीक्षयन् ॥ २०॥ यद्र्पयेद्गरुः किञ्चित्तन्त्रम्रः पुरतः स्थितः । पाणिद्वयेन गृह्णीयात् स्थापयेत्तच सुस्थितम् ॥ २१ ॥ न गुरोः कीर्तयेन्नाम परोक्षमपि केवलम् । समानसंज्ञमन्यं वा नाह्वयीत तदाख्यया ॥ २२ ॥ स्वगुरुस्तद्भरुश्चैव यदि स्यातां समं कचित्। गुरोर्गुरुस्तयोः पूज्यः स्वगुरुश्च तदाज्ञया ॥ २३ ॥ अनिवेद्य न भुङ्गीत भुक्तवा चास्य निवेदयेत्। नाविज्ञाप्य गुरुं गच्छेद्वहिः कार्येण केनचित् ॥ २४ ॥ गुर्वाज्ञया कर्म कृत्वा तत्समाप्तौ निवेदयेत्। कृत्वा च नैत्यकं सर्वमधीयीताज्ञया गुरोः ॥ २५ ॥ मृद्भस्मगोमयजलं पत्रपुष्पेन्धनं समित् । पर्याप्तमष्टकं होतदुर्वर्थे तु समाहरेत् ॥ २६ ॥ भैषज्याहारपात्राणि वस्त्रशय्यासनं गुरोः । आनयेत् सर्वयन्नेन प्रार्थयित्वा धनेश्वरान् ॥ २७ ॥ गुरोर्न खण्डयेदाज्ञामपि प्राणान् परित्यजेत् । कृत्वाज्ञां प्राप्नुयान्मुक्तिं लङ्घयन्नरकं त्रजेत् ॥ २८ ॥ पर्यटेत् पृथिवीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् । गुरुभैषज्यसिद्धचर्थमपि गच्छेद्रसातलम् ॥ २९ ॥ यदादिशेद्भुरुः किश्चित्तत् कुर्यादविचारतः । अमीमांस्या हि गुरवः सर्वकार्येषु सर्वथा ॥ ३०॥ नोत्थापयेत् सुखासीनं शयानं न प्रबोधयेत्। आसीनो गुरुमासीनमभिगच्छेत् प्रतिष्ठितम् ॥ ३१ ॥

पथि प्रयान्तं यान्तं च यत्नाद्विश्रामयेद्भुरुम् । क्षुतिपपासातुरं स्नातं ज्ञात्वा शक्तं च भोजयेत् ॥ ३२ ॥ अभ्यङ्गोद्वर्तनं स्वानं भोजनष्ठीवमार्जनम् । गात्रसंवाहनं रात्री पादाभ्यङ्गं च यत्नतः ॥ ३३ ॥ प्रातः प्रसाधनं दत्वा कार्यं संमार्जनाञ्जनम् । नानापुष्पप्रकरणं श्रीमद्वचाख्यानमण्डपे ॥ ३४ ॥ स्थाप्यासनं गुरोः पूज्यं शिवज्ञानस्य पुस्तकम् । तत्र तिष्ठेत् प्रतीक्षंस्तद्भरोरागमनं क्रमात् ॥ ३५ ॥ गुरोर्निन्दापवादं च श्रुत्वा कर्णौ पिधापयेत्। अन्यत्र चैव सर्पेतु निगृह्णीयादुपायतः ॥ ३६ ॥ न गुरोरपियं कुर्यात् पीडितस्तारितोऽपि वा । नोचारयेच तद्वाक्यमुचार्य नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥ गुरुरेव पिता माता गुरुरेव परः शिवः । यस्यैव निश्चितो भावस्तस्य मुक्तिर्न दूरतः ॥ ३८॥ आहाराचारधर्माणां यत् कुर्याद्भररीश्वरः । तथैव चानुकुर्वीत नानुयुङ्गीत कारणम् ॥ ३९ ॥ यज्ञस्तपांसि नियमात्तानि वै विविधानि च । गुरुवाक्ये तु सर्वाणि संपद्यन्ते न संशयः ॥ ४० ॥ अज्ञानपङ्गनिर्ममं यः समुद्धरते जनम् । शिवज्ञानात्महस्तेन कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥ ४१ ॥ इति यः पूजयेन्नित्यं गुरुमूर्तिस्थमीश्वरम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रामीति परमं पदम् ॥ ४२ ॥ स्नात्वाम्भसा भस्मना वा शुक्कवस्त्रोपवीतवान् । द्वीगर्भस्थितं पुष्प गुरुः शिरसि धारयेत् ॥ ४३ ॥

रोचनालभनं कुर्याद्भ्ययेदात्मनस्तनुम्। अङ्गुलीयाक्षसूत्रं च कर्णमात्रे च धारयेत् ॥ ४४ ॥ गुरुरेवंविधः श्रीमान्नित्यं तिष्ठेत् समाहितः । यस्माद्ज्ञानोपदेशार्थं गुरुरास्ते सदाशिवः ॥ ४५॥ धारयेत् पादुके नित्यं मृदुवर्मप्रकल्पिते । प्रगृह्य दण्डं छत्रं वा पर्यटेदाश्रमाह्नहिः ॥ ४६ ॥ न भूमो विन्यसेत् पादमन्तर्धानं विना गुरुः। कुशपादकमाकम्य तर्पणार्थे प्रकल्पयत् ॥ ४७ ॥ पादस्थानानि पत्राद्येः कृत्वा देवगृहं विशेत । पात्रास्तरितपादश्च नित्यं भुङ्गीत वाग्यतः ॥ ४८ ॥ न पादौ धावयेत् कांस्ये लोहे वा परिकल्पिते । शौचयेतृणगर्भायां द्वितीयायां तथाचमेत् ॥ ४९ ॥ न रक्तमुल्बणं वस्त्रं धारयत् कुसुमानि च। न बहिर्गन्धमाल्यानि वासांसि मलिनानि च ॥ ५० ॥ केशास्थीनि कपालानि कार्पासास्थितुषाणि च । अमेध्याङ्गारभस्मानि नाधितिष्ठेद्रजांसि च ॥ ५१ ॥ न च लोष्टं विमृद्गीयात्र च छिन्द्यात्रखैस्तृणम् । न पत्रपुष्पमूल्यानि वंशमङ्गलकाष्ठिकाम् ॥ ५२ ॥ एवमादीनि चान्यानि पाणिभ्यां न च मर्दयेत्। न दन्तखादनं कुर्याद्रोमाण्युत्पाटयेन्न च ॥ ५३ ॥ न पद्भ्यामुल्लिखेद्भूमिं लोष्टकाष्टैः करेण वा । न नखांश्च नखैर्विध्यात्र कण्डूयेत्रखैस्तनुम् ॥ ५४ ॥ मुहुर्मुहुः शिरः समश्रु न स्पृशेत् करजैर्बुधः । न लिक्षाकर्षणं कुर्यादात्मनो वा परस्य वा ॥ ५५ ॥

सौवर्णरोप्यताम्रेश्च शृङ्गदन्तरालाकया । देहकण्डूयनं कार्यं वंशकाष्टीकवीरणै: ॥ ५६ ॥ न विचित्तं प्रकुर्वीत दिशश्चैवावलोकयन् । न शोकार्तश्च संतिष्ठेत् धृत्वा पाणौ कपोलकम् ॥ ५७ ॥ न पाणिपादवाक्चक्षुःश्रोत्रशिक्षगुदोदरैः। चापलानि न कुर्वीत स सर्वार्थमवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ न कुर्यात् केनचिद्वैरमध्रुवे जीविते सति । लोककौतूहलं पापं सन्ध्यां च परिवर्जयेत् ॥ ५९ ॥ न कुद्वारेण वेश्मानि नगरं श्राममाविशेत् । न दिवा प्रावृतशिरा रात्रौ प्रावृत्य पर्यटेत् ॥ ६० ॥ नातिश्रमणशीलः स्यान विशेच गृहाद्गहम् । न चाज्ञानमधीयीत शिवज्ञानं समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥ शिवज्ञानं परं ब्रह्म तदारभ्य न संत्यजेत् । ब्रह्मासाध्य च यो गच्छेद्धहाहा स प्रकीर्तितः ॥ ६२ ॥ कृताञ्जलिः स्थितः शिष्यो लघुवस्त्रमुदङ्मुखः । शिवमन्त्रं समुचार्य प्राङ्मुखोऽध्यापयेद्भुरुः ॥ ६३ ॥ नागदन्तादिसंभूतं चतुरश्रं सुशोभनम् । हेमरत्नचितं वापि गुरोरासनमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ न शुश्रुषार्थकामाश्च न च धर्मः प्रदृश्यते । न भक्तिन यशः कौर्यं न तमध्यापयेद्गरः ॥ ६५ ॥ देवाग्निगुरुगोष्ठीषु व्याख्याध्ययनसंसदि । प्रश्ने वादेऽनृतेऽशौचे दक्षिणं बाहुमुद्धरेत् ॥ ६६ ॥ वशे सततनम्रः स्यात् संहृत्याङ्गानि कूर्मवत् । तत्संमुखं च निर्गच्छेन्नमस्कारपुरस्सरः ॥ ६७ ॥

देवाभिगुरुविप्राणां न व्रजेदन्तरेण तु । नार्पयेत्र च गृह्णीयात् किश्चिद्धस्तु तदन्तरा ॥ ६८ ॥ न मुखेन धमेदिं नाध:कुर्यात लङ्घयेत्। न क्षिपेदशुचिं वह्रों न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ६९ ॥ तृणकाष्ठादिगहने जन्तुभिध्य समाकुले। स्थाने न दीपयेदिंगं दीपं चापि ततः क्षिपेत् ॥ ७० ॥ अग्निं युगपदानीय धारयेत प्रयन्नतः । ज्वलन्तं न प्रदीपं च स्वयं निर्वापयेद्भुधः ॥ ७१ ॥ शिववतधरं दृष्टा समुत्थाय सदा दृतम् । शिवोऽयमिति संकल्प्य हर्षितः प्रणमेत्ततः ॥ ७२ ॥ भोगान ददाति विपुलान् लिङ्गे संपूजितः शिवः। अग्नो च विविधां सिद्धिं गुरौ मुक्तिं प्रयच्छति ॥ ७३ ॥ मोक्षार्थं पूजयेत्तस्माद्गुरुमूर्तिस्थमीश्वरम् । गुरुभक्त्या लभेद्ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥ सर्वपर्वसु यनेन होषु संपूजयेच्छिनम् । कुर्यादायतने शोभां गुरुस्थानेषु सर्वतः ॥ ७५ ॥ नरद्वयोच्छिते पीठे सर्वशोभासमन्विते । संस्थाप्य मणिजं लिङ्गं स्थाने कुर्याज्जगद्धितम् ॥ ७६ ॥ अन्नपानविशेषेश्च नैवेद्यमुपकल्पयेत् । भोजयेद्वतिनश्चात्र स्वगुरुं च विशेषतः ॥ ७७ ॥ पूजयेच शिवज्ञानं वाचयीत च पर्वसु । दर्शयेच्छिवभक्तेभ्यः सत्पूजां परिकल्पिताम् ॥ ७८ ॥ प्रियं ब्रुयात् सदा तेभ्यः प्रदेशं चापि शक्तितः। एवं कृते विशेषेण प्रसीदति महेश्वरः ॥ ७९ ॥

छिन्नं भिन्नं मृतं नष्टं वर्धते नास्ति केवलम् । इत्याद्यान्न वदेच्छव्दान् साक्षाद्वृयातु मङ्गलम् ॥ ८० ॥ अवेनुं धेनुमित्येव ब्रूयाद्भद्रमभद्रकम् । कपालं च भगालं स्यात्परमं मङ्गलं वदेत् ॥ ८१ ॥ ऐन्द्रं धनुर्मणिधनुर्दाहकाष्ट्रादि चन्दनम् । स्वर्यातं च मृतं ब्र्याच्छिवीभूतं च योगिनम् ॥ ८२ ॥ द्विधाभूतं वदेच्छिन्नं भिन्नं च बहुधा स्थितम् । नष्टमन्वेषणीयं च रिक्तं पूर्णाभिवर्धितम् ॥ ८३ ॥ नास्तीति शोभनं सर्वमाद्यमङ्गाभिवर्धनम् । सिद्धिमद्ब्रहि गच्छन्तं सुप्तं ब्र्यात् प्रवर्धितम् ॥ ८४ ॥ न म्लेच्छम् र्खपतितैः कूरैः संतापवेदिभिः। दुर्जनैरवलिप्तैश्च क्षुद्रैः सह न संवदेत् ॥ ८५ ॥ नाधार्मिकनृपाकान्ते न दंशमशकावृते । नातिशीतजलाकीर्णे देशे रोगप्रदे वसेत् ॥ ८६ ॥ नासनं शयनं पानं नमस्काराभिवादनम् । सोपानत्कः प्रकुर्वीत शिवपुस्तकवाचनम् ॥ ८७ ॥ आचार्य दैवतं तीर्थमुद्धतोदं मृदं दिध । वटमश्वत्थकपिलां दीक्षितोदधिसङ्गमम् ॥ ८८ ॥ यानि चैषां प्रकाराणि मङ्गलानीह कानिचित्। शिवायेति नमस्कृत्वा प्रोक्तमेतत्प्रदक्षिणम् ॥ ८९ ॥ उपानच्छस्रवस्नाणि पवित्रं करकं स्रजम् । आसनं शयनं पानं धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥ ९० ॥ पालाशमासनं शय्यां पादुके दन्तधावनम् । वर्जयेचापि निर्यासं रक्तं न तु समुद्भवम् ॥ ९१ ॥

सन्ध्यामुपास्य कुर्वीत नित्यं देहप्रसाधनम् । स्पृशेद्वन्देच कपिलां प्रदद्याच गवां हितम् ॥ ९२ ॥ यः प्रदद्याद्भवां सम्यक् फलानि च विशेषतः। क्षेत्रमुद्दामयेचापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९३ ॥ यावत्तत्पत्रकुसुमकन्दमूलफलानि च । ताबद्रर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ९४॥ कुशरोगार्तवृद्धानां त्यक्तानां निर्जने वने । क्षुत्पिपासातुराणां च गवां विह्नलचेतसाम् ॥ ९५ ॥ नीत्वा यस्तृणतोयानि वने यत्नात् प्रयच्छति । करोति च परिलाणं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९६ ॥ कुलैकविंशकोपेतः पत्नीपुलादिसंयुतः । मिल्रभुत्यैरुपेतश्च श्रीमच्छिवपुरं त्रजेत् ॥ ९७ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान् विमानैः सार्वकामिकैः । स महाप्रलयं यावत्तदन्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ९८ ॥ गोब्राह्मणपरिलाणं सकृत्कृत्वा प्रयत्नतः । मुच्यते पञ्चभिर्घेरिर्महद्भिः पातकैर्द्भतम् ॥ ९९ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता । अकोघो गुरुशुश्रुषा शौचं सन्तोषमार्जवम् ॥ १०० ॥ अहिंसाद्या यमाः पञ्च यतीनां परिकीर्तिताः । अकोधाद्याश्च नियमाः सिद्धिवृद्धिकराः स्मृताः ॥ १०१ ॥ दशलाक्षणिको धर्मः शिवाचारः प्रकीर्तितः । योगीन्द्राणां विशेषेण शिवयोगप्रसिद्धयं ॥ १०२ ॥ न विन्दति नरो योगं पुत्रदारादिसङ्गतः । निबद्धः स्रोहपाशेन मोहस्तम्भवलीयसा ॥ १०३॥

मोहात् कुटुम्बसंसक्तस्तृष्णया शृङ्खलीकृतः । बार्टैर्बद्धस्तु लोकोऽयं मुसलेनाभिहन्यते ॥ १०४ ॥ इमे वालाः कथं त्याज्या जीविष्यन्ति मया विना । मोहाद्धि चिन्तयत्येवं परमार्थौ न पश्यति ॥ १०५ ॥ संपर्कादुदरे न्यस्तः शुक्रविन्दुरचेतनः । स पित्ना केन यत्नेन गर्भस्थः परिपालितः ॥ १०६ ॥ कर्कशाः कठिना भक्षा जीर्यन्ते यत्र भक्षिताः । तस्मिन्नेवोदरे शुक्रं किं न जीर्यति भक्ष्यवत् ॥ १०७ ॥ येनैतद्योजितं गर्भे येन चैव विवर्द्धितम् । तेनैव निर्गतं भूयः कर्मणा स्वेन पाल्यते ॥ १०८ ॥ न कश्चित् कस्यचित् पुत्रः पिता माता न कस्यचित् । यत्स्वयं प्राक्तनं कर्म पिता मातेति तत्समृतम् ॥१०९ ॥ येन यत कृतं कर्म स तत्रैव प्रजायते । पितरो चास्य दासत्वं कुरुतस्तत्यचोदितौ ॥ ११० ॥ न कश्चित् कस्यचिच्छक्तः कर्तुं दुःखं सुखानि च। करोति प्राक्तनं कर्म मोहालोकस्य केवलम् ॥ १११ ॥ कर्मदायादसंबन्धादपकारः परस्परम् । दृश्यते नापकारश्च मोहेनात्मनि मन्यते ॥ ११२ ॥ ईश्वराधिष्ठितं कर्म फलतीह गुभागुभम्। य्रामस्वामिप्रसादेन सुकृतं कर्षणं यथा ॥ ११३ ॥ द्रयं देवत्वमोक्षाय ममेति न ममेति च। ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति विमुच्यते ॥ ११४ ॥ द्वचक्षरं च भवेन्मृत्युस्रचक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् । ममेति द्वयक्षरं मृत्युस्त्रयक्षरं न ममेति च ॥ ११५ ॥

तस्मादात्मन्यहङ्कारमुत्सुज्य प्रविचारतः । विध्याशेषसङ्गांश्च मोक्षोपायं विचिन्तयेत् ॥ ११६ ॥ ज्ञानाद्योगपरिक्केशं क्रपावरणभोजनम् । कुचर्यो कुनिवासं च मोक्षार्थी न विचिन्तयेत् ॥ ११७ ॥ न दु:खेन विना सौख्यं दृश्यते सर्वदेहिनाम् । दु:खं तन्मात्रकं ज्ञेयं सुखमानन्त्यमुत्तमम् ॥ ११८ ॥ सेवायां पाश्रपाल्यं च वाणिज्ये कृषिकर्मणि । तुरुयं सति परिक्केरो वरं क्वेशो विमुक्तयं ॥ ११९ ॥ स्वर्गापवर्गयोरेकं यः शीघं न प्रसाधयेत । याति तेनैव देहेन स मृतस्तप्यते चिरम् ॥ १२०॥ यदवञ्यं पराधीनैस्त्यजनीयं शरीरकम् । कस्मात्तेन विमूढात्मा न साधयति शाश्वतम् ॥ १२१ ॥ यौवनस्था गृहस्थाश्च प्रासादस्थाश्च ये नृपाः । सर्व एव विशीर्यन्ते शुष्किसाधान्त्रभोजनाः ॥ १२२ ॥ अनेकदोषद्ष्य देहस्यैको महान् गुणः। यां यामवस्थामामोति तां तामेवानुवर्तते ।। १२३ ॥ मन्दं परिहरन् कर्म स्वदेहमन्पालयेत् । वर्षास जीर्णकटवत्तिष्ठन्नप्यवसीदति ॥ १२४ ॥ न तेऽत्र देहिनः सन्ति ये तिष्ठन्ति सुनिश्चलाः । सर्वे कुर्वन्ति कर्माणि विकृशाः पूर्वकर्मभिः ॥ १२५ ॥ तुल्ये सत्यपि कर्तव्ये वरं कर्म कृतं परम् । यः कृत्वा न पुनः कुर्यान्नानाकर्म ग्रुभाग्रुभम् ॥ १२६ ॥ तस्मादन्तर्बहिश्चिन्तामनेकाकारसंस्थिताम् । संत्यज्यात्महितार्थाय स्वाध्यायध्यानमभ्यसेत् ॥ १२७ ॥

विविक्ते विजने रम्ये पृष्पाश्रमविभृषिते । स्थानं कृत्वा शिवस्थाने ध्यायेच्छान्तं परं शिवम् ॥ १२८ ॥ येऽतिरम्याण्यरण्यानि सुजलानि शिवानि तु । विहायाभिरता ग्रामे प्रायस्ते दैवमोहिताः ॥ १२९ ॥ विवेकिनः प्रशान्तस्य यत्सुखं ध्यायतः शिवम् । न तत्सुखं महेन्द्रस्य ब्रह्मणः केशवस्य वा ॥ १३० ॥ इति नामामृतं दिव्यं महाकालादवाप्तवान् । विस्तरेणानुपूर्व्याच ऋष्यात्रेयः सुनिश्चितम् ॥ १३१ ॥ प्रज्ञामथा विनिर्मथ्य शिवज्ञानमहोद्धिम् । ऋप्यात्रेयः समुद्धत्य प्राहेदमणुमात्रकम् ॥ १३२ ॥ शिवधर्म महाशास्त्रे शिवधर्मस्य चोत्तरे । यदनुक्तं भवेत् किश्चित्तदव परिकीर्तितम् ॥ १३३ ॥ त्रिदैवत्यमिदं शास्त्रं मुनीन्द्रात्रेयमाषितम् । तिर्यङमनुजदेवानां सर्वेषां च विमुक्तिदम् ॥ १३४ ॥ नन्दिस्कन्दमहाकालास्त्रयो देवाः प्रकीर्तिताः। चन्द्रात्रेयस्तथाऽत्रिश्च ऋष्यात्रेयो मुनिन्यम् ॥ १३५ ॥ एतैर्महात्मभिः प्रोक्ताः शिवधर्माः समासतः । सर्वलोकोपकारार्थं नमस्तेभ्यः सदा नमः ॥ १३६ ॥ तेषां शिष्यप्रशिष्वैश्व शिवधर्मप्रवक्तृभिः। व्याप्तं ज्ञानसरः शार्व विकचैरिव पक्कजैः ॥ १३७ ॥ ये श्रावयन्ति सततं शिवधर्मे शिवार्थिनाम् । ते रुद्रास्ते मुनीन्द्राश्च ते नमस्याः स्वभक्तितः ॥ १३८ ॥ ये समुत्थाय शृण्वन्ति शिवधर्म दिने दिने ! ते रुद्रा रुद्रलोकेशा न ते प्रकृतिमानुषाः ॥ १३९ ॥

शिवोपनिषदं ह्येतद्ध्यायैः सप्तभिः स्मृतम् । ऋष्यात्रेयसगोत्रेण मुनिना हितकाम्यया ॥ १४० ॥

> इति शिवोपनिषदि शिवाचाराध्यायः सप्तमः इति शिवोपनिषत् समाप्ता

सदानन्दोपानेषत्

तच्छंयोराष्ट्रणीमहे— इति शान्तिः

अथैनं सदानन्दः संवर्तो जैगीषव्यश्च नीललोहितं रुद्रमुवाच । भगवन् किमपवर्गे साधयतीति । स एतेभ्यो भगवान् नीललोहितः प्रोवाच । अन्तर्बहिर्धारितं परंब्रह्माभिषेयं शाम्भवं लिङ्गम् ,

> आधारे दहरेऽन्यक्ते स्वर्णस्फाटिकवैद्रुमम् । निरन्तरानुसन्धानात् तदन्तर्धारणे विदुः ॥ चतुर्दलं द्वादशारं द्वचश्रमन्यक्तकं शिवम् । दहरेऽङ्गुष्ठमात्रं तमुमाकान्तमहर्निशम् । अनिराकारमात्मानं धृत्वा यान्ति परं पदम् ॥ परात् परतरो ब्रह्मा तत्परात् परतो हरिः । तत्परात् परतोऽधीशस्तस्मात् स्यादुत्तरः शिवः ॥ जातवेदसमन्यकं व्यक्ताव्यक्तं परं सदा । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

अन्तर्धारणशक्तेन स्वशक्तेन द्विजोत्तमाः । संस्कृत्य गुरुणा दत्तं शैवं लिङ्गमुरःस्थले । धार्य विषेण मुक्त्यर्थे शिवतत्त्वविदो विदुः ॥ येनाचिरात्सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं पुरुषमुपैति विद्वान् ।

अस्य मात्रा अकारो ब्रह्मरूप उकारो विष्णुरूपो मकारः कालकालः अर्धमात्रा परमशिवः ओङ्कारो लिङ्गम् ।

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यते ह्यज ईश्वरः ।
तस्मात्तद्धारणादेतिलिङ्गदेहमलौकिकम् ।
मृतेऽपि तन्न दह्येत विले चैतद्विनिक्षिपेत् ॥
न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानग्रुः ॥
यो वा स्वहस्ताचितिलिङ्गमेकं परात्परं धारयते नरो वा ।
तस्यैव लभ्यः परमेश्वरोऽसौ निरञ्जनं साम्यमुपैति दिव्यम् ॥
शिवलिङ्गधरं विप्रं विपन्नं तु न दाहयेत् ।
यदि वा दाहयेत्तस्य ब्रह्महत्या तदा भवेत् ॥

यदिदं लिङ्गं सकळं सकळिनिष्कळं निष्कलं च स्थूलं सूक्ष्मं च तत्परं स्थूले स्थूलं सूक्ष्मे सूक्ष्मं कारणे तत्परं च।

> आत्मानमरणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मथनादेव पाशं दहति मानवः । अन्तर्वहिश्च तिल्लक्षं विधत्ते यस्तु शाश्वतम् ॥

अविद्याऽऽवरणं भित्त्वा ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामामोति । तिद्दं लिङ्गं ब्रह्म । तिददं ॐ सत्यम् । यो विद्वान् ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यित्वी सदानन्दोपनिषदं पठित सोऽभिपूतो भवित । स सत्यपूतो भवित । स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति । ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । स सकलभोगभुक् देहं त्यक्त्वा शिवसायुज्यमेति । इत्युपनिषत् ॥

इति सदानन्दोपनिषत् समाप्ता

सिद्धान्तशिखोपनिषत्

ॐ अथ भारद्वाजः कुमारं पप्रच्छ । कोऽयं भवाद्दशानां परमिशव-भक्तानां सिद्धान्तः । कुतः सर्वे न विदन्तीति । तद्भुद्धमुवाच स्कन्दः । भारद्वाज शृणु नाम कचिद्भद्दन्ति साम्बं सर्वदेवप्रकृष्टं शिवं वरेण्यं पकचित्ताः शिवस्य प्रसादतो ज्ञानमात्राद्विदन्ति ।

> विश्वाधिकं शङ्करं ये प्रमूढा हीनं विष्णोर्ब्रह्मणो वा वदन्ति । न संसारात् प्रमुच्यन्ते कदाचिच्छतैः कल्पैः कोटिभिर्वाऽथ दोषैः॥ यथा राज्ञे कुर्वन्नमात्यवुद्धिं

ेही विन्देद्वाधमस्माद्विनष्टम्।

विभिन्ने दिल्ली

ुवं,य। इंचिन ऽज्ञानसङ्गात् ॥

महानाबः काष्ठमार्द्रं च गुप्कं कृत्वा दहेदीश्वरोत्कृष्टबुद्धः । दहेत् पापान्याशु विज्ञानदात्री न संसारे मज्जते वा कदाचित् ॥ महादेवे त्रिपुण्ड्स्य धारणे भस्मकुण्ठने । पुण्यलेशविहीनस्य श्रद्धा नैव प्रजायते ॥ पापपूर्णस्य मर्त्यस्य त्रिपुण्ड्रोद्धूलने शिवे । रुद्राक्षधारणे द्वेषः स्वत एव प्रजायते ॥ जन्मान्यनन्तानि विस्तीर्य भूयः शिवप्रसादाद्भृतपुण्यलेशः । शिवे भक्ति प्राप्य तद्भक्तसङ्गान्न संसतौ घोरदः सात् प्रमज्जेत् ॥ योऽज्ञानाद्वा शिवशब्दं गृणानः पापैधीरैर्भुच्यते वा कदाचित् । को वा वेत्ता महिमानं शिवस्य परात् परस्य ज्ञानगुह्यस्य गुह्यम् ॥ सद्योजाताद्वाह्मणाः संबभूवुर्वामदेवात् क्षत्रिया वै विशश्च । अघोराच्छूद्रास्तत्पुरुषाच्छिवस्य पञ्चात्मकस्य गणा ईशतोऽस्य ॥ आत्माश्रमित्वाद्गणवंशजाता लिङ्गाङ्गसङ्गस्तत्र जन्मान्तदीक्षा । यथा गङ्गा शिवसङ्गात्तथैव न स्तकं वा नाप्यशुचित्वमेषाम् ॥ गच्छंस्तिष्ठन्निमिषनुन्मिषन् वास्वपञ्चाग्रालिङ्गधारी ग्रुचिः स्यात् । भुञ्जन् मूत्राद्युतरजन् वा कदाचित्र तत्रोच्छिष्टं भजते शुद्धदेही ॥ शीर्षे कण्ठे वक्षसि कक्षदेशे नाभौ हस्ते सर्वदा प्राणलिङ्गम् । धार्ये यथासम्प्रदायं पुरस्तादुरोविदित्वा हृदये मुख्यमुक्तम् ॥ क्कानं कृत्वा शिवतीर्थे च देहं सर्वे भस्मोद्भूलनात् पावयित्वा । त्रिपुण्ड्रं धार्यं भत्सेनात् पातकौधगिरेर्भस्म प्राहुरत्यर्थमेतत् ॥ स्नानं त्रिपुण्ड्स्य शिरोललाटवक्षःस्कन्धमणिबन्धेषु कूर्पे। नाभिप्रदेशे पार्श्वयोर्गण्डदेशे गुदप्रदेशे गुल्फयोश्च कमात् स्यात् ॥ विह्नत्रयं तच जगत्त्रयं यद्गुणत्रयं तच शक्तित्रयं स्यात्। धृतं त्रिपुण्ड्ं यदि कोपि दैवात् तद्दृष्ट्वान्यः पातकौघाद्विमुक्तः ॥ निमीलिताक्षस्य पुरत्रयाणि

दुग्धाः शंभोर्नयनेभ्योऽथ ये तु । जाता रुद्राक्षा जलबिन्दवोऽस्य सधोजातादीन् पञ्च वक्ताणि विन्द्यात् ॥ द्वात्रिंशद्रुद्राक्षाः कण्ठमालाप्रयुक्ताः शिखायामेको द्विचत्वारिंशदुक्ताः । शिरोधार्याः कर्णयोद्वीदशाऽथ शतत्रयं तूपवीतं च बाह्वोः ॥

द्वात्रिंशदुक्ता मणिबन्धयोश्च चतुर्विशाः शतमष्टौ जपार्थम् । पुरा लीनाः सृष्टिकालाच्छिवस्य पञ्चाक्षरे मन्त्रवर्ये समस्ताः । भूतानि पञ्च वेदा आगमाश्च शिवाल्लब्धोऽभून्मन्त्रवर्यो विधाला ॥ देहिनो देहमायान्ति न यावन्मन्त्रनायकः । तावत्पापानि गर्जन्ति सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥

योऽयं नकारः सोऽयमकारः स सद्योजातो भूर्ऋग्वेदः संपुटमुच्यते । योऽयं मकारः सोऽयमुकारः स वामदेव आपो यजुर्वेदो वक्त्रमुच्यते । योऽयं शिकारः सोऽयं मकारः स घोरः स वायुः सामवेदो गुण उच्यते । योऽयं वकारः सोऽयं नादः स तत्पुरुषः स तेजोऽध्वंवेदोऽघोरमुच्यते । योऽयं यकारः तदिदं समस्तमोमिति निर्विशेषप्रणवः स सर्वोत्तम ईशान आकाश आगमो लिङ्गमुच्यते । इत्येतत्तत्त्वं यो विजानाति स नित्यं शुद्ध- बुद्धपरमानन्दपरमिशवस्वरूपः ।

पुरा देवाः पशुपाशाद्विमुक्ताः शिवं पूज्यैव हरिपद्मादयोऽपि । ऐन्द्रनीलं पूजितं विष्णुनासीलिङ्गं वैड्र्यं विधिना पद्मरागम् ॥ शक्तेण हैमं यक्षराजेन विश्वेदेवे रौप्यं वसुभिः कांस्यकं च । यहारुकूटं वायुना पार्थिवं तदिश्वभ्यामासीत् स्फाटिकं पाशिनाथ ॥ आदित्यैस्ताम्रं मौक्तिकं देवतैस्तैरनन्ताद्यैः फणिभिश्च प्रवालम् । दैत्यैर्जालं राक्षसैश्च त्रिलोहं गणैः शैलं सैकतं मातृकाभिः ॥ दारुद्भवं निर्फतिना यमेन सुपूज्यमासीन्मारकतं च रुद्रैः । सुभस्मरूपं सुक्ष्मरूपं च लक्ष्म्या शैलान्येव मुनयो भेजिरेऽथ ॥ सरस्वती रत्नरूपं च दुर्गा हैमं लिङ्गं पूज्यामास मक्त्या । जलैरुप्णैः शीतलैर्वा कदाचिदज्ञानाद्वा पतितैः पत्रपुप्पैः । तुष्टो यच्छेद्वाञ्छितार्थं महेशः किं दुर्लमं शिवभक्तस्य लोके ॥ अत्यल्पमपि नैवेद्यं फलं वा जलमेव वा । तदेव प्राशयित्वाथ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ किमन्यैर्घार्येर्भस्मनि शुद्धपुण्ड्रे स्थिते किमन्यैर्मन्त्रवर्येऽथ मन्त्रैः । शिवे स्थिते सर्वदेवाधिराजे भारद्वाज निर्जरैः किं तथाऽन्यैः ॥ सिद्धान्तोऽयं निश्चितोऽस्माभिरेष भारद्वाज गुह्ममेतन्न वाच्यम् । सद्या प्रशान्ताय न नास्तिकाय परीक्ष्याथ ब्रुहि सर्वार्थवेत्रे ॥

इत्याह भगवान् स्कन्दः । तामेनां सिद्धान्तशिखां प्रातर-धीयानो रातिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानोऽिह्कृतं पापं नाशयति । सार्वकालं प्रयुज्जानः पापैरपापो भवतीति विज्ञायते । इति वेदवचनं भवति । इति वेदवचनं भवति । ॐ सत्यमित्युपनिषत् ॥

इति सिद्धान्तशिखोपनिषत् समाप्ता

सिद्धान्तसारोपनिषत्

भद्रं कर्णेभि:-इति शान्तिः

प्रथमावरणम्

अथ भारद्वाजः कुमारं पप्रच्छ । भगवन् मे ब्रूहि परमतत्त्वकैलास-रहस्यम् । तद्भुह्यमुवाच स्कन्दः । साधु पृष्टं सर्व निवेदयामि यथाज्ञातं मया । हे भारद्वाज शृणु वाक्यमेतत् । परमकैवल्यः स एव कैलासः । ईश्वरकृपया परमपरिपकचित्ता जानन्ति । नान्ये जानन्ति गृह्यमिदम-निर्वाच्यममितबोधसागरममितानन्दसमुद्रमखण्डानन्दरूपन्निरवयवं निराधारं निर्विकारं निरञ्जनमनन्तं ब्रह्मानन्दसमष्टिक्न्दं तैरानन्दपुरुषैश्चिद्वपैरधिष्ठितं ब्रह्मानन्दमयानन्तनिरतिशयानन्दसागराकारमात्मसमानानन्द्विभूतिपुरुषान -न्तानन्दमण्डितं नित्यमङ्गलमनन्तविभवम् । ब्रह्मानन्दमयानन्तपाकारप्रासाद-तोरणविमानोपवनावलीभिज्वेलच्छिखरैरुपलक्षितो निरुपमनित्यनिरवद्यनिरति-<mark>शयनिरवधिकब्रह्मानन्दाचलो विराजते । तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्द-</mark> दिव्यतेजोराशिः । तदभ्यन्तरसंस्थाने शुद्धबोधानन्दरुक्षणं विभाति । तदन्तराले चिन्मयवेदिकाऽऽनन्दवेदिकाऽऽनन्दवनविभूषिता । तल वेद-कल्पतरुवनं यज्ञकल्पतरुवनं योगकल्पतरुवनम् । तद्भ्यन्तरे अमिततेजोरा-शिस्वात्मज्योतिर्ज्वलिति । तत्र परममङ्गलासनं विराजते । तस्योपरि समासीनानन्तपरिपालकनन्द्यादिगणपाः सन्ति । अनन्तोत्कटजलदमण्डलं निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलवृन्दाकारपरमानन्दशुद्भवोधस्वरूपमन्नतानन्दसौदा-मिनीपरमविलासं निरतिशयानन्तपरमानन्दपारावारजालम् ॥

इति प्रथमावरणम्

द्वितीयावरणम्

तन्मध्ये कल्याणाचलो विभाति । अनन्तानन्दर्पर्वतशिखरैरमिव्यासम-नन्तबोधानन्दव्यूहैरभितस्ततं ब्रह्मविद्याप्रवाहैरानन्दरसनिभेरैः क्रीडानन्द-पर्वतैरनन्तैरभिव्याप्तं ब्रह्मविद्यामयैरनन्तप्राकारैरानन्दामृतमयैर्दिव्यगन्धैः स्व- शाविन्सयैरनन्तव्रह्मवनैरितशोभितमपरब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदैवतमनन्तमोक्ष -साझाज्याद्वितीयमेकं परमकल्याणमनन्तविभवममितबोधानन्दाचलोपरिस्थितं गुद्धबोधमयानन्तपासादैः संवृतमानन्दमयानन्तविमानावलीभिर्विराजितमत्या-श्चर्यानन्तविभृतिसममनन्तगुद्धानन्दपरिषैः समावृतमनन्तदिव्यतेजोज्वाला-जालैरिभितोऽनिशं प्रज्वलन्तमत्याश्चर्यानन्तिक्भृतिसमष्टचाकारमानन्दरसप्रवा-हेरलङ्कृतममितविज्ञानतरिङ्गण्याः प्रवाहैरितमङ्गलं ब्रह्मतेजोविशेषाकारैर-नन्तब्रह्मवनैरिभतस्ततं ब्रह्मविद्याकल्पतस्वनैः सुशोभितं बोधकल्पतस्वनैः परिवेष्टितमनन्तिन्त्यमुक्तैरिभव्याप्तं तदभ्यन्तरेऽनन्तदिव्यनङ्गलासनं विराजते । तदुपरि नित्यज्ञानानन्दरूपा अद्वैतिशवपूजकास्तिष्टन्ति ॥

इति द्वितीयावरणम्

तृतीयावर**णम्**

तन्मध्ये चिदानन्दाचलो विभाति । तदुपरि ब्रह्मतेजोमयानन्तशिखराः सन्ति । तत्र ब्रह्मविद्यामयानन्तपरिघाः सन्ति । वाचामगोचरानन्तचिन्मयानन्दवनैः परिवेष्टितं ब्रह्मकल्पतरुवनैः समावृतं अमृतकल्पतरुवनैरुपशोभितं ब्रह्मतिजोमयानन्दरसप्रवाहैरितिशोभितं ब्रह्मविद्यातरिङ्गण्याः प्रवाहैः सुमङ्गलं निरितशयानन्तदिव्यानन्दतेजोज्वालाराशिमण्डलं ज्वलि । परमानन्दमयानन्तविमानाविलिभः संकुलमनन्तचिन्मयप्रासादजालसंकुलमनन्तब्रह्मानन्दानु-भवपताकाध्वजतोरणरलङ्कृतमनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तं तदभ्यन्तरसंस्थानेऽन-न्तचिन्मयासनं विराजते । तस्योपरि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तशिवेन्यभक्तास्तिष्ठन्ति ॥

इति वृतीयावरणम्

चतुर्थावरणम्

तन्मध्येऽमितबोधानन्दाचलो विभाति । तदुपरि परमकैवल्यानन्दरूपानन्तशिखराः सन्ति । तत्र परमानन्दामृतमयैर्दिन्यानन्तप्राकारो
ज्वलति । दिन्यगन्धैः स्वभावचिन्मयैरनन्तब्रह्मवनैरतिशोभितमानन्दकल्पतस्वनैरावृतं मुक्तिकल्पतस्वनैः सुशोभितं पारावारानन्दरसनिर्भरेरतिशोभितं स्वात्मानन्दानुभवतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं परमकल्याणमनन्तविभवममिततेजोराश्याकारमनन्तब्रह्मतेजोराशिसमष्टचाकारमनन्तदिन्यतेजोज्वालाजालैरभि तोऽनिशं प्रज्वलितमनन्तदिन्यापारब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदैवतममोधनिजमन्दकटाक्षचिदानन्दमयानेकप्रासाद्विशेषैः परिवेष्टितं ब्रह्मविद्यामयैरनन्तप्रकारानन्दामृतदिन्यमङ्गलविमानैः सुशोभितं चिद्रूपविलासनिभचिन्मयासनं विराजते । अधितिष्ठन्ति तेजोराशि तदन्तर्गतदिन्यतेजोविशेषमखिलपवित्राणां
परमं पवित्रं चिद्रूपपरानन्तित्यमुक्तैरभिन्याप्तं सचिदानन्दरूपाः शिवास्मैक्योपासकाः ॥

इति चतुर्थावरणम्

पश्चमावरणम्

अनन्तानन्दपर्वतैः परमकौतुकमाभाति । तदुपरि ज्वलिति निरिति-शयानन्दिद्वयतेजोराशिमण्डलम् । चिद्रानन्दमयानन्तप्राकारिवशेषैः परिवेष्टि-तम् । तच्च परमकल्याणिवलासिवशेषम् । तदखण्डदिव्यतेजोमण्डलाकारं परमानन्दसौदामिनीचयोज्ज्वलम् । तच्चामितपरमतेजःपरमिवहारसंस्थानिवशेषं परमतेजोमण्डलिवशेषं परमानन्दामृतब्रह्मविद्यामयानन्तसमुद्रं चिदानन्दतरङ्गा-

कारम् । तन्मध्ये अनन्तदिव्यतेजःपर्वतसमष्ट्याकारमपरिच्छिन्नानन्तशुद्ध-बोधानन्दमण्डलं वाचामगोचरानन्दब्रह्मतेजोराश्याकारमनन्तशिखरोज्ज्वलम-खण्डतेजोमण्डलविशेषं नित्यानन्दम्तिमद्भिः परममङ्गलैः परिधीकृतम-परिछिन्नानन्दसागराकारं ब्रह्मानन्दरसक्रीडावनैः सुशोभितमनन्तसहस्रान-समुज्ज्वितं मुक्तिकल्पतरुवनैः परिवेष्टितं विभृतिकल्प-तरुवनैरभितस्ततमनन्तानन्द्विमान जालसंकुलमनन्तबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं क्रीडानन्तमण्डपविशेषैविंशेषितं बोधानन्दमयानन्तपरमछत्रध्वज-चामरवितानतोरणैरलङ्कृतं शुद्धानन्दविशेषसमष्टिमण्डलविशेषानन्तप्रासादोन्न-तोज्ज्वलमखण्डचिद्धनानन्दविशेषं परमानन्दव्यृहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततमनन्त-दिव्यतेजःपर्वतसमष्टचाकारमपरिच्छिन्नानन्तशुद्धबोधानन्दमण्डलं परमानन्द-ल्हरीवनशोभितमसङ्ख्याकानन्दसमुद्रमनन्तज्वालाजालैरलङ्कृतं चिदानन्द-तरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं स्वात्मानन्दानुभवामृतकल्लोलरसप्रवाहैरल**ङ्कतं स्व**-प्रकाशानन्तानन्दतेजोज्यालाजालैरावृतम् । तदभ्यन्तरे चिन्मयानन्दासन-मुज्ज्वलम् । तदुपरि विभात्यखण्डानन्दतेजोमण्डलम् । तदभ्यन्तरसमासीनाः आनन्दसागरनित्यतृप्ताः शिवाद्वैतोपासकाः स्वात्मिलङ्कार्चकास्तिष्टन्ति । निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलाकारा आनन्दघनसागराः परमकैवल्यस्वरूपानन्त-गणाः परिसेवन्ते ॥

इति पश्चमावरणम्

षष्टावरणम्

परमचिद्विलाससमष्ट्याकारं निर्मलं निरवद्यं निराश्रयमतिनिर्मला-नन्तकोटिरविप्रकाशैकोज्ज्वलमनन्तोपनिषदर्थस्वरूपमखिलप्रमाणातीतं मनो-

कैवल्यानन्दरूपं परमानन्दलक्षणापरि-वाचामगोचरं नित्यमुक्तस्वरूपं च्छिन्नानन्तज्योतिः शाश्वतं शश्वद्विभाति । तद्भ्यन्तरसंस्थानेऽमितानन्द-चिद्रुपाचलमखण्डपरमानन्द्विशेषं बोधानन्दमहोज्ज्वलमनन्तचित्सागरकल्लो-लजालशिखराकारं नित्यमङ्गलमन्दिरमनन्तानन्दबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं चिदानन्दानन्तचित्सागरैः परिधीकृतं ब्रह्मसाक्षात्कारानु-प्रज्वलितं भवविशेषबोधसारतरानन्तप्राकारैः समुज्ज्विलसनन्तसहस्रकेवल्यानन्दवनोपः वनै: सुशोभितमनन्तानन्दविभृतिदिव्यतेज:पर्वतसमष्ट्याकारं स्वातमानन्दान्-भवविज्ञानघनरुद्राक्षकरूपतरुवनैरतिमङ्गलमनन्तानन्दं चित्सागरमथनोद्भूतरस्य -वाहैरलङ्कृतमद्वितीयं स्वयंप्रकाशमनिशं ब्रह्मानन्दासृतरसाम्भोनिधितर-प्रवाहैरतिमङ्गलं निरुपमनिरवद्यनित्यशुद्धबुद्धनिरतिशयतेंजोराशि-विशेषानन्तानन्दविमानजालावलिभिः समाकुलं क्रीडानन्तमण्टपविशेषैर्विशे-षितं बोधानन्दमयानन्तदिव्यतेजोराशिविशेषचैतन्यप्रासादैः परिवेष्टितमनन्त परमानन्दामृतरसाविधकल्लोलतरङ्गावलिभिर्दिव्यतेजोमयछत्रचामरध्वजपताका -वितानतोरणादिभिरलङ्कृतं परमानन्दव्यूहैर्नित्यं भुक्तैरभितस्ततं तच्चानन्त त्रह्म-तेजोमयबिल्वकल्पतरुवनैराकुलं वेदान्तसारभूतसिद्धान्तानन्तस्कन्वैर्विराजितं महावाक्यार्थस्वरूपानन्तशाखासमन्वितं सिचदानन्दस्वरूपानन्तानन्दपत्रेस्यु-मङ्गलमद्वितीयात्मचैतन्यवृन्तैः सुसंलग्नं विज्ञानघनमानन्दामृतकल्लोलानन्त-पुप्पैरलङ्कृतसखण्डानन्दाह्वादानन्तप्रवाहदिव्यसुगन्धैः समाकुलं निरतिशया-नन्दामृतसारसागरानन्तमकरन्दाकारं निश्शङ्कानन्दमोक्ष्माम्राज्यचिन्तामणि फलानन्तैर्विराजितं वाचामगोचरमनोन्मनानन्दाम्बुधिदिव्यतेजोमयज्वालाजाल दीपितात्यन्तोन्नतानन्तशिखराकारं शिवालयं शिवानन्दमयदिव्यनानालीला विग्रहविलासंविलसितानन्दाविर्भावचरित्रचित्रीऋतचित्रैरलङ्कृतं मुर्तिमद्भिः शिवधर्मानन्तोन्नतगोपुरद्वाराकारैरसंख्यैरावृतं शिवधर्मानन्दमूर्तिवृष्याविलिभः सुमङ्गलं शिवविज्ञानानन्दसागरतीर्थाकारं पुरतःस्थितानन्तदिव्यतीर्थानां निजमन्दिरं विज्ञानानन्दधनस्वरूपानन्तसोपानमण्डलमालयमध्यगतं स्वात्म-ज्योतिर्मयचिद्रूपवेदिकास्थानविशेषं तदुपिर चैतन्यशक्त्यालङ्कृतस्वात्मचैतन्य-कैलासेश्वरिक्षाकारं सुपूजितं तत्सिक्षधो शिवविज्ञानानन्दधनशैवधर्ममूर्तिमासाद्य वृषभाकृतिविराजितं शिवानन्दनन्दिसेनवाणरावणाद्यनन्तनानामय।नन्तानन्दमूर्तिमासाद्य गणेशकुमारनन्दिभृङ्गचण्डिरिटिकीर्तिमुखवीरभद्रभैरवमहा-कालशोभनन्दिसुनन्दनन्दिसेनवाणरावणाद्यनन्तनानागणपरूपमासाद्यानन्तग - णसेवितिश्वालयस्य समन्तात् स्वस्वस्थानं सुशोभितं बोधानन्दमयैरनन्त-नित्यमुक्तः परिसेवितं शुद्धवोधपरमानन्दाकारवनं सन्ततामृतपुष्पवृष्टिभिः परिवेष्टितं परमानन्दप्रवाहैरभिव्यातं मूर्तिमद्भः परममङ्गलैः परमकौतुका-परिच्छन्नानन्दसागराकारं क्रीडानन्दपर्वतैरभिशोभितं वाचामगोचरानन्दन्वस्रतेजोराशिमण्डलमखण्डतेजोमण्डलविशेषं दिव्यनानामङ्गलवाद्यैरलङ्कृतं प्रणवात्मकध्वन्याकारं विज्ञानघनस्वरूपमनन्तचिदादित्यसमष्टचाकारं शिवानद्वेतोपासका भजन्ते ॥

इति षष्टावरणम्

इति सिद्धान्तसारोपनिषत् समाप्ता

हेरम्बोपनिषत्

सह नाववतु इति—गान्तिः

अथातो हेरम्बोपनिषदं व्याख्यास्यामः । गौरी सा सर्वमङ्गला सर्वज्ञं परिसमेत्योवाच ।

> अधीहि भगवनात्मविद्यां प्रशस्तां यया जन्तुर्भुच्यते मायया च । यतो द: खाद्विमुक्तो याति लोकं परं शुअं केवलं सात्त्विकं च।। तां वे स होवाच महानुकम्पासिन्धुर्वन्धुर्भुवनस्य गोप्ता । श्रद्धस्वैतद्गोरि सर्वात्मना त्वं मा ते भूयः संशयोऽस्मिन् कदाचित्॥ हेरम्बतत्त्वे परमात्मसारे नो वै योगान्नैव तपोबलेन । नैवायुधप्रभावतो महेशि दग्धं पुरा त्रिपुरं दैवयोगात् ॥ ३ ॥ तस्यापि हेरम्बगुरोः प्रसादाद्यथा विरिश्चिगरुडो मुकुन्दः । देवस्य यस्यैव बलेन भूयः स्वं स्वं हितं प्राप्य सुखेन सर्वम् ॥ मोदन्ते स्वे स्वे पदे पुण्यलक्वे सर्वेदेवै: पूजनीयो गणेश:। प्रभुः प्रभूणामपि विघ्नराजः सिन्दूर्वर्णः पुरुषः पुराणः ॥ ५ ॥ लक्ष्मीसहायोऽद्वयकुञ्जराकृतिश्चतुर्भुजश्चन्द्रकलाकलापः । मायाशरीरो मधुरस्वभावस्तस्य ध्यानात् पूजनात्तत्त्वभावाः ॥ संसारपारं मुनयोऽपि यान्ति स वा ब्रह्मा स प्रजेशो हरिः सः । इन्द्रः स चन्द्रः परमः परात्मा स एव सर्वो भुवनस्य साक्षी ॥ स सर्वलोकस्य ग्रुभाग्रुभस्य तं वै ज्ञात्वा मृत्युमत्येति जन्तुः। नान्यः पन्था दुःखविमुक्तिहेतुः सर्वेषु भूतेषु गणेशमेकम् ॥८॥

बिकाय तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते स एवमास्थाय शरीरमेकम् ।

सायाययं मोहयतीव सर्वं स प्रत्यहं कुरुते कर्मकाले ॥ ९ ॥

स एव कर्माणि करोति देवो खेको गणेशो बहुधा निविष्टः ।

स पूजितः सन् सुमुखोऽमिभूखा दन्तीमुखोऽभीष्टमनन्तशक्तिः ॥

स वै बलं बिल्नामग्रगण्यः पुण्यः शरण्यः सकलस्य जन्तोः ।

तमेकदन्तं गजवक्तमीशं विज्ञाय दुःखान्तमुपैति सद्यः ॥ ११ ॥

लम्बोदरोऽहं पुरुषोत्तमोऽहं विज्ञान्तकोऽहं विजयात्मकोऽहम् ।

नागाननोऽहं नमतां सुसिद्धः स्कन्दाग्रगण्यो निखिलोऽहमस्मि ॥

न मेऽन्तरायो न च कर्मलोपो न पुण्यपापे मम तन्मयस्य ।

एवं विदित्वा गणनाथतत्त्वं निरन्तरायं निजबोधवीजम् ॥१३॥

क्षेमद्धरं सन्ततसोस्यहेतुं प्रयान्ति शुद्धं गणनाथतत्त्वम् ।

विद्यामिमां प्राप्य गौरी महेशादभीष्टसिद्धं समवाप सद्यः ।

पूज्या परा सा च जजाप मन्त्रं शम्भुं पर्ति प्राप्य मुदं द्वाष ॥

य इमां हेरम्बोपनिषदमधीते स सर्वान् कामान् रूभते । स सर्वपापैर्मुक्तो भवति । स सर्वे वेंदैर्ज्ञातो भवति । स सर्वेदेवैः पूजितो भवति । स सर्ववेदपारायणफलं रूभते । स गणेशसायुज्यमवाप्नोति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति हेरम्बोपनिषत् समाप्ता

५. शाक्त-उपनिषदः

अह्ना-डवानेषत्

दिव्यानि धत्ते धत्ते दिव्यानि दिव्यानि धत्ते। धत्त इलल इलले वरुणः। धत्ते धत्त इलले। धत्त इति धत्ते। इलले वरुणो वरुण इलल इलले वरुणः। इलल इति इलले। वरुणो राजा राजा वरुणो वरुणो राजा। राजा पुनर्दुः। पुनर्दुरिति पुनः दुः। ह्वयामि मित्रो मित्रो ह्वयामि ह्वयामि मित्रः। मित्र इलामिलां मित्रो मित्रो ह्वयामि मित्रः। मित्र इलामिलां मित्रो मित्र इलाम्। इलामिलल इलल इलामिलामिलले। इलल इलामिलामिलल इलल इलाम्। इलां वरुणो वरुण इलामिलां वरुणः। वरुणो मित्रो मित्रो वरुणो वरुणो मित्रः। मित्रस्तेजन्स्कामभे मित्रो मित्रस्तेजन्स्कामः। तेजस्काम इति तेजः कामः॥१॥ अयामिलामिलामयामयामिलाम्। इलां त्वं त्वमिलामिलां त्वम्। त्वमर्यमम्पर्यमं वरुणः। वरुणो वरुणो वरुणोऽर्यममर्यमं वरुणः। वरुणो द्यम द्यम द्यम वरुणो वरुणो द्यम। द्यम दीर्घायुर्दीर्घायुर्द्धम द्यम द्यम द्यायायुर्वहते वहते दीर्घायुर्दीर्घायुर्द्धम द्यम द्यायायुः। दीर्घायुर्वहते वहते दीर्घायुर्दीर्घायुर्दि दीर्घ आयुः। वहते सुयः सुयो वहते वहते सुयः। सुय इति सुयः। होतारमिन्द्र इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्रः। इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्रः इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्रः। इन्द्रो होतारं होतारमिन्द्र इन्द्रो

होतारम् । इन्द्रो महासुरेन्द्रो महासुरेन्द्र इन्द्र इन्द्रो महासुरेन्द्रः । यहासुरेन्द्रः सप्तऋषयः सप्तऋषयो महासुरेन्द्रो महासुरेन्द्रः सप्तऋषयः । सप्तऋषयः सं सं सप्तऋषयः सप्तऋषयः सम् । सप्तऋषयः इति सप्त ऋषयः । सं तुष्ट तुष्ट सं सं तुष्ट । तुष्ट देवा देवास्तुष्ट तुष्ट देवाः । देवा इति देवाः ॥ २ ॥

इलामिलामिलामिलामिलाम् । इलेलाकबहींऽकबई इलेलाकबहींऽकबई इलेलाकबहींऽकबई इलेलाकबहींऽकबई इलेलाकबहींऽकबई: । अकबहींऽस्म्यक-बहींऽस्म्यकबहींऽस्म्यकबहींऽस्म्यकबहींऽस्मि ॥ ३ ॥

इति अला-उपनिषत् समाप्ता

आथर्वणदितीयोपनिषत्

हीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्धचादिदशकं तस्यै वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती लिंघमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती महिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशित्वसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती भुक्तिसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वे शिवा भगवती इच्छा-सिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वे शिवा भगवती प्राप्तिसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वे शिवा भगवती प्राप्तिसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वे शिवा भगवती प्राप्तिसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वे शिवा भगवती प्रकामसिद्धिस्तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वे शिवा भगवती प्रकामसिद्धिस्तस्यै वे नमो

नमः। ही श्री या वै शिवा भगवती बाह्यचन्नं तस्वै वै नमो नयः। हीं भी या वै शिवा भगवती आं बार्धाशक्तिस्तस्ये वै नमो वयः। हीं भी या वै शिवा भगवती ई माहेश्वरीशक्तिस्तस्ये वे नमो वयः । ही श्री या वे शिवा अगवती ऊं कोमारीशक्तिस्तस्ये वे नमो नमः। ही श्री या वै शिवा अगवती ऋं वैष्णवीशक्तिस्तस्ये वे नमो नमः । हीं भीं या वे श्चिवा अगवती ऌं वाराहीशक्तिस्तस्ये वै नमो नमः । हीं श्री वा वे शिवा अगवती ऐं इन्द्राणीशक्तिस्तस्ये वे नमो नमः । हीं श्री या वे शिवा सगवती औं चामुण्डाशक्तिस्तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा अगवती महालक्ष्मीशक्तिस्तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा अगवती मुद्रादशकं तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा भगवती हों सर्वसंक्षोभिणीसुद्रा तस्ये वे नभी नमः । हीं श्री या वे शिवा मगवती हीं दाविणीयुदा तस्ये वे नमो नम:। हीं श्री या वे शिवा भगवती क्री सर्वाकर्षिणीमुद्रा तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा भगवती ब्लं सर्ववकाक्ररीमुद्धा तस्ये वे नमो नम:। हीं श्री या वे शिवा भगवती सः उन्मादिनीमुद्रा तस्यै वै नमी नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती को महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा अगवती ह्स्ख्र्रें खेचरीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती ह्सों बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । ह्याँ श्री या वै शिवा भगवती ऐं सर्वयोनि-युद्धा तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती ह्सों त्रिस्वण्ड-मुद्रा तस्ये वे नमो नमः । हीं श्री या वे शिवा सगयती प्रथमचकेश्वरी विपुरा देवी तस्ये वे नमो नमः । ही श्री या वे शिवा अववती अणिमादि-सिदिस्तस्ये वे नमो नमः । हीं श्री या वे शिवा भगवती सर्वसंक्षोभियीश्रदा तस्ये वे नमो नमः । द्वीं श्री या वे शिया भगवती कामाकविण्याविजेडसर्

तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामाकर्षिणी तस्यै वै नयो नयः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती बुद्धचाकर्षिणी तस्यै वै नयो नम: । हीं श्री या वै शिवा भगवती अहन्नाराकविणी तस्ये वै बसो नम: । हीं श्री या वै शिवा भगवती शब्दाकर्षिणी तस्ये वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती स्पर्शाकिषिणी तस्यै वै नमी नमः । ही श्री या वै शिवा अगवती रूपाकर्षिणी तस्ये वे नमो नम: । ही श्री या शिवा भगवती रसाकर्षिणी तस्ये वे नमो नमः । ही श्री या वे शिवा भगवती गन्धाकर्षिणी तस्ये वै बसो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती चित्ताकर्षिणी तस्ये वै नमा नमः । हीं श्री या वै शिवा अमवती धैर्याकर्षिणी तस्यै वै नमो बमः । डीं श्री या वै शिवा भगवती स्मृत्याकर्षिणी तस्ये वे नमो नमः । हीं श्री या वे क्रिका अरावती नामाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा स्वावती बीजाकर्षिणी तस्ये वे नमो नमः । हीं श्री या वे शिवा थामनी आत्याकर्षिणी तस्ये वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती अञ्चलाक किंगी तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा अगवती श्वरीराकर्षिणी तस्ये वे नमो नमः । हीं श्रीं या वे शिवा भगवती द्वितीय-बक्रेश्वरी तस्ये वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती ऐं क्रीं सीः त्रिपुरेश्वरी तस्ये वे नमो नमः । हीं श्री या वे शिवा भगवती दीं. सर्वविद्राविणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती अनक्क सुमाष्टकं तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा भगवती कं खंगं घं डं अनक्रकुसुमा तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा क्याबती चं छं जं झं जं अनक्कमेखला तस्ये वे नमो नम: । ही श्री या वे शिया भगवती टं ठं डं ढं णं अनक्समदना तस्ये वै नमो नमः । इति श्री बा वै शिवा भगवती तं थं दं धं नं अनक्रमदनातुरा तस्यै वै नमो नमः।

हीं श्री या वै शिवा भगवती पं फं वं भं मं अनङ्गरेखा तस्ये वै नमो नम:। हीं श्री या वै शिवा अगवती यं रं छं वं अनङ्गवेगा तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती शं एं सं हं अनङ्गाङ्कुशा तस्ये वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती लं क्षं अनक्तमालिनी तस्ये वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती हीं हीं सीः तृतीयचकेश्वरी त्रिपुर-खुन्दरी देवी तस्यै वै नमो नम:। हीं श्री या वै शिवा भगवती हीं सर्वाकर्षिणीसुद्धा तल्ये वे नमो नमः । हीं श्रीं या वे शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशकं तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वे शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वविद्वाविणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाकर्षिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाह्वादिनीशक्तिस्तस्ये वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंमो-हिनीशक्तिस्तस्य वे नमो नमः । हीं श्रीं या वे शिवा भगवती सर्वस्तंभिनी-शक्तिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वज़ं सिणीशक्ति-स्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वरञ्जनी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वे शिवा भगवती सर्ववशङ्करी तस्यै वे नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वोन्मादिनी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वार्थसाधकी तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वसंपत्तिपूरणी तस्ये वे नमो नमः । हीं श्रीं या वे शिवा भगवती सर्वमन्त्रमयी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वद्रन्द्रक्षयद्वरी देवी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती हैं क्लीं सौ: त्रिपुरवासिनी देवी तस्ये वे नमो नम: । हीं श्रीं या वे शिवा भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा भगवती व्हं सर्ववसाहरीहुद्धाः तस्ये वे नमो नमः । ही श्री या वे शिवा सगवसी स्वितिद्विभवादिवसकं तस्ये वे नमो नयः। ही श्री या वे किया अगयती सर्वसिद्धिप्रदा तस्ये वे नमो नमः। ही श्री या वे शिवा अगवती सर्व-तंपलादा तस्य वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा यगवती सर्वत्रियहरी तारी वे नयो नय: । हीं श्री या वे शिवा यगवती सर्वमङ्गलकारिणी तस्ये वै नमो नम: । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वकामप्रदा तस्ये वै वसो नव: । हीं भी या वे शिवा भगवती सर्वदु:खविमोचनी तस्ये वे नमो न्य: । हीं श्री या वे शिवा भगवती सर्वमृत्युप्रशमनी तस्ये वे नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वविज्ञनिवारणी तस्य वै नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा अगवती सर्वाङ्गसुन्दरी तस्ये वे नमो नमः। ही श्री या वे शिवा अगवती सर्वसीभाग्यदायिनी तस्ये वै नमो नमः। ही श्री या वै शिवा भगवती इसैं हस्ली हसीः पश्चमचक्रेश्वरी त्रिपुराश्रीस्तस्ये वै नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा अगुवती वशित्वसिद्धिस्तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती उन्मादिनीसुद्रा तस्ये वै नमो नमः। ही श्री या वै शिवा अग्रवती सर्वज्ञादिदशकं तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वज्ञशक्तिस्तस्य वे नमो नमः । इति श्री या वे शिवा भगवती सर्वशक्तिदेवी तस्य व नमो नमः । हीं श्री या वे शिवा भगवती सर्वेश्वर्यप्रदायिनी तस्ये वै नयो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वज्ञानमयी तस्ये वै नमो नमः । हीं श्री या वे शिवा भगवती सर्वव्याधिविनाशिनी तस्ये वे नमो नमः। ही श्री या वै शिवा भगवती सर्वाधारस्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । इी श्री या वै शिवा भगवती सर्वपापहरा तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा अगवती सर्वानन्द्मयी तस्यै वै नमो नमः। डी श्री या वै शिवा भगवती सर्वरक्षास्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती

T

ती

ती

बा

ती

सर्वेप्सितफलपदा तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती हीं क्कीं ब्लें त्रिपुरामालिनी नित्या तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा अगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती कों महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती विशन्याद्य-ष्टकं तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती अं आं ई ई उं ऊं ऋं ऋं लं लं एं ऐं ओं ओं अं अः विश्वनी वाग्वादिनी देवता तस्ये वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती कं खंगं घं इं कलहीं कामेश्वरी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती चं छं जं झं वं क्कीं मोदिनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नम: । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती टं ठं डं ढं णं ह्ॡं विमला वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती तं थं दं धं नं अरुणा वाग्देवता तस्यै वै नमो नम: । हीं श्री या वै शिवा भगवती पं फं बं भं मं हसलव्यूं जियनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती यं रं लं वं हरम्यों सर्वेश्वरी तस्ये वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती शंषं संहं क्ष्वीं कौलिनी तस्यै वै नमो नमः! हीं श्री या वै शिवा भगवती हीं श्री सौ: सप्तमचक्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती त्रिपुरा सिद्धा नित्या तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती भुक्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती हस्ख्कें खेचरी तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लं सः बाणस्तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या वै शिवा भगवती धं थं सं मोहनकोदण्ड-रूपिणी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती आं हीं पाशकापिणी तस्ये वे नमो नमः। हीं श्री या वे शिवा भगवती कों अङ्कुञ्चरूपिणी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती इसें

ह्स्र्ठी ह्सौः त्रिपुरजननी तस्यै वै नमो नमः। ही श्री या वै शिवा भगवती इच्छासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती इसों बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती कामेश्वर्यादिदेवतात्रयं तस्यै वै नमो नमः । हीं श्रीं या वै शिवा भगवती वाग्भवकूटे कामेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती कामराजकूटे वज्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः । ही श्री या वै शिवा भगवती शक्तिकूटे भगमालिनी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती हसकलरडें हसकलरडां हसकलरडें तस्यै वै नमो नमः। हीं श्री या बै शिवा भगवती प्राप्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती ऐं योनिमुद्रा तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती ओङ्कारपीठदेवता तस्यै वै नमो नमः। हीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वात्मकेन सर्वेश्वरी देवी तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती त्रिपुर-सुन्दरी त्रिपुरवासिनी त्रिपुराश्रीस्त्रिपुरमालिनी त्रिपुरासिद्धिस्त्रिपुरजन्नी त्रिपुरभैरंवी ताभ्यो वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती सर्वकाम-सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः । हीं श्री या वै शिवा भगवती हसौं त्रिखण्डमुद्रा तस्यै वै नमो नमः।

ब्रह्मब्रह्मविदित्यतैर्मन्त्रैर्भगवर्ती यजेत् ।

इत्याह भगवान् । ततो देवी स्वात्मानं दर्शयति । तस्माद्य एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति । स सर्वे पश्यति । सोऽमृतत्वं च गच्छति । य एवं वेद । इति महोपनिषत् ॥

इत्यायर्वणद्वितीयोपनिषत् समाप्ता

कामराजकी कितो जारोपनिषत्

अधोबाच कामराजय् । तदुपासनात् कुश्रुकं लभेत् । श्रियं लभेत् ।

गुवी वाणी लभेत् । सर्वयुवतीनां मियो भवेत् । प्रथमं कामस्ततः शिक्तस्तदनु तुरीयं द्वावेतौ परैतानि पञ्चाक्षराणि भवन्ति । ततः श्रून्यं च द्वौ दिवाकरहरो । तदनु गोत्रभृन्माया । एतानि षडक्षराणि भवन्ति । वतन्ति । तत्यः व्यव्यव्यः प्रजापतिशकौ । ततो माया । एतानि चतुरक्षराणि भवन्ति । आवं वाम्भवं द्वितीयं कामराजं नृतीयं शक्तिवीजं शुक्तं तरुणदिवाकराभं शशिकान्तं कमेण स्मरेत् । कफारादित्वात्कीलिता । कोटिजपात् सिद्धिनं जायते । यदा यन्मथकलादिभवति तदा निष्कीलिता भवेत् । सिद्धिदा भवेत् । सा वीर्यवती भवेत् । त्रेलोक्यं वशमानयेत् । पूजनाहौर्भाग्यनाशो भवेत् । जपात् सिद्धीश्वरो भवेत् । इति शिवम् ।

अथाद्यं शास्थवं द्वितीयं शाक्तं चेति गुरुमुखात् ज्ञातव्यम् । अन्यथा शापमाप्नुयात् । उपासना द्विविधा । शास्थवं शाक्तं चेति । एवं लोप-नालोपा । प्रथमं शंभुचन्द्रो । तदनु दिवाकरेन्द्रो । ततः पराबीजं वास्थवम् । तत कामराजं शिवचन्द्रकामशस्भुहरयः । पराबीजं शक्तिः । कामपरामध्ये देवराजमेतच्छक्तिकृटम् । एतेन पञ्चदशाक्षराणि भवन्ति । शस्भुप्रधानत्वाच्छा स्थवम् । पूर्णोऽहं शिवोऽहमद्वेतरूपोऽहं नित्यानन्दरूपोऽहं इति स्मरेत् । नापि पूजायां त्रतिनयमः । सर्वदा जपं चरत् । विनोदतः कामिनीमध्ये कामिनीर्हृष्ट्वा च सदानन्दरूपो भवेत् । दिव्याङ्गरागैदेहं भूषयेत सुगन्धमाल्याम्ब-रालङ्काराद्येः । मांसाद्येः शुद्धेः सुमधुरैभोजयेत् । मपञ्चकेन पूजा कार्या । सदा कोलिको भवेत् । कुलाचारात् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । एकाकी शक्ति-यक्तो भवेत् । मादनं भुक्त्वा शक्तिभुग्भवेत् । शक्तिचकं पूज्येत् । यक्ते

भोगेन मोक्षमाप्नुयात् । शक्तिहर्षोत्पादनाच्छक्तिः प्रीता भवति । इति शिवम् ॥ २ ॥

अथ वकुलैरर्चयेत् । रक्तपुष्पैरर्चयेत् । तदमावे जलैस्तदभावे मानसीं भक्तिमाचरेत् । इति शिवम् ॥ ३ ॥

इब्साथर्नणशास्त्रामां कामराजकीलितोद्धारोपनिषत् समाप्ता

कालिकोपनिषत्

ॐ अथ हैनं ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोति । सुभगां त्रिगुणितां मुक्तासुभगां कामरेफेन्दिरासमस्तरूपिणीमेतानि त्रिगुणितानि तदनु कूर्च- बीजं व्योमषष्ठस्वरां विन्दुमेठनरूपां तद्वयं मायाद्वयं दक्षिणे काठिके चेत्य- भिमुखगतां तदनु वीजसप्तकमुचार्य बृहद्भानुजायामुच्चरेत् । स तु शिवमयो भवेत् । सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । गतिस्तस्यास्तीति । नान्यस्य गतिरस्तीति । स तु वागीश्वरः । स तु नारीश्वरः । स तु देवेश्वरः । स तु सर्वश्वरः । अभिनवजठदसङ्काशा घनस्तनी कुटिठदंष्ट्रा शवासना काठिका ध्येया । त्रिकोणं पञ्चकोणं नवकोणं पद्मम् । तस्मिन् देवीं सर्वाङ्गेऽभ्यर्च्य तदिदं सर्वाङ्गं ओ काठी कपाठिनी कुछा कुरुकुछा विरोधिनी विप्रचित्ता उम्रा उम्रप्तभा दीमा नीठा घना बठाका मात्रा मुद्राऽमिता चैव पञ्चदशकोणगाः । ब्राह्मी नारायणी माहेश्वरी कोमारी अपराजिता वाराही नारसिंहिका चेत्यष्टपत्रगाः । षोडशस्वर- भेदेन प्रथमेन मन्त्रविभागः । तन्मूठेनावाहनं तेनैव प्रजनम् । य एवं मन्तराजं नियमेन वा ठक्षमावर्तयित स पाप्मानं हन्ति । स ब्रह्मत्वं भजित । सः

अमृत्सवं मजति । स आयुरारोस्क्रीश्वर्यं मजति । सदा पद्ममकारेण पूज्येत् । सदा गुरुभक्तं भवेत् । सदा देवभक्तो भवेत् । धर्मिद्धतां पृष्टिमहत्त्वावं विमा रुभन्ते । मत्त्वजापिनो बात्मा विचापपूरितो मवति । स जीवन्युक्तो भवति । स सर्वशाखां जानाति । स सर्वपुण्यकारी भवति । स सर्वशाखां जानाति । स सर्वपुण्यकारी भवति । स सर्वशाखां स्वयं विमा एवाहिमित्यणिमादिविभृतीनामीश्वरः कालिकां रुभत् ।

आवयोः पात्रभ्तः सन् शुक्रती त्यक्तक्ष्यपः । जीवन्युक्तः स विज्ञेयो यस्मै लब्धा हि दक्षिणा ॥

दशांशं होमयेचदनु तर्पयत् । अथ हैके यज्ञान्कामानद्वेतज्ञानादीननिरुद्धसरस्वतीति । अध हैवः कालिकामनुजाणी यः सदा ग्रद्धात्मा
श्वाववैराम्ययुक्तः श्वान्थवीदीक्षासु रक्तः शाक्तासु । यदि वा व्रश्वचारी रात्रो
नगः सर्वदा मधुनाऽशक्तो मनसा जपपूजादिनियम्बान् । योषितिमकरो
भगोदकेन तर्पणं तेनैव पूजनं कुर्यात् । सर्वदा कालिकार्क्षण्यात्मानं विभावयत् ।
स सर्वदा योषिदासक्तो भवेत् । स सर्वहत्यां तरित तेन मधुदानेन । अथ
पद्धमकारेण सर्वमायादिविद्यां पग्रुधनधान्यं सर्वेशत्यं च कवित्वं च । नान्यः
परमः पन्था विद्यतं मोक्षाय ज्ञानाय धर्माधर्माय । तस्तर्व भूतं भव्यं
यक्तिश्चिद्दश्यमानं स्थावरजङ्गमं तत्सर्व कालिकातन्त्रे ओतं प्रोतं वेद । य
एवं मनुजापी स पाप्मानं तरित । स भ्रूणहत्या तरित । मोऽगम्यागमनं
तरित । स सर्वसुखमाग्रोति । स सर्व ज्ञानाति । स सर्वसंन्यासी भवति । स
विरक्तो भवति । स सर्ववेदाध्यायी भवति । स सर्वमन्द्रजाणी भवति । स
सर्वशास्त्रवेत्ता भवति । स सर्वज्ञानकारी भवति । स आवयोर्मित्रभूतो
भवति । इत्याह भगवान् शिवः । निर्विकल्पेन मनसा स बन्द्यो भवति ।

अथ हैनां.

मूलाधारे स्मरेद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् । शिखा आनीय तस्यामेरथ तूर्ध्वं व्यवस्थिता ॥ नीलतोयदमध्यस्था विद्युक्लेखेव भास्वरा । नीवारश्कवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ॥ तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः । स ब्रह्मा स शिवः मेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट् ॥ स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽभिः स चन्द्रमाः । इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

महापातकेभ्यः पूतो भूत्वा सर्वमन्त्रसिद्धिं कृत्वा भैरवो भवेत् । महा-कालभैरवोऽस्य ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः (उष्णिक् छन्दः) कालिका देवता । हीं बीजं हूं शक्तिः कीं कीलकं अनिरुद्धसरस्वती देवता । कवित्वे पाण्डित्यार्थे (धर्मार्थकाममोक्षार्थे) जपे विनियोगः । इत्येवमृषिच्छन्दोदैवतं ज्ञात्वा मन्त्र-साफल्यमञ्जते । अथविवद्यां प्रथममेकं द्वयं त्रयं वा नामद्वयसंपुटितं कृत्वा योजयेत् । गतिस्तस्यास्तीति । नान्यस्य गतिरस्तीति । ॐ सत्यम् । ॐ तत्सत् ।

अथ हैनं गुरुं परितोप्येनं मन्त्रराजं गृह्णीयात् । मन्त्रराजं गुरुस्तमिप शिष्याय सत्कुलीनाय विद्याभक्ताय सुवेषां स्त्रियं स्पृष्ट्वा स्वयं निशायां निरुपद्भवः परिपूज्य एकाकी शिवगेहे लक्षं तदर्धं वा जिपत्वा दद्यात् । ॐ ॐ ॐ सत्यं सत्यं सत्यम् । नान्यप्रकारेण सिद्धिर्भवति । अथाह वै कालि-कामनोस्तारामनोस्त्रिपुरामनोः सर्वदुर्गामनोर्वा स्वरूपसिद्धिरेविमिति शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे कालिकोपनिषत् समाप्ता

कालीमेधादीक्षितोपनिषत्

अथाह वै देवानां पर्ली भजते । तस्योपासकोऽन्यां गच्छन् ॐ अंग्रेनां मेधादीक्षितरूपिणीं भावयेत्। स शिवो भवेत्। स कालीक्यो अवेत् । सोऽयं मेधास्पर्शमणिकाली दीक्षयेत् । तत्रश्चिन्तामणिकाली दीक्षयत् । ततः सिद्धकाल्यधिकारी भवेत् । ततो विद्याराज्ञी जपेत् । ततः कामकलाकालीं परारूपिणीं जपेत् । ततश्चरणदीक्षारूपिणीं हंसकाली बजेत्। रक्तशुक्कमिश्रनिर्वाणरूपिणीं यजेत्। सर्वनिर्वाणदीक्षितो अवेत्। ततः शाम्भवीदीक्षितो भवेत् । गुह्यकाल्यधिष्ठितो भवेत् । शिवो भवेत् । स परारूपो भवेत् । परात् पररूपो भवेत् । परात् परातीतरूपो भवेत् । चित्परारूपो भवेत् । चित्परात् परारूपो भवेत् । चित्परात् परातीतरूपो भवेत् । ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवमहाकालचित्पराम्बारूपो भवेत् । स ब्रह्मलं गच्छति । मेधादीक्षां लभेत् । मेधादीक्षातः परा दीक्षा न विद्यत इत्याह भगवान् शिवः । स्पर्शविद्यया देहगुद्धिर्भवेत् । ततश्चिन्तामणिविद्याधिकारी विद्याराज्ञीं लमत्। विद्याराज्यिकारी तु षोढां जपेत्। तुर्याषोढािषकारी कामकलां जपेत्। कामकलाधिकारी चरणरूपिणीं जपेत्। हंसदीक्षितो भवेत् । चरणाधिकारी षट्छाम्भवसंपन्नो भवेत् । गुझकाल्यधिष्ठितो भवेत् । ततो मेधां चरेत् । जीवको हि भुक्तत्वं गच्छति । भुक्रीभूत्वा धर् बकाणि निर्मिन्द्यात् । ततः परागभुग्भवेत् । परकायप्रवेशवान् वयस्त्रीर्य चरेत्। कामरूपत्वं गच्छति। षष्टिसिद्धीश्वरो भवेदिति शिवप्रोक्तं वेद ॥

इत्याथर्वणे सीआग्यकाणे कालीवेधादीक्षितोपनिषत् समामा

गायत्रीरहस्योपनिषत्

ॐ स्वस्ति सिद्धम् । ॐ नमो ब्रह्मणे । ॐ नमस्कृत्य याज्ञवल्नयः श्रिषः स्वयंभुवं परिपृच्छिति । हे ब्रह्मन् गायत्र्या उत्पित्तं श्रोतुमिच्छामि । अथातो विसष्टः स्वयंभुवं परिपृच्छिति । यो ब्रह्मा स ब्रह्मोवाच । ब्रह्मज्ञानोत्पत्तेः प्रकृतिं व्याख्यास्यामः । को नाम स्वयंभूः पुरुष इति । तेनाङ्गुलीमध्यमानात् सिललमभवत् । सिललात् फेनमभवत् । फेनाह्युहुदमभवत् । बुहुदादण्डमभवत् । अण्डाह्मह्माभवत् । ब्रह्मणो वायुरभवत् । वायोरिमरभवत् । अमेरोङ्कारोऽभवत् । ओङ्काराह्चचाहृतिरभवत् । व्याहृत्याः गायत्र्यभवत् । गायत्र्याः सावित्र्यभवत् । सावित्र्यः सर्वे लोका अभवन् । सर्वेभ्यो लोकेभ्यः सर्वे प्राणिनोऽभवन् ।

अथातो गायती व्याहृतयश्च प्रवर्तन्ते। का च गायत्री काश्च व्याहृतयः। किं भूः किं भुवः किं सुवः किं महः किं जनः किं तपः किं सत्यं किं तत् किं सिवतुः किं वरेण्यं किं भर्गः किं देवस्य किं धीमिष्ट किं धियः किं यः किं नः किं प्रचोदयात्। ॐ भूरिति भुवो लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षलोकः। स्वरिति स्वर्गलोकः। मह इति महर्लोकः। जन इति जनोलोकः। तप इति तपोलोकः। सत्यमिति सत्यलोकः। तदिति तदसौ तेजोमयं तेजो ग्रिदेवता। सिवतुरिति सिवता सावित्रमादित्यो वै। वरेण्यमित्यत्र प्रजापतिः। भर्ग इत्यापो वै भर्गः। देवस्य इतीन्द्रो देवो द्योतत इति स इन्द्रस्तस्मात् सर्वपुरुषो नाम रुदः। धीमहीत्यन्तरात्मा। धिय इत्यन्तरात्मा परः। य इति सदाशिवपुरुषः। नो इत्यस्माकं स्वधमें। प्रचोदयादिति प्रचोदितकाम इमान् लोकान् प्रत्याश्रयते यः परो

भर्म इत्येषा गायत्री । सा च किंगोत्रा कत्यक्षरा कत्तिवादा । कति कुक्षय:। कानि शीर्षाणि । सांख्यायनगोत्रा सा चतुर्विशत्यक्षरा गायत्री त्रिपादा चतुष्पादा । पुनस्तस्याध्वत्वारः पादाः षट् कुक्षिकाः पञ्च शीर्षाणि भवन्ति । के च पादाः काश्च कुक्षयः कानि शीर्षाणि । ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो भवति । यजुर्वेदो द्वितीयः पादः । सामवेदस्तृतीयः पादः । अधर्ववेदश्वतुर्धः पादः । पूर्वा दिक् प्रथमा कुक्षिभेवति । दक्षिणा द्वितीया कुक्षिभेवति । पश्चिमा तृतीया कुक्षिर्भवति । उत्तरा चतुर्थी कुक्षिर्भवति । ऊर्ध्व पश्चमी कुक्षिर्मवति । अधः षष्ठी कुक्षिर्भवति । व्याकरणोऽस्याः मधमः शीर्षो सवति । शिक्षा द्वितीयः । कल्पस्तृतीयः । निरुक्तश्चतुर्धः । ज्योतिषामयनिर्वित पश्चम:। का दिक् को वर्ण: किसायतनं क: स्वर: कि छक्षणं कान्यक्षर-दैवतानि क ऋषयः कानि छन्दांसि काः शक्तयः कानि तस्वानि के नावयवाः । पूर्वायां भवतु गायत्री । मध्यमायां भवतु सावित्री । पश्चिमायां भवतु सरस्वती । रक्ता गायत्री । श्वेता सावित्री । कृष्णा सरस्वर्ता । पृथिव्यन्तरिक्षं चौरायतनानि । अकारोकारमकाररूपोदात्तादिस्वरात्मिका । पूर्वा सन्ध्या हंसवाहिनी बाज्ञी । मध्यमा वृषभवाहिनी माहेश्वरी । पियना गरुडवाहिनी वैप्णवी। पूर्वाह्यकालिका सन्ध्या गायत्री कुमारी रक्ता रक्ताजी रक्तवासिनी रक्तगन्धमाल्यानुलेपनी पाशाङ्कुशाक्षमालाकमण्डलुकर-हस्ता हंसारूढा ब्रह्मदैवत्या ऋग्वेदसहिता आदित्यपथगामिनी भूमण्डरू-वासिनी । मध्याहकालिका सन्ध्या सावित्री युवती श्वेताङ्गी श्वेतवासिनी श्वेतगन्धमाल्यानुलेपनी त्रिशूलडमरुहस्ता वृषमारूढा रुद्रदेवत्या यजुर्वेद-सहिता आदित्यपथगामिनी अुवोलोके न्यवस्थिता। सायं सन्ध्या सरस्वती वृद्धां कृष्णाङ्गी कृष्णवासिनी कृष्णगन्धमाल्यानुलेपना शङ्खन्यकगदामयहस्ता गुरुहारूढा विष्णुदैवत्या सामवेदसहिता आदित्यपथगामिनी स्वर्गकोकव्यव-

स्थिता । अग्रिवायुसूर्यरूपाऽऽहक्नीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निरूपा ऋग्यजुःसाम-रूपा भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतिरूपा पातर्मध्याहृतृतीयसवनात्मिका सत्त्व-रजस्तमोगुणात्मिका जायत्स्वप्रसुषुप्तरूपा वसुरुद्रादित्यरूपा गायली-विष्टुब्जगतीरूपा ब्रह्मशङ्करविप्णुरूपेच्छाज्ञानिकयाशक्तिरूपा स्वराद्विराड्ब-षड्बक्षरूपेति । प्रथममाग्नेयं द्वितीयं प्राजापत्यं तृतीयं सौम्यं चतुर्थमीशानं ण्यासमादित्यं वष्टं गाईपत्यं सप्तमं मैत्रमष्टमं भगदैवतं नवममार्थमणं द्शमं साबित्रमेकादशं त्वाष्ट्रं द्वौदशं पौष्णं त्रयोदशमैन्द्रामं चतुर्दशं वायव्यं पञ्चदशं बामदेवं वोडशं मैत्राबरूणं सप्तदशं आतृब्यमष्टादशं दैण्णवमेको-नविशं वामनं विशं वैश्वदेवमकविशं रोदं द्वाविशं कोवेरं त्रयोविशमाश्विनं चतुर्विशं ब्राह्ममिति प्रत्यक्षरदैवतानि । प्रथमं वासिष्टं द्वितीयं भारद्वाजं तृतीयं गार्स्व बतुर्थमोपमन्यवं पश्चमं भागवं षष्टं शाण्डिल्यं सप्तमं लोहितम-ष्टमं वैष्णवं नवमं शातातपं दशमं सनत्कुमारमेकादशं वेदव्यासं द्वादशं गुकं तयोदशं पाराशयं चतुर्दशं पौण्ड्कं पश्चदशं कतुं पोडशं दासं सप्त-दशं काञ्यपमष्टादशमात्रेयमेकोनविंशमगस्त्यं विंशमौदालकमेकविंशमाहिरसं द्वाविशं नामिकेतुं बयोविशं मौद्रल्यं चतुर्विशमाङ्गिरसं वैश्वामित्रमिति प्रत्यक्षराणामृत्यो अवन्ति । गायत्रीतिषुठजगत्यनुष्टुप्पङ्किर्वृहत्युष्णिगदिति-रिति त्रिरावृत्तेन छन्दांसि प्रतिपाचन्ते । प्रहादिनी प्रज्ञा विश्वसदा विलासिनी प्रमा शान्ता मा कान्तिः स्पर्शा दुर्गा सरस्वती विस्तपा विशालाक्षी शालिनी व्यापिनी विमला तमोऽपहारिणी सूक्ष्मावयवा पद्मालया विरजा विश्वरूपा भद्रा कृपा सर्वतोमुखीति चतुर्विशतिशत्त्रस्यो निगचन्ते । षृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशगन्धरसरूपस्पर्शशब्दवाक्यानि पादपायूपस्थत्वक्चक्षः-श्रोत्रजिह्वात्राणमनोवुद्धचहङ्कारचित्तज्ञानानीति प्रत्यक्षराणां तत्त्वानि प्रतीयन्ते । चम्पकातसीकुङ्कुमपिङ्गलेन्द्रनीलाग्निप्रभोद्यत्सूर्यविद्युत्तारकसरोजगौरमरकतशुङ्क

कुन्देन्द्रश्रञ्जपाण्ड्रनेसनीलोखलचन्दनागुरुकस्तूरीगोरोचनघनसारसिक्सं प्रत्य-क्षरमनुस्मृत्य समस्तपातकोपपातकमहापातकागम्यागमनगोहत्याम्बह्हत्याभ्रण-हत्यानीरहत्यापुरुषहत्याऽऽजन्मकृतहत्यास्त्रीहत्यागुरुहत्यापितृहत्याप्राणहत्याच -राचग्हत्याऽभक्ष्यभक्षणप्रतिम्रहस्वकर्मविच्लेदनस्वाम्यातिहीनकर्मकरणपरधनाप-हरणरुद्धान्त्रभोजनरात्रुमारणचण्डालीगमनादिसमस्तपापहरणार्थं संस्मरेत् ।

मूर्धा ब्रह्मा शिखान्तो विष्णुर्ललाटं रुद्धश्रुषी चन्द्रादित्वी कर्णो शुक्रबृहस्पती नाक्षापुटे अधिनो दन्तोष्ठाखुम सन्ध्ये मुखं मस्तः स्तनो वस्वादयो इदयं पर्जन्य उदरमाकाको नाम्सिक्षः कटिरिन्द्राग्नी जधनं प्राजापत्यमूक कैलासमूलं जानुनी विश्वेदेवी जङ्घे शिशिरः गुल्फानि पृथिवीवनस्पत्यादीनि नखानि महती अस्थीनि नवग्रहा असृकेतुर्मासमृतुसन्धयः कालद्वयास्फालनं संबत्सरो निमेषोऽहोरात्रमिति वास्वेवी गायत्री शरणमहं प्रपद्ये।

य इदं गायत्रीरहस्यमधीते तेन ऋतुसहस्रमिष्टं भवति। य इदं गायत्रीरहस्यमधीते दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातमध्याह्योः कण्मासकृतानि पापानि नाशयति। सायं प्रातरधीयानो जन्मकृतं पापं नाशयति। य इदं गायत्रीरहस्यं ब्राह्मणः पठेत् तेन गायत्र्याः कष्टिसहस्रलक्षाणि जप्तानि भवन्ति। सर्वान् वेदानधीतो भवति। सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति। अपयपानात् पूतो भवति। अब्रह्मनिते। अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति। वृषलीगमनात् पूतो भवति। अब्रह्मनार्शे ब्रह्मचारी भवति। पङ्क्तिषु सहस्रपानात् पूतो भवति। अष्टो ब्रह्मचारी भवति। पङ्क्तिषु सहस्रपानात् पूतो भवति। अष्टो ब्रह्मचार्य स्रह्मित्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति। इत्याह भगवान् ब्रह्मा।।

इति गायत्रीरहस्योपनिषत् समाप्ता

गायत्र्युपनिषत्

ॐ अविरन्तरिक्षं चौरित्यष्टावक्षराणि । अष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्ये षदमेतदु हास्या एतत्स यावदेतेषु लोकेषु ताबद्ध जयित । बोऽस्या एतदेवं पदं वेद ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टाक्षरं ह बा एकं गायच्ये पदमेतदु हास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयित । बोऽस्या एतदेवं पदं वेद पाणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गावच्ये पदमेतदु हास्या एतत्स यावदिदं प्राणिति तावद्ध जयति । योऽस्या एतदेवं पदं वेदाबास्या एतदेव तुरीयं दर्शितं पदं परोरजाय एव तपतीति यहै चतुर्थ तत्तुरीयं दर्शितं पदमिति ददर्श इव बेष परोरजा इति सर्वेष्ठ खेन रज उपर्युपरि तपत्येवं ह वा एव श्रिया यशसा तपति । बोऽस्या एतदेवं पदं वेद सैषा गायत्री एतस्मिस्तुरीय दर्शिते पदे परोरजसि मतिष्ठिता तहे सत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वी विषद्मानावेयातां अहमद्राक्षमहमश्रोषमिति । य एव त्र्यादहमद्राक्षमिति तस्या एव श्रद्धव्या व एतद्वे तत् सत्यं वले प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्वलं सत्यादी ज्ञेय एवं वैषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गायंस्तते प्राणा वै गाबास्तान् प्राणांस्तते उद्यद्वायंस्तते तस्याद्वातत्रत्री नाम स यामेवाम् मत्वा हैषैवमास यस्मा इत्याह तस्य प्रमाणं त्रायने तां हेंक सावित्री-मनुष्टुभमन्वाहुरनुष्टुभैतद्वाचमनुब्र्म इति न तथा कुर्याद्वायत्रीमेवानु-ब्याद्यदि ह वापि बहिब प्रतिगृहाति । इहैव तद्गायन्या एकंचन पदं प्रति य इमांस्त्रीन् लोकान् पूर्णान् प्रतिगृह्वीयात् सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयात् अथ याबतीयं त्रयी विद्या यस्तावत् प्रतिगृह्वीयात् सोऽस्या एतद्वितीयमाप्नुयात् । अथ यावदिदं प्राणिति यस्तावत् प्रतिगृह्णीयात् ।

तस्या उपस्थाना गायच्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदा सा न हि पखते। यस्ते तुरीयाय पदाय दिशताय परोरजसे सावदोमिति समधीयीत वा न हैवास्मे सकामः समृद्धचते। यस्मा एवमुपतिष्ठते ह मदः प्रापमिति वा एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो वुरिलमाश्रितराश्विमुवाच। यत्तु होतर्गायश्री कथं हलीभूतो बहसीति। मुखं ह्यस्याः ससंभ्रमं विदाचकारेति होवाच। तस्या अभिरेव मुखं यदिह बापि बहिमानमावस्यादधाति सर्वमेतत्सन्द-हत्येवंविद्यद्यपवहीव पापं करोति सर्वमेवैतत्सम्यिवगुद्धो यतोऽजरोऽस्रृतः स भवतीति॥

इति गायन्युपनिवत् समाप्ता

युषकाल्युपनिषत्

अथवेवेदमध्ये तु शास्ता मुख्यतमा हि षट्।
स्वयंभुवा याः कथिताः पुत्रायाथर्वण पुरा ॥ १ ॥
तासु गुद्धोपनिषदस्तिष्ठन्ति वरवणिनि ।
नामानि शृणु शास्त्रानां तत्राद्या वारतन्तवी ॥ २ ॥
मौञ्जायनी द्वितीया तु तृतीया ताणिवेन्दवी ।
चतुर्थी शौनकी प्रोक्ता पञ्चमी पेप्पलादिका ॥ ३ ॥
षष्ठी सौमन्तवी ज्ञेया सारात् सारतमा इमाः ।
गुद्धोपनिषदो गृदाः सन्ति शास्त्रासु षट्स्विप ॥ ४ ॥
ता एकीकृत्य सर्वास्तु मयाऽम्यां विनिवेशिताः ।
संहितायां साधकानामुद्धाराय वरानने ॥ ५ ॥

तास्ते बदामि यत् प्रोक्तं ध्यानं कुर्वन्ति देकताः। विराट्ध्यानं हि तज्ज्ञेयं महापातकनाञ्चनम् ॥ ६ ॥ ब्रह्माण्डाद्वहिरूध्वे हि महत्तत्त्वमहङ्कृतिः। रूपाणि पश्च तन्मात्राः पुरुषः प्रकृतिर्नेव ॥ ७ ॥ महापातालपादान्तलम्बा तस्या जबं स्मरेत । ब्रह्माण्डार्घे कपालं हि शिरस्तस्या विभावयेत् ॥ ८ ॥ देवलोको ललाटं च षट्तिश्रह्मयोजनम् । मेरु: सीमन्तदण्डोऽस्या ब्रहरत्नसमाकुल: ॥ ९ ॥ अन्तर्वीची नागवीची भुवावस्याः प्रकीर्तिते । शिवलोकश्च वैकुण्ठलोकः कर्णावुसौ मतौ ॥ १०॥ लोहितं तिलकं ध्यायेन्नासा मन्दाकिनी तथा । चक्षची चन्द्रसूर्यी च पक्ष्माणि किरणास्तवा ॥ ११ ॥ गण्डो स्यातां तपोलोकसत्यलोको यथाक्रमम् । जनोलोकमहर्लोको कपोलो परिकीर्तितौ ॥ १२ ॥ स्यातां हिमादिकैलासी तस्या देव्यास्तु कुण्डले। स्वर्लोकश्च भुवर्लोको देव्या ओष्ठाधरी मतौ ॥ १३ ॥ दिक्पतीनां ग्रहाणां च लोकाश्चाय रदावली । गन्धर्वसिद्धसाध्यानां पितृकिन्नररक्षसाम् ॥ १४ ॥ षिशाचयक्षाप्सरसां मरीचीयायिनां तथा । विद्याधराणामाज्योप्सपाणां सोमैकपायिनाम् ॥ १५ ॥ सप्तर्षीणां ध्रुवस्यापि लोका ऊर्ध्वरदावली । मसं च रोदसी ज्ञेयं द्यौलेंकिश्चिनुकं तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्मलोको गलः प्रोक्तो वायवः प्राणरूपिणः । वनस्पतय ओषध्यो लोमानि परिचक्षते ॥ १७ ॥

विद्युद्दष्टिरहोरालं निमेषोन्मेषसंज्ञकम् । विश्वं तु हृदयं प्रोक्तं पृथिवी पाद उच्यते ॥ १८ ॥ तलं तलातलं चैव पातालं सुतलं तथा । रसात्लं नागलोकाः पादाङ्गुल्यः प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥ वेदा वाचः स्यन्दमाना नदा नचोऽभिता मताः। कलाः काष्टा मुहूर्ताश्च ऋतवोऽयनमेव च ॥ २०॥ पक्षा मासास्तथा चान्दाधत्वारोऽपि युगाः प्रिवे । कफोणिर्मणिबन्धश्च तदृरुकटिबन्धनाः ॥ २१ ॥ प्रपदाश्च स्फिन्थ्यैव सर्वाङ्गानि प्रनक्षते । वैश्वानरः कालमृत्युजिह्वात्रयमिदं स्मृतम् ॥ २२ ॥ जानसस्तम्बपर्यन्तं तनुमस्याः प्रचक्षते । प्रलयो भोजने कालस्तृप्तिस्तेन च नासिका ॥ २३ ॥ ज्ञेयः पार्श्वपरीवर्ती महाकल्पान्तरोद्भवः । विराड्पस्य ते ध्यानमिति संक्षेपतोऽर्षितम् ॥ २४ ॥ तस्याः स्वरूपविज्ञानं सपर्या परिकीर्तिता । तदेव हि श्रुतिप्रोक्तमवधारय पार्वति ॥ २५ ॥ यथोर्णनाभिः सूत्राणि सृजत्यपि गिरुत्यपि । यथा पृथिव्यामोषध्यः संभवन्ति गिलन्त्यपि ॥ २६ ॥ पुरुषात् केशलोमानि जायन्ते च क्षरन्त्यपि । उत्पद्यन्ते विलीयन्ते तथा तस्यां जगत्यपि ॥ २७ ॥ ज्वलतः पावकाचद्वत् स्फुलिङ्गाः कोटिकोटिशः । निर्गत्य च विनश्यन्ति विश्वं तस्यास्तथा प्रियं ॥ २८ ॥ ऋबो यज्ंवि सामानि दीक्षा यज्ञाः सदक्षिणाः । अध्वर्युर्वजमानश्च भुवनानि चतुर्दशः ॥ २९ ॥

व्यक्तिविष्ण्वादिका देवा मनुष्याः पशवो यतः । प्राणापानौ बीहयश्च सत्यं श्रद्धा विधिस्तपः ॥ ३०॥ समुद्रा गिरयो नद्यः सर्वे स्थावरजङ्गमाः । विसुज्यमानि सर्गादौ त्वं प्रकाशयसे ततः ॥ ३१ ॥ जङ्गमानि विधायान्धे विशत्यप्रतिभूतकम् । नवद्वारं पुरं कृत्वा गवाक्षाणीन्द्रियाण्यपि ॥ ३२ ॥ सा पश्यत्यत्ति वहति स्पृशति कीडतीच्छति । शृणोति जिन्नति तथा रमते विरमत्यपि ॥ ३३ ॥ तया मुक्तं प्रं तद्धि मृतमित्यभिधीयते ॥ ३४ ॥ वे तपः क्षीणदोषास्ते नैव पश्यन्ति भाविताम् । ज्योतिर्मर्यो शरीरे उन्तर्ध्यायमानां महात्मिमः ॥ ३५ ॥ बृहच तहिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच तत् सूक्ष्मतरं विभाति । दूरात् सुदूरे तदिहास्ति किश्चित् पश्येत्त्वहैति महितं गुहायाम् ॥ ३६ ॥ न चक्षुषा गृद्यते नापि वाचा नान्यैयोंगैर्न हि सा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः ततस्त तां पश्यति निष्कलां च ॥ ३७ ॥ यशा नवः स्यन्दमानाः समुद्रे

गच्छन्त्यस्तं नामरूपे विहाय । तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात् परां जगदम्बामुपैति ॥ ३८ ॥ सर्वे बेदा यत्यदमामनन्ति तगांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । बिदच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति तत्ते यदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥ ३९॥

सैनेतत् ॥

एपैयारम्यनं श्रेष्ठं सैवैवारम्बनं परम् । एपैवालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४० ॥ इन्द्रिबेभ्वः परा बर्चा बर्धेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ ३१ ॥ महतः परमञ्चक्तमञ्चकात् पुरुषः परः । पुरुषानु परा देवी सा काष्टा सा परा गतिः ॥ ४२ ॥ बबोदकं गिरी सृष्टं समुद्रेषु विधावति । एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तामेवानुविधावति ॥ ४३ ॥ एका गुखा सर्वभृतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा या करोति । तामालस्थां येऽनुपश्यन्ति धीराः तेकां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४४ ॥ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो मान्ति कुतोऽयमिः। तामेब मान्तीमनुमाति सर्व तस्या भासा सर्वमिदं विभाति ॥ ४५ ॥ बस्याः परं नापरमस्ति किश्चित् बस्बा नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् । वृक् इब स्तञ्बा दिवि तिष्ठत्येका यदन्तः पूर्णामवगत्य पूर्णः ॥ ४६ ॥

सर्वाननशिरोश्रीवा सर्वभृतगुहाशया।
सर्वत्रस्था भगवती तस्मात् सर्वगता शिवा॥ ४०॥
सर्वतः पाणिपादान्ता सर्वतोऽक्षिशिरोमुखा।
सर्वतः श्रुतिमत्येषा सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ४८॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासा सर्वेन्द्रियविवर्जिता।
सर्वेषां प्रभुरीशानी सर्वेषां शरणं सुहृत्॥ ४९॥
नवद्वारे पुरे देवी हंसी लीलायतां वहिः।
ध्वेषा सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥ ५०॥
अपाणिपादा जननी श्रहीत्री

पश्यत्यवक्षः सा शृणोत्यकर्णा।
सा वेत्ति वेखं न च तस्यास्तु वेत्ता
ताबाहुरम्यां महतीं महीयसीम् ॥ ५१ ॥
सा चैवाग्निः सा च सूर्यः सा वायुः सा च चन्द्रमाः।
सा चैव शुकः सा ब्रह्म सा नापः सा प्रजापतिः।
सा चैव स्त्री सा च पुमान् सा कुमारः कुमारिका ॥ ५२ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्यां देवा अधिरुद्रा निषेदुः । यस्तां न वेद किमृचा करिष्यति ये तां विदुस्त इमे समासते ॥ ५३ ॥

छन्दांसि यज्ञाः कतको वतानि भूतं भन्यं यश्च वेदा वदन्ति । सर्वे देवी सृजते विश्वमेतत्

तस्याधान्यो मावया संनिरुद्धः ॥ ५४ ॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् प्रभुं तस्या महेश्वरीम् । अस्या अवयवै: सुक्ष्मैर्व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ ५५ ॥ या देवानां प्रभवा चोद्भवा च विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा । हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्व सा नो बुद्धचा शुभया संयुनक्तु ॥ ५६ ॥ सूक्ष्मातिस्क्ष्मं पिललस्य मध्ये विश्वस्य रुष्ट्रीमनेकाननारूयाम् । विश्वस्य चैकां परिवेष्टयित्रीं ज्ञात्वा गुद्धां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ५७ ॥ सा होव काले भुवनस्य गोप्त्री विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा । यस्यां मक्ता ब्रह्मर्षयोऽपि देवाः ज्ञात्वा तां मृत्युपाशाञ्छिनत्ति ॥ ५८ ॥ वृतात् परं मण्डमिवातिस्क्ष्मं ज्ञात्वा कालीं सर्वभूतेषु गूढाम्। कल्पान्ते वे सर्वसंहारकत्री ज्ञात्वा गुद्धां मुच्यते सर्वपापैः ॥ ५९ ॥ एषा देवी विश्वयोनिर्महात्मा सदा जनानां हृदि सन्निविष्टा । हृदा मनीषा मनसाभिक्छप्ता

यं तां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ६० ॥

यदा तमस्तल दिवा न रात्रिः

न सन्न चासद्भगवत्येव गुषा।

तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं

प्रज्ञा च तस्याः प्रस्ता परा सा ॥ ६१ ॥

नैनामूर्ध्वं न तिर्यक् च न मध्यं परिजयमत्।

न तस्याः प्रतिमाभिश्च तस्या नाम महद्यशः ॥ ६२ ॥

न संदशे तिष्ठति रूपमस्याः

न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनाम् ।

हृदा मनीषा मनसामिक्लप्तां

य एनां विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ६३ ॥

भ्यश्च सृष्ट्रा तिदशानथेशी

सर्वाधिपत्यं कुरुते मवानी ।

सर्वा दिशश्चोर्ध्वमधश्च तिर्यक्

प्रकाशयन्ती आजते गुद्यकाली ॥ ६४ ॥

नैव स्त्री न पुमानेषा नैव चेयं नपुंसका।

यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेनैव युज्यते ॥ ६५ ॥

धर्मावहां पापनुदां भगेशीं

ज्ञात्वात्मस्थाममृतां विश्वमातरम् ।

तामीश्वराणां परमां महेश्वरीं

तां देवतामा परदेवतां च ।

पतिं पतीनां परमां पुरस्तात्

विद्यावतां गुझकालीं मनीषाम् ॥ ६६ ॥

तस्या न कार्य करणं च विद्यते न तत्समा चाप्यधिका च दृश्यत । परास्याः शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलिकया च ॥ ६७ ॥ कश्चित्र तस्याः पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव तस्याश्व लिङ्गम्। सा कारणं कारणकारणाधिपा नास्याश्च कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ६८ ॥ एका देवी सर्वभूतेषु गूढा व्यामोत्येतत् सर्वभूतान्तरस्था । कर्माध्यक्षा सर्वभूताधिवासा साक्षिण्येषा केवला निर्गुणा च ॥ ६९ ॥ वशिन्येका निष्क्रियाणां बहुनां एकं बीजं बहुधा या करोति । नानारूपा दशवक्त्रं विधत्ते नानारूपान् या च बाहून् बिभर्ति ॥ ७० ॥ नित्या नित्यानां चेतना चेतनानां एका बहूनां विदधाति कामान्। तत्कारणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवीं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ७१ ॥ या वै विष्णुं पालने संनियुङ्क्ते रुद्रं देवं संहती चापि गुह्या । तां वै देवीमात्मबुद्धिप्रकाशां मुमुक्क्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये ॥ ७२ ॥

निष्कलां निष्कियां शान्तां निरवधां निरक्षनाम् । बह्वाननकरां देवीं गुद्धामेकां समाश्रये ॥ ७३ ॥ इयं हि गुद्धोपनिषत् सुगूढा यस्या ब्रह्मा देवता विश्वयोनिः । एतां जपंश्चान्वहं भक्तियुक्तः

सत्यं सत्यं ह्यमृतः संबभ्व ॥ ७४ ॥ वेदवेदान्तयोर्गुह्यं पुराकरुपे प्रचोदितम् । नाप्रशान्ताय दातव्यं नाशिष्याय च वे पुनः ॥ ७५ ॥ यस्य देव्यां परा भक्तिर्यथा देव्यां तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ ७६ ॥

महाकाल उदाच -

गुद्योपनिषदित्येषा गोप्यात् गोप्यतरा सदा ।
चतुर्भ्यश्चापि वेदेश्य एकीकृत्यात्र योजिता ॥ ७७ ॥
उपदिष्टा च सर्गादौ सर्वानेव दिवौकसः ।
एवंविषं च यद्ध्यानमेवंरूपं च कीर्तितम् ॥ ७८ ॥
सा सपर्या परिज्ञेया विधानमधुना शृणु ।
सोऽहमस्मीति प्रथमं सोऽहमस्मि द्वितीयकम् ॥ ७९ ॥
तदस्म्यहं तृतीयं च महावाक्यत्रयं भवेत् ।
आद्यान्येतानि वाक्यानि छन्दांसि परिचक्षते ॥ ८० ॥
देवता गुद्धकाली च रजःसत्त्वतमोगुणाः ।
सर्वेषां प्रणवो बीजं हंसः शक्तिः प्रकीर्तिता ॥ ८१ ॥
मकारश्चाप्यकारश्च द्युकारश्चेति कीलकम् ।
एभिर्वाक्यत्रयैः सर्वं कर्म प्रोतं विधानतः ॥ ८२ ॥

अनुक्षणं जपंश्चेव निश्चयः परिकीर्तितः ।

द्वितीयोपासकानां हि परिपाटीयमीरिता ॥ ८३ ॥

एवं चाप्यातुरो यस्तु मनुष्यो मक्तिमावितः ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यः कैवल्यायोपकल्यते ।

सर्वाभिः सिद्धिमिस्तस्य कि कार्य कमलानने ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाकालसंहितायां गुलकाल्युपविचत् समाप्ता

गुह्यषोढान्यासोपनिषत्

अथ गुद्धां न्यसेत् । शिवो भवेत् । शक्तिरूपो भवेत् । विद्याराज्ञीन्यासमेवं चरेत् । न जपो न पूजा न साधनं न कालनियमो न दिवा न रात्रिः ।
सर्वकालं न्यसेत् । शक्तियुक्तो भवेत् । यथाधिकारवान् न्यसेत् । पूर्णदीक्षां
लभेत् । षोढारूपो भवेत् । चिन्तामणिर्भवेत् । कीं मातृस्थाने न्यसेत् ।
परात् परतरो भवेत् । शिवो भवेदित्येकः । अथ ताराद्वयपुटितां मातृकां
मातृकापुटितां तां मातृकास्थाने न्यसेत् । परातीतारूपो भवेदिति द्वितीयः ।
अथ शक्तिकाद्वयपुटितां मातृकां मातृकापुटितां तां न्यसेत् । तुर्यारूपो
भवेत् । तृतीयकलारूपो भवेत् । कालसंकलनात् काली । सहेलं सलीलं वा
समरणाद्वरदानेषु चतुरा । तेनेयं दक्षिणा । संबोधनद्वयपुटितां मातृकां
मातृकापुटितं नामद्वयं लिपिस्थाने न्यसेत् । तुर्यात् परारूपो भवेत् । चतुर्थीकलारूपो भवेत् । लोकपालसंवादिनी चतुर्थी । अथ पञ्चमीं कलां न्यसेत् ।
पञ्चमीकलारूपो भवेत् । सुभगात्रयं कूर्चविद्दिल्लनां वहेस्विकोणदैवतस्य

लांलनाच्छीकण्ठरूपस्तुर्या परातीता । एतत्पुटितमातृकापुटितमेतन्मन्त्रं मातृकास्थाने न्यसेदिति पश्चमी । शिवत्वं गच्छति । स सर्वरूपो भवेत् ।
अथ षष्ठीं कलां न्यसेत् । पूर्णो विद्याराज्ञी लिपिस्थाने न्यसेद्व्यापयेत् ।
स शिवो भवेत् । स सर्वज्ञत्वं गच्छति । स कविभवेत् । स सन्न्यासी
भवेत् । देवो ह वै भवेत् । विश्वरूपो भवेत् । अयुतं न्यसेत् । ऋषिच्छन्दादि
पूर्ववद्भवेत् । ब्रह्माण्डगोलकेऽपि या जगतीतले तां सर्वो भुनक्ति । यस्याः
स्मरणात् सिद्धो निदेशवर्ती च भवेत् तां न्यसेत् । न्यसनं न्यासः । सम्यक्
न्यासः संन्यासः । न तु मुण्डितमुण्डः । तस्य देवादयो नमस्यन्तीति प्रोतं
वेद । ॐ शिवम् ॥

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे गुह्मषोडान्यासोपनिषत् समाप्ता

पीताम्बरोपनिषत्

ॐ अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे सुभगां ब्रह्मास्नस्करिणीमामोति । ब्रह्मास्नां महाविद्यां शाम्भवीं सर्वस्तम्भकरीं सिद्धां चतुर्भुजां दक्षाभ्यां कराभ्यां मुद्गरपाशौ वामाभ्यां शत्रुजिह्वावज्रे दधानां पीतवाससं पीतालङ्कारसंपन्नां हढीभूतपीनोन्नतपयोधरयुग्माट्यां तप्तकार्तस्वरकुण्डलद्वयविराजितमुखाम्भोजां ललाटपट्टोल्लसत्पीतचन्द्रार्धमनुबिश्रतीमुद्यदिवाकरोद्योतां स्वर्णसिंहासनमध्य-कमलसंस्थां धिया संचिन्त्य तदुपि त्रिकोणषट्कोणवसुपत्रवृत्तान्तः षोडश-दलकमलोपि भूबिम्बत्रयमनुसंधाय तत्राद्ययोन्यन्तरे देवीमाह्य ध्यायेत् । योनि जगद्योनि समाथमुचार्य शिवान्ते भूमाप्रबिन्दुमिन्दुखण्डमिनीजं ततो वरुणाङ्कगुणार्णमित्रयुतं स्थिरामुखि इति सम्बोध्य सर्वद्षानामिदं

नामाप्य वाचिमति मुखियति पदिमति स्तम्भयेति वोचार्य जिहां वैकारदीं कील्येति बुर्द्धि विनासयेति पोचार्य भूमायां वेदायं ततो यज्ञभूगुहायां योजयेत् । स महास्तम्भेश्वरः सर्वेश्वरः । स सेनास्तम्भं करोति । किं बहुना विवस्बद्धतिस्तम्थकर्ता सर्ववातस्तम्भकर्तेति । किं दिवाकर्षयति । स सर्वविद्येश्वरः सर्वभन्सेश्वरो भूत्वा पूजाया आवर्तनं तैलोक्यस्तम्भिन्याः कुर्यात् । अन्नमाद्यं द्वारतो गणेशं वटुकं योगिनीं क्षेत्राधीशं च पूर्वादिकमभ्यर्च्य गुरुपङ्क्तिमीशासुरान्तमन्तः पाच्यादौ कमानुगता बगला स्तम्भिनी जम्भिणी मोहिनी वस्या अचला चला दुर्धरा अकल्मवा आधारा कल्पना कालकर्षिणी अमरिका मदगमना भोगा योगिका एता बष्ट-दलानुगताः पूज्याः । ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंही चामुण्डा महालक्ष्मीश्च । षड्योनिगर्भोता डाकिनी राकिनी लाकिनी काकिनी शाकिनी हाकिनी वेबाचस्थिरमायाद्याः समभ्यर्च्य शकामियमनिर्ऋतिवरुण-वायव्यधनदेशानप्रजापतिनागेशाः परिवाराभिमताः स्थिरादिवेदाद्याः सवाहनाः सदस्रका बाह्यतोऽभ्यर्च्य तां योनि रतिप्रीतिमनोभवा एताः सर्वाः समाः पीतांशुका ध्येयाः । तदन्तमूलायां बलादिषोडशानुगताः पूज्याः नीराजनैः । स हैश्वर्ययुक्तो भवति । य एनां ध्यायति स वाग्मी भवति । सोऽमृतमक्तुते । सर्वसिद्धिकर्ता भवति । सृष्टिस्थितिसंहारकर्ता भवति । स सर्वेश्वरो भवति । स तु ऋद्धीश्वरो भवति । स शाक्तः स वैष्णवः स गणपः स शैवः । स जीवन्मुक्तो भवति । स संन्यासी भवति । न्यसनं न्यासः । सम्यङ्न्यासः संन्यासः । न तु मुण्डितमुण्डः । षट्त्रिंशदस्रेश्वरो भवेत् सौभाम्यार्चनेनेति प्रोतं वेद । ॐ शिवम् ॥

इति पीताम्बरोपनिषत् समाप्ता

राजइयामलारहस्योपनिषत्

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ रत्नसानुशिखरेष्वासीनं श्रीराजश्यामलारहस्योपनिषद्वेतारं मतक्र-ऋषिं गुरुं कूचिमारः प्रोबाच । मतक्र भगवन् गुरो राजश्यामलारहस्योपनिषदं मेऽनुब्रूहि । मतक्रभगवान् कूचिमारं स होवाच । ते राजश्यामलारहस्यो-पनिषदमुपदिशामि ।

अथातः श्रीराजक्यामलारहस्योपनिषदं व्याख्यास्यामः । मन्त्रजपाधिकरणन्यासाधिकरणस्तोत्राधिकरणपूजाधिकरणमैथुनाधिकरणैः पश्चमिर्वाक्षणो
भोगमोक्षमाप्नोति । गुरोरनुज्ञया श्रीराजक्यामलामन्त्रं नित्यं सहस्रसङ्ख्यया
त्रिक्शतेन वाऽष्टाविंशदुत्तरशतेन वा जस्वा मन्त्रसिद्धिर्भवति । गुक्रवारे
भार्याजगन्मोहनचके त्रिशतं मन्त्रजपेन मन्त्रसिद्धः । पुरश्चरणसिद्धिर्भवति ।
नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवताशरीरी भवति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन
गन्धविकन्याभिः पूजितो भवति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवस्थीभोगमाप्नोति । रम्भासंभोगमाप्नोति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवसीभोगमाप्नोति । रम्भासंभोगमाप्नोति । नवाशीतिन्यासानां न्यसनेन देवतास्वर्ग गच्छति । स्वर्ग प्राप्य तद्भोगमाप्नोति । जगन्मोहनचके पाटलकुसुमैः
सहस्रसङ्ख्यया पूजिता श्रीराजक्यामला कामितार्थप्रदा मङ्गलप्रदा भवति ।
वर्षतीं श्रावणे मासि सर्वरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचके चम्पककुसुमैः सहस्रसङ्ख्यया पूजिता श्रीराजक्यामलाऽऽरोग्यपदा भवति । तत्र गुक्रवारे पूजिता

महालक्ष्मीपदा भवति । शुक्रबारयुतायां पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचके शतसङ्ख्यया श्रीराजक्यामलाम्बां पूजयन् देहान्तरे रम्भासंभोगमक्नुते । भाद्रपदे मासि महालक्ष्मीव्रतदिनेषु भार्याजगन्मोहनचके श्रीराजस्यामलाम्बां जाजीकुसुमै: पूजयन् मानवो महदैश्वर्यमाघोति। शरत्काले सर्वरात्रिषु भार्या-जगन्मोहनचके नीलोत्पलैः सहस्रसङ्ख्यया स्यामलां पूजयन् महाभोगमश्नुते । शुक्रवारयुतायां पौर्णमास्यां मार्याजगन्मोहनचके श्रीराजश्यामलां पूजयन् कल्हारैः शचीभोगमश्नुते । हेमन्तकाले सर्वरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचक्रे जवन्तीकुसुमैः सहस्रसङ्ख्यया पूजयन् वरुणदेवेन कनकच्छत्री भवति। मार्गरीषें पौर्णमास्यां भार्याजगन्मोहनचके कुसुम्भपुष्यैः पूजयन् मानवो देवेन्द्रैश्वर्यमाम्रोति । माध्यां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचके द्रन्द्रमिल-काकुड्मलैः सहस्रसङ्ख्यया पूजयन् मानवो राजस्त्रीसंभोगमाम्रोति । सर्वदा पुष्पिण्यां भार्यायां जगन्मोहनचक्रे वसन्तपुष्यैः पूजयन् मानवो देवतात्व-मरनुते । चतुर्थ्यो शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचके देवतां इयामलां जपन् परशिवत्वमाम्नोति । श्रीराजश्यामलाम्बायाः पञ्चदशस्तोत्राणां पारा-यणेन देवतासन्तुष्टिर्भवति । मङ्गलप्रदा राज्यवशंकरी च भवति । देवता-सान्निध्यमामोति । सन्निधानेन सर्वनिवृत्तिर्भवति । सर्वमङ्गलमामोति । सर्व-देवनमस्कृतो भवति । सर्वे राजानो वश्या भवन्ति । रम्भादिभिः पूजितो भवति । स्वर्गभोगमामोति । गुरोरनुज्ञया शुक्रवारे दिवा रात्रौ च चम्पकतैलाद्यैः कृतस्रातां सर्वालङ्कारभूषितां शुअवस्रधरां श्रीचन्दनविलिप्ताङ्गीं कस्तूरीति-लकोपेतां कुङ्कुमलिप्तकुचभारां पुष्पदामयुक्तधम्मिलां ताम्बूलपूरितमुखीं स्वेद-बिन्दूह्रसन्मुखीं बिम्बोधीं कुन्दरदनां कम्बुकण्ठीं मञ्जुहासां यौवनोन्मत्तां कञ्जलोचनां प्रथुनितम्नां राजरम्भोरुं संपूर्णचन्द्रवदनां संभोगेच्छां शुक-वाणीं सङ्गीतरसिकां कुरवकरसाञ्चितपाणिपादां वशवर्तिनी भार्यो पुष्पशय्या-

यामुत्तानशायिनीं कृत्वा दर्पणविनर्मलं जगन्मोहनचकं गन्धद्रव्येण धृपदीपैश्च परिमलीकृतं कुङ्कुममिलितैर्मिलिकाकुड्मलैः शरसङ्ख्यया पूजयन् बाह्मणो देवशोगमामोति । वसन्तनवरात्रिषु भार्याजगन्मोहनचके मिल्रकाकुड्मलै: सहस्रनामभि: रहस्यनामभिश्च पूजिता राजश्यामला राजवशङ्करी भवति । गुकवासरयुक्तायां सप्तम्यां रात्रौ भार्याया जगन्मोहनचके प्रथमयामे कल्हार-पुष्पै: सहस्रनामभिर्देवतां पूजयन् देवतासालोक्यमामोति। तस्यामेव द्वितीययामे भार्याजगन्मोहनचके पारिजातपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन् देवतासामीप्यमाम्रोति । तस्यामेव तृतीययामे भार्याजगन्मोहनचके मन्दारपुष्पै: सहस्रनामि पूजयन् देवतासारूप्यमामोति । तस्यामेव चतुर्थयामे जगन्मोहनचके चम्पकपुष्पैः सहस्रनामभिः पूजयन् देवता-सायुज्यमामोति । सर्वरात्रिषु जगन्मोहनचके मिलकाकुड्मलैः पूजिता स्यामला कामितार्थपदा भवति । श्रीप्मकाले सर्वरात्रिषु श्रीचन्दनविलिसभार्याजगन्मो-हनचकं पूजयन् सर्वेसिद्धिमाप्तोति । दूर्वाभिः पूजयन् महदायुष्यमश्नुतं । अष्टम्यां शुक्रवासरयुक्तायां रात्री जगन्मोहनचके राजश्यामलाम्बां श्रीचन्दनेन पूजयन् मानवो गन्धिलप्तो जगन्मोहको भवति । महानवस्यां गुक्रवासरयुक्तायां रात्री जगन्मोहनचक्रे कुङ्कुमाक्षतैर्देवता पूजियत्वा पूजि-ताक्षतान् राज्ञे निवेदयेत् । राजा दासभावमाप्नोति । त्रयोदस्यां शुक्रवास-रयुक्तायां रात्री भार्याजगन्मोहनचकं पूजयन् मानवः कामसुन्दरो भवति । चन्द्रदर्शनयुक्तायां द्वितीयायां शुक्रवारयुक्तायां भार्याजगन्मोहनचक्रे राजस्या-मलाम्बां श्वेतगन्धाक्षतैः श्वेतपुष्पेश्च पूजयन् साधको देहान्ते राजा भवति । सर्वभोगपदा सर्वसौभाग्यप्रदा दीर्घायुप्यप्रदा महायोगप्रदा महामङ्गलप्रदा काम्यप्रदा श्रीराजश्यामला देवेन्द्रभोगप्रदा भवति । सर्वकाम्यरहस्यपूजान्ते मैथुनं देवताप्रीतिकरं भवति । मोक्षप्रदं भवति । स एव भोगापवर्गः ।

गुर्बनुज्ञया गुप्तः क्षपणको मुक्तो भवति । एवं कान्तायाः पूजिता स्वर्णचके ज्ञामला मङ्गलपदा भवति । द्रोहिणां नोपदेशः । क्षपणकानां पद्याधि-क्र्स्णैः परो मोक्षो नान्यथेति य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

इति राष्ट्रयामछारहस्योपनिषत् समाप्ता

वनदुर्गोपनिषत्

अस्य श्रीवनदुर्गामहामन्त्रस्य किरातरूपधर ईश्वर ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। अन्तर्यामी नारायण ईश्वरो वनदुर्गा गायत्री देवता। दुं बीजम्। स्वाहा शक्तिः। क्ष्रीं कीलकम्। मम वनदुर्गाप्रसादसिद्धच्यें धर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः। मूलेन व्यापकत्रयं कुर्यात्। हीं इति व्यापकत्रयम्। ॐ हंसिनी हां अङ्गुष्टाभ्यां हिदि। ॐ शिखिनी हीं तर्जनीभ्यां शिरसि। ॐ चिक्रणी हूं मध्यमाभ्यां शिखायाम्। ॐ त्रिश्ल-धारिणी हैं अनामिकाभ्यां कवचम्। ॐ पद्मिनी हों कनिष्ठिकाभ्यां नेत्रयोः। ॐ गदिनी हः करतलकरपृष्टाभ्यामस्त्रम्। ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति दिन्नन्भः। अथ ध्यानम्—-

अरिशङ्खकुपाणखंटबाणान् सधनुश्शूलकतर्जनीर्दधानाम् । भज तां महिषोत्तमाङ्गसंस्थां नवदूर्वासदृशी श्रियेऽस्तु दुर्गा ॥१॥ हेममस्यामिन्दुस्वण्डान्तमौलिं शङ्खारिष्टामीतिहस्तां त्रिणेत्राम् । हेमाञ्जस्थां पीतवस्रां प्रसेत्रां देवीं दुर्गो दिव्यरूपां नमामि ॥२॥ उद्यद्भास्वत्समाभां विधृतनवजपामिन्दुखण्डावबद्धां ज्योतिर्मौलिं त्रिणेत्रां विविधमणिलसत्कुण्डलां पद्मकाचीम् । हारग्रैवेयभूषां मणिगुणवलयादैर्विचित्राम्बराट्यां

अम्बां पाशाङ्कुशाढ्यामभयवरकरां मञ्जुकान्तां नमामि ॥
सिद्धलक्ष्मी राजलक्ष्मीर्जयलक्ष्मीः सरस्वती ।
श्रीलक्ष्मीर्वरलक्ष्मीश्च प्रसन्ना मम सर्वदा ॥ ४ ॥
मायाकुण्डलिनी किया मधुमती काली कलामालिनी

मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शास्त्रवी । शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिणयना वाम्वादिनी भैरवी

हीङ्कारी त्रिपुरा फरापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥ ५ । सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिणयनां सौदामिनीसिन्नमां

शङ्खं चक्रवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां विश्रतीम् । ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैः स्तुतां

ध्यायेद्विन्ध्यनिवासिनी शशिमुर्सी पार्श्वस्थपद्धाननाम् ॥ सिंहारूढां स्थामकान्ति शङ्खचकधरां हृदा । दुर्गो देवीं तथा ध्यायेच्छरचापौ च विश्रतीम् ॥ ७ ॥

मनुः — हास्वा यमश यमश तिवगभ नमेत वा क्यंशमक्यश विभ तंस्थिपमुस मे यंभ षिपिस्व किं षिरुपु ष्ठनिउ ओं क्षी श्री हीं एँ ॐ । ॐ हीं महाभीषणे करालवदने वित्ध्यवासिनि हां हीं हूं हैं हों हः । नादयक्षयोगिनीपरिवृते दुष्ट्रग्रहनाशिनि हुं फट् स्वाहा । जिम्मिनि मोहिनि स्तिम्मिनि पूर्वद्वारं बन्धय बन्धय । ढं प्रश्चं अभिद्वारं बन्धय । ढ ढ ढ भों यमद्वारं बन्धय बन्धय । खं घ्यं निर्करितद्वारं बन्धय बन्धय । छं ब्लों क्रिणद्वारं बन्धय बन्धय । यं क्लीं वायुद्वारं बन्धय बन्धय । क्लों क्लों क्रिणद्वारं बन्धय बन्धय । यं क्लीं वायुद्वारं बन्धय बन्धय । क्लों क्लों

कुबेरद्वारं बन्धय बन्धय । ओं हं ही ईशानद्वारं बन्धय बन्धय । ॐ हं कं स्वें ऊर्ध्वद्वारं बन्धय बन्धय । ग्लों घों पातालद्वारं बन्धय बन्धय । ईं ई अधोद्वारं बन्धय बन्धय । सर्वग्रहान् बन्धय बन्धय । सर्पराजचोरदुष्ट-मृगादिसक्रुभयं बन्धय बन्धय । परप्रयोगभूतप्रेतपिशाचभैरवदुर्गाहनुम-द्रणेश्वरादिसकलकिल्बिषं बन्धय बन्धय । अञ्जय अञ्जय । अमुकं मेह-स्तम्भनं वाकायसर्वाङ्गं बन्धय बन्धय । सर्वक्षुद्रोपद्रवं छिन्धि छिन्धि । रे रे घे घे हुं फट् स्वाहा। ॐ श्री हीं क्षीं सौ: ॐ नमो भगवित माहेश्वरि अन्नपूर्णेश्वरि मां पालय पालय स्वाहा । सं सहस्रवाहवे नमः । पूर्वदिशं चोराञ्छत्रृन् बन्धय बन्धय । ॐ फों चीं क्षीं ब्लूं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रवाहवे नमः । आग्नेयदिशं बोराञ्छत्रुन् बन्धय बन्धय । ॐ फों चीं क्लीं ब्लूं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रबाहवे नमः । याम्यदिशं चोराञ्छ-त्रुन् बन्धय बन्धय । ॐ फों स्त्री क्ली ब्लूं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रवाहवे नमः । निर्ऋतिदिशं चोराञ्छत्रन् बन्धय बन्धय। ॐ फों चीं क्लीं ब्लूं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रवाहवे नमः । वरुणदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । अँ कों चीं क्षीं ब्लं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा। सं सहस्रबाहवे नमः । वायव्यदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों त्रीं कीं ब्लं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा। सं सहस्रवाहवे नमः । कुवरदिशं चोराञ्छत्रुन् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों च्रीं क्लीं ब्लं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा। सं सहस्रवाहवे नमः। ईम्मानदिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फ्रों च्री क्री ब्लं आं ही कों औं हुं सं सहसार हुं फट् स्वाहा । सं सहस्रवाहवे नमः । आकाश-

दिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय। ॐ फों त्रीं क्रीं ब्लं आं हीं कों श्री हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा। सं सहस्रवाहवे नमः १ पाताल-दिशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय। ॐ फों त्रीं क्रीं ब्लं आं हीं कों श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा। सं सहस्रवाहवे नमः। अवान्त-रिदशं चोराञ्छत्रून् बन्धय बन्धय। ॐ फों त्रीं क्रीं ब्लं आं हीं श्रीं हुं सं सहस्रार हुं फट् स्वाहा। सं सहस्रवाहवे नमः। ॐ ऐं हीं श्रीं गं गग गल हीं ऐं क ए ई ल हीं क्रीं ह स क ह ल हीं सोः स क ल हीं गं स्थित्रप्रसादगणपत्यं वर वरद आं हीं कों सर्वजनं में वशमानय स्वाहा।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् । ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वज्जूतिभिः सीद सादनम् ॥

ॐ ऐं हीं श्रीं गंग ग ग ल हीं ऐं क ए ई ल हीं की हस क ह ल हीं सी: स क ल हीं गं क्षिप्रप्रसादगण्यतये वर वरद आं हीं कों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। ॐ ऐं हीं श्रीं यदंति यच दूरके भयं विन्दित मामिह। पवमान वितज्जिहि। यदुत्थितं भगवित तत्सर्वे शमय शमय स्वाहा। ॐ ऐं हीं श्रीं गंग ग ग ल हीं ऐं क ए ई ल हीं कीं ह स क ह ल हीं सी: स क ल हीं गं क्षिप्रप्रसादगण्यतये वर वरद आं हीं कों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं मर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

उँ ऐं हीं श्रीं गंग गंग र हीं ऐं क ए ई ल हीं क्षीं हस क इ ल हीं सी: स कल हीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं हीं कों सर्वजनं में वशमानय स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्भुक्षीय माऽमृतात् ॥

35 ऐं हीं श्री गंग ग ग ल हीं ऐं क ए ई ल हीं हीं ह स क ह ल हीं सी: स क ल हीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये बर बरद आं हीं कों सर्वजनं मे बशमानय स्वाहा।

> ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदिति दुर्गोणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिताऽत्यग्निः॥

उँ ऐं हीं श्री गंग गगल हीं ऐं क ए ई ल हीं झीं हस क हल हीं सी: सक ल हीं गं क्षिप्रप्रसादगणपतये वर वरद आं हीं कों सर्वजनं में वशमानय स्वाहा। उँ नमो भस्माज्ञरागाय उन्नतेजसे हन हन दह दह प्रच पच मध मध विध्वंसय विध्वंसय हल हल अञ्जय अञ्जय श्रिन जय जय तेजसा पूर्वो सिद्धि कुरु कुरु ससुद्रं पूर्वादिष्टं शोषय शोषय स्तम्भय स्तम्भय प्रमन्त्रप्रयन्त्रप्रतन्त्रप्रभूतंप्रकटिनि छिन्धि छिन्धि हीं फट् स्वाहा।

> हेतुकं पूर्वपिष्ठे तु ह्याग्नेय्यां त्रिपुरान्तकम् । दक्षिणे चाग्निवेतालं नैर्ऋत्यां यमजिह्नकम् ॥ कालास्यं वारुणे पीठे वायव्यां च करालिनम् । उत्तरे ह्येकपादं च त्वीशान्यां भीमरूपिणम् ॥ आकाशे तु निरालम्बं पाताले बडबानलम् । सम्मा ग्रामे यथा क्षेत्रे रक्षेन्मां बटुकस्तथा ॥

ॐ ह्री वहुकाय आपदुद्धरणाय कुरु कुरु वहुकाय ही ॐ वहुकाय स्वाहा । सर्वमङ्गलमाङ्गरूये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्यं त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

ॐ हीं श्री दुं दुर्गाये नमः । ॐ हीं प्रयोगविषये ब्रह्माण्ये नमः । ॐ दीं बारुणि खल्विनि माहेश्वर्ये नमः। ॐ हीं कुल्यबासिन्ये कुमार्थे नमः। 🐲 जयन्तपुरवाहिनि वाराधै नमः । 🕉 अष्टमहाकालि रुद्राण्ये नमः। 🐲 चित्रकूट इन्द्राण्ये नमः। 🕉 एकवृक्षशुम्भिन्ये महालक्ष्म्ये नमः। 🕉 त्रिपुरहरत्रझाण्डनायिकायै नमः । ॐ त्रिपुरहस्त्रझचारिण्ये नमः । एतानि क्षं क्षं क्षे त्रेलोक्यवशङ्करीवीजाक्षराणि । 🕉 हीं कुरु कुरु स्वाहा । 🕉 हां हीं हुं जय जय चामुण्डे चण्डिके त्रिदशमुकुटकोटिरन्नसङ्घष्टितचरणार-विन्दे गायत्रि सावित्रि सरस्वति माहेश्वरि ब्रह्माण्डभाण्डोदररूपधारिणि प्रकटितदंष्ट्रीप्ररूपवदने घोरघोरानने नयनोज्ज्वलज्वालासहस्रपरिवृते महाट्ट-हासधवलीकृतदिगन्तरे कोटिदिवाकरसमप्रभे कामरूपिणि महाविद्यासम्बय-प्रभाभासितसकलदिगन्तरे सर्वायुधपरिपूर्णे कपालहस्तं गजाननोत्तरीय भूतवेतालपरिवृते प्रकटितवस्रुन्धरे मधुकैटभमहिषासुरधूमलोचनचण्डमुण्ड-प्रचण्डरक्तबीजशुस्भनिशुस्भदैत्यनिकृन्तके कालरात्रि महामाये शिवदूति इन्द्राणि शाक्करि आग्नेयि यामि नैर्ऋति वारुणि वायवि कौबेरि ईशानि ब्रह्माणि विष्णुवक्षःस्थिते त्रिभुवनधराधरे ज्येष्ठे रौद्रे चाम्बिके ब्राह्मि माहेश्वरि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि शाङ्करि चण्डिके शूलिनि महोग-विषोग्रभक्षितदंष्ट्रिण हरितहयबद्धबहुकठोरोत्तमाङ्गनवरत्ननिधिकोशे तत्र बहु-जिह्नापाणिपादशब्दस्पर्शरूपरसगन्धचक्षुष्मिति महाविन्ध्यस्थिते महाज्वाला-मणिमहिषोपरि स्थिते गन्धर्वविद्याधरस्तुते ऐंकारिह्वीकारिश्रींकारिक्कींकारि-हस्ते आं हीं क्रों यज्ञपात्रं प्रवेशय प्रवेशय । द्रां प्रवेशय प्रवेशय । श्री कुसुमापय कुसुमापय । श्री सर्व प्रवेशय प्रवेशय । त्रैलोक्यान्तर्वर्तिन्ये-

कामचित्तवशीकृते अ हां हीं हूं हैं हों हः फ्रां फीं फूं फैं फीं फ: हुं हुं हीं हीं फट् फट्। एता महाशक्तयः। एताभिररिष्टकारिभूतपेतिपिशाचान् विध्वंसय विध्वंसय। अष्टादशबीजयन्त्रनामानि। ॐ नमो भगवति महाविद्ये मदनराज्यं क्ली उपनिद ॐ हीं शिवं कुरु स्वाहा । ॐ ऐं हीं सकलनरमुखभ्रमरि 🕉 क्षीं हीं श्रीं सकलराजमुखभ्रमरि 🕉 कों सों हीं सकलदेवतामुखअमरि 🐲 हीं क्लीं सकलकामिनीमुखश्रमरि मनोभञ्जनि 🐲 म्लों सकललोकमुस्तभ्रमिर ॐ ई सौं सकलदेवतामुखभ्रमिर ॐ हीं क्ली सकलकामिनीमुखभ्रमरि मनोभञ्जनि 🕉 म्लों सकल्लोकमुखभ्रमरि 🕉 इं सों सकलदेशमुखभ्रमरि इस्स्क्फें त्रैलोक्यचित्तभ्रमरि ॐ क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षं क्षें क्षें क्षों क्षों क्षं क्षः दिग्भवाद्युप्रभैरवादिभ्तप्रेतिपिशाचित्तत्रमिर दुष्टमहमन्त्रयन्त्रतन्त्रभ्रमरि ह्स्स्ह्स्बों त्रैलोक्यान्तरभ्रमरि ॐ हुं क्ष्रं हुं क्षी राजमन्त्रयन्त्रतन्त्रभ्रमिर ॐ हुं क्षूं हुं क्षीं परमन्त्रयन्त्रतन्त्रभ्रमिर ॐ हुं क्षूं हुं क्षीं सिद्धमन्त्रयन्त्रतन्त्रभगरि अ ऐं ईं सौं सकल्खुराखुरसर्वमन्त्रयन्त्र-तन्त्रभमरि सर्वक्षोभिणि सर्वक्केदिनि सकलमनोन्मादिनि भक्तत्राणपरायणि 🕉 हीं रक्तचामुण्डि अमुकमाकर्षयाकर्षय। आं हीं कों परमयोगिनि परमकल्याणि पवित्रि ईश्वरि स्वाहा । गायत्रि हुं फट् स्वाहा ।

> अक्षिस्पन्दं च दुःस्वप्नं भुजस्पन्दं च दुर्मतिम् । दुश्चित्तं दुर्गितिं रोगं सदा नाशय शाङ्करि ॥ महाविद्यां प्रवक्ष्यामि महादेवेन निर्मिताम् । चिन्तितां च किरातेन मातृणां चित्तनन्दिनीम् ॥ उत्तमां सर्वविद्यानां सर्वभृतवशङ्करीम् । सर्वपापक्षयकरीं सर्वशत्रुनिवारणीम् ॥

कुलगोत्रकरीं विद्याधनधान्ययशस्करीम् । जृम्भिणीं स्तम्भिनीं देवीमुत्साहबलवर्धनीम् ॥ सर्वज्वरोच्चाटनीं च सर्वमन्त्रप्रभञ्जनीम् । सनातनीं मोहिनीं च सर्वविद्याप्रभेदिनीम् ॥ विश्वयोनिं महाशक्तिमायुः प्रज्ञाविवर्धनीम् । मातङ्गीं मदिरामोदां वन्दे तां जगदीश्वरीम् ॥ मोहिनीं सर्वलोकानां तां विद्यां शाम्बरीत्रयाम् । अभीष्टफलदां देवीं वन्दे तां जगदीश्वरीम् ॥

परकृताभिचारभस्मनां यन्त्रीकृततुष्टित्रकोणयन्त्रमध्ये पदन्यासारिष्टं जिन्नं छिन्धि । अरिष्टकारिणं हन हन । कृष्णपक्षरिक्तसन्ध्यामरिष्ट-युक्तप्रकृतिकाले योगिनीकालाशनिकृतारिष्टं कृतद्दष्टिं जिन्नं छिन्धि । अरिष्टकारिणीविभाविनीपरकृतदुष्टमहमन्त्रयन्त्रतन्त्रोचाटनीपेरितन्नक्षराक्षसशा-किनीडाकिनीछायावासिनीकङ्कालीहिरण्याक्षसिन्धमहमुक्तकश्यादिपिशाचेभ्यो महाभयं छिन्धि । अरिष्टकारिणीछेदिनीपरकृतसर्वोपद्रवेभ्यः सर्पोलक्षकाककङ्ककपोतादिवृश्चिकामिज्वालामण्डलामेण नवकारश्मशानभस्मना परवश्ययन्त्रतन्त्रादिदुष्टवाक्स्तम्भनं च सभाजयं ब्लं फट् फट् ॐ नमो महाविद्याये स्वाहा । ऐकाहिकं द्वचाहिकं व्याहिकं चातुर्थिकं पञ्चाहिकं षष्टाहिकं सप्ताहिकमधीनासिकं मासिकं द्विमासिकं त्रिमासिकं षाण्मासिकं सांवत्सरिकं वातिकं पैत्तिकमापस्मारिकं न्नाङ्कीकं श्लेष्मिकं सान्निपातिकं संतत्रज्वरं शीतज्वरमुष्णाज्वरं विषमज्वरं गण्डिपत्तताञ्जकविस्कोटकादित्वमोगादिसर्वरोगान् सर्वविषं जिन्न कि ।

आचन्तरान्याः कवयः पुराणाः सूक्ष्मा बृहन्तो छनुशासितारः । सर्वान् ज्वरान् झन्तु ममानिरुद्धप्रधुष्नसङ्कर्षणवासुदेवाः । आद्यानिरुद्धाखिलविश्वरूप त्वं पाहि नः सर्वभयादजस्म ॥ त्रिपाद्धस्मप्रहरणस्त्रिशिरा रक्तलोचनः । स मे प्रीतः सुख दद्यात् सर्वामयपतिज्वेरः ।.

विद्यहे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि। तन्नो भस्मायुधाय प्रचोदयात्। शिरदशूलाक्षिशूलकर्णशूलनासिकाशूलगण्डशूलकपोलश्लतालुशूलो-ष्ठशूलजिह्वाशूलमुखशूलकण्ठशूलकूर्परशूलावरगलशूलस्कन्धशूलबाहुशूलकक्षशूल-प्रकोष्ठरालमणिबन्धरालकररालकरपृष्ठरालकराङ्गुलीरालहृदयरालमनःश्लस्तन -शूलपार्श्वरालकुक्षिरालनाभिरालकटिरालगुदरालगुह्यरालम्लरालोरुरालजानुराल -जङ्घाशूलगुल्फशूलपादशूलपादाङ्गुलीशूलविस्फोटकप्रभेदिनि हीं ॐ नमो भगवति परच्छेदमंत्रायते भो भो भो दिष्टशूलमुष्टिशूलमुष्टिपृष्टशूल-मुष्टिपार्श्वरालसर्वरालपारावारङ्गमनायै स्वाहा । ॐ नमो भगवते नायकाय छिन्धि छिन्धि आवेशयावेशय परमेश्वराय अघोररूपाय ही ज्वल ज्वल मुलूर्मुलूर् हीं फर् फर् स्वाहा । आत्मरक्षापररक्षाप्रत्यक्षरक्षाऽभिरक्षावायु-रक्षोदकरक्षामहान्धकारोल्काविद्युदग्न्यनिलचोरशस्त्रास्त्रेभ्यो भयान्मां रक्ष रक्ष। पथगतांश्चोरान् रात्रून् बन्धय बन्धय । ॐ फों च्री इहीं ब्लूं आं हीं कों श्री हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय महाभुजपरिवारित-सप्तद्वीपाय । अस्मद्वसुविद्यम्पकान् चोरसमूहान् सहस्रभुजैर्दशदिक्षु बन्धय बन्धय । चोरान् ध ध ध ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा । महादेवस्य तेजसा भयक्करादिष्टदेवतां बन्धयामि । महागणेन पश्चशीर्षेण पाणिना ॐ ब्छं ग्लौं हं गं ग्लों हरिद्रागणपतये वरवरदाय सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा । कलहलपिङ्गलकण्ठमयी रुद्राङ्गी रुद्रजटी महावृक्षनिवासिनी महामत्तर्मी स्वरबीजैर्बन्धयामि । ॐ श्री हीं ऐं ॐ नम उच्छिष्टचाण्डालि माति सर्वजनवराङ्करि झीं स्वाहा । ॐ ऐं हीं श्री ऐं झीं सो: ॐ नमो अगवित माति सर्वजनमनोहारिण सर्वदु:स्वरझिन झीं हीं श्री सर्वराजवराङ्करि सर्वश्रीपुरुषवराङ्करि सर्वदुष्टमुगवराङ्करि सर्वसत्त्ववराङ्करि सर्वलोकवराङ्करि अमुकं वरामानय स्वाहा । ॐ ऐं हीं श्री अं आं माति ॐ ऐं हीं श्री अं आं माति ॐ ऐं हीं श्री अं लं साति ॐ ऐं हीं श्री कं ऋं आति ॐ ऐं हीं श्री लं लं माति ॐ ऐं हीं श्री कं अः माति ॐ स्वर आति ॐ ऐं हीं श्री ओं ओं माति ॐ ऐं हीं श्री अं अः माति ॐ स्वर । ब्रह्मदण्ड विस्फुर विष्णुदण्ड विस्फोटय विस्फोटय । रुद्रदण्ड प्रज्वल प्रज्वल । वायुदण्ड पहर पहर । इन्द्रदण्ड भक्षय भक्षय । निर्ऋतिदण्ड हिल हिल । यमदण्ड रक्ष रक्ष । कुवेरदण्ड प्रज्वल प्रज्वल । अमिदण्ड श्रीह । नित्यानन्दिन हंसिन चिकणि रिङ्किन गिदिन पिग्निन त्रिश्लधारिण हुं फट् । कीं कीं कीं हीं हीं हीं ।

आयु: प्रज्ञां च सौभाग्यं धान्यं च धनमेव च । सदा शिवं पुत्रवृद्धिं देहि मे चण्डिके शुभे ॥

अथातो मन्त्रपदानि भवन्ति । ॐ छां छायायै स्वाहा । ॐ चं चतुरायै स्वाहा । ॐ कुं कुलि स्वाहा । ॐ खुं खुलि स्वाहा । ॐ हिं हिलि स्वाहा । ॐ जं जिले स्वाहा । ॐ झं झिल स्वाहा । ओं ऐं पिलि पिलि स्वाहा । ॐ हरं स्वाहा । ॐ हरहरं स्वाहा । ओं गं गन्धर्वाय स्वाहा । ॐ यं यक्षाय स्वाहा । ॐ यं यक्षाि पत्ये स्वाहा । ॐ रं रक्षसे स्वाहा । ॐ रं रक्षोऽधिपतय स्वाहा । ॐ मृदः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ उल्कामुिल स्वाहा । ॐ हं रहजिट स्वाहा । ॐ अं ऊं मं ब्रह्मविष्णुरुद्दतेजसे स्वाहा । ॐ हीं

श्री क्वीं नमश्रण्डिकाये महासिद्धरुक्ष्ये ममेष्टार्थसिद्धये धीमहि । तनः शक्तिः प्रचोदयात् । ॐ ऐं वद वद वाम्बादिनि क्षीं सौं महाक्षेमं कुरु कुरु ज्वाला-मालिनि विद्वासिनि विद्याया नाभौ हुं फद् स्वाहा। वर्णास्मिकायै ब्रह्माण्ये नमः। ॐ ऐं इर्धि श्री ऐं अं आं इं ई उं ऊं ऋं ऋं ऌं एं ऐं ओं औं अं अ: फं खंगं घं डं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं घं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं धं सं हं क्षं नमः स्वाहा। ॐ ऐं हीं श्री इं जं णं नं मं स्वाहा । 🕉 ऐं हीं श्री गायति सावित्रि सरस्वति हं फट् स्वाहा । ये भूतपेतिपशाचब्रह्मराक्ष्मनवग्रहभूतवेतालशाकिनीडािकनी-कूरमाण्डवासवाश्चत्वरराजपुरुषकलहपुरुषाः कुसुमान्भोवासिनस्तेषां बाधकं कण्टकं बधामि । इस्ती बधामि । चक्षुषी बधामि । श्रोत्रे बधामि । भुखं बभ्रामि । बाणं बभ्रामि । जिह्नां बभ्रामि । गतिं बभ्रामि । गतिं ब्रधामि । बुद्धिं ब्रधामि । आकाशं ब्रधामि । पातालं ब्रधामि । अन्तरिक्षं ब्रधामि । पार्थी ब्रधामि । सर्वाङ्गं ब्रधामि । ॐ क्षी बगलामुखि सर्वदुष्टानां बाचं मुखं पदं स्तम्भय। जिह्नां कीलय। बुद्धिं विनाशय। हीं 🥸 स्वाहा । ॐ नमो भगवति पुण्यपवित्रि महाविद्यासर्वार्थसाधिनि सिद्धलक्ष्मि बागीश्वरि परमसुन्दरि मां रक्ष रक्ष । 🕉 हीं फट् स्वाहा 🛚 🕉 हुं हीं श्रीं भीं ऐं हीं ॐ नमो भगवति महामाये कालि कङ्कालि महाकालि शाङ्करि परमकल्याणि पवित्रि शाम्भवि परंज्योति:परमालिके आदिभवान्यानन्दयोगिन्यनादियोगिन्यादिपतियोगिनि रेणुकायोगिन्येकाक्षरि परब्रह्मणि महाकालि सिद्धिकारिणि शिवरूपिणि सरस्वति मत्तकालि मन्मथमनोन्मादिन्यादिभवान्यखिलाण्डकोटिब्रह्माण्डनायिक बं बं ब्रह्माण्ड-निलय मां मा हेश्वरि महामाये वें वें वैष्णवि वरमुनिदेवि वां वां वाराह्यादिमेदिनि वं वं वनदुर्गे वरित्रवेदि स्थं स्थ स्थलदुर्गे स्थलित्रवेदि जं जं जलदुर्गे जलित्रवेदि अं अं अग्निदुर्गे आनन्दवेदि चं चं चण्डदुर्गे चण्डकपालिनि सां सां सकलदुरितनिवारणि हं हं हंसरूपिण्यष्टहासिनि कं ऊं उत्तिष्ठ पुरुषि दुं हुं हीं हीं कों कों मां मां महाविधे दुं हीं दुर्गीये नमः। नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः। द्विषन्तं मे नाशय। तं खुत्यो मृत्यवे नय। इष्टं रक्ष रक्ष। अरिष्टं मे मञ्जय मञ्जय स्वाहा।

🕉 ऐं हीं श्री आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निक्शयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् । 🕉 सूर्याय स्वाहा । 🕉 ऐं हीं श्री आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गर्थे । ॐ सोमाय स्वाहा । ॐ ऐं हीं श्री अग्निर्मूर्घा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति । ॐ अङ्गारकाय स्वाहा । ॐ ऐ हीं श्री उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः। द्धिकामग्रिमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि इये वः। ॐ बुधाय स्वाहा । ॐ ऐं हीं श्री बृहस्पते अति यदयों अर्हाद्युमद्विभाति कतुमज्जनेषु । यहीदयच्छवसर्तप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । ॐ बृहस्पतये स्वाहा । 🕉 ऐं हीं श्री शुक्तः शुशुकाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः। परि प्रजातः ऋत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् । ॐ शुकाय स्वाहा । 🕉 ऐं हीं श्री शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वात्वरपा अप सिध:। ॐ शनैश्चराय स्वाहा। ॐ ऐं हीं श्री कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सम्बा। कया शचिष्ठया वृता। ॐ राहवे स्वाहा। 🕉 ऐं हीं श्रीं केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजा-यथाः । ॐ केतवे स्वाहा । ॐ ऐं हीं श्री अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ऋं लुं लूं एं ऐं ओं ओं अं अः कं लंगं घं डं चं छं जं झं वं टं ठं डं ढं णंतं थंदं घंनं पंफंबं भंमं यं रं लंबं शं षं सं हं क्षंनमः स्वाहा। अश्रम्ये स्वाहा । ॐ भरण्ये स्वाहा । ॐ कृतिकाये स्वाहा । ॐ रोहिण्ये स्वाहा । ॐ मृगशीर्षाय स्वाहा । ॐ आद्रीये स्वाहा । ॐ पृर्वसिवे स्वाहा । ॐ पृर्वपाय स्वाहा । ॐ आश्रेषाये स्वाहा । ॐ मधाय स्वाहा । ॐ पूर्वपाय स्वाहा । ॐ उत्तरफल्गुन्ये स्वाहा । ॐ हस्ताय स्वाहा । ॐ वित्राये स्वाहा । ॐ अभिजित्ये स्वाहा । ॐ विशासाये स्वाहा । ॐ अनूराधाय स्वाहा । ॐ ज्येष्ठाये स्वाहा । ॐ मृलाय स्वाहा । ॐ पूर्वाषाढाये स्वाहा । ॐ उत्तराषाढाये स्वाहा । ॐ श्रोणाये स्वाहा । ॐ श्रविष्ठाये स्वाहा । ॐ श्रतिष्ठाये स्वाहा । ॐ श्रतिष्ठाये स्वाहा । ॐ त्रत्रप्रोष्ठपदाय स्वाहा । ॐ रेवत्ये स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

अभ्ना भगवते रुद्राय । यममुखेन पञ्चयोजनिक्तीर्णेन रुद्रो विभाव रुद्रमण्डलम् । रुद्र सपरिवार देवताप्रत्यिधदेवतासिहतं रुद्रमण्डलं सम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचल-मचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसपिसिंहव्याघ्राम्न्याधुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्री क्षीं ब्लं फ्रों आं हीं कों हुं फर्र स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनानमृत्योमुक्षीय मामृतात् । यो रुद्रो अभी यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

उँ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशीन्द्रो देवता । ऐरावतारूढो हेमवर्णो वज्राङ्कुशहस्त इन्द्रो बभ्रात्विन्द्रमण्डलम् । इन्द्र सपरिवार देवता-प्रस्यधिदेवतासहितमिन्द्रमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष। अचलमचलमाक्रम्याकम्य महावज्रकवचैरकैः राजचोरसर्पसिंहच्याघाग्न्याद्युपद्भवं नाशय नाशय। ॐ हां हीं हूं श्री हीं ब्लं भों आं हीं कों हुं फट् स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। इन्द्रं बो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः। वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अअस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि। ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिश्यिमदेवता । मेषारुदो रक्तवणीं ज्वालाहस्तोऽग्निर्वभात्वग्निमण्डलम् । अग्ने सपरिवार देवताप्रत्यिष-देवतासिहतमग्निमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरस्नैः राजचोर-सपिसिहन्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्रीं क्षीं न्द्रं फ्रों आं हीं कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनानमृत्योम्रीक्षीय मामृतात् । अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतुम् । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विणो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि यमो देवता । महिपारूढो नीलवर्णः कालदण्डो यमो बधातु यममण्डलम् । यम सपरिवार देवता-प्रत्यधिदेवतासहितं यममण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरसैः राजचोरसपीसिंहन्याघ्राग्न्याद्यपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्री क्री ब्लं फ्रों आं हीं कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम ।

उर्बारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्श्वक्षीय मामृतात् । यमाय सोमं खुनुत यमाय जुहुता हिवः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदृतो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । अन्यो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । नैर्ऋत्यां दिशि निर्ऋतिर्देवता । नरारूढो नीरुवर्णः खड्गहस्तो निर्ऋतिर्विधातु निर्ऋतिमण्डलम् । निर्ऋते सपरिवार देवताप्रत्यिधदेवतासिहतं निर्ऋतिमण्डलं सम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकस्याकस्य महावज्ञकवचैरस्नैः राजचोरसपिसिंहन्याघ्राग्न्याचुपद्ववं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्री श्ली ब्लं फ्रों आं हीं कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्भुक्षीय मासृतात् । मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । बारुण्यां दिशि वरुणो देवता ।

मकरारूढः श्वेतवर्णः पाशहस्तो वरुणो बधातु वरुणमण्डलम् । वरुण

सपरिवार देवताप्रत्यिवदेवतासिहतं वरुणमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं

बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्ञ
कवचैरकैः राजचोरसपिसिंहन्याघाष्ट्रयाखुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं

हूं श्री क्षी ब्लं फों आं ही कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे

सुगर्निय पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्गुक्षीय मामृतात् । इमं मे

वरुण श्रुधी हवमद्या च मृद्धय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा

वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविभिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस

मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अम्रस्य विषुतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि वायुर्देवता । मृगारूढो चूझवर्णो ध्वजहस्तो वायुर्वभातु वायुमण्डलम् । वायो सपरिवार देवता-प्रत्यिधदेवतासहितं वायुमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं वन्धय वन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरक्षेः राजचौरसपिसिहल्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्री झीं ब्लं. भों आं हीं कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामा-तर्द्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अञ्चर्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय व्याः ।

क्ट नमो भगवते रुद्राय । कौबेर्यो दिशि कुबेरो देवता । अधा-क्टः पीतवणों गदाङ्कुशहस्तः कुबेरो बधातु कुबेरमण्डलम् । कुबेर सपरिवार देवताप्रत्यधिदेवतासहितं कुबेरमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्ञ-क्वचैरस्तैः राजचोरसपीसहत्याघाम्याध्यप्रतं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हुं श्रीं क्षीं ब्लं फ्रों आं हीं कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विद्ययं समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्यतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः । ॐ नमी भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशीशानी देवता । वृषसाह्दः श्वेतवर्णस्विश्लहस्त ईशानो बधात्वीशानमण्डलम् । ईशान सपरिवार देवताप्रत्यिधदेवतासहितमीशानमण्डलं भम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकन्याक्रम्य महावज्रकवचैरसैः राजचोरसपिसिंहत्याष्ट्राग्न्याद्युपद्ववं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्रीं क्षां ब्लं कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनानमृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं जगतस्तम्थुपस्पति धियं जिन्वमवसे ह्महे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृथे रिक्षता पायुरद्वधः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावि दिवो अभस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ब्रह्मा देवता । हंसारूढो रक्तवर्णः कमण्डलुहस्तो ब्रह्मा ब्रह्मातु ब्रह्ममण्डलम् । ब्रह्मन् सपरिवार देवता-प्रत्यिधिदेवतासहितं ब्रह्ममण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्तैः राज-चोरसपिसिंहव्याघ्राग्न्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्रीं श्रीं ब्र्ह्मां आं हीं क्रों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्ध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनानमृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ब्रह्मा देवानां पद्रवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । इयेनो गृष्ठाणां स्विधितर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्तादिशि वासुकिर्देवता । कूर्मारूढो नीलवर्णः पद्महस्तो वासुकिर्वधातु वासुकिमण्डलम् । वासुके सपरिवार देवता- t

प्रत्यिदिवतासिहतं बासुिकमण्डलं मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरकोः राजचौर-सर्गिसिहल्यान्नाम्न्याचुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्री क्रीं ब्लं फों आं हीं कों हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

उँ नमो भगवते रुद्राय । अवान्तरस्यां दिशि विष्णुदेवता ।
गरुडारूढः स्यामवर्णः शङ्क्षचकाङ्कितहस्तो विष्णुविधातु विष्णुमण्डलम् ।
विष्णो सपरिवार देवताप्रत्यिविवतासिहतं विष्णुमण्डलं मम सपरिवारकस्य
प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकम्याकम्य
महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसपीसिंहन्याघाष्याद्युपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां
हीं हूं श्री क्षीं ब्लं फ्रों आं हीं क्रों हुं फर् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे
सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं
विष्णुविचकमे त्रेधा निद्धे पदम् । समृद्धमस्य पांसुरे । वर्धन्तु ते विमाविर
दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्बबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो
सगवते रुद्राय नमः ।

उँ नमो भगवते रुद्राय । सिक् च सीहितिश्च सिहितिश्च । उष्णा च शीता च । उष्रा च भीमा च । सदाझी सेदिरनिरा । एतास्ते अमे घोरास्तनुवः । ताभिरमुं गच्छ स्वाहा ।

अष्टापिधाना नकुली दन्तैः परिवृता पितः । सर्वस्यै वाच ईशाना चारु मामिह वादयेत् ॥ पें बद वद वाग्वादिनि स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः । ॐ नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशीन्द्रः सपरिवारो देवता प्रस्यिदिवता । तिद्द्शु त्रिशूलको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशको टिभूत- प्रेतिपशाचत्रसराक्षसशाकिनी डाकिनी काकिनी हाकिनी याकिनी राकिनी ग्राहान् बन्धयामि मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक स्याक स्याक मस सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक स्याक स्याक कवचैरस्तैः राजचोरसपिसिंह व्याघा- स्याक पृद्धवि नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्री क्षीं ब्लं फों आं हीं कों हुं कद स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारक मिव बन्धनान स्योक्षसीय मासतात् । लं इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जने स्यः । अस्माक मस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्वस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववी जान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

अभ्रेग्या दिश्यिः सपरिवारो देवता प्रत्यिदेवता। तिद्यु मारीचको नाम राक्षसः। तस्याष्टादशकोटिभूत- प्रेतिपशाचन्नसराक्षसशाकिनीडािकनीकािकनीहािकनीयािकनीरािकनीलािकनी- वेतालकािमनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य। सर्वतो मां रक्ष रक्ष। अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरस्तः राजचोरसपिसिंहत्याष्टा- स्याद्युपद्ववं नाशय नाशय। ॐ हां हीं हूं श्रीं झीं ब्लं कों आं हीं कों मां हुं फट् स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्ध पृष्टिवर्धनम्। उर्वारकिमिव बन्धनान्मत्योमुक्षीय मामृतात्। अग्नि दृतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुकतुम्। वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्ववीजान्यव न्नहा द्विषो जहि। ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः।

ॐ नमो भगवते रुद्राय। याम्यां दिशि यमः सपरिवारो देवता प्रत्यिषदेवता। तदिक्ष्वेकपिङ्गलको नाम राक्षसः। तस्याष्टादशकोटि- भ्तप्रेतिपशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडािकनीकािकनीहािकनीयािकनीरािकनी लािकनीवेतालकािमनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य । सर्वतो सां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याकस्य महावज्रकवचैरके राज-चोरसपिसिंहत्याघाम्याधुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्रीं र्क्षां ब्लं फ्रों आं हीं कों यां हुं फट् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हिवः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यिम-दृतो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अभस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय। नैर्ऋत्यां दिशि निर्ऋतिः सपरिवारो देवता प्रत्यिधदेवता। तिह्क्षु सत्यको नाम राक्षसः। तस्याष्टादशकोटिभ्तपेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडािकनीकािकनीहािकनी यािकनीरािकनीठािकनीवेतालकािमनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य। सर्वतो मां रक्ष रक्ष। अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरकः राजचोर-सपिसहिव्याधाग्न्याद्युपद्रवं नाश्य नाश्य। ॐ हां हीं हूं श्री क्षीं ब्लं फों आं हीं कों सां हुं फट् स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम्। उर्वारकिमिव बन्धानान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दु-हणावधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह। वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अभ्रस्य विद्यतः। रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः।

अ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि वरुणः सपरि-वारो देवता प्रत्यधिदेवता । तिहक्षु यत्वलो नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेतिपशाचब्रह्मराक्षसशािकनीडािकनीकािकनीहािकनी यािकनीरािकनीलािकनीवेतालकािमनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष। अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्ञकवचैरकैः राजचोरसर्पसिहन्याक्राम्न्यायुपद्ववं नाशय नाशय। ॐ हां हीं हूं श्री क्रीं इंदं कों कों वां हुं फट् स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्भुक्षीय मामृतात्। इसं मे वरुण श्रुधी हवमया च मृडय। त्वामवस्युराचके। तत्त्वा यासि ब्रह्मणा बन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविभिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस सा न आयुः प्र मोधीः। वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म जिहि । ॐ नमो मगवते रुद्राय नमः।

अश्र नमो मगवते रुद्राय । वायन्यां दिशि वायुः सपरिवारो देवता प्रत्यिविदेवता । तिह्क्षु प्रलम्बको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतभेत-पिशाचन्रक्षराक्षसशाकिनीडािकनीकािकनीहािकनीयािकनीरािकनीलािकनी वेतालकािमनीग्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अवलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरक्षैः राजचोरसपिसिंहन्याघाग्न्याखुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ ह्वां हीं हुं श्रीं क्षीं न्हं आं आं हीं कों हां हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्ध पृष्टिवर्धनम् । उर्वाहकमिब बन्धनान्मृत्योर्भुक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव बद्ध द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्धाय नमः ।

अन्मो भगवते रुद्राय । कौबेर्यो दिशि कुबेरः सपरिवारो देवता प्रत्यिदेवता । तिह्र्वश्वालको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभ्तप्रेतिषशाच-व्रह्मराक्षसशाकिनीडािकनीकािकनीहािकनीयािकनीरािकनीलािकनीवेताल कािमनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरस्नैः राजचोरस्पर्सिह्व्यााच्राग्न्याशुपद्रवं नाशय नाशय। ॐ हां हीं हूं श्री हीं ब्लं फ्रों आं हीं कों सां हुं फर् स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्ध-नान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदध्यं समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै। वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिहि। ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः।

अभ्ना भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशीशानः सपरिवारो देवता प्रत्यिधदेवता । तिह्रक्ष्ट्रन्मत्तको नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभ्तप्रेतिपशाचन्त्रक्षराक्षसशाकिनीडािकनीकािकनीहािकनीयािकनीरािकनीलािकनीवेताल काियनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाकन्याकन्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसपिसंहत्याप्राम्न्याषु-पद्भवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्रीं क्षीं ब्लं फों आं हीं कों ॐ हं फर्द स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम् । उविरुक्तिमव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं जगतस्तस्थुपस्पति धियं जिन्वमबसे हमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृषे रिक्षता पायुरद्वश्यः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव क्रक्ष द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्ध्वायां दिशि ब्रह्मा सपरिवारो देवता प्रत्यिधदेवता । तिह्दक्ष्वाकाशवासी नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-पिशाचब्रह्मराक्षसशािकनीडािकनीकािकनीहािकनीयािकनीरािकनीलािकनी -वेतालकािमनीब्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अचलमचलमाक्रम्याक्रम्य महावज्रकवचैरस्त्रैः राजचोरसपिसिंहव्याध्राग्न्याद्य-पद्वं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हुं श्रीं क्लीं ब्लं फ्रों आं हीं कों ॐ हुं फद् स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृधाणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेमन् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्ताहिशि वासुिकः सपरिवारो देवता प्रत्यिदिवता । तिह्सु पाताठवासी नाम राक्षसः । तस्याष्टादशकोटिभूतप्रेत-पिशाचब्रसराक्षसशािकनीडािकनीकािकनीहािकनीयािकनीरािकनीठािकनी - वेताठकािमनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । अच्छमच्छमाकन्याकम्य महावज्रकवचैरकः राजचोरसपिसिंह्व्याघाग्न्यायुपद्रवं नाशय नाशय । ॐ हां हीं हूं श्री क्षीं ब्दं फों आं हीं कों लां हुं फट्ट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्धं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मत्योर्भक्षीय मामृतात् । नमो अस्तु सपेंभ्यो ये के च प्रथिवीमन् । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सपेंभ्यो नमः । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय। अवान्तरस्यां दिशि विष्णुः सपरिवारो देवता प्रत्यधिदेवता। तिह्क्षु भीमको नाम राक्षसः। तस्याष्टादशकोटिभूतपेतिपशाचब्रह्मराक्षसशािकनीडािकनीकािकनीहािकनी यािकनीरािकनीलािकनीवेतालकािमनीप्रहान् बन्धयािम मम सपरिवारकस्य। सर्वतो मां रक्ष रक्ष। अचलमचलमाकम्याकम्य महावज्रकवचैरस्रैः राजचोर-सपिसिंहव्याधाग्न्याद्यपद्ववं नाशय नाशय। ॐ हां हीं हूं श्री क्रीं ब्लं फों आं हीं कों ॐ हुं फट् स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्ध पृष्टिवर्धनम्।

उर्वारुकिमिव बन्धनान्ध्रत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं विष्णुर्विचकमे त्रेधा निद्धे पदम् । समूद्धमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अअस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्धाय नमः ।

उँ नमो अगवते रुद्राय । उँ कालि हुं कालि मं कालि पुलकिते पुलकिते उच्चाटन्युच्चाटिन उँ कालि अवानि राजपुरुषक्षीपुरुषवशक्करि स्वाहा । उँ नमो अगवति इन्द्राक्षि मम शत्रुप्राणिनां रक्तपायिनि हां प्रस प्रस । गृह गृह । दुष्टप्रहण्वालामालिनि मोहिनि स्तम्भय स्तम्भय । सर्व-दुष्टप्रदुष्टान् शोषय शोषय । मारय मारय । मम शत्रूणां शिरोलुण्टनं कुरु कुरु । ठः ठः त्वाहा । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुक्तमिव बन्धनान्मृत्योर्मृक्षीय मामृतात् । उत्त्वा मदन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्म द्विषो जिह । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । उर्धन्ते नमो भगवते रुद्राय नमः ।

उर्ज नमो भगवते रुद्राय । प्राच्यां दिशि उर्ज नमो भगवति इन्द्राणि वज्रहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । ह्वां ग्रस ग्रस । गृह गृह । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्भृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । उर्ज नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । आग्नेय्यां दिशि ॐ नमो भगवति आग्नेयि ज्वालाहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां ग्रस ग्रस । गृह्व गृह्व । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्धिक्षीय मामृतात् । अस्मि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकतुम् । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यद ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

अभ नमो भगवते रुद्राय । याम्यां दिशि ॐ नमो भगवति यामि कालदण्डहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां प्रस प्रस । गृह गृह । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हिवः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यिमदूतो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । अभ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

अभ्ना भगवते रुद्राय। नैर्ऋत्यां दिशि अभ्ना भगवति निर्ऋति खन्नहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय। सर्वतो मां रक्ष रक्ष। हां ग्रस ग्रस। गृह गृह । हुं झिट स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह। वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिहि। अभ्ना भगवते रुद्राय नमः।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वारुण्यां दिशि ॐ नमो भगवित वारुणि पाशहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां प्रस प्रस । गृह गृह । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं सजामहे सुगर्निंध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यारि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हिविभिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो मगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । वायव्यां दिशि ॐ नमो भगवति वायवि ध्वजहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां प्रस प्रस । गृह गृह । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय। कौबेर्यो दिशि ॐ नमो भगवति कौबेरि गदाङ्कुशहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय। सर्वतो मां रक्ष रक्ष। हां ग्रस ग्रस। गृह गृह । हुं झिट स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम्। उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विद्थ्यं सभयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै। वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ईशान्यां दिशि ॐ नमो भगवति ईशानि त्रिशूलहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हां ग्रस ग्रस । गृह्ण गृह्ण । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामञ् सुगर्निथ पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति षियं जिन्यमवसे हमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसाम-रक्षिता पायुरदञ्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्यवीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ऊर्घ्वायां दिशि ॐ नमो भगवति ब्रह्माणि सुक्सुवकमण्डल्वक्षस्त्रहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । ह्वां ग्रस ग्रस । गृह गृह । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्भुक्षीय मामृतात् । ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । स्येनो गृधाणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । अधस्ताहिशि ॐ नमो भगवति पाताल-वासिनि विषगलहस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय । सर्वतो मां रक्ष रक्ष । ह्वां प्रस प्रस । गृह्व गृह्व । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । नमो अस्तु सपेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सपेभ्यो नमः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु रार्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय। अवान्तरह्यां दिशि ॐ नमो भगवित महालक्ष्मि पद्मारूढे पद्महस्ताभ्यां मम सपरिवारकस्य प्रत्यक्षं बन्धय बन्धय। सर्वतो मां रक्ष रक्ष। हां प्रस ग्रस। गृह गृह । हुं झटि स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निध पृष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिन बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इदं विष्णुर्विचकमे त्रेधा निदधे पदम् । समूद्रमस्य पांसुरे । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति कौमारि शक्तिहस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निष पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इन्द्रं वो विश्वत-स्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अञ्चस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो अगवते रुद्राय। ॐ नमो अगवति वाराहि असिहस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष। हुं झिट स्वाहा। त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्भुक्षीय मामृतात्। अग्निं बूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुकतुम्। वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः। रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो अगवते रुद्राय नमः।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति सिद्धचामुण्डेश्वरि शङ्खचकहस्ताभ्यां सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमिव बन्धनान्मृत्योर्भुक्षीय मामृतात् । यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हिवः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यिमदूतो अरंकृतः । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्ववीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति गणेश्वरि परशुहस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । मोषुणः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणावधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अभ्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वजीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति क्षेत्रपालिनि विषज्वाला-हस्ताभ्यां सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्ध पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविभिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति नारसिंहि दशननलाग्रैः सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झिट स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगिन्धि पृष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्धक्षीय मामृतात् । तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवां स्या वृणीमहे । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवति बगळामुखि ब्रह्मास्त्रेण सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृ-तात् । सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै । वर्षन्तु ते विभाविर दिवो अश्रस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वेबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय । ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्णेश्वरि कनंकदर्वि-हस्तेन सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झटि स्वाहा । त्रियम्बकं यजामहे सुगर्निष पृष्टिवर्घनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति धियं जिन्कमवसे ह्रमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्भृषे रिक्षता पायुरद्द्धः स्वस्तये । वर्षन्तु ते विभावरि दिवो अञ्चस्य विद्युतः । रोहन्तु सर्वबीजान्यव ब्रह्म द्विषो जहि । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्धाय ।
भगवति भवरोगात् पीडितं दुष्कृतौघात्
सुतदुहितृकळत्रोपद्रवैर्व्याप्यमानम् ।
विलसदमृतदृष्ट्या वीक्ष्य विभ्रान्तचित्तं
सकलभुवनमातस्त्राहि मां त्वं नमस्ते ॥

ॐ हीं श्री भगवत्ये नमः । ॐ तमो भगवित वद्मारूढे पद्महस्ताभ्यां सर्वतो मां रक्ष रक्ष । हुं झिट स्वाहा ।

लक्ष्मी क्षीरसमुद्रराजतनयां श्रीरक्षधामेश्वरी
दासीभूतसमस्तदेववनितां लोकैकदीपाङ्कुराम् ।
श्रीमत्कामकटाक्षलब्धविभवब्रह्मेन्द्रगङ्गाधरां
तां त्रैलोक्यकुटुम्बिनीं सरसिजां वन्दे मुकुन्दिप्रयाम् ॥
ॐ हीं श्रीं क्षीं श्रीं सिद्धलक्ष्म्ये स्वाहा । सुवर्ण धर्म परिवेद
वेनम् । इन्द्रस्यात्मानं दशधा चरन्तं स्वाहा । ॐ नमो मगवत्ये सर्वतो
मूर्जुवः स्वरोमिति दिम्बन्धः । ॐ हीं दुर्गे स्वाहा ।

वन्दे रुद्रिषयां नित्यमुत्पनां कामरूषिणीम् । उल्कामुखीं रुद्रजटीं नागपुष्पशिरोरुहाम् ॥

मं महिषमिति स्वाहा । ॐ हीं हुं हुं फट् स्वाहा । प्रयोगबीजानि । ॐ हीं हीं श्री ऐं ग्लों ॐ हीं कों गं ॐ नमो मगवते
महागणपत्रये स्मरणमात्रसन्तुष्टाय सर्वविधानकाशकाय सर्वकानप्रदाय
मबद्यन्थिमोचनाय हीं सर्वभृतबन्धनाय कों साध्याकर्षणाय हीं जगत्तयबश्चीकरणाय सी: सर्वमन:क्षोभणाय श्री महासंपत्पदाय ग्लों भूमण्डलाधिपत्यप्रदाय महाज्ञानप्रदाय चिदानन्दात्मने गौरीनन्दनाय महायोगिने शिविधयाय
सर्वानन्दवर्धनाय सर्वविद्याप्रकाशनप्रदाय द्वां चिरंजीविने ब्लं संमोहनाय
क्रं मोक्षप्रदाय । फट् वशीकुरु वशीकुरु । वोषडाकर्षणाय हुं विद्वेषणाय
बिद्वेषय विद्वेषय । फट् उच्चाटयोश्वाटय । ठः ठः स्तम्भय स्तम्भय । खें खें
मारय मारय । शोषय शोषय । परमन्त्रयन्त्रतन्त्राणि छेदय छेदय । दुष्टप्रहान्निवारय निवारय । दुःखं हर हर । व्याधि नाशय नाशय । नमः संपनाय संपन्नाय स्वाहा । सर्वपञ्चवस्वरूपाय महाविद्याय गं गणपत्रये स्वाहा ।

यन्मन्त्रेक्षितलाञ्छितासमनधं मृत्युश्च वज्राशिषो
भृतपेतिपशाचकाः प्रति हता निर्धातपातादिव ।
उत्पन्नं च समस्तदुःखदुरितं सुखाटनोत्पादकं
वन्देऽभीष्टगणाधिपं भयहरं विद्रोधनाशं परम् ॥
ॐ गं गणपतये नमः । ॐ हीं ऐं है स्वाहा ।
हैकारप्रथमाक्षरश्च वदने द्वां द्वीं कुचावेष्टिते
क्षीं नाभिस्थमनक्षराजसदने व्छंकारम्रुद्धये ।
सः पादेऽपि च पश्चवाणसदने वन्धूकपुष्पधुर्ति
ध्यायेक्षमनिवर्तितेन पुलको गक्काष्टवाहो द्ववः ॥

अभी अगवते कामदेवाय द्रां द्रां द्रावणवाणाय द्रीं द्रीं सन्दी-पनवाणाय क्षीं क्षीं संमोहनवाणाय व्लं व्लं सन्तापनवाणाय सः सः वशीकरणवाणाय हीं हीं मदनावेशवाणाय सकलजनचिन्तितं द्रावय द्रावय । कथ्यय कथ्यय । हुं फट् स्वाहा । अभ क्षीं नमो अगवते कामदेवाय श्रीं सर्वजनप्रियाय सर्वसंमोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हन हन वद वद तप तप संमोहय संमोहय सर्वजनं मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा । अभ हीं श्रीं क्षीं क्षीं ह्लैं सहसार हुं फट् स्वाहा । अभ नमो विष्णवे । अभ नमो नारायणाय । अभ नमो जय जय गोपीजनवस्त्रमाय स्वाहा । सहस्रारज्वालावर्त क्षीं हन हन हुं फट् स्वाहा । अभ तत्सिवतुर्वरेण्यं अगों देवस्य धीमहि । घियो यो नः प्रचोदयात् । अभीनारावणस्य चरणी श्रारणं प्रपचे । श्रीमते नारायणाय नमः ।

> उत्रं बीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोष्ठस्वम् । नृसिहं भीषणं भहं मृत्युमृत्युं नमान्यहम् ॥

ॐ ऐं हीं श्रीं दुं हुं फट् कनकवज्रवेह्रयंमुक्तालङ्कृतभृषणे एखेहि आगच्छागच्छ सम कर्णे प्रविश्य प्रविश्य भ्तम।वेष्यद्रत्मानकालज्ञानदूरदृष्टिदुरस्थश्रवणं ब्रूहि ब्रूहि । अग्निस्तम्भनं शत्रुमुखस्तम्भनं शत्रुमुद्धस्तम्भनं शत्रुमुखस्तम्भनं परेषां गतिमतिवाग्जिह्यास्तम्भनं कुरु कुरु । शत्रुकार्य हन हन । सम कार्य साध्य साध्य । शत्रुणामुद्योगविन्वंसनं कुरु कुरु । वीरचामुण्डि असिकण्टकधारिणि नगरपुरीपट्टणराजधानीसंमोहिनि असाध्यसाधिन ॐ हीं श्रीं देवि हन हन हुं फट् स्वाहा । ॐ अमरदुर्गे
ॐ आं हां सौं ऐं क्लीं हुं सौ: ग्लों श्री कों एखेहि अमराष्ट्र सकलजगन्मोहिनि सकलाण्डजिपण्डजान् श्रामय श्रामय । राजप्रजादशहरि
संमोहय संमोहय । महामाय अष्टादशपीठक्रिपणि अमलवरयं स्फुर स्कुर ।

प्रस्फुर प्रस्फुर । कोटिसूर्यप्रभाभासुरे चन्द्रजटे मां रक्ष रक्ष । मय शत्रून् अस्मीकुरु अस्मीकुरु । विश्वमोहिनि हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय ।

शिरो रक्षतु वाराही चैन्द्री रक्षेद्भुजद्वयम् ।

चामुण्डा हृदयं रक्षेत् कुर्क्षि रक्षतु वारुणी ॥
वैष्णवी पादमाश्रित्य पृष्ठदेशे धनुर्धरा ।

यथा ग्रामे तथा क्षेत्रे रक्षेन्मां च पदे पदे ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

ब्राह्मि माहेश्वरि कौमारि वैष्णवि वाराहि इन्द्राणि चासुण्डे सिद्धिचानुण्डे क्षेत्रपालिके नारसिंहि महालक्ष्मि सर्वतो दुर्गे हुं फट् स्वाहा ।

> भगवन् सर्वविजय सहस्रारापराजित । शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि श्रीकरं श्रीसुदर्शनम् ॥ अरुणी वारुणी रक्षेत् सर्वग्रहनिवारणी । सर्वदारिद्रचशमनी सर्वराजवशङ्करी ॥

सर्वकर्मकारिणि ॐ भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । ॐ स्वः स्वाहा । ॐ भूभुवः स्वः स्वाहा । ॐ आं हीं कों ।

फट् फट् जिह महाकृत्ये विधूमाग्निसमप्रभे । हन अत्रृक्षित्राूलेन कुद्धास्ये पिब शोणितम् ॥

देवि देवि महादेवि हीं मम शत्रून् विनाशय विनाशय। अहं न जाने न च पार्वतीशः। अष्टी ब्राह्मणान् ब्राह्मित्वा ततो महाविधा सिध्यति। अशिक्षिताय नोपयच्छेत्। एकविंशतिवाराणि परिजप्य शुचिभवेत् । पत्रं पुष्पं फलं दद्यात् स्त्रियो वा पुरुषस्य वा । अवश्यं वशमित्याहुरात्मना च परेण वा ॥ महाविद्यावतां पुंसां मनःक्षोभं करोति यः । सप्तरात्रौ व्यतीतायां स च शत्रुर्विनश्यति ॥ कुवेरं ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दमावह । ज्वरं मृत्युभयं घोरं द्विषं नाशय नाशय ॥

ॐ नमो भगवतेऽमृतवर्षाय रुद्राय हृदयेऽमृताभिवर्षणाय । मम ज्वरदाहशान्ति कुरु कुरु स्वाहा । ॐ हों जूं सः मां पालय पालय सः जूं हों ॐ । ॐ नमो भगवते । भो भोः सुदर्शन दुष्टं दारय दारय । दुरितं हन हन । पापं मथ मथ । आरोग्यं कुरु कुरु । द्विषन्तं हन हन । ठः ठः सहस्रार हुं फट् । भस्मायुधाय विद्यहे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो ज्वरः प्रचोदयात ।

> समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः । चातुर्थिकं ज्वरं हन्ति लिखित्वा यस्तु पश्यति ॥

यस्ते मन्योरिति च चतुर्दशर्चस्य स्कस्य रुद्रो दुर्वासास्तपनपुत्रो मन्युर्देवता । अपनिलयन्तामिति बीजम् । संसृष्टमिति शक्तिः । शत्रुं क्षपयेति कीलकम् । मम शत्रुक्षयार्थे जपे विनियोगः । अथ ध्यानम्—

दंष्ट्राकरालवदनं ज्वालामालाशिरोरुहम् । कपालकर्तिकाहस्तं रुद्धं मन्युं नमान्यहम् ॥ यस्ते मन्योऽविधद्भज्ञः सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् । साद्याम दासमार्ये त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥ मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः। मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥ अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रृन् । अभित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३ ॥ त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्मामो अभिमातिषाहः। विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥ अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव कत्वा तविषस्य प्रचेतः। तं त्वा मन्यो अकतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्वलदेयाय मेहि ॥ ५॥ अयं ते अस्प्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः । मन्यो विज्ञन्तिम मामा वृश्तस्य हनाव दस्यूनुत बोध्यापेः॥ ६॥ अभि पेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्खनाव भूरि। जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुमा उपांद्यु प्रथमा पिबाब ॥ ७ ॥ त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः । तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हृत एघि । हत्वाय शत्रृन् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृघो नुदस्व ॥ सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून्। उम्रं ते पाजो नन्वा रुरुष्टे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥१०॥ एको बहूनामिस मन्यवीळितो विशं विशं युधये सं शिशाधि । अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं घुमन्तं घोषं विजयाय कृष्महे ॥११॥ विजेषकृदिन्द्र इवानवत्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा अवेह । प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमिस विद्या तमुत्सं यत आ बभूव ॥ आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो विभर्ष्यभिभृत उत्तरम् । कत्या नो मन्यो सह मेदोधि महाधनस्य पुरुह्त संस्रजि ॥१३॥ संस्रष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः । भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अपनिलयन्ताम् ॥

हुं फट्।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।

स नः पर्वदित दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिताऽत्यिमः ॥

तामिमवर्णा तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।

दुर्गो देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरिस तरसे नमः ॥ २ ॥

अम्रे त्वं पारया नव्यो अस्मान् स्वस्तिभिरित दुर्गाणि विश्वा ।

पृश्च पृथ्वी बहुला न उवीं भवा तोकाय तनयाय शंयोः ॥२॥

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदिस्सन्धुं न नावा दुरिताऽतिपर्षि ।

अम्रे अत्रिवन्मनसा गृणानोऽस्माकं भृत्वितता तनूनाम् ॥ ४ ॥

पृत्वनाजितं सहमानमिममुमं हुवेव परमात् सघस्थात् ।

स नः पर्वदित दुर्गाणि विश्वा क्षामहेवो अति दुरिताऽत्यिमः ॥

मबोषि कमीडचो अध्वरेषु सनाच होता नव्यश्च सित्स ।

स्वां चामे तनुवं पिप्रियस्वास्मभ्यं च सोमगमा यजस्व ॥ ६ ॥

गोभिर्जुष्टमयुजो निषिक्तं तवेन्द्र विष्णोरनु सं चरेम ।

नाकस्य पृष्टमिम सं वसानो वैष्णवीं लोक इह मादयन्ताम् ॥

भास्कराय विद्याहे महाद्युतिकराय धीमहि । तन्नो आदित्यः प्रचोद-यात् । घृणिः सूर्य आदित्यो न प्रभावात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम् । श्री श्री सोऽहमर्कमहमहं ज्योतिरहं शिवः । आत्मज्योतिरहं शुकः सर्वज्योतिरसोऽहमोम् ॥ आदित्यं भास्करं भानुं रिवं सूर्यं दिवाकरम् । नामवट्कं स्मरेनित्यं महापातकनाशनम् ॥

कात्यायनाय विद्यहे कन्यकुमारि धीमहि । तलो दुर्गिः प्रचोदयात् ।

अन्न नमो भगवित माहेश्वरि हीं श्री क्लीं कल्पलते ममाभीष्टफलं देहि ।

प्रतिकूलं मे नश्यतु । अनुकूलं मे अस्तु । महादेव्ये च विद्यहे विष्णु
पल्ये च धीमहि । तलो लक्ष्मीः प्रचोदयात् । ॐ ब्लं हीं श्री क्लीं

ब्रह्मेशानि मां रक्ष रक्ष ।

पश्चम्यां च नवम्यां च पञ्चदश्यां विशेषतः ।
पिठत्वा तु महाविद्यां श्रीकामः सर्वदा पठेत् ॥
गन्धद्वारां दुराधर्षो नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥
श्रीमें भजतु । अलक्ष्मीमें नश्यतु ।
यां कल्पयन्ति नोऽरयः कूरां कृत्यां वधूमिव ।
तां ब्रह्मणे च निर्णुमः प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु ॥
यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह । पवमान वि तज्जिहि ॥
क्षिप्रं कृत्ये निवर्तस्व कर्त्तुरेव गृहान् प्रति ।
नाशयास्य पश्ंक्षेव वीरांश्चास्य निवर्हय ॥
अक्ष्महा । यददितं भगवित तत्सर्व शमय शमय स्वाहा । व

ॐ स्वाहा । यदुदितं भगवित तत्सर्वे शमय शमय स्वाहा । ॐ गायञ्ये स्वाहा । ॐ सावित्र्ये स्वाहा । ॐ सरस्वत्ये स्वाहा । ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्गरूपेभ्यः । तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् । तत्पुरुषाय विद्यहे महासेनाय धीमहि । तन्नः पण्मुखः प्रचोदयात् । तत्पुरुषाय विद्यहे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् । वेदात्मनाय विद्यहे हिरण्यगर्भाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् । नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। वज्रनखाय विद्यहे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात् । भास्कराय विद्यहे महाद्युतिकराय धीमहि । तन्नो आदित्यः प्रचोदयात् । वैश्वानराय विद्यहे लालीलाय धीमहि। तन्नो अग्निः प्रचोदयात्। कात्यायनाय विद्यहे कन्यकुमारि धीमहि । तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात् । सदाशिवाय विदाहे सहस्राक्षाय धीमहि। तन्नः साम्बः प्रचोदयात्। क्षेत्रपालाय विद्यहे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो मैरवः प्रचोदयात् । रघुवंश्याय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्। कुलकुमार्थे विद्यहे कौलदेवाय धीमहि । तन्नः कौलः प्रचोदयात् । कालिकायै विद्यहे रमशानवासिन्यै धीमहि। तन्नोऽघोरः प्रचोदयात्। 🕉 ऐ हीं श्री आनन्देश्वराय विद्यहे सुधादेव्ये च धीमहि। तन्नो अर्धनारीश्वरः प्रचोदयात् । एं वागीश्वर्ये च विद्महे क्लीं कामेश्वर्ये च धीमहि । तनः क्लीं प्रचोदयात् । ऐं त्रिपुरादेव्ये च विद्यहे क्लीं कामेश्वर्ये च धीमहि । सौ: तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् । हंसहंसाय विद्यहे सोऽहं हंसाय धीमहि । तन्नो हंसः प्रचोदयात् । यन्त्रराजाय विद्यहे महायन्त्राय धीमहि । तन्नो यन्तः प्रचोदयात् । तन्त्रराजाय विद्यहे महातन्त्राय धीमहि । तन्नस्तन्तः प्रचोदयात् । मन्तराजाय विद्यहे महामन्त्राय धीमहि । तन्नो मन्तः प्रचोदयात् ।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृषि । मधवञ्छिग्धि तव तन्न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि ॥ स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृतहा विश्वघो वशी।

कृषेन्द्रः पुर एतु नः स्वस्तिदा असर्यंकरः ॥

सहस्रपरमा देवी शतमूला शताङ्कुरा ।

सर्व हरतु मे पापं दूर्वा दुःस्वमनाशिनी ॥

काण्डात्काण्डात्मरोहन्ती परुषः परुषः परि ।

एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहिसि ।

तस्यास्ते देवीष्टके विषेम हविषा वयम् ॥

अश्वकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसुन्धरा ।

शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे ॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णिपिक्नलम् ।

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः ॥

अप्रेन शपामि। घोरेण त्वा भृगूणां चक्षुषा प्रेक्षे। रौद्धेण त्वाक्किरसां मनसा ध्यायामि। अघस्य त्वा धारया विध्यामि। अधरो मत्पद्यस्वासौ। उत्तुद शिमिजावरि। तल्पेजे तल्प उत्तुद। गिरी १ रनु प्रवेशय। मरीचील्प संनुद। याबदितः पुरस्तादुदयाति सूर्यः। ताबदितोऽमं नाशय। योऽस्मान् द्वेष्टि। यं च वयं द्विष्मः। खट् फट् जिहा। छिन्धी भिन्धी हन्धी कट्। इति वाचः कूराणि। नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः। द्विष्नतं मेऽभिराय। तं मृत्यो मृत्यवे नय। संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः। भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अपनिलयन्तां हुं फट्। अ हीं कृष्णवाससे नारसिंहवदने महाभैरिव विद्युक्तवालाजिह्वे करालवदने प्रत्यिक्तरे क्ष्मीं क्ष्मीं ज्वल ज्वल। अ नमो नारायणाय। घृणिः सूर्य आदित्यों सहस्नार

हुं फट् । इष्टं रक्ष रक्ष । अरिष्टं भक्षय मक्षय स्वाहा । ब्रक्षा नारदाय नारदो बृहस्पेनाय बृहस्पेनो बृहस्पतये बृहस्पितिरिन्द्रायेन्द्रो भारद्वाजाय भारद्वाजो जीवितुकामेभ्यः शिष्येभ्यः प्रायच्छत् क्षीं स्वाहा । नमो ब्रक्षणे नमो अस्त्वमये नमः पृथिन्ये नम ओषधीभ्यः । नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे बृहते करोमि । ॐ नमो भगवते श्री श्रीमन्महागरुडायामृतकल्कोद्भवाय वज्रनसाय वज्रतुण्डवज्रपक्षालङ्कृताय एश्रेहि महागरुड हुं फट् स्वाहा । ॐ श्री दुं सर्पोद्धककाककपोतवृश्चिकदंष्ट्रामिविषं नो भयं भूतपेतिपशाच्त्रसराक्षस-सकलिित्वषादिमहारोगविषं निर्विषं कुरु कुरु स्वाहा । विन्ध्यस्योत्तरे तीरे मारीचो नाम राक्षसः । तत्र मृत्रपुरीषाभ्यां हुताशनं शमय शमय स्वाहा । ॐ आं हीं कों एश्रेहि दत्तात्रेयाय स्वाहा । महाविद्यां ज्ञातवतो योऽस्मान् द्वेष्टि योऽरिः स्मरित यावदेकिविंशितं कृत्वा तावदिषकं नाशय ।

ब्रह्मविद्यामिमां दिच्यां नित्यं सेवेत यः सुधीः ।
ऐहिकामुष्मिकं सौस्यं प्राप्तोत्येव न संशयः ॥
अनवद्यां महाविद्यां यो दूषयित मानवः ।
सोऽवश्यं नाशमाप्तोति षण्मासाभ्यन्तरेण वै ॥
अप्रतः पृष्ठतः पार्श्व ऊर्ध्वतो रक्ष सर्वतः ।
चन्द्रघण्टाविरूपाक्षि त्वां भजे जगदीश्वरीम् ॥
एवं विद्यां महाविद्यां त्रिसन्ध्यं स्तौति मानवः ।
दृष्टा दृष्टजनाः सर्वे तस्य मोहवशं गताः ॥
दुर्गो देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुत्ररित तरसे नमः ॥
मातमें मधुकैटभिन महिषप्राणापहारोद्यमे
हेलानिर्मितधूम्रलोचनवधे हे चण्दरुष्डार्दिनि ।

निश्शेषीकृतरक्तवीजदनुजे नित्ये निशुम्भापहे शुम्भध्वंसिनि कालि सर्वदुरितं दुर्गे नमस्ते हर ॥ कालदण्डां करालास्यां रक्तलोचनभीषणाम् । कालदण्डपरं मृत्युं विजयां बन्धयाम्यहम् ॥ पञ्चयोजनविस्तीणं मृत्योश्च मुखमण्डलम् । तस्माद्रक्ष महाविद्ये भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥

अव ब्रह्म द्विषो जिह ।

वारिजलोचनसहाये वारिगतिं वारयासुकरनिकरै: । पीडितमत्र भ्रान्तं मामनिशं पालय त्वमनवद्ये ॥

अव ब्रह्म द्विषो जिह । ॐ हीं श्री क्षीं सिद्धलिक्ष्म स्वाहा । ॐ क्षीं हीं श्रीं ॐ आवहन्ती वितन्वाना । कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासांसि मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा । तनो मे श्रियमावह । लोमशां पशुमिः सह स्वाहा ।

श्रियं जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दघाति। श्रियं वसाना अमृतत्वमायन् भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥ ॐ हीं श्रीं क्षीं ब्लं फ्रों आं हीं क्रों हुं फट् स्वाहा। सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

*

f

देहमध्यगतो बिह्रविह्निमध्यगता द्युतिः । द्युतिमध्यगता दीप्तिर्दीप्तिमध्यगतः शशी ॥ शशिमध्यगतं देव्याश्चकं परमशोभनम् । तन्मध्ये च गतो बिन्दुर्बिन्दुमध्यगतं मनः ॥ मनोमध्यगतो नादो नादमध्यगताः कलाः। कलामध्यगतो जीवो जीवमध्यगता परा। जीवः परः परो जीवः सर्वे ब्रह्मेति भावयेत्॥

🕉 शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इत्यायर्वणरहस्ये वनदुर्गोपनिषत् समाप्ता

इयामोपनिषत्

कामरेफेन्दिरासमिष्टिक्षपिणीमेतित्रगुणमादौ तदनु कूर्चनीजद्वयं व्योमषष्ठस्वरिनन्दुमेलनक्षपं तदनु भुवनेशीद्वयं भवतु व्योमज्वलनेन्दिराशुन्यमेलनक्षपं ततो दक्षिणे कालिके चेत्यपि ततो मुखनीजसप्तकमुच्चार्य बृहद्भानुजायामुच्चरेत् । अयं स मन्त्रोत्तमः । य इमां सकुज्जपन् स तु देवेश्वरः ।
स तु विश्वेश्वरः । स तु नारिश्वरः । स तु सर्वगुरुः । स तु सर्वनमस्यः !
स तु सर्ववेदैरधीतो भवति । स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । स स्वयं सदाशिवः । त्रिकोणं त्रिकोणं त्रिकोणं त्रिकोणं पुनश्चेव त्रिकोणं साष्टपत्रं सकेसरं
भृपुरैकेण संयुतं तिस्मन्देवीं हृत्नेस्वामक्के विन्यस्य ध्यायेत् । अभिनवजल्वनीला कुटिलदंष्ट्रावराभयखड्गमुण्डसितहस्ता कालिका ध्येया । काली
कपालिनी कुला कुरुकुला विरोधिनी विप्रचित्तेति बहिः षद्कोणगाः ।
उम्रा उम्रप्रभा दीप्ता नीला धना वलाका मात्रा मुद्रा अमितेति नवकोणगाः ।
वास्ति नारायणी माहेश्वरी चामुण्डा वाराही नारिसंही कौमारी चापरा-

जितेत्यष्टपत्रगाः । चतुष्कोणेषु चत्वारो माधवरुद्रविनायकसौराः । दिश्च दिकपालाः । देवीं सर्वाङ्गेणादौ संपूज्य भगोदकेन तर्पणं पञ्चमकारेण पूजनमेतस्याः । एवं द्वित्रिक्रमेण कुर्वाणा मुनयो भवन्ति । नारिमित्रादि-स्थाणमस्यवर्तते । अमुष्या मन्त्रपाठकस्य गतिरस्ति । नान्यस्येह गतिरस्ति । एतस्यास्तारामनोर्दुर्गामनोस्युन्दरीमनोर्वा सिद्धिरिदानीम् । सर्वाः सुप्ता भूताः । असिताङ्गी जागिति । इमामसिताङ्गग्रुपनिषदं योऽघीते अपुत्री पुत्री भवति । योऽन्यस्य वरदो दृष्ट्या जगन्मोहयेत् । गङ्गादितीर्थक्षेत्राणामिष्टो-मादियज्ञानां फलभागीयते ।

इत्याथर्वणे सौभाग्यकाण्डे ध्यामोपनिक्त् समाप्ता

श्रीचकोपनिषत्

ॐ अथाह वै श्रीचके नित्याकान्ते । गौरीर्मियाय सल्लिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी बभृवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥

इति प्रत्यहं ससङ्गति सहस्रं कलशान् स्थाप्य शतं वा नव वा सर्वाभावे पूर्णाभिषेकं चरेत्। अष्टाष्टकं चरेत्। पञ्चपञ्चकं वा चरेत्। सर्वाभावे शतं पूजयेत्। अमृतत्वं गच्छति। श्रीचकन्यासं चरेत्। स व्यापकत्वं गच्छति। मूलाधाराद्विलान्तं क्रमेण न्यसेत्। स्वराट्चकं विराट्चकं सम्राट्चकं विराज्यचकं विश्वरूपचकं शत्रुजिचकं क्रमेण सप्तकलामयं न्यसेत्। स शिवो भवेत्। स कविर्भवेत्। स सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। स नवनाथाधिष्ठितो भवेत्। स भुवनाराधितो भवेत्। निर्विकरपेन मनसा वश्वरेच्छक्तिदेहे स कालीरूपो भवेत्। विना शक्ति न मोक्षो न ज्ञानं न सत्यं न धर्मो न तपो न हरिर्न हरो न विरिधिः। सर्व शक्तियुक्तं भवेत्। तत्संयो-गात् सिद्धीश्वरो भवेत्। इति शिवम्॥

इत्यायवी सौभाग्यकाण्डे श्रीककोपनिषत् समाप्ता

श्रीविद्यातारकोपनिषत्

म्नं नो मित्रः मं वरुणः—इति शान्तिः

प्रथमः पादः

अधैनमगस्यः पप्रच्छ ह्यग्रीवं किं तारकं किं तरित । स होवाच ह्यग्रीवः । तारदीर्घानुरुम्बिपूर्वकं प्रथमं खण्डं ततो द्वितीयं खण्डं ततस्तृतीयं खण्डं ततश्चतुर्थं खण्डं ब्रह्मात्मसिद्धदानन्दात्मकमन्त्रमित्युपासितव्यम्। अकारः प्रथमकूटाक्षरो भवति । उकारो द्वितीयकूटाक्षरो भवति । मकारस्तृतीय-कूटाक्षरो भवति । अर्घमातृका चतुर्थकूटाक्षरो भवति । बिन्दुः पद्मम-कूटाक्षरो भवति । नादः षष्टकूटाक्षरो भवति । तारकत्वाचारको भवति । तदेव मन्त्रतारकं भवति । तदेव मन्त्रतारकं विद्धि । तदेवोपासित-व्यम् । गर्भजन्ममरणसंसारमहद्भयाचं तारयति । तारकमित्येतचारकं ब्राह्मणो नित्यं महीयते । स पाप्मानं तरित । स मृत्युं तरित । स ब्रह्महत्यां तरित । स अण्वहत्यां तरित । स वीरहत्यां तरित । स सर्वं तरित । स संसारं तरित । स ज्ञाहत्यां तरित । स न्राहत्यां तरित ।

वा वि

11

南

स

ातो

अकाराक्षरसंभूता वाग्भवा विश्वमाविता ।
उकाराक्षरसंभूता तेजसः कामराजका ॥
प्राञ्चो मकारसंभूता तार्तीया च तृतीयका ।
अर्घमात्रा षोडशी च ब्रह्मानन्दैकविश्रहा ॥
तस्याः सानिध्यवशतो जगदानन्ददायिनी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनास् ॥
त्रिकूटा मवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसङ्गता ।
प्रकृतिः प्रणवत्वाच सा त्रिकूटत्रयासिका ॥

एवं यचान्यत् त्रिकालातीतम् । चतुष्कूटात्मिकैव सर्वकूटात्मिका ब्रह्ममयी । तुर्यात्मब्रह्मा सोऽयमात्मा चतुष्पाज्जगतः स्थानं न बहिःप्रश्नं नोभयतःप्रश्नं सप्तान्न एकोनर्विशतिमुखः । स्थूलभुग्वैश्वानरात्मिकां काम-पीठालयां मित्रेशनाथात्मिकां जाम्रद्दशाधिष्ठायिनीमिच्छाशक्त्यात्मिकां कामे-श्वरीं प्रथमकूटां मन्यन्ते ।

इति प्रथमः पादः

ब्रिवीयः पादः

स्वप्रस्थानेऽनन्तः संज्ञासप्ताङ्ग एकोनर्विशतिभुखः प्रविभक्तोऽभूत् । तैजसात्मिकां जालन्धरपीठालयां षष्ठीशनाथात्मिकां वज्रेश्वरीं विष्ण्वात्मिकां क्रियारूपां स्वप्नावस्थानस्थितिरूपामिच्छाशक्तिस्वरूपिणीं द्वितीयकूटां मन्यन्ते ।

इति द्वितीयः पादः

तृतीयः पादः

यत्र सुप्तो न कश्चन कामं कामयते तत्सुषुप्तम् । पश्यन्ति यत् सुषु-तिस्थान एकीभृतप्रज्ञानघन एवानन्देऽभृत् । इच्छाशक्तिरूपां स्वमावस्थान-सुषुप्तिदशाधिष्ठायिनीं सानन्दकलां तृतीयकूटां मृन्यन्ते ।

इति तृतीयः पादः

चथुर्थः पादः

एवा सर्वेश्वर्येषा सर्वोत्तर्मेषान्तर्याम्येषा योनिः सर्वेषां प्रमवाप्ययो हि भूतानाम् । नोभयतः प्रज्ञां प्रज्ञानघनां न प्रज्ञां नाप्रज्ञामदृष्टामन्यवहार्याम-प्राह्मामलक्षणामचिन्त्यामन्यपदेश्यामेकात्मप्रत्ययसारां प्रपञ्चोपशमनीं शान्तां शिवामद्वेतां षोडशाक्षरीं स्फुरत्तादृशाधिष्ठायिनीं चतुर्थसण्डात्मिकां मन्यन्ते । सात्मा विज्ञेया । सदोज्ज्वलाविद्या । तत्कार्यहीना स्वात्मवन्धहरा सर्वदा-द्वेतानन्दरूपा सर्वाधिष्ठानसन्मात्रा निरस्ताविद्यातमोमोहाहमेवेति संभान्या-हर्मो तत्सद्यत् परंत्रह्म चतुष्कूटा परंज्योतिस्साहमोमित्यात्मानमादाय मनसा चतुष्कूटामेककार्यो तदा चतुष्कूटाहमिति तत्पराः प्रवदन्ति । येन ते संसारिण आत्मना विरागा एव । न संसारिणः । य एवं वेद स मुक्तो भवति हत्यगस्त्यः । इत्युपनिषत् ।

इति ऋर्षः पादः

इति श्रीविद्यातारकोपनिषत् समाप्ता

षोडोपनिषत्

अथाह वै इम शव: शानं शयनं शवानां शयनं इमशानं तदिषष्ठानो महाकालस्तत्पर्यक्कसमासीनां विश्वव्यापकरूपिणीं कालीं कालादिसंत्रासात् काली चतुर्युगाधिष्ठात्री स्वस्मिन् भाव्य षोढां न्यसेत् । स्थानगुद्धिन्यासं विधाय षोढां न्यसेत्। अथ षोढान्यासी षट्कालित्वं गच्छति। सेयं षट्कला परा परात्परा परात्परातीता चित्परा चित्परात्परा चित्परात्परातीता । षण्णां योगे षोढा भवेत् । वैष्णवकलायुक्तां मातृकायुक्तां वैष्णवीं न्यसेदिति प्रथमः। स परारूपो भवेत्। स भूमिं जयति। स शक्तिरूपो भवेत्। अथ वै कामकलापुटितां श्रीकलां श्रीकलापुटितां कामकलां लिपिस्थाने न्यसेत्। द्वितीयारूपो भवेत्। सोऽमृतत्वं गच्छति। स जलं तरतीति वै यज्ञे गीर्ण भवति । आदिकलापुटितां श्रीकलां श्रीकलापुटितामादिकलां मातृस्थाने न्यसेत् । स सिद्धीश्वरो भवेत् । स वर्द्धि जयति । दिवारात्रि-व्यापी भवेत् । कूर्च चन्द्रं कूर्च चन्द्रमन्तर्देष्टिमद्दीपनमन्त्रं राज्ञीपुटितमेतेन पुटितां राज्ञीं न्यसेत्। स खेचरो भवेत्। स वायुपुरगामी भवेत्। स कलावान् भवेत्। चतुर्थीरूपो भवेत्। अनुलोमदिलोमेन मूलमन्त्रं केवलं न्यसेत्। विद्यान्यासरूपो भवेत्। सर्वं जयति। स पश्चमीरूपो भवेत्। स चाकाशं जयति। अष्टोत्तरशतानुलोमविलोमाकृतिकमेण देवतां व्यापयेत्। स ध्वनिरूपो भवेत्। सर्वे जयति। सर्वे जरति। महापात-कोपपातकानि तरति । वयःस्थैर्यकरो भवेत् । अष्टसिद्धिदाता भवेत् । तद्रशेनेन देवत्वं भवेत्। षष्ठीकलावान् भवेत्। विश्वरूपो भवेत्। यं पस्यति तं शिवं कुरुते । नमस्कारान्मूर्तिस्फोटो भवेत् । स गारूपनाशको मवेत । स महेन्द्रजालदर्शको भवेत् । तद्दर्शनात् सिद्धीश्वरो भवेत् । पुटिति ज्ञिककार्यक्रमायामञ्ज्ञषोढां न्यसेत्। तत्त्पर्शादष्टलोहस्पर्शो मधेत्। श्राकिकारके जिहां नाडीं वा न्यस्य यो जपेत् स कालीरूपो मधेत्। इति विकास्।।

इत्यायकी सीमान्यकाण्डे बोडोपनिषद् समाप्ता

सुमुख्युपनिषत्

अधैनामावाहयाम्यनवद्यां शवाधिरूढां रक्तवसालद्वारयुक्तां रक्त-पीठोपविष्टां गुझाहारविभूषितहृदयां षोडशसमासमाकारां युवर्ती पीनोजत-स्बहृदये चिन्तयित्वोच्छिष्टपदमाभाष्य चण्डालिनीममिमतां सुमुखीं तदन्ते देवीं चोक्त्वा महापिशाचिनीं तस्माद्धरामिमायां विन्दु-मोलिनी समुचार्य ठान्तत्रयं सविसर्ग समुद्धृत्य देवीं हृदये विभाव्य ईक्कार-स्वरूपं सबिन्दुमुखं युम्मस्तनपदान्तं भावयित्वा यन्त्रं योनि तदुपरि शिववक्त्रयोनिमष्टपत्रं षोडशाञ्जकं वृत्तमेकं चतुरश्रं यन्तराजं विचिन्त्यादौ देवीमाबां बिन्दी गन्धाक्षतपुष्पधूपदीपान् संस्कृतानं नानाविधं निवेचाचं पलं मीमाद्यनं मूलेन मूलां सन्तर्प्य संस्कृतां पुरस्कृतां योनिं देवतायै निवेद-येत् । सुकृती चतुरश्रान् देवानिन्द्रामियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुवेरेशानान् वामावर्तेन संप्रूज्य घोडशाञ्जके कलावती कपालिनी कल्याणी नित्या कमला क्रिया क्रुपा आकुला कुलीना कुमारी कुण्डला आकरा किशोरी कोमला कस्पा कुमुदा एताः पूजयेत् । अष्टाञ्जे ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही इन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्मीः । ततो योनिपञ्चके चन्द्रा चन्द्रानना चारुमुसी चामीकरभभा चतुरा। ततो योनौ वामा ज्येष्ठा रौद्री। तदन्ते रतिमीति-

मनोभवाः पूज्याः । प्रान्ते पूजां सन्तर्प्य पुनर्नेवेधं बहुगुणं निवेधारात्रिकं निवेध परां पूज्यन् महाछत्रचामरादिसर्वदेवैर्नमस्कृतामाद्यशक्तिमष्ट-जातीयां स्वयं मैरवो भूत्वा कुलाकुलामृतैर्देवीं सन्तर्प्य स्वहृदये तां परां विस्रज्य सुखेनैव शिवशक्त्यात्मको भावयन् विहरेत् । स सिद्धीश्वरो भवेत् । स सर्वेश्वरो भवेत् । स लोकाध्यक्षो भवेत् । भवो भूत्वा विभावयति ॥

इत्यायवेणे सौभाग्यकाण्डे सुमुख्युपनिषत् समाप्ता

हंसबोढोपनिषत्

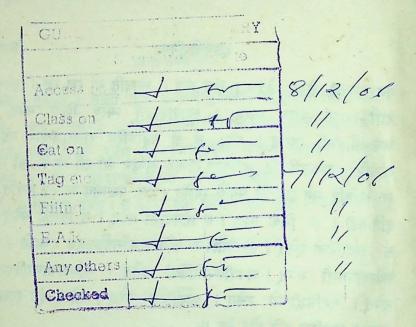
अथाह वै इंसपोढान्यासी शिवो भवेत्। सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
एतत्फलं वक्तुं सदाशिवोऽपि न समर्थः। पोढान्यासस्य विरूपाक्षमहाकाल
ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। काली देवता। कालीदेहार्थे विनियोगः। हंसेनाङ्गपट्कम्। स निर्वाणरूपो भवेत्। हंसः कं खं गं घं ङं महामुण्डमालाधारिणि
महाकालिप्रये मां रक्ष रक्ष। षट्चकवासिनि वागीश्वरि जिह्नाग्रे वस। हं
नमः शिरसि प्रोतं वेद शिवो भवेत्। हंसः चं छं जं झं अं महात्रिपुरभैरिव पुस्तकाक्षमालाधारिणि शत्रुमुखस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहेति महापन्ने। हंसः टं ठं डं ढं णं डां डीं डं डािकिनि मां रक्ष रक्ष स्वाहेत्यनाहने न्यसेत्। तृतीयारूपो भवेत्। हंसः तं थं दं घं नं महामारि मारहािरिणि हुं हुं दािरद्रिग्चं हर हर स्वाहा। गुं न्यसेत्। स ब्रह्मकालीत्वं गच्छिति।
चतुर्थत्वं गच्छिति। हंसः पं फं बं भं मं मार्जारि वीराविल ममालस्यं
नाशय नाशय। हंसः यं रं लं वं शं षं सं हं लम्बोदिर मार्तमहामङ्गलिप्ये

मम जाड्यं छेदय छेदय। प्रंश प्रंश। भगवित मां रक्ष रक्ष। भुवन-धारिणि मां धारय धारय। स्वाहापदद्वयं न्यस्य शिवो भवेत्। अथ वै षष्टीं न्यसेत्। हंसः छं क्षं महारुक्ष्मि राजराजेश्वरि महा-कालिप्रिये कालखण्डिनि खण्डिन खण्डिय खण्डिय खां खीं खूं कैं खों खों खः खनित्रि समे स्वाहेति सर्वाङ्गे न्यसेत्। हंसः पञ्चाशत् व्यापकं कुर्यात्। इति षष्टी। स शिवो भवेत्। स सोमयाजी भवेत्। स विरक्तो भवेत्। स सर्वदीक्षितो भवेत्। सोऽमृतत्वं गच्छिति। स सर्वकाल्रवं गच्छिति। स सर्वन्यासकारी भवेत्। अनधीतगितिर्विद्यां लभेत्। कर्तव्याकरणादिकर्तां भवेत्। सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। कालीक्रपो भवेत्। सोऽहं हंस इत्याह भगवान् सदाशिव इति प्रोतं वेद।।

इत्यायर्वणे सौभाग्यकाण्डे इंसघोडोपनिषत समाप्ता

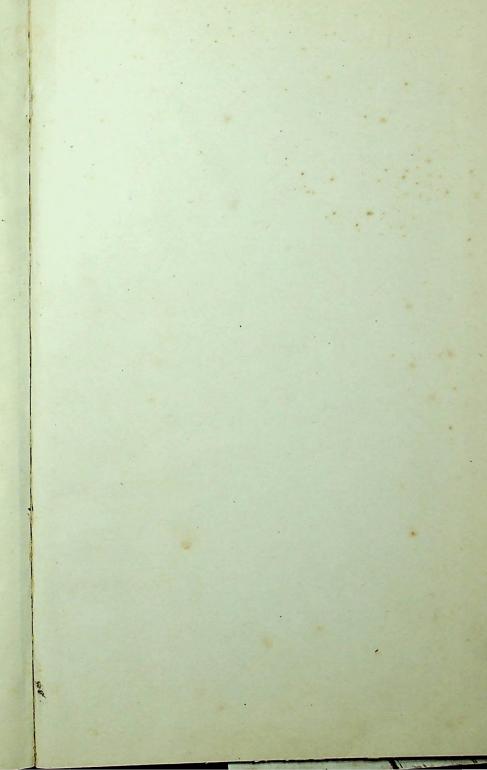
पूर्व अध्यक्ष संस्कृति विश्वति पूर्व अध्यक्ष संस्कृति विश्वति पूर्व कौगड़ा विश्वविद्यालय, हिस्स्ति





Entered in Catabase

Signature with Date





हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

| | ₹० |
|--|----------|
| नातकमाला-सूर्यनारायण चौधरी | ३४.०० |
| तर्कसंग्रह (सम्पूर्ण)दयानन्द भार्गव | २४.०० |
| धर्मदर्शन की रूपरेखा—हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा | शीघ्र |
| न्याय-सिद्धांत-मुक्तावली, प्रत्यक्ष खण्ड | |
| —धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री | 80.00 |
| पातञ्जल योगदर्शनहरिहरानन्द | |
| (ग्रजिल्द) ३५.००; (सजिल्द) | ५५.०० |
| पाश्चात्य आगमन तर्कशास्त्र | |
| —मसीह तथा झा | 6.40 |
| पाश्चात्य दर्शनग्रशोककुमार वर्मा | १५.०० |
| पाश्चात्य निगमन तर्कशास्त्रग्रानिरुद्ध झा | १२.७५ |
| प्रत्यभिज्ञाहृदयम्ठाकुर जयदेवसिंह | 20.00 |
| प्रारम्भिक ग्राचारशास्त्र | |
| —-ग्रशोककुमार वर्मा | 98.98 |
| प्रारम्भिक समाजदर्शन | |
| ज्यागोककमार वर्मा | 94.00 |
| क्तरतीय तर्कबोध न्याय—-ग्रानरुद्ध ज्ञा | 9.00 |
| गोगपदीपिका-सं ब्रह्मचारा याज्ञवल्पय | 5.00 |
| वैदिक धर्म एवं दर्शन (दा भागा म) | -2- |
| -कीय, ग्रनु० सूर्यकान्त | शीघ्र |
| मरल आगमन तर्कशास्त्र | |
| ज्ञानेककमार वमा | १४.०० |
| मरल तर्कशास्त्र (आगमन ग्रार निगमन) | c 11 c |
| —-ग्रशोककुमार वम। | ६.५० |
| मरल निगमन तर्कशास्त्र | 0- 40 |
| —अशोककुमार वमा | १८.५० |
| मंक्षिप्त सामान्य दर्शन | 94.00 |
| नाजीककमार वेम। | |
| | () २४.०० |
| (ग्रजिल्द) १५.००; (सजिल्द | |

ईशादि-दशोपनिषद् यमुनाप्रसाद व्रिपाठी

उपनिषदों में ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैतिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, ग्रीर बृहदारण्यक मुख्य हैं। इन पर श्री शंकराचार्य के भाष्य उपलब्ध हैं। प्रस्तुत पुस्तक इन दस उपनिस्त्रदों का शांकरभाष्य-सहित संग्रह है।
(ग्रजिल्द) रु० ३०; (सजिल्द) रु० ४५

एकादशोपनिषद् अमरदास जी

विषय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्यारह उपनिषदों का यह एक अनूठा संग्रह है। इन उपनिषदों में से ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, और ऐतरिय उपनिषदों पर स्वामी अमरदास जी उदासीन की 'उपनिषन्मणिप्रभा' टीका, छान्दोग्य और बृहदारण्यक पर नित्यानन्दाश्रम की 'मिताक्षरा' और कैवत्य उपनिषद् पर शंकर निन्द की 'दीपिका' भी सम्मिलित हैं। हर्ण १५

केनोपनिषद् यमुनाप्रसाद विपाठी

इस उपनिषद् में मंत्र, पदच्छेद, ग्रन्वय, शब्द, शब्दार्थ, भावार्थ, हिन्दी व्याख्या, ग्रीर श्रंग्रेजी रूपान्तर हैं। परिशिष्टों में डा० राधाकृष्णन्, स्वामी गम्भीरानन्द, गर्याप्रसाद, सर्वानन्द, ग्रीर ग्ररविन्द द्वारा किए गए ग्रंग्रेजी रूपान्तर हैं। स्वामी दयानन्द एवं दामोदर सातवलेकर के हिन्दी अनुवाद भी जोड़े गए हैं।

मोतीलाल बनारसीदांस

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास